भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्‌की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

की

पुण्यस्मृति

प्रधान सम्पादक

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज

सम्पादक

पं० चिम्मनलाल गोस्वामी ● डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

प्रथम पुण्यतिथिपर

न्योछावर

विशिष्ट प्रति : इक्यावन रुपये

प्रकाशक

श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान,

पो० गीतावाटिका, गोरखपुर ।

मुद्रक——ओम्प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ७०७६-२८ ।

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

सम्पादकका निवेदन

'भाईजी : पावन स्मरण' ग्रन्थका सम्पादन करते हुए मुझे कितनी ही बातें स्मरण आ रही हैं। वार्द्धक्य-अवस्थामें स्वभावतः ही स्मृति क्षीण हो जाती है; परंतु भाईजीके साथ मेरा जो दीर्घकालका स्नेह-सम्बन्ध रहा है, वह मेरी स्मृतिके मणिकक्षमें आज भी उज्ज्वलरूपमें विराजमान है। यह स्मरण-ग्रन्थ उनके मर्त्य-जीवनके कतिपय दुर्लभ सम्पर्कोंपर प्रकाश डालेगा, इसमें संदेह नहीं। जिन लोगोंने उन्हें निकटसे देखने तथा जाननेका सुयोग प्राप्त किया है, उनकी लेखनीके आलोकसे एक महान् व्यक्तित्वको सर्वसाधारणकी दृष्टिके सम्मुख स्थापित करना ही इस ग्रन्थका परम लक्ष्य है। जो लोग उनपर श्रद्धा करते थे, स्नेह करते थे, वे श्रद्धाकी अञ्जलि सजाकर उनकी अमर स्मृतिको पुष्पोपहार अर्पित कर रहे हैं। इससे भाईजीके समग्र चरित्रका महत्व किस अंशमें प्रस्फुटित हो पाया है, इसका निर्णय सहृदय पाठक ही अपने विचारके मानदण्डसे कर सकेंगे।

'हनुमानप्रसाद पोद्दार' एक नाममात्र नहीं, वस्तुतः एक महान् आदर्शका प्रतीक है। सेवा, लोक-कल्याण और देश-प्रेम––ये त्रिविध गुण उनमें मूर्त होकर विकसित हुए थे। उनका ऐसा जीवन था, जो क्रमशः एक ध्रुव परिणतिकी ओर अग्रसर होता है। कालक्रमेण बीज एक विशालाकार वनस्पतिकी शाखाओंके विस्तारमें, काण्डकी सबल, ऋजु और ऊर्ध्वमुखी गतिमें, पत्र-पल्लवोंकी श्याम-शोभाके द्वारा कितने ही विहंगमों और कितने ही श्रान्त पथिकोंके गाढ़ स्नेहका आश्रय बन जाता है। बीजके हृदयमें आकाङ्क्षाका जो अङ्कुर है, वही एक दिन विशाल महीरुहकी परम परिणतिमें प्रकाशित हो जाता है। भाईजीके हृदयमें एक ही आकाङ्क्षा थी, जिसने लोक-मङ्गलकी सफल सार्थकताके मार्गमें चलते हुए जीवनको परम ऐश्वर्यमय बनाया था। जीवनमें प्राप्य क्या है? ऐश्वर्य नहीं, ख्याति, सम्मान और सुख भी नहीं––मात्र सेवा। मनुष्यमात्रके प्रति वास्तविक प्रेम––उनके दुःखको अपना दुःख समझकर, उन्हें कल्याण-मार्गमें स्थापित करना ही उनका उद्देश्य था। जीवोंपर दया, जीवको जीव समझकर नहीं, उन्हें अपना समझकर, आत्माका आत्मीय समझकर सेवा करनेकी इच्छा उनके मनमें बराबर जाग्रत् रहती थी। यह इच्छा स्वभाव––धर्मके रूपमें उनके अन्तस्तलमें विकसित हुई थी। उन्होंने 'स्व'-भावके अनुसार इस महान् वाणीको हृदयंगम कर लिया था––'जीवे दया करे जेइ जन, शेई जन सेवीछे ईश्वर।'––'जो जीवोंपर दया करते हैं, वे ईश्वरकी ही सेवा करते हैं।'

सेवाका जो परमादर्श हमारे शास्त्रग्रन्थोंमें निर्दिष्ट है, वह देहके प्रति अहं-बोध, मनके प्रति अहं-बोध आदि क्षुद्र भावोंके रहते हुए हो नहीं सकता। जब मनुष्य सम्पूर्णरूपेण निरहंकार होकर अपनेको श्रीभगवान्‌के यन्त्ररूपमें अनुभव करता है और एकमात्र भगवत्सत्ता ही सर्वत्र विराजित है––इस प्रकारके बोधमें सर्वदा जागरूक रह सकता है, केवल उसी समय यथार्थरूपमें सेवा और कल्याण-कर्ममें अपनेको लगानेका अधिकार पाता है। मुझे प्रतीत होता है कि इस प्रकार सेवाका अधिकार बहुत ही कम महापुरुषगण पा सकते हैं। भगवत्साधनाके अङ्गरूपमें इस प्रकारका सेवाधिकार प्राप्त होनेके पहले निःस्वार्थ सेवा भी जीवनका एक महान् आदर्श है, इसमें कोई संदेह नहीं।

भाईजीकी जीवनधाराके साथ मेरा जो परिचय-प्रसङ्ग रहा है, उससे यह अनुभव हुआ कि वे एक अत्यन्त निरहंकार एवं परहित-निरत महान् पुरुष थे। उन्होंने सेवा तथा लोक-कल्याणको साधनाके अङ्गरूपमें ग्रहण करते हुए निरालस्य हो निष्काम कर्म तथा निःस्वार्थ सेवामें जीवन अर्पित किया था। सेवा तथा कर्मके अङ्गरूपमें आचरित सभी कृत्य उनकी साधनाकी ही पुष्टि करते थे। देशको स्वतन्त्र करनेकी प्रेरणा, 'कल्याण'-सम्पादन, साहित्य-रचना, साहित्यप्रेम, अपनी मातृभाषाकी सेवा आदि नाना प्रकारके कर्मोद्यम तथा सबसे ऊपर भारतवर्षके सनातनधर्मकी परम्परा तथा ऐतिह्यकी रक्षा, उसके प्रचार तथा प्रसारकी नव-नव कार्यप्रणालियाँ––सभी उनकी

भगवन्मुखी साधनाकी क्रमिक परिणतिकी भिन्न-भिन्न दिशाएँ थीं और उसी रूपमें ये उनके निकट प्रतिभात होती थीं। अतः जीवनके नानाविध कर्मोद्यम उनकी साधनाके अन्तराय न होकर, उसके परिपूरक बन गये थे।

हमारे देशमें ही नहीं, अन्य देशोंमें भी महापुरुषोंके जीवन-वृत्त सुलभ नहीं हैं। दिव्य आत्माओंकी स्वभावतः ही जीवनके नाना प्रकारके जागतिक तथ्योंसे उदासीनताके कारण उनकी लोकयात्रासे सम्बद्ध बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें उन लोगोंके भी कर्णगोचर नहीं हो पातीं, जो उनके सांनिध्यमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। जो कुछ अन्य स्रोतोंसे जाना भी जा सकता है, वह कल्पनारञ्जित होनेसे असत्य अथवा अर्द्ध-सत्यके रूपमें प्रस्तुत होनेके कारण विकृत हो जाता है। अतः उनके माध्यमसे महापुरुषोंके व्यक्तित्वको पहचाना नहीं जा सकता। इस सम्बन्धमें एक और बाधा यह है कि महापुरुषगण संसारके कोलाहलसे निवृत्त होकर किसी निभृत निराले स्थानमें साधन-जीवनके ध्येयकी प्राप्तिके लिये नीरवतामें कालयापन करते हैं। साधारण मनुष्य उनका संधानतक नहीं पा सकते। यदि कोई व्यक्ति सौभाग्यवश उनके सांनिध्यमें जाता भी है तो उस समय प्रायः उसका लक्ष्य रहता है इहलौकिक याचना, ऐहिक सुख, विपत्ति-निवारण और आधि-व्याधिकी ज्वालाके उपशमकी कामना; इन्हें छोड़कर वह भगवत्कृपाका भी अभिलाषी नहीं होता। उसकी दृष्टि जीवनकी स्वल्प परिधिमें सीमित रहती है। अतः उसके निकट भूमाके आनन्द तथा अखण्ड माधुर्य-रसास्वादनकी कल्पना भी एक अलीक स्वप्न-सदृश है। संसारी मनुष्योंके निकट उनका दुःख और वेदना जितनी सत्य है, भव-सागरसे त्राण करानेवाली परमानन्दमयी मुक्ति उतनी सत्य नहीं। सामान्यतः लोग सांसारिक सुख चाहते हैं, उन्हें अन्य किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं होती। इसके विपरीत जो सत्य स्थिति है, महापुरुषगण अपने साधन-बल तथा भगवत्कृपासे उसे उपलब्ध करते हैं। वे इस दुःख-समुद्रका मन्थन करके अमृतके नित्यलोकमें उपनीत होते हैं और इस प्रकार अपने जीवनको मृत्युंजय बना लेते हैं। उनका लक्ष्य रहता है जीवनको मृत्युसे अतीत भूमिमें पहुँचाकर एक विशेष दृष्टिसे पुनर्वार संसारकी ओर प्रसृत नेत्रोंसे देखना। उस समय जीवन स्वयं ही उनके समक्ष एक विशेष तात्पर्य लेकर उपस्थित होता है—'दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते। मोक्षायते च संसारो यत्र मार्गः स शांकरः॥'

एक परमसत्ता विश्वके प्रत्येक अणु-परमाणुमें व्याप्त है। विश्वके सब रूप उसीके रूप हैं। उसका प्रकाश अनन्त सूर्योंकी किरणोंसे भी अधिक तेजस्वी है, किंतु मायाके आवरणसे आवृत रहनेके कारण वह जीवोंके द्वारा दृश्य नहीं है। सहस्रांशु होते हुए भी वह अन्धकारमें आवृत-जैसी रहती है। अतः बद्ध जीव इसे देखते हुए भी नहीं देख पाता, ज्ञात होते हुए भी वह उसके निकट चिरकालके लिये अज्ञात ही रह जाती है। जब भगवत्कृपासे आवृत दृष्टि उन्मुक्त हो जाती है, तब अनन्त प्रकारके मेय, मान तथा माताका जगत् विलुप्त होकर एक नित्य सदोदित दृष्टिका उदय होता है। उस समय उस परम भक्तके निकट जो कुछ भी प्रतिभात होता है, वह परमेश्वरके प्रकाशमान रूपके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। परमभागवतोंको तब यह जगत् एक सविशेषरूपमें दृष्टिगोचर होता है—'भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः।'—'एकमात्र भोक्ता परमेश्वर ही भोग्यरूपमें निरन्तर सर्वत्र विद्यमान है।' उस समय सर्वभूतमें भगवद्रूप और भगवान्में सब कुछ देखकर उनका हृदय एक अपूर्व प्रेम-रससे आप्लुत हो जाता है। वैष्णव कवि श्रीकृष्णदास कविराज 'चैतन्य-चरितामृत'में इस भावका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

महाभागवत देखे स्थावर-जंगम। ताँहा ताँहा हय तार श्रीकृष्ण-स्फुरण॥
स्थावर-जंगम देखे ना, देखे तार मूर्ति। सर्वत्र हय निज इष्टदेव-स्फूर्ति॥

'महाभागवत स्थावर-जंगम जो कुछ देखते हैं, उसमें उनको श्रीकृष्णका स्फुरण होता है। वे स्थावर-जंगम नहीं देखते, उनकी (श्रीकृष्णकी) मूर्ति देखते हैं और तब उन्हें सर्वत्र निज इष्टदेवकी स्फूर्ति होने लगती है।'

भाईजीकी साधना जीवनके प्रथम चरणमें ही आरम्भ हो गयी थी। उसीसे स्फूर्ति ग्रहण कर असंख्य कल्याण-व्रतोंमें अपनेको सर्वदा व्यापृत रखकर उन्होंने अपना जीवन भगवत्सेवामें अर्पित कर दिया था। रसमय भगवान्के अपूर्व लीला-रसका आस्वादन करते हुए उन्होंने अपने अन्तरङ्ग जीवनके सामान्य क्रमको लोकनेत्रोंसे

अलक्ष्य एवं अत्यन्त संगोपित रखा। मेरी धारणा है कि वे 'श्रीकृष्ण-रस-भावित-मति' थे। उसी भावनाके रसमें निरन्तर निमग्न रहकर वे जगत्के सभी कार्य करते रहे।

इस ग्रन्थमें भाईजीके स्वरूपका जैसा निरूपण हुआ है, वह वस्तुतः उनका बाह्य रूप ही है। उनका आन्तरिक रूप कैसा था—यह वर्णनका विषय नहीं, आभास तथा इङ्गितसे ही जाना जा सकता है। इसका किंचित् परिचय 'स्वरूप-चिन्तन'के अन्तर्गत संगृहीत संस्मरणात्मक निबन्धोंसे मिल सकता है। 'श्रद्धार्चन' अध्यायसे यह ज्ञात होगा कि देशके सभी श्रेणियों एवं वर्गोंके महानुभावोंने कितने भावप्लुत हृदयसे उन महापुरुषके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित किये हैं। उनके कर्मजीवनके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये 'जीवनयात्रा' शीर्षक अध्यायमें कुछ सामग्री उपहृत है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थके विभिन्न अध्यायोंमें भाईजीके व्यक्तित्वके विषयमें श्रद्धालुओंके द्वारा अभिव्यक्त विचारोंसे भी पर्याप्त प्रकाश प्राप्त होगा। उनके लोक-संग्रहपरक जीवनकी आलोचना विशेषरूपसे 'लोकाराधन'में निबद्ध है। ग्रन्थके अन्तिम अध्याय 'अमर संदेश'में संकलित भाईजीके मूल शब्दोंसे पाठकोंको उनकी विचारधारासे अन्तरङ्ग परिचय एवं उद्बोधन प्राप्त हो सकेगा। ग्रन्थके आरम्भमें 'इष्ट-वन्दन'के पश्चात् महापुरुषके स्वरूप एवं उसके अलौकिक माहात्म्यका स्वल्प दिग्दर्शन कराया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थका इसी परिप्रेक्ष्यमें आस्वादन करना चाहिये।

दिव्य-धामको प्रस्थान करनेके पूर्व भाईजीने मेरे परमस्नेह-भाजन एवं शिष्य डॉ० भगवतीप्रसाद सिंहको अपने सामान्य जीवनका अन्तरङ्ग तथा विशद परिचय बताया था। वह एक पृथक् ग्रन्थके रूपमें यथासमय प्रकाशित होगा। अतः उसमें विस्तारसे वर्णित प्रसङ्गोंका इस ग्रन्थमें संकेतमात्र करके संतोष किया गया है।

भाईजीके विशाल मानसकी भाँति ही उनके स्नेहियों, श्रद्धालुओं तथा कृपापात्रोंका एक विराट् समुदाय देश-विदेशमें व्याप्त है। प्रस्तुत ग्रन्थके लिये उनमेंसे अनेक महानुभावोंने श्रद्धाञ्जलि, संस्मरण, काव्य, निबन्धादि भेजकर हमें कृतार्थ किया है। हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं। श्रीअरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरीकी परम पूजनीया माताजीका मङ्गलमय आशीर्वाद इस ग्रन्थके लिये प्राप्त हुआ है। उससे इस ग्रन्थकी मङ्गलमयतामें वृद्धि हुई है। पूजनीया माताजीके चरणोंमें हमारा मस्तक नत है। ग्रन्थके आकारकी सीमाको दृष्टिमें रखते हुए समस्त प्राप्त सामग्रीको स्थान देनेमें असमर्थता रही है। कतिपय रचनाओंका यथायथ संशोधन भी करना पड़ा। प्राप्त सामग्रीका एक बृहदंश ग्रन्थके अङ्गीभूत होनेसे रह गया। उनके श्रद्धालु एवं सुधी लेखकोंके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करते हुए हम क्षमाप्रार्थी हैं। सम्पादन-कार्यमें मेरे प्रिय अन्तेवासी श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी ('कल्याण'-सम्पादक) और डॉ० भगवतीप्रसाद सिंहने जिस निष्ठासे योगदान किया है, वह भाईजीके साथ उनके घनिष्ठ अन्तरङ्ग सम्बन्धके अनुरूप ही है। इसके लिये वे धन्यवादके पात्र हैं।

'श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान', गोरखपुरके संचालकोंके हम विशेषरूपसे कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस महान् ग्रन्थके संयोजन एवं प्रकाशनका भार लेकर भाईजीके यशः-सौरभके प्रसारमें अपनी अमूल्य सेवाएँ अर्पित कीं। साथ ही 'ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी'के व्यवस्थापकोंके भी हम आभारी हैं, जिनके अथक अध्यवसायसे यह इतने सुरुचिपूर्ण रूपमें प्रस्तुत हो सका। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थकी अवतारणामें निमित्त बननेवाले भाईजीके ज्ञात-अज्ञात सभी श्रद्धालुओंके प्रति हमारा इन शब्दोंके साथ विनम्र निवेदन है कि अपनी हंस-बुद्धिसे वे इसके अन्तर्गत प्राप्त यत्किंचित् सदंश ग्रहणकर परमार्थ-लाभ करें।

चैत्र कृष्ण १०, सं० २०२८,
माँ आनन्दमयी आश्रम,
वाराणसी

गोपीनाथ कविराज

(गोपीनाथ कविराज)

यह क्षुद्र प्रयास

सृष्टिके अनादि प्रवाहमें जगत्में असंख्य संत हो चुके हैं, जिनमेंसे अधिकांशके नाम भी विस्मृतिके गर्भमें लीन हो गये हैं। जितने महापुरुषोंका आंशिक जीवनवृत्त वर्तमान इतिहासके पन्नोंमें सुरक्षित है, उनकी ओर जब हम दृष्टि डालते हैं, तब ऐसा लगता है कि उनका जीवन-क्षेत्र अधिकांशमें एकदेशीय अथवा सीमित ही रहा है। उनमेंसे कोई ज्ञानी, कोई भक्त, कोई कर्मठ, कोई विरक्त, कोई लोकसंग्रही, कोई विविक्तसेवी, कोई भजनपरायण, कोई उपदेशक, कोई विद्वान्, कोई निरक्षर, कोई कवि, कोई लेखक, कोई विचारक, कोई वक्ता, कोई अपरिग्रही, कोई दानी, कोई भिक्षुक, कोई धनवान्, कोई सर्वथा त्यागी और कोई राजसी ठाटमें रहनेवाले, कोई योद्धा और कोई सर्वथा अहिंसक रहे हैं। ऐसे संत जगत्में बहुत कम हुए हैं, जिनका जीवनक्षेत्र बहुमुखी अथवा व्यापक रहा हो। श्रीभाईजीका व्यक्तित्व ऐसा था, जो अनेक दृष्टियोंसे समृद्ध था। वे धनी न होनेपर भी बहुत बड़े दानी थे। उन्होंने लोकसेवाके लिये भी कभी एक पैसा किसीसे नहीं माँगा, न कभी पैसेके लिये कोई अपील ही निकाली, जब कि उन्होंने अपने जीवनमें अभावग्रस्त व्यक्तियोंकी, लोकहितकारिणी संस्थाओंकी तथा अकाल, बाढ़, भूकम्प, अग्निकाण्ड आदि दैवी प्रकोपोंके शिकार हुए पीड़ित प्राणीमात्रकी सेवामें करोड़ों रुपये खुले हाथों व्यय किये।

जाति, समाज अथवा धर्मका भेद तो कभी उन्होंने किया ही नहीं। उनका द्वार सभी जातियों, सभी वर्गों, सभी सम्प्रदायों एवं सभी धर्मावलम्बियोंके लिये खुला था। विचारोंकी दृष्टिसे यद्यपि वे स्वयं कट्टर सनातनी हिंदू थे, फिर भी किसी भी सम्प्रदायसे उनका विरोध तो था ही नहीं, सभी सम्प्रदायोंके प्रति उनकी आदरबुद्धि थी, सभी सम्प्रदायवालोंके लेखोंको वे सम्मानपूर्वक 'कल्याण'में स्थान देते थे। राजनीतिके किसी भी दलके साथ उनका साक्षात् सम्बन्ध न होनेपर भी सभी दलवालोंके साथ उनका प्रेमका सम्बन्ध था और आवश्यकता होनेपर वे सबकी तन-मन-धनसे सहजरूपसे सहायता करते रहते थे। राजनीतिसे सर्वथा अलग रहनेपर भी उन्हें राजनीतिक विषयोंका प्रचुर ज्ञान था और समय-समयपर देशके सामने आनेवाली विविध समस्याओंको सुलझानेके लिये वे 'कल्याण'के माध्यमसे बड़े ही सुन्दर और सर्वमान्य आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत करते थे। उच्चकोटिके प्रेमीभक्त होनेके साथ-साथ वे आदर्श कर्मी, ज्ञानी एवं योगी भी थे। शरीरसे वे कितने असङ्ग थे, इसका पता लोगोंको उनकी अन्तिम बीमारीके समय चला। जिन दिनों उनके निवासस्थानमें बिजली नहीं थी, उन दिनों ज्येष्ठ-आषाढ़की गर्मीमें भी वे सम्पादन अथवा लेखन-कार्यमें इतने तल्लीन रहते थे कि उन्हें गर्मीका भान ही नहीं होता था, यद्यपि उनके शरीरसे पसीना चूता रहता था। योगकी चरम स्थितिके दर्शन उनकी भाव-समाधिमें सुलभ थे।

संतके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह विद्वान् अथवा लेखक भी हो। श्रीभाईजी परमोच्चकोटिके संत होनेके साथ उच्चकोटिके लेखक, कवि एवं ग्रन्थकार थे। यों तो संतके जीवन, उनके अस्तित्व, उनके श्वास-प्रश्वास, उनके दर्शन, स्पर्श एवं सम्भाषणसे, उनके शरीरका स्पर्श प्राप्त की हुई वायुसे ही जगत्का मङ्गल होता है, परंतु श्रीभाईजीने तो अपने प्रौढ़ विचारों, अपनी ओजस्विनी वाणी तथा अपनी शक्तिशालिनी लेखनीसे भी असंख्य पथभ्रष्टोंको पथ दिखाया, जिज्ञासुओंकी ज्ञान-पिपासा शान्त की, भक्तोंको भक्तिका मर्म समझाया, ज्ञानमार्गियोंको ज्ञानका रहस्य बताया। उच्चकोटिके लेखक एवं शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् होनेके साथ-साथ पत्रकारिताके क्षेत्रमें भी उन्होंने सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित किया तथा सस्ते-से-सस्ते मूल्यमें उच्चकोटिके लोक-कल्याणकारी आध्यात्मिक एवं नैतिक साहित्यको अत्यन्त अल्पमूल्यमें जनसाधारणको सुलभ कराके सत्साहित्य-प्रचारकी दिशामें भी बहुत बड़ा कार्य किया। चोटीके साहित्यिक, कवि, लेखक एवं विचारक प्रायः लोक-व्यवहारसे अनभिज्ञ होते हैं। परंतु हमारे श्रीभाईजीका व्यवहारपक्ष भी सबल था। उनका व्यापारविषयक ज्ञान, हिसाब-किताबमें पटुता तथा सार्वजनिक

संस्थाओंके संचालन और सेवाकार्योंके संगठनका अनुभव भी कितना बढ़ा-चढ़ा था—इसका परिचय हमें उन द्वारा चलायी गयी तथा उन्नतिके शिखरपर पहुँची हुई अनेक संस्थाओंके निरीक्षणसे प्राप्त होता है।

सतत साधनाके द्वारा ज्ञान, भक्ति एवं योगके क्षेत्रमें सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करनेके बाद उनके लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह गया था। परंतु इन महान् उपलब्धियोंको प्राप्त करनेके बाद भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। ज्ञान, योग और भक्तिकी जो दुर्लभ स्थिति उन्हें प्राप्त थी, उसका लाभ अधिक-से-अधिक लोगोंको मिले, जगत्के मोहग्रस्त जीव भी इस प्रकारकी स्थितिपर विश्वास करके इस ओर अग्रसर हों—इसके लिये वे व्याकुल थे और जीवनके अन्तिम क्षणतक वे जीवोंको सर्वभूतसुहृद्, अकारणकरुण, करुणावरुणालय भगवान्‌की ओर उन्मुख करनेके लिये सचेष्ट रहे।

गङ्गातटपर जाकर एकान्त-सेवनकी, संन्यास लेनेकी अथवा केवल भजन-स्मरण, भगवच्चिन्तनमें ही जीवन बितानेकी वृत्ति कई बार प्रबलरूपमें जाग्रत् होनेपर भी श्रीभाईजी लोकसंग्रहकी भावनासे अन्ततक कर्मक्षेत्रमें ही रहे और एक अनासक्त गृहस्थका जीवन उन्होंने बिताया। इस रूपमें उन्होंने न जाने कितने ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों एवं संन्यासियोंकी सेवा की। वे स्वयं संन्यासी नहीं हुए, परंतु उनके सम्पर्कसे कई अच्छे विद्वान् तथा संस्कारी महानुभाव संन्यास-ग्रहण कर अपने जीवनको सफल बना चुके हैं।

इसके अतिरिक्त वे अनेक भाषाविद् थे। प्राचीनता एवं अर्वाचीनताका अद्भुत समन्वय उनमें था। वे नियम-पालनमें कठोर, पर दूसरोंके लिये परम उदार थे, गृहस्थ होते हुए भी विदेह थे, भारतीय संस्कृतिके मूर्तिमान् स्वरूप थे, उनका जीवन धर्मकी व्याख्या था, सबको मान देनेवाले किंतु स्वयं अमानी थे, सारा उत्तरदायित्व सँभालते हुए भी अपना किसी प्रकारका अधिकार नहीं मानते थे। अपने इष्ट भगवान् श्रीकृष्णकी भाँति उनका जीवन सभी दृष्टियोंसे आदर्श एवं पूर्ण था। वे आदर्श पिता थे, आदर्श पति थे, आदर्श पुत्र थे, आदर्श मित्र थे, आदर्श बन्धु थे, आदर्श सेवक थे, आदर्श आत्मीय थे, आदर्श स्नेही थे, आदर्श सुहृद् थे, आदर्श गुरु थे, आदर्श शिष्य थे, आदर्श साधक थे, आदर्श सिद्ध थे, आदर्श प्रेमी थे, आदर्श कर्मयोगी थे, आदर्श ज्ञानी थे, आदर्श गृहस्थ थे, आदर्श लेखक थे, आदर्श संगठनकर्त्ता थे—इस प्रकार सभी आदर्शोंका समन्वितरूप था उनका जीवन। ऐसे सर्वमान्य महामहिमामय महामानवके इतनी विविधताओंसे परिपूर्ण जीवनके विषयमें इस छोटे-से ग्रन्थमें कितना क्या समाविष्ट किया जा सकता है—यह सहजरूपसे अनुमान लगाया जा सकता है। फिर उनका परिवार तो देश-विदेशमें सर्वत्र फैला हुआ है। अपने दीर्घ-जीवनके ७९ वर्षोंमें देश-विदेशके करोड़ों-करोड़ों व्यक्तियोंके जीवनसे उनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिचय एवं सम्पर्क हुआ है। उन सब श्रद्धालु एवं प्रेमी बन्धुओंको हम इस आयोजनकी सूचनातक नहीं भेज पाये हैं। अतएव एक सीमित संख्याके श्रद्धालुओं-स्वजनोंकी भाव-कुसुमाञ्जलिका संग्रहमात्र यह 'पावन स्मरण' है; और यह स्मरण भी हुआ है अपनेको पवित्र एवं धन्य बनानेके लिये—'निज गिरा पावन करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो।'

भगवान्‌ने चाहा तो भविष्यमें इसी प्रकारकी और वस्तुएँ प्रकाशमें लायी जा सकेंगी।

गीता वाटिका, गोरखपुर

चिम्मनलाल गोस्वामी
भगवतीप्रसाद सिंह

संस्थानकी ओरसे

'श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान'के मन्त्री होनेके नाते इस ग्रन्थके संयोजकरूपमें 'भाईजी : पावन स्मरण' नामक यह पत्र-पुष्प विश्वरूप प्रभुकी अर्चनाकी दृष्टिसे उसके सम्मुख रखते हमें वस्तुतः अत्यन्त संकोच हो रहा है। पूज्य भाईजी तो निस्संदेह परम पावन हैं; परंतु जब हम अपनी ओर दृष्टि डालते हैं, तब ऐसा लगता है कि योग्यता, शक्ति और अधिकार तो बहुत आगेकी बातें हैं––हमारी अपावन बुद्धिके माध्यमसे हुआ यह संयोजन हमारे अत्यन्त जाग्रत् मलिनतम अहंकारके क्रियाशील रहनेके कारण––उनके निरञ्जन, निर्मल, परमविशुद्ध स्वरूपको निश्चय ही अभिव्यक्त नहीं कर पाया है, इस संकोचके कारण हम सचमुच विश्वरूप प्रभुके सम्मुख क्षमा-प्रार्थी होकर ही खड़े हैं।

वास्तवमें संत अचिन्त्य महाशक्तिकी स्वरूप-लीला होते हैं। इसलिये संत-तत्त्व एक अत्यन्त गम्भीर रहस्य है। वह मनसे अतीत है। अतः जबतक मन-बुद्धिका निरोध नहीं हुआ है, संत-चरित्ररूप निर्मल गङ्गाजलका संस्पर्श सम्भव ही नहीं। फिर जितनी व्याख्या, स्मरण, मनन है, वह तो मन-बुद्धिको लेकर ही है। इसीलिये पूज्य श्रीभाईजीके चरित्रको अनेकोंने अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार ही देखा है––और श्रीभाईजी भी सभीको उनकी अपनी दृष्टिके अनुसार ही दिखायी पड़े हैं। प्रत्येककी दृष्टि भिन्न है। किसी समाज-सुधारकने उनमें महान् समाज-सेवीको देखा है, किसी संगठनकर्त्ताने उनमें संगठन-कौशलकी चरम सीमाके दर्शन किये हैं, किसीने उनमें सेवा-भावना मूर्त होती पायी है, किसीने उदारता, किसीने करुणा, किसीने वात्सल्य, किसीने दयालुता, किसीने विद्वत्ता, किसीने वक्तृता, किसीने सेवा-परायणता, किसीने शास्त्रोंकी उद्धारकता आदि गुणोंको उनमें मूर्तिमान् होकर विराजित देखा है। एकने कहा––'उन-जैसा गुरुसेवक कोई नहीं रहा––यह उनका महान् गुण था।' दूसरेने कहा––'वे ब्रह्मण्य थे, भक्ति-श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे।' तीसरेने कहा––'वे सर्वथा गर्वहीन थे––उनमें कहीं गर्व, मद या अभिमान था ही नहीं।' श्रीभाईजीको लोगोंने लोकनायकके रूपमें देखा, आप्तकामके रूपमें देखा। किसीने कहा––'वे पूर्ण थे, फिर भी लोकसंग्रहके लिये शुभकार्य किया करते थे।' किसीने उन्हें सदा निष्काम पाया। किसीने उन्हें ममताशून्य देखा तो किसीने दीन-दुर्बलोंके बन्धुके रूपमें उनके दर्शन किये। किसीने उन्हें लोकसेवकके रूपमें देखा एवं उनकी दीर्घ आयुका अधिकांश भाग धर्म-संस्थापनार्थ कर्म करनेमें ही व्यतीत होते पाया।

पूज्य श्रीभाईजी योगी थे, ज्ञानी थे, भक्त थे, रसिक थे, भावसिद्ध थे। वे गो-सेवक थे, परमनीतिज्ञ थे, विद्वान् थे, सम्पादक थे, वाग्मी थे। सांख्य, योग, वेदान्त, उपासना, राजनीति, समाजनीति––सबके व्याख्याता थे। ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, कर्मसंन्यास, नैष्कर्म्य, सर्वधर्मसंन्यास, द्वैत-अद्वैत––सभी मतोंके तत्त्व, रहस्य आदि सबके जाननेवाले थे। कहाँतक कहें, इस ग्रन्थमें हम देखेंगे कि सबके मतोंमें भिन्नता होते हुए भी सबने अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार भाईजीरूपी निर्मल आरसीमें अपनी-अपनी विलक्षण ध्येय छविके दर्शन किये हैं।

परंतु फिर भी हमें अत्यन्त विनीत भावसे यही कहना है––ये सब दर्शन मनके अनुगामी हैं। और पूज्य श्रीभाईजी वह तत्त्व थे, जिसका साक्षात्कार मनको अतिक्रम करनेपर ही होना सम्भव है। वास्तवमें अचिन्त्य भगवत्कृपासे हममेंसे कोई भी निर्वितर्क समाधिसे पूज्य श्रीभाईजीका स्वरूप-साक्षात्कार करनेके बाद व्यवहार-भूमिमें उतरकर उसका विवरण ग्रन्थरूपमें प्रस्तुत कर पाता, तभी वह विवरण सत्यके अतिनिकट होता, यद्यपि वह विवरण भी विकल्पमय ही होता। क्योंकि संतका साक्षात्कार वहाँ होता है, जहाँ मन नहीं रहता। वह निर्विकल्प स्थिति है। और तत्त्वका वर्णन होता है वाक्योंसे, जिनमें मन-बुद्धिकी आवश्यकता है। जो कुछ भी चिन्त्य है, वह महान्-से-महान् होकर भी दृश्य ही है––'इदं' ही है और संत दृश्य नहीं––'इदं' नहीं, द्रष्टा है; इसीलिये वह निर्लेप है, असङ्ग है, अदृश्य है, अगम्य-अगोचर है। संतकी बड़ी-से-बड़ी महिमा कहकर भी हम उस पूर्ण अपरिच्छिन्न पुरुषोत्तमको किसी शब्द-संकेतकी परिधिमें सीमित करते हैं, इसलिये उसे 'लघु' ही करते

हैं। सचमुच हमें इस विचारसे अत्यधिक ग्लानि है कि इस 'पावन स्मरण'से हमने पूज्य श्रीभाईजीकी अपरिच्छिन्न महिमाको सीमित--बहुत ही संकुचित कर दिया है। इस गुरुतर अपराधको विश्वरूप प्रभुके सम्मुख हम निस्संकोच स्वीकार करते हैं।

भारतीय वाङ्मयमें तो 'संत' शब्द महामहिमाका परिद्योतक है ही, अंग्रेजी भाषामें भी 'Saint' शब्द ईश्वरताका ही वाचक है---

'The English word Saint is derived from the Latin epithet 'sanctus', which represents the Greek *hagios* and the Hebrew *qādosh*. These words *sanctus*, *hagios*, *qādosh*, were applied to God himself................'

(The Penguin Dictionary of Saints)

(संतमें ईश्वर ही क्रियाशील रहता है। मलिन देहात्मबोध और कर्त्तृत्वाभिमान तो तभीतक हैं, जबतक प्राकृत अहंकार है।) श्रीभाईजीमें यह मलिन अहंकार सर्वथा विलीन हो गया था--उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो चुकी थी। पूज्य श्रीभाईजी अपने जीवनकालमें ही कर्मातीत अवस्थाको प्राप्त कर चुके थे।

इस अवस्थाके बाद श्रीराधामाधवकी जिनपर विशेष कृपा होती है, उनका भावराज्यमें प्रवेश हो जाता है और वहाँ रह जाते हैं केवल श्रीराधामाधव और उनकी प्रेममयी लीला। भक्त उस लीलामें प्रवेश करके लीलामय बन जाता है। उस भक्तकी भगवन्मयी स्थितिका कुछ आभास मिलता है श्रीभाईजीकी निम्नाङ्कित पंक्तियोंमें--

तुम हो यन्त्री, मैं यन्त्र, काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥
× × ×
क्या करूँ, नहीं क्या करूँ--करूँ इसका मैं कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हें, सो प्रिय विहार॥

जहाँतक हमारी त्रुटियोंका प्रश्न है--वे अनन्त हैं, अपार हैं, और यह भी कहूँ तो अतिशयोक्ति न होगी कि हममें त्रुटि-ही-त्रुटि है और इस 'पावनस्मरण'में भी अवश्यमेव हमारे क्रियाशील अभिमानने त्रुटियाँ भर दी हैं। फिर भी भगवद्भक्त भगवत्स्वरूप ही होते हैं--वे त्रुटि नहीं देखते, मात्र भाव देखते हैं। जो भावसे, कुभावसे--किसी भी प्रकारसे भक्तोंका सेवन करते हैं, वे भगवत्कृपा-पात्र तो अवश्य ही हैं। क्योंकि नारदजी-जैसे महापुरुषोंने कहा है--'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव--भगवान्की अपार अहैतुकी कृपासे ही महापुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होता है।'

हमारे इस प्रयासमें उचित योग्यताका अभाव अवश्य है, परंतु हमारा भाव यही है--

'तदेव साध्यताम्, तदेव साध्यताम्॥' (नारद-भक्तिसूत्र ४२)

'उन भक्त महापुरुषके चरणोंकी पावन-रजकी ही साधना की जाय--उनका ही अनुसरण-अनुचिन्तन निरन्तर किया जाय।' इसके अतिरिक्त हमारा वश ही क्या है? मन-बुद्धिकी दुर्भेद्य सीमाओंको हम लाँघ नहीं सकते। (ब्रह्मानुभूति, आत्मानुभूति तो दूर, कुत्सित तमोगुण-रजोगुणके आवेशमें भ्रमित हम पामर जीवोंने सतोगुणी शान्तिका भी स्पर्श नहीं किया है।) इस दयनीय अवस्थामें पड़े, अशान्त, विषय-विह्वल निकृष्टतम देहाभिमानी हमारे-जैसे परमाधम जीवोंका आधार उन महापुरुषकी हेतुरहित कृपामात्र ही है।) वही हमारा एकमात्र सम्बल, एकमात्र सहारा, एकमात्र भरोसा, एकमात्र पाथेय है। हमने तो यही जाना है कि हमारे लिये तीर्थ पूज्य श्रीभाईजी हैं, लीलाधाम पूज्य श्रीभाईजी हैं और हमारे-जैसे अनन्त जीवोंको तारनेके लिये ही वह भगवत्कृपा-भागीरथी इस विश्वमें पूज्य श्रीभाईजीके नाम-रूपको लेकर अवतरित हुई थी। इस भागीरथीके अतिरिक्त हमारा आश्रय, शरणस्थल है ही क्या? हम अपनी अच्छी-बुरी--सभी क्रियाएँ उनके चरणोंमें अर्पित कर चुके हैं। इस दृष्टिसे

यह 'पावन स्मरण' अवश्यमेव उन कृपावतारकी कृपाकी अजस्रधाराको बहानेमें निमित्त बन जाय--हमारी यह याचना उन कृपालुके द्वार अवश्य खटखटा रही है।

हमारा विश्वास है--भक्तका दर्शन-स्पर्श, चिन्तन-मनन--सब कुछ भगवान् ही होता है। उसकी दृष्टि अमोघ होती है। हम सभीमें, सम्पूर्ण दृश्यवर्गमें उन्होंने जिस अपने आराध्यकी झाँकी देखी है, वह उनकी दृष्टि-की अमोघ सत्यता हमें ही नहीं, जिन-जिनपर उनकी दृष्टि पड़ी है, उन सबको अवश्य-अवश्य--निश्चय ही प्रभुमें, श्रीकृष्ण-कृपा-महासमुद्रमें विलीन कर ही देगी। विलम्ब मात्र कालका है; किंतु हमारा अविश्वास, हमारी अयोग्यताएँ और हमारे द्वारा पद-पदपर होनेवाले भक्तापराध भी हमारे कल्याणको बहुत अधिक कालतक रोक पानेमें असमर्थ हैं, अक्षम हैं--यह निस्संशय है। तो हम आह्वान करते हैं उनका, जो हमारे स्वरमें स्वर मिला सकें, सम्मिलित हो सकें हमारे इस प्रेम-कीर्त्तनमें, जिसे हमने इस 'पावन स्मरण'के रूपमें केवल प्रारम्भ भर किया है--इसका पर्यवसान तो वे स्वयं हैं।

वे कृपामूर्ति किसीकी अयोग्यताको, बड़े-से-बड़े अपराधको, अनन्तानन्त पापोंकी ढेरीको, सर्वथा नहीं देखेंगे--देखेंगे केवल भावको और किनारे पड़े प्राणियोंको उनके अनन्तकृपा-सागरमें उठती एक लहर निश्चय ही अपने-में आत्मसात् कर लेगी--वह यह करनेमें पूर्णतया समर्थ है।

अन्तमें मेरा इतना निवेदन और है कि हमने चरम तत्त्वको नहीं जाना, श्रीकृष्णको नहीं जाना, ब्रह्मको नहीं जाना; घोर अज्ञानी, महान् पातकी, सर्वथा अयोग्य, अपराधी एवं निम्नतम कोटिके जीव हम हैं--इसे खुले हृदयसे स्वीकार करनेमें हमें कोई हिचक नहीं है। हमने देखी है पूज्य श्रीभाईजीकी केवल सांसारिक मूर्ति--उनका प्राकृत कलेवर। उसमें संनिहित तत्त्वके प्रति हम पूर्णतया अंधे रहे हैं। परंतु हमारी आँखोंने उनकी आँखों-में आत्मीयता, उनके शब्दोंमें अपनेपनसे भरी वात्सल्यमय शब्दराशि, उनके स्पर्शमें प्रेमसे छलकती रोमाञ्चमयी कोमलता देखी है, सुनी है, पायी है। बस, यही हमारी धरोहर है और इसी पावन अमोघ भावनाको लेकर इस 'पावन स्मरण'के प्रकाशनका आयोजन संस्थानने किया है।

हमारे इस दुर्बल प्रयासको साकार रूप प्राप्त हुआ है श्रीराधामाधवकी अहैतुकी कृपाके साथ महामहिम ऋषिकल्प मनीषी पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज महाशयके आशीर्वादसे। श्रीकविराज महाशयने इस ग्रन्थका कृपापूर्वक सम्पादन कर हमें गौरवान्वित किया है। अत्यधिक रुग्णावस्थामें भी जो श्रम उन्होंने किया है, वह पूज्य श्रीभाईजीके प्रति उनके विशेष स्नेहाकर्षणका ही परिचायक है।

श्रद्धेय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, 'कल्याण'-सम्पादकके भी हम आभारी हैं, जो सुदीर्घकालतक पूज्य श्रीभाईजीके अनन्य सहयोगी रहे हैं, जिनको अनुजके रूपमें श्रीभाईजीका स्नेह प्राप्त हुआ है और जिन्होंने अपनी अत्यधिक व्यस्त दिनचर्यासे समय निकालकर इस ग्रन्थके सम्पादनमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। श्रीगोस्वामीजी महाराज संस्थानके संरक्षक भी हैं।

डा० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी रीडर--हिंदी-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालयके भी हम आभारी हैं, जिनके अथक प्रयाससे ग्रन्थका सम्पादन सुचारुरूपसे सम्भव हो सका है।

इसके अतिरिक्त उन सभी स्वजनोंके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस महत्कार्यमें हमारा सहयोग किया है, इस ग्रन्थकी सुन्दर सज्जामें सहायता करके हमारे प्रयासको सफल बनाया है।

श्रीराधामाधवकी कृपा हम सबपर नित्य सतत बरसती रहे।

२२ मार्च, १९७२
गीतावाटिका,
गोरखपुर

विनीत
कुंजबिहारी पालड़ीवाल
मन्त्री
श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान

श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान—एक परिचय

नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके कतिपय श्रद्धालुओं, मित्रों, प्रेमियों एवं स्वजनोंने श्रद्धेय श्रीभाईजीका आशीर्वाद लेकर महाशिवरात्रि संवत् २०२४ वि० के दिन गोरखपुरमें 'श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान'की स्थापना की थी। इस संस्थाके विषयमें श्रीभाईजीने लिखा है—'श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान' एक संस्था है जिसके उद्देश्य बहुत अच्छे हैं और जहाँतक सदाचार, त्यागयुक्त साधन, नियमित जीवन और सेवाका क्षेत्र है, वहाँतक मैं उसको बहुत उपादेय समझता हूँ।·······'संस्थान'के लिये साधन-नियम मेरेहीद्वारा निर्देश किये हुए हैं।'

इस संस्थानके तीन प्रमुख उद्देश्य हैं—

(१) आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक कल्याण—अर्थात् श्रीराधामाधवके प्रति विशुद्ध, निःस्वार्थ एवं आत्म-समर्पणसे पूर्ण भक्तिका प्रचार-प्रसार करना।

(२) समाज-सेवा—अर्थात् दिव्य प्रेम एवं आनन्दके मूर्तिमान् विग्रह श्रीराधामाधवका प्राणिमात्रमें दर्शन करते हुए यथावश्यक उपकरणों—अन्न, वस्त्र, जल, औषध, आर्थिक सहयोग, आवास आदिके द्वारा उनकी सेवा करना।

(३) स्वस्थ एवं सत्साहित्यका प्रकाशन एवं प्रचार—अर्थात् आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थानके लिये, विशुद्ध भक्ति-पक्षके प्रचारके लिये, अनैतिक प्रवृत्तियोंके उन्मूलन एवं नैतिकताके विकासके लिये प्राचीन और नवीन सत्साहित्यका संग्रह, संरक्षण, प्रचार एवं प्रकाशन करना।

परमश्रद्धेय श्रीभाईजीने अपने जीवन, कार्य, वाणी एवं लेखनीद्वारा व्यावहारिक साधनाका तथा 'श्रीराधामाधव'की उपासनाका एक ऐसा सरल तथा निरापद स्वरूप प्रदर्शित किया है, जिसको अपनाकर चलनेवालोंका नैतिक स्तर निरन्तर उन्नत होता जाता है और वे सांसारिक भोगोंके दलदलसे—नीच कामके चङ्गुलसे निकलकर मोक्षको भी लघु बना देनेवाले विशुद्ध भगवत्प्रेम-राज्यमें अनायास ही प्रवेश पा सकते हैं। अतएव उपर्युक्त तीन उद्देश्योंके अन्तर्गत कार्य करनेके साथ ही श्रीभाईजीके जीवन, कृतित्व एवं साहित्यके प्रचार एवं प्रसार कार्यको संस्थान प्राथमिकता देता है।

श्रीभाईजीका प्रामाणिक जीवन-वृत्त

संस्थानके तत्त्वावधानमें डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह द्वारा श्रीभाईजीके जीवन एवं साधनापर एक विस्तृत प्रामाणिक ग्रन्थ लगभग तैयार हो चुका है। इस ग्रन्थके लिये महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराज महाशयका आशीर्वाद एवं सम्पादन-निर्देशन प्राप्त है।

श्रीभाईजीके सम्पूर्ण अप्रकाशित साहित्यका प्रकाशन

संस्थानकी ओरसे श्रीभाईजीका सम्पूर्ण साहित्य विषयानुसार खण्डोंमें प्रकाशित करने-करवानेकी योजना है। इसके लिये श्रीभाईजीके रिकार्ड किये हुए प्रवचनोंको लेखरूपमें तैयार किया जा रहा है। लोगोंको व्यक्तिगत पत्रोंमें लिखे हुए अप्रकाशित विचार, उनके स्वरचित पदादि संग्रह किये जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों खण्ड तैयार होंगे, उन्हें प्रकाशित कराया जायेगा।

संस्थानका प्रकाशन-कार्य

संस्थान स्वयं भी आध्यात्मिक साहित्य-प्रकाशनका कार्य करता है। संस्थान अपने प्रकाशनोंके चयनमें परमश्रद्धेय श्रीभाईजी एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी वर्तमान सम्पादक-'कल्याण'की रुचिको ही महत्त्व देता रहा

है। इसके अतिरिक्त संस्थान श्रीभाईजीके ग्रन्थोंका देश-विदेशकी विभिन्न भाषाओंमें प्रामाणिक अनुवाद तैयार करवाकर प्रकाशित करनेका प्रयत्न कर रहा है। कई पुस्तकोंके अनुवाद प्रकाशित भी हो चुके हैं। संस्थानके प्रकाशनोंका एकमात्र उद्देश्य भक्तिभावका एवं सत् साहित्यका प्रचार है।

पाक्षिक पत्रिका 'सत्संग-सुधा'

संस्थानसे एक पाक्षिक पत्रिका भी निकलती है, जिससे श्रीभाईजीके, श्रीजयदयालजी गोयन्दका एवं स्वामी चक्रधरजी महाराज (पूज्य बाबा) के अप्रकाशित बड़े ही महत्त्वपूर्ण साहित्य प्रकाशमें आ रहे हैं। इस पत्रिकाका नाम है—'सत्संग-सुधा' अर्थात् सत्संग-सुधाका वितरण करनेवाली पत्रिका। इसका वार्षिक शुल्क १२) है। प्रत्येक अङ्कमें ८ से १० पृष्ठ रहते हैं और पूरी पत्रिका साइक्लोस्टाईल्ड रहती है। इसके प्रत्येक अङ्कमें परमश्रद्धेय श्रीसेठजीके अप्रकाशित पुराने सत्संगके महत्त्वपूर्ण छोटे-छोटे प्रसङ्ग, परमपूज्य श्रीभाईजीके सच्चे साधकों एवं अपने स्वजनोंको लिखे गये अप्रकाशित पत्रोंमेंसे दैनिक जीवन एवं साधनामें सहायक, भगवत्कृपा, प्रेम एवं विश्वासकी अपूर्व अनुभूत बातें एवं परमपूज्य बाबाकी लेखनीसे निस्सृत आस्तिकभावको परम सुपुष्ट करनेवाले प्रेरणात्मक प्रसङ्ग, परमपूज्य श्रीभाईजीद्वारा रचित पद आदि ऐसी अलभ्य एवं उपयोगी सामग्री दी जाती है। पत्रिकाका वर्ष श्रीराधाष्टमीसे श्रीराधाष्टमीतक होता है। इस पत्रिकाके संपादक हैं श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल जिन्होंने विगत ३० वर्षोंसे श्रीभाईजीकी सेवामें अपना जीवन समर्पित कर रखा है।

अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन

संस्थानकी ओरसे परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके निवासस्थान गीतावाटिकामें विगत तीन वर्षसे अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन चल रहा है। नवद्वीपके बंगाली भाई बहुत ही मधुर स्वरमें कीर्तन करते हैं। ध्वनि विस्तारक यंत्र द्वारा मधुर नाम रस सुधाका अनायास सभीको पान कराया जाता है। संस्थाकी इस प्रवृत्तिका निर्देश पू० श्रीभाईजी द्वारा हुआ था और वे इसके जीवन पर्यन्त बड़े प्रशंसक रहे।

संस्थाका संचालन

संस्थान एक रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था है। इसका संचालन एक न्यास-मंडल द्वारा होता है।

इसके संरक्षक हैं—पं० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी। आप गत चालीस वर्षोंसे श्रीभाईजीके साथ परमनिष्ठा एवं शान्तभावसे 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' एवं गीताप्रेसकी सेवा करते रहे हैं और अब श्रीभाईजीके तिरोधानके पश्चात् इन कार्योंके संचालनका पूरा उत्तरदायित्व आप ही वहन कर रहे हैं।

न्यास-मंडलकी अध्यक्षा हैं परमश्रद्धेय श्रीभाईजीकी इकलौती पुत्री श्रीमती सावित्री देवी फोगला, जो स्वयं श्रीराधामाधवकी साधनामें निष्ठ हैं तथा समर्थ पिताकी भाँति निरभिमान विनयशील, परोपकारनिरत, आध्यात्मिक भावापन्न एवं त्यागसम्पन्न हैं।

न्यासके उपाध्यक्ष हैं श्रीरामप्रसादजी दीक्षित, अवकाश-प्राप्त निबन्धक, उच्च-न्यायालय, उत्तर प्रदेश, जिन्होंने श्रीभाईजीके नित्यलीलालीन होनेके साथ ही सर्वोच्च न्यायालयके एरियर्स कमीशनके सचिव पदका त्याग इस पावन निश्चयके साथ कर दिया कि वे श्रीभाईजी तथा परम पूज्य बाबा द्वारा निर्दिष्ट आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए जीवनके शेष क्षण भगवत्-आराधनामें व्यतीत कर सकें।

इस न्यास-मंडलके मंत्री श्रीकुंजबिहारी पालड़ीवाल हैं और कोषाध्यक्ष श्रीराधेश्याम पालड़ीवाल। श्रीभाईजीके दौहित्र एवं उत्तराधिकारी श्रीसूर्यकांत फोगला इस न्यास-मंडलके सक्रिय सदस्य हैं।

न्यास-मंडलके सभी सदस्य श्रीभाईजीके परम आत्मीय एवं कृपापात्र हैं और उन्हींके आशीर्वादका सम्बल लेकर बड़ी निष्ठाके साथ उन्हीं द्वारा निर्दिष्ट सेवामें तत्पर है।

विषय-सूची

इष्ट-वन्दन

महापुरुषका स्वरूप और माहात्म्य

श्रद्धार्चन

स्वरूप-चिन्तन

जीवन-यात्रा

लोकाराधन

अमर संदेश

चित्र-सूची

भाईजी

पावन स्मरण

मेरे धन-जन-जीवन तुम ही, तुम ही तन-मन, तुम सब धर्म।
तुम ही मेरे सकल सुख सदन, प्रिय निज जन, प्राणोंके मर्म॥

तुम्हीं एक, बस, आवश्यकता; तुम ही एकमात्र हो पूर्ति।
तुम्हीं एक सब काल, सभी विधि, हो उपास्य शुचि सुन्दर मूर्ति॥

तुम ही काम-धाम सब मेरे, एकमात्र तुम लक्ष्य महान।
आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान॥

●

भाईजी के आराध्य ★ श्रीराधामाधव

श्रीराधामाधव चरन बंदौं बारंबार

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

महाभाव-रसराज-वन्दना

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ ।।

आश्रय आलंबन दोउ, विषयालंबन दोउ ।
प्रेमी प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख सुखिया दोउ ।।

लीला आस्वादन निरत महाभाव रसराज ।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं रचि बिचित्र सुठि साज ।।

सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत ।
बचनातीत अचिंत्य अति, सुषमामय श्रीमंत ।।

श्रीराधा माधव चरन बंदौं बारंबार ।
एक तत्व दो तनु धरें, नित रस-पारावार ।।

●

श्रीभाईजीका प्रिय श्रीकृष्ण-स्तवन

मूकं करोति वाचालं पङ्गु लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

'जिनकी कृपा गूँगेको वाचाल बना देती है और पङ्गुको पर्वत लाँघनेकी सामर्थ्य प्रदान कर देती है, उन परमानन्दस्वरूप माधवकी मैं वन्दना करता हूँ।'

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम्।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥

'जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, दाँत कुन्द (बेलाके फूल), चन्द्रमा और शङ्खके समान शुभ्रवर्णके हैं, जिनके पादपीठकी इन्द्रादि देवगण भी वन्दना करते हैं, गोपबालकके रूपमें वृन्दावनकी भूमिमें विचरनेवाले वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।'

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम् ॥
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम् ॥

'जिनका नवीन जलधरका-सा श्यामवर्ण है, जिनके कान चम्पाके फूलोंसे अलंकृत हैं, जिनका मन्द मुस्कानसे युक्त मुख खिले हुए कमलके समान है, अपने श्रीअङ्गोंपर जो स्वर्णकी-सी कान्तिवाला पीताम्बर और मस्तकपर मोरपंखका मुकुट धारण किये हुए हैं, उन–सबके साररूप किन्हीं अनिर्वचनीय गोपीकुमारका मैं स्तवन करता हूँ।'

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

'जिनके दोनों हाथ बाँसुरीसे शोभा पा रहे हैं, श्रीअङ्गोंकी कान्ति नूतन मेघके समान श्याम है, साँवले अङ्गपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है, लाल-लाल ओठ पके हुए बिम्बफलकी सुषमाको छीने लेते हैं, सुन्दर मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा है और नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान मनोहर प्रतीत होते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कोई भी परम तत्व है—यह मैं नहीं जानता।'

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत् किमपि तन्नीलं महो धावति ॥

'यदि योगीलोग ध्यानके अभ्याससे वशमें किये हुए मनके द्वारा किसी निर्गुण और निष्क्रिय परम ज्योतिका साक्षात्कार करते हैं तो करते रहें; हम तो चाहते हैं—यमुनाके किनारे वह जो कोई अनिर्वचनीय साँवला-सलोना तेज दौड़ता-फिरता है, वही हमारे नेत्रोंमें चिरकालतक चमत्कार (विस्मयपूर्ण उल्लास) उत्पन्न करता रहे।'

●

विर्भाव—आश्विन कृष्ण द्वादशी सं० १९४९ वि० (१७ सितम्बर १८९२ ई०) **भाव-दिनमणि श्रीभाईजी** तिरोभाव—चैत्र कृष्ण दशमी सं० २०२७ वि० (२२ मार्च १९७१

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

महापुरुषका स्वरूप और माहात्म्य

(शास्त्रोंमें)

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च । निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः । हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः । सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति । शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् । अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥

(गीता १२ । १३–१९)

भगवान् कहते हैं—

'जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेष-भावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे शून्य, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता, तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है—वह भक्त मुझको प्रिय है। जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है—वह सब आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जो न कभी हर्षित होता है न द्वेष करता है, न शोक करता है न कामना करता है और जो शुभ तथा अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है। जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सर्दी, गर्मी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है, जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस-किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही संतुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।'

❀ ❀ ❀

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् । अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् । मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥

मदाश्रयाः कथा मृष्टाः श्रृण्वन्ति कथयन्ति च । तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः ॥
त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः । सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥

(श्रीमद्भागवत० ३ । २५ । २१–२४)

भगवान् कपिलदेव माता देवहूतिसे कहते हैं—

'माता ! जो सुख-दुःखमें सहनशील, करुणापूर्ण-हृदय, सबका अकारण हित करनेवाले, किसीके प्रति कभी भी शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्तस्वभाव, साधु भाववाले, साधुओंका सम्मान करनेवाले हैं, मुझमें अनन्यभावसे सुदृढ़ भक्ति करते हैं, मेरे लिये समस्त कर्म तथा स्वजन-बन्धुओंको भी त्याग चुके हैं, मेरे परायण होकर मेरी पवित्र कथाओंको सुनते, कहते और मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं, उन भक्तोंको संसारके विविध प्रकारके ताप कोई कष्ट नहीं पहुँचाते । साध्वि ! ऐसे सर्वसङ्ग-परित्यागी महापुरुष ही संत होते हैं, तुम्हें उन्हींके सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये; क्योंकि वे आसक्तिसे उत्पन्न सभी दोषोंको हरनेवाले होते हैं ।'

❀ ❀ ❀

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति । विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः ।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः । वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥
न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः । सज्जतेऽस्मिन्नहम्भावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥
न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा । सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखानखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । २ । ४८–५५)

योगीश्वर हरिजी राजा निमिसे कहते हैं—

'राजन् ! जो श्रोत्र-नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-रूप आदि विषयोंका ग्रहण तो करता है, परंतु अपनी इच्छाके प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हर्षित नहीं होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब हमारे भगवान्‌की माया—लीला है, वह उत्तम भागवत है । संसारके धर्म हैं—जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट और भय-तृष्णा । ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते

ही रहते हैं। जो पुरुष भगवान्‌की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे मोहित नहीं होता, पराभूत नहीं होता, वह उत्तम भागवत है। जिसके मनमें विषयभोगकी इच्छा, कर्मप्रवृत्ति और उनके बीज—वासनाओंका उदय नहीं होता और जो एकमात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त है। जिसका इस शरीरमें न तो सत्कुलमें जन्म, तपस्या आदि कर्मसे तथा न वर्ण, आश्रम एवं जातिसे ही अहंभाव होता है, वह निश्चय ही भगवान्‌का प्यारा है। जो धन-सम्पत्तिमें अथवा शरीर आदिमें 'यह अपना है और यह पराया'—इस प्रकारका भेदभाव नहीं रखता, समस्त प्राणि-पदार्थोंमें समस्वरूप परमात्माको देखता हुआ समभाव रखता है तथा प्रत्येक स्थितिमें शान्त रहता है, वह भगवान्‌का उत्तम भक्त है। बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें ढूँढ़ते रहते हैं—भगवान्‌के ऐसे चरणकमलोंसे आधे क्षण, अथवा पलक पड़नेके आधे समयके लिये भी जो नहीं हटता, निरन्तर उन चरणोंकी सेवामें ही लगा रहता है—यहाँतक कि कोई स्वयं उसे त्रिभुवनकी राज्यलक्ष्मी दे तो भी वह भगवत्स्मृतिका तार जरा भी नहीं तोड़ता, उस राज्यलक्ष्मीकी ओर ध्यान ही नहीं देता, वही पुरुष वास्तवमें भगवद्भक्त—वैष्णवोंमें अग्रगण्य है, सर्वश्रेष्ठ है। रासलीलाके अवसरपर नृत्य-गतिसे भाँति-भाँतिके पद-विन्यास करनेवाले निखिल-सौन्दर्य-माधुर्य-निधि भगवान्‌के श्रीचरणोंके अङ्गुलि-नखरूप मणियोंकी चन्द्रिकासे जिन शरणागत भक्तजनोंके हृदयका विरहजनित संताप एक बार दूर हो चुका है, उनके हृदयमें वह फिर कैसे आ सकता है; जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर सूर्यका ताप नहीं लग सकता। विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी सम्पूर्ण अघराशिको नष्ट कर देनेवाले स्वयं भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते हैं; क्योंकि उसने प्रेमकी रस्सीसे उनके चरण-कमलोंको हृदयमें बाँध रखा है, वास्तवमें ऐसा ही पुरुष भगवान्‌के भक्तोंमें प्रधान होता है।'

❀ ❀ ❀

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् । शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा ॥
निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् । सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥
अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् । धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥
सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः । देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥

(श्रीमद्भागवत ११। २६। ३१—३४)

भगवान् श्रीउद्धवजीसे कहते हैं—

'उद्धव! जिसने उन संत पुरुषोंकी शरण ग्रहण कर ली, उसकी कर्मजडता, संसारभय और अज्ञान आदि सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं। भला, जिसने अग्निभगवान्‌का आश्रय ले लिया, उसे क्या कभी शीत, भय अथवा अन्धकारका दुःख हो सकता है? जो इस संसार-सागरमें डूब-उतरा रहे हैं, उनके लिये ब्रह्मवेत्ता और शान्त-स्वभाव संत एकमात्र आश्रय हैं—वैसे ही, जैसे जलमें डूबते हुए लोगोंके लिये दृढ़ नौका। जैसे अन्नसे प्राणियोंके प्राणकी रक्षा होती है, जैसे मैं आर्त प्राणियोंका एकमात्र आश्रय हूँ, जैसे मनुष्यके लिये परलोकमें धर्म ही एकमात्र पूँजी है—वैसे ही संसारसे भयभीत लोगोंके लिये संत-जन ही परम आश्रय हैं। जैसे सूर्य आकाशमें उदय होकर

लोगोंको जगत् तथा अपनेको देखनेके लिये नेत्रदान करता है, वैसे ही संत पुरुष अपनेको तथा भगवान्‌को देखनेके लिये अन्तर्दृष्टि देते हैं। संत अनुग्रहशील देवता हैं। संत अपने हितैषी सुहृद् हैं, संत अपने प्रियतम आत्मा हैं, अधिक क्या, संतके रूपमें स्वयं मैं ही प्रकट हूँ।'

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् । सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥
कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिंचनः । अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥
अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः । अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥

(श्रीमद्भागवत ११।११।२९-३१)

'उद्धव ! मेरा भक्त कृपाकी मूर्ति होता है, वह किसी भी प्राणीसे वैर नहीं करता, वह सब प्रकारके सुख-दुःखोंको प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है, सत्यको जीवनका सार समझता है, उसके मनमें किसी प्रकारकी पापवासना कभी नहीं आती। वह समदर्शी और सबका भला करनेवाला होता है । उसकी बुद्धि कामनाओंसे कलुषित नहीं होती। वह इन्द्रियविजयी, कोमलस्वभाव और पवित्र होता है; उसके पास अपनी कोई भी वस्तु नहीं होती। किसी भी वस्तुके लिये वह कभी चेष्टा नहीं करता, परिमित भोजन करता है, सदा शान्त रहता है। उसकी बुद्धि स्थिर होती है, वह केवल मेरे ही आश्रय रहता है, निरन्तर मननशील रहता है। वह कभी प्रमाद नहीं करता, गम्भीर-स्वभाव और धैर्यवान् होता है। भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मृत्यु—इन छहोंपर विजय प्राप्त किये रहता है। वह स्वयं कभी किसीसे किसी प्रकारका मान नहीं चाहता और दूसरोंको सम्मान देता रहता है। भगवत्सम्बन्धी बातें समझनेमें बड़ा निपुण होता है और सभीके साथ मित्रता-का बर्ताव करता है । उसके हृदयमें करुणा भरी रहती है और भगवत्तत्वका उसे यथार्थ ज्ञान होता है।'

❀ ❀ ❀

परतापच्छिदो ये तु चन्दना इव चन्दनाः । परोपकृतये ये तु पीड्यन्ते कृतिनो हि ते ॥
सन्तस्त एव ये लोके परदुःखविदारणाः । आर्तानामार्तिनाशार्थं प्राणा येषां तृणोपमाः ॥
तैरियं धार्यते भूमिर्नरैः परहितोद्यतैः ।

(पद्मपुराण, पाताल० ९७। ३२-३४)

'जो चन्दन-वृक्षकी भाँति दूसरोंके ताप दूर करके उन्हें आह्लादित करते हैं तथा जो परोपकारके लिये स्वयं कष्ट उठाते हैं, वे ही पुण्यात्मा हैं। संसारमें वे ही संत हैं, जो दूसरोंके दुःखोंका नाश करते हैं तथा पीड़ित जीवोंकी पीड़ाको दूर करनेके लिये जिन्होंने अपने प्राणोंको तिनकेके समान निछावर कर दिया है। जो मनुष्य सदा दूसरोंकी भलाईके लिये उद्यत रहते हैं, उन्होंने ही इस पृथ्वीको धारण कर रखा है।'

❀ ❀ ❀

उपकृतिकुशला जगत्स्वजस्रं परकुशलानि निजानि मन्यमानाः ।
अपि परपरिभावने दयार्द्राः शिवमनसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥

दृषदि परधने च लोष्टखण्डे परवनितासु च कूटशाल्मलीषु ।
सखिरिपुसहजेषु बन्धुवर्गे सममतयः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥

गुणगणसुमुखाः परस्य मर्मच्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि ।
भगवति सततं प्रदत्तचित्ताः प्रियवचनाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥

स्फुटमधुरपदं हि कंसहन्तुः कलुषमुषं शुभनाम चामनन्तः ।
जय-जय-परिघोषणां रटन्तः किमुविभवाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥

हरिचरणसरोजयुग्मचित्ता जडिमधियः सुखदुःखसाम्यरूपाः ।
अपचितिचतुरा हरौ निजात्मनतवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः ॥

विगलितमदमानशुद्धचित्ताः प्रसभविनश्यदहंकृतिप्रशान्ताः ।
नरहरिममराप्तबन्धुमिष्ट्वा क्षपितशुचः खलु वैष्णवा जयन्ति ॥

(स्क० वै० पु० मा० १०। ११०–११४, ११७)

'समस्त विश्वका उपकार करनेमें ही जो निरन्तर कुशलताका परिचय देते हैं, दूसरोंकी भलाईको अपनी ही भलाई मानते हैं, शत्रुका भी पराभव होता देखकर उनके प्रति दयासे द्रवीभूत हो जाते हैं तथा जिनके चित्तमें सबका कल्याण बसा रहता है, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। जिनकी पत्थर, परधन और मिट्टीके ढेलेमें, परायी स्त्री और कूटशाल्मली नामक नरकमें, मित्र, शत्रु, भाई तथा बन्धुवर्गमें समान बुद्धि है, वे ही निश्चितरूपसे वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो दूसरोंकी गुणराशिसे प्रसन्न होते और पराये दोषको ढकनेका प्रयत्न करते हैं, परिणाममें सबको सुख देते हैं, भगवान्में सदा मन लगाये रहते तथा प्रिय वचन बोलते हैं, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो कंसहन्ता भगवान् श्रीकृष्णके पाप-हारी शुभ नामसम्बन्धी मधुर पदोंका जाप करते और जय-जयकी घोषणाके साथ भगवन्नामोंका कीर्तन करते हैं, वे अकिंचन महात्मा वैष्णवके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जिनका चित्त श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें निरन्तर लगा रहता है, जो प्रेमाधिक्यके कारण जडबुद्धि-सदृश बने रहते हैं, सुख और दुःख दोनों ही जिनके लिये समान हैं, जो भगवान्की पूजामें दक्ष हैं तथा अपने मन और विनययुक्त वाणीको भगवान्की सेवामें समर्पित कर चुके हैं, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं।···मद और अभिमानके गल जानेके कारण जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, अहंकारके समूल नाशसे जो परम शान्त—क्षोभरहित हो गये हैं तथा देवताओंके विश्वसनीय बन्धु भगवान् श्रीनृसिंहजीकी आराधना करके जो शोकरहित हो गये हैं, ऐसे वैष्णव निश्चय ही उच्च पदको प्राप्त होते हैं।'

❀ ❀ ❀

सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ॥
साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहिं जग जसु पावा ॥
मुद मंगलमय संत समाजू । जो जग जंगम तीरथराजू ॥

× × ×

मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगत मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ ॥

× × ×

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा । गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना । बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत सीला ॥

× × ×

बिषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन । सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं । परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥
निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ॥
संत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥

(रामचरितमानस)

●

भक्त-चरितकी उपादेयता

परशुरामपुरीस्थ श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज

भक्त-चरितके अनुशीलनसे प्राणियोंके मनोमन्दिरमें भगवद्भक्तिकी भावना विकसित होती है। यह भक्त-चरितानुशीलनरूप साधन जितना सुगम, सरल और सुन्दर है, उतना ही महत्वशाली भी है। भगवान् भी भक्त और उनके चरितकी पद-पदपर प्रशंसा करते हैं—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥ (श्रीमद्भा० ११।१४।१५)

'उद्धव! मुझको ब्रह्मा, शंकर एवं संकर्षण (भैया बलदाऊ) तथा लक्ष्मी—ये इतने प्रिय नहीं लगते, जितने आप और आप-जैसे भक्त लगते हैं; कारण मेरे भक्त मुझको अपनी आत्मासे भी बढ़कर प्रिय हैं।' क्योंकि—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।२४)

'मेरा प्रेमी भक्त कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी लज्जा छोड़कर गाता और नृत्य करने लगता है। उसकी वाणी गद्गद और चित्त द्रवित हो जाता है। वह अपनी इन विचित्र चेष्टाओंसे समस्त लोकको पवित्र करता रहता है।'

चाहे साधारणजन भक्त और उसकी चेष्टाओंके महत्वको न जान पायें, परंतु भक्तकी प्रत्येक चेष्टामें विश्वहित निहित रहता है। भक्तजन समस्त भुवनको किस प्रकार पवित्र करते रहते हैं, वह प्रकार भी भगवान्ने स्वयं ही बतला दिया है—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥ (श्रीमद्भागवत ११।१४।१६)

'निरपेक्ष, शान्तचित्त, किसी भी प्राणीसे वैर न रखनेवाला एवं प्रत्येक प्राणीमें समानरूपसे मुझको व्याप्त देखनेवाला, मननशील मेरा अनन्य भक्त जहाँ-जहाँ जाता है, सदा-सर्वदा मैं उसके पीछे-पीछे चलता हूँ। किसलिये? उसकी चरण-रजसे पवित्र करनेके लिये।' कोई पूछे—'किसको पवित्र करनेके लिये?' तो भगवान् कहते हैं, 'मेरे अंदर अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, उनमें अनन्त प्राणी रहते हैं, उन सबको मैं अपने भक्तोंकी चरण-रजसे पवित्र करता रहता हूँ।

उक्त १५वें तथा १६वें श्लोकका पद्यानुवाद कृष्णगढ़नरेश महाराजा राजसिंहजीकी रानी तथा भक्तवर नागरीदासजीकी विमाताने इस रूपमें प्रस्तुत किया है—

सिव लछमी बिधि आत्म मो, हलधर धर बड़ सक्त।
ये ऐसे प्रिय नांहि मुँहि, जैसे प्रिय मो भक्त॥
कछु न चाह जिन भक्त कै, अधिक सुबोलत नांहि।
समदिष्टी हैं किहूँ से बैर नहीं मन मांहि॥
तिन के पीछे मैं चलौं, पद-रज राखौं सीस।
दरसन करि तन तृप्त हूँ, कबहूँ बिस्वा बीस॥
कोटि-कोटि ब्रह्मांड हैं मेरे उदरहि मध्य।
भक्त-चरन-रज सौं करौं तिन्हैं पवित्र प्रसिध्य॥

भगवान् सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वेश्वर होते हुए भी यह प्रकट करते हैं—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥ (श्रीमद्भा० ९।४।६३)

अर्थात् 'सर्वस्वतन्त्र होकर भी मैं उन भक्तोंके तो अधीन ही हूँ, जिन साधु भक्तोंने मेरे चित्तको वशमें कर रखा है; इसीलिये वे मुझको प्रिय लगते हैं।' भगवान्‌को भक्त किस प्रकार वशमें कर लेता है, इस रहस्यको भी भगवान् प्रकट कर देते हैं—

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शिनः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥ (श्रीमद्भा० ९।४।६६)

'समदर्शी भक्त पहले अपना चित्त मुझमें लगा देते हैं, फिर उसीके द्वारा मेरे चित्तको उसी प्रकार आकर्षित कर लेते हैं—जैसे पतिव्रता स्त्री अपना तन-मन-धन—सर्वस्व पतिदेवके अर्पण करके उसके चित्तको अपने वशमें कर लेती है।' फिर तो—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥ (श्रीमद्भा० ९।४।६८)

'जब साधुहृदय भक्त अपना हृदय मुझको दे देते हैं, तब मुझे भी अपना हृदय उनको देना अनिवार्य हो जाता है; इस लेन-देनसे भक्त और मुझमें ऐसी घनिष्ठता हो जाती है कि फिर मुझसे अतिरिक्त उनको कुछ दिखायी ही नहीं पड़ता और उनके अतिरिक्त फिर मुझको कुछ नहीं सुहाता।' बस, इसी कारणसे भगवान्‌को भक्तोंके इच्छानुसार आविर्भाव-अन्तर्भाव करना पड़ता है और इसी प्रकार अनेकों अवतार धारण करने पड़ते हैं। इसी आशयको आद्याचार्य श्रीनिम्बार्कभगवान्‌ने—**'भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहाद्।'** (वेदान्तकामधेनुः)

—इस वाक्यमें प्रकट किया है। अर्थात्—

भक्तवत्सल भगवान् भक्तके इच्छानुसार विग्रह धारण करके उनका उसी प्रकार संरक्षण करते हैं, जैसे अबोध शिशुकी प्रसन्नताके लिये माताको उसके हठ आदिकी रक्षा करनी पड़ती है।

इसीलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी आदि भक्त कवियोंकी—

'राम ते अधिक राम कर दासा॥'

—इत्यादि सूक्तियाँ भी संगत ही हैं।

श्रीनारायणदास (नाभा)जीने तो भक्त-चरितके अनुशीलनका स्पष्ट ही फल प्रकट किया है—

भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इन के पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥

भक्ति (साधन), भक्त (साधक), भगवंत (साध्य), गुरुदेव (साधयिता)—इन चारोंमें नामादिका भेद अवश्य है; किंतु ये इतने संनिकट हैं कि इनके कलेवरमें विभेद प्रतीत नहीं होता। फलप्रदातामें भी चारों समान हैं अर्थात् मुक्तिरूप फल देनेमें चारों ही वरदहस्त हैं।

अतएव जो सुख-शान्ति भगवच्चरित्रके अनुशीलनसे मिलती है, वही सुख-शान्ति भक्तोंके चरित्रोंका अनुशीलन करनेसे प्राप्त होती है।

●

भगवद्भक्तोंकी महिमा

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

भगवान्‌के भक्त भगवत्स्वरूप ही होते हैं। उनकी मन-बुद्धि लीलामय भगवान्‌में ओत-प्रोत रहती है और मन एवं बुद्धिद्वारा ही इन्द्रियादिका व्यापार परिचालित होता है। इसलिये भक्तोंके कार्य-कलाप और विचार-व्यापारको भी भगवान्‌की ही लीलाके तुल्य समझना चाहिये। जैसे भगवान्‌के धाम, लीला-क्षेत्र आदि तीर्थस्थल हैं, उसी प्रकार भक्तोंके निवास-स्थान और कर्म-क्षेत्र भी तीर्थ ही बन जाते हैं।'

भगवान् प्रेमके कारण भक्तोंके पीछे-पीछे घूमा करते हैं। उनके सुख-दुःखमें अपना सुख-दुःख मानते हैं। उनके लिये अपनी आन-बान और स्वयं श्रीलक्ष्मीजीतककी चिन्ता नहीं करते। भक्तोंकी मान-मर्यादा और सुख-दुःखको अपना समझनेका तो उन्होंने मानो अटल व्रत ही ले रखा है—

हम भगतन के भगत हमारे।
सुन अरजुन ! परतिग्या मेरी, यह ब्रत टरत न टारे ॥

ऐसे महामहिम, भाग्यवान् और भगवत्स्वरूप भक्तोंके स्मरण-ध्यानमात्रसे ही पाप-राशि भस्म हो जाय, मुक्ति दासीकी तरह पीछे-पीछे घूमे और प्रभुके चरणोंमें अचल मति, रति और गति प्राप्त हो जाय तो कौन-सा आश्चर्य है। भगवान्‌की तरह महापुरुषोंके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है। उनके स्वरूपका ध्यान करनेसे उनके भाव, गुण और चरित्र हृदयमें आ जाते हैं, उनका स्वरूप चित्तमें अङ्कित हो जाता है और जैसे प्रकाशके आते ही अन्धकार मिट जाता है, वैसे ही भक्तोंके चरित्र-गुणादिकी स्मृति अन्तःकरणमें आते ही समस्त कलुषको नष्ट कर देती है।

भगवान्‌के भक्तोंकी महिमा अनन्त और अपार है। श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराण आदिमें जगह-जगह उनकी महिमा गायी गयी है; किंतु उसका किसीने पार नहीं पाया। वास्तवमें भक्तोंकी तथा उनके गुण, प्रभाव और सङ्गकी महिमा कोई वाणीके द्वारा गा ही नहीं सकता। शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया है अथवा वाणीके द्वारा जो कुछ कहा जाता है, उससे भी उनकी महिमा अत्यन्त बढ़कर है।

गङ्गा-यमुना आदि तीर्थ तो स्नान-पान आदिसे पवित्र करते हैं, किंतु भगवान्‌के भक्तोंका तो दर्शन और स्मरण करनेसे भी मनुष्य तुरंत पवित्र हो जाता है; फिर भाषण और स्पर्शकी तो बात ही क्या है। तीर्थोंमें तो लोगोंको जाना पड़ता है और वहाँ जाकर लोग स्नानादिसे पवित्र होते हैं; किंतु महात्माजन तो श्रद्धा-भक्ति होनेसे स्वयं घरपर आकर पवित्र कर देते हैं। श्रद्धापूर्वक किया हुआ महापुरुषोंका सङ्ग भजन और ध्यानसे भी बढ़कर है।

जो मनुष्य महापुरुषोंके तत्वको समझकर उनका सङ्ग करता है, वह स्वयं दूसरोंको पवित्र करनेवाला बन जाता है।

सत्पुरुषोंका सङ्ग बड़े रहस्य और महत्वका विषय है। श्रद्धा और प्रेमपूर्वक सत्सङ्ग करनेवाले ही इसका कुछ महत्व जानते हैं। पूरा-पूरा रहस्य तो स्वयं भगवान् ही जानते हैं, जो कि भक्तोंके प्रेमके अधीन हुए उनके पीछे-पीछे फिरा करते हैं।

इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि महापुरुषोंके सङ्ग और उनकी सेवा करनेकी अथक चेष्टा करें। भगवत्प्राप्ति और उनके चरणोंमें अनपायिनी रति-लाभ करनेका सरस और सरल साधन केवल एक यही है।

●

प्रेमी भक्तका अलौकिक माहात्म्य

'शिव'

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः ।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥ (श्रीमद्भा० १ । १९ । ३३)

'जिन भगवद्भक्तोंके स्मरणमात्रसे (स्मरण करनेवालोंके केवल मन ही नहीं) गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं; फिर उनके दर्शन, स्पर्श, पाद-प्रक्षालन और आसन-दानादिका सौभाग्य मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है।'

भक्तकी बड़ी महिमा है। भक्तका दर्शन, स्पर्श, चरणसेवन, उपदेश-श्रवण, आज्ञा-प्राप्ति और आज्ञापालन आदिका सुअवसर मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है; भक्तका स्मरण भी पाप-नाशक, पुण्योत्पादक और भगवत्-प्रीतिदायक है। यहाँतक कि भक्तोंके द्वारा स्पर्श किये हुए भूमि, जल, गृह, चौकी, बर्तन, वस्त्र, आसन, माला, पादुका आदि जड पदार्थोंका सङ्ग भी परम पुण्यजनक और कल्याणकारक है। पृथ्वीमें आनेके लिये प्रार्थना करनेपर पापनाशिनी श्रीगङ्गाजीने भगीरथसे कहा था—'मैं इस कारण भी पृथ्वीपर नहीं जाऊँगी कि सब लोग आकर मुझमें अपने पाप धो डालेंगे, फिर मैं उन पापोंको कहाँ धोऊँगी ?' ऐसा ही प्रश्न श्रीजाह्नवीने स्वयं भगवान्‌से किया था, तब भगवान्‌ने उनसे स्पष्ट कहा था—

पापानि पापिनो यानि तुभ्यं दास्यन्ति स्नानतः । मन्मन्त्रोपासकस्पर्शाद् भस्मीभूतानि तत्क्षणात् ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवि । मद्भक्तानां शरीरेषु सन्ति पूतेषु संततम् ॥
मद्भक्तपादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा । सद्यः पूतानि तीर्थानि सद्यः पूतो जगत्तथा ॥
मामेव नित्यं ध्यायन्ते ते मत्प्राणाधिकाः प्रियाः । तदुपस्पर्शमात्रेण पूतो वायुश्च पावकः ॥

(श्रीब्रह्मवैवर्त०, कृष्णजन्म०, अ० १२९)

'जाह्नवी ! पापीलोग तुम्हारे अंदर स्नान करके जो पाप तुम्हें देंगे, वे सारे पाप मेरे मन्त्रकी उपासना करनेवाले भक्तोंके स्पर्श, स्नान और दर्शनसे उसी क्षण भस्म हो जायँगे। पृथ्वीमें जितने भी पवित्र तीर्थ हैं, मेरे भक्तोंके पुनीत शरीरमें वे सभी निरन्तर निवास करते हैं। मेरे भक्तोंकी चरणधूलिका स्पर्श होते ही पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है और सारे तीर्थ तथा जगत् पवित्र हो जाते हैं। जो नित्य मेरा ही ध्यान करते हैं, वे मुझको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं; (औरोंकी तो बात ही क्या) वायु और अग्नि भी उनके स्पर्शमात्रसे पवित्र हो जाते हैं।' धर्मराज युधिष्ठिरने भक्तशिरोमणि श्रीविदुरजीसे कहा था—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥ (श्रीमद्भा० १ । १३ । १०)

'प्रभो ! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वयं तीर्थरूप हैं; (पापियोंद्वारा कलुषित किये हुए) तीर्थोंको आपलोग अपने हृदयमें विराजित भगवान् श्रीगदाधरके प्रतापसे पुनः पवित्र तीर्थ बना देते हैं।'

जैसे नदी समुद्रमें मिलकर समुद्र बन जाती है, उसी प्रकार भक्त भी अपना तन-मन-बुद्धि-अहंकार—सब कुछ प्रियतम भगवान्‌के समर्पण कर भगवान्‌के साथ तन्मय हो जाता है। ऐसा भक्त साक्षात् भगवत्स्वरूप ही होता है। वह जहाँ भी रहता है, वहाँका तमाम सूक्ष्म और स्थूल वातावरण शुद्ध हो जाता है। ऐसे ही भक्तोंके द्वारा भगवान्, भगवन्नाम, भगवद्भक्तिकी महिमा बढ़ती है।

भक्त जिस पृथ्वीपर बैठते हैं, जिस जलाशय या नदीमें स्नान करते हैं, वही पवित्र तीर्थ बन जाता है। भक्त जो कुछ करते हैं, वही आदर्श 'सत्कर्म' माने जाते हैं, भक्त जो कुछ अपने अनुभवकी बातें बतलाते हैं, वे ही 'सत्-शास्त्र' होते हैं। तीर्थ, कर्म और शास्त्र अनेक हैं; पर जिस तीर्थके साथ भक्तका संयोग होता है, वह 'सत्-तीर्थ'; जिस कर्मसे भक्तका संयोग होता है, वह 'सत्कर्म' और जिस शास्त्रमें भक्तकी वाणी होती है, वही 'सच्छास्त्र' बन जाता है—

'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि।' (नारदभक्तिसूत्र ६९)

भक्तके मनसे जिस वस्तुका स्पर्श हो जाता है, वह भी पवित्र हो जाती है; क्योंकि उसके मनमें निरन्तर भगवान्‌का निवास रहता है। जड वस्तुएँ भक्तका स्पर्श पाकर पतितोंको पावन करनेवाली बन जाती हैं। भक्तका संस्पर्श पाकर वातावरण पवित्र हो जाता है। नारदजीने भक्त और भगवान्‌में भेदका अभाव बतलाया है—

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।' (नारदभक्तिसूत्र ४१)

भगवान्‌के भक्त भगवत्स्वरूप ही हैं। जो भक्तोंका सेवन करते हैं, वे भगवान्‌का ही सेवन करते हैं। भक्त भगवान्‌के हृदयमें बसते हैं और भगवान् भक्तके हृदयमें। भगवान्‌ने कहा है—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥ (श्रीमद्भा० ९।४।६८)

'साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवा और किसीको नहीं जानते और मैं उन्हें छोड़कर और किसीको नहीं जानता।' भरत रामको भजते हैं और राम भरतको—

'भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥'

श्रीभगवान्‌ने प्रेमस्वरूपा गोपियोंके सम्बन्धमें कहा है—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्। जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

'हे अर्जुन! मेरा माहात्म्य, मेरी पूजा, मेरी श्रद्धा और मेरे मनकी बात तत्त्वसे केवल गोपियाँ ही जानती हैं; और कोई नहीं जानता।'

ऐसे प्रेमी भक्तोंमें और भगवान्‌में क्या अन्तर है। भगवान्‌के वचन हैं—

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥' (गीता ९।२९)

'जो प्रेमसे मुझको भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ।' ऐसे भक्त भगवत्प्रेममें इस प्रकार तल्लीन रहते हैं कि वे अपने बाह्यरूपको भूलकर साक्षात् भगवत्स्वरूपका अनुभव करने लगते हैं।

ऐसे प्रेमी भक्तोंका आविर्भाव देखकर पितरगण प्रमुदित होते हैं, देवता नाचने लगते हैं और यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है—

'मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति॥' (नारदभक्तिसूत्र ७१)

भक्तोंका आविर्भाव सभीके लिये शुभ होता है; क्योंकि उनके सभी कर्म स्वाभाविक ही लोक-कल्याणकारी होते हैं। उनके प्रभावसे लोगोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा बढ़ती है, पितृकार्य और देवकार्योंमें विश्वास उत्पन्न हो जाता है। इससे धर्मपथसे डिगे हुए लोग पुनः धर्ममार्गपर आरूढ़ होकर यज्ञ, दान, श्राद्ध, तर्पण आदि कर्म करने लगते हैं, जिससे देवता और पितरोंको बड़ा सुख मिलता है। भक्तके आगे-पीछेके कई कुल तर जाते हैं, इसलिये अपने कुलमें भक्तको उत्पन्न हुआ देखकर पितरगण अपनी मुक्तिकी दृढ़ आशासे हर्षोत्फुल्ल हो जाते हैं। पद्मपुराणमें कहा है—**'आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः। मद्वंशे वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति॥'**

"पितृ-पितामहगण अपने वंशमें भगवद्भक्तका जन्म हुआ जानकर 'यह हमारा उद्धार कर देगा'—इस आशासे प्रसन्न होकर नाचने और ताल ठोकने लगते हैं।"

मचले हुए दर्शनाकाङ्क्षी भक्त किसी भी बातसे संतुष्ट नहीं होते; अतः स्नेहमयी जननीकी भाँति उन्हें अपनी गोदमें खिलाकर सुखी करनेके लिये सच्चिदानन्दघन भगवान् दिव्यरूपमें साक्षात् प्रकट होते हैं। इस प्रकार भक्तके आविर्भावको ही भगवान्‌के प्राकट्यमें कारण समझकर देवतागण भी नाचने लगते हैं और भगवान्‌के प्राकट्यसे पृथ्वी भी सनाथा हो जाती है।

पद्मपुराणमें भक्तके दर्शनका महत्व बतलाते हुए कहा गया है—

सर्वे धन्यतमा ज्ञेया विष्णुभक्तिपरायणाः। तेषां दर्शनमात्रेण महापापात् प्रमुच्यते॥
उपपातकानि सर्वाणि महान्ति पातकानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति वैष्णवानां च दर्शनात्॥

पावका इव दीप्यन्ते ये नरा वैष्णवा भुवि । विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः ॥
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदः । पावनः पावनानां च विष्णुभक्तो न संशयः ॥

(उत्तर० १३१ । १७–१९, २३)

'जो विष्णुभक्तिपरायण––भक्त हैं, उन सबको धन्यतम जानना चाहिये। उनके दर्शनमात्रसे महान् पापोंसे छुटकारा हो जाता है। जितने उपपातक और महापातक हैं, सब वैष्णव भक्तोंके दर्शनसे ही नष्ट हो जाते हैं। पृथ्वीमें वैष्णवगण अग्निकी भाँति देदीप्यमान हैं, वे मेघमुक्त चन्द्रमाकी भाँति समस्त पापोंसे मुक्त होते हैं।····भगवान्के भक्त वैष्णवगण संसाररूप कीचड़के लेपको धोनेमें बड़े निपुण हैं और पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाले हैं––इसमें संदेह नहीं है।'

दर्शनस्पर्शनालापसहवासादिभिः क्षणात् । भक्ताः पुनन्ति कृष्णस्य साक्षादपि च पुल्कसम् ॥

'भगवान् श्रीकृष्णके भक्तका क्षणमात्रका दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप और सङ्ग साक्षात् चण्डालको भी पवित्र कर देता है।'

ऐसे भक्तोंके आदर-सत्कार आदिका महत्व दिखलाते हुए भगवान् शंकरने पद्मपुराणमें कहा है––

एवमभ्यर्चयेद् विष्णुं यावज्जीवमतन्द्रितः । तदीयांश्च विशेषेण पूजयेत् सर्वथा शुभे ॥
आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम् । तस्मात्परतरं देवि तदीयानां समर्चनम् ॥
अर्चयित्वापि गोविन्दं तदीयान्नार्चयेत्पुनः । न स भागवतो ज्ञेयः केवलं दाम्भिकः स्मृतः ॥
पुमांस्तस्मात्प्रयत्नेन वैष्णवान् पूजयेत् सदा । सर्वं तरति दुःखौघं महाभागवतार्चनात् ॥

(उत्तर० २५३ । १७५–१७८)

'कल्याणि ! इस प्रकार जीवनभर सजग रहकर भगवान् विष्णुका और उनके भक्तोंका विशेषरूपसे पूजन करे। देवि ! आराधनाओंमें भगवान् विष्णुकी आराधना श्रेष्ठ है, और भगवान्की आराधनासे भी उनके भक्तोंकी आराधना श्रेष्ठतर है। जो मनुष्य श्रीगोविन्दकी पूजा करके भी उनके भक्तोंकी पूजा नहीं करता, उसे भक्त नहीं जानना चाहिये; वह केवल दम्भ करता है––पूजाका ढोंग करता है। अतएव मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक सदा वैष्णवोंका पूजन करना चाहिये। महाभागवतोंकी पूजासे मनुष्य समस्त दुःखोंसे तर जाता है।'

स्वयं श्रीभगवान्ने तो यहाँतक कह दिया है––

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः ।
मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः ॥ (आदिपुराण)

'अर्जुन ! जो लोग मेरे भक्त हैं, मात्र वे ही मेरे भक्त नहीं हैं; मैं तो उन्हें श्रेष्ठतम भक्त मानता हूँ, जो मेरे भक्तोंके भक्त हैं।'

भगवान् तो अपने भक्तोंके इतने प्रेमी हैं, उनपर इतने मुग्ध हैं कि स्वयं उनकी भक्ति, सेवन-चिन्तन-ध्यान करते हैं। भक्तोंका ऐसा कौन-सा काम है, जिसे करनेमें भगवान् कभी हिचकते हों। भक्तका छोटे-से-छोटा काम भी वे अपने हाथों करते हैं और उसमें उन्हें वैसा ही सुख मिलता है, जैसा राजराजेश्वरी जननीको अपने उदरजात शिशुकी नगण्य-से-नगण्य सेवा अपने हाथों करनेमें। सच्ची बात तो यह है कि भगवान्की सगुण-लीलामें प्रधान हेतु हैं ये भक्त ही। भक्तोंके लिये ही भगवान् 'प्रेमी' हैं; अन्यथा तो वे केवल सर्वातीत ब्रह्म, सर्वव्यापी परमात्मा या सर्वशक्तिमान् सर्वलोकमहेश्वर ईश्वरमात्र हैं। भगवान्के प्रेमावतार और भगवान्की प्रेमभरी लीलाएँ भक्तोंके निमित्तसे ही होती हैं। भक्त ही भगवान्की भक्तवत्सलता, भृत्यवश्यता, भक्त-भक्तिमत्ता, प्रेमिकता आदि दिव्य भावोंको प्रकट कराते हैं। श्रीमद्भागवतमें मुनि शुकदेवजीने भगवान्को 'भक्तभक्तिमान्'––भक्तोंका भक्त बतलाया है––**'एवं स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान् ।'**

भगवान्‌ने अपने भक्तोंकी महिमाका बखान करते हुए श्रीमद्भागवतमें अपनेको भक्तकी चरणरजकी इच्छासे सदा उसके पीछे-पीछे घूमनेवाला और 'भक्तके अधीन' बतलाया है—

'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।' (श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

'उस भक्तके पीछे-पीछे मैं सदा-सर्वदा इसलिये घूमा करता हूँ कि उसकी चरण-धूलि उड़कर मुझपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ।'

'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।' (श्रीमद्भा० ९।४।६३)

'ब्राह्मणदेवता! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है।'

भगवान् श्रीकृष्णको एक बार भक्तराज भीष्मपितामहका ध्यान करते युधिष्ठिरने देखा था। यह भक्तकी महिमा है। भगवान् अपने भक्तके गौरवमें अपना गौरव मानते हैं, इसलिये स्वयं सदा भक्तका गौरव बढ़ाते रहते हैं—

तत्परो हि प्रियो नास्ति कृष्णस्य परमात्मनः।
भक्तप्राणो हि कृष्णश्च कृष्णप्राणा हि वैष्णवाः। ध्यायन्ते वैष्णवाः कृष्णं कृष्णश्च वैष्णवांस्तथा॥

(नारदपाञ्चरात्र)

'परमात्मा श्रीकृष्णको भक्तोंसे प्यारा कोई नहीं है। भक्त श्रीकृष्णके प्राण हैं और वैष्णवोंके प्राण श्रीकृष्ण हैं। वैष्णवलोग श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं और श्रीकृष्ण वैष्णवोंका ध्यान करते हैं।'

भगवत्सङ्गीके सङ्ग तथा चरणधूलि आदिका अद्भुत माहात्म्य है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥ (श्रीमद्भा० ११।१८।१३)

'भगवत्सङ्गीका सङ्ग यदि लवमात्रके समयके लिये मिलता हो, तो उसकी तुलना यहाँके भोगोंकी तो बात ही क्या, स्वर्गसे भी नहीं होती; वरं अपुनर्भव—मोक्ष—सायुज्य मुक्तिसे भी नहीं होती।' 'भगवत्सङ्गी'का अर्थ है—भगवान्‌में अनुरक्त, आसक्त, भगवान्‌का सङ्गी, भगवान्‌का प्रेमी, गोपीभावापन्न।

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥ (श्रीमद्भा० ५।१२।१२)

'रहूगण! महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिसे अपनेको नहलाये बिना केवल तप-यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादिके दान, अतिथिसेवा, दीन-सेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि या सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधनसे यह परमात्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।'

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किंचनानां न वृणीत यावत्॥ (श्रीमद्भा० ७।५।३२)

'जिनकी बुद्धि भगवान्‌के चरण-कमलोंका स्पर्श कर लेती है, उनके जन्म-मृत्युरूप अनर्थका सर्वथा नाश हो जाता है। परंतु जो लोग अकिंचन भगवत्प्रेमी महात्माओंके चरणोंकी धूलमें स्नान नहीं कर लेते हैं, उनकी बुद्धि काम्यकर्मोंका पूरा सेवन करनेपर भी भगवच्चरणोंका स्पर्श नहीं कर सकती।'

भगवद्भक्तका दास होनेकी भावना

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किंतु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धेर्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥

(सार्वभौम वासुदेवभट्टाचार्य)

'न मैं ब्राह्मण हूँ न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ और न शूद्र ही हूँ; मैं न ब्रह्मचारी हूँ न गृहस्थ हूँ, न वानप्रस्थ हूँ और न संन्यासी हूँ; किंतु सम्पूर्ण परमानन्दमय अमृतके उमड़ते हुए महासागररूप गोपीकान्त श्रीकृष्णके चरण-कमलके दासका दासानुदास हूँ।'

संतके दृष्टिपथकी कामना

सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः ।
महात्मभिर्मामवलोक्यतां नय क्षणोऽपि ते यद्विरहोऽतिदुस्सहः ॥ (आलवन्दारस्तोत्र)

'जिन्होंने आपके स्वरूपको एक बार देखनेकी इच्छासे उत्तमोत्तम भोग और मुक्तिको भी तृणके समान त्याग दिया है तथा जिनका क्षणभरका भी वियोग आपको अत्यन्त असह्य है, ऐसे संत-महात्माओंके दृष्टिपथमें मुझे डाल दीजिये।'

संतका निवास-स्थल

गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले ।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रमणेय्यकम् ॥

(धम्मपद ७ । ९)

'चाहे ग्राम हो चाहे वन हो, चाहे जलमय या सूखा स्थल हो, वह स्थान आनन्दमय है, जिसमें संत निवास करते हैं।'

संत-मिलन

सो दिन लेखे जा दिन संत मिलाहिं ।
संत के चरन-कमल की महिमा मोरे बूते बरनि न जाहिं ॥
जल-तरंग जल ही तें उपजैं, फिर जल माहिं समाहिं ।
हरि में साध, साध में हरि हैं, साध से अंतर नाहिं ॥
ब्रह्मा बिसुन महेस साध सँग पाछे लागे जाहिं ।
दास 'गुलाल' साध की संगति, नीच परम पद पाहिं ॥

—संत गुलाल साहब

सच्चे संतका स्पर्श करें

विश्वास करें—'हम चाहे मलिन-से-मलिन प्राणी क्यों न हों, केवल मैलेकी तरह हममें दुर्गन्ध ही क्यों न भरी हो, बाहर-भीतर, नीचे-ऊपर, केवल बदबू आ रही हो, पर 'संत' नामकी वस्तु इतनी पवित्र है, इतनी सरस है कि उसका स्पर्श होते ही हम बिल्कुल उसी ढाँचेमें ढल जायँगे। आग क्या यह देखती है कि यह मैला है ? मैला आगमें पड़ा कि सारा-का-सारा अंगारा बन जायगा। हम मिलें, उसमें मिलें; अपनी सारी मलिनता, सारी दुर्गन्ध लेकर मिलें। दिन-रात उसके इशारेपर चलनेकी चेष्टा करें, दिन-रात सोचें—'संत कितने कृपालु हैं!' दिन-रात यह विचार करें—'कृपामय ! तुम्हारी कृपा ही मुझे भले अपना ले, मुझमें तो बल नहीं।' दिन-रात नाम लें, चलते-फिरते नाम लें। इससे बड़ी सहायता मिलेगी। दिन-रात यही इच्छा करें कि संतका सङ्ग नहीं छूटे। दिन-रात यही सोचें—संतके लिये परिवार, संतके लिये इज्जत यदि बाधक है तो संतके चरणोंमें इनको भी समर्पण कर देना है। इसका यह अर्थ नहीं कि संन्यासी बन जाना है। बाहर कपड़ा रँगकर भी क्या होगा ? परंतु यह नितान्त सत्य है कि सर्वस्वकी आहुति देनेके लिये तैयारी मनसे ही करनी पड़ेगी। बाहरका ढाँचा ज्यों-का-त्यों रहकर मन बिल्कुल खाली हो जायगा, तभी हमारी अभिलाषा पूर्ण होगी। यदि किसी संतकी दृष्टि—अमृतमयी दृष्टि, अमोघ दृष्टि पड़ चुकी है तो हमारे लिये परवाना काटा जा चुका; परंतु हम यदि अपनी ओरसे देनेके लिये—जिसकी चीज है, उसकी ही चीज उसको लौटानेके लिये तैयार हो जायँ, अर्थात् अपनी ममता उठाकर सबपर उसका अधिकार मान लें, तो फिर शीघ्र-से-शीघ्र कृपा प्रकाशित हो जायगी।

—'एक संत'
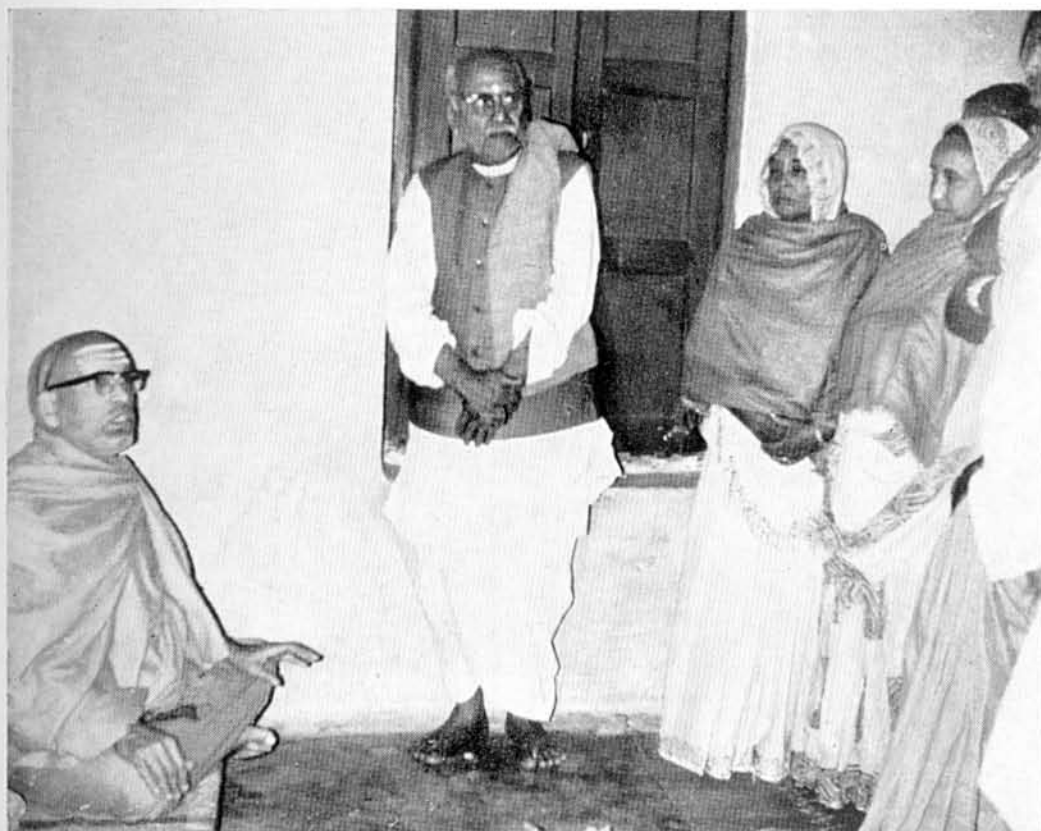
जगद्‌गुरु शंकराचार्यका सत्कार पत्नी एवं पुत्री सहित

गीताभवनमें जगद्‌गुरुका उपदेश सुनते हुए

श्रीश्रीआनन्दमयी माँके साथ
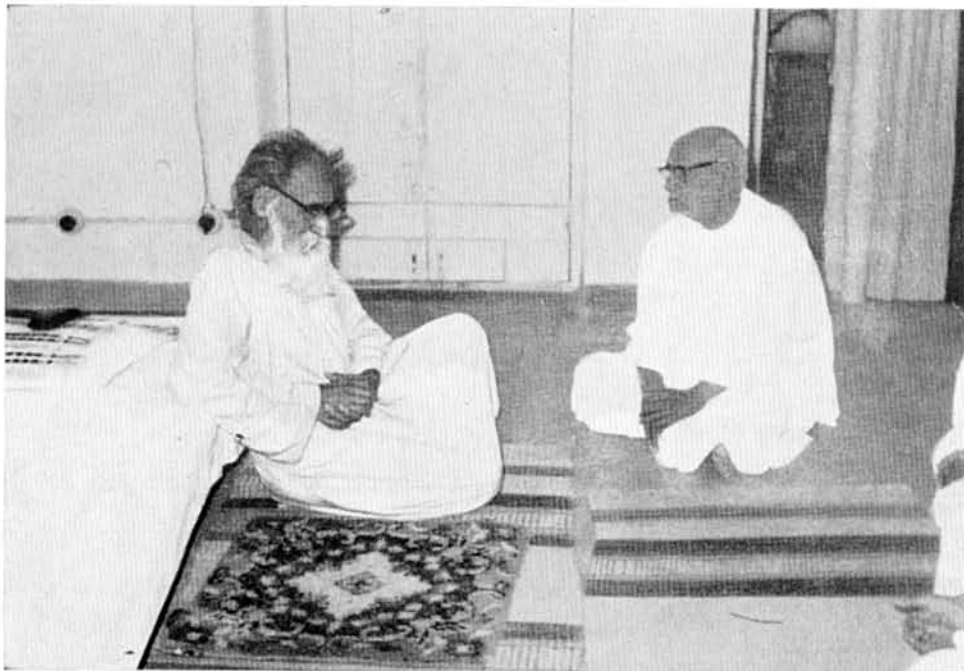
पू० श्रीहरिबाबाजीकी सन्निधिमें

परम पूजनीया माँ आनन्दमयी

का

सूत्रमय संदेश

हनुमानप्रसाद बाबा अपनी सत्क्रियामें निजस्वरूप लक्ष्यकी धारामें प्रकाश तो देते ही रहे। छोटी बच्ची तो सदा ही बाबाके पास--भगवान् विश्व, विश्वातीत नित्ययोग परब्रह्म परमात्मा है न !

जनजनार्दन सत्संगसमारोह--आनन्द ।

वाराणसी
१४.३.१९७२

माँ आनन्दमयी

मूर्धन्य मनीषी

श्रद्धार्चन

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

(ऋग्वेद १० । १५१ । ५)

'हम श्रद्धाको प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल बुलाते रहेंगे । हे श्रद्धे ! हमें इस लोकमें सर्वदा श्रद्धावान् बनाये रहो ।'

•

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

कर्मभक्तिज्ञानादिसद्विषयघटितैः लेखैः, उपनिषद्गीतारामायणभागवतादिप्राचीनग्रन्थार्थविवरणपरैः विशिष्टाङ्कैश्च युतया 'कल्याण'-पत्रिकया, गीतायन्त्रालयप्रकाशितैः अन्यैः ग्रन्थैश्च आस्तिकलोकस्य यावज्जीवं बहूपकृतवतः श्रीहनुमान्प्रसादपोद्दारमहाशयस्य विषये कृतज्ञताविष्करणरूपेण एतन्महाशयसुहृद्भिः श्रद्धाञ्जलिग्रन्थः एकः प्रकाशयिष्यत इति विदित्वा मोदामहे ।

आस्तिकाः एतन्महाशयक्षुण्णेन धार्मिकेण पथा संचरन्तः भारतदेशप्राचीनधर्ममार्गानुसरणश्रद्धामन्येष्वभिवर्धयन्तश्च कल्याणपरम्पराभाजनतां प्राप्नुयुरित्याशास्महे ।

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराज
श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठ, काञ्जीवरम्

[हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार महोदयके प्रति कृतज्ञता-संवेदनके रूपमें उनके सुहृज्जनोंद्वारा एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है । श्रीपोद्दार महोदयने कर्म-भक्ति-ज्ञान आदि उत्तम विषयोंपर लिखे गये लेखोंद्वारा, उपनिषद्-गीता-रामायण-भागवत आदि प्राचीन ग्रन्थोंके मर्मका उद्घाटन करनेवाले विशेषाङ्कोंसे अलंकृत 'कल्याण' नामक मासिक पत्रिकाद्वारा तथा गीताप्रेससे प्रकाशित अन्यान्य ग्रन्थोंद्वारा जीवनभर आस्तिक जनताका महान् उपकार किया है। आस्तिक जनता उक्त महानुभावद्वारा आचरित धर्ममार्गपर स्वयं चलकर तथा दूसरोंको भी भारतदेशके उस प्राचीन धर्ममार्गपर चलनेके लिये उत्साहितकर कल्याण-परम्पराको अक्षुण्ण बनाये रखनेका श्रेय प्राप्त करे—यही हमारी अभिलाषा है।
श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराज
श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठ]

● ● ●

श्रीमान् धर्मशील हनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम न जाननेवाले धार्मिक जगत्में विरले ही होंगे। इन्होंने 'कल्याण'के माध्यमसे सारे भारतमें और बाहर भी भक्ति, धर्म-श्रद्धा और अध्यात्मचिन्तनको पनपाया । इनके लेखोंसे लाखों लोग आस्तिक और नीतिमान् हुए । ये जैसे कहते, वैसे ही करते थे । इनकी करनी और कथनीमें भेद नहीं था । इनका आचरण दूसरोंके लिये आदर्श था और है भी । ये हमारी उत्तरभारतकी यात्राके अवसरपर दो-तीन बार हमसे मिले । गोरखपुरमें तीन दिन हम इनके यहाँ गीताप्रेसमें ठहरे । इनका सच्चा स्वभाव, आचरण और मधुर भाषण हमें अत्यन्त प्रीतिकर लगे । इनके इहलोकत्यागसे धार्मिक जगत्की बड़ी क्षति हुई है ।

पोद्दारजीद्वारा किये गये कार्योंसे अगली पीढ़ीको भी मार्गदर्शन मिलता रहेगा । हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि गीताप्रेस-परिवार इनके मार्गपर चलकर भगवान्की सेवा करनेमें समर्थ हो ।

धर्मशील भाईजी तो अमर हैं ही ।

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीविद्यातीर्थजी महाराज
शारदापीठ, शृंगेरी

● ● ●

आधुनिक भारतके सांस्कृतिक इतिहासमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम अवश्य उल्लेखनीय है। धार्मिक साहित्य-क्षेत्रमें तो उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा । वे भारतीय सनातन संस्कृतिके वास्तविक रूपसे उन्नायक थे ।

बिहारके एक कोनेमें ढेभवा नामके गाँवमें सन् १९४६ में अखिल भारतीय धर्मसंघका महाधिवेशन हुआ था। उसकी अध्यक्षताके लिये हमारा उत्तरभारतमें प्रथम बार जाना हुआ। जाते तथा आते समय मैं गीता-वाटिका, गोरखपुरमें उनके ही आतिथ्यमें रहा। इसी अवसरपर मेरा पोद्दारजीसे प्रथम परिचय हुआ। वैसे तो कर्णाटकके एक कोनेमें निवास करते हुए बाल्यकालसे ही 'कल्याण'के सचित्र विशेषाङ्कोंके द्वारा मैं उनके व्यक्तित्वसे सूक्ष्मरूपेण परिचित था। इसके बाद अनेक स्थानोंमें अनेक प्रसंगोंमें वह परिचय बढ़ता ही गया।

श्रीपोद्दारजीका भारतीय-संस्कृति-रक्षणका महाकार्य जीवनके अन्तिम क्षणतक चलता रहा। उनका शिष्ट, सात्विक तथा धार्मिक साहित्यका संवर्धन और वितरण निश्चय ही अनुपम एवं सर्वानुकरणीय है। भारतमें ही नहीं, विश्वमें भारतीय आध्यात्मिक साहित्यको दूर-दूरतक पहुँचानेमें वे सफल रहे। भगवद्भक्ति, गोभक्ति, राष्ट्र-प्रेम, गुरुजनोंमें आदरभाव, सात्विक प्रेमभाव, सन्निष्ठा आदि सद्गुणोंके वे आदर्श रूप कहे जा सकते हैं। संस्कृति-संरक्षण और पीड़ित जीवोंकी सहायताके सम्पूर्ण क्षेत्रमें ही वे प्रेरणास्रोत हैं ही, किंतु गोरक्षा-कार्यमें तो उनकी तन्मयता और संगठन-शक्ति देखकर लोग चकित रह जाते थे।

उनकी महायात्रासे भारतीय संस्कृतिकी अपूरणीय क्षति हुई है। भगवान् उनके अनुयायियोंको अवशिष्ट कार्योंको पूरा करनेकी शक्ति प्रदान करें। इति शम्।

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्द तीर्थजी महाराज
शारदापीठ, द्वारकापुरी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजीकी प्रशंसामें जो कुछ कहा, सुना, लिखा जाय, वह अधिकाधिक भी अत्यल्प है।

वे ईश्वर, धर्म, राष्ट्र, सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार, परम्परा आदि भारतीय विभूतियोंके अनन्य उपासक थे। उनकी श्रद्धा, भक्तिभावना और निष्ठा असाधारण थीं। हिन्दूधर्म, हिन्दूसभ्यता तथा हिन्दू-संस्कृतिकी सेवाके लिये सर्वश्रेष्ठ 'कल्याण' मासिक पत्रिका एवं अंग्रेजी 'कल्याण-कल्पतरु'के माध्यमसे राष्ट्रकी जो सेवा उन्होंने अपने जीवनमें की, वह दूसरा कभी कर नहीं सकता। 'कल्याण'के मासिक एवं विशेष अंकोंद्वारा उन्होंने प्राचीन भारतीय वैदिक वाङ्मय, तन्त्रशास्त्र, इतिहास, पुराण आदिके अर्न्तनिहित रत्नोंको न केवल रत्नपरीक्षकों-के लिये, अपितु सर्वसाधारणके लिये सुलभ बना दिया। जिन ग्रन्थोंकी सत्ताका भी पता लोगोंको नहीं था, उनके दर्शन, मनन, पठन-पाठन तथा निदिध्यासनका अवसर योग्य विद्वानोंको और विज्ञ विचारकोंको उनके अथक परिश्रमसे सुलभ हुआ। भारतके लिये यह उनकी सबसे बड़ी देन सदा-सर्वदा अविस्मरणीय रहेगी।

पोद्दारजीका निश्छल, निष्कपट, छल-छिद्र-पाखण्डरहित स्वभाव उनकी सौम्यमूर्तिके प्रथम दर्शनमें ही सब लोगों-के समक्ष प्रकट हो जाता था। आबाल-वृद्ध, नर-नारी, राजा-रंक, धनी-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, साधारण-असाधारण—सभी व्यक्तियोंको वे समान रूपसे प्रिय लगते थे। उनके मुखपर अप्रसन्नता अथवा क्रोधकी छाया शायद ही कभी किसीने देखी होगी। सबको सब समय वे प्रसन्न मुद्रामें ही उपलब्ध होते थे और उसी अवस्थामें अपरिचित व्यक्तिसे भी वे ऐसे घुल-मिलकर बातें करने लगते थे जैसे वर्षों पुराने परिचित मित्र परस्पर वार्तालाप करते हों। उनसे मिलनेवाले सभी ऐसी प्रसन्न मुख-मुद्रामें उनके यहाँसे लौटते थे, मानो अपना मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर चुके हों।

काम करनेकी शक्ति तो इस युगमें भगवान्ने मानो अकेले उनको ही दे दी थी। लेखन, भाषण, सम्पा-दन, काव्यकला आदि सभी साहित्यिक प्रवृत्तियोंके वे धनी थे। जिस काममें जुट जाते थे, उसे पूरा किये बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता था। वे भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्धके प्रमुख सैनिकोंमें रहे। साथ ही धार्मिक, सामाजिक आन्दोलनोंमें भी वे किसीसे पीछे नहीं रहे। हिन्दूकोड-विरोधी आन्दोलनका सफल संचालन उन्होंने किया। गोहत्याबंदी आन्दोलनका कोई ऐसा विभाग नहीं था, जिसमें सदैव उनका सक्रिय सहयोग न रहा हो।

अपने इन सद्‌गुणों और सत्कर्मोंके द्वारा निश्चय ही उन्हें सद्‌गति प्राप्त हुई, इसमें संदेह नहीं। फिर भी कर्तव्यबुद्धिसे उनकी शाश्वत शान्ति और शाश्वत सुखके लिये मैं अपने इष्टदेव अनाथनाथ, दीनानाथ, जगन्नाथ, भगवती विमलाम्बा एवं चन्द्रमौलीश्वरके चरणारविन्दोंमें हार्दिक प्रार्थना करता हूँ।

श्रीमज्जगद्‌गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज
गोवर्धनपीठ, जगन्नाथपुरी

● ● ●

अनासक्त कर्मयोगी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतीय चिन्तन-परम्पराकी अमूल्य निधि थे। वे सहज वैष्णव-वृत्ति एवं मधुरा-भक्तिके जीवन्त प्रतीक थे। गीताप्रेस और उसके प्रकाशन तथा 'कल्याण' पत्रिका पोद्दारजीके पावन व्यक्तित्व और कृतित्वके चिरस्मरणीय गौरव-स्मारक हैं। उन्होंने अपनी लेखनीके माध्यमसे कोटि-कोटि जनमें आध्यात्मिकताका अलख जगाकर उनका पारमार्थिक हित-चिन्तन किया। उनकी इहलीला-समाप्तिसे हुई अपार क्षति अपूरणीय है।

जगद्‌गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीशान्तानन्दजी महाराज
ज्योतिष्पीठ, बदरिकाश्रम (उत्तराखण्ड)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको हम बहुत दिनोंसे जानते हैं। वे हमारे पास बराबर आया-जाया करते थे। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सनातनधर्म और हिन्दू-जातिके महान् रत्न थे। सनातनधर्मके शीर्षस्थ नेताओंने जब हिन्दूकोड बिलका घोर विरोध करना प्रारम्भ किया, तब उसमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका भी बड़ा सहयोग रहा। उन्होंने सभी बड़े-बड़े अधिवेशनोंमें पधारकर अपने भाषण दिये और खुलकर हिन्दूकोडका विरोध किया। जिस समय श्रीकरपात्रीजी महाराजके नेतृत्वमें गोहत्याके विरोधमें आन्दोलन चला, तब उसमें भी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका पूर्ण सहयोग रहा। उन्होंने तन-मन-धनसे उसमें पूरा-पूरा साथ दिया। जिस समय भारतमाताके अंग-अंग खण्ड-खण्डकर पाकिस्तान बनानेकी सोची गयी, तब पाकिस्तान-बननेके विरोधमें जहाँ हमलोगोंने आन्दोलन छेड़ा तो उसमें भी वे हमारे साथ रहे। जो भी सनातनधर्मका, हिन्दूधर्मकी रक्षाका कार्य होता था और देश-धर्मकी रक्षाका जो भी प्रश्न सामने आता था, श्रीपोद्दारजी उसमें अग्रणी रहते थे और उनकी रक्षाके लिये तन-मन-धनसे साथ देते थे। जिस समय गोरक्षा-आन्दोलनमें प्रदर्शनके समय निरपराध साधु-संतोंके ऊपर गोले बरसाये गये थे, तब हमारे बराबर ही उसी मंचपर पोद्दारजी भी थे। श्रीकरपात्रीजी जब गोरक्षा-आन्दोलनमें जेल गये, और जब उनके ऊपर जेलमें कुछ दुष्टलोगोंके द्वारा मार पड़ी, तब तुरंत पोद्दारजी तिहाड़ जेलमें उन्हें देखनेके लिये गये। वे गो-ब्राह्मणोंके अनन्य भक्त थे।

वे वर्णाश्रमधर्मको माननेवाले थे और शास्त्रविश्वासी थे। जहाँ वे शास्त्रविश्वासी थे, वहाँ उन्होंने कई ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएँ स्वयं देखी थीं, जिनसे उनका शास्त्रोंकी बातोंमें पूर्ण विश्वास हो गया था। उनकी बम्बईमें एक पारसी प्रेतसे भेंटकी घटना बड़ी आश्चर्यजनक है। स्वयं पारसी प्रेतने उनके सामने प्रकट होकर उनसे बातें की थीं और उनसे अपने उद्धारके लिये गया-श्राद्ध करानेकी माँग की थी। बादमें पोद्दारजीने अपने किसी आदमीको भेजकर उस पारसी प्रेतका गया-श्राद्ध कराया था, जिससे उसका उद्धार हो गया था। तबसे वे श्राद्ध बड़ी श्रद्धासे किया करते थे और उनका शास्त्रोंकी बातोंमें पूर्ण विश्वास हो गया था। उनके द्वारा देशमें सनातनधर्मका बड़ा प्रचार हुआ है। इसे कौन भुला सकता है?

जगद्‌गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज

● ● ●

'कल्याण'के ओजस्वी सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीके असामयिक परलोकगमनसे सनातन-धर्मका एक स्तम्भ टूट गया। वे उच्चकोटिके विद्वान् होनेके साथ धर्म तथा देशके कर्मठ सेवक थे। भारतके स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें उन्होंने सक्रिय भाग लिया था। इसी तरह गोरक्षा-आन्दोलनमें भी वे अपना पूरा योग प्रदान कर रहे थे।

उनका स्वभाव सरल था। अपनी लोकप्रियतापर गर्व या घमंड उन्हें छूतक नहीं पाया। वे श्रीराधा-रानीके अनन्य भक्त थे। 'श्रीराधाष्टमी-महोत्सव' वे बड़े उल्लाससे मनाया करते थे। इस अवसरपर उनके भाषण मननीय होते थे। 'सत्संग-वाटिकाके बिखरे सुमन' शीर्षकसे प्रकाशित होनेवाले उनके उपदेशोंके मननसे बहुतोंको संतोष और शान्ति प्राप्त हुई है। उनके-जैसे योग्य और निर्भीक व्यक्तिकी आज बड़ी आवश्यकता थी, पर कुटिल कालने हमसे उन्हें छीन लिया।

उनका शरीर भले ही न रहा, क्योंकि शरीरका नाश अवश्यम्भावी है; पर उनके विचार चिरकालतक लोगोंको प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करते रहेंगे। उनके द्वारा चलाये गये कार्यको हम जारी रखें और आगे बढ़ायें, यही उनका सच्चा स्मारक होगा।

स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज

● ● ●

भारतीय धर्म और संस्कृतिका गाय, गीता और गंगा––त्रैविक्रम-पादकल्प––इन तीन वस्तुओंमें समावेश है। भारतीयोंके ये निरतिशय श्रद्धाबिन्दु हैं। भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने अपने जीवनमें इन तीनों पादोंको विश्वमें सुस्थिर करनेमें अपना सारा पुरुषार्थ लगा दिया और एक परम भागवत-सा जीवन जिया। गोरक्षा-आन्दोलनके समय उनके इस रूपका मुझे विशेष साक्षात्कार हुआ। ऐसे व्यक्तिका समाजसे उठ जाना समाजकी बहुत बड़ी क्षति है।

उदासीन-सम्प्रदायाचार्य महामण्डलेश्वर श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज

● ● ●

हमारे बीचसे प्रभु-विश्वासी, उदार तथा परम स्नेही प्रिय भाईजी चले गये। वे क्या थे? कहाँसे आये?–इसे तो वे ही जानें; पर प्रेमीजनोंके वे सर्वस्व थे। उनके जीवनसे प्रभु-प्रेमकी अविचल निष्ठाकी प्रेरणा भक्तजनोंको प्रेरित करती रहती थी। बाह्य दृष्टिसे तो उनके निधनसे बड़ी ही क्षति हुई है, पर वास्तवमें तो भक्तोंकी भक्ति सतत ज्यों-की-त्यों उनके प्रेमियोंको शक्ति प्रदान करती रहती है। उनकी साधना सदैव हमलोगोंके साथ है। उनके दिखाये हुए पथपर दृढ़ रहना है, और उसीसे हम सबकी उनके साथ अभिन्नता हो सकती है। शरीर तो सदैव ही अलग था, अब वह सदाके लिये अलग हो गया। उनकी मधुर उदारता हृदयको पीड़ित करती है। वे तो अपने धाममें बड़े ही आनन्दमें हैं, उनके वियोगसे भोले भक्तोंका हृदय पीड़ित है। सर्वसमर्थ प्यारे प्रभु भक्तोंको अपनी आत्मीयता एवं मधुर स्मृति प्रदान करें, जिससे वे अपने पथ-प्रदर्शक श्रीभाईजीसे सदैव अभिन्नताका अनुभव करें। यही मेरी सद्भावना है। अधिक बोला नहीं जाता, हृदयकी मधुर पीड़ा कण्ठको अवरुद्ध करती है।

स्वामी श्रीशरणानन्दजी

● ● ●

हम जितने दिन 'कल्याण-परिवार'में रहे, भाईजीसे एक होकर। उनसे कितना तादात्म्य हो गया था, इसकी एक घटना सुनिये। श्रीजयदयालजी गोयन्दका भरी सभामें भाईजीकी प्रशंसा करने लगे। मैंने देखा––भाईजी-का मुख लटक गया, वे उदास हो गये। मैंने वहीं, उसी समय खड़े होकर सबके सामने गोयन्दकाजीसे कह

अन्तर्ग्रह चिकित्सा खण्डके उद्घाटन समारोहमें उत्तरप्रदेशके
मुख्यमंत्री श्रीचन्द्रभानु गुप्तके साथ
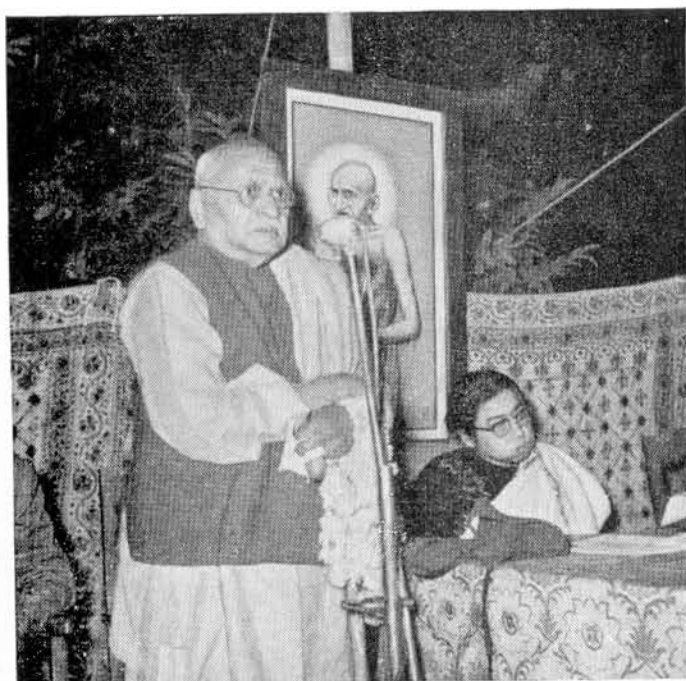
श्रीमती सुचेता कृपलानीके साथ
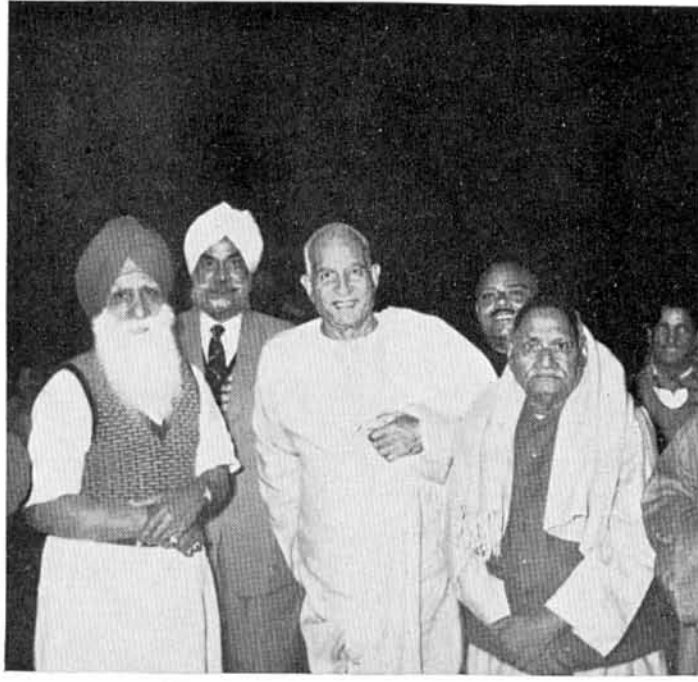
महन्त श्रीदिग्विजयनाथ एवं सर सुरेन्द्रसिंह मजीठियाके साथ

श्रीकृष्ण जन्मभूमि मथुरामें श्रीकृष्णमन्दिर उद्घाटनके
अनन्तर श्रीकृष्ण-तत्त्वकी व्याख्या करते हुए

दिया कि आप भाईजीकी प्रशंसा मत कीजिये। मुझे ऐसा लग रहा था मानो भाईजीकी प्रशंसा मेरी ही प्रशंसा है और उसके कारण मुझे संकोच हो रहा हो। अब जब उन्हीं भाईजीके संस्मरण लिखानेका मन होता है, तब हृदयमें एक पीड़ा होती है कि मैं क्या अपना ही संस्मरण लिखाऊँ?

एक दूसरी बात और है, मैंने अपनी आँखोंसे भाईजीके नित्यलीलालोकगमनको नहीं देखा। मुझे अब भी ऐसा ही लगता है कि वे इसी धराधामपर हैं और मेरे वैसे ही भाईजी हैं। मैं कोई काम करता हूँ तो एक बार यह विचार भी उदय होता है कि जब मेरा यह काम भाईजीको ज्ञात कराया जायगा तो उन्हें कैसा लगेगा? वे आज भी चुपचाप मेरे मनमें गुप्त-प्रकट रहकर मेरी प्रवृत्तियों और निवृत्तियोंमें संचालन-सहयोगका काम करते रहते हैं। उन्होंने मेरे अन्तस्तलके सूक्ष्मतम प्रदेशमें ऐसा प्रवेश कर लिया है, स्थान पा लिया है— उनकी मानसी मूर्ति ऐसी प्रतिष्ठित हो गयी है कि मुझे यह विश्वास ही नहीं होता कि आपलोगोंके कथनानुसार वे कहीं नित्यलीलालोकमें चले गये हैं।

मुझे इस बातका दुःख रहा और है कि इन तीस वर्षोंमें आपलोगोंने हमारे ही जैसे मानव—एक अर्थमें महामानव भाईजीको न जाने क्या-क्या बना दिया और उन्हें कहाँ-से-कहाँ पहुँचा दिया। इसीकी यह अन्तिम परिणति है कि आपलोग कहते हैं कि वे नित्यलीला-लोकमें चले गये। मैं दावेके साथ कहता हूँ और सत्य-सत्य कहता हूँ कि वे यहाँसे उड़कर किसी परलोकमें नहीं गये हैं, हमारे हृदयमें, हमारे साथ, हमारे नित्यके व्यवहारमें वे हमें अपरोक्ष हैं और हमें इसका किंचित् भी आभास नहीं होता कि वे अब यहाँ उसी रूपमें नहीं हैं।

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती

● ● ●

हिन्दुत्वके स्वाभिमानी श्रीपोद्दारजीने अपना समस्त जीवन हिन्दूधर्म और संस्कृतिके प्रसारमें समर्पित कर दिया था। आपकी सेवाओंके प्रति सारा हिन्दू-संसार चिरऋणी रहेगा। आप अपनेमें स्वयं एक संस्था थे। 'कल्याण' मासिक एवं गीताप्रेसके अनेकों धार्मिक प्रकाशनोंके माध्यमसे आपने हिन्दू-तत्वज्ञानका बोध सारे संसारको करानेका प्रयास किया। आप निर्धन, असहाय तथा निराश्रितोंकी आशाके एकमात्र केन्द्र थे तथा आप समाजके इन वर्गोंकी सदा सहायता करते रहते थे। धर्मप्राण जनताके भी आप प्रेरणाकेन्द्र बने रहे। देशके स्वाधीनता-संग्राममें भी आपका योगदान अतुलनीय रहा।

आज जब सब ओरसे हिन्दुत्वपर आघात हो रहा है, उस समय हिन्दू-जगत्को आपकी नितान्त आवश्यकता थी। पोद्दारजीका निधन अत्यन्त ही दुःखदायी घटना है।

गोरखनाथपीठासीन महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज
गोरखपुर

● ● ●

भगवान् महाबीरने चार प्रकारके पुरुष बतलाये हैं—

१. कुछ व्यक्ति समुद्रको तैरनेका संकल्प करते हैं, पर गोपदको तैर पाते हैं।
२. कुछ व्यक्ति गोपदको तैरनेका संकल्प करते हैं, पर समुद्रको तैर जाते हैं।
३. कुछ व्यक्ति समुद्रको तैरनेका संकल्प करते हैं और उसे तैर जाते हैं।
४. कुछ व्यक्ति गोपदको तैरनेका संकल्प करते हैं और उसे ही तैर पाते हैं।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तीसरी कोटिके व्यक्ति थे। उनका संकल्प उत्पत्ति और निष्पत्ति दोनोंमें क्षमताशील था। उन्होंने अपने जीवनमें महान् संकल्प किये और सफलतापूर्वक उन्हें आकार दिया। मेरी मान्यताके अनुसार वैदिक धर्मकी बहुमुखी सेवा करनेवाले ऐसे व्यक्ति आसपासकी शताब्दियोंमें विरल ही हुए हैं।

वे आध्यात्मिक पुरुष थे । प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों संघर्षोंमें मैंने उनकी आध्यात्मिकताको यथार्थ रूपमें पाया । वे समन्वयवादी थे । सभी भारतीय धर्मोंके प्रति उनके मनमें आदरका भाव था । उन्होंने जीवनभर वैदिकधर्म और साहित्यकी अमूल्य सेवाएँ कीं, फिर भी उनका धर्म उदार और व्यापक दृष्टिकोणसे पुष्ट था । 'कल्याण'के विशेषांक-प्रकाशनके समय हमारे साधु-साध्वियोंके लेखोंके लिये उनका अनुरोध आ ही जाता । मैं इसे उनकी उदार और व्यापक दृष्टि ही मानता रहा हूँ ।

'अग्नि-परीक्षा' काण्डके अवसरपर कन्हैयालालजी दूगड़ उनसे मिले थे । उस समय उन्होंने स्थितिको साम्यभावसे निरूपित किया और उस अवांछनीय प्रसंगमें सर्वथा अरुचि प्रदर्शित की । उन्हें यह कार्य पसंद नहीं था कि जैन और सनातन-धर्मके बीच कोई खाई पड़े ।

आज वे इहलौकिक जीवनमें नहीं हैं । उन-जैसे अनासक्त कर्मयोगी, अध्यात्मनिष्ठ समन्वयकारी और ऋषितुल्य व्यक्तिका केवल स्मृतिगम्य हो जाना स्मृतिके लिये सुखद नहीं है । पर विश्वकी अनिवार्य परिणतिको मानकर हम उनकी पवित्र आत्माके उन्नयनकी कल्याणमयी कामना ही कर सकते हैं ।

आचार्य श्रीतुलसी

● ● ●

[परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके महाप्रयाणके पश्चात् परमपूज्य श्रीगुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकर, सरसंघ-चालक, 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ'के तीन पत्र प्राप्त हुए हैं । तीनों पत्रोंका मुख्य अंश नीचे दिया जा रहा है । श्रीभाईजीके प्रति श्रीगुरुजीकी कैसी श्रद्धा एवं आत्मीयता रही है, पाठक उसका स्वयं अनुभव करें ।]

(१) कल रात्रिमें आकाशवाणीसे श्रद्धेय भाईजीके पार्थिव देह त्यागकर भगवच्चरणोंमें विलीन होनेका समाचार प्रसृत किया गया । यह धक्का देनेवाला वृत्त मुझे बतलाया गया । श्रीभाईजीका जीवन इतना पुनीत, राष्ट्रभक्ति, धर्मनिष्ठा और परमात्माके श्रीकृष्णरूपमें उत्कट अविचल भक्तिसे ओत-प्रोत था कि उनका इहलोकसे गमन, परम सौख्यमय चिरन्तन भगवल्लोकमें प्रवेश और श्रीभगवत्सांनिध्यमें चिरनिवासके रूपमें ही हुआ है—यह मेरी श्रद्धा है । अतः उनके लिये शोक नहीं—शोक तो हम सब जो पीछे रहे हैं, उनकी दशापर है कि हमलोगोंके सम्मुख अब वह जीता-जागता कर्म-भक्ति, योग-ज्ञान एवं माधुर्यसे परिपूर्ण आदर्श नहीं रहा ।

अब उनके जीवनका आदर्श अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करते हुए उनके धर्म-जागरणकार्यको निरन्तर आगे बढ़ानेमें अपनी-अपनी योग्यता तथा प्रवृत्तिके अनुसार लगा रहना—यही उनके प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त करनेका उचित मार्ग होगा । उनके धर्म-जागरणकार्यका साधन—श्रीगीताप्रेस एवं 'कल्याण'-प्रतिष्ठान अपने वैशिष्टयके साथ चलते-बढ़ते रहें, इस हेतु सब धर्मप्रेमियोंको—विशेषकर श्रद्धेय श्रीभाईजीके प्रति आदरभाव रखनेवालोंको दत्त-चित्ततासे सचेष्ट होना—सचेष्ट रहना शोभनीय होगा ।

मुझे विश्वास है कि यह सब होगा ।

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पवित्र स्मृतिमें शतशः वन्दन ।

× × ×

(२) श्रद्धेय भाईजीने नश्वर शरीरका त्याग कर भगवत्सांनिध्य प्राप्त किया । उनकी पावन स्मृतिमें एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थके रूपमें कुछ शब्द-सुमन अर्पण करनेका निश्चय होकर उस सम्बन्धमें मेरे पास भी पत्र आया है; पर मेरी बहुत बड़ी कठिनाई है कि जिनके सम्बन्धमें मेरे मनमें अपार श्रद्धा और प्रेम होता है, उनका वियोग होनेपर हृदयपर गहरा आघात होता है और यद्यपि मैं अपने कर्तव्य करता रहता हूँ, वह घाव रिसता ही रहता है और जब कभी उनके विषयमें कुछ सोचने-कहनेका प्रसंग उपस्थित होता है, उस घावकी वेदना असह्य हो उठती है । फिर शब्द सूझते नहीं । विचार कुण्ठित-से हो जाते हैं । मन एक अवर्णनीय व्यथासे अभिभूत हो जाता है ।

आपका पत्र आनेपर ऐसी ही असहनीय पीड़ाका फिर जागरण हुआ है। जिनके प्रेमसे, आशीर्वादसे कार्य करते समय निश्चिन्तता तथा उत्साहका अनुभव करता था, वे अब प्रत्यक्षमें दिखायी नहीं देंगे––यह सोचकर मन बेचैन हो उठा है । अशरीरी, अव्यक्तरूपसे अपना प्रोत्साहन और आशीष वे दे ही रहे हैं, यह सत्य होते हुए भी एक देहधारीके लिये इस विचारसे संतोष होना कठिन है ।

इस कारण मैं सबसे क्षमा-याचना करता हूँ । सम्भव है कि और कुछ समय बीतनेपर मनोभावोंपर इतना नियन्त्रण कर सकूंगा कि अन्तःकरणके भाव शब्दोंमें उतारकर श्रद्धेय श्रीभाईजीकी स्मृतिमें उन्हें अर्पण कर सकूंगा । आज तो भावावेग अतिप्रबल है । विचार-शब्द बिल्कुल अवरुद्ध हैं । क्या करूँ ? बार-बार क्षमा-याचना करता हूँ। सबको सश्रद्ध प्रणाम कर क्षमाकी याचना करता हूँ ।

× × ×

(३) श्रद्धेय श्रीभाईजीके सम्बन्धमें कोई लिख सकनेवाला लिखे और दीर्घकालतक लिखता ही रहे, तो भी उसे यही कहना पड़ेगा कि 'तदपि तव गुणानां...पारं न याति' । फिर मेरे-जैसे लेखनमें अनभ्यस्त और पूज्य श्रीभाईजीके स्मरणसे व्यथितचित्तताके कारण मूककी क्या अवस्था होती होगी, इसकी कल्पना आप कर सकते हैं । इसको सोचकर आप मुझे क्षमा करें ।

श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

● ● ●

श्रीभाईजीके निधनसे सनातनधर्मका एक अद्वितीय स्तम्भ गिर गया, रसोपासनाका एक सरस स्रोत सूख गया तथा भक्तोंकी रहनीका आदर्श लुप्त हो गया। उनके जानेसे धार्मिक जगत्की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति असम्भव है ।

श्रीराधाभावभावितान्तःकरण श्रीभाईजी गीतोक्त विभूतिमत्सत्त्वोंमेंसे थे । श्रीप्रह्लादजीने श्रीमद्भागवतमें कहा है––

'यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।'––जिन बड़भागी पुरुषके जीवनमें भगवद्भक्ति होती है, उनके पास देवतागण ज्ञान-वैराग्य आदि सद्गुणोंके साथ उपस्थित रहते हैं । श्रीभाईजीमें भक्तोंके पूर्ण लक्षण विद्यमान थे । 'सबके प्रिय सबके हितकारी । दुख-सुख सरिस प्रसंसा गारी ।।'––मानसोक्त लक्षण उनमें सदा देखनेको मिले ।

"सबहि मानप्रद आपु अमानी'––यह चौपाई उन्हींमें पूर्णरूपेण घटती थी। भारतके करोड़ों लोगोंकी उनपर अपार श्रद्धा थी । करोड़ों लोगोंको भगवच्चरणानुगामी बनानेके लिये महत्वपूर्ण धार्मिक पुस्तकोंका जिस अलौकिक प्रतिभाके साथ उन्होंने सम्पादन किया, वह सर्वथा अविस्मरणीय रहेगा ।

उनके सरल एवं सरस जीवनको देखनेमात्रसे भावजगत्में लोग प्रवेश कर जाते थे । श्रीराधाष्टमीका ऐतिहासिक महोत्सव जिसने देखा होगा, उसको ज्ञात ही होगा कि भाईजी कितने उच्चकोटिके महापुरुष थे । श्रीराधाष्टमीके महोत्सवका दर्शन मैंने भी गोरखपुरस्थित गीतावाटिकामें किया है। उस दिन वहाँ साधारण जीव भी आनन्दराज्यमें प्रवेश कर श्रीराधाभावका दर्शन कर लेता था ।

धार्मिक जगत्में सरस भक्ति––श्रीराधाभावका वितरण उन्होंने जिस उदारतासे किया, उसका दूसरा उदाहरण अब दुर्लभ है । गोरक्षा-अभियान-समितिकी बैठकोंमें उनसे महत्वपूर्ण परामर्श प्राप्त होता था । देशके अनेकों धार्मिक आन्दोलनोंमें उन्होंने सक्रिय सहयोग प्रदान किया । किंतु पद-प्रतिष्ठासे सर्वथा दूर रहकर वे अपनी साधनामें ही तल्लीन रहे । आज उनका स्थूलशरीर हमारे समक्ष नहीं है, किंतु उनका यशोविग्रह सदा हमारे बीच रहेगा ।

स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज
लक्ष्मण-किला, अयोध्या

● ● ●

श्रीपोद्दारजीका निधन हमारे लिये अत्यन्त ही दुःखदायी है। इस क्षतिकी पूर्ति होना असम्भव है। श्रीपोद्दारजीने संस्कृति एवं धर्मके प्रचार तथा प्रसारमें जो योगदान किया है, वह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। हम कामना करते हैं कि जो काम श्रीपोद्दारजीने प्रारम्भ किया, वह अन्ततक चलता रहे।

मुनि श्रीसुशीलकुमारजी महाराज
नयी दिल्ली

● ●

तर्कशास्त्राद्विनिष्क्रान्तं नीतिशास्त्रमिति स्थितिः।

'वस्तुस्थिति यह है कि तर्कशास्त्रसे नीतिशास्त्रका प्राकट्य हुआ है।'

——लक्ष्मीनारायणके इस वचनानुसार नीतिके प्रचारके लिये तर्कशास्त्रका प्रचार आवश्यक है। परन्तु तर्कशास्त्रमें तो 'अवच्छेदकावच्छिन्न' आदि शब्दोंकी बहुलता है, अतः वह व्यावहारिक कैसे हो सकता है? इस बातपर जब मैं विचार करने लगा तो स्वर्गीय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार महोदयद्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित मासिकपत्र 'कल्याण'का श्रीमद्भागवताङ्क मेरे लिये मार्गदर्शक हो गया। वहाँ——

भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम्।
सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीभेदलक्षणम्॥
(भा० ३। २६। ४६)

इस श्लोकमें 'सद्विशेषणम्' इस पदकी व्याख्या श्रीधराचार्यने इस प्रकार की है——'सताम् आकाशादीनां विशेषणम् अवच्छेदकत्वम् इति' (सत् अर्थात् आकाश आदिका विशेषण——अवच्छेदक होना)——इस व्याख्याके अनुसार ही हिन्दी भाषामें किया गया अनुवाद मेरे लिये महान् आनन्ददायक हुआ। केवल इतना ही नहीं, अपितु—— 'अवच्छेदकं कठिनस्पर्शवत्तया भासमानं पार्थिवं वस्तु द्रवद्रव्यात्मकं तैजसं वायवीयं नाभसादि वा वस्तु अवच्छिन्नपदार्थः।' इस प्रकार लोकोत्तर रूपसे श्रीमद्भागवतद्वारा प्रमाणित सत्य हिन्दी भाषामें उतर आया है। इसकी ओर मासिक पत्र 'कल्याण'के प्रसादसे दैवात् मेरी दृष्टि गयी। इसलिये हम नैयायिकोंपर पोद्दार महोदयका यह महान् उपकार हुआ है।

इसी प्रकार अनेक उपयोगी विशेषाङ्कोंको प्रकाशित करके पोद्दार महोदयने आस्तिक-समुदायको ऋणी बना लिया है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

पण्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़
वाराणसी

● ● ●

श्रीपोद्दारजी सदैव राष्ट्रीय भावनाओंसे भावित रहे। भारतीयताके ह्रासपर उन्हें क्षोभ था। उसके रक्षार्थ उन्होंने यावज्जीवन प्रयास किया। उनकी याद सदियोंतक बनी रहेगी।

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'
वेद-संस्थान, नयी दिल्ली

● ● ●

दिसम्बर १९३४ की बात है, सुदूरपूर्वके देशोंकी अपनी सांस्कृतिक प्रचार-यात्रासे लौटते हुए मुझे श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दारके दर्शन करने, कुछ दिनके लिये उनके यहाँ ठहरने एवं उनका सौजन्य-भरा आतिथ्य ग्रहण करनेका अवसर मिला था। उसके पश्चात्, यद्यपि मैं पुनः कभी उनसे मिल नहीं पाया, तो भी उनके उदात्त व्यक्तित्वका जो प्रभाव मुझपर पड़ा था, वह स्थिररूपसे बना रहा। इस बीचमें उन्होंने गीताप्रेस एवं 'कल्याण'

का जो अद्‌भुत संगठन और विकास सम्पन्न किया तथा उनके माध्यमसे जो प्राचीन भारतीय धर्म एवं संस्कृतिकी गहरी और चतुर्दिग्-व्यापिनी सेवा की, वह आज किसको विदित नहीं है ? उनके भक्तिभाव, बुद्धिबल एवं कार्य-कौशलकी यह अमर कहानी चिरकालपर्यन्त व्यापक मानवताके सेवार्थ अपने आपको प्रस्तुत करनेके लिये आगे बढ़नेवाले युवक-हृदयोंको उभारती तथा नया-नया उत्साह प्रदान करती रहे, यही श्रीभाईजीके प्रति मेरे प्रेम-प्रवण हृदयकी शुभ कामना है ।

आचार्य विश्वबन्धु
विश्वेश्वरानन्द संस्थान, होशियारपुर

● ● ●

श्रीभाईजी 'सत्य' एवं 'धर्म'के सच्चे तथा विशुद्ध प्रतिनिधि थे । आजके अनीश्वरवादी भौतिकताके युगमें उन-जैसा व्यक्ति मिलना कठिन है, जिन्होंने ऐसे युगमें रहकर लोगोंके समक्ष पवित्र जीवनका आदर्श प्रस्तुत किया और उन्हें वैसा ही जीवन बितानेकी शिक्षा दी । सभी धर्मप्रेमी घरोंमें उनका नाम सूक्ति-सदृश स्मरण होता है । उनके परलोकगमनसे वस्तुतः धार्मिक चेतनाके क्षेत्रमें एक महान् रिक्तता उत्पन्न हो गयी है । निष्ठा, कर्तव्यभावना, उत्तरदायित्व, मोहकता एवं साधुता उनके व्यक्तित्वकी अनुपम विशिष्टताएँ रही हैं । निश्चय ही उनके कलेवरमें भगवदीय रश्मि विद्यमान थी ।

स्वामी कृष्णानन्द
डिवाइन लाइफ सोसाइटी, ऋषिकेश

● ● ●

I have known the late Shri Hanuman Prasad Poddar through his writings in the 'Kalyan' for more than three decades and I can say that Shri Poddarji's was a life of total dedication to an uplifting and noble cause, a fine example of what a true Hindu can aspire to be. I wish the Veneration Volume all success.

HIS MAJESTY THE KING OF NEPAL.

[मैं तीन दशकोंसे भी अधिक समयसे श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारको 'कल्याण'में प्रकाशित उनके लेखोंके माध्यमसे जानता हूँ और मैं कह सकता हूँ कि श्रीपोद्दारजीका जीवन एक उत्थानकारी और महान् उद्देश्यके प्रति पूर्ण समर्पित था—एक सच्चा हिन्दू जो कुछ बननेकी आकांक्षा कर सकता है, उसका सुन्दर उदाहरण था । मैं श्रद्धा-ञ्जलि-ग्रन्थकी पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ ।

महाराजाधिराज श्रीनेपालनरेश]

● ● ●

Shri Hanumanprasad Poddar has done memorable services to the cause of Hinduism and it is but right that his services should be suitably recognised.

C. RAJAGOPALACHARI.

[श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारने हिन्दू-धर्मकी स्मरणीय सेवाएँ की हैं । यह सर्वथा उचित है कि उनकी सेवाओंको उपयुक्त ढंगसे सम्मानित किया जाय ।

श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी]

● ● ●

'कल्याण'के सम्पादक और गीताप्रेसके संचालक-प्रकाशक स्वर्गीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने अपने प्रकाशनोंके माध्यमसे भारतीय साहित्यकी, विशेषकर धार्मिक साहित्यकी मूल्यवान् सेवा की है। आजकल धर्मनिरपेक्षताके नामपर धर्म-ग्रन्थोंकी उपेक्षा करनेका रिवाज-सा अपने देशमें चल पड़ा है। सर्व-धर्म-समभावके विकासके लिये आवश्यक यह है कि हम अपने धर्मके साथ-साथ अन्य धर्मोंके साहित्यका भी सम्यक्‌रूपसे अध्ययन-मनन करें। भारतीय होनेके नाते अपनी सभ्यता और संस्कृतिका इतिहास अपने धार्मिक साहित्यके अध्ययनसे ही हम जान और समझ सकते हैं। इस दृष्टिसे यदि देखें तो गीताप्रेसने अपने धर्मग्रन्थोंको बृहत् पैमानेपर प्रकाशित और प्रचारित कर एक महत्वपूर्ण सेवा-कार्य किया है और इसका मुख्य श्रेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साधनापूर्ण समर्पित जीवन एवं व्यक्तित्वको है।

ऐसे समर्पित आत्माके प्रति हार्दिक श्रद्धाके भाव व्यक्त करते हुए मैं यह आशा रखता हूँ कि उनके उत्तराधिकारी, उनकी ही भाँति, समर्पण-बुद्धिसे सत्साहित्यके प्रकाशन-प्रचारका कार्य जारी रखेंगे और उसे अधिकाधिक जन-सुलभ बनानेका प्रयत्न करते रहेंगे।

जयप्रकाश नारायण

● ● ●

I am glad to know that the friends and admirers of the late Sri Hanumanprasadji Poddar are bringing out a commemorative volume in his honour. As founder-editor of the renowned monthly, the 'Kalyan', Shri Poddar's services to the cause of revival of our culture will be remembered for long. In making available at a nominal price religious texts with commentaries to the millions, he has rendered unique service towards popularization of our scriptures through Hindi. I hope that the good work done by him will be continued with the same zeal. This will be the best way to keep his memory alive.

V. V. GIRI.
President of India.

[मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके मित्र एवं प्रशंसकगण उनके सम्मानमें एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। सुप्रसिद्ध मासिक 'कल्याण'के संस्थापक-सम्पादकके रूपमें श्रीपोद्दारद्वारा हमारी संस्कृतिके पुनरुत्थानके निमित्त की गयी सेवाएँ दीर्घकालतक स्मरण की जायेंगी। नाम-मात्रके मूल्यपर लाखों लोगोंके लिये धार्मिक ग्रन्थोंको व्याख्यासहित उपलब्ध कराकर उन्होंने हिन्दीके माध्यमसे हमारे धर्म-ग्रन्थोंको लोकप्रिय बनानेमें अद्वितीय सेवा की है।

मुझे आशा है कि उनके सत्कार्योंका क्रम उसी उत्साहसे जारी रखा जायगा। उनकी स्मृतिको जीवित रखनेका यह सर्वोत्तम साधन होगा।

वराह व्यंकट गिरि, भारतके राष्ट्रपति]

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार-श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थके लिये सम्मिश्र भावनासे ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। श्रीपोद्दारजी आदर्श मानव थे। अपने जीवनमें उन्होंने सर्वथा परोपकार किया और दूसरोंकी भलाई चाही। आध्यात्मिक ज्ञानके प्रसार-हेतु उन्होंने जो बहुमूल्य कार्य किया, वह 'कल्याण'के पाठक भली-भाँति जानते हैं। चन्दनकी भाँति वे स्वयंको घिसकर दूसरोंको सुगन्ध देते रहे। ऐसे असाधारण मानवके अपने बीचसे उठ जानेसे दुःख होना स्वाभाविक ही है। परंतु आनन्द भी इस बातका है कि उनके किये हुए कार्योंकी सुगन्ध एवं स्मृति आज भी
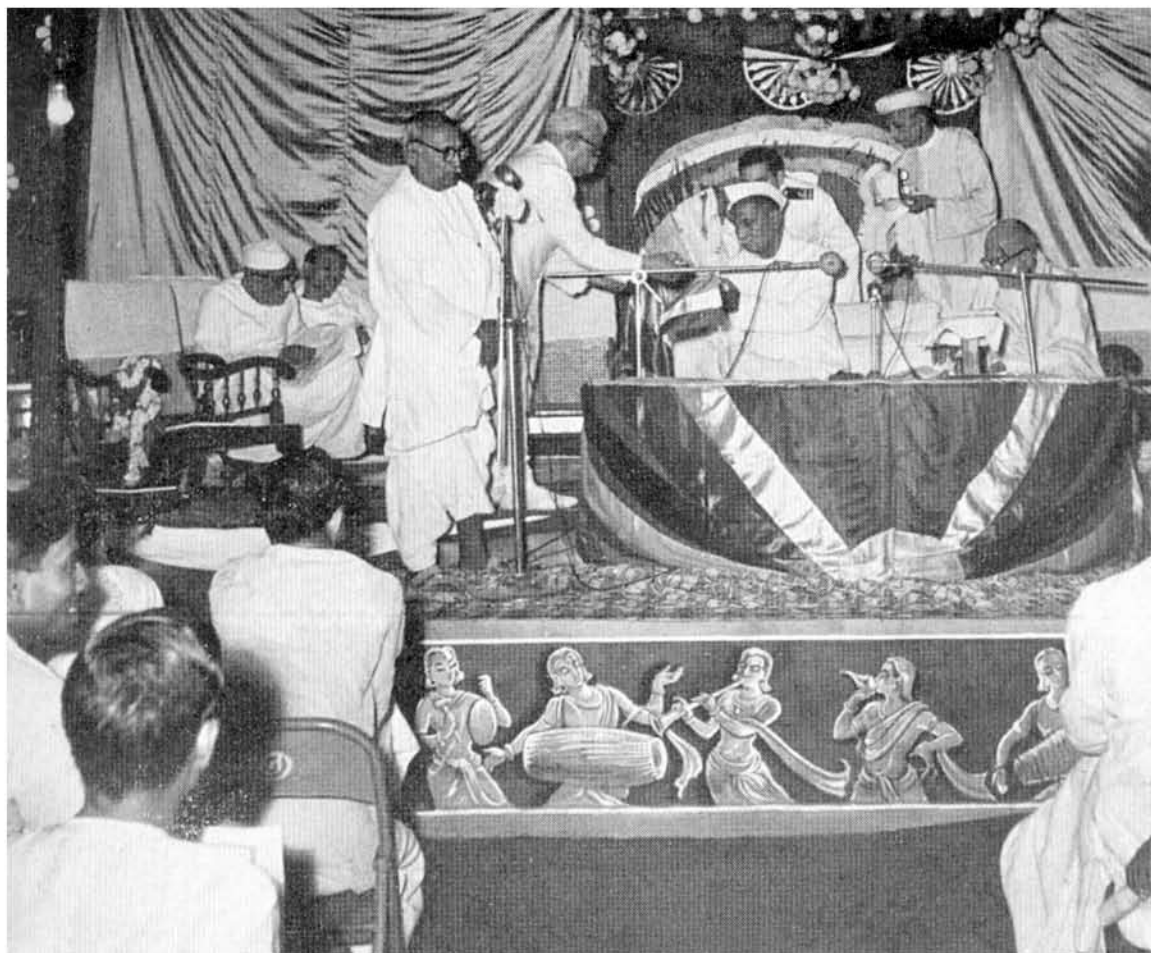
गीताप्रेस मुख्यद्वारके उद्घाटन समारोहमें राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादका स्वागत भाषण करते हुए

पं० श्रीजवाहरलाल नेहरूको गीताप्रेसके प्रकाशनोंका उपहार प्रदान करते हुए
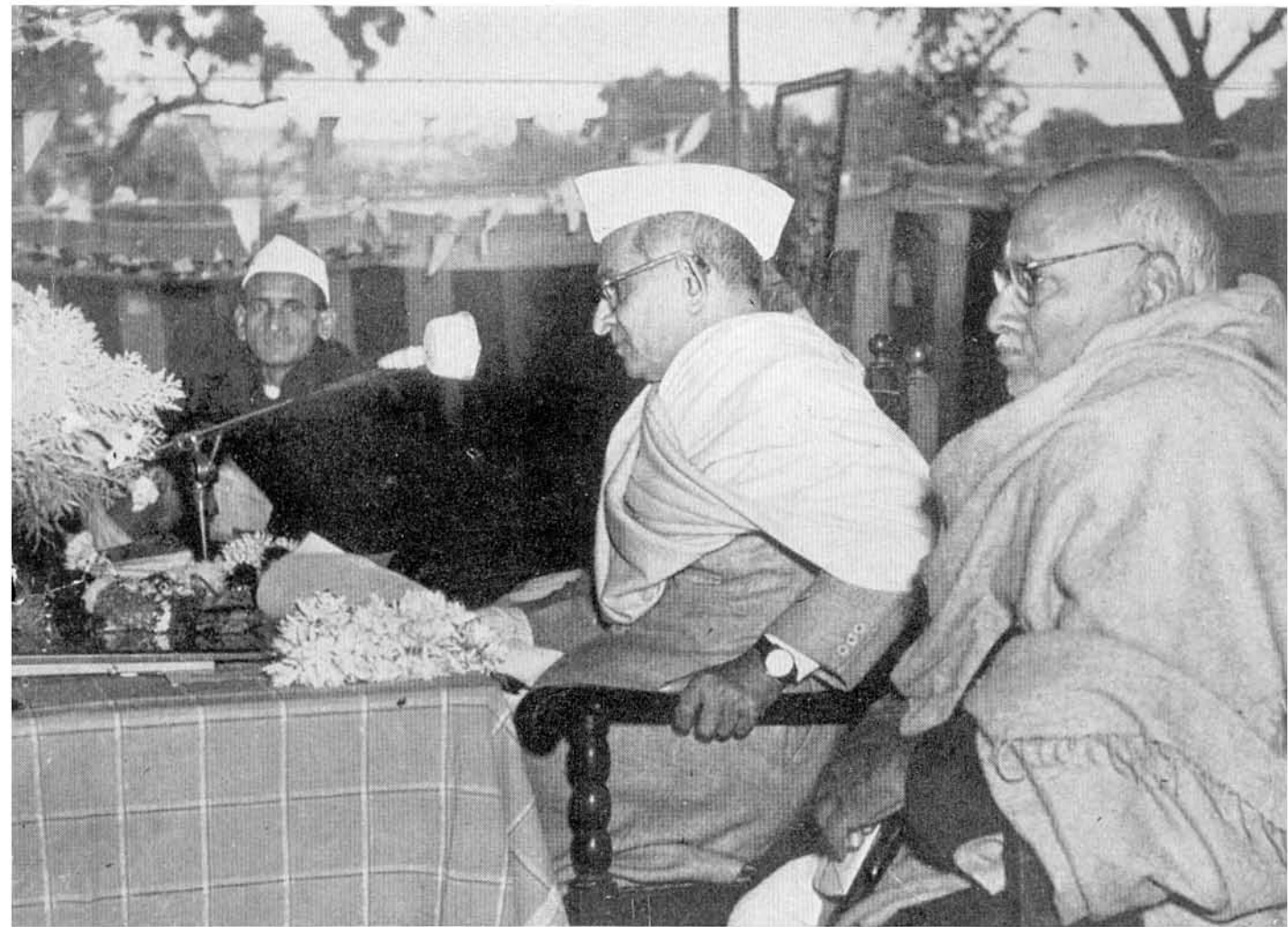
श्रीकन्हैयालाल माणेकलाल मुंशीके साथ

सहज मित्र डा० सम्पूर्णानन्दका गीतावाटिकामें उल्लासपूर्ण आतिथ्य

हमें उल्लसित करती है । इसी कारण मैंने प्रारम्भमें कहा है कि सम्मिश्र भावनासे मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ । हमारी संस्कृति जो आज भी जीवित है और फलती-फूलती है, निस्संदेह उसका श्रेय श्रीपोद्दारजी-जैसे महापुरुषोंको है ।

मैं आशा करता हूँ कि यह श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ हमें सदैव प्रेरणादायक होगा ।

गोपाल स्वरूप पाठक
उपराष्ट्रपति

• • •

Sriman Hanuman Prasad Poddar was one of the luminaries in the field of cultural and spiritual renaissance of the country. He was held in high esteem by all those who came in contact with him and by the countries who knew him through 'Kalyan' and the Gita Press. He began from scratch and built up the Press and Kalyan as integral parts of the spiritual India. His was a life of 'tapasya' dedicated to building up the Gita Press and making its publications available to the largest section of our population. The publications were priced at an incredibly low price so that even the poorest with a taste could afford. He exuberated enthusiasm and confidence despite many trials and tribulations. These were born out of the fact that his cause was noble and he was completely dedicated to it with a missionary zeal.

The great tribute that can be paid to this noble soul is to continue the work that was so dear to him.

G. S. DHILLON.
Speaker, Lok Sabha.

[श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दार देशके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पुनर्जागरणरूप गगनके एक देदीप्यमान ज्योतिःपुञ्ज थे । उनके सम्पर्कमें आनेवाले सभी लोगों एवं 'कल्याण' तथा गीताप्रेसके माध्यमसे उनसे परिचित अन्य देशोंके श्रेष्ठ सम्मानके वे पात्र थे । गीताप्रेस और 'कल्याण'को अत्यन्त सामान्य स्थितिसे प्रारम्भ करके आध्यात्मिक भारतके अविच्छेद्य अंगके रूपमें प्रतिष्ठित करनेका श्रेय पोद्दारजीको है । उनका जीवन तपस्यामय था, जो गीताप्रेसके निर्माण और उसके प्रकाशनोंको बहुजन-सुलभ बनानेके प्रति समर्पित था । रुचि होनेपर दरिद्र-से-दरिद्र व्यक्ति भी उन्हें खरीद सके, इस दृष्टिसे प्रकाशनोंका मूल्य इतना कम रखा गया कि उसपर विश्वास करना कठिन है । कठिन परीक्षाओं तथा कष्टोंके उपरान्त भी वे उत्साह और विश्वासके अटूट खजाने थे । वे गुण उनके उद्देश्यकी महानता और उसके प्रति उनके एकनिष्ठ एवं निष्काम समर्पणके सहज परिणाम थे ।

जो कार्य उन्हें इतना प्रिय था, उसे गतिमान् रखना ही उस महान् आत्माके प्रति श्रेष्ठ श्रद्धाञ्जलि है ।
जी० एस० ढिल्लों, अध्यक्ष, लोकसभा]

• • •

I am glad to know that a book is being brought out in commemoration of the yeoman services rendered by Shri Hanuman Prasad Poddarji to the community. I have great pleasure in sending my best wishes for the success of your endeavours.

H. R. GOKHALE.
Minister of Law and Justice, Government of India.

[मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा समाजके प्रति की गयी महान् सेवाओंकी स्मृतिमें एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है । आपके प्रयासकी सफलताके लिये अपनी श्रेष्ठतम शुभ कामनाएँ भेजनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है ।

एच० आर० गोखले, मन्त्री, भारत सरकार]

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्मानमें श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित करनेके आपके संकल्पसे मुझे संतोष हुआ ।

श्रीभाईजीने जिस प्रकार अपने जीवनको जाति, धर्म, समाज, देश और साहित्यकी सेवामें खपा दिया था, वह अनुकरणीय है और आपका यह प्रयास उसके अनुरूप ही है ।

श्रीभाईजीके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंमेंसे ऐसा कौन होगा, जिसपर श्रीभाईजीके व्यावहारिक और साधनात्मक जीवनकी छाप न पड़ी हो और उसने उनसे कुछ ग्रहण न किया हो ।

कृपा कर उनकी स्मृतिमें मेरे ये तुच्छ श्रद्धा-सुमन स्वीकार कीजिये ।

राजबहादुर
मन्त्री, भारत सरकार

● ● ●

It is but fitting that a volume venerating Shri Hanumanprasadji is brought out. The various ways in which he has helped the people in enlightening their minds are remarkable. His contribution to the revival of Indian glory is so great that he could truly be called another personality like Hanuman of Ramayana fame. The Gita Press at Gorakhpur has become the fountain-head of various publications—epics, Upanishads and other relevant religious literature. It is now a mighty stream of Indian culture and religion. The Gita Bhavan on the banks of the Ganga at Rishikesh is another sentinel beckoning man to God. All these institutions are being run with such devotion and efficiency that everyone who visits them gets permanently impressed.

The true tribute we could pay to Sri Hanumanprasadji is to help the continuance of these institutions.

K. HANUMANTHAIYA.
Minister of Railways, Government of India.

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी स्मृतिमें श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थका प्रकाशन सर्वथा उचित है । जनमानसको प्रबुद्ध करनेके लिये पोद्दारजीद्वारा अपनाये गये विभिन्न साधन अत्यन्त अभिनन्दनीय हैं । भारतके गौरवकी पुनः स्थापना-में उनका योगदान इतना अप्रतिम है कि उन्हें रामायणकालीन हनुमानका प्रतिरूप माना जा सकता है । गोरखपुरका गीताप्रेस विभिन्न प्रकाशनों—महाकाव्यों, उपनिषदों एवं अन्य उपयोगी धार्मिक साहित्यका उत्स बन गया है और आज तो यह भारतीय धर्म और संस्कृतिका एक शक्तिशाली स्रोत है । मनुष्यको भगवान्‌की ओर मोड़नेवाला दूसरा प्रहरी है—ऋषिकेशका गंगातटस्थ गीताभवन । ये सभी संस्थाएँ इतनी निष्ठा एवं निपुणतासे संचालित होती हैं कि वहाँ जानेवाला व्यक्ति स्थायीरूपसे प्रभावित हो जाता है ।

इन संस्थाओंको चलते रखनेमें सहायता प्रदान करना ही श्रीहनुमानप्रसादजीके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी ।

के० हनुमन्थैया, मन्त्री, भारत सरकार-]

● ● ●

Very happy to learn that you are bringing out a Veneration Volume to pay our homage to the memory of Sri Hanuman Prasadji Poddar.

Unluckily for me, I never happened to meet Sri Poddarji and whenever I came to Gorakhpur and visited Gita Press, either he was ill or he was away and, therefore, I had no chance of meeting him. But I am quite familiar with his work. He was greatly responsible for popularizing religious literature among the younger men, and the Gita Press and the KALYAN magazine are the legacy left to us by him—the eloquent monuments of his vision and devotion to our ancient DHARMA. The Gita Press is a household word in all the Hindu families and I do want the Gita Press and the KALYAN to maintain that lofty idealism set by Poddarji.

I pay my homage to the memory of the great Sant who left something solid and spiritual for us to feel proud of. May his memory ever inspire us.

B. GOPALA REDDI.
GOVERNOR, U. P.

[यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी स्मृतिमें श्रद्धा समर्पित करनेके लिये आप एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं ।

मेरा दुर्भाग्य कि मैं श्रीपोद्दारजीसे कभी नहीं मिल पाया और जब कभी मैं गोरखपुर पहुँचा और गीताप्रेस देखने गया, तब या तो वे अस्वस्थ थे या कहीं बाहर गये हुए । अतः उनसे भेंटका कोई अवसर मुझे नहीं मिला । परंतु मैं उनके कार्यसे पूर्णतया परिचित हूँ । नवयुवकोंमें धार्मिक साहित्यको लोकप्रिय बनानेमें उनका विशेष योगदान रहा है । गीताप्रेस तथा 'कल्याण'को वे हमारे लिये दायभागके रूपमें छोड़ गये हैं और ये दोनों उनकी सूझ और हमारे प्राचीन धर्मके प्रति उनकी निष्ठाके बोलते प्रतीक हैं । सभी हिन्दू परिवारोंमें गीताप्रेस एक सबके मुँहपर रहनेवाला शब्द बन गया है । मेरी एकान्त अभिलाषा है कि श्रीपोद्दारजीद्वारा स्थापित उच्चादर्शको गीताप्रेस एवं 'कल्याण' सदैव बनाया रखें ।

मैं उन महान् संतकी स्मृतिमें अपनी श्रद्धा समर्पित करता हूँ, जो हमलोगोंके लिये ऐसी ठोस एवं आध्यात्मिक सम्पदा छोड़ गये हैं, जिसके लिये हम गौरवका अनुभव करते हैं । श्रीपोद्दारजीकी स्मृति हमें सदा प्रेरणा प्रदान करती रहे ।

बी० गोपाल रेड्डी, राज्यपाल, उत्तरप्रदेश]

● ● ●

पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका पार्थिव देह पंचतत्वोंमें विलीन हुआ है । उनका सुयश अजर-अमर है । भारतीय संस्कृतिके वे महान् दीप-स्तम्भ थे । आध्यात्मिक विचार और संस्कारके प्रचार-प्रसारमें उनका योगदान चिर-स्मरणीय रहेगा । गीताप्रेस और 'कल्याण' भविष्यमें भी अखिल विश्वका कल्याण करनेमें समर्थ रहें, यही प्रार्थना है ।

श्रीमन्नारायण
राज्यपाल, गुजरात

● ● ●

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप भाईजीके सम्मानमें एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं । अपने सुदीर्घ जीवनकालमें भाईजीने मानव-मात्रकी अनेक प्रकारसे सेवा की और भारतीय संत-परम्पराका

सर्वोत्कृष्ट प्रसाद सर्वजनके लिये उपलब्ध किया। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित उनके अनेक ग्रन्थोंमें हमें इस अति प्राचीन देशके ऋषियों और महात्माओंका जो ज्ञानामृत पान करनेको मिला है, वह स्पृहणीय है । उनका लोकसंग्रही व्यक्तित्व हम सभीको निरन्तर प्रेरणा देता रहता है। सम्पूर्ण मानवजाति उनकी सेवाओंके लिये उनका स्मरण सदैव कृतज्ञतापूर्वक करती रहेगी। ऐसे महापुरुषकी कीर्तिको काल भी शेष नहीं कर सकता।

मैं आपके इस प्रयासकी सफलताकी कामना करता हूँ।

सत्यनारायणसिंह
राज्यपाल, मध्यप्रदेश

● ● ●

Shri Hanumanprasadji Poddar was one of the truly great men of Bharat. He believed in doing his duties without the least desire for material reward or fame. He was a true Karmayogi.

As long as 'Kalyan' and Gita Press continue to serve the nation, Shri Poddarji will be remembered in every State, in every town, and in every nook and corner of India.

The fact that even in this age India can produce a great man like him is a tribute to the strength and richness of our civilisation.

July 17, 1971

SHANTI S. DHAVAN.
Governor, West Bengal.

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतके वास्तविक महान् पुरुषोंमेंसे थे । भौतिक प्रतिदान अथवा ख्यातिकी रंचमात्र भी कामना न रखते हुए अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें ही उनकी आस्था थी। वे एक सच्चे कर्मयोगी थे।

जबतक 'कल्याण' और गीताप्रेस राष्ट्रकी सेवा करते रहेंगे, भारतके प्रत्येक प्रदेश, प्रत्येक नगर और प्रत्येक कोनेमें श्रीपोद्दारजी स्मरण किये जायेंगे।

यह तथ्य कि इस युगमें भी भारत उन-जैसे महापुरुषको जन्म दे सकता है, हमारी संस्कृतिकी सामर्थ्य एवं सम्पन्नताका परिचायक है ।

शान्तिस्वरूप धवन, राज्यपाल, पश्चिम-बंगाल]

जुलाई १७, १९७१

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका नाम उन महापुरुषोंमें लिया जायगा, जो भारतीय संस्कृति और सभ्यताके पोषक और प्रचारक रहे हैं । जिस तरह उनकी संस्कृति और साधनामें रुचि थी, उसी तरह वे स्वभावसे भी मृदुल थे । 'कल्याण'के माध्यमसे वे जनजीवनको अपनी विचारधारासे प्लावित करते रहे । पोद्दारजीका भारतीय दर्शन और सभ्यताके प्रति जो प्रेम था, उसका गीताप्रेस एक जीता-जागता स्मारक बना रहेगा। मैं इस विचारके साथ उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

देवकान्त बरुवा
राज्यपाल, बिहार

● ● ●

श्रीपोद्दारजीने धार्मिक चेतना एवं समाज-सेवाके क्षेत्रमें मूल्यवान् कार्य किया । 'कल्याण' तथा गीताप्रेस, गोरखपुरके माध्यमसे उन्होंने भारतीय जनताकी जो सेवाएँ की हैं, उनके लिये वे चिरस्मरणीय रहेंगे । भारतकी धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक धरोहरके प्रसार एवं व्याख्याके रूपमें उनके द्वारा किया गया कार्य आगे भी चलता रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

मोहनलाल सुखाड़िया

२ अप्रैल, १९७१ मुख्य मन्त्री, राजस्थान

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)की पुण्य स्मृतिमें संस्थानकी ओरसे श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिये हम बधाई देते हैं ।

गीताप्रेसके संचालन और 'कल्याण'के प्रस्थापन तथा प्रकाशनने पोद्दारजीको अमर बना दिया है । राष्ट्र-भाषाकी जो भी समृद्धि उनके द्वारा हुई, उसके लिये सारा देश युग-युगतक उनका आभारी रहेगा । हिन्दीके साहित्य-भण्डारको जो अनमोल रत्न उन्होंने 'कल्याण'के द्वारा प्रदान किये हैं, वे समस्त देश और जगत्‌के लिये चिर-कल्याणरूप तथा उसके वर्तमान तथा भावी जीवनके लिये मङ्गलमय हो गये हैं । उनके समान निःस्पृह धर्मसेवी, समाजकी सेवा करनेवाला और सबसे बढ़कर आध्यात्मिक साधक कहाँ मिल सकेगा ।

उनके पार्थिव शरीरके उठ जानेसे अपूरणीय क्षति हुई है, पर वे अपने त्यागमय जीवनसे जो हमें दे गये, वह हम सबके श्रेय और प्रेयका संवर्द्धन करता रहेगा ।

कमलापति त्रिपाठी

मुख्य मन्त्री, उत्तरप्रदेश

● ● ●

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'कल्याण'के संस्थापक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारकी पुण्य स्मृतिमें एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित करनेका आयोजन किया गया है ।

श्रीपोद्दारजी धार्मिक विचारोंके व्यक्ति थे, जिन्होंने जीवनभर समाज-सेवा एवं देश-सेवाका महान् कार्य सहज एवं शान्त मनसे किया । आपने 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके अन्य प्रकाशनोंके माध्यमसे भारतीय संस्कृति, देश एवं समाजकी उल्लेखनीय सेवाएँ की हैं ।

मैं श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थकी सफलताकी कामना करता हूँ ।

बंसीलाल

मुख्य मन्त्री, हरियाणा

● ● ●

Shri Hanuman Prasadji was a great asset to our country. His services towards his motherland will be remembered always. We are proud that he hailed from Bikaner.

Maharaja and Maharani Bikaner.

[श्रीहनुमानप्रसादजी हमारे देशकी एक अमूल्य निधि थे । मातृभूमिके प्रति उनकी सेवाओंको सदा स्मरण किया जायगा । हमलोगोंको गर्व है कि वे बीकानेर अंचलके थे ।

बीकानेरके महाराजा श्रीकर्णीसिंहजी एवं महारानी]

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके निधनसे हिन्दू-जाति और सनातन-धर्मावलम्बियोंने अपना एक अदम्य उत्साही संरक्षक खो दिया है । गीताप्रेस और 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होंने नैतिक अभ्युत्थान और सनातनधर्मके प्रचार-प्रसारका जो महत्कार्य किया, वह उनके यशःशरीरको सदैव अक्षुण्ण रखेगा । पोद्दारजी एक महान् भक्त, धर्म-पालक और सदाचारके प्रतिष्ठापक थे । दीन-दुःखियोंके प्रति उनके मनमें सदैव दया रहती थी । 'कल्याण' और गीताप्रेसके विभिन्न प्रकाशनोंकी देश-विदेशमें जो इतनी लोकप्रियता बढ़ी, वह उन्हींके अध्यवसायका फल है ।

विभूतिनारायण सिंह, काशीनरेश

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके परलोक-गमनसे हमें हार्दिक दुःख हुआ है । वे हरिभक्त, धर्मनिष्ठ, परोपकारी एवं अत्यन्त सज्जन पुरुष थे । आरम्भसे ही उन्होंने धर्मपरायणताका लक्ष्य रखते हुए 'कल्याण' पत्रका सुचारु रूपसे संचालन किया, हिन्दूधर्मका जनहितमें प्रचार किया तथा अपनी देख-रेखमें गीताप्रेससे धार्मिक ग्रन्थोंका प्रकाशन कर धर्मके तत्वको घर-घर पहुँचाया । उनका धर्म-सेवाका महान् कार्य सदा स्मरणीय रहेगा ।

सीनियर महारानी
करौली (राजस्थान)

● ● ●

श्रीपोद्दारजी चले गये । इतना लोकोपकार जो वे करते थे, उसका क्या होगा ? सत्संग तो निर्जीव हो गया । संसार पापके गड्ढेमें डूबता जा रहा है । उससे निकालनेके प्रयत्न करनेवाले तो वे ही थे । अब कोई नहीं है ।

श्रीमनोहर कुमारी
कुँवरानी सीतामऊ राज्य (म० प्रदेश)

● ● ●

Shri Hanumanprasadji Poddar was a person who believed in and lived religion in its true sense. The institutions of the Gita Press and the religious monthly 'Kalyan' are the results of his dedication. The literature that he has produced in the Press is of such great value and importance that the future generations in this country, who may have any regard for real religion, will learn a lot from it and will be greatly benefited. He dedicated his whole life to put before the society our great cultural heritage in order that the country is built up again on sound foundations of our culture and that it reaches a height greater than it had reached in the hoary past.

The different editions of the Gita, the Ramayana and the Great Upanishads, which have been published in millions and in the form of cheap and nice books, will be the best memorial of Sri Hanuman Prasadji for centuries to come. They are living memorials of his love for the Vedic religion, our ancient culture and the great future of this country.

I am very happy to learn that a Veneration Volume is being issued to pay homage to the great services that this noble son of India has rendered to the country. No country can rise to greatness, strength and lasting prosperity, materially and

spiritually, without a sound base of religion guiding the human mind. This has been very effectively supplied through the Gita Press and will, I am sure, continue to be supplied in future.

MORARJI DESAI.

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार वह व्यक्ति थे, जिनकी धर्ममें सच्ची आस्था थी और जिन्होंने सच्चे अर्थमें धर्ममय जीवन बिताया। गीताप्रेस और धार्मिक मासिक 'कल्याण'-जैसी संस्थाएँ उनके समर्पित जीवनके परिणाम हैं। उन्होंने गीताप्रेससे जो साहित्य प्रकाशित किया है, वह इतना बहुमूल्य तथा महत्वपूर्ण है कि इस देशकी वे भावी पीढ़ियाँ, जिनके मनमें सच्चे धर्मके प्रति कुछ भी सम्मान होगा, इससे बहुत कुछ सीखेंगी और प्रचुर लाभ उठायेंगी। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन हमारी महान् सांस्कृतिक परम्पराको समाजके समक्ष प्रस्तुत करनेमें समर्पित कर दिया, जिससे कि हमारे राष्ट्रका पुनर्निर्माण हमारी संस्कृतिकी सुदृढ़ नींवपर हो सके और वह अत्यन्त प्राचीनकालमें प्राप्त गौरवसे भी अधिक गौरव प्राप्त करनेमें समर्थ हो।

सस्ती तथा सुन्दर पुस्तकोंके रूपमें लाखों-लाखोंकी संख्यामें प्रकाशित गीता, रामायण तथा महान् उपनिषदोंके विभिन्न संस्करण शताब्दियोंतक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सर्वोत्तम स्मारक बने रहेंगे। वैदिक धर्म, हमारी प्राचीन संस्कृति एवं इस देशके महान् भविष्यके प्रति उनके प्रेमके ये जीवित स्मारक हैं।

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि भारतके इस महान् सपूतके द्वारा देशके हितमें की गयी महान् सेवाओंके प्रति श्रद्धा समर्पित करनेके लिये एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है। मानव-मस्तिष्कके मार्ग-प्रदर्शक धर्मके सुदृढ़ आधारके बिना कोई भी देश भौतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिसे महानता, शक्ति तथा स्थायी समृद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। गीताप्रेसने इसकी प्रभावशाली ढंगसे पूर्ति की है और मुझे विश्वास है कि भविष्यमें भी इसकी पूर्ति होती रहेगी।

मोरारजी देसाई]

● ● ●

Sri Hanuman Prasad Poddarji is one of the greatest sons of India in recent times. Though we attained freedom from foreign yoke, sufficient efforts have not yet been made to re-establish our culture, which is based on simplicity, service and sacrifice, character, conduct and spiritualism. Neither our religion nor philosophy nor even morality is taught in the schools and colleges and the idea of a secular state has been misinterpreted and the exclusion of these subjects from the curricula in the educational institutions is the result. Our children are being brought up in a materialistic civilization. All education is directed to one purpose, *i. e.*, of giving a means of living to young men. All science is directed towards increasing creature comforts of a human being. We are in a conflict of civilizations. The western materialistic civilization is fast overpowering us and has shaken our spiritualistic culture to its foundation. The laws of the jungle once again are being adopted by human beings. Violence, struggle for existence, survival of the fittest, the strong oppressing the weak have become the order of the day. Though we won freedom from the mighty British empire, basing our struggle on truth and non-violence and spiritual force, we are using violence against one another for the cause of domestic peace internally, and externally to maintain our freedom. Faith in the

effectiveness of spiritual force has almost disappeared and faith in armaments and brute force has taken its place. Oneness of humanity is being talked of; but in practice, this has been thrown to the winds. The world is now divided into compartments and domination and exploitation are the ideals before the big powers.

In this world of today, Sri Poddar has rendered a very valuable service through the Gita Press by disseminating our religious and philosophical ideals inculcating the idea of oneness in the universe. According to the Gita, the universe is one and that is none other than God. The true spirit of Hinduism is to see God in the universe and to worship God by service to his creatures in a spirit of detachment. The idea of service has now receded to the background and self has taken its place. His monthly journal 'Kalyan' has reached almost every home in Northern India and it is both instructive and interesting. Books that he has been publishing, though really costly, have been made available at a nominal price. It is one's fault if he does not get these books and read them to his advantage. If in Northern India, there is spiritualism yet, amongst the masses, it is largely due to the literature and religious books that the Gita Press has been publishing under the guidance and supervision of Sri Hanuman Prasad Poddar.

I had been in correspondence with him and appreciating his work for over 20 years. I came into more intimate contact with him when about 5 years ago we founded the Chaturdham Veda Bhawan Trust, of which Sri Biswanath Das is the Secretary and Sri Poddar agreed to be the Joint Secretary. They made me its titular President. Sri Poddar practised what he preached. I found in him a highly religious and pious personality. His one aim had been to revive our culture in our land. It is now afflicted by disorder all relating to the acquisition of property and wealth. Once again we have to restore peace in our land. This can be achieved only through the revival of our culture, which substitutes service for domination and giving charity for exploitation. In Sri Poddar there was a visible growth of both these spiritual practices. Gandhiji won freedom for our land and wanted to establish Rama-Rajya by his constructive approach. He was himself a great devotee of God. That work has been continued by Sri Poddarji. He spent his last days in meditation. With him we are losing one of our most religious and pious persons and selfless workers for the cause of our religion, philosophy and culture. But I am sure that his soul has found an abiding place in God.

I trust and hope that the activities of the Gita Press will be continued in the same spirit in which Sri Poddar worked it and it will carry on propaganda for our religion, our spiritualism and our culture, and make all our people united.

M. ANANTHASAYANAM AYYANGAR.
Ex.–Governor.

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार आधुनिक भारतकी महत्तम विभूतियोंमें हैं। हमने विदेशी दासतासे मुक्ति प्राप्त की, किंतु हमारी संस्कृतिकी पुनःस्थापनाके हेतु पर्याप्त प्रयत्न नहीं किये गये, जिसके मूल आधार सादगी, सेवा, त्याग, सदाचार एवं आध्यात्मिकता हैं। विद्यालयों और कालिजोंमें न तो धर्मकी, न दर्शनकी और न सदाचारकी ही शिक्षा दी जाती है। धर्मनिरपेक्ष राज्यका गलत अर्थ लगा लिया गया है, जिसके फलस्वरूप शिक्षण-संस्थाओंके पाठ्यक्रमोंसे इन विषयोंको अलग रखा गया है। हमारे बच्चे भौतिक सभ्यतामें पल रहे हैं। सारी शिक्षा एक ही उद्देश्यकी ओर प्रेरित है और वह है—नवयुवकोंको जीवन-निर्वाहका साधन सुलभ करना। सम्पूर्ण विज्ञानका विनियोग मनुष्यके शारीरिक सुख-साधनोंको बढ़ानेमें हो रहा है। हम दो विरोधी सभ्यताओंके संघर्षसे घिरे हुए हैं। पश्चिमी जडवादी सभ्यता हमको तेजीसे अभिभूत करती जा रही है और इसने हमारी आध्यात्मिक संस्कृतिकी नींवतक हिला दिया है। मनुष्य एक बार पुनः 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'के सिद्धान्तको अपना रहा है। हिंसा, जीवन-संघर्ष, मत्स्य-न्याय, बलवान्द्वारा दुर्बलका पीड़न दैनिक व्यवहारके अङ्ग बन गये हैं। यद्यपि सत्य, अहिंसा तथा आध्यात्मिक शक्तिको अपने संघर्षका आधार बनाकर हमने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यसे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की है, हम देशके भीतर घरेलू शान्ति बनाये रखनेके लिये तथा बाह्य आक्रमणसे अपनी स्वतन्त्रताको बचानेके हेतु एक दूसरेके विरुद्ध हिंसाका उपयोग कर रहे हैं। आध्यात्मिक शक्तिकी क्षमतापर हमारी आस्था प्रायः लुप्त हो चुकी है तथा शस्त्रास्त्रों एवं पाशविक बलमें हमारी आस्था हो गयी है। चर्चा तो की जाती है मानवमात्रकी एकताकी, परंतु व्यवहारमें इसका परित्याग कर दिया गया है। संसार आजकल गुटोंमें बँट गया है तथा आधिपत्य एवं शोषण बड़े राष्ट्रोंके आदर्श हो गये हैं।

आधुनिक जगत्में गीताप्रेसके माध्यमसे विश्वमें एकताकी भावना जाग्रत् करनेवाले हमारे धार्मिक एवं दार्शनिक आदर्शोंका प्रचार कर श्रीपोद्दारने बहुमूल्य सेवा की है। गीताके अनुसार विश्व एक है और वह भगवान्से भिन्न कुछ नहीं है। हिंदूधर्मका वास्तविक ध्येय है विश्वमें भगवद्दर्शन करना और अनासक्त भावसे जीवमात्रकी सेवाके द्वारा भगवान्की आराधना करना। सेवाकी भावना अब पीछे हट गयी है और इसका स्थान 'स्व'की भावनाने ग्रहण कर लिया है। उनका मासिक पत्र 'कल्याण' उत्तर भारतके प्रायः प्रत्येक घरमें पहुँच चुका है और यह शिक्षाप्रद तथा रुचिकर दोनों ही है। उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तकें, वास्तवमें बहुमूल्य होने पर भी, नाममात्रके मूल्यपर सुलभ कर दी गयी हैं। यदि कोई व्यक्ति इन्हें प्राप्त नहीं करता और पढ़कर इनसे लाभ नहीं उठाता तो दोष उसीका है। यदि उत्तर भारतकी जनतामें अभीतक आध्यात्मिकता बनी हुई है, तो यह अधिकांश श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके निर्देशन एवं देखरेखके अन्तर्गत गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्यके कारण है।

मेरा २० वर्षोंसे उनके साथ पत्र-व्यवहार रहा है और मैं उनके कार्योंका प्रशंसक रहा हूँ। मैं उनके निकट सम्पर्कमें लगभग ५ वर्ष पूर्व आया, जब हमलोगोंने 'चतुर्धाम वेद-भवन न्यास'की स्थापना की, जिसके मन्त्री श्रीविश्वनाथदास हैं और श्रीपोद्दारने संयुक्त मन्त्री बनना स्वीकार किया। उन लोगोंने मुझे इसका अध्यक्ष बना दिया। श्रीपोद्दार जो कुछ कहते थे, उसके अनुसार आचरण भी करते थे। मैंने उन्हें उच्चकोटिके धार्मिक एवं पुण्यात्मा पुरुषके रूपमें पाया। उनका एकमात्र उद्देश्य अपने देशमें अपनी संस्कृतिको पुनरुज्जीवित करना रहा है। यह देश इस समय धन-सम्पत्तिकी लालसासे होनेवाली अव्यवस्थाका शिकार हो रहा है। एक बार पुनः हमें अपने देशमें शान्ति स्थापित करनी है। यह हमारी संस्कृतिके पुनरुद्धारसे ही सम्भव है, जो अधिकारके स्थानपर सेवा तथा लूट-खसोटके स्थानपर दानशीलता सिखाती है। श्रीपोद्दारमें आध्यात्मिक आचरणके दोनों पक्ष अत्यन्त विकसित अवस्थामें लक्ष्य किये जा सकते थे। गांधीजीने हमारे राष्ट्रके लिये स्वतन्त्रता प्राप्त की और वे अपनी रचनात्मक प्रणालीद्वारा 'रामराज्य' स्थापित करना चाहते थे। वे स्वयं भगवान्के एक बड़े भक्त थे। श्रीपोद्दारजीने उस कार्यको आगे बढ़ाया। उन्होंने अपना अन्तिम समय ध्यानमें बिताया। उनके परलोकगमनसे हमने एक अत्यन्त धार्मिक एवं पुण्यात्मा पुरुष तथा अपने धर्म, दर्शन तथा संस्कृतिका एक निःस्वार्थ सेवक खो दिया है। परंतु मुझे विश्वास है कि उनकी आत्मा भगवान्में नित्यलीन हो गयी है।

मुझे आशा एवं विश्वास है कि गीताप्रेसका सेवाकार्य उसी भावसे चलता रहेगा, जिस भावसे श्रीपोद्दारजीने उसका संचालन किया था तथा उसके द्वारा हमारे धर्म, अध्यात्म और संस्कृतिका प्रचार जारी रहेगा और हमारी राष्ट्रीय एकताको बल मिलेगा।

एम्० अनन्तशयनम् अय्यंगार
भूतपूर्व राज्यपाल]

● ● ●

अपने सम्मानित मित्र श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके देहावसानसे मार्मिक दुःख हुआ। उनके जानेसे देश, साहित्य, समाजकी बड़ी ही क्षति हुई है। एक अपूर्व विभूति हमारे बीचसे उठ गयी। उनके जैसे देशभक्त तथा धर्मपरायण सज्जनका आजके संसारमें मिलना असम्भव है। उन्होंने कितना काम किया, कितनोंको शिक्षा दी, इसका हिसाब लगाना कठिन है। ईश्वरसे प्रार्थना है—उनका सुन्दर कार्य सुचारुरूपसे चलता रहे।

२३ मार्च, १९७१

श्री श्रीप्रकाश
भूतपूर्व राज्यपाल

● ● ●

Possibly 'Gitanka' in Hindi long ago was the first voluminous edition in the series of several 'Ankas' which Sri Hanuman Prasadji started. I remember his writing to me not merely to send an article but to give him some names from Karnataka, competent enough to write on the great theme 'Gita.' I sent him three or four names and one or two articles.

This effort of Sri Poddar was at once indicative of his approach to the Gita as the most important and universal text which could attract the attention of all Indians, and of his attempt to invite Indians from different regions to write on the 'Gita'.

It is needless to say that 'Gitanka' was a grand success and led to several other 'Ankas' in the same series. Most of them are rich mines of good articles written by eminent men and full of illustrations, coloured and other. The printing has always been good and the types used bold enough to be read even by neo-literates.

Another important occasion I remember is about an exhibition of the editions and commentaries on the Gita in several languages. I remember to have counted about 550 or so; that was again a novel idea of Sri Poddarji.

'Kalyan' in Hindi has been always a very popular devotional monthly, with a few illustrations thrown in. The 'Kalyana-Kalpataru', which is in English, is as popular among the English-knowing public.

The most outstanding and monumental work of Shriman Poddarji is, however, the expansion and stabilization of a huge organization, with the Gita Press as the nucleus and the printing and publication of the Gita as the basic activity. Of course, when

compared to the Bible Society or its ramifications, and the translation of the Bible into 125 languages, and the annual sale of the Bible to the tune of ten million, this work seems small, when we take into consideration the fact that the Gita is the Bible of the Hindus, numbering 450 million.

Even to achieve what late Poddarji did, he had to undergo great stresses and strains. This shows that there is no dearth of effort on the part of devoted and dedicated workers, but there is something wanting in the mental make-up of the people. One wishes that the newer generation of Hindus would appreciate the efforts already made and have the ambition of seeing that the Gita in respective languages becomes a prized and necessary possession of everyone, not only in India but even abroad. The depth as well as simplicity of the Gita, its profoundity as well as its universality, its appeal to the heart as well as to the head, justifies such an attempt. Sri Poddar has shown the way and the best and the highest tribute to him would be to continue and expand the line of action taken by him so that the message of the Gita reaches every human heart and head, and enlightens men and women everywhere.

R. R. DIWAKAR.
Ex-Governor.

[श्रीहनुमानप्रसादजीद्वारा चलायी गयी नाना विशेषाङ्कोंकी परम्परामें बहुत दिन पूर्व प्रकाशित 'गीताङ्क' सम्भवतः सबसे पहला सुविशाल अङ्क था, जिसमें, मुझे स्मरण है कि उन्होंने मुझे केवल एक लेख भेजनेके लिये ही नहीं लिखा, अपितु 'गीता'-जैसे महान् विषयपर पर्याप्त क्षमतापूर्वक लिख सकनेवाले कर्नाटक-क्षेत्रके कुछ व्यक्तियोंके नाम भी माँगे थे। मैंने उन्हें तीन या चार नाम तथा एक या दो लेख भेजे थे।

श्रीपोद्दारके इस प्रयाससे दो बातें स्पष्ट हुईं—एक तो यह कि वे गीताको एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सार्वभौम ग्रन्थ मानते थे, जिसकी ओर सभी भारतवासियोंका आकर्षण सम्भव है और दूसरी बात यह कि उन्होंने इसके द्वारा गीतापर अपने विचार प्रकट करनेके लिये भारतके विभिन्न क्षेत्रोंके विद्वानोंको आमन्त्रित किया।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि 'गीताङ्क'को भव्य सफलता मिली तथा उसके अनुसरणमें उसी शृङ्खलामें अनेक अन्य अङ्क भी प्रकाशित हुए। उनमेंसे अधिकांश सुविख्यात व्यक्तियोंद्वारा लिखित अच्छे लेखोंकी बहुमूल्य खान हैं और रंगीन तथा अन्य चित्रोंसे परिपूर्ण हैं।

छपाई सदैव उत्कृष्ट रही है तथा उपयोगमें लाये गये टाइप पर्याप्त बड़े, जिन्हें नव-शिक्षितजन भी पढ़ सकें।

दूसरा महत्वपूर्ण अवसर जो मुझे स्मरण है, वह है—गीताके विभिन्न भाषाओंमें प्रकाशित संस्करणों एवं टीकाओंकी प्रदर्शनी। मुझे याद है कि मेरी गणनाके अनुसार उनकी कुल संख्या ५५० या उसके लगभग थी। श्रीपोद्दारजीकी यह दूसरी नयी सूझ थी।

कुछ एक चित्रोंसे युक्त हिंदी 'कल्याण' सदैव एक अत्यन्त लोकप्रिय भक्तिप्रधान सचित्र मासिक पत्र रहा है। आंग्ल भाषामें प्रकाशित 'कल्याण-कल्पतरु' अंग्रेजी जाननेवाले लोगोंमें समानरूपसे जनप्रिय है।

श्रीमान् पोद्दारजीका सर्वाधिक विशिष्ट एवं स्मरणीय कार्य एक महान् संगठनका विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण है, जिसका केन्द्रस्थल गीताप्रेस तथा मुख्य कार्य गीताका मुद्रण एवं प्रकाशन है। निस्संदेह बाइबल-सोसाइटी अथवा इसकी शाखाओं और १२५ भाषाओंमें बाइबलके अनुवाद तथा एक करोड़की संख्यामें बाइबलकी वार्षिक बिक्रीकी तुलनामें यह कार्य अल्प-सा प्रतीत होता है, विशेषतः जब हम इस बातपर विचार करते हैं कि गीता ४५ करोड़ हिंदुओंकी बाइबल है।

फिर भी श्रीपोद्दारजीने जो कार्य किया, उसीको सम्पन्न करनेके लिये उन्हें एड़ीसे चोटीतकका पसीना एक करना पड़ा। इससे यह ज्ञात होता है कि निष्ठावान् तथा समर्पित-जीवन कार्यकर्त्ताओंके प्रयासकी कमी नहीं है, परंतु जनताके मानसिक गठनमें किसी तत्व-विशेषका अभाव है। हमारी यही आकांक्षा है कि नयी पीढ़ीके हिंदू पूर्वकृत प्रयत्नोंका आदर करें और इस बातकी महत्वपूर्ण अभिलाषा करें कि विभिन्न भाषाओंमें गीताकी पुस्तक प्रत्येक भारतीयके ही नहीं, अपितु बाहरके लोगोंके भी हाथमें एक बहुमूल्य और आवश्यक सम्पत्तिके रूपमें पहुँच जाय। गीताकी गम्भीरता और सुगमता, उसकी गहनता और सार्वभौमता तथा मानवीय मस्तिष्क एवं हृदयकी आवश्यकताओंकी उसके द्वारा जो पूर्ति हो रही है—इन सब बातोंको देखते हुए इस दिशामें हमारा प्रयत्न उचित ही होगा। श्रीपोद्दारजीने इस दिशामें हमारा मार्ग-दर्शन किया है और उनके प्रति सर्वोत्तम तथा सबसे ऊँची श्रद्धाञ्जलि यही होगी कि उनके द्वारा चलायी गयी कार्य-पद्धतिको चालू रखा जाय और उसका विस्तार किया जाय, जिससे गीताका संदेश प्रत्येक मानवीय हृदय तथा मस्तिष्कतक पहुँच सके और सभी देशोंके नर-नारियोंको उसके द्वारा प्रकाश मिल सके।

श्री आर० आर० दिवाकर
भूतपूर्व राज्यपाल]

● ● ●

I am happy that I am called upon to join the offering of homage to the late Sri Hanuman Prasadji Poddar, the founder-editor of 'Kalyan', Gita Press, A philosopher and thinker, he was a person who knew clearly where the interest of the Indian Society lay. I can recapitulate two interesting meetings. Instinctively a business man, it was hardly to be expected that he could detach himself from his business and find solace and comfort in his sole activity of conveying and communicating the message of our culture through what is now a household word in the spiritual literature of India, the 'Kalyan'.

The essential message of Vedanta is sometimes grasped at the intellectual level; but it is very difficult to grasp its meaning unless it is well digested and this cannot be done unless one can reach the inner depths of his true nature.

We have in India various schools of thought. There is a school of thought where knowledge is emphasised, another where devotion to God is emphasised, still another where detachment in action is emphasised and yet another where Yoga is emphasised. The intention behind all these has been first to enable one to come in touch with the lofty endeavour made by our seers of the past, next to enable him to sublimate his senses, then to realize true nature, then to conquer contradictions in his life and finally realize the ultimate Truth. This approach is common to all. This is the great message of Vedanta, which 'Kalyan' has tried all these years to disseminate.

I think that in this field the contribution of Sri Hanuman Prasadji Poddar will rank as one of the noblest efforts of a human personality.

U. N. DHEBAR.

[मुझे प्रसन्नता है कि गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले 'कल्याण'के संस्थापक-सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके प्रति श्रद्धार्पणरूप यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये मुझको आमन्त्रित किया गया है। श्रीपोद्दारजी ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें दार्शनिक एवं विचारक होनेके नाते यह स्पष्ट ज्ञात था कि भारतीय समाजका हित किस बातमें संनिहित है। मुझे उनके साथ मिलनके दो रोचक प्रसङ्गोंका स्मरण है। निसर्गत: व्यापारी होनेके कारण उनसे यह आशा करना कठिन था कि वे अपने व्यापारिक कार्योंसे अपनेको अलग कर सकेंगे और भारतीय आध्यात्मिक साहित्यमें सुप्रसिद्ध 'कल्याण'के माध्यमसे, जिसका नाम आज घर-घरमें लोगोंके मुँहपर है, हमारी संस्कृतिके संदेशके प्रचार एवं प्रसारके एकमात्र कार्यमें ही उन्हें सुख एवं संतोष प्राप्त हो सकेगा।

वेदान्तका सारभूत सिद्धान्त कभी-कभी बौद्धिक स्तरपर समझमें आता है; लेकिन जबतक इसको भलीभाँति आत्मसात् न किया जाय, इसका गूढ़ अर्थ समझना कठिन है और यह तबतक सम्भव नहीं, जबतक एक व्यक्ति अपने यथार्थ स्वभावकी आन्तरिक गहराईतक नहीं पहुँचता।

भारत मत-मतान्तरों और विचारधाराओंकी बहुलताका देश है, जहाँ एक विचारधाराके अनुसार 'ज्ञान' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, दूसरीके अनुसार ईश्वर-भक्ति, तीसरीके अनुसार कार्यमें अनासक्ति, और चौथीके अनुसार योग। इन सभीका उद्देश्य क्रमशः ऋषियोंद्वारा प्रचीन कालमें किये गये महान् प्रयासोंसे मनुष्यको अवगत कराते रहना, उसे इन्द्रियोंका परिष्कार करनेमें समर्थ बनाना, यथार्थ स्वरूपका ज्ञान कराना, द्वन्दोंपर विजय प्राप्त कराना और अन्ततोगत्वा महान् सत्यकी प्राप्ति कराना है। यह दृष्टिकोण सभी विचारधाराओंमें समानरूपसे ग्राह्य है और यही वेदान्तका महान् संदेश है, जिसे प्रचारित करनेका प्रयास 'कल्याण'ने आजतक किया है।

मेरे विचारसे इस क्षेत्रमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सेवा मानवकृत सर्वश्रेष्ठ प्रयासोंके बीच स्थान पायेगी।

यू० एन्० ढेबर]

● ● ●

श्रीपोद्दारजी एक महान् आत्मा थे। उनका जीवन इतना महान् और जनोपयोगी था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनेको उनसे व्यक्तिगतरूपसे परिचित-सा अनुभव करता था।

श्रीपोद्दारजीने धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रमें मानव-समाज तथा विशेषकर हिंदू-समाजकी जो सेवा की है, उसके लिये हमारा समाज उनका चिरऋणी रहेगा।

'कल्याण' उनके जीवनको सदैव स्मरण कराते रहनेवाला हमारा मार्गदर्शक रहेगा। यह उनके ही परिश्रमका फल है कि 'कल्याण' आज देशकी सीमासे आगे बढ़कर दिनोंदिन लोकप्रियता अर्जित कर रहा है।

काशीप्रसाद पाण्डेय

अध्यक्ष, विधान-सभा, मध्यप्रदेश

● ● ●

'कल्याण'के 'वेदान्ताङ्क'से मैं उसका ग्राहक हूँ। सन् १९४२ में मैं श्रीभाईजीके पैतृक-स्थान रतनगढ़ भी गया था। वहाँ मैंने श्रीभाईजीकी सतत साधनाका प्रत्यक्ष दर्शन किया। उस अवधिमें मैंने देखा—श्रीभाईजीके निवास-स्थानपर अखण्ड श्रीहरिनाम-संकीर्तन चल रहा है और श्रीभाईजी उसकी सँभाल करते रहते हैं। सायंकाल प्रवचन करते हैं तथा दिनभर 'कल्याण'का सम्पादन, लेखन और जिज्ञासुओंका मार्गदर्शन करते रहते हैं।

इसके साथ ही संकटग्रस्त प्राणियोंके सहायतार्थ अनेक प्रकारके राहतकार्योंको गति देनेमें भी श्रीभाईजी दत्तचित्त रहते थे। द्वितीय महायुद्धके भयसे त्रस्त होकर कलकत्ता आदिसे आये लोगोंको भी उनसे सान्त्वना एवं सहयोग प्राप्त होते रहते थे।

श्रीभाईजीने मुझे जीवनमें पालनीय नियम बतलाते हुए कहा था—'प्रभुका भजन जीवनभर चलता रहना चाहिये। यह कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे एक बार करके रख दिया जाय। भजन करनेवाले व्यक्तिको अपनी आजीविकाके सम्बन्धमें दूसरोंकी दया एवं दानपर निर्भर न रहकर स्वयं परिश्रम करना चाहिये। उसका व्यवहार ऐसा होना चाहिये, जिससे दूसरे प्रेरणा ले सकें।' भाईजीका वह मार्गदर्शन आजतक मेरे निजी एवं सार्वजनिक जीवनके लिये प्रेरक रहा है।

इसके पश्चात् मैंने उनके दर्शन गीता-भवनमें किये। उन दिनों मैं मजदूरोंके संगठन-कार्यमें मुख्यरूपसे संलग्न था। प्रेरणा देते हुए एक दिन श्रीभाईजीने अपने प्रवचनमें कहा—'मजदूरोंका उचित जीवनस्तर निर्माण करना चाहिये। उत्पादनमें वृद्धि तथा अनुशासनका पालन—दोनों बहुत आवश्यक हैं। मजदूरोंमें तथा मालिकोंमें परस्पर द्वेष एवं कटुता नहीं होनी चाहिये; आपसी सद्भाव रहना चाहिये। उभय पक्षोंमें संघर्षके स्थानपर आपसी सहयोगको प्रोत्साहन दिया जाय।' श्रीभाईजीका यह उपदेश मैंने सदैव अपने सामने रखा है और इससे मुझे अपने दायित्वोंको निभानेमें बड़ी प्रेरणा प्राप्त होती रही है।

श्रद्धेय श्रीभाईजी महान् प्रतिभाके धनी थे। उनके सम्पर्कमें आनेवाला उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। उनके आत्मीयतापूर्ण मधुर व्यवहारकी छाप सम्पर्कमें आनेवालेपर अवश्य पड़ती थी। उनके लेखों और प्रवचनोंसे अनगिनत लोगोंको श्रेष्ठ जीवनकी प्रेरणा मिली, हजारों साधकोंको उनके संसर्गसे शान्ति-लाभ हुआ। यद्यपि श्रीभाईजी पार्थिव शरीरसे हमारे मध्यमें नहीं रहे, तथापि उनकी सर्वतोमुखी साधना चिरकालतक मानव-जातिके उत्थानका पथ प्रशस्त करती रहेगी।

श्रीगंगाराम तिवारी
मन्त्री—लोकनिर्माण तथा गृहनिर्माण, मध्यप्रदेश

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे भारतीय संस्कृतिकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति सम्भव नहीं है। उन्होंने मासिक पत्र 'कल्याण'द्वारा हिंदू-धर्म और हिंदू-जातिकी जो सेवा की है, उसे देश भुला नहीं सकता। श्रीपोद्दारजीका श्रीशास्त्रीजी एवं उनके परिवारके साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

श्रीमती ललिता शास्त्री

● ● ●

Although my coming into contact with late Sri Hanumanprasadji Poddar was very brief while I was in U. P., he was a very dynamic person and was carrying on the work of publishing the religious monthly, the 'Kalyan', and the publication of cheap and beautiful editions of the Gita, the Ramayana and the great Upanishads. I am glad that you are going to bring out a Veneration Volume in his memory.

I bow to the great soul and wish your efforts every success.

LILAVATI MUNSHI.
Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay

[उत्तर प्रदेशमें रहते समय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ मेरा सम्पर्क अत्यन्त अल्पकालिक रहा । वे एक महान् कर्मयोगी पुरुष थे और वे धार्मिक मासिक पत्र 'कल्याण' तथा गीता, रामायण और महान् उपनिषदोंके सुन्दर एवं सस्ते संस्करणोंके प्रकाशनका कार्य कर रहे थे । मुझे प्रसन्नता है कि आप उनकी स्मृतिमें एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं ।

उनकी महान् आत्माके प्रति प्रणति निवेदित करती हुई मैं आपके प्रयासकी सर्वाङ्गीण सफलताकी आकांक्षिणी हूँ ।

लीलावती मुंशी
भारतीय विद्या-भवन, बम्बई]

● ● ●

'जो पूर्णताकी परिणति है, वही पुरुष पुरुषोत्तम है, जहाँ विश्रान्तिका विश्राम भी विलीन हो जाता है ।'

श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी उन्हीं पूर्ण पुरुषोत्तमके उपासक पुरुषोत्तम थे । उनका सुयश अमर है । उनके व्यावहारिक एवं साधनात्मक जीवनका वास्तविक स्वरूप उनके लोकसंग्रह-व्यक्तित्वसे हम सबको उपलब्ध हुआ है । दरअसल हम कितने भाग्यशाली हैं कि ऐसे साधकोंकी योगसाधनाओंका विशुद्ध सुमधुर नवनीत हमने पाया है ।

भारतीय संस्कृतिका प्राण आत्माकी अमरतामें समाया हुआ है । श्रीपोद्दारजी भारतीय संस्कृतिके दीपस्तम्भ थे । भारतीय संस्कृतिको अनेक रूपमें जाग्रत् और सजीव रखनेकी साधना करते हुए आत्मार्थी श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी स्वयं आत्मलीन हो गये । उनके प्राण उसीमें समाविष्ट हुए हैं, ऐसा समझकर हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि अपने सम्पूर्ण जीवन-कालमें उन्होंने जो श्रेयस्की साधना की है, वह अब अधिक प्राणवान् होगी । उनके द्वारा जो कर्म और साधनाका क्रम अखिल भारतमें स्थापित हुआ है, वह अधिक संशोधित रूपमें निष्ठापूर्वक सतत चालू रहे ।

इसी तरह गीताप्रेसके द्वारा भारतके धार्मिक ग्रन्थों और साहित्यका विशुद्ध रुपसे जो प्रकाशन होता रहा है, वह भी देश-काल-परिस्थितिके अनुरूप आबाल-वृद्ध सभीको स्वधर्मका बोध एवं प्रेरणा सतत देता रहा है । उसी प्रकार उसका अत्यन्त सतर्कता, पवित्रता और सर्वात्मचिन्तनपूर्वक उत्तम प्रकाशन निरन्तर होता रहे और वह देश-काल-परिस्थितिके अनुरूप सकल जनोंकी आत्मोन्नतिके लिये और राष्ट्रके उत्थानके लिये सदा समयोपयोगी सिद्ध हो ।

यही चिरस्मरणीय पू० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पावन स्मृतिमें सर्वान्तर्यामीसे आन्तरिक प्रार्थना है ।

बहिन मदालसा नारायण
राज्यपाल भवन, अहमदाबाद

● ● ●

अपने भाईजी चले गये । दो-तीन बार गोरखपुरमें उनके दर्शन पाये । उक्त घटनाको १८–२० वर्ष होते हैं । मुझपर गहरी छाप पड़ी थी––भाईजीकी ऋजुता और परम स्निग्ध विनम्रताकी । अपार विद्वत्ताके साथ वह निर्दोष, निष्कलङ्क निरहंकारता देख उनके सामने सिर झुक जाता । सम्पत्तिके साथ वह मधुर सेवाभाव, अथक परिश्रमकी शक्ति, तितिक्षा कितनी लावण्यमयी हो सकती है––इसके दर्शन भाईजीमें पाये ।

एक बार उन्हें देखा था स्वर्गाश्रममें भी । वहाँ कुछ समय रही थी । संतोंमें भाईजीकी अनन्य श्रद्धा थी और संतोंकी भी उनके प्रति अनन्य आत्मीयता थी ।

'कल्याण'के माध्यमसे उन्होंने भारतीयोंकी जो सेवा की, वह अजोड़ है । उससे आर्य-संस्कृतिका गौरव बढ़ा । वैदिक दर्शनोंका तेज निखर गया । संत-साहित्य मुसकरा उठा । 'कल्याण'के वे कीमियाकार कूच कर

गये। कलमके कुशल धनी उठ गये । अब हम उस शारदाके लाड़ले बेटेको अपने बीच कभी नहीं पायेंगे, यह भान होते ही हृदय विकलतासे भर आता है।

भाईजी सदेह समन्वयमूर्ति थे। मुझ-जैसी अकिंचन, अज्ञानी, अनाश्रमी बहिनपर भी उनका निश्छल वात्सल्य बरसता रहा। भाईजी थे मर्मज्ञ, रसिक भक्त।

बहुमुखी प्रतिभा, उन्मेषशालिनी प्रज्ञा, प्रेमी हृदय एवं उदारताके धनी भाईजी चले गये। 'कल्याण'-परिवारके दुःखमें मैं शामिल हूँ।

बहिन विमला ठकार
शिवकुटी, अर्बुदाचल (राजस्थान)

• • •

श्रीपोद्दारजी हमारे युगके साहित्यिक जीवनके उन निर्माताओंमेंसे थे, जिन्होंने न केवल अपनी रचनाओंके द्वारा ही साहित्यकी सेवा की, वरन् जीवनका कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसमें वे कुछ-न-कुछ हमें देकर न गये हों। उनके उत्तम विचार तथा आदर्श एवं उनका व्यक्तिगत जीवन सहस्रोंको प्रेरणा प्रदान करेगा और लाखोंको भारतीय संस्कृति और सभ्यतामें रुचि पैदा करायेगा। उनका सादा जीवन तथा दुःखियोंके प्रति सदा सहानुभूति रखनेवाला व्यक्तित्व हमारी नजरोंके सामनेसे कभी ओझल नहीं हो सकेगा । वे 'कल्याण'के द्वारा जो भारतीय संस्कृतिकी सेवा कर गये हैं, वह उनको सदैव अमर बनाकर रक्खेगी।

चन्द्रभानु गुप्त
लखनऊ

• • •

The name of Sri Hanumanprasadji Poddar will remain ever fresh in the memory of his countrymen through the valuable services which he has rendered to the country. Through the medium of 'Kalyan' he strengthened the background of Vedic culture and made it popular among millions of Hindus. People like him are the ballast of the society in which they live. They supply the necessary corrective to the society and nurture it with a stamina which they alone can introduce. His death is a great loss not only to the readers of 'Kalyan' but to all those who are proud of their culture and heritage. I join his numberless friends in paying him my humble tribute.

S. K. PATIL,
Bombay

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम राष्ट्रके प्रति की गयी उनकी बहुमूल्य सेवाओंके कारण देशवासियोंके मनमें सतत स्मरणीय रहेगा। 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होंने वैदिक संस्कृतिकी पृष्ठभूमिको सुदृढ़ बनाया और लाखों हिंदुओंमें इसका प्रचार किया । उन-जैसे व्यक्ति अपने समाजके मुख्य आधार होते हैं, वे समाजको यथोचित निर्देश प्रदान करते हैं और ऐसी आन्तरिक शक्तिसे उसका पोषण करते हैं, जो केवल उन-जैसे महान् पुरुषोंमें ही होती है। उनके निधनसे केवल 'कल्याण'के पाठकोंकी ही नहीं, बल्कि उन सभीकी महान् क्षति हुई है, जिन्हें अपनी संस्कृति और परम्परापर गर्व है। उनके संख्यातीत मित्रोंके साथ मैं भी उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

एस० के० पाटिल
बम्बई]

• • •

हृदयसे अत्यन्त निकट होते हुए भी मैं भाई हनुमानप्रसादजीको वास्तवमें दूर-दूरसे ही देखता-जानता रहा। बहुत वर्ष बीत गये, एक बार भाई हनुमानप्रसादजीके साथ मैं गायोंके लिये प्रचुर घासकी खोजमें निकला था और हमलोग तत्कालीन ग्वालियर राज्यान्तर्गत शिवपुरकलाँतक पहुँचे थे । वे दिन मुझे ज्यों-के-त्यों याद हैं। कितनी लगन थी भाई हनुमानप्रसादजीमें गो-संततिकी सेवा करनेकी—उस अकालके समयमें गोमाताकी प्राण-रक्षा करनेकी।

जहाँतक मैंने समझा है, भाई हनुमानप्रसादजीमें भक्ति, ज्ञान, कर्म—तीनोंका समन्वय था। वे भक्तिसे ओत-प्रोत थे, यह उनकी किसी भी रचनासे जाना जा सकता है। वे विशेष पण्डित थे, इसका प्रमाण 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंमें मिल सकता है और वे कल्याणकारी कर्ममें तो प्रतिक्षण लीन रहते ही थे। उनके स्वभावकी सरलता, उनकी सौम्यता, उनकी करुणा—सब अनुकरणीय थीं। वे विनय और नम्रभावके तो अवतार-से थे। उनका सेवा-भाव अनुपम था। कीर्ति-प्रसिद्धिकी कामनाने उनका स्पर्श भी किया हो, ऐसा नहीं लगता। भाई हनुमानप्रसादजीके निधनसे सनातनधर्मका एक स्तम्भ उठ गया । जैसे गोमाताके विषयमें भले-भले लोगोंकी बुद्धि तर्क-वितर्कसे पीड़ित होती रहती है, वैसे ही धर्मके नामसे भी कई सज्जन नाक-मुँह सिकोड़ते देखे गये हैं। आजके युगमें अन्ध-परम्परा तो नहीं चल सकती, पर किसी भी कारणसे धर्मके प्रति आस्थाका उठना हितकर नहीं हो सकता । भाई हनुमानप्रसादजीका कार्य-कलाप धर्मके प्रति आस्था बढ़ानेवाला था।

हीरालाल शास्त्री
अध्यक्ष—वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

● ● ●

परम भागवत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परलोकगमनसे सनातनधर्मका जबरदस्त पुरस्कर्ता, कल्याण-पथका पथिक और मार्गदर्शक, प्रगतिशील हिंदू-धर्मका जाग्रत् पृष्ठपोषक और भारतीय राष्ट्रीय समाजका एक प्रबुद्ध नागरिक उठ गया। वे ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सहयोगी और उसके बाद उनकी भगवद्भक्ति-परम्पराके संचालक रहे । उनके निधनसे मुझे आज इन दोनों महानुभावोंका अभाव एक साथ बुरी तरह खटक रहा है । लगभग ४५ वर्षोंसे मेरा उनका स्नेह-सम्बन्ध रहा। उनके जैसे सरल, सहृदय, परदुःखकातर, निरभिमानी विरले ही होते हैं। वङ्ग-भङ्ग-आन्दोलनके दिनोंमें वे कलकत्तेके अपने अन्य समवयस्क राजस्थानी मित्रोंके साथ ब्रिटिश सरकारके कोप-भाजन हुए थे। धनिक परिवारके होते हुए भी उन्होंने लक्ष्मीकी अपेक्षा नारायणकी सेवाको जीवनमें सर्वाधिक महत्व दिया। कई पुस्तकें लिखीं। हिंदू-धर्मका उनका अध्ययन गहरा था। वे जो कुछ लिखते, उसपर भगवान्‌के प्रति निष्ठाका रंग चढ़ा रहता। राजस्थानी ही नहीं, सारे हिंदू-समाजमें उनके प्रति स्नेह, श्रद्धा, आदर रखनेवालोंकी संख्या कम नहीं है । उन सभीको आज यह अनुभव हो रहा है कि हमारा एक सच्चा सखा, आप्त पथदर्शक संसारसे चला गया । उनके निश्छल और धार्मिक जीवनकी स्मृति और स्फूर्ति हमारे जीवनको श्रेयोऽर्थी बनानेमें सहायक हो।

हरिभाऊ उपाध्याय
गांधी-आश्रम, हटुंडी (अजमेर)

● ● ●

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्पर्कमें आनेका मुझे जब भी अवसर मिला, तब उनके निःस्वार्थ और आत्मीयता तथा उदारतासे भरे व्यवहारका मेरे मनपर बहुत प्रभाव पड़ा। वे एक निःस्पृह समाजसेवी व्यक्ति थे। गोरखपुर, देवरिया, बस्तीके बाढ़-पीड़ित क्षेत्रोंकी निर्धन जनताको निःशुल्क कम्बल-भोजन-वितरण तथा आवाससे बराबर सहायता किया करते थे। उन्होंने कुष्ठ-आश्रम तथा अनेक सामाजिक संस्थाओंकी स्थापना तथा संचालन-कार्य किया। इतना सब करते हुए भी उनमें अभिमान तथा ख्याति-प्राप्तिकी कोई लालसा नहीं थी।

श्रीपोद्दारजी सादे जीवन और उच्च विचारके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उन्होंने समाज-सेवा और भगवत्कृपाके अतिरिक्त संसारमें किसी बातकी कामना नहीं की। उन्होंने साधु-जीवन ही व्यतीत किया।

उन-जैसे निःस्पृह और परम उदार समाजसेवीके पुनीत कार्य लोगोंके लिये सदैव ही अनुकरणीय रहेंगे।

चौधरी चरण सिंह
लखनऊ

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मेरा अपने राजनीतिक जीवनमें सामाजिक तथा धार्मिक पक्षको लेकर सम्पर्क रहा है।

श्रीभाईजी गीताप्रेसके आध्यात्मिक प्रकाशन और 'कल्याण'के सम्पादक ही नहीं, वरन् प्राण थे। उन्होंने गीताप्रेस एवं 'कल्याण'द्वारा भारतीय संस्कृतिको देशके कोने-कोनेकी जनतामें फैलाया तथा विदेशमें भी इसका प्रचार किया। इतना ही नहीं, उन्होंने प्राकृतिक और दैवी आपदाओंके समय गोरखपुर जनपदकी अपार सेवा भी की। धार्मिक जगत्में उनके महान् सुकृत्य श्रद्धापूर्वक स्मरण किये जायेंगे।

उनके व्यावहारिक आदर्श और यथार्थ सद्गुण भविष्यमें आनेवाली पीढ़ीके लिये ज्योतिःस्वरूप मार्गदर्शक होंगे।

श्रीमती सुचेता कृपलानी
लखनऊ

● ● ●

When I was the President of the Hindu Mahasabha, I had the privilege to come into close contact with Sri Hanuman Prasadji Poddar. It was my great privilege to come into contact with that selfless devotee of our culture and tradition. It was my privilege to go to the Gorakhnath Temple, of which my colleague, Mahant Digvijaynathji, was the custodian, and it was also my privilege to go to the Gita Press, which has acquired the position of universal interest. The Gita Library comprised many editions of Bhagvadgita and I remember that the Gita Press had already issued more than six million copies of the Bhagavadgita. The number must have now reached the figure of many crores.

The manner in which the Gita Press published and broadcast the greatest book in our ancient religion and preached the eternal lessons uttered by our Lord has strengthened the faith and reverence of our people.

Actually due to the devotion of Sri Hanumanprasadji we realized that Gita was made not only for monks and ascetics but, it was meant for every hearth and home in this country.

We hope that the 'Kalyan' will be preaching the truths of the Gita, Ramayana and the great Upanishads and will help to build up the moral and spiritual character of our people. May the great soul of our true friend, Sri Poddarji, continue to inspire our men and women and help them to realize the great truths of our eternal religion and culture.

N. C. CHATTERJEE.
Chairman, Committee of Review of Rehabilitation
Work in West Bengal.

[जब मैं हिन्दू महासभाका अध्यक्ष था, मुझे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपनी संस्कृति एवं परम्पराके उन निःस्वार्थ उपासकके सम्पर्कमें आना मेरे लिये एक बड़े सौभाग्य-का विषय था। यह मेरा सौभाग्य था कि मैं गोरखनाथ मन्दिरमें गया, जिसके संरक्षक मेरे सहयोगी महन्त श्रीदिग्विजयनाथ थे। और यह भी मेरे सौभाग्यकी बात थी कि मैं गीताप्रेस गया, जिसने सार्वभौम प्रियपात्रताका स्थान प्राप्त कर लिया है। गीता-पुस्तकालयमें भगवद्गीताके अनेक संस्करण विद्यमान थे और मुझे स्मरण है कि गीताप्रेस उस समयतक ही भगवद्गीताकी साठ लाख प्रतियाँ प्रकाशित कर चुका था और अब तो वह संख्या कई करोड़ हो गयी होगी।

जिस ढंगसे गीताप्रेसने हमारे प्राचीन धर्मके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थका प्रकाशन एवं प्रसारण किया और हमारे प्रभुके श्रीमुखसे निस्सृत शाश्वत शिक्षाओंको प्रचारित किया, उसने हमारे देशवासियोंको श्रद्धा और विश्वासकी दृढ़ता प्रदान की है।

वस्तुतः श्रीहनुमानप्रसादजीकी निष्ठासे हमने जाना कि गीताकी रचना केवल साधुओं और संन्यासियोंके लिये ही नहीं हुई थी, अपितु वह इस देशके घर-घरके लिये प्रणीत हुई थी।

हमें आशा है कि 'कल्याण' गीता, रामायण और महान् उपनिषदोंमें निहित सत्यका उपदेश करता रहेगा और हमारी जनताके नैतिक तथा आध्यात्मिक चरित्र-निर्माणमें सहायक होगा। हमारे सच्चे मित्र श्रीपोद्दारजीकी महान् आत्मा हमारे नर-नारियोंको प्रेरणा देती रहे और अपने सनातन धर्म और संस्कृतिके महान् तथ्योंका साक्षात्कार करनेमें सहायता करती रहे—यही प्रार्थना है।

एन्० सी० चटर्जी

अध्यक्ष—पश्चिम बंगाल पुनर्वास-कार्य-समीक्षा-समिति]

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके निधनसे हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिका एक महान् अध्वर्यु उठ गया। विश्वमें हिंदू-धर्मके प्रचार तथा प्रसारके लिये श्रीपोद्दारजीने आजीवन प्रयत्न किया, जो हमारे राष्ट्रीय इतिहासमें सदैव सुरक्षित रहेगा। श्रीपोद्दारजी सादा जीवन और उच्च विचारकी जीती-जागती प्रतिमा थे। उन्होंने अपनी स्वार्पण-साधनासे गीताप्रेस और 'कल्याण'को एक महान् संस्थाका रूप दे दिया। उनके देहावसानसे राष्ट्रकी अपूरणीय क्षति हुई है। उनके जीवन-कार्यको आगे बढ़ाकर ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि व्यक्त कर सकते हैं।

अटलबिहारी बाजपेयी

अध्यक्ष—भारतीय जनसंघ

● ● ●

आदरणीय भाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारके देहावसानसे आध्यात्मिक जगत् एवं हिंदू-समाजकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। सम्पूर्ण देश तथा विदेशोंमें भी हिंदूधर्मके महान् सिद्धान्तोंके प्रचार एवं प्रसारमें, सत्साहित्यके प्रकाशन तथा प्रसारमें गीताप्रेसके माध्यमसे उन्होंने जो सेवा की है, वह अनेकों संस्थाएँ मिलकर भी नहीं कर सकेंगी। गीतोक्त निष्कामकर्मके वे मूर्तिमान् स्वरूप थे।

ब्रजनारायण ब्रजेश

अध्यक्ष—अखिल भारत हिंदू-महासभा

● ● ●

श्रद्धेय श्रीभाईजीका परलोकगमन मानवमात्रकी अपरिमित हानि है। एक असामान्य भगवद्भक्त, कर्मयोग-की साकार मूर्ति, करुणाके सागर, विनम्रताकी विभूति, निःस्वार्थ प्रेमके प्रतीक, ज्ञानके गणेश और सेवाके आदर्श उठ गये। हम उनके वियोगकी असह्य वेदनासे पीड़ित हैं।

नानाजी देशमुख
मन्त्री—भारतीय जनसंघ

• • •

श्रीयुत हनुमानप्रसाद पोद्दारजी धार्मिक जगत्के एक उज्ज्वल रत्न थे। वे स्व-धर्म, स्व-संस्कृति और हिंदू-समाजके परम हितैषी एवं निःस्वार्थ सेवक थे। 'कल्याण' और गीताप्रेसके द्वारा उन्होंने आस्तिकवाद, आध्यात्मिकता एवं स्व-संस्कृतिके प्रचार और उसके संरक्षणमें अपना मूल्यवान् योग दिया था। 'कल्याण' और गीताप्रेसके द्वारा की गयी उनकी सेवाएँ भुलायी न जा सकेंगी। 'कल्याण'ने भोगवादपर आधारित पाश्चात्त्य संस्कृतिके अभिशापोंसे देशवासियोंकी रक्षा करनेके लिये प्रचुर उपयोगी साहित्य प्रदान किया है, जिसका एकमात्र श्रेय श्रीपोद्दारजीको है। वे स्वयंमें संस्था थे।

उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि स्वतन्त्र भारतके माथेसे गो-हत्याका कलङ्क धोया जाय। गोरक्षाके महान् कार्यमें उनका सक्रिय सहयोग गो-भक्त जनताके लिये बहुत बड़ा वरदान था। क्या हिंदू-समाज श्रीपोद्दारजीके गोरक्षासम्बन्धी विचारोंको मूर्त्तरूप दे सकेगा ?

ईसाई मिशनरियोंकी राष्ट्र-विरोधी प्रगतियोंके सम्बन्धमें भी वे बड़े चिन्तित रहा करते थे। श्रीपोद्दारजी यह जानते थे कि विदेशी मिशनरियोंके धर्म-परिवर्तनसम्बन्धी कुचक्रोंसे हिंदू-समाजकी भारी क्षति हो रही है।

मेरे साथ पत्राचारमें उन्होंने अपनी इस चिन्ताको व्यक्त किया था। आर्यसमाज गो-हत्याबंदी-आन्दोलन-में सक्रिय भाग लेता हुआ एवं विदेशी मिशनरियोंके देश-द्रोहात्मक कुचक्रोंसे सदैव हिंदू-समाजको जगाता हुआ अपने कर्त्तव्यका पालन करता रहा है। श्रीपोद्दारजीके निधनसे आर्य-जगत् अपने एक बड़े सहायकसे वञ्चित हो गया है।

रामगोपाल शालवाले
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
नयी दिल्ली

• • •

भारतवर्षका अतीत समृद्धिशाली एवं गरिमामय रहा है। विविध परिस्थितियोंसे पूर्ण अपने इतिहासके दीर्घ प्रवाहमें भी इस देशकी संस्कृतिकी देनमें एक एकता एवं शक्ति संनिहित है। जब कभी भी विदेशी प्रभाव अथवा प्रतिकूल संस्कृतियोंने चुनौती दी, उनसे अभिभूत होनेके स्थानपर उसने उन्हें आत्मसात् करनेकी चेष्टा की। ऐसे सभी संघर्षोंकी परिणति मानवीय आत्माके निमित्त नये समन्वय तथा उपलब्धिके नये स्तरोंके रूपमें हुई।

जब भारत विदेशी शासनके अन्तर्गत आया, यह आशङ्का थी कि हमारी संस्कृति पश्चिमी संस्कृतिके प्रभावमें लुप्त हो जायगी। हमारे इतिहासके ऐसे संकटपूर्ण क्षणोंमें दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न महापुरुषोंका अवतरण हुआ। उन्होंने पुनः एक बार संसारको स्मरण कराया कि हमारे महात्माओं एवं ऋषियोंका तत्व-ज्ञान अति प्राचीन कालकी भाँति आज भी उतना ही ठोस है। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन समर्पित जीवनवाले कार्यकर्त्ताओंकी श्रेणीमें आते हैं, जिन्होंने सांस्कृतिक नवचेतना जाग्रत् की और हमारे आध्यात्मिक मूल्यवान् तथ्योंको आधुनिक शब्दावलीमें व्यक्त किया।

श्रीपोद्दारजी युवावस्थामें क्रान्तिकारियोंके प्रभावमें आये और भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राममें कूद पड़े। स्वातन्त्र्य-सैनिकके रूपमें क्रान्तिकारी आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेनेके कारण वे जेल गये और बंगालसे निष्कासित कर दिये गये।

शनैः-शनैः श्रीपोद्दारको यह विश्वास होने लगा कि लोगोंके नैतिक एवं आध्यात्मिक पुनरुत्थानके बिना राजनीतिक स्वतन्त्रताका कोई अर्थ नहीं होगा। वे धर्मोन्मुख हो गये और उन्होंने सुप्रसिद्ध मासिक 'कल्याण'का सम्पादन एवं प्रकाशन आरम्भ किया। उनके निर्देशनमें गीताप्रेस तथा 'कल्याण' हमारी राष्ट्रीय संस्थाएँ बन गयीं, जिन्होंने भारतके संदेशको देशकी सीमा पारकर विश्वभरमें करोड़ों लोगोंतक पहुँचाया है।

श्रीपोद्दारजी संस्कृत, अंग्रेजी तथा अन्य अनेक भारतीय भाषाओंके भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने हमारे धार्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थोंका सरल एवं सुबोध भाषामें अनुवाद किया-कराया तथा उन्हें सामान्य जनके लिये साध्य मूल्यमें उपलब्ध किया। मोटर गाड़ियोंद्वारा उन्होंने इन प्रकाशनोंको सुदूरवर्ती नगरों एवं गाँवोंतक पहुँचाया। धार्मिक पुस्तकोंके प्रकाशनमें प्रमुख होनेके कारण उन्होंने प्रकाशन-क्षेत्रमें क्रान्ति ला दी। उन्होंने अपने प्रकाशनोंको व्यापारिक सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि ज्ञान और विद्याका विस्तार करनेवाले साधनोंके रूपमें देखा।

जीवनमें श्रीपोद्दारजीने आत्मोत्सर्ग और त्यागसे एक ज्वलन्त आदर्श प्रस्तुत किया। संसारकी भव्य उपलब्धियों तथा सम्मानकी ओर ध्यान न देकर उन्होंने संतका जीवन व्यतीत किया। सांस्कृतिक मूल्योंके पुनरुद्धार तथा जन-समाजकी आध्यात्मिक उन्नतिकी दिशामें उनका अमूल्य सहयोग सदैव गर्व एवं कृतज्ञताके साथ स्मरण किया जायगा।

सूरज भान
कुलपति, पंजाब विश्वविद्यालय

• • •

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हिंदी-भाषियों और दूसरोंके लिये भी सदा स्मरणीय रहेंगे। 'कल्याण'का प्रवर्तन और गीताप्रेसका संवर्द्धन करके उन्होंने धार्मिक साहित्य सभीके लिये सुलभ कर दिया—यह एक बहुत बड़ी घटना है। सच तो यह है कि पोद्दारजी एक संस्था हो गये थे और यद्यपि आज वे सशरीर नहीं हैं, तो भी उनका काम जीवित है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।

मुझे श्रीपोद्दारजीसे मिलनेका सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ, किंतु मैं उनकी निर्भीकताका कायल हूँ। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके प्रति अगाध श्रद्धा और प्रीति रखते हुए भी उनके ऐसे विचारोंकी, जो भारतीय परम्पराके अनुकूल नहीं थे, उन्होंने समय-समयपर 'कल्याण'में आलोचना करनेमें संकोच नहीं किया। यह मामूली साहसका काम नहीं था।

प्रभुसे प्रार्थना है कि पोद्दारजीकी कृति अक्षुण्ण रहे और उनकी कीर्ति चिरस्थायी।

सत्येन्द्रनारायण अग्रवाल
कुलपति, भागलपुर विश्वविद्यालय

• • •

भाई हनुमानप्रसादजीसे मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना और घरेलू रहा है। उनसे मैंने पढ़ा भी है। हमारे परिवारके साथ उनका व्यापार-धंधा भी चलता रहा। समय बदला, पूर्व-पुण्य जगे और दुनियादारी, व्यवहार और व्यापार छोड़कर वे सेवामें लग गये। उनके विचारोंमें प्राचीनतम धर्मशास्त्र और आधुनिकतम विज्ञान दोनोंका पूरा मेल था। विनोबाजी–जैसे आधुनिकतम विचारोंवाले सत्पुरुषपर भी उनकी अपार श्रद्धा थी। साहित्यकी उनकी

अखण्ड साधना थी। मैं उनका पुरुषार्थ देखता हूँ तो चकित रह जाता हूँ। 'कल्याण'–जैसे मासिक पत्रकी, जिसमें नया विज्ञान शायद ही मिले, एक लाख पैंसठ हजार प्रतियाँ प्रतिमास प्रकाशित होना भारी पुरुषार्थ माना जायगा। गीताप्रेसकी पुस्तकोंकी घर-घर पहुँच, इतनी बिक्री और कीमत भी इतनी कम––इतनी सस्ती कि जिसका मुकाबला न 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' कर पाया, न 'सर्व-सेवा-संघ'––सचमुच प्रशंसनीय है।

भाई हनुमानप्रसादजी एक आत्मनिष्ठ पुरुष थे। हमेशा आत्मामें लीन रहते थे। सतत १६ से १८ घंटेतक काम करना उनका नित्य-नियम था। कामके अलावा अन्य कोई विश्राम होता है, यह उनको मालूम ही नहीं था। गोरक्षा-आन्दोलन चला तो उसमें अधिकांश आर्थिक भारकी व्यवस्था भाई हनुमानप्रसादजीने की। वे नम्रताकी प्रतिमूर्ति थे। उनका जीवन त्याग-तपस्यामय रहा।

राधाकृष्ण बजाज
अध्यक्ष––सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन,
वाराणसी

● ● ●

Sri Hanuman Prasad Poddar was an old friend of mine. He has rendered unique services in the spread of religious literature. His passing away has distressed me greatly.

G. D. BIRLA.

[श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार मेरे एक पुराने मित्र थे। उन्होंने धार्मिक साहित्यके प्रचारके क्षेत्रमें अद्वितीय सेवाएँ की हैं। उनके निधनसे मुझे बहुत दुःख हुआ है।

घनश्यामदास बिरला]

● ● ●

पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजीके जीवनकी विशिष्टताओं एवं दैवी गुणों––करुणा, स्नेह आदिसे सम्बन्धित घटनाओंके बारेमें लिखना अत्यन्त कठिन है।

मैं उनके सम्पर्कमें लगभग ३० साल पहले आया और तभीसे उनका मेरे ऊपर अगाध प्रेम और स्नेह रहा। वैसे हमारे पूरे बिरला-परिवारका उनसे निकटका सम्बन्ध रहा है।

श्रीहनुमानप्रसादजी सदैव इस बातका विशेष ध्यान रखते थे कि सामनेवालेको किस बातसे प्रसन्नता होगी। मिलनेवालोंके मनमें कोई कष्ट या व्यथाकी अनुभूति न हो, वे यही सोचते थे। सारे धर्मोंको प्रभुका स्वरूप मानकर ––उन्हें एक ही सत्यको उपलब्ध करानेवाले विभिन्न मार्ग समझकर वे उनके प्रति समान आदरभाव रखते थे।

अपने स्वरूपको उन्होंने सदा गौण ही रखा। उनका व्यक्तित्व तथा सरलता, कोमलता, पर-दुःखकातरता आदि गुण सर्वविदित हैं। हिंदूधर्म और संस्कृतिकी 'कल्याण'द्वारा उन्होंने जो सेवा की, वह लोकविश्रुत है तथा वह चिरस्मरणीय रहेगी। गीताप्रेससे प्रकाशित रामायण और गीताके द्वारा जो जन-कल्याण हुआ है, वह शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता।

उनके परलोक-गमनसे देशकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कठिन है।

बसन्तकुमार बिरला
कलकत्ता

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे एक ऐसी रिक्तता आ गयी है, जिसकी पूर्ति होना सर्वथा असम्भव है। निःस्वार्थ एवं निष्ठायुक्त सेवाद्वारा वे गीताप्रेस, 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के रूपमें अपने स्थायी स्मारक छोड़ गये हैं, जो भारतीय संस्कृति और 'इंडॉलाजी' (भारतीय विद्या)के क्षेत्रमें और अधिक शोध-कार्यके निमित्त जाज्वल्यमान आदर्श प्रस्तुत करते रहेंगे।

दीन-हीनोंके प्रति स्नेह एवं प्रेम, धार्मिक सहिष्णुता तथा मानव-सेवाके उनके गुण चिरस्मरणीय रहेंगे। भारत तथा भारतीय जन-मानसके गौरवको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये हमें उनके इन गुणोंका दृढ़ता तथा साहसके साथ अनुसरण करना चाहिये।

भारतीय धर्मशास्त्रोंमें निर्धारित परम्परागत पवित्र सिद्धान्तोंके प्रचारमें अपने अपरिमित ज्ञानके फलस्वरूप किये गये कठिन एवं अथक परिश्रमके कारण श्रीपोद्दारजी सदैव स्मरण किये जायँगे।

डा० सर सुरेन्द्रसिंह मजीठिया
सरदारनगर, गोरखपुर

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके साथ मेरा बहुत ही पुराना परिचय है। उनके जीवन और व्यवहारको मुझे निकटसे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिससे मेरा जीवन अप्रत्यक्ष रूपसे अवश्य ही प्रभावित हुआ है।

श्रीभाईजी मानवताकी साक्षात् मूर्ति थे। उनके माध्यमसे धार्मिक, सांस्कृतिक और लोककल्याणकारी साहित्यकी जो त्रिवेणी प्रवाहित हुई, उससे कोटि-कोटि मानवोंको प्रेरणा और आन्तरिक शान्ति मिली। जाति, धर्म, देश और राष्ट्रीयताकी संकुचित परिधि उन्हें बाँध न सकी। प्राणिमात्रके प्रति उनकी आत्मीयताका प्रवाह अजस्र था। जाने-अनजाने, देशी और विदेशी अनेक व्यक्तियोंको उनका अनुदान प्राप्त होता रहा है। सच्चे आध्यात्मिक पुरुष होनेके कारण वे सदैव आत्म-प्रशंसा तथा आत्म-विज्ञापनसे दूर रहे। उनके सभी सेवाकार्य सहज-रूपसे चलते रहे।

'कल्याण' तथा गीताप्रेसके अनेक प्रकाशनोंसे भारतीय संस्कृति और धर्म-भावनाका प्रसार देश-विदेशमें फैला और उसका श्रेय केवल आपको ही है। भाईजीके बिना 'कल्याण'की कल्पना करना भी मानो कठिन-सा प्रतीत होता है। त्यागकी महान् गरिमाको सुरक्षित रखकर जिस प्रकारकी निःस्पृह सेवाका उदाहरण आपने अपने जीवनके अन्ततक प्रस्तुत किया, वह किसी अन्य व्यक्तिके द्वारा असम्भव है।

श्रीभगवान् और उनकी भक्तिके प्रति उतनी अटूट सेवा दुर्लभ ही है। इन शब्दोंके साथ मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि श्रीभाईजीके श्रीचरणोंमें अर्पित करता हूँ।

पद्मपति सिंहानिया
कानपुर

● ● ●

श्रीभाईजीके बारेमें जितना कुछ कहा जाय, थोड़ा है। वे एक महापुरुष थे एवं अपना समय भगवान्‌की आराधना एवं उनकी चर्चामें लगाते थे। उनके दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे भी मिलता रहता था। कलिकालमें ऐसी विभूतियाँ कम हैं। उन्होंने देशकी जो अमूल्य सेवा 'कल्याण'के माध्यमसे की है, उसे कोई भी भुला नहीं सकता। उनका निरपेक्ष भाव सर्वविदित है। उनके बीच-बचावसे कई व्यक्ति अपने घरेलू मामलोंको भी सुलझा-कर विवादग्रस्त स्थितियोंको दूर कर सकनेमें समर्थ हुए हैं।

वे सादा जीवन, उच्च विचारके प्रतीक थे—यदि ऐसा कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। प्रेम, सादगी, सरलता एवं सद्भावनासे रहकर ईश्वरमें आस्था रखनेवाले ऐसे व्यक्ति कम ही मिलते हैं।

श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ जिन उद्देश्योंको समक्ष रखकर निकाला जा रहा है, उनकी पूर्ति हो—यही कामना है।

नरसिंहदास बाँगड़
कलकत्ता

● ● ●

भाई श्रीहनुमानप्रसादजीके साथ मेरा परिचय उस समयसे है, जब वे एक तरफ तो कलकत्तामें व्यापार करते थे और दूसरी तरफ क्रान्तिकारी लोगोंके कामोंमें सक्रिय भाग लेते थे—उनकी मदद करते थे। १६१६में सरकारकी दृष्टि—कोपदृष्टि उनकी गतिविधियोंपर पड़ी और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। वृत्ति उनकी सदा ही सात्विक थी, लेकिन भगवद्-भक्तिका चस्का उनको जेलमें लगा। थे वे एक व्यापारी, बनने गये देशभक्त और निकले ईश्वरभक्त होकर।

भाईजीका प्रायः पूरा जीवन ही परमार्थमें लगा। हिंदू-शास्त्रोंके प्रकाशन और प्रचार-प्रसारका काम जितना उन्होंने किया, उतना दूसरे किसीने नहीं किया है और यह इतने सुलभ मूल्यपर हुआ कि घर-घरमें ग्रन्थ पहुँच गये। इसका सारा श्रेय श्रीभाईजीको ही है।

कोई भी दीन-दुःखी उनके पास आता था या किसीका कोई पत्र ही आ जाता था तो वे उसे निराश नहीं करते थे। आर्थिक दृष्टिसे भाईजी कोई धनी नहीं थे, लेकिन दीन-दुःखियोंके लिये वे कुबेरके समान थे। परदुःखकातर, मिलनसार, हँसमुख, उदारमना, शास्त्रोंके ज्ञाता और पैनी बुद्धिवाले व्यक्ति थे वे। संवत् १६९६के अकालमें मेरा भी उनके साथ राजस्थानमें भ्रमणका काम पड़ा था। नजदीकसे देखनेपर पता लगा कि वे जो काम करते हैं, उसे कितनी दृढ़तासे करते हैं। भाईजीके परलोक-गमनसे अनेक लोगोंका सहारा टूट गया है; वे अपनेको निराश्रित अनुभव करते हैं। भाईजीके पार्थिव शरीरका अन्त हुआ है, लेकिन उनका यश और कीर्ति जगत्में लोगोंको सदा-सदाके लिये प्रेरणा देती रहेगी। उनके प्रति मेरी शत-शत श्रद्धाञ्जलि।

भागीरथ कानोड़िया
कलकत्ता

● ● ●

परम भागवत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पुण्य स्मृतिमें श्रद्धासुमनाञ्जलि-ग्रन्थ-प्रकाशनका आपका सत्संकल्प सर्वथा सराहनीय ही नहीं, अपितु लोक-कल्याणार्थ अति आवश्यक भी है। अज्ञान, मोह, विभ्रम तथा आसुरी वृत्तियोंके बन्धनोंसे उबरनेके लिये ज्ञान एवं भक्तिकी गङ्गामें डूबना पड़ता है। निश्चय ही ईश्वरीय प्रेरणासे यथोचित समयपर दैवी सम्पदाओंसे विभूषित महात्मा पृथ्वीपर अवतरित होकर अपने जीवन-वृत्तरूपी गङ्गाको प्रवाहित करते हैं। दिव्य-विभूतिपाद पूज्य पोद्दारजी भी उसी परम्पराकी एक महत्वपूर्ण दीप्तिमान् कड़ी थे। उनके रूपमें श्रीमद्भगवद्-गीताका स्थितप्रज्ञ, भगवत्प्रियभक्त मानो सशरीर दिशाओंको आलोकित कर रहा था। 'कल्याण'के रूपमें उनका कृतित्व समस्त हिंदू-धर्मानुयायियोंको किंवा मानवमात्रको कल्याण-मार्गका शाश्वत प्रदर्शन करता रहेगा।

बीस वर्ष पूर्व पुण्यश्लोक श्रीपोद्दारजीने मुझे प्रथम साक्षात्कारमें ही अपने व्यक्तित्वसे अभिभूत कर दिया था। तदुपरान्त मैं उनका सतत स्नेह-भाजन बना रहा, यह मेरा सौभाग्य है। वे मेरे परम श्रद्धेय रहे। उनको स्मरण करनेकी विधि है—उनके सदुपदेशोंके अनुसार जीना, और उसका अर्थ है—अपनेको ही लाभान्वित करना। वे भगवदाकार होकर औरोंके लिये मोक्ष-प्रणाली प्रशस्त कर गये हैं। सनातनधर्मके साथ ही श्रीपोद्दार-जीका विमल यश चिरस्थायी बना रहेगा।

गिरधारीलाल मेहता
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार परम भागवत एवं निष्काम कर्मयोगी महापुरुष थे। उनका सारा जीवन श्रीराधा-माधवकी भक्तिसे भरा था। साहित्य-सेवा, समाज-सेवा, राष्ट्र-सेवा, गीताप्रेसकी सेवा, 'कल्याण'-का सम्पादन आदि सभी कार्य श्रीभाईजीके लिये भक्ति-भावनाके ही एक अङ्ग थे।

धर्म एवं संस्कृतिकी जो अमूल्य सेवा श्रीभाईजीने की है, उसके लिये सम्पूर्ण मनुष्य-जाति उनकी ऋणी रहेगी। आजके युगमें धार्मिक भावोंका प्रचार करना बहुत कठिन है। इस कार्यको एक साधक, त्यागी एवं चरित्र-वान् व्यक्ति ही कर सकता है। श्रीपोद्दारजीके निर्मल चरित्र, साधु-स्वभाव, परोपकार-वृत्ति एवं निरभिमानताके कारण ही 'कल्याण'की लोकप्रियता बढ़ती रही।

श्रीभाईजी सबके साथ आत्मीयतासे मिलते थे। उनके स्नेहभरे स्वभावको एवं सरल व्यक्तित्वको किसीके लिये भी भुलाना असम्भव है। उनका अपना व्यक्तिगत जीवन कुछ भी नहीं रह गया था। सारा जीवन ही--उनका उठना-बैठना, सोना-जागना--सभी प्रभुको समर्पित था। ऐसे समर्पित-जीवनको पाकर हमारा देश सचमुच गौरवान्वित हुआ।

श्रीभाईजीका पावन चरित्र एवं उनकी धार्मिक अटूट निष्ठा हमारे लिये प्रकाश-स्तम्भ है। इस समय और भी अधिक आवश्यकता है कि हम सब उनसे सत्प्रेरणा प्राप्तकर अपने जीवनको भक्तिमय, धर्ममय, सेवा-परायण एवं लोकोपकारी बनायें। महापुरुषोंका चरित्र-गान एक तीर्थयात्रा है। श्रीपोद्दारजीके चरित्रको स्मरण करना, उनके कार्यों एवं भावनाओंको याद करना अपने जीवनको उन्नत बनाना है।

लक्ष्मीपति सिंहानिया
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजी-जैसे महाप्राण व्यक्ति राष्ट्रमें ही नहीं, अपितु विश्वमें भी दुर्लभ हैं। हमारे परिवारका तो उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनका अभाव सर्वदा खलता रहेगा। भाईजीने समाज एवं राष्ट्रको धार्मिक सिद्धान्तों-का पालन करनेका आदर्श मार्ग प्रदर्शित किया। हमारे पास शब्द नहीं हैं, जिनसे उनकी गुणगाथा पूर्णरूपसे अङ्कित की जा सके।

श्रद्धेय भाईजीका अनेक व्यक्तियोंसे सम्पर्क था और वे सभीसे प्रेम करते थे; परंतु हम जब भी उनका दर्शन करने जाते थे, तब ऐसा लगता था कि वे हमसे ही सर्वापेक्षा अधिक स्नेह करते थे। यह उनकी महानता थी। उनके दर्शन और साधन-सम्बन्धी उपदेशका श्रवण करके हमारे-जैसे संसारलिप्त जीवोंके मनमें भी एक बार शान्ति जरूर आ जाती थी।

वे इतने उदार और दयालु थे कि लोग उनके पास जो भी इच्छा लेकर जाते थे, उसकी पूर्ति हो जाया करती थी।

मेरी समझमें ऐसे दुर्लभ महापुरुष जीवोंका कल्याण करने हेतु कभी-कभी ही भगवदिच्छासे संसारमें आते हैं और भगवदिच्छानुसार कार्य सम्पन्न करके परमधाम चले जाते हैं।

श्रीभाईजीने जीवोंके कल्याणके लिये दृढ़ निष्ठापूर्वक भगवद्भक्तिका क्रियात्मकरूपसे प्रचार-प्रसार किया, जिसे अपनाकर हम सहजमें ही अपना कल्याण कर सकते हैं।

हनुमानप्रसाद धानुका
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजी एक महान् व्यक्ति थे। उन्होंने जीवनभर मानव-जातिकी एवं हिंदू-संस्कृति और सनातनधर्मकी महती सेवा की है। वे कई भाषाओंके ज्ञाता तथा प्रकाण्ड विद्वान् थे। श्रीभाईजीका साहित्य उनकी स्मृतिको चिरस्मरणीय बनाये रखेगा। ऐसे महान् व्यक्तिकी स्थान-पूर्ति होनी सम्भव नहीं। मेरे प्रति श्रीभाईजीका जो प्रेम था, वह बराबर याद रहता है।

दामोदर लाल जयपुरिया
बम्बई

● ● ●

श्रीभाईजीके उठ जानेसे भारतीय संस्कृतिका एक महान् व्यक्तित्व उठ गया। वे अपनेमें अकेले थे। उनका स्थायी कार्य उनका जीवन्त स्मारक है। उन्होंने धर्म-भारतीकी अतुल सेवा की। उनके अभावको मैं व्यक्तिगत क्षति मानता हूँ।

(पद्मश्री) पोद्दार रामावतार अरुण
समस्तीपुर

● ● ●

श्रीपोद्दारजीका निःस्वार्थ सेवाभाव एवं तपोनिष्ठ जीवन समाज तथा देशके लिये एक जाज्वल्यमान नक्षत्र-की भाँति रहा। उनके निधनसे हिंदूधर्म एवं संस्कृतिकी अपूरणीय क्षति हुई है।

गिरधरदास मूँधड़ा
कलकत्ता

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रेरणाके महान् स्तम्भ थे। उनके परलोक-गमनसे जो अपूरणीय क्षति हुई है, उसकी पूर्ति अभी अथवा बादमें भी कभी कदाचित् ही हो सकेगी। आज हम कितने अकिंचन हो गये हैं। यद्यपि भगवान्के आदेशानुसार उनका नश्वर शरीर इस संसारसे ओझल हो गया है, तथापि मेरा विश्वास है कि उनका आध्यात्मिक स्वरूप सभी आस्तिक एवं नास्तिक जनोंको समानरूपसे अब भी प्रकाश देता रहेगा।

विश्वेश्वरदास दमानी
मद्रास

● ● ●

पूज्य श्रीभाईजीने अपने द्वारा लिखित तथा सम्पादित साहित्यसे सनातनी समाजको सुसंगठित और पुष्ट किया है तथा विदेशोंमें भी सनातनधर्मके प्रति लोगोंको आस्थावान् बनाया है। श्रीभाईजीके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि उनके साहित्यको पढ़ना, उसपर अमल करना तथा उसके प्रचार-प्रसारके लिये सतत प्रयत्नशील रहना ही है। साहित्य ऐसी चीज है, जिससे मनुष्यमें परिवर्तन आता है। नवयुवकोंको चाहिये कि वे श्रीभाईजीके लेखों तथा गीताप्रेससे प्रकाशित साहित्यकी ओर रुचि रखें। इससे उन्हें जीवनकी प्रत्येक दिशामें सफलता मिलेगी।

ताराचन्द सराफ
प्रधान मन्त्री—सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति,
कलकत्ता

● ● ●

श्रीपोद्दारजी बहुत बड़े व्यक्तित्वके धनी साधुहृदय पुरुष थे। वास्तवमें, उनमें कुछ दैवी शक्ति थी, जिससे उनकी आकृति अत्यन्त प्रभावकारी और आकर्षक दिखायी पड़ती थी। जो भी व्यक्ति उनकी ओर देखता, वह अति सम्मान और श्रद्धासे उनके सामने नत हुए बिना नहीं रह सकता था। दूसरी छाप जो उनकी मुझपर पड़ी, वह यह थी कि वे सदैव प्रत्येक व्यक्तिकी भरसक सहायता करते थें, चाहे वह उनसे घनिष्ठरूपसे सम्बन्धित हो या न हो। उन्होंने भारतीय धर्म और साधनाके प्रचार-प्रसारके निमित्त महान् सेवाएँ की हैं।

गजानन्द खेतान
कलकत्ता

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सनातनधर्मकी एक जीती-जागती संस्थाके रूपमें चिरस्मरणीय रहेंगे।

वे उच्चकोटिके विद्वान्, साधक, प्रवचनकर्ता, लेखक, कवि, सम्पादक, सार्वजनिक कार्यकर्ता, नेता और सर्वोपरि सबके सुहृद्, सबके सच्चे अर्थमें 'भाईजी' थे।

उनके द्वारा अगणित लोगोंका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपसे उपकार हुआ है।

उनकी रचनाएँ वर्तमान पीढ़ीको ही नहीं, अपितु भावी पीढ़ियोंको भी सदा प्रकाश देती रहेंगी।

गो-रक्षा-आन्दोलनके वे प्राण थे। भारतकी अनेक धार्मिक और सार्वजनिक लोकोपकारी संस्थाओंको उनसे सक्रिय सहयोग और प्रेरणा मिलती रहती थी। अध्यात्म-विद्याके प्रचार और प्रसारके वे एक महान् शक्तिशाली स्रोत थे।

इन सब बातोंसे भाईजी सबके हृदयपर छा गये थे। उनके सम्पर्कमें आनेवाले सभी वर्गोंके लोग उन्हें अपना सुहृद् समझकर गौरवका अनुभव करते थे।

वास्तवमें भाईजीका जीवन आदर्श, अनुकरणीय और सफल रहा।

गोविन्दलाल बाँगड़
कलकत्ता

● ● ●

श्रीपोद्दारजी इस कुतर्कग्रस्त एवं नास्तिकता-प्रधान युगमें अपने साधना-सिद्ध, शुद्ध, सरल, सात्विक जीवनमें 'कल्याण' और गीताप्रेसके माध्यमसे निष्ठापूर्वक सनातन-धर्म-प्रचारकी दिशामें असाधारण कार्य कर गये हैं। वे अनन्य हरिभक्तिपरायण परम भागवत थे। उनके रिक्त स्थानकी पूर्ति करनेवाला अब कोई दृष्टिपथमें नहीं आता। मेरे वे पुराने सत्यस्नेही थे।

झाबरमल शर्मा
भूतपूर्व सम्पादक, 'कलकत्ता समाचार'

● ● ●

भाई हनुमानप्रसाद पोद्दार गोमाताके परमभक्त थे। उनके लिये मेरे हृदयमें सदा विशेष सम्मान रहा है और यह इससे समझा जा सकता है कि सन् १९४३में प्रकाशित मेरा ग्रन्थ 'ब्रजभाषाका व्याकरण' उन्हींको समर्पित हुआ है। महर्षि मालवीय, राजर्षि टण्डन तथा पोद्दारजीको ही मैंने ग्रन्थ समर्पित किये हैं। इसीसे समझिये कि उन्हें मैं किस कोटिमें रखता था।

आचार्य किशोरीदास बाजपेयी

● ● ●

श्रीपोद्दारजीका मेरे प्रति गहरा स्नेहभाव था। वे मेरे लिये श्रद्धेय थे। उनके जैसा पावन व्यक्तित्व बहुत कम देखनेमें आता है। अपने सिद्धान्तोंको उन्होंने स्वयं आचरित करके दिखा दिया था। उनका हृदय नवनीतके समान कोमल था। स्वभाव बालोचित सरल और सबके प्रति मैत्रीपूर्ण, तथा करुणासे आप्लावित। परोपकार-वृत्ति निश्छल और सहज। हरि-भक्तके और लक्षण ही क्या हो सकते हैं ?

जीवनके अन्तिम दिनोंमें काफी दिनोंतक उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा, तथापि वे 'स्वस्थ' थे अर्थात् अपने आपमें स्थित थे। जीवन उनका सतत साधना करते हुए स्थितप्रज्ञका हो गया था। क्रोध और द्वेषको उन्होंने जीत लिया था। उनके साथ जिसका किसी बातमें मत नहीं मिलता, उसके प्रति भी वे मैत्रीभाव रखते थे। भगवद्-भक्ति उनके रोम-रोममें एकरस हो गयी थी। हृदय उनका सरल और सरस था। किसीको दुःखी नहीं देख सकते थे। अन्तरसे करुणाका स्रोत सदा बहता रहता था।

गीताप्रेसके द्वारा उन्होंने बड़े महत्त्वका काम किया—प्राचीन ग्रन्थोंको शुद्ध रूपमें और सुलभ मूल्यमें प्रकाशित-प्रसारित करके। 'कल्याण'का सम्पादन करते-करते वे स्वयं 'कल्याणमूर्ति' बन गये थे। भारतीय धर्म और संस्कृतिको उनके देहावसानसे निस्संदेह अपूरणीय क्षति पहुँची है।

मेरे साथ उनका जो स्नेहभाव था, उसे शब्दोंमें कैसे व्यक्त करूँ ? लगभग ४५ वर्षोंसे मैं उनके स्नेहका भाजन रहा। जब 'प्रेमयोग' गीताप्रेसमें छप रहा था, तब मुझे उनका सत्सङ्गलाभ तीन सप्ताहतक मिला था। तबसे हमारी आत्मीयता बढ़ती ही गयी। पिछले दिनों ऋषिकेशमें जब उनसे मिलना हुआ, तब क्या पता था कि वही हमारी अन्तिम भेंट होगी। आशा करनी चाहिये कि गीताप्रेस और गीता-भवन तथा अन्य संस्थाएँ उनसे अदृष्ट प्रेरणा लेती रहेंगी; क्योंकि वे ही उनकी पुण्य-स्मारिका हैं। मैं बन्धुवर हनुमानप्रसादजीको अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

वियोगी हरि

● ● ●

आधुनिक कालमें हिंदू-विचारधारा और संस्कृतिको समुन्नत करने और उसका प्रचार करनेमें जितना काम श्रीहनुमानप्रसादजीने किया, उतना किसी अन्यने नहीं किया है। वास्तवमें हम उनके बड़े ऋणी हैं और उनके अतिप्रिय उच्चादर्शोंको अपने सामान्य ढंगसे आगे बढ़ानेका प्रयास करके हम उनके ऋणसे केवल कुछ अंशतक मुक्त होनेकी आशा कर सकते हैं।

प्रो० आर० एन्० दाण्डेकर
भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट,
पूना

● ● ●

श्रीभाईजीके परलोक-गमनसे बड़ा ही दुःखी हुआ हूँ। वे सच्चे अर्थमें धार्मिक महापुरुष थे। उनके चले जानेसे उनका स्थान सदाके लिये रिक्त हो गया है।

राय कृष्णदास
भारत कला भवन, वाराणसी

● ● ●

श्रीभाईजी मुझ-जैसे कितनोंको अनाथ करके चले गये, इसका लेखा संख्याकी परिधिमें नहीं आता। क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ? आज हिंदी-हितैषियोंका सचमुचका संरक्षक उठ गया। श्रीभाईजी भारतके सचेतक, संरक्षक एवं पूज्य नेता थे।

जवाहरलाल चतुर्वेदी
सूरसागर कार्यालय, मथुरा

● ● ●

श्रीभाईजी इस विकट कलिकालमें एक दिव्य पुरुष थे—एकदम निरीह, निर्लिप्त तथा निस्सङ्ग। धर्मकी आत्मा उनके विविध कार्योंमें अभिव्यक्त होती थी। उनका जीवन अध्यात्ममार्गपर चलनेवालोंके लिये प्रकाशपुञ्ज था। भगवान् हमें उनके जीवनके आदर्शको समझने तथा आचरणमें उतारनेकी क्षमता प्रदान करें।

पं० बलदेव उपाध्याय
वाराणसी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकों तथा 'कल्याण' मासिक पत्रके द्वारा पवित्र प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सनातनधर्मकी जो अमूल्य सेवाएँ की हैं, वे चिरस्मरणीय रहेंगी। जीवनके अन्तिम वर्षोंमें श्रीपोद्दारजीने भारतीय संस्कृतिके आधार एवं मूलस्रोत वेदोंकी रक्षाके उद्देश्यसे उसके अध्ययन-अध्यापनके लिये 'भारतीय चतुर्धाम वेदभवन न्यास'की स्थापनामें बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया तथा उसके कार्यको सँभाला और आगे बढ़ाया। इससे उनकी दूरदर्शिता एवं भारतीय संस्कृति तथा धर्मकी रक्षाके प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित होता है। यद्यपि श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दारका पार्थिव शरीर अब नहीं रहा, तथापि उनकी कृति अमर रहेगी। श्रीमान् हनुमान-प्रसादजी पोद्दारका हृदय भगवद्भक्तिसे ओत-प्रोत था, अतः वे स्वयं कृतकृत्य थे। उनके जीवनका अधिकांश भगवद्भक्तिके प्रचार तथा लोककल्याणके स्थायी पुण्यकार्योंमें बीता। उन्होंने जो कुछ किया, उससे परमार्थ-पथके पथिकोंका सदा पथ-प्रदर्शन होता रहेगा तथा प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी।

विद्यादेवी
संचालिका—श्रीभारतधर्म महामण्डल,
वाराणसी

● ● ●

पुण्यश्लोक श्रीपोद्दारजीकी स्मृति आते ही मन सहसा कह उठता है कि भगवान्ने स्वयं ही श्रद्धेय पोद्दारजीके रूपमें जन्म लेकर धर्मसंस्थापन किया है—'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।' आधी शताब्दीके लगभग 'कल्याण' मासिकके द्वारा पुण्यकीर्ति गुरुवर्यने जो अध्यात्मका संवर्धन किया, वह सर्वविदित है। आज जहाँ कहीं भी धर्मकी ध्वनि है, वहीं 'कल्याण'के प्रवर्तकके रूपमें श्रीपोद्दारजीकी धर्मधवला कीर्ति प्रसृत है। उनकी सौम्य मूर्ति तथा पराभक्तिसे आलोकित मुखमण्डलकी विह्वलकारिणी स्मृति हम सबको आह्वान करती है कि उनके प्रारम्भ किये कामोंको आगे ले जायँ, जिससे संस्कृति-प्रधान भारत फिरसे कश्मलमें न फँस जाय।

डा० लोकेशचन्द्र
सरस्वती विहार, नयी दिल्ली

● ● ●

श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी पोद्दार चले गये। उनके जानेसे एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया है, जिसकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकती। उनकी-सी आत्मीयता कहाँ मिलेगी? वास्तवमें उनके निधनसे मानवताका एक शक्तिशाली स्तम्भ टूट गया, भारतीय संस्कृति रंक हो गयी। उन-जैसे सत्पुरुषकी आजके युगमें बहुत ही आवश्यकता थी।

पोद्दारजीके जीवनका आरम्भ एक क्रान्तिकारीके रूपमें हुआ था। उनमें तड़प थी कि देश स्वतन्त्र हो। क्रान्तिकारीके रूपमें उन्होंने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया, अनेक यातनाएँ सहीं। आगे चलकर उनका झुकाव अध्यात्मकी ओर हुआ तो उस क्षेत्रमें भी उन्होंने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। 'कल्याण', गीताप्रेस और गीताप्रेस-के प्रकाशन उनके यशस्वी जीवन और उदात्त विचारोंके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि देशवासी शुद्ध और प्रबुद्ध बनें। वे भारतीय संस्कृतिके परम उपासक थे और अपने जीवनके अन्तिम क्षणतक उसका संदेश देते रहे।

पोद्दारजीकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनका हृदय अत्यन्त स्पन्दनशील था। उनके निकट सम्पर्कमें आनेका हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके कितने ही पत्र हमें मिले। उन पत्रोंमें हमें उनके हृदयकी धड़कन निरन्तर सुनायी देती थी।

उनकी उदारताकी तो सीमा ही नहीं थी। वे किसीको कष्टमें नहीं देख सकते थे और कष्ट-पीड़ितोंकी सेवामें तन-मन-धनसे संलग्न रहते थे।

सब उन्हें 'भाईजी' कहकर सम्बोधित करते थे और वे सच्चे अर्थोंमें सबके बड़े 'भाई' ही थे। ऐसे प्यारसे मिलते थे कि हृदय गद्गद हो उठता था।

उनके जानेपर आज भी विश्वास नहीं होता। यह नश्वर शरीर किसीका भी अमर नहीं है; पर कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनकी भौतिक कायाके ओझल हो जानेपर भी वे सदा जीवित रहते हैं। भाईजी उन्हींमेंसे एक थे। हमलोगोंपर और 'मण्डल'पर उनका असीम अनुराग था। ऐसा जान पड़ता है, मानो हमारे परिवारका एक बहुत ही प्रियजन चला गया।

यशपाल जैन
सस्ता साहित्य-मण्डल,
दिल्ली

● ● ●

यद्यपि मेरा श्रीपोद्दारजीसे साक्षात्कार कभी नहीं हुआ था, तथापि गीताप्रेसके प्रकाशनों एवं 'कल्याण'का पाठक होनेके नाते उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति मेरे मनमें भरी है। वैसे तो यह प्रभुकी लीला है कि जो इस जगत्में आता है, उसे जाना ही होता है; परंतु श्रीहनुमानप्रसादजी अपने पीछे ऐसे पद-चिह्न छोड़ गये हैं, जो संसारके कर्मठ व्यक्तियोंका मार्गदर्शन करते रहेंगे।

मैंने तो गीताप्रेसके प्रकाशनोंसे बहुत कुछ प्राप्त किया है। हिंदू-समाजमें प्रचलित अद्वैतवादसे मतभेद रखते हुए भी श्रीपोद्दारजीके कार्यसे अपने विचारों एवं तदनुसार लिखित लेखोंमें अमूल्य सहायता पाता रहा हूँ। श्रीपोद्दारजीका कार्य चलता रहना चाहिये।

गुरुदत्त उपन्यासकार
दिल्ली

● ● ●

श्रीपोद्दारजी जीवन्मुक्त महामानव थे। उनका व्यावहारिक जीवन उनके आध्यात्मिक जीवनसे पृथक् नहीं था—गीताके सांख्ययोग, कर्मयोग और भक्तियोगकी त्रिवेणीमें स्नात था। वे यशःशरीर और अम्लान कृतित्वसे अमर हैं। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व विराट् थे।

देवदत्त शास्त्री
हिंदी साहित्य सम्मेलन,
इलाहाबाद

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी भारतीय संस्कृति और धर्मकी एक अमूल्य निधि थे। सनातनधर्मके लिये उन्होंने विश्वकोषका कार्य किया। एक बड़े व्यापारीने अपना व्यापार बंदकर परमत्यागी श्रीसेठ जयदयालजी गोयन्दकाके साथ हिंदू-धर्म, विशेषतया सनातन-धर्मके लिये जो लेखन और प्रकाशनका कार्य किया है, वह भारतवर्षके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे अङ्कित है और रहेगा।

मानवमात्रके जीवनको आलोक देनेवाले और उसका पथ-प्रदर्शन करनेवाले गीता ज्ञान और साहित्यको साधारण-से-साधारण जनतातक पहुँचानेका जो कार्य उन्होंने किया है, वह आज बड़े-से-बड़े धन-सम्पत्तिशाली और अन्य व्यक्तिके लिये भी सम्भव नहीं। सात सौ श्लोकोंकी शुद्ध छपी गीता दो पैसे मूल्यमें साधारण-से-साधारण व्यक्तिको मिल सके, इससे बढ़कर जनसेवाका कार्य और क्या हो सकता है?

'कल्याण' मासिक पत्रिका, जिसमें विज्ञापन नहीं होता, एक लाख पैंसठ हजारकी संख्यामें भारत और विदेशोंमें धर्म-प्रचारका जो कार्य कर रही है, श्रीपोद्दारजीके ही अनुरूप है।

भारतीय धर्म और संस्कृतिके प्रचार-प्रसारका उनके द्वारा जो महान् और व्यापक कार्य हुआ, वह मानव-कार्य नहीं, अपितु दैविक कार्य है। उनमें एक दैविक शक्ति और प्रतिभा थी। ईश्वरने ऐसी पवित्र आत्माको जहाँ अपने चरणोंमें शरण दी है, वहाँ उनसे हमारी प्रार्थना है कि उनके द्वारा जलायी गयी ज्योतिको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये गीताप्रेसके संचालकोंको शक्ति प्राप्त हो।

डा० गोस्वामी गिरधारीलाल
मन्त्री—सनातन-धर्म प्रतिनिधि सभा, नयी दिल्ली

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, जिन्हें लोग 'भाईजी'के नामसे जानते थे, गीताप्रेसके प्राण थे। उनकी प्रेरणा एवं प्रयत्नसे हिंदूधर्मकी अनेक पुस्तकें सस्ते दामोंपर गीताप्रेससे प्रकाशित हुई हैं। कई पुराण, जो उपलब्ध नहीं थे, जैसे विष्णुपुराण, अब प्राप्य हैं। महाभारतका मूलसहित हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध नहीं था, वह भी अब प्राप्य है। इसी प्रकार बहुत-से उपनिषद् भी निकले हैं। श्रीपोद्दारजीके प्रयाससे गीताप्रेसने अपना कार्यक्षेत्र बहुत बढ़ाया है। श्रीपोद्दारजी हिंदूधर्मके उन स्तम्भोंमें थे, जिनके कारण भारतमें धर्मका विशेष प्रचार हुआ है। मैंने भी उनके भाषण गीता-भवन, ऋषिकेशमें सुने थे। प्रायः वे भगवान्की भक्तिपर ही बोलते थे। उनके भाषणमें प्रेमका पर्याप्त पुट रहता था। उनके भाषण इतने हृदयग्राही होते थे कि उठनेको जी ही नहीं चाहता था।

मुझे एक बार उनसे व्यक्तिगत वार्तालापका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे इतने सरल थे कि यह जानना कठिन था कि ये इतने बड़े व्यक्ति हैं। इनके व्यवहारमें सौम्यता, मृदुलता तथा गम्भीरता कूट-कूटकर भरी हुई थी। वे मुझसे बड़े ही प्रेमसे इस प्रकार मिले, जैसे कोई आत्मीय स्वजन हों।

मैं प्रायः तीस वर्षोंसे 'कल्याण'का ग्राहक हूँ। इस अवधिमें बहुत-से ऐसे लेख 'कल्याण'में निकले, जिनका मेरे जीवनपर बहुत प्रभाव पड़ा।

डा० राय गोविन्दचन्द
कुशस्थली, वाराणसी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका परिचय यदि किसी एक शब्दमें देना हो तो हम उन्हें बिना किसी तर्क-वितर्कके 'धर्ममूर्ति' कह सकते हैं। शास्त्रमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रिय-निग्रह आदि जो धर्मके लक्षण कहे गये हैं, श्रीपोद्दारजीमें उन सबका पर्याप्त मात्रामें विकास दीख पड़ता था। आजके युगमें कोई व्यक्ति धर्मके एक लक्षणको भी आत्मसात् कर पाये, यह कितना कठिन है। प्रत्येक धर्मभीरु पुरुष अपने जीवनसे इसका अनुभव कर सकता है। राष्ट्रकी परिस्थिति ऐसी हो गयी है और नित्य नये बननेवाले कानूनोंका ताना-बाना इतना जटिल बन गया है कि सर्वात्मना चाहता हुआ भी कोई व्यक्ति पापसे सर्वथा अस्पृष्ट नहीं रह पाता। परिस्थितियाँ उसे कुण्ठित कर देती हैं—वह 'एक ओर कुआँ तो दूसरी ओर खंदक' देखकर दोनोंमेंसे किसको चुने ? एक बार एक बड़े सुप्रसिद्ध महात्माने हमसे कहा था—"शास्त्रोंमें कलिकालका वर्णन करते हुए जो यह लिखा गया है कि इस युगमें राजा और प्रजा—सब चोर हो जायेंगे, उसे पढ़कर हम सोचते थे कि हम क्यों चोर होंगे ? हम हर्गिज चोर नहीं होंगे। परंतु परिस्थिति हमें भी चोर बननेके लिये विवश कर देती है । कुम्भ-पर्वपर जानेवाले यात्रियोंके लिये सरकारी आज्ञा थी कि 'हैजेका टीका अवश्य लगाओ ।' हम अपवित्रताके कारण उसे लगाना नहीं चाहते थे । हमारे एक भक्त डाक्टरने झूठमूठ टीकेका प्रमाण-पत्र लिखकर हमारे ब्रह्मचारीको दे दिया। यह ठीक है कि हमने स्वयं कुछ नहीं कहा, तथापि हमें यह तो विदित ही था कि झूठे प्रमाण-पत्रसे हम यात्रा कर रहे हैं। क्या यह चोरी नहीं है ?" ऐसी ही अनेक परिस्थितियोंमें पड़ा आजका धर्मभीरु व्यक्ति जाने-अनजाने क्या-क्या करता रहता है—यह प्रसङ्गान्तर है। धर्मराज युधिष्ठिर भी परिस्थितिके चक्करमें पड़कर अर्द्ध सत्य 'अश्वत्थामा हतः' कहनेको विवश हो गये थे। क्रय-विक्रयको तो 'सत्यानृत' नामसे ही स्मरण किया गया है। ऐसी परिस्थितिमें वैश्यजातिसमुत्पन्न और गीताप्रेस-जैसी महान् धार्मिक संस्थाका नियन्त्रण करते हुए भी श्रीपोद्दारजी पैनी दृष्टिसे देखनेवाले छिद्रान्वेषियोंकी गृध्रदृष्टिमें भी कहींपर सत्यसे च्युत लक्षित नहीं हो सके। अतः वे एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति कहे जा सकते हैं। उनका अनुद्वेजक व्यवहार तो सभी आत्मीयजन पदे-पदे अनुभव करते थे। सम्प्रति सभी वर्गके लोग उनको श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते दीख पड़ते हैं। यह 'अहिंसा'-प्रतिष्ठाका ही फल है।

आजके युगमें जीवनभर 'अहं ब्रह्मास्मि'का उपदेश देनेवाले अधिकांश महात्मा भी शरीरके व्यामोहमें पड़कर प्रायः अशुद्ध दवा खाते हुए ही अस्पतालोंमें मरते हैं। परंतु वर्षोंसे अस्वस्थ रहते हुए भी श्रीपोद्दारजी अपने 'शौच'-सम्बन्धी नियमपर दृढ़ रहे।

यद्यपि वे एक विश्वविख्यात धार्मिक पत्रके सम्पादक थे, समस्त भारतके निवासी ही नहीं, प्रवासी भारतीय भी उनके स्वागतमें पलक-पाँवडे बिछाते थे, तथापि अपने इस महत्वका गर्व उन्हें कभी स्पर्शतक नहीं कर सका। वे 'अमानी मानदो मान्यः' के प्रत्यक्ष निदर्शन थे। ब्रह्मण्यता उनके रोम-रोममें व्याप्त थी। हमने कभी उनको अप्रिय सत्य बोलते किंवा 'अनृतप्रिय' बोलते नहीं देखा। निश्चय ही वे योग-साधक थे, वे जीवनकालमें सदैव धर्मनिष्ठ रहे और सम्प्रति अपनी वह अमर कीर्ति छोड़ गये हैं, जो अनन्तकालतक धर्म-मार्गके पथिकोंको 'चरैवेति चरैवेति' की प्रेरणा प्रदान करती रहेगी। हम ऐसे धर्ममूर्ति व्यक्तिके प्रति अपनी श्रद्धा-सुमनाञ्जलि अर्पण करते हैं।

माधवाचार्य
दिल्ली

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार महोदयका आत्यन्तिक वियोग बहुत दुःखजनक है। उन्होंने 'कल्याण'के माध्यमसे जनताको अन्तर्बहिर्निश्छलता, उदारता तथा धर्मदृढ़ताका पाठ पढ़ाया था। वे देशभक्ति, जनतासे प्रेम, छलका त्याग, भगवद्भक्ति, धार्मिक साहित्यसे प्रेम, हिंसा-द्वेषादिसे दूरीभाव, गोभक्ति आदिकी दीक्षासे जनताको दीक्षित करते थे। उन्होंने 'कल्याण'द्वारा सनातनधर्मकी बड़ी सेवा की । उन्होंने कभी किसीका मन नहीं दुखाया । किसीके मतका खण्डन करना वे पसंद नहीं करते थे । उन्होंने प्रयत्न किया कि किसी भी मत या सम्प्रदायके अनुयायी उनसे बुरा न मानें।

उन्होंने सबसे प्रेम करना सिखाया। वे अहंकारहीन, दयामूर्ति, तपोमूर्ति और मानवताके सच्चे पुजारी थे। उन्होंने जनताकी नस-नसमें आस्तिकता तथा ईश्वर-परायणताका बीज बोया।

अन्तिम समयमें तीव्र पीड़ा होनेपर भी उन्होंने हिंसाजन्य दवाओंका इंजेक्शन अपने स्वजनों एवं डाक्टरोंके बहुत कहने-सुननेपर भी नहीं लगवाया। उन्होंने प्राणोंकी परवाह न करते हुए, तीव्र पीड़ा सहते हुए भी हिंसाको —चाहे वह परोक्ष ही क्यों न हो—अपनाना स्वीकार नहीं किया।

श्रीपोद्दारजी आत्मप्रशंसासे कोसों दूर रहते थे। उनके गुण बहुत हैं, उन सबका पूर्ण वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रभुसे प्रार्थना है कि ऐसे सत्पुरुष जनताको सन्मार्गपर लानेके लिये यदा-कदा अवतीर्ण होते रहें।

दीनानाथ शर्मा शास्त्री सारस्वत
प्राचार्य, रामदल संस्कृतमहाविद्यालय
दिल्ली

● ● ●

एक ही व्यक्तिमें इतने भव्य गुणोंका इतनी प्रचुर मात्रामें संगम, जितने श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमें मिलते थे, सर्वथा दुर्लभ है। भारतवर्ष एक पवित्र देश है, जो स्वयं भगवान्‌के बार-बार अवतारसे परिष्कृत होता रहा है। संसारके किसी अन्य देशमें स्वयं भगवान्‌ने अवतार नहीं लिया है। फिलिस्तीनमें उन्होंने अपने पुत्र ईसाको ईसाई धर्मका उपदेश देनेके लिये भेजा। अरबमें उन्होंने अपने पैगम्बर मोहम्मदको भेजा। परंतु भारतवर्षमें उन्होंने स्वयं अवतार लिया और केवल एक बार नहीं, बार-बार।

अनेकों पुण्यश्लोक व्यक्ति भारतवर्षमें पैदा हुए हैं। संसारमें अन्यत्र कहीं भी इतने पुण्यश्लोक व्यक्ति नहीं हुए। जिन असंख्य महापुरुषोंने भारतमें जन्म लिया, उनमेंसे वाल्मीकि, व्यास, शंकर, रामकृष्ण, विजयकृष्ण गोस्वामी, संतदास बाबाजी आदि केवल कुछ चुने हुए महापुरुषोंकी सूचीमें हम भव्यप्रकाशयुक्त नक्षत्ररूप महात्मा जयदयालजी गोयन्दका एवं महात्मा हनुमानप्रसादजी पोद्दारको सम्मिलित कर सकते हैं। भारतवर्षके धार्मिक जीवनमें इन दो व्यक्तियोंके कार्योंका सम्यक् मूल्याङ्कन असम्भव है। इन्होंने हिंदी धार्मिक मासिकपत्र 'कल्याण'की स्थापना की, जिसकी ग्राहक-संख्या १,६५,००० हो गयी है। इतनी बड़ी ग्राहक-संख्याके अल्पांशका भी दावा कोई दूसरी धार्मिक पत्रिका नहीं कर सकती। मासिक अङ्क सुन्दर लेखों तथा भव्य चित्रोंसे भरे होते हैं। इसके अतिरिक्त इसके विशेषाङ्क स्वयं एक बहुमूल्य पुस्तकालय-सदृश हैं, जिसके अन्तर्गत गीता, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराणादिका समावेश है।

महात्मा हनुमानप्रसादजीने गोरक्षा-आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया। कोई भी सत्कार्य उनके योगदानसे वञ्चित नहीं रहा है। वे स्वदेशकी विदेशी जूएसे मुक्ति हेतु जेल गये तथा नजरबंदीकी यातनाएँ सहीं। आश्चर्य इस बातका है कि वे इतने-सारे काम कैसे सँभाल पाते थे। लंबी बीमारियोंके बावजूद वे प्रत्येक नेक एवं उत्तम कार्यको करनेकी चेष्टा करते रहे। अब भगवान्‌ने उन्हें अपनी गोदमें ले लिया है। हमलोगोंपर श्रीपोद्दारजीद्वारा संस्थापित एवं संचालित संस्थाओंको जीवित रखने एवं विशेषतया नयी पीढ़ीमें धार्मिक भावनाका संचार करनेका कार्यभार आ पड़ा है।

बसन्तकुमार चट्टोपाध्याय
कलकत्ता

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सहज वैष्णव वृत्तिके आनन्दी महाजन थे। निकले थे क्रान्तिका अलख जगाने और जगाने लगे अलख निरञ्जन। शस्त्रोंसे झंकृत कानोंमें मधुराभक्तिकी पायलें गूँजने लगीं। यदि क्रान्तिकी अन्तिम परिणति मुक्ति है तो पोद्दारजी थे उसके जीवन्त प्रतीक। इस अर्थमें वे और श्रीअरविन्द समानधर्मा थे। उनकी अनासक्तिके असंख्य उदाहरण हैं। भारत सरकारने जब उन्हें 'भारतरत्न'की उपाधिसे अलंकृत करना चाहा, तब भी वे अनासक्त रहे, उसे स्वीकार नहीं किया। 'कल्याण' ही नहीं, गीताप्रेसके सभी प्रकाशन पोद्दारजीके कृतित्वके पावन पर्याय हैं। उनकी इहलीला समाप्त हो गयी। मुक्तिका दाता स्वयं मुक्त हो गया! लेकिन मुक्तिदाताकी मुक्ति कैसी? वह तो अनादि है, अनश्वर है!

गोविन्दप्रसाद केजरीवाल
सह-सम्पादक, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'

● ● ●

मैं महामानव पूज्य पोद्दारजीके उन अभागे कृपा-पात्रोंमेंसे हूँ, जिन्हें इस बुढ़ापेमें उनके बिछुड़ जानेका असह्य सदमा बर्दाश्त करनेको मजबूर होना पड़ा है।

पूज्य पोद्दारजी न केवल एक सफल पत्रकार थे, प्रत्युत प्रकाण्ड पण्डित और प्रतिष्ठित ग्रन्थकार भी थे। उनकी भाषाशैली बड़ी ही प्रभावोत्पादिनी थी। वे विषयको समझानेमें बहुत दक्ष थे। गूढ़ शास्त्रीय विषयोंको भी वे एक रोचक कहानीकी तरह समझा देते थे।

पूज्य पोद्दारजी परम निष्ठावान् भक्त थे, भक्तोंमें भी वे बहुत ऊँचे दर्जेके भक्त थे। शुद्ध आहार-विहार और आचारमें वे पूर्ण निष्ठावान् थे। जो कहते थे, उसपर पूरा-पूरा अमल करते थे। सहिष्णुता और सहृदयताकी वे सजीव मूर्ति थे। मैत्री और करुणाके वे अवतार थे और गरीबोंके मददगार। वे सही मानोंमें महामानव थे, परमभागवत और देशभक्त। देशकी स्वतन्त्रताके सेनानी थे। 'कल्याण'का सम्पादन करते-करते वे स्वयं ही 'कल्याण-स्वरूप' हो गये थे।

सबसे पहले उनके दर्शन मैंने आजसे लगभग ५० वर्ष पूर्व कलकत्ताके गोविन्दभवनमें किये थे। उनका बाह्य और भीतरी स्वरूप एक ही था। प्राणिमात्रके लिये उनके हृदयमें स्नेह और प्यार था।

वे 'पूर्णपुरुष' थे। वे इन्सानमें भगवान्को देखते थे, इन्सानकी सेवा पूजाकी भावनासे करते थे और उसमें दिन-रात लगे रहते थे। कितने लोगोंकी उन्होंने सेवा की, कितने लोगोंने उनके संगसे अपना जीवन सफल बनाया—इसका हिसाब लगाना असम्भव है।

गुरांदित्ता खन्ना
अमृतसर

● ● ●

लगभग पैंतीस वर्षोंसे मेरा श्रीपोद्दारजीके साथ प्रेमका सम्बन्ध रहा है। इस अवधिमें उनसे पत्र-व्यवहार भी होता रहा है। उनके पत्र बड़े ही मधुर और स्नेहभरे होते थे। वे मेरे आत्मीय-जैसे बन गये थे। वर्तमान भीषण परिस्थितियोंमें गीताप्रेस, 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु'द्वारा जन-मानसको धर्म और संस्कृतिकी ओर मोड़ना उन्हींका काम था। उनकी यह महान् सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। हिंदू-धर्मके प्रेमी, भक्त और प्रचारक होनेपर भी वे सभी मजहबी और साम्प्रदायिक संकीर्णताओंसे ऊपर थे। अपने दिव्य गुणोंसे वे इस पृथ्वीको देवके समान ही अलंकृत करते रहे। उनके परलोक-गमनसे देश-धर्मकी महान् हानि हुई है।

ताराचन्द पाण्ड्या
झालरापाटन सिटी

● ● ●

श्रीपोद्दारजीने राष्ट्र-भारती हिंदी और सनातन भारतीय संस्कृतिके प्रचार-प्रसारके लिये आश्चर्यजनक कार्य किया है। पत्रकारितामें उनकी सफलता अद्वितीय रही है। 'कल्याण'के द्वारा उन्होंने लाखों-करोड़ोंका जन-कल्याण किया है। भक्ति और संतत्वका जो प्रवाह उन्होंने बहाया, वैसा इस युगमें शायद ही किसीने बहाया हो। हम सबको सत्प्रवृत्तिके लिये उनसे निरन्तर प्रेरणाएँ मिलती रहेंगी।

साहित्य-वाचस्पति डा० बलदेवप्रसाद मिश्र
राजनांदगाँव

● ● ●

श्रीभाईजीके जानेसे मैं गल गया हूँ। लगता है––जैसे जीवनका प्रदीप बुझ गया है। चारों ओर अँधेरा है; जानता हूँ––अन्धकार और काँटोंके बीच भी चलना तो पड़ेगा ही, पर जैसे निष्प्राण हो गया हूँ। भाईजीपर लिखनेको कई बार लेखनी उठायी, पर जैसे व्यथा भी बोलना न जानती हो––मौन हो गयी हो। हारकर रख दी।

मैं जीवनके ४५ वर्ष उनसे दूर रहकर भी जैसे उनके सतत सांनिध्यमें रहा हूँ। उनका स्नेह मेरे जीवनपर छा गया था––जैसे मुझमें वही बोलता था, वही लिखता था। कभी-कभी ही मिलना होता था, पर वह मिलना भी क्या मिलना था––मैं तो बोल भी नहीं पाता था और वे सब-कुछ समझ जाते थे। न जाने कितना उन्होंने मेरे लिये किया है। अब जैसे उनके बिना जीवनकी कल्पना ही नहीं होती। काल ही इस दुःखको समेटेगा।

रामनाथ 'सुमन'
प्रयाग

● ● ●

'नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः'

जिनके परम पावन, परम मङ्गलमय चरणयुगलके सांनिध्यका अलभ्य लाभ गत चालीस वर्षोंसे अखण्ड भावसे बना रहा; जिनकी पवित्र गोदमें बैठकर भक्तिका ककहरा सीखनेका सौभाग्य मिला; जो मुझ-जैसे भूलभरे, धूलभरे शिशुको सदा अपनी अहैतुकी प्रीतिमें नहलाते और बहलाते रहे; जिन्होंने सहसा एक देवोत्थान-एकादशीकी मङ्गलमयी वेलामें ऋषिकेशकी गङ्गामें मेरा हाथ भगवान्के हाथोंमें देकर 'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि'का महामन्त्र सुनाया; जो मेरे लिये जीवन, प्राण और सर्वस्व थे, हैं और रहेंगे––अपने उन्हीं परम पूजनीय भाईजीके चरणोंमें मैं अपनी कोटि-कोटि प्रणति निवेदित करता हूँ। जिनका पार्थिव शरीर भले ही हमसे ओझल-सा हो गया प्रतीत होता है, परंतु जो सदा-सदैव हमारे साथ हैं, सर्वत्र और सर्वदा हमारी सार-सँभाल रखते हैं, जो सचमुच मानव-रूपमें साक्षात् श्रीहरि थे, अपने उन्हीं परमाराध्य, पूज्यचरण, पुण्यश्लोक श्रीभाईजीके चरणोंमें सभक्ति और प्रीतिपूर्वक कोटि-कोटि प्रणति निवेदित करता हूँ।

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
गया

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे धार्मिकाध्यात्मिकोंका, अध्यात्म-प्रचारका और साधकोंके अवलम्बका एक प्रबल ज्योतिर्मय स्तम्भ ढह गया !

गृहस्थ रहते हुए श्रीभाईजी अद्भुत आदर्श संत थे। उनके जैसा विनम्र, व्यवहारनिपुण, सर्वत्र भगवद्-बुद्धि रखनेवाला संत लोकमें दुर्लभ है।

'कल्याण'को उन्होंने जन्म दिया, पाला, बढ़ाया और देशका सर्वश्रेष्ठ पत्र बनाया।

उनका विपुल साहित्य, उनकी सरल सुबोध तुलसी-साहित्यकी टीकाएँ, उनकी कविताएँ और भजन, उनके 'शिव' उपनामसे लिखे 'कल्याण-कुञ्ज'के उत्प्रेरक उपदेश साधकोंके सदा प्रेरक-सहायक रहे हैं।

गीता, भागवत, रामचरितमानसके प्रचारमें उनका अथक उद्योग ही था कि ये ग्रन्थ भारतके घर-घरमें पहुँच गये।

श्रीभाईजी विद्वान् थे, देश-भक्त थे, हिंदूधर्मकी रक्षाके प्रधान प्रेरणा-स्रोत एवं प्रचण्ड आश्वासन थे।

साधकोंको सत्प्रेरणा, सुझाव, मार्ग-दर्शन उनसे निरन्तर मिलता रहा।

कहीं बाढ़ हो, अकाल हो तो श्रीभाईजी; कोई धर्मपर आपत्ति हो तो श्रीभाईजी; किसी साधकको मार्ग न सूझे तो श्रीभाईजी—पूरे देशमें उनकी सहायता, उनकी ज्योति, उनका आश्वासन दीर्घकालसे अवलम्बन रहा और वही महाछाया प्रदान करनेवाला कल्पवृक्ष अब कालने ढहा दिया!

मुझे तो उन्होंने अपने सगे छोटे भाई-जैसा स्नेह दिया है। वे नहीं हैं—यह सोचकर ही हृदय हाहाकार करता है।

वे महापुरुष नित्य श्रीगोलोकविहारीके निजी परिकर थे—उनके लिये कोई शुभ कामना क्या करेगा।

सहस्र-सहस्र जनोंके वे अपने सगे—अपने थे। उन सबके साथ अपनी भी अश्रुकी थोड़ी बूँदें उनके पावन पदोंमें चढ़ाता हूँ।

सुदर्शनसिंह 'चक्र'

● ● ●

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एक सफल तथा यशस्वी पत्रकार थे। 'कल्याण'-जैसे सुरुचिपूर्ण, सत्साहित्य-परक तथा धर्मप्रधान पत्रका दीर्घकालतक निष्ठापूर्वक सम्पादन कर जो ख्याति और लोकप्रियता उन्होंने प्राप्त की, वह अविस्मरणीय है। उन्होंने धर्म-ग्लानि-ग्रस्त समाजमें धर्मके प्रति नयी चेतना और नया उत्साह उत्पन्न किया। इस निमित्त उन्होंने बहुत-सा साहित्य प्रकाशित किया। भाईजी आदर्श पत्रकार और बड़े दृढ़व्रती थे। यदि दृढ़ संकल्प न होता तो इतना महान् कार्य कभी सम्पन्न नहीं कर पाते। वे भगवद्भक्त ही नहीं, पूरे संत थे, उनकी पत्रकारिता संतवृत्तिसे प्रेरित और अनुप्राणित थी। भाईजीने पत्रकारोंके सामने यह आदर्श उपस्थित किया कि देश-सेवा और समाज-सेवाका अपना एक ध्येय निर्धारित कर लें और फिर उसीकी पूर्तिमें तन-मनसे लगे रहें। यदि निःस्वार्थ भावसे त्यागपूर्वक सेवा-कार्य करना है तो 'संतवत्' निर्वाह और व्यवहार करना चाहिये।

यह बात उल्लेखनीय है कि बड़े-बड़े विद्वानों तथा संत-महात्माओंका सक्रिय सहयोग भाईजीको प्राप्त था; तभी तो 'कल्याण'के पाठकोंको उत्तमोत्तम लेख पढ़नेके लिये सुलभ होते रहे। प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमें बृहदाकार विशेषाङ्कोंके प्रकाशनका आयोजन 'कल्याण'की एक विशेषता रही है। उसके विशेषाङ्क, सुपाठ्य सामग्रीसे परिपूर्ण, अपने विषयके 'ज्ञान-सागर' होते हैं; और वे सभी पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी होते हैं। 'कल्याण' और उसके इन विशेषाङ्कोंके द्वारा भाईजीने हिंदूधर्म और संस्कृतिका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार तथा पुनरुज्जीवन किया।

भाईजीकी सेवाओंद्वारा गीताप्रेस एक महान् प्रकाशन-संस्था बन गयी—ऐसी पुण्य संस्था, जिसने संस्कृतका बहुत-सा अक्षय ज्ञान-भंडार राष्ट्रभाषा हिंदीमें सुलभ कर दिया। वाल्मीकि-रामायण और महाभारत-जैसे बड़े-बड़े ग्रन्थ ही नहीं, भगवद्गीता तथा अन्य अनेक उपनिषद् एवं पुराण हिंदी जगत्को उपलब्ध हुए। भारतीय धर्म, संस्कृति, तत्वज्ञान आदिका प्रचार-प्रसार करना तथा प्राचीन भारतीय वाङ्मयको राष्ट्रभाषामें प्रस्तुत करना भाईजीके जीवनका ध्येय—'मिशन' बन गया। वे जीवनभर बड़ी निष्ठाके साथ इस सत्कार्यमें संलग्न रहे। वे स्वयं बड़े भगवद्भक्त थे। उनका जीवन धार्मिकता एवं भक्ति-भावनासे ओत-प्रोत था। लेखनीके भी धनी थे वे। छोटी-बड़ी अनेक पुस्तकोंका उन्होंने प्रणयन किया। धार्मिक विषयोंपर उनके प्रवचन भी होते रहते थे। बहुत-से स्त्री-पुरुष भाईजीके भक्त बन गये थे। भाईजी अहर्निश भगवान्में तल्लीन रहते थे।

पोद्दारजी बहुत सौम्य प्रकृतिके पुरुष थे और उनमें बड़ी सहृदयता एवं विनम्रता थी। वे सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी ही नहीं, बड़े व्यवहारवादी भी थे। जनसेवामें उनका बड़ा विश्वास था, तभी तो बाढ़ अथवा अकालसे पीड़ित जनताको सहायता पहुँचानेके लिये गीताप्रेसका एक संगठन बन गया था। सरल जीवन और उच्च विचारके वे प्रतीक थे। भाईजी बहुमुखी प्रतिभाके धनी थे। ऐसे संतपुरुष और आदर्श पत्रकारकी पुण्य-स्मृतिके प्रति हम अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और नतमस्तक होकर उनका अभिवादन करते हैं।

शंकरदयालु श्रीवास्तव
भूतपूर्व सम्पादक—'भारत',
इलाहाबाद

● ● ●

संसारमें जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब-तब भगवान् अवतार लेते हैं। उनके पास कुछ मुक्त आत्माएँ भी रहती हैं। भगवान् उनके द्वारा भी धर्मकी रक्षा कराते हैं। श्रीपोद्दारजी ऐसी ही आत्माओंमेंसे थे, जिन्होंने ऐसे कठिन समयमें जीवनपर्यन्त धर्मकी रक्षा की। धर्म-रक्षाका यह कार्य उन्होंने 'कल्याण'द्वारा सम्पन्न किया, जो विश्वभरमें प्रसिद्ध है।

श्रीस्वामीजी महाराज
श्रीपीताम्बरापीठ, दतिया

● ● ●

श्रीपोद्दारजी श्रीभुवनेश्वरी माँके अनन्य भक्त थे। अपने स्वजनों-मित्रों आदिके समक्ष शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक—किसी भी प्रकारकी कठिनाई आ जानेपर वे उन्हें श्रीभुवनेश्वरी माँकी शरण लेनेको कहते थे और उसके निवारणके लिये माँके अनुष्ठान, पुरश्चरण, होम-हवन आदि कराते रहते थे। उनकी जीवन-यात्रामें ऐसे अनेक प्रसङ्ग हैं।

वे अपनी जीवन-यात्रामें सनातन वेदधर्मके सिद्धान्त हृदयमें दृढ़ करके तदनुसार जीवन-व्यवहार करते रहे। उनकी परोपकार-बुद्धि और गुप्त सेवा भी बड़ी विलक्षण थी। उनका लक्ष्मीपतियोंसे सदा यही कहना था—'भगवान्‌की दी हुई लक्ष्मीको भगवान्‌के अर्पण करना ही कर्त्तव्य है।' उनसे उपकृत मनुष्योंके हृदयमें उनकी स्मृति चिरकालतक रहेगी।

आचार्य श्रीचरणतीर्थजी महाराज
भुवनेश्वरीपीठ, गोण्डल

● ● ●

श्रीभाईजीके इस जगत्‌में न रहनेसे धर्मके सभी क्षेत्रोंमें भयंकर अभाव एवं अन्धकार छा गया है। सनातन भागवत-धर्मको श्रीभाईजीके न रहनेसे भयंकर ठेस लगी है। श्रीभाईजी कृतकृत्य थे। वे इस समयके श्रीराधातत्त्वके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता थे। असंख्य प्राणियोंको 'कल्याण'-पथमें ले चलनेमें श्रीभाईजी कभी थकते नहीं थे। श्रीभाईजीके स्नेह-जलसे सिञ्चित उनका परिवार बहुत विशाल है। वे सबके निजी आत्मीय थे। उनके ओझल होनेसे धर्म-कर्म एवं भक्तिमें लगे हुए जन-जनके हृदयमें कितनी टीस है, इसका नाप-तौल होना सम्भव नहीं।

स्वामी श्रीचक्रपाणिजी महाराज
नारायण-आश्रम, वृन्दावन

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका सारा जीवन भारतीय संस्कृति और हिंदू-धर्मके रक्षणके लिये अर्पित था। उन्होंने जीवनपर्यन्त त्याग और परिश्रमसे, अपने साहित्य तथा आचरणसे भारतीय जीवनको उन्नत बनानेकी प्रेरणा दी है। वे एक सत्यनिष्ठ तथा सदाचारी मानव थे, जिनके निधनसे देशकी अपूरणीय क्षति हुई है।

भारत साधु समाजके कार्यक्रमों तथा उद्देश्योंके प्रति उनकी बड़ी निष्ठा थी। गो-सेवा और गो-रक्षा तथा हिंदूधर्मके विकासमें उनका महान् योगदान सदा-सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

स्वामी श्रीहरिनारायणानन्दजी
भारत साधु समाज, नयी दिल्ली

● ● ●

बाल्यकालसे ही मैं एक नम्र साधनाका जीवन जी रहा हूँ। सबके प्रति मेरी आत्मीयता और आन्तरिक स्नेह है, किंतु साधना और अनुभूतिके सम्बन्धमें मैं अत्यन्त कठोर हूँ। साधारणतः मैं किसीको भी अपने हृदयमें आने ही नहीं देता, फिर बैठानेका प्रश्न ही कहाँसे हो ? हजार छन्नोंसे छननेके बाद ही कोई मेरे हृदयमें प्रवेश पा सकता है। मैं सन् १९४६से श्रीपोद्दारजीके परिचयमें हूँ। वे इस युगके श्रेष्ठ मनीषी थे——सूर्यके प्रकाशकी तरह सम्पूर्ण विश्वमें, कम-से-कम भारतमें तो यह सर्वजनमान्य, सर्वधर्म और सम्प्रदायोंसे स्वीकार्य सत्य ही नहीं, परम सत्य है।

जैनमुनि श्रीकनकविजयजी महाराज
वाराणसी

● ● ●

जीवनमें केवल सात दिन ही महामहिम श्रीभाईजीकी समीपताका अलभ्य लाभ प्राप्त हुआ था। वह अनुपम समागम मेरे अवशिष्ट जीवनमें चिर-स्मरणीय ही रहेगा।

मुझे उन दिनों ऐसा लगता था कि गीतावाटिका मानो 'श्रीराधावाटिका' ही है। मेरी चाह है कि श्री-भाईजीकी समीपताका ही अनुभव 'स्वप्नेऽपि' होता रहे।

समालोचना, निन्दा, परदोष-दर्शनरूपी मलिनतासे मन सम्मार्जित होकर श्रीभाईजीको गौण न बनाता हुआ, अनन्य——अव्यभिचारी भावसे उनकी अमृतवर्षिणी वाणीका ही समास्वादन करता रहे। उनके अन्तरङ्गतम स्वरूपका अनुभव करते हुए मेरे लिये 'श्रीराधामाधव-चिन्तन' ही सतत पठनीय विषय रह जाय। उनका प्रेममय महोज्ज्वल आदर्शपूर्ण दिव्य जीवन मुझे उपासना-मार्गमें अद्भुत एवं अप्राकृत अनुरागकी ओर समाकर्षित करते हुए चिर समय-तक प्रकाश-प्रदान करता रहे।

मैं इसी अभिलाषाकी पूर्ति करनेकी प्रार्थना करते हुए श्रीभाईजीके चरण-कमलोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

श्रीबालकृष्णदासजी महाराज
वेणुविनोद-कुञ्ज, वृन्दावन

● ● ●

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार चले गये, अब वे भगवान्‌के नित्य-परिकर हो गये। उनसे मेरा सम्पर्क सन् १९४८ ई० में हुआ था। मैं 'कल्याण'में लेख देने लगा। आपके द्वारा हमारे सनातनधर्मके महान्-महान् कार्य हुए हैं। आपके द्वारा समाज, धर्म, देश तथा धर्मग्रन्थोंके उत्कर्षकी बड़ी सेवाएँ हुई हैं। आपकी सौम्यता, उदारता एवं गम्भीरता अत्यन्त सराहनीय थी।

श्री श्रीकान्तशरणजी महाराज
अयोध्या

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके परलोकगमनसे हमको गहरा धक्का लगा। हमारे बीचसे सांस्कृतिक भाग्याकाशका एक ज्योतिर्मय नक्षत्र सदाके लिये अस्त हो गया——विपत्तिग्रस्तके लिये वह करुणाविगलित कोमल हृदय, आश्वासन-भरी मृदुल, मधुर एवं सत्यसे परिपूरित वाणी तथा उदारताका उज्ज्वल प्रतीक विनम्र व्यक्तित्व हमारे बीचसे सदाके लिये अदृश्य हो गया। किसी सांस्कृतिक संकटके अवसरपर 'कल्याण'के माध्यमसे प्राप्त होनेवाले उनके संतुलित किंतु निर्भीक और प्रभावशाली उद्‌बोधनसे देश सदाके लिये वञ्चित हो गया। जिनका उनके साथ कभी किसी प्रकारसे थोड़ा भी सम्पर्क रहा, वे सभी अपने सच्चे सुहृद्‌के वेदनाभरे वियोग-सागरमें सदाके लिये डूब गये हैं। उनसे जिन असंख्य लोगोंको भगवत्प्रेमकी मधुर प्रेरणा प्राप्त होती थी, उनका तो एक प्रबल आधार ही ढह गया है। वास्तवमें देशके लिये सत्प्रेरणाका एक प्रबल स्रोत ही सूख गया है। सनातनधर्मके अमिट रंगमें रँगा हुआ, विविध प्राकृतिक प्रकोपोंसे पीड़ित प्राणियोंके लिये परमोदार तथा भक्तों और स्वजनोंके लिये मधुर-प्रेममय वह व्यापक व्यक्तित्व अब कहाँ मिलेगा? श्रीपोद्दारजीका अभाव राष्ट्रकी अपूरणीय क्षति है।

स्वामी सोमेश्वरानन्द
श्रीपञ्चमन्दिर, बीकानेर

• • •

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे सारा देश स्तम्भित है। धार्मिक जगत्‌में सर्वत्र शोककी लहर व्याप्त है। पोद्दारजी हिंदू-धर्म तथा हिंदू-संस्कृतिके सच्चे प्रतीक थे। वे पहले एक क्रान्तिकारी नेता थे। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राममें उनका योगदान सदा-सर्वदा स्मरणीय रहेगा। जीवनपर्यन्त हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिके उत्थानके लिये उन्होंने अथक परिश्रम किया। गीताप्रेसद्वारा हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिको जन-जनके हृदयतक पहुँचानेका महान् कार्य उन्होंने किया, जो भारतीय इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा। सनातन हिंदू-धर्मकी प्रतीक गोमाताकी सेवा एवं रक्षामें वे सदैव तत्पर रहते थे। श्रीपोद्दारजी-जैसे धर्म-प्रेमी, देश-भक्त, क्रान्तिकारी, कर्मठ कार्यकर्ता एवं सर्वजनप्रिय महान् आत्माके तिरोभावसे देश एवं विशेषकर धार्मिक जगत्‌को अपूरणीय क्षति पहुँची है। देश, सनातनधर्म तथा जन-कल्याणके उनके महान् कार्य सदा-सर्वदा स्मरणीय रहेंगे।

स्वामी आनन्द
महामन्त्री——भारत साधु समाज

• • •

श्रीभाईजीके महाप्रयाणसे हृदयको गम्भीर वेदना हुई है। विश्वमें इस जीवन्मुक्त आध्यात्मिक नेताकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकेगी। पुराणों-शास्त्रोंमें 'अजातशत्रु' शब्द केवल पढ़ते भर थे, परंतु हमने तो इन अपने 'अजातशत्रु' भाईजीके दर्शन ही नहीं किये, वरन् इनके संग हम बैठे, सोये, खाये, पीये और रहे। हमने अनुभव किया है कि ये वास्तवमें अजातशत्रु, जीवन्मुक्त, अवतारी ही थे। क्या ज्ञानी-विद्वान्, क्या प्रेमी-भक्त, क्या नीतिक-नेता, क्या धनी और क्या निर्धन——सभी यह कहते हैं कि 'भाईजी' हमसे अपार प्रेम करते थे। वे तो नित्यमुक्त थे ही——उनके पाञ्चभौतिक कलेवरके दर्शनोंका अभाव सदैव जन-जनके हृदयमें खटकता रहेगा।

स्वामी सदानन्द सरस्वती
परमार्थ निकेतन, स्वर्गाश्रम

• • •

श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दारने भारतीय संस्कृतिकी सुरक्षाके हेतु श्रीमद्‌भगवद्‌वचनामृत गीता एवं इतिहास-पुराणादिको शुद्ध हिंदी भाषामें अनुवाद-सहित प्रकाशित करके तथा 'कल्याण' नामक पत्रिकाका सम्पादन

करके प्राचीन महर्षियोंके गौरवकी रक्षा की है । वे सनातनधर्मधुरंधर, आस्तिक-भावनिष्ठ एवं कर्मवीर थे । दूसरोंके उत्पीड़नको देखकर रन्तिदेवके समान 'परदु:खासहिष्णु' थे। विनम्रता, क्षमाशीलता एवं प्रियवादिताके आदर्शस्वरूप थे। श्रीमद्भागवत, रामचरितमानस आदि धार्मिक ग्रन्थोंका सस्ता प्रकाशन कराके उन्होंने घर-घरमें भागवतधर्मका प्रसार किया। वे निर्मद, निर्मल अन्त:करणके थे। उन्होंने अपने सुस्वभावके कारण अनेक संत-महात्माओंके भी हृदयोंको जीत लिया था। उन्होंने ऐसा असाधारण कार्य किया कि जिससे वे देश-विदेशोंमें विख्यात हो गये। जिनका सब-कुछ दूसरोंके लिये, विद्या सत्कर्मके लिये और चिन्ता भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रके रूप-गुण-लीलाके चिन्तनकी थी, ऐसे महान् परोपकारी, मृदुभाषी विद्वान्‌के उठ जानेसे देशकी, विशेषकर सनातनधर्मकी महान् क्षति हुई है। उसकी पूर्ति असम्भव-सी प्रतीत होती है। कहा भी है—

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय।
परोपकाराय वचांसि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः ॥

श्रीवैष्णवपीठाधीश्वर श्रीविट्ठलेशजी महाराज
गोपाल मन्दिर, मथुरा

● ● ●

भारतीय संस्कृति और साहित्यके समर्थ समुद्धारकके रूपमें श्रीपोद्दारजीकी सेवाएँ चिरकालपर्यन्त देदीप्यमान रहेंगी। इस संस्थाके संस्थापक स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजसे लेकर हमारे वर्तमान ट्रस्टी-मण्डलतकके प्रति उनका वयोवृद्ध आप्तजन-जैसा सद्भाव बना रहा। प्रसङ्गानुसार उनका महत्वपूर्ण मार्गदर्शन हमको प्राप्त होता रहता था। उनके वियोगसे हमें बहुत दुःख हुआ है। उनके सभीकार्यव्रतोंका सुचारुरूपसे निर्वहन और विकास होता रहे—यही हमारी कामना है।

त्रिभुवनदासजी
सस्तुं साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद

● ● ●

अनादि कालसे यह भगवदीय विधान रहा है कि कभी दैवी बल बढ़ता है, कभी आसुरी बल। लेकिन दोनोंमेंसे एकका सर्वथा विनाश नहीं होता। दुनियामें किसी भी वस्तुका महत्व तब होता है, जब उसका प्रतिद्वन्द्वी सामने हो। दिनका महत्व रातसे है एवं अमृतका विषसे। सत्-असत्, सुख-दुःख, लाभ-हानि, राग-द्वेष, शीत-उष्ण आदि यावत् द्वन्द्वात्मक पदार्थोंका समुदाय ही तो संसार है। एक घटता है तो दूसरा बढ़ता है। इनका संतुलन बनाये रखनेके लिये भगवान् योग्य व्यक्तियोंको समय-समयपर भेजते रहते हैं। आजसे ५० वर्ष पूर्व कलिकालके विकराल मुखमें कवलित-प्राय त्रिपादपंगु सनातनधर्म लँगड़ाकर चल रहा था। भारतीय ज्ञान-विज्ञानकी अथाह राशि अन्धकारमें पड़ी हुई थी। जनता आत्म-विस्मृत-सी होकर दीपकमें पतंगकी तरह केवल भौतिक प्रकाशको ही सर्वस्व मानकर इस ओर दौड़ रही थी। 'इस स्थितिमें गीताके माध्यमसे ही विश्वका कल्याण हो सकता है'—इस ईश्वरेच्छाके फलस्वरूप 'गीताप्रेस'की स्थापना हुई। उक्त उद्देश्यकी सफलताके लिये मन-कर्म-वचनसे पवित्र, भगवान्‌के अनन्य भक्त, गीताके रहस्यवेत्ता, निष्काम कर्मयोगी एवं आदर्श महापुरुषोंकी आवश्यकता थी। इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीका जन्म हुआ था। अतएव भगवान्‌ने उन्हें इस कार्यमें जोड़ दिया।

श्रीपोद्दारजीका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। वे स्वतः विनीत, सनातनधर्मके परम रहस्यवेत्ता, समस्त प्राणियोंको भगवत्स्वरूप देखनेवाले, परम भगवद्भक्त और गीताप्रेसके आधार-स्तम्भ थे। पोद्दारजीने हिंदू-धर्मके

प्रचारमें अपने जीवनका सर्वांश ही लगा दिया था। वे अत्यन्त त्यागी और तपस्वी थे। कहीं भी हों, गीताप्रचार-के संदेशमात्रसे ही उनके हृदयमें हर्षका समुद्र उमड़ पड़ता था।

अधिक क्या, उनके जीवनका लक्ष्य ही विश्व-कल्याण था। धर्मसे, सदाचारसे, विनयसे, कर्त्तव्यनिष्ठासे, भगवत्प्रेमसे विश्वका कल्याण होगा——यही उनकी दृढ़ मान्यता थी। ऐसी महान् आत्माका जन्म विरल ही होता है। उनकी कृतियाँ और आदर्श चिरकालतक हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे।

स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती
गीताप्रचार आश्रम, काठमण्डू (नेपाल)

● ● ●

श्रीभाईजीके शरीर, मन, प्राण, आत्मा विश्वके कल्याणाय, जगद्धिताय ही थे। आप एक युगप्रवर्तक महापुरुष थे। जाति-धर्म-समाज, देश तथा साहित्यादिके विभिन्न क्षेत्रोंमें आपकी अतुलनीय निःस्वार्थ सेवाओंसे जनमण्डली प्रभूत उपकृत, आत्मीयतापूर्ण व्यवहारसे परममुग्ध और अन्तर्हृदयसे कृतज्ञ है। उनके सदृश सबके आत्मस्वरूप अर्थात् काय-मन-वाक्यसे अहिंसक, सत्यपरायण, निर्लोभी, परोपकारी, निःस्वार्थी, सदा पवित्र, सेवाप्रिय, तपस्वी एवं विश्वप्रेमी, श्रेष्ठ महापुरुष पृथ्वीपर विरल ही हैं। जिनमें इन सब गुणोंका समावेश होता है, उनके शरीर——स्थूल या सूक्ष्म अथवा कारण——सभी परिशुद्ध हैं। इस प्रकार जिनका व्यावहारिक जीवन परिशुद्ध एवं परम पवित्र है, सचमुच वे महापुरुष हैं, उनका चित्त स्वतः ही ईश्वरके प्रति नमनशील है। अवश्य वे महापुरुष साधक, ईश्वरपरायण और परमभक्त बनते हैं। वर्तमान शरीर पाकर ठीक-ठीक वैराग्यवान्, विश्वका हितकारी होते हुए जो सर्वकारण-कारण प्रभुमें आत्मसमर्पण कर चुकते हैं, वे महापुरुष जीवन-कालमें ही मुक्त हैं और अन्तमें नित्यलीलालीन होकर सर्वदाके लिये जन्मरहित हो जाते हैं। ये ही पुरुष साधकोंके अनुकरणीय हैं। इसी प्रकारका आदर्श जीवन था हमारे भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका।

श्रीयोगप्रकाशजी ब्रह्मचारी
कापिलमठ, मधुपुर

● ● ●

संस्कृति और पाण्डित्यकी मूर्तिके रूपमें सम्मानित महात्मास्वरूप श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पुण्य एवं मधुर स्मृतिके प्रति विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना स्वर्णिम अवसरके साथ-ही-साथ बड़े आनन्दका विषय है। वे पाण्डिचेरी-आश्रम-स्थित महान् योगी श्रीअरविन्द, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और भारतके अनेक विद्वानोंसे सम्बद्ध रहे। वे श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवके शिष्य, पूज्यचरण तथा महतो महियान् स्वामी विवेकानन्दके आध्यात्मिक भ्राता पूज्यचरण श्रीमत्स्वामी अभेदानन्दजी महाराजके मित्र भी थे।

पोद्दारजीका जीवन समर्पण और धार्मिक निष्ठाका जीवन था। उन्होंने अपना निःस्वार्थ जीवन शिक्षा और संस्कृतिके निमित्त उत्सर्ग कर दिया। संसार उनका और उनके मूल्यवान् धार्मिक-सांस्कृतिक पत्र 'कल्याण'का ऋणी है। गीताप्रेस, विभिन्न शास्त्रोंके अनेक मूल्यवान् प्रकाशन, ऋषिकेश-स्थित गीता-भवन और अन्य अनेक परोपकारी कार्य श्रीपोद्दारजीको युगोंतक अमर बनाये रहेंगे। यह सत्य है कि साधारण मनुष्य सांसारिक वैभव तथा आनन्दके आकर्षणसे मोहित हो जाते हैं। उन्हें अज्ञानकी बेड़ियोंको हटानेके लिये प्रेरणा और पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये सभी युगोंमें महान् संतगण बुद्धि और ज्ञानका दीप जलाने और जनताको

सदाचार तथा मोक्षका मार्ग दिखानेके लिये अवतरित होते हैं। हमें यह कहनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं है कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन्हीं निःस्वार्थी पथ-प्रदर्शकों और प्राणिमात्रके मित्रोंमेंसे एक थे। मानवमात्रका हित करनेके निमित्त करुणायुक्त उनका जीवन एक परम उद्देश्यसे प्रेरित था। मेरे मनमें उनके प्रति बड़ा सम्मान है। उनकी पुण्य तथा अमर स्मृतिमें उन्हींकी कृपासे मुझे अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेका यह अवसर मिला है।

स्वामी प्रज्ञानन्दजी
कलकत्ता

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार धर्मप्राण भारतके एक समुज्ज्वल रत्न थे, पारस-मणि थे। आजके युगमें जब भारतीय संस्कृतिका ह्रास हो रहा है, श्रीपोद्दारजीका देहावसान बहुत बड़ा दुःखद अभाव है। यद्यपि उन्होंने गीताप्रेस और 'कल्याण'के माध्यमसे विश्वको इतना कुछ दिया है कि उसका सम्बल प्राप्त करके प्रत्येक मनुष्य अपने गन्तव्य पथपर अग्रसर हो सकता है, तथापि उनके अगणित-गुण-गरिमा-सम्पन्न शरीरके साक्षात्कार और सत्सङ्गसे उनके प्रेमियोंको जो परम लाभ मिलता था, वह अब कहाँ मिलेगा?

श्रीपोद्दारजीके जीवनमें पर्वत-जैसी ऊँचाई और समुद्र-जैसी गहराईका अद्भुत समन्वय था। फिर भी उनमें अहंकारका कहीं लेश भी नहीं था। वे छोटे-बड़े सभीके 'भाईजी' और गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें 'सबके प्रिय, सबके हितकारी' थे। उन्होंने यथासम्भव सदा-सर्वदा सबको सुख पहुँचानेकी चेष्टा की, कष्ट कभी किसीको भी नहीं दिया। आज उनको खोकर कितने नर और नारी भ्रातृविहीन, मित्रविहीन, प्रेमीविहीन और सर्वस्वविहीन हो गये हैं——इसकी गणना नहीं की जा सकती।

मैं पुण्यसलिला गङ्गा-माताके पुनीत तटपर निवास करनेवाले स्वर्गाश्रमके सभी साधुओं, कार्यकर्त्ताओं, अध्यापकों और छात्रों आदिके साथ श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पुनीत चरणोंमें अपनी भावभीनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

स्वामी अचलानन्द सरस्वती
स्वर्गाश्रम

● ● ●

श्रीभाईजीके जानेसे भारतवर्षके लिये ही नहीं, प्रत्युत विदेशोंके लिये भी धर्म, भक्ति और ज्ञानके प्रकाशसे युक्त एक महान् पुरुषका अभाव हो गया है। अनेक व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने अनेक प्रकारसे देशकी सेवा की है; तथापि श्रीपोद्दारजीके गमनसे सार्वजनीन, नित्यसुखके दाता, ज्ञानका निष्पक्ष वितरण करनेवाले, राजा-प्रजा——सभीके परम हितकारक तथा गृहस्थवेषमें एक सच्चे महात्माका तिरोभाव हो गया। उनके अभावसे सभीका मन व्याकुल हो रहा है। अधिक क्या लिखूँ? अब तो यही कहना है——

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम। तस्मात् कारुण्यभावेन प्रसीद परमेश्वर॥

दण्डी स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती
वृन्दावन

● ● ●

'कल्याण'के यशस्वी सम्पादक, विचार और व्यवहार दोनोंमें सनातन संस्कृतिके कट्टर अनुयायी, परम आस्तिक, भक्तप्रवर श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीका पार्थिव कलेवर यद्यपि नहीं रहा, तथापि उनके गुणोंकी सुगन्धसे युगोंतक आनेवाली पीढ़ी सुवासित रहेगी। आजके युगमें उनके जैसा कर्तव्यनिष्ठ आदर्श जीवन मरुभूमिमें गङ्गाकी धाराके समान ही समझना चाहिये। सनातनधर्मकी रक्षा और व्यापक प्रचारका जो कार्य उन्होंने किया तथा गीता, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थोंको सरल भाषानुवाद-सहित छापकर सस्ते-से-सस्ते मूल्यमें प्रत्येक हिंदूके घर पहुँचानेका जो स्तुत्य कार्य उन्होंने किया, उसके लिये धार्मिक जगत् सदैव उनका कृतज्ञ रहेगा।

अपने परिचितों और अन्तरङ्ग मित्रोंमें पोद्दारजी 'भाईजी'के नामसे प्रसिद्ध थे। यह नामकरण अकारण नहीं था। उनके हृदयका वात्सल्यभाव और सभीकी सहायता करनेको तत्पर रहनेकी भावना ही मानो इस नाममें प्रतिफलित थी। उन्होंने अपने द्वारसे किसीको कभी निराश नहीं लौटाया। निराश्रितोंको ऐसा कल्पवृक्ष अब कहाँ मिलेगा?

विनयकी तो भाईजी साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे। अभिमानसे कोसों दूर और दुर्दर्पकी कालिमासे सर्वथा अलिप्त।

प्रेमाचार्य शास्त्री, साहित्याचार्य
धर्मधाम, दिल्ली

● ● ●

गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं तथा दैन्यं हन्ति सज्जनसंगमः॥

हमारे श्रद्धेय भाईजीका जीवन भी विश्वके छिपे हुए एक लोकोत्तर गृहस्थ संतका आदरणीय एवं अनुकरणीय जीवन रहा है। धर्मरक्षा एवं गो-सेवा तो उनके जीवनके पवित्र व्रत ही थे। उनके दीर्घ जीवनकालमें गरीब, दीन-दुःखी एवं असहाय भाई-बहिनोंका गुप्तरूपसे जो संरक्षण हुआ है, उसका उल्लेख करना नितान्त असम्भव है। वर्तमान शताब्दीमें अपनी परम दीनतामय लेखनीसे तथा श्रीराधाष्टमी आदि महोत्सवोंद्वारा उन्होंने श्रीराधातत्वका जो प्रचार-प्रसार किया है, वह सबके समक्ष है। यही भाईजीके जीवनकी साध थी। अपनी अलौकिक बुद्धि-चातुरीसे 'कल्याण'के द्वारा जगत्के भक्त, भावुक एवं बुद्धिजीवियोंकी जो सेवा उन्होंने की है, उससे समस्त जगत् सदैव चिर उपकृत रहेगा।

साधू ऐसा चाहिये, दुखै-दुखावै नाहिं।
फूल-पात तोड़ै नहीं, रहै बगीचे माहिं॥

——यह दोहा तो आपके गृहस्थ-जीवनमें अक्षरशः चरितार्थ रहा है।

प्रेममें कोई पंथ नहीं है। आकर्षण होनेपर चिन्तन करते रहना——यही प्रेमका पंथ है। इसमें कोई विधि-निषेध नहीं है। बस, प्रियतम-संयोग ही आनन्द है। इस भक्ति-सिद्धान्तको अपने जीवनमें भाईजीने मूर्तिमान् करके दिखाया था। किसी एक सम्प्रदायका आपके जीवनमें आग्रह नहीं था, सभीका समान आदर था; तथापि 'तृणादपि सुनीचेन' इस चैतन्य-पथके तो आप साकार विग्रह थे। मैंने अपने 'भागवत-सप्ताह-प्रवचन'के अवसरपर गोरखपुरमें आपके शरीरमें अष्ट सात्विक भाव 'कम्प-अश्रु-पुलकादि'को स्वाभाविक रूपसे देखा है।

श्रीपोद्दारजी-जैसी विभूतियोंका आविर्भाव श्रीहरिके संकल्पसे ही होता है। जगत्-सेवा-कार्य कराके श्रीरासेश्वरी-ने उन्हें अपनी निजसेवामें बुला लिया है। आपके अभावकी पूर्ति असम्भव प्रतीत हो रही है।

श्रीनाथजी शास्त्री, पुराणाचार्य
वृन्दावन

● ● ●

श्रीभाईजीके न रहनेके कारण हृदयको बड़ा आघात पहुँचा है। उनके सत्कार्योंका वर्णन करना असम्भव है।

वैद्य रामनारायण शर्मा
वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजीका जीवन जाति, समाज और देशके लिये उस दीपककी भाँति था, जो अन्धकारको चीरकर प्रकाशसे मार्गको दिखाता है। ऐसे ही महान् पुरुषोंकी साधना तथा कर्मठताके कारण भारतवर्षका सिर गर्वसे हिमालयकी भाँति दुनियामें ऊँचा है। उनके शरीरके चले जानेपर भी उनके विचार एवं कार्य जनताको मार्ग दिखाते रहेंगे। उनके विचार जितना ही जनतामें फैलेंगे, उतना ही उसका कल्याण है। श्रीपोद्दारजी एक युगप्रवर्तक महापुरुष थे।

मुनि हरिमिलापीजी
हरिद्वार

● ● ●

मैं मात्र एक साधनारत सामान्य व्यक्ति हूँ। मुझे यह ज्ञात नहीं है कि अध्यात्म-मार्गमें इस समय मेरी क्या स्थिति है। अतः पुण्यश्लोक महात्मा-स्वरूप अपने प्रिय 'भाईजी'के सम्बन्धमें, जिन्हें लाखों व्यक्ति सम्मान एवं स्नेह करते हैं, कुछ लिखते समय मेरा हाथ काँपता है। मेरे जीवनके प्रथम ३० वर्ष अपनी आध्यात्मिक साधनाको चालू रखनेके लिये आश्रय एवं संरक्षणकी खोजमें बाहरी संसारमें व्यतीत हो गये। अब ३३ वर्षसे अधिक हुए जब श्रीभाईजीके संरक्षणमें मुझे अपेक्षित आश्रय प्राप्त हुआ था और उन्होंने मुझे बिना किसी प्रकारकी विघ्न-बाधाके अपनी साधनाका निश्चित कार्यक्रम चालू रखनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की थी, मेरा हृदय भाईजीके प्रति कृतज्ञतासे सराबोर है।

इतने वर्षोंकी अपनी सुदीर्घ एवं कठोर साधनाके उपरान्त भी मेरे अनुभव उच्चकोटिके नहीं हैं, उल्लेखनीय नहीं हैं। अतएव साधना-क्षेत्रमें निरन्तर प्रगति करते रहने एव प्राप्तव्यको प्राप्त करनेके लिये मुझे नित्यलीला-लीन श्रीभाईजीके स्नेहयुक्त आशीर्वादकी आवश्यकता है।

मैं अनुभव करता हूँ कि श्रीभाईजी माँ भगवतीके, जिन्हें हम राधा और त्रिपुरा कहते हैं, कुछ विशेष प्रियजनोंमेंसे थे। मैं इसके अतिरिक्त उनके सम्बन्धमें और कुछ लिखनेमें सक्षम नहीं हूँ। जब कभी भी मैं उनसे मिलता, उनकी सदैव यही सम्मति रहती—'अपना समय एवं मन सदैव माँ भगवतीमें लगायें, अन्य सभी चिन्ता तथा विचारोंको त्याग दें।' मैं अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलिके रूपमें उनकी सम्मतिका सदैव अनुसरण करनेके प्रयासमें रत हूँ।

ब्रह्मचारी रामचन्द्रन्
गीतावाटिका

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने धर्म-हेतु कार्य किया, सदैव धर्ममय जीवन बिताया और केवल धर्ममें ही साँस लेते रहे। वे ज्ञान, कर्म और भक्तिकी सजीव तथा पवित्र त्रिवेणी थे। उनमें दोषरहित एवं कुशल कार्यसम्पादनकी सूक्ष्मदर्शिता, गम्भीरता एवं गहन निष्ठाका अद्वितीय समन्वय था। वे युवावस्थामें एक निर्भीक स्वातन्त्र्य-सैनिक और गोवध-विरोधी आन्दोलनके अग्रणी सेनानी थे। धर्म उनके जीवनका परमोद्देश्य बन

गया था। गीताप्रेस, 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' तथा लाखोंकी संख्यामें मुद्रित शास्त्र, धर्म एवं इतिहास-पुराणादिके सैकड़ों प्रकाशन पोद्दारजीके अमर यश और नामकी घोषणा करते रहेंगे। वे इसके सर्वथा अधिकारी थे। हमें स्मरण है कि लिखनेमात्रसे उन्होंने दक्षिण-अमेरिकाके लोगोंके लिये गीताकी सैकड़ों प्रतियाँ नाममात्रके मूल्यपर प्रदान की थीं। उनका जीवन धर्म-हेतु समर्पित था। वे धर्मको मनुष्यका एक मित्र मानते थे--ऐसा मित्र जो मृत्यूपरान्त भी साथ देता है। ऐसे धर्मनिष्ठ महापुरुषके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना प्रत्येक सनातनीका पुनीत कर्त्तव्य है।

शिशिरकुमार सेन
सम्पादक 'ट्रुथ'
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजीके तिरोधानसे देशने एक महान् भक्त और मनीषी खो दिया है--भारतीय संस्कृतिके भव्य प्रासादका एक ज्योतित मणिदीप बुझ गया है। श्रद्धेय भाईजी आस्था और नैतिकताके पर्यायवाची बन गये थे। वे जीवन्मुक्त थे।

कन्हैयालाल सेठिया
सुजानगढ़ (राजस्थान)

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके परलोकगमनसे हृदय विह्वल है। विश्वने अपना प्यारा धार्मिक प्रेरणाका स्रोत खो दिया, गीताप्रेसने अपना आश्रय गँवा दिया, 'कल्याण'ने अपना सर्वस्व लुटा दिया। मैंने जिसे अनुपम श्रद्धा दी, जिसने मुझे भरपूर प्यार दिया, आदर दिया, उसके हृदयमें किन-किन महान् भावनाओंका समावेश था, इसे श्रीहरि ही जान सकते हैं। प्रभु गीताप्रेस एवं 'कल्याण'को श्रीभाईजीकी सतत छाया प्रदान करें।

श्रीकृपाशंकरजी रामायणी
नूरपुर (प्रतापगढ़)

● ● ●

यह संसार अनन्त-कल्याण-गुण श्रीभगवान्की अद्भुत लीला है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना अभिनय पूराकर काल-यवनिकामें समा जाता है। सामान्यतः प्रत्येक जीवको मृत्युपर्यन्त ही इस संसारमें स्थान मिलता है, मृत्युके पश्चात् जगत् उसको भूल जाता है। लेकिन उन महापुरुषोंके बारेमें बात उल्टी है, जिन्होंने किसी-न-किसी प्रकारसे मानव-जीवनपर अपना प्रभाव डाला है। दुनिया उन्हें उनके जीवन-कालकी अपेक्षा परलोकगमनके बाद ही ज्यादा याद करती और आदर देती है।

श्रीभाईजी ऐसे ही महापुरुष थे। आज वे परम धाम पहुँच गये हैं, लेकिन जनहृदयमें वे जीवित हैं। दुनियाके आदर-भावमें, भक्त-हृदयोंकी मधुर-स्मृतिमें, वे चिरजीवी हैं। श्रद्धासमन्वित विनम्र भावसे भक्तजन उन महापुरुषके श्रीचरणोंमें भाव-सुमन समर्पित करते रहेंगे।

दैवी गुण-सम्पन्न श्रीभाईजीकी महिमाका वर्णन नहीं किया जा सकता। हम उन महामानवके कल्याणगुणों-का स्मरण करें तथा उन्हें अपने जीवनमें अपनानेकी कोशिश करें, इसीमें हमारी सफलता है। पूज्य भाईजीका मधुर स्मरण हमारे हृदयको पवित्रता प्रदान करे और प्रेम-मधुर बनावे, भगवान्से यह प्रार्थना है।

श्रीपोद्दार भाईका हृदय ईश्वर-प्रेम तथा मनुष्य-प्रेमसे पूर्ण था। सचमुच उनका हृदय एक 'प्रेम-समुद्र' था। ईश्वरप्रेम ही वे अपने जीवनका लक्ष्य और परम पुरुषार्थ समझते थे। 'कल्याण' तथा गीताप्रेसके विविध प्रकाशनों-के रूपमें उन्होंने जो साहित्य प्रदान किया है, उसमें उनके हृदयमें उठनेवाली भक्तिकी लहरें हैं, श्रीश्यामसुन्दरके चरणारविन्दमें समर्पित अपने हृदयकी प्रेम-कहानी है। भक्ति-मार्गावलम्बी पाठकगण भाईजीके भक्ति-साहित्यसे अत्यधिक प्रभावित होते आ रहे हैं। आपने ईश्वरोपासनाके रूपमें ही साहित्योपासना की है। साहित्य-सेवा-रूपी तपस्या आपने ईश्वर-दर्शनके लिये ही की। साहित्यकी सेवाके द्वारा श्रीपोद्दारजी जगत्‌के माया-मोहमें फँसे हुए, अपने लक्ष्यको भूलकर जीवन बितानेवाले जीवोंको भगवान्‌के अभिमुख कर उनका उद्धार करते रहे हैं। वे बारबार चेतावनी देते रहे—

'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत'

'हे नरवीर! उठो, जाग्रत् हो जाओ, अपने लक्ष्यको प्राप्त करो, तबतक कहीं ठहरो मत।' लक्ष्य-प्राप्तिकी ओर, आत्मधाम पहुँचनेतक, अन्तर्मुख यात्रा करनेकी यह पुकार श्रुति-स्मृतियोंमें हम सुनते आ रहे हैं। स्वामी विवेकानन्दने हमें इसे सुनाया है और आज यही पुकार श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे हम सुन रहे हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियोंकी यही पुकार है, यही अनन्त-कल्याणगुण श्रीश्यामप्रभुकी पुकार है, भगवान्‌के प्रियतम भक्त श्रीनारद ऋषिकी पुकार है, गीता माताकी पुकार है, 'भक्ति-सूत्र'की पुकार है।

अपने अन्तर्मुख आध्यात्मिक जीवनसे, साहित्योपासनासे, स्वभावविशिष्टतासे, बहुमुखी प्रतिभासे, श्रीभाईजीने न केवल भारतीय संस्कृतिका पुनरुद्धार किया, बल्कि विश्वके कोने-कोनेमें आत्मीयता एवं मानव-धर्मका संदेश पहुँचाया। इस प्रकार भगवद्भावसे जीव-सेवा करके वे भगवत्प्रेमका संदेश मानव-जातिके लिये छोड़ गये हैं। उन मनुष्य-प्रेमी एवं ईश्वर-प्रेमीकी अमर कहानी दुनिया आज गा रही है। कल्याण-गुण-निधि भाईजीकी लोक-कल्याणकारक प्रेमधारासे हम सब आप्लावित हो जायँ, यही अन्तिम प्रार्थना राधापति श्रीश्यामगोपालके चरणार-विन्दमें है। प्रातःस्मरणीय श्रीभाईजीके श्रीचरणोंमें ये श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं।

श्रीमती सावित्रीदेवी मेनन, एम्० ए०
अभेदाश्रम, त्रिवेन्द्रम्

● ● ●

'कल्याण'के प्रारम्भिक वर्षसे ही एक लेखकके रूपमें मेरा श्रीपोद्दारजीसे जो परिचय हुआ था, वह इन ४५ वर्षोंमें बढ़ता ही गया। एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्वको अगाध आध्यात्मिकताके सांनिध्यसे जो आस्तिकता, विश्वास और सहज सेवाकी उमड़ती भावना मिली, उसे श्रीपोद्दारजीने आत्मसात् किया और फिर 'कल्याण'द्वारा समाज और राष्ट्रके उन्नयनके सतत विकासमें लगा दिया। उनकी सौम्यता और शालीनता अद्‌भुत थी। पत्रों-तकमें वह अपना प्रभाव डालती थी। गीताप्रेसके विशाल और भव्य प्रकाशनोंद्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रमें उनका योगदान इस अर्ध-शताब्दीमें अप्रतिम रहा। हिंदू-संस्कृतिके प्रचार-प्रसारमें उनकी बराबरी करनेवाली हस्तियाँ इस अर्ध-शताब्दीमें थोड़ी ही मिलेंगी।

आजकी विभ्रान्ति और संक्रान्तिमें आदरणीय श्रीपोद्दारजीके जीवनकी प्रकाश-रश्मियाँ अधिकाधिक छिटकें और गुमराही अँधियारेको कम करें!

बालकृष्ण बलदुवा
कानपुर

● ● ●

पोद्दारजीके निधनसे मुझे गहरा आघात लगा है। उनका स्नेहपूर्ण व्यवहार मुझे सदा स्मरण रहेगा। मेरे पत्रका उत्तर वे सदैव देते रहे। 'कल्याण'का नियमित पाठक होनेके कारण उनके आकर्षक व्यक्तित्वकी छाप मेरे जीवनपर इतनी गहरी पड़ी कि आज भी उनका साकार व्यक्तित्व मेरे चर्म-चक्षुओंसे तिरोहित नहीं हो पा रहा है। मेरे परिवारके प्रत्येक व्यक्तिका 'कल्याण'के माध्यमसे उनसे गहरा लगाव है।

गीताके 'निष्काम कर्मयोग'की साकार प्रतिमास्वरूप श्रीपोद्दारजी राष्ट्रकी अमूल्य निधि थे। सनातनधर्म और हिंदू जाति उन्हें पाकर कृतार्थ हो गयी थी। आज उनका पार्थिव शरीर हमारे मध्य नहीं है, किंतु अपने यशस्वी कार्योंद्वारा वे सदैव स्मरणीय रहेंगे।

ब्रह्मानन्द शर्मा
एन० ए० एस० कालेज, मेरठ

● ● ●

श्रीभाईजीके जानेसे देशकी एक बड़ी क्षति हुई है। ऐसे आदर्श मानव बिरले ही होते हैं। उनकी सेवाएँ बहुत ही महान् एवं स्मरणीय रही हैं।

अगरचंदजी नाहटा
बीकानेर

● ● ●

तीस वर्षोंसे कुछ अधिक समय हो गया होगा जब भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजीका वनस्थलीमें आगमन हुआ था। उसका हेतु था अकाल-पीड़ितोंकी सहायता करना, खासकर गोमाताके लिये घास-चारेकी व्यवस्था करना। उस समय उनकी कर्मनिष्ठा देखकर मैं चकित हो गयी थी। बादमें मेरा उनसे साक्षात्कार नहीं हुआ, पर कृपा करके वे मेरे पास 'कल्याण' प्रतिमास भिजवाते रहे। 'कल्याण'के माध्यमसे मैंने उनके प्रगाढ़ भक्तिभावको पहचाना। भाईजीके द्वारा 'कल्याण'के अनेक विशेषाङ्क समय-समयपर मेरे देखनेमें आते रहे और मेरा वह देखना मुझे समुद्रमन्थन-सा लगता रहा। आज यह लिखते समय मुझे मार्मिक वेदना होती है कि भाईजीका कुछ नया लिखा हुआ अब मेरे देखनेमें नहीं आ सकेगा। पुरानी सब सामग्रीके अवलोकनसे अवश्य ही उनकी स्मृति मेरे हृदय-पटलपर अङ्कित होती रहेगी। इन वाक्योंके साथ मैं श्रीभाईजीके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करती हूँ।

श्रीमती रतनशास्त्री
उपाध्यक्ष,
वनस्थली विद्यापीठ

● ● ●

श्रीपोद्दारजी मेरे धर्मके भाई थे। भैया क्या थे और क्या नहीं थे? वे तो मेरे सब कुछ थे, भैयाके सहारे ही मेरी जिंदगीकी नौका आजतक चल रही है। उन्होंने मुझ बे-सहाराको सहारा दिया, मुझ गरीब अबलाकी पिता बनकर परवरिश की और माताकी तरह वे मेरा दुलार करते रहे। उनको मैंने माता, पिता तथा भाई—इन तीनों रूपोंमें देखा है। भैया मेरे अन्नदाता परमेश्वर थे। वे ही मेरे अँधेरे जीवनका उजाला थे। भैयाने मुझे कभी पराया न जाना। उन्हें हर तरहसे मेरी फिकर रहती थी। वे दीन-दुःखियोंके परमात्मा थे,

अन्नदाता परमेश्वर थे। जिस तरह भगवान् श्रीकृष्णजीने सुदामाको चाहा, उसी तरह भैयाने मुझे चाहा। भैयाने कभी जात-पाँतका फर्क न जाना। वे सनातनी हिंदू महात्मा थे; परंतु उनका स्नेह, उनकी कृपा मेरे लिये अनमोल थी। उन्होंने मुझे कभी मुस्लिम न माना; वे मुझे अपनी सगी बहिनकी भाँति और मेरे हर संकटको अपना समझकर सहायता करते रहे। उन्होंने कभी मुझे निराश न होने दिया। हर समय, हर दुःखमें वे भगवान् श्रीकृष्णका अवतार बनकर मुझ द्रौपदी बहिनके रक्षक बने रहे।

भैयाका जीवन हमारे लिये उस रोशनी देनेवाले दीयेकी मानिन्द है, जो खुद जलता है और दूसरोंको रोशनी देता है। भैयाने भी अपना तमाम जीवन हम-जैसी अनाथ अबलाओं, दीन-दुःखियों-गरीबोंकी सेवामें बिता दिया। वे बड़े ही कृपालु और दयालु थे। भैयाने जिस किसीको दान दिया, उस दान देनेकी खबर उन्होंने लोगोंको तो क्या, अपने बाँये हाथको भी न होने दी। भैया एक महान् महात्मा, ऋषि थे, जो हजारों नर-नारियों और बच्चोंको सत्य रास्तेपर चलाते थे; वे हजारों-हजारों इन्सानोंके मार्गदर्शक थे। उनका जीवन चन्दनकी लकड़ीके समान था, जो हरेकको खुशबू देता था। भैया क्या थे? वे महात्मा भी थे, हमारे रक्षक भी थे, अन्नदाता भी थे। उन्होंने सबकी मनसे, धनसे सेवा की। वे जगत्को भगवान्की अनमोल देन थे। भैयाका प्रेम गङ्गा नदीकी तरह पवित्र था, विशाल था, और गहरा था।

भैया आज चले गये—हमारा सर्वस्व खो गया है; हमने अनमोल रत्न खो दिया है। वह नायाब मोती छिन गया। वह उजियाला हमें अँधेरेमें छोड़कर लुप्त हो गया। भैया, काश! भगवान् तुम्हें हमारी आयु देते। भैया, तुम जुदा नहीं हुए हो, तुम जिंदा हो; देखो, तुम्हारी आत्मा हमारेमें समायी हुई है। भैया, जबतक यह दुनिया रहेगी, तबतक तुम्हारा नाम अमर रहेगा। भैया, तुम हजारों भक्तोंके दिलोंमें समाये हुए हो; हर नर-नारीके दिलमें माता-पिता, बन्धु बनकर समाये हुए हो। भैया, हमारे रोम-रोममें तुम्हारा उपकार बसा हुआ है। हम तुम्हारे बताये हुए सच्चाईके पथपर चलेंगे, उस मार्गपर अपना जीवन अर्पण कर देंगे। भैया, तुम्हारे चरणोंमें यह गरीब दुःखिनी बहिन श्रद्धाके फूल चढ़ाती है।

बहिन शिरीन हैदरअली बोहरी
बेगमपेठ, शोलापुर

● ● ●

यद्यपि मैं श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका बहुत कम बार दर्शन कर सका था, तथापि उन्हें जानने, उनके प्रति सम्मान एवं स्नेह-प्रदर्शनका मुझे एक बार अवसर प्राप्त हुआ था। उनकी विनम्रता तथा सभी धर्मोंके संतोंके प्रति आदरकी भावनाको देखकर मैं चकित रह गया। दीन-दुःखी लोगोंके प्रति उनके प्रेम और भगवान्में उनके विश्वाससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। वे अपने कमरेमें ईसाका भी एक चित्र रखते थे, जिससे उनके उदार दृष्टिकोणका परिचय मिलता है।

पी० जे० चाण्डी
संयुक्त अधीक्षक,
कुष्ठ-सेवाश्रम, कालीकट

● ● ●

श्रीभाईजीके जीवन और कार्यसे गत पीढ़ीकी भाँति नयी पीढ़ीके भी बहुत-से लोग प्रेरणा प्राप्त करेंगे। यह मेरा परम सौभाग्य रहा है कि उनके गोरखपुर-वासके प्रारम्भसे ही मैं उनके कुछ परोपकारपरक कार्योंसे सम्बद्ध रहा हूँ। मुझे अब भी उनके साथ अपनी प्रथम भेंटका स्मरण है, जब हमलोग साथ-साथ गोरखपुरके

[इर्द-गिर्द बाढ़-पीड़ित लोगोंमें गल्ला बाँटनेके लिये निकले थे। उसके बाद भी हम दोनोंके मनमें एक दूसरेके प्रति बड़ा सम्मान था और मुझे हर्ष है कि अनेक मानव-हितके कार्योंमें उन्होंने मुझे अपना मित्र एवं सहकर्मी समझा।

एम० ओ० वार्की
अवकाश प्राप्त प्राचार्य,
सेंट ऐण्ड्रूज कालेज, गोरखपुर

● ● ●

वर्तमान शताब्दीके प्रारम्भिक कालमें सनातनधर्मको भीषण आघात पहुँच रहा था। हमारे धर्मके शाश्वत सत्य कुछ ही महात्माओंके हाथमें थे। सामान्य जनताको हमारे धर्मके प्रस्थानत्रय--उपनिषदों, गीता तथा ब्रह्मसूत्रका दर्शनतक दुर्लभ था। दूसरी ओर बाइबल और ईसाई धर्मकी पुस्तकें उन्हें उन्हींकी भाषामें सहज प्राप्त थीं। अतः आश्चर्यकी बात नहीं कि ये लोग ईसाई धर्मको ग्रहण करने लगे। ऐसी ही संकटकी घड़ीमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हमारे बीच रक्षकके रूपमें अवतरित हुए।

जनतामें धर्मका प्रकाश फैलानेके लिये भगवान्ने श्रीपोद्दारजीको चुना था। उन्होंने घर-घर प्रस्थान-त्रय और महापुराणोंको पहुँचाया।

श्रीपोद्दारजी सच्चे वैष्णव और भगवत्कृपामें विश्वास करनेवाले व्यक्ति थे। वे जानते थे कि जो कुछ भी कोई व्यक्ति पा सकता है, वह केवल भगवत्कृपासे ही। व्यक्तिको कोई श्रेय नहीं, वह तो केवल प्रभुके हाथमें साधनमात्र है।

वे भगवान् श्रीकृष्णके भक्त थे। उन्होंने गोपी-प्रेमपर एक पुस्तिका हिंदीमें लिखी; पीछे उसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। इसमें गोपी-प्रेमको, जिसका प्रायः गलत अर्थ लगाया जाता है, बड़े ही सुन्दर ढंगसे समझाया गया है। गीताप्रेसमें मुद्रित गीता और विष्णु-सहस्रनाम नाम-मात्र मूल्यपर बिकते हैं। 'कल्याण'की भाँति अंग्रेजी पत्रिका--'कल्याण-कल्पतरु' अंग्रेजी-भाषी लोगोंमें जनप्रिय है। धर्मशास्त्रोंपर हिंदीमें लिखी गयी टीकाओंका अंग्रेजी अनुवाद 'कल्याण-कल्पतरु'में प्रकाशित हुआ। इस प्रकार श्रीभाईजीने निष्ठापूर्ण एवं निःस्वार्थ कार्यके द्वारा सनातनधर्मको साधारण व्यक्तितक पहुँचाया। वे उदार-हृदय थे। उन्होंने कभी किसी दूसरे धर्मकी आलोचना नहीं की। उनका ध्यान सनातनधर्मतक सीमित था। इसलिये उनका विरोध नहीं हुआ। ख्याति और गौरवसे अपनेको अलग रख वे सदैव सादा जीवन बिताते थे। लेकिन ये दोनों--ख्याति और गौरव--उनका अनुगमन करते थे। सभी उनसे प्रेम और उनका आदर करते थे।

उनके माध्यमसे प्रभुने सनातनधर्मको पुनर्जीवित किया। उन्हें सौंपा गया काम पूरा होनेपर भगवान्ने उन्हें वापस बुला लिया। हमें उनका काम चालू रखना है। उनके निधनसे हुई हानिकी मात्रा शब्दोंमें व्यक्त नहीं की जा सकती।

जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भागवतके माध्यमसे वर्तमान हैं, उसी प्रकार पोद्दारजी गीताप्रेस और इसके मासिक 'कल्याण'के माध्यमसे जीवित रहेंगे। हमारे धर्मरक्षकोंके मध्यमें उन्हें उचित स्थान प्राप्त हो चुका है। उनके द्वारा प्रदर्शित प्रेम और आत्म-समर्पणकी भावना इस जीवनके दुःखोंसे पार पानेमें हमारी सहायक बने।

के० पी० प्रभाकरन् नायर
निजी सचिव,
पूज्यपाद श्रीसद्गुरुजी श्रीअभेदानन्दजी महाराज
अभेदाश्रम, त्रिवेन्द्रम्

● ● ●

अनैतिकताके तूफानमें पड़े मानवता-जलयानोंको नैतिकता-प्रकाश-स्तम्भ बनकर आजीवन सच्ची राह कौन सुझाता रहा है ?

अनास्था एवं नास्तिकताकी आँधियों-पर-आँधियाँ आनेपर भी अडिग, आस्थावान् एवं अविचल आस्तिकके रूपमें यह कौन सदा दर्शन देता रहा है ?

संकीर्णता-साम्प्रदायिकताकी दलदलमें असीम औदार्य एवं विश्वप्रेमका नित्य-प्रफुल्ल कमल बनकर यह कौन खिलता रहा है ?

मानव अमानव नहीं, मानव बनकर, ईश्वरत्वको प्राप्त करे, चिर-कृतकृत्य हो—यह प्रेरणा स्वयं मानव बनकर व्यावहारिकरूपमें प्राणिमात्रको पल-पल कौन देता रहा है ?

जन-जनको उसके तन-मनकी—कान ही नहीं—मन लगाकर सुन, सच्चे जीसे सच्ची सलाह दे, जगत्को अपूर्व आत्मीयतासे—सहज सहृदयतासे चिर-परिचित यह कौन भरता रहा है ?

भक्ति-भावनाकी मन्दाकिनी बनकर रस-विहीन एवं शोक-संतप्त जनोंको नित्यानन्द-भरा रस-स्नान यह कौन कराता रहा है ?

तत्त्व-ज्ञानके मोती ये किसकी लेखनीसे अविरल बिखरते रहे हैं ? कर्त्तव्यप्रेरणाके पुष्प ये किसकी लेखनीसे सतत झड़ते रहे हैं ?

ध्यान लगाकर, समाधिस्थ-से हुए देखें तो सभी प्रश्नोंके उत्तरमें 'कल्याण'–सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका दिव्य-विग्रह सहज सामने आ जाता है।

नमन ! शत-शत बार नमन ! 'भाईजी'-जैसे आत्मीयतापूर्ण सम्बोधनद्वारा सम्बोधित किये जानेवाले उस चिर-प्रेरणा-प्रद, नित्यानुकरणीय, दिव्य-भव्य व्यक्तित्वको नमन !

हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'
दिल्ली

● ● ●

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम्॥
(श्रीमद्भागवत १।४।१२)

नैमिषारण्यमें ब्रह्मसत्रमें विराजमान परीक्षित्के स्मरणसे दुःखी श्रीशौनकादिक ऋषिगणोंने सूतजीसे प्रश्न किया—'भगवदीय उत्तमश्लोकपरायण जन जगत्के कल्याणार्थ जीते हैं, सांसारिक सुख-भोगके लिये नहीं। फिर महाराज परीक्षित्ने क्यों निर्वेदवश देहत्याग किया ?' इस कथनसे स्पष्ट है कि ऐसे महापुरुष भगवत्प्रेरणावश ही विशेष कार्यके लिये आते हैं एवं भगवदाज्ञा सम्पादित कर चले जाते हैं।

यही तथ्य श्रीपोद्दारजीके साथ भी जुड़ा हुआ है। मुझे स्मरण है, 'श्रीभागवत-भवन'के शिलान्यास-समारोहमें उन्होंने उदार, धनी, धर्मप्राण जनताका आह्वान करते हुए आदेश दिया था कि 'वे अपनी संचित सम्पत्ति भागवत-धर्मवर्द्धन-कार्यमें लगायें, अन्यथा यों ही लुट जायगी।' आज उन्हींके उपदेशोंका फल है कि श्रीकृष्णजन्मभूमि मथुरामें भव्य 'श्रीमद्भागवत-भवन'का निर्माण चल रहा है।

जिस प्रकार मनुस्मृतिकारने स्वयं आचरण कर हमें उपदेश दिया, उसी प्रकार श्रीपोद्दारजीने सर्वदा स्वधर्मका आचरण कर उपदेश दिया।

श्रीकपिलदेवजीने माता देवहूतिजीके समक्ष भागवतोंके जो लक्षण निरूपित किये हैं, 'कृपालुरकृतद्रोहः' इत्यादि अथवा 'मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम्'—सभी पोद्दारजीमें घटते थे। 'इष्टे स्वारसिको रागः परमाविष्टता' का भाव श्रीभाईजीमें देखा जाता था।

उन्होंने सद्गृहस्थोंके घर-घरमें, गरीब-अमीर––सबके यहाँ, यही नहीं अन्यधर्मावलम्बियों तथा विदेशोंमें भी गीता, रामायण एवं धर्मग्रन्थोंको बिखेर दिया है। आज भले उनका पाञ्चभौतिक शरीर नहीं है, परंतु कीर्तिरूपसे वे इस धरापर विराजमान हैं। 'कीर्तिर्यस्य स जीवति।'

नित्यानन्द भट्ट भागवतव्यास
वृन्दावन

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार भाईजीके चले जानेसे देशकी बहुत बड़ी क्षति हुई है। उस क्षतिके पूर्ण होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। श्रीपोद्दारजीने जातीयता, धर्म, समाज-कल्याणकी भावना एवं साहित्यका प्रचार देशके कोने-कोनेमें करके राष्ट्रकी बहुत बड़ी सेवा की। वे हमें सदाचारका उपदेश देते रहे और संत-महात्माओंके हृदयरूपी कमलको सर्वदा विकसित करते रहे। वर्तमान युगमें सनातनधर्मकी नौकाको खेनेवाले एकमात्र भाईजी ही थे।

भाईजी सज्जनोंके सच्चे भाई थे, उनके समक्ष बड़े-बड़े संत-महात्मा एवं विद्वान् जाकर अपने विचारोंको रखते थे। देश-विदेशकी अनेक भाषाओंके पवित्र ग्रन्थोंके विचारोंको वे 'कल्याण'में प्रकाशित करते थे। इससे हिंदी भाषाकी बड़ी उन्नति हुई। श्रीभाईजीके समान निःस्वार्थ भावसे सेवा करनेवाला दूसरा व्यक्ति आज देशमें दिखलायी नहीं पड़ता।

श्रीभाईजीका व्यवहार इतना सुन्दर एवं मधुर था कि वह दूसरोंके हृदयको अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेता था। शास्त्रोंमें कहा गया है––

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

वैसे ही भाईजीको यह जगत् कुटुम्बवत् ही प्रतीत होता था। श्रीतुलसीदासजीकी यह चौपाई उनके उदार गुणोंको हमेशा याद दिलाती रहती है––

होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए।
ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए॥

ऐसे कठोरकालमें भाईजी सद्ग्रन्थोंका प्रचार करके देशको सत्पथका मार्ग हमेशा दिखाते रहे। सत्कार्य करते हुए लोगोंको सत्कार्यकी प्रेरणा देते रहे।

हमारा भाईजीसे पुराना सम्पर्क रहा है। मैंने उनके यहाँ गीतावाटिकामें पंद्रह दिन रहकर सत्सङ्गका लाभ उठाया, और वे अपने उदार स्वभाव और ब्रह्मण्यताके कारण तन, मन, धनसे हमारी सेवा करते थे। भाईजी अपने यशसे अमर हैं और उनका यश चिरकालतक जगत्का कल्याण करता रहेगा।

श्रीभाईजीका हृदय राधाकृष्णके प्रेमरससे सराबोर था। हमारा विश्वास है कि हमलोगोंका हित करनेके लिये भगवान्के आदेशसे वे आये थे और अपना काम करके वे जहाँसे आये थे, वहीं चले गये।

श्रीभाईजी कल्पवृक्ष-स्वरूप थे। उनकी कीर्ति अवर्णनीय है।

नारायणकान्त व्यास
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार भारतके जाने-माने ख्यातनामा महापुरुष थे। गो-वधबंदी आन्दोलनके विशाल आयोजनके अवसरपर वे बम्बई पधारे थे। उस समय उन्होंने जो मनोमोहक, सारगर्भित और विद्वत्तापूर्ण प्रवचन दिया था, जनतापर उसकी गहरी छाप पड़ी थी।

श्रीपोद्दारजी बिल्कुल देहभावसे रहित, निरहंकारी, कर्तव्यपरायण और महान् कर्मयोगी थे। 'कल्याण'की डेढ़ लाखसे ऊपर प्रतियाँ प्रकाशित हो रही हैं, यह उनकी विद्वत्ता, कार्यदक्षता एवं अटूट निष्ठाका ही प्रतीक है।

आपने पुस्तकोंद्वारा धर्मका प्रचार इतना सुलभ और सरल बना दिया कि निर्धन एवं कम आयवाले व्यक्ति भी उसका लाभ ले सकें। यह देखकर आश्चर्य होता है कि हिंदी अनुवाद-सहित गीता ढाई आनेमें मिलती है। श्रीपोद्दारजी आजके युगमें सफेद कपड़ोंमें रहनेवाले एक दिव्य महापुरुष थे, जिनके आदर्श जीवन एवं कार्य हमें सदा प्रेरणा देते रहेंगे।

हरिकिशनदास अग्रवाल
बम्बई

• • •

श्रीभाईजी और श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी युगल जोड़ीने हिंदू-धर्मकी और हिंदू-समाजकी जो सेवा की है, उसका मूल्य कौन आँक सकता है? कितने लोगोंके साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध था, कितने लोगोंकी उन्होंने सहायता की है, इसका हिसाब तो शायद स्वयं उन दोनोंको भी नहीं मालूम होगा। गुप्त सहायता, व्यक्तिगत परामर्श आदिकी बात जाने दीजिये, प्रकटरूपमें उनका प्रकाशन-कार्य ही इतना महान् है कि उसे देखकर बरबस सिर झुक जाता है। गीता, रामायण, महाभारत आदि आर्षग्रन्थोंको सर्वसुलभ बनाना, इतना सस्ता करना कि गरीब-से-गरीब पाठक भी उन्हें प्राप्त कर सके, अपने आपमें एक बहुत बड़ा काम है।

मैं व्यक्तिगतरूपसे ऐसे बहुत-से अधिकारी व्यक्तियोंको जानता हूँ, जो पैसा न होनेके कारण इन ग्रन्थोंसे लाभ न उठा सकते थे। ऐसे लोगोंके बारेमें जब कभी भाईजीको पता लगता, तब पुस्तकें 'उपहार-स्वरूप' उनके पास पहुँच जातीं और वह भी इस तरह मानो लेनेवाला उन्हें स्वीकार करके भाईजीपर उपकार कर रहा हो। उनमें कामकी लगन थी, कार्यक्षमता थी, और इन दोनोंके साथ जो चीज साधारणतः नहीं दिखायी देती, वह भी थी––विनय।

एक आर्यसमाजी होनेके नाते बचपनमें मुझे भाईजीके लिये जरा भी आकर्षण न था। एक बार सुना, उनकी टोली कीर्त्तन करनेवाली है। लड़कपन तो था ही, सोचा––चलें, तमाशा देख आयें। लेकिन उस तमाशेका ऐसा गम्भीर प्रभाव पड़ा कि आज पैंतीस-चालीस वर्ष बाद भी भाईजीकी मुद्राको भुलाया नहीं जा सकता। कीर्त्तन क्या था, अमृत-वर्षा थी।

उनके बारेमें लिखनेको बहुत कुछ लिखा जा सकता है। यही इच्छा उठती है कि गीताप्रेस श्रीभाईजीके पथपर चलता हुआ भगवान्की सेवामें अधिक-से-अधिक लगा रहे, मत-मतान्तर-वाद आदिसे ऊपर उठकर शुद्ध-रूपसे भगवान्की निश्छल सेवा करे और दूसरोंको भी प्रेरणा देता रहे। यहीं भाईजीको सच्ची श्रद्धाञ्जलि है।

श्रीरवीन्द्रजी
सम्पादक––'पुरोधा' एवं 'अग्निशिखा', पाण्डिचेरी

• • •

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीके परलोकगमनसे हिंदू-समाजकी अपूरणीय क्षति हुई है। उन-जैसे तपोनिष्ठ, निरहंकारी, अनासक्त, धर्म-सेवी महापुरुष संसारमें बहुत ही दुर्लभ हैं। वे आधुनिक भारतमें हमारी सांस्कृतिक फुलवाड़ीके अद्वितीय पुष्प थे।

जगदीश्वरसे प्रार्थना है कि उन-जैसे निष्काम धर्म-सेवी आत्माओंको जन्म दें, ताकि श्रीपोद्दारजीका भारतके अभ्युत्थानका अधूरा स्वप्न पूर्ण हो सके।

हरबंशलाल ओबेराय
निदेशक––संस्कृति बिहार, राँची

● ● ●

सनातनधर्मके अनन्य सेवक, विश्वविश्रुतकीर्ति श्रीभाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार यद्यपि पार्थिव शरीरके रूपमें आज हमलोगोंके बीच नहीं हैं, तथापि विश्वमें सनातन संस्कृतिके प्रचारके लिये प्रारम्भ किया गया उनका महान् कार्य 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस'के रूपमें आज भी जन-जनके समक्ष उनके विराट् व्यक्तित्वका परिचय दे रहा है।

पाश्चात्त्य शिक्षा-दीक्षित नेताओंके प्रभावसे जो नास्तिकता एवं स्वच्छन्द आहार-विहारकी प्रवृत्ति देशमें फैलने लगी थी, स्कूल-कालेजोंके विषाक्त वातावरणसे देशमें जो जहर फैल रहा था, उसके विरुद्ध सशक्त साहित्यके सृजन एवं प्रचारका श्रेय श्रीपोद्दारजीको ही है। 'वर्तमान शिक्षा' नामक उद्बोधक पुस्तिका प्रकाशितकर पोद्दारजीने देशके भावी नवयुवकोंको पतनके गर्तकी ओर जानेसे रोकनेके लिये प्रबल प्रयत्न किया। अपने समयमें यह पुस्तिका बड़ी लोकप्रिय सिद्ध हुई। इसके बाद तो गीताप्रेसकी ओरसे जो सृजनात्मक एवं प्रेरणादायक साहित्य तथा गीता, रामायण, पुराण, महाभारत आदि सनातन साहित्यके सस्ते और प्रामाणिक संस्करण निकलकर भारत ही नहीं, विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचे––यह सर्वविदित तथ्य है।

पोद्दारजीके जीवनका उत्तरार्ध सर्वथा देश एवं धर्मको समर्पित हो गया था। वे एक व्यक्ति नहीं, किंतु संस्थारूप हो गये थे। देशके किसी भी भागमें दैवी आपत्ति आयी कि पोद्दारजी उसके प्रतिकारकर्त्ताओंकी श्रेणीमें सबसे आगे पाये जाते थे। कोई धार्मिक आयोजन हो, पोद्दारजी उसके बने-बनाये संरक्षक थे। गोरक्षाभियान चला तो सर्वसम्मतिसे उसके कोषाध्यक्ष पोद्दारजी हुए। अभियान-समितिके पास कोष चाहे न था, परंतु उनको कोषाध्यक्ष बनाकर गो-हितैषी-जन आश्वस्त हो गये कि अब पैसेके अभावमें कार्य न रुकेगा। हुआ भी यही। पैसेके अभावमें गोरक्षा-आन्दोलन नहीं रुका। ऐसे लोकप्रिय, सनातन संस्कृतिके प्रबल प्रचारक एवं श्वेत वस्त्रोंमें रहनेवाले महान् संतके चले जानेसे धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्रोंमें अपूरणीय रिक्तता आ जानी स्वाभाविक है।

श्रीकण्ठ शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल्०
सम्पादक––'लोकालोक' मासिक

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार देशके ऐसे महान् व्यक्ति थे, जिनके जीवनका एक विशिष्ट उद्देश्य था और उस उद्देश्यको उन्होंने जीवनमें पूर्णतया चरितार्थ करके दिखाया। देशमें आध्यात्मिक वातावरणके विस्तारमें श्रीपोद्दारजीका नाम एवं कार्य सदा स्मरण किये जायँगे। उन्होंने गीताप्रेसकी धार्मिक पुस्तकों और 'कल्याण' पत्रके माध्यमसे धार्मिक और सांस्कृतिक जागरणका महान् कार्य किया। वे स्वयं संस्था थे।

रामगोपाल माहेश्वरी
संचालक––'नवभारत' नागपुर

● ● ●

परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजीके परलोकगमनसे केवल भारतवर्षने ही नहीं, समस्त धार्मिक जगत्‌ने एक महान् निधिको खोया है। वे एक ऐसी निधि थे, जिसका पर्याय इस युगमें प्राप्त होना यदि सर्वथा असम्भव नहीं तो परम दुर्लभ अवश्य है। जहाँतक मैंने उनके व्यक्तित्वका अध्ययन किया, वे एक परम भागवत, महान् आत्मा, परम विरक्त एवं निष्काम कर्मयोगी थे। उनका सारा जीवन परोपकारमें ही बीता। धन-वस्त्रादिक देकर दुःख-दारिद्रयको दूर करना भी अवश्य परोपकार नामसे अभिहित हो सकता है, किंतु श्रीभाईजीका परोपकार वह परोपकार है, जिसके द्वारा उपकृत होकर जगत्‌के असंख्य जीवोंने इस क्षण-भंगुर जगत्‌के भोग-पदार्थोंको लात मारकर समस्त दुःखोंके मूल माया-बन्धनसे छुटकारा पाया और परमानन्दमय परमार्थपदकी प्राप्ति की है। अनेक भूले-भटके अशान्त जीवोंको सत्-शास्त्रोंके अध्ययन करनेका सुअवसर श्रीभाईजीके 'कल्याण'से प्राप्त हुआ और उनका जीवन परमार्थ-पथका पथिक बन गया।

उनकी लेखनी एवं वाणीमें एक महान् शक्ति थी। उसका कारण यही था कि वे जो कहते थे, लिखते थे, स्वयं भी वैसा ही आचरण करते थे। अति प्रखर विद्वान् होते हुए भी वे विद्याभिमानशून्य, परम विनीत एवं सरल स्वभावके थे। जिस समय मैं श्रीचैतन्यचरितामृतका हिंदी अनुवाद कर रहा था, मुझे उनके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बँगला-साहित्यके विषयमें, विशेषतः श्रीचैतन्यचरितामृतके कुछ भक्तिसिद्धान्तोंपर बहुत देरतक विचार-विमर्श हुआ। मैंने अनुभव किया कि उनकी श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण-चैतन्यके सिद्धान्तोंमें पूर्ण निष्ठा थी एवं उन्हें श्रीचरितामृतके अनेक पयार कण्ठस्थ भी थे।

सत्-शास्त्रोंकी प्रचार-सेवाके लिये वे भगवद्धामसे यहाँ पधारे थे और उस सेवाको सम्पन्नकर पुनः नित्य-लीलामें ही वे निस्संदेह लीन हो गये हैं।

श्यामलालजी हकीम
सम्पादक—'श्रीहरिनाम',
वृन्दावन

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके चले जानेसे अध्यात्म-जगत् सूना हो गया है। उन्होंने 'कल्याण'के माध्यमसे धार्मिक जगत्‌में बड़ी-से-बड़ी क्रान्ति की, गीताप्रेससे बड़े-से-बड़े भारतीय ग्रन्थ सस्ते मूल्यमें प्रकाशित करके आस्तिक भावोंका प्रचार किया। श्रीपोद्दारजी भाषण और लेखनमें भी बड़ी प्रतिभा रखते थे। वे रुग्णावस्थामें भी जितना कार्य करते थे, उतना स्वस्थ व्यक्ति भी नहीं कर सकता। वे कर्मयोगी भक्त थे।

गोपालदत्त शर्मा, ज्योतिःशास्त्री
मण्डावा (राजस्थान)

● ● ●

भाईहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन असाधारण पुरुषोंमेंसे थे, जिनका व्यक्तित्व लेखनीका विषय उतना नहीं है, जितना अनुभवका। इस बातके वे सभी लोग साक्षी हैं, जिन्हें क्षणभरके लिये भी उनके सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे स्वभावसे इतने सरल और स्नेही थे कि प्रत्येक व्यक्ति उनके निकट आते ही उनसे बन्धुत्वका अनुभव करने लगता था। वे वास्तवमें जगत्-बन्धु थे। इसीलिये लोग उन्हें 'भाईजी' कहकर पुकारा करते थे। जनमात्रके दुःखमें दुःखी होना उनका नैसर्गिक गुण था। महात्मा गांधीके प्रिय गीत 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीड़ पराई जाणे रे' के अनुसार वे सच्चे वैष्णव थे।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोकके अनुसार स्वयं सर्वमान्य होते हुए भी वे अमानी थे और हृदयसे सबका सम्मान करते थे। अपने असाधारण व्यक्तित्वसे प्रभावित असंख्य लोगोंके हृदय-सम्राट् होते हुए भी वे अपनेको सबसे तुच्छ मानकर सबकी सेवामें तन-मनसे नियुक्त रहते थे। इतनेपर भी यदि कोई उनके साथ कटु व्यवहार करता था तो 'तरोरिव सहिष्णुना'का परिचय देते थे।

भाई हनुमानप्रसादजीके निधनसे जो क्षति हुई है, उसका मूल्याङ्कन करना आसान नहीं। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक––सभी क्षेत्रोंमें उनका योगदान असाधारण रहा है। इसलिये इन सभी क्षेत्रोंमें हम उस क्षतिका अनुभव करते रहेंगे। पर सबसे अधिक उस क्षतिका अनुभव करेंगे 'कल्याण' पत्रिकाके देश और विदेशोंके असंख्य पाठक, जिन्हें उनसे प्रेरणा मिलती रहती थी और जो आधुनिक जगत्‌में छाये नास्तिकता, निरङ्कुशता, निर्लज्जता और निराशावादिताके घटाटोप अन्धकारमें उन्हें एक आलोक-स्तम्भके रूपमें देखते थे।

हम उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर सकते हैं उन कल्याणकारी कार्योंमें लगे रहनेके लिये कृतसंकल्प होकर, जो उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थे और जिनमें वे आजीवन तन-मनसे लगे रहे। वे हैं––

(१) आस्तिकवाद और सनातनधर्मका प्रचार
(२) गिरी हुई नैतिकताके मूल्योंका संस्थापन
(३) भारतीय संस्कृतिका संरक्षण
(४) गोवध-निवारण
(५) सस्ते और सुन्दर धर्मग्रन्थ एवं पत्रिकाओंका प्रकाशन
(६) भक्तिका प्रसार और
(७) हरिनाम-संकीर्तनका प्रचार

डा० अवध बिहारी लाल कपूर
वृंदाबन

● ● ●

पूज्य श्रीभाईजी अद्‌भुत कोटिके परम भागवत तथा निष्ठावान् थे। इस संसारमें जैसे नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि संत हो चुके हैं, वैसे ही श्रीभाईजी थे और उनकी निष्ठा उन संतोंसे कम नहीं थी। श्रीभाईजी सिद्धान्तके पक्के थे। वे दूसरेकी सम्पत्तिको विषके समान समझते थे। परोपकारके कार्योंके लिये भी वे जिसको अच्छी तरह जानते थे तथा जो उनको अच्छी तरहसे जानता था, उसीके साथ अर्थका सम्पर्क रखते थे। उनके पास परोपकारके लिये अर्थ भेजनेवाला बड़े हर्षसे, संशयरहित होकर भेजता था; कारण, वह जानता था कि पूज्य श्रीभाईजीके हाथसे हमारी पाई-पाई अच्छे कार्यमें लगेगी। उनकी दैनिक क्रिया सच्चे भक्तोंके माफिक थी, इसे हमने गोरखपुरमें रहकर अनुभव किया था। हमारी समझसे उनके लिये जो कुछ कहा जाय, वह थोड़ा है।

पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य श्रीहरिबाबाजीके रूपमें इस संसारसे दो दीपक बुझ गये। हमने थोड़ा 'भक्तमाल' देखा है। मगर पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य श्रीहरिबाबाजीकी भक्तिके विषयमें लिखना हमारी सामर्थ्यसे बाहर है। दोनों महात्माओंके चरणोंमें मैं दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। दोनों महापुरुष इस दासको अपना आशीर्वाद दें, जिससे इसका मन भी प्रभु-चरणोंमें अधिक-से-अधिक लगे।

सेठ आत्मासिंह जेस्सासिंह
बम्बई

● ● ●

श्रीपोद्दारजी भारतकी उन श्रेष्ठतम विभूतियोंमें एक थे, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं साहित्यको सार्वजनिक भाषामें अत्यन्त सरल पद्धतिसे जन-जनतक पहुँचानेमें बिताया। हम ऐसे

महापुरुषका चरितानुसंधान करते हुए आत्म-विभोर हो जाते हैं। इन महापुरुषका समग्र जीवन-व्यापार अनुपम प्रेरणाका स्रोत बना रहेगा।

हरिराम अग्रवाल
इलाहाबाद

● ● ●

गोलोकवासी लाला हरदेवसहायजीके साथ गोरक्षा-आन्दोलनमें संलग्न रहनेके कारण मुझे अनेक बार पूज्य श्रीपोद्दारजीके पास जाने और उनके दर्शन करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। श्रद्धेय भाईजीने गोरक्षा-आन्दोलनमें जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, वह कभी भुलाया नहीं जा सकेगा। वे अत्यन्त उदारवृत्तिके महापुरुष थे। उनके पाससे कोई व्यक्ति निराश नहीं लौटता था। मैं उनके स्नेह और कृपाको कभी नहीं भुला सकूँगा। उनके निधनसे राष्ट्रकी भारी क्षति हुई है। मैं उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

सुखदेव सिंह
दिल्ली

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके जानेसे 'कल्याण'-परिवारकी ही नहीं, समूचे हिंदूसमाजकी अपरिमित हानि हुई है—धर्म-परायण जनतापर वज्रपात हुआ है।

मा० पां० डेग्वेकर
संगठन मन्त्री—विश्व हिंदू-परिषद्

● ● ●

आजके चारित्र्यशून्य और धर्मग्लानिके वातावरणमें पोद्दारजी दीपस्तम्भ-से खड़े थे। उनका निःस्वार्थ और निरपेक्ष सेवाभाव सदैव अध्यात्मकी ओर मार्गदर्शन करता रहा, मानो उनके जीवनमें अध्यात्म ही साकार हुआ था। उनका परलोकगमन समाजमें एक प्रकारका अभाव उत्पन्न कर गया है, किंतु उनकी प्रेरणा हमको हमेशा सत्कार्यों-की ओर प्रवृत्त करेगी। वे स्वयं मुक्त थे और अपने जीवनसे उन्होंने अन्योंको भी मुक्तिकी ओर अग्रसर किया।

श्रीपोद्दारजीने वाङ्मयरूपसे जो अपार उपदेश-भंडार हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है, वह अक्षय है। आजके युगमें उनका 'कल्याण' अवश्यमेव कल्याणकारी सिद्ध हुआ है। वह स्फूर्ति भूली नहीं जा सकेगी। इतना सस्ता साहित्य और वह भी किसी प्रकारके विज्ञापनोंके बिना—इस कार्यकी दैवी गुण-सम्पदाकी ओर निर्देश करता है। उनके द्वारा सम्पादित धर्म-प्रचार और प्रसार इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ है कि उससे हमारे असंख्य भले-भटके भाई-बहन ठीक रास्तेपर आये हैं।

जशपुरनगर-स्थित 'कल्याण-आश्रम'पर तो श्रीपोद्दारजीका आन्तरिक प्रेम एवं कृपा रही। उनका शुभा-शीर्वाद हमारा आत्मबल बन चुका है। 'कल्याण-आश्रम' पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पावन स्मृतिमें हमेशाके लिये नतमस्तक है—ऋणी है।

र० के० देशपांडे
अध्यक्ष,
'कल्याण-आश्रम'
जशपुरनगर, रायगढ़

● ● ●

श्रीभाईजीके परलोक-गमनसे अत्यन्त दुःख हुआ। धर्ममार्गपर चलनेवालोंका प्रेरक और पथ-प्रदर्शक सूर्य अस्त हो गया। मेरे तो वे परम आत्मीय थे और मुझपर बड़ी कृपा रखते थे। उनके स्नेहकी छत्रछाया बहुत दूरसे भी सांसारिक तापोंके कष्टको सुसह्य बना दिया करती थी। उनके बिना मैं अपनेको सर्वथा निराधार अनुभव कर रहा हूँ। परमात्माके सतत स्मरणका उनका आदेश ही अब तो एकमात्र अवलम्ब रह गया है।

बिरदीचन्द पोद्दार
नागपुर

● ● ●

श्रीपोद्दारजी परम धार्मिक, परोपकारी, सहृदय एवं परम विद्वान् व्यक्ति थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन दूसरोंका दुःख सुनने एवं उनकी भलाई करनेमें ही व्यतीत किया। वे भगवान्के प्रेमी और गोरक्षा-आन्दोलनके प्रमुख सेनानी थे। हिंदी भाषाके प्रति उनका अगाध प्रेम था। देशके लिये स्वतन्त्रता-संग्राममें भी उन्होंने बहुत बड़ा कार्य किया था। उनके निधनसे धार्मिक जगत् एवं देशकी जो महान् क्षति हुई है, उसकी पूर्ति निकट भविष्यमें कदापि सम्भव नहीं है।

हरिकृष्ण झाझड़िया
कलकत्ता

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके परलोक-गमनसे हमारे देश और समाजकी अवर्णनीय क्षति हुई है, देशके सभी मनीषी इसे स्वीकार करते हैं। भाईजीका समस्त जीवन मानव-कल्याणसे ओत-प्रोत रहा है। उन्होंने गीताप्रेससे अनेक धार्मिक, आत्मज्ञानसे परिपूर्ण अलभ्य ग्रन्थोंका प्रकाशन कर हिंदू-धर्म एवं हिंदू-संस्कृतिके संरक्षणमें बहुत बड़ा योगदान किया है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। उनके व्यावहारिक तथा साधनात्मक जीवनके वास्तविक स्वरूप एवं लोक-संग्रही व्यक्तित्वसे देश और विदेशके असंख्य पाठकोंने प्रेरणा प्राप्त की है।

'कल्याण'के माध्यमसे भारतीय संस्कृति और साधनाके महत्वका विश्वके कोने-कोनेमें प्रचार-प्रसार करके भारतीय संस्कृति, धर्म तथा आत्मज्ञानकी ओर जन-मानसका ध्यान आकृष्ट करनेमें भाईजीने अद्वितीय काम किया है।

भाई हनुमानप्रसादजीके सरल व्यवहार एवं मिलनसारतापर उनसे साक्षात्कार करनेवाले मुग्ध रहते थे। जहाँ पोद्दारजी एक कुशल व्यवसायी तथा अनुभवी संचालक एवं सम्पादक थे, वहीं सद्वृत्ति, परिपक्व ज्ञान, चरित्र-निष्ठा एवं आत्मज्ञानसे भी वे परिपूर्ण थे। यही कारण था कि भगवद्भक्त, आत्मज्ञानी, उच्चकोटिके विचारक एवं तत्त्वज्ञानी साधु-संतों तथा विद्वानोंका समागम सदा ही उनके यहाँ हुआ करता था। उनके सुकार्योंका वर्णन अथवा मूल्याङ्कन करना सम्भव नहीं। वे देश और समाजपर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं, जो सहस्रों वर्षोंतक हमारे मानस-पटलपर अङ्कित रहकर प्रेरणा देती रहेगी।

उन्होंने जिस मशालको जलाकर मानवमात्रका मार्ग-दर्शन किया है, वह जलती रहे—इसके लिये हमें सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये।

किशोरीलाल ढांढनिया
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजीने धार्मिक पुस्तकोंके लेखन एवं प्रकाशनका जो काम किया है, उससे हिंदू-संस्कृतिके उन्नयनमें बहुत बड़ा सहयोग मिला है।

श्रीभाईजी एक उदारमना परोपकारी भगवद्भक्त थे। उनके हृदयमें स्वार्थ कभी नहीं रहा। वे जब भी मिलते थे, अत्यन्त प्रसन्नचित्त नजर आते थे। किसीकी बुराई वे कभी नहीं करते थे, अपितु यथासम्भव दूसरोंकी भलाई ही करते थे। मैं एक बार श्रीमोहनलालजी जालानद्वारा निर्मित स्कूलके उद्घाटनके अवसरपर रतनगढ़ गया था। उस समय श्रीभाईजी वहींपर थे। मैं उनसे उनकी हवेलीपर मिलने गया। उनका मैंने अत्यन्त सादगीपूर्ण रहन-सहन देखा। वे वहाँ भी भगवत्-चिन्तनमें रहते थे। उनके लिखनेकी शैली अत्यन्त प्रभावपूर्ण थी। उनके द्वारा लिखी हुई पुस्तकोंसे जनसाधारणका एवं देशका बहुत उपकार हुआ है। भाईजीने अनेक विषयों-पर अच्छी धार्मिक पुस्तकें लिखी हैं, जिन्हें पढ़नेसे हमारी धार्मिक विचार-धाराको बड़ा बल मिलता है।

श्रीभाईजीका शरीर आज हमारे बीच नहीं है; लेकिन वे जो काम कर गये हैं, उनसे वे अमर रहेंगे।

राधाकृष्ण कानोड़िया
कलकत्ता

● ● ●

परमपूज्य भाईजीके सम्बन्धमें क्या लिखूं, क्या न लिखूं ? मैं तो उनका ही था। उनका पितृतुल्य वात्सल्यप्रेम जीवनभर भूल न सकूंगा। आज मैं अनाथ हो गया हूँ। भविष्यमें क्या होगा, यह श्रीराधामाधव ही जानें। वैसे हमारे परिवारका श्रीभाईजीसे सन् १९२३-२४से घर-जैसा सम्बन्ध था। मेरे ताऊजी श्रीबिहारीलालजी पोद्दार एवं मेरे पिताजी श्रीजमनादासजी पोद्दारने श्रीराधाधाम, बरसानामें जो मन्दिर, भवन, बाग एवं अन्य स्थान सन् १९३७-३८में निर्माण करवाये थे, उसमें श्रीभाईजीकी प्रेरणा ही हेतु थी।

श्रीभाईजीके स्वभावकी यह बड़ी विचित्रता थी कि जिसे उन्होंने एक बार अपना कह दिया, उसे जीवनभर अपना मानते रहे, कभी उसके व्यवहार एवं बर्तावको नहीं देखा।

दिल्लीमें 'श्रीराधिका सेवक समाज'की स्थापनामें श्रीभाईजीका आशीर्वाद एवं परामर्श मुख्य रहा है।

हम सबका परम कर्त्तव्य है कि श्रीभाईजी जो मार्ग बता एवं दिखा गये हैं, उसपर चलें और मानव-जीवन-के चरमलक्ष्यको प्राप्त करें।

कपूरचन्द पोद्दार
संस्थापक——श्रीराधिका सेवक समाज,
दिल्ली

● ● ●

भक्त-शिरोमणि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे हिंदू-सभाज और हिंदू-संस्कृतिके एक पुनरुद्धारकका अभाव न केवल सनातनधर्म-प्रेमियोंको अनुभव हो रहा है, प्रत्युत उन सभी व्यक्तियोंको यह रिक्तता अनुभव हुए बिना न रहेगी, जिन्हें हिंदू-धर्म और मानव-धर्मसे कुछ भी लगाव है। उन्होंने केवल धार्मिक क्षेत्रमें ही अपनी प्रतिष्ठा स्थापित नहीं की, बल्कि सामाजिक एवं मानवीय क्षेत्रोंमें भी उनकी सेवाओंको आनेवाली पीढ़ियाँ सदा आदरसे स्मरण करती रहेंगी। उन्होंने पश्चिमके प्रभावसे निरन्तर पतनोन्मुख भारतीय समाजको गीताके आदर्शोका पाठ पढ़ाकर न केवल पतनसे रोकनेका श्लाघ्य प्रयत्न किया, प्रत्युत भौतिकतावादी पश्चिमको भी गीताकी अमूल्य आध्यात्मिकतासे प्रत्यक्षरूपमें प्रभावित किया।

उनके निधनसे भारतीयताका एक आधारस्तम्भ, एक सम्बल हमारे बीचसे उठ गया।

वैद्य ओंकारप्रसाद शर्मा
दिल्ली

● ● ●

पूज्य भाईजीके निधनसे भारतकी ही नहीं, विश्वकी धार्मिक जनताको भारी ठेस लगी है। 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु'से भाईजीने विश्वभरमें प्राचीन ज्ञान-भक्तिका जो सागर बहाया है, वह श्रीराधामाधव उसी प्रकार बहाते रहें, जिससे कोटि-कोटि जन लाभान्वित होते रहें।

गीताप्रेसके द्वारा सस्ती एवं सरल धार्मिक पुस्तकें लाखोंकी संख्यामें प्रकाशितकर उन्होंने वर्तमान कलियुग-को सतयुगका रूप दिया––यह धार्मिक इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा।

हम सब उनके चलाये मार्गपर चलते हुए अपनी एवं जन-मानसकी सेवा करें तो मेरी समझमें यह सबसे उचित श्रद्धाञ्जलि होगी।

नाथूराम पोद्दार
मन्त्री––राजस्थानी हरियाणवी समाज,
दिल्ली

● ● ●

विश्वके सभी धर्मोंमें सनातनधर्म सबसे पुराना धर्म है। इसमें जितने शास्त्र एवं स्मृतियाँ हैं, उतने अन्य धर्मोंमें उपलब्ध नहीं हैं। प्राचीन ग्रन्थ प्रायः संस्कृतमें हैं। उनका सुबोध हिंदीमें अनुवाद तैयार करवाकर प्रकाशित करना बहुत ही महान् कार्य है। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने यह सब कार्य किया। वास्तवमें उनके जीवनका यह एक महान् लक्ष्य रहा। श्रीपोद्दारजीकी यह सनातनधर्मके लिये बहुत बड़ी देन है। श्रीपोद्दारजीने देशवासियोंकी आर्थिक क्षमताका भी ध्यान रखा। इसलिये प्रकाशन इतने कम मूल्यपर लोगोंको उपलब्ध कराये कि प्रत्येक व्यक्ति उन्हें आसानीसे खरीदकर पढ़ सके। सनातनधर्मकी ऐसी सेवा इस युगमें और किसीने नहीं की। श्रीपोद्दारजी इस प्रकारके आदर्शके प्रमुख प्रेरक एवं प्रसारक थे। हमारे देशका ढाँचा अब ऐसी करवट बदल रहा है कि इसमें इस प्रकारके निःस्वार्थ भावसे कार्य करनेवाले कैसे रह सकेंगे ! श्रीपोद्दारजी-जैसे व्यक्ति अब इस देशको कहाँ मिलेंगे ?

श्रीपोद्दारजीके कार्योंकी प्रशंसा शब्दोंमें नहीं की जा सकती, उनके प्रति हम केवल हृदयसे ही श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर सकते हैं।

व्रजभूषण
प्रधान, हिंदुस्तानी मरकंटाइल एसोसिएशन,
दिल्ली

● ● ●

प्रभु-प्रेरणासे समय-समयपर इस संसारमें ऐसे महापुरुषोंका प्रादुर्भाव होता रहता है, जिनके दर्शनमात्रसे महान् पातकी भी अपना तामसी स्वभाव छोड़कर परम सात्विक हो जाते हैं। पूज्य श्रीभाईजी ऐसे ही परम संत थे। उनके सङ्ग एवं आशीर्वादसे 'गरल सुधा', 'गोपद सिन्धु' तथा 'अनल सितलाई' हो जाते थे––यह बात मैं अपने अनुभवके आधारपर लिख रहा हूँ। उनके प्रवचन सुननेसे न जाने कितने व्यक्तियोंके जीवनमें परिवर्तन आया है। मेरे जीवनपर उनके प्रवचनका बहुत प्रभाव पड़ा है।

श्रीभाईजीका जीवन–'परहित सरिस धरम नहिं भाई'का ज्वलन्त उदाहरण था। उन्होंने अपना सर्वस्व जाति, धर्म, समाज एवं देशपर न्योछावर कर दिया था। हमलोग दिल्लीमें प्रतिवर्ष 'श्रीभगवन्नाम संकीर्तन महा-सम्मेलनका' आयोजन करते हैं। यह महोत्सव पूज्य श्रीभाईजीकी ही देन है। श्रीभाईजीकी विमल कीर्ति संसार सदा गाता रहेगा।

हजारीलाल कौशिक
संस्थापक––श्रीभगवन्नाम सत्संग समाज,
दिल्ली

● ● ●

भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार अब नहीं रहे। एक दुर्लभ विभूति हमारे बीचसे उठ गयी। उनका जीवन जाह्नवीकी धाराके सदृश पवित्र था। सहस्रों वर्षोंसे संचित भारतीय धर्मशास्त्रोंकी अपार और अमूल्य निधिको 'कल्याण'के माध्यमसे कोटि-कोटि जन-मानसके लिये सहज और सुगम बनाना भाईजी-जैसे तपस्वी व्यक्तिके लिये ही सम्भव था। हनुमानप्रसादजीके कार्यकी तुलना यदि किसी अन्य महापुरुषके कार्यसे की जा सकती है तो वे केवल रामभक्त हनुमान् ही हैं। जिस प्रकार सिन्धुको लाँघकर महादेवी सीताकी खोज लेनेमें हनुमान् सक्षम और सफल बने, उसी प्रकार जन-मानसकी समझसे परे संस्कृत-भाषाकी अतल गहराइयोंमें खो जानेवाली और काल-पटलके पीछे समा जानेवाली प्राचीन भारतके ऋषि-मुनि और मनीषियोंकी लेखनीद्वारा प्रकाशित भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य धरोहरको ढूँढ़ लाना भाईजीके ही बूतेकी बात थी। उनकी लेखनीसे निकलनेवाले एक-एक वाक्यके पीछे एक-एक मन्त्रका बल रहता था। पाठक जैसे-जैसे उनके लेखोंको पढ़ता, एक स्निग्ध शान्ति उसके तन-मनको सराबोर करती जाती थी। भाईजीका साहित्य सदियोंतक उनकी याद हमें दिलाता रहेगा। उनका कार्य और उनका साहित्य ऐसे अद्भुत स्मारक हैं, जो आसेतु-हिमाचल सर्वत्र घर-घरमें 'कल्याण'की प्रतियोंमें विराजमान हैं। राजस्थानके एक अनूठे रत्न, भारतके एक महान् सपूत और एक सच्चे मानवके रूपमें भाईजीका सदैव पुण्यस्मरण होता रहेगा। भारतकी कोटि-कोटि धर्मप्राण जनता नतमस्तक हो उनका श्रद्धार्चन करती है।

सत्यनारायण तुलस्यान
मन्त्री—राजस्थान भारती, दिल्ली

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मेरी प्रथम भेंट १९३२-३३में गोरखपुरमें हुई, जब भारतीय प्रशासनिक सेवामें आनेके बाद अपने सेवाकालके प्रथम वर्षमें मैं गोरखपुरमें नियुक्त हुआ। दैवप्रकोपसे उस वर्ष गोरखपुर जनपदमें भीषण बाढ़ आ गयी। गोरखपुर शहरको भी उससे खतरा होने लगा। श्रीहनुमानप्रसादजीके नेतृत्वमें गीताप्रेसने गृहविहीन हजारों-हजारों लोगोंकी बड़े प्रभावशाली ढंगसे सेवा की। उसकी सेवा करनेकी पद्धति सर्वथा आडम्बररहित थी।

जिस ढंगसे यह जन-सेवाका भाव काम कर रहा था, उसके कारण सरकारकी ओरसे चालू की गयीं सेवा-संस्थाओं (—जो मेरे अधिकारमें थीं) और गीताप्रेस-सेवादलके बीच पूर्ण सहयोगके साथ सेवा-कार्य हुआ। उस समय श्रीपोद्दारजीसे मेरा जो सम्पर्क हुआ, वह बढ़कर व्यक्तिगत, घनिष्ठ मित्रता तथा आदरकी भावनामें परिणत हो गया। बादमें मेरे विवाहोपरान्त जब मेरी पत्नी मेरे पास गोरखपुर आ गयी, तब वह भी श्रीपोद्दारजीकी निःस्वार्थ भावना तथा मानवमात्रके प्रति दयाभावसे आकर्षित हुई। यद्यपि तीन-चार वर्षोंमें मैंने गोरखपुर छोड़ दिया, तथापि मैंने उनसे सम्पर्क बनाया रखा और जब कभी वे दिल्ली आते, मैं उनके दर्शन अवश्य करता। मेरा उनके अनेक अन्तरङ्ग मित्रों तथा सहयोगियोंसे भी परिचय है। मैं तथा वे सभी लोग यह अनुभव करते हैं कि श्रीपोद्दारजीके निधनसे मानव-हितकी भावनाको महती क्षति पहुँची है। इन दिनों जब हम बँगला-देशकी शरणार्थी समस्यासे क्षुब्ध हैं, मुझे बहुधा उनका स्मरण हो आता है—विशेषकर उस प्रकारकी सहायताके लिये, जो वे अपने प्रभावक्षेत्रमें आनेवाले अनेक व्यक्तियोंके स्वेच्छापूर्ण प्रयासोंके फलस्वरूप जुटाते रहते थे। निस्संदेह यह उनका दृढ़ धार्मिक विश्वास ही था, जो उनके जीवनको अपने भाई-बहिनोंकी ऐसी निःस्वार्थ सेवाके लिये प्रेरित करता था। गीताप्रेसके कार्योंका पथ-प्रदर्शन एवं निर्देशन कर उन्होंने असंख्य लोगोंको जो लाभ पहुँचाया, उसका मूल्याङ्कन करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।

एस० रंगनाथन
कम्प्ट्रोलर तथा आडीटर-जनरल
भारत सरकार, नयी दिल्ली

● ● ●

श्रीभाईजी प्राचीन भारतकी महान् सांस्कृतिक परम्पराकी एक अन्तिम तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ीके सदृश थे। उन्हें गृहस्थ-जीवनमें भी निस्स्वार्थपरता एवं पवित्रताके सर्वप्रसिद्ध प्रतिनिधि 'विदेह'की श्रेणीमें रखा जा सकता है। इस महान् संतसे मेरा सम्बन्ध गत सन् १९५४ ई० के प्रयाग-कुम्भसे था। भारतीय अध्यात्मवादको उनकी सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने हिंदू-धर्मके मूल तत्त्वोंका प्रचार, शास्त्रोंमें वर्णित पद्धतिका उपदेश करने मात्रसे न करके, अपने जीवनमें आचरण करके किया है। वे धर्मको केवल विश्वासकी नहीं, अपितु आचरणकी वस्तु मानते थे। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति वही है, जो धर्मके अनुसार आचरण करता है। हजारों लोग गोरखपुर-स्थित उनके निवास-स्थान 'गीतावाटिका'में जाते और उनके विद्वत्तापूर्ण उपदेशोंके समान ही उनके जीवनकी आचरण-पद्धतिसे प्रेरणा प्राप्त करते थे। हम अब कभी भी उनके जीवनके शान्त, संतुलित एवं संयमित स्वरूपका दर्शन कर आनन्दका अनुभव नहीं कर पायेंगे––इस विचारसे हमें बड़ी पीड़ा हो रही है। किंतु 'कल्याण' एवं अन्य साहित्य हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेंगे। यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि 'भाईजी' 'कल्याण' और गीताप्रेस-के समस्त प्रकाशनोंकी प्रतिमूर्ति थे और वे सभी भाईजीकी प्रतिमूर्ति थे। श्रीपोद्दारजीने गोरखपुरको भारतके भौगोलिक एवं सांस्कृतिक मानचित्रपर मोटे अक्षरोंमें प्रतिष्ठित कर दिया है। भारतभरमें गोरखपुरवासी सरलतासे पहचाना जा सकता है, क्योंकि वह गीताप्रेसके प्रकाशनोंके केन्द्र गोरखपुरका निवासी है। हिंदू-विचारधारा और दर्शनसे सम्बद्ध ग्रन्थोंकी बाढ़ निस्संदेह मीलके पत्थरके समान सदा पथ-प्रदर्शनका कार्य करती रहेगी।

राधा मोहन
अवकाश-प्राप्त आयुक्त एवं जज
प्रयाग

● ● ●

श्रीभाईजीके परलोकगमनसे भूमण्डलसे धर्मका साक्षात् सूर्य अस्त हो गया। उनके हृदयमें सबके प्रति महान् करुणाका उत्स था। उनके लिये कोई भी पराया नहीं था, सभी अपने थे। उनके पाससे दुःखी-से-दुःखी प्राणी भी सुखकी असीम निधि लेकर लौटता था। वे अजातशत्रु थे––उनके समीप आते ही शत्रुताकी भावना भी आत्मीयता–मित्रताकी भावनामें परिणत हो जाती थी। ऐसे दैविक गुणोंकी जीती-जागती मूर्तिका अब हमें दर्शन कहाँ होगा? हमारे अभाव––व्यथाओंका, हमारे हृदयकी कलङ्क-कालिमाका अब कहाँ परिक्षालन होगा?

श्रीभाईजी युगस्रष्टा थे––उनके साथ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और करुणाका एक युग समाप्त हो गया। नारदजीने, भक्ति-तत्त्वका विवेचन करते हुए, जिन व्रजगोपियोंके प्रेमका उदाहरण दिया है––पूज्य श्रीभाईजी उसी श्रीराधा-माधव-प्रेम-तत्त्वके मूर्तरूप थे।

श्रीभाईजीके तिरोधानसे हम अनाश्रय हो गये हैं। अब तो उनकी गुण-गाथा ही हमारे लिये अवलम्ब है।

नारायणप्रसाद शर्मा
इन्दौर

● ● ●

'कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादक तथा सनातनधर्मके मेरुदण्ड भाईजीके चले जानेसे हम जितने भी आस्तिक फौजी भाई हैं, उन सबको सूना-सूना-सा लग रहा है। भाईजी इस कठिन समयमें, जब कि सनातन हिंदूधर्म चतुर्दिक् आक्रमणोंका शिकार है तथा हम आस्तिकजन भयाक्रान्त हैं, अपने हृदयग्राही लेखों और विचार-पूर्ण निबन्धोंसे भावुकजनोंको सर्वदा परमार्थपथपर अग्रसर होनेकी स्थिर प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं। इनके निधनसे हिंदूराष्ट्रका अजेय योद्धा, गोभक्त, हिंदुत्वनिष्ठ लेखक, मानवतावादी तथा राष्ट्रीयतावादी महापुरुष चला गया। उनके अभावकी पूर्ति असम्भव है।

श्रीविनय ठाकुर 'अहियारी'
तथा समस्त फौजीभाई

● ● ●

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी पार्थिव देहको त्यागकर नित्यलीलालीन हो गये । परंतु आज भी उनकी सहज सौम्य एवं मधुर मूर्ति हमारे मानस-पटलपर अङ्कित होकर हमारा मार्गदर्शन कर रही है।

भाईजीकी पैतृक भूमि रतनगढ़ (राजस्थान)के निवासी होनेका हमें सौभाग्य प्राप्त है। इसलिये भाईजीके निकट सम्पर्कमें आनेका मुझे अनेक बार सुअवसर मिला है।

श्रीभाईजीके निर्देशनमें मुझे कई संस्थाओंकी सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस नाते पूज्य भाईजी-की अलौकिक एवं चामत्कारिक निर्णायक प्रतिभाका आभास मुझे मिलता रहा है। जब कोई उलझनभरी समस्या सामने आती थी और लगता था कि उसका कोई समाधान नहीं हो सकता, तब पूज्य भाईजी ऐसा सहज एवं सर्वसम्मत हल निकाल लेते थे कि सभी दंग रह जाते थे।

किसी भी दीन-दुःखीकी कष्ट-गाथा सुनकर भाईजीका नवनीत-सम मृदुल हृदय द्रवित हो उठता, वाणी गद्‌गद और नेत्र सजल हो जाते थे। वह सौम्य मर्ति हमारे हृदयोंको आलोकित करती रहे और हमें सत्पथपर लगे रहनेकी सतत प्रेरणा देती रहे।

श्यामसुन्दर लाल
अधिवक्ता, रतनगढ़

● ● ●

करोड़ों आस्तिकों, भक्तों और श्रद्धालुओंके भजनीय श्रीहनुमानप्रसादजीके नामके पूर्व 'स्वर्गीय' शब्दका प्रयोग करते हुए जी न जाने कैसा हुआ जा रहा है।

वे भारतके लिये स्वर्गका संदेश लेकर आये थे । साधारण जीवनके भीतर असाधारण शक्ति छिपाये थे, एक आदर्श महामानव और सच्चे कर्मयोगी थे। 'कल्याण'के द्वारा उन्होंने इस देशका ही नहीं, विदेशोंके भी असंख्य नर-नारियोंका कल्याण किया है। धार्मिक जगत्‌में उनकी यह लोक-सेवा अविस्मरणीय रहेगी।

पूज्य पोद्दारजीके पवित्र नाम और यशसे तो मैं बहुत पहलेसे ही परिचित था । परंतु उनके पावन दर्शन नहीं हो सके, इस बातका खेद मुझे सदैव रहेगा।

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीका दुःखद निधन सम्पूर्ण हिंदू-संसारकी एक महान् दुर्घटना है । अपने जीवनकालमें उन्होंने धर्म, संस्कृति और साहित्यकी जो सेवा की, वह अनिर्वचनीय है। पोद्दारजी अपने आपमें एक महान् संस्था थे। धार्मिक साहित्य-क्षेत्रमें पोद्दारजीके उदयके पहले एक अभावकी स्थिति थी। देशमें धार्मिक साहित्यके प्रकाशन-संस्थान उँगलियोंपर गिने जाने योग्य थे। धर्म-ग्रन्थोंकी प्राप्ति विरल और व्ययसाध्य थी। धर्मप्राण जनताके हृदयमें इस महान् देशके आर्षग्रन्थोंको अपनी मातृभाषामें ही पढ़नेके लिये छटपटाहट थी। पोद्दारजीने समयकी माँग पहचानी और अपने देशकी जनताको ऐसे ग्रन्थरत्न भेंट किये, जिनकी मुद्रणसम्बन्धी स्वच्छता, सुन्दरता और शुद्धता देखकर भारतीय जन-मानस कृतकृत्य हो गया और जो स्वल्पमूल्यजनित सुलभताके कारण घर-घर पहुँच गये। भाईजी अनन्य हरिभक्तिपरायण परम भागवत थे। वे नम्रताकी मूर्ति थे। उनका जीवन त्याग–तपस्यामय था।

वे हिंदू-हिंदी-हिंदुस्तानके अनन्य सेवक तथा सनातनधर्मके निष्ठावान् पुजारी थे। उनकी तरह निःस्वार्थ सेवा करनेवाले विरले ही होते हैं।

मैं ऐसी महान् विभूतिके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

प्रकाशचन्द चोपड़ा
अमृतसर

● ● ●

निर्मलहृदय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार मानवता और सनातनधर्मके सच्चे सेवक थे। विश्वनियन्ता श्रीनारायण-से उनका निरन्तर सम्पर्क रहा। भौतिक जगत्‌में उनके कार्यकी इतिश्री नहीं हुई है और वह तबतक अनवरतरूपसे गतिशील रहेगा, जबतक निष्ठावान् व्यक्ति उनका दायित्व वहन करते हुए 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' तथा गीता-प्रेसके अन्य प्रकाशनोंद्वारा धर्म तथा जीवनको दिशा-निर्देश करते रहेंगे।

एन० कनकराज अय्यर
कोट्टैयूर, मद्रास राज्य

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परलोक-गमनसे देशने एक महान् आत्माको खो दिया है। इतना ही नहीं; बल्कि हमारी महान् हिंदू-संस्कृति भी अपने एक महान् व्याख्यातासे हाथ धो बैठी है। श्रीपोद्दारजी सनातनधर्मके आलोकवाही पथ-प्रदर्शक थे। उन्होंने आदर्श हिंदू-जीवनकी शिक्षा दी और जीवनपर्यन्त आदर्श हिंदू-जीवन बिताया। दो वर्ष पूर्व मैं और मेरी पत्नी उनसे ऋषिकेशमें मिले थे। हमलोगोंके प्रति उन्होंने जो अतिथि-सत्कार, सम्मान एवं प्रचुर प्रेम प्रदर्शित किया, उसकी स्मृति अभी भी हरी है। उनके निवास-स्थानपर हमलोगोंने कुछ भजन उन्हें सुनाये थे। अश्रुपूरित नयनों तथा आभायुक्त मुखमण्डलसे उन्होंने उनका रस लिया। उनके पर-लोकगमनसे हुई क्षति अपूरणीय है। एक महान् आत्माका भगवद्धाम-गमन हुआ है। ऊर्ध्वलोकसे ही उनकी आत्मा हमें आशीर्वाद देती रहे। जिस पवित्र कार्यके निमित्त उन्होंने अपना जीवन एवं सर्वस्व दे दिया, उसे हम जीवित रखें। उनका परिवार कुछ सदस्योंतक ही सीमित नहीं था, समस्त विश्व उनका परिवार था। उन्होंने इस संसार और इसमें निवास करनेवाले मानवमात्रको आस्था-सम्पन्न बनानेका अथक प्रयत्न किया। उनके अभावमें सम्पूर्ण विश्व अकिंचनतर हो गया है। हम सभी ऐसी चेष्टा करें कि वे जो आदर्श स्थापित कर गये हैं, जीवनको उसीमें ढालें।

डा० वी० राम आयंगर
बंगलोर

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी श्रीकृष्णचरणोंमें लीन हो गये, यह जानकर मन अत्यधिक विचलित हुआ है। वे जब कलकत्तामें थे, तभीसे मैं उनसे परिचित हूँ। कलकत्ता विश्वविद्यालयमें, 'बंगीय-साहित्य-परिषद्'में एवं अन्य प्रति-ष्ठानोंमें उनसे मिलनेका सुयोग हुआ था। वे बँगला-साहित्यके, विशेषतः वैष्णव-पदावलीके परम अनुरागी और उसके भावोंतक पहुँचनेवाले पुरुष थे। सन् १९०५में 'बङ्ग-भङ्ग-आन्दोलन'के समय उनके साथ आन्दोलनमें योग देनेका मुझे सुयोग हुआ था। उस समयकी 'अनुशीलन समिति', युवक तथा विद्यार्थियोंकी निःस्वार्थ देश-प्रीति तथा 'वन्दे मातरम्' और गीताके मन्त्रोंसे अनुप्राणित वीर बङ्गसंतानोंके मृत्यु-वरणसे उनका चित्त देश-प्रेमकी निष्ठा और गीता-अनुरागसे भर उठता था। ऐसा लगता है कि वही भाव उनके गीताप्रचारका उत्स रहा है।

कुछ वर्ष पूर्व गोरखपुरमें 'निखिल भारत बङ्ग साहित्य सम्मेलन' हुआ था। मैं उस सम्मेलनमें सम्मिलित हुआ था। मैं श्रीभाईजीसे मिला। उन्होंने मुझे प्रतिनिधि-आवासपर ठहरने नहीं दिया और बलपूर्वक अपने घर ले गये एवं स्वयं अपने हाथोंसे परम आदरके साथ खिलाना-पिलाना आदि किया। यह घटना मेरे जीवनमें चिर-स्मरणीय एवं संग्रहणीय रहेगी।

आज वे हमारे मध्य नहीं हैं, तथापि उनका नाम और कार्य भारतवासीमात्र सर्वदा स्मरण करेंगे।

श्रीज्योतिषचन्द्र घोष
सम्पादक, निखिल-भारत-बंगभाषा-प्रसार-समिति
अगरतल्ला (पूर्वबंगाल)

● ● ●

हिंदुओंके घर-घरमें कम-से-कम मूल्यमें धार्मिक पुस्तकोंको पहुँचानेके लिये उनका प्रकाशन करके देनेवाला तथा अनेक लोगोंको ईसाई बननेसे बचानेवाला महात्मा हमारे बीच नहीं रहा। विदेशोंमें आज जो हम हिंदूधर्मके प्रति इतनी आस्था देख रहे हैं, वह सब श्रीपोद्दारजीके साहित्य-प्रचारका फल है। वे गृहस्थरूपमें योगी थे। उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि उनके कार्योंको सुचारुरूपसे संचालित रखनेमें ही होगी।

कालीदास बसु, एडवोकेट
कलकत्ता

● ● ●

मुझे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निर्वाणसे गहरा धक्का लगा है। उनके निधनसे हिंदू-धर्मने एक जीवन्त शक्तिको खो दिया है। मैंने उनके रूपमें अपना समादरणीय मित्र, गम्भीर दार्शनिक और निर्भ्रान्त पथ-प्रदर्शक खो दिया। उनके निधनसे हुए रिक्त स्थानकी पूर्ति दीर्घकालतक नहीं हो सकेगी।

एस० लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री
सम्पादक—'कामकोटिवाणी'
काञ्चीपुरम्

● ● ●

मुझे और हमारी संस्थाके सभी सदस्योंको आदरणीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे बड़ा धक्का लगा। ऐसे समयमें, जबकि जनताके नैतिक स्तरकी नींव हिल रही है, देशको उनके निधनसे महान् क्षति पहुँची है।

वी० अप्पाकुट्टी
कस्तूरबा गांधी कन्या गुरुकुलम्
वेदारण्यम् (तमिलनाडु)

● ● ●

श्रीपोद्दारजी-जैसी विभूतिका उठ जाना एक अपूरणीय अभाव है। वे मानवताके सच्चे प्रतीक थे। योगेश्वर श्रीकृष्ण और श्रीराधा उनके रोम-रोममें समाये हुए थे। 'कल्याण'का ४४ वर्षतक सम्पादनकर उन्होंने हिंदी पत्रकारिताको एक नयी दिशा प्रदान की है। उन्होंने सर्वधर्म-सम्मानकी भावनाका लोगोंमें संचार किया है। उन्होंने लाखों लोगोंको धर्मके प्रति आस्थावान् बनाया है। लाखों नर-नारी नास्तिकसे आस्तिक बन गये, यह सब 'कल्याण'का ही प्रभाव था। देश और समाजके लिये उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था। उनका जीवन धन्य था।

वेंकटलाल ओझा
मन्त्री—हिंदी समाचारपत्र संग्रहालय, हैदराबाद

●

अश्रु-तर्पण

तुमने किसको कितना अपनाया, माना,
सबने अपनेको ही सबसे प्रिय जाना।
तुम मानवताकी थे उदार परिभाषा,
जिसमें न कहींकी भेद-भावकी भाषा॥
उरकी भाषाको बिना कहे पढ़ते थे,
अकथित प्रश्नोंके समाधान गढ़ते थे।
दुख-दर्द दूसरोंके सुन करके रोते,
थे शुष्क न होते तव करुणाके सोते॥
तुम माधवकी मुरलीके मोही स्वर थे,
श्रीराधाके मञ्जीर मनोज्ञ मुखर थे।
तुम रागभक्ति-रसके अक्षय सागर थे,
तुम श्रीराधा थे या नटवर नागर थे?
तुमने विषको भी मीठा शर्बत देखा,
परमाणु-सदृश पर-गुणको पर्वत लेखा।
तुममें दैवी विभूतिके गुण छाये थे,
तुम मानवमें भगवान उतर आये थे॥
तुम भक्तवृन्दके भाल-तिलक-कुंकुम थे,
अर्थीकी आशाओंके कल्पद्रुम थे।
धीरज, अखण्ड विश्वास अटूट तुम्हारा,
मैत्री-मुदिता-करुणाकी अविरल धारा॥
सबमें सर्वत्र सदा ईश्वरका दर्शन,
परहित-चिन्तन, गम्भीर विचार-विमर्शन।
तुम व्यापक हरि हो गये, हार आँसूका,
श्रद्धासे अर्पित सुमन चार आँसूका॥

रामनारायणदत्त शास्त्री

सहस बार वन्दन

लिया जन्म जिसने, अटल मृत्यु उसकी,
खिला पुष्प जो भी, मिटा एक दिन है।
सभी इसमें गतिमय, नहीं स्थिर है कुछ भी,
विलय और उद्भवकी क्रीड़ा चिरन्तन।
अमर ध्रुव अखण्डित भला कौन-सा कण?
अमिट रेख किसकी बनी शेष अबतक॥

धरापर किरण एक उतरी अनोखी,
घटेगा प्रखर तेज तपका न जिसके।
युगोंतक तिमिर-खण्डको भेदकर जो,
करेगी अँधेरा जगत-पथ प्रकाशित।
यशःदीप जिसके गगनमें जलेंगे,
दिशाएँ अमर गीत गाती रहेंगी॥

बिना सार तनसे दिया सार जगको,
बिना स्वार्थ जो हित हुए दूसरोंके।
महारासमें लीन हो, छोड़ दी वह
तपःपूत, निर्मल, जराजीर्ण काया।
जगद्बन्धु, कल्याण-साधक, व्रतीका,
शरण याचकोंका, सहस बार वन्दन॥

त्रिलोकीनाथ 'व्रजबाल'

'ज्यों-की-त्यों धर दीनी चदरिया'

रंग-रूपकी, चमक-दमककी
इस मायावी दुनियामें
श्रीपोद्दारजीको
जाननेवाले, माननेवाले
हतप्रभ हैं, लाखों-करोड़ों
उनके अवसानपर ।
कोटि-कोटिको सत्य-अहिंसाका,
जीवन-सफलताका, मार्ग 'कल्याण'का
बतलानेवालेने, बिना दागके
ज्यों-की-त्यों धर दीनी चदरिया ।
उनकी कृतियाँ
राह दिखायें भूले-भटकोंको
—यही अञ्जलि अर्पित है ।

मोतीलाल सुराणा

क्या उपहार दूँ

भावनाके पुष्प
क्या उपहार दूँ ?
भावनाके दूत !
अब नित्यलीलालीन हो
शुद्ध चिन्मय देहसे
बढ़ते रहो उस लोकतक
मधुर भावापन्न—
श्रीहरि-राधिका
कबसे जहाँ
पुण्य-प्रेरित
भक्त-सेवित
निज मधुर मुस्कान-सह
—करते प्रतीक्षा !

आचार्य सर्वे

श्रद्धाञ्जलिः

यत्सद्यत्नपयोनिधिप्रमथनोद्भूतो यशश्चन्द्रमाः
स्वैः कल्याणमयैः करैः सुखयते तापत्रयाप्तं जगत् ।
यद्गीतासुविचारचारुचरिताचारप्रचारोद्यम
आकल्पं सुयशःप्रशस्तिकलितो यूपोपमः स्मारकः ॥ १ ॥'

'जिनके उत्तम यत्नरूप क्षीर-सागरके मन्थन करनेसे जो यशोरूप चन्द्रमा प्रकट हुआ, वह अपनी कल्याणमयी किरणोंसे त्रितापतप्त जगत्को सुखी बना रहा है; तथा जिनका श्रीमद्भगवद्गीतानुसारी सुन्दर विचारों एवं चारु चरित्रके द्वारा सदाचारके प्रचारका उद्योग कल्पपर्यन्त सुयशः–प्रशस्ति-भूत यज्ञीय यूपके समान महान् स्मारकके रूपमें स्थिर रहेगा;––

चारित्र्ये हनुमानिव प्रमुदितासिद्धौ प्रसादोपमः
पुन्नाम्नो नरकस्य दारणपटुः सर्वस्य कल्याणकृत् ।
इत्थं स्वानुगतार्थनामविदितो 'भाईति'-संज्ञोज्ज्वलः
सोऽयं श्रीहनुमान् प्रसादसहितो यातो दिवं साम्प्रतम् ॥ २ ॥

'जो सदाचारके पालनमें श्रीहनुमान्जीके समान प्रख्यात और प्रमुदिता नामक सिद्धिके विषयमें साक्षात् भगवत्-'प्रसाद'रूप थे, इसी प्रकार जो 'पुं' नामक नरकके विदारण करनेमें समर्थ, अथच सबका कल्याण करनेमें प्रवृत्त थे––इस प्रकार जिनके नामके 'हनुमान्', 'प्रसाद' और 'पोद्दार'––तीनों ही शब्द अन्वर्थ थे, वे कल्याण-पत्र-सम्पादक, आत्मीय जनोंमें 'भाईजी' नामसे विख्यात श्रीहनुमानप्रसादजी सम्प्रति दिव्यधामवासी हो गये ।'

माधवाचार्य शास्त्री

•

विजयते हनुमत्प्रसादः

कल्याणमस्तु जगतामिति यस्य चित्तं
नित्यं निरन्तरमभूत्प्रणयावलीढम् ।
'कल्याण'संज्ञकतथार्थकपत्रिकायाः
सम्पादको विजयते हनुमत्प्रसादः ॥ १ ॥

'किस प्रकार जगत्का कल्याण हो, इस चिन्तनमें ही जिनका मन नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक लगा रहता था, सार्थक नामवाली 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादक वे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सर्वत्र विजय प्राप्त करें ।

तद्दर्शनं नयनयोरभवत् सुधा मे
तद्भाषणं समभवन्मयि पुष्पवृष्टिः ।
पूजोपचारविरहेऽप्यभवत्तदीयं
शिष्टोचिताचरणमेव विधिः समग्रः ॥ २ ॥

'उनका दर्शन मेरे नेत्रोंके लिये अमृतरूप था, उनका भाषण मुझे अपने ऊपर फूलोंकी वर्षाका सुख देता था, पूजन-सामग्री न होनेपर भी उनका शिष्टाचार ही पूजाविधिको पूर्ण करता था ।'

सम्पादकाः कति न सन्ति न सन्ति तास्ताः
किं पत्रिकाः कलियुगोन्नतये नियुक्ताः ।
'कल्याण'मेव किल केवलमेकलं तत्
यत्कारणं भवति सत्ययुगोन्नतीनाम् ॥ ३ ॥

'सम्पादक भी अनेक हैं, कलियुगकी उन्नतिमें सहायक पत्रिकाएँ भी अनेक प्रचलित हैं; किंतु सत्ययुगकी उन्नतिमें सहायता देनेवाली पत्रिका तो एकमात्र 'कल्याण' ही है ।'

धर्मः सनातन इहैति परं प्रतिष्ठा–
पात्रं न निन्द्यवचसां भवतीतरोऽपि ।
'कल्याण'मेव जयतादिह पत्रिकासु
सम्पादकेषु जयताद्धनुमत्प्रसादः ॥ ४ ॥

'यह पत्रिका इतर धर्मोंकी निन्दा न करती हुई सनातनधर्मकी प्रतिष्ठा-वृद्धि करती है । पत्रिका-शिरोमणि 'कल्याण' और सम्पादक-शिरोमणि श्रीहनुमानप्रसादजीकी सर्वदा विजय हो !'

दण्डिस्वामी सुखबोधाश्रम

●

एक चाह

नियतिका नाटक निरन्तर चल रहा है।
दीप जो मैंने जलाया, बुझ गया क्यों ?
दीप जो मैंने बुझाया, जल गया क्यों ?
था यहीं कलतक खड़ा उत्तुङ्ग पर्वत।
आज सागरके दृगोंमें ढल गया क्यों ?
कुछ नहीं पर एक परिवर्तित हुआ है।
दृश्य नव है और पिछला टल रहा है ।। नियतिका नाटक०

मानता मुझसे मिला जो नेक है वो।
या कहूँ फिर नेकमें भी एक है वो ।।
कर्म-रत, सद्वृत्ति है, वो न्याय-प्रिय है।
या कहूँ फिर न्यायका भी टेक है वो ।।
कसक, तड़पन, एक आँधी बन रही है।
आजका यह दृश्य कितना खल रहा है ।। नियतिका नाटक०

जानता हूँ, कालकी गति वेगमय है।
है जहाँपर लय, वहीं निर्माण भी है ।।
जहाँ पीड़ा-रुदन, आह-कराह भूपर।
वहीं हास-विलास, दुखसे त्राण भी है ।।
पर बिछुड़ना नियतिका ही ध्येय है जब।
मन कसक उरमें छिपाकर जल रहा है ।। नियतिका नाटक०

जानता हूँ, क्षमा करना काम ही है।
गुरुजनोंकी बुद्धिका परिणाम ही है ।।
तो क्षमाकी याचना ही क्यों करूँ मैं।
जो हुई त्रुटियाँ कई, वो ज्ञात ही हैं ।।
चाह केवल है, रहें सानन्द अब वो।
विघ्न सारा सामने ही जल रहा है ।। नियतिका नाटक०

'शेखर' गोरखपुरी

●

अर्पण

श्रीराधा-माधव प्रिय परिकर
लीला-लोक-विहारी ।
हो जन-जनके वन्दनीय तुम,
हे कल्याण-प्रसारी ।। १ ।।

मूर्त्तिमान कलि कठिन कालमें
नाम-महत्त्व-प्रणेता ।
भक्ति-मार्गके, धर्म-कर्मके
उद्धारक नचिकेता ।। २ ।।

'श्रद्धा एव अर्जनीया', यह
है शास्त्रोंकी वाणी ।
प्राप्त कर चुके थे तुम निश्चय
वह श्रद्धा कल्याणी ।। ३ ।।

पुण्य-प्रसाद उसी श्रद्धाका
प्राप्त सभीको होवे ।
चंचल मन चंचलता खोकर
विषय-वासना धोवे ।। ४ ।।

राधा-माधव-युगल-चरण-रति—
का कर पायें अर्जन ।
स्मृतिमें पावन इसी हेतु, है
अर्पित यह श्रद्धार्चन ।। ५ ।।

ज० ला० श्रीवास्तव

●

विश्ववन्द्य लोकपुरुष

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

परमविशुद्ध संत श्रीभाईजी

स्वामी श्रीसनातनदेवजी

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

एक बार किसीने श्रीगोसाईंजीकी उक्त अर्द्धालीका उच्चारण करते हुए पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी महाराजसे पूछा—'संत कौन और विशुद्ध संत कौन ?' श्रीमहाराजजी बोले—'जो केवल ज्ञानी हों, वे 'संत' और जो ज्ञानी-ध्यानी दोनों हों, वे 'विशुद्ध संत' कहे जा सकते हैं।'

यह था एक परम विरक्त, ब्रह्मनिष्ठ संतशिरोमणिका निर्णय। परंतु जो ज्ञानी-ध्यानी ही नहीं, सर्वथा निष्काम कर्मयोगी और अनन्य भगवत्प्रेमी भी हों, उन्हें क्या कहा जाय ? ऐसे थे हमारे परम श्रद्धेय नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार।

उनकी ज्ञाननिष्ठाके विषयमें क्या कहा जाय ? 'कल्याण'में सर्वदा ही सभी सम्प्रदायों-का समानरूपसे आदर किया गया है। ऐसी समदृष्टि सर्वाधिष्ठानभूत समग्र ब्रह्ममें पूर्ण निष्ठा हुए बिना कैसे हो सकती है ? जिनकी यह निस्संदिग्ध धारणा होती है कि एक ही परम और चरम तत्त्व विभिन्न-मतावलम्बियोंके अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार विभिन्न रूपोंमें भास रहा है, उन्हींकी ऐसी समन्वित और उदार दृष्टि होनी सम्भव है। साधनभेद और दृष्टिभेदके कारण जिस एकके विषयमें अनेक भेद जान पड़ते हैं, वह स्वयं उन मतभेदोंका विषय होकर भी सभी प्रकारके मतवादोंसे असंस्पृष्ट है। उसका ठीक-ठीक आकलन किसी भी मतके द्वारा नहीं हो सकता। इसीसे श्रुति कहती है—**'यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः'** (केनोपनिषद् २। ३) अर्थात् 'उस तत्त्वके विषयमें जिसका कोई मत नहीं है, वह उसे जानता है और जिसका मत है, वह नहीं जानता।'

वस्तुका प्रतिपादन किसी दृष्टिकोणके आधारपर ही होता है। परंतु जो किसी भी दृष्टिका विषय नहीं हो सकता, प्रत्युत सम्पूर्ण दृष्टियाँ जिसकी दृश्य हैं, उसका प्रतिपादन किन शब्दोंमें किया जाय ? अतः प्रत्येक प्रतिपादनका उद्देश्य किसी भी प्रकार उस प्रकारकी योग्यताके साधक-को दूसरी ओरसे हटाकर अपने लक्ष्यकी ओर उन्मुख करनेमें ही है। इस उद्देश्यकी पूर्ति तो प्रत्येक मतवादके प्रतिपादनद्वारा होती है। अतः वे सभी वन्दनीय हैं। परंतु तत्त्वका यथार्थ बोध तो उसीको होता है, जिसका अपना कोई दृष्टिकोण नहीं रहता और जो सभी प्रकारके अभिनिवेशोंके आग्रहसे मुक्त होकर तत्त्वकी ही अनन्य शरण हो जाता है। उसीको ये परमा-त्मदेव वरमाला पहनाकर वरण करते हैं और अपना यथार्थ रहस्य बता देते हैं। इसीसे श्रुतिका कथन है—**'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।** (मुण्डक ३। २। ३) अर्थात् 'जिसे यह आत्मा वरण करता है, उसीको इसकी प्राप्ति सम्भव है और उसीके प्रति यह अपने स्वरूपको प्रकट कर देता है।'

इस प्रकार उस चरम लक्ष्यकी ओर ले जानेमें तो सभी मतवाद उपयोगी हैं; परंतु उसकी उपलब्धि तभी होती है, जब साधक सभी प्रकारके मतवादोंसे मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार नदीको पार करनेमें तो छोटी-बड़ी सभी प्रकारकी नौकाएँ उपयोगी हैं, परंतु उस तटपर पहुँचते तभी हैं, जब अपनी-अपनी नौकाको त्याग दिया जाता है। हाँ, जो नदीके पार हो जाता है, उसके लिये तो सभी नौकाएँ समान हो जाती हैं। इसी प्रकार यथार्थ तत्त्वदर्शीके लिये सभी मतवाद समाप्त हो जाते हैं। यही स्थिति थी श्रीभाईजीकी।

श्रीभाईजीका ध्यानाभ्यास तो तभी आरम्भ हो गया था, जब उन्होंने शिमलापालमें भगवन्नामजपके द्वारा अपनी आध्यात्मिक साधनाका श्रीगणेश किया था। आरम्भमें उन्होंने श्रीविष्णु-भगवान्‌का ध्यान किया। फिर अचिन्त्य होकर निर्गुण-निराकार तत्त्वमें स्थिति प्राप्त की और फिर श्रीव्रजनवयुवराज एवं वृन्दावनेश्वरीकी युगलमूर्ति उनके हृदयाकाशमें आविर्भूत हुई। उनके लिये किसी भी प्रकारका ध्यान अनायास और सहजसिद्ध था। अपने परमपवित्र साधनामय जीवनके अन्तिम चरणोंमें तो उनके लिये भगवल्लीलाओंमें प्रवेश और भावसमाधि भी सामान्य बात थी। श्रीराधा-माधव सर्वदा उनके हृदय-प्राङ्गणमें क्रीड़ा करते थे और वे अपना कोई संकल्प न होनेपर भी भावसमाधिमें तल्लीन हो जाते थे। श्रीयुगलसरकार ही उनकी चर्चाके विषय रह गये थे। लेख, कविता और व्याख्यान आदिमें उन्हींकी चर्चा होती थी। इस प्रकार कृष्णमय होकर ही उन्होंने श्रीकृष्णकी नित्यलीलामें प्रवेश किया।

श्रीकृष्णप्रेम ही उनका जीवन था। श्रीकृष्णके लिये उनकी वाणी और लेखनी मुखरित हो उठी थी। उन्होंने जो कुछ कहा और जो कुछ लिखा, उसमें श्रीराधा-माधवका उज्ज्वल प्रेम छलछलाता था। उस लिखने और बोलनेमें भी उनका अपना कर्तृत्व नहीं था। उनके द्वारा मानो स्वयं श्रीकृष्ण ही लिखते और बोलते थे। एक पदमें उन्होंने इसका संकेत किया है—

लिखता-लिखवाता वही, करता-करवाता वही।
पता नहीं, क्या गलत है; पता नहीं, क्या है सही॥

इस प्रकार उनके द्वारा श्रीराधा-माधवकी मधुर लीलाओंका जो उज्ज्वल स्वरूप प्रकट हुआ, उसने न जाने कितने भगवत्प्रेमियोंको आनन्दविभोर कर दिया। तत्त्वदर्शी महापुरुष निखिल अनात्मवर्गका निषेध करके जिस परमतत्त्वका निषेधावधिरूपसे साक्षात्कार करते हैं, वही सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म है। श्रुतिने 'रसो वै सः' कहकर उसे रसस्वरूप बताया है। प्रेमियोंकी दृष्टिमें उस रसब्रह्मकी सरसता ही भगवल्लीला है। अतः वहाँ लीलानायक, लीलापरिकर, लीलाधाम और लीलाविलास—सभी रसस्वरूप हैं। श्रीभाईजी इसे 'रसाद्वैत' कहते थे। इस रसाद्वैतकी अनुभूति तत्त्वदर्शी ही कर सकते हैं। जो तत्त्वदर्शनकी शान्तिमें रमण नहीं करते, उन्हींको भगवदनुग्रहसे इस परम दिव्य रसविलासकी अनुभूति होती है। यह जीवका पुरुषार्थ नहीं, भगवान्‌की अनुग्रहशक्तिका वरदान होता है। वही ज्ञानोत्तरा पराभक्ति है। जबतक भोग और मोक्षकी स्पृहाका लेश भी शेष रहता है, तबतक इस अद्भुत रसविलासका आविर्भाव नहीं होता; अतः यह स्थिति जीवन्मुक्तोंके लिये भी दुर्लभ है।

यह दुर्लभ स्थिति श्रीभाईजीको सर्वथा सुलभ थी। तथापि उनके द्वारा जनसाधारणकी

सेवा भी असाधारण रूपसे होती थी। जनता-जनार्दनकी पीड़ा उनकी अपनी पीड़ा थी। किसीके भी अभाव या दुःख-दर्दको देखकर उनका करुणापूर्ण हृदय बेचैन हो जाता था। वे तन, मन, धनसे उसे सुखी करनेका प्रयत्न करते थे। उसकी आवश्कतापूर्तिके लिये वे जो कुछ देते थे, उसे उसीकी वस्तु समझते थे। उन्हें तो उसमें अपने प्रियतमकी ही झाँकी होती थी, और जिस तन, मन और धनके द्वारा वे उसकी सेवा करते थे, उसपर भी उन्हें अपने प्रियतमका ही अधिकार जान पड़ता था। उन्हें अपना माध्यम बनाकर उनके प्रियतम अपने ही उपकरणोंद्वारा अपनी ही पूजा करते थे। इस प्रकार आरम्भमें जो निष्काम कर्मयोग था, अब वह प्यारे प्रभुकी आत्मपूजा ही हो गयी थी। वे केवल अपने प्रियतमके रसविलासके निरीह यन्त्रमात्र रह गये थे और इसे अपना परम सौभाग्य अनुभव करते थे। श्रीरासेश्वरीजीके मुखसे अपने प्राणप्रियतमके प्रति उन्होंने जो कुछ कहलाया है, वह वास्तवमें उनका अपना जीवन था। नीचे वे वाक्य उद्धृत किये जाते हैं—

तुम हो यन्त्री, मैं यन्त्र; काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥
मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ नित ही परतन्त्र; न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं, मन ही न पृथक; मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥
क्या करूँ, नहीं क्या करूँ—करूँ इसका मैं कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हें, सो प्रिय विहार॥

× × ×

कर दिया क्रीडनक बना मुझे निज करका तुमने अति निहाल।
यह भी कैसे मानूँ-जानूँ, जानो तुम ही निज हाल-चाल॥
इतना जो मैं यह बोल गयी, तुम जान रहे—है कहाँ कौन।
तुम ही बोले भर सुर मुझमें मुखरा-से, मैं तो शून्य मौन॥

प्रियतमकी प्रसन्नताके लिये लाखों दुःखोंसे घिरा रहना भी उन्हें परम सौभाग्य जान पड़ता था। लाखों अपमान भी उन्हें वरदान जान पड़ते थे, निरन्तर उनके वियोगमें तड़पते रहनेमें भी प्रसन्नता थी और मरनेमें भी मौज थी। वे कहते हैं—

मिलती अगर सान्त्वना तुमको मेरे दुखसे, हे प्रियतम!
तो लाखों अतिशय दुःखोंसे घिरी रहूँगी मैं हरदम॥
किंचित्-सा भी यदि सुख देता हो तुमको मेरा अपमान।
तो लाखों अपमानोंको मैं मानूँगी प्रभुका वरदान॥
यदि प्यारे! मेरे वियोगमें मिलता कहीं तुम्हें आराम।
कभी नहीं मिलनेका मैं व्रत लूँगी, मेरे प्राणाराम!
मेरा मरण तुम्हें यदि देता हो किंचित्-सा भी आश्वास।
तो मैं मरण वरण कर लूँगी, निकल जायगा तनसे श्वास॥

कहाँतक कहें, उनका जीवन पूर्णतया अपने प्रियतमको समर्पित था । प्रियतम ही उनके मङ्गलमय पार्थिव कलेवरके द्वारा अपनी प्रिय प्रजाका पोषण और पूजन कर रहे थे । इस विषयमें उन्होंने जितना लिखा है, उसे कहाँतक उद्धृत किया जाय । प्रियतम ही आत्मा, अनात्मा, संसार और परमात्माके रूपमें प्रकट होकर यह रसमयी क्रीड़ा कर रहे हैं । यह सब इन्हींका अद्भुत आत्मविलास है । जीव आत्मतत्त्वका बोध होनेपर भवबन्धनसे मुक्ति प्राप्त करता है, निष्काम-भावकी पुष्टि होनेपर भोगोंसे विमुख होकर, विश्वात्मासे योगयुक्त हो शक्तिसम्पन्न होता है और परमात्मामें प्रेम होनेपर भक्तिरसकी अनुभूति प्राप्त करता है । इस प्रकार मुक्ति, शक्ति और भक्ति ही जीवनके चरम लक्ष्य हैं । इनमें एककी प्राप्ति होनेसे ही जीव कृतकृत्य हो जाता है । परंतु श्रद्धेय भाईजीमें तो इन तीनोंका ही अद्भुत समन्वय था । अतः उन्हें 'परमविशुद्ध संत' कहना अत्युक्ति न होगी ।

•

श्रीकृष्णप्राण भगवद्भक्त

एक सम्मान्य स्वामीजी

अपने विद्यार्थी-जीवनमें पढ़ा हुआ एक श्लोक है—

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य ।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम ॥

'गुणीजनोंकी गणना आरम्भ होते ही जिसके नामपर अत्यन्त गौरवबुद्धिसे लेखनी नहीं पड़ती, उस पुत्रसे भी यदि माता पुत्रवती मानी जाय तो वन्ध्या कैसी स्त्री कही जायगी ?'

इस श्लोकका यदि यथाश्रुत अर्थ लिया जाय तो बड़ी समस्या खड़ी हो जायगी । गुणियोंमें सर्वाग्रगण्य व्यक्ति तो एक ही हो सकता है । तब क्या एक समयमें केवल एक व्यक्ति-की माता ही पुत्रवती होनेका गौरव प्राप्त कर सकेगी ? फिर, गुणी तो विभिन्न प्रकारके होते हैं । उनमेंसे किस प्रकारके गुणी यहाँ अभिप्रेत हैं ? साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान, अध्यात्म, धर्म आदि अनेकों गुणोंके कारण व्यक्तियोंको गुणी कहा जा सकता है और उनके क्षेत्र सर्वथा विभिन्न होनेके कारण उनमें परस्पर कोई तुलना नहीं हो सकती । अतः हमें उस गुणका निर्णय करना होगा, जिसके कारण व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ गुणी होनेका गौरव प्राप्त कर सकता है ।

वास्तवमें सर्वमान्य गुण वह हो सकता है, जिसके द्वारा अपना और अपने सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंका जीवन निरतिशय और निस्सीम समृद्धि प्राप्त कर सके । ऐसा तभी हो सकता है जब व्यक्ति अपने क्षुद्र व्यक्तित्वसे ऊपर उठकर विभु और शाश्वत जीवनसे अभिन्न हो जाय । किसी भी प्रकारके व्यक्तित्वका अभिमान रहते स्पर्धा, असूया, मोह और पक्षपात आदि दोषोंकी निश्शेष निवृत्ति नहीं हो सकती और इन दोषोंका लेश रहते हुए किसीको वास्तविक शान्ति एवं समृद्धि-की प्राप्ति कैसे हो सकती है । इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो जीवनमें 'भगवदीयता'का

अवतरण ही सबसे श्रेष्ठ गुण है। 'भगवदीयता' का अर्थ है— जीवन भगवन्मय हो जाय। ऐसे महापुरुषके लिये सारा विश्व भगवत्स्वरूप हो जाता है। उसकी अपने द्वारा जो-जो चेष्टाएँ होती हैं, वे सब भगवत्प्रेरित ही होती हैं और विश्वके सम्पूर्ण व्यापार भी उसे भगवान्‌के लीलाविलास ही जान पड़ते हैं। उसकी दृष्टिमें भगवान्‌से भिन्न किसी भी व्यक्ति, वस्तु या व्यापारकी कोई सत्ता नहीं रहती। जैसे हमारे स्वप्न-जगत्‌में हमें जो कुछ प्रतीत होता है, वह सब हमारा ही भावनात्मक लीलाविलास होता है—वहाँके जड-चेतन सभी पदार्थ, प्राणी तथा उनके द्वारा होनेवाले सभी शुभाशुभ कार्य और उनके सुख-दुःखमय भोग केवल हमारे चित्त-चाञ्चल्यकी ही अठखेलियाँ होती हैं, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व और इसके व्यापार एवं उपभोग एकमात्र उन विश्वाधार विश्वात्माकी ही स्वच्छन्द क्रीड़ाएँ हैं।

जिस महापुरुषमें ऐसी दृष्टि उन्मीलित हो जाती है, वास्तवमें वही सच्चा गुणी है। ऐसे गुणी जन अपनी दृष्टिमें एक या अनेक नहीं होते। वे तो सब कुछ भगवत्स्वरूप ही देखते हैं। उनकी दृष्टिमें भगवान्‌के सिवा अपनी या किसी अन्यकी कोई पृथक् सत्ता नहीं होती। अतः उनमें ऐसा कोई तुलना या तारतम्यका भाव भी नहीं रहता। संसार जिसे अत्यन्त निकृष्ट और घृणाके योग्य समझता है, वह भी उन्हें भगवत्स्वरूप जान पड़ता है। वे उसकी भी यथोचित सेवा करते हैं। किसीसे भी घृणा नहीं करते, सभीका आदर करते हैं और मन-ही-मन सबकी वन्दना करते हैं— **'प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्।'**

परंतु दूसरोंकी दृष्टिमें तो उनका पृथक् व्यक्तित्व भासता ही है और वे ही उन्हें गुणियों-में अग्रगण्य मानते हैं। इस भावका जिन-जिन व्यक्तियोंमें भी अवतरण हो, वे सभी सर्वमान्य और सर्वाग्रगण्य होते हैं। अवश्य ही अपने-अपने भाव और श्रद्धाके अनुसार विभिन्न व्यक्ति और समाजों-में विभिन्न महापुरुषोंको सर्वाग्रगण्य माना जाता है, परंतु स्वदृष्टिमें तो वे सब एक ही तत्त्वमें प्रति-ष्ठित होते हैं। अतः विभिन्न अनुयायियोंकी दृष्टिमें उनमें भले ही भेदका भास हो, परंतु उनकी अपनी दृष्टिमें तो एकमें सब और सबमें एकको ही उपलब्धि होती है। इसलिये वहाँ एक और अनेकका भेद नहीं होता। सब एककी ही विभूतियाँ हैं और सर्वरूपमें एक ही क्रीड़ा करता है। अतः वहाँ भेदके लिये कोई अवकाश ही नहीं होता।

हमारे श्रीभाईजी ऐसे ही भगवत्प्राण महापुरुष थे। उनके शरीर और अन्तःकरणसे भी संसारकी महती सेवा हुई। यदि ऐसे महामानवके शरीरसे कोई विशेष व्यापार होता दिखायी न दे, तब भी वह उतना ही वन्दनीय होता है; क्योंकि उसकी अपनी दृष्टिमें अपने व्यक्तित्वका कोई विशिष्ट स्थान नहीं होता, सब शरीर एकमात्र श्रीभगवान्‌के ही होते हैं। अतः जिसके द्वारा जो भी सेवा हो रही है, वह केवल श्रीभगवान्‌की अहैतुकी कृपाका ही लीला-विलास है। सब यन्त्र हैं और श्रीभगवान् यन्त्री हैं। सब उन्हींके संकल्पसे विभिन्न व्यापारोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। अतः उनके अस्तित्वमें किसी प्रकारकी संकुचित भावना भी नहीं है। उनकी यह लीला सार्वदैशिक, सार्वकालिक और सार्वभौम है। यह सदासे चल रही है और सदा चलती रहेगी। जीवन और मरणका भी वहाँ कोई प्रश्न नहीं है। ये भी उनकी अलौकिकी लीलाके ही विलास हैं। श्रीभाईजीके शब्दोंमें ही देखिये—

मरना-जीना मेरा कैसा, कैसा मेरा मानापमान।
हैं सभी तुम्हारे ही प्रियतम ! ये खेल नित्य सुखमय महान ।।

अतः हमें यहाँ श्रीभाईजीके द्वारा हुए अनेक सेवाकार्योंकी चर्चा करके उन्हें किसी सीमित कलेवरमें संकुचित कर देनेकी आवश्यकता नहीं है। वे भगवन्मय थे और उनकी दृष्टिमें भगवान् श्रीकृष्णके सिवा और किसीकी कोई सत्ता नहीं थी। उन्हींके शब्दोंमें सुनिये——

कृष्ण उठत, कृष्ण चलत, कृष्ण शाम-भोर है।
कृष्ण बुद्धि, कृष्ण चित्त, कृष्ण मन विभोर है ॥
कृष्ण रात्रि, कृष्ण दिवस, कृष्ण स्वप्न-शयन है।
कृष्ण काल, कृष्ण कला, कृष्ण मास-अयन है ॥
कृष्ण शब्द, कृष्ण अर्थ, कृष्ण ही परमार्थ है।
कृष्ण कर्म, कृष्ण भाग्य, कृष्ण ही पुरुषार्थ है ॥
कृष्ण स्नेह, कृष्ण राग, कृष्ण ही अनुराग है।
कृष्ण कली, कृष्ण कुसुम, कृष्ण ही पराग है ॥
कृष्ण भोग, कृष्ण त्याग, कृष्ण तत्वज्ञान है।
कृष्ण भक्ति, कृष्ण प्रेम, कृष्ण ही विज्ञान है ॥
कृष्ण स्वर्ग, कृष्ण मोक्ष, कृष्ण परम साध्य है।
कृष्ण जीव, कृष्ण ब्रह्म, कृष्ण ही आराध्य है ॥

एवं——

मेरे द्वारा बोल रहे हैं केवल मेरे वे भगवान।
मेरे द्वारा छेड़ रहे हैं वे निज मधु मुरलीकी तान ।।
मेरे जीवनमें है अब तो एकमात्र उनका ही स्थान।
अतः उन्हींकी होती मुझमें क्रिया नित्य सब क्षुद्र-महान ।।

ऐसे 'कृष्णप्राण' श्रीभाईजी वास्तवमें गुणिगणमें अग्रगण्य थे। उनके कारण अवश्य उनकी जननीकी कोख सफल हुई। श्रीगोसाईंजी जगदम्बा श्रीसुमित्राजीके भावोंको व्यक्त करते हुए कहते हैं——

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुबर-भगत जासु सुत होई ।।

श्रीभाईजी सचमुच 'श्रीकृष्णप्राण भगवद्भक्त' थे। उनकी दृष्टिमें संसारके सभी भगवदीय सिद्धान्तोंका अद्भुत समन्वय था। इसलिये उनमें कोई मताग्रह या साम्प्रदायिक संकोच भी नहीं था। ऐसे महाभागवत महापुरुष ही गुणिगणमें अग्रगण्य होते हैं।

●

आध्यात्मिक भारतके मेरुदण्ड

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीशान्तानन्दजी महाराज

'भाईजी' शब्दका स्मरण आते ही मेरे सम्मुख उनका स्वरूप साक्षात् उपस्थित हो जाता है—मांसल काया, भरा-पूरा मुखमण्डल, उन्नत ललाट, चश्मेके भीतर आध्यात्मिक चिन्तनमें लीन आँखें। भाई हनुमानप्रसाद रुद्रावतार हनुमानजीके साक्षात् विग्रहके समान प्रतीत होते थे। निरन्तर जप करते रहनेके कारण उनकी वाणीसे अपूर्व मधुरिमा टपकती थी। उनका समस्त जीवन साधनामय रहा। उन्होंने ऐहिक अभ्युदय एवं पारलौकिक निःश्रेयसकी प्राप्ति करके वैदिक आदर्शोंका जीवन्त उदाहरण सर्वसाधारणके सम्मुख रखा। गृहस्थ-धर्म एवं त्याग-धर्म—दोनोंके बीच अलौकिक सामञ्जस्य स्थापित किया। उनका जीवन गृहस्थों और संन्यासियों—दोनोंके लिये समानरूपसे प्रेरणा-स्रोत रहा। 'परहित सरिस धरम नहिं भाई'—यही उनकी जीवन-व्यापी साधनाका मुख्य प्रेरणा-स्रोत था। उन्होंने कथनी, करनी और रहनीको अपने जीवनमें एकरूप कर दिया था। आत्मश्लाघा करनेकी कौन कहे, दूसरोंके मुखसे उसे सुनना भी वे पसंद नहीं करते थे। लोग उनके इस स्वभावसे भलीभाँति परिचित थे, अतः उनकी प्रशंसा उनके सम्मुख करनेका साहस नहीं करते थे। वे गम्भीरताकी साकार प्रतिमा थे। उन्होंने अपने बहिर्जगत् और अन्तर्जगत्को एकरस कर दिया था।

मेरा भाईजीके साथ सम्पर्क सन् १९३३से था। पारमार्थिक कार्योंके निमित्त मुझे बाहर जाना पड़ता था। यदा-कदा उनके पारमार्थिक सत्सङ्गका शुभ अवसर प्राप्त होता था। उस सत्सङ्गमें उनके अगाध पाण्डित्य, विशद ज्ञान और अपरोक्षानुभूतिकी त्रिविध धारा प्रवाहित होती थी। वैसे तो उन्होंने इतने विशाल आध्यात्मिक साहित्यका सृजन किया है कि उसीमें निमज्जित होकर साधक अपनेको कृतकृत्य कर सकता है; पर उनके सत्सङ्गकी बात दूसरी ही थी।

उनका व्यक्तित्व सर्वाङ्गीण और स्वभाव अत्यन्त मृदुल था। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्वमें निर्मल ज्ञान, अनुपम वैराग्य और अनन्य भक्तिकी त्रिवेणी अहर्निश प्रवाहित होती रहती थी। उनके सहज प्रेम, निष्कपट व्यवहार, बालकोचित्त सरलता, महती गम्भीरता, अपूर्व निःस्पृहता, दीन-दुःखियोंके प्रति करुणा, सभी धर्मों एवं सम्प्रदायोंके प्रति सहिष्णुता, अन्याय एवं अनीतिके प्रति कठोरता, मानवमात्रके ही नहीं, अपितु जीवमात्रके लिये स्नेह आदि सात्विक गुणोंका स्मरण कर मेरा चित्त सात्विक भावोंसे अभिभूत हो जाता है। मानवताके वे अनुपम आदर्श थे। उनके जीवनके अक्षय भंडारसे जिज्ञासुओंकी जिज्ञासा, भावुकोंकी सद्भावना, प्रेमियोंके प्रेम, सदाचारियोंके सदाचरण, अर्थार्थियोंकी अर्थ-पिपासा, भक्तोंकी भक्तिभावना, त्यागियोंके त्याग, साधकोंकी साधना तथा चिन्तकोंके चिन्तनकी सदैव तुष्टि, पुष्टि एवं क्षुधा-निवृत्ति होती रही। इस प्रकार उनका उदात्त जीवन असंख्य लोगोंका पथ-प्रदर्शक रहा।

एक बारका संस्मरण मुझे कभी विस्मृत नहीं होता । मैं प्रयागसे ज्योतिर्मठकी आध्यात्मिक यात्रापर था । साथमें अनेक लोग थे । ऋषिकेश पहुँचकर वहीं रुक गया । दूसरे दिन गङ्गा पारकर ज्यों ही उतरा, श्रीभाईजी मिल गये । सत्सङ्गका कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । प्रसङ्गवश मुझसे 'संत-महिमा'पर कुछ प्रवचन करनेका आग्रह किया गया । मैंने लगभग आधे घंटेतक प्रवचन किया । मेरे प्रवचनके अनन्तर, उसी प्रसङ्गपर भाईजीने सामान्य श्रोताओंके सम्मुख जिस मार्मिक, ओजस्वी और हृदयस्पर्शी शैलीमें भाषण दिया, उससे मैं आश्चर्य-विभोर हो गया । मुझे ऐसी अनुभूति हुई, मानो मेरे ही भावों, विचारों एवं अनुभूतियोंको साहित्यकी नवीन अलंकारात्मक शैलीमें गुम्फित करके रख दिया गया है । उनका अन्तःकरण स्फटिकमणिके समान निर्मल था । उन्होंने अत्यधिक स्नेहसे मेरे और आश्रमके सारे समाचार पूछे । विदा होते समय उन्होंने निष्कपट स्नेहसे अपने नेत्रोंसे जो अश्रुजल बरसाये, उससे मुझे अनुभव हुआ, जैसे वे अत्यधिक स्नेहसे मेरा अभिषेक कर रहे हैं ।

भाईजीने अपनी अनुभूतिमयी सरस तथा साथ ही गम्भीर आध्यात्मिक कृतियोंद्वारा जन-मानसके आध्यात्मिक संस्कारोंको सुसंस्कृत किया है । इस दृष्टिसे उन्होंने राष्ट्रकी अद्भुत सेवा की है । वे आध्यात्मिक भारतके मेरुदण्ड हैं । उन्होंने राष्ट्रकी आध्यात्मिक कुण्डलिनी शक्तिका उत्थान किया । उनकी यशः-सुरभि भारतके आध्यात्मिक-जगत्में मह-मह महक रही है । ऐसे सात्विक गुणोंसे ओत-प्रोत पुरुषको पाकर 'कल्याण-परिवार' कृतकृत्य हुआ । हमारी मङ्गल-कामना एवं आशीर्वाद है कि भाईजीके पावन चरित्रको आदर्श बनाकर लोग सुखी, सच्चरित्र, कर्त्तव्यनिष्ठ, परदुःखकातर, विनयी, विवेकी, अहंकारशून्य, लोकोपकारी, भक्त, त्यागी एवं निःस्पृह बनें ।

●

(रहो सदा पर-हित-निरत, करो न पर-अपकार ।
सबके सुख-हितमें सदा समझो निज उपकार ।।
सबमें हैं श्रीहरि बसे, यह मन निश्चय जान ।
यथाशक्ति सेवा करो सबकी, तज अभिमान ।।
हरिकी ही सब वस्तु हैं, हरिके ही मन-बुद्धि ।
हरिकी सेवामें लगा, करो सभीकी शुद्धि ।।)

—श्रीभाईजी

●

श्रीभगवान्‌के अलौकिक अनुपम यन्त्र

महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज

मेरे गुरुदेव नित्यलोकगत पूज्यपाद श्रीरामदयाल मजूमदार बाबाने सन् १९२७के आसपास एक दिन 'कल्याण'की एक प्रति हाथमें लेकर मुझे कहा—'देखो, गोरखपुरसे 'कल्याण' नामक एक मासिक पत्रिका निकली है। कैसे सुन्दर चित्र हैं! चित्र देखकर प्राण भर जाते हैं।' तभी मैंने पहले-पहल 'कल्याण'का नाम सुना था। सम्भवतः एकाध वर्ष पूर्व ही 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ हुआ था।

इसके बाद अध्यापक-जीवनमें गीताप्रेससे भक्त-चरित, संत-अङ्क आदि मँगाकर उनको पढ़ता, जिससे यथेष्ट आनन्द प्राप्त होता। 'कल्याण'की भाषा संस्कृत-गर्भित होनेके कारण, उसे समझनेमें मुझे विशेष असुविधा नहीं होती थी।

कुछ समय पश्चात् मैंने १० महीनेका मौनव्रत लिया। उसी अवधिमें 'कल्याण'का 'भक्ताङ्क' प्रकाशित हुआ। एक भक्तने मेरी लिखी हुई 'दाशरथिस्मृतिभूषण'की जीवनी उसमें प्रकाशनार्थ भेज दी और श्रीपोद्दारजीने उसे प्रकाशित कर दिया। मौनव्रत पूरा होनेपर हमने लेख देखा और यहींसे पोद्दारजीसे हमारा परिचय हुआ। पीछे सम्भवतः १९५३में उनके प्रथम दर्शन हुए।

उन दिनों मैं मौन रहता था। उस मौनकालमें मैंने गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंका वङ्गानुवाद किया था। कुछ पुस्तकोंका अनुवाद मैं पहले भी कर चुका था। उस समय मनमें गीता-प्रेसके द्वारपर दण्डवत् प्रणाम करनेकी प्रेरणा हुई। १९५५में मैंने मौन त्याग दिया और विभिन्न स्थानोंमें नाम-प्रचार करते हुए गोरखपुर जाकर गीताप्रेसके द्वारपर दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीपोद्दार बाबाने साथ रहकर पूरा प्रेस दिखलाया। श्रीपोद्दारजीका अकृत्रिम सहज प्रेम भूलनेकी वस्तु नहीं है। उनके प्रेमने चिरकालके लिये हृदयपर अधिकार जमा लिया है।

श्रीपोद्दार बाबाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचार-की लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ऐसे संतके चरणोंमें मस्तक अपने-आप नत हो जाता है। मनुष्य मन्दिरके द्वारपर देवताको प्रणाम करते हैं; इसीलिये कि मन्दिर श्रीभगवान्‌का मन्दिर है, मन्दिरके द्वारपर प्रणाम करनेपर देवदर्शनका अधिकार-लाभ होता है। श्रीभगवान्‌के धर्म-प्रचारके अनुपम यन्त्र श्रीपोद्दार बाबा थे—उनके हृदयपर अधिकार करके श्रीभगवान् स्वयं ही कार्य कर रहे थे; उनके भीतर और बाहर श्रीभगवान् ही विद्यमान थे। श्रीपोद्दार बाबा मुक्त थे। इस प्रकारका शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचार देहाभिमानीद्वारा नहीं हो सकता। गैस बत्तीकी मैंटल (mantle) भस्म हो जानेपर ही प्रकाश फैलाती है।

पीछे मैंने पुनः मौनव्रत ले लिया और उस अवधिमें श्रीपोद्दार बाबाकृत भाषाटीकाकी सहायता लेकर मैंने श्रीरामचरितमानसका वङ्गानुवाद किया। उस अनुवादको मैंने श्रीपोद्दार बाबा और श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके नामसे उत्सर्ग किया। उत्सर्ग-पत्रमें मैंने लिखा—

श्रीश्रीगुरवे नमः

अनन्त करुणा-पारावार पुरुषोत्तम श्रीभगवान् दो अलौकिक अनुपम यन्त्रों को लेकर इस दारुण कलियुगमें सर्वत्र जो धर्म-प्रचार, श्रीनाम-प्रचार और शास्त्र-प्रचार कर रहे हैं, इस प्रकारके प्रचारकी बात मैंने किसी इतिहासमें, पुराणमें नहीं देखी, अथवा किसी धर्म-प्रचारकने इस प्रकार विश्वव्यापी धर्म-प्रचार किया हो—यह नहीं सुना। श्रीभगवान्‌के सुन्दर उदित दो रमणीय चन्द्र—परमप्रेमभाजन अशेषश्रद्धास्पद 'कल्याण-सम्पादक' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार महाशय और श्रीयुत चिम्मनलालजी गोस्वामीके पवित्र नामपर उनके अति प्रियतम 'श्रीरामचरितमानस'का वङ्गानुवाद उत्सर्ग किया।

—सीतारामदास

१९६४में मैं पुनः गोरखपुर गया। श्रीपोद्दार बाबाने मुझे अपनी गीतावाटिकामें ठहरानेकी सादर व्यवस्था की। उनके सानन्द सप्रेम व्यवहारकी कोई तुलना नहीं थी। श्रीपोद्दार बाबाके साथ तबसे बराबर पत्र-व्यवहार होता रहा।

इस सर्वहारी युगमें सनातनधर्मकी रक्षा तथा विश्वका परम कल्याण करनेके लिये ही श्रीभगवान्‌की इच्छासे श्रीपोद्दार बाबाके शरीरका आश्रय लेकर 'कल्याण' मासिक पत्रका आविर्भाव हुआ है। दुःख-शोक-रोग-ज्वाला-यन्त्रणासे सतत संतप्त, पथ-भ्रान्त असंख्य नर-नारी 'कल्याण'-की शान्त, स्निग्ध, सुशीतल छायामें विश्राम प्राप्तकर कृतार्थ हुए हैं और हो रहे हैं। आश्चर्य-की बात है कि इस कलि-कलुष-कलुषित, शास्त्र-धर्म-विवर्जित समयमें सनातन शास्त्र और धर्मका प्रचार करनेवाले 'कल्याण'की ग्राहक-संख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है।

सन् १९६९के अप्रैल मासमें मैं पुनः ऋषिकेश गया। श्रीपोद्दार बाबा वहाँ थे। मैं उनका साक्षात्कार करने गया। उस समय उनके पेटमें भीषण शूल था; पर मेरा सत्कार करनेके लिये उन्होंने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की, न किसीसे कुछ कहा। वे आनन्दपूर्वक मिले। बातें हुईं, कीर्त्तन-सत्सङ्ग हुआ। उन्होंने श्रीठाकुर-सेवाके लिये प्रचुर मात्रामें फल दिये और मुझे विदा करनेके लिये घाटतक आये। मैं उस समय नहीं समझ पाया कि वह विदा अन्तिम विदा थी और यह भी उस समय समझमें नहीं आया कि उनके पवित्रतम प्रेममय भुवन-मङ्गल श्रीविग्रहको फिर देख न पाऊँगा। यह दर्शन इस जन्मका अन्तिम दर्शन था।

श्रीपोद्दार बाबा चले गये—लाखों-लाखों भक्त-प्रेमियोंको रुलाकर वे नित्यधामके वासी हो गये। जिस धार्मिक, चरित्रवान्, प्रेमी, तपोनिष्ठ, मधुरभाषी, सज्जनानुरागी, परमभक्त, आदर्श पुरुषको हमने खो दिया, उसकी जगत्‌में कोई उपमा नहीं थी। जैसे सागरकी उपमा सागर, आकाशकी उपमा आकाश है, उसी प्रकार हमारे श्रीपोद्दार बाबाकी उपमा हमारे पोद्दार बाबा थे। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि गोलोकमें श्रीराधागोविन्दके साथ नित्यलीला-निरत श्रीपोद्दार बाबाकी करुणाकी धारा 'कल्याण' और 'कल्याण-प्रेमी' जनोंके मानसमें अजस्र प्रवाहित हो रही है और सदा होती रहेगी।

●

विश्वबन्धु श्रीभाईजी

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज

मनसि वचसि काये प्रेमपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥

(श्रीभर्तृहरि)

एक बार कलकत्तेमें एक बड़े विद्वान् पण्डितजीने भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके आनेपर उनका हँसते-हँसते स्वागत करते हुए कहा था—'आइये बाल, वृद्ध, युवक, स्त्री, पुत्री—सभीके समानरूपसे भाईजी !'

यह बात कही तो विनोदमें थी, किंतु यह अक्षरशः सत्य थी। बड़ेसे लेकर बूढ़ेतक, बालकसे लेकर युवकतक, स्त्री-पुरुष—कोई भी क्यों न हो, सब उन्हें 'भाईजी'के नामसे पुकारते थे। यहाँतक कि उनकी पुत्री सावित्रीको भी हमने उन्हें भाईजी कहते सुना है। श्रीजयदयालजी गोयन्दका, जिन्हें वे गुरुवत् मानते थे, वे भी बात-बातमें कहा करते थे—'भाईजीसे पूछ लो, इस विषयमें भाईजीकी क्या सम्मति है। 'भाई, मैं क्या बताऊँ ? भाईजी जो कहें, वही करो।'

'भाईजी' उनका सार्थक नाम था। वे समस्त विश्वके भाई थे, सुहृद् थे, सच्चे बन्धु थे। जिनका उनके साथ थोड़ा-सा भी सम्पर्क रहा होगा, वही जानता होगा—उनमें कितनी आत्मीयता थी। किसी एक ही मानवमें एक साथ इतने सद्‌गुणोंका समावेश होना अत्यन्त ही कठिन है। जो उन्हें अपना सुहृद् मानता था, वह यदि किसी विपत्तिमें फँसा होता, उसे किसी प्रकारका दुःख होता, तो उसे उनके समीप जानेपर अवश्य ही शान्ति मिलती थी। जैसा श्रीभगवान्‌ने अपने सम्बन्धमें अर्जुनसे कहा है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥'

वे सर्वभूतहितेरत महापुरुष थे। देशमें कहीं भी अकाल पड़ा हो, बाढ़ आयी हो, बीमारी फैली हो, वे अत्यधिक चिन्तित हो जाते थे, मानो उनके आत्मीय पुरुषोंके ऊपर विपत्ति आयी हो। वे तुरंत पीड़ितोंकी सहायताकी व्यवस्था करते। जब-जब गोरखपुरमें या कहीं बाढ़ आती, गीताप्रेसके स्वयंसेवक वहाँ पहुँचते। अन्न, वस्त्र, द्रव्य, औषध आदिसे बाढ़-पीड़ितोंकी सहायता करते। कहीं अकाल पड़ता तो वे पशुओंके लिये घास-चारा-दाना भिजवाते तथा मनुष्योंके लिये अन्न-वस्त्र आदि। कोई जानता नहीं था कि प्रतिवर्ष वे कितना धन इन कार्योंमें व्यय करते और वह धन कहाँसे आता था। ऐसे एक-दो उदाहरण नहीं, सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत हैं। नित्य ही देशके कोने-कोनेसे दुःखी, लोग उनकी कीर्ति सुनकर उनके पास पहुँचते। वे मनसे, सान्त्वनापूर्ण

वचनोंसे तथा द्रव्यादिसे उनकी सहायता करते और धीरेसे कानमें कह देते—'कृपया किसीसे यह बात कहियेगा नहीं।' उनके यहाँसे विमुख स्यात् ही कोई लौटा हो।

यह कितना भारी त्याग है कि निरन्तर सबकी मनसा-वचसा-कर्मणा सहायता करते रहना और उसके बदलेमें कुछ चाहना तो दूर, उसे किसीके सामने प्रकट भी न होने देना। उनके पास नित्य ही बहुत-से पत्र आते। प्रायः सभीके पत्रोंका उत्तर दिलानेकी चेष्टा रखते थे। वे उत्तर क्या होते थे, सूत्र होते थे। उनमेंसे बहुत-से पत्र तो 'कामके पत्र' नामसे 'कल्याण'में निकलते ही रहते थे। अब उनके सभी पत्रोंका प्रकाशन होना चाहिये। वह साहित्य-की एक स्थायी सम्पत्ति होगी।

अपने आत्मीय परिचित बन्धुओंपर तनिक-सा संकट देखते ही वे तुरंत दौड़ पड़ते। मेरा तो उनसे लगभग ४०-४२ वर्षोंसे अपने आत्मीय बन्धु-जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे कितना अधिक मेरा आदर करते और कोई बात समझानी होती तो उसे कितनी नम्रतासे, कितनी सरलतासे, कितनी आत्मीयताके साथ समझाते कि उसे टालनेका साहस ही नहीं होता था। जब भी मैं स्मरण करता, वे तुरंत उपस्थित हो जाते। वास्तवमें वे मेरे सखा, सचिव, सेवक, परामर्शदाता, पथ-प्रदर्शक—सब ही रहे हैं। उनके सम्बन्धकी अनन्त स्मृतियाँ मेरे हृदयमें निहित हैं।

सर्वप्रथम वे मुझे तीर्थराज प्रयागमें कुम्भके अवसरपर मिले थे। तब उन्होंने कुम्भके अवसरपर प्रयागराजमें गीताज्ञानयज्ञका आयोजन किया था। उसमें भारतके सुप्रसिद्ध गायनाचार्य श्रीविष्णु दिगम्बर तथा अन्यान्य महात्मा एवं विद्वान् समुपस्थित थे। श्रीहरिबाबाजी भी आये हुए थे। झूसीकी ओर श्रीगौरीशंकरजी गोयन्दकाका क्षेत्र लगा था, उसीमें श्रीहरिबाबाजी ठहरे थे। उन्हींसे मिलने वे आये थे। तबतक 'कल्याण'को प्रकाशित हुए कुछ ही वर्ष हुए थे। मेरा उनसे पत्र-व्यवहार तो 'कल्याण'के निकलनेके समयसे ही था, किंतु भेंट प्रयागमें ही हुई। उस समय उनका कोई-कोई बाल पकने लगा था। मैंने हँसीमें कहा था—'मैं समझता था, हनुमानप्रसाद पोद्दार कोई धनिक, गोरे, सुन्दर, सजे-धजे, मान-सम्मानके इच्छुक, किशोर व्यक्ति होंगे। ये तो श्यामवर्ण, खिचड़ी बालवाले, सर्वथा 'देहाती' वेषधारी, सीधे-सादे संत-सदृश व्यक्ति निकले।' यथार्थमें वे गृहस्थ-वेषमें संत ही थे। एक पत्रमें उन्होंने अपने लिये 'सफेद-वस्त्रधारी संन्यासी' शब्द लिखे हैं। कपड़े रँगने मात्रसे ही कोई संत नहीं हो जाता। वे सादे-स्वच्छ कपड़ोंमें भी संत थे। जिन दिनों मैं हंसतीर्थ झूसीमें अनुष्ठान करता बीमार हुआ, वे तुरंत दौड़े आये। जब रामलीलाके सम्बन्धमें मैं पकड़ा गया, तो सुनते ही प्रयाग आ गये। परमहंस बाबा राघवदासजीको साथ लेकर टंडनजीसे मिले। जेलमें मुझसे मिलने गये। फिर महामना मालवीयजीसे, पंतजीसे, किदवईजीसे और न जाने किस-किससे मिलकर जबतक मुझे छुड़वा नहीं लिया, उन्हें चैन नहीं पड़ा। कितने महान् थे वे!

उनकी एक-एक बातको स्मरण करके हृदय भर आता है। उनकी आत्मीयताकी अनन्त

भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्‌की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

स्मृतियाँ मेरे हृदय-पटलपर लिखी हुई हैं। उन सबको लिखना चाहूँ तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जायगा। फिर भी वे पूरी-की-पूरी लिखी जा सकेंगी, इसमें संदेह है।

उनमें एक बड़ा भारी गुण था—वे हमारे दोषोंको जानते हुए भी हमलोगोंसे प्रेम करते थे। किसीके दोषोंको जहाँतक होता, भरसक प्रकट नहीं करते थे। अनेक प्रसङ्ग ऐसे आये, जब कि मैं उनसे अत्यधिक नाराज हो गया, अपनी बातपर अड़ गया। उन्होंने पैर पकड़कर, रोकर, विनय करके मुझे शान्त किया। पीछे जब मेरा आवेश कम हुआ, तब मुझे पता चला कि दोष मेरा ही था। मेरा जो आदर्शवादी बननेका आग्रह था, वह मेरे अभिमानका ही द्योतक था।

प्रायः मेरे सभी आन्दोलनोंमें उन्होंने मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग दिया और मुझे प्रसिद्ध करनेमें उन्होंने अपनेको गौरवान्वित समझा। हमने जो चौदह महीनेका 'अखण्ड नाम-जप-साधन-यज्ञ' किया, जिसमें सभी साधक जप-कीर्त्तन करते हुए मौनी, फलाहारी रहकर अनुष्ठान करते थे, उसका उन्होंने 'कल्याण'के द्वारा यथेष्ट प्रचार किया। अपने यहाँसे चार साधक भेजे, जिनमें प्रेस-व्यवस्थापक गङ्गाबाबू भी थे। पोद्दारजी समय-समयपर झूसीमें मेरे पास ठहरते थे। साधकों-को बार-बार लिखते रहते थे—'महाराजजीकी समस्त आज्ञाओंका अक्षरशः पालन करते रहना।' अनुष्ठानकी समाप्तिपर, जो कि महामना मालवीयजीके करकमलोंद्वारा हुई थी, आप झूसी आये और कई दिनोंतक रहे।

इसके पश्चात् आपने कहा—'ऐसा ही एक वर्षका अनुष्ठान आप गोरखपुरमें कराइये।' इसके लिये आपने सब व्यवस्था की। किंतु अपना नाम कहीं भी नहीं दिया। सब मेरे ही नामसे करते रहे। हमारे साथ १०-१२ साधक थे। सबके ठहरने, खाने-पीने और सवारीका कैसा प्रबन्ध किया, वे सब बातें जब याद आती हैं तो हृदयमें हूक-सी उठती है। उन दिनों कैसा सुन्दर सत्सङ्ग होता था! न जाने कितने अच्छे-से-अच्छे विद्वान् बैठकर भगवत्-चर्चा किया करते थे। **'ते हि नो दिवसा गताः'**—हाय, वे हमारे दिन चले गये और ऐसे गये कि फिर लौट-कर नहीं आनेके!

मैं उनसे मिलने उनके पैतृक स्थान रतनगढ़ गया था। मुझसे बोले—'कुछ दिन रतनगढ़ रहिये।' मैंने कहा—'क्या रहें? तुम्हारे यहाँ इतने सेठ लोग हैं, कोई उत्सव नहीं कराते?' बड़े ही उत्साहके साथ धीर-गम्भीर भावसे बोले—'जब चाहें, जैसा चाहें, उत्सव कराइये।' मैंने कहा—'इस वर्ष नव-संवत्सर-उत्सव तो हमें मुजफ्फरनगरमें करना है, फिर कभी देखा जायगा।' वे बोले—'शुभस्य शीघ्रम्'। नवसंवत्सर-उत्सव यहीं कीजिये, या १५ दिन यहाँ, १५ दिन मुजफ्फर-नगर।' तुरंत निश्चय हुआ और उनके संकल्पसे रतनगढ़का उत्सव इतना भारी और सफल हुआ कि मारवाड़के सभी लोग कहते थे कि ऐसा उत्सव 'न भूतो न भविष्यति।' बड़े-बड़े धनिकोंके बच्चे, जिनमें कई करोड़पति भी थे, दर्शकोंके जूते उठानेसे लेकर झाड़ू देना, पंखा झलना आदि छोटी-से-छोटी सेवा करनेको सर्वथा प्रस्तुत रहते थे। धनिक-समाजपर कितना भारी उनका प्रभाव था, यह दृश्य मैंने १५ दिन रतनगढ़में रहकर ही देखा। उन दिनों द्वितीय महायुद्धके कारण अधिकांश मारवाड़ी सेठ कलकत्ता छोड़कर अपने प्रान्तमें आ गये थे। वे भाईजीको प्राणोंसे

अधिक प्यार करते और भाईजी उन सुकुमार किशोर बच्चोंके कंधोंपर हाथ रखकर, जैसे अत्यन्त स्नेहशील पिता अपने प्यारे पुत्रोंसे बात करता है, वैसे उन्हें छोटी-से-छोटी, नीची-से-नीची सेवाके लिये आज्ञा देते और वे करोड़पति-लखपतियोंके सुकुमार कुमार बड़े उल्लासके साथ उन आज्ञाओंका पालन करते। भाईजी जिसे आज्ञा दे दें, वह उसमें अपना बड़ा सौभाग्य समझता।

हँसमुख इतने थे कि बात-बातपर हँसते रहते। मेरी जिस बातको भी देखते, उसीपर ठहाका मारकर हँस पड़ते। रतनगढ़में शोभायात्रा निकली। वहाँ मरुभूमि होनेसे ऊँट बहुत हैं। मैं ऊँटपर उल्टा बैठकर नगर-कीर्त्तनमें निकला। मेरा मुख ऊँटकी पूँछकी ओर था। मार्गभर मुझे देखकर खिलखिलाकर हँसते ही गये। जब किसी छोटे बच्चेके गलेसे सोनेकी जंजीर उतारकर मैं स्वयं पहिन लेता और बच्चा रोने लगता तो वे हँसते-हँसते उसे गोदमें लेकर पुचकारते और कहते—'कह दे बच्चा, आप ही इसे पहिन लीजिये।' ऐसी उनकी अनन्त स्मृतियाँ हैं, जो अब देखनेको न मिलेंगी। क्या सामाजिक, क्या राजनीतिक, क्या धार्मिक, क्या साहित्यिक—हमने जो-जो भी आन्दोलन किये, भाईजीने उनमें सक्रिय सहयोग दिया। जब हमारी 'गो-हत्या-निरोध-समिति' बनी, तब आप उसके कोषाध्यक्ष हुए और आपने सब प्रकारसे उसको सँभाला। जब हमारा गो-व्रत हुआ, तब भी वे पधारे और उन्होंने हमको सब प्रकारसे उत्साहित किया। उस आन्दोलनमें कितना व्यय हुआ, कहाँसे आया, मुझे कुछ पता नहीं। भाईजी ही सब प्रबन्ध करते रहे। कहाँसे करते थे, किससे लेते थे—इसे वे ही जानें। पर सब काम सुचारुरूपसे चलते रहे, कहीं भी अभावका अनुभव नहीं हुआ।

यह बात गोरक्षा-आन्दोलनके सम्बन्धमें ही नहीं है, जितने भी परोपकार-सम्बन्धी कार्य हुए—वे चाहे महामना मालवीयजीद्वारा हुए हों, गांधीजीद्वारा, परमहंस बाबा राघवदासद्वारा अथवा श्रीगोलवलकरजी या अन्य लोगोंके द्वारा हुए, उन सबमें भाईजीका हाथ रहता था और वे मुक्तहस्त होकर विशालताके साथ सहयोग देते थे। दूसरोंके दोषोंको न देखते हुए, परोपकार-भावनासे, गुप्तरीतिसे सतत पर-हितमें निरत रहना—यही उनका असि-धारा-व्रत था। कलतक जो हमारे साथ हँसते, खेलते और कार्य करते रहे, आज वे भौतिक शरीरसे हमें दिखायी नहीं देते, यही कष्टप्रद कालकी क्रूर चेष्टा है। उन कालस्वरूप कृष्णके पाद-पद्मोंमें प्रणाम करते हुए श्रीभाईजीके प्रति मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्॥

●

अद्वितीय महापुरुष

महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती

हमारा और भाईजी पोद्दारजीका सम्बन्ध ४५ वर्षोंसे रहा। वे मुझे अपना मानते थे और मैं उन्हें अपना मानता था। कई बार 'गीतावाटिका'में जानेका मौका मिला। भाई पोद्दारजी-से अनेक बातें सीखीं। न तो उन सभी बातोंका स्मरण है और न लिख ही सकता हूँ। आजसे करीब ३० साल पहले गीतावाटिकामें जाना हुआ, तब हमने भाईजीसे कहा—'भाईजी, मैं कुछ प्रचार भी करता हूँ और अपना साधन भी।' भाईजीने कहा—"भगवान् श्रीकृष्णने (गीता १८। ६८-६९में) कहा है कि 'जो पुरुष मुझसे परम प्रेम करके यह परम रहस्यमय 'गीताशास्त्र' मेरे भक्तोंसे कहेगा, वह निस्संदेह मुझे ही प्राप्त होगा। न तो इससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई है और न इससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्यारा इस पृथ्वीमें दूसरा कोई होगा।' पर साथ ही इस बातका भी ध्यान रखें कि कहीं इस प्रचारके अभि-मानी न बन जायँ। यह भी ध्यान रखें कि अपना साधन कभी न छूटे।"

उस समय श्रीभाईजीने यह भी कहा था—

पण्डित और मसालची, इनको दीखत नाहिं।
औरन को कर चाँदनी, आप अँधेरे माहिं॥

उस समय एक और बात उन्होंने कही, वह बड़े रहस्यकी है—

यह भी देख, वह भी देख, देखत-देखत ऐसा देख।
कि मिट जाय धोखा, रह जाय एक॥

जबसे 'परमार्थ-निकेतन' बना, प्रायः प्रतिवर्ष उनसे कुछ-न-कुछ सत्सङ्ग हो ही जाता था। हम उन्हें आदर देने लगते तो वे बड़े संकुचित हो जाते थे। एक बार उन्होंने कहा—'महा-राजजी, आप उलटी गङ्गा न बहाया करें।' हमने कहा—'उलटी गङ्गा भगवान्के चरणोंमें पहुँचेगी और सीधी गङ्गा खारे समुद्रमें।' सुनकर भाईजी खिलखिला उठे। कहने लगे—'हम आपसे हार गये।'

'गीता-भवन' और 'परमार्थ-निकेतन'वालोंसे जब कभी कोई मतभेद हो जाता था, तब वे सदा सत्यका पक्ष लेकर आपसका मतभेद दूर करके परस्परमें प्रेम-व्यवहार स्थापित कर दिया करते थे। उनके सद्व्यवहारको देखकर सभी उनसे प्रभावित थे। किसीके प्रति उनके मनमें ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। सभीको भगवद्रूप समझकर वे यथोचित सद्व्यवहार करते थे। उनकी करनी और कथनी एक-जैसी थी। जैसा कहते थे, वैसा स्वयं भी करते थे। हिंदू-धर्म, समाज एवं आध्यात्मिक प्रचारके लिये जो सेवाएँ उन्होंने अपने शरीरसे, अपनी वाणी एवं लेखनीसे कीं, वे

सदा चिरस्मरणीय रहेंगी। अपनी सेवासे उन्होंने सबको ऋणी बना लिया। वे भगवान्‌की विभूति थे। जैसे मैं समझता हूँ कि वे मुझसे सर्वापेक्षा अधिक प्रेम रखते थे, वैसे ही उनसे सम्बन्धित सभी समझते होंगे कि उनसे ही वे सबसे अधिक प्रेम रखते थे। यही महापुरुषोंका लक्षण है। उनमें एक विशेषता और थी, जो दूसरोंमें कम देखनेमें आती है। वह यह कि वे कठिन-से-कठिन समस्या आ जानेपर भी विचलित नहीं होते थे। बड़े धैर्य एवं शान्तिपूर्वक सभी समस्याओंको सुलझाया करते थे। वे बड़े कर्मनिष्ठ भक्त महापुरुष थे। उनका जीवन इतना व्यस्त रहता था कि शायद ही किसीका उतना व्यस्त जीवन हो। वृद्धावस्था, रुग्णावस्थामें भी वे बराबर सम्पादन और लेखन-कार्य करते रहे और कार्य करते-करते परमधामको चले गये। इस युगमें ऐसा महापुरुष होना कठिन है। गीताके १२वें अध्यायमें भक्तके——

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

——आदि जो-जो लक्षण श्रीभगवान्‌ने कहे हैं, वे सब लक्षण उनमें थे। बातें अनेक हैं, वैसे महापुरुषोंके सम्बन्धमें कोई क्या लिख सकता है।

यद्यपि वे दृश्यमान रूपमें हमलोगोंके बीचमें नहीं रहे, तथापि उनके स्मरणमात्रसे हम सब देशवासियोंको उनसे प्रेरणा मिलती रहेगी। परमपिता भगवान्‌से प्रार्थना है कि उनके बताये हुए रास्तेसे उनके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए देशवासी अपना जीवन सफल बनायें।

●

हमें प्रभु! दो ऐसा वरदान।
तन-मन-धन अर्पण कर सारा, करें सदा गुण-गान॥
कभी न तुमसे कुछ भी चाहें, सुख-सम्पति-सम्मान।
अतुल भोग परलोक-लोकके खींच न पायें ध्यान॥
हानि-लाभ, निन्दा-स्तुति सम हों, मान और अपमान।
सुख-दुख, विजय-पराजय सम हो, बन्धन-मोक्ष समान॥
निरखें सदा माधुरी मूरति, निरुपम रसकी खान।
चरण-कमल-मकरन्द-सुधाका करें प्रेमयुत पान॥

——श्रीभाईजी

●
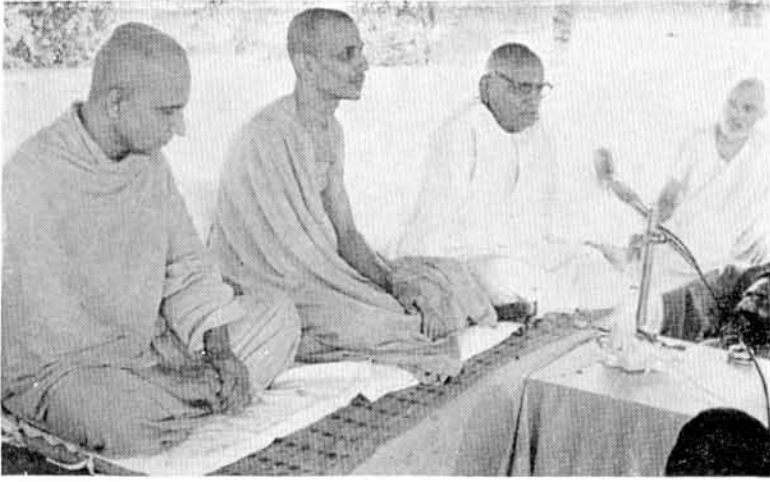
श्रीशिवानन्द आश्रम ऋषिकेशमें भारतीय संस्कृतिका संदेश देते हुए
पार्श्वमें श्रीचिदानन्दजी एवं श्रीकृष्णानन्दजी महाराज

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीसे गोरक्षाके प्रश्नपर विचार-विनिमय
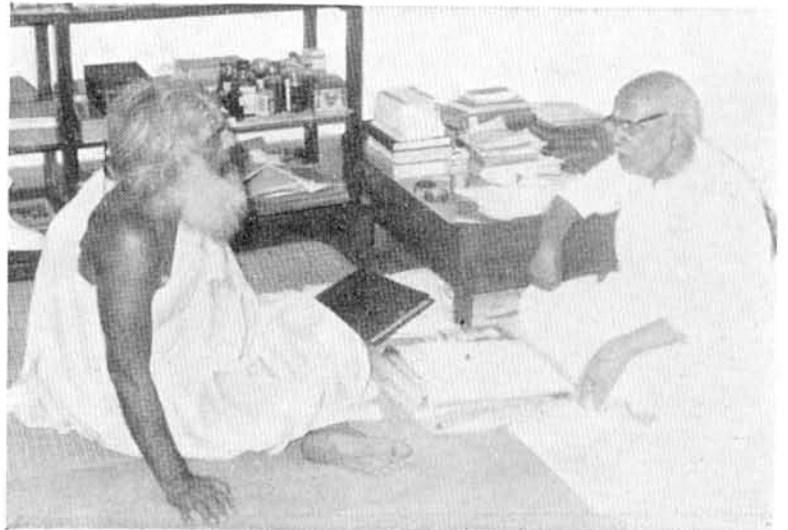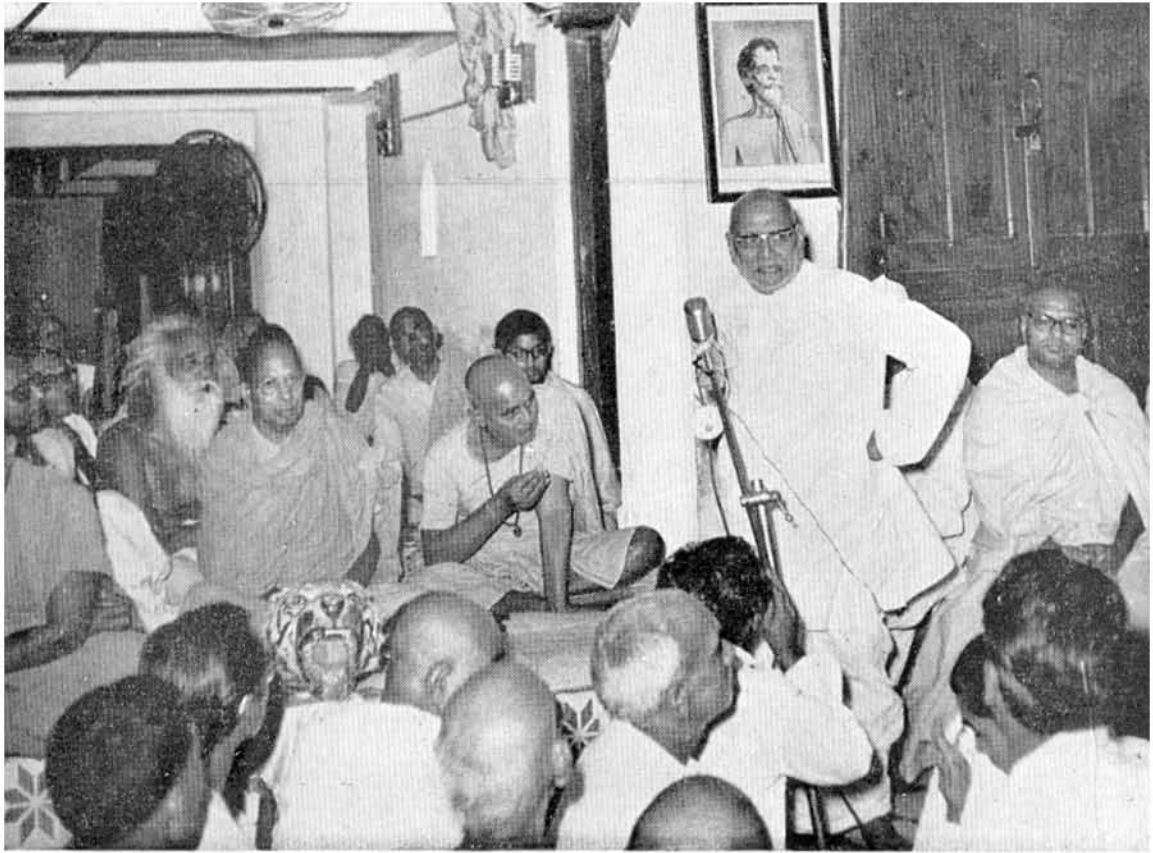
श्रीशुकदेवानन्दजी तथा अन्यान्य संतगणोंके समक्ष प्रवचन
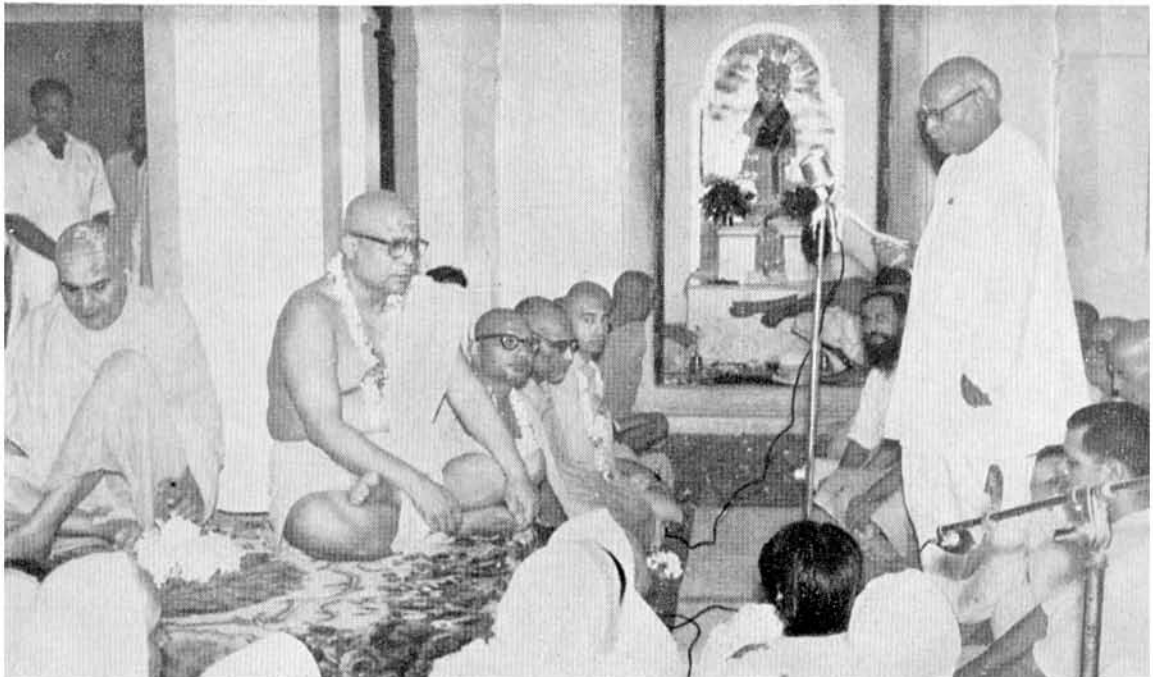
एते गुन जामें, सो संत ।
श्रीभागवत मध्य जस गावत श्रीमुख कमला-कंत ।।
हरि को भजन, साधु की सेवा, सर्ब भूत पर दाया ।
हिंसा-लोभ-दंभ-छल त्यागै, बिष सम देखै माया ।।
सहन-सील, आसय उदार, चित धीरज, धर्म-बिबेकी ।
सत्य बचन, सब कौं सुख दायक, गहि अनन्य ब्रत एकौ ।।
इंद्रियजित, अभिमान न जाकें, करै जगत कौं पावन ।
'भगवतरसिक' तासु की संगति तीनौं ताप नसावन ।।

●

हमारे सुहृद् एवं स्वजन

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज

हमारे सुहृद् एवं स्वजन श्रीभाईजीके गोलोकधाम-गमनसे हमें बड़ी पीड़ा हुई। यह धार्मिक जगत्की अपूरणीय क्षति है।

'कल्याण'के तीसरे वर्ष (सन् १९२९)के विशेषाङ्क 'भक्ताङ्क'को पढ़कर भाईजीसे मिलनेकी इच्छा हुई। उस समय मनमें कल्पना होती—'भाईजीकी आँखें सर्वदा बंद रहती होंगी, मुखमण्डलसे ज्योति निकलती होगी, गौर वर्ण होगा, सबसे अलग रहते होंगे, न जाने क्या-क्या विशेषताएँ उनमें होंगी। हमसे न जाने कितने दूर होंगे।' मिलनेकी उत्कण्ठा इतनी तीव्र हुई कि रुपये-पैसेका ख्याल न करके खाली हाथ जैसे था, वैसे ही चल पड़ा। दोहरीघाट स्टेशनतक रेलवेसे गया और वहाँसे गोरखपुर करीब २० मील पैदल।

उन दिनों भाईजी गोरखनाथके समीपवाले बगीचेमें रहते थे। पहले मैं गीताप्रेस पहुँचा और वहाँसे पैदल चलकर बगीचे आया। जब मैं वहाँ पहुँचा तो भाईजी वहाँसे प्रेस जा चुके थे। गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे कुछ बातचीत होती रही। ६-७ घंटे बाद करीब ८ बजे रात्रिको भाईजी प्रेससे लौटे।

मुझे देखते ही भाईजीने इस प्रकार मुझे पकड़कर गलेसे लगा लिया, जैसे मैं उनका कोई चिरपरिचित होऊँ। शान्तिसे बैठ जानेके बाद मैंने पूछा—'भगवान्में प्रेम कैसे हो?'

भाईजी बोले—

उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥

इसके बाद दो-दो, तीन-तीन मिनटपर एक-एक वाक्य बोलते—'भगवान्का स्वभाव कितना दयालु है। वे अपने सेवकोंके अपराधपर दृष्टि नहीं डालते।' इत्यादि बातें घंटोंतक होती रहीं। बीच-बीचमें भाईजीके नेत्रोंसे आँसू गिरते थे और मुझे भी रोमाञ्च हो आता था। बस, यही भाईजीका प्रथम दर्शन था। मैं तीन-चार दिन गोरखपुर रहा। भाईजीने कहा कि आपको अवकाश हो तो यहाँ कुछ दिन रहिये। परंतु मैं उस समय ठहर नहीं सका। भाईजी अपने घरके हो गये। न उनके मुखपर कोई ज्योतिर्मण्डल था, न आँखें हर समय बंद रहती थीं। वे तो हमें वैसे ही मिले, जैसे भाई भाईसे मिलता है। वे हमसे दूर नहीं थे, बहुत निकट थे; परंतु हमको इसका क्या पता था।

गोरखपुरसे श्रीभाईजीके शील, स्वभाव, प्रेम और सहानुभूतिकी स्मृति लेकर तीन-चार दिन बाद मैं घर लौट आया। भगवत्प्राप्तिके लिये व्याकुलता बढ़ी।

कुछ अनुष्ठान किये, कुछ-कुछ सफलता मिली, हृदय-मस्तिष्क कुछ निर्मल हुआ, भक्ति और वेदान्तमें एक साथ ही प्रवृत्ति हुई। घरसे भगा तो नर्मदातटके लिये, परंतु झूसीमें ब्रह्मचारी

श्रीप्रभुदत्तजीने रोक लिया। उस समय वहाँ 'अखण्ड संकीर्तन महायज्ञ'का द्वितीय षाण्मासिक उत्सव प्रारम्भ हुआ ही था। कुछ ही दिनोंमें मैं वहाँ 'साधक'से 'कथावाचक' हो गया। लोगोंसे परिचय बढ़ा—गीताप्रेससे आये हुए साधक—गङ्गाबाबू, रामजीदासजी बाजोरिया एवं पुरुषोत्तम सिंहानियासे भाईजीके सम्बन्धमें कभी-कभी बातें होती। भाईजीकी ओर मेरा आकर्षण बढ़ने लगा। उन दिनों मैंने श्रीभाईजीको एक पत्र लिखा, जिसका उन्होंने बहुत सुन्दर उत्तर भी दिया।

अर्धकुम्भीके अवसरपर भाईजी झूसी आये, किंतु वे दो-तीन दिन ही वहाँ रह पाये। मुझसे कोई विशेष बातचीत न हो पायी; क्योंकि उन्हें वहाँपर अवकाश बहुत कम था और मैं उस समय मौन था। इसलिये केवल १०-५ मिनटके लिये केवल शिष्टाचार-की कुछ बातें हुईं और भाईजी वहाँसे वापस गोरखपुर चले गये। झूसीका अनुष्ठान समाप्त होनेपर अयोध्या, ऋषिकेश, दिल्ली एवं चित्रकूट होता हुआ आषाढ़ शुक्ला ११, सं० १९९३को मैं गोरखपुर 'गोयन्दका गार्डन'में पहुँच गया। अब इसका नाम 'गीतावाटिका' है। मेरे साथ ग्वालियरके बाबा रामदासजी एवं प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी अपनी-अपनी मण्डलियोंके साथ थे। वहाँ एक वर्षका 'अखण्ड संकीर्तन महायज्ञ' प्रारम्भ होनेवाला था। यहींसे हमारी और श्रीभाईजीकी घनिष्ठता प्रारम्भ हुई।

× × ×

मैं जब 'कल्याण'-परिवारमें एक सदस्य था, श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके दर्शन करने गङ्गातटपर कर्णवास आया। बाबा बोले—'क्यों शान्तनु! वहाँ सब ठीक है?' मैंने कहा—'हाँ महाराज! सेठजीकी निष्ठा बड़ी पक्की है। भाईजी बड़े भक्त हैं। हमसे बहुत प्रेम भी करते हैं।' बाबाने कहा—'अच्छा शान्तनु! मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ।'—

'एक थे महात्मा, सर्वथा विरक्त साधु! विचारशील और त्यागी। वे गाँव-गाँव, ठाँव-ठाँव कहते-फिरते—'कहीं कब्र है, कब्र?' गृहस्थ उनका अभिप्राय समझ नहीं पाते थे। एक थे गृहस्थ ज्ञानी, असङ्ग और निष्ठावान्। वे समझ गये और अपने घरकी ओर उँगली दिखाकर बोले—'महाराज! कब्र तो यह है, कहीं मुर्दा भी है?'

साधुने अपने शरीरको मुर्दा बताया और उनके घरमें घुस गये। उनके लिये एकान्त कमरेकी व्यवस्था हो गयी। वे किसीसे मिलते-जुलते नहीं थे। एकरस बारह वर्ष बीत गये। एक दिन गृहस्थके घर चोर घुसे। लाखोंकी सम्पत्ति समेटकर जाने लगे। साधुके मनमें आया—'मैंने बारह वर्षतक इसकी रोटी खायी। मेरी आँखोंके सामने इसकी चोरी हो जाय, क्या यह उचित है? मेरा कुछ भी कर्तव्य नहीं?'

वे चोरोंके पीछे लग गये और जगह-जगह कोपीन फाड़ कपड़े बाँध दिये। जिस कुएँमें चोरोंने सम्पत्ति डाली, उसे पहचान लिया। दूसरे दिन साधुके बतानेपर चोर पकड़े गये और सम्पत्ति मिल गयी।

स्वस्थ और शान्त होनेपर एक दिन गृहस्थने साधुसे प्रश्न किया—'महाराज! मुर्दा सच्चा या कब्र?'

वे बोले—'कब्र सच्ची, मुर्दा झूठा।' और वे वहांसे विरक्त होकर निकल पड़े।

बाबाके इस उपदेशको मैंने संन्यासकी प्रेरणा समझी। सचमुच भाईजी और उनके परिवारसे घनिष्ठता बढ़ती जा रही थी। मैंने संन्यास अपनी आनुवंशिक घर-गृहस्थीसे नहीं, भाईजीके परिवारसे ही लिया।

× × ×

एक दिन भाईजीके पास एक व्यक्ति आया। भाईजीसे बोला—'मेरी बीमार पत्नी अस्पतालमें है, सहायता दीजिये।' उन्होंने सहायता दी। कुछ दिन बाद आकर बोला—'अस्पतालमें उसे बच्चा हुआ है, सहायता दीजिये।' तब भी दी। कुछ दिन बाद फिर आकर कहने लगा—'हालत खराब है, कुछ और दीजिये।' तब भी दी। पाँच-दस दिन बाद पुनः आया और बोला—'मर गयी, अन्त्येष्टि कैसे करें?' फिर भी दी। फिर कहा—'घर जानेके लिये किराया चाहिये।' फिर भी दी।

किसीने पूछा—'भाईजी, यह कैसा आदमी है? कोई ठग लगता है।'

भाईजीने कहा—'मुझे पहले दिनसे मालूम है। न पत्नी बीमार, न बच्चा हुआ; न अस्पताल, न मृत्यु। किंतु जब यह मेरे सम्मुख आकर बैठता है, तब लगता है कि इसने पूर्व-जन्ममें मुझे कोई ऋण दे रखा था। इसका मैं ऋणी हूँ और वही चुका रहा हूँ।

भाईजीके मनमें यह भाव ही नहीं था कि 'मैं इसपर उपकार कर रहा हूँ।' ठगके प्रति दुर्भावकी तो बात ही क्या।

× × ×

एक दिन मुझसे भाईजीने कहा—'पण्डितजी! भगवान्‌की स्मृति सदा नहीं रहती। बे बीच-बीचमें भूल जाते हैं।'

मैंने कहा—भाईजी! यह विस्मृति भी तो वे ही देते हैं। उन्होंने गीतामें कहा है—'मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।'

'विस्मृति भी वे ही देते हैं'—भाईजीने दुहराया और उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलने लगी, शरीर रोमाञ्चित हो गया। वे भावविभोर हो उठे।

●

हटते नहीं एक पल भी वे मुझे छोड़कर प्रियतम श्याम।
सोते-जगते, खाते-पीते, हरदम रहते पास ललाम॥
नित्य दिखाते रहते अपनी अति पवित्र लीला सुखधाम।
बाहर-भीतर, तनमें-मनमें देते रहते सुख अविराम॥

—श्रीभाईजी

●

गृहस्थ महात्मा

श्रीरामदत्तजी पर्वतीकर (वीणा महाराज)

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परलोक-गमनसे दास अत्यन्त दुःखी हुआ। उनके वियोगसे इस जगमें सभीको, विशेषतः भारतवासी जनताको अत्यन्त हानि पहुँची है। गीताप्रेसद्वारा अमूल्य ग्रन्थोंके प्रकाशन तथा उनके बहुविध इतर परोपकारी कार्योंका प्रकाश श्रीसूर्यनारायणके प्रकाशकी तरह फैला हुआ है। उसके बारेमें कुछ लिखना सूर्यको प्रकाश दिखाने-जैसा ही है। श्रीभाईजी तो निःसंशय प्रातःस्मरणीय हैं। उनका स्वभाव तथा कार्य उच्चकोटि-के साधु-संतों-जैसा ही था। वे गृहस्थके वेषमें थे, फिर भी उन्होंने बड़े-बड़े दाढ़ी-जटा-दण्डधारी महात्माओंसे भी उच्च कार्य कर दिखाया है, लोगोंका बहुत ही उपकार किया है। दासने जब-जब उनके दर्शन किये, तब-तब उनमें नये-नये सद्गुण दिखायी पड़े। सबसे पहले उनके दर्शन दासने प्रयागराजके कुम्भ-मेलेमें १९५४में किये थे। कुम्भ-मेलेमें श्रीगीताप्रेसका स्वतन्त्र शिबिर लगा था। कई बार दास कैम्पमें जाता था और जब-जब जाता, तब-तब श्रीपरमपूज्य पोद्दारजी-को अलग-अलग परोपकारी कार्योंमें संलग्न देखता था; जैसे—कभी यज्ञ करानेमें तत्पर, कभी अखण्ड कीर्तनको प्रोत्साहन देते हुए, कभी अतिथियोंकी सेवामें तत्पर तथा कभी महात्माओंके प्रवचनोंका आयोजन करके विनय एवं सम्मानपूर्वक एकचित्तसे श्रवण करते हुए। अत्यन्त भक्ति-विभोर होकर भगवान्‌के प्रेममें अश्रु बहाते हुए उनके दर्शन कइयोंने किये होंगे। भगवान्‌के लिये आँसू बहाना उच्चकोटिके भक्तोंका लक्षण है। कण्ठका गद्गद होना, शरीरका रोमाञ्चित होना इत्यादि लक्षणोंसे साधनाकी पराकाष्ठा व्यक्त होती है। श्रीभाईजीके इन सब गुणोंका बहुत-से महात्माओंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। एक उच्चकोटिके महात्मा गत अर्द्धकुम्भीके समय प्रयाग-मेलेमें 'श्रीराघवेन्द्र स्वामी मिशन कैम्प'में मेलेके अधिकारीके सामने कह रहे थे—"श्रीभाईजी सभीके सुहृद् हैं। अपरिचित व्यक्ति भी अपना दुःख उनके सामने प्रकट करता है तो वे सगे भाईकी भाँति ही उसका दुःख दूर करने लगते हैं। यही हेतु है कि सब लोग उन्हें 'भाईजी' कहकर सम्बोधित करने लगे।" गरीबोंको अनेक प्रकारके दान देना, अनाथोंको अन्न-वस्त्रादिसे उपकृत करना इत्यादि अनेक प्रकारके सद्गुण उनमें स्वाभाविक थे। बहुत परोपकार करके भी वे उसे थोड़ा मानते तथा अपने सुकृतका प्रदर्शन नहीं करते थे। अपनी महत्ताका प्रदर्शन या ढिंढोरा पिटवानेके लिये यह परोपकार नहीं था। किंतु सर्वान्तर्यामी श्रीहरिके प्रीत्यर्थ ही उनका कार्य आदर्श कर्मयोगी जनकराजाके जैसा रहा। धन्य हैं ऐसे गृहस्थ महात्मा—'परोपकाराय सतां विभूतयः'।

कुम्भ-मेलेके पश्चात् उनके दर्शन गीतावाटिका (गोरखपुर)में हुए। उस समय वे अपना महत्त्वपूर्ण कार्य छोड़कर कमरेसे बाहर आये और वयमें दासके पितातुल्य और ज्ञानमें वृद्ध होने-पर भी दासके पैर छूकर दासको लज्जित किया। फिर अपना सब कार्य छोड़कर परमपूज्य स्वामीजी

महाराज श्रीराधाबाबाकी कुटियाके पास ले गये और श्रीस्वामीजी महाराजको बाहर बुला लाये। और भी लोगोंको इकट्ठा किया। दाससे वीणापर कीर्त्तन करवाया और आप भी जोर-जोरसे कीर्त्तन करने लगे। पीछे एक बार ऋषिकेशमें भी ऐसा ही प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। दास बदरी-नाथ जा रहा था। स्वामी श्रीशिवानन्दजी महाराजके आश्रममें गङ्गाजीके उस पार एक दिन रुकना पड़ा। श्रीभाईजीको किसीने खबर दी तो अपने व्यक्तिको भेजकर उन्होंने दासको बुला लिया। वहाँ अपने कमरेमें ले गये। उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, फिर भी कीर्तन करवाया। श्रीस्वामीजी महाराज उस समय मौन थे। भाईजी बैठे और कीर्त्तनके पश्चात् वीणा-वादन सुनने लगे। जहाँ विशेष कलापूर्ण मींड-तान इत्यादि सुनते थे, वहींपर 'वाह' निकलती, जिससे सिद्ध होता है कि वे उच्चकोटिके संगीत-मर्मज्ञ थे। सभी सम्प्रदायोंके प्रति उनका आदर-भाव था। इससे श्रीभाईजीकी गुण-ग्राहकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। वे दासका भी बहुत सम्मान करते थे।

परमपूज्य श्रीभाईजीने उस समयके राज्यपाल श्रीविश्वनाथदासजी तथा श्रीब्रह्मचारीजी महाराज इत्यादिके साथ अविश्रान्त परिश्रम करके चारों प्रमुख धामोंमें तथा अन्य स्थानोंमें वेद-भवनोंकी स्थापना की है। जब-जब श्रीबदरीनाथ-जैसे दुर्गम स्थानोंमें छात्रोंसे वेदघोष सुना जाता है, तब-तब उनकी महत्ता बार-बार स्मरण होती है।

विश्वके कोने-कोनेमें गीता-रामायणादि ग्रन्थोंका प्रचार करके भारतीय संस्कृतिकी सुरक्षा करनेका अधिकांश श्रेय श्रीभाईजीको ही है। अविश्रान्त परिश्रमके कारण स्वास्थ्य ठीक न रहनेपर भी अपने प्राणोंपर खेलकर वे कार्यमग्न रहे। अन्ततक उनकी इस महान् परोपकारी कार्यके प्रति लगन सभीको विदित है। श्रीभाईजीके शरीर छोड़नेके कुछ ही दिन पहले दासने उन्हें अपना 'श्रीमद्भागवतगान' ग्रन्थ दिखाया था। हिंदी भाषासे अनभिज्ञ होते हुए भी श्रीबदरी-नाथकी कृपासे दासने बोलचालकी भाषामें उसे गानके रूपमें बनाया था। उसे देखकर श्रीभाईजी बोले––'यद्यपि इसकी भाषा प्रचलित हिंदीसे भिन्न है, फिर भी इसका भाव (दशमस्कन्धका समश्लोकी भाव ठीक) श्लोकानुसार है।' इतना ही नहीं, उन्होंने उस ग्रन्थको गीताप्रेससे प्रकाशित कर दिया और दासको बहुत प्रोत्साहित किया। दास तो उन्हें देवताका ही अवतार मानता है, जो लोक-कल्याणार्थ भगवत्कार्यके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। उनके परमपूज्य चरणारविन्दोंमें दासके बारंबार दण्डवत् प्रणाम।

●

प्रभु मेरे रहते नित पास।
प्रभु देते नित दिव्य प्रकाश॥
प्रभुसे होता प्रेम-विकास।
प्रभुसे बढ़ता मन उल्लास॥
प्रभु पूरी करते मम आस।
प्रभुमें मेरा दृढ़ विश्वास॥

––श्रीभाईजी

●

वैदिक संस्कृतिके महान् प्रचारक

आचार्य प्रभुपाद श्री ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामीजी महाराज

श्रीपाद हनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ मेरा बड़ी ही आत्मीयताका सम्बन्ध था। मैं उनके अनुज-जैसा हूँ और वे मेरे दादा--बड़े भाई हैं। वे मुझे बड़े भाईका ही स्नेह देते थे। मेरी उनसे प्रथम भेंट सन् १९६२में हुई थी, जब मुझे अपने श्रीमद्भागवतके प्रथम भागके प्रकाशनके निमित्त कुछ आर्थिक सहयोगकी आवश्यकता थी। श्रीमद्भागवतके भावोंको अंग्रेजीमें व्यक्त करनेकी मेरी शैली उन्हें बहुत रुचिकर प्रतीत हुई। उन्होंने कहा--'मैं इस प्रकारका कार्य करवाना चाहता था; आपने यह कर दिया। आपका यह प्रयास बहुत उत्तम है।' उन्होंने मुझपर बड़ी कृपा की और उन्हींके द्वारा 'डालमिया चेरिटेबल ट्रस्ट'से मेरा परिचय हुआ और मेरे श्रीमद्भागवतके प्रथम भागके प्रकाशनमें उक्त न्याससे आंशिक सहायता प्राप्त हुई। पश्चिमी देशोंमें वह मेरे धार्मिक कार्य-कलापोंका प्रारम्भिक काल था; क्योंकि १९६५ ई० तक अपने श्रीमद्भागवतके तीन भाग प्रकाशित होनेके बाद ही मैं अपनी पुस्तकोंके सहारे पश्चिमी देशोंकी यात्रापर जा सका। भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे मुझे वहाँ कुछ सफलता भी मिली। पश्चिमी देशोंमें अपने भावों-विचारोंके प्रचारकी प्रारम्भिक अवस्थाओंमें मुझे कठिन संघर्ष करना पड़ा। मुझे श्रीमद्भागवत आदि अपनी पुस्तकोंका ही भरोसा था। मैं भाईजीका बड़ा अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने अनेक प्रकारसे मेरा सहयोग किया। 'कल्याण'में मेरे कार्य-कलापोंका विस्तृत परिचय प्रकाशित कर उन्होंने उसके प्रति विशाल जनसमुदायकी रुचि जाग्रत् की। श्रीभाईजीका यह मेरे कार्योंके प्रति विशेष सहयोग था।

भगवान्के सेवकके रूपमें मनुष्यको उसकी स्वाभाविक स्थितिका बोध कराना मानव-समाजकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं हितकारी सेवा है। भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्टरूपसे कहा है कि 'वेदोंके अध्ययनका उद्देश्य भगवान्को जानना है।' हिंदी भाषामें भारतीय शास्त्रोंका दूर-दूरतक प्रचार कर श्रीभाईजीने मानव-समाजकी महती सेवा की है। इसके फलस्वरूप गीताप्रेस जगत्प्रसिद्ध हो गया। पुराणों, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, रामायण तथा उपनिषद् आदिको अत्यन्त प्रामाणिक एवं सुन्दर अनुवादसहित प्रकाशितकर उन ग्रन्थ-रत्नोंको पोद्दारजीने बड़ा लोकप्रिय बनाया है। यह उनकी बहुत बड़ी सेवा है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिष्य-परम्पराके मतानुसार इन ग्रन्थोंका अंग्रेजी-रूपान्तर करके मैं पोद्दारजीके पथका अनुसरण कर रहा हूँ और यह प्रभावशाली सिद्ध हो रहा है। सभी वैदिक धर्मशास्त्रोंका अंग्रेजी-रूपान्तर करनेके लिये मेरे पास पर्याप्त साधन नहीं है, परंतु इस कार्यकी बड़ी आवश्यकता है। इस वैदिक सांस्कृतिक प्रचार-कार्यमें मैं श्रीपोद्दारजीका पूर्ण सहयोग चाहता था, परंतु इसी बीच वे भगवच्चरणोंमें लीन हो गये।

मेरी मासिक पत्रिका "Back to Godhead" अंग्रेजी, फ्रेंच, जापानी, जर्मनी और हिंदी आदि भाषाओंमें प्रकाशित होती है। अभी हालमें स्पैनिश तथा डच भाषामें भी प्रकाशित हुई है।

प्रतिमास पाँच लाखसे अधिक प्रतियोंका मुद्रण संसारव्यापी वितरणके लिये हो रहा है; परंतु अभी रूसी, चीनी, यूनानी, हिब्रू आदि अनेकों भाषाएँ ऐसी हैं, जिनमें इसका प्रकाशन प्रारम्भ नहीं हुआ है। विश्वभ्रमणके पश्चात् अपने अनुभवके आधारपर मैं निश्चितरूपसे यह कह सकता हूँ कि संसारमें वैदिक संस्कृतिकी बड़ी आवश्यकता है और इसकी पूर्ति महामन्त्र 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'के कीर्त्तनसे ही हो सकती है। थोड़े ही समय-में हमारे लघु प्रयासोंके द्वारा 'हरे कृष्ण......' महामन्त्र संसारप्रसिद्ध हो चुका है। ग्रामोफोनके रेकार्डों, चित्रों, पुस्तकों आदिके द्वारा इसका इतना प्रचार हुआ है कि अनेकों घरोंमें 'हरे कृष्ण.......' महामन्त्रके रेकार्डके साथ नियमित कीर्त्तन तथा नृत्य होता है।

जब मैं गोरखपुर गया, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार बड़े कृपालु एवं स्नेहशील आतिथेय सिद्ध हुए। भाईजीने अपने सुरम्य उद्यान 'श्रीकृष्णनिकेतन'में हमारे आवासकी व्यवस्था की। भोजन, ठाकुरसेवाका पूरा प्रबन्ध उनकी ओरसे था। वहीं प्रतिदिन कीर्त्तन-सत्सङ्ग होता था। सैकड़ों लोग वहाँ पधारकर हमारे भक्तोंके साथ सत्सङ्ग सुनते तथा भगवान्‌की आरतीमें सम्मिलित होते थे। श्रीभाईजी 'अन्तरराष्ट्रीय श्रीकृष्ण-भावनामृत-प्रचार-संघ'के महान् समर्थक थे और 'कल्याण'के माध्यमसे तथा व्यक्तिगत सम्पर्कद्वारा वे इसका प्रचार करते रहते थे।

कृपालु हनुमानप्रसादजीसे भेंट करनेके लिये मैं उनके आवास-स्थान गीतावाटिकामें गया, परंतु वे रोग-शय्यापर थे। अतः विस्तारपूर्वक उनसे बात नहीं हो सकी। मेरी यह आन्तरिक कामना थी कि वे अतिशीघ्र रोगसे मुक्त हो जायँ और 'हरे कृष्ण......'के इस जगद्व्यापी प्रचार-कार्यमें पूर्णतया सम्मिलित हो जायँ; परंतु भगवान्‌की कुछ और ही इच्छा थी। श्रीभाईजी हमलोगोंको छोड़कर चले गये।

●

अति आश्चर्य बदल दी तुमने मेरी दृग-पुतली, प्राणेश !
दीख रहे अब मुझको तुम सर्वत्र सभीमें, हे हृदयेश !
मानवकी क्या बात, सुरासुर, पशु-पक्षी, सब कीट-पतंग।
जल-थल-अनल-अनिल-नभ——सब ही एक तुम्हारे ही श्रीअङ्ग ॥
वृक्ष-लता-गिरि-कूट, नद-नदी, दिशा-सूर्य-शशधर-नक्षत्र।
मुझे दीखते तुम प्रियतम, जीवनके जीवन, नित सर्वत्र ॥
सबका स्पर्शित पवन, सभीका पद-रज अमल परम पावन।
सदा समादरणीय, सदा शुचि सेवनीय, मम मनभावन ॥

——श्रीभाईजी

●

हिंदी, हिंदुत्व एवं हिंदुस्थानके महान् पुजारी

महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज

संसारमें अनेक देशभक्त हुए हैं, वीर हुए हैं, भक्त हुए हैं, संत-महात्मा हुए हैं, कवि, लेखक, पत्रकार तथा जनसेवक हुए हैं; किंतु ऐसे पुरुष विरले ही उत्पन्न हुए हैं, जिनमें ये सब गुण एक साथ प्रस्फुटित हुए हों।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ऐसे ही सौभाग्यशाली पुरुष थे। उनमें एक साथ ऐसे अनेक गुण विद्यमान थे कि उनके सम्पर्कमें जो भी एक बार आता था, वह उनकी प्रेम-डोरसे बँध जाता था। उनमें अञ्जनीसुवन वीर हनुमानजीकी ही भाँति तीक्ष्णबुद्धि, अटूट भगवन्निष्ठा एवं सेवाकी भावना विद्यमान थी। वीरता एवं धैर्यमें भी वे अद्वितीय थे। राजस्थानकी पवित्र धरतीको भाग्यशाली बनाकर उन्होंने बंगाल प्रदेशको अपनी लीलाभूमि बनाया और ब्रिटिश साम्राज्यको भारतसे उखाड़ फेंकनेका प्रयास किया। फलतः कई बार उन्हें कारागारकी कठोर यातनाएँ भोगनी पड़ीं। उन्हें निर्वासित जीवन भी व्यतीत करना पड़ा। उनकी गतिविधियोंपर भी बार-बार रोक लगायी गयी; किंतु उन-जैसे महान् पुरुषोंकी भावनाएँ यातनाओंसे आजतक न तो दबी हैं और न दबायी जा ही सकती हैं। भाईजी अपने विचारोंपर सदैव ही दृढ़ रहे। आगे चलकर तो उनक झुकाव पूर्णरूपेण धर्मकी ओर हो गया। फिर भी वे किसी-न-किसी रूपमें स्वातन्त्र्य-संग्राममें सहयोग देते रहे। वैसे तो श्रीभाईजी गोरखपुर नगरमें ही रहते थे, किंतु वे गोरखपुर और उत्तरप्रदेशकी ही नहीं, अपितु भारतवर्षकी उन महान् विभूतियोंमें हैं, जिन्होंने अपने ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं साधनासे इस धरतीको पावन किया है। उनकी विनयशीलता, भक्तिभावना, परदुःखकातरता एवं शीलका जब भी स्मरण आता है, मन उन्हींमें खो जाता है। उनका चरित्र परम उज्ज्वल एवं गीतोक्त दैवी-सम्पदाका भंडार था। उनमें साधनका बल, आध्यात्मिक अनुभव, त्याग, तप, प्रौढ़ विचारशक्ति, वेद-शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन जैसा था, वैसा अन्यत्र नहीं प्राप्त होता। वे सनातनधर्मके प्राण और भक्तिके मूतिमान् स्वरूप ही थे। गीतावाटिकामें प्रतिवर्ष आयोजित श्रीराधाष्टमी-महोत्सव तथा समय-समयपर आयोजित धार्मिक सत्सङ्ग-समारोहोंमें उनकी अविरल एवं निश्चल भक्ति देखते ही बनती थी।

श्रीभगवान् गोरक्षनाथकी तपोभूमि गोरखपुरमें स्थापित गीताप्रेसके माध्यमसे भाईजी आजीवन धार्मिक-आध्यात्मिक जगत्की सेवा करते रहे। उपनिषद्, इतिहास, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानस, संत-साहित्य आदि महत्त्वपूर्ण भारतीय वाङ्मय एवं हिंदूधर्मसे सम्बन्धित प्रायः सभी धर्मशास्त्रोंका उन्होंने गहन मनन किया था। उनका विश्वास था कि भारतीय जन अपनी आध्यात्मिक धरोहरके बलपर ही जीवित रह सकते हैं। अतएव उन्होंने इन लुप्तप्राय ग्रन्थोंको अनवरत प्रयत्न करके पुनः प्रकाशित कराया। आवश्यकतानुसार उन्होंने इन

ग्रन्थोंकी टीका और व्याख्या भी प्रस्तुत की। उनके द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित 'कल्याण' मासिक पत्रिकाने विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचकर अँधेरेमें प्रकाशकी किरणोंका कार्य किया है। सोये, भूले-भटके और विभ्रमित हिंदुओंको उन्होंने 'कल्याण'के माध्यमसे जाग्रत् किया है और उन्हें स्वदेश एवं स्वधर्मपर मर मिटनेकी प्रेरणा प्रदान की है। देश एवं विदेशका कोई भी आस्तिक परिवार ऐसा न होगा, जहाँ 'कल्याण'ने पहुँचकर आत्मोत्थान एवं परोपकारके कार्योंमें सहयोग न प्रदान किया हो। पत्रकारिता एवं लेखन-जगत्‌में उन्होंने जो कीर्तिमान स्थापित किया है, उसकी कोई समता नहीं दिखायी पड़ती। उनका पत्र 'कल्याण' ही एकमात्र ऐसा पत्र है, जिसकी भारतसे बाहर भी पर्याप्त माँग है। विश्वका कदाचित् ही कोई ऐसा देश हो, जहाँ 'कल्याण'की माँग न हो। अपनी कुशल लेखनी एवं सम्पादन-कलासे उन्होंने धार्मिक, सांस्कृतिक और लोककल्याणकारी साहित्यका जिस प्रचुर मात्रामें सृजन किया है, उसे जिज्ञासु विद्वान् एवं अध्यवसायी पाठकके लिये जीवनभर श्रम करके भी पढ़ पाना कठिन है। उसे आद्योपान्त समझ पाना और तदनुकूल आचरण कर पाना तो अत्यन्त दुष्कर है। सचमुच गीताप्रेस एवं 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होंने हिंदी, हिंदू एवं हिंदुस्थानकी जो अप्रतिम सेवा की है, वह चिरकालतक स्मरण की जाती रहेगी।

श्रीभाईजी हिंदी भाषाके अनन्य प्रेमी थे, साथ ही उन्हें देवभाषा संस्कृतसे भी विशेष प्रेम था। इतना ही नहीं, उन्हें बँगला, गुजराती, मराठीका भी अच्छा ज्ञान था। उनके साहित्यका अवलोकन करनेसे इस बातका पता चलता है कि उनकी लेखनी केवल एक सफल लेखक एवं साहित्यकार बननेके लिये नहीं उठी। वे एक विशेष उद्देश्यको लेकर आये थे और आजीवन उन्होंने उसे पूर्ण करनेके लिये अपनी लेखनीका उपयोग किया। उनका मुख्य उद्देश्य सुप्त और गौरवविस्मृत सम्पूर्ण हिंदू-समाजको संगठित करने और जगानेका था। वास्तवमें उन्हें स्वदेश एवं स्वधर्म दोनोंसे अटूट प्रेम था। वे हिंदू, हिंदुत्व एवं हिंदुस्थानके महान् पुजारी थे। मेरे पूज्य गुरुदेव ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्रीमहन्त दिग्विजयनाथजी महाराजसे उनका अत्यन्त ही निकटका सम्पर्क था। श्रीभाईजीकी विनम्रता, उदारता, सदाशयता एवं विद्वत्तासे पूज्य गुरुजी महाराज बहुत प्रभावित थे। श्रीभाईजी गुरुजनोंके प्रति बड़ी श्रद्धा एवं आदरबुद्धि रखते थे। वे जब भी संत श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्यायजीसे मिलते थे, तब चरण छूकर उनको प्रणाम करते थे और उनके समक्ष कुर्सीपर न बैठकर भूमिपर बिछी दरीपर बैठते थे। जब कभी उनसे आग्रह किया जाता था कि वे बराबर कुर्सीपर बैठें, तब वे नम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार कर देते थे और कहते थे—'गुरुजनोंके चरणोंके समीप बैठना ही हिंदू संस्कृति है।'

स्वातन्त्र्योत्तर कालमें भी जब हमारी सरकारने हिंदुत्वविरोधी कार्य किया, श्रीभाईजीने सदैव ही उसका विरोध किया। जिस समय मुस्लिम-तुष्टिकरण नीतिका अवलम्बन करके कांग्रेसी नेता पाकिस्तान स्वीकार करने जा रहे थे, तब भाईजीने उसका प्रबल विरोध किया था और चेतावनी दी थी कि 'यह पाकिस्तान भारतके लिये सदा-सर्वदाके लिये एक बहुत बड़ा काँटा बन जायगा'। नोआखालीमें जब १९४६ ई० में हिंदुओंके रक्तसे होली खेली गयी, भाईजीकी आत्मा रो उठी। उस समय उन्होंने महामना मालवीयजीका अन्तिम संदेश लाखोंकी

संख्यामें छपवाकर वितरित कराया था। 'हिंदू कोड बिल'का भी आपने विरोध किया था और कहा था कि सरकारको हमारी धार्मिक व्यवस्थामें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।

श्रीभाईजी साधु-संतों, महात्माओं, ब्राह्मणों तथा विद्वानोंके भक्त एवं प्रेमी थे और उनकी मुक्त हस्तसे सहायता किया करते थे। निर्धन, अनाथ विद्यार्थी उनसे सदैव ही यथेष्ट सहायता प्राप्त किया करते थे। उन्होंने अनेक कन्याओंके विवाहके लिये द्रव्यकी व्यवस्था की। देश, धर्म एवं परोपकारके कार्योंमें वे सदैव ही रुचि लेते थे।

श्रीपोद्दारजी देशकी जनताके सच्चे हितैषी थे। वे सबके मित्र एवं बन्धु थे। इसीलिये लोग उन्हें 'भाईजी'के नामसे सम्बोधित किया करते थे। 'भाईजी' शब्द अत्यन्त ही आत्मीयता-पूर्ण सम्बोधन है। उन्होंने 'कल्याण'का 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क' प्रकाशित करके संसारको एक बार पुनः भारतकी अमूल्य थाती एवं आध्यात्मिक परम्पराकी ओर आकर्षित एवं नतमस्तक होनेके लिये विवश किया।

उन्होंने सितम्बर १९७० ई० में मेरे पूज्य गुरुदेवकी प्रथम पुण्यतिथिपर आयोजित श्रद्धाञ्जलि-सभाकी अध्यक्षता करते हुए कहा था—'हिंदुत्वमें संसारके कल्याणकी भावना निहित है। भारत जब कभी विश्वमें एक गौरवशाली राष्ट्रके नाते खड़ा होगा, तब हिंदुत्व ही उसका आधार होगा।' उन्होंने यह भी घोषणा की थी—'संसारको यदि सच्चा सुख और शान्ति प्रदान करनेकी सामर्थ्य किसीमें है तो वह केवल हिंदू-धर्ममें ही है।' हिंदुत्वको साम्प्रदायिक कहने-वालोंको फटकारते हुए उन्होंने कहा था—'कोई सिद्ध करे कि हिंदुत्वने संसारकी या देशकी क्या हानि की है?' वे सच्चे अर्थमें देशके एवं हिंदू-जातिके 'भाई' थे। उनका परमात्मासे निकट सम्पर्क था। उनका ध्यान और ज्ञान दोनों ही अत्यन्त महान् थे। उनका सौजन्य, शिष्टता, नम्रता, मृदुता एवं हिंदुत्वपर अभिमान इतिहासमें बेजोड़ हैं। भाईजी-जैसे महान् पुरुष इतिहासमें विरले ही उत्पन्न हुए हैं। उनमें कवित्व और ऋषित्व साथ-साथ प्रस्फुटित हुए थे। उन्हें भगवच्चरणोंमें लीन हुए एक वर्ष व्यतीत हो रहा है, किंतु ऐसा आभास होता है कि वे आज भी जन-मानसमें समाये हुए हैं। उनका नाम और उनका कार्य अलौकिक था। हिंदू-समाजपर उनका भारी उपकार है। उनकी स्मृतिको शीघ्र भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने हिंदू-समाजपर अपने महिमामण्डित व्यक्तित्व एवं कृतित्वकी जो अमर छाप छोड़ी है, वह 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' विद्यमान रहेगी।

●

किया कृपा कर प्रभुने मुझको अपना चिर सेवक स्वीकार।
रहा न प्राणि-पदार्थ किसीका मुझपर अब कुछ भी अधिकार॥
मेरा भी उठ गया सहज अधिकार सभी परसे अनिवार।
एकमात्र मैं सेवक प्रभुका, केवल प्रभु मेरे भर्तार॥

—श्रीभाईजी

●

अप्रतिम भगवद्विश्वासी

परमपूजनीय गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

लगभग २५ वर्ष हो गये हैं। अपने नित्यके भ्रमणमें मैं गोरखपुर गया था। गोरखपुरका नाम योगिराज गोरखनाथजीके कारण प्रसिद्ध है। उन महायोगीके कारण पुनीत बने स्थानको देखनेकी इच्छा थी ही। वह पूर्ण कर सका और उस दर्शनसे हृदयमें पवित्र भावकी अनुभूति कर सका। परंतु विगत कई वर्षोंसे गोरखपुर और एक कारणसे विख्यात है। वह है श्रीगीताप्रेस और उससे प्रकाशित मासिक 'कल्याण' एवं अन्य धर्मग्रन्थ। यह प्रतिष्ठान, जहाँसे नाममात्र मूल्यपर श्रेष्ठतम ग्रन्थ उपलब्ध किये जा रहे हैं, कैसा है, उसे कौन चलाता है—इन बातोंका कौतूहल हृदयमें बहुत समयसे रहा। उसे चलानेवाले महानुभावोंके नाम तो पढ़े ही थे, परंतु प्रत्यक्ष उनका दर्शन नहीं हुआ था। वह चिरप्रतीक्षित सुअवसर उस समय गोरखपुर जानेपर प्राप्त हो सका।

किसी भी प्रतिष्ठानकी सफलता मात्र उसके उद्देश्योंसे प्राप्त नहीं होती, केवल धनकी प्रचुरतासे भी नहीं होती, यद्यपि उत्तम उद्देश्य और प्रभूत धनकी आवश्यकता अमान्य नहीं की जा सकती। पुनीत उद्देश्य, पवित्र, सात्विक श्रद्धासे प्रदत्त धन और सबसे महत्त्वका साधन—उस उद्देश्यकी पूर्तिके हेतु उस पवित्र धनका सदुपयोग करनेवाला दीर्घदर्शी, योजनाकुशल, ध्येयनिष्ठ संचालक—जिसने उस प्रतिष्ठानके लिये अपना तन-मन-धनादि सब समर्पित कर दिया हो—इन तीनोंका संयोग ही सफलताका कारण होता है। गीताप्रेसमें इन तीनोंका एक समन्वय है। गीताप्रेसका धर्मप्रचारका विशुद्ध उद्देश्य, ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिका शुद्ध धन-प्रदान और श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके समान धर्मनिष्ठ, कर्मठ संचालक—इनका अभूतपूर्व संयोग—एक अभूतपूर्व वायुमण्डल बनाता हुआ अनुभव होता है।

मेरे सहयोगियोंने श्रद्धेय भाईजीसे मिलनेकी योजना बना रखी थी। ठीक समयपर मैंने उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त किया। एक मध्यम कदकी प्रसन्नवदन मूर्ति मेरे सम्मुख उपस्थित हुई। सौम्यता—माधुर्य उनके शब्दोंसे टपकते थे। प्रत्येक शब्दमें धर्मके प्रति अपार श्रद्धा, समाजके प्रति कारुण्यभाव, प्रखर राष्ट्रभक्ति और सबकी महान् प्रेरक, श्रीभगवान्के चरणकमलोंमें प्रगाढ़ भक्ति अभिव्यक्त हो रही थी।

इसके पश्चात् मैंने अनेक बार उनके दर्शन किये। वर्तमान परिस्थिति—धर्मश्रद्धाका ह्रास, नीतिमत्ताका ह्रास, विशुद्ध राष्ट्रभक्तिकी न्यूनता, अपने समाजकी विच्छिन्नता तथा इन सबके परिणामस्वरूप अविवेकका प्रादुर्भाव इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयोंपर उनके प्रौढ़ विचार सुने। भगवद्भक्ति, गो-भक्तिका साक्षात्कार उनके शब्द-शब्दसे होता हुआ अनुभव किया। गोवंशकी हत्या, उसकी दुर्दशासे वे अति व्यथित रहते थे। भिन्न-भिन्न साधु-महात्माओंको

अपने-अपने अलग मार्गसे चलते देख तथा उनमें सम्पूर्ण समाजकी उन्नतिके हेतु सामञ्जस्यकी न्यूनताको देखकर वे व्यथित तथा चिन्तित थे। परंतु इस मनोव्यथा एवं चिन्ताके होते हुए भी सर्व-कल्याणकारी श्रीभगवान्‌के प्रति अटूट विश्वास तथा प्रेम होनेके कारण उनके अन्तःकरण-का आनन्द और संतुलन अभङ्ग रहते थे।

यह सब मेरे लिये उपकारक अनुभव रहा है। उनके जीवनसे श्रीगीताके ज्ञान-कर्म-भक्तिका एकरस बोध प्राप्त करना—अपनी अल्प ग्रहणशक्तिके अनुपातमें—मेरा सद्‌भाग्य है।

अन्तस्तलमें उठनेवाली भक्तिकी प्रबल ऊर्मि विगत कुछ वर्षोंसे उनके शरीरकी सहनशक्तिको आघात पहुँचा रही थी। इसी कारण शरीरसे वे अस्वस्थ रहने लगे थे और अन्तमें पार्थिव देह त्यागकर वे भगवच्चरणोंमें विलीन हो गये।

•

लोकपावन चरित

आचार्य प्रभुपाद श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने गोदावरी तटपर राय रामानन्दसे अनेक प्रश्न किये, उनमें एक प्रश्न है—

'प्रभु कहे—दुःख मध्ये कोन दुःख हय गुरुतर। (प्रभुने कहा—'दुःखोंमें सबसे बड़ा दुःख कौन-सा है?')

राय उत्तर दिले—कृष्णभक्त-विरह बिनू दुःख नाहिं आर॥' (रायने उत्तर दिया—'श्रीकृष्णके वियोगसे बढ़कर और कोई दुःख नहीं है।')

'कल्याण'-परिवार आज इसी अनिर्वचनीय दुःखसागरमें निमग्न है। हम भी इस दुःखसे प्रभावित हैं। माननीय साधुभक्त लोकपावनचरित्र हनुमानप्रसाद पोद्दारजी इहलोकमें नहीं रहे—यह बात भावनाके क्षेत्रमें एक महाशून्यताका बोध कराती है। वे थे आदर्श गृहस्थ, आत्मीयजनके परम हितैषी बन्धु, कुलके गौरव, समाज-सुधारक। भारतके प्रत्येक धर्मक्षेत्रके प्रधानतम आचार्योंके साथ उनका परम सौहार्द था। वे थे साधु-सेवक, महत्‌के अनुयायी, धर्मादर्शमें दृढ़ प्रत्ययवान् तथा सद्धर्मानुशीलनमें प्रयत्नशील। किसी सम्प्रदायविशेषके लिये अनुचित अनुदारता, अकारण द्वेष अथवा पागलपनका लेश भी उनमें न था। किसी विशेष देश, काल या समुदायका मानव समझकर उनकी विवेचना करनेपर हमलोग अविचारी कहे जायँगे। उन्होंने सभी देश, काल और समुदायके कल्याणके निमित्त अपने जीवनको उत्सर्ग कर दिया। सत्साहित्यमें उनका प्रगाढ़ अभिनिवेश था तथा उसके प्रचारकी प्रचेष्टामें अपनी देन वे छोड़ गये हैं।

'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' उनकी अक्षय कीर्ति हैं। इन पत्रिकाओंके माध्यमसे भारतीय जन-मानसके साथ उनके जीवनकी जो एक गाँठ बँधी है, वह चिरन्तन हो गयी है। १९२६ ई० से वर्तमान कालपर्यन्त 'कल्याण'के जो मासिक अङ्क तथा वार्षिक विशेषाङ्क प्रकाशित हुए हैं, उनकी लेखन-शैली, विषय-निर्वाचन, वर्गीकरण, सम्पादन-नैपुण्य, चित्र-विन्यास--सभी एक विराट् प्रसन्नमनके साथ हमारा परिचय कराते हैं। 'कल्याण'के चतुर्थ वर्षका विशेषाङ्क 'गीताङ्क' था। एक ग्रन्थमें इस प्रकार विचक्षणतापूर्वक भारत और पाश्चात्य देशोंके गीता-प्रेमियों एवं विशेषज्ञोंके लेखोंके संचयकी अद्भुत प्रचेष्टा प्रत्येक गीता-पाठकके लिये सदा-सर्वदा प्रशंसनीय बनी रहेगी। ऐसा कौन हरिनाम-प्रेमी है, जो 'भगवन्नामाङ्क' को देखकर मुग्ध न हो तथा हृदयमें शक्तिका अनुभव न करे? 'भगवन्नामाङ्क'पर दृष्टि पड़ते ही अविश्वासी मनुष्यके मनमें भी भगवद्विश्वास भर आता है। परम विद्वान् वेदान्ती 'वेदान्ताङ्क'में अपने अभिलषित अनेक प्रकारके प्रश्नोंका समाधान देख सकेंगे। भागवत-रसिक 'श्रीमद्भागवताङ्क'को अपना चिरसङ्गी बनाकर प्रसन्नता अनुभव करेंगे। यह बात दृढ़ताके साथ कही जा सकती है कि 'संक्षिप्त महाभारताङ्क'में विशाल महाभारतकी कथाओंका इस प्रकार एक ग्रन्थके भीतर निपुणतापूर्वक विन्यस्त होना 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका ही चमत्कार है, इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते। प्रत्येक वर्ष लाखों व्यक्ति 'कल्याण'के विशेषाङ्कको देखनेके लिये आशान्वित होकर प्रतीक्षा करते हैं। हिंदू-संस्कृति, उपनिषद्-ज्ञान, तीर्थोंका परिचय, पुराण-कथा, भगवान्के लीलामृत, समाज-व्यवस्था आदि नाना विषयोंके विचित्र निबन्ध 'कल्याण' के माध्यमसे भारतमें और भारतके बाहर छयालीस वर्षोंसे प्रचारित होते आ रहे हैं। अंग्रेजी भाषामें 'कल्याण-कल्पतरु' योग-साधना, भक्त-जीवन तथा धर्मके तत्वोंका प्रचार करके भारतके मार्मिक सिद्धान्तोंको विदेशी लोगोंके पास पहुँचाता है। इन सब कृतियोंके मूलमें माननीय श्रीपोद्दारजीके बलिष्ठ हृदयके अकृपणभाव और उदारताका परिचय प्राप्त होता है।

छोटे-बड़े नाना प्रकारके संस्करणोंमें शास्त्रोंका एवं भक्तोंके जीवन-चरित्र और सत्कथाओंका प्रचार-प्रसार करके उन्होंने हिंदी-भाषाको आधुनिक कालकी उन्नत साहित्यिक भाषाका गौरव प्रदान करनेमें स्तुत्य सहयोग प्रदान किया है। उनकी लेखनी निर्बाध गतिसे चलकर विभिन्न विषयोंका पूर्ण विवेचन करती है। उद्देश्य है--लोकोत्तर साहित्यको सामाजिक जीवनमें सुप्रतिष्ठित करना। अपने मार्मिक भावगौरवके प्रसारमें उन्होंने भारतके सुप्रसिद्ध धर्माचार्यों तथा नीतिज्ञ राष्ट्रनायकोंसे सहायता प्राप्त की है। उनके जीवनमें महात्मा गांधी, श्रीअरविन्द आदि मनीषिवृन्दका प्रभाव लक्ष्य करने योग्य है। वे जिस किसी कार्यका भार ग्रहण करते थे, उसे सुसम्पन्न किये बिना विश्राम नहीं लेते थे। निरलस, निष्कपट कर्मयोगी पोद्दारजीकी सहायता करनेके लिये इसी कारण सभी सम्प्रदायोंके विद्वान् एवं मनीषी अग्रसर होते थे। 'कल्याण'में सब सम्प्रदायोंका मिलन जीव-कल्याणके लिये हुआ है।

हरिनामके प्रचारके लिये वे 'कल्याण'के द्वारा प्रतिवर्ष लोगोंको प्रेरित करते रहे और उनकी इस प्रेरणासे लाखों-लाखों व्यक्ति हरिनामपरायण हुए। रामचरितमानस और

गीताकी परीक्षा प्रचलित करके भारतके प्रत्येक प्रान्तमें उन्होंने इन ग्रन्थोंके प्रति रुचि एवं आस्था उत्पन्न की तथा भगवद्भक्तिका बीज-वपन किया।

एक बार श्रीवृन्दावनमें जाकर मैंने देखा कि श्रीगोविन्दजीके मन्दिरके पास नगरपालिका-की ओरसे पानीकी एक टंकी खड़ा करनेका प्रयत्न हो रहा है। यह कार्य सम्पन्न होनेपर प्राचीन श्रीगोविन्दजीका मन्दिर बिल्कुल आड़में पड़ता था और स्थानकी गरिमाको धक्का लगता था। इस भावनासे व्यथित होकर उस कार्यको बंद करानेके लिये आन्दोलन करनेकी चेष्टा की गयी। श्रीपोद्दारजीको भी इसकी सूचना दी गयी। उन्होंने म्यूनिसिपैलिटीके कर्णधारोंपर प्रभाव डालकर उस कार्यको बंद करा दिया। मुझे याद है कि पत्र पानेके साथ ही प्रयत्न करके उन्होंने उसके बंद करानेकी व्यवस्था करा दी और टंकी अन्यत्र स्थापित की गयी।

हमारे परमाराध्य श्रीगुरुदेव विष्णुपाद अतुलकृष्ण गोस्वामीके साथ पोद्दारजीकी परम प्रीति थी। उसी सूत्रसे पोद्दारजीके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। विभिन्न विशेषाङ्कोंमें मेरे लेख प्रकाशित कर 'कल्याण'-सम्पादकने मुझको 'कल्याण'-परिवारके एक सदस्यके रूपमें ग्रहण किया, यह मेरे लिये परम सौभाग्यकी बात है। भगवान् कहते हैं-- 'मद्भक्तपूजाभ्यधिका'--मेरे भक्तकी पूजा मेरी अपेक्षा भी महत्त्वशाली होती है, इस सिद्धान्तको गीता और भागवतमें दृढ़ किया गया है। आज श्रीपोद्दारजीके पावन स्मरणका सुयोग प्राप्तकर मैं अपनेको धन्य अनुभव करता हूँ।

संन्यास-व्रत ग्रहण किये बिना भी गम्भीरतम ज्ञानका अधिकार प्राप्त किया जा सकता है, संसारमें रहकर भी त्यागमय जीवनके आदर्शमें जीवनको प्रतिष्ठित किया जा सकता है, याग-यज्ञका अनुष्ठान न करके भी भक्ति-सुधा-आस्वादनसे, नाम-गान-कीर्त्तनसे इस जीवनमें ही अनन्त जीवनकी अभिलाषा पूर्ण की जा सकती है--इसके ही एक पूर्ण निदर्शन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार थे। वे विनयकी खानि थे, ज्ञानकी ध्वनि थे और भक्तिके माधुर्यमें विभवशाली थे। श्रीकृष्ण-जन्मभूमि मथुरामें श्रीकृष्ण-मन्दिरके उद्‍घाटनके प्रसङ्गमें उन्होंने कहा था--

"श्रीकृष्णके अनन्त गुणोंका कोई वर्णन नहीं कर सकता। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि जिस भारत-भूमिमें भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए, उसीमें आज हम भी जीवन-धारण कर रहे हैं और तुच्छ मच्छरके अनन्त आकाशमें उड़नेके सदृश उनके गुणगानका प्रयास कर रहे हैं। आपलोगोंने मुझको कृपापूर्वक यह सौभाग्य प्रदान किया, इसके लिये मैं आपके प्रति हृदयसे कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और आज्ञानुसार श्रीकृष्ण-मन्दिरका उद्‍घाटन करता हूँ। 'बोलो आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!"

उपसंहारके उपर्युक्त वाक्योंपर गम्भीरतासे विचार करनेपर ज्ञात होगा कि श्रीपोद्दारजीको भारत-भूमिसे कैसी प्रीति थी। धर्म-स्थानोंका पुनः संस्कार करनेके लिये वे कितने उत्साही थे। भगवान्‌की महिमाके कीर्तनमें उनका कैसा उत्साह था और वे किस प्रकार विनय-गुणसे अलंकृत थे। अपने प्रियतमसे प्रार्थना करते समय जो मधुर शब्द उनके मुँहसे निकले थे, आज उनका स्मरण बारंबार हृदयमें जाग्रत् हो उठता है--

"मनमोहन ! मेरे मनको अपनी माधुरीसे मोह लो। मेरे मनमें जो मान, यश और विषय-सुखकी इच्छारूपी आग जल रही है, इसे तुम्हीं अपने कृपावारिसे बुझा दो। प्रभो ! मैं केवल तुम्हींको चाहूँ, केवल तुम्हींको अपना सर्वस्व समझूँ। तुम्हीं मेरे प्राणाधार और प्राण हो, तुम्हीं मेरे आत्मा और परमात्मा हो——इस बातको जानकर मैं केवल तुम्हींसे प्रेम करूँ। तुम्हारे इस प्रेम-प्रवाहमें मेरा अपना माना हुआ धन, जन, मान-मोह——सब बह जाय। तुम्हारे प्रेम-सागरमें सब कुछ डूब जाय। मैं केवल तुम्हारी ही झाँकी करता रहूँ—— ऐसा सौभाग्य दे दो, मेरे प्रियतम !"

इस प्रार्थनामें उनके जीवनगत माधुर्य, मुग्धता तथा जीवन-सर्वस्वरूपमें वरणीय परम पुरुषोत्तमके दर्शनके लिये लालसाका ज्वलन्त प्रमाण पाया जाता है। वे भगवान्‌के प्रियतम भक्तोंके एकान्त अन्तरङ्ग, उनकी लीलामें मग्न होकर रहनेके अभिलाषी तथा मिलनमें भी सेवाके अभिलाषी थे। इस अभिन्न भावमें भी भेदभक्तिकी अर्थात् अचिन्त्यभेदाभेदवादकी उपलब्धिमें वे जो आत्मलीन हो गये थे, इसका परिचय उनकी ही उक्तिमें प्राप्त होता है। वे कहते हैं——"तुम्हारे साथ तुम्हारी रुचिके अनुसार खेलता रहूँगा और तुम जिस क्षण अपने संकल्पको छोड़कर अपने उस खेलको समेटकर मुझे आलिङ्गन करना चाहोगे, उसी क्षण मैं तुम्हारे विशाल हृदयमें समा जाऊँगा। यह खेल भी कैसा मधुर होगा, मेरे मधुरिमामय मनमोहन ! मेरा यह सुखस्वप्न सच्चा कर दो, मेरे सनातन स्वामी !"

मेरा मन कहता है कि महान्‌का यह मनमोहनके प्रति आत्म-निवेदन सार्थक हुआ है। उनके खेलका साथी नित्यलीलामें प्रवेश करता है। लीलामय सत्य, नित्य और अनन्त हैं। जीवन-में उनकी लीला है, मृत्युमें भी उनकी लीला है। इस पार जिसकी लीला है, उस पार भी उसीकी लीला है। इस पार हम जिसका कार्य करते हैं, उस पार भी हम उसीकी सेवा करते हैं। हमारे दादा——भाई पोद्दारजीने वही सेवा प्राप्त की है। जय, भक्तकी जय !

●

आर्तत्राणपरायण, सहज सुहृद, करुणार्णव, परम उदार।
दीनबन्धु, पामर-उद्धारक, पावन पतित, अमित-दातार॥
अशरण-शरण, अकिंचनके धन, भयहर, दयासमुद्र अपार।
मुझ-जैसे सम्पूर्ण पतितके लिये तुम्हीं, प्रभु ! हो आधार॥
दीन-हीन मुझ अशरणको दे पावन चरणयुगलमें स्थान।
कर दो मुझे अभय अति निर्मल-चित्त-चरित्र आशु भगवान॥
तनसे करूँ नित्य मैं सेवा, करूँ वचनसे नित गुणगान।
सेवारत हों सभी इन्द्रियाँ, मन नित करे तुम्हारा ध्यान॥

——श्रीभाईजी

●

भक्तावतार श्रीहनुमानप्रसादजी

डा० महानामव्रत ब्रह्मचारी

'श्रीहनुमानप्रसाद'--इस नामके साथ मेरा गत पचास वर्षोंका परिचय है। महाशक्ति और निरुपम भक्ति--इन दोनोंकी मिलन-मूर्ति महावीर श्रीहनुमानजी थे। उनके अपरिमित प्रसादसे प्राप्त श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीका जीवन था। नामके साथ जीवनधाराकी ऐसी ऐकान्तिक एकात्मताका होना अति दुर्लभ है। प्रसादजीका प्रसाद प्राप्तकर उनके उद्देश्यसे एक अञ्जलि पुष्प अर्पण करके हम भी धन्य होते हैं!

सन् १९३३ से ३८ तक अर्थात् पाँच वर्षतक मैं अमेरिकाके शिकागो नगरमें वहाँके विश्वविद्यालयके साथ सम्बद्ध था। उसी समय 'दि फिलॉसफी ऑव श्री जीवगोस्वामी' नामक एक अंग्रेजी लेख मैंने पोद्दारजीके पास भेजा था। उन्होंने उसे अपने 'कल्याण-कल्पतरु' नामक मासिक पत्रमें प्रकाशित किया था। तबसे मुझको प्रतिमास 'कल्याण-कल्पतरु'की एक प्रति भेजकर वे अनुगृहीत करते रहे।

शिकागो नगरमें डा० हरमन हिल नामक एक विशिष्ट जर्मन महापुरुषके साथ मेरा परिचय हुआ। वे उस समय वहाँ मेडिकल ऐसोसिएशनके प्रेसिडेंट थे। वे जैसे विद्वान् थे, वैसे ही धनी और सहृदय व्यक्ति थे। वे रविवारको गिरजाघर नहीं जाते थे। मेरे पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि उनके पिताका उनके साथ सद्व्यवहार न था। इस कारण वे भगवान्को 'अवर फादर इन हेवेन'--'हे स्वर्गीय पिता' कदापि नहीं कह सकते थे। उनका मन कहता कि भगवान् यदि उनके पिताके समान हैं तो उनको न पुकारना ही ठीक है। मैंने उनसे कहा कि आप भगवान्को पिता न कहकर 'माता' कह सकते हैं अथवा 'बन्धु' कह सकते हैं, या परम प्रिय संतानके रूपमें उनकी भावना कर सकते हैं। श्रीभगवान्के साथ इस प्रकारके सम्बन्ध भी हो सकते हैं--यह जानकर वे मुग्ध हो उठे। इस विषयमें और जानकारी प्राप्त करनेके लिये उन्होंने ग्रन्थ देखना चाहा तो मैंने उनको 'कल्याण-कल्पतरु' पढ़नेके लिये दिया।

अविरल धारामें अश्रुपात करते हुए वे नित्य 'कल्याण-कल्पतरु'के लेखोंको पढ़ने लगे। श्रीहनुमानप्रसादजीके लेखोंको पढ़कर वे कहते थे--'ऐसे मधुर लेख मैंने जीवनमें नहीं पढ़े थे।' क्रमशः वे परम वैष्णव बन गये। हरिनामकी माला उनके कण्ठमें और करमें सुशोभित होने लगी। उनके इस अपूर्व परिवर्तनके मूलमें 'कल्याण-कल्पतरु' और श्रीहनुमानप्रसादजीकी लेखनी थी।

श्रीश्रीप्रभु जगद्बन्धु सुन्दरने वर्तमान समयको 'युग-संधि' कहा है। वे कहते हैं कि 'महाप्रभु श्रीश्रीगौराङ्गदेवके महाविर्भावसे कलियुगकी आयुका क्षय हो गया है। उनके पार्षदगणके चरण-स्पर्शसे और हरिकीर्तनकी हुंकारसे कलियुगने अपने निर्दिष्ट कालके पूर्व ही विदा ले ली है। फलतः 'युग-संधि' आसन्न है। इस समय अनेक प्रकारके उलट-फेर तथा धार्मिक और नैतिक ग्लानि सर्वत्र दीख रही है। युग-संधिके प्रवल धक्केमें प्राचीन संस्कृतिके चूर्ण-विचूर्ण हो

जानेके कारण एक जातिकी अपमृत्यु घटित हो सकती है। जिनको जातिकी चिन्ता है, वे सर्वतो-भावेन जातिके जीवनकी रक्षा करनेका प्रयत्न करते हैं।'

इस महान् दुर्योगके समय जातिकी रक्षाके लिये आवश्यकता है कि जो प्राचीन संस्कृतिके अवदान हैं, उनको फिर नये युगके नये आलोकमें सर्वजनग्राह्य रूपमें उपस्थित करना। इस कार्यमें जो महान् पुरुष प्रवृत्त हुए, उनमें श्रीहनुमानप्रसादजीका नाम उज्ज्वल अक्षरोंमें देदीप्यमान है।

श्रीहनुमानप्रसादजी जीवनभर निष्ठापूर्वक इसी एक कार्यके व्रती थे कि भारतकी प्राचीन संस्कृतिमें जो अविनश्वर सम्पद् है, उसे वर्तमान वैज्ञानिक युगके आलोकमें साधारण नर-नारीके अनुभव-योग्य बनाकर जातिके सामने अभिनव भाव और भाषामें समृद्धिमान् करके उपस्थित किया जाय।

वेद, उपनिषद्, स्मृति, गीता, महाभारत, रामायण, पुराण, तन्त्रशास्त्र, योगशास्त्र, वेदान्त-सांख्य आदि षड् दर्शन, तुलसीदास आदि संतोंके महाग्रन्थ, श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि गौड़ीय सम्प्रदायके ग्रन्थ-समूहका स्वयं अति गम्भीर अध्ययन करके श्रीहनुमानप्रसादजीने उनके भीतर बहुत अच्छा प्रवेश प्राप्त किया था। इन सब ग्रन्थोंको साधारण नर-नारीके ग्रहण करने योग्य प्राञ्जल भाषामें रूपान्तरित करवाकर तथा इन्हें लाखों-लाखोंकी संख्यामें प्रकाशितकर घर-घर नाममात्रके मूल्यमें पहुँचाया।

इस महाव्रतके साधनके लिये उन्होंने गीताप्रेसके कार्यका विस्तार किया। हिंदी और अंग्रेजीमें दो मासिक पत्रिकाओंका अति सुन्दर ढंगसे प्रकाशन एवं संचालन करनेके अतिरिक्त उन्होंने अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थ प्रकाशित करके भाषाको समृद्ध बनाया। नाममात्र मूल्यमें भारतीय आध्यात्मिक सम्पद्को कोटि-कोटि जनोंके हाथोंमें पहुँचाया। सारे जीवन वे इस विराट् कल्याणकारी कार्यके व्रती रहे। किंतु कैसा आश्चर्य है कि तनिक भी लौकिक लाभकी वासना उनके पवित्र जीवनको स्पर्श न कर सकी।

केवल ग्रन्थ और पत्र-पत्रिकाके प्रचारद्वारा ही उन्होंने आर्य-संस्कृतिमें नवजागरण लाने-की चेष्टा नहीं की, वरं अपने जीवनकी कठोर तपस्या और निरुपम शास्त्रानुमोदित आचार तथा नित्य-नैमित्तिक आचरणके द्वारा उन्होंने कोटि-कोटि नर-नारियोंके हृदयमें भक्ति-धर्मकी जीवन्त मूर्त्तिके रूपमें आसन प्राप्त किया था। उनकी चाल-ढाल, कथा-वार्ता, मधुर मुस्कान, शान्त नेत्रोंकी सुस्निग्ध दृष्टि—प्रत्येक गतिविधिके द्वारा व्रज-प्रेमकी एक अपार्थिव धारा प्रवाहित होती थी। थोड़े समयके लिये भी जो उनके सांनिध्यमें आया और जो भी उनका भाषण सुन लेता था, उनके भीतरकी इस आकर्षणशक्तिका उसपर जादू चल जाता था। बातचीत और क्रिया-कलापमें, लेखनी और प्रत्येक पदक्षेपमें, आचरण और प्रचारमें, इस प्रकारका 'सव्यसाची' इस युगमें सुदुर्लभ है।

इस युग-संधि-कालमें वे थे भक्तावतार। आध्यात्मिक भाव-सम्पद् और भाषा-सम्पद्—इन दोनोंके वितरणमें वे 'भूरिद' थे। इन भूरिद महापुरुषके महादानसे मातृभूमि धन्या हो

गयी ! उनके 'श्रीराधामाधव-चिन्तन' नामक श्रीग्रन्थके साथ यह नगण्य जीव अपनेको युक्त कर पाया, इससे यह अपनेको कृतार्थ समझता है ।

श्रीपोद्दारजीने जिस प्रकार इस महाजातिकी सेवामें अपनेको पूर्णतः समर्पण कर दिया था, इसकी स्मृतिको हृदयमें जाग्रत् रखकर हम प्रबलतर उत्साहसे आर्य-संस्कृतिकी आध्यात्मिक सम्पद्को अपने प्रतिदिनके जीवनमें प्रतिष्ठित कर सकें, तभी हम उनके प्रति भक्तिपूर्वक चन्दन-पुष्पाञ्जलि समर्पित कर सकेंगे । जयतु भक्तावतार श्रीश्रीहनुमानप्रसादजी !

●

श्रद्धास्पद महामानव

रामभक्त श्रीकपीन्द्रजी महाराज

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥
चारित्र्येण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥

(वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड १ । २-४)

श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थके लिये क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ, यही सोचते हुए कई दिन बीत गये । बड़े कठोर मनसे लेखनी उठायी और लिखने बैठा तो नेत्र भर आये, कागज भीग गया । क्या करूँ, समझमें नहीं आता । उनके किस गुणका वर्णन करूँ ? उनमें तो इतने गुण थे, जिनका वर्णन मानवकी इस लेखनीद्वारा सम्भव नहीं है ।

मैंने उन्हें तरुणाईमें देखा है और वृद्धावस्थामें भी । वे सदैव एकरस रहे । उनमें परिवर्तन नहीं आया । ब्रह्म अथवा प्रेम तो सर्वदा एकरस ही रहता है ।

'जो तिहुँ काल एकरस रहई'––यह है ब्रह्मकी कसौटी ।

उपर्युक्त श्लोक श्रीवाल्मीकिजीने श्रीनारदजीको सुनाये हैं । उल्लिखित सभी गुण श्रीभाईजीमें विद्यमान थे । उपर्युक्त गुणोंमें ऐसा कौन-सा गुण है, जो पूज्य श्रीभाईजीमें नहीं था ? ऐसा मानव तो अब खोजनेपर भी प्राप्त नहीं होगा । ऐसा मानव जगत्में है ही नहीं । मैं विश्वके कई विद्वानोंसे, साधुओंसे, संत-महात्माओंसे मिला हूँ; किंतु मुझे कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जैसा गोरखपुरकी छोटी-सी नगरीमें श्रीभाईजीके पावन स्वरूपमें विराजमान था । वाह रे भाईजी, खूब थे आप ! इस मायाकी नगरीसे वे धवल यश अपने साथ ले गये और दे गये हमें रुदन । अब रोनेके अतिरिक्त रहा ही क्या है ? मैं अनेक बार पूज्य श्रीभाईजीसे मिला हूँ, अनेक संस्मरण मेरे हृदयमें घूम रहे हैं और सभी कह रहे हैं––'मुझे लिखो, मुझे लिखो ।' अब मैं इस ऊहापोहमें हूँ कि कौन-सा लिखूँ, कौन-सा न लिखूँ, सभी अनमोल हैं ।

आजसे ३३–३४ वर्ष पूर्व मैंने एक दिन हरिद्वारमें उनको बड़ी तेजीसे जाते हुए

देखा। तब मैं दौड़ा और पीछेसे उनका लंबा कुरता पकड़कर खींच लिया। वे रुक गये और बोले—'एक लंबा कुरता आपको बनवाकर भेजूँगा, तब आपको पीछेसे पकड़ लेनेमें मुझे आसानी होगी।' उस जमानेमें मैं कपड़ा नहीं पहनता था। तत्पश्चात् हम दोनों धीरे-धीरे हरकी पैड़ीकी की ओर चलने लगे। मार्गमें वे अपने विचारोंमें मुझे ले गये और मैं उनकी विचार-सरितामें अवगाहन करने लगा। उनकी वह मृदु मुस्कान अब भी मेरे सामने है। उन्हें मेरी उद्दण्डतापर क्रोध नहीं आया, अपितु मेरे कंधेपर हाथ रखकर प्यारभरी वाणी बोलने लगे। उन्होंने कहा—'श्रीरामतत्व निःस्वार्थ प्रेमको कहते हैं।'

उन्होंने कभी अपने जीवनमें किसीपर कटाक्षतक नहीं किया, निन्दा तो दूर रही। उनमें कृतज्ञता, धर्मपरायणता, सरलता, सौम्यता, क्षमाशीलता, उदारता एवं पवित्रता ऐसी भरी हुई थीं कि उनकी थाह पाना साधारण बात नहीं थी। एक बार उन्होंने श्रीराधाष्टमी-के महोत्सवमें मुझे बुलाया। मैं गया, बड़ा आनन्द आया। जब मैं चलने लगा, तब उनसे विदा माँगने गया। वे उठकर मुझे पहुँचाने चले। मैंने श्रीभाईजीसे कहा—'यहाँ इतनी जनता आती है, इसका अर्थ यह है कि आपको हम सब लोग कष्ट देने ही आते हैं।' सुनकर सजल नेत्रोंसे गद्गद वाणीमें बोले—'नहीं, ये आनेवाले मुझे कष्ट नहीं देते, अपितु मुझे आनन्द देने आते हैं। मैं कभी-कभी प्रमादवश कोई अपराध कर बैठता हूँ तो इन सब आनेवालोंके दर्शनसे वह अपराध धुल जाता है। मैं इन आनेवालोंका ऋणी हूँ और जीवनभर रहूँगा।' यों कहते जाते और आँसुओंको पोंछते जाते। उनको ऐसी अवस्थामें देखकर मैं भी रोने लगा। आँसू पोंछता हुआ उनको प्रणाम करके दिल्लीके लिये चल दिया।

एक बार श्रीभाईजी दिल्ली आये हुए थे। मैं उनके दर्शन करने गया। वे गद्देपर सिद्धासनसे बैठे थे। मैंने प्रणाम किया, उन्होंने भी प्रणाम किया। मैं प्रणाम करके नीचे बैठ गया। उन्होंने कहा—'गद्देपर बैठ जाओ मेरे साथ।' मैंने कहा—'नहीं, मैं छोटा हूँ।' उन्होंने कहा—'नहीं, मैं तो 'प्रसाद' हूँ और आप तो........।' मैं यह सुनकर रोने लगा। उन्होंने कहा—'ऊपर बैठो।' मैंने कहा—'नहीं।' तब उन्होंने कहा—'क्यों?' मैंने कहा—'सम्मुखे अर्थलाभाय।' इतना सुनते ही मेरी ओरसे मुख फेर लिया और कहा—'अब सामने आ जाओ, नहीं तो पीठसे क्या लाभ होगा?' मैं यह देखकर गद्देपर बैठ गया तो खूब हँसे और कहा—'अब सम्मुख ठीक है।' बादमें मर्मकी बातें होने लगीं—तत्व समझाने लगे।

इसके बाद तो अनेक बार अनेक बातें हुईं। मैंने उन्हें जीवनमें 'अहं'से युक्त कभी नहीं देखा और न सुना। उनके गुणोंका मैं क्या वर्णन करूँ? वे तो प्रेममें श्रीराधा रानी थे, उदारता आदि गुणोंमें वे श्रीराम थे, भोलेपनमें सदाशिव थे, अणुसे लेकर महान्पर्यन्तको जाननेवालोंमें वे वसिष्ठ थे, भक्तिमें वे श्रीभरत थे और सत्यपर दृढ़ रहनेवालोंमें वे हरिश्चन्द्र थे। मेरा मन कहता है कि श्रीभाईजीका वपु समस्त देवगणोंके गुणोंका एक पुञ्ज था। मेरे पास शब्द नहीं हैं, जिनकी माला बनाकर उनके पावन चरणोंमें चढ़ा सकूँ। मैं तो अपने आँसुओंकी दो बूँदें ही उनके चरणोंमें चढ़ाता हूँ!

●

कर्तृत्ववान् सनातनी मिशनरी

आचार्य काकासाहेब कालेलकर

एक विख्यात अंग्रेजका वचन हमने बचपनमें पढ़ा था कि 'अगर कोई अच्छा लेखक प्रकाशक बनने जाय तो वह घाटेमें आ जायगा। प्रकाशनका काम सँभालते-सँभालते उसके पास लेखनके लिये समय ही नहीं रहेगा और उसकी प्रकाशन-प्रवृत्ति तो कभी सफल होनेवाली ही नहीं। इसके विपरीत अगर कोई सफल प्रकाशक समय निकालकर लेखक बनेगा तो देखते-देखते वह दोनों तरहसे सफल होगा। लेखकके रूपमें उसकी कीर्ति बढ़ानेमें प्रकाशन-कला सहायक होगी और प्रकाशककी हैसियतसे अनेक अच्छे लेखकोंके साथ उसका परिचय बढ़नेसे उसकी लेखन-कला भी सब बाजूसे सम्पन्न होगी।'

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने भारतमें उपर्युक्त दोनों क्षेत्रोंमें लोकोत्तर सफलता प्राप्त की। जब उनका 'कल्याण' मासिक देखते-देखते सर्वमान्य हो गया, उसकी ग्राहक-संख्या कल्पनातीत बढ़ी, तब मेरे कई मित्र कहने लगे—'सनातनधर्मके प्रचारके लिये हिंदी भाषाको एक अद्वितीय स्वदेशी अमेरिकन मिल गया है।'

सचमुच हिंदी मासिकोंमें 'कल्याण'का प्रचार एक अकल्पित आनन्ददायी घटना है।

'कल्याण' मासिकके साथ श्रीहनुमानप्रसादजीने गीताप्रेस चलाया। इसमें भी उनके 'अमेरिकन' साहस और कौशलका सारे देशको परिचय मिला।

श्रीहनुमानप्रसादजीकी इस द्विविध सफलताका रहस्य क्या है ? मैं कहूँगा—'बुनियादमें उनकी देशभक्ति और ईशभक्ति थीं—दोनों अकृत्रिम, उत्कट और ठोस। साथ-साथ उनमें सनातनधर्मकी सर्व-संग्राहक उदारता थी। पुराने धर्मके प्रचारमें उन्होंने अपने कौशलसे इतनी नवीनता डाल दी कि उनका धर्मप्रचार सजीव हो उठा। मैं मानता हूँ कि हमारे जमानेमें सनातनधर्मको हनुमानप्रसादजीसे बढ़कर दूसरा कोई 'मिशनरी' प्राप्त नहीं हुआ।

मेरी व्याख्याके अनुसार 'सनातन' याने 'नित्यनूतन'। अगर हम वेदसे आगे नहीं बढ़ते तो हम 'पुरातन' याने 'बासी' हो जाते। वेदके बाद उपनिषद्, उनके साथ दर्शन—सबको स्वीकार करके हम 'अद्यतन' (up-to-date) बनते गये। धर्मप्रचारके लिये हमने 'श्रुति' के साथ 'स्मृतियाँ' लीं। दोनोंकी मददमें इतिहास और लोक-जीवनको स्वीकार करनेवाले 'पुराण' लिये। पुराणोंके द्वारा ही हम अपने धर्मको लोकमान्य—लोकभोग्य बना सके।

सकाम और निष्काम—दोनों वृत्तियोंको पोषण देते हुए हमलोगोंने 'तन्त्रों' और 'आगमों'को स्वीकार किया एवं आगे बढ़े। श्रुति, स्मृति, पुराण, आगम और तन्त्र—सबके साथ 'योग'को मिलाया। राजयोगके साथ 'हठयोग'को भी अपनाया।

इधर बुद्धभगवान् और महावीरने धर्म-भावनाको लोकग्राह्य बनानेके लिये एक नयी नीति चलायी। वही नीति सनातनी संतोंने भी अपनायी। वह नीति क्या थी? संस्कृतसे लेना और लोकभाषाद्वारा विशाल जनताको देना।

जब चंद विद्वान् ब्राह्मण शिष्योंने बुद्धभगवान्से कहा—'भगवन्! आपका सर्वकल्याणकारी धर्म प्रतिष्ठित हो नहीं रहा है; क्योंकि वह लोकभाषामें व्यक्त हुआ है। आप हमें अनुमति दें तो हम आपके उपदेशको वैदिक या पाणिनीय संस्कृतमें ला देंगे।' बुद्धभगवान्ने उस अनुरोधको नापसंद किया और कहा—'मैं सामान्य जनताके लिये आया हूँ। मेरे उपदेशका अनुवाद सब लोकभाषाओंमें कर सकते हो, संस्कृतमें नहीं।' भारतीय संतोंने बुद्धभगवान्की यही नीति चलायी—'संस्कृतसे लिया और लोकभाषामें दिया।' हनुमानप्रसादजीने प्रेस, प्रकाशन और प्रचारके आधुनिक साधनोंको अपनाकर सनातन धर्म-संदेशको हिंदीके द्वारा लोकभोग्य बनाया।

इस सच्चे 'मिशनरी'ने सोचा कि अंग्रेजी भाषाकी प्रतिष्ठा तो तोड़ेंगे, किंतु उसके द्वारा अगर सेवा हो सकती है तो उसकी उपेक्षा भी हम क्यों करें? उन्होंने अपने 'कल्याण' की नीतिपर अंग्रेजीमें भी एक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन किया, जिसका नाम है—'कल्याण-कल्पतरु'। इस तरह यह 'सनातन हिंदू मिशनरी' नित्यनूतन साबित हुए।

हम आशा करें कि गीताप्रेस और 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'—यह नित्यनूतनता कभी खो नहीं बैठें। नित्यनूतनताके बिना प्राण टिक नहीं सकते, बढ़ नहीं सकते। नित्यनूतनता ही प्राण है।

•

नित्य प्रकाशरूप प्रभु रहते सदा-सर्वदा मेरे साथ।
सुखद मार्ग दिखलाते, रक्खे वरद अभय मस्तकपर हाथ॥
प्रभु ही मेरे जीवन बनकर रहते नित शरीरमें सङ्ग।
रहता स्वस्थ, नित्य मिलता बल, रहते सत्त्वपूर्ण सब अङ्ग॥
प्रेमरूपसे करते मुझमें परम सुहृद प्रभु नित्य निवास।
काम-राग-कटुता-विरहित जीवनमें छाया पूर्ण मिठास॥
परम शान्ति बन बसे हृदयमें, मिटे भ्रान्ति-चिन्ता-भय-शूल।
रहता शान्त-समुज्ज्वल जीवन, होते सभी कार्य अनुकूल॥
दिव्य शक्ति बन रहते मुझमें, करते नित-नव शक्ति-विकास।
शुचितम जीवन मधुर बना सत्-चिदानन्दका नित्य विलास॥

—श्रीभाईजी

•

आत्मकल्याणके संदेशदाता

श्रीमती ललिता शास्त्री

मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध 'कल्याण'से सन् १९४१ से है। उस समय शास्त्रीजी जेलमें थे और उन्हींके आज्ञानुसार मैं 'कल्याण' पत्रिकाकी सदस्या बनी। उस समयसे आजतक बराबर मैं 'कल्याण' पढ़ रही हूँ। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार 'कल्याण'के जन्मदाता थे और उनके विचार बराबर 'कल्याण'में प्रकाशित होते थे। इस तरह मैं उनके विचारोंसे तो अवश्य ही परिचित थी, लेकिन व्यक्तिगत परिचय न था। सौभाग्यवश जब शास्त्रीजी गृह-मन्त्री थे, तब मैं उनके साथ गोरखपुरमें स्थित गीताप्रेस देखने गयी। वहाँका वातावरण और कार्य देखकर शास्त्रीजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भाई पोद्दारजीसे कहा—'यह स्थान तो इतना रमणीक और शान्तिमय है कि जी चाहता है—राजनीतिसे छुट्टी लेकर यहींपर रहूँ।' उसी समय मेरा परिचय भाई पोद्दारजीसे हुआ।

भाई पोद्दारजीके बारेमें जितना भी लिखा जाय, थोड़ा है। उन्होंने 'कल्याण'के द्वारा मानव-जाति, धर्म, समाज, देश और साहित्यकी निःस्वार्थ भावसे ऐसी सेवा की, जो सिर्फ प्रशंसनीय ही नहीं, अनुकरणीय है। उनका मानवशरीर तो इस संसारमें नहीं, परंतु उन्होंने जो अमूल्य सेवाएँ समाजको प्रदान की हैं, वे किसी-न-किसी रूपमें मानव-जातिके कल्याणका कार्य सम्पादन कर ही रही हैं। वे सनातनधर्मके कट्टर अनुयायी थे, लेकिन सब धर्मोंको समान दृष्टिसे देखते थे। उनका जीवन व्यावहारिक एवं साधनामय था। जहाँतक मैं जानती हूँ—वे हमेशा आत्म-प्रशंसा एवं आत्म-विज्ञापनसे दूर रहे। भाई पोद्दारजीकी ज्ञानवाणीने देशमें किस स्तरतकके लोगोंके मनमें नव आशा, विश्वास और धर्मके प्रति आस्थाके दीप जलाये हैं, इसका अनुमान हमें उन सरलहृदय ग्रामीणोंसे बातचीत करनेपर होता है, जो किसी भी पत्रिकाको, जिसपर भगवान् श्रीराम-कृष्णका चित्र बना हो, 'कल्याण' कह देते हैं या समझ लेते हैं।

व्यक्तिविशेषके न रहनेके बाद ही उसके गुणोंको समाज आँकता है। आज भाई पोद्दारजी हम सबके बीच नहीं हैं; लेकिन उन्होंने 'कल्याण'के द्वारा जो अमृत-बेल पूरे समाजमें फैलायी है, वह युगोंतक मानव-जातिको आत्म-कल्याणका संदेशरूप अमर फल देती रहेगी। मैं यही चाहती हूँ कि जिस 'कल्याण'के द्वारा भाई पोद्दारजीने संसारके कल्याणका बीड़ा उठाया था, उसे हम कभी भी न मुरझाने दें।

●

पुण्यश्लोक श्रीभाईजी

श्रीविश्वनाथदासजी

पुण्यश्लोक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे भारतीय गगन-मण्डलसे एक महानतम सुप्रसिद्ध एवं आलोकप्रद नक्षत्र विलुप्त हो गया। भाई हनुमानप्रसादजीका सम्पूर्ण जीवन एक ऐतिहासिक जीवन था। स्वतन्त्रता-संग्रामके एक महान् सैनिक, हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृतिकी प्रतिष्ठाके नवजीवनदाता तथा उद्धारक और एकनिष्ठ यशस्वी विद्वान्के रूपमें उन्होंने अपना सारा जीवन भगवान्, संस्कृति एवं राष्ट्रके चरणोंपर निछावर कर दिया। प्राचीन भारतीय हिंदू-संस्कृति एवं हिंदू-परम्पराओंके जीर्णोद्धार, प्रचार एवं प्रतिष्ठापनके निमित्त किये गये कार्योंके महत्व एवं परिमाणकी दृष्टिसे बहुत कम हिंदू उनकी तुलनामें टिक सकेंगे। गीताप्रेस, प्रसिद्ध पत्र 'कल्याण' और गीता-भवन आदि उनकी सेवाके प्रमुख स्मारक हैं। वे ही एकमात्र व्यक्ति थे, जिन्हें अल्पतम मूल्यमें श्रीमद्भगवद्गीता तथा तुलसीकृत रामायण-की लाखों प्रतियाँ संसारभरमें वितरित करनेका श्रेय दिया जा सकता है।

पत्रकारिताके क्षेत्रमें उनके समान बहुत थोड़े लोग थे––'कल्याण'में प्रकाशनार्थ विज्ञापनोंको अस्वीकार करते हुए, सदैव संस्कृतिकी गरिमाका निर्वाह करते हुए तथा अपने सुप्रसिद्ध मासिक पत्रको पक्षपातपूर्ण भावनाओं एवं द्वेषपूर्ण आलोचनाओंसे––चाहे वे व्यक्तियों, संस्थाओं अथवा धार्मिक सम्प्रदायोंकी हों––सदैव मुक्त रखते हुए उन्होंने पत्रकारिताके क्षेत्रमें महात्मा गांधीके महान् आदर्शोंका अनुसरण किया।

'वेद-भवन-न्यास'के लिये उनका नाम उन इने-गिने व्यक्तियोंके बीच अमर अक्षरोंमें अङ्कित रहेगा, जिन्होंने वैदिक जीवन-पद्धतिके आदर्शका पुनरुद्धार एवं प्रचार करनेके लिये तथा उसे जीवित रखनेके लिये 'वेद-भवन-न्यास'की कल्पना की, उसे स्थापित किया और उसका कार्य-विस्तार किया। इतनी महान् सक्रिय एवं उपयोगी आत्माके उठ जानेसे भारत, हिंदू-संस्कृति और वैदिक जीवन-पद्धतिकी भयानक क्षति हुई है। गीताप्रेस और गीतावाटिकासे उनका तिरोभाव भगवान् श्रीकृष्णके द्वारकासे अन्तर्धान होनेके समान है। हमारी प्रार्थनाएँ सदैव उनके साथ हैं।

●

अनासक्त योगी—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

श्रीआदित्यनाथ झा

इस संसारमें कुछ ऐसे महापुरुष जन्म लेते हैं, जो जीवनभर परोपकार, उच्च आदर्श तथा मानव-सेवाके मार्गपर चलते हैं, किंतु जिनकी मृत्यु उन्हें अमर बना देती है और आने-वाली पीढ़ियाँ जिनके जीवन, आदर्शों और सिद्धान्तोंसे प्रेरणा पाती हैं । श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ऐसे ही महापुरुषोंमेंसे एक हैं । श्रीपोद्दारजीके समान लोभ-मोहसे विमुक्त योगीके जीवनकी गाथा गीताप्रेससे निकलनेवाली धार्मिक पत्रिका 'कल्याण' जन-जनतक पहुँचाती आयी है । पोद्दारजी बड़ी लगनके साथ जीवनभर साहित्य-रचनामें लीन रहे । उनके लेख, उनकी कविताएँ और उनके पत्र तथा टिप्पणियाँ साहित्यकी अमूल्य निधि हैं । जिस प्रकार उनका जीवन सादा और एक संतका जीवन था, उसी प्रकार उनका साहित्य भी धार्मिक आस्थाओंसे भरपूर तथा सत्य, मानवता और नीतिके उच्चतम आदर्शोंका प्रतिबिम्ब है । पोद्दारजीके निकट सम्पर्कमें जो भी आया, वह इस बातका साक्षी है ।

श्रीपोद्दारजीने विभिन्न क्षेत्रोंमें कार्य किया। युवावस्थामें उन्होंने श्रीअरविन्दके साथ कार्य किया । इसी प्रकार वे महामना मालवीयजी तथा महात्मा गांधी आदि महापुरुषोंके सम्पर्कमें रहे । सभी उनसे बड़ा स्नेह करते थे और साथ ही छोटे-बड़े सब लोग उनकी प्रशंसा और आदर भी करते थे । इस महान् संतके मनमें प्रशंसा और आदरकी कोई इच्छा न थी । जो महान् होता है, उसके व्यक्तित्वमें कुछ ऐसी विशेषता होती है, जिसके कारण प्रतिष्ठा, सम्मान और श्रद्धा उसकी ओर खिंचे चले आते हैं । लाला लाजपतराय, टंडनजी, सेठ गोविन्ददास तथा श्रीलालबहादुर शास्त्री-जैसे कितने ही महापुरुष श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको 'भाईजी' कहा करते थे । यहाँतक कि उनके परिवारके लोग भी उन्हें इसी नामसे पुकारने लगे । व्यक्तिगतरूपसे मैं भी श्रीपोद्दारजीके उज्ज्वल चरित्र, आदर्श जीवन, धार्मिक भावना, लगन तथा साधनासे बहुत प्रभावित हुआ हूँ । वे इतने उच्च थे कि पद और पदवीके मोहमें कभी नहीं पड़े । जब उन्हें 'भारत-रत्न'के पदसे विभूषित करनेका प्रसङ्ग चला, तब उन्होंने विनम्रतापूर्वक अपनी असहमति प्रकट कर दी । यहाँतक कि अंग्रेज सरकार उन्हें 'राय बहादुर' तथा 'सर' की पदवी देना चाहती थी, परंतु पोद्दारजी अपने दृढ़ निश्चय तथा उच्च मनोबलके सहारे इन प्रलोभनोंसे अलग ही रहे ।

पोद्दारजी विशुद्ध सनातनी वैष्णव थे, परंतु वे सभी धर्मोंका आदर करते थे और उनके मनमें सभी सम्प्रदायोंके प्रति श्रद्धा थी । 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होंने भगवद्भक्तिका संदेश जन-जनतक पहुँचाया । 'कल्याण'का सम्पादन-कार्य उन्होंने जिस तत्परता और खूबीके साथ किया, वह अत्यन्त सराहनीय है । उन्होंने भारतीय संस्कृति और धर्मको 'कल्याण'के माध्यमसे

भारतीय जनतातक ऐसे आदर्श रूपमें पहुँचाया कि उससे सभीको प्रेरणा मिली और स्वयं पोद्दारजी भी बड़े लोकप्रिय हो गये। उन्होंने आध्यात्मिक, धार्मिक और चरित्र-निर्माणमें सहायक पुस्तकोंके प्रकाशनमें अद्वितीय सहयोग प्रदान किया।

श्रद्धेय पोद्दारजीने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को अपने जीवनका सिद्धान्त बनाया। इस भौतिकतावादी युगमें उनके विचारोंसे भारतीय संस्कृतिका अद्वितीय दिग्दर्शन होता है। 'कल्याण' के विशेषाङ्कोंके माध्यमसे तथा विशेष अवसरोंपर अपने व्याख्यानोंके माध्यमसे उन्होंने भक्ति, लोक-व्यवहार, धर्म तथा राजनीति आदि विषयोंपर प्रकाश डाला। वे जीवनभर सेवा-परायण, परोपकाररत और उदारमना रहे। अपरिचित व्यक्तिके प्रति भी वे इतना स्नेह दिखाते थे कि मनमें उनके प्रति बड़ी श्रद्धा जाग उठती थी। ७९ वर्षकी उम्रमें भी वे वैसे ही रहे। उनके निधनसे भक्ति, प्रीति और धर्मकी त्रिवेणीसे समन्वित जीवनका अन्त हो गया; परंतु उनके द्वारा प्रतिपादित उच्चतम आदर्श, धार्मिक मान्यताएँ और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सदा लोगोंको प्रेरणा देते रहेंगे।

●

प्रभो! कृपा कर मुझे बना लो अपने नित्य दासका दास।
सेवामें संलग्न रहूँ उल्लसित नित्य, मन हो न उदास॥
चिन्तन हो न कभी भोगोंका, नहीं विषयमें हो आसक्ति।
बढ़ती रहे सदा मेरे मन पावन प्रभु-चरणोंकी भक्ति॥
कभी न निन्दा करूँ किसीकी, कभी नहीं देखूँ पर-दोष।
बोलूँ वाणी सुधामयी नित, कभी न आये मनमें रोष॥
कभी नहीं जागे प्रभुता-मद, कभी न हो तिलभर अभिमान।
समझूँ निजको नीच तृणादपि, रहूँ विनम्र, नित्य निर्मान॥
कभी न दूँ मैं दुःख किसीको, कभी न भूल करूँ अपमान।
कभी न पर-हित-हानि करूँ मैं, करूँ सदा सुख-हितका दान॥
कभी न रोऊँ निज दुखमें मैं, सुखकी करूँ नहीं कुछ चाह।
सदा रहूँ संतुष्ट, सदा पद-रति-रत, बिचरूँ बेपरवाह॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमें हो कभी न मेरा राग-द्वेष।
रहे न किंचित् कभी हृदयमें जग-आशा-ममताका लेश॥
मस्त रहूँ मैं हर हालतमें, करूँ सदा लीलाकी बात।
देखूँ सदा सभीमें तुमको, सदा रहे जीवन अवदात॥

—श्रीभाईजी

●

एक व्यक्ति या संस्था ?

श्रीप्रकाशवीरजी शास्त्री

पिछले पौने नौ सौ वर्षोंमें हिंदू-समाजपर कई बार बाहरी आक्रमण हुए। १९४७ तक पहले मुगल-सल्तनतने और पीछे अंग्रेजी सरकारने योजनाबद्ध ढंगसे इस आदर्श समाजके स्वरूप-को विकृत करना चाहा; पर वे दोनों ही इसमें सफल न हो सकीं। अकबरके समयमें भी, जिसे धर्मके बारेमें बहुत उदार कहा जाता है, उपनिषदों और कुछ दूसरे धर्म-ग्रन्थोंकी भाषा और आत्माको बदलकर भारतपर मुगल-संस्कृति थोपनेका प्रयास किया गया; पर हिंदू-समाजकी सतर्कतासे वे सारे प्रयत्न विफल रहे। औरंगजेबने वही काम तलवारकी नोकपर करना चाहा, लेकिन उसे भी सफलता न मिल सकी। अंग्रेजोंने भी पौने दो सौ वर्षोंतक इसी तरहके प्रयत्न किये, पर हिंदू-समाजके उदात्त आदर्शों और सिद्धान्तोंकी वे कुछ भी हानि न कर सके। इसके कारणोंमें एक सबसे बड़ा कारण था—हमारे सांस्कृतिक आधारका राजनीतिसे सर्वथा अप्रभावित होकर चलना। साधु-संत, ऋषि-महर्षि सदा समाजमें राजसत्तासे ऊँचे और श्रद्धेय माने जाते थे। राजा-महाराजाओंको यदि कभी गरज हुई तो वे ही उनके आश्रमोंमें जाते थे। राज-दरबारोंके चक्कर साधु-महात्माओंने कभी नहीं काटे।

स्वाधीनताके संग्राममें भी यही भावना काम कर रही थी—जब अपना राज्य होगा, तब अपनी संस्कृति एवं सभ्यताका भारतमें फिर उन्मुक्त विकास हो सकेगा। गांधीजीने इसके लिये 'राम-राज्य' शब्दका उपयोग किया। उनका कहना था—स्वतन्त्र होनेके बाद ही भारतमें 'राम-राज्य' आयेगा। तिलक, गोखले, मालवीयजी और लाला लाजपतराय आदिके स्वप्न भी उसी प्रकारके थे; पर स्वतन्त्रताके बाद भारतमें एक नयी ही धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक संस्कृतिकी हवा चल पड़ी। गणेशजी बनानेके प्रयासमें हमलोग बंदर भी न बना सके। स्वर्गीय श्रीश्रीप्रकाशजीने ठीक ही लिखा था—'यदि यही स्थिति चलती रही तो भारतकी तीसरी पीढ़ीमें हिंदू-धर्म समाप्त हो जायगा।' यों तो आजकी नयी पीढ़ी ही अपनी मान्य-ताओंसे कोसों दूर जा चुकी है। फिर तीसरी पीढ़ीकी तो कल्पना करना ही कठिन है। प्रगति और फैशनकी आड़में नास्तिकता एवं पश्चिमका अन्धानुकरण पनप रहा है। इसमें कुछ सुधार यदि सम्भव है तो गैर-सरकारी स्तरपर हिंदू-समाजके पथ-प्रदर्शक ही कर सकते हैं। सरकारी प्रयास इसमें कुछ विकार तो पैदा कर सकते हैं, सुधार पैदा नहीं कर सकते। आज तो सरकारने देशमें एक ऐसा वातावरण बना दिया है, जिसके कारण अपनेको हिंदू कहनेमें भी लोग संकोचका अनुभव करने लगे हैं। जिस धर्ममें सबके हितकी कामना हो, पूरी धरतीको एक परिवार माना गया हो और अपने-परायेकी गन्धसे जो परे रहना सिखाता हो, उसे आज संकुचित सीमाओंमें बाँधा जा रहा है। शासन-सूत्र और प्रचारका तन्त्र जिन हाथोंमें है, उनमेंसे अधिकांश पश्चिमके वातावरणमें शिक्षित हैं। इसलिये अब तो अपने पैरोंपर खड़ा

होकर ही हिंदू-समाजको मनु और याज्ञवल्क्यकी धरोहरकी रक्षा करनी होगी। ईसाइयत और इस्लामकी तरह हिंदू-धर्मके लिये राज्याश्रय खोजनेकी बात करना भी समयका अपव्यय करना है।

आदरणीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इस रहस्यसे भलीभाँति परिचित थे। इसीलिये उन्होंने गोरखपुरमें गीताप्रेस और 'कल्याण'के माध्यमसे अपना ऐसा ही स्वतन्त्र मार्ग चुना। अकेला एक व्यक्ति कैसे संगठनोंसे भी अधिक कार्य कर सकता है, वे इसके एक जीवित प्रतीक थे। रामायण, गीता, महाभारत आदि हिंदू-समाजके ग्रन्थोंको सरल और स्पष्ट भाषामें प्रकाशितकर उन्होंने समाजकी बहुत बड़ी सेवा की। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय हिंदू-धर्मको सुसंगठित रूप देनेके लिये जो प्रयास शिक्षाके माध्यमसे करना चाहते थे, पोद्दार-जीने वही काम साहित्य-साधनाके माध्यमसे किया। गीता और रामायण-जैसे ग्रन्थोंको सर्वसाधारणके लिये सुलभ करना उनकी अपनी ही अद्भुत प्रतिभाका परिचायक था। गरीब-से-गरीब व्यक्ति भी अपने घरमें आज गीता-रामायण रखकर गौरव अनुभव करता है।

पर एक भाई हनुमानप्रसाद पोद्दार यदि इतना बड़ा काम कर सकते थे तो क्यों न कुछ व्यक्ति मिलकर उनके अधूरे छोड़े हुए कार्यको और आगे बढ़ायें? दुनियाके दूसरे देशोंमें आज भारतीय ज्ञानकी भूख फिरसे जगी है। योरपमें कीर्त्तन और योगासन बड़े लोकप्रिय हो रहे हैं। उनकी अपनी भाषामें यदि और कुछ परिष्कृत साहित्य भी दिया जाय तो निश्चय ही हिंदू-धर्मके प्रति उनका आकर्षण बढ़ेगा। योरप ईसाइयतसे ऊब रहा है। शान्तिकी खोजमें योरपवासी ऐसे धर्मोंकी ओर अग्रसर हो चले हैं, जो प्रारम्भसे ही मानवताको संरक्षण देनेका काम करते आये हैं। दक्षिण-पूर्वी एशियामें भारतके पड़ोसी देश तो और भी अधिक उस ज्ञानकी पिपासा लिये हुए हैं। वहाँ बौद्ध और वैष्णव संस्कृतिका अद्भुत समन्वय देखनेको मिलेगा; पर यदि उस संस्कृतिके जन्म-स्थान भारतमें योजनाबद्ध ढंगसे उसके लिये कुछ उच्चस्तरीय प्रयास किये जायँ तो पोद्दारजी-जैसे तपस्वी व्यक्तियोंके स्वप्न पूरे सफल हो सकते हैं। पिछले दिनों जब मैं इंडोनेशिया गया, तब बाली द्वीपसे निर्वाचित संसद्-सदस्या श्रीमती ओकायने इंडोनेशियन भाषामें हिंदू-धर्मका साहित्य न मिलनेकी कठिनाई मेरे सामने रखी थी। गीता तो अपने प्रयासोंसे उस भाषामें उन्होंने छापी भी है; पर वहाँ पूरे हिंदू-साहित्यको पढ़नेकी इच्छा है। मुसलमान भी भले ही वहाँ मजहबसे इस्लाममें विश्वास रखते हों, पर सभ्यतासे वे भी अभीतक हिंदू ही हैं। रामायण और महाभारत वहाँ उन्होंने अपने ग्रन्थ मान रखे हैं। मैंने भारत लौटकर पोद्दारजीसे इसकी चर्चा की थी। वे इस दिशामें कुछ करना भी चाहते थे। पर इतनेमें ही परमात्माका निमन्त्रण उन्हें मिल गया और वे चले गये। आशा है, उनके श्रद्धालु भक्त इस ओर भी कुछ ध्यान देंगे।

●

अमर प्राणोंके दानी

श्रीप्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका

भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार मेरे अभिन्न मित्रोंमेंसे थे। युवावस्थामें हम दोनोंने कई ऐसे काम एक साथ मिलकर किये थे, जिनमें हम दोनोंके विचार मिलते-जुलते थे। वैसे सन् १९१६ के मध्यतक उनका कलकत्तामें ही निवास रहा और कलकत्तामें ही वे व्यापार करते रहे।

युवाकालमें उग्र क्रान्तिकारियोंसे मेरा सम्पर्क था और १९१४ में मैं एक राजनीतिक षड्यन्त्रमें फँस गया। 'आर० बी० रोड़ा ऐंड कम्पनी'द्वारा जर्मनीसे निर्यात की गयी ५०,००० कारतूस और ५० पिस्तौल क्रान्तिकारियोंके हाथ लगीं। उसका बड़ा भाग सुरक्षित स्थानमें छिपानेके लिये मुझे सौंपा गया। उन पिस्तौलों और कारतूसोंको छिपानेके उद्देश्यसे मुझे जगह-जगह घूमना पड़ा। पता लग जानेका तो पूरा भय था ही। कारतूसोंका एक वक्स मैंने भाई हनुमानप्रसादजीको उनकी गद्दीमें सौंप दिया। मेरी दृष्टिमें वह घटना उनके जीवनमें बहुत महत्त्व रखती है। हमलोगोंके साथ-साथ वे भी ब्रिटिश हुकूमतद्वारा इस षड्यन्त्रमें फँसा लिये गये।

प्रथम महायुद्धके समय 'भारत सुरक्षा-कानून' पास किया गया। मार्च १९१६ में मुझे बंगालसे निर्वासित कर दिया गया। कुछ सप्ताह बाद भाई हनुमानप्रसादजीको भी पकड़ लिया गया और पीछे बंगालके बाँकुड़ा जिलेमें पौने दो वर्ष वे नजरबंद रखे गये। १९१८ में उन्हें बंगालसे निर्वासित कर दिया गया। विधिका विधान बड़ा विचित्र है। बंगालसे हट जानेके बाद पहले कुछ वर्ष वे बम्बई रहे, पीछे गोरखपुर आ गये। उनके जीवनमें नया परिवर्तन आया और वे भगवत्प्राप्तिकी एकान्त साधनामें लग गये। एक साधारण व्यापारी एक सच्चा वेदान्ती और हिंदू-धर्मका मर्मज्ञ बन गया। एक-एक क्षण उनके जीवनका नवनिर्माण करने लगा। यह सत्य है कि सभी घटनाएँ—अच्छी या बुरी प्रभुकी प्रेरणासे होती हैं। देखनेमें जो अभिशाप प्रतीत होता है, वह अन्तमें किस वरदानके रूपमें साबित हो जाय—यह कौन जाने? पर मेरी ऐसी मान्यता है कि अगर कारतूसोंका एक बक्स उनके पास नहीं पहुँचता और उस घटनाके सिलसिलेमें उनको बंगालसे निकाला नहीं जाता तो सम्भवतः वे भी कलकत्तामें अन्य व्यापारियोंकी तरह अपने कारबारमें लगे हुए पाये जाते और शायद वे इतने महान् व्यक्ति नहीं बन पाते, जितने वे बन सके। मुझे गर्व है कि इस घटनाके निमित्तसे वे इतने ऊँचे उठ सके। यह मैं मानता हूँ कि संस्कार तो पूर्वजन्मोंसे ही चले आते हैं; उन संस्कारोंको जाग्रत् करनेके लिये कोई निमित्त चाहिये, कोई सहारा चाहिये। जब सही मार्ग मिल जाता है, तब उस सत्यकी प्राप्तिके लिये जो मंजिल तय करनी पड़ती है, वह तो साधक-

को स्वयं ही करनी पड़ती है——मार्गके कष्ट भोगने पड़ते हैं, उतार-चढ़ाव देखने होते हैं। भाई हनुमानप्रसादजीको मार्ग मिल गया और वे चल पड़े लगन और उत्साहके साथ उस मार्गपर, उस सत्यकी खोजमें, जीवनकी उन गुत्थियोंको सुलझानेके लिये, जो अनादिकालसे हमारे ऋषि-मुनियोंके लिये भी गम्भीर पहेली बनी हुई हैं। गोस्वामीजीने कहा है——

अति हरि कृपा जाहि पर कोई। पाउँ देइ एहि मारग सोई॥

सचमुच श्रीभाईजीपर भगवान्‌की अति कृपा थी, जो उन्होंने इस मार्गपर पाँव दिया। उनका कार्य-क्षेत्र गीताप्रेस बन गया और वे उसमें लग गये। हिंदू-धर्मकी पुस्तकें छपवाकर इतने सस्ते मूल्यपर उन्होंने लाखों-करोड़ों हिंदुओंके हाथोंमें पहुँचायीं। 'कल्याण'के माध्यमसे इतने सुलभ मूल्यपर हिंदू-धर्मका संदेश करोड़ों श्रद्धालुओंके पास पहुँचाया। गीताप्रेसकी सेवाओंके परिणामस्वरूप ही आज रामायण, गीता, भागवत, महाभारत और उपनिषद्-जैसे अमूल्य धार्मिक ग्रन्थ सुन्दर छपाईके साथ लाखों-करोड़ोंको इतने सस्ते मूल्यपर उपलब्ध हो सके हैं और लाखों नर-नारियोंने उनसे मानसिक सुख-शान्ति प्राप्त की है।

जब मैं अपने वकील-बैरिस्टर मित्रों और हाईकोर्टके जजोंको 'भाईजी' कहकर हनुमान-प्रसादजीकी सेवाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते सुनता हूँ, तब मुझे बड़ा हर्ष होता है। सचमुच वे सबके 'भाईजी' थे।

कलकत्ता छोड़नेके बाद उन्होंने अपने जीवनको समाजकी सेवाओंके निमित्त अर्पित कर दिया। विभिन्न रूपोंमें उन्होंने प्राणिमात्रकी सेवा की——उनके धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्तरको ऊँचा उठाया, लोगोंका मार्ग-दर्शन किया एवं लाखोंको प्रेरणा दी।

जिन्होंने अपना जीवन प्राणिमात्रकी सेवामें अर्पित कर दिया और जो देहाभिमानसे दूर हो गये हैं, वस्तुतः उनका जीना ही सच्चा जीना है। समाजसे उन्होंने जो लिया, वह उन्होंने समाजको कई गुना करके लौटा दिया। उन्होंने जीवनका सच्चा रहस्य जान लिया——अपनी साधनासे अन्तरात्मामें स्थित परमात्माको पहचाना और पहचानकर उसीमें लीन हो गये।

उनके निधनसे समाज एवं देशकी जो क्षति हुई है, वह सहजमें पूरी नहीं हो सकेगी; पर वे तो देहबन्धनसे मुक्त होकर परमात्मामें लीन हो गये। इस समय कविगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोरकी अमरवाणी मुझे स्मरण हो आयी है——

एने छिले साथे करे मृत्युहीन प्राण,
मरने ताहाइ तुमि करे गेले दान।

'तुम अमर प्राण साथ लेकर आये थे, मृत्युके समय यमदेवताको तुमने उसका भी दान कर दिया।'

●

महान् व्यक्तित्व

श्रीगजाधरजी सोमानी

भगवान्ने श्रीगीतामें कहा है—'जब-जब धर्मकी ग्लानि तथा अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब धर्मकी रक्षा एवं अधर्मका नाश करनेके लिये मैं स्वयं अवतार लेता हूँ।' साथ ही समय-समयपर भगवान्की कुछ विशिष्ट विभूतियाँ भी इस धरतीपर अवतीर्ण होती हैं, जो अपने त्याग एवं तपस्यासे मानव-समाजका कल्याण करती हैं। ऐसी एक विशिष्ट विभूति श्रद्धेय भाईजी थे, जो भगवान्की इच्छा एवं प्रेरणासे विशेष शक्तिको लेकर जन-सेवा एवं जन-कल्याणके लिये संसारमें अवतरित हुए थे। उनके दिव्य जीवनका मूल्याङ्कन शब्दोंके द्वारा होना सम्भव नहीं। उनकी प्रवृत्तियाँ इतनी व्यापक एवं सर्वतोमुखी थीं कि उनके व्यक्तित्व तथा क्रियाशील जीवनका यथोचित वर्णन, चाहे कितना ही लंबा ग्रन्थ क्यों न निकले, होना असम्भव है।

श्रद्धेय भाईजीसे मेरा व्यक्तिगत परिचय करीब ३५-४० वर्षोंसे रहा है। मैं जब छोटी उम्रका था और मैंने व्यापारिक जीवनमें प्रवेश किया ही था, तबसे कलकत्ता तथा अन्य स्थानोंपर उनके सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मुझे याद आता है कि आजसे करीब ३५ वर्ष पूर्व जब वे रतनगढ़से मेरे जन्मस्थान मौलासर ग्राम आये थे, तब हमने ग्रामके बाहरसे ही उनका स्वागत संकीर्तन-मण्डलके साथ जुलूसके रूपमें किया था। वे दो दिन हमारे यहाँ रहे तथा सत्सङ्ग एवं अध्यात्म-सम्बन्धी प्रवचन तथा चर्चाएँ हुईं। तबसे उनके महान् व्यक्तित्वसे मैं इतना आकर्षित रहा हूँ कि उनके द्वारा लिखित सामग्रीका, जो 'कल्याण' के द्वारा नियमितरूपसे प्रकाशित होती रही है, अध्ययन करनेके लिये सदा उत्सुक रहा हूँ। साथ-ही-साथ समय-समयपर मिलना एवं पत्र-व्यवहार भी चलता रहा एवं बीच-बीचमें व्यक्तिगत सम्पर्क भी होता रहा।

'कल्याण' मासिक पत्रद्वारा उन्होंने हमारी प्राचीन संस्कृतिकी जो सेवा की है, वह इतिहासमें सदा स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जायगी। आज सिनेमा तथा विलासपूर्ण सामग्रीका प्रचुर मात्रामें लोकप्रिय होना स्वाभाविक है; क्योंकि लोगोंकी मनोवृत्ति आध्यात्मिक भावनासे विमुख होकर नैतिक ह्रासकी ओर बढ़ती जा रही है। ऐसे बढ़ते हुए भौतिकतावादके वातावरणमें 'कल्याण'-जैसे विशुद्ध उत्कृष्ट धार्मिक पत्रके लगभग पौने दो लाख ग्राहकका होना एक ऐसी महान् उपलब्धि है, जो उनकी सतत साधनाका सुपरिणाम है। 'कल्याण'के साथ गीताप्रेससे जो आध्यात्मिक सामग्री प्रकाशित होती है, उस ज्ञान-गङ्गाके अजस्र प्रवाहसे बहुत बड़ी संख्यामें लोग उपकृत हुए हैं। 'कल्याण' और गीताप्रेसके समान कुछ और भी प्रतिष्ठान यदि इस दिशामें कार्य करने लगें तो वास्तवमें नैतिक अधःपतनकी ओर बढ़ती हुई प्रवृत्तिका प्रतिरोध हो सकता है।

समय-समयपर श्रद्धेय भाईजीसे मेरा पत्र-व्यवहार भी हुआ और एक पत्रमें देशकी शोचनीय परिस्थितिके बारेमें लिखते हुए उन्होंने जिक्र किया था कि 'जितना ही भौतिकतावाद बढ़ेगा, उतना ही मनुष्यका पतन होगा ।' उन्होंने आजकी परिस्थितिपर बहुत ही चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा था कि वर्तमान परिस्थितिसे वे घबरा गये हैं । मैंने उनके सामने एक प्रस्ताव रखा था कि अपने देशके साधु-संत, महात्मा तथा व्यापारी कुछ ठोस आयोजन करें, जिसके द्वारा विशाल पैमानेपर देशव्यापी आध्यात्मिक अभियान चलाया जा सके । उन्होंने मेरे विचार तथा आयोजनका स्वागत करते हुए अपने पूरे सहयोगका आश्वासन दिया था ।

अपने एक पत्रमें उन्होंने लिखा था कि परलोकगत आत्माओंसे मिलने और बातचीत करनेका सिद्धान्त सत्य है, लेकिन अधिकांश धोखेबाज तथा छलनेवाले लोग ही आजकल इस क्षेत्रमें कार्य कर रहे हैं । उन्होंने लिखा था कि बम्बईमें एक पारसी जातिकी परलोकगत आत्माने उन्हें अकस्मात् दर्शन देकर अपना श्राद्ध करनेके लिये कहा था, तदनुसार उन्होंने उसका श्राद्ध भी करवा दिया था । इस प्रकार परलोकगत आत्माओंके सम्बन्धमें उनका अनुशीलन एवं मनन इतना महत्त्वपूर्ण है कि जिससे हमारा विश्वास प्राचीन श्राद्ध-प्रणालीमें उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है ।

उन्होंने समय-समयपर दुःखी और त्रस्त जनताकी जो सेवाएँ की हैं, वे सर्वविदित हैं । आध्यात्मिक साहित्य-सेवाके साथ-साथ समय-समयपर हर सम्भव प्रकारसे विपत्तिग्रस्त जनताकी सेवाके लिये वे चिन्तित रहते थे । इस सम्बन्धमें उन्होंने 'आर्त्तनारायण-सेवा-संघ ट्रस्ट' कुछ समय पूर्व बनाया था, जिसका मुझे भी सदस्य बननेका आदेश दिया था ।

श्रद्धेय भाईजी गीताप्रेसके अतिरिक्त अन्य कितनी ही संस्थाओंको अपना सहयोग तथा मार्गदर्शन दिया करते थे । इस सम्बन्धमें भारतीय 'चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'की भी चर्चा आवश्यक है । उन्होंने इस ट्रस्टकी स्थापनामें अपना सहयोग दिया था, जिसके द्वारा आज देशके चारों धामोंमें वेद-भवनोंकी योजना कार्यान्वित हो रही है । 'वेद-भवन-न्यास'का सदस्य मैं भी हूँ और हर्षकी बात है कि इस न्यासके माध्यमसे हमारे मुख्य तीर्थ-स्थानोंमें प्राचीन वैदिक साहित्य-के अभ्युदय एवं प्रचारकी सुव्यवस्था हो रही है ।

उनके महान् व्यक्तित्वके कारण राजस्थानके कतिपय प्रमुख उद्योगपति तथा व्यापारी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा एवं आदर रखते थे, लेकिन उन्होंने कभी भी उन मित्रोंसे कुछ भी स्वार्थ-सिद्धि या अर्थकी अपेक्षा नहीं की । जब कभी भी ऐसे मित्रोंको किसी अभावग्रस्तकी सिफारिशके लिये लिखते, तब वे ऐसी विनम्र भाषामें संकोचपूर्ण ढंगसे लिखते थे कि उनकी ओरसे कोई दबाव या आग्रहकी भावना प्रकट न हो । इस प्रकार आजके स्वार्थ एवं संकीर्णता-के वातावरणसे अपनेको बिल्कुल अलग रखते हुए वे एक ऐसी आचारनिष्ठाका निर्वाह करते थे, जिससे किसी भी तरह उनको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे किसीपर अनुचित दबाव डालनेका अवसर प्राप्त न हो ।

उनकी लेखनीमें जो विनम्रता थी, वह वास्तवमें अनुकरणीय है। इतने विशिष्ट धार्मिक नेताके मुखसे या लेखनीसे इतनी विनम्रताका प्रकट होना वास्तवमें उनके महान् व्यक्तित्वका द्योतक है। वे वस्तुतः विश्वबन्धुत्वके महान् प्रतीक थे। जैसा 'भाईजी' उनका नाम था, उसी प्रकार वे प्राणिमात्रके बन्धु थे। उनके हृदयमें सदैव सबके प्रति प्रेम एवं सद्भावनाका सतत प्रवाह बहता रहता था। जिसने भी उनकी साहित्य-सामग्री पढ़ी है तथा जो भी उनके सम्पर्कमें आया, वह उनकी इस माधुर्य एवं विनम्रताकी भावनासे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

'सादा जीवन और उच्च विचार'के वे उज्ज्वल प्रतीक थे। उनकी वेष-भूषा कितनी सादी थी, यह तो वे लोग जानते ही हैं, जिन्होंने उनके दर्शन किये हैं। आजकी विलासिता-की सामग्रीसे सर्वथा दूर रहते हुए वे विशुद्ध धार्मिक वातावरणमें अपने महान् सेवा-व्रतका अनुष्ठान करते थे। इधर कुछ वर्षोंसे स्वास्थ्य अच्छा न रहनेपर भी वे कितना अधिक परिश्रम करते थे, इससे 'कल्याण'के पाठक भलीभाँति परिचित हैं। 'कल्याण' और गीताप्रेसके संचालनके अतिरिक्त उनपर कितनी ही संस्थाओंके मार्गदर्शनकी जिम्मेदारी थी तथा कितने ही जिज्ञासु उनको पत्र लिखते थे या उनसे मिलते थे। इन सब बातोंका ध्यान रखते हुए यह सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि उन्होंने जीवनके प्रत्येक क्षणका किस प्रकार अपनी दिव्य साधनामें उपयोग किया है। उनसे किसीको भी निराशा नहीं हुई। उनसे मिलकर या उनके साथ पत्र-व्यवहार करके वास्तवमें असंख्य लोगोंको एक दिव्य सुख एवं शान्तिकी अनुभूति हुई। ऐसे महापुरुषके उठ जानेसे वास्तवमें ऐसी विशिष्ट विभूतिका तिरोधान हो गया है, जिसकी विविध प्रवृत्तियोंसे अहर्निश लोगोंको प्रेरणा मिलती रहती थी।

भाईजी सदा ही किसी भी विवादग्रस्त अथवा कटुतापूर्ण विषयसे अपनेको दूर रखते थे। व्यापक सनातनधर्मके कई अङ्ग तथा विभिन्न सम्प्रदाय हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी रुचिके अनुसार एक ही परम लक्ष्यकी प्राप्तिके अनेकों मार्ग सनातनधर्मकी विभिन्न शाखाओंद्वारा उपलब्ध हैं। खेदका विषय है कि इन विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायोंमें बहुधा कटुतापूर्ण विवाद या संघर्ष उत्पन्न हो जाता है; लेकिन भाईजीने सभी सम्प्रदायों एवं मतोंके प्रति समान आदर रखते हुए किसी भी विवादग्रस्त सामग्रीको कभी स्थान नहीं दिया। उनके महान् व्यक्तित्वका यह भी एक उज्ज्वल पहलू है।

उनके सम्बन्धमें जितना भी लिखा जाय, थोड़ा है। ऐसे महान् व्यक्तिके कर्मभूमिसे उठ जानेसे जो क्षति हुई है, इसकी पूर्ति सम्भव नहीं है। फिर भी उनके द्वारा लगाया गया जो विशाल वृक्ष पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है, उसे सतत सिञ्चित एवं पोषित करना पीछेवालोंका कर्त्तव्य है। भारतीय संस्कृतिका आध्यात्मिक संदेश जिस प्रकार वे निरन्तर लोगोंको देते रहे, उसकी धारा अवरुद्ध न हो एवं हमलोग उस परम्पराको यथासम्भव चलाने-का प्रयत्न करते रहें—यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

•

सरल, स्वच्छ एवं स्पष्ट जीवनके धनी

श्रीकमलनयनजी बजाज

मेरे स्वर्गीय पूज्य काकाजी श्रीजमनालालजी बजाजका श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे करीब ५० साल पहले काफी सम्बन्ध रहा था। बहुत-से धार्मिक और सामाजिक कार्योंमें परस्पर सहयोग और विचार-विनिमय भी होता रहता था। उस समय मैं बालक ही था। भाईजीको कई बार देखनेके प्रसङ्ग तो आये, लेकिन तबतक उनके बारेमें—वे परिवारके एक हितैषी, काकाजीके मित्र और देश या समाजके कार्यकर्ता हैं—इसके अलावा विशेष जानकारीका ख्याल मुझे नहीं आता। काकाजी और भाईजी दोनोंका ही पिण्ड आध्यात्मिक और धार्मिक रहा है। काकाजी समाज-सुधारक और देश-सेवक हुए, भाईजीने धर्म-प्रचार और अध्यात्मका विस्तार करनेमें अपना जीवन खपाया। काकाजी सुधारक और भाईजी सनातनी विचारोंके होनेकी वजहसे दोनोंकी वृत्तियोंमें खास फर्क न होते हुए भी प्रवृत्तियोंमें काफी अन्तर हो गया। यहाँतक कि उनके विचार और कार्य एक-दूसरेसे भिन्न हो गये, जिससे उनका सम्पर्क कम-सा हो गया। फिर भी दोनोंमें एक दूसरेके प्रति आदर और स्नेहमें कभी कमी होनेका आभासतक न हुआ। बल्कि जब-जब प्रसङ्ग आये, दोनोंके एक-दूसरेके प्रति भाव और उद्‌गारोंको देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता था। "कल्याण' पत्रिका तथा गीताप्रेससे प्रकाशित ग्रन्थोंद्वारा धार्मिक भावनाओंके प्रचारका बहुत बड़ा काम हो रहा है"—ऐसा काकाजीको लोगोंसे कहते हुए कई बार मैंने सुना है।

ऐसे प्रसङ्ग मुझे याद हैं जब कि गांधीजीके रचनात्मक कामोंमें लगे हुए परिवारोंको गीताप्रेसके धार्मिक ग्रन्थ और 'कल्याण' मासिकको मँगवानेके लिये काकाजी कहा करते थे। एकाध बार किसी कार्यकर्त्ताने पूछा कि—'गीताप्रेससे प्रचारित धार्मिक तथा सामाजिक विचारोंकी बाबत कई बातोंमें इतना मतभेद है, फिर भी काकाजी उनको क्यों सलाह देते हैं कि ऐसे विचारवालोंके प्रकाशित ग्रन्थोंको परिवारमें दाखिल किया जाय और उस तरहके संस्कार बढ़नेका मौका दिया जाय?' काकाजीने उनसे कहा—'माना, उनके बहुत-से विचारोंसे हम सहमत नहीं हैं, फिर भी उनके विचार ईमानदारीके हैं और अध्ययन करनेके योग्य हैं। हमारे बच्चोंको भी उन विचारोंको जानना चाहिये और उनमेंसे जो कुछ अच्छा है, उसे ग्रहण करना चाहिये और ऐसी ग्रहण करने और अनुकरण करनेयोग्य सामग्री काफी मिलेगी। कुछ बातें जरूर ऐसी हैं कि जहाँपर हमारा उनसे विरोध है; जैसे—अछूतोंका प्रश्न, विधवा-विवाह आदि। परंतु वहाँ भी सनातनियोंके शुद्ध विचारोंको जानने-समझनेकी आवश्यकता है। हमारे विचारोंमें ही हमारे बच्चे पलें और अन्ध-विश्वासी बनें, उसकी बनिस्बत यदि अपना स्वतन्त्र निर्णय करनेके बाद वे सच्चे सनातनी भी बनते हैं तो वह मुझको अधिक कबूल होगा।' वर्षोंतक 'कल्याण' और गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित ग्रन्थ, खासकर गीताके सभी तरहके छोटे-बड़े संस्करण हमारे

परिवारमें आते रहे । कई प्रकाशित ग्रन्थ तो आज भी हमारे घरमें पाये जायँगे । सत्याग्रहके आन्दोलनके समय परिवारके सभी लोग अस्त-व्यस्त हो जाते थे, कार्यवश अलग-अलग चले जाते थे, वर्षों जेलोंमें पड़े रहते थे; और ऐसे भी मौके आये, जब हमारे घरसे पुस्तकें आदि बहुत चीजें जब्त हो गयी थीं । इस कारण पुस्तकोंका पुराना संग्रह हमारे यहाँ उपलब्ध नहीं है । काकाजीके स्वर्गवासके बाद 'कल्याण'का आना कैसे और कब बंद हुआ, इसका मुझे ख्याल नहीं ।

आजादीके बाद राजनीतिक, सामाजिक तथा व्यापारिक—सभी तरहके सार्वजनिक कामोंको लेकर मेरा दिल्ली काफी आना-जाना रहा । सन् १९५७ में मैं संसद्-सदस्य हो गया । श्रीहनुमानप्रसादजी भी समय-समयपर दिल्ली आते-जाते रहते थे । अतएव उनसे अनेक बार मिलने, बातचीत करने और कुछ विषयोंको लेकर चर्चा करनेका भी सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ । पूज्य काकाजीके विषयमें जब श्रीभाईजी कुछ कहते या कोई संस्मरण सुनाते, तब वे भाव-विभोर हो जाते थे । इससे उनके सरल एवं स्वच्छ हृदयका परिचय मिलता है ।

'सस्ता-साहित्य-मण्डल'की संस्थापनामें काकाजीका मुख्य हाथ था । वे उसके संस्थापकोंमेंसे थे । उनके प्रकाशन काकाजीकी इच्छाके अनुरूप सस्ते नहीं हो पाते थे और न उनका प्रचार-प्रसार ही । यह देखकर काकाजी 'कल्याण' और गीताप्रेसके प्रकाशनोंका उदाहरण दिया करते थे ।

दो-तीन वर्ष हुए होंगे, सर्वोदयके प्रकाशन—खासकर पू० विनोबाके 'गीता-प्रवचन' तथा कुछ अन्य प्रकाशनोंको लेकर श्रीभाईजीसे मैं चर्चा कर रहा था । प्रकाशनके आदर्शोंको लेकर श्रीभाईजीने बाइबलको प्रकाशित करनेवाली संस्थाका नाम लेकर कहा कि 'दुनियाकी सैकड़ों भाषाओंमें बाइबल अनूदित हो गयी और हर साल अनेकों नयी भाषाओंमें अनूदित होती जा रही है। अनेक संस्करण होते हुए भी वे लाखों प्रतियोंके संस्करण निकालते हैं । उनके भाषान्तर उत्तम होते हैं । छपाईमें एक भी गलती नहीं मिलेगी और उनसे अधिक सस्ता प्रकाशन दुनियामें दूसरा नहीं है ।' इसी तरह उन्होंने कहा कि 'आक्सफोर्ड डिक्शनरीवालोंको भाषा, व्याकरण, अर्थ, उच्चारण आदि बहुत-सी दृष्टियोंसे सम्पादन, संकलन और छपाई करनी पड़ती है । लेकिन उसमें एक भी गलती नहीं मिलेगी । यह कार्य लगन, निष्ठा, परिश्रम और एकाग्रताके बिना नहीं हो सकता ।' इसी तरहका कार्य भारतमें कोई कुछ कर पा रहा है तो उसमें गीताप्रेसका दृष्टान्त दिया जा सकता है कि उसके द्वारा प्रकाशित पुस्तकें कितनी सस्ती हैं। कम-से-कम कीमत रखनेका जो आदर्श गीताप्रेसने रखा है, वह अनुकरणीय है। कुछ पुस्तकोंकी कीमत २३ पैसे, २७ पैसे मात्र है । २३ का २५ पैसा किया जा सकता था तथा २७ का ३० पैसा, और उसमें कोई भी शिकायत नहीं कर सकता था । परंतु कम-से-कम कीमत रखनेकी अपनी नीतिके अनुसार गीताप्रेसने आड़े अङ्क भी मंजूर किये । सस्ते प्रकाशनके लिये यह आदर्श सामने रखना जरूरी है ।

गीताप्रेसके प्रकाशन जिस कोटिके हैं और जिस तरीकेसे उनका प्रचार हुआ है, वह कठोर साधना, लगन, अध्यवसाय और तपके बिना सम्भव नहीं—यह स्पष्ट है । कुछ-कुछ

विषयोंमें हमारा मतभेद कितना ही क्यों न हो, भारतीय संस्कृति, धर्म, विचार एवं आदर्शोंको जिस श्रद्धासे उन्होंने रखनेका प्रयास किया है, उसके लिये स्वाभाविक ही हमें नतमस्तक होना पड़ता है और उनके प्रति आदर और प्रेम उमड़ता है।

श्रीभाईजीका जीवन सरल, स्वच्छ और स्पष्ट था। आडम्बर, बनावट, दिखावट, सूक्ष्मतम भी छल-कपट और असत्याचरण उन्हें छूतक न गया था। उनका शिष्य-समूह और भक्त-परिवार काफी बड़ा, विस्तृत और जगह-जगह बिखरा हुआ है। जिस भावना, भक्ति और श्रद्धासे बाल-बच्चे, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े––सभी उनके पास आते थे और जिस शान्ति और संतोषको लेकर कइयोंको मैंने जाते देखा है, उससे यह समझना मुश्किल नहीं था कि भाईजीके व्यक्तित्व और विचारोंका कितना मार्मिक असर लोगोंपर होता था।

एक बार श्रीभाईजीसे बापूके सम्बन्धमें चर्चा होने लगी। चर्चामें उन्होंने बापूजीके बारेमें जो भाव रखे, वे स्पष्ट एवं निर्मल थे। बापूसे कुछ विचारोंमें उनका मतभेद था, यह बात भी उन्होंने सरल स्वाभाविक तरीकेसे मेरे सम्मुख रखी। सारी चर्चा सहज तरीकेसे हुई। उसमें कहीं लगाव-छिपावकी गन्धतक न थी। उसी चर्चाके दौरान बापूजीके प्रति उनके भावोंको देखकर मैंने उन्हें सुझाव दिया––'सेवाग्रामके ऊपर 'कल्याण'का एक विशेषाङ्क आप क्यों नहीं निकालते ?' उनको सुझाव बहुत अच्छा लगा। उन्होंने कहा––'तुम्हारा तो सहयोग इस कार्यमें रहेगा ही और आश्रमके लोगोंका सहयोग तुम हमें प्राप्त करा दोगे तो यह एक बहुत ही बड़ा कार्य हो जायगा।' शायद एकाध विशेषाङ्ककी योजना पहलेसे ही उनके सामने थी। उसके बाद इसको किस तरहसे किया जा सकता है, इसका विचार वे करेंगे––ऐसा उन्होंने मुझको कहा।

इस चर्चाके बाद कई बार उनसे मिलना हुआ, पर इस विषयको लेकर कोई चर्चा उन्होंने छेड़ी नहीं। मैंने भी यह मानकर कुछ पूछा नहीं कि या तो वे भूल गये होंगे अथवा उनके सामने कोई अड़चन आ गयी होगी। इसलिये मैं उनको किसी प्रकार संकोचमें डालना नहीं चाहता था। काफी अर्सेके बाद एक रोज बुलाकर उन्होंने ही मुझसे कहा––'भैया, सेवाग्रामका विशेषाङ्क निकालनेका काम पार पड़ता दिखता नहीं।' ये उद्‌गार उनके मुखसे कुछ वेदनासे निकले तथा इनमें उनका कुछ असंतोष भी व्यक्त था। मैंने कहा––'ऐसी क्या बात है, उसको भूल जाइये।' उनका दुःखके साथ यह जवाब मेरे हृदयको चीरकर निकल गया––'हम छोटे लोग हैं।' उनकी महानताका इसमें मुझे दर्शन हुआ और उनकी कुछ लाचारी है, यह भी जाहिर था। काफी देरतक हम दोनोंके मुखसे शब्द नहीं निकला, दोनों ही शान्त रहे।

भाईजीके प्रति श्रद्धाञ्जलि यही हो सकती है कि जो अच्छा कार्य उन्होंने जीवनभर किया, उसे उसी तरहसे प्रचार और विस्तारद्वारा आगे बढ़ाया जाय तथा हमारे व्यक्तिगत स्वार्थ, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेषकी वजहसे इस पुनीत कार्यमें कोई दखल नहीं होने पाये।

•

देखा एक बार, परखा बार-बार

श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी

भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारका परलोकगमन केवल धार्मिक ही नहीं, एक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दुर्घटना भी है । यद्यपि मुझे उनके दर्शनका सौभाग्य केवल एक बार ही प्राप्त हुआ, तथापि उनसे पत्र-व्यवहार बहुत वर्षोंसे चलता रहा और कई बार उन्होंने मुझपर कृपा भी की ।

गोरखपुरके हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर साहित्य-सेवियोंका एक दल उनका अतिथि हुआ था, जिसमें आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा, श्रद्धेय जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीगाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री तथा श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे मुख्य थे । मैं भी उन्हीं लोगोंके साथ था । उस समयकी कई मधुर स्मृतियाँ अब भी मेरे दिमागमें चक्कर काट रही हैं ।

एक घटना खास तौरपर याद आ रही है । हमारे शौच आदिसे निवृत्त होनेपर जो सज्जन हमारे हाथ धुलाते थे, वे अधेड़ उम्रके और स्वच्छ कपड़े पहने थे । हम लोगोंने सोचा, वे पोद्दारजीके कोई नौकर होंगे, फिर भी मनमें आशङ्का अवश्य थी । पं० पद्मसिंहजीने उनके विषयमें पोद्दारजीसे पूछा तो उन्होंने कहा--

'जो सज्जन आपके हाथ धुलाते हैं, वे तो भागलपुरके एक लखपती सेठ हैं । उन्होंने सम्मेलनको आर्थिक सहायता तो दी ही, पर उनका आग्रह था कि वे साहित्यिक अतिथियोंकी कुछ शारीरिक सेवा भी करें । अतः मैंने उन्हें भागलपुरसे बुलाकर यह काम सौंप दिया है और इससे वे अत्यन्त प्रसन्न हैं ।'

यह जानकर हम सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही खेद भी कि ऐसे प्रतिष्ठित सज्जनसे हम यह काम लेते रहे । स्वर्गीय पं० पद्मसिंह इस घटनाको नहीं भूले और उन्होंने एक पत्रमें मुझे लिखा था--'यदि हिंदी-जगत्‌में कोई सांस्कृतिक विद्यालय खोला जाय तो उसका आचार्य भागलपुरके सेठजीको बनाना चाहिये ।'

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि श्रीपोद्दारजीकी सूझ-बूझका यह उत्कृष्ट उदाहरण था ।

हमलोग जो पोद्दारजीके अतिथि थे, स्वभावतः विभिन्न विचारोंके थे । आपसमें किसी विषयपर काफी गरमागरम बहस हो गयी, पर पोद्दारजी सर्वथा मौन ही रहे । जब उनसे उस विषयपर बोलनेके लिये कहा गया, तब भी उन्होंने केवल इतना ही निवेदन किया--'मैंने यह नियम बना लिया है कि वाद-विवादमें कदापि नहीं पड़ूँगा ।'

यदि पोद्दारजी वाद-विवादमें पड़ते तो जो महान् सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कार्य उन्होंने किये, वे उनसे कभी न बन पाते ।
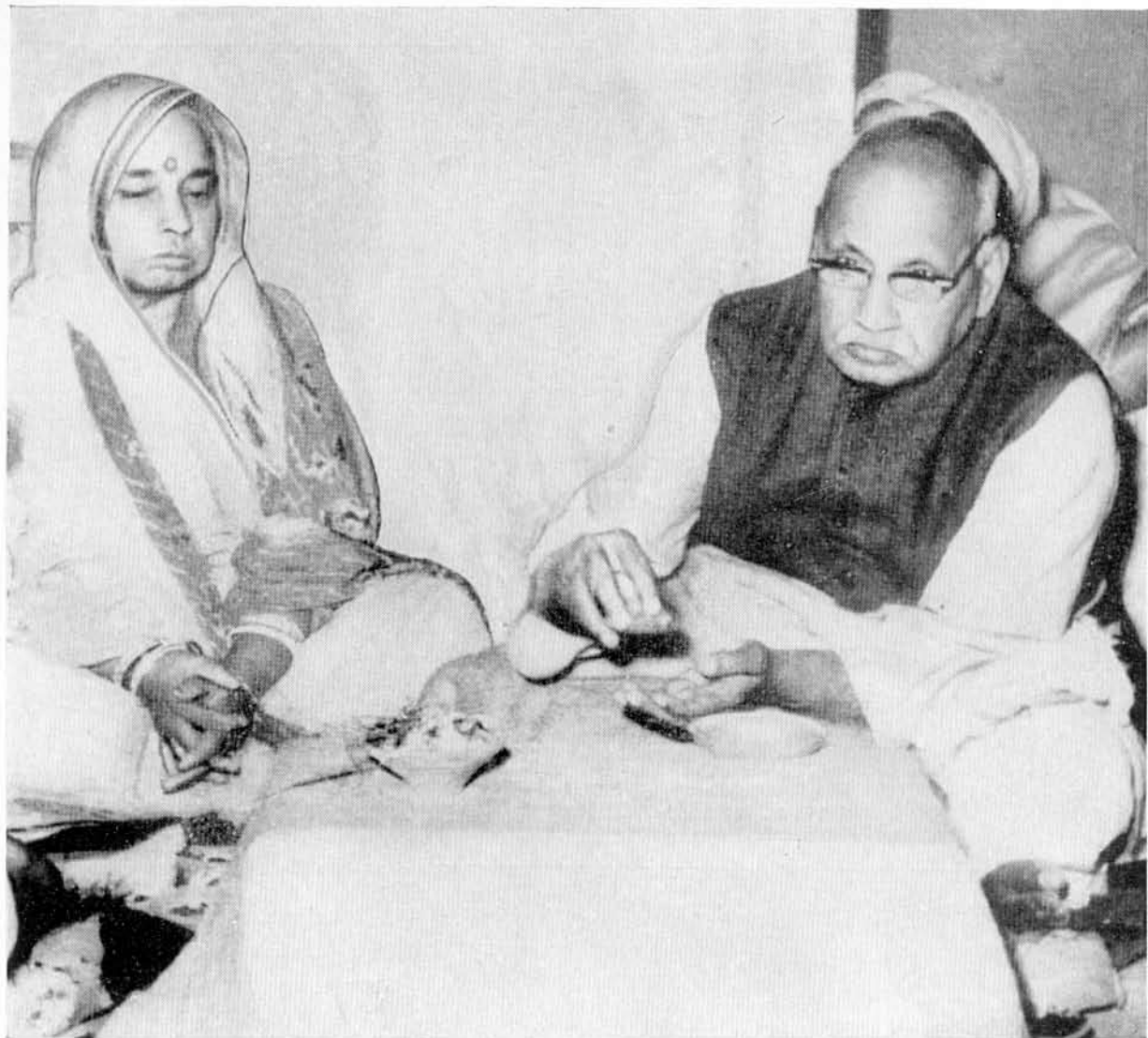
'भागवत-भवन' मथुराका शिलान्यास—भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थलीके समक्ष पूजन

श्रीकृष्ण जन्मभूमिके मन्दिरका उद्घाटन—पूजन

श्रीराधामाधव सेवा-
संस्थानके तत्त्वावधान में
सं० २०२५ से
गीतावाटिकामें चल रहे
अखंड-हरिनाम-
संकीर्तनकी स्थापना
करते हुए

पोद्दारजीकी दानशीलताके तीन उदाहरण मुझे इस समय याद आ रहे हैं। संस्कृतके एक पण्डितजी मेरे पास आये और उन्होंने अपनी आर्थिक कठिनाईकी बात मुझसे कही। मैं उन दिनों 'विशाल भारत'का सम्पादन करता था। मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की, तो उन्होंने कहा—'किसी साधन-सम्पन्न व्यक्तिको पत्र ही लिख दीजिये।' मुझे उस समय भाई पोद्दारजीका शुभ नाम याद आ गया और इस आशासे कि वे दस-बीस रुपये उन पण्डितजीको भेज देंगे, उन्हें पत्र लिख दिया। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उन पण्डितजीने यह समाचार मुझे सुनाया कि पोद्दारजीने पचहत्तर रुपये भेज दिये हैं। पोद्दारजीका बड़ा विनम्रतापूर्ण पत्र भी मुझे मिला, जिसका आशय यह था—'संस्कृतके पण्डित प्रायः निर्धन होते हैं, उनका काम दस-बीस रुपयेसे नहीं चल सकता।'

हमारे एक पत्रकार-बन्धुके अनुज क्षयरोगसे पीड़ित हो गये। मैंने फिर पोद्दारजीसे सहायता माँगी। उन्होंने फिर पचहत्तर रुपये उन्हें भेज दिये, जब कि दूसरोंने दस-दस, पाँच-पाँच ही भेजे थे।

दिल्लीमें जब मैंने 'हिंदी-भवन' खोला, तब पुनः पोद्दारजीकी सेवामें निवेदन किया। उन्होंने तुरंत डेढ़ सौ रुपये भेज दिये। साथमें उन्होंने एक पत्र भी लिखा, जिसका आशय यह था—'मैं स्वयं पैसेवाला आदमी नहीं हूँ। ऐसे अवसरोंपर अपने उदार मित्रोंके कुछ रुपये उपयोगमें ले लिया करता हूँ।'

× × ×

एक बार शायद गीताप्रेसके कम्पोजीटरोंमें कुछ असंतोष फैल गया था और उसकी खबर गोरखपुरसे किसीने मुझे भेज दी थी। मुझे याद पड़ता है कि मैंने 'विशाल भारत'में प्रेसके मालिकोंके विरुद्ध एक व्यङ्ग्यात्मक नोट लिख दिया था, पर श्रीपोद्दारजीने उसके लिये बिल्कुल बुरा नहीं माना। यह उनकी उदारता थी।

एक बार सेवाग्राममें मैंने बाबा राघवदासजीके सामने एक धृष्टतापूर्ण मजाक कर दिया। किसी विषयपर वाद-विवाद चल रहा था, शायद सत्साहित्यके प्रचार और अश्लील साहित्यकी रोक-थामपर।

बाबा राघवदासजीने मुझसे पूछा—'यदि आपके हाथमें सत्ता हो तो आप क्या करेंगे?'

मैंने उत्तर दिया—'पहला काम तो मैं यह करूँगा कि गीताप्रेसको जप्त कर लूँगा और उसके द्वारा अपने सत्साहित्य-सम्बन्धी विचारोंका प्रचार करूँगा।'

बाबाजीने हँसकर कहा—'गीताप्रेस तो प्रारम्भसे ही 'सत्साहित्य'का प्रचार कर रहा है। आप जानते ही होंगे कि मेरा पोद्दारजीसे घनिष्ठ सम्बन्ध है।'

मैंने कहा—'यह तो मैं भलीभाँति जानता हूँ, पर ऐसा बढ़िया संगठित प्रेस हमें कहाँ मिल सकता है।'

बाबाजी खूब हँसने लगे और बोले—'आपकी क्रान्तिकारी आयोजनाकी बात मैं पोद्दारजीको सुनाऊँगा ।'

मालूम नहीं कि उन्होंने मेरा वह मजाक उनतक पहुँचाया या नहीं, पर मैं श्रद्धेय पोद्दारजीके उत्तरकी कल्पना कर सकता हूँ । वे यही कहते—'चीज तो दूसरोंकी जप्त की जाती है । अपनी चीजको जप्त करनेका कुछ अर्थ ही नहीं । 'सत्साहित्य'के प्रचारके लिये 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके सब साधन सहर्ष प्रस्तुत हैं । कोई भी भलामानस उसका उपयोग कर सकता है ।'

मेरा वह मजाक निस्संदेह धृष्टतापूर्ण था, पर पोद्दारजीकी उदारतापर मुझे विश्वास था ।

× × ×

एक बार मेरे एक मित्रने, जो अस्वस्थ थे, कहा कि मैं पोद्दारजीको यदि पत्र लिख दूँ तो वे हरिद्वारमें उनके ठहरनेका प्रबन्ध कर सकते हैं । मैंने पत्र भेज दिया और पोद्दारजीने सहर्ष वह प्रबन्ध कर दिया ।

स्वयं मेरी भी यह अभिलाषा थी कि कभी गर्मियोंमें ऋषिकेशमें उनके सत्सङ्गका लाभ प्राप्त करूँ; पर यह सौभाग्य मुझे नहीं मिल सका । मैं उसे टालता ही रहा । गत वर्ष (सं० २०२७) 'जन्माष्टमी'पर मैं मथुरा इसी उद्देश्यसे गया था कि वहाँ भाई पोद्दारजीके दर्शन अवश्य होंगे; पर अस्वस्थताके कारण वे नहीं पहुँच सके । इस प्रकार गोरखपुरके प्रथम दर्शन ही अन्तिम दर्शन सिद्ध हुए ।

जो महत्त्वपूर्ण कार्य अकेले भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारने कर दिखाया, वह बड़ी-बड़ी संस्थाओंसे भी नहीं बन पड़ा । वस्तुतः वे स्वयं एक महान् संस्था थे । धार्मिक जगत् तथा हिंदी-साहित्यके लिये उनकी देन अद्वितीय है ।

•

जीवनमें मेरे शक्ति तुम्हारी आई ।
जीवनमें मेरे शान्ति तुम्हारी छाई ।।
मिल गया मुझे जीवनमें तेज तुम्हारा ।
मेरे मस्तकपर हस्त-सरोज तुम्हारा ।।
है दिव्य प्रेमको मैंने तुमसे पाया ।
है हृदय तुम्हारा रूप अनूप समाया ।
तुम बसे हृदय निज गृहमें प्राण-पियारे ।
आनन्द-सूर्यमें मिटे द्वन्द्व-तम सारे ।।

—श्रीभाईजी

•

महान् आत्मा

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नताका अनुभव करता हूँ कि संतप्रवर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी, जो उनके प्रेमियोंमें 'श्रीभाईजी'के नामसे प्रख्यात हैं, पावन स्मृतिमें एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित होनेका आयोजन हो रहा है । यद्यपि मैं उनके व्यक्तिगत सम्पर्कमें बहुत कम आ सका हूँ, पर उनकी उज्ज्वल कीर्तिकौमुदीसे कौन भारतीय संस्कृतिका प्रेमी एवं अध्येता परिचित नहीं है ? मैं भी उनके अनन्य प्रशंसकोंमें अपनेको मानता हूँ । भारतीय संस्कृतिके पुनरुत्थानमें श्रीपोद्दारजीका बहुत बड़ा हाथ रहा है । 'कल्याण'के सम्पादनद्वारा उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा तत्सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थों, पुराणों आदिमें जो कुछ सनातन मूल्यवान्, श्रेष्ठ तथा वरेण्य था––उसका सहस्रों नर-नारियोंमें प्रचार-प्रसार कर उन्हें नवीन आस्था, स्फूर्ति तथा भारतीय जीवन-आदर्शोंके प्रति श्रद्धा एवं दृढ़ निष्ठा प्रदान की । उन्होंने इस युगमें भारतीय चेतनाके असीम अकूत समुद्रका पुनः मन्थन कर, उससे अनश्वर कान्तिके मणिरत्न निकालकर लोगोंके हाथमें जिस संजीवनी सुधाका अक्षय पात्र रखा, वह उन्हीं-जैसे महान् आत्माके अजेय पौरुषसे सम्भव था । गीताप्रेसके समस्त प्रकाशन जिस दिव्य आलोकसे सदैव मण्डित रहे हैं, वह श्रीपोद्दारजीकी ही सूझ-बूझ तथा अथक परीक्षण-निरीक्षणका परिणाम है ।

श्रीराधा-माधवपर उनकी अनन्य श्रद्धा-भक्ति थी, वे आज उन्हींके आनन्दलोकमें निवास करते होंगे । उनकी पवित्र स्मृतिमें मैं सादर प्रणत होकर उन्हें बार-बार प्रणाम करता हूँ ।

●

जो चाहो तुम, जैसे चाहो, करो वही तुम, उसी प्रकार ।
बरतो नित निर्बाध सदा तुम मुझको अपने मन-अनुसार ।।
मुझे नहीं हो कभी, किसी भी, तनिक दुःख-सुखका कुछ भान ।
सदा परम सुख मिले तुम्हारे मनकी सारी होती जान ।।
भला-बुरा सब भला सदा ही; जो तुम सोचो, करो विधान ।
वही उच्चतम, मधुर-मनोहर, हितकर परम तुम्हारा दान ।।
कभी न मनमें उठे, किसी भी भाँति, कहीं कैसी भी चाह ।
उठे कदाचित् तो प्रभु उसे न करना पूरी, कर परवाह ।।
प्यारे ! यही प्रार्थना मेरी, यही नित्य चरणोंमें माँग––
मिटे सभी 'मैं-मेरा', बढ़ता रहे सतत अनन्य अनुराग ।।

––श्रीभाईजी

●

हिंदू धर्मके रक्षक

श्रीरायकृष्णदासजी

परमधाम-विहारी श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी पोद्दार एक महान् संस्था थे । उन्होंने स्वस्थ हिंदू-धर्मकी रक्षा और समुन्नतिके लिये जो कुछ किया, वह अतुल्य है ।

मुझे इस बातका अत्यन्त खेद है कि मैं उनके सम्पर्कमें एकाध बार ही आया, यद्यपि पत्राचार होता रहता था ।

बहुत वर्ष पहले काशीमें उन्होंने मुझे दर्शन दिये थे । संयोगवश उस समय गुप्त-सम्राटोंकी कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ बिक्रीके लिये आयी थीं, जिन्हें मैं 'कला-भवन'के लिये खरीदना चाहता था । किंतु रुपये नहीं थे । मैंने भाईजीसे कहा—'गुप्तयुग' भारतका स्वर्ण-युग है । इन सिक्कोंको विदेश न जाने देना चाहिये ।' उन्होंने अविलम्ब रुपयोंका प्रबन्ध कर दिया, यद्यपि यह उनके कार्यक्षेत्रके बाहरकी बात थी ।

उन्होंने कृपापूर्वक मेरे लिये गीताके शांकरभाष्यका हिंदी अनुवाद भेजा । उसे पढ़नेपर मुझे ऐसा लगा कि भगवान् शंकर ज्ञानमार्गी न थे, अपितु अद्वैतवादी भक्त थे । मैंने यह बात उन्हें लिख भेजी । उत्तरमें उन्होंने मेरा पूर्ण समर्थन किया ।

एक बार मैंने उनको लिखा कि आपके पास विश्ववन्द्य बापूके जो पत्र हैं, उन्हें आप 'कला-भवन'को प्रदान कर दीजिये । उन्होंने मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करते हुए लिखा कि 'अभी उन पत्रोंके सम्बन्धमें कुछ लिखना है, उसके बाद 'कलाभवन'के लिये भेज दूँगा ।' खेद है कि फिर मैंने उन्हें उसका स्मरण नहीं दिलाया ।

आज वे हमारे बीच नहीं हैं, किंतु उनका 'मिशन' हमारे सामने है । उसे उत्तरोत्तर आगे बढ़ाते रहना प्रत्येक सनातनधर्मीका कर्तव्य है ।

●

भर गया मेरे हृदयमें नित्य दिव्य प्रकाश तेरा ।
मिट गया अगणित युगोंसे छा रहा था जो अँधेरा ।।
ज्योति तेरीसे समुज्ज्वल अब क्रिया सम्पूर्ण मेरी ।
कामना-आसक्ति भोगोंकी कहीं मिलती न हेरी ।।
हो रही तव अर्चना हर कर्मसे प्रत्येक पल है ।
है चढ़ा शिव-चरण यह जीवन बना शुचि बिल्वदल है ।।

—श्रीभाईजी

●

प्रकाश-स्तम्भ

डा० श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी

संसारमें बहुत थोड़े लोग ऐसे होते हैं, जिनका जीवन किसी महान् उद्देश्यके लिये समर्पित होता है । उनका जीवन औरोंके लिये प्रकाश-स्तम्भ होता है। श्रीपोद्दारजी, जिन्हें लोग प्यार और श्रद्धासे 'भाईजी' कहते थे, ऐसे ही दुर्लभ नर-रत्न थे। उनका जीवन भगवदर्पित जीवन था । उनके कोमल हृदयके भीतर दृढ़ संकल्प-शक्ति थी, जो केवल उन्हीं लोगोंको नसीब होती है, जो सम्पूर्ण रूपसे अपने-आपको महा-अज्ञातके चरणोंमें अर्पित कर देते हैं । जो जितना देता है, उतना पाता है । जो अपने आपको ही दे देता है, वह अपने आपको ही पा जाता है । अपने आपको पानेका अर्थ है—सब कुछ पा जाता है । वह छोटे-मोटे लाभ-हानिका हिसाब नहीं रखता, जय-पराजयकी सीमाओंसे अभिभूत नहीं होता, वह 'आत्मन्येवात्मना तुष्ट:' हो जाता है । श्रीपोद्दारजीने अपने आपको ही भगवच्चरणोंमें अर्पित कर दिया था । यही उनकी सारी सफलताओंका रहस्य है । कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपनी एक कवितामें कहा है—'तुम जिस समय पूर्ण हो जाते हो, उस समय तुम्हारा अपना कहा जाने योग्य कुछ भी नहीं रह जाता, सब कुछ निखिल विश्वका हो जाता है ।'

पोद्दारजीने अकेले चुपचाप जितना किया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है । वे सच्चे वैष्णवजन थे । किसीसे कोई विवाद नहीं, किसीके प्रति कोई शिकायत नहीं, कोई आभमान नहीं, को आक्रोश नहीं—'अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः' के जीवन्त मूर्तरूप । उन्होंने सर्वोत्तम साहित्यको सरल-ललित भाषामें—और वह भी यथासम्भव अवितथ और शुद्ध रूपमें लिखकर, लिखाकर प्रकाशित कराया । हिंदी भाषा इन ग्रन्थ-रत्नोंसे बहुत समृद्ध हुई और उसके पाठकोंका मन पवित्र हुआ है, विचार उद्‌बुद्ध हुआ है और ज्ञान-परिसर विस्तीर्ण हुआ है । पोद्दारजीका अद्भुत दान प्रच्छन्नरूपसे जन-मानसको निर्मल और सात्त्विक बनाता रहा है और भविष्यमें भी बनाता रहेगा । यह दान प्रकाशका दान है, ज्ञानका दान है । यह वह दान है, जो ग्रहीतामें दातृत्व-शक्तिको जगाता है ।

पोद्दारजी अब मर्त्यकायामें नहीं हैं । परंतु उन्होंने उत्तम साहित्य और उत्तम विचारोंके प्रेमीमात्रके हृदयमें सदा-सर्वदाके लिये अपने आपको प्रतिष्ठित कर दिया है। वे सही अर्थोंमें अमर हो गये हैं ।

ऐसे महान् भक्त और अद्‌भुत साधकके पुण्यस्मरणसे मनमें पवित्रता आती है और हृदयमें गौरवका अनुभव होता है । महा-प्रेमिकतक पहुँचना तो कठिन जान पड़ता है, पर पोद्दारजी-जैसे अनन्य भक्तके माध्यमसे वह सुलभ हो जाता है ।

●

परमभागवत श्रीपोद्दारजी

पं० श्रीश्रीनारायणजी चतुर्वेदी

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार इस युगकी एक महान् और आश्चर्यजनक विभूति थे। गांधीजी-ने नरसी मेहताके भजन 'वैष्णवजन तो तेने कहिये, जो पीड़ पराई जाणे रे' को देशमें बड़ा लोकप्रिय बना दिया था। उस भजनमें की गयी 'वैष्णव'की परिभाषा भाईजीपर पूरी बैठती है। उसकी प्रत्येक पङ्क्तिके वे जीवित उदाहरण थे। इसीलिये हम उन्हें 'परमभागवत'-के रूपमें अनुभव करते हैं।

पोद्दारजी उस रत्नके समान थे, जिसमें तराशकर अनेक पहलू बना दिये जाते हैं और जिसके प्रत्येक पहलूसे अपूर्व दीप्ति और आभा निकलती है। उनके जीवनका राजनीतिक पहलू था, समाजसेवा और परदुःखकातरताका पहलू था, लोक-संग्रहका पहलू था, अपरिग्रहका पहलू था, जीवनके उच्च नैतिक आदर्शोंका पहलू था, उच्च स्तरकी क्रिया-कुशलता, संगठन-शक्ति और कर्मठताका पहलू था, और भी कितने पहलू थे; किंतु वह रत्न जिस पदार्थका बना था, उसे व्यापक अर्थमें 'धर्म' कहा जा सकता है। इसी 'धर्म' और धार्मिकताके पदार्थका रत्न होनेके कारण उन पहलुओंमें इतनी प्रखर आभा थी कि वह जौहरियों और सामान्य लोगोंको समानरूपसे प्रभावित करती थी।

उनका क्रिया-कलाप इतना विस्तृत और बहुमुखी था कि उसके क्षेत्र-विस्तारको देखकर आश्चर्य होता था। उसका परिचय इस छोटे-से लेखमें देना सम्भव नहीं है। उसके लिये तो एक विशाल ग्रन्थकी आवश्यकता है और उसे भरसक पूर्ण बनानेके लिये उन असंख्य व्यक्तियों-के सहयोगकी आवश्यकता है, जो उनके विशाल कार्यक्षेत्रके किसी अङ्गमें उनके सम्पर्कमें आये। कृतज्ञताकी यह माँग है कि उनके अनुरूप एक विशाल स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। 'कल्याण'का भी एक विशाल विशेषाङ्क उनकी श्रद्धाञ्जलिके रूपमें निकलना चाहिये, तभी लोगोंको भाईजीकी बहुमुखी प्रतिभा, उनके अनेक क्षेत्रोंके कार्यों और उनके मधुर, तपस्वी एवं वैष्णव स्वरूपका परिचय मिल सकेगा।

उनके त्यागमय जीवनके दो विशेष प्रेरक लक्ष्य थे—जनतामें धार्मिक और नैतिक भावनाका पुनःप्रतिष्ठापन तथा दुःखी एवं संतप्त लोगोंकी सेवा। उनके विविध कार्योंके प्रेरक-स्रोत इन्हीं दो भावनाओंमें पाये जायँगे। दुर्भिक्ष, बाढ़, महामारी आदिसे पीड़ित लोगोंकी सेवाके अनेक अभियान, 'कल्याण' तथा अन्य धार्मिक साहित्यका प्रकाशन एवं अनेक धार्मिक समारोहों-के संयोजन—सभी उनके जीवनके इन दो महान् लक्ष्योंकी पूर्तिके लिये थे और इस क्षेत्रमें उन्हें जो सफलता मिली, वह आश्चर्यजनक थी। 'कल्याण' हिंदीका सबसे अधिक प्रचारित मासिक पत्र है, जिसका प्रचार भारततक ही सीमित नहीं है। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्यने हिंदू-घरोंमें अपना स्थान बना लिया है और उसने हिंदू-जनताकी धार्मिक आवश्य-

कताओंकी पूर्ति करनेमें ही सहयोग नहीं दिया, प्रत्युत उसने उसकी अपने धर्मके प्रति आस्थाको दृढ़ करनेमें भी सहायता दी ।

वे अनन्य श्रीकृष्ण-भक्त थे और भगवान्‌का यह वाक्य उन्होंने जीवनमें उतार लिया था--

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

उनके सम्बन्धमें इससे अधिक और कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है ।

भाईजीको हिंदू बालकोंको आरम्भसे ही अपने धर्म और संस्कृतिका परिचय और संस्कार देनेकी आवश्यकताका अनुभव होता था । एक बार उन्होंने मुझसे हिंदी भाषामें ऐसी रीडरोंको तैयार करानेके सम्बन्धमें विचार-विमर्श किया था, जो इस उद्देश्यकी पूर्ति कर सकें । किंतु उन दिनों हम सरकारी सेवामें थे और इतने व्यस्त थे कि इस कार्यके लिये इसके महत्त्वके अनुसार समय देनेमें असमर्थ थे । इसका हमें सदैव दुःख रहेगा । इस घटनासे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कितने दूरदर्शी थे और उन्हें भावी संतानको हिंदूधर्म और भारतीय संस्कृतिमें दीक्षित करनेकी कितनी उत्कण्ठा थी ।

भाईजीके समान विभूतियाँ यदा-कदा ही अवतरित होती हैं । पिछली शतीके अन्त और इस शतीके आरम्भमें इस देशमें अनेक क्षेत्रोंमें अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए । भाईजी उनमेंसे एक--और शायद अपने ढंगके एकमात्र--महापुरुष थे । यह हमारा सौभाग्य था कि हमें उनके समकालीन होनेका गौरव प्राप्त हुआ । वे अपनी अक्षय कीर्ति एवं अपने महान् और महत्त्वपूर्ण कार्य छोड़ गये हैं, जिनसे वे अमर रहेंगे; किंतु उनके कार्योंको आगे बढ़ाना उनके अनुयायियों और प्रशंसकोंका गुरु उत्तरदायित्व है । भाईजीकी प्रेरणा और उदाहरण उन्हें अपने कर्त्तव्यका पालन करनेकी शक्ति दे ।

●

चाह तुम्हारी ही हो प्यारे ! नित्य निरन्तर मेरी चाह ।
चाह न रहे अलग कुछ मेरी, नहीं किसीकी हो परवाह ।।
चलता रहूँ निरन्तर, प्यारे ! केवल एक तुम्हारी राह ।
बिगड़े-बने जगत्‌का कुछ भी, कहूँ निरन्तर 'प्यारे ! वाह' ।।

--श्रीभाईजी

●

स्नेहशील भाईजी

डा० श्रीराजबलीजी पाण्डेय

श्रीभाईजीका परलोक-गमन देशके लिये तो सार्वजनिक शोकका विषय है, परंतु हम लोगोंके लिये तो व्यक्तिगत महादुःख है। जीवनके प्रारम्भिक प्रस्थानमें उनका जो स्नेह हमें प्राप्त हुआ था, वह अपनी एक पवित्र सम्पत्ति है। उसका स्रोत लुप्त हो गया, इसकी कल्पना ही क्लेशदायिनी है। उनका पूर्ण साधनामय यशस्वी जीवन था। आधुनिक भारतके धार्मिक तथा सांस्कृतिक अभियानमें उनका सफल नेतृत्व था। वे निर्वाणके नहीं, कल्याणके प्रवर्तक थे। उनका सम्पूर्ण जीवन समर्पित था। भगवद्भक्ति तथा लोकमङ्गल उनका महामोक्ष था।

'कल्याण'के साथ पूज्य भाईजीकी स्मृति शरीरके साथ प्राण, बुद्धि तथा आत्माकी भाँति अभिन्नरूपसे जुड़ी हुई है। यह धारणा मेरे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनुभवोंपर आधारित है। मेरे अप्रत्यक्ष अनुभव भी मेरे मनके लिये तो प्रत्यक्ष हैं ही। मेरा पहला सम्पर्क १९३४ में भाईजीसे उस समय हुआ था, जब 'कल्याण'का सम्पादकीय कार्यालय गोरखनाथ-मन्दिरके पास एक पुराने बंगलेमें था। उसके चारों ओर वृक्ष, वनस्पतियाँ तथा वन्य दृश्य थे। पूरा वातावरण आरण्यक था। कार्यालय क्या था, वास्तवमें 'आश्रम' था। भाईजी उसके कुलपति थे। उनका स्नेह और सम्मान सभी सदस्योंको सहजरूपसे प्राप्त था। मैंने देखा, भाईजी पुरुष होनेके कारण 'भाईजी' कहलाते हैं किंतु उनका स्नेह तो माताका स्नेह है, जो अपना वात्सल्य बच्चोंपर बिना किसी प्रत्याशाके बरसाया करती है। मैं प्रथम दर्शनसे ही अभिषिक्त हो गया।

'कल्याण'के सम्पादकीय परिवारमें अपने रहने और कार्य करनेका सुखद संदर्भ अभीतक नहीं भूला है। मैं उसको आदरपूर्वक सँजोये हुए हूँ।

वहाँकी कार्यप्रणाली बड़ी अनोखी थी। मैं श्रीभाईजीके पास पहुँचा और कार्य करने लगा। आवेदन, नियुक्तिपत्र, वेतन आदिका कुछ पता नहीं। न मुझसे पूछा गया कि मैं क्या वेतन लूँगा और न मैंने पूछा कि क्या वेतन मिलेगा। भाईजीका आकर्षण था। वे ही अनुबन्ध थे। वहाँ पहुँचनेपर सम्पूर्ण 'योगक्षेम'की व्यवस्था थी——आवास, भोजन, वस्त्र, औषध आदि सभीकी। कार्यालय परिवार था, कार्य-पद्धति पारिवारिक। कार्यका संकेतमात्र था, आदेश भी नहीं। कार्य करनेका स्थान प्रायः निश्चित था, समय नहीं। अपनी सुविधा और रुचिसे कार्य-सम्पादन करना था। इसके अतिरिक्त नित्य संध्या-वन्दन, प्रार्थना, कथा, प्रवचन आदि चलते रहते थे। इनमें भाईजीकी उपस्थिति विशेष प्रेरणादायक थी। उनके प्रवचन भी बराबर होते थे। उनकी बोलनेकी शैली अनुभूतिपरक, सरस और हृदयग्राही थी। भावुकता, सद्भाव और स्नेहका वातावरण उनके चारों ओर तना-बुना था। लोगोंमें एक सहज विनयिता, परंतु साथ ही भक्तिसिक्त मादकता थी। भाईजी केन्द्र-बिन्दु थे।

१९३६ में गोरखपुर जिलेमें भयंकर बाढ़ आयी। बर्डघाटके आगेका बाँध बाढ़के वेगसे

टूट गया और उसके आसपासके बीसों गाँव जल-मग्न हो गये। उनके निवासी घोर संकटमें पड़ गये। उनको वहाँसे उबारने, आवास, भोजन, औषध आदिकी अनिवार्य आवश्यकता थी। शासन-की ओरसे व्यवस्था की गयी थी, किंतु वह पर्याप्त नहीं थी। भाईजीको इस स्थितिका पता था। भाईजी केवल भावभीने भक्त ही नहीं, जागरूक, सक्रिय तथा दृढ़ लोक-संग्रही भी थे। उन्होंने गीताप्रेसकी ओरसे राहतकार्यका तुरंत संगठन किया। जलप्लावनमें रात-दिन कार्य हुआ। लोग बाढ़से निकालकर कूड़ाघाट छावनीमें लाये गये। वहाँ एक बड़ा राहत-शिबिर संगठित किया गया। तत्कालीन उत्तरप्रदेशके गवर्नरतक उस सहायता-कार्यको देखकर आश्चर्यचकित थे। सभी शिबिरके कार्योंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे।

उसी वर्ष काशी हिंदू विश्वविद्यालयमें, 'प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति' विभाग-में सहायक प्रोफेसरके पदपर मेरी नियुक्ति हो गयी। मैंने श्रीभाईजीका आशीर्वाद लिया और काशी चला गया। 'कल्याण'-परिवारसे मैं अलग हुआ, परंतु भाईजीके प्रति मेरा आदर-भाव और सम्मान कभी अलग नहीं हुआ। उनका अनुबन्ध नौकरीका नहीं, स्नेहका था। उनका स्नेह और मङ्गल-कामना अपने साथ लाया। वह सम्पत्ति आज भी मेरे मानस-कोषमें है। भाईजी व्यक्ति नहीं, संस्था और सत्य थे; उनकी स्मृति अमर रहेगी।

●

हिंदू-संस्कृतिके पुनरुद्धारक

श्रीधीरेन्द्रजी वर्मा

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे विशेष सम्पर्कमें आनेका मुझे अवसर नहीं मिला। यों उनसे एक-दो बार पत्र-व्यवहार हुआ था। एक बार गीताप्रेसमें जानेका संयोग भी हुआ था, किंतु उस समय वे बाहर गये थे। उनके कार्यसे, विशेषतया प्राचीन हिंदू धार्मिक साहित्यके अनवरत प्रकाशनसे कौन नहीं परिचित है ? एक प्रकारसे आधुनिक कालमें हिंदू-धर्म और संस्कृतिके पुनरुद्धारका श्रेय दो व्यक्तियोंको प्रधानतया है—बिरला-बन्धु और श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार। बिरला-बन्धुओंद्वारा निर्मित सुन्दर और विशाल मन्दिरोंने हिंदू-जनताके सामने प्राचीन महापुरुषोंकी स्मृतिको प्रत्यक्षरूपमें उपस्थित किया तथा पोद्दारजीकी प्रबन्ध-कुशलताके फलस्वरूप 'गीताप्रेस'से लाखोंकी संख्यामें प्रकाशित और वितरित धार्मिक साहित्यने हिंदू-संस्कृतिका संदेश घर-घर पहुँचाया। यह सच है कि इसकी मूल प्रेरणा महामना पं० मदनमोहन मालवीयजीने दी थी, किंतु उसको कार्यान्वित बिरला और पोद्दार—इन दो कर्मठ व्यक्तियोंने किया।

●

मानवमात्रके भाई

पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र

सृष्टिके आरम्भसे ही देवासुर-संग्राम चलता आ रहा है, आज भी चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। यह समस्त विश्वमें ही नहीं, प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें सदा ही चलता रहता है। कभी किसी पक्षकी विजय होती है तो कभी किसीकी। जब कभी समस्त विश्व अधर्मसे आक्रान्त हो जाता है, तब स्वयं भगवान् अवतार लेते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें उन्होंने इसे स्पष्ट शब्दोंमें घोषित किया है। साधारण स्थितिमें वे बड़े-बड़े ऋषियों, मुनियों, साधु-संतोंको धर्मसेवाकी प्रेरणा देते रहते हैं, जिससे मानवका बहुत कुछ कल्याण होता है। ऐसी ही प्रेरणा एक मारवाड़ी युवकके हृदयमें हुई, जो एक राजनीतिक क्रान्तिकारी था। उसने अनुभव किया कि राजनीतिक क्रान्तियोंमें क्या रखा है। राजनीति तो बराबर बदलती रहती है—'वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा'। यह सोचकर उसने निर्णय किया कि मानव-हृदयमें ऐसी क्रान्ति करनी चाहिये कि वह आसुरी प्रवृत्तियोंसे ऊपर उठकर प्राणिमात्रकी सेवामें जीवन बिताये। यह युवक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार थे। उन्होंने 'हिंदी-हिंदू-हिंदुस्तान'की सेवाका व्रत लेकर गोरखपुरसे मासिक 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ किया। वे 'भाईजी'के नामसे प्रसिद्ध थे और सचमुच थे भी मानवमात्रके भाई। रहन-सहन और स्वभावसे वे सीधे-सादे, पर विचारोंमें गम्भीर थे। 'कल्याण'द्वारा उन्होंने जो मानव-सेवा की है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। उनके ओजस्वी लेखोंद्वारा कितने ही पाठकोंका कल्याण हुआ। धर्म, देश और हिंदी—इन तीनोंकी उन्होंने महती सेवा की। देशमें आज 'कल्याण'का जितना प्रचार है, उतना देशी भाषाओंकी अन्य किसी पत्रिकाओंका नहीं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। जनताका नैतिक स्तर उच्च बनानेके लिये उन्होंने जो प्रयत्न किया, उसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली।

भगवान् श्रीकृष्णके दरबारमें पहुँचनेकी कठिनाईका अनुभव करके उन्होंने वृषभानुनन्दिनी, नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानीकी शरण ली, जिसके पैरोंको स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पलोटते रहते हैं। पिताकी अपेक्षा माताका स्नेह प्राप्त करना कहीं अधिक सुगम है। इसीलिये उन्होंने श्रीराधारानीको अपनी अधिष्ठात्री देवी बनाया। वे उनके ध्यानमें सदा तल्लीन रहते और श्रीराधाष्टमी-महोत्सव बड़े उल्लाससे मनाया करते थे।

लगभग २५ वर्षोंसे मेरा उनसे परिचय रहा। वे जब कभी वाराणसी आते, तब मुझसे अवश्य मिलते थे। उस समय अनेक विषयोंपर हम दोनोंमें विचार-विनिमय होता रहता था। इधर एक विषयपर विचार चल रहा था। मैंने उनसे कहा कि "यह बड़े खेदकी बात है कि भगवान् श्रीकृष्णकी कोई प्रामाणिक जीवनी हिंदी या अंग्रेजीमें नहीं है। विदेशी विद्वान् प्रायः पूछा करते हैं। उत्तरमें चुप रहना पड़ता है। श्रीकृष्णके सम्बन्धमें केवल विदेशोंमें ही नहीं, स्वदेशमें भी अनेक प्रकारके भ्रम फैले हुए हैं। यद्यपि 'कल्याण'के 'श्रीकृष्णाङ्क'में श्रीकृष्णके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा गया है, वह जीवनीकी शैलीमें न क्रमबद्ध है और न पुस्तकरूपमें।

इसलिये पुस्तकरूपमें उनकी प्रामाणिक जीवनीका होना बहुत आवश्यक है ।" भाईजीने भी इसे स्वीकार किया था और इसके लिये प्रयत्न करनेका भी वचन दिया था। पर उसे पूरा करनेके पहले ही वे हमलोगोंको छोड़कर चल दिये । यह कार्य गीताप्रेस ही सुगमतापूर्वक कर सकता है ।

उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके न रहनेसे जो स्थान रिक्त हुआ, उसकी पूर्ति होना सम्भव नहीं दीख पड़ता। श्रीभाईजी जो कार्य कर रहे थे, उसे बराबर चालू रखना और उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि करना ही भाईजीके प्रति हमलोगोंकी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी ।

●

भारतीय महाप्राण

डा० (सेठ) श्रीगोविन्ददासजी

भारतीय संस्कृतिके सनातन प्रवाहमें जो निःस्पृह संत और जीवन्मुक्त मनीषी हुए हैं, उन्हींकी श्रृङ्खलामें मैं भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारके जीवनको देखता हूँ । वे गृहस्थ थे, संसारमें रहे, किंतु उनका सारा जीवन, उनके विचार, कर्तव्य और आदर्श एक ऐसे जीवन्मुक्त संतके रहे हैं, जिसने अपने सर्वस्वको—अपने-आपको इस भगवत्-सृष्टिरूपी भगवान्में सर्वथा लीन और विलीन कर दिया था और जिसका निजका कोई कर्तव्य और व्यक्तित्व नहीं रहा। वे मनुष्य मात्रकी सर्वाङ्गीण सेवामें अपने जीवनको होमकर मृत्युजयी बन गये हैं। यद्यपि पार्थिवरूपसे वे आज नहीं हैं, फिर भी उनके कार्य और कार्य-प्रवृत्तिकी वह परम्परा, जो उन्होंने अपने जीवन एवं पुरुषार्थसे कायम की, आज भी विद्यमान है और आगे आनेवाली अनेक पीढ़ियोंतक उसका प्रवाह चलता रहेगा ।

श्रीपोद्दारजीका जीवन न केवल आत्म-कल्याणका ही, अपितु मानवमात्रके कल्याणका साधन है। वे संन्यासीकी साधना, उसकी मर्यादा, गुण-गरिमा और व्रत-नेम-धर्मसे सम्पन्न और समृद्ध होते हुए संन्यासीकी भाँति केवल आत्म-कल्याणके आकाङ्क्षी न होकर लोक-कल्याणके साधक और साधन बन गये थे। दूसरे शब्दोंमें वे भारतीय धर्मके—भक्ति-मार्गके एक ऐसे भक्त-संन्यासी पथिक थे, जिसके भगवद्भक्तिनिष्ठ एवं भक्तिरसपूर्ण कार्योंसे भक्ति-पथ और सम्प्रदायका प्रवर्त्तन होता है ।

श्रीपोद्दारजीसे मेरा लगभग पचास वर्षका सम्बन्ध रहा है। अनेक ऐसे अवसर आये, जब मैंने उन्हें अत्यन्त निकटसे देखा। आध्यात्मिक-सांस्कृतिक कार्योंमें रुचि रखनेवाला एवं गो-सेवा-व्रती होनेके नाते मेरे लिये जब भी इस तरहके प्रसङ्ग आते, उनके साथ मेरा सम्पर्क और निकटता बढ़ जाते। उनके इस सम्पर्क और निकटताके क्षणोंमें मैंने सदा ही यह अनुभव किया कि वे भारतीय संस्कृतिके उन्नायक उन भद्रपुरुषोंमें हैं, जिनके विचार, वाणी और हर कृतिसे भारतीयताकी अमिट छाप मनपर पड़ती है। उनकी विनम्रता, उनका मृदु व्यवहार, परायोंके प्रति भी आत्मीयताका भाव और सभीके साथ सहज सौजन्य—ये कुछ ऐसे विलक्षण गुण थे, जो उनके सम्पर्कमें आनेवालेको मुग्ध किये बिना नहीं रहते थे। मैं पचास वर्षसे भी अधिक समयसे सार्वजनिक क्षेत्रमें हूँ । जीवनके सभी क्षेत्रोंके सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं

और जन-सेवियोंसे—जिन्हें प्रमुख माना जा सकता है—मेरा सम्पर्क रहा है। अनेकोंमें मैंने अनेकों प्रकारकी विशेषताएँ देखी हैं, उनके प्रसाद-गुणोंसे भी प्रभावित हुआ हूँ, किंतु भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमें जो प्रासादिक गुण मौजूद थे, वैसे अन्य किसी व्यक्तिमें मुझे देखनेको नहीं मिले। उनका व्यक्तित्व सर्वाङ्गीण था। वे धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता, धर्मके मर्मज्ञ और उद्भट विद्वान् थे। इसीके साथ उनका समूचा जीवन एक साधकको भाँति बीता। वे भक्तिमार्गके अनुयायी थे; श्रीराधा उनकी परम आराध्या थीं और योगिराज श्रीकृष्ण उनके ज्ञान और कर्मके प्रेरक। इस प्रकार वे भक्ति, ज्ञान और कर्मके समुच्चय थे।

भारत-जैसे धर्मप्राण और कृषि-प्रधान देशमें गोहत्या एक राष्ट्रीय समस्या है। श्रीभाईजी गोहत्याको धर्मकी दृष्टिसे एक पाप मानते थे। गोहत्या-बंदीके प्रयत्नोंमें उनका सदा प्रथम श्रेणी-का योग-दान रहता था। इतना ही नहीं, बहुत अर्थोंमें वे गोहत्या-बंदी आन्दोलनके एक प्रधान सूत्रधार थे। सन् १९४५ में उन्होंने 'कल्याण'का 'गो-अङ्क' प्रकाशितकर गो-संरक्षण और गो-संवर्धनके सम्बन्धमें प्रचुर साहित्य और दुर्लभ जानकारी देशको प्रदान की। 'कल्याण'का यह 'गो-अङ्क' न केवल गो-भक्तों, अपितु गो-संवर्धनके क्षेत्रमें कार्य करनेवाले सरकारी और गैर-सरकारी विशेषज्ञोंके लिये एक स्थायी 'ज्ञान-कोष' बन गया है।

श्रीपोद्दारजी भक्तिमार्गी थे और एक भक्त-हृदयके धनी होनेके नाते वे समस्त सृष्टिको भगवान्‌का ही स्वरूप—उनकी ही छवि-छटा मानकर उसकी सेवा करते थे। भक्तके जिन गुणों और कर्त्तव्योंका वर्णन हमारे धर्मग्रन्थोंमें मिलता है, पोद्दारजी उसके मूर्तिमन्त रूप थे, जिन्होंने गुणोंको अपने व्यक्तित्वमें मूर्तिमान् किया था और कर्त्तव्योंको अपने कार्योंद्वारा आचरणमें उतारा था। यही हेतु है कि वे अतिशय विनम्र, निश्छल, निरभिमान, अकिंचन और एक 'निमित्त' बनकर इस भगवद्रूप सृष्टिकी सेवामें अपनेको समर्पितकर अपने इष्ट भगवान्‌की इतनी सेवा कर सके।

श्रीभाईजी मानवतावादी थे। उनके विचारोंमें भारतीय धर्म ही नहीं, विश्व-धर्म और संस्कृतिकी व्यापकता थी। वे दीन-दुःखियोंके प्रति सदा सहज उदारता और करुणाका भाव रखते थे। उनकी इस करुणा और उदारताके अगणित उदाहरण उनके जीवनमें हमें मिलते हैं। वे व्यवहारमें अत्यधिक विनम्र, स्वभावमें मृदु और सहज सौजन्यकी मूर्ति थे। उनका हर आचरण हमारी संत-परम्पराका उदाहरण बन गया। वे धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता, भाषा-साहित्यके मर्मज्ञ और मूर्धन्य विद्वान् थे। जीवनकी इन उपलब्धियोंके बावजूद उनका जीवन बड़ी सादगीसे बीता और जीवनपर्यन्त उन्होंने एक साधककी भाँति अपना एक-एक पल लोकोपकारके कार्योंमें व्यतीत किया।

श्रीभाईजीका समस्त जीवन एक कर्मयोगीकी भाँति बीता। वे जीवनभर कर्ममें रत रहे, पर एक क्षणके लिये भी उसमें आसक्त नहीं हुए। उनकी दिनचर्यामें जहाँ एक ओर गीताप्रेस-के प्रमुख प्रकाशनों एवं 'कल्याण'का सम्पादन, धर्म-ग्रन्थोंका स्वाध्याय एवं अनुशीलन, सत्सङ्ग और भगवत्सम्बन्धी प्रवचन आदि रहते थे, वहीं वे जगत्‌को तथा जगत्-व्यापारको सर्वथा विस्मरणकर भाव-समाधिमें लीन हो जाते थे। इस प्रकार वे नित्य नियमसे देह-धर्मका निर्वाह करते हुए भी उसके कर्म-फलसे सदा मुक्त रहे। वे आत्मप्रशंसाके विरोधी और आत्मगोपी

चरित्रके मूर्तिमान् स्वरूप थे। जीवनके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग वे दूसरोंके हित-सम्पादनरूप भगवत्सेवामें करते रहे। यही हेतु है कि 'कल्याण' और गीताप्रेसके माध्यमसे लगभग पचास वर्षतक भारतीय धर्म, संस्कृति, भाषा और साहित्यकी इतनी विपुल और बहुमुखी सेवाएँ वे सदा मूकभावसे करते रहे। प्रचार और प्रदर्शनके इस जमानेमें भाईजीका भारतीय धर्म, संस्कृति, भाषा और साहित्यके अभ्युत्थानमें यह योग-दान सर्वथा अनूठा है।

यह श्रीभाईजीकी साधनाका ही फल है कि 'कल्याण' मातृभूमिके आँचलमें फैले सुदूरवर्ती गाँवों और नगरोंमें रहनेवाली जनताकी धार्मिक श्रद्धा, आस्था और भगवद्भक्ति-पथकी साधना-का एक अवलम्ब बन चुका है। देशके ग्रामीण क्षेत्रमें बसनेवाला—आजकी परिभाषामें अशिक्षित माना जानेवाला किसान और नगरके कोलाहलपूर्ण जीवनमें रहनेवाला प्रबुद्ध नागरिक 'कल्याण'-के माध्यमसे अपनी ईश्वरनिष्ठा और भगवद्भक्तिके लिये बल, प्रेरणा और स्फूर्ति ग्रहण करते हैं। पोद्दारजीके भक्तहृदयकी अनुभूतियों तथा भगवान्के स्वरूप और उनके अनुग्रहकी विविध झाँकियोंसे अलंकृत 'कल्याण'के इस योग-दानको शब्दोंमें नहीं सराहा जा सकता। वह तो देशकी धार्मिक जागृति और उसके अन्तःकरणका एक मर्म-बिन्दु बन चुका है, जिसके माध्यमसे भक्तिरसकी सरिता प्रवाहित होती है और उसके मूल उद्गमपर पोद्दारजीका नाम और उनका साधनामय व्यक्तित्व बैठा है। श्रीपोद्दारजीने जीवनभर 'कल्याण'का सम्पादन ही किया हो, यह बात नहीं; वह तो उनकी अन्तःप्रवृत्तिकी प्रतिक्रिया है, उसका परिणाम है, उसकी अभिव्यक्ति है। इसके अलावा उन्होंने आजीवन गीताप्रेस और उसके विविध धर्मग्रन्थोंके प्रकाशनोंद्वारा तथा देशके विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करके एवं तीर्थस्थलोंमें जा-जाकर धर्मजागरणका जो महान् कार्य किया है, उसका हिसाब-किताब और मूल्याङ्कन करना कठिन है। अपनी लेखनी और वाणी—दोनों ही माध्यमोंसे उन्होंने भक्तिमार्ग और आस्तिक जगत्की जो सेवा की है, वह उनके चमत्कारी व्यक्तित्वकी एक अनूठी निधि है। जिन्होंने पोद्दारजीका साहित्य पढ़ा है, प्रवचनोंमें उनकी अमृतवाणी सुनी है, वे उनके इस चमत्कारी गुणसे परिचित हैं। पोद्दारजीके पचास वर्षके कर्मठ जीवनने धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जगत्को इतना बल दिया है कि उसपर न केवल हम, अपितु हमारी पिछली और अगली पचास पीढ़ियाँ भी गर्व और गौरव अनुभव कर सकती हैं।

स्वामी विवेकानन्दने एक बार किसीसे पूछा—'क्या तुम मनुष्य हो?' विवेकानन्दके इस प्रश्नका तात्पर्य स्पष्ट है। प्रत्येक मनुष्यको यह प्रश्न अपने आपसे करना चाहिये और आत्माके तलसे जबतक इसका उत्तर 'हाँ'में नहीं मिल जाय, मनुष्य बननेका प्रयत्न सतत करते रहना चाहिये। इसी प्रकार भाईजीने अपने मूक चरित्रद्वारा हम लोगोंसे सतत पूछा है—'क्या तुम भारतीय हो?' उनका चरित्रप्रधान यह प्रश्न हमें अपने आपसे पूछना है। यदि हम उनके इस प्रश्नका अपने मन, वचन और कर्मसे समाधान कर सकें, अपने आपको 'भारतीय' कहलानेयोग्य बना सकें तो उस भारतीय महाप्राणके, जिसने भारतीय संस्कृतिके कण-कण और रेशे-रेशेको अपने जीवनमें चरितार्थ किया, अनुयायी कहलानेयोग्य बन सकेंगे और यही हमारी उस दिव्यात्माके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

उदात्त आदर्शोंके अवतार

विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेव शास्त्री

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार वास्तवमें भारतीय संस्कृतिके उदात्त आदर्शोंके अवतार थे ।

मैं वर्षोंसे भारतीय संस्कृतिके विकासकी दृष्टिसे उसकी विभिन्न धाराओंका अध्ययन कर रहा हूँ । उन विभिन्न धाराओंने अपने-अपने दृष्टिकोणसे मानवजीवनके उदात्त आदर्शोंका जो उत्कृष्ट निरूपण किया है, वह संसारभरमें अद्भुत है । वास्तवमें वह हम भारतवर्ष-वासियोंके लिये महान् गर्व और गौरवकी वस्तु है । परंतु जब भी उन उदात्त आदर्शोंको जीवनमें उतारनेके प्रश्नपर हम विचार करने लगते हैं, तब बहुत ही थोड़े अपवादोंको छोड़कर प्रायः निराशा ही हमारे हाथ लगती है । निराशा-ही-निराशा हमें सर्वत्र दिखायी देती है । उस समय हमें श्रुतिका यह गम्भीर उद्घोष सुनायी देता है—

'सत्यं वै देवाः अनृतं मनुष्याः ।'

उक्त उद्घोषका अभिप्राय यही है कि महान् पुरुषोंद्वारा मार्गप्रदर्शन प्राप्त करनेपर भी, मनुष्य अपनी दुर्बलताओं और निम्नप्रवृत्तियोंके कारण अपने आदर्शोंसे जाने-अनजाने प्रायः पथभ्रष्ट हो ही जाता है ।

यह किससे छिपा है कि जीवनके आदर्शों और आचरणके पारस्परिक द्वन्द्वका यह घोर संकट आजके युगमें अपनी चरम सीमातक पहुँचा हुआ है । राष्ट्रके किसी भी आन्दोलनको लीजिये, यह हृदय-विदारक दृश्य आपको प्रायः सर्वत्र दिखायी देगा ।

देशव्यापी उक्त महान् संकटकी खेदजनक परिस्थितिमें भाई श्रीपोद्दारजीको भारतीय संस्कृतिके उदात्त आदर्शोंका अवतार कहना सर्वथा उपयुक्त है ।

भारतीय संस्कृतिके जिन महान् आदर्शोंकी पुनःसंस्थापनाके लिये उन्होंने असाधारण त्याग और तपस्याका जीवन व्यतीत करते हुए 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके प्रकाशनोंको प्रस्तुत किया है, उन्हीं आदर्शोंको उन्होंने प्राणपणसे अपने जीवनमें उतारा भी है। कथनी और करनीकी ऐसी एकरूपताको ही किसी भी संस्थाकी वास्तविक देन कहा जा सकता है ।

भगवद्गीताको गीताप्रेसकी आधार-शिला कहा जा सकता है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥
(गीता १२ । १३--१५)

श्रीपोद्दारजीकी जीवनचर्या इन्हीं उदात्त आदर्शोंसे ओत-प्रोत थी । इसीलिये भगवान्के वे प्रिय थे और भगवान् उनके प्यारे थे । जनता-जनार्दनकी निःस्वार्थ सेवामें ही वे भगवान्का दर्शन और भजन करते थे ।

आधुनिक जगत्की भौतिकता-प्रधान एवं उद्वेगजनक तथाकथित सभ्यताके आवेगके साम्मुख्यमें मानव-शान्तिके एकमात्र स्रोत आध्यात्मिकताके जीवन-प्रद संदेशको धार्मिक साहित्यके प्रचार और प्रसारके द्वारा घर-घरमें पहुँचानेका गीताप्रेस एवं 'कल्याण'ने जो महान् कार्य किया है, वह सर्वथा अद्भुत है ।

आज जब पाशविक प्रवृत्तियोंके भयावह प्रवाहका संकट चारों ओर उपस्थित है, भारतीय संस्कृतिकी चिरंतन आध्यात्मिकता ही शरण्यस्थली है । गीताप्रेस एवं 'कल्याण'द्वारा यही हो रहा है । इसीसे इनका महत्त्व प्रत्यक्ष है ।

आधुनिक जगत्के प्रलयंकर जलप्लावनमें ऐसी संस्थाएँ ही मनुकी नौकाके रूपमें मानवकी रक्षा कर सकती हैं--ऐसी हमारी धारणा है । यही श्रीपोद्दारजीके जीवन-यज्ञकी एकमात्र लगन थी । वे चाहते थे कि भारतीय संस्कृतिके आध्यात्मिकता-प्रधान आदर्शोंको अन्धश्रद्धा, संकीर्णबुद्धि और स्वार्थलिप्साकी मूढ़ प्रवृत्तियोंसे बचाते हुए विवेक और उदारताकी दृष्टिके साथ-साथ जनताके सामने रखा जाय ।

इसी महान् उद्देश्यके लिये उन्होंने अपने जीवनको न्योछावर कर रखा था और इसी यज्ञकी पूर्तिके लिये उन्होंने अपने जीवनकी पूर्णाहुति दी ।

वास्तवमें सच्चा पुरुषमेधयज्ञ इसीको कहते हैं ।

•

जीवनको संगीत बना दो ।
मेरी हृत्तन्त्रीके तारोंसे सबको मधु तान सुना दो ।।
मेरे जीवनके मधुरससे सबके जीवनको सरसा दो ।
मेरी हँसी सुख-भरीसे तुम सबको हे ! दुखमध्य हँसा दो ।।
सबके दुखमें मेरे सुखको धन्य बनाकर नाथ ! मिला दो ।
निज पद-कमल-सुधा-रस-सरिता-तटपर सबको स्थान दिला दो ।।

--श्रीभाईजी

•

अध्यात्म-विभूति

डा० श्रीबलदेवजी उपाध्याय

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तथा 'कल्याण'के प्रथम परिचयकी तिथि तो मुझे याद नहीं है; परंतु जिन परिस्थितियोंमें यह पावन परिचय सम्पन्न हुआ, उनकी स्मृति मानसपटलपर आज भी धूमिल नहीं हुई है । गीतावाटिकामें विधिवत् सम्पादित 'नाम-कीर्तन'के वार्षिक समापनोत्सवके अवसरपर कीर्तन-मण्डलीका नेतृत्व करते हुए भाईजीको मैंने पहली बार देखा ।

'भगवन्नामाङ्क' नामक विशेषाङ्कके द्वारा ही 'कल्याण'का प्रथम दर्शन मुझे हुआ । पोद्दारजी तथा 'कल्याण'में परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध था । उनकी विशुद्ध सात्विक भावनाका सद्यः प्रतिबिम्ब तथा प्रतीक ही तो है 'कल्याण' । 'कल्याण'के सम्पादनमें, उसे सनातनधर्मका प्रामाणिक सिद्धान्त-प्रचारक रूप देनेमें पोद्दारजीने जो अश्रान्त परिश्रम किया, वह 'कल्याण'के पाठकोंको सर्वथा विदित है । 'कल्याण'के विशेषाङ्क तो वास्तवमें तत्तत् विषयोंके विश्वकोश ही हैं, जिनका कलेवर भारतके मान्य विद्वानों तथा विपश्चितोंसे सुचिन्तित लेख लिखवाकर सुसज्जित किया जाता है । 'गीताङ्क' 'शिवाङ्क' 'शक्ति-अङ्क' आदि विश्ववन्द्य विशेषाङ्कोंके प्रकाशनकी योजना तथा निष्पत्ति पोद्दारजीकी ही सूझ थी । इस प्रकार अकेले 'कल्याण'के इन महनीय विशेषाङ्कोंका सम्पादन ही धार्मिक तथा साहित्यिक संसारमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम अमर बनानेके लिये पर्याप्त है ।

पोद्दारजीके लिये 'भाईजी'-जैसा रसस्निग्ध अभिधान उनके सहज स्नेह, अकृत्रिम प्रेम तथा सार्वजनीन सहानुभूतिका आंशिक परिचायक है । उनके स्नेहकी परिधि सीमित नहीं थी, उनके प्रेमका पारावार किसी भी प्रकारके बन्धनसे जकड़ा नहीं था । उनकी सहानुभूतिमें कृत्रिमताकी गन्ध न थी । उनके लिये जगत्का प्रत्येक प्राणी भगवान् सच्चिदानन्दघनका जीवित प्रतीक था, जिसकी सेवा––मनसा-वाचा-कर्मणा सपर्या––उनके जीवनका प्रधान लक्ष्य था । भाईजीकी शास्त्रोंमें अच्छी पैठ ही नहीं थी, प्रत्युत शास्त्रोंमें पूर्ण आस्था भी थी । उनका संतुलित जीवन कथनी तथा करनीके मञ्जुल सामञ्जस्यपर आधारित था । संस्कृतके परि-निष्ठित ज्ञानके द्वारा वे शास्त्रोंके मर्म समझनेमें सर्वथा कृतकार्य होते थे तथा विद्वानोंके समागमका भी वे पूर्ण लाभ उठाकर अपने ज्ञानको परिष्कृत, पूर्ण तथा प्रामाणिक बनानेमें सदैव तत्पर रहते थे । उनके शास्त्रीय ज्ञानका प्रमाण उनके द्वारा विरचित नाना ग्रन्थ––विशेषतः 'कामके पत्र' शीर्षकवाली पत्रावली, जिसमें विषम तथा विकट धार्मिक समस्याओंके सुलझानेका पूर्ण प्रयास किया गया है––है । इस विषयमें वे शास्त्रोंके अनुशीलनसे भरपूर आश्वस्त होकर ही समाधानमय उत्तर लिखते थे । धार्मिक विषयोंकी गुत्थी सुलझानेके लिये वे स्वयं वेद तथा पुराण, स्मृति तथा कर्मकाण्ड, दर्शन तथा तन्त्रका परिशीलन करते तथा विद्वानोंकी बहुमूल्य सम्मति भी जुटानेमें तनिक भी संकोच नहीं करते थे ।

भाईजीका जीवन श्रीराधामाधवके चरणारविन्दमें सर्वथा समर्पित था । दुःखी तथा पीड़ित मानवकी आर्त्त पुकार उनके हृदयको केवल द्रवीभूत ही नहीं करती थी, प्रत्युत उस दुःख-विमोचनके लिये उन्हें व्यावहारिक जगत्में अग्रसर करती थी । देशके ऊपर बाढ़, दुर्भिक्ष, अकाल आदि नाना विपत्तियोंके आक्रमणके समय पोद्दारजी गीताप्रेसकी ओरसे सहायताका आयोजन करते, अनुभवी कार्यकर्ताओंको भेजकर नाना प्रकारकी सहायताद्वारा जनताके दुःखोंको दूर करनेमें सफल होते । नोआखालीकी घटना आज भी लेखकके स्मृति-पटलपर वैसी ही अङ्कित है, । उस समय पोद्दारजीने अपने कार्यकर्ताओंद्वारा प्रभूत द्रव्यका व्यय कर वहाँके अनेक हिंदू-परिवारोंको विध्वंससे बचाया था । पूर्वी जिलोंमें बाढ़के समय गीताप्रेसद्वारा दी गयी सहायताके प्रेरक पोद्दारजी ही तो थे ।

श्रीपोद्दारजीको मैं आधुनिक युगका 'महाप्रभु चैतन्य' मानता हूँ । चैतन्यके समान ही वे स्वयं सच्चे महाभागवत होनेके अतिरिक्त जनतामें भगवन्नामके वितरणमें सतत जागरूक थे । व्रजेश्वरी श्रीराधाजीकी जयन्तीके प्रचारक, प्रसारक तथा प्रेरकके रूपमें भाईजी सर्वदा अविस्मरणीय रहेंगे । गोरखपुरके गीता-उपवनमें जिस नैसर्गिक स्नेह, अकृत्रिम अनुराग तथा प्रगाढ़ भक्तिसे राधाष्टमीका महोत्सव वे सजाते थे तथा जनताके सामने अपने आचरण तथा भाषणद्वारा भक्ति-भावनाकी उमंग दर्शाते थे, वह दर्शकके जीवनकी एक अमिट अनुभूति वनकर चिरस्मरणीय रहेगी । बड़े उत्साहके साथ इन समारोहोंमें नाना प्रान्तोंसे भक्तगण स्वतः आकृष्ट होकर भक्ति-रसका आस्वादन करते तथा जीवनको धन्य बनाते थे । पोद्दारजीके सुन्दर भाषणोंका संग्रह 'श्रीराधामाधव-चिन्तन'के रूपमें प्रकाशित है, जो उनकी विद्वत्ता, गाढ़ानुराग एवं भक्ति-रसका पावन उत्स प्रस्तुत करता है । श्रीमद्भागवतने जिस 'भागवत-प्रधान'का लक्षण एकादश स्कन्धमें प्रस्तुत किया है, वह आदरणीय पोद्दारजीपर अक्षरशः सच्चा उतरता है । भागवतका कथन है—'विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी सम्पूर्ण अघराशिको नष्ट करनेवाले स्वयं भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते, वास्तवमें ऐसा ही पुरुष भगवान्के भक्तोंमें प्रधान होता है । कारण यह है कि उसने प्रेमकी रस्सीसे भगवान्के चरणकमलोंको बाँध रखा है—

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्-
धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥

भाईजी आजके युगमें ऐसे ही भागवत-प्रधान थे, जिसने अपनी प्रेमरज्जुसे भगवान्के पैरको बाँध रखा था और इसलिये भगवान् उनके हृदयको छोड़कर स्वयं ही अन्यत्र नहीं जाते थे । धन्य है वह महापुरुष—भगवान्को प्रेमरश्मिसे बाँधनेवाला दिव्य व्यक्ति । भाईजी ऐसे ही दिव्य पुरुष थे । उनकी स्मृति हमारे हृदयमें भगवान्का पावन प्रेम उदित करनेमें समर्थ हो—ऐसी प्रार्थना है ।

वे सच्चे अर्थमें संत तथा साथ-ही-साथ कवि भी थे । भगवद्भक्तके जीवनमें एक ऐसा उदात्त समय आता है, जब उसका भगवन्मय हृदय सरस वाणीके द्वारा अपने उद्गार प्रकट करने

लगता है--दूसरोंको शिक्षा देनेके लिये नहीं, प्रत्युत अपने हृदयके भावोंकी शुद्ध अभिव्यक्तिके लिये। यह दशा समर्पित-जीवन व्यक्तिके लिये अवश्य होती है, जो स्वतः आविर्भूत होती है, प्रयत्नोंकी अपेक्षा नहीं रखती। भाईजीके जीवनमें यह दिव्य झाँकी प्रस्तुत हुई थी। वे सच्चे अर्थमें क्रान्तदर्शी कवि थे, जो श्रीराधामाधवकी मधुर अनुभूतिको मधुर शब्दोंका बाना पहनाते थे। इस विषयके उनके सैकड़ों पद हैं--एक-से-एक मधुर, रसपेशल तथा सहज सुबोध। उनके इस जीवनकी ओर ध्यान देनेपर उनकी अलौकिक प्रतिभाके दर्शन होते हैं। उनके मनोरथ-का प्रतिपादक यह एक पद ही पर्याप्त समझा जायगा--

ब्रज के लता-पता मोहि कीजै।
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जामें सिर दीजै॥
आवत-जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै।
'श्रीराधे, राधे!' मुख--यह बर मुँह माँग्यौ हरि दीजै॥

ऐसे सरस पदोंके गायक संत कवि पोद्दारजीकी परम पावन स्मृतिमें यह शब्दमयी श्रद्धा-ञ्जलि समर्पित है। जगद्धरभट्टकी यह उक्ति नितान्त सत्य है कि 'बिना पुण्यके भक्त कविकी प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है'--

गाम्भीर्यशालिनि शुचावमृतौघशीते
नीते सदा सदनतां मदनान्तकेन।
यस्यैकपिङ्गलगिरेरिव मानसेऽन्त-
रर्थाः स्फुरन्ति स विना सुकृतैः क लभ्यः॥

विशेष पुण्यके बलपर ही भाईजी-जैसे संत कविका दर्शन हमें मिला है। भगवान् करें, उनकी मनोरम वाणीका सौरभ सर्वत्र विकसित होकर हमारे मानस-पटलमें विशुद्ध सात्त्विक भक्तिका उद्रेक करे। तथास्तु।

●

प्रभुकी याद दिलानेवाले दुःख रहें नित मेरे पास।
प्रभुकी याद भुलानेवाले सुख-समूह हो जायें नाश॥
वह विपत्ति सम्पत्ति परम है, जिसमें प्रभुके हों दर्शन।
वह सम्पत्ति विपत्तिरूप है, हटवा दे जो प्रभुसे मन॥
वह अपमान मान सच्चा है, जिसमें हो शुभ प्रभुका भान।
जो प्रभुसे सम्पर्क छुड़ा दे, वह है जलनेलायक मान॥

--श्रीभाईजी

●

साहित्य, संयम और सदाचारका समुज्ज्वल नक्षत्र

ठाकुर श्रीश्रीनाथसिंहजी

यह सही है कि श्रीपोद्दारजी अब हमारे बीचमें नहीं रहे; उनकी मृदु मुस्कान––जो एक ही झलकमें सामने उपस्थित दर्शकोंके हृदयोंमें अद्भुत आशा संचरित कर देती थी––अब हमें कभी लक्षित न होगी; उनका कण्ठस्वर, जो श्रोताओंमें अनुपम बल और साहस भर देता था, अब हमें कभी सुनायी न पड़ेगा; तथापि यह भी सही है कि भारतीय भावना, साहित्य और संस्कृतिकी जो त्रिवेणी वे सरसा गये हैं, वह युगोंतक भारतीयोंके हृदयका कल्मष धोती रहेगी और उन्हें भारतीय परम्परासे बाँधे रहेगी। कहनेको तो वे एक व्यक्ति थे, परंतु वास्तवमें वे एक संस्था थे। उनकी मृत्यु हो गयी, यह मन स्वीकार नहीं करता। ऐसा लगता है कि 'कल्याण'के लाख-लाख पाठकोंके हृदयोंमें वे समा गये हैं और इस रूपमें वे अमर रहेंगे।

उनके व्यक्तिगत परिचयका सौभाग्य मुझे लगभग उस समयसे प्राप्त है, जब उन्होंने गोरखपुरसे 'कल्याण'का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। उन दिनों मैं स्थानीय 'इंडियन प्रेस'से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती'के सम्पादकीय विभागमें काम करता था। श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारने अपने तत्कालीन सहयोगी, गीताप्रेसके तत्कालीन व्यवस्थापक श्रीबाजोरियाजीको प्रयाग इसलिये भेजा था कि वे 'सरस्वती'के वितरणकी व्यवस्थाको देखें और समझें, ताकि कुछ उसी ढंगपर वे 'कल्याण'का ग्राहक-रजिस्टर रखें। हमलोगोंने 'सरस्वती'के बारेमें कुछ गर्वका अनुभव किया और बाजोरियाजीको सरस्वतीका ग्राहक-रजिस्टर आदि दिखलाया। परंतु सब कुछ देखकर उन्होंने हमारे गर्वपर पानी फेरते हुए कहा––'ऐसी व्यवस्थासे 'कल्याण'का काम नहीं चल सकता। थोड़े-से ग्राहक हों तो यह तरीका काम दे सकता है; परंतु श्रीभाईजी 'कल्याण'की ग्राहक-संख्याको लाखोंतक ले जाना चाहते हैं और चाहते हैं कि कोई ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या न लिखे, तो भी उसके नाम अथवा स्थानसे ग्राहक-रजिस्टरमें उसे जल्द-से-जल्द खोजा जा सके।' इससे यह स्पष्ट है कि 'कल्याण'के जन्मके समयमें ही उनके मनमें उसके कितने व्यापक प्रचारकी भावना थी और उन्हें इसमें सफलता भी मिली। आज भी 'कल्याण'की ग्राहक-संख्या हिंदीकी सभी पत्रिकाओंसे आगे है।

एक बार 'कल्याण'में भगवान् श्रीकृष्ण और गोपियोंका एक बहुत ही सुन्दर तिरंगा चित्र प्रकाशित हुआ। मेरी इच्छा हुई कि उसे मैं अपनी पारिवारिक पत्रिका 'दीदी'में उद्धृत करूँ। मैंने श्रीभाईजीको पत्र लिखा कि 'आप कृपापूर्वक उस चित्रका ब्लाक मुझे दे दें, जिसे मैं छापकर वापस कर दूँगा।' श्रीभाईजीने उत्तर दिया––'गीताप्रेसके ब्लाक उधार देनेका नियम नहीं है; परंतु उस ब्लाकसे जितने आप चाहें, चित्र छापकर हम भिजवा सकते हैं।' मैंने अपनी आवश्यकता उन्हें बतायी। शीघ्र ही मेरे पास चित्रोंकी आवश्यक संख्या बढ़िया आर्ट पेपरपर छपी हुई आ गयी। छपाईका बिल देखकर मैं दंग रह गया। उस मूल्यमें वैसा कागज भी

नहीं खरीदा जा सकता था । भेंट होनेपर इस बारेमें मैंने उनसे पूछा तो बोले—'गीताप्रेस व्यापारिक संस्था नहीं है । इसका मुख्य उद्देश्य सेवा है ।' मैंने उनसे दूसरे प्रेसोंमें तिरंगी छपाईकी लागत बतायी और कहा कि 'इस लागतसे भी कम मूल्यमें चित्र आदि बेचकर गीताप्रेस अपना काम कैसे चला सकता है ? कर्मचारियोंको वेतन भी तो देना पड़ता है ।' गीताप्रेसके कर्मचारियोंके प्रति सहजभावसे आर्द्र होते हुए श्रीभाईजीने कहा—"हमारे कार्यकर्ता अन्य संस्थाओंके कार्यकर्ताओंसे भिन्न हैं । उनका समर्पित जीवन है । वे जानते हैं कि गीताप्रेस, जो मुनाफेके लिये काम नहीं करता, भारी वेतन भी नहीं दे सकता । उन्हें इसमें आनन्द है ।" और फिर वे मुस्कराकर बोले—"कौन नहीं जानता कि 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य उसके विशेषाङ्कोंमें ही वसूल हो जाता है । वर्षके बाकी ११ अङ्क ग्राहकको मुफ्त पड़ते हैं ।' उनकी उस समयकी सेवा-भावनासे ओत-प्रोत, सादगी, संतोष और आनन्दसे युक्त मुखमुद्रा आज भी मेरे स्मृति-पटपर वैसे ही खचित है ।

एक बार जब प्रादेशिक हिंदू-महासभा महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीके नेतृत्वमें प्रदेशव्यापी आन्दोलन करनेके लिये उतावली हो रही थी, मेरी श्रीभाईजीसे नैनीतालमें भेंट हुई । महन्तजी उन्हें अपने साथ पंत-सरकारपर जोर डलवानेके लिये ले गये थे । उन्होंने सरकारके समक्ष ९ या १० माँगें रखी थीं और इस सम्बन्धमें एक पत्रकार-सम्मेलन बुलाया था । संयोगसे मैं भी उस पत्रकार-सम्मेलनमें उपस्थित था । महन्तजीने पत्रकारोंके समक्ष अपनी सरकारके सामने रखी जानेवाली माँगें रखीं और शिकायतके स्वरमें कहा—"आपलोग कांग्रेसकी छोटी-मोटी बातोंका भी ढिंढोरा पीटते रहते हैं, परंतु हमारे आवश्यक समाचार भी नहीं छापते ।" इसपर कोई पत्रकार बोल उठा—"आपलोग समाचार पैदा कहाँ करते हैं ।" श्रीभाईजी, जो अबतक मौन थे, बोले—"समाचार पैदा करना हम जानते हैं, परंतु हम सरकारको परेशान नहीं करना चाहते । खैर, आप यही चाहते हैं तो समाचार पैदा होगा और आप हमारे पास स्वयं आयँगे ।" और उसी समय श्रीभाईजीने महन्तजीकी १० माँगोंमें एक माँग और जुड़वा दी—तीर्थस्थानोंमें गोवध तुरंत बंद किया जाय । महन्तजीने सरकारके सामने जो माँगें रखी थीं, उनमें यह माँग नहीं थी । अतएव सरकारकी ओरसे कहा गया कि 'यह ग्यारहवीं माँग बादको सरकारको परेशान करनेके इरादेसे रखी गयी है'; परंतु हिंदू-महासभा इसपर अटल रही और सरकारको झुकना पड़ा । तीर्थस्थानोंमें गोवध बंद हुआ ।

नैनीतालसे वापसीमें बरेली जंकशनपर मेरी श्रीभाईजीसे पुनः भेंट हो गयी । जिस डिब्बेमें मैं सवार था, वह किसी कारणसे खाली करा लिया गया था और यात्रियोंको अन्यत्र स्थान खोजनेको कह दिया गया था । जब मैं इस प्रयत्नमें भटक रहा था, श्रीभाईजीकी मुझपर नजर पड़ी और उन्होंने मुझे अपने डिब्बेमें बुला लिया । उस डिब्बेमें श्रीभाईजी और महन्त दिग्विजयनाथजीके अतिरिक्त एक अंग्रेज सज्जन भी थे । उनकी अनुमति आवश्यक थी, जो श्रीभाईजीने तुरंत प्राप्त कर ली थी । उन अंग्रेज सज्जनसे वार्तालाप होने लगा; अन्तमें हिंदू-धर्म और ईसाई-धर्ममें ईश्वरका क्या स्वरूप है, इसपर सौहार्दपूर्ण विवाद छिड़ गया । उस समय शायद रात्रिके लगभग ११ बजे थे । परंतु विषय ऐसा था कि किसीको नींद नहीं आ रही थी ।

उन अंग्रेज सज्जनने कहा कि 'ईश्वरको हम पिता मानते हैं, जो स्वर्गमें है।' उनके इस कथनको आदरके साथ स्वीकार करते हुए श्रीभाईजीने कहा, 'हम ईश्वरको पिता ही नहीं, परमपिता कहते हैं। उपासनाके प्रारम्भमें हमारा उसके प्रति सेवकका भाव रहता है, क्रमशः हम उसे सखा मानने लगते हैं और अन्तमें हम उसे शिशुरूपमें देखने लगते हैं।' इस वार्तालापके अन्तर्गत श्रीभाईजीने वैष्णवधर्मकी ऐसी मीमांसा की कि यहाँ मैं उसे दोहरानेमें अपनेको अक्षम पाता हूँ। अंग्रेज महोदयपर श्रीभाईजीके विचारोंका बड़ा प्रभाव पड़ा।

अपनी प्रशंसा अथवा वाहवाही श्रीभाईजी कदापि नहीं चाहते थे। अगर कोई मुखपर उनकी प्रशंसा करता था तो वे उसे विनम्रतापूर्वक अनसुनी कर देते थे और विषय बदल देते थे।

'कल्याण'के विशेषाङ्कोंके रूपमें श्रीभाईजीने पुराणोंके सस्ते और प्रामाणिक हिंदी-अनुवाद जनसाधारणके लिये सुलभ कर दिये हैं। इनमें बहुत-से पुराण तो ऐसे हैं, जो हिंदीमें क्या, संस्कृत-में भी अप्राप्य हैं। ऐसा ही एक पुराण 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' है। यह पुराण संस्कृतमें भी प्राप्य नहीं है। इसकी महत्ताको ध्यानमें रखते हुए श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदास टंडनने इसे हिंदीमें अनुवादित करवाकर 'हिंदी साहित्य सम्मेलन'से प्रकाशित कराना चाहा। हजारों रुपयोंके व्ययके बाद यह पुराण हिंदीमें अनूदित तो हुआ, परंतु उसके प्रकाशनकी नौबत नहीं आयी। इसी बीचमें टंडनजीने देखा कि यह पुराण 'कल्याण'के एक विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हो गया है। इसपर टंडनजीने श्रीभाईजीको बधाईका एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा—'जो काम हम 'हिंदी साहित्य सम्मेलन'-जैसी संस्थाके माध्यमसे करनेमें असमर्थ रहे, वह आपने सहज ही कर दिया। अब हम इस ओरसे निश्चिन्त हैं।'

पुराणोंके अतिरिक्त श्रीभाईजी 'कल्याण'के और भी ऐसे विशेषाङ्क प्रकाशित करते रहते थे, जिनमें एक ही विषयपर अनेक दृष्टिकोणोंसे लिखे गये लेख होते थे। 'कल्याण'के 'नारी-अङ्क', 'बालक-अङ्क' ऐसे ही थे। श्रीभाईजीकी धारणा थी कि नारियाँ भक्ति और वैराग्य-की मूर्ति होती हैं। वे ज्ञान और सदाचारसे युक्त हों तो राष्ट्रका बहुत लाभ हो। ऐसी ही नारियाँ अपने बालकोंको सदाचारी और श्रेष्ठ नागरिक बना सकती हैं।

देशके बालकों और युवकोंको आदर्श-चरित बनानेके लिये वे कितने चिन्तित थे—यह उनके उस पत्रसे स्पष्ट है, जो उन्होंने इस सम्बन्धमें मुझे लिखा था। मैं उस पत्रका कुछ अंश यहाँ दे रहा हूँ—

श्रीहरि:

'कल्याण', गोरखपुर
आषाढ़ कृ० १०, २००९

सम्मान्य श्रीठाकुर साहब,

सादर प्रणाम। 'कल्याण'का अगला विशेषाङ्क 'बालक-अङ्क' प्रकाशित करनेका निश्चय हुआ है। बालक और युवकोंमें अनुशासनहीनता, उच्छृङ्खलता, संस्कृति और धर्मके प्रति अनास्था,

कर्तव्यविमुखता, विलासिता आदि दोष बढ़ रहे हैं––यह आप मुझसे अधिक जानते हैं । हमारे बालक सदाचारी, स्वस्थ, भगवद्भक्त, देशभक्त, सेवापरायण, कर्तव्यशील, उदार और महान्-हृदय हों, इसी उद्देश्यसे 'बालक-अङ्क' प्रकाशित करनेका विचार किया गया है । आप हिंदीके स्तम्भ हैं, बाल-मनोविज्ञानके पण्डित हैं, बाल-साहित्यके प्रख्यात निर्माता हैं, संस्कृति और धर्मके प्रेमी हैं एवं 'कल्याण'को हृदयसे अपना माननेवाले हैं । इसलिये आपकी सेवामें विशेषरूपसे प्रार्थना है कि आप 'बालक-अङ्क'के लिये स्वयं कुछ लिखकर भेजें और अन्यान्य अधिकारी महानुभावोंसे उपयोगी लेख और निबन्ध लिखवाकर देनेकी कृपा करें । इस अङ्कमें भारतीय तथा विदेशी बालकों और तरुणोंके आदर्श संक्षिप्त चरित्र रहेंगे और बालकोंके जीवनका उत्थान करनेमें सहायक कुछ लेख भी रहेंगे। आशा है, आप कृपापूर्वक इस कार्यमें सहायक होंगे ।

कृपा तो आपकी है ही ।

भवदीय

हनुमानप्रसाद पोद्दार

पाठक यह न समझें कि यह पत्र मैंने इसलिये उद्धृत किया है कि इसमें श्रीभाईजीने मेरी बड़ी प्रशंसा कर दी है । उनका यह स्वभाव ही था कि अपनेको अत्यन्त लघु और दूसरोंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करते थे । उनके जैसा विनयावनत व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा। अपनेसे बड़ोंका आदर तो वे करते ही थे, परंतु अपनेसे छोटेका और भी अधिक आदर करते थे। मिलनेवाले उनकी विनम्रता देखकर दंग रह जाते थे ।

सहज स्नेहसे सिक्त सौम्य मुखाकृति, ऊँचा और चौड़ा मस्तक, उसपर चन्दनका टीका और सादी वेष-भूषा सेवामें उपस्थित होनेवाले व्यक्तिके मनपर यही छाप डालते थे कि वह एक महान् भारतीय पुरुषके सामने उपस्थित है। प्रत्येक व्यक्ति, जो चाहे, निस्संकोच उनसे अपनी बात कह सकता था । वे सही अर्थोंमें भक्ति, वैराग्य, ज्ञान और सदाचारकी मूर्ति थे । 'कल्याण'के माध्यमसे दूसरोंको जो उपदेश देते थे, उसपर स्वयंको बड़ी कड़ाईके साथ चलाते थे। हिंदू-धर्म, संस्कृति और सदाचारको उन्होंने बहुत बढ़ावा दिया है। वे हमें एक ऐसा मार्ग दिखा गये हैं, जिसपर चलकर हम अपने मानव-जीवनको सफल और सार्थक बना सकते हैं ।

श्रीभाईजीके चले जानेसे ऐसा लगता है कि हमारे सामने साहित्य, संयम और सदाचारका जो समुज्ज्वल नक्षत्र उदित था, वह लुप्त हो गया है। देशकी जनताको एक आदर्श नेताके रूपमें उनका अभाव सदा खटकेगा, परंतु व्यक्तिगतरूपसे मुझे लगता है कि मैं मित्रविहीन हो गया हूँ। अधिक क्या लिखूँ ?

●

भारतीय परम्पराके उद्धारक अवतार

श्रीरामधारीसिंहजी 'दिनकर'

उन्नीसवीं सदीमें भारतीय संस्कृतिकी सेवा ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज, प्रार्थना-समाज और राधास्वामी-समाजने की थी। उस समयके संस्कृति-सेवकोंमें उन विदेशी और देशी विद्वानोंका भी आदरणीय स्थान है, जिन्होंने भारतकी प्राचीन विद्याका उद्धार अंग्रेजीके माध्यमसे किया। किंतु बीसवीं सदीमें भारतीय संस्कृतिकी जैसी सेवा गोरखपुरके गीताप्रेस और बम्बईके भारतीय विद्याभवनने की, वैसी सेवा न तो कोई सरकार कर सकी न कोई विश्वविद्यालय कर सका। परम क्लेशका विषय है कि इन दोनों महान् संस्थाओंके संस्थापक और कर्णधार हमारे बीचसे उठ गये।

श्रीमुंशीजीकी विशेषता यह थी कि वे प्राचीन भारतकी अनुभूतियोंका प्रचार नवीन भाषा (अंग्रेजी)में करते थे। श्रीपोद्दारजीकी विशेषता यह थी कि वे प्राचीन भारतके ज्ञानको प्राचीन (संस्कृत) अथवा आधुनिक भारतकी भाषा (हिंदी)में फैलाते थे। इन दोनों महापुरुषोंने अपने-अपने क्षेत्रमें जो काम किया, वह बहुत विशाल और साथ ही महान् भी है। भारतकी अपार जनता अभी आधुनिकताके आदि छोरतक भी नहीं पहुँची है। अतएव श्रीपोद्दारजीने भारतकी सारी परम्पराको हिंदीमें लाकर इस विशाल जन-समूहके लिये सुलभ कर दिया। जिन प्राचीन पुराणों और ग्रन्थोंका जनता पहले केवल नामभर सुना करती थी, वे ग्रन्थ अब उसके हाथमें हैं और वे हिंदीमें हैं, जिस भाषापर जनताका स्वाभाविक अधिकार है। यह एक ऐसी सेवा है, जिसका मूल्य आसानीसे आँका नहीं जा सकता। हम अपनी परम्पराको समझते हुए आधुनिकताकी ओर बढ़ें—इस प्रक्रियाको श्रीपोद्दारजीने सरल बना दिया। वे भारतीय परम्पराके उद्धारक अवतार थे।

श्रीपोद्दारजी नैष्ठिक पुरुष थे। वे भगवान्के परमभक्त थे और उनका जीवन समर्पित जीवन था। समाजको विश्वास हो गया था कि वे 'ज्ञानयज्ञ'में लगे हुए हैं, समाज-सेवा और परोपकारके काममें लगे हुए हैं। इसलिये अनेक श्रीमन्त लोग उन्हें लिखते रहते थे कि 'हमसे धन लीजिये और उसे अपनी रुचिके सत्कार्यमें लगा दीजिये।' पोद्दारजी अक्सर ही ऐसे लोगोंको यही उत्तर देते थे, 'अभी मैं आपके दानका कोई उपयोग नहीं कर पाऊँगा, इसे आप अपने ही पास रखें।' समाज-सेवी और धर्म-सेवीका चरित्र कितना उज्ज्वल होना चाहिये, इसके पोद्दारजी उदाहरण थे।

२७ मार्च, १९७१ को मैं पोद्दारजीकी समाधिपर फूल चढ़ानेके लिये गोरखपुर गया तो वहाँ परमपूज्य राधाबाबासे मेरी भेंट हो गयी। मैंने पूछा—"बाबा, पोद्दारजीकी चिता यहाँ गीतावाटिकामें क्यों रचायी गयी, किसी नदीके तटपर क्यों नहीं?" बाबाने बताया—"सन् १९३९

ई० में मैंने पोद्दारजीसे वृन्दावन जानेकी अनुमति माँगी। श्रीभाईजीने कहा—'हम दोनों साथ-साथ ही रहें। जब मेरा शरीर न रहे, तब आप जहाँ इच्छा हो चले जाइयेगा। यदि मुझसे पहले आपका शरीर शान्त हो गया तो मैं आपकी अन्त्येष्टि कर ही दूँगा।' मैंने कहा—'भाईजी! जब इतने दिन आपके साथ रहूँगा, तब आपके न रहनेपर यदि मेरा शरीर रहा तो मैं आपको छोड़कर अन्यत्र क्यों जाऊँगा? आपके पार्थिव शरीरकी जहाँ अन्त्येष्टि होगी, वहीं मैं अपना शेष जीवन बिता दूँगा।' यह मेरा निश्चय था। इस निश्चयके अनुसार यदि भाईजीकी चिता नदी-किनारे रचायी गयी होती तो मैं भी वहीं रहता। अतएव 'पञ्चों'ने तय किया कि भाईजीकी चिता यहाँ गीतावाटिकामें ही लगे, जिससे मैं इसी वाटिकामें रहकर अपने निश्चयका पालन कर सकूँ।''

बाबाका उद्‌गार सुनकर मुझे रोमाञ्च हो आया। किंतु चलते-चलते मनमें यह बात दृढ़ हो गयी कि बाबाको गीतावाटिकामें रखनेका निर्णय सही और लाभकारी निर्णय है; क्योंकि वे उस कार्यकी दूसरी आत्मा हैं, जो गीताप्रेससे हो रहा है।

•

सत्साहित्य-प्रदाता

श्रीमृत्युञ्जयप्रसादजी

भगवच्चरणोंमें लीन अपने पूज्य पिताजी (देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादजी)के साथ श्रीभाईजीके सौहार्दका मुझे पता है। मेरा व्यक्तिगत परिचय श्रीभाईजीसे न हो पाया और न उनके दर्शनोंका सौभाग्य ही मुझे मिला; किंतु उनके लेखोंसे मैंने लाभ उठाया है। 'कल्याण'का ग्राहक मैं २५–३० वर्षोंसे हूँ। इसलिये उनके लेख पढ़ने तथा गीताप्रेससे प्रकाशित कुछ पुस्तकें पढ़नेका भी अवसर मिला है। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि 'कल्याण' तथा गीताप्रेसका संगठन कर जो सत्साहित्य पोद्दारजीने प्रकाशित कराया, वह अपनी मिसाल आप है। प्राचीन ग्रन्थ—उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत इत्यादि साधारण हिंदी पढ़े हुए व्यक्तियोंको बहुत ही कम मूल्यमें उन्होंने सुलभ कराये।

अपने लेखों तथा भाषणोंसे समाजके चारित्रिक स्तरको ऊँचा उठाने तथा समाजको हरि-उन्मुख करनेमें उनका योगदान अनुकरणीय रहा है। साथ ही जिनका संस्कृत-ज्ञान स्कूलकी पाठ्यपुस्तकोंके स्तरसे भी नीचा था, उन्हें भी धार्मिक एवं दार्शनिक ग्रन्थोंका रहस्य समझानेके लिये उन्होंने सानुवाद संस्करण प्रकाशित किये। ऐसे अपढ़ या कमपढ़ व्यक्तियोंमें मैं भी हूँ, जिन्हें अनुवादसे मिलाकर मूल ग्रन्थ पढ़ते-पढ़ते सरल श्लोकोंके अर्थ अपने आप लगते-से प्रतीत होते हैं। यह सारा काम निष्कामवृत्तिसे करते हुए भी वे अपनी बुद्धि-कौशलसे गीताप्रेसको आर्थिक कठिनाइयोंसे भी बचाते रहे। पुस्तकोंकी साज-सज्जा सुन्दर, मूल्य कम, प्रचार अधिक। लागतमात्र मूल्यपर सत्साहित्य-प्रदाताके रूपमें श्रीभाईजीकी सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी।

•

आध्यात्मिक प्रेरणा-स्रोत

आचार्य श्रीसीतारामजी चतुर्वेदी

श्रीपोद्दारजी अध्ययनशीलता, निष्काम-निःस्पृह धर्म-सेवा, त्याग, तपस्या और सौजन्यकी प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने जीवनभर अपने सम्बन्धमें किसी इच्छा, लालसा, आकाङ्क्षा या भावनाको कोई स्थान नहीं दिया। इतना ही नहीं, दूसरे भी यदि उनकी महत्ताके प्रति आत्मीय-तापूर्ण कृतज्ञता व्यक्त करनेका कोई व्यक्तिगत या सार्वजनिक आयोजन करनेका प्रयास करते थे तो वे सदा उससे अत्यन्त विनीतभावसे उपरत ही रहते थे। एक बार हमलोगोंने काशीमें उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करनेका विराट् आयोजन किया; किंतु जब-जब उसके लिये उनसे आग्रह किया गया, तब-तब वे अपनी स्वाभाविक निर्लिप्तताके साथ उदासीनता ही व्यक्त करते रहे। 'नहीं' कर देनेसे हमलोगोंको बुरा न लगे और हमारा उत्साह न भङ्ग हो——इस सौजन्यका निर्वाह करते हुए वे निरन्तर अत्यन्त मृदुतासे उसे टालते रहे। आज वह दिन आ गया है कि उस महापुरुषका अभिनन्दन करनेको नन्दन-वनका वृन्दारक-वृन्द अग्रसर हो रहा है।

पोद्दारजी साधु-पुरुष थे। अपने शरीरसे जितनी दूसरोंकी सेवा हो जाय, सहायता हो जाय, कल्याण हो जाय, उसे ही वे जीवनकी सार्थकता समझते थे। 'कल्याण'के द्वारा उन्होंने जो जन-कल्याण किया, अधीर, अशान्त, क्षुब्ध, शोकग्रस्त और चिन्तित पुरुषों और स्त्रियोंको जो मानसिक और आध्यात्मिक विश्रान्ति प्रदान की, वह अद्भुत-साधन-सम्पन्न अत्यन्त असामान्य व्यक्तिके लिये भी दुष्कर है। साधु या संतके लिये जो कहा गया है——

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥

'जिनके मन, वचन और शरीरमें पुण्य (परोपकार)का अमृत-सागर लहराता है, जो तीनों लोकोंको उपकारकी श्रेणियोंसे (निरन्तर उपकारसे) तृप्त करते रहते हैं और जो दूसरोंके रंचमात्र गुणोंको भी पर्वतके समान बनाकर नित्य मन-ही-मन खिलते रहते हैं, ऐसे संत संसारमें हैं कितने?' इसके उत्कृष्ट उदाहरण थे पोद्दारजी।

किसीने उन्हें कभी किसीको कटु या अप्रिय वचन कहते नहीं सुना। मृदुता और सौम्यता-की वे श्लाघनीय विभूति थे। उनके संसर्गमें जो भी कभी आया, वह उनके आत्मीयतापूर्ण सौजन्य-से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। इतना ही नहीं, वह यह विश्वास लेकर गया कि वे सचमुच मेरे परम आत्मीय हैं। उन्हें कभी किसी बातका पूर्वाग्रह, कष्टाग्रह या दुराग्रह नहीं था। वे सबके मतको भलीभाँति मथते थे, उसपर विचार तथा मनन करते थे, उसकी तात्त्विक मीमांसा करते थे और फिर तर्क, युक्ति तथा प्रमाणके आधारपर उसकी अत्यन्त विनीत और मृदु विवेचना

करते थे। उनकी वाणी और लेखनीमें कटुता और तर्जनने कभी प्रवेश पानेकी धृष्टता नहीं की। इस सौजन्यके साथ ही उनमें अपरिमित विवेकशीलता विद्यमान थी, जिसके कारण वे कभी मनसे असंतुलित नहीं हो पाये। वे कभी आवेग, उद्वेग, भावावेश और उत्तेजनाके आखेट नहीं हुए। महाकवि कालिदासके शब्दोंमें——

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।

'विकारका कारण प्रस्तुत होनेपर भी जिनका मन विकृत नहीं होता, वे ही धीर कहलाने योग्य हैं।' ऐसे ही धीर-पुरुष थे पोद्दारजी।

वे मन, वाणी, आहार-विहार और व्यवहार——सबमें अत्यन्त सात्त्विक थे। उन्हें न किसी प्रकारका व्यसन था न कोई रुचि ही। सीधी-सादी वेश-भूषा और रहन-सहनके साथ उन्होंने सत्यनिष्ठ कर्मयोगीकी भाँति अनासक्त होकर कार्य किया। गीताप्रेस चलाया, 'कल्याण'का सम्पादन किया; जब-जब देशपर किसी प्रकारका संकट पड़ा, तब-तब अत्यन्त तत्परता और संनद्धताके साथ बाढ़-पीड़ितों, भूकम्प-पीड़ितों, निराश्रितों, विप्लव-पीड़ितों, देशभक्तों और आर्त्तोंको उन्मुक्त हृदय और हस्तसे सब प्रकारकी सहायता पहुँचानेमें कभी आलस्य या शैथिल्य प्रदर्शित नहीं किया। कुछ वर्षों पूर्व चीन और पाकिस्तानने अत्यन्त क्षुद्रता और कायरताके साथ भारतपर सहसा आक्रमण किया था। उस समय देशके लिये युद्ध करनेवाले भारतीय सैनिकोंके लिये उन्होंने जो विशिष्ट सहायता भेजी थी, वह कृतज्ञता और सराहनाके साथ स्मरण की जाती है।

वे बड़े कुशल और विवेकशील लेखक थे। उन्होंने 'कल्याण'के माध्यमसे न जाने कितना लिखा, किंतु शास्त्र और धर्मकी संयत मर्यादाओंका कभी उल्लङ्घन नहीं किया। वे 'पुराणपंथी' और कट्टरतावादी कभी नहीं रहे। भारतीय धर्म और सामाजिक शीलके प्रति उनकी सहज और सिद्ध निष्ठा थी, जिसमें किसी प्रकारकी कृत्रिमता और आडम्बर नहीं था। वे जो कुछ सत्य समझते थे, उसीका जीवनमें अनुभव करते थे और अपने लेखों और ग्रन्थोंमें उसीका समर्थन करते थे। **'अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः'**—की बहुरूपिया-वृत्तिसे उन्हें स्वाभाविक विरक्ति थी। इसीलिये इस प्रकारकी प्रवृत्तिका न उन्होंने कभी स्वागत किया न उसका समर्थन। वे मौन, शान्त और एकान्तवासी होकर जो कुछ सेवा कर गये, वह इस व्यस्त, कोलाहलपूर्ण युगमें एक व्यक्तिसे क्या, अनेक व्यक्तियोंसे भी नहीं हो सकती।

ऐसे बहुगुणसम्पन्न पुरुषके सहसा उठ जानेसे विक्षोभ और व्याकुलता होना स्वाभाविक ही है। श्रीपोद्दारजी नहीं गये, उनके साथ एक आध्यात्मिक प्रेरणा-स्रोत, कर्मण्यताका सजीव पोत और सबको एक सूत्रमें बाँधकर संस्था चलानेवाला स्वयं संस्थानरूप महामानव चला गया। उनके उठ जानेसे जो विराट् रिक्तता उत्पन्न हो गयी है, वह कैसे भर पायेगी——यह भी अत्यन्त चिन्तनीय समस्या उठ खड़ी हुई है। संस्थाएँ चलती रहती हैं, चलती रहेंगी; किंतु जो पुरुष अपने दिव्य सात्त्विक व्यक्तित्वसे उन संस्थाओंका आध्यात्मिक पोषण करके उन्हें ऊर्जस्विनी और वर्चस्विनी बनाये रखता है, उसका स्थान कोई शीघ्र नहीं ले पाता। किसी समाज, राष्ट्र, संस्था या जातिके इतिहासमें ऐसे अमृत-यशस्वी पुरुष उसके भाग्यसे कभी जन्म लेते हैं और अपने सात्त्विक जीवनसे उसे पुष्टकर, अमृत पिलाकर तिरोहित हो जाते हैं।

ऐसा ही अनुपम व्यक्तित्व था श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका।

●

मूर्तिमान् संतत्व

श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट

१९७० की 'प्रेस इन इंडिया'——भारतके समाचारपत्रोंके रजिस्ट्रारकी १४वीं वार्षिक रिपोर्ट उलट रहा था कि देखा उसमें——उत्तरप्रदेशकी ही नहीं, सारे भारतकी साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओंको छोड़कर, मासिक पत्रोंमें सबसे बड़ी ग्राहकसंख्या——१,५४,८८३ है गोरखपुरसे प्रकाशित होनेवाले हिंदी मासिक पत्र 'कल्याण'की। अब तो यह संख्या १,६५,००० से भी अधिक हो गयी है।

प्रश्न है कि 'कल्याण'को इस मूर्धन्य स्थानपर पहुँचानेका श्रेय किसको है? हर व्यक्ति मुक्तकण्ठसे स्वीकार करेगा——श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारको।

भारतकी धर्मप्राण जनता 'कल्याण'को जितने आदरकी दृष्टिसे देखती है, जितने प्रेमसे उसका पाठ और चिन्तन-मनन करती है, उतना सम्भवतः अन्य किसी पत्र-पत्रिकाका नहीं करती।

क्यों? कारण क्या है?

कारण स्पष्ट है।

एक तो भारतकी भूमि धर्मकी पवित्र भावनासे ओत-प्रोत है, दूसरे 'कल्याण'द्वारा उसकी मानसिक और आध्यात्मिक क्षुधाकी अत्यन्त सफलरूपसे तृप्ति होती है।

'कल्याण' एक सामान्य मासिक पत्र ही नहीं, एक संस्था है।

वह एक प्राणवान् संस्था है। उसके पीछे त्याग और तपस्या, धर्म और सदाचार, श्रद्धा और निष्ठाकी एक अविरल धारा है। इस धाराके जो प्रमुख स्रोत रहे हैं, उनमें श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम मुकुट-मणिकी भाँति देदीप्यमान है। उनकी ४४–४५ वर्षकी उत्कट साधनाने ही 'कल्याण'को इस मूर्धन्य स्थानपर पहुँचाया है।

महात्मा गांधीने उनसे कहा——"कल्याण'में विज्ञापन मत छापो, 'कल्याण'में ग्रन्थोंकी समालोचना मत छापो।" श्रीपोद्दारजीने इस आदेशको शिरोधार्य किया। इन दोनों नियमोंका पालन करनेसे 'कल्याण'की प्रतिष्ठामें तो चार चाँद लगे ही, दूसरोंके लिये भी एक उत्तम आदर्श मुखरित हुआ।

गोरखपुर-जैसे दूर-दराज स्थानसे प्रकाशित होकर 'कल्याण' दिन-दूनी, रात-चौगुनी उन्नति करता रहा, उसका एकमात्र कारण श्रीभाईजीकी अनवरत साधना और लगन ही थी। उनके मानसमें ओत-प्रोत भगवत्प्रेरणा ही उनसे इतना कठोर श्रम करा लेती थी, अन्यथा किसी सामान्य व्यक्तिमें इतना श्रम करनेकी सामर्थ्य कहाँ।

'कल्याण' मानवमात्रकी ही नहीं, प्राणिमात्रकी कल्याण-कामनाका आदर्श लेकर दिन-दिन प्रगति करता चला जा रहा है।

'कल्याण' अपने पवित्र उद्देश्यमें बहुत कुछ सफल हुआ है। गीताप्रेसके अनूठे और सस्ते

प्रकाशन धर्म-परायण जन-मानसपर अपना व्यापक प्रभाव डालनेमें समर्थ तो हुए ही हैं, देश-विदेशमें भी उनकी पर्याप्त ख्याति हुई है। श्रीभाईजीको ही इसका मुख्य श्रेय है।

उद्देश्य लाख अच्छे हों, पर उनका प्रभाव तभी पड़ता है, उनका असर तभी होता है, जब स्वयं उपदेष्टाके जीवनमें उक्त उपदेश व्यवहृत होता है। राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, ईसा और मुहम्मद, नानक और गांधीकी बातें बड़ा असर करती रही हैं—इसीलिये कि उनके पीछे वैसा व्यक्तित्व रहा है। अन्यथा आज उपदेशकोंका तो पार नहीं, पर होता है उनका कोई असर ? लोग मुँह बिचकाकर कह देते हैं —

उसकी बातोंसे समझ रक्खा है तुमने उसे खिज्र,
उसके पाँवोंको तो देखो कि किधर जाते हैं।

श्रीपोद्दारजीकी वाणीका, उनकी लेखनीका, उनके लिखे पत्रोंका असर क्यों होता था ? इसीलिये कि उनका व्यक्तित्व उन गुणोंसे ओत-प्रोत था, जिन गुणोंको वे समाजमें विकसित और प्रस्फुटित होते देखना चाहते थे।

उनका नम्रतापूर्ण व्यवहार, उनका उज्ज्वल चरित्र, प्राणिमात्रकी विना किसी भेदभावके सेवा—उनके जीवनके अनिवार्य अङ्ग थे। दुःखी और दीन, कष्ट और आपत्ति-ग्रस्त, रोग और व्यथासे पीड़ित प्राणी उनके आराध्य थे। तन-मन-वचनसे, रुपये-पैसेसे, मीठे वचनोंसे, सद्व्यवहारसे प्राणिमात्रकी सेवा करना उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। यही उनका धर्म था, यही उनका व्रत। 'कल्याण' और गीताप्रेस उनकी इस सेवाके अनुपम साधन थे। इनके माध्यमसे उन्होंने पीड़ित मानवताकी आजीवन सेवा की। उनके रोम-रोमसे मानो यह दोहा मुखरित होता था—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

ऐसे थे भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार !

मुझे कभी-कभी उनके चरणोंमें कुछ क्षण वितानेका तथा कभी-कभी उनके आदेशसे 'कल्याण'में लिखनेका अवसर मिला—यह मेरा परम सौभाग्य है।

परम प्रभुने उनका पार्थिव शरीर हमारे बीचसे उठा लिया, पर इससे क्या ? वे तो उन लोगोंमें थे, **'नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।'** वे अब अत्यन्त व्यापक होकर हमारे बीच आ बैठे हैं। हमारी दृष्टिमें तो भाईजी सच्चे अर्थमें एक 'संत' थे—संतके गुणोंके मूर्तिमन्त प्रतीक।

काश हम श्रीभाईजीके उज्ज्वल चरित्रसे प्राणिमात्रकी सेवाकी कुछ भी प्रेरणा ले सकें ! धन्य हो उठेगा हमारा जीवन। यही होगी उनके प्रति हमारी सर्वोत्तम श्रद्धाञ्जलि।

●

मर्यादापुरुष पोद्दारजी

श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा

चालीस वर्ष पूर्वकी बात है––मैंने हिंदीमें लिखना शुरू किया था। एक दिन मनमें आया––'कल्याण'में लेख भेजें; पर साहस नहीं हो रहा था। इतनी बड़ी पत्रिका और मैं नौसिखुआ लेखक! पर लिखकर भेज ही दिया। तुरंत उत्तर मिला, जिसमें सम्बोधन था––'मान्य महोदय!" हस्ताक्षर था––'हनुमानप्रसाद पोद्दार।' मुझे अभीतक स्मरण है मेरा उत्साह तथा आनन्द। एक छोकरेके प्रति एक सम्पादकका इतना विनम्र व्यवहार! आजतक मुझे इतना शिष्ट तथा विनम्र सम्पादक हिंदीमें नहीं मिला।

श्रीपोद्दारजीने भारतके धार्मिक साहित्यको जो परिष्कृत मोड़ दिया, 'कल्याण'के माध्यमसे आर्यधर्मकी जो सेवा की, उसकी अमर कहानीपर मैं क्या लिखूँ? मैं हिंदी-अंग्रेजीका एक लेखक होनेके नाते यह कह सकता हूँ कि पोद्दारजीने हिंदी-साहित्यकी जो सेवा की है तथा जिस प्रकार हिंदीमें धार्मिक विषयोंपर लिखनेवाले नये लेखक तैयार किये हैं, उसकी महिमा भी अपार है।

कभी-कभी पोद्दारजी कुछ महीनों ऋषिकेशमें प्रवास करते थे। चार वर्ष हुए मैं एक दिन वहाँ पहुँचा। मेरे साथ भूतपूर्व इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस, श्रीमहेशेन्द्रशंकर माथुर, उनकी पत्नी तथा कई अन्य मित्र थे। मध्याह्नोत्तर १ बजा था। पोद्दारजी कागजोंसे लदे-घिरे काम कर रहे थे। माथुरको संकोच हो रहा था कि अपरिचितके पास कैसे जायँ। हमको तेज भूख भी लगी थी, पर मैं न माना। कहा––'चलो, पाँच मिनटमें नमस्कार करके चल देंगे।'

पोद्दारजी अतिथि-सत्कारमें कितने कुशल थे, कितने विनम्र थे अपने अतिथियोंके प्रति–– इसका तभी अनुभव हुआ। कुछ ही देरमें हमारे अपरिचित मित्रोंसे उनकी ऐसी आत्मीयता हो गयी, जैसे बहुत पुरानी हो। हमें तो भूख लगी थी। भागना चाहते थे हम। पोद्दारजी बोले––

'बाबूजी (डा० सम्पूर्णानन्द) जब गोरखपुर आते थे, मेरे साथ भोजन अवश्य करते थे। आप बिना भोजन किये नहीं जा सकते।'

मुझे संकोच हुआ। मैंने कहा––'हमलोग कई व्यक्ति हैं।' उन्होंने कहा––'तब तो और आनन्द आयेगा।' हमारे साथ दारोगाजी थे। उन्होंने स्नान नहीं किया था। वर्दीमें थे। ब्राह्मण थे, बिना स्नान कैसे भोजन करते। चट धोतीका प्रबन्ध हो गया। सबको भूख लगी ही थी। बढ़िया भोजन मिला और पोद्दारजी हमें खिलाकर ऐसे संतुष्ट हो रहे थे, मानो हमने उन्हें कोई वरदान दे दिया हो। लौटते समय माथुर साहबने मुझसे कहा––

'भाई, इतना भला आदमी बिरले ही मिलता है।'

मैं मानव-जीवनकी परख साधारण बातोंसे करता हूँ। विद्वान्, गुणी तथा योगी तो मनुष्य स्वयं होता है; पर दूसरेको उसके सम्पर्कमें आकर उसके साथ व्यवहारमें जो अनुभूति

होती है, उसीसे उसकी मर्यादा पहचानी जाती है। पोद्दारजीसे मेरा पुराना सम्पर्क एवं सम्बन्ध रहा है। वे जानते थे कि मैं लेख लिखता हूँ तो पैसा लेता हूँ। उधर मुझे संकोच बना हुआ था कि 'कल्याण'के सुन्दर अङ्क तथा गीताप्रेसके प्रकाशन मुझे वे मुफ्तमें भेजते हैं। दोनों अपने संकोचमें थे। एक दिन वे मुझसे हँसकर बोले——

"आप मुझे लिखते हैं कि 'अमुक पुराणकी पुस्तक आपने मुझे मुफ्त भेज दी; इससे मुझे संकोच है'; पर मैं तो आपको लेखके लिये कुछ नहीं देता।" ऐसा था उनका स्नेहभरा व्यवहार!

मैंने उन्हें निजी व्यवहारमें मर्यादापुरुष, आदर्श नागरिक तथा सच्चा मित्र पाया। आजकल ऐसे महापुरुष कम मिलते हैं——बिरले ही मिलते हैं। मैं उन्हें हर दृष्टिसे——'स्वयं चिद्रूपलक्षणः' पाता हूँ।

●

उत्कृष्ट कर्मयोगी

जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती

नित्यलीलालीन हनुमानप्रसादजी पोद्दार एक उत्तम सनातनी और उत्कृष्ट कर्मयोगी थे। उन्होंने अपने हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णको स्थान दिया; अतः कलिकालके युद्ध-स्थलमें गीताप्रेसकी अमूल्य सेवाओंके बहाने उन्हींके मुखारविन्दसे मानो गीताका ही उपदेश फिरसे करवाया गया। 'कल्याण' जो इस यन्त्रयुगमें सर्वाधिक प्रचारित पत्र है, मानो विश्वकल्याणका मन्त्र है। इस पत्रने चित्रकलाके इतिहासमें भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। अंग्रेजीमें प्रकाशित 'कल्याण-कल्पतरु'को 'कल्याण'का ही दूसरा रूप समझना चाहिये। 'कल्याण'को हम यदि श्रीहनुमानप्रसादजीका सूक्ष्मशरीर कहें तो अत्युक्ति न होगी। श्रीहनुमानप्रसादजीके चित्तमें वेद-वेदाङ्गोंकी प्रतिष्ठा थी। 'कल्याण'ने पुराण, महाभारत, रामायण, उपनिषद्, भक्तिसूत्र, योगसूत्र, ब्रह्मसूत्र एवं श्रीभागवत आदि ग्रन्थोंके साथ-साथ देश-विदेशके धर्मगुरु, संतों, तपस्वियों और महात्माओंके चरित्र भी प्रकाशित किये हैं। इतना ही नहीं, गीताप्रेसने व्याकरणके भी ग्रन्थ प्रकाशितकर संस्कृत भाषाका महान् उपकार किया है। पोद्दारजीकी इस सेवासे सनातनी समाजका महान् कल्याण हुआ है। अज्ञ समाजसे विज्ञ समाजतक, ग्रामीणसे नागरिकतक——सभी पोद्दारजीकी धर्म-सेवासे लाभान्वित हुए हैं। इस परिमाणमें सनातनधर्मकी साहित्यिक सेवा इस शतीमें अन्य किसी व्यक्ति अथवा संस्थाके द्वारा नहीं हुई है।

भगवान्से प्रार्थना है कि श्रीपोद्दारजी-जैसे कर्मयोगी इस देशको सदा सुलभ रहें।

●

जागतिक कल्याण-पथके पथिक श्रीभाईजी

पद्मभूषण महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथ कविराज

कर्मयोगी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)ने दीर्घकालतक 'कल्याण'के सम्पादनद्वारा एवं गीताप्रेस संस्थाके कर्णधारके रूपमें समाज और साहित्यकी सेवाद्वारा जिस आदर्शकी स्थापना की है, वह इस युगमें एक परम दुर्लभ बात है।

हिंदी मासिकपत्र 'कल्याण'के प्रकाशनके प्रारम्भसे ही श्रीभाईजीके साथ मेरा परिचय था एवं वह सम्बन्ध उनके लीला-संवरण करनेतक घनिष्ठभावसे अक्षुण्ण रहा है। मैं उनके असामान्य व्यक्तित्व और धर्मके प्रति अकपट निष्ठाका सम्मिश्रण देखकर एवं लोकसेवाके प्रति हृदयकी तीव्र आकाङ्क्षा समझकर उनके प्रति आकृष्ट हुआ और सचमुच ही अतिशय आनन्द पाता रहा। कहना न होगा कि उनके चरित्रगत सौन्दर्य और महत्त्वके कारण ही उनके द्वारा परिचालित 'कल्याण' नामक पत्रिकामें शास्त्रीय और सिद्धान्त-विषयक नाना प्रकारके लेख भेजनेको उत्साहित हुआ था। 'कल्याण' पत्रिकाके साथ संलग्न गीताप्रेस नामक कर्मक्षेत्रमें उद्यमशील कर्मियोंके संघकी निष्ठा, विश्वास, अध्यवसाय, शुद्ध और सरल जीवनके प्रति अनुराग, आस्तिक्यकी नीति और आध्यात्मिक विश्वास सर्वथा प्रशंसनीय हैं। सद्‌गुणोंद्वारा अलंकृत इन सब बहुसंख्यक युवकोंने इस संस्थानको एक आदर्श कर्मक्षेत्रके रूपमें परिणत कर दिया। श्रीभाईजीकी बहुमुखी प्रतिभाने सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें नाना प्रकारसे लोकका कल्याण-साधन किया है। जिन लोगोंने कार्यकारिणीके सदस्य एवं लेखककी हैसियतसे उनके साथ सम्बन्ध-स्थापन किया है, वे भी अपने जीवनमें आध्यात्मिक और नैतिक उत्कर्ष लानेके लिये भाईजीके ऋणी हैं।

अर्थलाभकी ओर दृष्टि न रखकर, जिससे समाजके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्तिको प्राचीन धर्म और नीतिका सारभूत ज्ञान प्राप्त हो सके, इसके लिये यत्न करना—गीताप्रेसका एक महनीय आदर्श है। इस महान् संगठन एवं कर्मीसंघके जीवनादर्शके मूलमें है श्रीमान् पोद्दारजीकी विशुद्ध जीवनधारा। उन्होंने न केवल एक पत्रिका (कल्याण)को भारतवर्षमें एवं भारतवर्षके बाहर भी भिन्न-भिन्न देशोंमें जनप्रिय बनाया है, अपितु बहुत लोगोंके मनोंमें भी आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न की है, जिसके फलस्वरूप उन सब व्यक्तियोंका जीवन वैशिष्ट्यसम्पन्न होकर लोक-सेवाके आदर्शके रूपमें जगत्‌के समक्ष प्रकाशित हुआ है। पोद्दारजी जीवनमें जिस आदर्शको सामने रखकर अग्रसर हुए, वह था लोकसेवाके असामान्य नैतिक आदर्शकी प्रेरणाद्वारा जीवन-संचालन एवं इसके साथ-साथ सबके मूलमें था भगवत्प्रेम एवं सेवाभक्तिका उत्कर्ष। उनकी इच्छा रही कि इस पथमें वे अकेले ही क्यों, सभी मनुष्य सम्मिलितरूपमें अग्रसर हों, जिसके फलस्वरूप इस अविश्वासके युगमें वास्तविक मङ्गल आविर्भूत हो।

उनके चरित्रगत महत्त्वपर मैं बहुत ही मुग्ध हूँ, यद्यपि यह बात जगत्‌को कहनेकी वस्तु

नहीं है। आजके युगमें जो लोग जगत्का कल्याण करनेमें लगे हैं, वे साधारणतया बहिर्मुख होते हैं; किंतु भाईजी अन्तर्मुख थे और अपनी ऊर्ध्व दृष्टिकी रक्षा करते हुए, प्राचीन आदर्शको शिरोधार्यकर तथा व्यक्तिगत एवं समष्टिगत सामाजिक कर्तव्यका पालन कर उन्होंने उच्च आदर्शकी स्थापना की। वे ही वास्तवमें 'कर्मवीर' थे।

उनके आदर्शको लेकर यदि सर्वत्र देशका कल्याण-साधन करनेकी चेष्टा की जाय तो आज जो निरन्तर अनर्थ हो रहे हैं, वे नहीं होंगे तथा देश और समाजका वातावरण शुद्ध एवं निर्मल हो जायगा। 'ऐहिक कल्याण'के मार्गसे 'पारमार्थिक कल्याण'का पथ खुल जायगा। उनका नाम था––'भाईजी'। वास्तवमें सभीके वे 'भाई' थे। जिससे सबके दुःखोंकी निवृत्ति हो, इस लक्ष्यको लेकर उन्होंने अपना व्यक्तिगत एवं समाजिक जीवन गढ़ लिया था।

जीवन-कर्म-स्रोतके मध्य सतत प्रवाहित होते हुए भी, उनमें साधन एवं भक्तिकी अन्तःसलिला भगवदभिमुखी होकर निरन्तर प्रवाहित होती रही तथा वे अन्तमें साधनोचित धामको प्रस्थान कर गये।

वे जीवनके अन्ततक कर्मविमुखताका त्याग करके मानवके हित-साधनमें रत रहे। वे देशके रत्न थे। उन्होंने अपनी प्रभाका विस्तार करके देशके शिरोमणि रूपमें सुदीर्घ जीवन-लाभ किया। उन अजातशत्रु, विश्वहितेच्छु एवं महान् पुरुषका परम पवित्र आदर्श सर्वत्र लोक-हृदयमें विराजित हो और सात्त्विक कर्मकी धारा अक्षुण्ण रहे––हम यह कामना करते हैं।

●

दिनकर उगता, रजनी आती, कालचक्र चलता अविराम।
जीवमात्र निज-निज रुचिके करते भले-बुरे सब काम॥
पर जाती न वृत्ति अन्तरकी काल-कर्म-कर्त्ताकी ओर।
रहती नित्य एक ही रसके आस्वादनमें मत्त––विभोर॥

सोते-जगते होते रहते सहज प्रकृतिवश सारे काम।
किंतु बसा रहता मनमें कुछ 'अन्य-विलक्षण' आठों याम॥
नहीं हटाया हटता पलभर, नहीं छूटता किसी प्रकार।
दुःख परम शुचि नित्य परम सुख देता रहता वह अविकार॥

––श्रीभाईजी

●
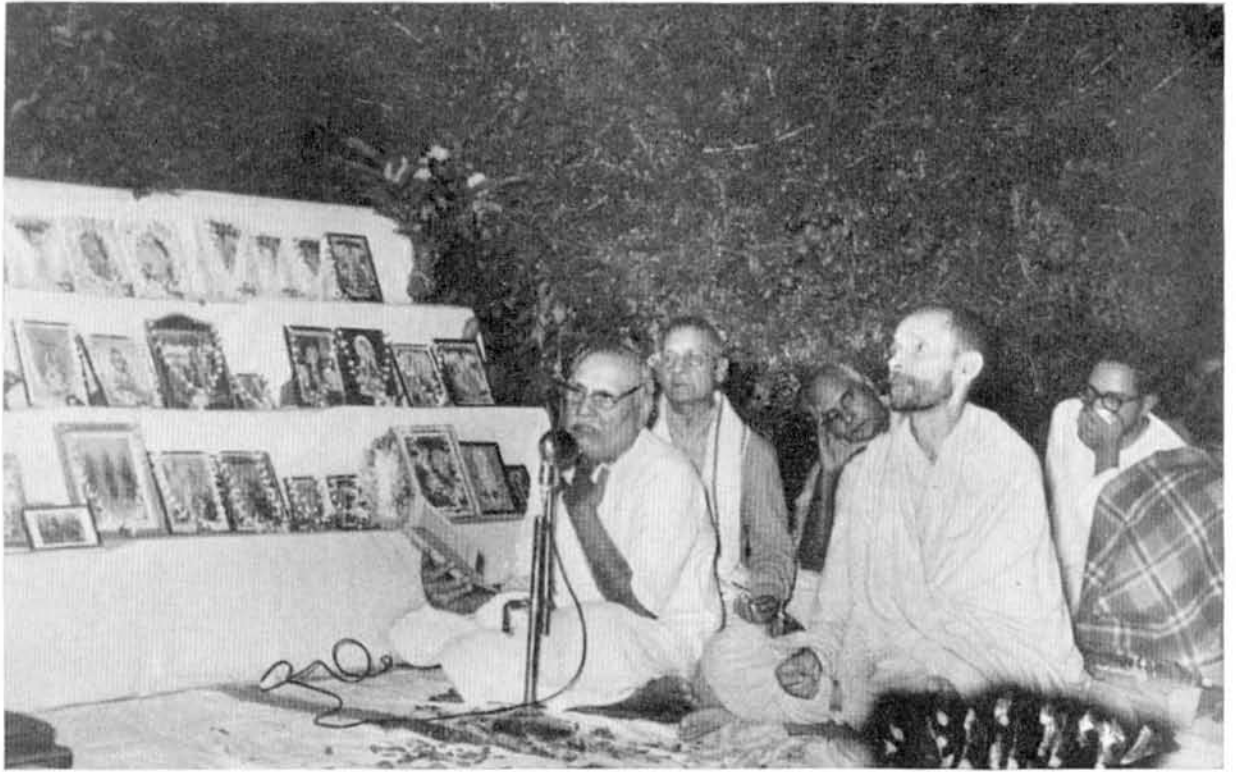
रासपूर्णिमाके उत्सवमें भाईजी एवं बाबा

अप्रतिम-गंगानिष्ठा

(ऋषिकेश प्रवासके समय रुग्णावस्थामें भी नियमित गंगास्नान)
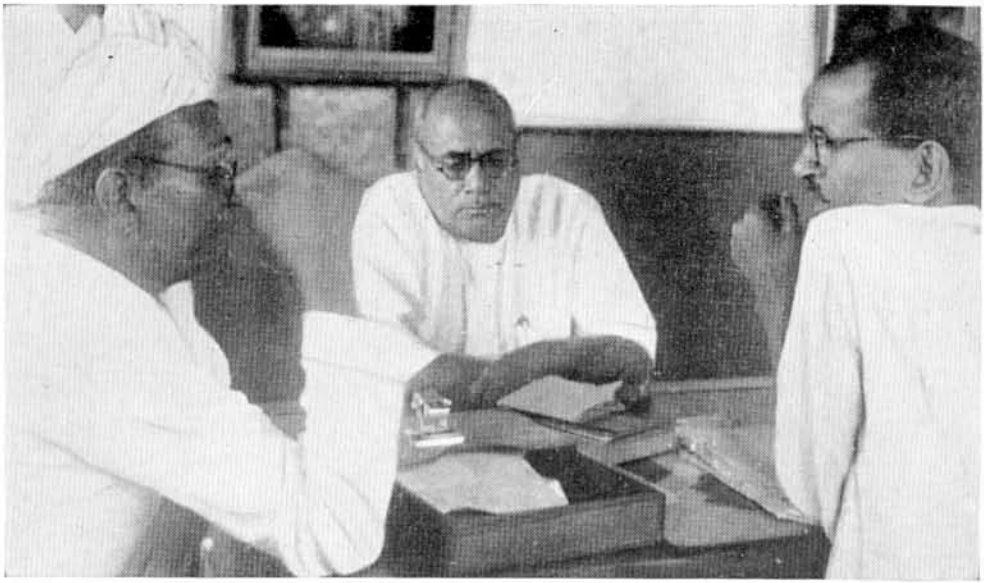
श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा श्रीमोहनलालजी गोयन्दकाके साथ गीताप्रेसके सम्बन्धमें निर्णय लेते हुए
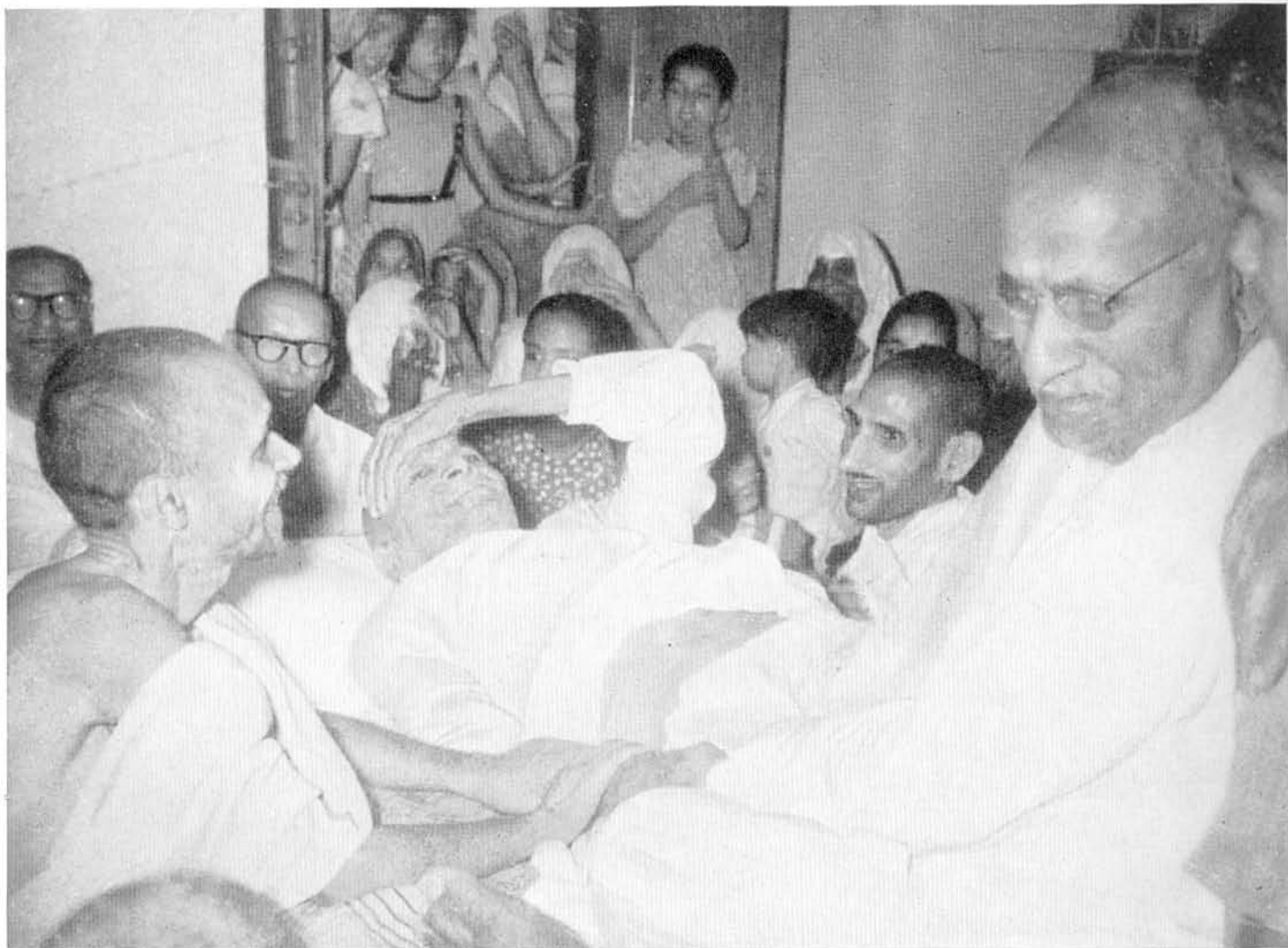
श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी रुग्णावस्थामें उनके समीप बैठे हुए भाईजी एवं बाबा

भगवत्कृपाप्राप्त अधिकारी महापुरुष

स्वामी श्रीआत्मानन्दजी

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, कर्मयोग——सभीमें पूर्ण अनुभवयुक्त एक महान् अधिकारी, आचार्यकोटिके महापुरुष थे । प्रत्येक आध्यात्मिक अधिकारी साधकको आरम्भसे लेकर अन्तिम स्थितितक उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता था । यद्यपि श्रीभाईजी विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त किये हुए विद्वान् नहीं थे, किंतु अपनी साधनाके अभ्यास-बलसे उन्होंने जो विद्वत्तापूर्ण कार्य किया, वह अनिर्वचनीय है । परमश्रद्धेय ब्रह्मलीन सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी अनुकम्पा और प्रेरणासे 'कल्याण' और गीताप्रेसका जो कार्य श्रीभाईजीने किया, उससे हम सभी प्रभावित हैं, और हम सभी उनके गुणों और कार्योंका कृतज्ञतापूर्वक आदर करते हैं ।

उनकी साधनाका श्रीगणेश सन् १९१६ ई० में जेलके भीतर हुआ । तभीसे उनके जीवनमें भगवन्नाम-जप और भगवान् विष्णुके ध्यानकी साधना आरम्भ हुई । भगवन्नाम-जपका अभ्यास तो उनके जीवनमें आरम्भसे अन्ततक अनिर्वचनीयरूपमें रहा । उनके भाषणों और लेखोंमें वर्णित नाम-जपका माहात्म्य अद्भुत और विलक्षण है । सन् १९२० में बम्बईमें ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्सङ्गसे उनकी निर्गुण-निराकार-उपासनामें प्रवृत्ति हुई, जिससे एकान्तमें अचिन्त्य और व्यवहारमें समष्टि-द्रष्टाका ध्यान होकर ब्रह्मभूत स्थिति होने लग गयी । इसके थोड़े ही दिनों बाद भगवान्‌की विशेष कृपासे उन्हें सगुण-साकार स्वरूपकी विलक्षण स्थिति प्राप्त हुई, जिससे उनकी साधना सगुण-साकार-उपासना-प्रधान बन गयी और भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनकी उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो गयी । संवत् १९८३ में जब वे 'कल्याण' और गीताप्रेसके कार्य-संचालनके लिये गोरखपुर आ गये, तब उनकी भगवद्दर्शनकी लालसा दिनोंदिन बढ़ने लगी । संवत् १९८४ के आश्विन शुक्लपक्षमें जसीडीहमें ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी उपस्थितिमें उन्हें भगवान् विष्णुका साक्षात्कार हुआ; उसके बाद वे अपनी निर्गुण-निराकारकी स्थितिकी भी पूर्णताका अनुभव करने लगे । भगवत्प्रेरणासे उनके द्वारा 'कल्याण' और गीताप्रेसका कार्य सहजवृत्तिसे होने लगा । इसके कुछ वर्षों बाद उनकी वृत्ति भगवान् श्रीकृष्णके माधुर्य-रसके आस्वादनमें तल्लीन रहने लगी । इन वर्षोंमें उन्हें श्रीराधामाधवके माधुर्य-रसका जो अनुभव हुआ, उसका उन्होंने अपने भाषणों, लेखों और कविताओंमें बहुत विशद वर्णन किया है; उससे उनके साहित्यका अध्ययन करनेवाले पाठक प्रायः परिचित ही होंगे ।

मेरा श्रीभाईजीसे संन्यास लेनेके पूर्व लगभग ४० वर्षोंतक विशेष सम्पर्क रहा है । संन्यासके बाद भी इन आठ वर्षोंमें वही सम्बन्ध बना रहा । श्रीभाईजीसे मुझे साधनामें जो सहयोग मिला, वह अवर्णनीय है । उनकी अहैतुकी कृपासे ही मैं आज इस स्थितिमें पहुँचा हूँ । यद्यपि मेरे अंदर बहुत कमजोरी है, किंतु वह मेरे स्वभावका दोष है । श्रीभाईजीने अन्तिम समयतक मुझपर जो अनुकम्पा और प्रेम रखा, उसे स्मरणकर हृदय गद्गद हो जाता है । उनके गुण, व्यवहार और स्थितिके सम्बन्धमें भी और अधिक लिखनेमें मैं असमर्थ हूँ ।

जीवन्मुक्त भाईजी

श्रीजयन्तीलाल ना० मान्कर

ऐसे समयमें जब कि देश सांस्कृतिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक पतनके कगारपर खड़ा है, भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार-जैसे हिंदू-संस्कृतिके अभिमानी और प्रगतिशील आध्यात्मिक महापुरुषका उठ जाना राष्ट्रके लिये बड़ा दुर्भाग्यजनक है। श्रीपोद्दारजी एक निःस्पृह और आत्म-समर्पित मानवतावादी व्यक्ति थे, जिनका जीवन श्रीमद्भगवद्गीताके आदर्शपर प्रतिष्ठित था। वे समस्त भूतप्राणियोंके कल्याणके लिये जिये और उसीके लिये उन्होंने महाप्रयाण किया। वे निश्चय ही उच्चकोटिके आध्यात्मिक पुरुष थे।

वे समस्त जीवोंमें समान आत्माके दर्शन करते थे। इसी उद्देश्यको दृष्टिमें रखते हुए उन्होंने सुप्रसिद्ध 'कल्याण' मासिकका सम्पादन किया और गीताप्रेसके द्वारा अनेक मूल्यवान् ग्रन्थोंका प्रकाशन करवाया। वे इस संस्थाकी आत्मा थे और उन्होंने गीताप्रेसके संस्थापक महात्मा श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ देशमें सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जागरणका अथक प्रयत्न किया तथा मानव-समाजमें मैत्री और करुणा आदि उदात्त भावनाएँ जाग्रत् कीं; क्योंकि वे जानते थे कि मैत्री और करुणा——इन दो व्यापक सिद्धान्तोंके ऊपर ही विश्वकी शान्ति, खुशहाली और आत्मिक उन्नति निर्भर करती है। इन गुणोंके अभावमें ही आज मानव-जातिमें भीतरी और बाहरी द्वन्द्व और संघर्ष व्याप्त हैं और इसी कारण लोग धर्मके शाश्वत अर्थको समझनेमें असमर्थ हैं।

'कल्याण' पत्र और गीताप्रेसकी नीति वैदिक सिद्धान्तों और उनके यथार्थ क्रियान्वयनपर आधारित तथा अन्धविश्वास, अज्ञान एवं संकुचित साम्प्रदायिक विचारोंसे मुक्त रही है। यही कारण है कि जब कभी किसी भी स्थानपर मानवताके लिये संकट उपस्थित हुआ, श्रीजयदयालजी गोयन्दका और श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके प्रेरणाप्रद निर्देशन और आशीर्वादके अन्तर्गत गीताप्रेसके निष्काम कार्यकर्ता सहायताके लिये दौड़ पड़ते थे। इन दोनों महानुभावोंने मानवताकी रक्षामें महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इन्होंने अकाल आदि दैवी संकटोंके समय पशुओंकी भी उसी श्रद्धा और निष्ठाके साथ सेवा की और इस तरह हिंदू-धर्मके उदात्त सिद्धान्तोंके गौरवकी रक्षा की। सन् १९३९ ई० में जिस समय पंजाबके हिसार इलाकेमें भीषण अकाल पड़ा और महात्मा गांधी, ठक्कर बापा और ला० हरदेवसहायकी इच्छानुसार मैंने 'बम्बई जीवदया मण्डल'के तत्त्वावधानमें राहतका कार्य आरम्भ किया, उस समय मुझे गीताप्रेसके निष्काम सेवकोंकी सेवाओंको देखनेका अवसर मिला। इनके द्वारा एक हजार गौओंका एक सेवा-शिबिर चलाया जा रहा था, जिसका आगे चलकर संचालन-भार हमें सौंपा गया। इस प्रकारके दैवी संकटोंके अवसरपर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके नेतृत्वमें गीताप्रेस बड़े उत्साहके साथ मनुष्यों और पशुओं-की सहायताका कार्य करता रहा है।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सम्पूर्ण शक्ति गौ, गङ्गा, गायत्री, गौरी और गीताकी

प्रतिष्ठाकी रक्षाके कार्यमें लगती थी और इस प्रकार उन्होंने हिंदू-संस्कृतिके यशको उज्ज्वल किया। यद्यपि श्रीपोद्दारजी उग्र विचारवाले नहीं थे; तथापि जब कभी धर्म और संस्कृतिकी रक्षाके लिये संत-महात्माओंने संघर्ष किया, तब वे शक्तिस्रोत बनकर सामने आये। जिस समय सम्पूर्ण गोवंशकी हत्याके निरोधके लिये आन्दोलन चला, सरकारसे लाखों लोगोंने गोरक्षासम्बन्धी संवैधानिक उत्तरदायित्वको पूर्ण करनेकी माँग की, तब भाईजीने बड़ी वीरताके साथ इस संघर्षमें सक्रिय योगदान किया।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार निःस्पृह व्यक्ति थे। अपने विचारोंमें बहुत स्पष्ट, सिद्धान्तोंके प्रति बड़े दृढ़ और विचारपूर्वक आगे कदम बढ़ानेवाले थे। इन उच्च आदर्शों, त्याग तथा साधनाके बलपर उन्होंने सबका स्नेह और आदर प्राप्त किया तथा स्वयं जीवन्मुक्त हो गये। श्रीपोद्दारजीके निधनसे निश्चय ही राष्ट्रकी अपरिमित क्षति हुई है, जिसकी पूर्ति होना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। भाईजीके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि देशवासी उनके महान् जीवनसे सदा प्रेरणा प्राप्त करते रहें।

●

मैंने कभी न चाहा तुमको, तुमने चाहा बारंबार।
बिना बुलाये ही आ हियमें, दर्शन दिये, किया अति प्यार॥
नित आदरके बदले तुमने मुझसे पाई निज दुतकार।
दूर चले जानेपर मुझको खींच लिया नित भुजा पसार॥

'लौटो, उस पथपर मत जाओ' कहा कानमें कितनी बार।
तब भी चला गया, लौटानेको तुम दौड़े प्रिय ! हर बार॥
चिर अपराधी, पापीका तुमने हँस, उठा लिया सब भार।
मेरी निज निर्मित विपदासे गोद उठाकर लिया उबार॥

—श्रीभाईजी

●

ऋषिकल्प श्रीभाईजीकी पुण्यस्मृतिमें

पद्मभूषण डा० श्रीभीखनलालजी आत्रेय

भारतवर्षका यह सौभाग्य रहा है कि जब-जब धर्मका ह्रास हुआ है, तब-तब सृष्टि-कर्त्ता और संसारचालक भगवान्ने यहाँपर किसी-न-किसी रूपमें अवतीर्ण या प्रकट होकर धर्मका उद्धार किया है। भगवान्का अवतार अनेक रूपोंमें होता है--मनुष्यरूपमें तो होता ही है, वह ग्रन्थों और पुस्तकोंके रूपमें भी होता आया है--जैसे वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, रामचरितमानस, गुरुग्रन्थसाहब, संतोंकी वाणियाँ आदिके रूपमें भगवान्ने प्रकट होकर डूबते हुए धर्मका उद्धार किया है। आधुनिक समयमें जिन रूपोंमें भगवान्ने प्रकट होकर धर्मकी रक्षा और उद्धार किया है, उनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, महामना मदनमोहन मालवीय, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार और उनके द्वारा प्रवर्तित पत्रिकाएँ 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' तथा गीताप्रेससे प्रकाशित अन्य ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा धर्मका उद्धार और प्रचार बहुत उत्तम रीतिसे भारतीय जनतामें तथा विदेशोंमें भी प्रचुरमात्रामें हुआ है और हो रहा है।

'कल्याण' और गीताप्रेसके सम्पादक एवं संचालक ऋषिकल्प श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अपने विश्व-बन्धुत्वके कारण 'भाईजी' नामसे विख्यात थे। वे एक आदर्श व्यक्ति थे और सभी वाञ्छनीय सद्गुणोंसे विभूषित थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन भगवान्के अर्पण करके धर्म-प्रचार और दीन-दुःखी मनुष्योंकी सेवामें लगा दिया था। मैं तो उनको भगवान्की विभूतिका अवतार मानता हूँ। मेरा उनसे कोई विशेष व्यावहारिक सम्पर्क नहीं रहा; पर जो थोड़ा सम्पर्क दैवयोगसे और मेरे सौभाग्य तथा पूर्वजन्मके पुण्योंके कारण हुआ है, उसका मैं यहाँपर संकेत करते हुए उनके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ।

बहुत वर्ष पूर्वकी बात है, जब मैं एक अज्ञात और साधारण अध्यापक (हिंदू विश्वविद्यालय, काशीमें) ही था, मुझे भाईजीका एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने मुझसे 'कल्याण'के विशेषाङ्क 'ईश्वराङ्क' के लिये एक लेख लिखनेका आग्रह किया। यह समझकर कि इस वर्तमान वैज्ञानिक युगमें पाश्चात्य देशोंमें प्रचलित और वहाँसे भारतमें आया हुआ प्रकृतिवाद (Materialism) ही ईश्वरकी सत्तामें विश्वासके मार्गमें एक महान् रुकावट है, मैंने एक लेख प्रकृतिवादकी वैज्ञानिक और दार्शनिक आलोचनापर लिखकर भाईजीके पास भेज दिया। उन्होंने उसे पसंद किया और 'ईश्वराङ्क'में प्रकाशित कर दिया। उस लेखके लिये श्रीभाईजीने बहुत आभार प्रकट किया और मेरे पास पुरस्कारस्वरूप कुछ द्रव्य भिजवाया। मैंने उनको लिखा कि लेख पैसा प्राप्त करनेके लिये नहीं लिखा गया था और भविष्यमें मैं कभी 'कल्याण'से अपने लेखोंका पुरस्कार प्राप्त करना नहीं चाहूँगा। इस छोटे-से त्यागकी भावनासे भाईजी इतने प्रसन्न हुए कि तबसे लेकर आजतक मेरा नाम उन व्यक्तियोंमें लिखा गया, जिनको मासिक और वार्षिक 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु' बराबर निःशुल्क भेजे जा रहे हैं। मैंने वर्षोंसे न कोई लेख और न कोई पैसा

'कल्याण'के लिये भेजा है। यह भाईजीकी पहली कृपा मेरे ऊपर हुई, जिसको मैं कभी नहीं भूल सकता।

कुछ वर्ष पहले जब मैं प्रथम बार 'गोरखपुर विश्वविद्यालय'के किसी कामसे गोरखपुर गया, तब मैंने गीताप्रेसके भी दर्शन किये। भाईजीको जब यह ज्ञात हुआ कि मैं वहाँपर आया हुआ हूँ, तब उन्होंने एक बड़ा बंडल गीताप्रेससे प्रकाशित बहुमूल्य ग्रन्थों—उपनिषद्, महाभारत, भागवत, रामचरितमानस आदिका मुझे सादर और सम्मानके साथ भेंट किया। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और मैं बहुत कृतज्ञ हुआ। यह उनकी मेरे ऊपर महान् कृपा थी और मैंने उन ग्रन्थोंका अवलोकन करके जीवनमें बहुत लाभ उठाया है।

जब मेरी पुस्तक 'योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त' प्रकाशित हुई, तब मैंने भाईजीको उसकी एक प्रति भेंटके रूपमें भेजी। उसको पाकर उन्होंने मुझे प्रोत्साहन दिया, जो उनके इन शब्दोंसे प्रकट होता है—"योगवासिष्ठको प्रकाशमें लाकर तथा उसके दार्शनिक उच्च सिद्धान्तोंको जनताके सम्मुख रखकर—विशेषतः विदेशी विद्वानोंकी आँखें खोलकर, आपने भारतीय गौरव और आदर्शका मुख उज्ज्वल किया है। वस्तुतः इस दिशामें यदि आप प्रयत्नशील न होते तो बहुत दिनोंतक यह ग्रन्थरत्न अन्धकारमें ही पड़ा रहता तथा भारतवर्षके बाहरके लोग इसके विषयमें सर्वथा अनभिज्ञ रहते। भारतीय संस्कृतिके इतिहासको गौरव प्रदानकर आप कोटि-कोटि हृदयोंके धन्यवादके पात्र बने हैं।"

पाठक सोच सकते हैं कि इन शब्दोंका लेखक कितने उदार हृदयका होगा और इन शब्दोंको पढ़कर कितना प्रोत्साहन किसी व्यक्तिको प्राप्त हो सकता है। कई बार मुझे प्रोत्साहन देनेके लिये उन्होंने अंग्रेजीमें भी पत्र लिखे। मैंने उनके शब्दोंको एक महान् आत्मा और संतके आशीर्वादरूपमें लिया था और उनका आशीर्वाद समय आनेपर सफल हुआ। भाईजीका आशीर्वाद अमोघ था और उसने अपना प्रभाव प्रकट किया।

कुछ वर्ष पहले 'देहरादून-मसूरी रोडपर स्थित 'आत्रेयनिवास'पर 'दर्शन-मनोविज्ञान और परामनोविद्या'की एक शोध-संस्थाके उद्घाटनके अवसरपर एक निमन्त्रण-पत्र श्रीभाईजीके पास भी भेज दिया गया था। उन्होंने अपने अमूल्य आशीर्वादके साथ एक बहुत बड़ा बंडल गीताप्रेससे प्रकाशित बहुमूल्य पुस्तकोंका भी संस्थाके नाम भिजवा दिया। श्रीभाईजीद्वारा भेजी गयी पुस्तकें खूब पढ़ी जाती हैं और उनसे पाठकोंको बहुत बड़ा आध्यात्मिक लाभ होता है।

एक बार मैं भाईजीका दर्शन करने गोरखपुर गया। उस समय वे गीतावाटिकामें उपस्थित थे। पहुँचनेपर वे उठकर मिलनेको आये, बड़े प्रेमके साथ मिले और घंटोंतक विविध आध्यात्मिक एवं धार्मिक विषयोंपर बात करते रहे। इस वार्तालापमें लेखकको उच्चकोटिके सत्सङ्गका लाभ प्राप्त हुआ। उस समयकी बहुत-सी बातें लेखकके हृदय-पटलपर अङ्कित हैं और जीवनके लिये पथ-प्रदर्शक बनी हुई हैं।

ये कुछ बाह्य अनुभव हैं। आन्तरिक अनुभव वाणीमें व्यक्त नहीं हो सकते। सचमुच भाईजी एक विलक्षण महापुरुष थे, जिनके लिये 'महान् महात्मा' और 'परोपकारी पुरुष' शब्दोंका प्रयोग तो बहुत नगण्य है। वे कितने महान् थे, इसका अंदाजा लगाना बहुत कठिन है।

●

प्रकृत वैष्णव

डा० श्रीनीरजाकान्तजी चौधुरी (देवशर्मा)

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

'प्रकृत वैष्णव अपनेको तृणसे भी सुनीच समझे । वृक्षको काटनेपर भी जैसे वह काटने-वालेको भी छाया तथा फल आदि प्रदान करनेसे विरत नहीं होता, उसी प्रकार अत्याचारपर भी वैष्णव सहिष्णु बना रहे । स्वयं मान्यताको तुच्छ समझते हुए औरोंको मान्यता प्रदान करे तथा अविरल हरिनाम-कीर्तन करे ।'—यह स्वयं श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवकी उपदेश-वाणी है ।

परंतु इस प्रकारका प्रकृत वैष्णव क्या आज कोई है ? एक व्यक्ति थे; हमने उनको देखा है, और देखकर धन्य हो गये हैं । वे थे हमारे 'भाईजी'—प्रकृत वैष्णव हनुमानप्रसादजी । उनके भीतर जो गुण थे, उनमेंसे मैं कुछको ही जानता हूँ; तथापि जितना अनुभव किया है, उतना कहनेकी चेष्टा कर रहा हूँ ।

भाईजी 'कल्याण'के सम्पादक थे । सनातनधर्म-जगत्के प्रकृत अभ्युदय और निःश्रेयसके एकमात्र निर्धारक थे । आज 'कल्याण' उसी सनानतधर्मकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है । यह केवल भारतकी ही नहीं, एशियाकी—यहाँतक कि सारे संसारकी प्रधान धर्म-पत्रिकाओंमें है । इसकी उपमा यही है । सामान्य रूपमें आरम्भ करके असाधारण प्रतिभाके बलसे उन्होंने इस 'कल्याण'का विकास किया है । आज इसकी प्रचार-संख्या प्रायः एक लाख सत्तर हजार है । यदि दस आदमी भी एक अङ्कको पढ़ते हों तो प्रायः बीस लाख नर-नारी इससे यथार्थ 'कल्याण' प्राप्त करते हैं । 'कल्याण'-की कई विशेषताएँ हैं । यह विज्ञापन नहीं लेता, अर्थात् व्यवसायी नहीं है । कोई समालोचना या दूसरे धर्मकी निन्दा इसमें नहीं होती । साथ ही इसका आदर्श वर्णाश्रमधर्मकी प्रतिष्ठा है । 'कल्याण'की छपाई, चित्र, भाषा–सभी सुन्दर हैं । श्रेष्ठ ज्ञानीजनोंके लेख चाहे किसी भी भाषाके हों, उनका हिंदीमें अनुवाद कराया जाता है । विशेषाङ्कोंकी कोई तुलना नहीं है । एक-एक विशेषाङ्क इतने समृद्ध हैं कि सोनेसे तौलनेपर भी उनका मूल्य नहीं हो सकता, तथापि पोद्दारजी यह अमूल्य धन प्रायः कागजके मूल्यमें देशवासियोंमें वितरण करते रहे हैं । आज मनमें आता है कि एक व्यक्ति अपने जीवनमें 'कल्याण'के इन सारे विशेषाङ्कोंको पढ़ पायेगा या नहीं, इसमें संदेह है । वे इस अमूल्य, अनन्त ज्ञान और भक्तिके समुच्चय, अक्षय भंडारको हमें दे गये हैं; उनका यह अवदान अपूर्व है ।

मैं 'कल्याण'का एक मुग्ध पाठक और सामान्य लेखक हूँ । 'गो-अङ्क'में मेरा 'गौ-ब्राह्मण और जगच्चक्र' शीर्षक लेख सबसे पहले निकला था । उसके बाद दूसरे प्रबन्ध छप चुके हैं और छप रहे हैं । मेरा ज्ञान और बुद्धि सीमित है, परंतु न जाने भाईजीने मेरे भीतर क्या देखा था, उन्होंने मेरा कोई लेख कभी वापस नहीं किया ।

प्रायः १७ वर्ष पूर्वकी बात है, उस समय मैं इन्दौरमें नियुक्त था। सहसा एक दिन दोपहरको भाईजीका मेरे घर शुभ पदार्पण हुआ। वे तीर्थ-यात्रा-गाड़ीसे भारतके तीर्थोंका भ्रमण करनेके लिये निकले थे। इन्दौर पोस्ट आफिससे मेरा पता-ठिकाना पूछकर मिलने आये थे। यह कितने प्रेमकी बात है—मैं क्या बतलाऊँ? घरका तैयार किया 'संदेस' (मिठाई-विशेष) उनको जलपानके लिये दिया था और दिया था अपने गुरुदेवका संवाद। अनन्तश्री श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज उस समय खण्डवा जिलेमें ओंकारेश्वर तीर्थके आश्रममें मौन रहकर गम्भीर योग और तपमें निरत थे। मेरे अनुरोधसे पोद्दारजीके साथ उनके दलके कुछ लोग भी आश्रममें गये थे। श्रीश्रीगुरुदेव मौनावस्थामें दर्शन नहीं देते। परंतु श्रीपोद्दारजीके पहुँचते ही वे तत्काल बाहर आये और तुलसीदल और पुष्पमाला देकर वहीं समाधिमग्न हो गये। इस अपूर्व संधि-क्षणके दृश्यका आलोक-चित्र लिया गया था।

श्रीश्रीगुरुदेव इसके पश्चात् दो बार गोरखपुर गये। उन्होंने 'कल्याण'-कार्यालयके प्राङ्गणमें, जहाँ उस समय वृष्टिके कारण कीचड़ हो गया था, लोट-पोट की तथा कहा था कि 'यह धूलि अति पवित्र है।' उनके साथ भाईजीका अनेक बार साक्षात्कार हुआ था। ऋषिकेशमें भाईजी उनके आश्रममें गये थे। श्रीश्रीगुरुदेवने भागीरथीके उस पार स्वर्गाश्रममें भाईजीको दर्शन दिये थे। श्रीगुरुदेव अनेक बार कहते हैं—"भाईजी 'कल्याण'के द्वारा जो कर रहे हैं, उसकी तुलना नहीं है।" श्रीगुरुदेवकी रचनाएँ, विशेषतः 'पागलकी झोली' 'कल्याण'में प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं।

एक बार श्रद्धेय श्रीयुत वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय महाशयके द्वारा ज्ञात हुआ कि "आर्यलोग बाहरसे नहीं आये" नामक मेरी एक पुस्तिका गीताप्रेससे प्रकाशित हुई है। यह सुनकर मैं विस्मित हुआ; क्योंकि 'कल्याण'में यह लेख भूमिकाके रूपमें छपा था। इस विषयमें और भी बहुत कुछ लिखना था और भाईजीने मुझसे बिना पूछे उसे पुस्तकरूपमें छाप डाला। यह कितनी आत्मीयता—एकात्मभावका परिचायक है, इसे वाणीमें व्यक्त नहीं किया जा सकता। मैं उनका कनिष्ठ भाई हूँ, इसी कारण उन्होंने मुझे पूछा भी नहीं था।

१९६५ ई० के वर्षाकालमें मैं पहले-पहल गोरखपुर गया, भाईजीके साथ साक्षात्कार किया। उनका स्वास्थ्य शिथिल था, तथापि उन्होंने मुझे कई बार दर्शन दिये। मेरे 'Image-worship in Ancient India' नामक ग्रन्थकी भूमिका, जो लगभग ३० पृष्ठोंकी थी, उन्होंने मन लगाकर सुनी। इस पुस्तकके लिये उनकी अनुकूल सम्मति प्राप्त हुई थी। पुस्तक शीघ्र प्रकाशित होगी; परंतु दुःख है कि उनको सर्मापित करनेका अवसर न मिलेगा।

मुझको उन्होंने "Glories of Varnashrama" पर लेख लिखनेके लिये कहा था। "वर्णाश्रमकी महत्ता" शीर्षकसे वह 'कल्याण'में छप गया है।

बहुत दूर रहता हूँ। देखनेकी इच्छा होनेपर भी वह पूरी नहीं होती। जुलाई १९७० ई० में श्रीश्रीगुरुदेवके दर्शनके लिये मैं ऋषिकेश गया था। मनमें आशा थी कि स्वर्गाश्रममें भाईजीसे भेंट होगी, किंतु दुर्भाग्यकी बात कि अस्वस्थताके कारण वे वहाँ जा न सके थे। पश्चात् जाड़ेमें गोरखपुर जाकर कुछ दिन रहा। अष्टप्रहर नामकीर्तन चल रहा था, उसे देखा। जब भाईजीसे भेंट करने गया, तब देखा कि मेरा ही लेख 'अग्निपुराणकी प्राचीनता' उनके हाथमें है और उसे वे पढ़ रहे हैं।

शरीर बड़ा शिथिल था। अतएव वे चारपाईपर लेटे थे। मुझे पासमें कुर्सीपर बैठाया। आश्चर्यकी बात है कि जब-जब मैं उनसे मिलने गया, प्रत्येक बार मेरे बैठते और उठते समय वे पैर छूकर प्रणाम करते थे। मैं उनमें श्रद्धा रखता था, उन्हें बड़े भाईके समान समझता था; किंतु विवश था, ब्राह्मणका शरीर था और वे वर्णाश्रमकी मर्यादाका पालन करनेवाले थे। अतएव उसमें बाधा डालना मेरे लिये सम्भव नहीं था।

मैं कई लेख लेकर गया था। 'आर्यलोग बाहरसे नहीं आये'का विस्तृत संशोधन तथा 'बहिर्भारते वैदिक सभ्यता' (भारतके बाहर वैदिक सभ्यता) की पाण्डुलिपि उनको दी। उन्होंने मेरे लेखोंको देखकर उत्साह प्रकट करते हुए कहा—'आपके सब लेख छापे जायँगे।'

भाईजी बंगालमें रह चुके थे, बँगला भाषा बहुत अच्छी जानते थे। उनको ब्रिटिश शासनमें क्रान्तिकारी पार्टीसे सम्बन्ध रखनेके कारण किस प्रकार नजरबंद किया गया था तथा सामान्य मासिक वृत्तिमें भी वे किस प्रकार अपना निर्वाह अच्छी प्रकार कर लेते थे, ये सारी बातें उन्होंने मुझे बतलायी थीं। वे रसिक पुरुष थे। देश और धर्मके लिये सर्वस्व-त्यागके लिये प्रस्तुत थे, स्वाधीनताके युद्धमें भी उनका अवदान था।

मैं गोरखपुर केवल दो बार जा सका हूँ, परंतु इस स्वल्प समयमें ही उन्होंने 'भाईजी'के रूपमें मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया। उनके स्नेहका प्रकाश और प्रभाव भी मैंने अनुभव किया। वही अन्तिम दर्शन था। उनकी चरम अवस्था संनिकट आ गयी थी। दिन-रात परिश्रम करते रहनेसे देह जीर्ण हो गया था; परंतु मैं कल्पना नहीं कर सकता था कि इतना शीघ्र सर्वाविशेष हो जायगा। जानता हूँ कि सबको एक दिन जाना पड़ेगा; किंतु मैंने वास्तवमें एक आत्मीयजनको खो दिया है, अपने 'बड़े भाई'को खो दिया—इस कारण सदा ही खोया-खोया रहता हूँ, मन नहीं मानता।

आज घोर कलिकी ताण्डव-लीला हो रही है। इस पुण्यभूमिमें जो नारकीय घटनाएँ प्रतिदिन घट रही हैं, उनसे कभी-कभी यह संदेह होता है कि वर्णाश्रम और सनातनधर्म बचेगा या नहीं। किंतु जब सोचता हूँ कि श्रीगोयन्दकाजी और श्रीपोद्दारजीके द्वारा स्थापित और यत्न-पूर्वक संवर्द्धित गीताप्रेस गीता और शास्त्र-ग्रन्थोंकी लाखों-लाखों प्रतियाँ अति सुलभ मूल्यमें छापकर वितरण कर रहा है, गाँव-गाँव, नगर-नगरमें—समूचे भारतमें गीताप्रेसकी मुद्रित पुस्तकें प्रचारित हो रही हैं, 'कल्याण'की ग्राहक-संख्या लगभग पौने दो लाख है, तब आशा होती है कि यह धर्म जानेवाला नहीं है; अभी और टिकेगा।

यह एक अभूतपूर्व और महती कीर्ति है, देशका गौरव है। पोद्दारजीने अलौकिक परिश्रम करके यह 'धर्मसत्र' हमारे लिये स्थापित कर दिया है। गीताप्रेसके रूपमें जो महाप्रासाद गठित हुआ है, वह कलिमलध्वंसी, धर्मका आश्रय और सनातनधर्मका वर्म और दुर्ग है।

भाईजी विशाल-कीर्ति थे। उनके गुणोंके सागरका वर्णन मैं क्या करूँ? मेरे मनमें आता है कि बड़े भाग्यसे इस महापुरुषके साथ मेरा संयोग हुआ था। श्रीमद्भागवतमें आया है कि 'कलिमें अनेक मुक्तपुरुष धर्मके उद्धारके लिये जन्म लेते हैं।' श्रीभाईजी ऐसे ही पुरुष थे।

श्रीभाईजीकी कथनी और करनी एक थी——ऐसा अनुभवमें आया। उन्होंने साबुनमें गौ और शूकरकी चर्बीके विरुद्ध प्रचार करके ही दम नहीं लिया, अपितु चर्बीरहित साबुन तैयार करवा दिया। पशुओंकी हत्यासे प्राप्त चमड़ेका जूता पहनना ठीक नहीं कहकर वे चुप नहीं बैठे, व्यवहारके लिये हिंसारहित और सस्ता जूता तैयार करवा दिया। वे महाज्ञानी थे, परंतु अपने नामका विज्ञापन उन्होंने नहीं किया। 'शिव' नामसे उनकी रचना छपती है, यह मैं भी नहीं जानता था।

श्रीभाईजी चले गये, परंतु आज हमको उनकी बड़ी आवश्यकता थी। हमारी अभिलाषा है कि जो कार्य वे आरम्भ कर गये हैं, वह सारे देशको जाग्रत् करे, उद्बुद्ध करे। वर्णाश्रमकी महामहिमाका पाञ्चजन्य फिर तुमुल नाद करके आसुरी-सम्पदारूप शत्रु-पक्षको विध्वस्त करे।

●

श्रीराधाकृष्णकी कृपा-प्राप्त गृहस्थ संत

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री

पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार राजर्षि जनककी भाँति एक गृहस्थ किंतु सिद्ध संत थे। चैतन्यमहाप्रभुके बाद देशको प्रेम, भक्ति और हरिनाम-संकीर्त्तनका संदेश देनेके लिये इन्हींका इस धराधाममें अवतरण हुआ था। इन्होंने 'कल्याण' पत्रिका तथा अपने प्रवचनोंद्वारा सम्पूर्ण भारतमें भक्तिकी वह रसधारा बहायी, जिसमें अवगाहन करके आज असंख्य नर-नारी शान्ति-सुधाका आस्वादन कर रहे हैं। वे अपने मुँहसे तो कभी नहीं कहते थे, तथापि लाखों लोगोंका यह अटूट विश्वास है कि इन्हें भगवान् श्रीराधाकृष्णका प्रत्यक्ष दर्शन तथा कृपा-प्रसाद प्राप्त है। भक्तिशास्त्र तथा दर्शनोंके सिद्धान्त इनके लिये हस्तामलकवत् थे। इनका व्यवहार भी सबके साथ इतना मृदुल, कोमल तथा आत्मीयतासे भरा होता था कि सभी इनको अपने सगे भाईसे भी अधिक अपना मानते थे। जो एक बार इनसे मिला, सदाके लिये इनका अपना हो गया। महाकवि कालिदासने लिखा है——'राजा अजसे जो भी मिलता था, वही अपनेको ही उनका सर्वाधिक कृपापात्र मानता था।' यह बात श्रीभाईजीके सम्बन्धमें सटीक बैठती है और यही इन्हें महात्मा तथा सर्वात्माके ऊँचे सिंहासनपर बैठा देती है। मेरा इनके साथ लगभग चालीस वर्षोंका सम्पर्क रहा है। इस दीर्घकालके अनुभवके आधारपर ही उपर्युक्त पंक्तियाँ मैंने लिखी हैं।

●

जिसने प्रभुसे कहा हृदयसे——'मुझे बना लो तुम अपना'।
सहज उदार परम हरिने स्वीकार किया उसको अपना॥
उसने मुँह मोड़ा, पर हरिने तजा न कभी विरद अपना।
उसके अपने बने, बनाये रक्खा उसे सदा अपना॥

——श्रीभाईजी

●

गृहस्थ-वेषमें एक संत

डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज

जहाँतक मुझे स्मरण है यह बात सन् १९२८ ई० की है। मेरे भगवद्भक्तिपरक दो छन्द 'कल्याण'में प्रकाशित हुए थे। सम्पादक महोदयने मुझे उस अङ्ककी एक प्रति भेजी थी, और तभीसे मेरा उनके साथ लेखक-सम्पादकका सम्बन्ध स्थापित हो गया। 'कल्याण'का उद्देश्य प्रारम्भसे ही केवल धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसम्बन्धी लेखोंको प्रकाशित करना रहा है, और शिक्षित जनताने उसका सदा हृदयसे स्वागत किया है। उसके स्तम्भोंमें द्वेषपूर्ण एवं पर-मत-खण्डनात्मक लेखोंको कभी स्थान नहीं मिला है।

श्रीपोद्दारजी त्यागपूर्ण, परिश्रमी और भक्तिमय जीवन बितानेवाले गृहस्थ-वेषमें एक संत थे। जिस मार्गका वे दूसरोंको उपदेश देते थे, उसपर वे स्वयं भी चलते थे। कष्टपूर्ण रोगके अन्तिम दिनोंमें भी वे अपनी भजन-साधनामें सतत प्रवृत्त रहे।

श्रीपोद्दारजीका वैदुष्य व्यापक था, किंतु वे अपनेको शास्त्रवेत्ता बतानेमें संकोच करते थे। एक बार अपनी निरभिमान शैलीमें वे कह रहे थे, 'मेरा जो ज्ञान है, वह विद्वानोंका उच्छिष्ट-प्रसाद है।' उनके व्यवहारमें विनम्रताका पुट बहुत अधिक था। वे श्रीराधाकृष्णकी उपासनाके विषयमें एक प्रामाणिक विद्वान् माने जाते हैं।

एक बार उन्होंने अपने एक मित्रके घर विवाहोत्सवमें निमन्त्रित एक विद्वान्का दक्षिणा-प्रदानद्वारा सम्मान करना चाहा। निमन्त्रित व्यक्तिने यह कहकर कि 'मैं तो केवल उत्सव-दर्शनार्थ यहाँ आया था' दक्षिणा लेना स्वीकार नहीं किया। इसपर विनयावनत पोद्दारजीने उस दक्षिणाद्रव्यको उनके हाथमें न देकर चरणोंमें समर्पित कर दिया। इस भावमयी दक्षिणाका वे विद्वान् प्रत्याख्यान न कर सके। यह घटना नयी दिल्लीकी है।

ऐसा ही एक प्रसङ्ग स्वर्गाश्रमका है, जहाँ पोद्दारजीने एक विद्वान्के चरणोंका स्पर्श करना चाहा। विद्वान् व्यक्ति वयमें न्यून थे, अतएव उन्होंने संकोचवश पोद्दारजीके द्वारा अपने चरणोंके स्पर्शका विरोध किया। इसपर पोद्दारजीका संक्षिप्त उत्तर था--'किंतु, श्रीमन्! आपके चरणोंको स्पर्श करनेका तो मेरा अधिकार है। इससे आप मुझे वञ्चित न करें।'

श्रीपोद्दारजी एक वदान्य व्यक्ति थे। दिल्लीके एक सज्जनको, जो परिस्थितिवश संकटापन्न हो गये थे, अपनी पुत्रीके विवाहके लिये धनकी आवश्यकता आ पड़ी। उन्होंने एक मित्रके माध्यमसे श्रीपोद्दारजीसे आर्थिक सहायताकी याचना की। परिणामत: पोद्दारजीने उन सज्जनके घरपर चार अङ्कोंवाली अपेक्षित धनराशि भिजवा दी। उनकी विपुल आर्थिक सहायताके द्वारा एक अन्य कन्याका भी विवाह सुविधापूर्वक सम्पन्न हो जानेकी बात मुझे विदित है। धन्य है

ऐसी उदारता ! व्यक्तित्वके ऐसे ही उदात्त विकासके कारण पोद्दारजीने अपने परिचित-वर्गमें 'भाईजी'के उपनामसे प्रसिद्धि पायी ।

गत चार वर्षोंसे 'श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान'द्वारा प्रकाशित 'सत्सङ्ग-सुधा' नामक पाक्षिक-पत्रिकाके प्रत्येक अङ्कमें हमें श्रीपोद्दारजीके उदार विचार पढ़नेके लिये मिलते रहे हैं । वे विचार वास्तवमें मानव-जीवनके विशेष उन्नायक हैं ।

कुछ वर्ष पूर्व श्रीपोद्दारजीके उद्योग और सत्परामर्शसे एक 'चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'की स्थापना हुई थी, जिसका उद्देश्य है देशके चार धामोंमें—अर्थात् पुरी, रामेश्वरम्, द्वारका और बदरीनारायण क्षेत्रमें—वेदोंके शास्त्रीय अध्ययनकी परम्पराको बनाये रखना । हर्षका विषय है कि इस दिशामें कुछ संतोषजनक कार्य हो चुका है । जब यह योजना पूर्ण हो जायगी, तब गीताप्रेसकी विभिन्न गतिविधियोंके समान वह भी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका एक अन्यतम स्मारक बन जायगी ।

•

धर्मप्राण महापुरुष

श्रीहरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन धर्मप्राण महापुरुषोंमें थे, जिनके जीवनका अधिकांश भगवद्-भक्ति और समाजकी सेवामें ही व्यतीत हुआ । गीताप्रेसके माध्यमसे, जिसके वे प्राण थे, पोद्दारजीने श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित सनातनधर्मकी आजीवन सेवा की । उपनिषद्, गीता, वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, रामचरितमानस इत्यादि धर्मग्रन्थों एवं सर्वमान्य संतोंकी वाणियोंके प्रामाणिक और सर्वसुलभ संस्करणोंके प्रकाशनके द्वारा गीताप्रेसने भारतवर्षके कोने-कोनेमें भव्य भारतीय संस्कृतिका संदेश विकीर्ण किया है । इसे मैं पोद्दारजीकी सबसे बड़ी देन मानता हूँ ।

श्रीपोद्दारजी भारतीय संस्कृतिके अन्यतम पुजारी थे । 'कल्याण' मासिकपत्रके द्वारा उन्होंने भारतीय संस्कृतिका संदेश विदेशोंमें भी पहुँचाया । धार्मिक साहित्यका उनका गहरा अध्ययन था । संस्कृत-वाङ्मयमें उनकी बड़ी रुचि थी । संत-साहित्यके वे मर्मज्ञ थे ।

एकान्तभक्त होनेके कारण पोद्दारजीके हृदयमें मैत्री-करुणाका साम्राज्य था । पौराणिक कालके राजा शिविके समान उन्होंने भी **'कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्'** को ही अपने जीवनका लक्ष्य बनाया था ।

देशमें शायद ही कोई धार्मिक अनुष्ठान हुआ हो, जिसमें पोद्दारजीका योगदान न रहा हो । पुण्यभूमि मथुरामें 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'के जीर्णोद्धारके लिये पोद्दारजी आजीवन प्रयत्न करते रहे और उन्हींके द्वारा उसका शिलान्यास हुआ ।

गोरखपुर और देवरियाके जनपद बाढ़की विभीषिकाके लिये प्रसिद्ध हैं । विदेशी शासन-कालमें प्रकृतिके कोपसे संत्रस्त दीन जनताकी राहतके लिये कोई विशेष प्रयत्न शासनकी ओरसे

नहीं होता था। उन दिनों पोद्दारजीकी प्रेरणासे गीताप्रेसने बाढ़-पीड़ितोंकी बड़ी उदारतापूर्ण सहायता की थी, जिसे वहाँके लोग अब भी याद करते हैं। अब तो समय बदल गया, दैवी-प्रकोपजन्य आपत्तियोंके निवारणके लिये शासनकी ओरसे पर्याप्त साधन और सहायता उपलब्ध हो जाती है, किंतु उन दिनों इस प्रकारकी सेवाका बड़ा महत्त्व था।

पोद्दारजीका हृदय उदार था। विशुद्ध सनातनधर्मके अनुयायी होते हुए भी वे अन्य धर्मोंका आदर करते थे, इसीलिये वे सभी धर्मावलम्बियोंमें समानरूपसे प्रिय थे।

पोद्दारजी एक बहुश्रुत साहित्यिक थे, जिनके हृदयमें करुणा और भक्तिकी स्रोतस्विनी तरङ्गित होती थी। उनके लिखे हुए कुछ पद प्राचीन श्रीकृष्ण-भक्त संतोंकी याद दिलाते हैं। वे हिंदीके भक्ति-साहित्यकी अमूल्य निधि हैं।

गरीबों और दु:खियोंकी वेदनासे पोद्दारजी द्रवित हो जाते थे। सन् १९५५ या ५६ की बात है। उन दिनों मैं गोरखपुरमें ही वकालत कर रहा था। एक डकैतीका मुकदमा चल रहा था, जिसमें कई अभियुक्त थे, जो हवालातमें बंद थे। एक अभियुक्तके सम्बन्धमें पोद्दारजीका विश्वास था कि वह निरपराध है। वे मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उसके सम्बन्धमें कुछ छानबीन कर लूँ। उनके इस कथनसे मुझे विश्वास हो गया कि कोई खास बात है। मैंने जाँच-पड़ताल करायी तो पता चला कि वह व्यक्ति निर्दोष था और वह मुक्त किया गया। उसे इस बातका पता भी न था कि उसकी मुक्तिमें पोद्दारजीका हाथ था।

उन्हीं दिनोंकी एक दूसरी घटना याद आती है। पोद्दारजीके निमन्त्रणपर भारतके प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद गीताप्रेसके मुख्य-द्वारके उद्घाटन और चित्र-मन्दिरके अनावरणके लिये गोरखपुर पधारे थे। बड़ी धूम-धाम थी और उनके दर्शनके लिये हजारोंकी संख्यामें लोग इकट्ठे हो रहे थे। गीताप्रेस शहरके मध्यमें स्थित है। भीड़-भाड़के कारण जिला-अधिकारियोंने सुरक्षाके कुछ प्रश्न उपस्थित किये, किंतु श्रीराजेन्द्रबाबूके गीताप्रेसके प्रति प्रेम और पोद्दारजीके मर्मस्पर्शी अनुरोधने सभी कठिनाइयोंको हल कर लिया और उद्घाटन एवं अनावरणका कार्यक्रम बड़े ही उल्लासपूर्ण वातावरणमें सम्पन्न हुआ।

पोद्दारजी अब नहीं रहे, किंतु उनकी स्मृति हृदय-पटलपर सदा अङ्कित रहेगी।

●

एक युगस्रष्टा

पं० श्रीसुरतिनारायणमणिजी त्रिपाठी

श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे निस्संदेह धार्मिक उत्साह, सांस्कृतिक जागरण, उच्चतम पवित्रता, सुरुचि, ईमानदारी, संतत्व, गहन पाण्डित्य एवं विद्वत्ता, संगठन-कुशलता सद्-व्यवहार आदि उदात्त भावोंका एक युग समाप्त हो गया। इतना ही नहीं, आधुनिक हिंदू-जगत्के समक्ष एक ऐसी रिक्तता आ गयी है, जिससे उसकी अनेक प्रिय परम्पराओंके खण्डित होनेकी आशङ्का होने लगी है।

बहुत-से लोगोंने विश्वास एवं अविश्वासकी मिश्रित भावनाके साथ वाल्मीकिको अपने अश्लाघ्य जीवनका परित्याग कर ऋषिके रूपमें परिवर्त्तित होते सुना था; श्रीभाईजीको हमने हिंसामें विश्वास करनेवाले क्रान्तिकारीसे संत बनते देखा। वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने असामान्य प्रतिभा एवं अध्यवसायसे गीताप्रेसको एक विशाल संस्थाके रूपमें विकसित कर दिया और उसके द्वारा गोरखपुरको विश्वविख्यात बना दिया। 'कल्याण'के माध्यमसे जगत्को प्राचीन हिंदू-विचारधारा, धर्म एवं संस्कृतिका आभ्यन्तरिक परिचय प्रदान किया। किसी अन्य व्यक्तिने अथवा किसी अन्य संस्थाने गत कई दशाब्दोंमें अपने सहधर्मियों एवं अन्यधर्मावलम्बियोंमें हिंदूधर्म तथा सनातनी सिद्धान्तोंके प्रचारार्थ इतना कार्य नहीं किया। गीताप्रेससे जो प्रकाशन हुए हैं, वे अविश्वसनीय रूपसे सस्ते हैं। यहाँ अनेक संस्कृत धर्मग्रन्थ हिंदी-अंग्रेजी—दोनों भाषाओंके यथार्थ अनुवाद-सहित उपलब्ध होते हैं।

उत्कृष्ट लेखक एवं सफल सम्पादक होनेके अतिरिक्त भाईजी एक प्रभावशाली वक्ता भी थे। उनकी भाषणशैली बड़ी प्रभावोत्पादक एवं सरल होती थी। प्रवचनोंकी भाषा सुललित एवं मुहावरेदार रहती थी। श्रीभाईजी बीच-बीचमें उपनिषद्, स्मृति एवं पुराणोंके उद्धरणोंद्वारा विषयको बड़ा सुबोध एवं रोचक बना देते थे और श्रोतागण मन्त्रमुग्ध होकर बड़े मनोयोगपूर्वक उनके प्रवचनोंका श्रवण करते थे।

श्रीभाईजी एक सनातनधर्मनिष्ठ संत थे। उनकी भारतीय जीवन-दर्शनमें असाधारण आस्था थी; उन्होंने उसीका उपदेश दिया तथा तदनुरूप जीवन बिताया। उन्होंने जगत्को दिखा दिया कि किस प्रकार गार्हस्थ्य-जीवनके सभी कर्त्तव्यों एवं दायित्वोंका निर्वाह करते हुए अनासक्त रहा जा सकता है। जैसे-जैसे उनके जीवनका संवरणकाल समीप आने लगा, वे समाधिस्थ रहने लगे। गीताप्रेस और गीतावाटिकाको उन्होंने तीर्थस्थल बना दिया। देशभरके साधु-महात्मा भी, जो उनसे मिलने, उनसे ज्ञान एवं प्रेरणा प्राप्त करने तथा उनके आदर्शानुकूल जीवन-यापन करनेके उद्देश्यसे आते थे, उनको तीर्थस्वरूप अनुभव करते थे।

हिंदू-समाजके सभी वर्गोंपर उनका इतना व्यापक प्रभाव था और वे सबके इतने प्रिय एवं विश्वासपात्र थे कि लोग बिना माँगे ही उनको धर्मार्थ कार्योंमें व्यय करनेके लिये प्रचुर धन देते रहते थे। उनका हाथ सदा मुक्त रहता था। किसी भी कार्यके लिये सहायता माँगनेपर वे कभी अस्वीकार नहीं करते थे—भले ही जिस उद्देश्यके लिये सहायता माँगी गयी हो, उससे वे पूर्णतया सहमत न हों। उन्हें यदि 'आधुनिक युगका कर्ण' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उन्होंने विश्वस्त, निष्ठावान् एवं कुशल कार्यकर्त्ताओंके एक विशाल परिवारका निर्माण किया था, जो इतनी विशाल उपलब्धिमें उनका सहायक था।

यह कहना कठिन है कि किसी भी व्यक्ति या वर्ग-विशेषके प्रति उनके मनमें उपेक्षा थी; पर यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कुछ लोगोंके प्रति उनके मनमें विशेष स्नेह था, जिनको सन्मार्गसे विचलित होते देखकर वे हँसते हुए अत्यन्त स्नेहभरे शब्दोंमें सावधान करते थे और सत्पथपर दृढ़ रहनेकी प्रेरणा देते थे।

श्रीभाईजीके निधनसे हिंदू-धर्म तथा संस्कृतिमें जो रिक्तता उत्पन्न हुई है, निकट भविष्यमें उसकी पूर्ति कठिन है। उनकी स्मृतिको सँजोये रखनेका सबसे सुन्दर स्वरूप है—उनके द्वारा संस्थापित एवं पोषित संस्थाओंके कार्योंकी अभिवृद्धि और उनके जीवन-सिद्धान्तोंका संरक्षण एवं पालन।

●

नहीं गर्भगृह ऐसा, जिसमें नाथ ! तुम्हें पधराऊँ।
नहीं उपकरण पूजाके कुछ, जिनसे पूज रिझाऊँ॥
नहीं स्वर-सुधा फटे कण्ठमें, जो मैं गाय सुनाऊँ।
नहीं वाद्य, जो नाथ ! तुम्हारे सम्मुख सरस बजाऊँ॥

इस सराय-से घरमें प्रभु ! तुम आओ तो आ जाओ।
बिना बुलाये, पूजाकी कुछ बात न मनमें लाओ॥
पामर-परित्राणका अपना मङ्गल विरद बढ़ाओ।
इस पद-विमुख अधमपर बरबस कृपा-सुधा बरसाओ॥

—श्रीभाईजी

●

भगवान्‌के एक यन्त्र—श्रीपोद्दारजी

श्रीपरमहंसजी महाराज

श्रीपोद्दारजी एक सुयोग्य लोकसंग्रही, संत, विद्वान्, कवि, वक्ता, लेखक और आदर्श गृहस्थ थे। उनके जीवनका एक-एक क्षण एवं शरीरका एक-एक कण श्रीराधा-माधवके महारससे सुवासित एवं आलोकित था।

श्रीपोद्दारजी धर्म, कर्म एवं भक्ति-ज्ञानका प्रकाशन करनेवाले पुरुष थे। श्रीराधा-माधवके माधुर्य-प्रेमके तो वे मानो मूर्तिमान् विग्रह ही थे। शास्त्रोक्त धर्मके सब लक्षणोंका स्वयं पालन करते हुए तथा कथनी और करनीका समन्वय रखते हुए वे भागवतधर्मके अद्‌भुत प्रचारक थे। वे देश-विदेशके असंख्य जनसमुदायको धर्मका सच्चा उपदेश प्रदान कर आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन करानेवाले महामनस्वी थे।

श्रीपोद्दारजी एक महान् उद्देश्यको लेकर जगत्‌में आये थे। उन्होंने 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' नामके दो मासिकपत्रों तथा अनेक बहुमूल्य ग्रन्थोंके माध्यमसे सत्यधर्मका सदुपदेश देकर मानवमात्रके लिये कल्याण-पथ प्रशस्त किया है। दैनिक सत्सङ्ग एवं विशेष पर्व-अवसरोंपर प्रवचन करके उन्होंने भगवद्भक्ति, भगवत्प्रेम, भगवत्तत्त्व तथा व्यवहारसम्बन्धी विषयोंपर अद्‌भुत प्रकाश डाला है। भारतीय संस्कृति और साधनके व्यापक क्षेत्रमें जो कुछ सत्य, शिव एवं सुन्दर है, उसे उन्होंने आत्मसात् कर लिया था। उनके लिये शास्त्रचिन्तन चिन्तनमात्र नहीं था, अपितु वह जीवनका अभिन्न अङ्ग था। पोद्दारजीके व्यावहारिक एवं साधनात्मक जीवनका वास्तविक स्वरूप उनके व्यक्तित्वसे अभिज्ञ उन असंख्य महानुभावोंके मानसपटलपर अङ्कित है, जो उनसे प्रभावित एवं उपकृत होते रहे हैं।

दूसरेको सम्मान देने एवं स्वयं अमानी रहनेमें वे महाकुशल थे। आत्मज्ञापनसे वे सदा कोसों दूर रहे। अपने मुखसे अथवा लेखनीसे उन्होंने कभी अपने उत्कर्षको व्यक्त नहीं होने दिया। अपनी लोकोत्तर महानता एवं पारमार्थिक परमोच्च स्थितिको उन्होंने सदा ही गुप्त रखा और अपनी संनिधिमें रहनेवाले स्वजनोंतकको भी उसे व्यक्त नहीं होने दिया। वे जीवनभर संत, महात्मा, विद्वान्, ब्राह्मण एवं गौमाताके प्रति अनुगत रहे।

श्रीपोद्दारजी असहाय, अनाथ एवं आर्त जनता-जनार्दनके परम सेवक थे। देशमें जहाँ-जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ-वहाँ सेवाकी व्यवस्था करनेमें वे सदा तत्पर रहते थे। वे सौजन्य, विनय, निरहंकारता आदि सद्‌गुणोंकी खान थे। गीतामें भक्तके गुणोंका वर्णन है, उनके वे भंडार थे। समस्त धर्मोंका सम्मान करते हुए, किसीमें भी हीनताकी प्रतीति न करते हुए वे वैदिक सनातनधर्मके कट्टर उपासक, पोषक और रक्षक थे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उक्ति उनके लिये पूर्णरूपसे चरितार्थ होती थी। इसी हेतुसे वे 'भाईजी'के नामसे अलंकृत हुए।

वे सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें अपने इष्ट श्रीराधा-माधवके दर्शन किया करते थे। सचमुच श्रीपोद्दारजी आदर्श भगवद्भक्त एवं भगवत्प्रेमी थे।

जैसे देवर्षि नारद, सनकादिक, दत्तात्रेय, शुकदेव, मैत्रेय, मनु प्रभृति ऋषि-मुनि तथा शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, गोरखनाथ, भर्तृहरि, तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहंस आदि महापुरुषोंको समय-समयपर जगत्में भेजकर भगवान्ने धर्म-कर्म-परम्पराकी रक्षा की, उसी क्रममें पोद्दारजीको भी घोर कलिकालमें भेजकर भगवान्ने धर्म एवं संस्कृतिकी रक्षा करवायी है।

श्रीमद्भागवतमें भागवतोंके चालीस लक्षणोंका उल्लेख किया गया है। जिन महापुरुषोंमें वे लक्षण विद्यमान रहते हैं, वे देह रहते हुए भी विदेह हैं, स्थितप्रज्ञ हैं, जीवन्मुक्त हैं। उनके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे गृहस्थमें रहें या वनमें। वे अपनी उपस्थितिमात्रसे जगत्को पवित्र करते हैं। श्रीपोद्दारजी ऐसे ही भागवत-विभूतिसम्पन्न महापुरुष थे।

श्रीपोद्दारजीने हरिनाम, हरिकथा एवं हरियशकी सुधा बरसाना आरम्भ किया और भक्तिकी एक मधुर तथा पावन धारा बह चली, जिसमें अवगाहन कर असंख्य नर-नारी पवित्र हुए हैं और भगवद्भाव, भगवत्प्रीति, भगवद्विश्वासको अपनाकर मानवजीवन सफल करनेके प्रयत्नमें लग गये हैं।

श्रीपोद्दारजी सच्चे धर्मरक्षक थे। जब-जब किसी भी ओरसे धर्मपर आघात पहुँचानेकी चेष्टा हुई, वे उसकी रक्षाके लिये आकर खड़े हो गये। हिंदूकोड-बिलका उन्होंने खुलकर विरोध किया। गोरक्षा-आन्दोलनके वे प्रमुख सेनानी रहे। हिंदू-संस्कृतिकी रक्षाके लिये उन्होंने 'कल्याण'के माध्यमसे बड़ा काम किया। उन्होंने 'कल्याण'का 'तीर्थाङ्क' प्रकाशित किया। इसके लिये वे स्वयं भारतवर्षके सभी प्रमुख-प्रमुख तीर्थोंमें गये और वहाँकी वर्तमान स्थितिका अध्ययन किया।

गीताप्रेसद्वारा उन्होंने जो प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य प्रकाशित किया है तथा धर्म एवं संस्कृतिकी जो रक्षा की है, वह सर्वविदित है। ऐसा अनुभव होता है कि श्रीपोद्दारजी भगवान्के एक यन्त्रके रूपमें धराधामपर पधारे थे और जगत्का अशेष मङ्गल करके चले गये। आज उनका पाञ्चभौतिक शरीर हमारे सामने नहीं है, पर जबतक देशमें एक भी आस्तिक, धर्मप्रेमी, ईश्वरप्रेमी बचा रहेगा, जबतक राम, कृष्ण, हरि आदि भगवन्नामोंका उच्चारण होता रहेगा, तबतक श्रीपोद्दारजीकी स्मृति बराबर बनी रहेगी।

•

जन्मजात भक्त

पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी

हजारों-लाखों पुरुषोंमें कोई एक महापुरुष होता है, जो परमार्थ-प्राप्ति या सिद्धिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले सिद्ध पुरुषोंमें भी कोई एक महान् भाग्यशाली पुरुष होता है, जो भगवान्‌को तत्त्वसे समझता है। साधारणतया जन-समुदाय भोग-रागमें ही लिप्त हुआ अपने जीवनके अमूल्य क्षण पशुओंके समान आहार-निद्रा आदिमें समाप्त करके संसारसे विदा हो जाता है। इसके सूक्ष्म कारणपर विचार किया जाय तो समझमें आता है कि अनेक जन्मोंमें इस जीवने जो वासनाएँ संचित की हैं, उनके अनुसार ही इस जन्ममें उसकी प्रवृत्ति होती है। भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि पूर्वजन्मके अभ्यासके अनुसार ही मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति इस जन्ममें होती है——

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥

(गीता ६। ४१-४५)

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है——'जो पुरुष योग-साधना करते हुए सिद्धिको प्राप्त किये बिना ही मर जाता है, वह पुण्यात्माओंको प्राप्त होनेयोग्य उत्तम लोकोंमें जाता है। वहाँ वह अनन्त-कालतक निवास करके, वहाँके भोगोंको भोगकर इस मनुष्यलोकमें आता है। यहाँपर भी शुद्ध——पवित्र जीवन बितानेवाले श्रीमानोंके घरोंमें जन्म लेता है, अथवा बुद्धिमान्——विद्वान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है। इस मनुष्यलोकमें इस प्रकारका जन्म बहुत ही दुर्लभ है। उसने पूर्वजन्ममें जिस बुद्धिका अर्जन किया था, उसे इस जन्ममें उपलब्धकर वह भगवत्प्राप्तिरूप संसिद्धिको प्राप्त करनेके लिये प्राण-पणसे यत्न करने लग जाता है। उसके समक्ष लौकिक भोगोंकी समस्त सामग्रियाँ उपस्थित होनेपर भी वह उन भोगोंमें आसक्त नहीं होता। किंतु पूर्वजन्ममें किये हुए अभ्यासके कारण वह बरबस योग-साधनाकी ओर आकृष्ट हो जाता है। योग-साधककी तो

महिमा ही अपार है, किंतु योग-मार्गका जिज्ञासु भी शब्द-शास्त्रज्ञोंकी महिमाको पार कर जाता है। पूर्वजन्मार्जित योगबलके प्रभावसे बहुत प्रयत्नसे योग-साधनामें लगा हुआ वह योगी सब पापोंसे रहित हो, परम निर्मल और शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार अनेक जन्मोंकी साधनाके अनन्तर अन्तिम जन्ममें पूर्ण सिद्धि, परमगति, परमात्माके साथ एकत्व या आत्मज्ञान लाभ कर लेता है।'

भगवान्‌की यह वाणी मात्र शास्त्रीय आदर्श ही नहीं है; लौकिक प्रत्यक्ष अनुभव भी यही सिद्ध करता है कि अधिकतर महापुरुष जन्मजात महात्मा होते हैं। यह एक नियम है कि जो वस्तु बनती है, वह बिगड़ती भी है। बनावटी वस्तु सदा एक-सी नहीं रहती। इसी प्रकार जो महात्मा बनता है, वह बिगड़ भी सकता है। जन्मजात महात्मा सदा एक समान रहते हैं।

जो अनेक जन्मोंमें अष्टाङ्गयोग, भक्तियोग आदिकी साधना करके साक्षात् भगवत्प्राप्तिके लिये अन्तिम मानवजन्म धारण करते हैं, वे ही वास्तविक महात्मा होते हैं। ऐसे महात्माओंकी श्रेणीमें पोद्दारजी अग्रणी हैं।

भाईजीके साथ मेरा प्रथम परिचय संवत् १९७८ में बम्बईमें हुआ। मैं उस समय अध्ययन समाप्त करके बम्बई गया था। वहाँ जाते ही संयोगवश श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीकी ओरसे स्थापित 'व्यंकटेश्वर-प्रेस', खेतवाड़ीमें उनके धर्मार्थ औषधालयके प्रधान चिकित्सकका स्थान मुझे प्राप्त हो गया। मैं खेतवाड़ी, बम्बईमें रहने लगा। संस्कृत-साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी रुचि मेरे संस्कारोंमें थी। मेरे पिता-पितामह——सभी संस्कृतके विद्वान् थे। संस्कृतके वातावरणमें ही पालन-पोषण-शिक्षण होनेसे मुझे संस्कृत-प्रेमी साथीकी संगतिकी आवश्यकताका अनुभव होता था।

उन दिनों बम्बईमें सुखानन्दजीकी धर्मशालामें सायंकाल सत्सङ्ग हुआ करता था, जो भाईजीकी प्रेरणा, प्रयत्न और सहयोगसे चलता था। मैं भी वहाँ जाने लगा। प्रथम परिचयमें ही मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। उनकी साधुता, सरलता, मृदुभाषिता, समादरकी भावना आदि हर एक अपरिचित व्यक्तिको चिर-परिचित-सा बना देनेवाली थी। इस प्रकारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति व्यापारी-समाजमें तो क्या, महात्माओंके आश्रममें भी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होती है। शनैः-शनैः प्रेम और परिचय बढ़ने लगा। हृदयकी संकोच-ग्रन्थि टूट गयी। वे मुझे अपना, और मैं उन्हें अपना आत्मीय बन्धु समझने लगा। हृदयकी बातें खुलकर निःस्संकोचभावसे होने लगीं। भाईजी उन दिनों व्यापार करते थे। बम्बईमें उस समय मारवाड़ियोंके हाथमें सट्टेका व्यापार ही प्रधान था। भाईजी उसीमें संलग्न थे। परंतु इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हिंदीके भक्तिप्रधान कविता-भजन आदि बनानेमें ही थी। श्रीमम्मटाचार्यका सिद्धान्त है कि कवित्वशक्ति पूर्वजन्मोंके संस्कारसे जन्म लेती है। ऐहिक प्रयाससे प्राप्त कवित्वशक्ति कृत्रिम होती है——'स्वाभाविकात् कृत्रिममन्यदेव'।

उन दिनों गायकाचार्य भक्त-हृदय श्रीविष्णु दिगम्बर महाराजकी बम्बईमें बहुत प्रसिद्धि थी। 'रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम'की ध्वनि प्रत्येक स्त्री-पुरुष-बालकके मुखसे

चलते-फिरते निकलती थी। कारण श्रीविष्णु दिगम्बरको जनता गन्धर्वराज मानती थी। वे 'रघुपति राघव राजा राम' के कीर्तनमें छत्तीसों राग सुना देते। भाईजीपर उनकी बड़ी कृपा थी। वे कभी-कभी भावविभोर होकर एकान्त कमरेमें मीराकी तरह 'मीरानृत्य' करते थे; और जब वे एकतारा लेकर 'पद घुँघरु बाँध मीरा नाची रे' गाते थे, तब दर्शक लोग देह-गेहकी सुधि भूलकर चित्र-लिखित-से हो जाते थे। पर उस नृत्यको देखनेका सौभाग्य किन्हीं-किन्हीं महानुभावोंको ही मिलता था; क्योंकि उसमें वे लोग ही प्रवेश पा सकते थे, जिनको वे अधिकारी समझकर आज्ञा देते थे। भाईजी श्रीविष्णु दिगम्बरके अन्तरङ्ग विश्वासियोंमें अन्यतम थे। अतः वे उस अलौकिक आनन्दमें सम्मिलित होते थे। उन दिनों भाईजीने एक भजनोंकी पुस्तिका लिखी, जिसका नाम था—'पत्र-पुष्प'। भाईजी न तो राग-रागिनियोंके ज्ञाता थे न गायक ही। उनके हृदयमें जब जो भाव उत्पन्न होते, उन्हें वे तुकबन्ध कर देते थे। पर जब वह पुस्तक श्रीविष्णु दिगम्बरको सुनायी गयी, तब वे बड़े प्रसन्न हुए और कार्यव्यस्त रहते हुए भी उन्होंने उसके प्रत्येक भजनपर रागिनीका नाम बैठा दिया। भाईजी पिङ्गलशास्त्रके ज्ञाता या पण्डित नहीं थे, न उन्होंने संस्कृत या हिंदी-साहित्यके काव्य या छन्दःशास्त्रकी शिक्षा ही किसी गुरुसे प्राप्त की थी। इनकी कविताशक्ति सहज तथा स्वाभाविक थी। वस्तुतः उत्तम कवि वही बन सकता है, जिसके अन्तर्मानसमें पूर्वजन्ममें संचित कविताके संस्कार निगूढ़ रहते हैं।

श्रीभाईजीमें काव्यशक्ति स्वाभाविक थी। जब 'कल्याण'का जन्म भी नहीं हुआ था, तब भी आप सरस भजन बनाते थे। 'पत्र-पुष्प' उस समयकी ही रचना है। 'कल्याण'का सम्पादन आरम्भ करनेके बाद तो उन्हें अनेक शास्त्रों, पुराणों, भक्तिरस-प्रधान साहित्य तथा विद्वानों, आचार्यों एवं भक्तोंके लेखोंके अध्ययन-संशोधनका स्वर्णिम अवसर मिल गया। शक्ति स्वाभाविक थी ही। अतः उन्होंने सैकड़ों पद भगवद्भक्तिके लिख डाले। बीमारीकी वेदनामें भी वे 'आह-ओह' न करके किसी नये पदकी रचनामें ही तल्लीन रहते थे।

श्रीभाईजीका हृदय बड़ा कोमल था। स्वभाव इतना सरल था कि हर एक व्यक्तिको विश्वासकी दृष्टिसे देखते थे। किसीके दोषपर तो उनकी दृष्टि कभी जाती ही नहीं थी। कोई दूसरा आदमी भी किसीका दोष उनके समक्ष वर्णन करता तो वे यही कहते थे—'मनुष्यमें कमजोरियाँ स्वाभाविक हैं, न मालूम किस परिस्थितिमें उसने ऐसा किया है। हो सकता है, उस परिस्थितिमें हम होते तो वैसी ही भूल हम भी कर बैठते।' इस प्रकारकी पर-दोष-सहिष्णुता अन्यत्र दिखलायी नहीं देती।

श्रीभाईजी जब बम्बईको त्यागकर आने लगे, उस समय उनके समक्ष बहुत प्रलोभन आये। एक प्रतिष्ठित व्यापारीने कई हजार रुपये मासिक तथा अपने फर्ममें कुछ हिस्सा देनेका प्रस्ताव किया; पर श्रीभाईजीने उसे स्वीकार नहीं किया और वे 'कल्याण'का सम्पादन करनेके लिये गोरखपुर आ गये। जब वे आने लगे, तब मैंने उनसे कहा —"भाईजी, आप कहते हैं कि मैं 'कल्याण'की निःस्वार्थ सेवा करूँगा, उससे कुछ भी नहीं लूँगा तो आपका खर्चा

कैसे चलेगा ?" इसके उत्तरमें भाईजी बोले—'मेरे पास पचीस हजार रुपये हैं, जिनके व्याजसे आरामसे गृहस्थीका निर्वाह हो जायगा ।' मैंने फिर भाईजीसे कहा—'इतने रुपयोंके व्याजसे यदि घर-खर्च नहीं चला और आप 'कल्याण'से या सेठजी श्रीजयदयालजीसे या उनके भक्तोंसे कभी कुछ भी परोक्ष या प्रत्यक्ष सहायता ग्रहण कर लेंगे तो मुझे बड़ा दु:ख होगा ।' उसपर वे बोले—'आप निश्चिन्त रहिये । आपको दु:खी होनेका अवसर भगवान्‌की कृपासे आयेगा ही नहीं ।' उनके शरीर त्यागनेके १० दिन पहले जब मैं उनसे मिलने गोरखपुर गया, तब उन्होंने कहा—'पण्डितजी, आपने मुझे बहुत बड़े दोषसे बचनेकी जो बात कही थी, वह मुझे बराबर याद रही और उसके कारण मैं अनेक दोषोंसे बच गया । भगवान्‌की कृपासे और आपके आशी-र्वादसे मेरा वह व्रत अक्षुण्ण निभ गया । आपने मुझे बम्बईमें भागवतके सरस मधुर श्लोकोंको सुनाकर मेरी भागवतमें और भागवतकी आत्मा श्रीकृष्णमें प्रीति बढ़ानेमें बड़ी सहायता की ।'

भाईजी अत्यन्त सरल, निष्कपट और विनम्र थे । आत्माभिमान उन्हें छूतक नहीं गया था । इस साधुता और निरभिमानताका नमूना है उनके द्वारा लिखी गयी, मेरे द्वारा प्रकाशित रासपञ्चाध्या-यीकी भूमिका । वे लिखते हैं—'लगभग चालीस वर्ष पूर्व बम्बईमें लगातार बहुत दिनोंतक श्रीजोशीजी महाराज श्रीमद्भागवतके मधुर प्रसङ्ग तथा उनका रहस्य सुना-सुनाकर आप्यायित करते थे । उनकी इस महती कृपासे श्रीमद्भागवतके तथा भागवतकी आत्मा श्रीकृष्णके प्रति मन-बुद्धिके समर्पणकी बड़ी ही प्रबल प्रेरणा मिलती थी । मैं इस परम प्रीति तथा अहैतुकी कृपाके लिये सदा ही श्रीजोशीजीका ऋणी हूँ ।' जिसकी ख्याति देश-देशान्तरमें फैली हुई हो और हजारों प्रेमी भक्त जिसको महापुरुष मानकर उसके सत्सङ्गसे अपना कल्याण मानते हों, क्या ऐसा कोई अन्य सर्वमान्य पुरुष मेरे-जैसे एक साधारण व्यक्तिको इस प्रकारका मान देकर अपनी लघुताका परिचय देनेका साहस कर सकता है ? ये गुण तो भगवान् विष्णुमें ही थे, जिन्होंने भृगुजीकी लात खाकर भी उनसे माफी माँगी । भृगुजीके कोमल पैरमें मेरी कठोर छाती अवश्य गड़ी होगी, ऐसा मानकर उन्होंने कहा था—

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥
पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ।
पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥
अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ।
वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ।

(श्रीमद्भागवत १० । ८९ । १०–१२)

भगवान्‌के इन गुणोंके कारण ही उनका नाम 'अमानी मानदो मान्यः' प्रसिद्ध हुआ । भगवान् स्वयं मानरहित और दूसरोंको मान देनेवाले होनेसे ही सर्वमान्य कहलाते हैं । ये मानव-दुर्लभ गुण श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमें थे । हम तो अपना यही सबसे बड़ा सौभाग्य मानते हैं कि हम उनके समयमें हुए, उनका सङ्ग किया, उनसे हँसे, खेले और उनके साथ रहे ।

भाईजी केवल भक्त ही नहीं, ज्ञानी भक्त थे। उनसे कई बार मेरी परमतत्त्वके विषयमें चर्चा होती थी। मैंने उनसे पूछा—'आप राधा-माधवका ध्यान करते हैं, उनके युगल-नामको जपते हैं, उनके विषयमें आपकी क्या धारणा है?' उन्होंने उत्तर दिया—"परमतत्त्व एक अद्वैत अखण्डस्वरूप है। उसमें वास्तवमें कोई भेद नहीं है। वह जब भक्तोंको विशुद्ध प्रेम-रस पिलाना और उनके विशुद्ध हार्दिक प्रेम-रसका आस्वादन करना चाहता है, तब एक ही तत्त्व दो रूपोंमें अभिव्यक्त हो जाता है। प्रेम-रसका आस्वादन करनेके लिये वही प्रेमका आश्रयालम्बन और विषयालम्बन बना हुआ है। जिस प्रकार वेदान्ती मानते हैं—'आश्रयत्वविषयत्वभागिनी विशुद्धा चितिरेव केवला' यही मैं मानता हूँ—मानता ही नहीं, अनुभव भी करता हूँ।" ऐसे ज्ञानी भक्तको लक्ष्य करके ही भगवान्ने गीतामें कहा है—'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।'

व्यासजीने श्रीमद्भागवतमें भी ऐसे ज्ञानी भक्तको बहुत ही दुर्लभ कहा है—वे जीवन्मुक्त ज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ होते हैं—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥
(श्रीमद्भागवत ६।१४।५)

'मुक्त हुए सिद्ध करोड़ों पुरुषोंमें नारायण-प्रेम-परायण, प्रशान्तात्मा, ज्ञानवान्, प्रेमी भक्त बहुत दुर्लभ है।'

श्रीभाईजी ऐसे ही ज्ञानसम्पन्न प्रेमी भक्त थे। उनका स्थूलशरीर हमलोगोंसे वियुक्त हो गया है, जिससे हमें दुःखानुभव हो रहा है; पर उनके द्वारा रचित गद्य-पद्यमय अनेकों ग्रन्थ, प्रेमियोंको लिखे गये पत्र आदि अनन्तकालतक हमें चेतना देते रहेंगे।

•

बिना याचनाके ही देते रहते नित्य शक्ति तुम नाथ!
करते सदा सँभाल, छिपे तुम अविरत रहते मेरे साथ॥
देते तुम निर्भयता, नित्य निरामयता, निज आश्रय दान।
देते शुभ विचार, शुभ चिन्तन, शुभ जीवन, शुभ कर्म महान॥
देते प्रेम प्रेमसागर! तुम, देते स्वार्थहीन अनुराग।
देते सुख शाश्वत आत्यन्तिक मिटा सभी दुःखोंके दाग॥
एक चाहते, इन सबके बदलेमें तुम—'अविचल विश्वास।'
पर मैं हीन उसीसे, तब भी होता नहीं कदापि निराश॥
तुम्हीं मुझे विश्वास-दान दो, तुम्हीं करो मेरा उद्धार।
ख्यात पतित-पावन, पामर-प्रेमी तुम हे प्रभु! परम उदार॥

—श्रीभाईजी

•

महान् देवात्मा

पद्मभूषण सेठ श्रीमुंगतूरामजी जैपुरिया

हिंदू-धर्म और संस्कृतिके महान् उन्नायक, लक्ष-लक्ष धर्मपरायण जनताकी श्रद्धाके मूर्तिमान् प्रतीक, हिंदी, संस्कृत, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी तथा अनेक भारतीय भाषाओंके प्रकाण्ड विद्वान् एवं अनेक उत्कृष्ट धार्मिक पुस्तकोंके प्रणेता, सुप्रसिद्ध पत्र 'कल्याण' मासिकके यशस्वी सम्पादक प्रातःस्मरणीय परमपूज्य श्रीभाईजीके श्रीराधा-माधवके युगल-पदाम्बुजोंमें लीन हो जानेसे हिंदू-जगत् और सनातन-धर्मकी जो महान् क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना असम्भव लगता है। ज्ञान, कर्म और भक्तिकी परम पवित्र त्रिवेणीमें आप्लावित उस पुण्यात्माको हम किन शब्दोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें ? यद्यपि मानवका नश्वर तन धारण करके वे इस असार संसारमें उपस्थित हुए, फिर भी उनमें सचमुच एक महान् देवात्माका वास था। वे हमारे बीच पारसमणिकी भाँति ज्योतित थे। उनके परम मृदुल स्वभाव और करुणाविगलित व्यक्तित्वका आकर्षण सभीको सम्मोहित कर लेता था।

परमपूज्य श्रीभाईजी आयुमें मुझसे करीब दस वर्ष बड़े थे। प्रथम महायुद्धके समय जब कलकत्तेमें उन्होंने एक क्रान्तिकारीके रूपमें अपने जीवनका प्रारम्भ किया था, तभीसे मैं उनके निकट सम्पर्कमें आया। सन् १९१६ में देशके स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें उन्होंने निर्भीकतापूर्वक भाग लिया। ब्रिटिश-सरकारने उन्हें गिरफ्तार कर अलीपुर-जेलमें ठूँस दिया। वहाँ जेल-अधिकारियोंने उनपर नाना प्रकारके असहनीय अत्याचार किये। जेलमें कुछ अवधितक रखनेके बाद अंग्रेजी सरकारने पश्चिमी बंगालके बाँकुड़ा जिलेके सुदूर अञ्चल शिमलापाल नामक ग्राममें उन्हें नजरबंद कर दिया। इक्कीस मासकी नजरबंदीके बाद जब पूज्य भाईजी बाहर आये, तब सन् १९१८ में उन्हें ब्रिटिश हुकूमतने बंगालसे निष्कासित कर दिया। यह नजरबंदी उनके भावी जीवन और सम्पूर्ण हिंदू-जगत्के लिये गहरा वरदान सिद्ध हुई; क्योंकि यहीं एकान्तमें उन्हें अध्यात्म-साधना तथा भारतीय दर्शन एवं अन्य शास्त्रोंके अध्ययन करनेका सुनहला अवसर प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् पूज्य भाईजी कुछ दिनों बाद बम्बई चले गये। वहाँ उन्होंने कई प्रकारके व्यवसाय किये। साथ ही उनकी साधनामें प्रवृत्ति बढ़ रही थी। परिणामतः व्यावसायिक कार्योंके प्रति उनमें विरक्ति उत्पन्न हो गयी और ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सहयोगसे १९२६में उन्होंने बम्बईके प्रमुख प्रकाशन-संस्थान—श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासके प्रेससे सनातनधर्मके व्यापक प्रचार-प्रसारके उद्देश्यको लेकर 'कल्याण' मासिकपत्रका प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया, जिसकी अन्ततक वे सेवा करते रहे। अवश्य ही 'कल्याण'के प्रकाशनकी बात सुझावके रूपमें सर्वप्रथम श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाने 'मारवाड़ी अग्रवाल महासभा'के दिल्ली अधिवेशनके समय कही थी। विश्वभरमें हिंदू-धर्मकी विजय-पताका फहराने एवं सनातनधर्मकी उत्कृष्ट विचार-धाराके प्रति विश्वभरका ध्यान आकृष्ट करनेमें 'कल्याण'का कितना महान् योग-दान रहा है, यह हम सभी

जानते हैं। १३ महीनेतक 'कल्याण' बम्बईसे प्रकाशित होता रहा। पीछे श्रीभाईजी व्यवसाय बंद करके गोरखपुर चले आये और उनके साथ 'कल्याण' भी। गीताप्रेसकी स्थापना इसके पूर्व ही हो चुकी थी। श्रीभाईजीने गोरखपुर आकर इसके द्वारा धार्मिक जगत्में ठोस और महत्त्वपूर्ण कार्य किया और उसीके फलस्वरूप वे समस्त धार्मिक जगत्की श्रद्धा और प्रेमके पात्र बन गये। चौबीसों घंटे अनवरतरूपसे प्रभुके चरणकमलोंमें ध्यान-मग्न रहनेवाले पूज्य भाईजी अपनी दिनचर्या एवं लोक-व्यवहारके काम-काज सदैव सहज एवं सामान्यरूपसे करते रहते थे। वे किसीको भी अभावग्रस्त एवं दुःखी नहीं देख सकते थे। विनम्रता और सादगी तो जैसे उनके रोम-रोममें समायी हुई थी। उनके जैसा मृदुभाषी, सदाशय, व्रतनिष्ठ और सर्वप्रिय व्यक्तित्व अनास्थाके इस युगमें शायद ही कहीं देखनेको प्राप्त हो।

मारवाड़ी-समाजके तो वे महान् गौरव ही थे। उन्होंने अनेक छोटे-बड़े उद्योगपतियों, व्यवसायियोंके हृदयमें धर्म-कर्म, परमार्थ, परोपकार तथा दानशीलताके प्रति गहरी रुचिको जन्म दिया। वे हमारे समाजमें निःस्वार्थ सेवा-भावके ज्वलन्त प्रतीक थे। कलकत्तेकी सुप्रसिद्ध संस्था 'मारवाड़ी-सहायक-समिति',के जो बादमें 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी'के नामसे प्रख्यात हुई, संस्थापकोंमेंसे थे। मारवाड़ी-समाजके दोनों ही उन्नायकों——भाई घनश्यामदासजी बिड़ला एवं पूज्य भाईजीके बीच गहरी आत्मीयता और मैत्री व्याप्त थी। श्रद्धेय भाईजी बिड़लाजीको सदैव 'घनश्याम' कहकर ही सम्बोधित करते रहे।

मुझपर तो पूज्य भाईजीका प्रारम्भसे ही अत्यधिक स्नेह और प्रेम-भाव रहा। हमारे परिवारके सुख-दुःख आदि जाननेके लिये वे सदैव व्यग्र रहा करते थे। तीन-चार वर्ष पूर्व जब चारों धामोंमें वेद-भवन स्थापित करनेके लिये बातचीत चली, तब उन्होंने मुझे उक्त कार्यके लिये निर्मित ट्रस्टका कोषाध्यक्ष बननेका आदेश दिया, जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनकी प्रत्येक आज्ञा, प्रत्येक आदेशका पालन करनेमें मैं अपना अहोभाग्य समझता था।

अनास्था और जडवादके इस युगमें पूज्य भाईजीके महान् व्यक्तित्वमें मैं लीलामय प्रभु-द्वारा संसारमें धर्म और संस्कृतिकी प्रतिष्ठापना और पुनरुत्थानके लिये भेजी गयी एक महान् ईश्वरीय विभूति मानता हूँ। वे स्वयंमें एक बहुत बड़ी संस्था थे, जिनपर समस्त धार्मिक जगत् प्राण-प्रणसे निछावर रहता था। हम उनके चरण-चिह्नोंपर चलकर स्वयंको उनके सुयोग्य अनुयायी कहलानेके योग्य बना सकें, इससे बढ़कर पूज्य भाईजीके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि और क्या हो सकती है। पूज्य भाईजीका भौतिक शरीर अब हमारे बीच नहीं रहा, किंतु उनका यशःशरीर ज्योतित और जाग्रत् रूपमें हमारे बीच विद्यमान है ही।

•

सद्गृहस्थ महान् संत

श्रीमहन्त रामदासजी महाराज

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका परलोकगमन निस्संदेह धार्मिक जगत्के लिये प्राणहरण-सदृश कष्ट प्रदान करनेवाला है। उन्होंने अपने समस्त जीवनको लोककल्याणके लिये अर्पित कर रखा था। समाजकी वर्तमान विषम परिस्थितियोंके फलस्वरूप व्यापक नैतिक ह्राससे संतप्त जनताके तापसे उनका नवनीत-हृदय द्रवित हो उठा था और उन्होंने उस संतापके निवारणका एकमात्र उपाय आर्य-वैदिक सनातनधर्मकी पुनःस्थापनाको माना था। इसी हेतु वे 'कल्याण', 'कल्याण-कल्प-तरु' तथा अन्य धार्मिक साहित्यके सर्जन-प्रसार एवं प्रवचनामृतप्रसादके माध्यमसे असंख्य नास्तिकोंके भी हृदयमें आध्यात्मिक ज्ञानके ज्योति-स्फुलिङ्गको प्रज्वलित करनेमें सफल रहे हैं।

वे एक आदर्श सद्गृहस्थ भक्त थे, जो 'सीय राममय सब जग जानी'—की भावनासे ओत-प्रोत होकर अपने अन्तर्यामी प्रभुका प्रसाद समस्त विश्वमें बाँटते रहे। इसी हेतु उनकी दृष्टि निजी कुटुम्बतक ही सीमित न रहकर समस्त विश्वको कुटुम्ब मानती रही। यह भाव उनके चित्तकी सरलता, जनता-जनार्दनके हितकी भावना, सौहार्दपूर्ण स्वभाव, नम्रता तथा 'राम-चरण-रति'-सदृश अनुपम गुणोंवाले व्यक्तित्वके कारण ही था।

श्रीपोद्दारजी संसारमें रहकर सक्रिय जीवन व्यतीत करते हुए भी फलासक्तिसे कोसों दूर रहे। वस्तुतः उनके व्यक्तित्वमें श्रीमद्भगवद्गीताकी अनासक्ति-भावनाका पूर्ण संनिवेश पाया जाता है। अनासक्तिकी स्थिति मानव-जीवनके उच्चतम लक्ष्यको निर्धारित किये बिना सम्भव ही कहाँ है। इसी हेतु श्रीपोद्दारजीने अपने जीवनका लक्ष्य मानवताके सागरमें अपने व्यक्तित्वको क्षुद्र बूँदकी भाँति विलीनकर अपने पृथक् अस्तित्वको शून्य कर देने और उससे लोकोत्थान करनेको ही माना है। फलतः उनका जीवन मानव-धर्मके महान् यज्ञमें आहुति बना, उनका चिन्तन निज-परकी संकीर्ण कारासे मुक्त रहा, उनकी धारणामें समस्त वसुधा कुटुम्ब बन गयी। उनके पास निजी ऐश्वर्य-भोगके लिये समय न था और प्रतिदिन आत्म-संयम और जन-कल्याणके निमित्त कर्मशीलता उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही।

जीवनकी इस लोकोत्तर महानता और पारमार्थिक परमोच्च स्थितिके बावजूद उनमें आत्म-ख्यापनसे बचनेकी प्रवृत्ति तथा नम्रताका भाव अतिरेकावस्थामें था। नम्रताका अर्थ ही है—'शून्यता', अपने क्षुद्र अस्तित्वका विश्वात्माके महान् अस्तित्वमें विलयीकरण, अपने सुख-दुःखकी अपेक्षा लोकहितकी भावनाका उदय तथा उसीके लिये सदा प्रयासशील रहना। यह स्थिति ही मोक्षकी स्थिति है। मुमुक्षु या सेवकके कार्यमें यदि यह भाव न हो तो वह मुमुक्षु नहीं, सेवक नहीं; वह स्वार्थी है, अहंकारी है। सच्चा मुमुक्षु या सेवक तो अनासक्ति-योगका साधक होता है। श्रीपोद्दारजी ऐसे ही साधक थे, जिनके व्यक्तित्वके तेजः-पुञ्जसे भारतके ही नहीं, विश्वभरके सत्यनिष्ठ धर्मशील अनुयायियोंकी भ्रान्त आत्माको प्रकाश मिलता रहेगा।

आज वे इस नश्वर जगत्में पाञ्चभौतिक शरीरसे विद्यमान नहीं हैं, किंतु उनकी अमर ख्याति तथा उनके अनुपम कर्म एवं जीवनसरणि उन्हें सदैव अमर रखनेके लिये पर्याप्त हैं।

●

सद्व्यवहारके मूर्तिमान् आदर्श

श्रद्धेय वैद्यसम्राट् श्रीमणिरामजी महाराज

ये च शास्त्रविदो दक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः।
जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्यो नित्यं कृतं नमः॥

परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ मेरा परिचय एवं सम्पर्क करीब ४० वर्षसे था। वे बड़े मृदुभाषी एवं मिलनसार व्यक्ति थे। उनके द्वारा लाखों-लाखों रुपयोंका दान हुआ है। वे सबका उपकार करते थे। किसीका मन नहीं दुखाते थे। उनकी व्याख्यानकला, सम्पादनकला एवं लेखनकलामें असाधारण दक्षता ईश्वरकी देन थी। जिन व्यक्तियोंमें ईश्वरका अंश होता है, उनमें सब तरहका ज्ञान स्वतः प्रादुर्भूत हुआ करता है। यही बात श्रीभाईजीमें अक्षरशः देखनेको मिलती थी। प्रवचन करते समय वे उपनिषद्, शांकर-भाष्य आदिके प्रमाणोंका उल्लेख इस प्रकार करते थे, जैसे इन ग्रन्थोंको उन्होंने आद्योपान्त पढ़ा हो और उनका सम्यक् अनुशीलन तथा मनन किया हो। वे सद्व्यवहारके पूर्ण जानकार ही नहीं थे, वह उनके स्वभावमें था। वे 'शठे शाठ्यं' के पक्षपाती न होकर 'उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ' को अधिक महत्त्व देते थे। बहुत वर्षों पहलेकी बात है, रतनगढ़ शहरमें किसी एक व्यक्तिकी जमीनका नगर-पालिकाध्यक्षने पट्टा नहीं बनाया। वे जमीनके पट्टेपर हस्ताक्षर नहीं कर रहे थे। उस व्यक्तिने कई आदमियोंको साथ लेकर, जिनके हाथोंमें काले झंडे थे, रातके समय श्रीभाईजीके निवास-स्थानके सामने आकर नारे लगाना आरम्भ किया। श्रीभाईजीका न तो जमीनसे सम्बन्ध था और न नगरपालिकासे। नगरपालिकाके अध्यक्ष महोदय श्रीभाईजीके यहाँ आते-जाते थे। लोगोंने सोचा—श्रीभाईजीके सामने नारे लगानेसे श्रीभाईजी अध्यक्षको यह कार्य करनेके लिये कह देंगे। करीब एक घंटा नारे लगाकर वे लोग चले गये। भाईजीने यह सब दृश्य देखा, परंतु उन्हें तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह क्षुब्ध होकर नारे लगानेवालोंको भला-बुरा कहता; परंतु श्रीभाईजी अपने कार्यमें लगे रहे। दूसरे दिन भाईजीने नगरपालिकाके अध्यक्षको बुलाकर कहा कि या तो नगरपालिकाके अध्यक्षपदसे त्यागपत्र दे दो या जिसका पट्टा नहीं बना है, उसका पट्टा बना दो। यह कहकर उन्होंने उस पट्टेपर हस्ताक्षर करवा दिये और पट्टा सम्बन्धित व्यक्तिको दिलवा दिया। इस संसारमें ऐसा व्यक्ति कौन होगा, जो बिना कुछ सम्बन्ध हुए असद्व्यवहार करनेवालोंके प्रति सद्व्यवहार करे। भाईजी देवपुरुष थे; संसारी व्यक्ति होते तो 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' के अनुसार व्यवहार करते। किंतु उन्होंने बुरा करनेवालोंके साथ अच्छा व्यवहार करनेके अपने प्राकृतिक सिद्धान्तको नहीं भुलाया।

श्रीभाईजी अध्यात्मवादी होते हुए भी लौकिक सद्व्यवहारको विशेष महत्त्व देते थे। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। जिन मुकदमोंका निर्णय वर्षोंतक न्यायालयमें नहीं हो पाता था, उनका बहुत सुगमतासे वे पञ्चके रूपमें फैसला कर देते थे। उनके फैसलेसे वादी-प्रतिवादी

दोनों प्रसन्न होते थे और वैरभावको भूलकर प्रेमसूत्रमें बँध जाते थे। एक बारकी बात है कि रतनगढ़में 'श्रीशार्दूल फ्री वाटर वर्क्स'का मकान बन रहा था। मुसलमानोंने यह कहकर आपत्ति-की कि 'यह हमारे मोहर्रम ठहरनेका स्थान है, यहाँ मकान नहीं बन सकता।' परंतु श्रीभाईजीने ऐसा अच्छा फैसला किया कि दोनों पक्ष प्रसन्न हो गये और मकान भी बन गया। श्रीभाईजीपर सब जातिवालोंकी श्रद्धा थी। जिन व्यक्तियोंमें भगवान्‌की कला होती है, उनका व्यक्तित्व ऐसा ही होता है कि उनके सम्मुख सब नम्र एवं आज्ञाकारी बन जाते हैं।

श्रीभाईजी उच्च आध्यात्मिक ज्ञानसे सम्पन्न होनेके साथ ही सभी व्यावहारिक कलाओंके भी ज्ञाता थे। ये गुण अवतारी पुरुषोंमें ही सम्भव होते हैं।

•

गुरुजनोंके भक्त श्रीभाईजी

आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी

श्रीभाईजीसे मेरा पचास वर्षका परिचय था। उन दिनों वे बम्बईमें रहते थे। मैं सेठ श्रीधर्मदास त्रिभुवनदासजीके यहाँ कथा कहनेके लिये गया हुआ था। एक दिन माधवबागमें सेठ श्रीत्रिभुवनदासजीसे श्रीभाईजीकी भेंट हो गयी। सेठजीने श्रीभाईजीसे मेरा परिचय कराते हुए कहा—'आप वृन्दावनके गोस्वामीजी हैं, बड़ी सुन्दर कथा कहते हैं। जनतामें इनकी कथाका प्रचार कीजिये।' श्रीभाईजी मेरा परिचय जानकर बहुत प्रसन्न हुए। दूसरे दिन वे मुझे अपने साथ 'नेमानीवाड़ी' ले गये। यह स्थान ठाकुरदासरोडपर है। यहाँपर उन दिनों सत्सङ्ग, कीर्तन, कथा आदि होते रहते थे। श्रीभाईजीने अपने मित्रोंसे परामर्श करके मेरी कथाकी व्यवस्था 'नेमानीवाड़ी'में करवा दी। एक मासतक कथाका बड़ा सुन्दर आयोजन रहा। इस अवधिमें श्रीभाईजीने मेरा परिचय एक-दो सम्भ्रान्त परिवारोंसे करवा दिया और उनके यहाँ कई दिनोंतक सत्सङ्गका कार्यक्रम चलता रहा। श्रीभाईजी बीच-बीचमें मेरी कथामें भी सम्मिलित होते थे। वे बराबर ध्यान रखते थे कि मुझे किसी प्रकारकी असुविधा न हो। श्रीभाईजीके अहैतुक प्रेमको देखकर मैं विस्मित था।

उस समय भी श्रीभाईजीको सभी व्यक्ति बड़े पूज्यभावसे देखते थे। उनका व्यवहार सभीके साथ बड़ा स्नेहपूर्ण एवं निश्छल था। जो भी व्यक्ति उनसे मिलता था, उसे यही अनुभव होता था, जैसे वह अपने किसी अत्यन्त स्नेही गुरुजनसे मिल रहा हो। सेठ श्रीधर्मदासजी तो श्रीभाईजीके व्यवहार एवं जीवनसे इतने प्रभावित थे कि एक दिन उन्होंने मुझसे कहा—'महाराजजी! श्रीभाईजीसे अच्छा अनुरागी और नहीं मिलेगा, वे बड़े ही प्रेमी हैं।'

उन्हीं दिनों राजा श्रीबलदेवदासजी बिड़लाने श्रीमद्भागवतके अष्टोत्तरशत सप्ताह-पाठ करवाये। श्रीबिड़लाजीका श्रीभाईजीपर बड़ा वात्सल्य था तथा भाईजी भी उन्हें पितातुल्य मानते

थे। पाठ करनेवाले पण्डितोंके चयनका भार श्रीभाईजीपर डाला गया। मैंने श्रीभाईजीको कई पण्डितोंके नाम बताये और मुझपर विश्वास करके उन्होंने उन सबका नाम लिख लिया। श्रीभाईजीने कहा—'और भी कोई पण्डित आपके ध्यानमें हों तो अभी बता दीजिये; सूची पूरी होनेपर उसमें हेर-फेर नहीं हो पायेगा।' मैंने उन्हें बता दिया था कि अब कोई पण्डित मेरे ध्यानमें नहीं है। पर दैवयोगसे दूसरे दिन मेरे कुटुम्बी एक पण्डित वृन्दावनसे बम्बई पहुँच गये और अपना नाम पाठकर्ताओंमें लिखवानेका आग्रह करने लगे। मुझे ज्ञात था कि सूची पूरी हो चुकी है, पर मैं श्रीभाईजीके स्वभावको भी जानता था। मैं बड़े संकोचके साथ श्रीभाई-जीके पास गया और उनसे अपने कुटुम्बीकी बात कही। श्रीभाईजी थोड़ी देरतक तो सोचते रहे, पीछे बोले—'महाराजजी! आपकी बातका आदर करना ही है। आप स्वयं पाठ न करके पाठकर्ताओंके निरीक्षकके रूपमें सबकी सँभाल कीजिये और कुटुम्बीजनको अपने स्थानपर पाठ करनेके लिये कह दीजिये।' श्रीभाईजीके इस उदार व्यवहारसे मेरा तथा मेरे कुटुम्बीका हृदय गद्‌गद हो गया। यह उदारता एवं दूसरेकी बातको आदर देनेकी भावना श्रीभाईजीके स्वभावमें जीवनभर बनी रही।

श्रीभाईजी केवल जन्मसे वैश्य थे, आचार-विचारमें वे ब्राह्मण थे तथा उत्साहमें राजर्षि। वे रागानुगा तथा दास्यभक्ति—दोनोंके तो मानो आचार्य ही थे। उनके सत्प्रयत्नसे हमारे प्राचीन धार्मिक साहित्यका जो प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार हुआ है, उसे सनातनधर्म तथा संस्कृतिका 'नवजन्म' ही समझना चाहिये। श्रीभाईजीने भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णकी कथाको भारतके घर-घरमें पहुँचा दिया। इस पुण्यकार्यसे उनकी कीर्ति 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' विद्यमान रहेगी। सभी धर्मप्रेमी श्रीभाईजीके ऋणी हैं। यह ऋण पैसेसे चुकाया जानेवाला नहीं है।

भाईजी 'सबहि मानप्रद, आपु अमानी'के जीवित प्रतीक थे। सन् १९६५में मैं गोरखपुरमें गीताप्रेसके व्यवस्थापक महोदयके घरपर 'श्रीमद्भागवत-सप्ताह' करनेके लिये गया। जब मैं श्रीभाईजीसे मिला, तब उन्होंने दोनों चरण छूकर जिस भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया, वह मेरे लिये अविस्मरणीय है।

'श्रीराधारस' तो मानो श्रीभाईजीमें मूर्तिमान् था। मेरे पास उनके कई पत्र सुरक्षित हैं, जिनमें उनके प्रेमकी मार्मिकता प्रत्यक्ष हो जाती है। वह अनुभवकी वस्तु है, वाणीसे उसका उल्लेख सम्भव नहीं। जिस प्रकार श्रीमद्भागवतके श्लोकोंका रस टीका या प्रवचनसे प्रकट नहीं किया जा सकता, उनका स्वाद 'मूकास्वादनवत्' है; ठीक यही बात श्रीभाईजीके विषयमें समझनी चाहिये।

दो वर्ष पूर्व मेरे ग्रन्थ 'श्रीगीतगोविन्द'का तृतीय संस्करण तैयार हो रहा था। मेरे मनमें आया कि श्रीगीतगोविन्दका रस श्रीभाईजीको बहुत प्यारा है। अतएव इस संस्करणका समर्पण श्रीभाई-जीको किया जाय। श्रीभाईजीसे इसकी अनुमति लेना आवश्यक था। मैंने अपने एक सम्भ्रान्त प्रेमीकी मार्फत इसकी चेष्टा की। जब श्रीभाईजीके सामने यह विषय रखा गया, तब वे बोले—"'श्रीगीतगोविन्द' महान् गुह्य ग्रन्थ है। प्रथम तो इसका प्रकाश ही नहीं होना चाहिये और यदि श्रीगोस्वामी महाराजकी इच्छा इसको प्रकाशित करनेकी है तो मैं उस कोटिमें अपनेको नहीं

अनुभव करता, जिस कोटिके महानुभाव इसके समर्पणके अधिकारी हैं।" उनका यह उत्तर प्राप्त होनेके पश्चात् भी प्रयत्न चलता रहा। अन्तमें कई मास पश्चात् उन महानुभावने मुझे सूचित किया कि श्रीभाईजीका एक बड़ा लंबा पत्र आया है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि 'श्रीगोस्वामीजीसे क्षमा-प्रार्थनापूर्वक कहा जाय कि इस प्रस्तावको स्वीकार न करनेमें मुझे दुःख है।' परिणामस्वरूप वह ग्रन्थ अन्य महानुभावको समर्पित करना पड़ा। यह था श्रीभाईजीका अमानित्व !

कई वर्ष पूर्वकी बात है—मैं कलकत्ता गया हुआ था। उन्हीं दिनों श्रीभाईजी भी कलकत्ता पहुँच गये। 'गोविन्द-भवन'में श्रीभाईजीके सत्सङ्गका आयोजन था। मुझे इसकी सूचना मिली और मैं अपने स्वजन, श्रीनाथजीके अधिकारी श्रीकल्याणदासजीके साथ सत्सङ्ग-श्रवणकी दृष्टिसे गोविन्द-भवन गया। हम दोनों श्रोताओंकी भीड़में बैठ गये। थोड़ी देर बाद श्रीभाईजी पधारे। कुछ व्यक्ति श्रीभाईजीके आगे-आगे मार्गकी व्यवस्था करते हुए चल रहे थे। पता नहीं, कैसे श्रीभाईजीकी दृष्टि मुझपर पड़ गयी। वे वहीं रुक गये और उन्होंने पैर छूकर मुझे प्रणाम किया और ऊपर मञ्चपर बैठनेके लिये अत्यन्त आग्रहपूर्वक अनुनय-विनय करने लगे। बड़ी कठिनतासे मैंने ऊपर मञ्चपर बैठनेसे छुटकारा पाया। मेरे साथी श्रीभाईजीकी इस विनम्रता एवं गुरुजनोंके प्रति आदरभावको देखकर विस्मित हो गये।

दूसरे दिन हम दोनों श्रीभाईजीके आवास-स्थानपर मिलनेके लिये गये। मिलनेवालोंकी भीड़ लगी हुई थी। श्रीभाईजी एकान्तमें थे और उन्होंने कह दिया था कि 'कुछ देर वे एकान्तमें ही रहेंगे, किसीसे मिल नहीं पायेंगे।' जब हम पहुँचे, तब हमें इसकी सूचना दी गयी। पर हमलोग मिलकर ही लौटनेके विचारसे बैठ गये। पता नहीं, श्रीभाईजीको हमलोगोंके आनेकी सूचना कैसे मिल गयी और उन्होंने तुरंत हमलोगोंको भीतर बुला लिया। परंतु हमलोगोंको इसमें बहुत संकोच अनुभव हुआ। श्रीभाईजीने हमें फल एवं पुष्प भेंट किये और हम लौट आये।

ऐसा था श्रीभाईजीका गुरुजनोंके प्रति आदरभाव।

●

करुणामय ! उदार-चूड़ामणि ! प्रभु ! मुझको यह दो वरदान।
देखूँ तुम्हें सभीमें, सभी अवस्थाओंमें हे भगवान॥
शब्द मात्रमें सुन पाऊँ मैं नित्य तुम्हारा ही गुणगान।
वाणीसे गाऊँ मैं गुणगण, नाम तुम्हारे ही रसखान॥
इन्द्रिय सभी सदा पुलकित हों पाकर मधुर तुम्हारा स्पर्श।
कर्म नित्य सब करें तुम्हारी ही सेवा, पावें उत्कर्ष॥
बुद्धि, चित्त, मन रहें सदा ही एक तुम्हारी स्मृतिमें लीन।
कभी न हो पाये विचार, संकल्प, मनन प्रभु ! तुमसे हीन॥
सदा तुम्हारी ही सेवामें सब कुछ रहे सदा संलग्न।
यही प्रार्थना—रहूँ तुम्हारे पद-रति-रसमें नित्य निमग्न॥

—श्रीभाईजी

●

भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

अमरकीर्ति महापुरुष

वैद्यराज पं० श्रीरामनारायणजी शर्मा

आध्यात्मिक तथा धार्मिक जगत्के एक प्रधान लेखक एवं 'कल्याण'के सम्पादक के रूपमें श्रीपोद्दारजीकी विश्वव्यापी ख्यातिसे मैं बहुत समयसे परिचित हूँ। निम्नलिखित दो सार्वजनिक संस्थाओंका उनके साथ मैं भी ट्रस्टी रहा हूँ। अतः उनको निकटसे जानने-समझनेका जो अवसर मुझे प्राप्त हुआ है, उसके विषयमें मैं नीचे लिख रहा हूँ।

(१) श्रीपोद्दारजीकी पितृभूमि रतनगढ़ (राजस्थान)में मेरे पूज्यपाद गुरुजी आचार्य श्रीमणिरामजी वैद्यने 'श्रीधन्वतरि-मन्दिर'के नामसे आयुर्वेदीय अनुसंधानकार्यके लिये एक विशाल संस्था स्थापित की है। उसकी आधारशिला श्रीपोद्दारजीने रक्खी थी और वे इस संस्थाके ट्रस्टी भी जीवनभर रहे। यह संस्था श्वास-रोग (दमा)की चिकित्साके लिये भारतभरमें प्रसिद्ध है। श्वास-जैसे दुष्ट रोगसे पीड़ित सैकड़ों मरीज प्रतिवर्ष इस संस्थासे लाभ प्राप्त करते हैं। रोगियों-को दी जानेवाली दवा तथा आवास और पथ्यकी व्यवस्था संस्थाद्वारा प्रायः मुफ्त की जाती है। सेवाभावी संस्थाको आर्थिक कष्ट प्रायः रहता ही है। इस संस्थाको आर्थिक सहयोग दिलवानेके लिये मैंने श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे कहा; एक-दो बार जोर देकर भी कहा कि 'आपके पास बहुत-से धनी-मानी लोग आते हैं, उनसे इस संस्थाकी सहायता कराइये। यदि इस संस्थामें किसी प्रकारकी कोई त्रुटि हो तो वह भी हमें बताइये, ताकि उसे दूर किया जा सके।' किंतु उन्होंने उत्तरमें 'हाँ' या 'ना' कभी नहीं कहा। इनके निकटस्थ लोगोंसे पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि वे किसी भी धनिक व्यक्तिको कभी भी किसी कार्यमें आर्थिक सहायताके लिये नहीं कहते। उनका दृढ़ विश्वास भगवान्में था। उनमें धनासक्ति बिल्कुल भी नहीं थी। यह बहुत ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि धनासक्तिप्रधान वैश्य-जातिमें जन्म लेने तथा अनेक संस्थाओंके कोषाध्यक्ष पदपर कार्य करनेपर भी उन्होंने धनसे किसी प्रकारका लगाव कभी नहीं रक्खा। सचमुच वे धनसे बिल्कुल दूर रहते थे।

(२) 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा संघ', मथुराके 'भागवत-भवन'की आधारशिला भी श्रीपोद्दारजीने ही रखी थी। इसके लिये पुण्यकर्मा श्रीजयदयालजी डालमियाद्वारा दान दिया गया है। इससे उक्त भवनका निर्माण हो रहा है। यह भागवत-भवन बहुत बड़ा विशाल एवं दर्शनीय होगा। अतः इसके निर्माणपर बहुत बड़ी धनराशि खर्च होगी। इस संघके भी पोद्दारजी ट्रस्टी थे और श्रीजुगलकिशोरजी बिड़ला आदि अन्य ट्रस्टियोंमें मैं भी एक हूँ। श्रीजुगलकिशोरजी बिड़लाके गोलोकवास हो जानेसे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारपर ही इस संघका समस्त भार हमलोग समझते थे। इस महान् कार्यके लिये भी बहुत बार उनसे मेरी बातचीत हुई। मैंने कहा कि 'जैसे सोमनाथका मन्दिर बहुत शीघ्र बनकर हिंदुओंके उत्थानकी कथा कह रहा है, वैसे ही यह भागवत-

भवन भी हिंदूधर्मकी गौरवगाथाको प्रकट करेगा। अतः इसका निर्माणकार्य भी शीघ्र ही पूरा होना आवश्यक है।' किंतु श्रीपोद्दारजीने हर बार यही उत्तर दिया—'जिन विश्वेश्वर भगवान्का यह स्थान (भवन) बन रहा है, वे ही इसे पूरा करानेवाले हैं।' श्रीबिड़लाजी तथा श्रीपोद्दारजीके गोलोकवासी हो जानेसे यह संस्था अब अनाथ-जैसी हो गयी है। यह कार्य बहुत बड़ा विशाल है। हिंदुओंके उत्थान और पतनका इतिहास इससे सम्बन्धित है। इसको सँभालना किसी सामान्य व्यक्तिके बल-बूतेकी बात नहीं है। उन-जैसे महान् व्यक्ति ही ऐसे महान् कार्यको कुशलतापूर्वक सँभाल सकते थे। 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'पर जो कार्य हो रहा है, उसके पूर्ण होनेके लिये कई करोड़ रुपये धनराशिकी आवश्यकता है और इससे भी अधिक आवश्यकता है कुशल कार्य-संचालनकी, जिसे श्रीपोद्दारजी आसानीसे कर लेते थे। उनके चले जानेसे इस पुनीत कार्यको बड़ी क्षति पहुँची है।

ऋषिकेशके भजनाश्रममें द्रव्य जमा था। श्रीपोद्दारजीने सभापति बननेपर उस सब द्रव्यको शुभ कार्योंमें लगाकर संस्थाको 'भगवत्-आश्रम'के रूपमें परिणत कर दिया।

विश्व-प्रसिद्ध धार्मिक मासिकपत्र 'कल्याण'के सुदीर्घकालव्यापी सम्पादन तथा आध्यात्मिक एवं धार्मिक ग्रन्थोंके लेखनद्वारा श्रीपोद्दारजीने सदियोंसे जर्जरित हिंदूधर्मके पुनरुत्थान और प्रसारका जो महान् कार्य किया है, वह हिंदूधर्मके इतिहासमें उनकी अमर कीर्तिके रूपमें चिरस्मरणीय रहेगा। श्रीपोद्दारजीने जिस किसी भी सार्वजनिक कार्यको अपने हाथोंमें लिया, उसे उन्होंने सच्ची लगन और निःस्वार्थ भावनासे किया। ऐसे महान् व्यक्ति ही वास्तविक 'युग-निर्माता' होते हैं।

●

प्रभो ! मिटा दो मेरा सारा सभी तरहका मद अभिमान।
झुक जाये सिर प्राणिमात्रके चरणोंमें, तुमको पहिचान॥
आचण्डाल, शृगाल, श्वान भी हों मेरे आदरके पात्र।
सबमें सदा देख पाऊँ मैं मृदु मुसकाते तुमको मात्र॥
सबका सुख-सम्मान परम हित ही हो, मेरी केवल चाह।
भूलूँ अपनेको सब विधि मैं, रहे न तनकी सुधि परवाह॥
पूजूँ सदा सभीमें तुमको यथायोग्य कर सेवा-मान।
बढ़ती रहे वृत्ति सेवाकी, बढ़ती रहे शक्ति निर्मान॥
परका दुख बने मेरा दुख, सुखपर हो परका अधिकार।
बन जाये निज-हित पर-हित ही, सुखकी हो अनुभूति अपार॥
आर्त प्राणियोंको दे पाऊँ सदा सान्त्वना-सुखका दान।
उनके दुःखनाशमें कर पाऊँ मैं समुद आत्मबलिदान॥

—श्रीभाईजी

●

उदार सेवारत जीवन

श्रीजयदयालजी डालमिया

पूज्य श्रीभाईजीने लगभग ४५ वर्षोंतक 'कल्याण'का सम्पादन किया। एक वर्षसे कुछ अधिक कालतक तो 'कल्याण'का प्रकाशन बम्बईसे होता रहा दूसरे वर्षके विशेषाङ्कके बाद ही 'कल्याण'का सम्पादन तथा प्रकाशन भी गोरखपुरसे होने लगा। 'कल्याण' और गीताप्रेसको इस स्थितिपर पहुँचानेका अधिकतर श्रेय पूज्य श्रीभाईजीको ही है। उन्होंने इसके लिये अपना जीवन अर्पण कर रखा था। रात्रिके ११-१२ बजेतक काम करते-करते सोकर प्रातः ३-४ बजे सिरहाने रखे कागजोंको उठाकर काम करने लगना उनका नित्यका व्यापार था। भोजन करनेके बाद थोड़ी देर लेटकर विश्राम करते समय भी कागज हाथमें उठाये 'कल्याण'का कार्य ही करते रहते। आये हुए लेखोंका सम्पादन, स्वतन्त्र लेख लिखना, चित्रोंका चयन, चित्रकारको चित्र तैयार करनेमें पग-पगपर मार्गदर्शन, गैली प्रूफ तथा पेज प्रूफोंका अवलोकन आदि सारे काम वे स्वयं करते थे।

'कल्याण' ही एक ऐसा धार्मिक मासिकपत्र है, जिसके इस युगमें भी डेढ़ लाखसे अधिक ग्राहक हैं। यही उनका स्मारक है। जबतक 'कल्याण' चलता रहेगा, तबतक डेढ़ लाख ग्राहकोंके तथा इससे भी कहीं अधिक संख्याके पाठकोंके मनसे उनकी स्मृतिका लोप नहीं हो सकता। उनकी स्मृतिका इससे बढ़कर दूसरा साधन नहीं दीखता। अतः 'कल्याण'के सम्पादन-विभागके तथा गीताप्रेसके प्रकाशन-विभागके सभी लोगोंका यह परम कर्त्तव्य है कि जिस तरह भी बने, इसको सुचारुरूपसे चलानेमें अपने प्राणोंकी आहुति दे दें, ठीक वैसे ही जैसे पूज्य श्रीभाईजीने अस्वस्थताकी हालतमें भी--जबतक थोड़ी भी सामर्थ्य बनी रही, बराबर अपनेको उस काममें लगाये रखा।

श्रीभाईजी जीवमात्रके 'भाईजी' थे। अपने किसी भी कार्य या आचरणद्वारा किसीको कष्ट न पहुँचे, इसके लिये वे बड़े सतर्क रहते थे। सभीकी प्रसन्नता बनी रहे, यह उनका एक व्रत था, इस व्रतका निर्वाह वे औषध-उपचारमें भी करते थे। जो कोई भी डाक्टर-वैद्य उनको अपनी औषध सेवन करनेको देता, वे उसकी औषध ले लेते। मैंने उनसे एक बार कहा--'आप बिना सोचे-समझे सबकी औषध ले लेते हैं, यह ठीक नहीं। कभी कोई औषध पूर्व-औषधके विपरीत पड़ जाय तो उसका बड़ा भयंकर परिणाम हो सकता है।' उन्होंने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया--'शरीर तो जब जानेको होगा, तभी जायगा। इस (औषध देनेवाले)की औषध ले लेनेसे इसको प्रसन्नता होगी कि भाईजीने मेरी औषध ले ली, और ठीक हो जानेपर औषध देनेवालेको द्विगुण प्रसन्नता होगी कि मेरी ही औषधसे भाईजी ठीक हो गये।'

एक बारकी बात है--मेरे पैरमें एक दुर्घटनासे चोट लग जानेके कारण बड़ा आपरेशन

होनेवाला था। जिस डाक्टरसे आपरेशन करानेकी बात हुई, किसी कारणवश मैं उससे आपरेशन नहीं करवाना चाहता था। अपनी यह इच्छा जब मैंने भाईजीके समक्ष व्यक्त की, तब उन्होंने उसी सरलतासे उत्तर दिया—'इनसे आपरेशन नहीं कराया जायगा तो इनका जी दुखेगा। इसलिये इन्हींसे आपरेशन करा लेना चाहिये।' मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं था और मैंने चुपचाप स्वीकृति दे दी।

सभीको प्रसन्न रखना और किसीका भी जी न दुखाना उनका व्रत था। दूसरेको सुख मिलनेसे उन्हें सहज आनन्द मिलता। दूसरेका सुख ही उनका सुख था।

श्रीभाईजीके पास प्रतिदिन बहुत-से व्यक्तिगत पत्र आया करते थे, जिनमें लोग अपना हृदय खोलकर उनके सामने रख दिया करते थे। उनमें उनके जीवनकी कई गुप्त बातें भी होती थीं। ऐसे सब पत्रोंका उत्तर अपन हाथसे लिखकर भेजनेका उनका नियम था। उन पत्रोंको लिफाफेमें भी वे स्वयं ही बंद किया करते। इतने सावधान थे।

सभी सम्प्रदायोंके, सभी राजनीतिक दलोंके लोग उनके पास आते और अपने मनकी बात खोलकर कहा करते तथा उनसे अपनी व्यक्तिगत समस्याओंका समाधान पाकर शान्तचित्त लौटते।

केवल शौच, स्नान, संध्या-पूजन, भोजन-शयन आदिके समय या जब कोई मिलनेवाला आ जाता, तभी वे काम स्थगित करते। जबतक आनेवाला व्यक्ति स्वयं ही संतोष पाकर न चला जाता, तबतक वे उस आनेवाले व्यक्तिकी तरफ बराबर ध्यान रखते।

आज गंदे साहित्यके प्रचारमें जो थोड़ी रोक है, उसका कारण गीताप्रेसका सुलभ, सस्ता, उच्चकोटिका साहित्य ही है। यदि 'कल्याण' बंद हो गया तो गीताप्रेस भी धीरे-धीरे ठप्प हो जायगा और फिर गंदे साहित्यके प्रचारमें तेजीसे वृद्धि होगी। अतः 'कल्याण'से सहानुभूति रखनेवालोंका यह परम कर्त्तव्य है कि अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार सभी उसमें अपना योगदान दें। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

•

मेरा कुछ भी है नहीं, कोई प्राणि-पदार्थ।
'मैं' भी जब कुछ नहीं, तब कैसा मेरा स्वार्थ॥
एक तुम्हीं हो सभीमें, सभी जगह, सब काल।
लीलामय कर रहे नित लीला विविध रसाल॥
जन्म-मरण, सुख-दुःख—सब मधुर-भयानक रूप।
खेल-खिलौने सब तुम्हीं, खेलनहार अनूप॥

—श्रीभाईजी

•

समत्वयोगमें प्रतिष्ठित संत

श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम० ए०, बार-ऐट-ला०

श्रीहनुमानप्रसादजीसे मिलने और विविध विषयोंपर उनसे विचार-विनिमय करनेके अनेक अवसर प्राप्त करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। वे आयुमें मुझसे कुछ बड़े थे। अतः मैं उनके प्रति 'भाईजी' शब्दका प्रयोग करता रहा। उनके बारेमें मित्रमण्डलीमें चर्चा चलनेपर मैं कहा करता था कि वे पुण्यश्लोक एवं पूतात्मा हैं और उनके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें यह श्लोक सुनाया करता था—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥

'जिनके तन, मन और वचनमें पुण्यरूपी अमृत भरा हुआ है, जिन्होंने उपकारोंसे तीनों लोकोंको प्रसन्न किया है और जो दूसरोंके परमाणु-बराबर गुणोंको पर्वतके समान बढ़ाकर अपने हृदयमें आनन्दका अनुभव करते हैं, ऐसे संत संसारमें बिरले ही होते हैं।'

एक बार एक सभामें भाईजीकी उपस्थितिमें ही इस श्लोकका उच्चारण करते हुए उनकी ओर मुख मोड़कर मैंने कहा—'हमारे लिये परम गौरवका विषय है कि हमारी मरुभूमिको वचनामृतसे सिञ्चन करते हुए श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इस श्लोकके साकार रूप हैं।' भाईजीने तत्काल खड़े होकर कहा—"मुझ-सरीखे तुच्छ व्यक्तिको 'संत' न समझकर आप 'संतोंकी चरण-रज' मानिये और आशीर्वाद प्रदान कीजिये, जिससे मेरा मन भगवच्चरणोंमें लगे।" उनकी विनयशीलताका यह दृष्टान्त उनके व्यक्तित्वका एक पहलू है।

'कल्याण'के 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क'में पृष्ठ ५२५ पर यह वाक्य प्रकाशित हुआ है—'एक मृत पारसी आत्माने एक सज्जनसे कहकर अपने लिये गयामें पिण्डदान करवाकर सद्-गति प्राप्त की थी।' एक अवसरपर जब भाईजी बीकानेर पधारे, तब उन्होंने तत्कालीन महाराजा श्रीसादूलसिंहजीको इस घटनाका पूरा विवरण सुनाया था। जब भाईजी बम्बईमें चौपाटीपर वायुसेवनके लिये एक बेंचपर विराजमान थे, तब एक पारसीके प्रेतने प्रकट होकर उन्हें अपने घरका पता बतलाया और प्रार्थना की कि उसकी सद्गतिके लिये गयामें उसके निमित्त पिण्डदान करवाया जाय। तदनुसार व्यवस्था होनेपर वह पुनः प्रसन्नमुद्रामें श्रीभाईजीके समक्ष कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये उपस्थित हुआ। एक बार एक जन-मण्डलीमें श्रीभाईजीने एक-दो स्वजनोंके आग्रहसे इस घटनाको सुनाया। संयोगसे उस मण्डलीमें एक तार्किक सज्जन थे, जिनकी शास्त्रोंपर श्रद्धा नहीं थी। वे इस घटनाको सुनते ही बड़े क्षुभित हो गये और आवेशमें भरकर श्रीभाईजीको खरी-खोटी सुनाते हुए कहने लगे—"आप और आपका 'कल्याण' ऐसी दकियानूसी बातोंका प्रचार करके समाजकी अधोगति कर रहे हैं।" उपस्थित सभी सज्जनोंको उनके इस प्रकार

बोलनेसे बड़ी पीड़ा हुई। सबने उन सज्जनसे प्रार्थना की कि 'इस प्रकार आपको बिना अनुभवके किसी संतका अपमान नहीं करना चाहिये।' पर मैंने देखा कि इस प्रलापके प्रहारने भाईजीकी शान्त और गम्भीर मुद्रापर तनिक भी विकार उत्पन्न नहीं किया। मुस्कराते हुए श्रीभाईजीने इतना ही कहा—'जो कुछ मेरा अनुभव था, मैंने सुना दिया। उसे मानना या न मानना आपकी इच्छापर निर्भर है। इसके लिये किसी तरहकी मजबूरी तो है नहीं।' श्रीभाईजीके इस मनोनिग्रहको देखकर सहृदयजनोंको परम प्रसन्नता हुई।

श्रीभाईजीसे ज्यों-ज्यों मेरी घनिष्ठता बढ़ती गयी, त्यों-त्यों मेरा यह विश्वास दृढ़ होता गया कि त्याग और तपस्याके कारण श्रीभाईजीने निर्विकार वृत्तिमें स्थित रहनेकी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। वे ऐसे योगी थे, जिनका अपनी स्तुति-निन्दाके प्रति समभाव था। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—'समत्वं योग उच्यते' और 'इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।'

'समत्वका ही नाम योग है' तथा 'जिनका मन समत्वमें स्थित है, उन्होंने यहीं संसारको जीत लिया है'—इन वाक्योंको श्रीभाईजी अपने दैनिक व्यवहारमें सार्थक सिद्ध करते थे। जिन्होंने उनके गृहस्थ-जीवनको देखा है, वे मुझे बताते थे कि उनका जीवन कितना पावन था। उसकी स्मृतिसे मेरे मानस-पटलपर एक श्लोक उभर आया है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥

'जिसे सुखकी चाह है, उसे वनकी राह पकड़नेपर भी दोष जकड़ लेते हैं; पर जिसके द्वारा घरमें रहते हुए भी पाँचों इन्द्रियोंके संयमरूप तपका अनुष्ठान हो रहा है एवं जो शुभकर्ममें लगा हुआ है, उस रागविहीन सत्पुरुषके लिये अपना घर ही तपोवन बन जाता है।'

श्रीभाईजीकी गुण-गरिमा और कर्म-कलापका स्मरण करते हुए मुझे भर्तृहरिकी यह उक्ति उनके सम्बन्धमें उपयुक्त लगती है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

श्रीभाईजी बहुमुखी प्रतिभाके धनी थे। गद्य और पद्यपर उनका समान अधिकार था। उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों, लेखों, प्रवचनोंद्वारा मानव-जीवनके लिये पावन पथका प्रदर्शन किया है। उस पथका अनुसरण कर हम सरलतासे अपने लक्ष्यतक पहुँच सकते हैं।

●

भगवत्कृपा दीनका धन है, है उसपर उसका अधिकार।
नहीं योग्यताकी आवश्यकता, नहीं देश-कुल-धर्म-विचार॥
नहीं प्रश्न 'अधिकारी'का कुछ, नहीं शर्त कुछ, नहीं करार।
हो विश्वास परम दृढ़ केवल दीनबन्धुपर बिना विचार॥

—श्रीभाईजी

●

पितृकल्प पोद्दारजी

श्रीशान्तिप्रसादजी जैन

मेरा श्रीपोद्दारजीसे सर्वप्रथम परिचय दानापुरमें सन् १९३१ में हुआ था और अन्तिम दर्शन हुए गोरखपुरमें १५ मार्च, सन् १९७१ को। उन्होंने मुझे सदा प्यार किया और मेरी आस्था उनके साधुत्वके प्रति हमेशा ही बढ़ती रही। वे सबके कल्याणकारी और राग-द्वेषसे ऊपर थे।

वे कर्मकाण्डी पण्डितोंको उत्साहित करते और जो उनके निकटवर्ती थे तथा जिनपर उनकी ममता थी, उनको वे अपने शुभके लिये कर्मकाण्डी पण्डितोंद्वारा पूजा-पाठ करवानेमें उत्साहित करते थे। इसी प्रकार मान्त्रिक और तान्त्रिक विद्वानोंको भी उनकी प्रशंसा और सहयोग प्राप्त था। मैंने मन्त्र-तन्त्रके प्रति अपनी शङ्का उनके समक्ष रखी। मेरी इस उत्कण्ठाको उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे केवल शान्त ही नहीं किया, अपितु जो कुछ मुझे समझाया, उससे मुझे विश्वास हो गया है कि ये दोनों ही सत्य हैं, किंतु इनका उपयोग मनुष्यकी अपनी आस्था और जीवनस्तरपर निर्भर करता है। उन्होंने कहा—'देवी-देवता उसी प्रकार सत्य हैं, जिस प्रकार इस जगत्में मनुष्य सत्य है। मन्त्र-तन्त्र उसी प्रकार लाभदायक हैं, जिस प्रकार हम इस लोकमें किसी राज्यश्रीसम्पन्न या लक्ष्मी-अधिपतिकी स्तुति आदि करनेके फलस्वरूप लाभान्वित होते हैं। मनुष्यका जीवन जब सांसारिक इच्छाओंसे ऊपर उठ जाता है, तब कर्मकाण्डकी ये शक्तियाँ और विभूतियाँ उसके लिये उपादेय एवं स्पृहणीय नहीं रह जाती।'

इसके पश्चात् उन्होंने जनसेवाके महत्वको बतलाते हुए कहा—'आदमी सब समय अध्यात्ममें लीन नहीं रह सकता और न आत्म-चिन्तन ही कर सकता है। भगवद्भक्ति एवं जनसेवाके कार्य अध्यात्मकी सीढ़ियाँ हैं।' प्रायः देखा जाता है कि आध्यात्मिकतामें लीन साधु अपनी आत्माको ही परम शुद्ध बनानेमें संलग्न रहता है। परंतु श्रीपोद्दारजी जीवनभर संसारके सब प्रकारके दुःखोंसे तप्त प्राणियोंके आर्त्तिनाशनका सतत प्रयत्न करते रहे।

इस चर्चाके पश्चात् मैंने कई बार और कई तरहसे शास्त्रोंका जो भी अध्ययन किया, उससे मुझे उनके शब्दोंकी सत्यता अधिक प्रखर होती दिखायी दी।

वे आध्यात्मिकता और ज्ञानकी मूर्ति होनेके साथ-साथ एक सच्चे साधु थे और जिस साधुताका प्रकाश बालकोंके जीवनमें दिखायी देता है, वह उनमें भरपूर थी। एक बार ऋषि-केशकी गङ्गाजीमें उनके साथ नहाते हुए जब मैंने १०१ डुबकियाँ लगानेकी बात कही, तब वे भी बराबर डुबकियाँ लगाते रहे और अपनी उम्रका लिहाज किये बिना पानीमें मेरे साथ उसी प्रकार आनन्द लेते रहे, जैसे बच्चे लेते हैं।

उन्होंने मुझे हमेशा अपना बेटा माना और मैंने उन्हें सदा अपना पिता।

●

हिंदूधर्मके संरक्षक

साहित्यवारिधि श्रीवृन्दावनदासजी

हिंदूधर्म जब-जब ह्रासोन्मुख हुआ है, उसके पुनःसंस्थापन और पुनरुत्थानके लिये महान् विभूतियोंने जन्म लिया है। अवतारवाद इसी सिद्धान्तका उज्ज्वल प्रतीक है। श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका जन्म इसी परम्परामें है और उनका हिंदूधर्म और संस्कृतिके पुनरुद्धारका कार्य बड़ा भव्य है।

श्रीपोद्दारजीका परलोकगमन सम्पूर्ण हिंदू-संसारकी एक महान् दुर्घटना है। अपने जीवन-कालमें प्रातःस्मरणीय पोद्दारजीने धर्म, संस्कृति और साहित्यकी जो सेवा की, वह अनिर्वचनीय एवं अविस्मरणीय है। पोद्दारजी अपने आपमें एक महान् संस्था थे। धार्मिक साहित्यके क्षेत्रमें पोद्दारजीके उदयके पहले एक अभावग्रस्त स्थितिकी-सी अनुभूति होती थी। देशमें धार्मिक साहित्यके प्रकाशन-संस्थान उँगलियोंपर गिने जानेयोग्य थे तथा धर्मग्रन्थोंकी प्राप्ति कठिन और व्ययसाध्य थी। धर्मप्राण जनतामें अपने महान् देशके आर्षग्रन्थोंको अपनी मातृभाषामें पढ़नेके लिये छट-पटाहट थी। पोद्दारजीने समयकी माँग पहचानी और अपने देशकी जनताको ऐसे ग्रन्थरत्न भेंट किये, जिनकी मुद्रण-सम्बन्धी स्वच्छता, सुन्दरता और शुद्धता देखकर भारतीय जन-मानस कृत-कृत्य हो गया और जो स्वल्पमूल्यकृत सुलभताके कारण घर-घर पहुँच गये।

सन् १९५६ में अपने कुछ साथियोंके साथ पोद्दारजी तीर्थाटन करते हुए मथुरा पधारे। तीर्थ-यात्रियोंके सम्मानमें मथुराके 'लक्ष्मीदास भवन'में एक समारोहका आयोजन किया गया। इन पंक्तियोंका लेखक भी उस समारोहके आयोजकोंमें था। समारोहमें एकके बाद दूसरे वक्ताने पोद्दारजीके ऋषितुल्य जीवनकी महिमापर प्रकाश डाला। कुछ वक्ताओंने तो पोद्दारजीके कार्यकलापों-की उपमा महर्षि वेदव्यासके कर्तृत्वसे दे डाली। कई वक्ताओंने उन्हें आधुनिक भारतका 'वेदव्यास' कहा। मैंने अपने भाषणमें पोद्दारजीका ध्यान 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान' की दुर्दशाकी ओर आकृष्टकर निवेदन किया कि 'मथुरामें प्रतिवर्ष लाखों यात्री आते हैं; किंतु ऐसा कौन होगा, जिसका हृदय 'श्रीकृष्ण-जन्मभूमि'की वर्तमान दुरवस्थाको देखकर शतधा विदीर्ण न होता हो।' सब सुननेके बाद अश्रुपूरित नेत्रोंसे पोद्दारजीने कहा—

"आपलोगोंने प्रेमके वशीभूत होकर मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है। मैं एक अत्यन्त क्षुद्र प्राणी हूँ। जिन परम वन्दनीय महर्षियोंके नामके साथ आपने मुझे सम्बद्ध किया है, मैं उनके चरणोंकी धूलि भी नहीं हूँ। मेरी तो सदैव यह कामना रही है कि मैं उनके चरणोंके धूलिकणके योग्य बन सकूँ। आप मुझे यही आशीर्वाद दीजिये। 'जन्मस्थान'के प्रति जो कुछ कहा गया है, उससे मैं पूर्ण सहमत हूँ। एतन्निमित्त अपने क्षुद्र प्रयास भी करनेको प्रस्तुत हूँ। शीघ्र ही दस हजार रुपये आपलोगोंकी सेवामें भेजूँगा। वास्तवमें यह कार्य आपके ही कर्त्तव्यपालनकी अपेक्षा करता है। आप श्रीकृष्णके अपने हैं।"

पोद्दारजीके इस विनम्र वक्तव्यपर उपस्थित लोगोंने हर्ष-ध्वनि की।

थोड़े ही दिनों बाद श्रीपोद्दारजीकी ओरसे 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'के पुनरुत्थान एवं पुर्ननिर्माण-के हेतु दस हजार रुपयेका एक चेक प्राप्त हुआ। इस निधिकी प्राप्ति एक अत्यन्त शुभ मुहूर्तमें हुई समझी जायगी; कारण, इसके साथ ही 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'के निर्माण-कार्यका शुभारम्भ हो गया। शनैः-शनैः वहाँ एक विशाल मन्दिर एवं 'श्रीकृष्ण-चबूतरा', जिसके नीचे पुराने मन्दिरके अवशेषोंके दर्शन होते हैं, बनकर तैयार हो गये। एक महान् निर्माण-कार्यके रूपमें श्रीमद्‌भागवत-मन्दिरकी नींव डल गयी है तथा उसका कार्य प्रगतिपर है। यह मन्दिर श्रीपोद्दारजीकी शुभ प्रेरणाका ही फल है और इसके शिलान्यासका शुभ कार्य उन्हींके वरद हस्तोंद्वारा सम्पन्न हुआ था। 'श्रीकृष्णजन्म-स्थान'के निर्माणकी प्रगतिमें जब-जब श्रीपोद्दारजीका स्मरण किया गया, वे सहयोगके लिये सदा ही तत्पर रहे।

'श्रीकृष्णजन्म-स्थान' और उस भूमिपर बने देवमन्दिरोंका इतिहास बड़ा पुराना है। इस इतिहाससे महान् व्यक्तियोंका सम्बन्ध रहा है, जिनमें सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, गाहड़वाल-नरेश विजयपाल और ओरछा-नरेश महाराज वीरसिंहजू देव उल्लेखनीय हैं। परम्परामें महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय, राय कृष्णदासजी, ब्रह्मलीन सेठ जुगलकिशोरजी बिड़ला और इनके साथ ही श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी पोद्दारको स्मरण किया जायगा।

श्रीपोद्दारजीके सरल, निरभिमान एवं आडम्बरविहीन व्यक्तित्वमें महती कर्तव्य-भावना छिपी हुई थी। उनका व्यक्तित्व जितना सरल था, कृतित्व उतना ही महान् था। पोद्दारजीकी अनवरत सेवाओंके कारण समस्त हिंदू-समाज उनका परम ऋणी है और भावी पीढ़ियाँ भी युग-युगान्तरोंतक उनके प्रति ऋणी रहेगी।

●

प्रभुसे प्यारा है न्यारा है जैसा जो कुछ भी सम्बन्ध।
काट दिये हैं उसने मेरे, यहाँ-वहाँके सारे बन्ध॥
रहते मेरे साथ निरन्तर, प्रभु क्षण दूर नहीं होते।
अनुभव सदा कराते अपना हर स्थितिमें जगते-सोते॥
रहूँ कहीं भी, कैसे भी, वे रहते नित्य पास मेरे।
रहते नित भीतर-बाहरसे चारों ओर मुझे घेरे॥
वे मेरे कैसे अपने हैं, इसे बताऊँ मैं कैसे।
अनुभव होता है, पर नहीं बता सकता गूँगा जैसे॥

—श्रीभाईजी

●

सबके सुहृद्

श्रीयशपालजी जैन

श्रद्धेय श्रीभाईजी हमारे देशकी उन विभूतियोंमेंसे थे, जिन्होंने आजीवन भारतीय संस्कृति-के संवर्द्धन एवं व्यापक प्रचार-प्रसारमें योग दिया। वे उच्चकोटिके लेखक तथा अत्यन्त प्रभाव-शाली वक्ता थे।

वस्तुतः भारतीय संस्कृतिके सारे गुण उनमें विद्यमान थे। वे सत्यपरायण थे। सादगीका जीवन व्यतीत करते थे, परदुःखकातर थे और दूसरोंका सदैव हित-चिन्तन एवं हित-साधन करते थे।

मुझे उनके निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं जब कभी उनसे मिला, उन्हें सदा प्रसन्न और आशावान् पाया। वे दूसरोंकी सहायताके लिये हर घड़ी तत्पर रहते थे। मुझे ऐसे अवसर याद हैं, जब दूसरोंकी दुःख-गाथा सुनकर वे इतने पीड़ित हो उठते थे, जितने शायद दुःखग्रस्त व्यक्ति भी नहीं होते।

उनका हृदय प्रेम तथा करुणासे निरन्तर छलछलाता रहता था। उनके प्रेमका स्रोत अक्षय रहा, उनकी करुणाका भंडार कभी रिक्त नहीं हुआ। उसका कारण था कि वे अपनेको सहज ही दुःखग्रस्त व्यक्तिकी स्थितिमें रख लेते थे। ऐसा व्यक्ति कभी कठोर हो नहीं सकता। वे सच्चे अर्थोंमें 'अजातशत्रु' थे। जीवनभर दूसरोंपर प्रेमकी वर्षा करते रहे। ऐसे व्यक्तिका भंडार कभी रिक्त कैसे हो सकता है?

विनम्रताकी तो उनमें पराकाष्ठा थी। अपने जीवनमें उन्होंने सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति-को भी मान दिया और अपनी उपस्थितिमें उसे कभी यह अनुभव नहीं होने दिया कि वह छोटा है।

वे ऊँचे दर्जेके विद्वान् थे। उन्होंने वेदों, उपनिषदों आदिका गहन अध्ययन किया था; लेकिन अपनी विद्वत्ताका उन्हें कभी अभिमान हुआ हो, मुझे याद नहीं आता। वह सबसे ऐसे मिलते थे, मानो अपने ही आत्मीयजनोंसे मिल रहे हों। उनसे जब-जब मिला, धन्य होकर लौटा। उनके पत्रोंको पढ़कर आज भी निहाल हो जाता हूँ। इतना वात्सल्य, इतनी सरलता, इतनी स्पन्दनशीलता मैंने बहुत कम लोगोंमें पायी है।

उनकी एक ही आकाङ्क्षा थी और वह यह थी कि भारत शुद्ध एवं प्रबुद्ध बने। इसीके लिये वे निरन्तर प्रयत्नशील रहे। गीताप्रेसके द्वारा उन्होंने जो साहित्य दिया, उसका ऐतिहासिक मूल्य है। हमारे धर्मनिरपेक्ष राज्यमें धर्म और संस्कृति अपनी पुरातन गरिमा खो चुकी है। इतना ही नहीं, नयी पीढ़ी विदेशी संस्कृतिकी अनुगामिनी बनकर भोग और भौतिकताके पीछे दौड़ रही है। वह धर्म और संस्कृतिको प्रतिक्रियावादी मानती है। भाईजी इस सबसे चिन्तित अवश्य थे, पर उन्होंने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। अन्तिम दिनोंमें जब उनका स्वास्थ्य जवाब दे गया था, तब भी निष्क्रिय नहीं बने। जो हो सका, करते ही रहे।

आज भाईजीको खोकर लगता है कि परिवारका एक ऐसा आत्मीयजन चला गया, जिसकी प्रज्ञा हिमालयकी तरह उच्च और जिसका अन्तर गङ्गाकी भाँति निर्मल था। एक ऐसा स्थान खाली हो गया है, जिसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकेगी। भगवान् देशवासियोंको ऐसी सद्बुद्धि दें, जिससे वे भाईजीके स्वप्नोंको साकार कर सकें।

●

क्या लिखें, क्या बोलें, क्या करें !

श्रीरामनाथजी 'सुमन'

बगीचेमें चुप बैठा हूँ। अस्तंगत सूर्यकी ओर देख रहा हूँ। स्वच्छ, निर्मल आकाश दूरतक दिखायी देता है। क्षितिजके एक कोनेपर एकाएक एक नन्हा मटमैला चक्र दिखायी पड़ता है और देखते-देखते भयंकर आँधी उठती है, मेरे सँभलते-सँभलते सम्पूर्ण आकाशपर छा जाती है, अन्धकार सारे प्रकाशको निगल लेता है, हरहराकर बूँदें आती हैं—लगातार बूँदें। फिर अजस्र जलधारा, मानो मेघ धरित्रीको डुबाकर छोड़ेंगे। मैं बुरी तरह भीग गया हूँ और काँप रहा हूँ। काँप रहा हूँ और आकाशकी ओर देखता जा रहा हूँ—दृष्टिहीन रिक्तता और सूनेपनके साथ देखता जा रहा हूँ। नहीं दिखायी देता, फिर भी देखता जा रहा हूँ। हाथ-पाँव फूल गये हैं, भाग नहीं पाता हूँ। आश्रय होगा, पर सम्प्रति आश्रयहीन हो गया हूँ। बस, देखता हूँ और देखता हूँ। क्या देखता हूँ? पता नहीं।

—कुछ ऐसी ही स्थिति मेरी २२ मार्च १९७१ को हुई, जब मेरे भाईजीने गोरखपुरमें अपना चोला बदल लिया। महीनोंसे वे बीमार थे, शङ्कास्पद था उनका बचना। कम ही लोग कहते थे कि वे रहेंगे। तब भी उनकी बिदाई मुझपर एक आकस्मिक वज्रपातकी भाँति आयी। बहुत पढ़ा है, कुछ सुना भी है और जानता हूँ कि एक दिन देहका अन्त होना है। मृत्यु तो पैदा होनेके दिनसे ही अविच्छेद्य मित्रकी भाँति साथ लगी है। बापू (गांधीजी) कहा करते थे कि 'मृत्यु ही एक माशूक (प्रियतमा) है, जो कभी धोखा नहीं देती।' भाईजीसे भी बहुत सुना है कि 'शरीरका क्या और इसके प्रति आसक्ति क्यों?' परंतु जब जानकर भी बराबर अपनेको धोखा दिये जा रहा था कि अभी वे नहीं जायेंगे, नहीं जायेंगे। सो जब बिदा होनेकी बात सुनी, तब अकस्मात् ऐसा आघात लगा कि बोला भी नहीं गया, सन्न रह गया। तबसे दिन-पर-दिन बीतते गये हैं, मास-पर-मास, यहाँतक कि वर्ष बीतनेको भी आया और मेरी ऐसी स्थिति है जैसे लकवा मार गया है—बुद्धिको, मनको, शरीरको। मेरी आस्था झूठी हो गयी है और जैसे भाईजी नहीं बिदा हुए हैं, मैं ही मर गया हूँ!

कैसे लिखूँ? क्या लिखूँ? किसके लिये लिखूँ? बार-बार कलम उठायी है, चेष्टा की है और बार-बार उसे रख दिया है। लेखनी गूँगी हो गयी है, उसकी पीड़ा इतनी है कि वह कहना चाहती है, परंतु कह नहीं पाती। मुझे संदेह है कि वह अनुभव भी कर पाती है। उसका दर्द अनुभूतिकी सीमाके बाहर चला गया है।

मित्र एवं कृपालु बन्धु मेरी स्थिति देखते हैं, शायद समझते भी हैं; परंतु समझकर भी नहीं समझते, देखकर भी नहीं देखते। वे बार-बार कुछ लिखनेका अनुरोध करते हैं, परंतु समझ नहीं पाते कि कैसे मैं उस अव्यक्तको व्यक्त करूँ, कैसे उस वाणीको खींचकर बोलनेको विवश करूँ, जो मौनमें विसर्जित हो गयी है? फिर किस भाईजीकी बात कहूँ? लेखक, साहित्यकार

और कवि ? दीनबन्धु और पर-दुःखकातर ? ध्यानी और जपयोगी ? संत और भक्त ? पत्रकार और समाजसेवक ? साधक और तपस्वी ? परम सुहृद् और बन्धु ? 'ज्यौं-ज्यौं डूबै स्याम रँग, त्यौं-त्यौं उज्ज्वल होय'––इस महाभावमें निमग्न ? किस भाईजीकी बात कहूँ ? 'जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।' जीवनकी परिधिका इंच-इंच स्थान जिनके स्नेह, शुभाशिष, करुणा, सौहार्द और प्रेमदानसे घिरा हुआ है, उनकी बात क्या कही जा सकती है ? क्या कहूँ, कैसे कहूँ ?

४३ वर्ष हो गये, जब, '(मारवाड़ी) अग्रवाल महासभा'के बम्बई अधिवेशनके समय, जिसके वे सभापति थे, उनके प्रथम दर्शन हुए थे। मैं था महासभाके मुखपत्र 'अग्रवाल समाचार'का सम्पादक। भाई श्रीश्रीगोपाल नेवटिया, वेणीप्रसादजी डालमिया इत्यादि मित्रोंके अनुरोधपर मेरे परम स्नेही बन्धु स्व० शिवपूजनसहायजीने मुझे बम्बई भेजा था इस कामके लिये। फिर उस दिन तो जैसे बम्बई ही भाईजीके दर्शनोंके लिये उमड़ पड़ी थी। फ्लोरा फाउंटेनसे धोबीतलाव और क्राफर्ड मार्केटतक उनके स्वागतमें आये हुए लोगोंके मुण्ड-ही-मुण्ड दिखायी पड़ते थे।

उस भीड़में उनतक पहुँचना क्या सम्भव होता ? दर्शन करने उनके स्थानपर गया, हिचकते, डरते, धड़कते हृदयसे। उन्होंने देखते ही मुझे ललककर बाँहोंमें भर लिया। अब हम बोलते नहीं हैं। दोनों द्रवित हैं, दोनोंकी आँखोंसे आँसू टपक रहे हैं और टपक रहे हैं––वे आँसू, जो दुःख और सुख, फूल और काँटोंभरे जीवनके लंबे मार्गमें चलते हुए टपकते ही रहे और जब वे मुझे छोड़कर चले गये हैं, तब भी टपक रहे हैं, और लगता है––शायद सदा टपकते रहेंगे। उनका टपकना ही मेरा बल है, उनका बहना ही मेरा प्रेरणास्रोत है। वही है चिर-मिलनबिन्दु। यह है बिन्दु और सिन्धु, सिन्धु और बिन्दुके मिलन और विच्छेद, विच्छेद और मिलनका अर्घ्य।

मैं बड़े संकोची स्वभावका आदमी हूँ। जिन्हें जीवनमें प्रेम किया है, बहुत प्रेम किया है, उनसे प्रायः दूर-दूर रहता रहा हूँ, बहुत कम सम्पर्क रखा है। परंतु सम्पर्कके अभावमें भी जो शाश्वत सम्पर्क हो जाता है, उसका मैं क्या करूँ ? बापूजीने एक बार लिखा था––'प्रेम बोलता नहीं। जो बहुत बोलता है, वह प्रेम नहीं।' अतएव मैं भाईजीसे बहुत कम मिलता रहा हूँ, बहुत कम बोलता रहा हूँ; परंतु गांधीजीके बाद मेरे जीवनको सबसे अधिक उन्हींने प्रभावित किया है, पावन बनाया है। प्रेम और स्नेह तो उन्होंने जो दिया, कोई और दे नहीं पाया। पिछले ४३ वर्षोंमें शायद १५ बार हम मिले होंगे; परंतु जीवनका कोई संकटबिन्दु नहीं, जिसमें स्नेहावतार भाईजीने, भगवान्‌के आशीर्वादकी भाँति आकर मुझे उबार न लिया हो। बिना कहे, बिना बोले, वे जान जाते थे। कैसे, यह मैं आजतक जान नहीं पाया। मैं संकोच-वश उनसे कटता फिरता था और वे अपनी विशाल भुजाएँ बढ़ाकर मुझे पकड़ लेते, मानो कहते हों––'मेरे स्नेह-जालसे छूटकर कहाँ जाओगे ?'

अगणित हैं उनके स्नेहकी स्मृतियाँ और वे इतनी निजी और इतनी पावन हैं कि उनको कहना या लिखना उनकी पावनताको लजाना है। उन्होंने प्रथम साक्षात्कारके बहुत पहले ही मानो मुझे अपना छोटा भाई मान लिया था और उस उत्तरदायित्वको सदा निबाहा। बिना

लिखे, बिना कहे, महीनोंसे जब पत्र-व्यवहार नहीं, मिलना नहीं, न जाने कैसे उन्हें मेरे कष्टोंका पता लग जाता था। १९३९ की बात है, मैं अत्यन्त मारक रोगोंके पंजेमें फँसी पत्नीको जलवायु-परिवर्तनार्थ दिल्लीसे प्रयाग ले आया था––साधनहीन और अकिंचन। पास कोई पूँजी नहीं, क्योंकि मुझपर उन दिनों बापूजीका गहरा रंग चढ़ा था और वे कलके लिये सोचने और संचय करनेको नास्तिकता कहते और मानते थे। महीनेका अन्तिम दिन था। मैं बाहर चबूतरेपर बैठा चिन्तामें मग्न था, मेरे पास कुल तीन-चार रुपये बच रहे थे और पहली तारीख (आनेवाले कल)को ग्वाले, महरी, महाराजिन, मकान-मालिक––सबको पैसे चुकाने थे। मैं नया-नया आया था और अपरिचित था। मेरे कहनेपर कोई विश्वास ही क्यों करता ? सो बैठा हुआ, आँखें मूँदकर भगवान्को पुकार रहा था––'कैसे होगा ? क्या होगा ?' पत्नीके गहने एक-एक करके पहले ही बिक चुके थे। आँखें मेरी बंद हैं और 'निरालम्बमीश' के प्रति गुहारके साथ भी अपनी विवशता और असहाय अवस्थापर आँसू गिर रहे हैं। अचानक एक पोस्टमैन आता है। मैं अपनेमें इतना डूबा हूँ कि मुझे कुछ भान नहीं होता। पोस्टमैन पुकारता है–– 'बाबूजी, आपका बीमा है।' अब मैं सोच रहा हूँ कि जो सज्जन पहले इस मकानमें रहते होंगे, उनका होगा। इसलिये सूखी हँसी हँसकर कहा––'भैया, मेरा बीमा नहीं होगा।' परंतु 'देखिये तो' कहकर उसने उसे मेरे हाथमें पकड़ा दिया। सचमुच मेरा ही है। तीन सौ रुपयोंका बीमा है, 'कल्याण'से आया है। इस बीमारीके कारण लगभग डेढ़ सालसे मैंने भाईजीको कोई पत्र नहीं लिखा था, कोई हाल-चाल उन्हें मालूम न था। उनके अनुरोधपर 'कल्याण'में मैंने कुछ लेख लिखे थे। 'कल्याण' प्रायः पारिश्रमिक नहीं देता, न उसकी कोई बातचीत थी, न माँग थी। आजतक मैं न जान सका कि भाईजीको कैसे यह सब मालूम हुआ, कैसे उन्हें मेरे तत्कालीन पतेका ज्ञान हुआ और कैसे उन्होंने बिना किसी भूमिका या पत्रके, पर्देकी ओटमें छिपे दीनबन्धुकी भाँति, वे रुपये भिजवाये। पूछनेपर वे हँस देते थे; कभी बताया नहीं।

अब मेरी हालत सुनिये। बीमा लेना तो मैं भूल गया हूँ, आँखें पुनः मुँद गयी हैं और आँसू गिर रहे हैं। पोस्टमैन घबरा गया है और कुछ देरतक ठक-सा देखता रह जाता है। फिर मेरा कंधा हिलाकर कहता है––'बाबूजी, क्या बात है ? रसीदपर दस्तखत तो कीजिये।' मैं हस्ताक्षर करता हूँ, परंतु रोये जा रहा हूँ और रोये जा रहा हूँ। यह जीवनमें भगवद्दर्शन है, और भाईजी भगवान्के आवाहक हैं।

एक बारकी बात है, सरदारशहरके कन्हैयालालजी दूगड़ और मोहनलाल जैनने, जो मेरी रचनाओं तथा विचारोंके अध्येता और प्रशंसक थे, अपने खर्चेसे मुझे वहाँ बुलाया था। जैन-धर्मके एक सम्प्रदायके आचार्यकी शिक्षाओंके विषयमें वे मेरी सलाह चाहते थे। मैं गया। मुझे मालूम नहीं था कि भाईजी रतनगढ़में हैं। रतनगढ़में गाड़ी बदलती थी। भाईजीको मालूम हुआ, तुरंत उन्होंने आदमी दौड़ाया। लौटते समय रतनगढ़ ठहरनेका वचन लिया। लौटनेपर मुझे अपने पास ठहराया। उस समय उनकी इकलौती पुत्री सावित्री बाई ही उनके साथ थी उनकी देख-रेखके लिये। उस समय उसका विवाह नहीं हुआ था। कमरेमें मैं हूँ और भाईजी हैं। हम दोनों आमने-सामने बैठे हैं। बोलना चाहते हैं, परंतु बोल नहीं पा रहे हैं। बड़ी कठिनाईके

साथ अस्फुट-से कुछ शब्द निकलते हैं। स्नेहकी सघनतामें वाणी खो-खो जाती है। ऐसा दिव्य और प्रायः मौन स्नेह-सत्सङ्ग मुझे जीवनमें बहुत ही कम मिला है। बादमें मैंने सुना कि भाईजीने संस्कृतके तरुण कवि अद्भुतशास्त्री इत्यादिके अनुरोधपर मेरे एक व्याख्यानका आयोजन करना स्वीकार कर लिया है। वे ही उस सभाके सभापति भी होंगे। मैंने उनसे और मित्रोंसे बहुत कहा––'जहाँ स्वयं कल्पवृक्ष वर्तमान हो, वहाँ भला मैं क्या कह सकूँगा ? फिर भाईजीके सामने मेरा मुँह खोलना शिष्टाचारके भी अनुकूल नहीं।' परंतु उनका अनुरोध या आदेश निरस्त नहीं हो सका। शामको मुझे रतनगढ़का पुस्तकालय दिखाया गया, फिर सभा हुई। मैं डेढ़-दो घंटे भारतीय संस्कृतिकी रूप-रेखापर बोला। भाषणका अन्त हुआ और भाईजी मुझसे लिपट गये और स्तुतिका अन्त कर दिया। ज्यों-ज्यों वे कुछ कहते, त्यों-त्यों मैं संकुचित होता जाता। इस विषयपर उनकी उपस्थितिमें मैं कुछ कहनेका अधिकारी नहीं था। बस, इतना ही कहकर उन्हें नमन किया कि 'भारतीय संस्कृतिका सदेह महाकाव्य जहाँ वर्तमान है, वहाँ मेरी इस धृष्ट शिशु-लीलाको प्रोत्साहन तो मिलना ही है।'

तबसे मेरी रचनाओं और मेरी चिन्तनधाराके वे एक उदार पोषक बन गये। कई बार 'कल्याण'में उन्होंने मेरे ऐसे लेख भी छापे हैं, जिनमें उनकी विचारधारासे किंचित् भिन्न मत प्रकट हुआ था। मेरी नारी-समस्या-विषयक रचनाएँ उन्हें विशेष प्रिय थीं और भारतीय नारीके लिये मैं जिस मार्गको अपनानेकी बात कहता रहा हूँ, उसके वे प्रबल समर्थक थे। अपने परिवार अथवा मित्रोंके परिवारमें किसी कन्याके विवाहका निश्चय होता तो वे मुझसे उस अवसरके लिये दो-चार शब्द लिखनेका आदेश अवश्य कर देते थे। यह सब ममतावश ही था। इस सम्बन्धमें मुझे एक बात याद आ गयी है। जब सौभाग्यवती सावित्रीबाईका विवाह हुआ, मैं अपनी विवशताओंके कारण उसमें सम्मिलित न हो सका। यह उनकी एकमात्र संतानका मङ्गलोत्सव था। मेरी आर्थिक स्थिति भी अच्छी न थी। मेरी धर्मपत्नीका अनुरोध था कि 'जा नहीं सकते तो कुछ उपहार तो भेजना ही चाहिये।' बड़ा संकोच था, क्या भेजूँ। बड़े-बड़े उपहारोंके बीच मैं जो कुछ भेज सकूँगा, उसकी क्या बिसात ? अन्तमें बड़ी हिचकिचाहटके बीच मैंने पोस्ट पार्सलसे खादीकी एक साड़ी भेज दी। जैसा कि मेरे अनन्य बन्धु श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' के पत्रसे ज्ञात हुआ, सचमुच एक-से-एक बहुमूल्य उपहार आये थे, अधिकांश भाईजीने विनयपूर्वक लौटा दिये; किंतु सुदामाकी भेजी वह साड़ी न लौटा सके, उसे प्रेमका चिह्न मान रख लिया।

राजस्थानसे मेरा बहुत सम्बन्ध रहा है। मैं उसे अपनी दूसरी मातृभूमि मानता रहा हूँ। किसी समय वहाँका युवावर्ग मुझे बहुत चाहता था और वहाँसे चले आनेके बाद भी, उनके अनुरोधकी रक्षाके लिये बीच-बीचमें मुझे राजस्थानके दौरे करने पड़ते थे। १९३८ में जब मैं दिल्लीमें रह रहा था और मेरी पत्नी बहुत बीमार होकर अस्पतालमें पड़ी थी, कई युवा मित्रोंके अनुरोधपर मुझे राजस्थान जाना पड़ा। कई स्थानोंका कार्यक्रम था और ज्यादा दिन मैं रुग्णासे दूर भी नहीं रह सकता था। जाते समय रतनगढ़में श्रीभाईजीके दर्शन किये। लौटते समय भी रास्ता उधरसे ही था, किंतु गाड़ी बदलनेमें केवल दो-ढाई घंटे मिलते थे और उसमें वहाँसे आरक्षण मिलनेकी भी सम्भावना न थी। भाईजीने कहा था कि 'सब प्रबन्ध हो जायगा, आप बिना

मिले न जाइयेगा।' लौटते समय उतरा, सामान स्टेशनपर छोड़ा और ताँगेपर जाकर उनके दर्शन किये। उनके दो मधुर बोल और आशीर्वाद पाकर निहाल हो गया। प्रेमके आँसू चारों आँखोंमें छलछला आये। उनकी तबीयत खराब थी, नहीं तो स्टेशन चलनेको तैयार थे। गये नहीं, परंतु अपने सुहृद्—सेवाके रसमें आकण्ठनिमग्न दुलीचन्दजीको सब व्यवस्था करनेका आदेश देकर साथ भेजा। मेरी अनुपस्थितिमें ही बीकानेर तार देकर रिजर्वेशन भी करा दिया था। दुलीचन्दजीके साथ मेवा-मिष्टान्न भी भेज दिया था। गाड़ी आयी, मैं बैठ गया। जब गाड़ी चलने लगी, तब दुलीचन्दजी यह कहकर कि 'भाईजी न आ सके, इसलिये यह पत्र दिया है', उतर गये। जब स्थिर होनेके बाद मैंने पत्र खोला तो उसमें सौ-सौ रुपयेके कई नोट थे और स्वीकार करनेका अनुरोध था। मैंने लौटनेके बाद उन्हें पत्र लिखा कि इस समय मुझे आवश्यकता न थी। फिर भी उन्हें धन्यवाद दिया था और कृतज्ञता प्रकट की थी। कृतज्ञ हृदयसे निकले उस स्नेहमूर्तिकी प्रशंसाके कुछ शब्द भी थे। उसका जो उत्तर उन्होंने दिया, उसे एक वे ही दे सकते थे। मेरी प्रशंसासे उन्हें गहरी वेदना हुई थी। कई निजी बातोंके बाद उन्होंने लिखा—'(आपके) पत्रकी भाषासे ऐसा अनुमान हुआ कि मेरे इस व्यवहारसे आपको कुछ संकोचमें पड़ना पड़ा है। आपके ऊँचे शीलके लिये यह स्वाभाविक ही है। परंतु मेरी प्रार्थना यह है कि आप किसी प्रकारका जरा भी संकोच न रक्खें। उदारताका मूल्य चुकानेकी बात न सोचें। मैं सत्य कहता हूँ, भगवान् साक्षी हैं, मैं उदारतासे बहुत दूर हूँ और न मैं भगवद्भक्त ही हूँ। आपको यदि ऐसा कुछ दीख पड़ा तो उसमें प्रधान कारण आपकी शुभ भावना और वृत्तियोंकी पवित्रता ही है। मैं विनयपूर्वक चाहता हूँ कि इस सम्बन्धमें आप एक शब्द भी मुझे न लिखें और न मुझे अपने एक भाईके अतिरिक्त और कुछ भी समझें।....'

परंतु जब हृदय भरा हो, कृतज्ञताकी भावगङ्गा कहाँ रुक पाती है। मेरी कृतज्ञताजन्य स्तुतिसे भरे एक साधारण-से पत्रका जो उत्तर उन्होंने भेजा था, वह उनके विगलित हृदयके अश्रुबिन्दुओंसे जगह-जगह धूमिल हो गया था। इस समय वह मिल नहीं रहा है। इसमें उन्होंने इस आशयके शब्द लिखे थे—'आप तो मेरे सच्चे हितैषी हैं; कम-से-कम आपको तो कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये, जिससे मेरी वृत्तियोंके अन्तर्मुख होनेमें अवरोध आये।.....

यह थी उनकी अन्तर्भावना, यह थी उनकी सरलता। देते हैं, परंतु देनेकी भावना नहीं; भावना क्या, उसकी अनुभूति ही नहीं है। वे कोई धनिक नहीं थे, वर्षों पूर्व सब व्यापार-व्यवसाय छोड़ बैठे थे। 'कल्याण'से भी कुछ नहीं लेते थे, न किसीसे कुछ माँगते थे। सच्चे अर्थोंमें भगवान् ही उनका अवलम्ब थे, वे ही साधन जुटाते थे। परंतु निःस्व होकर भी उन्होंने शत-शत प्राणियोंकी सहायता की है और उसका कहीं कोई विवरण नहीं, सब गुप्त ही रहा और आज भी गुप्त है। देते थे और सचमुच भूल जाते थे। उन्हें याद ही नहीं रहता था कि इसको कभी कुछ दिया है। मैं स्वयं बार-बार इसका अनुभव कर चुका हूँ। एक बारकी बात है, मित्रोंने मुझे जबर्दस्ती एक प्लाट लिवा दिया और सरकारसे निर्माणके लिये आठ हजार ऋण भी दिलवा दिया। मैंने कभी यह सूचना उन्हें भी दी होगी। उसके बाद जब उनसे मिला, तब

बोले—'आठ हजारमें कहीं मकान बनता है? अच्छा, मैं देखूँगा।' मैंने किसीसे अपने निजी कार्यमें सहायता लेनेमें संकोच प्रकट किया। जब बापूजीने मेरी पत्नीके लिये बम्बईके मित्रोंसे सहायता दिलानेकी बात कही थी, तब भी मैंने विरोध किया था। एक भाईजी ही ऐसे थे, जो मुझे अपना समझकर बड़े भाईके रूपमें मेरा बोझ उठा लेते थे और मैं उस सम्बन्धको मानकर उनके प्रेमजालमें फँस चुका था। वे अपवाद थे। किंतु उनके पास पैसे थे नहीं। बड़ी बहसके बाद तय हुआ कि वे बिना ब्याज मुझे किसी मित्रसे रुपये दिला देंगे और मैं अपनी सुविधासे धीरे-धीरे उसे चुका दूँगा। उन्होंने एक-दो सूत्रोंसे हजारों रुपये मुझे उधार दिलवा दिये, जिन्हें भगवत्कृपासे, बादमें मैंने चुका दिया। ४-५ वर्ष बाद जब प्रसङ्गवश मैंने मकानकी बात कही, तब वे बोले कि उन्हें इसका कोई स्मरण नहीं है।

फिर तो वे मेरे सरपरस्त ही हो गये। जब मैं उनके दर्शन करने जाता, तब लौटनेके दिन वे मेरे लिये गाड़ीमें रिजर्वेशन वगैरह करा देते और आज्ञा देते कि 'जाते समय मिलकर जाना'। मैं उनसे विदाई लेने जाता। यदि उस समय कमरेमें और लोग होते तो उन्हें बाहर जानेको कह देते। मैं प्रणाम करता, तब वे मेरे सिरपर हाथ रखकर थपथपा देते, फिर मुस्कराकर एक बंद लिफाफा पकड़ा देते। इन्कार करनेपर कहते—'यह मेरा दायित्व है।' वे जनमभर अपना दायित्व निभाते रहे और यह मेरा परम दुर्भाग्य है कि मैं उनकी कोई सेवा न कर सका। अपना दुःख प्रकट करनेपर वे कहते कि 'आप इसी प्रकार अपने विचार लोगोंको देते रहें, यही मेरी सेवा है।' उनकी बंद लिफाफेवाली वृत्ति जब बहुत बढ़ गयी, तब इच्छा होते हुए भी मैं उनके दर्शनोंसे लंबी अवधितक अपनेको वञ्चित रखने लगा। किंतु जाऊँ या न जाऊँ, इससे कोई अन्तर पड़नेवाला नहीं था। मेरे कुटुम्बके प्रत्येक सदस्यका भार बिना कहे-सुने ही उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था। भाईजी प्रायः मुझसे कहा करते थे—"समय बहुत बदल गया है; अब पुराने लोग नहीं रहे, जो मेरी बातपर सब कुछ करनेको तैयार रहते थे। अब तो 'सत्ता' और 'देन-लेन'की बात है। व्यापारसे धर्मका लोप होता जा रहा है। लोग मेरे पाँव छूते हैं, परंतु बात नहीं मानते; एक-न-एक बहाना करके टाल देते हैं।" इस बदले हुए वातावरणमें उनका दम घुटता था।

समुद्रकी लहरें तटकी ओर आती हैं, चट्टानोंसे टकराती हैं, लौट जाती हैं; परंतु फिर-फिर आती हैं। उनका आना नहीं रुकता, यह उनका स्वभाव है। भाईजीके लिये भी यही बात है। स्नेहकी वृत्ति उनके लिये सहज थी। वे अपनी करते ही रहते थे; जिसे अपना लिया, उसका सुख-दुःख सब उनका हो गया। उसकी चिन्ता वे जबर्दस्ती ओढ़ लेते थे। यही है भगवद्वृत्ति। भगवान् जिसे अपनाते हैं, उसका सब भार अपने ऊपर ले लेते हैं। इधर वर्षोंसे जब भी मैं उनके दर्शनोंके लिये जाता, सबसे पहली बात वे यही पूछते थे कि 'बिटियाके विवाहका क्या हुआ?' कहते—'भैया, समय बहुत खराब है, इसलिये अपने सामने पहले इस कर्तव्यको कर डालो।' मैं मौन रह जाता। मनमें 'अकबर' इलाहाबादीका वह शेर गूँज जाता—

राह तो मुझको बता दी खिज्र[1]ने,
ऊँटका लेकिन किराया कौन दे?

---

१. भूले-भटकोंको राह बतानेवाले एक पैगम्बर।

वे समझ गये, तब एक बार कहा—'आप लड़का तो खोजिये और कुछ चिन्ता न कीजिये।' एक बार उन्होंने कुछ रुपये भी भेजे। परंतु भाग्यकी कैसी विडम्बना है कि जब लड़का मिला तो भाईजी संसारको ही छोड़ गये। इसी बीच पत्नी भयंकर रूपसे बीमार हो गयी और आजतक बीमार है। 'गांधी स्मारक निधि'का जो काम मैं करता था, वह बंद हो गया। विवाह तो होना ही था। एकाध बन्धुओंने यथामति सहायता भी की। और विवाह हो गया; परंतु रह-रहकर दिलमें एक हूक उठती थी। लड़की और उसकी माँको लगता था कि जैसे वे सहसा अनाथ हो गये हैं। सिर्फ पैसेकी बात नहीं थी, जीवनमें आयी हुई जेठकी दुपहरीकी तपनमें स्नेहकी वह शीतल छाया कौन देता, जिसके नीचे हम अपनेको सुरक्षित अनुभव करते थे? वह मन्द स्मित, जो न केवल निराशाकी अँधियारीको क्षणभरमें दूर कर देता था, वरं अन्तरमें प्रबल आत्मविश्वास भी उत्पन्न करता था, अब कहाँ देखनेको मिलेगा।

× × ×

शीलके तो श्रीभाईजी समुद्र ही थे। इस मामलेमें किसीके लिये कोई भेद-भाव न था। अत्यन्त महत् होकर भी वे अपनेको सबसे छोटा समझते थे। मैं उनसे आयुमें छोटा था, पर फिर भी वे अपने वशभर मुझे अपना चरणस्पर्श नहीं करने देते थे। जबतक शरीरमें शक्ति थी और अपने छतपरके कमरेसे नीचे उतरते थे, मेरे गोरखपुर जानेपर कम-से-कम एक बार स्वयं चलकर अतिथि-निवासतक मिलने आते थे; जब न आ सकते या न आनेयोग्य होते, तब बार-बार अपनी विवशता प्रकट करते और सचमुच संकुचित तथा दुःखी होते। अपने कर्तव्यके प्रति उन-जैसा जागरूक व्यक्ति मैंने नहीं देखा। यदि किसीको किसीकी देख-रेख या सेवापर लगा देते और उससे कुछ भी असावधानी हो जाती तो उसे अपनी ही त्रुटि मानकर पश्चात्ताप करते थे।

बहुत-से लोग उन्हें धर्मज्ञ समझते थे; किंतु वस्तुतः वे 'अनेकरूपरूपाय' थे। उनमें विविध विद्याओं और गुणोंका ऐसा समन्वय था कि विचार करनेपर आश्चर्य होता है। व्रजभाषा और खड़ी बोलीके उनके सैकड़ों पद हैं, जो उनके अन्तर्मार्दवसे ओत-प्रोत और उल्लसित हैं। कविकी दृष्टिसे भी श्रीभाईजीका अपना एक विशिष्ट स्थान है। सम्पादनमें शायद ही दो-एक नाम उनके साथ रखे जा सकें। लेखकके रूपमें कठिन विषयको सुबोध शैलीमें समेट लेनेके तो वे आचार्य ही थे। देशभक्तिमें वे बहुत आगे थे और राष्ट्रीय जागरणका प्रत्येक युग उनके सक्रिय सहयोग और पथ-दर्शनसे ऊर्जस्वित हुआ है। वे इस देशकी धरतीको बड़ी गहराईसे प्यार करते थे और उसके सर्वोत्तम प्रतिनिधियोंमेंसे एक थे। तिलक, मालवीय और गांधी—तीनों उनके राष्ट्रीय अनुरागमें प्रस्फुटित हुए थे। भारतीय संस्कृति उनमें अपनी सीमापर पहुँची थी। उनकी मानवता साम्प्रदायिक या क्षेत्रगत बन्धनोंके ऊपर थी। वे भक्तिके रसमें आकण्ठ डूबे हुए, प्रभुके प्रति सम्पूर्णतः समर्पित और सौहार्दके आकर थे। निरभिमानता, मृदुलता, परदुःखकातरता, शालीनता —कोई ऐसा गुण दिखायी नहीं देता, जिसका उनमें आदर्शरूपमें विकास न हुआ हो।

मेरी समझसे श्रीभाईजीकी सर्वाधिक सफलता दो बातोंको लेकर थी—प्रभुके चरणोंमें पूर्ण समर्पण—यही थी उनकी सिद्धि और लोकैषणापर पूर्ण नियन्त्रण—यही थी उनकी साधना, जो

व्यावहारिक दृष्टिसे स्वतः महान् सिद्धि ही थी। जीवनमें मैं विविध प्रान्तों, प्रदेशों, क्षेत्रों, संस्थाओं एवं महान् व्यक्तित्वोंसे सम्बद्ध रहा हूँ। मैंने बड़े-बड़े योगी-यति, मुनि-महात्मा और आचार्य देखे हैं; वीतराग संन्यासियोंके सम्पर्कमें आया हूँ; परंतु ऐसा एक आदमी भी नहीं मिला, जो इस विषयमें उनके समकक्ष हो। घर-गृहस्थी, धनैषणा और संसारका त्याग करना भी अपेक्षाकृत सरल है; परंतु यश और प्रशंसाकी एषणाका त्याग अत्यन्त कठिन है। बड़े-बड़े संसार-त्यागी और सिद्धिप्राप्त महात्मा प्रशंसा एवं स्तुतिके वचन सुनकर संतोष एवं 'अहं'की तृप्तिका अनुभव करते हैं। एक भाईजीको ही देखा, जो स्तुतिवाक्य सुनकर कछुएकी भाँति सिकुड़ते जाते थे, प्रशंसाके वचन उन्हें विषकी भाँति लगते थे। विविध क्षेत्रोंमें लंबी सेवा और साधनाके जीवनके बाद भी भाईजीने अपने विषयमें कुछ लिखा जाना कभी स्वीकार नहीं किया। कई बार उनके मित्रों, सहयोगियों, अनुयायियोंने इसके लिये प्रयत्न किया है, तैयारियाँ कर ली हैं; परंतु भाईजीके कानोंमें भनक पड़ते ही वह लताड़ पड़ी है कि हारकर चुप होकर बैठ जाना पड़ा है। एक बार उनके एक भक्त एवं प्रशंसकने कुछ लोगोंको गोपनीय पत्र भेजे कि 'भाईजीकी जन्मतिथिके समय वे विविध पत्र-पत्रिकाओंमें भाईजीपर लेख लिखकर प्रकाशित करायें।' जब भाईजीको पता लगा, तब उनको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने हाथसे एक-एक व्यक्तिको पत्र लिखा और विनय की कि वे अपना बहुमूल्य समय ऐसे तुच्छ कार्यमें न लगाकर किसी महत् कार्यमें लगायें। मैंने बहुत खीझकर उन्हें लिखा कि "आखिर इस विषयमें आपका इतना आग्रह क्यों है? जो लोग आपके पावन चरितसे कुछ सीख सकते हैं, उन्हें आप इस लाभसे वञ्चित क्यों करते हैं? आप 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी' क्यों नहीं हो जाते?" पर हवामें चमकाये जानेवाले खड्गकी भाँति कोई झंकार भी न हुई और मेरा वार खाली गया। मिलनेपर भाईजीने बड़ी विनम्रतासे कहा—"आप तो मेरे हितकी कामना रखते हैं; आपको तो ऐसा नहीं करना चाहिये, जिससे इन्द्रियवृत्ति प्रबल हो। स्तुतिके शब्द कानोंको प्रिय लगते हैं, इसलिये उनसे दूर ही रहना चाहिये। मैं 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी' अभी कहाँ हूँ। मैं तो एक दुर्बल मानव हूँ। हाँ, भगवान्‌से अवलम्बका आकांक्षी हूँ कि वह मुझे उबार लें। इसलिये मुझे अपनी मर्यादामें रहना चाहिये। संसारमें जो सीखना चाहें, उनके लिये एक-से-एक पावन चरितके उदाहरण हैं। मुझ कंगालके पास क्या है।" उनके इन दैन्यभरे शब्दोंको सुनकर मैं अपने पत्र-लेखनपर ग्लानि कर रहा था। उन्होंने कौंसिलोंकी सदस्यता, 'भारतरत्न'की उपाधि एवं कितने ही बड़े-बड़े प्रलोभनोंको तिनकेकी भाँति ठुकरा दिया और उस ठुकरानेमें अपनी ही अयोग्यता या असमर्थताको कारण बताकर विनम्रता एवं सहज त्यागका आदर्श उपस्थित किया। अपनी महत्तापर अप्रत्यक्षरूपसे प्रकाश डालनेवाली सच्ची बातें और घटनाएँ भी वे गुप्त ही रखना चाहते थे। उनके साथ दीर्घकालतक रहनेवाले एक साधकने उनके जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले कुछ अनुभव, कुछ घटनाएँ लिख डालीं; क्योंकि केवल वे ही उन्हें जानते थे। कहीं कुछ अन्यथा तो नहीं लिखा गया है, यही देखनेके लिये उन्होंने उसे भाईजीको दे दिया। भाईजीने उसे पढ़ा, किंतु जब लोग हट गये और एकान्त हुआ, तब उसे नष्ट कर दिया और क्षमा माँग ली। इतना आत्म-गोपन कौन कर सकता है? तब भला, ऐसे व्यक्तिके विषयमें, जिसका अधिकांश अतल

सागर-गर्भमें बहते हुए 'आइसबर्ग'की भाँति संसारकी दृष्टिसे ओझल है, लेखनी क्या लिखेगी ? वाणी क्या प्रकट करेगी ? वे तो एक होकर भी अनेक, गृहस्थ होकर भी योगी और संसारके होकर भी असंसारी थे। वे ऐसे महत् थे, जिनकी महत्ताके सम्पूर्ण बिन्दु संसार कभी न जान पायेगा।

× × ×

इधर अनेक वर्षोंसे उनका शरीर उस श्रमको बर्दाश्त नहीं कर पाता था, जो वे निरन्तर करते रहते थे। मैंने कई बार लड़कर उनसे सम्पादनका कुछ काम छीन लिया। वे उस समय तो मान जाते थे, परंतु बादमें चिर-अभ्यस्तकी भाँति फिर उसे स्वयं ही करने लगते थे। एक बार जब नहीं रहा गया, तब मैंने उनसे कहा—'शरीर नाशवान् है, असत् है; परंतु वही देवताका मन्दिर भी है। इसी असत्की आड़में सत्की प्राप्ति सम्भव है। तब आप उसके प्रति इतने निष्ठुर क्यों हैं ?' बोले—'निष्ठुर तो नहीं हूँ, परंतु अधिक आसक्ति भी तो ठीक नहीं है।' मैं क्या कहता। बात असलमें यह थी कि अपना गृहीत काम दूसरोंसे करानेमें उन्हें सदा संकोच रहता था। इन सब उपेक्षाओंके कारण तथा अत्यन्त व्यस्त वातावरणमें शरीरके अंदर छिपे हुए रोग पनपते रहे और अन्तमें असाध्य बन गये।

रोगका तो एक बहानाभर था। पिछले अनेक वर्षोंसे चतुर्दिक् निरन्तर गिरते हुए वातावरणका प्रतिकूल प्रभाव उनके अत्यन्त उच्च, संवेदनशील एवं आकुल हृदयपर पड़ रहा था। आजके सत्तालोलुप और स्वार्थपूर्ण परिवेशमें वे अपनेको 'मिसफिट'-सा पाते थे। प्रायः बातचीतमें वे साहित्य, समाज, राजनीतिके पतनशील स्तर एवं युगकी क्रूर तथा भोगवादी प्रवृत्तियोंपर आन्तरिक व्यथा प्रकट करते थे। व्यापारी-समाजमें पहले जो ईमानदारी, धर्मभावना, उदारता एवं दानकी वृत्ति थी, वह तेजीसे समाप्त होती जा रही है, इसका भी उनके चित्तपर बड़ा असर था। ऐसे और भी अनेक हेतुओंसे इस संसारमें उनके लिये कोई आकर्षण नहीं रह गया था। फिर कोई ऐसा कर्तव्य भी शेष न था, जो जीनेकी ललक उत्पन्न करता। फलतः वे तीव्रगतिसे अन्तर्मुख होते जा रहे थे। रसेश्वर और रसेश्वरीकी आराधना करते हुए वे उनमें विलीन होते जा रहे थे। वे उनकी लीलाओंको प्रत्यक्ष देखते थे और देखते-देखते स्वयं लीला बनते जा रहे थे, उसमें खो-खो जाते थे। प्रायः यह स्थिति होती जा रही थी कि आँखें खुली हैं, परंतु दृष्टिका लोप हो गया है; कान कुछ सुन नहीं पाते, जपकी माला गिर-गिर जाती है। घंटों शरीर चेतनाशून्य—जैसे है, वैसे ही—पड़ा रहता है। जब मैंने यह पहली बार १९६७में देखा, तब मनने कहा—'यह शरीर अधिक दिन नहीं रहेगा। आत्मा उसको छोड़ती जा रही है। भाईजी एक अतीन्द्रिय लोकमें चले जाते हैं और फिर उस ऊर्ध्वलोकसे इस जगत्तक आनेमें उन्हें बड़ा श्रम पड़ता है, अच्छा भी नहीं लगता।' उनकी यह स्थिति—यह भाव-समाधि बादमें रोजकी चीज हो गयी। मेरी समझमें ये ही दो कारण हैं—चतुर्दिक् गिरता आचरण-स्तर तथा रसेश्वर-रसेश्वरी-के सूक्ष्म, अतीन्द्रिय भाव-लोकमें सबका लोप—जिनके कारण श्रीभाईजीकी चिर बिदाई हो गयी। वे स्वयं पूजाकी नित्य दीप-शिखा बन गये थे। इस जगत्के होकर भी वे मानो इस जगत्के नहीं

रह गये थे। इसलिये जो सूक्ष्म चैतन्य शरीरको चला रहा था, वह उसे छोड़ने लगा था और छोड़ते-छोड़ते एक दिन बिल्कुल ही छोड़ गया।

श्रीभाईजी चले गये, और हम उनके बिना बिल्कुल शून्य हो गये हैं। श्रीकृष्णके चले जानेके बाद जो स्थिति पाण्डवोंकी हुई थी, वही हमारी है। हम रोते हैं और छटपटाते हैं, छटपटाते हैं और रोते हैं। अब भी उनको पकड़नेकी चेष्टा करते हैं और संसार-नदके प्रखर प्रवाहमें बह-बह जाते हैं। शत-शत स्मृतियाँ चतुर्दिक्से आती हैं--स्मृतियाँ जिनपर ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, स्मृतियाँ जो हमारे अन्तरको कुरेद-कुरेद देती हैं और फिर हमें असहाय छोड़कर चली जाती हैं। उनकी उदारता, उनकी दयालुता, उनकी करुणा, उनका वात्सल्य, उनका स्नेह, उनका तप, उनकी ईश्वरमयता, उनका काव्य, उनका सम्पादन, उनका साहित्य, उनकी सर्वग्रासा भक्ति, उनका शास्त्रानुमोदित जीवन और आचरण, अपनेको निःस्व करके, पीछे रहकर सब कुछ करते रहनेकी उनकी साधुता--क्या-क्या गिनायें, भाईजी अनेक उदात्त कलाओंके आकर थे। वे खो गये तो लगता है, हमारा सर्वस्व लुट गया है। हम क्या लिखें, क्या बोलें, क्या करें!

●

अनोखे दयालु

पद्मभूषण श्रीगूजरमलजी मोदी

श्रीभाईजीके परलोक-गमनसे देशने एक अद्वितीय विभूति खो दी है। उनका मुझपर अपार प्रेम एवं स्नेह था। वैसे तो वे प्रत्येकके लिये ही बड़े दयालु थे। एक बार श्रीभाईजीके नामका एक झूठा पत्र दिखाकर एक आदमीने मुझसे कुछ सहायता ले ली। जब पता लग गया कि वह गलत आदमी है, तब उसपर कोई केस किया गया। श्रीभाईजीको यह बात ज्ञात हो गयी। उन्होंने मुझे कोर्टसे उस केसको वापस लेनेके लिये कहा। उन्होंने लिखा--'भाई, इससे गलती हो गयी है, इसे माफ कर दिया जाय।' ऐसी थी उनमें दयालुता। समय-समयपर अनुभव किये गये उनके गुणों एवं व्यवहारके संस्मरण मेरे मानस-पटलपर अङ्कित हैं।

●

बरस रही है सबपर भगवत्कृपा सहज ही, नित्य-निरन्तर।
जीवमात्रके सहज स्वजन हरि, भरे सभीके बाहर-भीतर॥
सदा सभीके लिये वेगसे झरता कृपा-सुधाका निर्झर।
परमाश्रय वे प्राणिमात्रके, भेदरहित वे परम सुहृद् वर॥

--श्रीभाईजी

●

अजातशत्रु

श्रीरामेश्वर टाँटिया

दुनियामें बड़े-से-बड़े लोग आये और चले गये, परंतु श्रीभाईजी-जैसे महापुरुष कम ही हुए, जिनके लिये प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि उनका मुझपर सबसे ज्यादा स्नेह था। वास्तवमें भाईजी 'अजातशत्रु' थे।

'कल्याण' एवं गीताप्रेसके साहित्यसे परिचित व्यक्ति उनसे मिलनेके लिये आते थे और उनकी मिलनसारिता, उदार स्वभाव और सादगीपूर्ण रहन-सहनसे बहुत ही प्रभावित होते थे। उन्हें ऐसा लगता था कि वे अपने ही परिवारके किसी बड़ेके निकट बैठे हैं। वास्तवमें वे पोद्दारजी न रहकर छोटे-बड़े सबके 'भाईजी' हो गये थे। 'कल्याण' तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थोंके सम्पादनके माध्यमसे उन्होंने मानव-कल्याणार्थ जो महान् काम किया है, वह किसी एक बड़ी संस्थासे कम नहीं है।

मेरा उनका परिचय बहुत पुराना है। सन् १९७०की फरवरीमें छपरासे आते हुए मैं उनके दर्शनार्थ गोरखपुर गया। बहुत दिनों बाद उनसे मिला था, परंतु उन्होंने मुझे पहचान लिया और कहने लगे—"मैं बीच-बीचमें तुम्हारे लेख पढ़ता रहता हूँ, उनमेंसे कुछ 'कल्याण'के अनुरूप हैं। तुम ऐसे लेख मुझे भेजा करो।" मेरे लिये तो यह एक बिना माँगी मुराद थी। 'कल्याण'-जैसे लोकप्रिय और बहुपठित पत्रमें अपनी रचना देखकर किसे गर्व नहीं होगा।

महाप्रयाणके दो मास पूर्व मैं उनसे मिलने फिर गोरखपुर गया था। कुछ दुबले और अस्वस्थ-से लगे, परंतु चेहरेपर वही प्रसन्नता थी। डाक्टरोंने ज्यादा मिलने-जुलनेकी मनाही कर रखी थी। पर भला, दूर-दूरसे आये हुए भक्तोंको वे कैसे निराश करते? मैंने उन्हें उनके पैतृक स्थान रतनगढ़ (राजस्थान) जाकर विश्राम करनेको कहा तो उत्तरमें सिर्फ मुस्करा दिये। लगा, जैसे कह रहे हों—'देशकी जगह अब तो परदेश (परलोक) जाना है।' जब आने लगा, तब उन्होंने अपने सहयोगीको बुलाकर मेरे खाने-पीनेकी व्यवस्थाके लिये कहा। लगा—वास्तवमें ही वे एक महान् व्यक्ति हैं, जो अपनी वेदना भूलकर आये हुए अतिथियोंकी साधारण सुख-सुविधाका इतना ख्याल रखते हैं। मुझे इस गृहस्थीमें एक महान् संन्यासीके दर्शन कर अविस्मरणीय आनन्द हुआ।

उनके परलोकगमनसे जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति निकट भविष्यमें होना सम्भव नहीं है। उनके परिवारमें 'कल्याण'के एक लाख पैंसठ हजार सदस्य हैं (पाठकोंकी संख्या तो इससे भी बहुत-बहुत अधिक होगी) और सबको ऐसा लगता है—जैसे उनके सिरपर अब कोई वरद-हस्त नहीं रहा।

●

लोकोत्तर व्यक्तित्व

डा० श्रीविश्वम्भरशरणजी पाठक

'साधु पुरुष अत्यन्त महान्, समदर्शी, प्रशान्त, क्रोधशून्य और सबके सुहृद् होते हैं।'

जीवनमें कृतार्थता आयी कि इस लोकोत्तर व्यक्तित्वको श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेका अवसर मिला। परमभागवत पोद्दारजीका लोकोत्तर रूप अप्रकट ही है। उन्होंने अपनी सदाशय विनम्रता-से अपने रूपको इस प्रकार आवृत कर रखा था कि साधारणजनको उसी समय कुछ आभास मिला, जब उन्होंने कृपार्द्र होकर उसकी धूमिल-सी झाँकी दी। अन्यथा आनन्दपूरित स्मिति और प्रेम-विह्वल दृष्टिसे झलकनेपर भी वह अप्रकट ही रहा और अप्रकट ही रहेगा; उस समयतक, जबतक कोई अधिकारी महापुरुष उसको लोक-कल्याणके लिये लोकबोध्यरूपमें प्रकाशित न कर दे। इसकी सम्भावना स्वल्प है। अतः हमलोगोंको उत्पलके निम्न कथनसे ही संतोष करना पड़ेगा——

जयन्ति भक्तिपीयूषरसासववरोन्मदाः।
अद्वितीया अपि सदा त्वद्द्वितीया अयि प्रभो॥

'प्रभो! जो आपकी भक्ति-सुधा-रसरूप आसवके पानसे मरत——उद्गतहर्ष हैं, जो सदैव अद्वितीय (अनुपम) होते हुए भी आपके द्वितीय (समान) रूप हैं (असाधारणस्वरूपा अपि त्वद्द्वितीयाः, त्वमेव द्वितीयस्तुल्यरूपो येषाम्) उन भक्तजनोंकी जय हो।'

यह तो बहुतोंको ज्ञात है कि श्रीपोद्दारजी सहसा भाव-समाधिमें चले जाते थे——इसके लिये उन्हें जप-ध्यान आदिकी आवश्यकता नहीं थी। किंतु उस स्थितिमें प्राप्त अनुभूतियोंकी प्रगाढ़ताको कौन जानता है? महात्मा हरिव्यासदेवने सम्भवतः इसी स्थितिकी ओर इङ्गित किया था, जब उन्होंने कहा——

काहू कौ बल भजन है, काहू कौ आचार।
ब्यास भरोसे कुँअरि के, सोवत पाँव पसार॥

एक और प्राचीन सिद्धका कथन है——

न ध्यायतो न जपतः स्याद् यस्याविधिपूर्वकम्।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्तिशालिनम्॥

'जिसके अन्तःकरणमें बिना ध्यान-जप आदि नियमित साधनोंके भक्ति-चमत्कारवश अलौकिक क्रमसे चिदानन्दघनस्वरूपका प्रकाश स्फुरित हो——जिसके लिये 'न चात्र विहितं किंचित्'——'कोई विधि-निषेध नहीं है', उस भक्तिशोभित पुरुषकी हम स्तुति करते हैं।'

तथा अनुभूतिकी प्रगाढ़ताके सम्बन्धमें स्वयं श्रीपोद्दारजीका कथन है——

प्रेमी, प्रेम, परम प्रेमास्पद, नहीं ज्ञान कुछ, हुए विभोर।

श्रीपोद्दारजीका लोकव्यक्त——बाह्य रूप भी मङ्गलकारी और मनोरम है। यह कहा जाता है कि समावेशमय भक्ति जिसको प्राप्त हो गयी, उसका लोक-व्यवहार भी चिदानन्दरूपकी विजृम्भासे होता है। उनके जीवनमें उपर्युक्त सिद्धान्त व्यक्त दिखायी पड़ता था। प्रायः यह आनन्दकी मूर्ति अनासक्त प्रेमकी दृष्टिसे व्यक्तियोंको देखती रहती; किंतु जहाँ आगत व्यक्तियोंने वैचारिक अथवा क्रियात्मक समस्या सामने उपस्थित की कि उनकी संवित्का तार झनझना उठता और पोद्दारजीसे उस समस्याका समाधान मिल जाता——

अलग हम सबसे रहते हैं, मिसाले तार तम्बूरा।
जरा छेड़ेसे मिलते हैं, मिला ले जिसका जी चाहे॥

इस सम्बन्धमें "श्रीश्री माँ आनन्दमयी प्रसङ्ग'में श्रीअमूल्यकुमार दत्त गुप्तके द्वारा लिखित माँका एक वचन उल्लेखनीय है, जो उपर्युक्त लोक-व्यवहारकी व्याख्या करता है। माँ कहती हैं——'देखो, एक ध्वनि हमारे अन्तरमें निरन्तर उठती रहती है। इस निरन्तर निनादित ध्वनि-पर जबतक कोई आघात पड़कर दूसरी ध्वनि उत्थित नहीं होती, तबतक हमको कुछ सुनायी नहीं पड़ता और हमारे मुखसे कोई शब्द बाहर नहीं आता। जब कोई प्रश्न करता है, तब अन्तरमें उठनेवाली ध्वनिपर एक आघात पड़ता है और तदनुकूल एक उत्तर हमारे भीतरसे बाहर आ जाता है।'

श्रीपोद्दारजीका व्यक्तित्व अनेक गुणोंसे सज्जित था, किंतु जिस आचरणसे मैं मुग्ध हुआ, वह थी उनकी 'अमानी मानद'रूप विशेषता। श्रीधरस्वामीने कहा है——'देहाध्यासकी समाप्ति-पर भक्त अन्तर्यामी ईश्वर समझकर सबको प्रणाम करे——'अन्तर्यामीश्वरदृष्ट्या सर्वान् प्रणमेत्।' पोद्दारजी भी बाह्य जगत्को ईश्वर-लीलाके रूपमें देखते हुए ईश्वरोपासनाके ही भावसे सब व्यक्तियोंका सत्कार करते थे और अहंकारके विलयनसे आत्मगौरवकी स्पृहाका उनमें सर्वथा अभाव था। मैंने देखा है कि पावनताकी धवलिमासे मण्डित भावकी विशालताके इस हिमालय-ने किस विनम्रतासे क्षुद्रतम व्यक्तिको भी प्रणति अर्पित की है। अनेक इसके साक्षी हैं कि किस सौजन्यसे उन्होंने भारतका सर्वोच्च सम्मान 'भारतरत्न'की उपाधिका प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। महाप्रभु चैतन्यने कहा है——

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

'तिनकेसे भी अत्यन्त छोटा एवं वृक्षसे भी अधिक सहनशील रहकर तथा स्वयं अभि-मानशून्य होकर भी दूसरोंको सम्मान देते हुए भगवान् श्रीहरिके नाम-गुणोंका कीर्तन करना चाहिये।'

यह उपदेश पोद्दारजीके आचरणमें अक्षरशः उतर आया था।

श्रीपोद्दारजीके द्वारा लोकको दिये गये संदेश, उपदेश अथवा शिक्षाके मूलतत्वके विषयमें श्रीकृष्णदासजी कविराजका निम्नोक्त कथन दिङ्निर्देश करेगा——

व्रजेर विशुद्ध प्रेम, जेन जाम्बुनद हेम
आत्मसुखेर जाहे नाहि गन्ध
से प्रेम जानाइते लोके।

"व्रजका विशुद्ध प्रेम जाम्बूनद स्वर्णके सदृश है। जिसमें आत्मसुखकी गन्ध भी न हो, वही इस संसारमें 'प्रेम' नामसे जाना जाता है।"

किंतु आन्तरिक रूपको बिना उद्घाटित किये बाह्य पक्षपर लिखना उनके व्यक्तित्वके महत्वको कम करना है और उनके आन्तरिक स्वरूपपर लिखनेका मैं अधिकारी नहीं। अतः—

'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।'

'महापुरुष! तुम्हारे चरण-कमलोंकी मैं वन्दना करता हूँ।'

●

भाईजीकी संक्रामक आस्तिकता

डा० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र

भाईजीको समीपसे जाननेका विशेष अवसर मुझे यद्यपि नहीं मिला, फिर भी गोरखपुर उनका इतने वर्षोंतक कर्मक्षेत्र रहा, इसलिये उनका काम तो मनपर छाया ही रहा है। जब-जब उनसे मिला, संस्कृतके कामसे मिला हूँ। एक-दो बार हिंदू-धर्मके पुनरुज्जीवनके सम्बन्धमें भी मिलना हुआ। श्रद्धेय भाईजीमें दो गुण ऐसे थे, जो सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। एक तो आस्तिकताका संस्पर्श और दूसरा विनय। 'कल्याण'की यात्रा भाईजीकी आस्तिकताकी निरन्तर अथक साधना-की ही यात्रा है। भाईजीकी आस्तिकता बड़ी संक्रामक थी। वे 'नास्ति'-को पलभरमें 'अस्ति'-में परिवर्तित कर देते थे; क्योंकि उनकी दृष्टिमें 'नास्ति' कहीं था ही नहीं। 'कल्याण'के किसी अङ्कमें, जिसे मैंने कुछ होशमें आनेपर सावधानीसे पढ़ा था, मुखियाजीकी एक कहानी थी। 'अस्ति'-भावना किस प्रकार सरल और सूधे व्यवहारमें प्रस्फुटित हो उठती है और किस प्रकार आसपासके सभी लोगोंमें चैतन्यशक्तिकी धारा प्रवाहित कर देती है। उस कहानी-के पढ़नेके बाद इसका प्रभाव आज भी मनपर गहरा है। भाईजीको, जाने क्यों, उस कहानीके मुखियाजीके स्वरूपमें जब-जब उनसे भेंट हुई, मैंने देखा है।

इतना गहरा प्रभाव डालनेकी क्षमता होते हुए भी जो सबसे अधिक विस्मयजनक बात उनमें थी, वह थी अतिशय विनयशीलता। वे यह अनुभव करनेका अवसर ही नहीं देना चाहते थे कि जो आस्तिकता प्रवहमाण हो रही है, उसमें उनका सांनिध्य ही सबसे बड़ा कारण है। वे क्षणभरके लिये भी अपने कर्तृत्वको उभरने नहीं देते थे। वे स्वयंको एक मध्यस्थ चुम्बकीय केन्द्रके रूपमें रखना चाहते थे। कई बार भेंट करनेपर स्पष्ट हो गया कि उनकी यह लोकोत्तर विनयशीलता मिलनेवालेके भीतरसे सब कुछ खींच लेनेका एक साधन था। मिलनेवाला आश्वस्त

होकर अपनी पूरी बात कह ले, अपनेको पूरी तरह उँड़ेल दे, उसका 'अस्ति' पूर्णरूपमें अभिव्यक्त हो उठे, इसीलिये भाईजी अपनेको अत्यन्त सामान्य श्रोताकी भूमिकामें डाले रहते थे।

बीच-बीचमें कहीं विप्रतिपत्ति उपस्थित हो तो वे एक हल्का झटका भी दे देते थे। पर यह हल्का झटका तभी देते, जब कहीं 'अस्ति'-की समग्रताका खण्डन होता था। वे ईश्वरकी भावनापर बल देते थे और भावना गहरी हो, एकनिष्ठ हो, तो चाहे जिस भावसे हो, उसे महनीय मानते थे। दूसरेकी भावनाके सम्बन्धमें संदेह भी उन्हें अप्रीतिकर था।

वे प्रत्येक व्यक्तिको अपने विश्वासके अनुसार पारमार्थिक सत्ताके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये स्वतन्त्र देखना चाहते थे। इसीलिये न तो स्वयं दूसरेकी भावनाका निरादर करते थे, न उसका निरादर करते सुन सकते थे। इसीको मैं सच्चे साधुका निर्मत्सरभाव मानता हूँ। वे राधावल्लभीय सम्प्रदायवालेके सामने उस सम्प्रदायकी दृष्टिसे लीलाका विवेचन करते तो चैतन्यसम्प्रदायवालेके सामने चैतन्य-सम्प्रदायकी दृष्टिसे विचारते। वे कहते—'न बुद्धिभेदं जनयेत्।'

भाईजी मनुष्यकी ईश्वराकांक्षामें पूर्णरूपसे विश्वास करते और अपने आचरणसे इस विश्वासको और जाग्रत् करनेमें सचेष्ट रहते। वे न तो संदेह करना जानते थे और न संदेह करनेवालेको संदेहका अवसर ही देते थे।

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति॥

आर्जवके असिधारा-व्रतके फलस्वरूप उन्होंने राजनीतिसे अलग रहकर भी देशके राजनीतिज्ञोंको अपने स्नेहपाशमें बाँध रखा। वे देशभरके महात्माओंको एक मञ्चपर लानेमें सतत सफल रहे और प्रत्येक प्रकारकी धार्मिक भावनाको ईश्वरोन्मुख करनेमें कृतकार्य हुए।

भाईजीको पाकर यह संज्ञा बड़ी सार्थक हुई। भाईका-सा नैकट्य, भाईकी-सी अगाध वत्सलता और भाईका-सा सहज आदरभाव उनके सांनिध्यसे विकिरणशील रहता था। वे विश्वास करते थे और विश्वास उत्पन्न करते थे, विश्वास भरते थे और विश्वास सींचते थे।

●

मिले मधुर मुझको, मेरे हो, मेरे वे प्रियतम भगवान।
पूरी हुई साध जीवनकी, पूरे हुए सभी अरमान॥
बुझी सभी विषकी ज्वाला, कर रूप-सुधा-रसका मधु पान।
हुई विकीर्ण किरण शुचि तनकी दिव्याभामय परम महान॥
छाया अति शीतल प्रकाश सर्वत्र, मिटा सब तम-अज्ञान।
दिखने लगे श्यामसुन्दर मनमोहन अब सर्वत्र समान॥

—श्रीभाईजी

●

विवादसे परे

श्रीश्रीगोपालजी नेवटिया

श्रीभाईजीके मेरे संस्मरण सन् १९२८के पहले उन दिनोंके हैं, जब वे बम्बईमें रहा करते थे । वे सामाजिक एवं अन्य विभिन्न सेवाकार्योंमें अग्रणी रहा करते थे और मैं उस क्षेत्रमें पदार्पण ही कर रहा था । बम्बई नगरीके कालबादेवी क्षेत्रका वह निवास, वहाँके वे दैनिक क्रिया-कलाप आज भी स्मृति-पटलपर अङ्कित हैं और उनमें भाईजीका तत्कालीन चित्र ज्यों-का-त्यों उभर आता है । वे सबके साथ थे, सबमें मिले-जुले, फिर भी सबसे अलग । सफल व्यवसायियोंके बीच वे असफल व्यवसायी थे, पर सांसारिकतामें आपादमस्तक डूबे हुओंके बीच वे उनसे बहुत ऊपर उठे हुए थे ।

वह जमाना था सभा-समितियोंका, सेवा-शिक्षा-संस्थाओंका, सामाजिक जागरणका । श्रीभाईजी उनमें यथोचित योगदान देते । हम-जैसे उनके गुणग्राहक बराबर पीछे लगे रहते, सब मिल-जुलकर जो बन पाता, करते । पर भाईजीका अपना एक काम और था । उसमें मैं कुछ योगदान कर सका था, उसकी स्मृतिमात्र आह्लादित करनेवाली है ।

श्रीभाईजीने प्रार्थनात्मक पद्योंकी एक पुस्तिका लिखकर तैयार की थी । उसका नाम था—'पत्र-पुष्प' । उसे सुन्दर रीतिसे छपवा देनेका कार्य-भार मैंने सँभाला था । उनकी वह प्रथम रचना आगेके वर्षोंमें पल्लवित-पुष्पित होनेवाले विशाल वृक्षके बीजके समान थी ।

उन्हीं वर्षोंमें 'कल्याण'के प्रकाशनका आयोजन हुआ था । भाईजी उसके प्रकाशनके लिये अदम्यरूपसे उत्साहित थे । उसका पहला अङ्क बम्बईसे ही प्रकाशित हुआ था । बादमें गोरखपुरसे मुद्रित होनेपर भी चित्रोंकी छपाईका कुछ काम बम्बईसे ही होता था और उसमें मैंने यत्किंचित् योगदान दिया था । उसका स्मरण मेरे लिये हर्षप्रद है ।

आगे जाकर भाईजीका जो रूप प्रकट हुआ, उसे देखकर अब चालीससे भी अधिक वर्षों पहलेकी उन बातोंको याद करता हूँ तो स्मरण आता है कि बम्बईका वह व्यावसायिक जीवन, समाज-सेवासे सम्बन्धित काम-काज—सब उनके लिये गौण थे । उनका मन कहीं और ही था, उनका पथ, गन्तव्य—सब अन्य ही था । बम्बईके उस जीवनसे वे मुक्त होकर ही रहे और उसीमें उनको सुखानुभूति हुई ।

उनके इस जंजालसे छूट जानेके बाद भी उन्हें एक बार पकड़ बुलाया गया था । वह कथा बड़ी रोचक है । मैं उस काण्डका अभिनेता था । वह जमाना था समाज-सुधारका, 'अग्रवाल महासभा' और उसके कर्तृत्वोंका । सुधारक 'समाजी' और प्राचीनताके अन्ध-अनुयायी 'सनातनी'के नामसे जाने जाते थे । दोनोंके क्षेत्र और प्रवृत्तियोंमें भेद था । जवान सुधारक थे, वयःप्राप्त सनातनी । छोटे-छोटे सुधारोंको लेकर, जिनके बारेमें आज सोचनेपर वे उपहासास्पद-से लगते हैं, खूब वितण्डा-

वाद होता, गरमागरम परचेबाजियाँ और लेक्चरबाजियाँ होती थीं । उन सबके बीच एक ऐसा समुदाय भी था, जो दोनोंको एक करनेके प्रयत्नमें था । बम्बईमें 'मारवाड़ी अग्रवाल महासभा' के वार्षिक अधिवेशनका आयोजन हुआ । उधर 'पंचायत'के नामसे पुराने विचारवालोंने अपना संगठन किया । बीच-बचाववालोंका प्रयत्न था कि दोनों एक हो जायँ तो ठीक रहे । एक होनेकी सभी बातें तय हो गयीं, विशेषतया इसी आधारपर कि सभापतित्व हनुमानप्रसादजी करें । दोनों दलोंका उनपर पूर्ण विश्वास था । ऐसा विश्वासपात्र होना अनोखा ही था ।

पर वैसे संत पुरुष इस प्रकारके दो विरोधी दलोंको क्या मिला पाते ? 'प्रथमग्रासे मक्षिका-पातः ।' भाईजी सभापति निर्वाचित हो गये, वे बम्बई पधारे । स्टेशनपर उनके स्वागतकी व्यवस्था थी, दोनों पक्षोंकी अपार भीड़ । भाईजीके स्टेशनपर पाँव रखते ही इस बातका विवाद प्रारम्भ हो गया कि किस पक्षके तत्त्वावधानमें––स्वागतमें वे रहें । खूब धमाचौकड़ी हुई और भाईजीने चुपचाप एक ओरसे निकलकर, भाड़ेकी एक विक्टोरिया गाड़ीमें सवार होकर किसी प्रकार उस संकटसे मुक्ति ली । मुझ याद है, मैंने भी उनका 'पीछा' किया था, उस सारे प्रसङ्गकी सिनेमा फिल्म भी उतारी थी; पर वह फिल्म कहाँ गयी, अब पता नहीं । पर उस दिनका सारा दृश्य आँखोंके सम्मुख उपस्थित है । आगे जो हुआ, उससे यही मालूम दिया कि भाईजीका वह कार्यक्षेत्र था ही नहीं । वे तो दोनों तरफके मित्रोंके आग्रहपर अच्छी आशा लेकर आ गये थे; पर दोनों पक्षोंके लक्षणोंको देखकर, उससे विरक्त रहनेमें ही उन्हें लाभ प्रतीत हुआ ।

एक बहुत पुराना 'चित्र' मैंने उपस्थित कर दिया, उससे पुराने भी उनके 'चित्र' हैं । उनका जो प्रकाशमान चित्र आज हम सबके सम्मुख उपस्थित है और सदैव रहेगा, वह तो है उनके भक्ति-विह्वल मुख-मण्डलका, उनके धर्मसमन्वित आलेखनोंका । अपने परम सात्विक, धर्ममय और भक्तिपूर्ण कर्तृत्वोंके कारण वे सनातन हिंदू-जगत्‌में अमर रहेंगे ।

●

नाथ ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान ।
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान ।।
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़कर तुमको एक ।
मिथ्या जगमें रमनेवाले रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक ।।

आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात ।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात ।।
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मैं, जब न दीखता कुछ सत्, सार ।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार ।।

––श्रीभाईजी

●

युगकी महान् विभूति

श्रीविश्वम्भरसहायजी 'प्रेमी'

श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी एक आध्यात्मिक पुरुष थे––संत थे । अपने धार्मिक विश्वासके पालनमें वे जीवनभर सतर्क और सावधान रहे । उनके प्रति सभी धार्मिक विद्वान् श्रद्धाकी भावना रखते थे । गीताप्रेसके धार्मिक प्रकाशन एवं 'कल्याण' उनकी मूल्यवान् धरोहर हैं । धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक––सभी क्षेत्रोंमें उनको बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता है । उनकी आत्मीयता, सरलता और उनका मानव-प्रेम सहज ही मनुष्यको अपनी ओर आर्कषित कर लेता था ।

श्रीपोद्दारजीसे मेरा व्यक्तिगत आत्मीयताका सम्बन्ध रहा है । वे मुझे अपना अनुज समझते थे और मैं उन्हें अपना पथ-प्रदर्शक एवं संरक्षक मानता था । ग्रीष्म-ऋतुमें जब वे गीताभवन आते थे, तब मैं भी समय निकालकर वहाँ जाता था और उनके विचारोंसे लाभ उठाता था । वहाँ उनके आनेपर एक नया ही जीवन दिखायी पड़ने लगता था । उनके प्रवचनोंमें हजारों नर-नारी बड़ी श्रद्धाके साथ सम्मिलित होते थे । व्यक्तिगतरूपसे विद्वानों, साहित्यकारों और साधु-संन्यासियोंका उनके स्थानपर आना-जाना लगा रहता था । वे इस बातसे दुःखी होते थे कि देशका नैतिक स्तर गिर रहा है और भारतीय संस्कृति बराबर नष्ट हो रही है । उन्हें ज्ञात था कि कुछ वर्षोंसे मैं श्वासरोगके कारण बहुत अस्वस्थ रहता हूँ । गीताभवनके श्रीवैद्यजी महाराज मेरी बहुत देखभाल करते थे । श्रीभाईजीकी हिदायत थी कि मुझे स्वस्थ रखनेके लिये उत्तम-से-उत्तम ओषधियाँ दी जायँ । मैं उनके इस उपकारको जीवनभर नहीं भुला सकूँगा ।

श्रीभाईजी कट्टर सनातनी थे; परंतु उनकी यह विशेषता थी कि वे सभी धर्मोंका आदर करते थे । उनका कहना था कि यदि मनुष्य अपने-अपने धर्मका ठीक प्रकारसे पालन करे तो मानव-समाज अधार्मिक प्रवृत्तियोंसे बच सकता है । वास्तवमें श्रीभाईजी आत्मधर्मको माननेवाले थे ।

वर्ष १९६९के जून मासमें दिगम्बर जैनमुनि श्रीविद्यानन्दजी महाराज ऋषिकेश पहुँचे । कट्टर सनातनधर्मी होते हुए भी श्रीभाईजीने मुनिजीका स्वागत किया और उनके आतिथ्यमें पूरा योग दिया । इतना ही नहीं, अपितु उन्होंने अपने निवास-स्थानपर मुनिजीके प्रवचनोंकी व्यवस्था भी की । उन दिनों उनका स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ था, परंतु वे मुनिजीके कार्यक्रममें बराबर भाग लेते रहे । मुनिजीने जब पोद्दारजीके बारेमें कहा कि 'ये एक संत हैं', तो आपने तत्काल कहा––'महाराज, आप-जैसे महान् संतोंको दूसरे संत ही दिखायी देते हैं ।' इस प्रकार पोद्दारजी सभी धर्मोंके आचार्योंके प्रति बड़े सम्मानका भाव रखते थे ।

श्रीभाईजीने 'कल्याण'का सम्पादन करके करोड़ों नर-नारियोंके हृदयमें जो धार्मिक भावना

जाग्रत् की, वह इतिहासके पृष्ठोंमें सदा स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित रहेगी। 'कल्याण'ने सम्पूर्ण भारतमें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। गीताप्रेससे प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'कल्याण-कल्पतरु' विदेशोंमें भी बड़ी लोकप्रिय हुई है। गीताप्रेसके धार्मिक साहित्यने भी जनतामें धार्मिक भावना फैलानेमें बड़ा काम किया। बच्चोंके लिये सस्ती-से-सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करके गीताप्रेसने बालकोंमें धार्मिक प्रेम उत्पन्न किया है। इन सब कार्योंमें श्रीभाईजीकी सारी शक्ति लगती रही। विशेषाङ्कोंमें भाईजी सभी व्यक्तियोंके विचारोंको स्थान देते थे, उनके सम्पादनमें उनका बड़ा व्यापक दृष्टिकोण रहता था। सामाजिक समस्याओंको सुलझानेमें वे सभी विचारके विद्वानों और लेखकोंका सहयोग प्राप्त करते थे।

पोद्दारजी हिंदीके प्रबल समर्थक एवं पोषक रहे हैं। हिंदीके उन्नायक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन इन्हें बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते थे और इनके प्रति बड़ा सम्मान प्रकट करते थे। उन्होंने एक बार कहा था—'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार हिंदीके लिये बड़ा काम कर रहे हैं।'

हिंदीके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हुए एक बार पोद्दारजीने कहा था—'भाषाका सीधा-सादा प्रश्न राजनीतिज्ञोंने काफी उलझा दिया है। हिंदी भाषा हमारी राष्ट्रीय एकताको सुदृढ़ करनेवाली भाषा है। सम्पूर्ण भारतमें प्रयोग की जानेवाली हिंदीकी ओरसे उदासीनता बरती जानी लज्जा और दुःखकी बात है। हमें अंग्रेजीमें बोलना सम्मानसूचक लगता है और अपनी भाषाका प्रयोग करना शानके विरुद्ध।'

गोमाताके प्रति श्रीपोद्दारजीकी बड़ी भक्ति थी। दिल्लीके गोरक्षा-आन्दोलनमें उन्होंने सक्रिय भाग लिया। ७ नवम्बर सन् १९६६को जब संसद्-भवनपर गोभक्तोंने विशाल संख्यामें प्रदर्शन किया, तब भाईजी प्रदर्शन-मञ्चपर विद्यमान थे। यद्यपि वे शारीरिक दृष्टिसे इस प्रकारके किसी आन्दोलनमें सम्मिलित होनेकी क्षमता नहीं रखते थे, फिर भी गोमाताके प्रति भक्तिके कारण वे अपने आपको अलग न रख सके। गोहत्या-सम्बन्धी सरकारी योजनाओंकी चर्चाके समय उनके नेत्रोंसे आँसू आने लगते थे।

श्रीभाईजी अपने छोटे-से-छोटे कर्मचारीको भी नौकर नहीं, सहयोगी मानते थे। गीता-भवनके विभिन्न विभागोंमें काम करनेवालोंको वे बड़ा सम्मान देते थे। उनका कहना था—'जैसे मैं गीताप्रेसका एक सेवक हूँ, उसी प्रकार ये सब गीताप्रेसके सेवक हैं। ये मेरे सेवक नहीं, किंतु उस संस्थाके सेवक हैं, जिसमें ये काम करते हैं।' इतना समभाव रखना आज साधारण बात नहीं। बात-बातमें हम अपने साथ काम करनेवाले कर्मचारियोंपर क्रोध कर बैठते हैं और उन्हें वेतनभोगी समझते हैं। परंतु पोद्दारजी उन्हें अपना सहयोगी मानते थे। यही कारण था कि वे भी उनके चरणोंमें झुककर प्रणाम करते थे।

अनेक धार्मिक संस्थाओंसे भी श्रीभाईजीका सम्बन्ध रहा। वे उनको अपना सक्रिय सहयोग देते रहे।

उनका जीवन अत्यन्त सादगीके साथ बीता। उनका खान-पान बड़ा सात्विक था। वे संयमित भोजन करते थे। भोजनकी प्रत्येक वस्तु शुद्ध होनी आवश्यक थी। सीधा-सादा कुर्ता

उनका पहनावा था। उनकी वाणीमें बड़ी मधुरता थी। साहित्यकारोंके प्रति उनमें बड़े सम्मानका भाव था। आश्चर्यकी बात यह है कि अनेक ग्रन्थोंकी रचना करनेपर भी वे अपनेको साहित्यकार नहीं मानते थे। कहते थे—'मैं साहित्यकार नहीं हूँ, गीताप्रेसका सेवक हूँ।' यह उनकी महानता थी।

भाईजी साधु-महात्माओंके प्रति बड़ी उदारता बरतते थे। उनका कहना था कि इन महात्माओंने गृहस्थोंको सन्मार्ग दिखाया। वे साधु-महात्माओंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें सदा तत्पर रहते थे।

श्रीभाईजी भारतीय संस्कृतिके प्रबल पोषक रहे। उन्हें इस बातका दुःख था कि आज भारतीय संस्कृति नष्ट होती जा रही है। एक बार इस प्रश्नपर बातचीतमें वे कहने लगे—'कितना आश्चर्य है कि आज विदेशी विद्वान् तो हमारी संस्कृतिका आदर कर रहे हैं और उसे जाननेके इच्छुक हैं; परंतु अपने देशके लोग पश्चिमी संस्कृतिका अनुकरण कर रहे हैं!'

पोद्दारजी मेरी दृष्टिमें ऊँचे साधक, तपस्वी और चिन्तक व्यक्ति थे। अपने दुःख-दर्दको लेकर उनके पास पहुँचनेवाला व्यक्ति उनसे जहाँ कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त करता था, वहाँ वह सान्त्वना, संतोष और उनका स्नेह भी प्राप्त करता था। दूसरोंके दुःखको वे अपना दुःख समझकर उसके निवारणका यत्न करते थे।

श्रीभाईजीका सारा जीवन देश, धर्म और मानवताकी सेवामें व्यतीत हुआ। अपनी अस्वस्थताकी स्थितिमें भी वे हजारोंका भला करते थे। कभी-कभी वे उनके पास आये हुए गरीब व्यक्तिकी दुःखभरी बातें सुनकर उदास हो जाते थे। प्रेम, विनम्रता और मानवता उनके रोम-रोममें समायी हुई थीं। जीवनपर्यन्त वे दुःखियोंकी, अनाथों एवं विधवाओंकी सहायता करते रहे। उनका कहना था कि 'दुःखीकी कुछ सहायता करके हम उसपर एहसान नहीं करते, अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं।' इस प्रकारका चिन्तन करनेवाले व्यक्ति आज समाजमें इने-गिने ही मिलेंगे।

श्रीभाईजीका परलोकगमन राष्ट्रकी महान् क्षति है। ऐसे पुण्यात्मा व्यक्तिके प्रति हम सभीको श्रद्धासे नतमस्तक होना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये और उनसे प्रेरणा लेनी चाहिये, जिससे हम भी मानव-सेवाको अपने जीवनका लक्ष्य बना सकें।

●

मनुष्यके असली मनुष्यत्वका प्रारम्भ होता है—जीवनकी गति भगवान्की ओर हो जानेपर और भगवत्सेवाके लिये त्याग-तपपूर्ण धर्मका आचरण करनेपर। धर्म वही है, जिससे अपना और दूसरोंका परिणाममें परम कल्याण हो। इस प्रकारके धर्मका आचरण करनेके लिये ही मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ है।

—श्रीभाईजी

●

युग-पुरुष श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

श्रीरघुनन्दनप्रसाद सिंहजी पत्रकार

गोस्वामी तुलसीदासजीके समकालीन श्रीबेनी कवि उनके सम्बन्धमें लिख गये हैं—

बेदमत सोधि, सोधि-सोधि कै पुरान सबै,
संत औ असंतन कौ भेद को बतावतौ ।
कपटी कुराही क्रूर कलि के कुचाली जीव,
कौन राम-नाम हू की चरचा चलावतौ ।
'बेनी' कबि कहै, मानो-मानो हो प्रतीति यह,
पाहन-हिये में कौन प्रेम उपजावतौ ।
भारी भवसागर उतारतौ कवन पार,
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतौ ।।

ये पंक्तियाँ श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्बन्धमें भी अक्षरशः ठीक उतरती हैं । सचमुच वे नहीं होते तो पता नहीं हमारा देश किस कुमार्गपर, कहाँ चला गया होता । श्रीपोद्दारजीने, जिन्हें हम प्यारसे 'श्रीभाईजी' कहते थे, स्वयं ही भगवन्नामका सहारा नहीं लिया, बल्कि लाखों और करोड़ोंसे लिवाया । वे सन्मार्गपर स्वयं ही नहीं चले, बल्कि करोड़ोंको चलाया । वे साधन-पथके पथिक अकेले ही नहीं बने, बल्कि लाखोंको बनाया ।

यदि श्रीभाईजी न होते

मैं दूसरोंकी बात क्या कहूँ ? स्वयं अपनी ही बात याद करता हूँ तो लगता है, मैं कहाँ चला जा रहा था । अध्यात्मकी ओर मेरी प्रवृत्ति बचपनसे ही थी । १० वर्षकी अवस्थामें मुझे उर्दू-फारसी पढ़ायी गयी । मैं 'गुलिस्ताँ-बोस्ताँ' पढ़ने लगा; परंतु मुझे संतोष न हुआ । इच्छा हुई—मैं श्रीमद्भागवत पढ़ूँ और रामायणका पाठ करूँ । श्रीमद्भागवत संस्कृतमें होनेसे मैंने 'श्रीसुखसागर' उठाया और उसे टटोल-टटोलकर पढ़ने लगा । पुस्तक समाप्त होते-होते मुझे हिंदी पढ़ना आ गया । इसके बाद मैंने सबलसिंह चौहानकृत महाभारत उठाया और उसे आद्योपान्त समाप्त करनेके बाद श्रीरामचरितमानस । इन धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनसे मेरी धार्मिक प्रवृत्ति और अधिक जगी, परंतु मन कुछ और खोज रहा था । रातमें अच्छे-अच्छे सपने होते, परंतु आँखें खुलनेपर व्याकुलता बढ़ जाती । यह स्थिति बहुत दिनोंतक नहीं रही । १९२६में जब मैंने बिहारशरीफ-स्थित नालन्दा कालेजमें नाम लिखाया, कुछ मित्रोंकी कुसंगतिमें पड़कर मैं नास्तिकताकी ओर झुकने लगा । मेरा झुकाव देश-सेवाकी ओर भी होने लगा और सन् १९२८ में लाला लाजपतरायके साथ घटी घटनाने मुझे बिल्कुल कांग्रेसी बना दिया ।

म झंडे लेकर हड़ताल कराता फिरता, परंतु नास्तिकताकी ओर जानेके बाद मन बड़ा अशान्त रहता। किसी मित्रने मुझे 'कल्याण' पढ़नेकी सलाह दी और मैं 'कल्याण' नियमितरूपसे पढ़ने लगा। श्रीभाईजीके उपदेश मुझे अच्छे लगे और उनके प्रभावसे मैं पुनः आस्तिकताकी ओर आने लगा। तब मैं कभी सोचता भी नहीं था कि कभी श्रीभाईजीके सम्पर्कमें आ सकूँगा।

मैंने बिना जान-पहचानके ही श्रीभाईजीको अपना आध्यात्मिक गुरु या पथप्रदर्शक बना लिया। मैंने श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी भी अनेक कृतियाँ पढ़ीं और उनकी ओर भी मेरी श्रद्धा बढ़ी। परंतु मेरे लिये तो श्रीभाईजी बहुत दूर थे और श्रीब्रह्मचारीजी भी। १९४६के लगभग श्रीब्रह्मचारीजी स्वयं पटना पधारे और मैं उनके दर्शनसे कृतार्थ हुआ। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार भी चलने लगा। १९४८ की अर्धकुम्भीके मेलेमें कुछ दिन उनके झूँसीस्थित आश्रममें रहा भी। अब श्रीभाईजीके दर्शनकी चाह बढ़ने लगी। भगवान्ने वह सुअवसर शीघ्र ला दिया।

प्रथम सम्पर्क

भाई श्रीशिवनाथजी दुबे श्रीब्रह्मचारीजीका पत्र लेकर आये और मेरे यहाँ ही ठहरे। उन्होंने श्रीभाईजीके शील-स्वभाव और साधन-भजनके सम्बन्धमें जो कुछ कहा, मैं सुनकर आत्मविभोर हो गया। उनके आमन्त्रणपर सम्भवतः १९४८के बैशाख या चैत्र महीनेमें प्रयाग होते हुए मैं गोरख-पुर गया और श्रीभाईजीके चरणोंका दर्शन करके कृतार्थ हुआ। श्रीभाईजीका कार्यालय उस समय गीतावाटिकास्थित एक कुटियामें था। श्रीभाईजी मुझे उसी कुटियामें कागजों और चिट्ठियोंके ढेरके बीच 'कल्याण'-सम्पादनमें तन्मय मिले। चरणस्पर्श करते समय उन्होंने मेरे मस्तकपर हाथ फेरा तो मुझे श्रीरामचरितमानसकी यह पंक्ति स्मरण हो आयी—

प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

श्रीभाईजीके दर्शन कर मैं श्रीदुबेजीकी कुटियामें चला आया। मेरे मनमें बहुत-सी शङ्काएँ थीं, जिनका समाधान मैं श्रीभाईजीसे चाहता था। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचनमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह मेरी शङ्काओंका ही समाधान था। मुझे उनसे कुछ पूछना नहीं पड़ा।

मैंने यह प्रसङ्ग उनके श्राद्ध-दिवसपर पटनाके दैनिक 'प्रदीप'में लिखा तो मेरे कुछ मित्रोंने पूछ दिया—श्रीभाईजी क्या अन्तर्यामी थे? श्रीभाईजी क्या-क्या थे, यह तो वे स्वयं नहीं जानते थे; उनके सम्बन्धमें मैं क्या जानूँ? मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि वे साधन-पथके पथिक थे और साधना करते-करते सिद्धावस्थाको प्राप्त हो गये थे।

श्रीरामचरितमानसमें आया है—

बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥

श्रीभाईजी साधक थे और जीवनके अन्ततक साधक बने रहे। वे रोगग्रस्त होकर शय्या-ग्रस्त भी हुए, परंतु उस अवस्थामें भी उनका साधन-भजन कुछ नहीं छूटा। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मुझे उनके अन्तिम दर्शन नहीं हो सके। बन्धुवर श्रीशिवनाथजीका गोरखपुरसे भेजा

गया एक्सप्रेस तार मुझे २३ मार्चको मिला, जब कि श्रीभाईजी २२ मार्चको ही अपना भौतिक शरीर छोड़ चुके थे। २२ मार्चको ही शामको रेडियोसे जब मैंने यह दुःखद समाचार सुना, तब मेरी क्या दशा हुई—इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। मेरे आध्यात्मिक गुरु चले गये और मैं यह कहकर रोता रहा—

'गइउँ न संग न प्रान पठाए ।।'

सात्त्विक वृत्तिका प्रभाव

श्रीभाईजी अन्तर्यामी थे, यह कहनेका मुझे कोई अधिकार नहीं। अन्तर्यामी तो स्वयं भगवान् हैं। परंतु इतना तो अवश्य ही कह सकता हूँ कि श्रीभाईजी साधन करते-करते सिद्धताको अवश्य प्राप्त हो गये थे। मेरे मनमें जो विचार आये, उनकी तरंगें उनके मानस-पटलपर पड़ीं और उनसे प्रेरित और प्रभावित होकर वे वैसी ही बातें करने लगे, जो मेरे लिये आवश्यक और महत्त्वपूर्ण थीं। विचार-तरंगोंका प्रभाव साधारण लोगोंपर भी कभी-कभी पड़ता है। परंतु जिनका मानस-पटल बहुत शुद्ध और पवित्र होता है, उनपर बहुत अधिक पड़ता है। श्रीभाईजीके सम्बन्धमें यही बात कही जा सकती है।

मैं श्रीभाईजीके बहुत अधिक निकट सम्पर्कमें आया, ऐसी बात नहीं। केवल तीन-चार बार ही तो दर्शन हुए उनके; परंतु हर बार उनके स्नेह और सद्व्यवहारने मुझे उनकी ओर इतना खींचा कि मैं उनसे बहुत दूर रहते हुए भी यह स्वीकार नहीं करता था कि श्रीभाईजी मुझसे दूर हैं।

श्रीभाईजी आज अपने पार्थिव शरीरसे इस संसारमें नहीं हैं, पर जब मुझे उनके शील-स्वभावकी याद आती है, तब आँखें बरसने लगती हैं। श्रीभाईजी प्रचारसे दूर रहते थे। यह ईश्वरकी इच्छा थी कि उनका नाम इतना प्रख्यात हुआ कि वह देशमें ही नहीं, विदेशमें भी आदरपूर्वक स्मरण किया जाने लगा। महात्मा गांधी तो उन्हें हृदयसे प्यार करते थे और प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादको भी बड़ा प्रेम था श्रीभाईजीसे। १९४३ में जब श्रीराजेन्द्रबाबू बाँकीपुर जेलमें थे, तब उनके बड़े पुत्र श्रद्धेय श्रीमृत्युञ्जयप्रसादके आग्रहपर मैंने ही गीताप्रेससे बहुत-सी पुस्तकें मँगवाकर उन्हें दी थीं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि श्रीराजेन्द्रबाबू अवकाशके समय गीताप्रेसकी ही आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ना पसंद करते थे और श्रीभाईजीको अपना आध्यात्मिक बन्धु मानते थे।

प्रचारसे दूर रहनेवाले श्रीभाईजी

श्रीराधाष्टमी गीतावाटिकाका प्रमुख पर्व है, जो वहाँ प्रत्येक वर्ष भाद्र शुक्ल अष्टमीको बड़े उत्साहके साथ मनाया जाता है। लगभग १० वर्ष पूर्व एक बार मुझे भी इस पर्वमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। विहारसे हर सालकी तरह बन्धुवर डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' भी पधारे हुए थे। मैं समारोहके हर कार्यक्रमसे इतना प्रभावित हुआ कि मेरी इच्छा उसकी

विधिवत् 'रिपोर्टिंग' करनेकी हुई। दुबेजीपर मैंने यह विचार प्रकट किया। उन्होंने श्रीभाईजीकी अनुमति लेनेकी सलाह दी। मैंने श्रीभाईजीसे अनुमति माँगी तो वे मुस्कराकर बोले––

प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ॥

यह कहकर श्रीभाईजीने मुझे निरुत्तर कर दिया।

बहुत कम लोग यह जानते हैं कि श्रीभाईजी साधक, पण्डित, विद्याव्यसनी, दार्शनिक और तत्त्वदर्शीके अतिरिक्त बहुत बड़े भावुक कवि भी थे। उनकी कविताओंमें विनयपत्रिकाकी भाँति दैन्यका पर्याप्त पुट है। वे प्रार्थना करते-करते कभी-कभी प्रभुसे सांसारिक बुद्धि वापस ले लेनेकी भी माँग कर बैठते थे––

बना दो बुद्धिहीन भगवान।
तर्क-शक्ति सारी ही हर लो, हरो ज्ञान-विज्ञान।
हरो सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति, नये जगतकी शान॥
विद्या-धन-मद हरो, हरो हे हरे! सभी अभिमान।
नीति-भीतिसे पिंड छुड़ाकर करो सरलता-दान॥
नहीं चाहिये भोग-योग कुछ, नहीं मान-सम्मान।
ग्राम्य, गँवार बना दो, तृण-सम दीन, निपट निर्मान॥
भर दो हृदय भक्ति-श्रद्धासे, करो प्रेमका दान।
प्रेमसिन्धु! निज मध्य डुबाकर मेटो नाम-निशान॥

शायद भगवान्‌को यह प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई कि वे अपने भक्तको एकदम बुद्धिहीन बना दें। तब श्रीभाईजीको अपनी प्रार्थनामें थोड़ा संशोधन करना पड़ा और उन्होंने एक अलग पद लिखा––

बना दो विमलबुद्धि भगवान।

श्रीभाईजी 'कल्याण'के सम्पादनमें बहुत अधिक व्यस्त रहते हुए भी साधन-भजनके लिये समय निकाल लेते थे। उनका जीवन इतना संयमित था कि थोड़ी देरके विश्रामसे ही उनका पूरा विश्राम हो जाता था।

आदर्श भक्ति और व्यक्तित्व

मैं जब-जब श्रीरामचरितमानस पढ़ता हूँ और मेरे सामने भरतलालजीका चरित्र आता है, तब-तब मुझे निश्चय ही श्रीभाईजीकी याद आने लगती है। अयोध्याकाण्डके अन्तमें गोस्वामीजी लिखते हैं–

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥

दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी-से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।

वास्तवमें भरतलालजीसे मिलाइये तो श्रीभाईजीके चरित और त्यागवृत्तिको। आपको भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि–

कलिकालहु नाथ ! नाम सों परतीति-प्रीति एक किंकर की निबही है।

(विनयपत्रिका २७८ । १)

× × ×

भारतीय पञ्चाङ्गके अनुसार श्रीभाईजीका जन्म हुआ आश्विन कृष्णा द्वादशी, वि० संवत् १९४९को और गांधीजीका आश्विन कृष्णा द्वादशी, विक्रम-संवत् १९२६ को। इसलिये दोनों ही अपने-अपने क्षेत्रमें प्रभावशाली हुए। दोनों ही तेईस वर्षके आगे-पीछे इस संसारमें आये और प्रभुके सौंपे हुए कामको पूरा करके तेईस वर्षके आगे-पीछे चले गये इस संसारसे।

आज श्रीभाईजी हमारे बीच अपने पार्थिव शरीरसे नहीं हैं, परंतु अपने यशःशरीरसे वे अमर हैं तथा वे अपने आदर्शों, उपदेशों और सात्विक विचारोंकी बहुत बड़ी धरोहर छोड़ गये हैं। हम उनके आदर्शों और उपदेशोंको समझें, मनन करें और अपने जीवनको उनके अनुरूप बनायें। इससे हमारा कल्याण निश्चित है।

●

सबमें सब देखें निज आत्मा, सबमें सब देखें भगवान।
सब ही सबका सुख-हित देखें, सबका सब चाहें कल्यान ।।
एक दूसरेके हितमें सब करें परस्पर निज-हित त्याग।
रक्षा करें पराधिकारकी, छोड़ें स्वाधिकारकी माँग ।।
निकल संकुचित सीमासे 'स्व', करे विश्वमें निज विस्तार।
अखिल विश्वके हितमें ही हो 'स्वार्थ' शब्दका शुभ संचार ।।
द्वेष-वैर-हिंसा विनष्ट हों, मिटें सभी मिथ्या अभिमान।
त्यागभूमिपर शुद्ध प्रेमका करें सभी आदान-प्रदान ।।
आधि-व्याधिसे सभी मुक्त हों, पायें सभी परम सुख-शान्ति।
भगवद्भाव उदय हो सबमें, मिटे भोग-सुखकी विभ्रान्ति ।।
परम दयामय ! परम प्रेममय ! यही प्रार्थना बारंबार।
पायें सभी तुम्हारा दुर्लभ चरणाश्रय, हे परम उदार ! ।।

—श्रीभाईजी

●

प्रेममूर्ति श्रीभाईजी

डॉ० भुवनेश्वरनाथजी मिश्र, 'माधव'

जुलाई, १९३२ 'सनातनधर्म' (काशी) से छुटकर 'कल्याण' गोरखपुरमें आ गया था। काशीमें रहा व्यक्ति गोरखपुरमें कैसे टिके ? और नौकरी तो नौकरी ही है, चाहे वह स्वर्गमें हो। सोचा--"काशीका 'चना चबेना गंग जल' ही अच्छा था, कहाँ आ गया गोरखपुरके 'नरक' में।"–गीताप्रेस उन दिनों गोरखपुरके सबसे गंदे और तंग मुहल्लेके दमघोंटू वातावरणमें था। श्रीपोद्दारजीने मेरी विवशता देखी और कंधेपर प्यारसे हाथ रखते हुए कहा--'घबराइये नहीं, यह तो 'लोकालय' है--आप हमारे साथ शहरसे दूर गोरखनाथजीके मन्दिरके आगे बगीचेमें रहेंगे --वहाँ सारा वातावरण आपको अनुकूल मिलेगा।'

कैसा है यह व्यक्ति, जो मनकी व्यथाको समझ जाता है और इतना प्यार दे सकता है, मुझ-जैसे सर्वथा एक अपरिचित अदने आदमीको। मनमें इस प्रश्नके साथ श्रीपोद्दारजीके मानवीय रसके प्रति एक सहज आस्थापूर्ण श्रद्धा जगी। यही था प्रथम साक्षात्कारका प्रथम संस्कार।

मझोला कद, भरा-पूरा शरीर, उन्नत प्रशस्त ललाट, गेहुआँ रंग, ललाटपर गोपीचन्दनकी एक बिंदी शोभा दे रही थी। प्रसन्नवदन, श्वेत-शुभ्र खादीकी धोती और खादीका ही कलीदार कुर्ता, पैरोंमें 'फलाहारी' जूते, भावभीनी आँखें--सिरसे पैरतक जैसे हृदय-ही-हृदय हो। लगा, यह व्यक्ति लाखोंमें एक है--ऐसा मधुमय-प्रेममय व्यक्ति मिलता कहाँ है। मालवीयजी महाराज-के 'पवित्रं मङ्गलं परं' सांनिध्यसे छूटा हुआ व्यक्ति आ गया श्रीपोद्दारजीके प्यारभरे सांनिध्यमें।

श्रीपोद्दारजी जीवनके आरम्भमें सशस्त्र क्रान्तिकारियोंके गिरोहके नेताके रूपमें लगभग दो वर्ष बंगाल सरकारके कोपभाजन होकर शिमलापालमें नजरबंद रहे और उसके बाद बंगालसे सदाके लिये निष्कासित होकर रतनगढ़ (बीकानेर) तथा बम्बई पहुँचे और वहीं श्रीमन्त सेठ जमनालाल बजाजके सहयोगमें व्यापार करने लगे। परंतु प्रभुकी पुकारपर सब कुछ रामके हवाले कर 'कल्याण'का सम्पादन करने लगे। प्रथम वर्ष 'कल्याण' बम्बईसे ही छपता और निकलता रहा। दूसरे वर्षसे उसका प्रकाशन गोरखपुरसे होने लगा। प्रभुकी पुकार और संत सेठ जयदयालजी गोयन्दकाका प्यार--'कल्याण'के मूलमें प्रेरणाके यही स्रोत थे। संत सेठ जय-दयालजी गोयन्दका और श्रीघनश्यामदास जालान गीताप्रेसके मस्तिष्क थे, परंतु उनके हृदय थे श्रीभाईजी--सचमुच माँका हृदय, पुरुष-शरीरमें वात्सल्यमयी माँका हृदय !

'कल्याण'का दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ता हुआ यश उसके सम्पादकको कभी प्रभावित नहीं कर सका। 'कल्याण' एक लाख पैंसठ हजार छपता है, परंतु श्रीभाईजी आरम्भमें जैसे अनासक्त, सेवापरायण, उदारमना थे, अन्तिम क्षणतक भी वैसे ही रहे। उन्होंने कभी अपने नामका पैड नहीं छपने दिया, अपने निवासपर नामकी तख्ती नहीं लगने दी और उनकी सेवाएँ

इतनी गुप्त थीं कि बायाँ हाथ भी नहीं जान सका कि दाहिने हाथने क्या और कितना दिया, परिवारके व्यक्तियोंको तो पता ही क्या हो सकता था ।

गहराईसे विचार करनेपर यह अनुभव होता था कि श्रीपोद्दारजी 'वासुदेवः सर्वमिति' को संसिद्ध कर चुके थे । उनका विपुल साहित्य—क्या लेख, क्या कविता, क्या पत्र और क्या टिप्पणियाँ—उनका श्वास-प्रश्वास, उनके साथ रहनेवाले व्यक्तियोंका आचरण, उनके आस-पासका समस्त वातावरण—यह सब इस सत्यका साक्षी था । जिस अनुभूतिको श्रीअरविन्दने उत्तरपाड़ामें अभिव्यक्त किया था, वही अनुभूति पोद्दारजीको सहज रूपमें उपलब्ध थी । किसी साधनाविशेषकी अपेक्षा भगवत्कृपा ही इसमें मुख्य कारण थी—ऐसा ही मानना चाहिये । कितना आश्चर्य होता था, परंतु कितना सुखद लगता था यह देखकर कि सब-के-सब श्रीपोद्दारजीको 'भाईजी' कहते थे—यहाँतक कि उनकी पत्नी और उनकी एकमात्र कन्या सौ० सावित्री बाई भी । गांधीजी, मालवीयजी, लाला लाजपतराय, टण्डनजी, जमनालालजी, सम्पूर्णानन्दजी, कृष्णकान्त मालवीय, रफी अहमद किदवई, युगलकिशोर बिड़ला, सेठ गोविन्ददास, लालबहादुर शास्त्री, जैनेन्द्रकुमार, मैथिलीशरण गुप्त, शिवप्रसाद गुप्त, वासुदेवशरण अग्रवाल, बच्चनजी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, कितने नाम गिनायें —सबके वे 'भाईजी' ही थे ।

× × ×

जब मैं 'कल्याण'में पहुँचा, तब उसका सम्पादकीय विभाग गोरखनाथके सुप्रसिद्ध मन्दिरके पश्चिमकी ओर एक छोटेसे उद्यानमें था । मकान कहनेको नाममात्र था, चारों ओर दूर-दूरतक आम, अमरूद, नाशपाती, और नारंगीके बगीचे थे । एक विशालकाय आम्रवृक्षके नीचे चटाई डालकर हमलोग काम करते थे । प्रातःकाल चार बजेसे रातके ग्यारह-बारह बजेतक कथा, कीर्तन, सत्सङ्ग, प्रवचनका प्रोग्राम चलता रहता था । कार्यालयका कोई बँधा हुआ समय न था, फिर भी, औसतन सात-आठ घंटे सम्पादकीय कार्यमें हमलोग संलग्न रहते थे । मेरे जिम्मे अंग्रेजी पत्रोंका उत्तर लिखवाना, 'कल्याण'के लिये एक लेख लिखना, 'कल्पतरु'के लिये एक अनुवाद करना और पुस्तकोंका अन्तिम प्रूफ देखना था । यह कार्य सर्वथा मेरे मन लायक था । सारा वातावरण इतना प्राकृतिक, उन्मुक्त, सहज और भक्तिरससे ओत-प्रोत था कि मालूम होता था कि मैं इसीकी तलाशमें इतने दिन भटक रहा था । श्रीपोद्दारजीका शील-स्वभाव सहज ही किसीको भी आकृष्ट कर लेता था । वाणी इतनी मधुर, स्वभाव इतना स्नेहिल और व्यवहार इतना साधु था कि लगता था—यह व्यक्ति इस पृथ्वीका नहीं है, किसी देवलोकसे उतरकर विश्वको प्रेमका पाठ पढ़ानेके लिये, राग-द्वेषकी महाग्निमें जलती हुई मानवतापर अमृतकी वर्षा करनेके लिये ही मनुष्यका शरीर धारण किये हुए है । सम्पादकीय विभागमें हम जितने आदमी थे, उतने प्रान्तोंके थे । बिहार, बंगाल, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास और राजस्थानका एक अपूर्व संगम 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें देखनेको मिलता था । बगीचेमें ही एक किनारे चौका था, जिसमें हम सभी भोजन करते थे और उसमें अपनी-अपनी रुचि तथा आवश्यकताके अनुसार किसीको छाछ तो किसीको लाल मिर्च, किसीको केवल भात तो किसीको केवल रोटी दी जाती थी । इस प्रकार हमलोग मिल-जुलकर 'सार्वदेशिक भोजनालय'में एक साथ भोजन करते

थे और रातको बगीचेमें अपनी-अपनी चटाई बिछाकर सो जाते थे। यहाँ बड़ा ही निराला और पवित्र वातावरण था और ऐसा प्रतीत होता था कि इसके दिव्य सौन्दर्यके सामने स्वर्ग भी तुच्छ है। छः बजे प्रातःकाल हमलोग स्नान-ध्यानसे निवृत्त होकर सामूहिक कीर्तनके लिये एकत्र हो जाते थे। झाँझ, मृदंग, ढोलक, करताल, खोलके साथ करीब एक घंटेतक खूब धुआँधार कीर्त्तन होता था। कीर्त्तनके बाद गोस्वामी पं० श्रीचिम्मनलालजी शास्त्री 'विनय-पत्रिका'से या सूर या मीराँका कोई मधुर पद समाधिस्थ होकर सुनाते थे। उनके सुनानेका ढंग इतना मोहक और मन-प्राणको मुग्ध करनेवाला होता था कि हम सभी एक प्रकारसे भाव-समाधिमें डूब जाते थे। इसके पश्चात् श्रीपोद्दारजीका प्रवचन होता था। इस प्रवचनमें प्रायः भक्तिरसकी वर्षा होती थी।

'कल्याण'का वातावरण सर्वथा निराला और सबसे भिन्न था—इस अर्थमें कि वहाँ सम्पादकीय ठाट-बाट कुछ था ही नहीं और दफ्तर-जैसी कुछ चीज भी नहीं थी। आमके पेड़के नीचे चटाइयाँ डालकर हमलोग काम करते और आवश्यकता पड़नेपर विचार-विमर्श कर लेते थे। कहीं किसीको कोई आदेश भी देना हुआ तो उसी भाषामें वह दिया जाता था, जिसमें आदेशकी गन्ध न हो।

श्रीभाईजी मण्डलके प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, पं० चिम्मनलाल गोस्वामी, पं० नन्ददुलारे बाजपेई, पं० राजबली पाण्डेय, पं० शान्तनुबिहारी द्विवेदी (अब स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती), श्रीमुनिलाल (अब स्वामी सनातनदेव), पं० रामनारायणदत्त शास्त्री आदि विद्वानोंका सहज सत्सङ्ग प्राप्त हुआ और इनके सङ्गमें आत्म-विकासके लिये पूरा अवकाश मिलने लगा। 'कल्याण'के लिये प्रतिमास एक लेख मुझे लिखना पड़ता था। वह लेख प्रायः किसी भक्तकी गाथा होती या किसी मध्यकालीन संतके जीवन-चरित्र और उनकी साधनाका विवेचन होता। पत्रोंके उत्तर लिखनेका भी कुछ काम मैं करता था। अंग्रेजी या हिंदी पत्रोंके उत्तर लिखनेमें 'कल्याण'की एक खास शैली थी, जिससे अवगत होनेमें कुछ समय लगा। ये पत्र प्रायः किसी-न-किसी धार्मिक पहलू, आध्यात्मिक प्रश्न या साधना-सम्बन्धी शङ्काओंके समाधानमें लिखे जाते थे। प्रश्न भी बड़े विचित्र और बेतुके हुआ करते थे। कभी-कभी उन्हें पढ़कर हँसी आती थी। परंतु 'कल्याण'की शैली यह थी कि चाहे जो भी पत्र हो, और जैसी भी उसकी शङ्काएँ हों, उनका पूरा-पूरा समाधान तथा निवारण समुचित ढंगसे होना चाहिये। और किसी भी अवस्थामें अविनयका प्रदर्शन नहीं होना चाहिये। ऐसे पत्रोंके उत्तर लिखनेमें श्रीभाईजीको कमाल हासिल था।

श्रीभाईजीका हरिनाममें अखण्ड विश्वास था और वह प्रायः हर मानसिक चिन्ता, अभाव-की पीड़ा, दैन्य-दुःख, ऋण-कष्ट, चारित्रिक स्खलन आदि सभीसे छुटकारा पानेके लिये नाम-जपकी अचूक विधिकी व्यवस्था दिया करते थे।

'कल्याण'की रीति-नीति और विचारोंको पूरा-पूरा हृदयंगम करनेमें लगभग छः मास लग गये। फिर भी यह नहीं कह सकता कि वहाँकी सारी बातें मेरे लिये अनुकूल ही थीं या पसंद थीं। आचार-विचार टकराये; परंतु अन्ततोगत्वा मैंने यह अनुभव किया कि इन सारी बातोंमें

'कल्याण'का आग्रह निश्चय ही स्वस्थ और सुखप्रद था——स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी और साधनाकी दृष्टिसे भी।

सम्पादकीय विभागमें हम जितने व्यक्ति थे, उतने प्रान्तोंके थे और उतने ही विभिन्न रंग-ढंगके। पूज्य श्रीगर्देजी महाराज हमलोगोंमें सबसे श्रेष्ठ, अनुभवी और चूडान्त विद्वान् थे। परंतु उनकी चुहल और जिंदादिली मुर्देको भी हँसा देती। वे शरीरसे वृद्ध, परंतु हृदयसे चिर-तरुण थे।

'कल्याण'के सम्पादकीय मण्डलके लिये कुछ आधारभूत सिद्धान्त भी थे। उन नियमोंमें दोनों समयकी संध्या, गीताका स्वाध्याय और पाठ, रामचरितमानसका पाठ, भगवन्नाम-स्मरण, सर्वत्र भगवद्भाव, अक्रोध और सत्यभाषण, अल्पभाषण, मौन और कुछ शारीरिक व्यायाम थे। इन नियमोंमें दो बड़े ही महत्वके थे। एक तो सर्वत्र भगवद्भाव और दूसरा प्रति आधे घंटेपर भगवान्का स्मरण और स्मरण आनेपर उसे देरतक कायम रखनेकी वृत्ति। संध्याकालीन सामूहिक प्रार्थनाके बाद श्रीभाईजीकी उपस्थितिमें हमलोग नित्य-नियमोंके सम्बन्धमें परस्पर विचार-विमर्श करते और यह देखते कि कहाँ त्रुटि हो गयी है, उसे कैसे सुधारा जा सकता है। खान-पानमें संयम था। तेल-मिर्च, खटाईका व्यवहार नहींके बराबर था। सबसे बड़ी बात यह थी कि ये नियम कभी बन्धन नहीं बने। उन्हें स्वेच्छया और सहर्ष हमलोग स्वतः पालन करते थे और डायरी रखते थे।

'कल्याण'में आनेपर देशके और कभी-कभी विदेशके भी प्रसिद्ध साधु-महात्माओं, संन्यासियों, वैरागियों, तपस्वियों और आध्यात्मिक जिज्ञासुओंके दर्शन घर बैठे होने लगे। उन दिनों 'कल्याण' का उतना प्रचार नहीं हो पाया था, कुछ ही हजारोंकी संख्यामें वह छपता था; परंतु लोगोंमें 'कल्याण' और 'कल्याण'-सम्पादकके प्रति उमड़ती हुई श्रद्धाके दृश्य कई बार देखनेको मिलते थे। कुछ श्रद्धालु तो ऐसे आते थे, जो प्रेसकी मशीनोंकी आरती उतारते थे और उनपर चन्दन-फूल आदि चढ़ाते थे। इसे श्रद्धाका अतिरेक कहें या भावुकता ? ऐसे-ऐसे दृश्य प्रायः रोज देखनेको मिलते, जिनपर हँसी आये बिना न रहे। रंग-बिरंगे साधुओं, संन्यासियों, वैरागियोंका काफला जब कभी उतर आता, तब हमलोगोंके लिये मनोरञ्जनका साधन जुट जाता। अधिकांश अपनी जैसी-तैसी हस्तलिखित प्रतियोंको लेकर गीताप्रेसमें छपवानेके लिये दौड़े आते थे। मुझे स्मरण है, अयोध्याके एक संन्यासी महोदय स्वरचित 'विचित्र-रामायण'की हस्तलिखित प्रतियाँ आठ-नौ बड़ी-बड़ी जिल्दोंमें लेकर आये थे। हमलोगोंमेंसे किसीके पास इतना समय और धैर्य नहीं था कि उनकी 'विचित्र-रामायण'को आद्योपान्त पढ़ें या उसे सुना जाय। परंतु श्रीभाईजीने आदिसे अन्ततक उनकी पूरी रामायण सुनी और सुनकर प्रसन्नता प्रकट की——भले ही उसे गीताप्रेससे छापा न जा सका। ऐसे ही, समय-समयपर बड़े ही अटपटे व्यक्ति आ जाया करते थे। कभी-कभी लोग यह समझते थे कि यहाँ आकर जोर-जोरसे कीर्तन करने और भावावेशमें मूर्छित हो जानेसे 'कल्याण'में विशेष आदरपात्र मनुष्य समझा जायगा और इसलिये भी बहुत-से लोग भावावेशमें मूर्छाका स्वाँग रचा करते थे। ये सारी बातें हमलोग समझते थे, परंतु श्रीभाईजीके उदार व्यक्तित्वमें सबके लिये उचित स्थान था, किसी वस्तुको वे विरूप नहीं होने देते थे। समय-समयपर भारतीय संस्कृति

और साधनाकी तलाशमें कुछ विदेशी महिलाएँ भी आ जाया करती थीं। उनकी सार-सँभाल और देख-रेखका भार मेरे ऊपर था। कुल मिलाकर 'कल्याण'का जीवन 'विविध-विषय-विभूषित' होनेके कारण काफी रंगीन और दिलचस्प था।

'कल्याण'में बिताये हुए ग्यारह वर्ष जीवनके सर्वोत्तम ग्यारह वर्ष थे और उसमें समाज-सेवा, भ्रमण और संत-महात्माओंके सत्सङ्गका अपूर्व लाभ मिला। 'कल्याण'में आनेपर अनेक साधु-महात्माओं और संतोंके अत्यन्त निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य मिला था। इन महात्माओं-में स्वामी शिवानन्दजी, श्रीभोले बाबा, श्रीउड़िया बाबा, श्रीहरि बाबा, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, श्रीस्वामी एकरसानन्दजी, माँ आनन्दमयी, स्वामी अखण्डानन्दजी और स्वामी शरणानन्दजी मुख्य रूपसे सामने आते हैं।

इसके साथ-साथ गोरखपुरमें प्रतिवर्ष भयंकर बाढ़का आक्रमण हुआ करता था, जिसमें गोरखपुर-देवरिया जिलेका बहुत बड़ा भू-भाग जलमग्न हो जाता था और हजारों गाँव राप्ती और सरयूकी प्रखर धारामें आ जाते थे। ऐसे अवसरोंपर गीताप्रेस-सेवादलकी ओरसे बड़े व्यापक स्तरपर 'रिलीफ' कार्य होता था, जिसका दायित्व मुझे सँभालना पड़ता था और ऐसे अवसरोंपर महीनों नाव लेकर पानीमें रहना पड़ता था और जलमग्न गाँवोंमें घूम-घूमकर अन्न, वस्त्र, तेल, दियासलाई, दवा, साबूदाना आदिका वितरण करना पड़ता था। यह कार्य मुझे प्रिय था और ऐसा लगता था कि भक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ भी उपदेश हमने सुना है, वह सब इस सेवाके द्वारा सार्थक हुआ है।

'कल्याण'में रहते हुए पतनके कई अवसर आये, जब मैं नरकमें पूरी तरह उतर चुका था; परंतु भाईजीने अपनी दोनों भुजाएँ बढ़ाकर वैसे ही उठा लिया, जैसे माँ अपने बच्चेको उठाती है। और आश्चर्य यह है कि सब कुछ जानकर भी भाईजीके मनमें क्षण-भरके लिये भी मेरे प्रति घृणा और उपेक्षाका भाव नहीं आया। कमजोर व्यक्तियोंके प्रति उनमें विशेष स्नेह और ममता थी। क्षमामें तो वे पृथ्वीके समान थे और गम्भीरतामें समुद्रकी तरह। ऐसे व्यक्तिके साथ लगभग ग्यारह वर्ष रात-दिन रहनेका सौभाग्य किसी पूर्वजन्मके पुण्योदयसे ही हुआ होगा।

अपने सम्पादकीय जीवनकी सबसे बड़ी उपलब्धि मैं पूज्य श्रीभाईजीके सुमधुर सांनिध्यमें उनके पूर्वजोंके निवास-स्थान रतनगढ़ (राजस्थान) का प्रवास मानता हूँ। रतनगढ़-प्रवासने मुझे कितना आनन्द दिया है, वहाँके उस जीवनकी झाँकी मैंने विस्तृतरूपसे एक लेखमें दी थी; पर यहाँ उसे देना समीचीन न होगा।

रतनगढ़का श्रीभाईजीका घर बड़ा मनोरम एवं आकर्षक था। एक ओर अखण्ड हरिकीर्त्तन होता रहता था और दूसरी ओर सत्सङ्गका स्थान था, जहाँ कई साधु-महात्मा, योगी-यति, उपदेशक और कथावाचक आते और अपने उपदेशोंसे नर-नारियोंको कृतार्थ करते थे। झाँझ, मृदङ्ग, करताल आदिके साथ भगवन्नामका घोष होता रहता था और उससे वहाँके वातावरणमें एक अपूर्व पावन, दिव्य स्निग्धता आ गयी थी।

× × ×

श्रीभाईजीने हरिनामका रस, लीलाका रस बरसाना शुरू किया और हजारों नहीं, लाखों व्यक्तियोंको प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपमें इस भावराज्यमें प्रवेश कराया। यह कहा जा सकता

है कि श्रीभाईजीके कारण ही गीताप्रेसके साहित्यका इतना विकास हुआ और वह सभी क्षेत्रोंमें श्रद्धा और सम्मान पा सका तथा उसका इतना व्यापक प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव हो सका।

'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें मैं ग्यारह साल रहा। १९४२का आन्दोलन न आया होता तो शायद 'कल्याण'से मैं पृथक् न हुआ होता; परंतु पृथक् होकर भी पृथक् कहाँ हो पाया हूँ? 'कल्याण'का मेरे प्रति और मेरा 'कल्याण'के प्रति इतना घनिष्ठ और मधुर सम्बन्ध है कि आज भी मैं 'कल्याण-परिवार'का ही एक अन्यतम सदस्य हूँ। श्रीपोद्दारजीके सम्पर्कमें जो एक बार भी आ गया, वह जनम-जनमका उनका 'अपना'—एकदम अपना हो गया। ऐसा दिव्य था उनका आकर्षण, ऐसा मधुर था उनका व्यवहार।

श्रीभाईजी थे तो यद्यपि विशुद्ध सनातनी वैष्णव, तथापि सभी धर्मों एवं सम्प्रदायोंके प्रति उनके हृदयमें अपार आदर एवं श्रद्धा थी। राजनीतिसे सर्वथा मुक्त थे; इसलिये उनके मित्रोंमें सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, काँग्रेसी, इण्डिकेटी-सिण्डिकेटी—सभी तरहके व्यक्ति थे। कुछ अपनेको नास्तिक कहनेवाले भी थे। उनका कहना था कि नास्तिक कोई होता ही नहीं—वह 'तलाश'में होता है, इतनी ही बात होती है। पद और पदवीके लोभ-मोहमें वे कभी पड़े नहीं। अंग्रेज सरकार उन्हें 'रायबहादुर' और बादमें 'सर'के खिताबसे विभूषित करना चाहती रही। खूब फंदे डाले गये, परंतु रामकी कृपासे सब फंदे बेकार सिद्ध हुए। स्वर्गीय पंतजीने भी जब उन्हें 'भारतरत्न' पदसे विभूषित करनेकी तथा राज्यसभामें सदस्य मनोनीत करनेकी स्वीकृति चाही तो उन्होंने हाथ जोड़ लिये।

साधनाका आरम्भ श्रीभाईजीने विष्णुके ध्यानसे आरम्भ किया; परंतु बादमें धीरे-धीरे वे श्रीराधाकृष्णके लीलारसमें उतरते गये, उतरते-उतरते उसीमें प्रायः खो गये—'कल्याण'में 'मधुर' शीर्षक गद्य-पद्यात्मक लेख एवं राधाष्टमी-उत्सव-समारोह इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। वैसे भी भाईजी-का राम-नाममें अखण्ड विश्वास था, अपरिमेय आस्था थी। 'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ' वाले रामनामको भी वह ग्राह्य मानते थे और कहते थे कि 'इसीसे भाव-महाभावतक पहुँचते हैं।' सभी विभिन्न दशाओंको पारकर—राग-अनुराग, प्रणय-स्नेह, भाव-महाभाव तक नाम पहुँचा देता है और नामीसे मिला देता है, ऐसी उनकी मान्यता थी। स्वयं तो नामके रसिक थे ही, हजारों-लाखोंको उन्होंने साधनाके इस मार्गपर लगाया। रोग, ऋण, भय, शोक, चिन्ता आदि सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्तिके लिये वे नाम-साधनाका उन्मुक्त प्रयोग बतलाते थे। नामानुरागसे रूपानुराग और लीलानुराग होता है और लीलानुरागसे ही लीलाप्रवेश होता है, ऐसा श्रीभाई-जी मानते थे। प्रेमसाधना ही मुक्तिका प्राण है और प्रेमराज्यमें सर्वस्व-समर्पण ही एकमात्र साधना है। अस्तु, प्रेम साधन है, साध्य भी। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—सबसे परे है प्रेम और यही है मानवका परम और चरम पुरुषार्थ। निश्चय ही उसमें भगवत्कृपा ही प्रेरणा भरती है, परंतु सबसे ऊपर है इस पथके पथिकके लिये सतत सावधानी। 'सावधानी ही साधना है'—यही महामन्त्र श्रीभाईजीका था। हरिनामसे सहज प्रेम और विश्वके समस्त पदार्थों, चर—अचरों-सभीमें उसी परम प्रियतमकी छबिका दर्शन—यही था उनकी साधनाका सार-सर्वस्व।

ऐसे थे परम वैष्णव प्रेममूर्ति श्रीभाईजी। उनके पावन चरणोंमें भक्ति और प्रीतिके साथ शत-शत प्रणति।

●

एक रिक्तता

डॉ० श्रीगोपीनाथजी तिवारी

गोरखपुर दो सम्बन्धोंसे लोकविश्रुत रहा है—गोरखनाथ और गीताप्रेस—'कल्याण'से। केरलमें यात्रा करते हुए मुझे एक मद्रासी सज्जनने पूछा—'आप कहाँसे आये हैं?' मैंने कहा—'गोरखपुरसे।' मुँह ताकते हुए वे बोले—'गोरखपुर, कौन गोरखपुर?' मैंने कहा—'गोरखनाथकी सिद्धभूमि, पूर्वोत्तर रेलवेका मुख्यकेन्द्र।' वे और अधिक स्तम्भित हो पूछने लगे—'कौन गोरखपुर, समझा नहीं मैं।' मैंने कहा—'गीताप्रेसवाला गोरखपुर, जहाँसे 'कल्याण' निकलता है।' 'अच्छा, गीताप्रेसवाला गोरखपुर।' यह वार्त्तालाप अंग्रेजीमें हुआ; क्योंकि वे हिंदी बिल्कुल नहीं समझते थे। गीताप्रेस और 'कल्याण'की पृष्ठ-भूमिमें एक स्तम्भ था—यशस्वी प्रकाश-स्तम्भ, जिसका नाम था—'हनुमानप्रसादजी पोद्दार'। आज सामने रिक्तता-सी लगती है, उस प्रकाश-स्तम्भका प्रकाश बुझ-सा गया है। अब भी गीतावाटिका जाता हूँ। एक देव-प्रतिमा सामने आ बिराजती है—विनय और स्नेहकी सुरसरि, मृदुता और सौजन्यकी सुधा-वापिका, परंतु...परंतु ऊपर स्थान रिक्त है; वे अब वहाँ नहीं हैं, नेत्र विवश वापस आ जाते हैं, हृदयमें एक धक्का-सा लगता है। वह कक्ष उस देव-प्रतिमासे रहित है, वह आसन रिक्त है। क्या वह रिक्तता भरेगी?

वैसे तो जो भी भाईजीके दृष्टि-केन्द्रमें प्रविष्ट हुआ, वह उनके व्यक्तित्वसे खिंच गया, उनका बन गया। उनके व्यक्तित्वमें एक आकर्षण था, जो उन्हें प्राप्त हुआ था सच्ची निष्ठा, सतत साधना और विशाल सहृदयतासे। भाईजी सच्चे हिंदू थे। सच्चा हिंदू कभी भी संकीर्ण दृष्टिवाला नहीं हो सकता। उनके मतमें हिंदूका लक्षण है—'ज्ञानके अगाध भंडार वेद-शास्त्रोंमें आस्था रखनेवाला, गो-रक्षक तथा भारतकी पुण्यभूमिसे प्रेम करनेवाला।'

गीतावाटिका इसी कार्यरत कुसुमसे सुगन्धित थी। गोरखपुरके सहायता-कार्योंमें भी भाईजीका हाथ सदा आगे बढ़ा है। गोरखपुरकी बाढ़ एक विभीषिका बनी रहती थी और भाईजी सहायता-कार्यमें सदा तत्पर रहते थे। कुष्ठाश्रम भी उनकी सहायता-दृष्टिमें रहा। मेरा भाईजीसे २५ वर्षोंसे निकटका सम्बन्ध रहा है। मैंने सैकड़ों छात्रोंको उनके पास सहायतार्थ भेजा और मुझे एक भी ऐसा समय स्मरण नहीं है, जब कोई छात्र रिक्तहस्त लौटा हो; किसीको मासिक छात्रवृत्ति दी, किसीको एक मुश्त धनराशि। एक छात्र मेरे पास दुःखी आया। उसपर विश्वविद्यालयका परीक्षा-शुल्कसहित पौने दो सौ रुपया देय था। मैंने भाईजीको पत्र लिखा। वह छात्र हँसता हुआ लौटा और परीक्षामें बैठा। ऐसा सैकड़ों बार हुआ है।

रस्किन विनम्रताको उच्च व्यक्तित्वका वाहक मानते हैं और भाईजी नम्रताकी प्रतिमूर्ति थे। वे सभा-समाजोंके पदों तथा ओहदोंसे सदा बचनेका प्रयास करते थे। भारत सरकारके उपाधि-प्रदान-प्रस्तावको भी भाईजीने अत्यन्त विनम्रतासे अस्वीकार कर दिया था। टेनीसनने आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और आत्मसंयमको महानताकी तीन सीढ़ियाँ बताया है। भाईजी इन गुणोंके द्वारा शक्ति अर्जितकर 'कल्याण'द्वारा कल्याण-दानके मार्गपर कदम बढ़ाते रहे हैं।

सब कुछ करते हुए भी भाईजी नामसे दूर भागते थे। मैंने उन्हें विश्वविद्यालयमें बुलाया। उनके भाषण भी हुए, किंतु वे कभी भी सभापति न बने। पहले ही कह देते थे--'मैं आऊँगा, किंतु सभापति न बनूँगा।' महाप्रयाणसे दो मास पूर्वकी ऐसी ही एक अविस्मरणीय स्मृति है। मैं चाहता था कि एम०ए० हिंदीमें सर्वोच्च अङ्क प्राप्त करनेवालेको स्वर्णपदक दिया जाय। मैंने भाईजीसे इसकी चर्चा की। वे तुरंत बोले--'हाँ, दो सहस्र रुपये आपके पास पहुँच जायँगे।' मैंने कहा--'भाईजी, इस स्वर्णपदकका नाम होगा 'हनुमानप्रसाद पोद्दार स्वर्णपदक'; परंतु उन्होंने कहा--'यह नहीं हो सकता। कोई और नाम रखिये।' मुझे आध घंटा भाईजीसे पर्याप्त वाद-विवाद एवं संघर्ष करना पड़ा, तब बड़ी कठिनाईसे वे राजी हुए और बोले--'तिवारीजी! आप तो सब कुछ जानते हैं, तब क्यों इसपर आज अड़कर बैठ गये हैं?'

वास्तवमें भाईजी 'ऋषि' थे और गीतावाटिका बन गयी थी 'आश्रम'। आज उनके न होनेपर लगता है--यह वाटिकामात्र है, जहाँके वृक्ष सिर झुकाकर कहते हैं--'हाँ, हम उनके ही लिये झुकते हैं।'

•

आध्यात्मिक चेतनाके प्रतीक भाईजी

डॉ० श्रीरामचन्द्रजी तिवारी

श्रीभाईजी आध्यात्मिक चेतनाके प्रतीक थे। उनका व्यवहार अत्यन्त मृदु था। उनके मनमें सबके प्रति समभाव था। उन्हें कभी क्षुब्ध, उत्तेजित या आवेगशील नहीं देखा गया। पीड़ितों और उपेक्षितोंके प्रति उनका हृदय सहज करुणासे भरा था। उनके यहाँसे कभी कोई निराश नहीं लौटा। वे निरन्तर परहित-निरत रहते थे। उन्हें चिन्ता थी तो धर्मकी प्रतिष्ठाकी थी। वे धर्मके लिये, सत्यके लिये, सद्भाव और शीलके लिये समर्पित थे। उनपर गोस्वामी तुलसीदासकी निम्नलिखित पंक्तियाँ पूर्णतया चरितार्थ होती हैं--

बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो।
परिहरि देहजनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो॥

भाईजी सांसारिक वैभवसे सदैव असम्पृक्त रहे। वे निरन्तर 'योगस्थ' रहकर अपने कर्तव्य-का पालन करते रहे। उन्होंने कभी किसी भौतिक उपलब्धिको महत्व नहीं दिया। ऐसा लगता है कि गीताके मर्मको उन्होंने जीवनमें चरितार्थ कर लिया था। गीतामें भगवान्ने कहा है--

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(गी० २। ४८)

वस्तुतः समत्वबुद्धि प्राप्त कर लेना ही सच्चा 'योग' है। अनासक्त होकर लाभ-हानि, सिद्धि-असिद्धि, जय-पराजय, सुख-दुःखकी चिन्ता न करते हुए अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही

सच्ची 'जीवन-यात्रा' है। यह अध्यात्म-दृष्टिसम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है। भाईजीकी 'जीवन-यात्रा' ऐसे ही योगस्थ आध्यात्मिक पुरुषकी जीवन-यात्रा थी।

भौतिक जीवनसे अनासक्त रहते हुए भी उन्हें धर्मके निरन्तर ह्रास और सामाजिक मर्यादाके भङ्ग होनेका अपार दुःख था। वे यथासम्भव संस्कृति और धर्मके उन तत्त्वोंका पोषण करते रहे, जो सनातन हैं और जिनको ऋषियोंने गहन चिन्तन एवं सतत साधनाके बलपर उपलब्ध किया है। गो-सेवा, हरिस्मरण, परोपकार, सत्य-अहिंसा, नियम और आचार, व्रत और संयम—इन सभी तत्त्वोंके प्रति सचेष्ट रहनेके लिये वे प्रत्येक जिज्ञासुको प्रेरणा देते रहे हैं। वे अच्छी तरह जानते थे कि इन तत्त्वोंका विघटन नेताओंद्वारा पहले होता है, फिर सामान्य जनता उनसे विमुख होती है। विश्वविद्यालयके छात्रोंमें बढ़ती हुई अनुशासनहीनताके संदर्भमें बातचीत करते हुए, एक बार उन्होंने प्रस्तुत पंक्तियोंके लेखकसे कहा था—'छात्रोंका कोई दोष नहीं है। हम अपनेको देखें, अपने नेताओंको देखें, हम कहाँ हैं? लोकसभा और विधानसभाओंमें क्या हो रहा है? समाजमें संगठित अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओंका क्या हो रहा है? छात्र तो वही करेंगे, जो उनके गुरुजन उदाहरणरूपमें उनके सामने रखेंगे।' इसके बाद इस संदर्भमें कुछ विशेष कहनेको नहीं रह गया।

भाईजीने आध्यात्मिक जीवनके मूल तत्त्वको निष्ठापूर्वक ग्रहण किया था। आध्यात्मिक जीवनका केन्द्र 'विशुद्ध प्रेम' है। इस प्रेमकी पहली शर्त है—"स्वसुखवाञ्छाकी कल्पनाका भी सर्वथा अभाव। यदि किसी वस्तुको हम अपने लिये, अपने व्यक्तिगत सुखके लिये चाहते हैं तो वह 'भोग' है। यदि हम उसे भगवत्समर्पित करके सुखी होते हैं तो वह 'प्रेम' है। भारतीय साधनाके क्षेत्रमें इस विशुद्ध प्रेमकी प्रतीक 'राधा' हैं। राधाजी प्रेम-विग्रहरूपा हैं। वे भगवान्की आह्लादिनी शक्ति हैं। भगवान्ने स्वयं अपने आनन्दका आस्वादन करनेके लिये अपनी आह्लादिनी शक्तिको राधारूपमें प्रकट किया है। राधा कृष्णके प्रति पूर्ण समर्पिता हैं। उन्हें मात्र भगवान्के सुखका ध्यान है। कृष्णसे अलग न उनकी कोई कामना है, न इच्छा। वस्तुतः वे कृष्णरूपा ही हैं। प्रेम-साधनाकी यह पराकाष्ठा है। राधा कोई नारी नहीं हैं। वे तो दिव्य प्रेमकी प्रवृत्तिका प्रतीक हैं। इसीलिये वे महाभावरूपा हैं। जो साधक इस महाभावकी साधना करना चाहता है, उसे राधाके प्रति, उस महाभावके परम प्रतीकके प्रति, समर्पित होना पड़ता है।" भाईजी उसी महाभावके साधक थे। इसीलिये वे राधाके प्रति पूर्ण समर्पित थे; उन्होंने अपने 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'-ग्रन्थके रूपमें इसी महाभावकी साधनाकी मार्मिक व्याख्या की है।

भाईजीको कवि-प्रतिभा भी प्राप्त हुई थी। उन्होंने अपनी इस प्रतिभाको भी श्रीराधा-माधवके प्रति अर्पित कर दिया था। उन्होंने राधाका जो स्वरूप अङ्कित किया है, वह अन्यतम है। व्यक्तित्व-विधानकी दृष्टिसे उनकी राधा जयदेव, विद्यापति और सूरदासकी राधासे सर्वथा अलग हैं। भाईजीकी राधाको माधवकी मधुपुरी-यात्रासे भी सुख-संतोष ही प्राप्त होता है—वे कहती हैं—

मुझे परम सुख देनेको ही गये मधुपुरीमें बस, श्याम।
समझ गयी, मैं सुखी हो गयी, निरख सुखद प्रियतमका काम॥

उसे श्रीकृष्णसे कोई शिकायत नहीं है । वे अपनेमें ही अनेक दोषोंकी स्थिति पाती हैं । उद्धवजीसे वे कहती हैं--

सद्गुणहीन, रूप-सुषमासे रहित, दोषकी मैं थी खान ।
मोहविवश मोहनको होता मुझमें सुन्दरताका भान ।।

:o: :o: :o:

गुण-सुन्दरता-रहित, प्रेमधन-दीन, कला-चतुराई-हीन ।
मूर्खा, मुखरा, मान-मद-भरी मिथ्या, मैं मतिमन्द, मलीन ।।
मुझसे कहीं अधिकतर सुन्दर सद्गुणशील सुरूपनिधान ।
सखी अनेक योग्य, प्रियतमको कर सकतीं अतिशय सुख-दान ।।

वस्तुतः राधाका व्यक्तित्व कृष्णसे अभिन्न है । जिसमें कृष्णको सुख प्राप्त हो, उसमें ही राधाको भी सुख है । उन्हें किसी गोपीके प्रति किसी प्रकारकी शिकायत या ईर्ष्याभाव नहीं है । वे अपनेको कृष्णसे अलग अनुभव ही नहीं करतीं । वे उद्धवसे कहती हैं--

मुझे छोड़ 'वे' उन्हें छोड़ 'मैं' रह सकते हैं नहीं कभी ।
'वे मैं', 'मैं वे'--एक तत्त्व हैं--एकरूप हैं भाँति सभी ।।

भाईजीके कविरूपका मूल्याङ्कन अभी नहीं हुआ । सत्य तो यह है कि भाईजीने जो भी कुछ लिखा है, अपने सुखके लिये लिखा है । वह उनका राधा-माधवके प्रति विनम्र भावात्मक समर्पण है । उन्होंने सदैव अपनेको सभी प्रकारके प्रचार और विज्ञापनसे दूर रखा । उनकी समस्त रचनात्मक शक्तियाँ अध्यात्म-केन्द्रित थीं । इसलिये कवियों और साहित्यकारोंकी सामान्य प्रवृत्तियों-से वे अलग रहे । उनकी कविताएँ आध्यात्मिक चेतनाके स्तरपर रची गयी हैं । उनमें मात्र कल्पनाका प्रसाद नहीं है । इसलिये उनका मूल्याङ्कन कोई अध्यात्मदृष्टिसम्पन्न आलोचक ही कर सकता है । आलोचनाके प्रचलित सिद्धान्तोंके आधारपर उनकी परख नहीं हो सकती ।

भाईजीका तन, मन, मति, जीवन, प्राण--सब कुछ प्रभुके चरणोंमें अर्पित था । समर्पणकी इस उच्चतम भावभूमिपर पहुँचकर ही उनके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें कुछ कहा जा सकता है । अतः उनकी एक प्रिय प्रार्थना उद्धृत करते हुए यह प्रसङ्ग समाप्त किया जाता है--

देखा करूँ तुम्हारी लीला, गाया करूँ तुम्हारा नाम ।
सुना करूँ नित मुरलीकी धुन, वचन तुम्हारे परम ललाम ।।
नेत्र-मधुप नित करें तुम्हारे वदन-कमल-मधु-रसका पान ।
पूर्ण समर्पण हो जायें इन्द्रिय-तन-मन-मति-जीवन-प्रान ।।

●

सच्चे अर्थमें महापुरुष

श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र'

'कल्याण'के प्रधान सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार लोगोंमें 'भाईजी' नामसे प्रसिद्ध थे और सचमुच वे सभीके भाई––स्नेहशील भाई थे । मुझे तो निजी अग्रजका-सा स्नेह उन्होंने दे रखा था ।

श्रीभाईजीके साथ मेरा सम्पर्क बहुत पुराना है और वर्षों मैं उनके पास रहा हूँ । इस सम्पर्कमें मैंने उन्हें जो देखा और जाना है, उस विषयमें कुछ कहनेसे पूर्व मुझे एक-दो बातें दूसरी कहनी हैं । मैंने संतों-महापुरुषोंकी बहुत-सी जीवनियाँ देखी-पढ़ी हैं, किंतु श्रीचैतन्य-चरितावलीको छोड़कर शेषसे मुझे प्रायः निराशा ही मिली है । महापुरुषोंकी जीवनियोंके लेखकोंने प्रायः महापुरुषकी महापुरुषताको गौण कर दिया है और महत्व जिन चमत्कारोंको दिया है, वे महापुरुषके जीवनमें भी महत्वहीन होते हैं और साधकके लिये भी व्यर्थ हैं ।

बचपनसे ही मुझे सिद्धियों-चमत्कारोंके होने-घटनेमें विश्वास रहा है, किंतु उनसे वितृष्णा रही है । अनेक प्रख्यात सिद्ध मिले भी, किंतु सिद्धियोंके प्रति कुतूहल ही नहीं जागा ।

महापुरुषता क्या है ? यह है क्लेशकी आत्यन्तिक निवृत्ति । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश––ये पाँच क्लेश हैं । इनमेंसे अविद्या निवृत्त हुई या नहीं, यह स्वसंवेद्य है । इसे कोई दूसरा जान नहीं सकता । अभिनिवेश अर्थात् शरीरको ही सब कुछ मानना साधारण साधकमें भी नहीं होता । अतः दूसरेके लिये अस्मिता अर्थात् सम्मान-सुयश-पद-प्रतिष्ठाकी वासना और राग-द्वेष देखना ही सम्भव है और ये जिसमें न दीखें, वही 'महापुरुष' है ।

महापुरुषके जीवनमें यह देखा जाना चाहिये कि वह राग-द्वेषसे कितना ऊपर है, कितना सहिष्णु है, कितना निरपेक्ष है । सर्वत्र भगवद्भाव उसमें कितना है । साथ ही उसके सङ्गसे, उसकी प्रेरणासे लोगोंमें कितने सद्‌गुण, कितना भगवद्भाव आया और कितने दुर्गुण छूटे । चमत्कार ही देने हों तो वे किसी महापुरुषकी जीवनीके परिशिष्टमात्र हो सकते हैं ।

सहस्रों लोग श्रीभाईजीद्वारा लाभान्वित हुए हैं और उनके सम्पर्कमें रहे हैं । सबको वे अपने लगे हैं । उनके सम्बन्धमें बहुत अधिक गहराईमें जाकर कुछ कहनेकी स्थिति मेरी नहीं है ।

मुझ-जैसे व्यक्तिको भी अपना लेना, सह लेना और उसे निर्बाध स्नेह देते रहना––यह मुझे श्रीभाईजीकी महापुरुषताका सबसे बड़ा प्रमाण लगता है; क्योंकि स्वभावसे ही मैं रूक्ष, उद्धत और जो मनमें आये––उचित या अनुचित, सो कर बैठनेवाला था । ऐसा निःशङ्क, निरङ्कुश, उद्धत व्यक्ति साथ रहे तो उसे निभा लेना क्या सहज है ? पर श्रीभाईजीने मुझे निभाया है । कुछ उदाहरण देख लें––

(१) गीतावाटिकामें जिस कोठरीमें रहता था, मैं जब कार्यालय चला जाता तो श्री-भाईजीके प्रियजन उस कोठरीमें फोटोग्राफीका कुछ काम करते। पुरानी पुस्तकोंकी फोटो-प्रति बनाते। उनसे अपेक्षा थी कि मेरे कोठरीमें आनेसे पूर्व काम समाप्त करके, सब सामान तख्तेके नीचे करके, कोठरी स्वच्छ करके चले जाया करें। बड़ी सावधानीसे वे इस अपेक्षाका निर्वाह करते थे।

एक दिन उनमेंसे किसीसे थोड़ी भूल हुई। वे 'इन्लार्जर' तख्तेके नीचे थोड़ा कम खिसका-कर गये। मैं रात्रिमें सोकर उठा तो मुझे ठोकर लगी। चोट तो नहीं लगी, किंतु झल्लाकर मैंने 'इन्लार्जर' उठाकर बाहर फेंक दिया। उसके शीशे टूट गये कैमरा दूर जा गिरा। मैं तो समयपर कार्यालय चला गया, किंतु उन लोगोंने बाहर पड़े शीशेके टुकड़े चुनकर उठाये। मेरी कोठरीसे सब सामान उठा ले गये।

बात श्रीभाईजीतक न जाय--सम्भव नहीं है; किंतु कुछ भी हुआ, इसकी चर्चा मेरे कानतक कभी नहीं आयी।

(२) एक बार ही नहीं, तीन या चार बार मेरे औद्धत्यसे, मेरी उच्छृङ्खलतासे, मेरे असंयमसे वहाँके लोगोंको बहुत क्षोभ हुआ। उनका क्षोभ उचित था। भाईजीके पास जानेके अतिरिक्त उनके पास उपाय नहीं था; किंतु परिणाम ? वे श्रीभाईजीके पास गये और कुछ कहा, यह बात भी मुझे पता न लगती, यदि कोई दूसरा मुझे यह न बतलाता।

(३) एक सज्जन मुझसे बहुत रुष्ट हो गये। उनका रोष उचित था। भाईजीको उन्होंने पत्र लिखे--लिखते गये। जो भी लिख सकते थे, लिखा। उन्हें क्या पता कि वे पत्र लिखकर कुएँमें डाल रहे हैं। कोई और न सूचित करता कि उन्होंने भाईजीको पत्र लिखे हैं तो मुझे पता भी नहीं लगता। श्रीभाईजीके पास किसीकी शिकायत गयी तो वह कुएँमें नहीं, अगाध समुद्रमें डूब गयी। उसकी छाया भी ऊपर झलकनेवाली नहीं थी।

(४) भाईजीकी ओरसे उनके नाम आये पत्रोंके उत्तर मैं जब भी गोरखपुर रहा, प्रायः देता रहा था। एक बार उनके कमरेमें गया तो देखा कि मेरा लिखा कोई उत्तर बिना भेजे रखा है--पुराना हो गया है। तब पता लगा कि किसीका लिखा कोई उत्तर या दूसरा कोई काम भाईजीको ठीक नहीं लगता था तो वे स्वयं लिखते थे, किंतु जिससे त्रुटि हुई है, उसे कुछ बतलाते नहीं थे। उनका कहना था--'इससे उन्हें दुःख होगा।'

(५) मेरी कहानियोंके कुछ संग्रह गीताप्रेसने छापे। 'कल्याण'में उनकी सूचना देखकर मैंने खूब कड़ा पत्र भाईजीको लिखा। उत्तर आया--बीमारीकी स्थितिमें स्वयं उन्होंने उत्तर दिया था--'आपकी कहानियोंको मैंने सहज भावसे वैसे ही छपने भेज दिया, जैसे अपनी कोई रचना भेजता हूँ। आपसे पूछना भी चाहिये, यह तो स्मरण ही नहीं आया। अब झगड़ना हो तो मुझसे झगड़िये।'

(६) श्रीमद्भागवतमें गृहस्थका आदर्श धर्म बतलाते हुए कहा गया है--'गृहेष्वतिथिवद् वसन्--घरमें अतिथिके समान रहे' और--

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे।
यद् वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः॥

'जातिके लोग, माता-पिता, पुत्र, भाई तथा दूसरे सुहृद् जो कहें और जो चाहें, उसका ममताहीन होकर अनुमोदन करे।'

सावित्री (भाईजीकी पुत्री) बीमार थी। कर्णमूल-ग्रन्थि-शोथ और ज्वर था। डाक्टर आ रहे थे, इन्जेक्शन लग रहा था। बीमारी यह छूतकी है। अचानक गीतावाटिकाके चौकीदारको भी यही रोग हुआ। ज्वर आँधीकी भाँति बढ़ने लगा। उसके भाईने लगभग पाँच बजे शामको 'कल्याण'-परिवारके एक मित्रसे दवा माँगी। मैं पास खड़ा था। उन्होंने एक होमियोपैथिक दवाकी पुड़िया बनायी, किंतु हिचक गये। बोले—'घर जाकर पुस्तक देख लूँ, तब दवा दूँगा।'

बीमारके भाईने मुझसे कहा। मैंने जाकर रोगीको देखा और वही पुड़िया उसे दे दी। वह रात्रिमें ही स्वस्थ हो गया। सबेरे भाईजी बड़े प्रसन्न मेरे पास आकर बोले—'आप जादू जानते हैं? दरवान तो स्नान करके दूध लेने चला गया है।'

मैंने कहा—'दवा तो आप भी जानते ही हैं कि क्या दी जा सकती है।' श्रीभाईजी स्वयं होमियोपैथिक चिकित्सा अच्छी जानते थे और औषधें रखते थे। वे हँस गये तो मैंने कहा—'लेकिन आपने सावित्रीको दवा नहीं दी।'

वे बोले—'रोग तो प्रारब्धानुसार जब जाना होगा चला ही जायगा; किंतु मैं दवा दे देता या आपसे दिला देता तो घरमें सबके मनमें बहुत दिनोंतक रहता कि मैंने पैसे बचानेके लिये डाक्टर नहीं बुलवाया। घरके लोगोंका विश्वास डाक्टरी दवामें है।'

सावित्रीको अच्छे होनेमें लगभग बीस दिन लगे, किंतु भाईजीने न स्वयं दवा दी और न मुझे देनेको कहा।

(७) बहुत पहलेकी बात है। घरमें लौकीका शाक बना। भाईजीको पहले भोजन करानेको बैठाया गया। उन्होंने अचानक कहा—'शाक बहुत अच्छा बना है। मैं शाक ही खाऊँगा। सब मुझे दे दो।' लौकीका जितना शाक बना था, सब वे खा गये। भाभीजी (श्री-भाईजीकी धर्मपत्नी) जब उनकी थालीमें भोजन करने बैठीं तो देखा जहाँ लौकीका शाक पड़ा था, वहाँ पड़ा भात कड़वा हो गया था। तब कहीं पता लगा कि शाक कड़वी तूँबीका बन गया था। पूछनेपर भाईजीने पत्नीसे कहा—'मैं तो चाहता था कि महाराजिनको दुःख न हो कि मैंने बिना शाक आज भोजन किया। तुमने बतलाकर मेरा उद्देश्य ही नष्ट कर दिया।'

(८) उन दिनों गीतावाटिकामें बिजली नहीं थी। मैं दूर कुटियामें सो गया था। अचानक सावित्रीने आकर जगाया—'बाबूजी मानते नहीं, वे अभीतक जगकर काम कर रहे हैं। आप उन्हें मना कीजिये।'

मैंने घड़ी देखी तो रात्रिके ग्यारह बजे थे। उठकर कोठीमें छतपर गया तो देखता हूँ कि भाईजी कार्बाइडका बदबूदार लैंप जलाये कागजोंको उलटने-पलटने और लिखनेमें लगे हैं। मैंने बिना कुछ कहे लैंप बुझा दिया तो वे चौंके। मुझे देखकर बोले—'आप क्यों उठ आये? दो पृष्ठ ही और लिखने हैं। सबेरे अवश्य प्रेसको देने हैं।'

'अब दो अक्षर भी नहीं। आप उठिये और सो जाइये। मैं सबेरे लिख दूँगा।'—मैंने तनिक दृढ़ स्वरमें कहा तो कागजोंको समेटते हुए बोले—'अच्छा, मैं सोता हूँ। आप जाकर सोइये।'

अपने सहकारियों, सेवकों, परिकरों आदि सबक बदले वे स्वयं काम करते थे—करते रहे। किसीको किसी प्रकार भी संकोच या दुःख न हो, इसके लिये उनका मन रात-दिन सावधान रहा।

(९) सन् १९५५की बात है। मैं कैलास-मानसरोवरकी यात्रा करके लौटा था। थकावटके स्थानपर मनमें उत्साह था। चाहता था कि लगे हाथ मुक्तिनाथ-दामोदरकुण्डकी भी यात्रा हो जाय तो उत्तराखण्डके प्रायः सब तीर्थोंकी मेरी यात्रा पूरी हो जाय। मैंने श्रीभाईजीसे मुक्तिनाथ जानेकी अनुमति माँगी और वह मिल गयी।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहसे अक्टूबरतक यात्रा होनी चाहिये थी। यही सबसे उपयुक्त मौसम था। सब तैयारी हो ही चुकी थी। सोचा था कि गोरखपुरसे ऐसी बस पकड़ेंगे कि उसी दिन हवाई जहाज मिल जाय। भैरहवामें रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन पैदल यात्रा प्रारम्भ कर दें।

सामान बाँध लिया गया। बस-अड्डेके लिये रिक्शा बुला लिया गया। अब मैं श्रीभाईजी-को प्रणाम करने उनके कमरेमें गया।

श्रीभाईजी गीतावाटिकाके सम्पादन-कार्यालयवाले अपने कमरेमें चटाईपर बैठे थे। कागज देख रहे थे। मैंने जाकर प्रणाम किया।

'आप जा रहे हैं?' अचानक भाईजीने मुख लटका लिया। उनका स्वर भारी और उदास हो गया। वे बोले—"जाइये। 'कल्याण'के विशेषाङ्क (सत्कथाङ्क)के लिये अभी चित्र निश्चित नहीं हुए, चित्रकारोंको निर्देश नहीं दिये गये। मैं खटूँगा–करूँगा ही किसी प्रकार।"

सर्वथा अकल्पित बात थी। मैंने बहुत पहले इस यात्राके सम्बन्धमें उनसे पूछ लिया था। उन्होंने प्रसन्न होकर अनुमति दी थी। आवश्यक प्रमाण-पत्र पानेमें सहायता की थी। चित्रोंका चुनाव, उनके सम्बन्धमें चित्रकारोंको निर्देश श्रीभाईजी ही सदा करते थे। मैंने बहुत अल्प सहायता ही इसमें कभी-कभी की थी।

सबसे विशेष बात यह थी कि श्रीभाईजीको इस प्रकार बोलते सुननेका यह मेरे लिये पहला अवसर था। आगे भी कभी मैंने उनको इस स्वरमें बोलते नहीं सुना। मेरे लिये उनका

यह स्वर असह्य था। अतः मैंने कह दिया—'आप ऐसे क्यों बोलते हैं? मना करना है तो सीधे मना कर दीजिये।'

इतना सुनते ही उल्लास-भरे स्वरमें पूरे जोरसे श्रीभाईजीने उस समयके सम्पादन-विभागके व्यवस्थापक दुलीचन्दजी दुजारीको पुकारकर कहा—'भाया, रिक्शा लौटा दे। सुदर्शनजी नहीं जा रहे हैं।'

अब मेरे कहनेको कुछ रह ही नहीं गया था। मैं चुपचाप उठ आया। रिक्शा लौट गया। बिस्तर खोल दिया गया। मनमें कुछ दुःख भी हुआ ही।

दूसरे दिन मैं अपने नित्य-कर्मसे निवृत्त हुआ ही था कि श्रीभाईजी मेरे कमरेके द्वारपर आ खड़े हुए। बड़े उल्लास-भरे स्वरमें बोले—'सुदर्शनजी। बड़ी दुर्घटना हो गयी।'

'क्या हुआ?' मैंने पूछा।

"अभी जिलाधीशका फोन आया था। उन्होंने पूछा था कि 'आपके यहाँसे जो मुक्तिनाथ जानेवाले थे, वे कल गये या नहीं?' मैंने कह दिया कि 'नहीं गये।' उन्होंने बतलाया कि 'कल जानेवाला हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसके सब यात्री मर गये'।"

पीछे समाचारपत्रोंमें छपा कि आँधी-तूफान और भयानक ओलावृष्टिसे हवाई जहाज तो नष्ट हुआ ही, वह मोटर-मार्गकी सड़क भी कई मील टूट गयी। मार्गके पंद्रह-बीस दिन पहले खुलनेकी सम्भावना नहीं रही थी। मुझे उसी हवाई जहाजसे जाना था और श्रीभाईजीने मेरी वह यात्रा—महायात्रा भी रोकी थी।

जिन लोगोंने उनको सामने गालियाँ दीं, फटकारा, उलटा-सीधा कहा ही नहीं, लिखकर, नोटिसें छपवाकर बँटवायीं, उन सबका भी वे सदा अत्यन्त आदरसे स्वागत करते रहे। उनकी धनसे, मानसे सेवा करते रहे।

सबमें भगवान्—सब रूपोंमें भगवान्, यही उनका मुख्य उपदेश, मुख्य प्रेरणा, मुख्य जीवनव्रत था।

स्वयं भगवन्मय, जगत्को भगवन्मय देखनेवाले और कर्ममात्रको भगवत्सेवा समझकर करने-वाले ऐसे महापुरुषका मुझे स्नेह-सम्पर्क मिला, यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य था।

●

मनुष्यको कर्म करनेका अधिकार प्राप्त है। मनुष्य केवल भोगयोनि नहीं है, कर्मयोनि है। वह अपने कर्मोंके द्वारा अपना भविष्य अत्यन्त दुःखमय भी बना सकता है, सुखमय बना सकता है और सत्साधनमें प्रवृत्त हो तो भगवान्‌को—आत्माको भी प्राप्त कर सकता है, जो जीवनका परम लक्ष्य है। इस सिद्धान्तको समझकर जो मनुष्य कर्माधिकारका सदुपयोग करता है, वही बुद्धिमान् है।

—श्रीभाईजी

●

सन्मार्गके प्रेरणादाता

श्रीलालजीरामजी शुक्ल

किसी भी जीवित समाजके लिये यह आवश्यक है कि उसके चिन्तनशील व्यक्ति, जो समाजको बनाये रखना चाहते हैं, जीवनके स्थायी मूल्योंको जनताके सामने बार-बार लावें और उन मूल्योंपर विचार करनेके लिये अनेक तरहसे प्रेरणा दें। समाजका आचरण सुदृढ़ बनानेके लिये इतना ही आवश्यक नहीं है कि साधारण जनताको धर्म-अधर्मका रूप समझाया जाय, वरं उसके लिये यह भी आवश्यक है कि कुछ लोग ऐसे तैयार किये जायँ, जो समाजके मूल्योंको अपने जीवनमें चरितार्थ करें।

श्रीपोद्दारजीने इन दोनों उपायोंसे हिंदू-समाजकी अनेक प्रकारसे सेवा की। पोद्दारजीने पहला काम तो 'कल्याण'का सम्पादन करके किया और दूसरा काम अनेक धार्मिक संस्थाओंकी स्थापना-संचालन करके तथा उनमें जनताकी श्रद्धा बढ़ाकर किया। श्रीपोद्दारजीका पहला काम उसी प्रकारका था, जिस प्रकारका कार्य महात्मा तुलसीदासका था। महात्मा तुलसीदासने सामान्य जनताको जनताकी भाषाका उपयोग करके प्रबुद्ध किया और 'रामचरितमानस' आदि अपने ग्रन्थोंद्वारा उनके विचार और आचारको सुधारा।

मैं अपने मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विचारोंको जनतातक पहुँचा सका, इसका श्रेय श्रीपोद्दारजीको ही है। उन्होंने 'कल्याण'में मेरे विचार प्रकाशितकर मुझे बड़ा उत्साहित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने 'काशी मनोविज्ञानशाला'के कार्योंको आगे बढ़ाया। उनके इस सहयोगके प्रति हम उनके विशेष आभारी हैं।

श्रीपोद्दारजी 'कल्याण'के माध्यमसे बराबर असत् मार्गके त्याग तथा सन्मार्गके ग्रहणकी प्रेरणा देते रहते थे। मुझे स्मरण है—श्रीपोद्दारजीने अपने एक लेखमें बालकोंको गोद लेनेकी वर्तमान परिपाटीसे उत्पन्न होनेवाली पारिवारिक उलझनोंके विषयमें लिखा था। गोंदियाके सेठ मनोहरभाईने इस लेखको देखा। वे उस समय अपनी जायदादकी रक्षाके लिये एक लड़केको गोद लेना चाहते थे। लेखको पढ़कर उनके विचार बदल गये और उन्होंने अपना सारा धन गरीब बालकोंकी शिक्षामें लगानेका निश्चय कर लिया। उन्होंने अपनी आधी सम्पत्ति, जो लगभग एक करोड़के थी, शिक्षा-कार्य और बालकोंकी सेवामें लगा दी।

इस प्रकार 'कल्याण'के द्वारा लाखों लोगोंके विचार बदले हैं और कुमतिकी जगह सुमतिका प्रचार हुआ है। भारतीय संस्कृतिकी भली बातोंकी रक्षामें 'कल्याण'का सदा प्रभावकारी स्थान रहा है और आगे भी रहेगा।

पोद्दारजी बड़े ही उदार चिन्तक थे। उनका अपना जीवन बड़ा ही सरल और सादा था। उनकी सादगी उसी प्रकारकी थी, जिस प्रकारकी सादगी महामना पण्डित मालवीयजीकी

थी। जब कोई अतिथि उनके पास आता तो वे बड़े ही प्रेमसे उससे मिलते थे। भारतीय जनतामें धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये उनका व्यक्तित्व उसी प्रकार प्रभावकारी था, जैसा पूज्य मालवीयजीका। दोनों महापुरुषोंने जीवनभर जन-शिक्षाका कार्य किया। इसके लिये हम सभी उनके आभारी रहेंगे।

•

श्रीभाईजीका आध्यात्मिक साम्यवाद

श्री 'प्रज्ञानन्द' जी

आध्यात्मिक साम्यवादपर श्रीभाईजी अपने व्याख्यानोंमें भौतिक साम्यवादकी आलोचना करते समय अपने साम्यवादसम्बन्धी विचारोंको प्रकट करते थे। उनका कहना था कि 'अध्यात्म-दृष्टिसे सब कुछ प्रभुमय है और जहाँ प्रभुमय दृष्टि है, वहाँ साम्यभावका साम्राज्य है, कहीं भी छोटे-बड़ेके भेदभावकी गन्धमात्र भी नहीं है। आत्मदृष्टिसे भी सबकी आत्मा एक है, आत्मामें कहीं वैषम्य नहीं है। परंतु प्रकृतिमें तो वैषम्य रहेगा ही। अतएव प्राकृतिक जीव-जगत्‌में साम्य लाना असम्भव है। यह तो सदा ही द्वन्द्वात्मक रहेगा। जैसे प्रकृतिमें द्वन्द्व हैं—कहीं दिन है तो कहीं रात है, कहीं जल है तो कहीं स्थल है—इसी प्रकार सुख-दुःख, मान-अपमान, छोटा-बड़ा आदि द्वन्द्वका अस्तित्व मानव-जीवनमें अनिवार्य है।

वे कहते थे कि 'प्रकृतिमें सत्व-रज और तम—तीन गुण हैं। इन गुणोंके वैषम्यसे ही सृष्टि चलती है। यदि यह वैषम्य मिटकर साम्यावस्था आ जाय तो प्रकृतिका कार्य ठप हो जाय, प्रलय हो जाय, सारी सृष्टिका लोप हो जाय। अतएव बाह्य जीवनमें वैषम्य अनिवार्य है। फलतः भौतिक साम्यवादी, जो आत्माके पृथक् अस्तित्वको नहीं मानता और आधिभौतिक हेतुवादके आधारपर जीवनमें साम्य लानेकी बात करता है, भूल करता है। मानव-जीवनकी प्रगति और स्वरूप वैषम्यपर ही आधारित है, अतएव उसमें वैषम्य रहेगा। कर्मवादके सिद्धान्तके अनुसार भी वैषम्यकी ही पुष्टि होती है। जिसके जैसे प्राक्तन कर्म हैं, उनके अनुसार ही उसको भोग मिलते हैं। यही नहीं, जाति, आयु और भोग—ये तीनों कर्मके ही परिणाम हैं।'

परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य प्रारब्धके भरोसे हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा रहे और अपनेको प्रारब्धके ऊपर पूर्णतया छोड़ दे। पुरुषार्थका भी मानव-जीवनमें महत्त्व है। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः—उद्योगी पुरुषसिंहके पास लक्ष्मी आती है।' अतएव पुरुषार्थके द्वारा, उद्यम-उद्योग एवं साधन-अनुष्ठानके द्वारा मनुष्य वर्त्तमान जीवनको और भावी जीवनको सुखमय बना सकता है।

परंतु पुरुषार्थके द्वारा हिंसाका आश्रय लेकर आर्थिक वैषम्यको मिटानेकी चेष्टा, जो कम्युनिस्ट लोग करना चाहते हैं, कदापि विवेकशील मनुष्यका समर्थन नहीं प्राप्त कर सकती। फिर उपाय क्या है? क्योंकि कम्युनिस्टोंके संघर्षका मूल कारण पूँजीवाद है और पूँजीवाद भौतिक

ऐश्वर्यका उत्पादन करके भोग-प्रवणताका प्रसारक है । भोग-प्रवणताकी वृद्धि होनेपर भोगका साधन--अर्थ प्रचुरमात्रामें होना चाहिये । इसी अर्थ-प्रचुरताको सर्वसाधारणके लिये सुलभ बनानेके उद्देश्यसे कम्युनिस्ट संवर्षमें रत होता है । अतएव श्रीभाईजी अर्थोत्पादन-वितरणकी दृष्टिसे पूँजी-वादके प्रवल विरोधी थे । वे कहते थे कि 'जीवनका मुख्य ध्येय भोग नहीं, भगवान् हैं । पूँजीवाद भोगका प्रचुर साधन तैयार करके मानवको भोगप्रवण तथा भगवद्विमुख कर रहा है ।'

महात्मा गांधी पूँजीवादी अर्थोत्पादनकी प्रक्रियाको 'आसुरी प्रक्रिया' कहते थे । वे मशीनोंके द्वारा उत्पन्न वस्तुका उपयोग करनेकी अपेक्षा हाथके द्वारा उत्पादित वस्तुका प्रयोग करनेपर जोर देते थे । इस प्रकार वे पूँजीवादको नियमित करना चाहते थे और पूँजीको व्यक्तिकी सम्पत्ति नहीं, अपितु ट्रस्टके अधीन रखकर समाजके हितमें उसका नियन्त्रण करना चाहते थे । यही महात्मा गांधीके 'ट्रस्टीवाद'का सिद्धान्त था ।

श्रीभाईजीका और ही विचार था । उनका विचार पूर्णतया शास्त्रोंपर आधारित था । वे पूँजीवादके मूलतः विरोधी थे, परंतु पूँजीवादी उत्पादनके विरोधी न थे । वे इस समस्याका हल धार्मिक आधारपर शास्त्रीय विधिसे करना चाहते थे । इस विषयमें सर्वदा देवर्षि नारदजीके मुँहसे निकले हुए इस श्लोकका वे उल्लेख किया करते थे--

यावद् भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १४ । ८)

'जितनेसे पेट भरे, उतनेपर ही मनुष्यका अधिकार है, और अधिकपर प्रभुत्वका जो अभिमान करता है, वह चोर है तथा दण्डका भागी है ।' यदि 'यावद् भ्रियेत जठरं' का अर्थ आधुनिक परिवेषमें न्यूनतम आवश्यकता (bare necessity) ले लें तो देवर्षि नारदजीके कथनका अभिप्राय यह होगा कि 'जहाँतक सामान्य जीवन-यात्राकी जरूरतोंका सम्बन्ध है, उन्हींकी पूर्तिका मनुष्यको अधिकार है, अतिरिक्तपर अहंकार जताना चोरी है ।' अतिरिक्तका संचय ही तो पूँजीवाद है; इसका शास्त्र विरोध करता है । तव फिर शास्त्र इस विषयमें क्या आदेश देता है ? इस प्रश्नका समाधान करते हुए श्रीभाईजी ईशावास्योपनिषद्के पहले मन्त्रका उद्घोष करते थे--

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

'जगतीमें जो कुछ ऐश्वर्यका भोग-भंडार है, वह सब ईश्वरके द्वारा आच्छादित है, भगवान् सवपर छाये हुए हैं, सब कुछ उन्हींका है । इस जगत्में अपनी कोई वस्तु नहीं है, सबपर भगवान्का अधिकार है ।' भगवान् दयालु हैं, देवर्षि नारदजीके समान दण्ड देनेकी वात नहीं कहते । वे कहते हैं--'मनुष्यो ! जागतिक ऐश्वर्यका भोग त्यागके द्वारा करो, अर्थात् परस्पर बाँट करके, प्रेमपूर्वक दूसरोंको उनका भाग देकर अपने भागका उपभोग करो । बहुतके लिये लालच न करो । क्यों व्यर्थ अपनाना चाहते हो ? यह धन किसका है ? सचमुच मरनेके बाद सब यहीं रह जाता है, किसीके पल्ले कुछ नहीं लगता । ऐसी स्थितिमें उदारतापूर्वक बाँटकर

परस्पर प्रेमभावसे अर्जित अर्थका उपभोग करना और सब कुछ भगवान्‌का समझकर सदाके लिये भगवान्‌को अर्पित करना ही श्रेयस्कर है।'

वस्तुतः आध्यात्मिक साम्यवाद और भौतिक साम्यवाद परस्पर-विरोधी सिद्धान्त हैं। दोनोंका मूल आधार एक होनेपर भी उनकी मान्यतामें महान् अन्तर है। आध्यात्मिक साम्यवादकी दृष्टिसे जगत्‌का हेतु और परिणाम आध्यात्मिक हैं। ब्रह्मसूत्रका यह सूत्र--**'जन्माद्यस्य यतः'** इसका प्रमाण है। इस सूत्रमें महर्षि बादरायण कहते हैं कि "इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जिससे होते हैं, वह 'ब्रह्म' है।" अतएव आध्यात्मिक दृष्टिसे जगत् ब्रह्ममय है, और ब्रह्ममयी दृष्टिमें वैषम्यका लेश भी नहीं है। इस दृष्टिमें मुख्य लक्ष्य जगत्, अर्थात् जगत्‌का भोग नहीं है, बल्कि ब्रह्म या भगवान् मुख्य लक्ष्य हैं। जीवनमें सुख-शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति भगवद्विमुख होकर जीव कदापि नहीं कर सकता। श्रीभाईजी जागतिक सुखको 'दुःखयोनि' कहा करते थे और प्रमाणमें गीताके इस श्लोकको उद्धृत करते थे--

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥
(गीता ५।२२)

'हे अर्जुन! ये इन्द्रियों और विषयोंके संस्पर्शसे उत्पन्न जागतिक भोग दुःखयोनि हैं, इनमें दुःख-ही-दुःख है। ये भोग आदि और अन्तवाले अर्थात् क्षणिक हैं, बुद्धिमान् आदमी इनमें रमण नहीं करता।' भगवान् बुद्धने भी 'धम्मपद'में इसी सत्यकी ओर संकेत किया है--

को नु हासो किमानंदो निच्चं पज्जलितो सती।
अंधकारेण ओनद्धा पदीपं नो गवेस्सथ॥

'यह जगत् दुःखाग्निसे नित्य प्रज्वलित हो रहा है, यहाँ हास्य कहाँ है? और आनन्द कहाँ? अरे! अन्धकारसे ढके हुए प्रदीपको क्यों नहीं ढूँढ़ता?'

परंतु जीव मृगतृष्णामें पड़ा हुआ जगत्‌में सुख-शान्ति खोजता है। आधिभौतिक साम्यवादी इसको नहीं मानता, उसका लक्ष्य आधिभौतिक होता है। उसकी दृष्टिमें अध्यात्मका अस्तित्व ही नहीं है। इसलिये वह संघर्ष, सतत संघर्षके द्वारा जगत्‌को ही अधिकाधिक सुखमय बनानेके सिद्धान्तको अपनाता है। परंतु उपर्युक्त गीता और धम्मपदके प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि उसकी यह भारी भूल है। अतएव जागतिक सुखसे मुँह मोड़कर श्रीभगवान्‌की ओर अभिमुख होना ही श्रेयस्कर है। परंतु जागतिक सुखकी ओर जीवकी सहज प्रवृत्ति होती है। भोग-प्रवणताकी सहज प्रवृत्ति ही जीवको पापकर्ममें लगाकर नरक-यात्री बनाती है। इस प्रकारकी चित्तवृत्तिको निरुद्ध करके श्रीभगवान्‌की ओर ल जानेके लिये साधना अपेक्षित होती है और मनुष्यको इस साधनामें यावज्जीवन लगे रहकर अन्तःकरणकी शुद्धि सम्पादन करनेकी आवश्यकता होती है। अन्तः-करणके शुद्ध हो जानेपर मानव जीवनकी कृतार्थताके पथपर आरूढ़ हो जाता है। अतएव श्रीभगवान्‌ने कहा है--

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

आध्यात्मिक साम्यवादकी इसी सरणिपर निरन्तर आरूढ़ रहकर श्रीभाईजीने यही पथ ग्रहण करनेके लिये लोगोंको जगाया है, इसीके प्रचार-प्रसारमें यावज्जीवन अपनी शक्ति लगायी है। कठोपनिषद्के अनुसार **'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'**—'यदि अध्यात्मको समझकर इसे जीवनका लक्ष्य नहीं बनाया और सहज सांसारिक भोगके प्रवाहमें बहते रहे तो समझ लीजिये कि सर्वनाश हो गया, मानवजीवन व्यर्थ चला गया।' अतएव श्रीभाईजी अपने प्रवचनमें बारंबार रामचरितमानसके इस दोहेको उद्धृत करते थे—

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ॥ (अयो०, दो० १८५)

'वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई—सब जल जायँ (श्रीभाईजी जोर देकर कहते थे—सबमें आग लग जाय), जो श्रीरामजीके चरणोंके सम्मुख होनेमें हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता नहीं करते।'

श्रीभाईजी भोग-बाहुल्यके पक्षपाती पूँजीवाद और भौतिक साम्यवाद—दोनोंकी भर्त्सना करते थे। पूँजीवाद, जो दिन-प्रतिदिन भोग-विलासकी नयी-नयी सामग्रियोंका अम्बार एकत्रित करके जनताको भोगासक्तिमें लिप्त करता जा रहा है, प्राचीन भारतीय संस्कृतिके विनाशमें भौतिक साम्यवादसे पीछे नहीं है। यही देखकर श्रीभाईजी कहा करते थे—'चारों ओर आग लगी है। समाज विनाशकी ओर जा रहा है।' ऐसी विषम परिस्थितिमें अब उपाय क्या है? लोग जो मोहमें पड़कर विनाशके पथपर जा रहे हैं, उससे बचनेका क्या रास्ता है? श्रीभाईजी रामचरित-मानसके इस दोहेकी ओर साधकका ध्यान आकर्षित करते थे—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥ (उत्तर०, दो० ६१)

'सत्सङ्गके बिना हरिकी कथा सुननेको नहीं मिलती। हरिकथा सुने बिना मोह नहीं भागता और मोहके गये बिना श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें दृढ़ अनुराग नहीं होता।'—इस दोहेमें रास्ता बतला दिया गया है। श्रीभाईजीने मानवजीवनके साफल्यके लिये एकमात्र भगवन्नामका आश्रय लिया और जगत्के जीवोंको भी नामकी साधना करनेका ही उपदेश दिया। वे अपने प्रवचनमें प्रायः शास्त्रके इस वचनको दुहराते थे—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

इसी कारण जीवोंके प्रति परम कारुणिक, दयार्द्रहृदय श्रीभाईजीने 'कल्याण'के द्वारा 'नामजप-विभाग'की स्थापना करके षोडश-नाम मन्त्र "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।" का प्रचार किया है तथा 'कल्याण'-पथके पथिकोंके सहायतार्थ 'साधक-संघ'की स्थापना की थी। श्रीभाईजी जीवमात्रके कल्याणकी कामनासे स्वयं साधनमें रत रहे और उन्होंने लोगोंको साधन-पथमें लगाया। उनका आध्यात्मिक साम्यवाद कोरा आदर्शवाद नहीं था; उन्होंने इसको अपने जीवनमें व्यवहार्य बनाकर इसकी यथार्थताको सिद्ध कर दिया।

●

उदारमना भाईजी

श्रीचन्द्रदीपजी

श्रीभाईजीके निकट-सम्पर्कमें दो-ढाई वर्ष रहनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं सम्भवतः सन् १९३४के मई-जून मासमें उनके पास गया था। सबसे पहले मुझे उनके व्यक्तिगत पत्रोंका उत्तर देनेका कार्य सौंपा गया। उनके कार्यका यह विभाग बड़ा महत्त्वपूर्ण विभाग था। उनके पत्रोंको देखनेसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि उनके व्यक्तित्वका कितना अधिक प्रभाव जन-मानसपर था और किस तरह भारतके अनेक प्रान्तोंके लोग जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उनके पथ-प्रदर्शनकी अपेक्षा रखते थे। उस कार्यकी गम्भीरता, पवित्रता और उत्तरदायित्वका ख्याल करके ही सम्भवतः वे चाहे जिससे उस कार्यमें मदद नहीं लेते थे और पत्र इतने आते थे कि उनका उत्तर देना अकेले उनके लिये सम्भव नहीं होता था।

इस कार्यको करते हुए मुझे उनके अगाध ज्ञानका थोड़ा-सा परिचय मिला। वे हिंदी भाषाके अतिरिक्त बँगला, गुजराती और मराठीपर पूरा अधिकार रखते थे और इन्हें मातृभाषाकी तरह ही पढ़-लिख-बोल सकते थे। संस्कृतका भी वे बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। अंग्रेजी वे इतनी अच्छी समझते थे कि कभी-कभी 'कल्याण-कल्पतरु'के लिये अनूदित लेखोंमें संशोधनके ऐसे सुझाव देते थे कि अंग्रेजीके अच्छे विद्वान् भी चकित रह जाते थे। हिंदी, बँगला, गुजराती और मराठीमें धार्मिक-आध्यात्मिक पुस्तकें कौन-कौन हैं, कहाँ-कहाँसे प्रकाशित हैं, किस-किसकी लिखी हैं, उनका कितना मूल्य है और उनमें किस विषयका प्रतिपादन है—यह मानो उनकी जबानपर बराबर रहता था। पूरी गीताको अच्छी तरह कण्ठस्थ कर लेना तो गीताप्रेसके सत्सङ्गियोंके लिये एक आम बात थी, पर इसके अलावा श्रीभाईजीको सभी भाषाओंके कितने विशेष-विशेष उद्धरण याद थे, इसे देखकर चकित हुए बिना नहीं रहा जा सकता था। आज भी इसका परिचय हमें उनके प्रकाशित लेखों और भाषणोंसे मिल सकता है। यह सब देखकर मुझे ऐसी धारणा हो गयी थी कि अपने विषयका जितना अगाध और विस्तृत ज्ञान श्रीभाईजीको था, उतना शायद ही किसी दूसरे हिंदी-सम्पादकको होता हो, जब कि तथाकथित स्कूली शिक्षा किसी भाषामें भी श्रीभाईजीको प्राप्त नहीं थी।

उनके पास रहनेपर उनके चरित्रकी एक और विशेषताकी ओर मेरा ध्यान सहज ही खिंच गया। देखा, उनकी बातोंमें अधिकार प्राकट्य नहीं होता था। वे अपने सहकर्मियोंको प्यार करते थे और सदा उनके साथ प्यारसे ही व्यवहार करते थे। केवल कार्यालयके काम-काजके सम्बन्धमें ही नहीं, कार्यकर्ताओंकी व्यक्तिगत सुख-सुविधापर भी उनका सदा ध्यान रहता था। कब कौन कितना काम करता है, यह वे कभी नहीं देखते थे। वे अपने कार्यकर्ताओंकी ईमानदारीपर विश्वास करते थे और इस कारण उनके साथ रहनेवाले लोग काम भी कम नहीं करते थे। साधारण-तया हमलोगोंका कार्य खा-पी लेनेके बाद दस-साढ़े दस बजे आरम्भ होता था। उन दिनों टेबल-कुर्सीकी

बहार उनके बगीचेमें नहीं थी; चटाइयोंपर बैठकर, अधिक-से-अधिक साधारण काठकी बनी छोटी-सी डेस्ककी सहायता लेकर काम किया जाता था। हमलोग अपनी-अपनी चटाई बिछाकर कार्य करने बैठ जाते। खाने-पीनेकी गर्मी और आबहवाकी गर्मीके कारण आँखें झपकने लगतीं और प्रायः हम सभी लोग थोड़ी देरके लिये अपनी-अपनी चटाईपर चित हो जाते। श्रीभाईजी छतके ऊपरके एक कमरेमें काम किया करते थे। कभी-कभी जरूरत होनेपर नीचे आते थे। जब भी वे उस समय नीचे आते तो दूरसे ही हमलोगोंको सोया देखकर वापस चले जाते। कभी अत्यन्त आवश्यक होता तो चुपकेसे अपना काम करके चले जाते और यदि कोई जग जाता और उठ बैठता तो बड़े ही प्रेमसे उसे पूरा विश्राम ले लेनेके लिये कहते और शीघ्र ही वहाँसे चले जाते। उन्होंने कभी किसी बातके सिलसिलेमें यह प्रकट नहीं किया कि उसके कारण कार्यमें किसी प्रकारकी असुविधा हुई या देर हो गयी। वे हमारे जगनेपर ही प्रायः नीचे आते और किसीसे कोई काम कराना होता तो उसे कराते।

सन् १९३६के अगस्त-दर्शनपर मैं पांडिचेरी आनेकी तैयारी करने लगा। उन दिनों गोरखपुर जिलेमें बड़ी भयंकर बाढ़ आयी हुई थी और श्रीभाईजी सहायताकार्यमें व्यस्त थे—रात-दिन उसी कार्यमें उनका सारा समय चला जाता था। उनसे मिलना-जुलना भी सम्भव नहीं होता था। एक दिन मैंने समय पाकर उनसे इतना ही कह दिया कि 'इस बार १५ अगस्तके दर्शन-दिवसपर मैं पांडिचेरी जाना चाहता हूँ।' फिर श्रीभाईजीसे मिलनेका मौका ही नहीं मिला। जिस दिन मैं रवाना होने जा रहा था, उसी दिन सबेरे वे मेरे रहनेके स्थानपर आ गये। उन्हें हठात् अपने यहाँ आया देख मैं चकित हो गया और थोड़ी शर्म भी लगी कि मैं ही क्यों नहीं जाकर मिल आया। मेरे बरामदेमें ही वे खड़े हो गये और मेरे कंधेपर हाथ रखकर बड़े प्रेमसे कहने लगे—'आपने आश्रम जानेकी इच्छा प्रकट की थी, पर फिर कभी मिले ही नहीं; मुझे भी बाढ़के कार्यके कारण अवकाश नहीं मिला कि आपको बुलाकर पूछूँ। आज सुना कि आप रवाना हो रहे हैं। तो आपने अपने खर्चका क्या प्रबन्ध किया?' मेरा उत्तर सुनकर उन्होंने कहा—'नहीं-नहीं, इसकी कोई जरूरत नहीं। खर्चकी कोई बात आपको नहीं सोचनी है, मैं स्टेशन भिजवा रहा हूँ। आप वापस कब आ रहे हैं?' मैंने कहा—'इच्छा है कि इस बार वहीं रह जाऊँ। पर अभी मुझे केवल दर्शनकी ही आज्ञा मिली है। वहाँ रहनेकी आज्ञा वहाँ जानेपर माँगूंगा।' उन्होंने कहा—'ठीक है। यदि आज्ञा मिल जाय, तब तो कोई प्रश्न ही नहीं, यदि न मिले तो तुरंत मुझे खबर दे दीजियेगा, आवश्यक खर्च भिजवा दिया जायगा। अभी या कभी भी, जब आश्रमसे बाहर आना हो तो आपको और कहीं जानेकी जरूरत नहीं, आपके लिये यहाँ बराबर ही जगह खाली रहेगी।'

इस बातपर टिप्पणीकी कोई आवश्यकता नहीं। बस, इतना यहाँ और जोड़ दूँ कि गीताप्रेसमें रहते समय मैं शायद तीन बार आश्रम आया और हर बार उन्होंने वह खर्च अपना खर्च समझा। मुझे न माँगना पड़ा और न उसकी चिन्ता करनी पड़ी। इसका मूल्य उस समय बहुत अधिक बढ़ जाता है, जब कि कोई अन्य सम्प्रदाय और अन्य साधना-मार्गसे सम्बन्ध रखता हो। यह बात उनकी धार्मिक और हार्दिक उदारताकी ओर स्पष्ट ही संकेत करती है। वहाँ रहते

हुए भी मैंने स्पष्ट देखा कि हिंदू-धर्मके प्रायः सभी सम्प्रदायों और साधना-मार्गोंके प्रति उनका बड़ा आदर-भाव था और सभी सम्प्रदायों और मार्गोंके विद्वानों और साधकोंकी वे खुले दिलसे सेवा किया करते थे।

केवल विद्वानों तथा साधकोंके लिये ही नहीं, वरं सभी दुःखी एवं अभावग्रस्त व्यक्तियोंके प्रति उनमें अगाध करुणा थी और सबके कष्टोंमें वे हाथ बँटानेकी कोशिश करते थे। ऐसे लोग प्रायः ही गीताप्रेसके बगीचेमें आया करते थे और दो-एक दिन मेहमान रहकर तथा यथासम्भव सहायता लेकर चले जाया करते थे। एकाध तो ऐसे भी देखे गये, जो अपने सभी कष्टों और अभावोंके समय बराबर आया करते थे और हर बार एक-सा ही दयापूर्ण व्यवहार पाया करते थे। इस दयामें भी श्रीभाईजीकी एक विशेषता थी। यह तो हम जानते ही हैं कि सारी दुनिया-की सम्पत्ति उनके ही हाथोंमें नहीं थी और इसलिये वे चाहे जिसको मुँह-माँगा दान नहीं दे सकते थे। पर इस देनेमें उनका भाव बड़ा विशाल और अनोखा रहता था; वे अपनी शक्तिको अपने ध्यानमें नहीं रखते थे, बल्कि माँगनेवालेकी आवश्यकताको अपने ध्यानमें विशेषरूपसे रखते थे। किसीके लिये कुछ करते रहनेसे वे कभी ऊबते नहीं थे। यह उन्हें ख्याल ही नहीं होता था कि मैंने बहुत कर दिया, अब करना बेकार है या अनुचित है। कई उदाहरण हमने उनसे बातचीतके सिलसिलेमें सुने हैं और देखे भी हैं, जिनमें दूसरा कोई भी व्यक्ति ऊबे बिना न रहता; पर वे हँसते हुए और पूरी सहानुभूतिके साथ माँगें पूरी करते रहते। एक उदाहरण शायद पर्याप्त होगा, जो महात्माओंके विषयमें चर्चा करते हुए स्वयं उन्होंने बताया था। एक महात्मा बम्बईमें उनके पास आया करते और कुछ दिन उनके यहाँ ठहरा करते थे। उन महात्माका मन शायद बड़ा अस्थिर था या विचित्र ढंगका था। वे सुबह कहते कि आज हलुवा खानेकी बड़ी इच्छा है, हलुवा बनवाओ। फरमाइश अंदर घरमें चली जाती, हलुवा बनकर तैयार भी हो जाता। पर उधर खानेके समयसे थोड़ी देर पहले महात्माजी बोल उठते—'भई हनुमान! हलुवा नहीं, खीर बनवा दो तो अच्छा।' एक मुस्कानके साथ तुरंत हुक्म जारी होता कि महात्माजीके लिये खीर तैयार की जाय। घरमें खलबली मच जाती, पर अन्तमें खीरकी तैयारी भी हो जाती। परंतु महात्माजीका मन तो अपना ठहरा नहीं; चौकेमें किसी दिन कुछ खा लेते तो किसी दिन कुछ और किसी दिन तो बिना कुछ खाये ही न जाने कहाँ काफूर हो जाते। यह अनुभव दो-चार बार नहीं, शायद अनगिनत बार, महीनों होता रहा। गीताप्रेसमें भी हमलोगोंके सामने कई ऐसे उदाहरण आये, जिनमें किसी भी दूसरेके धैर्यकी बुरी तरह परीक्षा हो जाती; पर श्रीभाईजी सदा प्रसन्नमुद्रामें **'पद्मपत्रमिवाम्भसा'** ही बने रहते; उन्हें कोई शिकायत नहीं रहती।

एक उदाहरण हमने श्रीभाईजीके बगीचेमें और देखा, जो केवल थोड़े-से पैसों एवं परिश्रम-को ही चुनौती देनेवाला नहीं था, बल्कि मानवीय स्वभाव और चरित्रके बहुत-से तत्त्वोंको एक साथ चुनौती देनेवाला तथा प्रचण्ड झञ्झाकी तरह झकझोर देनेवाला था। उन दिनों वहाँ महाराष्ट्र प्रान्तके एक संन्यासी रहते थे। सुना था कि वे हिमालयमें कहीं तपस्या करते थे, पर गीता-रामायणके प्रचारके कार्यमें सहयोग देनेके लिये वहाँ आ गये हैं। पर दैव-विधानसे उनका मस्तिष्क

विकृत हो गया और वे अवाञ्छनीय चेष्टाएँ करने लगे। पीछे वे लोगोंको मारने-पीटने लगे। पर श्रीभाईजी सब सहन करते थे। एक दिन वे श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'पर, जो उस समय वहाँ कार्य करते थे, टूट पड़े। हमलोगोंने अपनी जान खतरेमें डालकर उन्हें बचाया, अन्यथा न जाने माधवजीपर क्या बीतती। शोर-गुल शान्त नहीं हुआ था कि किसीने दौड़कर श्रीभाईजी-को इसकी सूचना दे दी। श्रीभाईजी तत्काल वहाँ आ उपस्थित हुए और उन्होंने संन्यासीका हाथ पकड़कर उन्हें अपने पास बिठा लिया। उनके आते ही संन्यासी बहुत कुछ शान्त हो गये। ऐसा लगा कि श्रीभाईजीके प्रति उनके मनमें बड़ा आदर-भाव था। वे उस विक्षिप्तावस्थामें भी एक अपराधीकी भाँति सिर झुकाकर श्रीभाईजीके सामने बैठ गये। श्रीभाईजीका संयम, सहन-शीलता, प्रेमपूर्ण उलाहनेका ढंग—सब कुछ बड़ा अनोखा था। उन्होंने संन्यासीको समझाकर कश्मीर चले जानेके लिये राजी कर लिया और सम्भवतः उसी दिन किसी समय उन्हें रवाना कर दिया गया। जबतक मैं वहाँ था, तबतक उन्हें नियमित डेढ़ सौ रुपया महीना (वह जमाना आजकी अपेक्षा बहुत सस्ता था) खर्च भेजा जाता था। भाईजी बराबर उन्हें पत्र लिखा करते थे और उनका समाचार मँगाते रहते थे। एक संघर्षशील आत्माके प्रति श्रीभाईजीका यह स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ।

श्रीभाईजी सदा पूर्ण जागरूक थे कि धार्मिक-आध्यात्मिक जगत्‌में कहाँ क्या हो रहा है, उसका क्या प्रभाव जन-समाजपर पड़ सकता है और इस विषयमें उनका अपना क्या कर्त्तव्य है? 'कल्याण'के माध्यमसे वे अपने विचार बराबर व्यक्त करते रहे। जो भाईजी युवावस्थामें क्रान्तिकारी आन्दोलनके साथ थे, वे पीछे एक प्रबल आध्यात्मिक आन्दोलनके सूत्रधार बन गये। हिंदूधर्म एवं संस्कृतिमें उनकी आस्था अटूट और गम्भीर थी तथा उनकी रक्षामें ही उन्होंने अपना सारा जीवन होम दिया। उनकी स्मृति हिंदूजातिके हृदयमें सदा जाग्रत् रहेगी।

●

महात्माओंमें अद्भुत प्रभाव होता है। उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालापसे पापोंका नाश और दुर्गुण-दुराचारोंका अभाव होकर सद्गुण-सदाचार आ जाते हैं। अज्ञानका नाश होकर हृदयमें ज्ञान आ जाता है, जिससे हमें सहज ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

मनुष्यके व्यवहारमें—मानव-जीवनमें एक बात अवश्य आ जानी चाहिये। वह यह कि अपने पास विद्या, बुद्धि, धन, सम्पत्ति, भूमि, भवन, तन, मन, इन्द्रिय जो कुछ हैं, उनसे जहाँ-जहाँ अभावकी पूर्ति होती हो, वहाँ-वहाँ उन्हें लगाता रहे, यही पुण्य है—सत्कर्म है। पर जहाँ स्वयं संग्रह करनेकी प्रवृत्ति होती है, इकट्ठा करके मालिकी बनानेकी आकाङ्क्षा रहती है, संसारकी वस्तुओंको एकत्र करके उन्हें मेरा बना लेनेकी वृत्ति, इच्छा या चेष्टा होती है, वहाँ पाप है। अपरिग्रह पुण्य है और परिग्रह पाप है।

—श्रीभाईजी

●

दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रामें

श्रीयुत शा० रा० शारंगपाणि

सन् १९५६में मैं 'दक्षिणभारत हिंदी-प्रचारसभा'के मुखपत्र 'हिंदी-प्रचार-समाचार'का सह-सम्पादक था। उस वर्ष श्रीपोद्दारजी ६०० स्त्री-पुरुषोंके साथ सम्पूर्ण भारतके तीर्थोंकी यात्रापर निकले थे। जब वे दक्षिणभारत पहुँचे, तब मुझे उनके साथ दुभाषिया बनकर रहनेके लिये कहा गया। मैंने इसे अपना सौभाग्य माना। मैं गीताप्रेस और 'कल्याण' पत्रका बड़ा प्रेमी था। मैंने सोचा, इस निमित्तसे कुछ अच्छे साहित्यिक एवं धार्मिक पत्रकारोंके साथ मैं भी कुछ तीर्थोंकी यात्रा तथा दिव्य देवालयोंके दर्शन कर सकूँगा। परंतु जब मैं तिरुपति जाकर उस यात्री-दलके नेतागणसे मिला, तब देखा—वे साहित्यिक एवं धार्मिक पत्रकारमात्र नहीं थे, वे तो स्वयं साधु, संत, तपस्वी तथा मनस्वी थे। उनके प्रति मेरे मनमें प्रेम, आदर एवं श्रद्धाके भाव सहज ही उत्पन्न होने लगे और शीघ्र ही बढ़ने लगे। उनके साथ चलनेमें, उनकी वार्ता सुननेमें और उनकी सेवा करनेमें मुझे परम आनन्दका अनुभव होने लगा। हाँ, यशस्वी 'कल्याण'के तपस्वी सम्पादक एवं स्थित-प्रज्ञ संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पवित्र स्मरणसे मुझे आज भी आनन्द ही नहीं, कुछ अभिमान भी अवश्य होता है।

श्रद्धेय भाईजीके नेतृत्वमें मुझे तीर्थयात्रियोंके साथ तिरुपति, कालहस्ती, काञ्चीपुरम्, तिरुवण्णा-मलै, श्रीरंगम्, तिरुचिरापल्ली, मदुरै, रामेश्वरम्, श्रीविल्लिपुत्तूर, तेन्काशी, तिरुनेल्वेलि, आळ्वार-तिरुनगरी, तिरुवनंतपुरम् आदि अनेक दिव्य-क्षेत्रोंमें सेवार्थी एवं दुभाषिया बनकर जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसे मैं अपने जीवनका दुर्लभ तथा महत्त्वपूर्ण अवसर मानता हूँ। उन दिनों भाईजी-के निकटस्थ सेवकके नाते साथ रहकर उनके पवित्र आचार-विचारसे, स्तुत्य स्नेह-सौलभ्यसे, विस्मय कारी व्याख्यान-प्रवचनोंसे मैं अत्यन्त प्रभावित तथा लाभान्वित हुआ।

छोटी-छोटी घटनाओंका वर्णन और प्रसङ्गोंका विश्लेषण करनेका भाईजीका ढंग अनोखा होता था। एक उदाहरण लीजिये—तिरुपतिसे भाईजी हमें तिरुमलै ले जा रहे थे। समय और शारीरिक शक्तिका ख्याल करके हम पैदल नहीं, बस या कारसे ही जा रहे थे। यात्री-दलके सब सदस्योंको पहले बसोंमें आरामसे बैठानेके बाद ही भाईजी अपनी गाड़ीमें बैठे। बसें एक-एक करके चलने लगीं। कार आगे-आगे जा रही थी और बसें पीछे-पीछे। थोड़ी दूर बढ़नेपर हम उस चौकपर पहुँचे, जहाँसे पहाड़पर पदयात्रियोंके चढ़नेके लिये सीढ़ियोंका रास्ता निकलता है। भाईजीने वहाँ जाते ही गाड़ियाँ जरा रोकीं। सब तीर्थयात्री उतर गये। भक्तिमय भावुकताके साथ भाईजीने यात्रियोंको समझाया—"यहाँकी कुछ विशेषता है। यहाँ भगवान्के अर्चावतारके समान ही उनका विभवावतार भी महत्त्वपूर्ण एवं पूज्य माना जाता है। यह 'शेषशैल', जो वास्तवमें सात पहाड़ियोंका एक समूह है, आदिशेषका स्वरूप माना जाता है। यहाँ भगवान्को 'शेषशैल-

शिखामणि' कहते हैं। श्रीरामानुजाचार्य स्वामीने इस पवित्र पर्वतपर पैर रखकर चढ़ना अनुचित समझा और इसलिये अपने घुटनों और हथेलियोंपर कपड़े लपेटकर उन्हींके बल चढ़कर मन्दिर पहुँचे। लेकिन हाय! आज हम अशक्त हैं, विवश हैं।" इतना कहकर थोड़ी देरके लिये वे आँखे मूँदकर ध्यानस्थ हो गये। फिर उन्होंने शेषाद्रिकी ओर दण्डवत् प्रणाम किया और वहाँकी धूलि सिरपर लगा ली। उनकी देखा-देखी दूसरोंने भी भाव-विभोर होकर शेषाद्रिको प्रणाम किया।

प्रतिदिन सुबह-शाम भजन-कीर्तनका क्रम नियमित रूपसे चलता था। पहले श्रीगोस्वामीजी अपने सुरीले कण्ठसे सूरदास या तुलसीदासका कोई पद गाते और बादमें दूसरे लोग करतालके साथ उनका अनुसरण करते थे। सब लोग आँखें मूँदकर एक स्वरसे और तालबद्ध रीतिसे जब भजन-कीर्त्तन करते, तब आस-पासके दर्शक और श्रोता भी भक्ति-भावसे झूम जाते थे। कीर्तनके बाद श्रीभाईजीका प्रवचन अक्सर प्रसङ्गोचित तथा तीर्थोचित रीतिसे परिचयात्मक तथा उद्बोधक होता था। कहीं-कहीं स्थानीय भक्त-प्रेमियोंद्वारा स्वागतार्थ आयोजित सभा-समारोहोंमें ही भजन-कीर्तन और प्रवचनका कार्यक्रम भी शामिल हो जाता था।

इस प्रकार भक्ति और सदाचार-विषयक प्रवचनोंके अलावा तिरुवण्णामलै, श्रीरंगम्, मदुरै, रामेश्वरम्, श्रीविल्लिपुत्तूर आदि तीर्थोंमें उनके जो प्रवचन हुए थे, वे साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। तिरुवण्णामलैमें उन्होंने रमणाश्रम और रमण महर्षिका उल्लेख करते हुए समझाया कि मानव वैराग्य तथा सतत साधनाद्वारा किस प्रकार अतिमानव बन जाता है। श्रीरंगम्में प्रवचन करते समय वैष्णव भक्ति-आन्दोलन और उसके आलवारों एवं आचार्योंका सुन्दर संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। रामेश्वरम्के प्रवचनमें भारतके सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकात्म-भावके संवर्द्धनमें रामेश्वरम्-जैसे तीर्थस्थानोंका महत्त्व बतलाया। आण्डालके दिव्यक्षेत्र श्रीविल्लिपुत्तूरके भाषणमें आण्डाल और मीराँकी माधुर्य-भक्तिका परिचय देते हुए भक्तिमें निष्काम-प्रेमकी विशिष्टता बतलायी।

मदुरैके श्रीमीनाक्षी-मन्दिरमें आयोजित स्वागत-सभाका कार्यक्रम बहुत रोचक रहा। स्थानीय भक्त-प्रेमियोंने तमिल, संस्कृत और सौराष्ट्र भाषाके भजन सुनाये और भाईजीकी धार्मिक सेवाओंकी प्रशंसा करते हुए उनको बहुत बड़ी माला पहनायी और सम्मानपत्र पढ़कर समर्पित किया। स्थानीय भक्त-प्रेमी उस समय बहुत प्रसन्न दीखते थे, परंतु श्रीभाईजी बहुत गम्भीर और चिन्तित रहे। अपने भाषणमें उन्होंने नाजुक ढंगसे समझाया कि 'व्यक्तियोंके नाम-रूपकी प्रशंसा करना और माला पहनाकर उनका गुणगान करना ठीक नहीं है; उससे किसीकी भलाई नहीं होती। भजन-कीर्तन, पूजन एवं भोग आदि सब उपचार भगवान्के दिव्य नाम-रूपको लेकर होने चाहिये।' श्रीभाईजीकी उस असाधारण सरलता एवं दीनताको देखकर सब लोग चकित रह गये। तभी मैं भी समझ सका कि श्रीभाईजी क्यों सब जगह भक्त-प्रेमियोंके आग्रहके बावजूद फोटोके कार्यक्रमोंसे बचते ही रहे।

'दक्षिणभारत हिंदी-प्रचार सभा'के भवनमें आयोजित स्वागत-समारोहमें सभाके तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्रीसत्यनारायणने श्रद्धेय भाईजी और अन्य तीर्थयात्रियोंका सादर स्वागत करते

हुए हर्ष प्रकट किया कि 'यात्रीदलके आगमनसे दक्षिणमें भक्ति-आन्दोलनको ही नहीं, किंतु हिंदी-प्रचार-आन्दोलनको भी बहुत बल मिला है।' भाईजीने अपने भाषणमें सभाके कार्यपर संतोष प्रकट करते हुए सभा और सभाके प्रचारकोंकी सेवा-सहायताके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

स्वयं उच्चकोटिके विद्वान् तथा प्रभावकारी वक्ता होते हुए भी भाईजी उनके स्वागतके लिये आये हुए स्थानीय वेदपाठी पण्डितों, शास्त्रज्ञों और भागवतोंके सामने सविनय नत-मस्तक होकर उनको प्रणाम करते, उनका शुद्ध-सस्वर वेदपाठ सुनकर अत्यन्त हर्षित होते और फल-फूल-दक्षिणा देकर उनका खूब सम्मान करते थे। विभिन्न केन्द्रोंमें स्थित 'दक्षिणभारत हिंदी-प्रचार सभा'के प्रचारक अपने-अपने छात्रोंसहित तीर्थयात्रीदलके स्वागतार्थ आते थे। श्रीभाईजी उन सभीसे बड़े प्रेमसे बातें करते और गीताप्रेसके कई उत्तम ग्रन्थ भेंट देकर भेजते थे। प्रचारकगण भाईजीकी दानशीलता, हिंदी-प्रेम, धार्मिकता और सरलतासे बहुत प्रभावित होकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें एक-दूसरेसे होड़ लगाते थे।

मैं तो चुपचाप यह देखकर दंग रह जाता और ऐसे संत-महात्माओंकी सेवा-सहायता करनेके अपने सौभाग्यपर खुश रहता था। मद्राससे विजयवाड़ाके लिये उनको विदा करने जब मैं मद्रास सेंट्रल स्टेशन गया, तब श्रीभाईजीने बड़ी कृतज्ञता प्रकट की।

गीताप्रेसके उन्नायक, 'कल्याण'के सम्पादक, रामचरितमानसके टीकाकार और कितने ही अमूल्य भक्ति-ग्रन्थोंके रचयिताके रूपमें श्रीभाईजीने धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रोंमें अपनी अमिट छाप छोड़ी है, करोड़ों भक्तोंके हृदयोंमें अपने लिये एक महोन्नत एवं स्थायी स्थान अर्जित कर लिया है। स्थूल रूपसे भाईजी आज भले ही अदृश्य एवं दूर हो गये हों, लेकिन सूक्ष्म रूपसे वे सदैव हमारे पास और हमारे चिन्तन एवं स्मरणमें ही रहेंगे। परमात्मा करे कि श्रीराधा-माधवकी नित्यलीलामें उन संत-महात्माके हम योग्य अनुयायी सिद्ध हों।

•

किसी गरीबके सामने गर्वभरी वाणी बोलना, उसके साथ रूखा और कठोर व्यवहार करना भगवान्का अपराध है; क्योंकि उस गरीबके रूपमें भगवान् ही तुम्हारे सामने प्रकट हैं। अतएव सभीके साथ नम्र होकर मधुर वाणी बोलो; अपनी विनय-विनम्र पीयूषवर्षी वाणी तथा व्यवहारके द्वारा सर्वत्र शीतल मधुर-सुधाकी धारा बहा दो; दुःखकी विष-ज्वालासे जलते हुए हृदयोंमें सुधा ढालकर उन्हें विषशून्य, शीतल, शान्त और मधुर बना दो और यह सब करो केवल भगवान्की सेवाके लिये और करो सब कुछ उन्हींकी शक्ति, प्रेरणा और वस्तु मानकर। तुम्हारी निरभिमान त्यागमयी सेवासे भगवान् बड़े प्रसन्न होंगे और उनकी प्रसन्नता तुम्हारे जीवनको परम सफल बना देगी।

—श्रीभाईजी

•

कर्मयोगी पोद्दारजी

श्री र० शौरिराजन्

महामानव श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके इहलीला-संवरणसे मुझ-जैसे हिंदी-सेवी, संस्कृति-सेवक और भारतीयताके प्रेमी कितने दुःखी हुए—कहनेकी आवश्यकता नहीं।

मेरा उनके साथ परोक्षतः परिचय सन् १९४८से है। मैं तत्काल तंजौर जिलेके तिरुवैयारु-में स्थित 'महाराजा संस्कृत कालेज'में 'तर्कशिरोमणि'की उच्च कक्षामें पढ़ रहा था। स्वाध्यायसे थोड़ी हिंदी सीख गया था। हिंदी सीखनेकी अभिरुचि मुझ-जैसे शत-शत छात्रोंके मनमें जगायी गीताप्रेसकी छोटी-छोटी ज्ञानवर्धक पुस्तिकाओंने। 'हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप', 'उपनिषदोंके चौदह रत्न', 'सचित्र संक्षिप्त भक्त-चरित्र-माला'के दशाधिक प्रकाशन, 'कल्याण'के वार्षिक विशेषाङ्क आदि उपादेय प्रकाशन हमें नूतन दिशा-दर्शन देते रहे।

श्रीपोद्दारजीकी उत्तम पुस्तक 'हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप'का तमिलमें अनुवाद करनेका परम सौभाग्य मुझे १९५६में मिला; साथ ही, कुछ अन्य पुस्तकोंका भी, जो पोद्दारजीकी लिखी थीं। ये तमिल अनुवाद 'दक्षिणभारत हिंदी-प्रचारसभा'के प्रेसमें छपे थे। जब श्रीपोद्दारजी दक्षिण-भारतके तीर्थोंकी यात्राके लिये पधारे, तब ये पुस्तकें लोगोंको निःशुल्क वितरित की गयीं। मैंने कई विद्वानों एवं सामान्य व्यक्तियोंके मुँहसे सुना—"ऐसी पुस्तकोंके द्वारा ही हमारी गरिमा-पूर्ण हिंदू-संस्कृतिका युगानुकूल प्रचार-प्रसार हो सकता है। गीताप्रेसवाले बड़ी ही श्लाघ्य सेवा कर रहे हैं। यदि श्रीपोद्दार-जैसे एक भी विद्वान् तथा त्यागमूर्ति प्रत्येक भारतीय भाषामें रहते तो भारतका उत्थान सुसाध्य हो जाता।"

पोद्दारजी परम शान्त, सात्विक, समदर्शी एवं उदारमना थे। उनकी स्मृतिके साथ ही मुझे यह सार्थक पंक्ति उन्हींकी परिचायिकाके रूपमें स्मरण आ जाती है—

'अखिलं विदुषामनाविलं सुहृदा स्वहृदा च पश्यताम्।'

'अच्छे हृदयसे और अपने हृदयसे देखने-परखनेवाले विद्वानोंके लिये संसारमें सब कुछ अकलङ्क या स्वच्छ दिखायी देता है।'

क्या साहित्यिक क्षेत्र, क्या सांस्कृतिक-धार्मिक क्षेत्र, क्या राष्ट्रीय नवनिर्माणका क्षेत्र, किसी भी क्षेत्रमें समूचे भारतके वे आदर्श 'भाईजी' थे। 'कल्याण'द्वारा लोककल्याणकारी थे। सत्सङ्ग-प्रवर्तक बनकर कुसंगतियोंके सर्वग्रासी संक्रामक-रोगोंसे भारतीय प्रजाको बचाते रहे। 'भाईजी'का वियोग भारतके लिये अपूरणीय क्षति है।

●

सार्थक था उनका जीवन

श्रीराधाकृष्णजी

परमवन्द्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका मैं दर्शन नहीं कर पाया; परंतु मेरी मान्यता है कि जिस प्रकार तुलसीदास जगत्में रामनाम वितरण करनेके लिये आये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं शताब्दीकी अनास्थाके अन्धकारमें भाईजी अध्यात्म और भक्तिभावके प्रचारके लिये आये थे। उनकी तुलना चैतन्य, कबीर, नानक आदि महापुरुषोंके साथ की जा सकती है, जिन्होंने युग-प्रवाहको मोड़ दिया था और भाव-भक्ति तथा ज्ञान-वैराग्यकी धारा बहा दी थी।

सन् १९३० या ३१में मैंने उनके पास कुछ लेख भेजे थे, जिन्हें उन्होंने कृपापूर्वक 'कल्याण'-में प्रकाशित किया था और आगे लिखनेके लिये प्रोत्साहन भी दिया था। इसके सिवा मेरा उनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं हो पाया।

१९४०में मैं कलकत्ता चला गया। वहाँ मुझे 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी'की स्वर्ण-जयन्तीके उपलक्ष्यमें प्रकाशित होनेवाली 'स्मारिका'में सहयोग करनेका कार्य प्राप्त हुआ। संस्थाके इतिहास-लेखनकी सामग्री जुटानेके संदर्भमें मैं मारवाड़ी समाजके कुछ पुराने कार्यकर्त्ताओंसे मिला, जिनका सोसाइटीकी स्थापनामें हाथ था। सोसाइटीके प्रथम मन्त्री थे—श्रीओंकारमलजी सराफ। मैं उनसे मिलने गया। प्रथम भेंटमें ही मैं उनके आकर्षक व्यक्तित्व और असाधारण स्मरणशक्तिसे प्रभावित हो गया। संयोगवश श्रीओंकारमलजी श्रीपोद्दारजीके बचपनके साथी तथा अभिन्न मित्र थे। प्रसङ्गवश उनसे मुझे श्रीपोद्दारजीकी जीवन-कथाकी कुछ महत्वपूर्ण जानकारी हुई। श्री-सराफजीने बताया कि जब पोद्दारजी कलकत्ते आये थे, तब उनकी अवस्था बहुत छोटी थी; पर वे अपने बारेमें भी जितना नहीं सोचते थे, उससे अधिक वे देशके बारेमें सोचा करते थे। वङ्ग-भङ्गके फलस्वरूप प्रारम्भ हुआ स्वदेशी-आन्दोलन उन्हें प्रेरणा और बल देता था। उन दिनों बाबूराव विष्णु पराड़करजी कलकत्तेमें ही रहते थे, जिन्होंने आगे चलकर काशीके 'आज' और 'संसार'के सम्पादनद्वारा हिंदी-पत्रकारिताका कीर्तिमान स्थापित किया था। उन दिनों बंगाली क्रान्तिकारी गीतासे प्रेरणा लेते थे और मातृभूमिके लिये अपना जीवन होम करनेके लिये तैयार रहते थे। बंगाली क्रान्तिकारियोंके पास श्यामाचरण लाहिड़ीकी टीकावाली गीता रहती थी। हिंदी-भाषी क्रान्तिकारियोंके लिये पराड़करजीने गीताकी टीका की थी, जो प्रकाशित होकर सुलभ हुई। उसके मुखपृष्ठपर सिंहवाहिनी भारतमाताकी छवि अङ्कित थी। कहा जाता है कि उस गीताको छपवानेमें हनुमानप्रसादजी पोद्दारका प्रमुख हाथ था। उसी गीताको हाथमें लेकर कलकत्तेके कतिपय नवयुवक क्रान्तिके कार्यमें प्रवृत्त हुए। उनके साथ कई मारवाड़ी युवक थे, जो बंगाल तथा भारतकी समस्याको एक समझते थे और विप्लवके द्वारा देशका उद्धार करना चाहते थे।

स्वदेशीका आन्दोलन भी तीव्र गतिसे चल रहा था। इसमें सहयोग देनेकी भावनासे श्रीपोद्दारजीने 'स्वदेशी वस्तु भंडार' भी खोल रखा था, जिसका काम श्रीनागरमल मोदी देखते थे। नागरमल मोदीसे मिलनेपर उन्होंने बतलाया था कि 'स्वदेशी वस्तु भंडार'का काम हमलोग बड़ी श्रद्धा और परिश्रमके साथ करते थे। वहाँ बिकनेवाली प्रत्येक चीज स्वदेशी ही नहीं, शुद्ध भी रहती थी। शुद्ध घीसे लेकर शुद्ध शहद और शुद्ध खादीके वस्त्र वहाँ मिलते थे। यज्ञ और हवनकी सामग्री भी वहाँ शुद्ध मिलती और उचित मूल्यपर प्राप्त होती थी। हनुमानप्रसादजी पोद्दार लगनवाले और श्रद्धालु व्यक्ति थे। उनके भीतर देशप्रेमकी आग धधकती रहती थी। देशको स्वतन्त्र बनानेकी तड़प जैसी उनमें थी, वैसी आग बहुत कम लोगोंमें देखी गयी। नागरमलजीने निर्विकार भावसे संक्षेपमें बतलाते हुए कहा, "हनुमानप्रसादजी पोद्दारकी तरहका लगनवाला व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं पाया।' इधर क्रान्तिकार्य जोर पकड़ रहा था। सरकार इसे सहन न कर सकी। उसने दमनचक्र चलाया। लोग पकड़े गये, जिनमें श्रीपोद्दारजी भी थे। कुछ कार्यकर्ता पलायन कर गये, कुछके घरवालोंने अपने परिवारके व्यक्तियोंके विरुद्ध समस्त प्रमाण पुलिसके रेकर्डसे निश्चिह्न करा दिये। उस समयकी गिरफ्तारियोंका आधार भी बड़ा विचित्र था। जिनके पास भी पराड़करजीकी टीकावाली गीता मिलती, उसे बेखटके गिरफ्तार कर लिया जाता, मानो गीता रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति सशस्त्र क्रान्तिकारी हो। फल हुआ कि लोग भयभीत हो गये और उन्होंने गीताकी पोथियोंको जलाकर ही निष्कृति पायी। गीता जलाये जानेके समाचारने पोद्दारजीको जेलमें क्षुब्ध कर दिया, 'यह क्या बात है, लोग गीता-जैसी पोथीको भी जला बैठे।' उसी समय उनके मनमें आया कि 'यदि समय और सुयोग मिला तो किसी समय गीताकी पोथी घर-घर उपलब्ध करा दूँगा।' समय आया और सुयोग मिला। उन्होंने अपना सपना पूरा होते हुए देखा और उत्तर भारतमें उन्होंने सर्वत्र घर-घरमें गीताकी पोथी उपलब्ध करा दी।"

धराधाममें उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन किया और चले गये। उनके लिये दुःख होता है, मगर एक दिन सबको जाना ही है। जो आया है, वह जायेगा ही। कोई अनाम मर जाता है, कोई अन्धकारमें निमज्जित हो अपना प्राण-त्याग करता है। उन्होंने तो अन्धकारको भेदकर प्रकाश उतारा था और भगीरथकी तरह गङ्गाको राह दी थी। कुछ लोग कहते हैं कि 'श्रीपोद्दार-जीने शास्त्रोंकी बातें ही तो कही हैं, उन्होंने मौलिक क्या दिया?' वे लोग भूल जाते हैं कि हमारे वेदके मन्त्र प्रकट करनेवाले ऋषि भी उन मन्त्रोंके स्रष्टा नहीं, द्रष्टा कहे जाते हैं। पोद्दार-जीने धर्म, निष्ठा, भाव, भक्ति, ज्ञान, अध्यात्मको सर्वसुलभ कर दिया, यह क्या कम है? भारतमें जबतक भाव और भक्ति, भजन और पूजन, ज्ञान और वैराग्यकी धाराएँ बहती रहेंगी, तबतक श्रीपोद्दारजी श्रद्धा और आदरके साथ स्मरण किये जायँगे।

●

विशिष्ट विभूति

याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य

भारतकी जिन विशिष्ट विभूतियोंने सद्गुणोंसे अपने उपदेशका महत्त्व संवर्द्धित किया है, उनमें भगवद्भक्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम सदा अमर रहेगा।

श्रीपोद्दारजी वस्तुतः भारतवर्षकी विशिष्ट विभूति थे, जिन्होंने अपनी विविध विशेषताओंके कारण विश्वभरमें भारतका यश समुज्ज्वल किया है।

विशिष्ट विभूतियोंमें जो त्याग, तपस्या, लोकोपकारभावना, समदर्शिता, सहिष्णुता, सुजनता, निरभिमानता, ईश्वर-परायणता आदि सद्गुण होते हैं, वे सभी सद्गुण श्रीपोद्दारजीमें पूर्णतया अनुस्यूत थे।

श्रीपोद्दारजीमें लोकोत्तर ईश्वरीय सद्गुण थे, जिनके कारण वे गृहस्थ होते हुए भी आदर्श संत-महात्माके रूपमें पूज्य थे। उनका देशभरमें बड़ा सम्मान था। देशके प्रायः सभी संत-महंत, विद्वान्-नेता, धनी-मानी, सेठ-साहूकार उनका विशेष आदर करते थे।

श्रीपोद्दारजीका समग्र जीवन वैदिकधर्म-संरक्षण, वर्णाश्रम-धर्म-पोषण और मानवधर्मके विकासमें लगा रहा। उन्होंने जीवनके प्रारम्भसे ही देश, जाति, धर्म, संस्कृति और हिंदी-भाषाके संरक्षण और संवर्धनका महान् व्रत ग्रहण किया था, जिसका उन्होंने जीवनपर्यन्त निर्वाह किया।

श्रीपोद्दारजी विशिष्ट भगवद्भक्त थे। भगवद्भक्तिका प्रचार करनेमें वे अग्रणी थे। उन्होंने 'कल्याण' मासिक पत्रके माध्यमसे, अपने रचित एवं सम्पादित ग्रन्थोंसे और अपने भाषणोंसे भगवद्भक्तिका विशेष प्रचार किया। इतना ही नहीं, उन्होंने भगवद्भक्तिके प्रचारकी दृष्टिसे ही श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता और रामचरितमानसकी लाखों प्रतियाँ कम-से-कम मूल्यमें गीताप्रेससे प्रकाशितकर प्रत्येक हिंदूके घरमें उन्हें पहुँचा दिया, जिससे आज भारतके लाखों नर-नारी श्रद्धासे इन ग्रन्थ-रत्नोंका नित्य पाठ करते हैं।

श्रीपोद्दारजी जिस प्रकार भगवद्भक्त थे, उसी प्रकार मातृ-पितृभक्त, गोभक्त, साधु-संत-भक्त, देवभक्त, ब्राह्मणभक्त और देशभक्त भी थे। वे मानवमात्रके हितैषी, जनता-जनार्दनके सेवक, सबके प्रिय, सबके मित्र, सबके बन्धु, पूर्ण कर्मठ और दृढ़प्रतिज्ञ थे। वे जिस कार्यको प्रारम्भ करते थे, उसपर सदा अटल रहते थे। प्रारम्भ किये हुए कार्यमें विघ्न-बाधा पड़नेपर भी वे तनिक भी विचलित नहीं होते थे। वह 'प्रारब्धस्यान्तगमनम्' और 'विपदि धैर्यम्'के यथार्थ महत्त्वको भलीभाँति जानते थे और तदनुसार कार्य करते थे। अतः वे अपने प्रारम्भ किये हुए प्रत्येक काममें सफलता प्राप्त करते थे।

श्रीपोद्दारजीकी प्रतिभा विलक्षण थी। वे अनेक भाषाओंके ज्ञाता थे। उन्होंने विविध ग्रन्थलेखन, विविध ग्रन्थ-सम्पादन और विविध प्रवचन आदिके द्वारा अपनी अद्भुत ज्ञान-रश्मिका दिव्य प्रकाश भारतमें ही नहीं, विदेशोंमें भी प्रसारितकर अपूर्व ख्याति प्राप्त की थी।

हमारा परम कर्त्तव्य है कि श्रीपोद्दारजीके दैवी गुणोंको स्मरण करें और तदनुसार आचरण करें। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

विप्लवी भाईजी श्रीराधाके संदर्भमें

श्रीवचनेशजी त्रिपाठी

पूज्य श्रीभाईजीके निधनके बादकी बात है। एक जगह लखनऊमें कुछ पढ़े-लिखे लोग इकट्ठे थे। चर्चामें श्रीपोद्दारजीका भी नाम आया। एक महाशयने अपनी जानकारी प्रकट की—'जी हाँ, पोद्दारजीने कांग्रेसमें काम किया था।' 'कांग्रेस?' मेरे मानसके सामने बड़ा-सा प्रश्नचिह्न लग गया। विवश हो मुझे कहना पड़ा—'नहीं, वे क्रान्तिकारी थे। इसी सिलसिलेमें वे बाँकुड़ामें पौने दो साल नजरबंद रहे। वे दिन वङ्ग-भङ्गके थे। वङ्ग-विभाजनके विरुद्ध क्रान्तिकारियोंने उग्र आन्दोलन छेड़ रखा था। विदेशी-बहिष्कार और स्वदेशी-आन्दोलनका जोर था, किंतु इन आन्दोलनोंसे तत्कालीन कांग्रेसका कोई रिश्ता नहीं था।' 'क्यों साहब, आप यह कैसे कहते हैं?' एक एम० ए० के छात्र ने शङ्का की; क्योंकि इन्होंने ही पोद्दारजीको 'कांग्रेस-कर्मी' कहा था। मुझे हँसी आनेको हुई। मैंने कहा—"कहना ही पड़ता है। सन् १९०५में पोद्दारजी क्रान्तिकारी बन चुके थे, उस समय कांग्रेसमें गोपालकृष्ण गोखलेका वर्चस्व हावी था—गोखलेजी नरमदली नेता थे। उनके रहते कांग्रेस विदेशी-बहिष्कारके समर्थनमें स्पष्ट प्रस्ताव भी नहीं पारित कर पायी—शङ्का हो तो डॉ० पट्टाभि सीतारामैय्याका 'कांग्रेसका इतिहास' देखा जा सकता है। उन दिनोंकी कांग्रेस अपने अधिवेशनोंमें भारतीयोंके लिये नौकरियाँ माँगती थी, कुछ सुधारोंकी भी भिक्षा-याचना करती थी। तबतक पूर्ण स्वाधीनता उसका ध्येय नहीं बन पाया था। उन कांग्रेस-अधिवेशनोंमें प्रायः कोट-पैंट और टाईधारी लोग ही पधारते थे। प्रान्तका अंग्रेज गवर्नर भी तशरीफ लाता था—उसके आनेपर खड़ा होना गौरवकी बात समझी जाती थी और कांग्रेसके अधिवेशन होते थे पंडालपर यूनियन जैक फहराकर। उन दिनों कांग्रेसका अपना झंडा ही नहीं था। अब आप सोचिये, ऐसे दिनोंमें कोई कैसे क्रान्तिकारी बनता होगा, कांग्रेस उसको क्या प्रेरणा दे सकती थी?"

विचार करें—देशके उन भयंकरतम दुर्दिनोंमें पोद्दारजीने अपनी तरुणाई किस तरह अंग्रेजोंके विरुद्ध प्रारम्भ किये गये असामान्य साहस, त्याग और बलिदानमय यज्ञमें झोंक दी थी—स्वेच्छासे समर्पित कर दी थी अपनी जीवन-समिधा। वस्तुतः यही प्रसङ्ग पोद्दारजीके सम्पूर्ण जीवनकी आधार-शिलाका महत्त्व रखता है। वङ्ग-भङ्गका काल भारतीय क्रान्तिकारीके जीवन-दर्शनका जो परिचय प्रस्तुत करता है, वह दिव्य है—सहज संसारी जीवन-परिभाषासे वह मेल न खाये तो आश्चर्य नहीं। 'गीता'के निष्काम कर्मयोगकी कितनी ही व्याख्या विश्वमें प्रकाशित हुई हो, १८-१८ और २०-२० वर्षके नितान्त नवयुवा क्रान्तिकारियोंने अपने जीवनको समिधाकी तरह आहुतकर जो व्याख्या उसकी प्रस्तुत की है—उसकी यदि स्वयं क्रान्तिकारी इतिहासमें उपेक्षा की गयी हो तो भी आश्चर्य नहीं।

उस जमानेमें अंग्रेजोंको भी तो यह देखकर कम आश्चर्य नहीं होता था कि मकानकी

तलाशी लेनेपर जहाँ विप्लवी युवकके सामानसे बम बनानेके नुस्खे बरामद होते हैं, वहीं बड़े जतनसे सहेजी गीताकी पोथी भी प्राप्त होती है। अंग्रेज समझता था—क्रान्तिकारी केवल उनकी सरकारको धोखा देनेके लिये अपने पास गीताका ग्रन्थ रखता है, क्रान्तिकारी जीवनसे उसका कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। बात उलटी थी। वस्तुतः विप्लवी जीवन-दर्शनके मूलमें गीता ही अपनी समग्र जीवन्ततासे स्फूर्त थी, सम्प्रेरक थी। वही सर्मापित जीवनका प्राण थी। उस दिन १७ सालके खुदीराम बोस छातीपर 'गीता'की पोथी बाँधकर खुशी-खुशी फाँसीपर झूल गये और ब्रिटेनकी इतनी बड़ी सरकारसे, उस ब्रिटिश सैनिक-शक्तिसे जो उस समय संसारमें प्रथम शक्तिके नामसे सुप्रसिद्ध थी—जरा भी नहीं डरे। 'वन्दे मातरम्' मन्त्रने उसे इतना फौलादी कलेजा दिया था कि जीवनकी अन्तिम परीक्षातक वह हँसता-मुस्कराता रहा। वह कौन विचार-दर्शन था और विप्लववादसे उसका क्या रिश्ता था? समुच्चयरूपमें उसका एक ही नाम है—'वेदान्त-दर्शन'। उपनिषद्-गीतार्थतत्त्वको जिस तरह विप्लवी तरुणोंने जीवनमें आत्मसात् किया, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि जो क्रान्तिकारी देशके अन्य क्षेत्रोंमें प्रवृत्त हुए, उन्होंने अधिकांशमें स्वामी विवेकानन्दका व्रत अपनाया। अनेक संन्यासी हो गये। पोद्दारजीने अपना जीवन ऐसे साहित्य-सृजन, संकलन और सम्पादन-प्रकाशनमें लगाया, जिससे भारत 'भारत' बना रहे—उसका 'स्व', संस्कृति, धर्म-संस्कार और सद्गुण युग-युगतक देदीप्यमान रहे, कीर्तिमान् रहे।

एक बार बहुत दिन पहले जब वे मुझे काशीमें मिले, तो मैंने उनसे पूछा था—'भाईजी, देश तो स्वतन्त्र नहीं हो सका अभी। आप इस क्षेत्रमें आ गये.....।'

'आना ही था; क्योंकि यही स्वप्न लेकर मैं विप्लवी बना था। सर्वस्व-समर्पणकी वही भूमिका मुझे इस क्षेत्रमें लायी है—मैं ऐसा मानता हूँ कि परमपिता परमात्मा ही इस पथपर मुझे ले चल रहे हैं....।'

तबतक आजादी नहीं आयी थी। भाईजी लाल किरमिच एवं जीनका जूता पहने थे, वह भी काफी पुराना। शरीरपर सस्ती खादीका एक कुर्ता और हाथकी धुली हुई मोटी धोती। अब यह बात काफी पुरानी होनेको आ गयी। क्या-क्या कहा था उन्होंने और भावी योजनाके सम्बन्धमें क्या-क्या प्रश्न पूछे थे मैंने—आज कुछ भी स्मरण नहीं आता। हाँ, उनसे भेंट करनेपर यह प्रसङ्ग उनके लिये नितान्त स्वाभाविक प्रतीत हुआ था कि जो कभी अपनी युवावस्थामें वङ्ग-भङ्गके विरोधमें बाँकुड़ामें नजरबंद रहा—सन् १९१६में अलीपुर जेलमें भी यातनाएँ भोगता रहा। और यहाँतक नौबत पहुँची कि अन्ततः एक दिन अंग्रेजोंने उसे बंगाल प्रदेशसे ही निष्कासित कर दिया—उसे देखकर कोई दूसरा आदमी अनुमान नहीं लगा सकता कि परम वैष्णव-सरीखे, एक सीधे-सादे युवकके हृदयमें विप्लवकी कितनी प्रचण्ड अग्नि धधक रही है! उसी आगने उन्हें आगे राधाजीका भक्त बनाया।

याद आता है, एक बार मैंने उनसे पूछा था—'आप व्रजके अनन्य अनुरागी हैं—स्वाभाविक ही महान् क्रान्ति-प्रणेता श्रीकृष्णका जीवन आपको सर्वाधिक खींचता होगा....।' 'और परम आराध्या श्रीराधाजी?'—वे बीचमें ही बोल उठे, मानो मुझसे प्रश्न कर रहे हों कि राधाजीको

क्यों भूले जा रहे हो। उन्होंने आगे कहा—'राधाजी, हाँ, अवश्य उनका चरित्र पराधीन भारतके लिये कहीं अधिक दिव्य है, मननीय।'

"राधाजी क्या थीं, मैं वाणीमें वर्णन करूँ तो मेरी वाचालता होगी। वे क्या इस लोककी थीं? वे क्या कभी जन्म-मरणके आवर्त्तोंमें बँधकर चलती हैं? भगवान्‌से वे अद्वैत हैं, इसीलिये उनके आनेपर कभी 'श्रीराधा' नामसे, तो कभी 'श्रीसीता' नामसे वे ही प्रकट होती हैं।"

कहते-कहते भाईजीके आँसू भर आये, कण्ठ अवरुद्ध हो आया। उस दिन श्रीभाईजीके हृदयमें राधाजीके प्रति इस प्रकारकी अनन्य भावना देखकर मैं मुग्ध हो गया। कुछ वर्षों बाद मुझे व्रजमण्डलकी यात्राका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस यात्रामें मुझे श्रीभाईजीके विचार बरबस झकझोरते रहे कि 'श्रीराधा नित्य-शक्ति हैं।'

श्रीभाईजीके जीवनमें जो महानता थी, उसे हम छूतक नहीं पाते। ऐसी अवस्थामें उनके विषयमें क्या लिखा जाय? बस, ऋषिकल्प महाप्राण श्रीभाईजीकी अर्चनामें ये कुछ निर्गन्ध पुष्प समर्पित हैं।

●

सनातन दर्शनके वरदपुत्र

श्री एस० एन० मंगल

सारा सनातनी-जगत् श्रद्धेय पोद्दारजीके निधनसे अनाथ हो गया है। सनातन-संस्कृतिमें उनका उदय प्रखर सूर्यकी भाँति हुआ था और वे जबतक रहे, तबतक अपने आध्यात्मिक प्रकाशसे हिंदुत्वको आलोकित करते रहे। यद्यपि उनके निधनसे सनातन-धर्मका एक पुष्टतम स्तम्भ टूट गया है, फिर भी उनके द्वारा निर्मित एवं आचरित मार्ग युग-युगतक हमारे लिये प्रशस्त रहेगा।

श्रीपोद्दारजीकी निःस्पृहता, उनकी सहिष्णुता, उनका अध्यात्म-विचार, उनका क्रान्तिकारी दर्शन और मानापमानसे विलग उनकी मूक देश-सेवा भारतके भावी कर्णधारोंके लिये दिव्य अनुकरणीय आदर्श है।

मुझे पोद्दारजीसे दो बार मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उनका भाव-सम्पर्क मुझे करीब दो वर्षतक उपलब्ध रहा। कलकत्तामें 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी'के संस्थापक तथा मूर्द्धन्य समाजसेवी स्वर्गीय श्रीओंकारमलजी सराफका मैं विशेष कृपाभाजन रहा हूँ। श्रद्धेय सराफजी पोद्दारजीके अभिन्नतम मित्रोंमेंसे थे। गोरखपुर और कलकत्ताकी लंबी दूरी भी इन दोनों मित्रोंको एक क्षणके लिये भी भावात्मक रूपसे विलग नहीं कर सकी थी। ये दोनों 'अग्नियुग'के साथी थे।

सर्वप्रथम मैं श्रद्धेय पोद्दारजीसे श्रीसराफजीके निर्देशपर गोरखपुरमें मिला। मेरे मिलने-का प्रसङ्ग था—गीतापर फिल्म-निर्माण और उसके लिये उनका आध्यात्मिक संरक्षण एवं दिशा-दर्शन प्राप्त करना। यह योजना तत्कालीन उप-प्रधानमन्त्री श्रीमोरारजीभाई देसाईके मार्ग-

दर्शनमें संचालित हो रही थी तथा श्रीसराफजी इसके आयोजक थे। इस फिल्मके निर्माणका भार मेरे निर्बल कंधोंपर था, जो इन दोनों महारथियोंका स्नेहपात्र था।

फिल्म-जगत्से श्रद्धेय पोद्दारजीका सम्बन्ध नहींके बराबर था और वे फिल्मोंद्वारा फैलायी जा रही चरित्रहीनताके कट्टर आलोचक थे। मुझे भय था कि वे मुझसे बात नहीं करेंगे तथा इस सम्बन्धमें उनके बहुश्रुत विचार मेरे सामने थे। मैं जब गोरखपुर पहुँचा और अपने आनेकी सूचना भिजवायी तो उनकी ओरसे सर्वप्रथम संदेश आया, 'सामान रखकर हाथ-मुँह धोएँ, जलपान करें, विश्राम करें।'

उस समय श्रीपोद्दारजी भावसमाधिकी स्थितिमें थे। उनके अन्तेवासी उस अवस्थाको 'अन्तर्मुख-अवस्था' कहते थे। हमारी दृष्टिमें वह थी––सर्वोच्च ऊँचाईपर पहुँची पराभक्तिमें परमात्मासे अभिन्न आत्माकी तुरीयावस्था या समाधिकी चरम स्थिति, जो गीतामें बार-बार दुहरायी गयी है। उनकी इस उच्चतम अवस्थाने गीताके सम्बन्धमें हमारे लिये कई नये-नये अनुभव प्रदान किये थे। मुझे दूसरे दिन मिलनेका समय दिया गया।

जब मैं नियत समयपर उनके पास पहुँचा, तब वे लोगोंसे घिरे हुए थे और 'कल्याण'-का प्रूफ-संशोधन भी कर रहे थे। उनका कमरा ग्रन्थों और पुस्तकोंसे भरा था। मुझे आश्चर्य हुआ, यह भीष्मपितामह इस अवस्थामें भी कितना काम करता है। मुझे ईशावास्योपनिषद्का दूसरा मन्त्र स्मरण हो आया और मैंने उसे उन्हें सुना दिया––

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

'इस लोकमें कर्त्तव्यकर्मोंको ईश्वर-पूजार्थ करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे। तुझ मनुष्यके लिये इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है, जिससे तुझे कर्मका लेप न हो।'

वे मुस्करा दिये। वह मुस्कान क्या थी, आज भी उसकी गम्भीरता और रहस्यमयता मानसमें कौंध रही है। उस मुस्कानमें एक निर्लिप्त शिशु, एक कर्मठ युवक, एक अनुभवसिद्ध वृद्ध, एक वीतराग गृहस्थ, एक आत्मलीन संन्यासी, एक प्रखर वक्ता तथा विद्यार्णवका मन्थन करनेवाले एक तेजोद्दीप्त व्यक्तिकी आभा एक साथ समाहित थी। मैं उनके पास बैठ गया और वे मुझे गीताके कुछ चित्रात्मक विषयोंपर 'गीताङ्क' दिखाते रहे। फिर उन्होंने गीता और फिल्म-कलाके सम्बन्धमें कतिपय नियमोंकी जानकारी ली। मैंने 'पटकथा'की प्रतिलिपि उन्हें दे दी तथा डरते-डरते उसके एक प्रसङ्गके सम्बन्धमें पूछा। वह था––'यज्ञ'के सम्बन्धमें उनके अपने विचार। गीताके तीसरे अध्यायमें जो 'यज्ञ'की चर्चा देवताओं और मनुष्योंके परस्पर सहयोगके संदर्भमें हुई है, उसका मैंने अर्थ किया था––सभी ऐसे कर्म या उद्योग 'यज्ञ' हैं, जिनसे समाजका हित होता है और जो परस्पर सहकारकी भावनासे मिलकर किये जाते हों तथा जिनकी उपलब्धियाँ भी मिल-बाँटकर उपभोगमें लायी जाती हों। उसी प्रसङ्गमें गीताने यज्ञावशिष्ट खानेवालेके सब प्रकारके पापोंसे छूटनेकी बात कही है और इसके विपरीत देवताओंका भाग न देकर अपने लिये ही

बनाने-खानेवालेको चोर और पापका खानेवाला कहा है। तात्पर्य यह कि सामूहिक उद्योग यज्ञकी भावनासे हो और प्रत्येक उद्योगी अन्तमें खानेकी निष्ठा रखे। इसके विपरीत जो छल-छद्मका आश्रय लेकर दूसरोंका भाग चुरा लेता हो, या नहीं देता हो, वह चोर है; एवं केवल स्वयंके लिये उद्योग करना और उसकी उपलब्धियोंपर अकेले अधिकार रखना पाप है। इसपर मैंने गांधीजीके 'ट्रस्टीशिप' का हवाला भी दिया। मुझे डर था, श्रद्धेय पोद्दारजी-जैसे सनातन-संस्कृतिके उपासक शायद मेरे अर्थको स्वीकार न करें। मैं उनकी ओर देखने लगा और मेरा संकोच बढ़ता रहा। दूसरे क्षण मुझे चौंकने और आश्चर्यमें पड़नेकी बारी थी। मेरी बात समाप्त होते ही उन्होंने तत्क्षण हँसते हुए कहा—"यदि आपकी आधुनिक व्याख्या और गांधीवादी दृष्टि स्वीकार करती हो तो मेरे विचारसे इसमें इतना अवश्य जोड़ लें कि ऐसे 'चोर' और 'पापी' को दण्ड देना अनिवार्य है। उसका बहिष्कार किया जाय और उससे किसी भी प्रकारका सहयोग न रखा जाय।"

मैं हक्का-बक्का-सा रह गया और उनकी दृष्टिकी ऊँचाईको अपने बौने पैमानेसे मापते-मापते थक गया। मेरा रोम-रोम उनके लिये श्रद्धासे भर गया और मैंने कहा—

'आप पुरातनके ही पृष्ठपोषक नहीं, अधुनातनके भी नेता हैं। आप सचमुच सनातन-दर्शनके वरद-पुत्र हैं।'

वे बच्चोंकी तरह सकुचाये, हँसे और फिर अगले विषयपर बढ़ गये। कहना नहीं होगा कि उन्होंने गीता-फिल्मका आध्यात्मिक संरक्षण ही नहीं स्वीकार किया, बल्कि उस सम्बन्धमें श्रीसराफजीद्वारा लिखे गये दो लेखोंको 'कल्याण'में प्रकाशित भी किया, जिनमें एकपर फिल्म और गीताके सम्बन्धमें अपने सम्पादकीय विचार भी व्यक्त किये और टिप्पणी प्रकाशित की। यह उस जनताके लिये आश्चर्यजनक घटना थी, जो उन्हें केवल फिल्मविरोधी मानती थी। वे प्रत्येक अकल्याणकारी कार्य और साधनके विरोधी थे; किंतु जहाँ भी कल्याणकारी विचार और कार्य मिलते थे, वे उनका डटकर समर्थन भी करते थे।

दूसरे दिनकी अन्तरङ्ग वार्तामें उन्होंने कई संस्मरण सुनाये, जो इतिहास और समाजमें 'अग्नियुग'के नामसे विख्यात अध्यायसे सम्बद्ध थे तथा उनके सशस्त्र क्रान्तिमें सहयोग देनेके सम्बन्धमें थे।

मेरी दूसरी भेंट उनसे ऋषिकेशमें हुई। वहाँ उनका रूप तो वही था; लेकिन भावनामें एक ओर जहाँ हिमालयकी ऊँचाई और गम्भीरता थी, वहीं ऋषिकेशकी गङ्गाकी तरह सुशीतलता और प्रवाह भी था, जो तीव्र वेगसे महामिलनकी ओर दौड़ा जा रहा था। इस संदर्भमें यह चर्चा भी कर देना आवश्यक है कि मैं श्रीओंकारमलजीके नेतृत्वमें उनके त्यागमय जीवनको प्रचारित करनेके उद्देश्यसे 'हीरक जयन्ती' समारोह मनानेका उद्योग कर रहा था। कलकत्ताके प्रसिद्ध धार्मिक एवं समाजसेवी महानुभावोंमें अग्रणी स्व० छोटेलालजी कानोड़िया भी इस समारोहके लिये बड़े उत्सुक थे। रोग-शय्यापर पड़े-पड़े भी वे मुझे बुलाकर इसकी प्रगतिके बारेमें पूछते रहते थे और परामर्श दिया करते थे। उनकी तीव्र कामना थी कि यह समारोह हो जाय। साथ ही कतिपय साहित्य-महारथी भी इस आयोजनमें सब प्रकारका सहयोग देनेको प्रस्तुत थे। हमारा यह चौथा प्रयास

था। इसके पूर्व तीन प्रयास हो गये थे, जिसे श्रद्धेय पोद्दारजीने विनयपूर्वक अस्वीकार ही नहीं किया था, वल्कि अपनी सारी विनयशीलता और सारे आग्रहसे उन्होंने ऐसे आयोजनोंको बंद करा दिया था। ऐसे सम्मानजनक समारोहोंकी सूचना पाकर उन्हें इतना दु:ख होता था, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सभीको विश्वास था कि हमारा आयोजन अवश्य सफल होगा; क्योंकि श्री-ओंकारमलजी इसके आयोजक थे और श्रीपोद्दारजी अपने अभिन्न मित्रकी अन्तिम इच्छाको टाल नहीं सकेंगे। इस आयोजनकी जानकारी होते ही श्रीपोद्दारजीने उन्हें एक अत्यन्त ही मार्मिक पत्र लिखा और अपने प्रेमकी याद दिलाते हुए उसका यही बदला माँगा कि वे तुरंत यह आयोजन बंद कर दें। श्रीसराफजी भी कम जिद्दी नहीं थे। पत्राचार आरम्भ हुआ। दो मित्रों या भाइयों-के अपने-अपने दावे आरम्भ हुए। हमने श्रद्धेय पोद्दारजीको आश्वासन दिया था कि हम अपने ग्रन्थ और आयोजनमें भारतीय संस्कृतिके ७५ वर्षोंके आध्यात्मिक उन्नयन मात्रमें उनके योगकी चर्चा करेंगे। इसे भी उन्होंने नहीं माना। तब हमने इस संदर्भमें गीता-प्रेसकी भूमिकाकी चर्चा की। उसे भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया। श्रीशान्तिप्रसादजी जैनने परामर्श दिया कि उनकी इच्छाके विरुद्ध 'गार्हस्थ्य और साधुत्व'के सामञ्जस्यपर एक बृहद् ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय; क्योंकि श्रीपोद्दारजी इसके सर्वोत्कृष्ट प्रतीक थे। किंतु सब व्यर्थ। ऐसा आदमी मैंने अपने जीवनमें नहीं देखा, जो अपनी प्रशंसा सुनकर——उसकी कल्पनामात्रसे इतना दु:खी हो जाता हो। उसी दिन प्रवचनमें उन्होंने इस अभिनन्दन-कार्यक्रमपर स्नेहमें पगी हुई मीठी चुटकी ली।

ऋषिकेशमें मुझे उनके दो गुणोंका व्यापक परिचय मिला, एक अतिथि-सेवा और दूसरा परदु:खकातरता। मेरे पहुँचनेके साथ ही उन्होंने पहला प्रश्न किया था——'कैसा है ओंकार?' स्व० श्रीसराफजी उन दिनों अस्वस्थ थे। हम अभी बैठे ही थे कि एक साधु आये। कुशल-क्षेमके बाद उन्होंने उनकी आवश्यकता पूछी। उन्होंने ४० रुपयेकी आवश्यकता बतलायी। तुरंत उन्होंने उन्हें ६० रुपये दिलवा दिये। हम कलकत्तासे गये थे। बार-बार वे हमारे रहने-खानेके सम्बन्धमें जानकारी लेते रहते थे। हमारे पहुँचनेके दिन ही वे भावसमाधि-स्थितिमें चले गये। जब कई घंटों-बाद उनकी वृत्ति वहिर्मुखी हुई, तब उन्होंने सर्वप्रथम हमें बुलाया। हमलोग उसी दिन कलकत्ता लौट रहे थे। अतः बड़े संकुचित भावसे बोले——'बात नहीं हुई आपसे। देखिये न, आज आप जा रहे हैं। यदि आवश्यकता हो तो जितना चाहें रुपये ले लें। घरकी बात है। संगठनका काम नहीं रुकना चाहिये। हमारा सहयोग होता रहेगा।' मैंने विनयपूर्वक उन्हें आश्वासन दिया——'हमें रुपयोंकी आवश्यकता नहीं है। पर्याप्त खर्च लेकर चले थे। संगठनका कार्य हो रहा है। ओंकारबाबू आपकी इच्छाकी पूर्तिमें अस्वस्थ होते हुए भी जुटे हुए हैं।'

यह संगठन क्या था? उन्हीं दिनों हिंसावादी राजनीति आरम्भ हुई थी पश्चिम बंगाल-में। श्रीपोद्दारजीका दूरदर्शी अनुमान था——'एक दिन सारा बंगाल हिंसाके चंगुलमें चला जायगा और वहाँका जीवन अस्त-व्यस्त हो जायगा। लोगोंका जीवन गाजर-मूलीसे अधिक महत्त्व नहीं रखेगा और हत्याएँ रोज-मर्रेकी चीज बन जायेंगी। उद्योग ठप हो जायँगे और सारा राज्य आर्थिक विपन्नतासे कराहने लगेगा। इसका प्रभाव सारे देशपर पड़ेगा और असुरत्व ही इस

देशका गौरव बन जायगा।' कहना नहीं होगा कि उस मनीषीकी भविष्यवाणी कितनी सत्य हुई। इसके विरुद्ध वे एक ऐसा संगठन चाहते थे, जो शान्तिपूर्ण ढंगसे हिंसाका मुकाबला करे। आज सारे राजनेता श्रद्धेय पोद्दारजीके पथपर ही चलकर इस समस्याका समाधान करना चाहते हैं, किंतु अब समय बीत चुका है शान्तिपूर्ण प्रतिरोधका। यदि प्रारम्भमें ही श्रद्धेय पोद्दारजीके मार्गपर चला गया होता तो यह दिन देखना नहीं पड़ता। इस हिंसावादी राजनीतिसे मुक्तिके लिये श्रीपोद्दारजीकी एक विशेष योजना थी—'एक ऐसे संगठनका आयोजन किया जाय, जो शान्तिप्रिय युवकोंका हो तथा जो प्रत्येक हिंसाका प्रतिरोध शान्तिपूर्ण ढंगसे, आत्माके बलसे, आत्म-त्याग-द्वारा करे।' यह भार उन्होंने अपने सहोदर-सदृश मित्र श्रीसराफजीको सौंपा था। इस योजना-पर काम भी हुआ था, लेकिन अपेक्षित सहयोगके अभावमें वे विशेष सफल नहीं हो सके।

श्रीसराफजी जब 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी'की स्थापनाके लिये प्रयत्नशील थे, तब प्रारम्भसे ही पोद्दारजी उनके साथ मूक समाजसेवीके रूपमें जुट गये थे। श्रीसराफजीने मुझे बताया था—'हनुमान नहीं होता तो मैं सोसाइटीका काम पूरा नहीं कर पाता। वह मेरे साथ ऐसा जुड़ गया था जैसे दूध-पानी एकरंग हो जाते हैं। सारा काम तो हनुमान देखता था। वह हिसाब रखता, भाषण तैयार करता, अपने आकर्षक वाग्बलसे लोगोंको सहयोगके लिये विवश कर डालता। उस समयसे ही वह नाम नहीं चाहता था, एक मूक सेवाभावी होकर सेवा ही करता। सोसाइटी आज जो इस प्रकार एशियाकी प्रमुख संस्था बन गयी है, उसकी नींवमें दबी हुई है हनुमानकी ईंट।'

मैंने उस दिन नींवकी ईंटका महत्व समझा। बेचारी नींवकी ईंट इमारतके लिये कितनी महत्त्वपूर्ण है। वह मूकभावसे सारी इमारतका बोझ अपने सीनेपर सँभाले हुए, कँगूरोंकी तरह अपना प्रचार नहीं करती, बल्कि उन्हें चमकाने और गर्वसे इठलानेके लिये समुन्नत करनेमें अपना बलिदान करती है। श्रीपोद्दारजी किस-किस इमारतकी नींवकी ईंट बने हैं—यह गवेषणाका विषय है; क्योंकि उनके उपकारसे केवल भारतीय संस्कृति ही नहीं, समाज और इतिहास भी दबा हुआ है। कौन जानता है कि व्यवसायी मारवाड़ी केवल व्यवसाय करना ही नहीं जानते, बल्कि अवसर आनेपर मातृभूमिके लिये शस्त्र उठाने और फिर समाजके उन्नयनके लिये शास्त्रका उपयोग करनेमें भी कोर-कसर नहीं रखते। पोद्दारजी इसके एकमात्र उदाहरण हैं, जिनके जीवनका आरम्भ शस्त्रसे होकर अन्त शास्त्रमें हुआ। क्रान्तिका यथार्थ स्वरूप तो उन्हींके जीवनमें दिखायी पड़ता है। क्रान्ति केवल रक्तपात नहीं, रक्त-संचार भी है। रक्तपात तो दूषित रक्तका होता है और फिर शुद्ध रक्तका संचार भी क्रान्तिका दूसरा पहलू है। शस्त्रधारी भाईजीने आत्म-विकासकी प्रेरणासे संसारको अभिषिक्त करनेके लिये केवल शास्त्र ही नहीं उठाया, बल्कि अपने जीवनको प्रतीक बनाकर यह भी दिखला दिया कि 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' कैसे हुआ जाता है। आध्यात्मिक अभ्युत्थानके लिये चोला नहीं, चेतना बदलनी पड़ती है; वस्त्र नहीं, मन बदलना पड़ता है। विदेह होना अब केवल शास्त्र-कल्पना नहीं, पोद्दारजीका जीवन उसका साक्षात् उदाहरण है।

उस महामानवने सारे देशकी आत्माको अपनी मूक सेवासे आलोकित कर दिया और बदलेमें यह भी नहीं चाहा कि लोग उसे किंचित् भी विशिष्ट मानें। निष्काम कर्मका इतना

सुन्दर उदाहरण कभी-कभी ही मिलता है। गीतामें जिन 'सर्वभूतहिते रताः' भक्तोंका तथा सम्पूर्ण चराचर-जगत्‌को परमात्माकी अभिव्यक्ति मानकर किये जानेवाले विश्व-प्रेमका वर्णन है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन श्रीपोद्दारजीके जीवनमें होता है।

श्रीपोद्दारजी थे तो हमें विश्वास हुआ कि सत्यकी जीत होती है; वे थे तो हमें विश्वास हुआ कि मानवता देवत्वकी सीमा स्पर्श कर लेती है। वे थे तो हमें विश्वास हुआ कि क्रान्ति केवल रक्तपात नहीं, रक्त-संचार है। वे थे तो हमें विश्वास हुआ कि मनुष्य मनुष्यके लिये कैसे जीता है, और वे थे तो हमें विश्वास हुआ कि धर्मकी अवनति होनेपर ईश्वर अपने अभिन्नांश महापुरुषोंको धर्मसंस्थापनाके लिये भेजता है।

•

तपःपूत व्यक्तित्व

डा० के० पी० सुभद्रा अम्मा

परम-भट्टारक महाप्रभु सद्‌गुरु श्रीअभेदानन्दजी महाराजकी कृपासे अभेद-कुटुम्बकी देवियोंकी ओरसे मैं श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारकी पावन स्मृतिमें श्रद्धाञ्जलि अर्पण करती हूँ।

कलिकल्मषके कुप्रभावसे कलुषित मानव-समुदायका उद्धार करनेकी सत्प्रेरणासे प्रेरित होकर जो प्रयत्न 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमें 'धर्मनिरपेक्ष' मनीषी भाईजीने किया, वह अत्यन्त सराहनीय है। आप अगाध पाण्डित्यके धनी थे। आपका ज्ञान-भंडार असीम था। एक अरबी संतकी वाणी है—'सत्यको स्वयं जानना सचमुच महान् कार्य है, परंतु संसारमें दूसरोंको उसकी अनुभूति कराना महानतम है।' यह कार्य श्रीभाईजी कर पाये हैं। आपने अपनी रचनाओंद्वारा सनातनधर्मतत्त्वोंके शाश्वत मूल्योंकी प्रतिष्ठा की है। 'कल्याण'के अनुगृहीत पाठकोंको 'पोद्दार' महोदयके अनूठे आध्यात्मिक ज्ञान एवं उपलब्धियोंका परिचय अर्द्ध शताब्दीसे प्राप्त होता रहा है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बीसवीं सदीके आध्यात्मिक नवोदयमें जो योगदान भाईजीने 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमें दिया है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

साधक अपना सर्वस्व प्रेमास्पदके चरणोंमें अर्पण करके सर्वतोभावेन पूर्ण पारतन्त्र्य स्वीकार कर लेता है। शरीर-मन-बुद्धि-इन्द्रिय—सबका अस्तित्व भूलकर प्रेमी भक्त प्रेमकी चरम स्थिति-तक पहुँचता है। श्रीभाईजी ऐसे ही पहुँचे हुए भक्त थे।

श्रीभाईजीने भक्तिकी पराकाष्ठाका वर्णन करते हुए कहा है—"मानवधर्मको निभाना भक्तके लिये आसान कार्य है। 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्'से अधिक भगवान् कुछ नहीं चाहते। भक्तकी कोई भी सेवा स्वीकार करनेके लिये परमात्मा सदा सम्मुख खड़ा है। भगवान्‌के दिव्य स्पर्शका अनुभव जिन्हें हुआ है, वे ही यह रहस्य-तत्त्व जानते हैं।" चिर शान्ति एवं जीवन्मुक्तिकी खोजमें भ्रमण करनेवाले भूखे जनोंके लिये भाईजीकी उक्त वाणी परम आश्वासन है।

भाईजीने साधनापूर्ण जीवनका संकेत इस प्रकार किया है—'आध्यात्मिक साधनाके अभ्यास-में सदैव विघ्न पड़ते रहते हैं; क्योंकि ईश्वरीय साधनाका मार्ग कण्टकाकीर्ण होता है। भगवान्

अपने श्रद्धालु भक्तकी परीक्षा विघ्नद्वारा करते हैं।' भाईजीने संसार-ज्वरसे पीड़ितजनोंको यही उपदेश दिया है—'हे दुःखी जनो! तुमलोग निश्चिन्त रहो। तुम अपने पथसे डिगो मत। तुम अटल विश्वासपूर्वक साधना-मार्गसे आगेकी ओर बढ़ते रहो। किसी भी विकट परिस्थितिमें तुम धर्मच्युत होकर आलस्ययुक्त मत रहो।' आपका यह संदेश अज्ञानान्धकारमें निमग्न जीवको जन्म-मरणरूपी नाग-पाशसे मुक्ति देनेमें समर्थ है।

भाईजी प्रेमके सच्चे पुजारी थे। प्रेम-रससे परिप्लावित हृदयसे उद्भूत उनकी उक्त दिव्य वाणी अमृतकी वर्षा कर रही है। उनका दृढ़ विश्वास था कि भक्ति अथवा प्रेमके बिना मुक्ति पाना असम्भव है। उनका प्रेम-साम्राज्य विश्व-व्यापी है। उनके कथनके अनुसार 'चित्तको पवित्र किये बिना लीला-पुरुषकी प्रतिष्ठा हम हृदय-वेदीपर नहीं कर सकते।' ऐसे प्रेमी 'पोद्दार भाई'की प्रभावोत्पादक अमर वाणीकी प्रेरणासे पाठकगणोंका हृदय श्रद्धान्वित होगा, शीलकी ओर प्रवृत्त होगा, विपत्तिमें धैर्य धारण करेगा और कठिन कर्ममें उत्साह प्रकट करेगा। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओंकी निर्मल ज्योतिसे मानव-हृदय परिष्कृत एवं पवित्र हो उठेगा। सच्चे, सयमी, सदाचारी एवं ब्रह्मनिष्ठ महात्माकी वाणीका ऐसा प्रभाव दूसरोंपर पड़ेगा ही। उच्च-कोटिकी साधना करके उन्होंने मनुष्य-समुदायको आदर्श मार्गपर लाकर खड़ा कर दिया।

भाईजीने अपनी लेखनीसे जन्म-जन्मान्तरोंसे अर्जित पाप-संचयका समूल नाश करके तथा इन्द्रियजन्य विकारोंसे मुक्ति पाकर ज्योतिर्मय नित्य-धामकी ओर अग्रसर होनेकी जो प्रेरणा दी है, उससे दीन-हीन साधकोंको दुस्तर भव-सागर पार करनेका साहस बँधा है। इस प्रकार अपनी रचनाओंद्वारा जो महती सेवा भाईजीने की है, वह चिरस्मरणीय है। उनका कृतित्व लोक-मर्यादा एवं वेदमर्यादाका संगम-स्थल है। उन्होंने अपने साहित्य-सर्जनमें धर्म-सम्बन्धी किसी भी सद्विचारकी उपेक्षा नहीं की। प्रतिभासम्पन्न, आत्मज्ञानी एवं त्यागी महात्मा होनेके कारण ही उन्होंने संसारकी मङ्गल-कामनासे प्रेरित होकर ऐसी साहित्योपासना की है। आजकलके अधिकांश साहित्यकार भौतिक दृष्टिकोणसे लेख लिखकर अपनी वाणीको 'बेचते' हैं। जबतक साहित्यकार अपनी वाणीको 'बेचना' बंद नहीं करेंगे, तवतक मानवताका विकास नहीं हो सकता। भाईजी अपने आदर्शसे ऐसे कर्मयोगियोंके प्रादुर्भावका पथ प्रशस्त कर गये हैं।

भारतके अध्यात्म-नभोमण्डलमें सुदीप्त प्रभा फैलाते हुए श्रीपोद्दारजी एक जाज्वल्यमान ज्योतिःपुञ्जके समान हैं। उनके आत्म-संदेश सनातन, चिरंतन एवं पवित्र हैं, जिनका अमिट प्रभाव युग-युगान्तरतक जनतापर पड़ेगा। हिंदू-धर्मोद्धारकोंमें भाईजीका अत्युच्च स्थान है। कृतार्थ भारतीय श्रद्धा और भक्तिसे अनन्त कालतक आपका स्मरण करेंगे।

●

जिस प्रकार ईश्वरके स्वरूपका ध्यान करके साधक मोक्षको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिर, प्रह्लाद, शुकदेव, भरत और हनुमान् आदि भक्तोंका ध्यान करनेसे भी साधकका कल्याण हो सकता है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

भारतीय संस्कृतिके समुद्धारमें निरत

पं० श्रीविद्याधरजी शास्त्री

चूरूनिवासी होनेके कारण यद्यपि छात्रावस्थामें भक्तवर श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके नामके साथ मैं श्रीपोद्दारजीके नामको प्रायः सुनता रहता था, किंतु उनकी वाग्मिता और उनके सौजन्यसे सुपरिचित होनेका सबसे पहला अवसर मुझे बीकानेरमें प्राप्त हुआ था। सन्-संवत् याद नहीं, किंतु कम-से-कम ४०-४५ वर्ष पूर्वकी बात है कि एक दिन बीकानेरके 'गुणप्रकाशक सज्जनालय'में मैंने श्रीपोद्दारजीका प्रथम भाषण सुना था। उस दिन उन्होंने कठोपनिषद्के आधारपर श्रेय और प्रेयका विवेचन किया था। मैं आपके उस भाषणसे इतना प्रभावित हुआ कि सभाके विसर्जित होते ही मैं उनके साथ वार्तालापके लिये व्यग्र हो उठा।

उस क्षणिक परिचयके पश्चात् चूरू और रतनगढ़के ब्रह्मचर्याश्रमोंके वार्षिकोत्सवपर और अन्यत्र भी अनेक बार आपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहा। इन अवसरोंके अतिरिक्त आपने सदैव आत्मीयताके भावोंसे ओत-प्रोत अपने पत्र-व्यवहारसे मुझको कृतार्थ किया था। यह पत्र-व्यवहार प्रधानरूपसे गोरक्षा अथवा भयानकरूपसे ह्रासोन्मुखी भारतीय संस्कृतिके संरक्षणके विषयपर होता था। इन दोनों ही प्रश्नोंपर वे सदा ही क्लान्तचित्त रहकर भी सर्वथा निराश नहीं थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि सत्य सनातनधर्म किसी समय भी सर्वथा विनष्ट नहीं होगा। भगवत्प्रार्थनाके साथ प्रत्येक धार्मिक व्यक्तिका कर्त्तव्य है कि वह अपनी ओरसे धर्मरक्षाके किसी भी कार्यमें शैथिल्यका आभास न होने दे।'

भारतीय संस्कृतिके मूलोच्छेदका जब कभी कोई प्रश्न भारतकी किसी प्रान्तीय-धारासभा अथवा लोकसभामें उठता था, आप सदा ही उसके विरोधमें विस्तृतरूपसे 'कल्याण'में अपने अभिमतको व्यक्तकर सबको उसका विरोध करनेके लिये प्रेरित करते थे। आपने अपने जीवनकालमें भगवद्भजन, रामनाम-जप और धार्मिक स्थलोंके पुनरुद्धारके लिये राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्तिको जो प्रेरणा दी, मेरी समझमें इस शताब्दीमें वह उतनी मात्रामें अन्य किसी व्यक्तिके द्वारा नहीं दी गयी। किंतु गत १०-१५ वर्षोंसे आपका समस्त ध्यान राधामाधवोन्मुख हो गया था। राधाके सम्बन्धमें आपने जिस दर्शनको प्रस्तुत किया और कृष्ण एवं राधाके जिस दिव्य प्रेमभावका प्रस्फुटीकरण किया, उसके द्वारा मुझे एक नये प्रकाशकी प्राप्ति हुई। श्रीपोद्दारजी निरन्तर विश्व-कल्याणमें अपने कल्याणका अनुभव करते रहे।

●

सभी देशोंमें सभी समय कोई-न-कोई सच्चे संत विद्यमान रहते ही हैं। संत ही समाजके जीवन हैं, कोई भी संतजनशून्य समाज जीवित नहीं रह सकता।

—पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा

●

महात्मा पोद्दारजी

श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम'

भगवान्‌की लीला विचित्र है। वह सत्व-सम्पन्न दिव्यपुरुषोंको उत्पन्न करता है, जिससे उनकी जीवन-झाँकी देखकर सामान्य जन दिव्य पथपर चलनेकी प्रेरणा प्राप्त कर सकें। सामान्यतः ये दैवी पुरुष आत्माभिव्यञ्जनसे दूर रहते हैं, फिर भी तत्त्वदर्शी उन्हें जान ही लेते हैं और सामान्य-जनतक भी उनकी जीवन-धाराका प्रवाह किसी-न-किसी रूपमें पहुँच ही जाता है। दैवीसम्पदाके धनी महात्मा हनुमानप्रसादजी पोद्दार 'कल्याण'-सम्पादकके रूपमें बहुजनहिताय अपनी साधनामें संलग्न रहे और इसमें संदेह नहीं कि 'कल्याण'के माध्यमसे उनका व्यक्तित्व चतुर्दिक् फैल गया।

हिंदुत्व उनकी दृष्टिमें संकीर्ण सम्प्रदाय नहीं था। वे हिंदुत्वके मानवतावादी उच्चादर्शसे प्रेरित थे। विश्व-कल्याण जिन साधनोंपर अवलम्बित है, उन्हींका प्रचार उनके 'कल्याण'के द्वारा हुआ। गोवधको वे इस देशके माथेपर 'कलङ्कका टीका' समझते थे और इसीलिये गोरक्षाके लिये वे सतत प्रयत्नशील रहे। आर्यजातिके पास जो कुछ भी शिव और शुभका अंश है, उसे 'कल्याण'के द्वारा वे सभी पाठकोंतक पहुँचाते रहे। उन सरकारी नीतियोंकी भी उन्होंने खुलकर आलोचना की, जिन्हें वे समाजके लिये अहितकर और अनिष्टकर समझते थे।

श्रीपोद्दारजीका व्यवहार अतीव शालीन था। वे अपने घर आये हुए प्रत्येक व्यक्तिका सम्मान करते थे और अस्वस्थ होनेपर भी कर्तव्य-पराङ्मुख नहीं हुए। साधनाके क्षेत्रमें वे राधा-तत्त्वका बड़ी गहराईके साथ अनुभव कर चुके थे और अपनी उपलब्धिको उन्होंने अतीव संयत, परंतु विशदरूपमें लेखोंद्वारा अभिव्यक्त किया। हरिलीलामें उनका प्रवेश निश्चितरूपसे प्रगाढ़ था। लीलाका क्षेत्र वैसे तो व्यापक है, परंतु जिसने मूलशक्तिको हृदयंगम कर लिया, उसके लिये सभी कुछ स्वायत्त हो जाता है।

गीताप्रेसकी प्रतिष्ठा उन्हींके कारण बढ़ी और उसके द्वारा अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित होकर सस्ते मूल्यपर बहुसंख्यक जनताके हाथोंमें पहुँच पाये। इसका श्रेय पोद्दारजीको ही देना पड़ेगा। 'कल्याण'का प्रकाशन बराबर चलता रहे, इसके लिये हम सभीको प्रयत्न करना चाहिये। पोद्दारजीके लीलाधाममें प्रवेशके उपरान्त उनकी स्मृतिको स्थायी रूप देनेके लिये भी हमें कुछ करना चाहिये। सत्पुरुषोंका नाम चलता रहे और उनके आदर्शोंसे जनता परिचित होती रहे, यह जन-कल्याणके लिये परम आवश्यक है। पोद्दारजीके प्रेमी भारतवर्षमें ही नहीं, विश्वभरमें मिल सकेंगे। हम सब मिलकर एक ऐसी आयोजना बनायें, जिससे इस दिशामें कोई ठोस कदम उठाया जा सके और उनकी पुण्यस्मृति चिरस्थायी बन सके।

●

अमिट-स्मृति

पं० श्रीशिवनाथजी दुबे

'आदमीके गुणों और अवगुणोंकी ठीक-ठीक जाँच सदा उसके विश्रुत कामोंसे ही नहीं होती, बल्कि एक छोटे-से काम, एक छोटी-सी बात या एक छोटे-से हास-परिहाससे भी व्यक्तिके असली चरित्रपर उचित प्रकाश पड़ता है।'——प्लुटार्क

भाईजी——श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अत्यन्त चरित्रवान्, सद्धर्मपरायण एवं अनुपम भक्त सद्गृहस्थ थे। उनके जीवनमें पदे-पदे सत्य, दया, क्षमा, उपकार प्रभृति अनेक आदर्श गुणोंके दर्शन होते थे। भगवत्प्रीतिके तो वे मानो सजीव विग्रह ही थे। उनके सङ्ग, उनके जीवन एवं उनके सदुपदेशसे सहस्र-सहस्र नर-नारी एवं बालकोंने सात्त्विक जीवनका निर्माण किया है। उनके बताये मार्गका अनुसरण कर कितने ही युवक सत्यके प्रति अद्भुत निष्ठा एवं सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न जीवन व्यतीत करते हुए उनके आजीवन कृतज्ञ बन गये हैं। वे शिशुओंकी भाँति सरल, पर महासागर-तुल्य गम्भीर थे। परंतु वे शुष्क नहीं, सरस एवं विनोदी भी थे। विनोद सत्य एवं धर्मसे पूरित था। उनका अभाव टूटे हुए काँटे एवं बर्छीकी टूटी अनीकी भाँति करक रहा है। पर उनकी स्मृतिसे जीवनमें पवित्रता एवं सत्प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं, उनसे परिचित सभी महानुभाव इसका अनुभव करते हैं। यहाँ हम उनके जीवनकी कुछ घटनाओंका उल्लेख करते हैं।

सत्य

बात है दस-बारह वर्ष पूर्वकी। उस समय श्रद्धेय पोद्दारजीकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। मध्यप्रदेशके एक सज्जन उनसे मिलने आये। उन्हें अपने पत्रमें श्रद्धेय पोद्दारजीने दो सौ रुपये सहायता देनेकी बात लिखी थी। मैंने श्रद्धेय पोद्दारजीके समीप जाकर उनके आनेका कारण बताया और उनसे यह भी कह दिया कि 'मुझे स्मरण है कि आपने उन्हें दो सौ रुपये देनेकी बात लिखी थी।'

श्रद्धेय श्रीभाईजीने तुरंत कहा——'मुझे तो स्मरण नहीं कि मैंने उन्हें दो सौ रुपये देनेकी बात कभी लिखी थी, पर आप कह रहे हैं तो मैंने अवश्य लिखा होगा। आप दुलीचन्दसे कहकर रुपये दिलवा दें।'

रुपये उन्हें दे दिये गये——उस समय, जब कि उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय थी; केवल सत्यकी रक्षाके लिये उन्होंने तत्काल रुपये दे दिये।

दया

अत्युक्ति नहीं, सर्वथा सत्य है कि श्रीभाईजी मूर्तिमान् दया थे। किसीका कष्ट देखकर सह लेना उनके वशकी बात नहीं थी। उन दिनों गीतावाटिकामें एक वृद्धा मेहतरानी शौचालय

साफ किया करती थी। जाड़के दिन थे। मेहतरानी शौचालय साफकर लौट रही थी और भाईजी वाटिकामें टहल रहे थे। उसे देखते ही अत्यन्त प्यारसे भोजपुरीमें भाईजीने उससे पूछा—'कहा माई, मजेमें बाटू न ?'

'हाँ बचवा, जीयत हईं।' मेहतरानीने उत्तर दिया 'आज-कल जाड़ा लगत आ बेटा! अब सर्दी ना सहात।'

'अच्छा, तनी रुका, माई।' श्रद्धेय भाईजीने तुरंत एक कम्बल और एक धुस्सा (गरम सूती चादर) मँगवाकर उसे दिलवा दिये।

'जुग-जुग जिया, बेटा!' मेहतरानीने गद्गद कण्ठसे आशिष् दी—' अल्ला मियाँ तोहार भला करें।'

× × ×

भाईजी प्रायः कहते—"मैं तो सर्वथा अकिंचन हूँ और सबमें परमात्मा विद्यमान हैं। कहींसे कुछ आ जाता है तो उनकी वस्तु उनको समर्पित कर देता हूँ। 'तेरा तुझको सौपते का लागै है मोर ?'—पर जब इसमें मेरी प्रशंसा होती है तो मैं लज्जासे गड़ जाता हूँ।"

परनिन्दा-असहिष्णुता

श्रद्धेय भाईजी अपने प्रवचनमें प्रायः कहते—'दोष देखने हो तो अपने देखो, दूसरोंके तो गुण ही देखने चाहिये।'

उनके सामने कोई किसीकी निन्दा करे—उन्हें सह्य नहीं था। यही कारण था कि उनके समीप रात-दिन रहनेवाले भी किसीपर अत्यन्त असंतुष्ट होकर भी श्रीभाईजीके सामने उसकी निन्दा नहीं कर सकते थे। हम सब जानते थे कि इनसे शिकायत करनेपर अपनी ही फजीहत होने लगेगी।

एक बारकी बात है। श्रीभाईजी सत्सङ्गसे उठे तो एक आगन्तुक उनसे भारतके राष्ट्र-पति देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादजीकी चर्चा करने लगे। श्रीभाईजीने राजेन्द्रबाबूकी बड़ी प्रशंसा की। इसपर उक्त सज्जनने कहा—'आप डाक्टर साहबको नहीं जानते, भाईजी, उन्होंने एक....।'

वे राजेन्द्रबाबूके चरित्रपर लाञ्छन लगाना चाहते थे और यह भाईजीके स्वभावके सर्वथा विपरीत था। उन्होंने उक्त सज्जनका वाक्य पूरा होनेके पहले ही उत्तर दे दिया—'एक डिठौना रहना चाहिये, नहीं तो उनमें इतने सद्गुण हैं कि नजर लग जायगी।'

वे सज्जन आगे नहीं बोल सके। चुप हो गये।

प्रेम-व्यवहार

डा० मुहम्मद हाफिज सय्यद 'प्रयाग विश्वविद्यालय'के दर्शनविभागके अध्यापक थे। हाफिज साहब भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। अपने घरपर श्रीकृष्णका एक भव्य चित्र रखते थे और चन्दन-पुष्प, धूप-दीपसे बड़े भावके साथ उसकी पूजा करते थे। एक बार श्रीभाईजी प्रयाग गये थे, तब हाफिज साहब अपने इष्टदेवके दर्शन करानेके लिये उन्हें अपने घर ले गये। भगवान्

श्रीकृष्णके नाते हाफिज साहबके साथ श्रीभाईजीकी बड़ी ही आत्मीयता थी । हाफिज साहब 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु'के लिये बराबर लिखते थे । उन लेखोंमें भारतीय दर्शन, धर्म एवं संस्कृतिके प्रति उनका प्रगाढ़ प्रेम दर्शनीय है ।

एक बार हाफिज साहब गोरखपुर पधारे । श्रीभाईजीके घरपर ही वे ठहरे । भाईजीने बड़े स्नेहसे उनका आतिथ्य किया । अतिथि भगवान्का स्वरूप होता है, फिर वे तो भगवान् श्रीकृष्णके भक्त थे । अतएव उनके प्रति ममत्व होना स्वाभाविक था । हाफिज साहबने आग्रह किया––'आज आपके पास बैठकर आपके इष्टदेवका प्रसाद लूँगा ।' श्रीभाईजीने भगवान्के भोग-के लिये विशेष व्यवस्था करवायी ।

भोजनका समय हुआ । बरामदेमें पास-पास दो कम्बलके आसन लगाये गये और सामने काठके बने पीढ़े रखे गये । दोनोंके लिये स्टीलकी थाली-कटोरीमें प्रसाद परसकर आया । भाईजी बड़े प्रेमसे पूछ-पूछकर उनको खिला रहे थे तथा स्वयं भी प्रसाद पा रहे थे । हाफिज साहब भाईजीकी आत्मीयतासे आप्यायित थे ।

प्रसाद ग्रहण करनेके पश्चात् तौलियासे हाथ पोंछते हुए नेत्रोंमें आँसू भरकर डा० सय्यद हाफिजने भाईजीसे कहा––'मुसलमानोंके सबसे बड़े शत्रु तुम हो ।'

'वह कैसे ?'––भाईजीने पूछा ।

डा० सैय्यद हाफिजने कहा––'यदि तुम्हारी तरह सब हिंदू हो जायँ तो भारतमें मुसल-मानोंके दर्शन भी न हों ।'

कुछ दिनों बाद जब श्रीभाईजी गीता-भवन, स्वर्गाश्रम सत्सङ्गके लिये गये, तब सय्यद साहब भी वहाँ पहुँचे । मैंने देखा––भाईजीने उन्हें अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने समीप, जहाँ कई संन्यासी महात्मा बैठे थे, बैठाया । भाईजीके अनुरोधपर डा० सय्यद हाफिज श्रीमद्भगवद्गीतापर लगभग एक घंटा बोले भी ।

गो-वध-विरोधी आन्दोलनके सेनानी

धर्मप्राण श्रीभाईजी गायोंकी रक्षा एवं अकाल-पीड़ित गो-वंशकी सेवा करनेमें अपनी ओरसे कुछ उठा नहीं रखते थे । 'गो-वध-विरोधी आन्दोलन'के समय उन्होंने जिस तत्परता, लगन एवं कुशलतासे आन्दोलनके लिये अर्थ-व्यवस्था की तथा आन्दोलनके संचालनमें सहयोग दिया, उससे सभी धर्माचार्य एवं गो-प्रेमी परिचित हैं । यहाँ मैं उनके कुछ पत्रोंके कुछ अंश-मात्र दे रहा हूँ––

पूज्य विनोबाजीके पत्रमें भाईजीने लिखा था––"यह सर्वथा स्वीकृत है कि गायके साथ हिंदूका आत्मा और प्राणका सम्बन्ध है । आज यदि पूज्य बापूजी होते तो इस प्रकारके आन्दोलन-की कोई आवश्यकता ही नहीं होती; इससे पहले ही सर्वथा गोवंशका वध बंद हो जाता । अब तो आपपर ही सबकी आँख लगी है । आप संत हैं और गायके सम्बन्धमें आपने यहाँतक कह दिया था कि 'भारतमें गो-वध बंद नहीं होगा तो क्रान्ति हो जायगी ।' भारतमें गोवध सर्वथा बंद हो जाय––इसी उद्देश्यसे आपसे करबद्ध प्रार्थना कर रहा हूँ !......"

श्रीजयप्रकाशनारायणको श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने लिखा था—'आप गोवधका सर्वथा निवारण चाहते हैं, यह मेरा विश्वास है। देशमें बहुत बड़े-बड़े साधु-महात्मा गोवध-निवारणार्थ प्राण-त्याग करनेके लिये तैयार हो गये हैं।...अतएव मैं आपसे साग्रह अपील करता हूँ कि आप अपने प्रभावसे केन्द्रीय सरकारद्वारा आवश्यक हो तो संविधानमें उचित परिवर्तन करके तुरंत सर्वथा गो-वंशके वधका निषेध करनेकी घोषणा करवा दें।'

श्रीगुलजारीलालजी नन्दाके पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था—"स्व० सम्मान्य श्रीशास्त्रीजीसे मेरी व्यक्तिगत बात हुई थी और उन्होंने यह कहा था कि 'मेरे नामका प्रचार तो नहीं करना चाहिये, पर मैं स्वयं गोवधसे दुखी हूँ और मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिसमें अगली सालतक गोवध सर्वथा कानूनन बंद हो जाय। इसके लिये संविधानमें परिवर्तन करना होगा तो वह भी किया जायगा।' हमारा दुर्भाग्य है कि श्रीशास्त्रीजीका अकस्मात् देहावसान हो गया।....पता नहीं क्यों, मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि और देशोंकी बात चाहे जो हो, पर भारतवर्षमें जबतक रक्तकी एक भी बूँद गोवधके द्वारा गिरती रहेगी, भारतका और भारतवासियोंका कल्याण और सुख-साधन नहीं होगा।...."

इस प्रकार श्रद्धेय श्रीभाईजीने गो-वंशकी रक्षाके लिये अकेले जितना सहयोग प्रदान किया, उतना अनेक व्यक्तियों एवं संस्थाओंके सम्मिलित प्रयत्नसे भी सम्भव नहीं हो सका।

सफल सम्पादन

'कल्याण'के विशेषाङ्कों एवं साधारण अङ्कोंको देखकर सुविज्ञ पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीमें सम्पादन-कला कितनी उच्चकोटिकी थी। उनकी लेखनीमें माधुर्य था, रस था; पर वह लेखनी देश और धर्मपर आँच आनेपर आग भी उगल सकती थी। पूर्व बङ्गके नोआखाली जनपदमें निरीह हिंदुओंपर भीषण अत्याचार हुए। उसे वृद्धावस्थामें सह न सकनेके कारण वन्दनीय मालवीयजी चल बसे। उनके श्राद्धोपलक्षपर श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने 'कल्याण'का एक विशेष अङ्क प्रकाशित किया, उसके मुखपृष्ठपर शङ्ख एवं कोड़ेका चित्र था। पूरा अङ्क श्रीपोद्दारजीने स्वयं लिखा था, पर उक्त सत्य तथ्यको सह न सकनेके कारण भारत सरकारने उक्त अङ्क जब्त कर लिया।

'कल्याण'में लेखोंको सुधारकर, उनके क्रम बैठाकर और सुन्दर लेख लिखकर ही उन्होंने सम्पादनमें सफलता नहीं प्राप्त की थी, अपितु 'कल्याण'-जैसे पवित्र पत्रके सर्वथा अनुकूल, ऋषितुल्य उनका जीवन था।

'कल्याण'के लेखकोंका वे बड़ा सम्मान करते थे और उन्हें प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट रखते थे। अपने कार्यमें सहयोग देनेवालोंको वे सदा प्रोत्साहन देते रहते थे। यहाँ मैं उनके दिनाङ्क ३-६-६८ के गीताभवन, स्वर्गाश्रमसे लिखे पत्रका कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूँ, जिससे उनके अपने सहयोगियोंके प्रति भाव एवं उनकी उस समयकी मानसिक स्थितिकी सहज ही कल्पना हो सकती है। उन्होंने लिखा था—

'प्रिय श्रीदुबेजी,

सादर प्रणाम। आपके पत्र मिल गये थे। सूची ठीक करके 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ

भेज दी है। आपने बड़ा ही परिश्रम किया। पू० श्रीकविराजजीका तो परम अनुग्रह है ही। विशेषाङ्ककी सूची छपनेको तो भेज दी है; पर आजकल मेरे मस्तिष्ककी जो स्थिति है और जो उत्तरोत्तर बढ़ रही है, उसे देखते सम्पादनका काम मैं कर सकूँगा——यह नहीं कहा जा सकता। प्रतिदिन ही ५-७ घंटे बाह्य चेतना सर्वथा लुप्त रहती है। चेतनाके समय भी बार-बार यहाँका सब कुछ लुप्त होता रहता है। पता नहीं, क्या होता है? कामकाज प्रायः बंद है।...मैं तो अधिक समय बंद रहता हूँ।'

श्रीभगवान्‌में उनकी तन्मयता उस स्थितिमें पहुँच गयी थी कि उन्हें प्रायः बाह्य-विस्मृति रहने लगी थी। उस स्थितिमें मैंने 'कल्याण'के लिये उनके पास 'कः पन्थाः' शीर्षक एक लेख भेजा था। उक्त लेखमें अनेक घटनाओंके साथ लिखा गया था कि बुढ़ापेसे आक्रान्त होनेपर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष——इनमेंसे किसीका भी साधन नहीं कर सकता। इसलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण कर लेना चाहिये।'

'कल्याण'में जब मैंने अपना लेख देखा, तब आश्चर्यचकित रह गया। अत्यधिक व्यस्तता, अस्वास्थ्य एवं प्रभु-तल्लीनताकी उच्चतम अवश स्थितिमें जब उनकी बाह्य चेतना प्रायः लुप्त होती रहती थी, वे सम्पादन-कार्यमें कितने सजग रहते थे और अपने सिद्धान्तपर किस प्रकार दृढ़ रहते थे, उनकी जोड़ी हुई पंक्तियोंसे स्पष्ट हो जाता है। मेरे उक्त लेखके अन्तमें श्रद्धेय श्रीभाईजीने इतना अपनी ओरसे लिख दिया था——

"भक्तराज प्रह्लाद तो युवावस्थाकी प्रतीक्षा भी नहीं करना चाहते। वे अपने बालक बन्धुओंसे कहते हैं——'इस संसारमें मानव-जन्म दुर्लभ है। इसीमें परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। पर पता नहीं, इसका कब अन्त हो जाय; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको बचपनमें ही भागवत-धर्मोंका आचरण कर लेना चाहिये——

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥
(श्रीमद्भागवत ७।६।१)"

'आप मेरी आत्मा और मेरे प्राण हैं।' ——एक बार आवेशमें इस वाक्यका प्रयोग श्रद्धेय भाईजीने मेरे लिये किया था और भाईजीके अन्य स्वजनोंकी भाँति मेरा हृदय भी कहता है——'भाईजी मेरे थे और मेरे हैं।'

'श्रीभगवान् एवं उनके भक्तोंके चरित्रके अतिरिक्त सांसारिक चर्चासे बचना चाहिये'—— श्रद्धेय श्रीभाईजी कहते थे और इस लेखके द्वारा निश्चय ही मैंने भक्त-गुण-गान कर समयका सदुपयोग एवं श्रीभाईजीकी ही आज्ञाका पालन किया है।

उन्हींके मतलबकी कह रहा हूँ, जबान मेरी है, बात उनकी।
उन्हींकी महफिल सँवारता हूँ, चिराग मेरा है, रात उनकी॥
फकत मेरा हाथ चल रहा है, उन्हींका मतलब निकल रहा है।
उन्हींका मजमूं, उन्हींका कागज, कलम उन्हींका, दवात उनकी॥

●

भाईजीकी तीर्थयात्रा ट्रेन उज्जैनमें

श्रीकृष्णगोपालजी माथुर

प्रातःकालका समय। स्टेशनपर कड़कड़ाती शीतमें लोगोंकी भीड़ बड़ी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा कर रही थी। 'कल्याण' एवं गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंके कारण जिनके प्रति हृदय अपार श्रद्धासे भरा था, उन महामानवका स्वागत करनेके लिये सबके हृदय प्रफुल्लित हो रहे थे। अचानक गाड़ीकी सीटी सुनायी पड़ी और ढोलक-मजीरे खनक उठे। हरिकीर्तनकी ऊँची ध्वनिसे स्टेशन और दूर-दूरका वातावरण गूँज उठा।

गाड़ी रुकते ही भीड़ पुष्पमालाएँ लेकर भाईजीके डिब्बेकी ओर दौड़ पड़ी। पूज्य भाईजीने उतरते ही हाथ जोड़कर सबका स्वागत किया। उपस्थित जन-समुदायने देखा––भाईजी साक्षात् प्रेमावतार ही हैं। चारों ओरसे पुष्पवर्षा होने लगी, तथा लोग माला पहनानेके लिये आगे आने लगे। श्रीभाईजी सबको मना कर रहे थे, पर श्रद्धाके प्रवाहको रोक सकना सम्भव नहीं था। ऐसा लगता था कि श्रीभाईजी पुष्पमालाओंमें आवृत हो गये हों।

वहीं प्लेटफार्मपर माइकपर परम आदरणीय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीद्वारा प्रातःकालीन ईश-प्रार्थना एवं कुछ सुन्दर पदोंका गान हुआ। चारों ओर भक्तिका प्रवाह फैल गया। लोगोंको इस वर्षाके साथ ही ज्ञान मिला कि प्रातःकाल भगवान्‌की प्रार्थना करना मनुष्यका पहला मुख्य कर्तव्य है।

आदरणीय भाईजीसे मैंने पूछा––'भाईजी, अब क्या प्रोग्राम है?'

भाईजीने गम्भीर भावसे उत्तर दिया––"पहले तो मुझे अपने 'आफिस'का काम निपटाना है।" इस उत्तरसे ध्वनित होता था कि इस बोझको हल्का करनेके बाद ही यहाँके कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना है। 'कल्याण' जो देश-विदेशकी जनतामें इतना प्रिय एवं प्रसिद्ध हो गया है, उसके पीछे भाईजीकी यही साधना, लगन, रुचि, कर्तव्य-भावना, त्याग और उसे प्राथमिकता देनेकी वृत्ति थी। अवन्तिका-जैसे पुरातन पुण्यक्षेत्रमें आकर यहाँके प्रसिद्ध देवविग्रहोंका दर्शन, क्षिप्रास्नान एवं प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थलोंको देखकर कृतार्थ होना है; परंतु ये सब बादमें, पहले 'कल्याण'के कामकी चिन्ता!

जब भाईजी उत्सवमें पधारे, तब दोनों ओर लोगोंकी कतारोंके बीच चलते हुए उनके सिरका टोपा खिसकते-खिसकते नीचे गिर गया। भाईजी स्मितपूर्वक सबको हाथ जोड़ प्रणाम करते हुए चल रहे थे; उन्हें टोपेकी सुधि ही नहीं रही। टोपेको नीचे गिरा देख एक सज्जनने उसको उठा लिया और धूल झाड़कर भाईजीके हाथमें उसे थमा दिया। पर भाईजीको न आश्चर्य है, न ज्ञान है अपनी असावधानीका। इस सहज सरलताको देखकर सब लोगोंके मुखपर हँसी फूट पड़ी।

कुछ सज्जनोंने श्रीभाईजीसे निवेदन किया कि सबके लिये दूधका प्रबन्ध है, स्वीकार करें। भाईजीने पीयूष-सनी वाणीमें उस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। किंतु लोग बार-बार आग्रह करते हुए बोले––'हमलोग तथा दुग्धादि सभी भगवान्‌के हैं, फिर अङ्गीकार करनेमें क्या बाधा है ?' भाईजी मुस्कराये और बोले––'आपका कहना सत्य है, किंतु लौकिक व्यवहारमें ऐसा उचित नहीं। हमारे पास सभी साधन मौजूद हैं।'

सर्वप्रिय भाईजीने यह अस्वीकार कुछ ऐसी नम्रताभरी मुद्रामें किया कि सभी गद्‌गद हो गये और सबने उनकी बात मान ली।

श्रीभाईजीके आदेशानुसार किरायेकी बसोंका प्रबन्ध किया गया और उनसे सभी यात्री क्षिप्रास्नान तथा देवदर्शनको गये-आये। सब बसोंका किराया चुका दिया गया; किंतु थोड़ी देर बाद एक सज्जनने आकर दुबारा किराया माँगा––भूलसे नहीं, जान-बूझकर और भाईजीके कहनेसे उन्हें दूसरी बार किराया दे दिया गया। यह बात कुछ यात्री जान गये, वे आपसमें काना-फूसी करने लगे। उज्जैनके लोगोंने बताया कि 'ये महाशय तो इसी प्रकारके कर्म किया करते हैं।' यह चर्चा मानव-मित्र भाईजीके कानोंतक पहुँची। उन्होंने तत्काल सबको चुप कर दिया और सबको समझाया कि इस विषयकी जरा भी चर्चा न की जाय। भाईजीकी अनुमतिसे यह बात वहीं ठंडी पड़ गयी, भुला दी गयी। जानकार जान गये कि भाईजी कितने उदार हैं, अपनी हानि सहकर––दूसरेकी बेईमानी देखकर भी उसकी इज्जत-आबरूपर जरा भी आँच नहीं आने देना चाहते। श्रीभाईजीकी ऐसी शालीनता देखकर जन-समुदाय दंग रह गया और भाईजीके इस व्यवहारकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा।

पीछे महाकाल-प्राङ्गण, पटनीबाजार, माधवनगर, धर्मशाला, महिला-समाज, गोशाला-गोष्ठीमें श्रीभाईजीके जो प्रवचन-भाषण हुए, उनसे उन्होंने हजारों लोगोंके दिलोंमें ऐसा प्रभाव जमाया कि आज भी उनकी चर्चा होती रहती है। वे प्रवचन-भाषण इतिहासकी एक नवीन उज्ज्वल कड़ी बन गये हैं।

●

जो जैसा कहता है, वैसा ही करता है, नाना रूपोंमें एक ईश्वरको ही देखता है, जिसे सगुण-भजनमें जरा भी संदेह नहीं है, जिसने मद, मत्सर और स्वार्थका त्याग कर दिया है, जिसके सांसारिक उपाधि नहीं है, जिसकी वाणी सदैव नम्र और मधुर होती है, जो सदा-सर्वदा सरल, प्रिय, सत्यवादी और विवेकी होता है, जो कभी मिथ्याभाषण नहीं करता, जो दीनोंपर दया करनेवाला, मनका कोमल, स्निग्धहृदय, कृपाशील और रामजीके सेवकगणोंकी रक्षा करनेवाला है, वह मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका दास इस संसारमें धन्य है।

—समर्थ गुरु श्रीरामदास

●

मानव-सेवामें भगवत्सेवाके द्रष्टा

डा० श्रीकेदारनाथ लाहिड़ी

मुझे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको प्रायः उस समयसे जाननेका महान् सौभाग्य प्राप्त है, जबसे वे गोरखपुर आये। 'भाईजी' सम्बोधन इसका प्रमाण है कि सभीके प्रति प्रेम, सहानुभूति और दयाके कारण उन्हें कितना अधिक स्नेह और सम्मान प्राप्त था।

तरुणावस्थाके प्रारम्भमें क्रान्तिकारीके रूपमें, प्रौढ़ावस्थामें एक प्रकाण्ड विद्वान् और धार्मिक गुरुके रूपमें तथा ढलती हुई आयुमें सम्पर्कमें आनेवाले सभी व्यक्तियोंके लिये एक बड़े भाई-के रूपमें—इस प्रकार उनका सम्पूर्ण जीवन देश और मानवताकी सेवाके निमित्त समर्पित था।

उन्होंने यह अनुभव किया था कि हमारे देशकी सबसे बड़ी आवश्यकता चरित्रका निर्माण है। सदियोंकी पराधीनताके कारण हम नितान्त स्वार्थी, स्वनिष्ठ तथा देश एवं समाजके प्रति कर्त्तव्यभावनासे रहित हो चुके हैं। श्रीभाईजीका विश्वास था कि बालक-बालिकाओंमें नैतिक एवं धार्मिक शिक्षाकी सुदृढ़ नींव डालकर और प्रौढ़ व्यक्तियोंमें धर्म एवं सत्यकी भावना जाग्रत्कर परिवर्तन लाया जा सकता है। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उन्होंने 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ किया और उसे देशकी सर्वप्रिय तथा सर्वाधिक ग्राहकोंवाली पत्रिका बना दिया। उन्होंने गीता-प्रेस-जैसी महान् संस्थाके माध्यमसे अनेक अलभ्य धार्मिक ग्रन्थोंका सम्पादन और प्रकाशन कर उन्हें बहुत सस्ते मूल्यमें जनताको सुलभ कराया। साथ ही नवीन ग्रन्थोंकी रचना भी की। इन ग्रन्थोंमें उपनिषदों तथा पुराणोंके आधारपर तथा अपने स्वतन्त्र ज्ञान एवं अनुभवसे उन्होंने चरित्र-निर्माण, कर्त्तव्य-पालन, मानव-सेवाकी शिक्षा बड़ी ही सरल भाषामें दी है।

श्रीपोद्दारजी हमारे धर्मके उच्चतम आदर्शोंके व्याख्याता थे। सभी लोगोंपर वे इसके सर्व-ग्राह्य तथा सर्वप्रिय गुणोंकी छाप डालनेकी चेष्टा करते थे। श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेका-नन्द और श्रीअरविन्द (जिनके साथ कुछ कालतक उनका घनिष्ठ सम्पर्क रहा) के समान उन्होंने भी यही शिक्षा दी कि हिंदूधर्मका दृष्टिकोण सर्वव्यापी है। उनका विश्वास था कि 'मानव-सेवा भगवान्की उत्तम सेवा है।' इसी भावसे वे अनेक परोपकारी सामाजिक संगठनोंसे सम्बद्ध थे। 'गीताप्रेस-सेवादल'के माध्यमसे अकाल एवं बाढ़-जैसी विपत्तियोंसे पीड़ित लोगोंको सहायता देने और उनका दुःख-निवारण करनेमें वे अग्रणी रहते और उनका सहायता-कार्य जबतक आवश्यकता रहती, चलता रहता। कुष्ठरोगसे पीड़ित लोगोंके प्रति महात्मा ईसा और गांधीजीके समान उनके हृदयमें भी बड़ी दया एवं सहानुभूति थी और उनका दुःख दूर करनेके लिये उन्होंने गोरखपुर-स्थित कुष्ठसेवाश्रमके कुशल संचालनमें पूर्ण सहयोग एवं आर्थिक सहायता दी। आज यह देशमें अपने ढंगकी एक महत्त्वपूर्ण संस्था बन गयी है।

भाईजीने गोरखपुरके निमित्त जो दूसरी बड़ी मानव-सेवा की है, वह है—'मूक-बधिर-विद्यालय'की स्थापना। विद्यालय एक किरायेके मकानमें आरम्भ हुआ था, लेकिन श्रीपोद्दारजीकी दानशीलता और प्रयाससे अब उसका स्वतन्त्र भवन बन गया है।

अनेक विशिष्ट गुणोंसे युक्त होनेपर भी भाईजी अहंभावनारहित तथा अत्यन्त विनम्र थे। वे प्रदर्शनसे दूर रहते और समाजसे किसी भी प्रकारकी मान्यताकी कामना नहीं रखते थे।

उनके देहावसानसे समूचे देशकी और विशेषकर गोरखपुरकी अपूरणीय क्षति हुई है। उनकी स्मृतिको स्थायी रखनेके लिये अब उनके सत्कार्योंका संचालन तथा जीवनादर्शोंका अनुसरण ही अवलम्बन रह गया है।

•

अद्भुत अतिथि-सेवी

श्री राय अम्बिकानाथ सिंह

बहुत दिनोंसे पूज्य पोद्दारजीके साक्षात्कारकी अभिलाषा थी, किंतु गृहस्थीकी झंझटोंसे समय नहीं निकाल पाता था। 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागके भाई रामलालजीसे मेरा घनिष्ठ परिचय था। उनके अनुरोध और आन्तरिक प्रेरणासे १९४५में मैं पूज्य भाईजीके दर्शनार्थ गोरखपुर जा पहुँचा। रामलालजीके निवासस्थान 'आनन्द-सदन'में ठहरा। दूसरे दिन रामलालजीके साथ ही पूज्य पोद्दारजीके दर्शनार्थ गीतावाटिका गया। वहाँ मुझे श्रीभाईजीके दर्शन हुए। बड़ी देरतक आध्यात्मचर्चा होती रही। जब मैंने बिदा माँगी, तब बोले—'यहाँ अभी आपको दो दिन रहना है। यहीं गीतावाटिकामें रहिये।' इसके बाद तुरंत ही रामलालजीसे मेरा सामान वहाँ मँगा लेनेको कहा। मैं इस प्रकार गीतावाटिकामें ही टिक गया। उसी दिन सायंकालमें श्रीरामलालजीके साथ 'गोरखनाथ-मन्दिर'का दर्शन तथा महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीसे मिलने जानेकी अनुमति मैंने पूज्य भाईजीसे माँगी। भाईजीने तुरंत अपनी गाड़ी मँगाकर मुझे दी और कहा कि 'इससे ही जहाँ जाना हो, जाइये।'

मैं भाई रामलालजीके साथ गोरखनाथ-मठ गया। वहाँ कुछ देर स्वर्गीय दिग्विजयनाथजीसे बातें कीं। लौटते समय मोटरका पिछला दरवाजा, जो कि गलतीसे खुला रह गया था, 'गोरखनाथ-मन्दिर'के निर्माणाधीन प्रवेश-द्वारसे टकरा गया। इससे गाड़ी बुरी तरहसे क्षतिग्रस्त हो गयी। मुझे इसका बड़ा दुःख हुआ। मैंने उस गाड़ीको सीधे लखनऊ लाकर ठीक करा लेनेके बाद ही पूज्य पोद्दारजीके पास ले जानेका निश्चय किया; परंतु श्रीरामलालजीने मना किया और पोद्दारजीके अप्रसन्न हो जानेका भय दिखाया। इसलिये गीतावाटिका गया और पोद्दारजीको बतलाकर लखनऊ गाड़ी साथ ले जानेकी अनुमति माँगी। पोद्दारजी विनीत स्वरमें बोले—'भगवान्की बड़ी दया है, जो आपमेंसे किसीको किसी प्रकारकी चोट नहीं आयी। मुझे इसका हार्दिक दुःख है कि मेरी एक छोटी-सी वस्तुसे आपको इतना मानसिक कष्ट हो गया। इससे अतिथिरूपमें आपकी सेवामें मेरी तरफसे त्रुटि हो गयी। मैं स्वयं इसका प्रायश्चित्त करूँगा।' इतना कहकर १५ मिनटतक उन्होंने अतिथि-सेवापर एक सारगर्भित प्रवचन दिया। अब मुझे वे शब्द तो याद नहीं हैं, परंतु इतने दिनों बाद जब भी पोद्दारजीकी उस मुखमुद्राका स्मरण करता हूँ तो हृदय भर आता है। इस प्रकारके महान् और दयालु महापुरुष अब कहाँ देखनेको मिलेंगे? उनकी स्मृतिको सहस्र बार वन्दन।

•

संतोंकी परम्परामें श्रीभाईजी

श्री पी० एस० श्रीनिवासन्

'कल्याण'के माध्यमसे मुझे श्रीभाईजीके 'अमृतोपदेश' पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मुझ-जैसे लोगोंको 'माया और मोह'के कीचड़से ऊपर उठानेमें श्रीभाईजीने जो उत्तम सेवा की है, उसके निमित्त उनके प्रति कृतज्ञताज्ञापन हेतु मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं उनकी अनुपस्थितिमें भी उन्हें अपना 'गुरु' मानता हूँ। उनके शब्द—'दूसरोंकी भावनाओंका उचित सम्मान करो, उनके पदका सम्मान करो, अपनी कमियोंको देखते रहो और उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करो, तब तुम देखोगे कि समस्त विश्व तुम्हारा ही है'—मेरा प्रकाशस्तम्भकी भाँति मार्गदर्शन करते हैं।

मेरी दृढ़ धारणा है कि हमें श्रीभाईजी-जैसा महापुरुष मिलना कठिन है। उनके जानेसे देशकी जो क्षति हुई है, वह शब्दोंमें व्यक्त नहीं की जा सकती। आजके युगमें देशवासियोंको सही मार्ग दिखानेके लिये श्रीभाईजी-जैसे संतोंकी नितान्त आवश्यकता है। मैंने 'कल्याण'के मई-जून १९७१के अङ्कमें प्रकाशित 'श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारके अन्तिम उपदेश' शीर्षक लेख पढ़ा। मैं अपने आँसुओंको रोक नहीं पाया। किस प्रकार भीषण पीड़ामें भी श्रीभाईजी जीभसे भगवन्नाम लत रहे। सचमुच भगवान्‌के प्रति उनकी निष्ठा अनुपम थी।

उसी लेखमें मैंने यह भी पढ़ा कि अन्तिम अवस्थामें श्रीभाईजीने कैंसरकी असह्य पीड़ाका भोग किया। इतनी वृद्धावस्थामें कैंसरसे उत्पन्न भयानक कष्टके विचारसे मैं बड़ी देरतक रोता रहा। अन्तमें मुझे भीतरसे प्रेरणा हुई कि भाईजीके श्रेणीके जितने भी संत एवं विचारक आजतक हुए हैं, उन्होंने शरीर छोड़नेके पूर्व भयंकर व्याधि एवं कष्टका भोग किया है। वेदान्तदर्शनका 'भाष्य' लिखते समय श्रीआदिशंकराचार्य भीषण और तीव्र वेदनायुक्त बवासीरसे पीड़ित हो गये थे। उनके शिष्योंने आचार्यचरणसे किसी औषध या योगशक्तिद्वारा रोगका शमन करनेका अनुरोध किया। आचार्यचरणने शिष्योंकी प्रार्थना यह कहकर अस्वीकार कर दी—'यह सब अनिवार्य कर्मफल-भोग है।' भाष्य-लेखनका काम शान्तिसे उस समय भी चलता रहा, जब शरीर अस्थियोंका ढाँचामात्र रह गया था।

इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण परमहंस भी अन्तिम अवस्थामें गलेमें कैंसरसे पीड़ित रहे। उन्होंने भी अपने शिष्योंके तर्कोंको अस्वीकार कर दिया, जब शिष्योंने उनसे जगन्माता कालीसे रोगमुक्तिके लिये प्रार्थना करनेको कहा।

यही हाल अरुणाचल (तमिलनाडु) के संत श्रीरमण महर्षिका था। उनके हाथमें कैंसर था और जब डाक्टरोंने उनके हाथ और भुजाकी बड़ी शल्यक्रिया करनी चाही, तब वे उस प्रस्तावसे इस शर्तपर सहमत हुए कि रोगसे आक्रान्त भागको या सम्पूर्ण शरीरको चेतनाशून्य नहीं किया जायगा।

हमारे 'भाईजी' संतोंकी उसी परम्परामें हैं। अतएव भगवान्‌की इच्छा थी कि उनका पार्थिव शरीर भी ऐसी भयंकर व्याधिसे ग्रस्त हो, जिससे भाईजी मुझ-जैसे अपने लाखों-लाखों स्वजनों-भक्तोंको यह प्रदर्शित कर सकें कि "आत्मा इस नश्वर शरीरसे भिन्न है और केवल 'द्रष्टा' है।" भाईजीने सच ही कहा था—'यद्यपि मेरे शरीरमें असह्य वेदना हो रही है, पर मैं भीतरसे बहुत प्रसन्न हूँ।' केवल 'जीवन्मुक्त' ही ऐसा हो सकता है।

●

संतोंके प्रति परम श्रद्धालु

श्रीरामकृष्णप्रसादजी

परम भागवत श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मेरी पहली और अन्तिम भेंट अगस्त १९७०में हुई थी। प्रतिवर्ष तीन-चार बार मैं पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाके दर्शनार्थ उनके आश्रममें जाया करता हूँ। उस समय वे जो कुछ उपदेश देते हैं, उसको लिख लेता हूँ और घर आनेपर लेखबद्ध कर लेता हूँ। गत २-३ वर्षोंसे विशाल लोकहितकी भावनासे उन लेखोंको मैं 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ भेज देता था और श्रीपोद्दारजी बड़े आदरके साथ उन्हें प्रकाशित कर देते थे।

एक दिन पूज्यपाद श्रीदेवरहवा बाबाने मुझसे यह प्रश्न किया—'बच्चा, तुम मेरा उपदेश 'कल्याण'में भेजते हो। क्या तुम्हारा कोई परिचय हनुमानप्रसादजी पोद्दारसे है?' मैंने कहा—'नहीं बाबा, मुझे उनसे मिलनेका कभी सौभाग्य ही नहीं मिला।' इस वार्तालापके बाद अकस्मात् श्रद्धेय पोद्दारजीका एक पत्र मिला। मैं पूज्यपाद बाबाके दर्शनार्थ उनके आश्रममें गया और श्रीपोद्दारजीका वह पत्र उनको पढ़कर सुनाया। पत्र सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'श्रीपोद्दारजी निश्चय ही एक महान् व्यक्ति और महान् संत हैं। उनको मेरा प्रसाद तुम अपने हाथसे देना और अगले सप्ताह तुम गोरखपुर स्वयं जाना।' पूज्य श्रीबाबाने अपने प्रसादमें अमृत-बूटी और एक पुस्तक, 'सर्वात्मदर्शन' श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीको देनेके लिये मुझे दी।

मैं श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके निवासस्थानपर पहुँचा। लगभग १२ बजे होंगे। श्रीपोद्दारजी-के एक सेवकने कहा—'अब तो उनके भोजनका समय हो गया है। सम्भवतः अभी भेंट न हो।' लेकिन मैंने प्रहरीको समझाया कि सूचना दे दो, शायद मुझसे मिलनेके लिये कोई समय वे नियत कर दें। सेवकने सूचना दी और उन्होंने तत्काल मुझे अपने कमरेमें बुलवा लिया। मैंने श्रद्धासहित पोद्दारजीका अभिवादन किया और पूज्यपाद बाबाका प्रसाद उन्हें समर्पितकर बैठ गया। वार्तालापके क्रममें मैंने कहा—'बहुत दिनोंसे आपका यश और कीर्ति सुन रखी थी, लेकिन कभी दर्शनका सौभाग्य नहीं मिला था। आज एक महान् विभूतिका दूत बनकर और उनका उपहार लेकर आप-ऐसे एक दूसरे संतकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ।' मेरी बात सुनकर वे मुस्कराते हुए बोले—'मैं कौन संत हूँ। मैं तो संतोंकी जूठन बटोरनेवाला एवं उसका वितरण करनेवाला हूँ।'

कितनी नम्रताके ये शब्द थे, जो मेरे कानोंमें आज भी गूँज रहे हैं। गीताप्रेस-जैसी संस्थाके संचालकके मनमें तनिक भी अभिमान नहीं। उनके चेहरेसे कितनी सादगी और नम्रता टपकती थी। इसका मेरे ऊपर तत्काल प्रभाव हुआ। उनके प्रत्येक भाव और व्यवहारसे महानता प्रकट हो रही थी। गीताप्रेस श्रद्धेय पोद्दारजीकी कीर्तिका एक उज्ज्वल प्रतीक है। मेरा विश्वास है कि युगोंतक उनकी उज्ज्वल कीर्ति 'कल्याण' और गीताप्रेसकी सेवाओंके द्वारा जगत्में फैलती रहेगी।

●

आस्तिकताके मूर्तिमान् स्वरूप

वैद्य पं० श्रीभैरवानन्दजी शर्मा 'व्यापक' रामायणी

श्रीपोद्दारजीके प्रथम साक्षात्कारका सौभाग्य मुझे १९५४ में प्रयागके कुम्भमेलेमें प्राप्त हुआ था। वे भगवन्नामस्मरणके अनन्य प्रेमी थे। इस बातके पूर्ण साक्षी तो वे ही सुकृतीजन हैं, जो दिन-रात उनके सम्पर्कमें रहे हैं। किंतु मुझे लिखे गये उनके एक पत्रकी प्रतिलिपि यहाँ दे रहा हूँ। उसे पढ़कर पाठक महानुभावोंको उनकी ब्रह्मण्यता, सत्यता, निरभिमानता, सरलता तथा भगवन्नामानुरागका एक साथ ही परिचय प्राप्त हो जायगा।

सम्मान्य श्रीशर्माजी ! सादर प्रणाम। शरीर शिथिल रहता है। कामकाजमें मन ही नहीं लगता। नदी-तटके सूखे पेड़की तरह स्थिति है। जरा-सा पानीका बहाव आया कि समाप्त। आप मानसके भक्त, अनन्य राम-भक्त हैं। आपके चरणोंमें विनीत करबद्ध प्रार्थना है कि ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे जीवनके शेष समयका प्रत्येक क्षण केवल भगवन्नामस्मरणमें ही बीते। रामसे भी यही विनय है—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥

दीन-हीन
हनुमान

मेरी जानकारीमें तो श्रीपोद्दारजीने अपने करकमलोंसे ऊपर लिखी पंक्तियोंमें सम्पूर्ण शास्त्रोंका सारभूत सिद्धान्त, मानव-जीवनका एकमात्र कर्तव्य व्यक्त कर दिया। इस कलिकालमें इस प्रकार प्रत्येक क्षणको भगवन्नामस्मरणमें ही व्यतीत करनेवाले कितने सुकृती हैं?

इसके पश्चात् ३१-१०-५८ के एक पत्रमें उन्होंने एक स्थानपर लिखा था—'मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है, पर अब तो क्षयकी ओर ही जा रहा है। नदी-किनारेका खोखला पेड़ कभी भी एक झोंकेमें गिर जा सकता है। इधर सारे सार्वजनिक कार्योंसे पृथक् होकर जीवनके शेष क्षण एकान्तमें बितानेका मन हो रहा है। कई संस्थाओंसे सम्बन्ध-त्याग भी कर दिया है। गीताप्रेससे तो एक प्रकारका अभिन्न सम्बन्ध-सा है, तथापि इससे भी पृथक् होनेकी चेष्टा कर रहा हूँ।' हृदयकी ऐसी सच्ची भावनाको यथार्थ रूपसे वही प्रकट कर सकता है, जिसका हृदय सरल हो—

राम कहा सब कौसिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं॥

आजकल लोग धर्म और भगवान्को सर्वथा भूले जा रहे हैं। ऐसे भयंकर समयमें श्री-पोद्दारजीने 'कल्याण' तथा अन्य पुस्तकोंके प्रचारके माध्यमसे देशमें बढ़ी हुई नास्तिकता-अनैतिकताको दूर करनेका वह स्तुत्य प्रयत्न किया है, जो भारतीय इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित करनेयोग्य है। वे प्राचीन परम्परा, धर्म एवं संस्कृतिके कट्टर अनुयायी थे। वर्तमान कालमें हिंदूधर्मकी रक्षा जितनी पोद्दारजीके कारण हुई, उतनी अन्य किसीके द्वारा हुई हो—ऐसी बात कोई नहीं कह सकता। उनके लोकोत्तर कार्य-कलापको देखते हुए मैं तो यही मानता हूँ कि नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार धर्म एवं आस्तिकताके मूर्तिमान् स्वरूप थे।

●

अनुपम पथ-प्रदर्शक

श्री शिव शंकर आपटे

हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी भूलोकका अपना निवास समाप्तकर हमसे दूर भगवच्चरणोंमें चले गये। मैं विदेश-यात्रापर था। यह दु:खद समाचार सुनते ही मेरा मन कुछ क्षणके लिये विषण्ण हो उठा एवं जब-जब भाईजीके सहवासमें गुजारे समयका स्मरण हुआ, तब-तब चित्त द्रवित होता रहा। मनोव्यथाका प्रथम कारण स्वार्थमूलक ही था। कितना महाप्रभावी, हिंदुओंका समर्थक अदृश्य हो गया! अब हमारे कार्यकी गति-प्रगतिमें जब बाधा––समस्याएँ आयेंगी, तब किसके पास मार्ग-दर्शनके लिये जायँगे? उनके सदृश साधन-सहायता हमको कौन देगा? इसी विचारसे मनमें कुछ विषाद होता रहा।

श्रीभाईजीके साथ मेरा परिचय और सम्बन्ध 'हिंदू विश्व परिषद्'की स्थापनाके निमित्तसे हुआ। परिषद्के ध्येय एवं कार्यके विषयमें श्रीभाईजीका मार्ग-दर्शन एवं समर्थन प्राप्त करनेके लिये २८ दिसम्बर सन् १९६५ को गीतावाटिकामें मैंने उनका प्रथम दर्शन किया। विशाल प्रतिष्ठानके एक छोटे-से कमरेमें चारपाईके संनिकट प्रकाशित ग्रन्थ-पुस्तिकाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ और प्रकाशनार्थ हस्तलिखित एवं टंकित कागजोंके जंगलमें––नही', 'वाङ्मय उद्यानमें' उद्दीप्त-सा एक योगी ही प्रसाद देनेके लिये बैठा हो, ऐसा मुझे साक्षात्कार हुआ।

श्रीभाईजीने मेरा निवेदन साद्यन्त सुना, कुछ प्रश्न पूछे, कुछ सूचनाएँ दीं, कुछ अन्य विषय-विचार सुझाये, अन्तमें बहुत ही प्रसन्नतासे कहा––'परिषद्का निर्माण अत्यन्त सामयिक है। इतने लंबे कालतक हमलोगोंने अपने तत्व-विचारोंके बीज बोये, वे निष्फल नहीं गये; उनका ही यह पौधा है। यह विशाल वृक्ष बने, इसकी शाखाएँ अपने सनातन समाजके लिये सघन छाया प्रस्तुत करें, हमारे समाज, धर्म, संस्कृतिकी सदियोंसे कुण्ठित प्रगतिको विश्वमें पुन: एक वार प्रभावी बनानेमें यह परिषद् साधन-सम्पन्न समर्थ माध्यम बने।'––ऐसा आशीर्वाद देकर श्रीभाईजी परिषद्के आजीवन सदस्य एवं संस्थापक––न्यासी बने। परिषद्ने श्रीभाईजीको उपाध्यक्ष चुना, तबसे अन्त-कालतक परिषद्के कार्यका निरीक्षण और यथावश्यक मार्ग-दर्शन करते रहे।

श्रद्धेय श्रीभाईजीने हिंदू-धर्म एवं हिंदू-संस्कृतिके तत्वज्ञानको केवल भारतमें ही नहीं, अखिल विश्वमें फैलानेके लिये जो अद्वितीय कार्य किया है, उसका प्रभाव सर्वमान्य है। वैदिक वाङ्मय, रामायण, महाभारत आदि काव्य, इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थोंका हिंदू-समाजके लिये ही नहीं, वरं संसारके मानव-समाजके कल्याण हेतु प्रकाशन और वितरण किया। भावी पीढ़ियाँ अपनी जीवन-यात्रामें इस ग्रन्थ-धनका पाथेयरूपमें उपयोग करेंगी। श्रद्धेय श्रीभाईजी वर्तमान समयके एक असाधारण साधु पुरुष थे। उनका दैनिक जीवन भावुक भक्तका-सा सादा और सरल था, तो उनका विचार-स्तर महान् तत्व-चिन्तकका-सा उच्च एवं उदात्त था। अन्तिम दिनोंमें तो श्रीभाईजी व्यावहारिक विषयोंको त्यागकर घंटों-घंटों, दिनों-दिन भावावस्थामें समाधिस्थ रहते थे। किसीके

लिये भी उनसे मिलना, वार्तालाप करना सम्भव नहीं रह गया था। इस परिस्थितिमें विश्व-कल्याण हेतु निर्माण किये प्रतिष्ठानका कार्य कैसे चलता होगा--ऐसा प्रश्न स्वाभाविक खड़ा हो सकता है। परंतु यह भी तो एक योगीकी कुशलता थी कि उनके द्वारा पुष्ट-दृढ़ संयोजित यह 'कल्याण'-प्रतिष्ठान सुचारुरूपसे चल ही रहा था और भविष्यमें भी चलता ही रहेगा।

एक दिन समाधिस्थितिकी अवस्थामें भाईजी थे और मैं वहाँ पहुँचा। उनकी समाधि भङ्ग करना मुझे उचित नहीं लगा। परंतु दरस-परस करके ही मैं जाऊँगा--ऐसा निश्चय करके मैं रुका रहा। दो दिनके पश्चात् भाईजीने मुझे बुलाया और जो उनकी प्रसन्न मुद्राका दर्शन हुआ, उसका वर्णन शब्दोंमें करना कठिन है।

शान्त, उदात्त, स्थितप्रज्ञ पुरुषकी शब्द-व्याख्या हम सब ही जानते हैं; परंतु ऐसे पुरुषका साक्षात् दर्शन कितना, किसको होता है? भावावस्थासे बाहर आये श्रीभाईजीने उस दिन वही दर्शन दिया, जिसका वर्णन योगशास्त्रमें और गीतामें अन्यान्य स्थानोंपर मिलता है--

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

(गीता १२। १३)

'मैत्री, करुणा, मुदिता, दुःख-सुखमें समता, स्वस्थता--ये और ऐसे अन्य लक्षणोंद्वारा संकेतित मनःप्रसादयुक्त साधु पुरुषका साक्षात्कार मुझे हुआ। इन गुणोंका परिणाम अपने इर्द-गिर्द समाधान, सुख और आनन्दका अनुभव फैलाना ही है; उससे ही इन गुणोंके उत्कर्षकी पूर्णता मापी जाती है। भाईजीके इस दर्शन और भाषणने मुझे एक दिनकी अवर्णनीय अनुभूतिसे भर दिया, जिसका स्मरण आज भी--एक क्षणके लिये ही क्यों न हो--आनन्दानुभवसे मुझे पुलकित करता है। जीवन-यात्रामें जो थोड़े पथ-प्रदर्शक सुयोग और सौभाग्यसे मुझे मिले हैं, उन सबमें भाईजीका स्थान सर्वोपरि है। उनका पावन स्मरण एक आदर्शका प्रकाश-संकेत देता आया है।

●

अनुकरणीय जीवन

श्रीगुलजारीलालजी नन्दा

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) ने 'कल्याण' और गीताप्रेसके प्रकाशनोंद्वारा व्यापक क्षेत्रमें लोगोंके मनमें धार्मिक एवं आध्यात्मिक आस्था पैदा करनेका स्तुत्य कार्य किया है। उसके फलस्वरूप धर्म-प्रेमीजनोंके हृदयोंमें उन्होंने चिरस्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है। उनके निःस्वार्थ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार तथा मानवोचित गुण सबके लिये अनुकरणीय हैं।

अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि भाईजीके सद्गुणों-को मानवमात्रके हृदयमें स्थान मिले।

●

गीतामूर्ति श्रीभाईजी

श्रीकृष्णदासजी सिंह राय

श्रीभाईजी एवं सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका भारतीय अध्यात्मरूपी नभोमण्डलके दो पवित्र जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। इन दोनों महापुरुषोंने दो महारथियोंके समान संयुक्तरूपसे भारतीय धार्मिक संस्कृति और सभ्यताकी रक्षाका प्रयास किया, जिसपर विरोधियोंके आक्रमणका भय पैदा हो रहा था। मेरी दृष्टिमें श्रीभाईजी तथा श्रीसेठजी दोनों एक ही सिक्केके दो पक्षोंके समान हैं।

श्रीभाईजी पूर्ण कर्मयोगी, पूर्ण ज्ञानयोगी एवं उच्चकोटिके भक्त एवं सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति थे। अतः यथार्थमें वे 'गीतामूर्ति' थे। अपने सम्पूर्ण कर्म, विचार और भावनाके द्वारा वे गीताके उपदेशोंको प्रवाहित करते रहते थे। उनका गीतासम्बन्धी ज्ञान कोरा किताबी ज्ञान न होकर साधनापर आधारित था। गीताके उपदेशोंका यथार्थ ज्ञान और भगवान्‌की प्राप्ति—दोनों पर्यायवाची हैं। श्रीभाईजीके निधनसे भारतका ऐसा संत उठ गया है, जिसको वर्त्तमान युगके भारतीय संतोंकी श्रेणीमें बड़ा ऊँचा स्थान प्राप्त था।

श्रीभाईजीने एक कर्मयोगीके रूपमें एक अनासक्त गृहस्थका जीवन व्यतीत किया—ऐसा जीवन जो संसारमें तो था, परंतु सांसारिक प्रपञ्चोंसे सर्वथा मुक्त था। उनमें संगठनकी महती क्षमता थी, जिसका उपयोग वे विशुद्धरूपसे जनहित, विशेषकर आध्यात्मिक हितमें करते थे। 'कल्याण', जो अपने जीवनके ४५ वर्ष पूरे कर चुका है, उनकी संगठन करनेकी योग्यताका स्थायी स्मारक है। उनके द्वारा नियमितरूपसे प्रकाशित 'कल्याण'के विशेषाङ्क वस्तुतः हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिके विश्वकोश हैं। गीताप्रेस, कलकत्ता-बम्बई और ऋषिकेशके सत्सङ्ग-भवन एवं उनके द्वारा प्रकाशित धार्मिक पुस्तकें—ये सभी प्रमाणित करते हैं कि वे हिंदू-धर्म एवं हिंदू-संस्कृतिकी रक्षाके निमित्त आये हुए भगवान्‌के यन्त्र थे। श्रीभाईजीके प्रवचन आनन्द प्रदान करनेवाले होते थे। उनमें श्रोतागण अलंकार एवं शब्दाडम्बरसे रहित सहज बोधगम्य भाषामें विषयकी तहमें पहुँच जाते थे। जनहितके कार्योंमें प्राप्त सफलतासे श्रीभाईजी उच्चकोटिके कर्मयोगी सिद्ध हुए; क्योंकि वे उन कार्योंको बिना किसी व्यक्तिगत स्वार्थकी कामनासे विशुद्ध जनहितकी दृष्टिसे करते थे।

ज्ञानयोगीके रूपमें श्रीभाईजीको महान् सत्यकी सिद्धि प्राप्त थी और उन्होंने 'स्व'को पहचान लिया था। ज्ञानमात्र स्वानुभवगम्य है। जो जानता है, वह उसे बतलाता नहीं और जो बतलाता है, वह जानता नहीं। श्रीभाईजीके द्वारा ज्ञानयोगकी सिद्धि इस तथ्यसे प्रमाणित की जा सकती है कि वे भगवन्मय होकर भी संसारमें रहते हुए सब आचरण करते हुए प्रतीत होते थे। वे संसारको संसार मानकर नहीं, अपितु उसे भगवान्‌का स्वरूप मानकर व्यवहार करते थे। यही कारण है कि वे सभी लोगोंके साथ—चाहे वे जो कोई भी हों, अथवा जिस किसी पदपर हों—बड़े ही विनम्र, मधुर एवं सहृदयतापूर्ण व्यवहार करते थे। गीतामें भगवान्‌का कथन है—'जो पुरुष सभी जीवोंमें सबके आत्मरूप मुझ भगवान्‌का ही दर्शन करता है और सभी जीवोंको मुझमें ही देखता है, उसके

लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।' (६।३०) इस श्लोकके आधार-पर हम यह कह सकते हैं कि श्रीभाईजीकी दृष्टिसे भगवान् कभी अदृश्य नहीं होते थे और न वे भी कभी भगवान्‌की दृष्टिसे ओझल होते थे। यही हमारे इस कथनका आधार है कि भाईजी उच्चकोटिके कर्मयोगी होनेके अतिरिक्त एक पूर्ण ज्ञानयोगी भी थे।

भक्ति-पक्षपर विचार करते ही उनके प्रारम्भिक जीवनका स्मरण हो आता है। कलकत्ताका प्रारम्भिक जीवन-काल उनके चरित्रमें भक्ति-पक्षकी अभिवृद्धि करनेमें बड़ा सहायक हुआ। इससे उन्हें बँगला भाषाका ज्ञान हुआ और वे महाप्रभु चैतन्यदेवके अनुगामियोंद्वारा जन-कल्याणके निमित्त लिखित समृद्ध धार्मिक साहित्यसे परिचित हुए। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवद्वारा प्रतिपादित 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद'का इनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। इस धार्मिक विचारधाराके अनुसार 'द्वैतसे अद्वैत, और अद्वैतसे रसाद्वैत'—ये आध्यात्मिक उन्नतिकी सीढ़ियाँ हैं। भगवन्नामकी शक्तिको और इस सिद्धान्तको कि 'भगवन्नाम और भगवान् एक ही हैं'—श्रीभाईजीने पूर्णतया स्वीकार कर लिया था। अतः उन्होंने अपने जीवनका सर्वोत्तम समय भगवन्नामका उपदेश करनेमें और उसे प्रचारित करनेमें व्यतीत किया। जिस संदेशका प्रचार श्रीचैतन्यदेवने मुख्यरूपसे बंगाल और उड़ीसामें किया, उसे श्रीभाईजीने सम्पूर्ण भारतमें फैलाया। भारत और मानव-जातिके प्रति उनकी यही सबसे बड़ी सेवा थी, जिसके निमित्त संसार उनके प्रति सदैव कृतज्ञ रहेगा।

दक्षिणेश्वरके संत श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवने दो प्रभावकारी उदाहरणोंद्वारा 'मुक्त आत्मा' और 'बन्धनयुक्त आत्मा'का अन्तर बतलाया है। उन्हींके शब्दोंमें एक 'पकी' आत्मा होती है और दूसरी 'कच्ची'। पके फलके समान स्वभावसे ही पकी आत्मा कोमल होती है और मधुर होती है, जबकि कच्चे फलके समान कच्ची आत्मा कठोर और स्वादमें कड़वी और खट्टी होती है। वे कहते थे—'आलू कड़ा होता है, लेकिन उबालनेपर वह कोमल हो जाता है। एक सिद्ध पुरुष उबले आलूके समान है।

इन सिद्धान्तोंके अनुसार श्रीभाईजी एक पूर्ण आत्मा—एक सिद्ध पुरुष थे। वे कोमल, मधुर एवं विनम्र थे। वे भगवत्प्रेमकी साक्षात् मूर्ति थे। उनका 'अहं' पूर्णतया भगवान्‌में विलीन हो गया था।'

●

किसी भी प्रकारके आचरणोंसे संतकी पहचान नहीं हो सकती। संतके सम्प्रदाय या या बाह्य वेषपर दृष्टि नहीं देनी चाहिये, उसके हृदयको देखना चाहिये। संतोंकी परीक्षा करना बड़े दुस्साहसका काम है। किन्हीं-किन्हीं महात्माओंका बाह्य व्यवहार बहुत घृणित और उपेक्षणीय देखा जाता है। परंतु उनके भीतर जो दिव्य तपोबल रहता है, उससे सैकड़ों-हजारों पुरुष अकारण ही उनकी ओर आकर्षित होते रहते हैं। उनकी परीक्षा कोई कैसे कर सकता है।

—पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा

●

वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्

श्रीगिरिधारी बाबा

असंख्य मानव-हृदयोंके सम्राट्, पुण्यश्लोक भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके भौतिक शरीरके तिरोधान होनेपर एक ऐसे तेज:पुञ्जका लोप हो गया, जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। इस गहरी क्षतिका अनुभव करते हुए असंख्य आबाल-वृद्ध नारी-नर, धनी-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति दु:खसे कातर होकर रो पड़े। मार्च २२, १९७१को जब आकाशवाणीद्वारा उनके निधनका समाचार प्रसारित किया गया, तब सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जगत्पर वज्राघात हुआ और चारों ओर शोककी लहर फैल गयी। उनके विशुद्ध, सरस एवं सरल जीवनसे भगवत्प्रेम, अटूट श्रद्धा और अविचल भक्तिकी प्रेरणा पाकर कितने व्यक्तियोंका जीवन सफल हुआ, इसकी गिनती कौन करेगा? उनकी मधुर-उदात्त उदारता और अथक स्नेहसे कितनोंका जीवन अभिभूत हुआ, वर्णन नहीं किया जा सकता। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी भी देश-जातिका हो, नर हो या नारी– उनके सम्पर्कमें एक बार आ जानेपर उनको भुला नहीं सकता था––ऐसी अपनत्वकी छाप वे प्रत्येक हृदयपर स्वाभाविकरूपमें डाल देते थे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की वृत्ति लिये हुए उस महामानवने जिसको अपने अजस्र स्नेहसे प्लावित न किया हो, उनके सम्पर्कमें आनेवाला ऐसा कोई व्यक्ति बिरला ही होगा। ऐसा लगता था कि मानो साक्षात् पुराणपुरुष ही भौतिक शरीर धारणकर सबके लिये मङ्गल-कामना करते हुए प्रेम-सुधाकी अनवरत वर्षा अपने वचनों, लेखों और सत्कर्मोंद्वारा करता रहा हो। वह सबका आवाहन करता––'आओ, भगवत्कृपाका–उनकी दयाका जीभर अनुभव करो, अपने-अपने हृदयको उन्मुक्तकर उसे भगवत्प्रेमसे भर लो और निर्भय होकर विचरो।' विशुद्ध भक्ति, श्रेष्ठ ज्ञान और निष्काम कर्मयोगका समन्वय एक अपूर्व-रूपमें उनमें मूर्तिमान् हुआ था। उनके उज्ज्वल ललाटका तेज उनके आत्मज्ञानका द्योतक था––पारखी देखते ही नतमस्तक हो जाता था।

गण्यमान्य एवं बड़े-छोटे सभी नारी-नर विविध प्रकारकी निजी समस्याएँ लेकर तीर्थरूप भाईजीके पास आते थे और वे उनका समाधान करनेमें तनिक भी कोताही नहीं करते थे। ऐसा लगता था, मानो प्रत्येक समस्याका समाधान उन्होंने उसका अच्छी प्रकार निदान समझकर पहलेसे ही निश्चित कर रखा हो। चिन्ताकी रेखाएँ लिये हुए व्यक्ति उनके कमरेमें जाते और जब बाहर निकलते तो मुस्कुराते हुए दिखायी देते––लगता, चिन्ता-मुक्त हो गये हों। साधन-चतुष्टय और षट्सम्पत्ति तो मानो उन्हें विरासतमें ही मिली थी।

ख्यातिप्राप्त साहित्यिकगण और आचार्यलोग उनके पास परामर्शके लिये प्रायः आया करते थे। अपनी विद्वत्ताको उन्होंने अपने विनम्र स्वभावमें छिपा रखा था। सबको मान देकर वे प्रसन्नताका अनुभव करते थे। संतोंकी उनपर सहज कृपा थी।

गोरखपुर जिलेमें आये वर्ष बाढ़ आती थी। बाढ़-पीड़ितोंकी सहायतार्थ उनके द्वारा

अन्न-वस्त्रादिका उन्मुक्त हस्तसे दान चलता था। गीताप्रेसकी ओरसे सुचारुरूपसे सहायता-कार्यों-का प्रबन्ध होता था, ताकि दूर-दूरके गाँवोंके लोग उनका पूरा-पूरा लाभ ले सकें। पूज्य भाईजी बड़ी सतर्कताके साथ इस कार्यकी देखभाल करते थे।

गोरखपुरमें जो कुष्ठसेवाश्रम है, उसकी स्थापनामें स्वर्गीय बाबा राघवदासजीके साथ भाईजीका भी मुख्य हाथ था। आज वह आश्रम उनके सक्रिय सहयोगसे स्वावलम्बी-सा बन गया है।

सन् १९३६की बात है—गीतावाटिकामें अखण्ड हरिकीर्तन चल रहा था। स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू गाँवोंकी दशा देखने गोरखपुर पधारे थे। सरकारी आदेश हुआ कि जो उन्हें अपनी कार देगा, उसकी कार जब्त कर ली जायगी। इस आदेशके डरसे वे लोग जिनके पास कार थी, उन्हें देनेमें हिचक रहे थे। एक कांग्रेसी नेता भाईजीके पास आये और बोले—'जवाहरलाल-जीके दौरेके लिये कार चाहिये; यदि कार न मिली तो हमारी नाक कट जायगी।' भाईजीने अपनी कार जवाहरलालजीके पास भेज दी और वे उसीमें घूम-फिरकर भाषण देते हुए वापस गोरखपुर आये। जिलाधीशने कहा कि 'हमें मालूम है कि भाईजीने कार दी थी; पर हम उनपर कोई कार्यवाही नहीं करेंगे।' श्रीभाईजी ऐसे निर्भीक थे तथा उनका अधिकारियोंपर भी इतना प्रभाव था।

अंग्रेजी शासनकालकी बात है। उन दिनों गोरखपुरके कमिश्नर श्रीहोबर्ट थे। भाईजी-का वे बहुत आदर करते थे। एक बार उन्होंने एक दरबारका आयोजन किया, ऐसे दरबारोंमें एक विशेष वेष-भूषामें गवर्नर महोदयके सम्मुख उपस्थित होना पड़ता था। कमिश्नर साहबने भाईजीको विना भाईजीकी इच्छाके निमन्त्रण भेजा। भाईजीने कमिश्नर साहबको कहला भेजा कि 'निमन्त्रणके लिये धन्यवाद; पर मैं विशेष वेष-भूषामें उपस्थित नहीं हो सकूँगा। मैं जिन कपड़ोंमें सहजरूपमें रहता हूँ, उन्हींमें उपस्थित हो सकता हूँ। कमिश्नर साहबके आदेशसे उनके लिये वह शर्त हटा ली गयी और भाईजीको आमन्त्रित लोगोंमें प्रथम श्रेणीमें मानपूर्वक बैठाया गया। गवर्नर साहबने भाईजीसे आदरपूर्वक वार्तालाप किया। ऐसा था भाईजीका व्यक्तित्व।

श्रीहोबर्ट अपने कार्यकालकी समाप्तिपर जब वापस अपने देश—इंगलैंड चले गये, वहाँसे उन्होंने श्रीभाईजीके नाम एक पत्र दिया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि 'मेरे भारत-प्रवासमें जो सबसे बहुमूल्य वस्तु मुझे मिली, वह है आपकी मित्रता।'

परमभागवत श्रद्धेय भाईजीकी छत्रछायामें रहनेका मुझे भी सौभाग्य मिला था। मुझ अल्हड़, अज्ञानी और भूलभरे शिशुको उन्होंने अपने वात्सल्य-स्नेहसे पाला-पोसा। मेरी भूलोंको जनाने और सुधारनेमें उनकी अहैतुकी कृपा जिस प्रकार एकरस बरसती रही, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। मेरी भगवान्की ओर रुचि बढ़ानेमें उन्होंने जो मेरे लिये साधन प्रस्तुत किये, क्या कोई सगा-सम्बन्धी भी वैसा करेगा? अपने अनूठे अनुभवोंद्वारा मुझमें भगवद्भक्तिकी लालसा बढ़ायी और मुझ गँवारको परिष्कृत करनेमें तीर्थरूप भाईजीने कोई कमी नहीं की।

परमहितैषी पिता जैसे अपने पुत्रके ज्ञान-भक्ति-सत्कर्मके क्षेत्रको बढ़ानेमें हर्षोत्साहसे उसे अग्रसर करता है, ऐसे ही भाईजीने जब मैं लगभग २२-२३ वर्षका रहा होऊँगा, मेरे अयोध्याजी जाने और वहाँ रहनेके साधन प्रस्तुत किये और उस अवधिमें मेरी जो सार-सँभाल उन्होंने की,

उसे स्मरणकर मैं कृतज्ञतासे भर जाता हूँ। जब मैं अयोध्याजीसे विविध अनुभवोंको लेकर सात वर्षके बाद उनकी शरणमें लौटा, तब मेरा स्वागत पूज्य भाईजीने जिन आनन्दाश्रुओंके साथ किया, उस दृश्यकी स्मृति आजतक मेरी निधि बनी हुई है। उनका ममतापूर्ण वात्सल्य, उनकी अनुकम्पा-दयासे मेरा जीवन ओत-प्रोत है। मुझे वे सदा 'भैया' कहकर पुकारते थे और निस्संकोच आज्ञा देते थे तथा मैं अपना अहोभाग्य समझकर उनकी आज्ञाका पालन करनेका प्रयास करता था।

भगवत्प्राण भाईजी किसीकी भी आर्त्त पुकार सुनकर द्रवित हो उठते थे और उसकी रक्षाका उपाय करते थे। स्थानीय रेलवेके एक कर्मचारीका परिवार नौआखालीमें घिर गया था। वह श्रीभाईजीके पास रोता हुआ गया। श्रीभाईजीने मुझे उनके उद्धारके लिये भेजा। भगवान्‌की कृपा एवं श्रीभाईजीके आशीर्वादसे पूरे परिवारको सुरक्षित निकालकर गोरखपुर भेजनेमें मैं समर्थ हुआ।

पूज्य गांधीजीकी अनुमतिसे भाईजीने चाँदपुर सब-डिवीजनमें दंगापीड़ित लोगोंके लिये ऐसी व्यवस्था की, जिससे उन लोगोंको पुनर्वासमें पर्याप्त सहायता मिली। इसी निमित्त मुझे नोआखालीमें नौ-दस महीने सहायता-कार्य करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसी बीच मैं प्रातःस्मरणीय पूज्य बापूजीके सम्पर्कमें आया और उन्हें समीपसे जाननेका स्वर्ण-अवसर मुझे मिला। कष्ट-पीड़ित मानवताके आँसू पोंछनेके लिये वे दयार्द्र हो स्वयं कष्ट सहते हुए नोआखाली चले आये थे। गाँव-गाँव पैदल घूमकर दुःखी लोगोंको उन्होंने जो सान्त्वना दी, वह मैं कैसे भूल सकता हूँ?

पूज्य भाईजीसे उनका बहुत पुराना परिचय था। हो सकता है, उसी कारण बापूने मुझे अपना स्नेह-भाजन बनाया हो। भाईजीके बारेमें बापू चर्चा किया करते थे और कहते थे—'हनुमान आदमी बहुत बढ़िया है। दीन-दुःखियोंकी सेवामें दत्तचित्त हो लगा रहता है। भगवान्‌का भक्त है, इसलिये दूसरोंका दुःख वह अपना दुःख मानता है। मैं उसे बहुत वर्षोंसे जानता हूँ; उससे किसीका अनिष्ट नहीं हो सकता। जब गोरखपुर जाओ, मेरा उसे स्नेह देना।' एक दिन बोले—'तुम्हें पता है, जब देवदास गोरखपुर जेलमें बंद था, तब हनुमानने उसकी बहुत देख-भाल की थी। मैं तो निश्चिन्त था कि हनुमान सब देख लेगा।'

देश-विभाजनके समय पंजाबमें सब ओर मार-काटकी विभीषिका फैल गयी। मैं नोआखालीसे लौटा ही था कि भयानक घटनाओंके समाचार आकाशवाणी और दैनिक पत्रोंद्वारा आने लगे। बहुत दुःख हुआ; मैं भोजन करते समय रो पड़ता, भोजन बीचमें ही छोड़ देता। जी चाहता—भाग जाऊँ उन कष्ट-पीड़ित लोगोंमें। एक दिन न रह सका। भाईजीके चरणकमलोंपर गिरकर प्रार्थना की कि मुझे पंजाब जानेकी अनुमति दें। उनका हृदय भर आया। कौन पिता अपने बच्चेको अग्निमें झोंकेगा? कहा—'अकेले ही जाओगे?' मेरा क्रन्दन बढ़ा और रोते हुए मैंने कहा—"आपने सदैव मुझे एक मन्त्रसे दीक्षित किया है कि 'मेरे साथ भगवान् सदा हैं और इसको कभी भी न भूलूँ।' आशीर्वाद दीजिये कि 'भगवान् मुझे यन्त्रवत् जनता-जनार्दनकी सेवामें लगाये रखें, जिससे मेरा जीवन सफल हो'।" भाईजीने स्नेहभरे हाथको मेरे सिरपर रक्खा और मैं पंजाबके लिये चल पड़ा—लौकिक दृष्टिसे साधनहीन। मार्गमें गोली चली, बम फटे, पर मैं

किसी प्रकार अमृतसर पहुँच गया। वहाँ भगवान्‌ने मुझसे काम लिया, 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी' और सरकारी कोषसे मुझे उन दुःखी विस्थापित लोगोंकी सहायताके लिये काफी मदद मिली। मुझे सदैव ऐसा लगता था––जैसे भाईजी मेरे अङ्ग-सङ्ग अपना वरदहस्त लिये चल रहे हों। उन्होंने पत्रोंद्वारा मेरा साहस बढ़ाया। सचमुच उनका बल ही मेरा बल था। उनके परमधाममें लीन हो जानेपर मेरी अन्तर्वेदना सिवा भगवान्‌के कोई नहीं जानता।

महामना मालवीयजी जब अन्तिम दिनोंमें 'हिंदू विश्वविद्यालय'में रोग-शय्यापर पड़े थे, मैं नोआखाली जाते हुए चरण-स्पर्श-हेतु उनके पास गया। उनके कमरेके बाहर एकने पूछा–– 'कहाँसे आये हो ?' मैंने कहा––'गोरखपुरसे भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारके पाससे।' वे सज्जन तुरंत अंदर गये और महामनासे कहा––'एक सज्जन पोद्दारजीके पाससे आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं।' आज्ञा हुई, 'उन्हें अंदर बुलाइये।' मैं नतमस्तक उनके चरणोंकी ओर बढ़ा और माथा टेक दिया। महामनाने पूछा––'भाईजी ठीक हैं न? कैसे आये हो ?' मैंने कहा–– 'नोआखाली जा रहा हूँ। भाईजीने लोगोंकी सहायतार्थ वहाँ एक स्थानपर कैम्प खुलवा दिया है।' बोले––'भाईजी तो हिंदूधर्मके प्राण हैं। वे ऐसे पुण्यात्मा हैं, जिनसे हम सबको बहुत बल मिलता है।' मेरे माथेपर उन्होंने अपना वरदहस्त रक्खा और मैं उनके चरण-स्पर्श कर बाहर आ गया। अनुभव किया, भाईजीका प्रभाव कहाँ-कहाँ और कितना गहरा है। प्रत्येक क्षेत्रके लोग पोद्दारजीको 'भाईजी'के नामसे ही सम्बोधित करते थे। मैंने रफी अहमद किदवई साहबको भी पोद्दारजीको 'भाईजी' कहकर पुकारते सुना है। स्वर्गीय श्रद्धेय श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डनजीको अपने साथियोंके साथ गीताप्रेसमें भाईजीसे परामर्श करते पाया है। ऐसा विशद कार्य-क्षेत्र शायद ही किसीका होगा, जैसा भाईजीका था।

मेरी महाराष्ट्र प्रदेशकी एक धर्म बहन है––बड़ी विदुषी, भगवद्भक्ता, समाज-सेवी और दृढ़व्रता। एक बार उसको गलेका गम्भीर रोग हो गया। मैं उसे गोरखपुर ले आया। वह बहन जितने दिन बगीचेमें रही, भाईजीने उसे अपनी बच्ची समझकर उसकी देख-भाल की। अपने साथ ले जाकर डाक्टरको दिखलाते और सब प्रकारके उपचारकी व्यवस्था करते। वह बहन श्रीभाईजीके इतने समीप आयी कि उन्हें अपना धर्मपिता मानकर पत्रोंद्वारा अपना समाचार देती रही। भाईजीके अवसानके बाद दिल्लीमें मुझे वह मिली तो रो पड़ी। ऐसा अपनापन भाईजीका सबके साथ हो जाता था।

ये कुछ घटनाएँ हैं, जिनसे श्रीभाईजीके जीवनकी तनिक झाँकी मिलती है। अनगिनत चमत्कार और कार्य भाईजीके ऐसे हैं, जिन्हें लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं है। अनेक व्यक्तियोंके अनगिनत अनुभव हैं, जिन्हें यदि लिखा जाय तो भी उनकी गौरवगाथा अधूरी ही रहेगी। सत्यनारायण भगवान्‌से भीख माँगता हूँ––**'प्रसीद मे नमामि ते, पदाब्ज-भक्ति देहि मे।'**

●

संतत्वकी प्राप्तिका प्रधान साधन संतोंकी उपासना है। संतकी उपासना भगवान्‌की उपासना है।

—पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा

●

भाईजीकी विलक्षण सतर्कता

श्रीलखपतरायजी

पूज्य भाईजीके दर्शनका दुर्लभ सौभाग्य मुझे पहली बार सन् १९५६के ग्रीष्ममें प्राप्त हुआ। सचमुच मेरे जीवनका यह एक महिमामय दिन था, जब मैंने अपनी श्रद्धाका निवेदन उन महात्माके श्रीचरणोंमें किया। मैं उसी रातको लौट गया। सन् १९६०के प्रारम्भमें मैं फिर गोरखपुर आया। इस बार बिल्कुल अकेले; क्योंकि पत्नीने अपनी इहलीला संवरण कर ली थी। उस समय श्रीभाईजीके परामर्शसे मैंने यह निर्णय लिया कि 'मुझे गोरखपुरमें ही स्थायी रूपसे रहना है' और कुछ समय पश्चात् मैं यहाँ आकर रहने लगा।

सेवा-निवृत्तिसे पूर्व ही मेरे मनमें यह बात थी कि मैं किसी परोपकारके कार्यमें कुछ दान करूँ; किंतु उस समय यह विचार कार्यान्वित न हो सका। सन् १९६०में जब भाईजीके सत्सङ्गका लाभ उठानेके लिये ऋषिकेशमें उनके साथ ही रहा, तब श्रीभाईजीसे समय लेकर अपने मनकी बात निष्कपटरूपसे मैंने उनको निवेदित कर दी। मेरी बात सुनकर उन्होंने मेरे प्रस्ताव-को स्वीकार करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। साथ ही मेरी भावनाओंको ठेस न लगे—इसलिये एक अनिश्चयात्मक उत्तर देकर बात समाप्त कर दी। मैं निराश लौटा और मुझे लगा कि मेरे पैरोंके नीचेकी धरती खिसक गयी। मुझे अन्यत्र जाना था। अतः कुछ दिनों बाद मैं स्वर्गाश्रमसे विदा हुआ। बादमें श्रीराधाष्टमीके उत्सवपर मैं पुनः गोरखपुर आया। मैंने श्रीभाईजीका दर्शन किया और अपनी प्रार्थना पुनः दोहरायी। इस बार भी वे अपनी ही बात दोहराते रहे। किंतु मैं निराश नहीं हुआ। पुनः कुछ दिनोंके लिये मुझे गोरखपुर छोड़ना पड़ा। अपना काम समाप्त करके मैं पुनः गोरखपुर लौटा और स्थायीरूपसे यहीं रहने लगा। कुछ दिनों बाद मैंने पुनः अपनी प्रार्थनाका स्वर तीव्र किया। इस बार वे कुछ अनुकूल लगे और अन्ततः सन् १९६१के प्रारम्भमें उन्होंने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार परीक्षा-की कसौटीपर पूरी तरह कसनेके लिये उन्होंने लगभग एक वर्षका समय लिया। संतोंके सहज स्वभावको—उनकी कोमल चित्तवृत्तिको जानते हुए मुझे विश्वास था कि मेरी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जायगी; किंतु इस व्यवहारसे उन्होंने न केवल मेरी परीक्षा ली, बल्कि इस कथनकी सत्यता भी सिद्ध कर दी कि संतोंका चित्त 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' होता है। इस घटना-से मुझे यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि श्रीभाईजी परोपकारके लिये भी किसीके धनको स्वीकार करनेमें कितने सतर्क थे। वे धन देनेवाले व्यक्तिकी पूरी परीक्षा कर लेनेके बाद ही उसके धनका परोपकारमें उपयोग करते थे।

निस्संदेह हम उनके अभावसे दुःखी हैं, किंतु साथ ही यह भी अनुभव करते हैं कि वे हमारे बीचमें उपस्थित हैं—वे हमारे साथ हैं। श्रीभाईजीके प्यार एवं महत्त्वकी अनेकों मधुर स्मृतियाँ मेरे हृदयमें हैं और वे जीवनकी अमूल्य निधि हैं।

●

आर्त एवं विकलाङ्गोंके सेवक

श्रीपरमेश्वरीदयालजी, एडवोकेट

श्रीभाईजीसे मेरा परिचय सन् १९३२ ई०के आस-पास हुआ। श्रीभाईजीने स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्व स्वतन्त्रता-आन्दोलनरूप यज्ञमें आहुति दी थी। जब दूसरा विश्व-युद्ध आरम्भ हुआ, तब श्रीभाईजीने स्वतन्त्रता-सेनानियोंकी सहायतामें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। वे अपने व्यवहार-में इतने निर्मल थे कि अंग्रेज अधिकारी न तो कभी उनपर शङ्का करते थे और न सामान्य जनताके प्रति किये जानेवाले दुर्व्यवहारोंको रोकनेके लिये दिये गये उनके सुझावोंका अनादर करते थे। देश-भक्तोंके लिये वे दिन बड़ी कठिनाइयोंके थे और सामान्यतः हिंदुओंको अंग्रेज अधिकारियोंका विश्वास प्राप्त न था, यद्यपि युद्धके लिये जनतासे मिलनेवाली सहायताका अधिकांश हिंदुओंसे ही प्राप्त होता था। मैं जानता हूँ कि वैसे दुर्दिनोंमें भाईजीने जनता और स्वतन्त्रताके सेनानियोंकी नैतिक, आर्थिक एवं भौतिक दृष्टिसे ऊँची-से-ऊँची मानवोचित सेवा की। श्रीभाईजी सबके विश्वासपात्र थे।

वे अधिकारियोंको जनताके प्रति उग्रताका नंगा नाच करनेसे रोकते थे। देश-भक्तिको ताकपर रखकर अनुचित उपायोंद्वारा धन-मान प्राप्त करना युद्धकालमें बड़ा सहज था और बहुतोंने इसका लाभ भी उठाया; किंतु 'भाईजी' इन सबसे ऊपर उठ चुके थे। मेरे सुपरिचित एक जिलाधीशने मुझसे कहा कि मैं भाईजीको इसके लिये तैयार करूँ कि वे अपनी पसंदकी कोई भी उपाधि चुन लें। जब मैं भाईजीसे इस प्रस्तावको लेकर मिला, तब उन्होंने उसे ठुकराते हुए कहा कि "आप कलक्टर तथा कमिश्नर—दोनोंसे कहिये कि 'भाईजी अपनेको इसका पात्र नहीं मानते'।" भाईजीका सदासे यह विश्वास था कि सच्चे सेवकको अपनी सेवाओंके बदले कोई मूल्य स्वीकार नहीं करना चाहिये और वे बिना किसी लोभ और भयके द्वितीय विश्व-युद्धके कठिन समयमें जनताकी महान् सेवाएँ करते रहे।

उनके गम्भीर एवं विशाल ज्ञानके विषयमें मेरा कुछ लिखना सूर्यको दीपक दिखानेके समान है। गोरखपुर और सम्पूर्ण हिंदूधर्मके प्रति उनकी देन अवर्णनीय है। इस देशके इस कोनेसे उस कोनेतक यात्रा करते समय मैंने देखा है कि भाईजीकी देख-रेखमें प्रकाशन-कार्य करनेवाले गीताप्रेसके कारण गोरखपुरका पता बताना कितना सहज हो गया है।

उनकी जन-सेवा किसी प्रकारकी मानसिक संकीर्णतासे कलङ्कित नहीं थी। मानव-जातिकी सेवा करते समय तथा उसका पथ-प्रदर्शन करते समय उन्होंने कभी भेद-भावको अपने मार्गमें नहीं आने दिया। उन्होंने सभी आर्त्त मनुष्योंकी समानरूपसे सहायता की, चाहे वे मुसल्मान, ईसाई, हिंदू अथवा अन्य किसी धर्मके माननेवाले क्यों न हों। उन्होंने पशु-पक्षियों-तककी भी सहायता की।

जब हमलोगोंने गोरखपुरमें 'श्रीरामकृष्ण-मिशन-समिति'की स्थापना की, भाईजीने ही हमारा सबसे अधिक उत्साह-वर्धन किया और अपना संरक्षण प्रदान किया। 'सनातन-धर्म-संस्कृत-

पाठशाला' गोरखपुरके संचालनमें मुझे बराबर भाईजीका सहयोग मिला, जिससे वह पाठशाला सुचारुरूपसे चल रही है। उन्होंने पाठशालाको बहुत-सी संस्कृत पुस्तकोंका दान भी दिया। 'मूक-बधिर-विद्यालय' उन्हींकी देन है। जब कभी किसी कामके लिये सहायताकी आवश्यकता हुई, वह उनसे मिले बिना नहीं रही। उन्होंने मुझे ईश्वरके प्रति विश्वास रखकर अनेक सामाजिक सेवाओंकी व्यवस्था एवं संचालन करनेके लिये उत्साहित किया; क्योंकि आर्त्त एवं विकलाङ्गोंकी सेवा ईश्वरकी सर्वोत्तम सेवा है।

उन्होंने मुझे अनेक प्राणी-सेवासे अनुप्राणित संस्थाओंमें सहयोग देनेके लिये प्रेरित किया। मैंने वैसा ही किया और पोद्दारजीके निर्देशनके कारण आज वे सब फल-फूल रही हैं।

एक बार मैंने उनसे पूछा कि 'क्यों लोग धार्मिक विधि-विधानोंपर इतना अधिक व्यय करते हैं? साधारण जनता उसीको भगवान्की सच्ची पूजा मान लेती है।' श्रीभाईजीने मेरा समाधान करते हुए बतलाया कि 'उपासनाके प्रारम्भमें प्रतीक अनिवार्य होता है।' मैंने भी उपासनाकी वही विधि अपनायी और ईश्वरमें विश्वास तथा मानवताकी सेवाके मार्गमें श्रीभाईजीके निर्देशोंका पालन किया।

श्रीभाईजी मानवताके निःस्वार्थ सेवक, साधु पुरुष और भगवान्के अत्यन्त निकट पहुँचे हुए थे। जनताने, जो प्रखर आलोचक और दोष-दर्शक होती है, कभी श्रीभाईजीकी आलोचना नहीं की। जहाँतक मुझे ज्ञात है, भाईजीने अपने नामपर किसी संस्थाका नामकरणतक नहीं होने दिया, फिर भी वे अमर हैं। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि भाईजी-जैसी मानवताका सर्वाङ्गीण कल्याण करनेवाली आत्माओंको फिर इस देशमें भेजें।

●

मेरा हृदय भरा है

डा० श्रीरामदयालजी भार्गव

भाईजी बड़े धार्मिक, करुणामय, परदुःखभञ्जनहार तथा भगवान्के अनन्य भक्त थे। उनका सदा यही कहना था कि 'मानव-शरीरको प्राप्त करनेका एकमात्र उद्देश्य भगवान्को प्राप्त करना ही है।'

मेरा सौभाग्य श्रीभाईजीके सम्पर्कमें आनेका सन् १९३७ में हुआ। मैं रतनगढ़की 'मारवाड़ी सहायक समिति'में डाक्टरके पदपर सन् १९३५ से ७० तक रहा। यह स्थान श्रीभाईजीके निवास-स्थानके समीप है। अतएव जब भी अवकाश मिलता, मैं श्रीभाईजीके यहाँ जा पहुँचता। इससे मुझे उनके जीवनको अत्यन्त निकटसे देखनेका अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने देखा है कि भाईजीका भीतरी जीवन बाहरी जीवनकी अपेक्षा भी अधिक समुज्ज्वल और प्रेरणाप्रद था।

श्रीभाईजीकी पावन स्मृतिमें मेरा हृदय भरा है। अनुभवकी स्मृतियाँ अनेक हैं, वाणीमें वे व्यक्त नहीं हो सकतीं।

●

प्रधान श्रोताके रुपमें श्रीमद्‌भागवतके जुलूसका नेतृत्व करते हुए

श्रीमद्‌भागवत यज्ञकी पूर्णाहुति पर

इन्दौर रेलवे-स्टेशन पर एकत्र विराट् जनसमूहको धर्मोपदेश
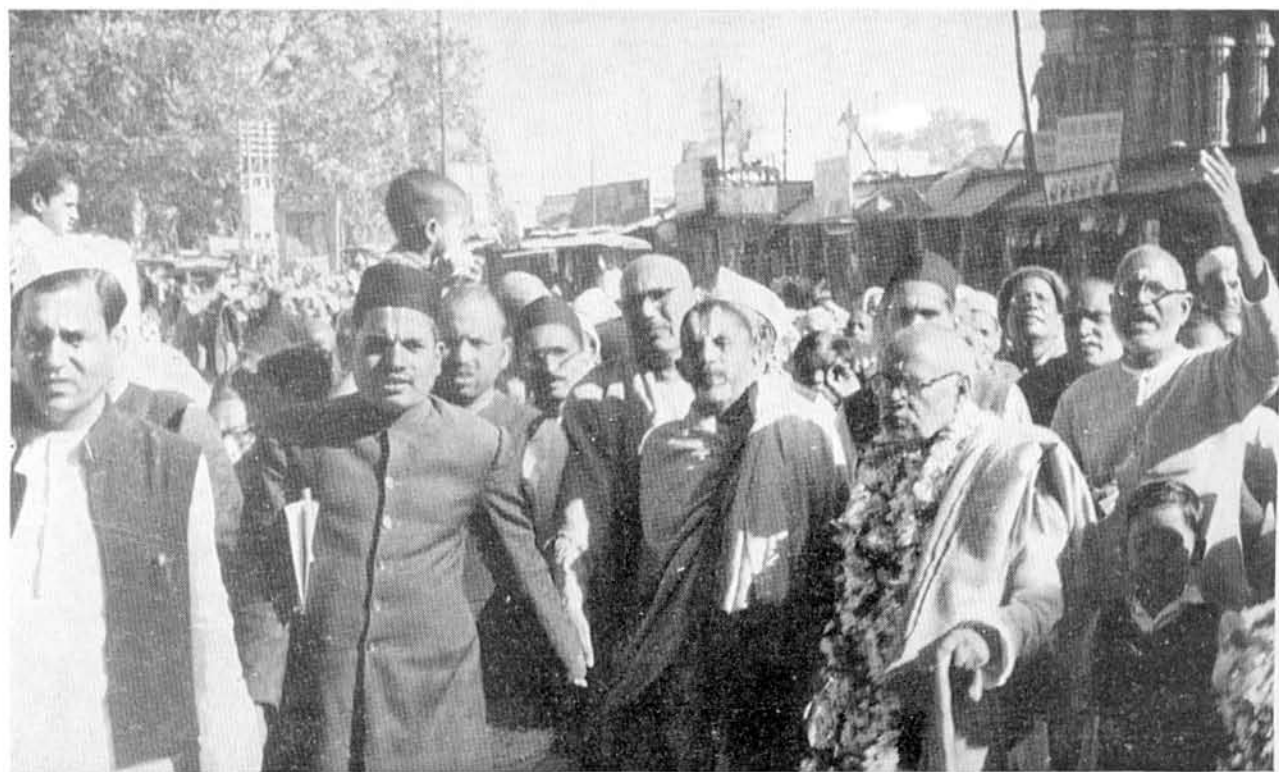
उज्जयिनीकी वीथियोंमें तुमुल नाम-संकीर्तन

भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्‌की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

की

पुण्यस्मृति

श्रीभाईजीका पितृतुल्य स्नेह

डा० श्रीगोपालकृष्णजी सराफ, नेत्र-विशेषज्ञ

श्रीभाईजीका सरल स्वभाव, उनकी निश्छल मुस्कान, उनका स्नेहभरा मन कभी भुलाये नहीं भूलते। मेरे ऊपर उनकी जितनी कृपा रही है, उसका उल्लेख सम्भव नहीं है। यह मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे सदा उनका वात्सल्य मिलता रहा, यद्यपि मैं कभी भी उनकी कोई सेवा नहीं कर सका।

जबतक मैं गोरखपुर रहा, उनसे सामाजिक सेवाकी प्रेरणा मिलती रही। गोरखपुरके 'कुष्ठ-सेवाश्रम'में अवैतनिक डाक्टर होकर मैंने देखा कि कुष्ठ-रोगी कम्बलोंके अभावमें जाड़ेकी रातमें ठिठुरते हैं। वहाँके व्यवस्थापक श्रीत्रिपाठीजीने पूज्य भाईजीको इसकी सूचना दी। हम चाहते थे कि कहींसे चन्दा इकट्ठा करके कुछ कम्बल खरीदे जायँ। आश्चर्य कि उसी रात सब रोगियोंके लिये पर्याप्त कम्बल पहुँच गये। कम्बल देनेवालेने अपना नाम नहीं बताया। उस आश्रमके प्रति भाईजीकी सेवाएँ अप्रतिम हैं। भाईजीके दान सदा निःस्वार्थ और गुप्त ही होते थे।

एक दिन भाईजीने अपने किसी मित्रको मेरे पास नेत्र-परीक्षाके लिये भेजा। जब मैंने फीस लेनेसे मना किया, तब उन्होंने कहा—'भैया गोपाल, तुम इनकी फीस ले लो और इसके बदलेमें एक गरीब व्यक्तिकी आँख मुफ्त देख लेना।' उन्होंने ही मुझे गरीबोंकी सेवा करना सिखाया।

सन् १९५५में गोरखपुरमें मेरे चेम्बरका उद्घाटन करते समय भाईजीने यही आदेश दिया कि 'इस चेम्बरमें गरीबोंका भला करो।' मुझे खुशी है कि मैंने उनकी बात मानी और उससे मुझे कभी कोई क्षति नहीं हुई।

उनकी आँखमें बहुत वर्षोंसे मोतियाबिंद था। मैंने कई बार उनसे प्रार्थना की कि वे आपरेशन करवा लें। उन्हें इसके लिये कभी अवकाश नहीं मिला। बादमें उनका स्वास्थ्य गिरता गया। मेरे बहुत हठ करनेपर आखिर उन्होंने यह निश्चय किया कि गोरखपुरमें 'नेत्र-दान-यज्ञ' किया जाय और उस समय मैं उनकी आँखका आपरेशन भी कर दूँ। इसके लिये ६ फरवरी १९७१का दिन निश्चित हुआ। अचानक पूज्य भाईजीके हाथका लिखा १० जनवरीका पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि कैम्प तो होगा, किंतु वे अपनी आँखका आपरेशन नहीं करा सकेंगे, उनके पेटमें जो दर्द रहता है, वह इन दिनों बढ़ गया है।

मैंने कैम्पकी तारीख बदलकर २१ मार्च कर दी। उनके पेटका दर्द ठीक न होनेके कारण मैंने यह तारीख और भी आगे बढ़ायी। अकस्मात् २२ मार्चको पूज्य भाईजी उस महान् प्रकाश-पुञ्जमें लीन हो गये, जहाँ चर्म-चक्षुओंकी आवश्यकता ही नहीं रहती। ३ फरवरी ७१को गीतावाटिकामें मैंने चश्मेके लिये जब उनकी आँखकी जाँच की थी, तब यह नहीं सोच सका था कि मेरे लिये उनका वही अन्तिम दर्शन है।

गोरखपुरमें 'मूक-बधिर-विद्यालय'की स्थापना भी पूज्य श्रीभाईजीके प्रयाससे हुई और उन्होंने मुझे उसका मन्त्री बना दिया। सन् १९६० तक मैं गोरखपुरमें रहा, उस कार्यको निभाया। अपने कार्यकालमें मुझे पूज्य भाईजीके पितृ-तुल्य स्नेह और अक्षय आशीर्वाद मिले। उनसे जो सुझाव मिले, वे जीवनभर मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। उनका आशीर्वाद सदा मेरा सम्बल रहेगा।

●

हिंदुत्वकी दीप-शिखा श्रीभाईजी

श्रीलक्ष्मीशंकरजी वर्मा, एडवोकेट

समाज, देश एवं हिंदू-धर्मकी सेवामें अपने जीवनका क्षण-क्षण और शरीरका कण-कण समर्पित कर देनेवाले परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके प्रति हिंदू-समाज सदा ऋणी रहेगा। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके माध्यमसे उन्होंने हिंदू-संस्कृति एवं हिंदू-धर्मकी जो सेवाएँ की हैं, उन्हें कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। हिंदुओंके धार्मिक ग्रन्थोंका प्रकाशन करके उन्होंने हिंदुत्वके प्रचार एवं प्रसारमें अनुपम सहयोग प्रदान किया है।

देशमें जब कभी हिंदू-हितोंकी रक्षाके लिये कोई आन्दोलन, 'हिंदू-महासभा'द्वारा प्रवर्तित किया गया, तब उन्होंने हमें हर प्रकारसे सहयोग प्रदान किया। सन् १९६२में दिल्लीमें 'विश्व-हिंदू-धर्म-सम्मेलन'को सफल बनानेमें वे हर प्रकारसे सहयोगी रहे। स्वतन्त्र भारतमें गो-माताका वध हो, यह उन्हें सह्य नहीं था। इस कलङ्कको धोनेके लिये उन्होंने 'गो-वध-बंदी आन्दोलन'-को एकसूत्रता दी तथा उसके सम्पूर्ण आर्थिक भारकी व्यवस्था की। वे राष्ट्र-भाषा हिंदीके प्रबल पुजारी थे। हिंदू, हिंदी और हिंदुस्तानकी सेवा करना ही उनके जीवनका एकमात्र ध्येय था।

श्रीभाईजी निखिल विश्वमें हिंदू-संस्कृतिका प्रसार करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि 'हिंदूधर्म ही मानव-धर्म है। अतएव हिंदूधर्मकी सेवा ही सबसे बड़ी मानव-सेवा है।' वे सच्चे कर्मयोगी, हिंदुत्वके अधिवक्ता, परम गो-रक्षक, हिंदीके पुजारी, स्वाधीनताके सेनानी, क्रान्तिकारी, सिद्धहस्त लेखक, कवि एवं आजीवन हिंदुओंको प्रकाश देनेवाले महापुरुष थे। वे वास्तवमें हिंदुत्व-की दीप-शिखा थे। उनके निधनसे हिंदू-समाजकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति सम्भव नहीं है। ऐसी महान् विभूतिका स्मरण कर मैं अपनेको गौरवशाली अनुभव करता हूँ।

●

संसारमें पूर्णता प्राप्त करनेवाले मनुष्य दो प्रकारके होते हैं। एक वे, जो सत्यको पाकर चुप रहते हैं और उसके आनन्दका अनुभव बिना दूसरोंकी कुछ परवा किये स्वयं किया करते हैं। दूसरे वे, जो सत्यको प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन उसका आनन्द वे अकेले ही नहीं लेते, बल्कि नगाड़ा पीट-पीटकर दूसरोंसे भी कहते हैं कि आओ और मेरे साथ इस सत्यका आनन्द लूटो।

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

●

विश्व-संत-परम्परामें श्रीभाईजी

श्रीरामलाल

परमभागवत भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको विश्व-संत-परम्परामें अत्यन्त विशिष्ट स्थान प्राप्त है। निस्संदेह वे देश-काल-निरपेक्ष महान् विश्व-संत थे। उनके सार्वभौम संतत्वके आधार भागवत जीवन, लोककल्याणकी भावना तथा स्वानुभूतिपरक साधन-वैशिष्टच हैं। विश्व-संत-परम्परा-की बीसवीं शतीके भारतीय अध्यात्म-क्षेत्रमें महर्षि रमण, योगिराज अरविन्द और महात्मा गांधीके आत्मज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोगके समन्वयसे अभ्युदयशील भारतीय मानवको ही नहीं, विश्व-मानवको भी संत भाईजीने अपनी ऊँची रहनी और लेखनी-कथनीसे भागवत जीवन अपनानेकी प्रेरणा प्रदान की। विश्व-संत-परम्पराकी प्रगतिमें यह उनका महान् योगदान स्वीकार किया जा सकता है। वे भागवत मानव थे। उन्होंने जगत्को भागवत-दर्शन प्रदान किया। भागवत-दर्शनका आशय है——भगवान्को जानने अथवा उनसे प्रेम करनेकी दिव्य ज्ञान-ज्योति। प्रायः पचीस सालसे 'कल्याण'के सम्पादन-विभागमें उनके साथ काम करते हुए मैंने उन दयानिधिका सहज स्नेह प्राप्त किया। यदि उन महान् संतका धरतीपर जडविज्ञानसे प्रभावित वातावरणमें अवतरण न होता तो किस तरह असंख्य प्राणियोंको भगवान्की कृपाके सहारे भवसागरसे पार उतरकर अपना जीवन सफल बनानेकी भागवती प्रेरणा मिलती। वे भगवान्की पुण्यविभूति थे, उनका कार्य भगवान्का ही कार्य था।

संत भाईजीका भागवत जीवन मित्र-शत्रु और अपने-परायेके भेदसे परे था। उनके सम्पर्कमें आनेवाले प्राणियोंने उनसे आत्महित——भगवत्प्रेम ही प्राप्त किया, कल्याण और श्रेयके मार्गपर चलनेकी ही सीख पायी।

लोकहितकी सद्भावना उनके सार्वभौम व्यक्तित्वकी आधार-शिला थी। उनके तन, मन और वचनसे किसी भी प्राणीको क्षोभ नहीं हुआ और न उन्होंने ही अपने मन और वचनमें किसीके प्रति कभी क्षोभका भाव उठने दिया। बात-ही-बातमें एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि 'मैंने अपने मनमें किसीका भी कभी अहित नहीं सोचा, मैंने अपने हाथसे किसीका अपकार नहीं किया और वचनमें किसीके भी प्रति द्वेष नहीं व्यक्त किया।' यह थी उनके तन, मन और वचनकी निर्दोष तथा द्वेषरहित पवित्रता। गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसे ही लोकसंतोंके लिये कहा था——

तन करि, मन करि, बचन करि, काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे संत जन, रामरूप जग माहिं॥ (वैराग्यसंदीपिनी)

भाईजी लोकसंत थे। जिनके हृदयमें हरिका निवास होता है, वे ही तीनों लोकमें बड़े कहे जाते हैं। संत भाईजीके हृदयमें भगवान्का निवास था; क्योंकि वे 'अद्वेष्टा' थे। इस दृष्टिसे भाईजी हमारे बड़े थे, पूज्य थे। महात्मा नाभादासकी अपनी प्रसिद्ध रचना 'भक्तमाल'में स्वीकृति है——'**अगर कहै, त्रैलोक में हरि उर धारैं ते बड़े।**'

भाईजी परमभागवत अथवा भागवतोत्तम थे। समस्त प्राणियोंमें वे भगवान्‌को अधिष्ठित देखते थे। भागवत मानवकी कसौटी ही यही है कि वह सबमें भगवान्‌को और भगवान्‌में सबको देखे——

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

(श्रीमद्‌भागवत ११। २। ४५)

इस तरहकी भगवद्दर्शनकी भावना ही सर्वात्मबोधकी जननी है। **'वासुदेवः सर्वमिति'** समझनेवाले संत ही आत्मबोधके धनी होते हैं। इस तरहके संत संसारमें कम ही पाये जाते हैं। भाईजीकी भगवदाकारमयी दृष्टि——चित्तवृत्ति बड़ी व्यापक थी, गहन थी। मैंने उन्हें श्रीमद्भागवतका यह श्लोक उद्धृत करते प्रायः सुना था कि 'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, जीव-जन्तु, दिशाएँ, वृक्ष, नदी, समुद्र तथा और भी जितने भूत-समूह हैं, वे सब हरिके ही तो शरीर हैं; इसलिये सभीको अनन्यभावसे प्रणाम करना चाहिये।' और उन्होंने इस उद्धरणको अपने जीवनमें यथाशक्ति चरितार्थ करते हुए दूसरोंको भी इसी तरहका आचरण अपनानेकी आजीवन प्रेरणा दी——

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्‌भागवत ११। २। ४१)

मैंने उनके आचरण और वचनमें अद्भुत समन्वय देखा। वे करते अधिक थे, कहते कम थे। वे कुछ भी व्यर्थ नहीं कहते थे। उनके आचरण तथा वचन——दोनों-के-दोनों समान-रूपसे अव्यर्थ थे। उन्होंने सदा अपने आपको भगवान्‌के ही सांनिध्यमें विद्यमान अनुभव किया, जिनसे लोक-लोकान्तरकी समस्त वस्तुओंकी उत्पत्ति होती है। यही उनका सर्वात्मबोध अथवा भागवत-दर्शन है।

श्रीभाईजीकी साधनामें सदा, सर्वथा श्रीहरि ही श्रोतव्य, कीर्तनीय और स्मरणीय हैं। उन्होंने साधनाकी प्रारम्भिक और सिद्ध——दोनों अवस्थाओंमें भगवदाश्रयको ही श्रेय समझा। भगवदाश्रयकी नींव है——जागतिक प्रपञ्चके प्रति पूर्ण विरक्ति। समस्त आसक्तियोंके त्यागका ही रूप है——भगवदाश्रय। इस भगवदाश्रयकी व्याख्यामें श्रीभाईजी सत्सङ्गमें भगवान्‌की यह उक्ति उद्धृत किया करते थे कि 'मेरे भक्त मेरी सेवाको छोड़कर दिये जानेपर भी पाँच प्रकारके मोक्षको भी ग्रहण नहीं करते'——

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(श्रीमद्‌भागवत ३। २९। १३)

बीसवीं शताब्दीके विश्व-संतोंमें वे विशिष्ट भजनानन्दी महात्माके रूपमें प्रख्यात कहे जा सकते हैं। उन्होंने विश्वके अधिकाधिक प्राणियों——अध्यात्म-साधकों और जनसाधारणको भगवद्भजनानन्द-रस प्रदान किया। भगवद्भजन-रस-वितरणमें उनकी विशालहृदयता और आध्यात्मिक उदारताका परिचय मिलता है। संत भाईजीका स्वर्णिम संतत्व **'वासुदेवः सर्वमिति'**की

कसौटीपर खरा उतरा। आध्यात्मिक साधनाके इतिहासमें वे अमर हैं। उन्हीं-जैसे महान् भक्त-संतोंके लिये भगवान्‌की अक्षर विज्ञप्ति है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६। ३०)

परमभागवत भाईजीने तन, मन और धन—सर्वस्व भगवान्‌के चरणोंपर निष्कामभावसे समर्पित कर दिया। संत भाईजीने न तो किसी सम्प्रदायका प्रवर्त्तन किया न उन्होंने किसी विशिष्ट दर्शनका पक्ष लिया। उनका यह कार्य उन्हें विश्व-संत-परम्परामें गौरवपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित कर सका। भाईजीने परम्परागत शुद्ध भागवतधर्म और भगवत्प्रेम-मार्गका ही पक्ष लिया। वे वैष्णव संत थे। उनकी वैष्णवता विश्वजनीन थी। उन्होंने स्वानुष्ठित भागवतधर्मके प्रचार और प्रसारके लिये विश्व तथा भारतके किसी भी आध्यात्मिक संगठनके सिद्धान्तोंका खण्डन नहीं किया। उन्होंने तो सबमें भगवान्‌की व्यापकताकी अनुभूति की। अपनी इस आध्यात्मिक उदारताके नाते ही वे 'कल्याण'को माध्यम बनाकर विश्वके अधिकांश देशोंमें शुद्ध भागवत-धर्मका व्यापक प्रचार कर सके। उनका यह असाधारण कार्य था। उन्होंने अपने जीवनमें अनुभव किया कि भागवतधर्म—वैष्णवता ही एकमात्र विश्वधर्म है।

संत भाईजी भगवत्प्रेममार्गी थे। उनकी साधना-पद्धतिका उच्चतम आदर्श यह था कि लोकजीवन भगवत्प्रेमसे परिपूर्ण हो जाय। भगवत्प्रेमको उन्होंने जीवमात्रका परम पुरुषार्थ स्वीकार किया। भाईजीने कहा कि 'धर्ममूल तो भगवान् हैं। उन्हींसे प्रेम करना चाहिये। भगवत्प्रेम ही समस्त लोकमात्रका धर्म है।'

धर्ममूलं हि भगवान्, सर्ववेदमयो हरिः। (श्रीमद्भागवत ७। ११। ७)

विश्व-संत-परम्परामें संत भाईजीकी सर्वमान्य मौलिकता अथवा विशिष्टता यह है कि बीसवीं शतीके वैष्णवधर्म—वैष्णवसिद्धान्तमें भक्तोचित आचरणकी प्रतिष्ठा करके उन्होंने भागवतधर्म अथवा वैष्णवमतको लोकधर्म सिद्ध किया। भाईजीने श्रीराधाकृष्णकी प्रेम-प्राप्तिमें साधनाकी सिद्धि बतायी। उन्होंने कहा कि 'मेरे विश्वासके अनुसार श्रीराधाकृष्ण-तत्त्व सर्वथा अप्राकृत है, इनका विग्रह अप्राकृत है, इनकी समस्त लीलाएँ अप्राकृत हैं, जो अप्राकृत क्षेत्रमें अप्राकृत मन-बुद्धि-शरीरसे अप्राकृत पात्रोंमें हुई थीं। अप्राकृत लीलाएँ देखने, सुनने, कहने और समझनेके लिये अप्राकृत नेत्र, कर्ण, वाणी और मन-बुद्धि चाहिये।' संत भाईजीने अपनी 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' पुस्तकमें स्वीकार किया है कि 'श्रीराधामाधवकी साधना जगत्‌के काम-राज्यकी वस्तु तो है ही नहीं, उसकी अत्यन्त विरोधिनी है। श्रीराधारानीके स्वरूपतत्त्वका अनुशीलन और श्रीराधाभावका साधन कामके कलुषको सदाके लिये धो डालनेवाला है। यह रसमय है, आनन्दमय है, छविमय है, मधुरिमामय है और मोक्षतिरस्कारी दिव्य भगवद्भावको प्राप्त करानेवाला है।' इस तरह परमभागवत भाईजीने जगत्‌के लोगोंको दिव्य भगवत्प्रेमकी ओर आकृष्ट किया और विशेष ध्यान देनेकी बात तो यह है कि उन्होंने वैराग्यरसपूर्ण दिव्य भगवद्रागका अपने जीवनमें रसास्वादन करनेके बाद ही शब्दोंमें अभिव्यञ्जन किया। उन्होंने कहा कि "अन्यान्य

साधनोंद्वारा भगवान् अन्यान्य रूपोंमें प्राप्त होते हैं, परंतु भक्तिद्वारा तो वे 'प्रियतम' रूपमें मिलते हैं। यह प्रेम ही चरम या पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसमें मोक्षका भी संन्यास हो जाता है। यही जीवनका परम फल है ।" संत भाईजीने भगवत्प्रेमको ही विश्वजनीन भागवतधर्म स्वीकार किया । भगवत्साधना तो निस्संदेह निष्काम प्रेम—निर्मल भक्तिसे ही की जाती है, गोपीप्रेम अथवा गोपी-उपासना इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है ।

हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः । (श्रीमद्भागवत-माहा० २ । १८)

संत भाईजीने अपने जीवनमें यह सत्य चरितार्थ कर दिया कि श्रीराधा अनन्य भगवत्प्रेमकी प्रतिमा हैं। यह प्रेम ऊर्ध्वतम आध्यात्मिक सत्तासे लेकर शरीरतक सर्वाङ्गमें परिपूर्ण अथवा अखण्ड रहता है। इस प्रेमके द्वारा भगवान्के चरणारविन्दमें निरपेक्ष सम्पूर्ण आत्मदान अथवा समर्पण हो जाता है और प्रेमीके जीवनके कण-कणमें परमानन्द भर जाता है ।

वे नाम-रूपकी आसक्तिसे परे अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें स्वरूपानन्द—भावसमाधि और प्रियतम भगवान्—रसराज श्रीकृष्णके रसमय लीला-विहारमें लीन रहते थे । वे जीवन्मुक्त अथवा नित्यलीलास्थ तथा नित्यमुक्त संत थे । संत भाईजीके सम्बन्धमें यह बात निस्संकोच कहनेका साहस होता है कि उनका मन भगवद्रूप हो उठा था । उनके मनमें रसस्वरूप भगवान्के सिवा कुछ भी नहीं रह गया था। भगवान् स्वयं परमानन्दस्वरूप हैं। वे जब मनमें प्रवेश कर जाते हैं, तब वह पूर्णरूपसे उनके आकारका होकर परमानन्दमय—रसमय बन जाता है ।

विश्व-संत भाईजीने विश्वको यही संदेश दिया है कि 'मानव तभी सुखी और संतुष्ट हो सकता है, जब उसका जीवन भगवद्भक्तिसे परिपूर्ण हो जाय, भागवत जीवनसे ही संसारमें शान्ति और प्रेमका साम्राज्य स्थापित हो सकता है । हमें हमारी सारी चिन्ताएँ, निर्वाहकी भावनाएँ भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर देनी चाहिये; भगवान् हमारे कल्याणके लिये निरन्तर प्रस्तुत हैं ।'

●

अति कृपालु संतोष बृति, जुगल चरनमें प्रीत ।
नारायन ते संत बर, कोमल बचन बिनीत ॥
तजि पर औगुन नीर को, छीर गुननसों प्रीति ।
हंस संतकी सर्बदा, नारायन यह रीति ॥
तनक मान मन में नहीं, सब सों राखत प्यार ।
नारायन ता संत पै, बार बार बलिहार ॥

—श्रीनारायण स्वामीजी

●

भाईजी—आदमी नहीं, फ़रिश्ता

श्रीरियाज अहमद अन्सारी

पूज्य श्रीभाईजी महाराजके बारेमें कुछ बयान करनेसे पहले यह बतलाना जरूरी है कि मेरा उनसे परिचय कैसे हुआ।

बादशाह बाबरने अयोध्याके 'श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर'को तोड़कर मस्जिद बनवा दी और उसका नाम 'बाबरी मस्जिद' रख दिया था। तबसे उस स्थानके लिये बराबर हिंदुओं और मुसल्मानोंमें झगड़े व खूनखराबे होते रहे। सन् १९४९ में भी इस स्थानको वापस लेनेके लिये हिंदुओंमें तहरीक शुरू हुई, जिसकी वजहसे न केवल अयोध्या, बल्कि पूरे मुल्ककी फिजा खराब होने लगी। ऐसा देखकर मैंने एक ईमानदार मुसल्मानकी हैसियतसे एक बयान अखबारोंमें दिया कि—"इस्लाम किसी गैर-मुस्लिम धर्मके स्थानको तोड़कर मस्जिद बनानेकी इजाजत नहीं देता और बादशाह बाबरने अपने दौरे हुकूमतमें 'श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर'को तोड़कर तथा मस्जिद बनवाकर कोई इस्लामी काम नहीं किया है, बल्कि बाबरकी इस हरकतने हिंदुस्तानके हिंदुओंके दिलोंमें इस्लाम और मुसल्मानोंसे नफरत पैदा कर दी है। इसलिये आजके हम मुसल्मानोंको चाहिये कि "श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर' श्रीरामको माननेवाले हिंदुओंको वापस कर दें, ताकि यह नफरत हमेशाके लिये खत्म हो जाय।" इस सिलसिलेमें मैंने सरकारसे भी माँग की थी कि वे इस मन्दिरको हिंदुओंको वापस दिलानेके लिये कोई ठोस कदम उठायें।

मेरे इस बयानको अखबारोंमें पढ़कर श्रीभाईजीने मुझसे मुलाक़ात करनेके लिये मुझे बुलाया और मैं उनके निवास-स्थानपर जाकर उनसे मिला। कहनेको तो हमारी यह पहली मुलाक़ात थी; लेकिन भाईजीने मुझसे इस तरहकी बातें कीं, जैसे हम बहुत दिनोंसे एक-दूसरेको जानते रहे हों। उन्होंने बहुत सीधे-सादे प्यारभरे लफ़्ज़ोंमें मुझसे देरतक बातें कीं। जब मैं वापस जानेको तैयार हुआ, तब श्रीभाईजी भी न केवल खड़े हो गये, बल्कि मुझे अपने आफिसके दरवाजेतक छोड़ने आये। जब मैं रिक्शेपर बैठ गया, तब श्रीभाईजीने अपने दोनों हाथोंको जोड़कर मुझे सलाम किया और मैंने भी अपने दोनों हाथोंको जोड़कर उनके सलामका जवाब दिया। अपनी ज़िंदगीमें पहली बार मैंने दोनों हाथोंको जोड़कर सलामका जवाब दिया था, इसलिये कि हम मुसल्मानलोग एक ही हाथ उठाकर सलाम करते हैं या सलामका जवाब देते हैं। भाईजीके इस मुलाक़ातका मुझपर बहुत असर पड़ा और मैंने सोचा कि 'इतना बड़ा इन्सान मुझ-जैसे नाचीज आदमीसे इस तरह पेश आया कि इनमें अपने बड़े होनेका क़ोई गुमानतक नहीं है।' पूज्य श्रीभाईजीके बारेमें मेरे मनमें यह पहली राय कायम हुई।

श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिरकी तहरीक जो पकड़ती गयी, जिसकी वजहसे भाईजीसे मेरी मुलाक़ात सलाह व मश्वराहके सिलसिलेमें बराबर होती रही। अयोध्याके रहनेवाले एक हिंदू ब्रह्मचारी मुसल्मानोंके साथ हो गये और वे उत्तरप्रदेशके बड़े-बड़े शहरोंमें जाकर मुसल्मानोंके आम जलसेमें 'मस्जिद बाबरी'की हिमायत करते और मुसल्मानोंको तरह-तरहसे बहकाते और

मेरे ख़िलाफ भी बहुत बोलते रहे। वे गोरखपुर भी आये और यहाँ उन्होंने मेरे ख़िलाफ और जोरदार शब्दोंमें मुसल्मानोंको बरगलाया। मुस्लिम अख़बारात तो मेरे ख़िलाफ लिखते ही रहते थे। नतीजा यह हुआ कि पूरे उत्तरप्रदेश, और ख़ासकर गोरखपुरके मुसलमान मेरे मुख़ालिफ़ हो गये। मेरे रिश्तेदार व ख़ानदानके लोग भी मुझसे दूर रहने लगे और मुझे तरह-तरहकी तकलीफ़ें मिलने लगीं। मेरे वालिद साहबने मौलवियोंके दबावमें आकर मुझे ख़ुदसे अलग कर दिया। अब मेरे पास कारोबार करनेके लिये भी पूँजी नहीं थी। नौकरी आसानीसे नहीं मिलती, मैं बिल्कुल बेकार हो गया--हालाँ कि श्रीभाईजी बराबर मुझसे मुलाक़ातके दौरान कहते रहे --'भाई साहब, मेरे लायक कोई सेवा हो तो बिना संकोच कहियेगा। मुझे अपना ही समझिये, मैं कोई ग़ैर नहीं हूँ।' अफ़सोस, मैं बदनसीब भाईजीकी इनफैयाजाना बातोंका मतलब नहीं समझ सका और मेरे घर फ़ाक़े होने लगे। मेरा शरीर कमजोर होने लगा और मेरी हालत बीमारकी-सी हो गयी। इस कारण मैं कई दिन भाईजीसे मिलने नहीं जा सका। इस दौरान मेरे यहाँ लगातार तीन दिनोंतक खाना नहीं बना। मेरी लड़की शहेदा, जो इन दिनों एक दो सालके बच्चेकी माँ है, उन दिनों चार सालकी थी और मेरे दो बच्चोंसे छोटी थी, वह भूखसे बहुत रोने लगी। मेरे पास खानेके लिये कुछ नहीं था और न कोई पड़ोसी कुछ देनेवाला था--इसलिये कि मैं मौलवियोंके कहनेके अनुसार काफ़िर था, एक मस्जिदको मन्दिर कह रहा था, हालाँ कि मेरा कहना हिंदुओंकी तरफ़दारी करना नहीं था, बल्कि इस्लामके कानूनके मुताबिक़ था। लेकिन आज सच्चा मुसल्मान वह माना जाता है, जो गायकी क़ुर्बानी करे, ग़ैर-मुस्लिमोंको बुरा कहे, उन्हें गालियाँ दे तथा उनकी इबादतगाहोंको नुक़सान पहुँचाये। मैं इस क़िस्सेको यहीं छोड़ देना चाहता हूँ--इसलिये कि एक-न-एक दिन हम सबको उस ख़ुदाकी अदालतमें हाज़िर होना ही है, जो सबको पैदा करता है, पोसता है और अपनी अदालतमें बुलाकर सबके कर्मोंके अनुसार फ़ैसला करता है। मैं मुतमईन हूँ कि मेरा और मौलवियोंका मामला भी ख़ुदाकी अदालतमें ज़रूर-ज़रूर पेश होगा।

ख़ैर, मैं यह कह रहा था कि अपनी लड़की शहेदाकी हालत मुझसे देखी नहीं गयी और मेरी बरदाश्तकी ताक़त बिल्कुल ख़त्म हो गयी। मैंने सारी मुसीबतोंसे नजात पानेके लिये आत्म-हत्याका फ़ैसला कर लिया और आनेवाली रातका वक़्त इसके लिये मुनासिब समझा। इस फ़ैसलेसे मुझे एक सकून मिल गया और मैं इतमीनानसे अपने बिस्तरपर लेट गया। दिनके लगभग १० बजे थे। किसीने दरवाजा खटखटाया। मैं उठकर बाहर आया तो देखा, सड़कपर रुकी हुई मोटरके नज़दीक श्रीभाईजी खड़े हैं। मैंने उनसे अंदर आनेकी गुज़ारिश की और वे अंदर आकर एक कुर्सीपर बैठ गये। मैं उनके पास चारपाईपर बैठ गया, जिसपर थोड़ी देर पहले मैं लेटा हुआ था। भाईजीने मुस्कराते हुए मेरी मिजाज़पुर्सी की और कहा--'भाई साहब, आप तो बीमार-से लगते हैं।' जवाबमें मेरे मुँहसे सिर्फ़ 'जी' निकला, इसपर दूसरा सवाल भाईजीने किया--'क्या तकलीफ़ है आपको? कौन-सी बीमारी है?' भला, मैं उनसे कैसे कहता कि 'भाईजी, भूखा रहते-रहते कमज़ोर हो गया हूँ। इधर तीन दिनोंसे पानीके सिवा मुझे कुछ खानेको नहीं मिला, इसलिये मेरी हालत ऐसी हो गयी है।' मुझसे कुछ कहा नहीं गया, मैं ख़ामोश रहा।

मुझे चुप पाकर भाईजीने फिर बड़े तसल्ली-आमेज़ लफ़्ज़ोंमें कहना शुरू किया––'भाई साहब ! यह दुनिया दुःखकी जगह है । यहाँ सबको तकलीफ़ उठानी पड़ती है और सच्चे लोगोंपर तो और भी मुसीबत आती है––इसलिये कि भगवान् उनकी परीक्षा लेते हैं ।' भाईजीकी ये बातें मुझपर कोई ख़ास असर नहीं कर रही थीं; क्योंकि आज रातको अपने प्रोग्रामपर अमल कर लेनेके बाद मुझे दुनियाकी सारी मुसीबतोंसे छुटकारा मिल जानेवाला था । तो फिर मुझे उनकी बातोंमें क्या लुत्फ़ मिलता ? सिर्फ़ भाईजीके अदबमें मैंने एक फीकी-सी मुस्कराहटके साथ गर्दन हिलाकर उनके ख़यालातकी ताईद की । बातें करते हुए एक बड़ा-सा लिफ़ाफ़ा मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए उन्होंने फ़रमाया––'भाई साहब ! आपको इसकी ज़रूरत है, इसे रख लीजिये । इन्कार न कीजियेगा, नहीं तो मुझे बड़ा दुःख होगा ।' 'इसमें क्या है, भाईजी ?'––मैंने लिफ़ाफ़ा अपने हाथमें लेते हुए पूछा––हालाँ कि मैं समझ रहा था कि रुपयेके सिवा इस समय इसमें और क्या हो सकता है । भाईजीने फ़रमाया––'थोड़े रुपये हैं, इस वक़्त काम चलाइये । जल्दी ही मैं कारोबार करनेके लिये और पैसोंका भी इंतजाम करनेकी चेष्टा करूँगा ।' इतना सुनते ही मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरी सारी कमजोरियाँ एकदम दूर हो गयीं । मैंने कहा––'भाईजी, मैं आपके इन एहसानोंका बदला कैसे चुका सकूँगा ?' भाईजीने कहा––'भाई साहब ! यह कैसा एहसान और कैसा बदला ! आपको आराम मिल जाय, यही मैं चाहता हूँ ।' भाईजी बोलते रहे और मैं सोच रहा था कि इनको कैसे मालूम हो गया कि मुझे रुपयोंकी ज़रूरत है । किसने इनसे जाकर कह दिया ? मैं इसी विचारमें था कि भाईजीने फ़रमाया––'भाई साहब, मेरी आपसे एक प्रार्थना है । अगर आप इजाज़त दें तो मैं अर्ज़ करूँ ।' मैंने कहा––'हुक्म कीजिये, भाईजी ! आपका हर हुक्म मेरे सर-आँखोंपर होगा ।' पूज्य भाईजीने फ़रमाया––'आपने आज रात अपनी ज़िंदगीके साथ जो करनेका निश्चय किया है, वह ठीक नहीं । ज़िंदगी ख़ुदाकी दी हुई चीज़ है । इसे ख़त्म करनेका अधिकार भी उसीको है, आदमीको नहीं । आप इस इरादेको छोड़ दीजिये ।' भाईजीके मुँहसे इतनी बातें सुनकर मेरी हैरतकी इन्तहा न रही । उस लमहा ऐसा लगा, जैसे मुझपर बिजली गिर पड़ी हो । मेरे बदनके सारे रोंगटे खड़े हो गये । मैं सोचने लगा––'अपने सिवा मैंने इस इरादेसे किसीको भी बाख़बर नहीं किया, फिर इन्हें कैसे मालूम हुआ ? ज़रूर इनमें कोई ग़ैबी ताक़त है ।' ऐसा ख़याल आते ही मैं चारपाईसे उठकर खड़ा हो गया और बोला––'भाईजी, आप इन्सान नहीं हैं, फ़रिश्ता हैं ।' उन्होंने मुस्कराते हुए फ़रमाया––'मैं फ़रिश्ता नहीं हूँ ।' मैंने कहा––'तो फिर मेरे इस इरादेका आपको कैसे पता चला ?' उन्होंने फ़रमाया––'भाई साहब, दिलको दिलसे राह होती है । आपके दिलमें जो बात आयी, वह मेरे दिलको ज्ञात हो गयी ।' भाईजी इतना कहकर खुलकर हँस दिये । यह सब कुछ देखनेके बाद मुझमें भाईजीसे सजीद जवाब-सवाल करनेकी ताक़त ख़त्म हो चुकी थी । मैं ख़ामोश हो गया । अब भाईजीने उठते हुए कहा––'मुझे आज्ञा दीजिये, फिर मुलाक़ात होगी ।' 'जैसी आपकी मर्जी'––कहते हुए मैं उनके साथ मोटरतक गया और उनको हाथ जोड़कर नमस्ते कहते हुए रुख़सत किया और अंदर आकर लिफ़ाफ़ा खोलकर देखा और गिनती की तो सौ-सौके बीस नोट, यानी २,००० रुपये थे । इससे कुछ ही देर पहले मेरे पास दो रुपये नहीं थे और अब दो हज़ार रुपये थे । उस समय वे दो हज़ार मेरे लिये दो लाख नहीं––दो करोड़के बराबर थे । लगभग बीस दिनों बाद भाईजीने

मुझे आठ हज़ार रुपये और दिये, तब मैंने उनसे अर्ज़ किया कि 'भाईजी ! मैं ये रुपये आपको कैसे वापस करूँगा ?' तो उन्होंने फ़रमाया—'भाई साहब, इन्हें वापस करनेकी ज़रूरत नहीं है। मैं कोई क़र्ज़ नहीं दे रहा हूँ, आपकी सेवा कर रहा हूँ। इन रुपयोंसे आप कारोबार करके अपने बाल-बच्चोंकी परवरिश कीजिये ।'

मेरा ख़ान्दानी पेशा हैंडलूमसे कपड़े बनवाना है। भाईजीके दिये हुए पैसोंसे मैंने एक छोटा-सा मकान बनवाया और हैंडलूम लगाकर कारोबार शुरू कर दिया। मेरे परिवारकी ज़िंदगी आरामसे बसर होने लगी।

इस वाक़यासे मेरे मनमें भाईजीके लिये जो राय क़ायम हुई, वह यह थी कि वे आदमी नहीं, फ़रिश्ता हैं और सच भी है, सारी उम्र भाईजीने मुझ-जैसी नाचीज़के साथ जिस प्यार और हमदर्दीका ही नहीं, सगे भाईका-सा सलूक किया, वह इस ज़मीनपर नहीं दीखता। जब भी मुझे तकलीफ़ होती, मैं उनके पास चला जाता और वे मेरी मदद किये बिना नहीं रहते। सिफ़्त यह थी कि वे मुझे हमेशा देकर भी मुझे और मेरी इज़्ज़तको ऊँचा रखते। 'फ़रिश्ता' भी ऐसा सलूक करता होगा, मुझे शक है।

भाईजी हर मजहबकी इज़्ज़त करते और हर मजहबी पेशवाका नाम बड़ी इज़्जत व आदरके साथ लेते थे। वह पूजाकी तरह नमाज़की भी कदर करते थे और कई बार उनसे बातें करते हुए नमाज़का समय हो गया तो मैंने नमाज़ उनके आफ़िसके कमरेमें पढ़ी। वे नमाज़ पढ़नेके लिये साफ-सुथरी बिछी हुई चटाईपर कोई और साफ कपड़ा या कम्बल बिछवा दिया करते और वज़ूके लिये पानीका बन्दोबस्त कर देते थे।

२२ मार्च १९७१को भाईजीकी रूह उनके फ़ानी जिस्मसे परवाज़ कर गयी और उनके फ़ानी जिस्मको गीतागार्डेनमें उनकी कोठीके पीछेकी तरफ चिता बनाकर आगके सुपुर्द कर दिया गया, जिसने उस जिस्मको ख़ाक कर दिया। जिसे छूनेके लिये मुल्कके कोने-कोनेसे अक़ीदतमंद आया करते थे और वह पाकीजा ख़ाक आज भी चिताके चबूतरेमें अच्छी तरहसे महफ़ूज़ है, जिसकी जियारतके लिये लोग दूर-दूरसे आते हैं। मैं अब भी गीतागार्डेन जाता हूँ और भाईजीके कमरेमें जाकर मुझे ऐसा लगता है कि वे मौजूद हैं। हाँ, उनका फ़ानी जिस्म नहीं रहा। लेकिन उनकी रूह कमरेमें ही नहीं, बल्कि गीतावाग़ीचाके कण-कणमें मौजूद है।

मेरी ख़्वाहिश है और भाईजीसे सम्बन्धित सभी लोगोंसे प्रार्थना है कि जिस मकानमें पूज्य भाईजीका फ़ानी जिस्मका रूहसे रिश्ता टूटा और जिस चितापर उनके फ़ानी जिस्मको आगके सुपुर्द किया गया, उसे महफ़ूज़ रखा जाय और उनकी रोजमर्रहकी इस्तेमालकी चीजें और दीगर निशानियोंकी भी हिफ़ाज़त की जाय, ताकि आज नहीं, बल्कि वर्षों या सदियों बाद जब कोई संत या विद्वान् महापुरुष उस अज़ीम हस्तीके बारेमें छान-बीन करे तो उसे इन सब चीज़ोंसे मदद हासिल करके उस मसलेको हल करनेमें आसानी हो, जिसे मौजूदा ज़मानेमें हमलोग 'भाईजी'-के साथ और नज़दीक रहते हुए भी हल करनेमें नाकामयाब रहे।

फ़रिश्ता-सिफ़त इन्सान

बहिन बी० बेगम मौदहा

मुझे जब इस बुजुर्ग और फ़रिश्ता-सिफ़त इन्सान माननीय हनुमानप्रसादजी पोद्दारके अपने बीचसे उठ जानेकी ख़बर मिली तो ज़मीन पाँव तलेसे निकल गयी। घंटों कुछ भी समझमें न आया कि क्या ऐसी शख़सियत भी फ़ना हो सकती है। मौत तो जीतती ही है और सब उससे हार मानते हैं।

मेरा सम्पर्क आदरणीय पोद्दारजीसे मेरे पति 'सगीर साहब'की मार्फ़त १९५२ से रहा है। जिस समय मेरे पति चित्रकूटमें राजकीय ड्यूटीपर थे। उन्होंने पोद्दारजीकी इतनी अधिक तारीफ व बड़ाई की कि मैं चकित रह गयी और फिर मुझे मिलाने ले गये। जब मैंने उन्हें अदबसे सलाम किया और मेरे पतिने मेरा परिचय दिया तो पोद्दारजीने फ़रमाया—'ख़ुश रहो, बेटी! लोगोंके दुःख-सुखमें शरीक रहोगी तो अमर रहोगी।' और भी बातें हुईं। तबसे वे मुझे बराबर 'कल्याण' भेजते रहे। कई बार उन्होंने लिखा कि "तुमलोग कुछ 'कल्याण'में लिखो।"

१९६१ ई० में जब मैं अपने पतिके साथ स्वर्गीय राहुलजीको उनकी बीमारीमें कुछ सामग्री देने दार्जिलिंग गयी, तब पोद्दारजीका ज़िक्र मेरे पतिने छेड़ दिया। उसपर स्वर्गीय राहुलजीने कहा था—'हनुमानप्रसादजी पोद्दार जो सेवा-कार्य कर रहे हैं, उससे वे अमर रहेंगे। उनकी सेवाएँ लोगोंको अवश्य याद रहेंगी।'

पोद्दारजी एक महान् व्यक्ति, फ़रिश्ता-सिफ़त—भलाइयोंसे भरपूर और द्वेषभावसे अलग व दूर रहनेवाले, सच्चे मानवधर्मके पुजारी और राष्ट्रीय एकताके महान् स्तम्भ थे।

●

संसारमें सबसे बड़ा देश वही है, जिसने सबसे अधिक संत पैदा किये हों। और सबसे अधिक उन्नतिशील और समृद्धिशाली जाति वही है, जो अपने संतोंका आदर करती है और उनके उपदेशोंका और आदर्शोंका अनुसरण करती है। इस पुण्यभूमि भारतकी सच्ची सम्पत्ति और गौरव संत ही हैं। और जबतक उसकी पवित्र भूमिमें एक संत भी विद्यमान रहेगा, तबतक उसके गौरवकी ज्योति कभी फीकी नहीं पड़ सकती। संत, योगी, महात्मा और महर्षि आज भी इस भूमिको अलंकृत कर रहे हैं; उनमेंसे कुछको संसार जानता है और कुछ सर्वथा अप्रसिद्ध हैं। उनकी अहंकारशून्य शक्ति ही आज संसारको ध्वंससे बचाये हुए है। उनकी सर्वदेशीय आध्यात्मिकशक्ति—उनकी चैतन्यशक्ति—उनका तेज ही चुपचाप मानवजातिका कल्याण कर रहा है। उन संतोंकी सदा जय हो!

—स्वामी श्रीशुद्धानन्दजी भारती

●

अद्भुत पारस

पं० श्रीतारादत्तजी मिश्र

परमपूज्य श्रीभाईजीके साथ मेरा क्या सम्बन्ध था, इसे मैं स्वयं ही ठीक-ठीक नहीं समझता। हाँ, इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि मुझ-जैसा एक तुच्छ प्राणी उन्हें जितना अपना मान सका, उससे अनन्तगुना अधिक उन्होंने मुझे अपनाया। मैं श्रीभाईजीको अपना बड़ा भाई मानता हूँ और संतके रूपमें अपना आराध्य। १९७०की फरवरीमें मैं गोरखपुर श्रीभाईजीके दर्शनार्थ गया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य ढीला था। जब मैं वहाँसे लौटने लगा, तब भाईजीने मेरा पैर छूना चाहा। मैंने कहा—'भाईजी, आप बड़े हैं तथा मैं आपको आराध्य मानता हूँ।' पर श्रीभाईजी न माने। उन्होंने कहा—'आप पण्डित हैं, पूज्य हैं।' अन्तमें विवश होकर मुझे उनका प्रणाम स्वीकार करना पड़ा। ऐसी थी उनकी ब्रह्मण्यता, ऐसी थी उनकी विनयशीलता।

भूतकालमें, वर्तमानमें और भविष्यमें भी जो लोग परोक्ष या अपरोक्ष श्रीभाईजीके और उनकी कृतियोंके सम्पर्कमें आ चुके हैं, या आयेंगे, उनका रोम-रोम नैसर्गिकरूपसे हार्दिक भावसे यह कह उठेगा—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

ठीक ही है, जो भगवान्‌के लिये कहा जाता है, उसे भक्तके लिये कहना पूर्णतया उचित और युक्तिसंगत है ही।

शास्त्र कहते हैं—'संत एक अद्भुत पारस हैं, जो अपने सम्पर्कमें आनेवाले लोहेको सोना ही नहीं बनाता, बल्कि उसे अपनी ही तरह पारस बना देता है।' यह संत-महिमा है। श्रीभाईजी ऐसे ही अद्भुत पारस थे। वे आज भी अपनी कृपाकी शक्तिसे किसीको भी उच्चतम भाव प्रदान कर सकते हैं।

•

महापुरुषोंके चरित्र, लेखादि सबसे मनुष्योंका उद्धार होता रहता है। भक्तोंका जन्म ही 'धर्मसंस्थापनार्थाय' ही होता है। भगवान् तो कभी-कभी, जब पाप इतना बढ़ जाता है कि पापियोंका विनाश किये बिना काम नहीं चलता, तब अवतार धारण करके आते हैं; पर भक्तजन तो सर्वदा प्रत्येक युगमें प्राप्य रहते हैं। इसीसे किसी अंशमें उनकी भगवान्‌से भी अधिक महिमा बतायी गयी है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

•

कुछ सुखद स्मृतियाँ

पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी

जब 'कल्याण'का 'रामायणाङ्क' निकलनेवाला था, उसी समय मैं 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें काम करनेके लिये श्रीभाईजीके पास गया। उन दिनों 'कल्याण'का सम्पादकीय विभाग गीताप्रेसकी आध्यात्मिक साधनाका मुख्य केन्द्र था। श्रीभाईजीकी संनिधिमें साधकवृन्द, जो गीता-प्रेस या 'कल्याण'के प्रबन्ध-विभागके कार्यकर्त्ता थे, संयमशील और भागवत-जीवनकी चर्यामें रत रहते थे। वस्तुतः यही उनके जीवनका मुख्य लक्ष्य था। और इसके अतिरिक्त उनकी जो जीवनचर्या थी, वह गौण थी। उन दिनों त्यागमय और सेवाका जीवन व्यतीत करनेवालोंका समाजमें काफी आदर और प्रतिष्ठा थी और इस प्रकारके जीवनमें रस भी मिलता था। उन दिनों गीताप्रेसमें त्यागी और सेवाभावसे अनुप्राणित होकर कार्य करनेवाले कई साधक थे। वेतन-भोगी कर्मचारियोंपर भी उनके जीवनका प्रभाव था।

'कल्याण'में कार्य प्रारम्भ करनेके पूर्व क्रान्तिकारी गतिविधिके साथ मेरा वर्षोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतएव यहाँ आनेसे मुझे अनुभव होने लगा कि मैं एक नये ढंगकी संस्थामें आ गया। श्रीभाईजीके भगवद्दर्शनके बारेमें विश्वास होनेके कारण उनके प्रति मेरे हृदयमें असीम श्रद्धाका भाव था। मैंने इसी कारण उनसे अपने भगवद्दर्शनके अनुभवके विषयमें कभी बातें नहीं कीं। उन दिनों श्रीभाईजी 'सद्गुरु'के समान साधकोंको पथ-प्रदर्शन करते थे। सत्सङ्गमें बैठनेवाले प्रायः साधक होते थे। सबको अपनी नित्य साधनाके विषयमें, नित्यचर्याके विषयमें डायरी रखनी पड़ती थी। साधनकी कुछ क्रिया ऐच्छिक होती थी और कुछ अनिवार्य। चरित्रकी शुद्धतापर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसलिये साधक लोग अपनी भूलें भी लिखकर लाते थे। साधक लोग अपनी डायरी श्रीभाईजीको दिखलाते थे और साधनाके विषयमें परामर्श करके साधन-पथमें अग्रसर होनेका प्रयास करते थे। श्रीभाईजीका तो साधनमय जीवन था ही। इस प्रकार साधक-मण्डलीकी साधन-क्रियाके द्वारा गीताप्रेस एक साधन-शक्तिका केन्द्र बन गया, जिससे आकर्षित होकर दूर-दूरसे साधनाभिलाषी लोग परामर्शके लिये आते थे।

सत्सङ्गके पूर्व प्रतिदिन कीर्त्तनके द्वारा सत्सङ्गका वातावरण मुखरित होता था। साधकोंमें परस्पर बड़ा प्रेम था। श्रीभाईजीके प्रति उनकी श्रद्धा तथा भक्तिभावनाका तो क्या कहना? उस समयकी साधक-मण्डली श्रीभाईजीके प्रेम-प्रवाहमें सुस्नात होती रहती थी। श्रीभाईजीका जीवन प्रेमसे ओत-प्रोत था। उनके आचार और व्यवहारमें, साधना और सिद्धान्तमें सर्वत्र प्रेमका साम्राज्य था। गोपी-प्रेम, श्रीराधाके प्रेमका आदर्श उसी साम्राज्यके अन्तर्गत है। इस तत्त्वको समझे विना श्रीभाईजीके व्यक्तित्वको समझना दुष्कर है।

बीसवीं शताब्दीके तृतीय दशकमें विश्वके इतिहासमें एक अभूतपूर्व घटनाका सूत्रपात हुआ। यह घटना थी—भारतका मुक्ति-आन्दोलन, और इस आन्दोलनको प्रेरणा-प्रदान करनेवाली शक्ति

थी श्रीमद्भगवद्गीता। गीतापर भाष्य और टीकाएँ लिखकर शंकर, रामानुज आदि आचार्यों तथा अन्यान्य प्रसिद्ध विद्वानोंने ज्ञान या भक्तिके सिद्धान्तपर जोर दिया था। स्व० लोकमान्य तिलकके 'कर्मयोगशास्त्र'ने एक अभिनव दिशा दिखलायी, जो सामयिक थी और जिससे भारतीय शिक्षित समाजके कानोंमें **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** की गूँज व्याप्त हो गयी। भारत एक अप्रत्याशित चेतनासे चैतन्य हो उठा। क्रान्तिकारियोंकी गुप्त संस्थाएँ देशमें संगठित हो गयीं। देशभक्त युवक प्राणोंकी ममता छोड़कर क्रान्तिवादमें दीक्षित हुए।

यह तो राजनीतिक स्वतन्त्रताकी बात है। इसी स्वतन्त्रताके युद्धके दौरान बहुत-से आध्यात्मिक साधनोंके केन्द्र भी देशमें स्थापित हुए। स्वातन्त्र्य-युद्धके कुछ सेनानी आध्यात्मिक साधनोंमें प्रवृत्त हुए। यह भागवती प्रेरणा थी, कुछ भागवत पुरुषोंको जेल-जीवनमें ही दिव्य चेतनाकी अनुभूति हुई। उन्होंने जेलके एकान्त जीवनसे लाभ उठाया, उस अमूल्य समयको भगवच्चिन्तनमें लगाया और भगवत्कृपाके पात्र बने। जेलसे निकलनेके बाद वे साधन-भजनमें तथा इसके प्रचारमें लगे। भारतके जातीय जीवनको संतुलित करनेमें उनकी इस प्रकारकी सेवाओं-की बड़ी आवश्यकता थी।

ऐसे भागवत पुरुषोंमें दो नाम उल्लेखनीय हैं—श्रीअरविन्द और श्रीभाईजी। श्रीअरविन्द 'अलीपुर षड्यन्त्र केस'में पकड़े गये, जेलमें उन्होंने साधना की, उन्हें सत्यकी अनुभूति हुई और वे जेलसे निकलनेपर पांडिचेरीमें आश्रम बनाकर स्वयं योग-साधनामें रत रहे तथा विश्वके कोने-कोनेसे मेधावी साधक आकर उनके आश्रममें योगसाधन करने लगे।

श्रीभाईजीको ब्रिटिश सरकारने गिरफ्तार करके शिमलापाल नामक स्थानमें नजरबंद कर दिया था। उस नजरबंदीकी हालतमें श्रीभाईजीको एकान्त साधनाका सुअवसर प्राप्त हुआ। वहाँ निरन्तर साधनामें रत रहनेके फलस्वरूप उन्हें भगवत्कृपा प्राप्त हुई। भगवत्कृपासे उनका जीवन अध्यात्म-प्रधान हो गया। नजरबंदीसे मुक्त होनेपर राजनीतिसे आंशिक संन्यास लेकर वे आध्यात्मिक साधनामें लग गये। इसके बाद 'कल्याण'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। निरन्तर साधनामें रत रहकर श्रीभाईजीने 'कल्याण' और गीताप्रेसके प्रकाशनोंद्वारा जन-साधारणमें सदाचारकी स्थापनाके साथ विषयोंसे विरक्ति तथा साधन-भजनकी ओर रुचि एवं प्रीति बढ़ाने-का प्रयास किया। गीताप्रेसके द्वारा प्रचारित साधन-पद्धतिमें है—संध्या-गायत्री आदि नित्यकर्मों-को नियमितरूपसे करना, रामायण-गीता आदि धर्म-ग्रन्थोंका नित्य पाठ, नियमित संख्यामें नाम-जप, अपने आराध्यदेवको गुरु मानकर उनकी पूजा-अर्चना करना तथा सब कुछ भगवत्प्रीत्यर्थ करना और इन साधनोंको बराबर बढ़ानेकी चेष्टा करना। 'कल्याण'के द्वारा श्रीभाईजीने लाखों-लाखों मनुष्योंको नामजप तथा गीता-रामायण आदि सद्ग्रन्थोंके पाठके द्वारा मुक्ति-मार्गमें लगाया। लाखों मनुष्योंकी अध्यात्म-सम्बन्धी जिज्ञासाका समाधान किया।

स्वतन्त्रताके आन्दोलनमें भाग लेनेवाले कुछ लोगोंने अध्यात्मका मार्ग पकड़ा। ऐसे लोगोंमें-से कुछ लोगोंको श्रीभाईजीसे प्रेरणा मिली थी।

●

शील, विनय तथा करुणाकी एक साकार प्रतिमा

पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा

मनुष्य जबतक साथ रहता या जीवित रहता है, तबतक उसका ठीक मूल्याङ्कन नहीं हो पाता। भक्तशिरोमणि उद्धवने कृष्णवियोगके बाद ठीक ही कहा था——

कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह।
किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम्॥
दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि।
ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम्॥ (श्रीमद्भागवत ३।२।७-८)

कृष्णरूपी सूर्य क्या अस्त हुआ, मानो कालरूपी अजगरने हमारे घरोंको खा डाला। सब कुछ श्रीहीन हो गया। किसकी कुशलता क्या कही जाय? यह भूलोक, विशेषकर यदुवंशी तो नितान्त भाग्यहीन ही रहे, जो कृष्णके साथ रहकर भी उन्हें पहचान न पाये——इत्यादि।

श्रीशुकदेवजी-जैसे ज्ञानीको भी भगवान् श्रीकृष्णके लिये कम शोक न हुआ। श्रीकृष्ण-वियोग-पर उनकी परम हृदयहारिणी उत्प्रेक्षा देखते ही बनती है।

दशरथादि सत्पुरुषोंके वियोगमें भरत-वसिष्ठ-जैसे बड़े-बड़े ज्ञानी और धैर्यशाली लोगोंके ज्ञान और धैर्यका भी अन्त होता है और उनके भी शोक, प्रलाप और विलाप-कलापका वाणीसे वर्णन नहीं किया जा सकता। और तो और, यहाँतक कि स्वयं अशेष कल्याणगुणराशि भगवान् श्रीरामने सज्जनोंके वियोगसे कभी अत्यन्त खेद-खिन्न होकर कहा था——

गुणैरापूर्यते यैव लोकरत्नावली भृशम्। भूषार्थमिव तामङ्के कृत्वा भूयो निकृन्तति॥
(योगवासिष्ठ १।१३।३६)

कालिदास अपने समयके सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी एवं वेदान्तनिष्णात विद्वान् थे। पर भोजकी (नकली) मृत्युकी बात सुनकर भी वे पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े और उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा——

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते॥ (भोजप्रबन्ध ३२६)

वास्तवमें श्रीभाईजी भी इन्हीं दिव्य विभूतियोंकी रत्नमयी शृङ्खलाको अलंकृत करनेवाले एक अनमोल विशिष्ट मणि थे। भगवान्की इच्छानुसार ही वे उनकी नित्यलीलामें संनिविष्ट हुए, परंतु उनके वियोगमें कोई भी सहृदय व्यक्ति किस प्रकार क्या श्रद्धाञ्जलि अर्पण करे अथवा उनके किन गुणोंपर क्या प्रकाश डाले? उनके गुणोंकी सीमा न थी, जैसा कि ऐसे लोकोत्तर प्राणियोंमें देखा जाता है।

नीतिज्ञोंने शीलको सर्वोत्कृष्ट भूषण कहा है—**'शीलं परं भूषणम् ।'** इसी प्रकार विनय तथा करुणा आदि गुणोंके माहात्म्यके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ कहा गया है। अपने जीवनमें इन गुणोंको पूर्णतया उतार लेना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। श्रीभाईजी निश्चय ही शील, विनय और करुणाकी साकार मूर्ति थे। अन्तिम श्वासपर्यन्त उनमें इन गुणोंकी लेशमात्र भी विकृति देखनेमें नहीं आयी। उनके विनयपूर्ण शिष्ट व्यवहारने मानो उनके सामनेके सम्पूर्ण विश्वको वशमें कर रखा था। कभी किसीपर वे रुष्ट नहीं हुए, किसीसे उन्होंने कड़ी बात नहीं कही। जो उनके सामने एक बार हुआ, वही मन्त्र-मुग्ध हो गया, उनका दास बन गया। विनय ही विद्याको भूषित करता है। उनके विनयपूर्ण पत्र हजारों होंगे, जो अपनी उपमा नहीं रखते और इसीलिये लोगोंने उन्हें सुरक्षित रखा है। उनमेंसे कुछ तो परमोच्च कोटिकी साहित्यिक निधि हैं।

स्नेह तथा करुणाकी वे साकार प्रतिमा थे। उनका हृदय सदा आर्द्र पुष्प-सा सुकोमल था और वे सदा एकरस रहे। 'कल्याण' पत्र उनके अन्तर्हृदयकी विश्व-कल्याण-भावनाका ही प्रतीक था। वे वास्तवमें सबका सब प्रकारसे परम कल्याण करनेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहे। इसी आशयसे वे सत्सङ्ग कराते तथा 'शिव' नामसे परम कल्याणकी बातें 'कल्याण'में लिखते तथा लोगोंको व्यक्तिगत पत्रमें भी लिखते थे। उनकी वाणीमें अमृतभरा जादू था। यही हालत उनकी भावपूर्ण लेखनीकी थी। अक्षर बहुत सुन्दर और स्वच्छ। उसमें भी दिव्य सूक्ष्म भावका पुट। यों वे सबमें भगवद्भाव रखते थे। अन्तिम दिनोंमें भी श्रीभागवतके **'खं वायुमग्निं'** श्लोक-को सुनाकर उन्होंने सबको नमस्कार किया था। यह सब उनके शीलके अङ्ग थे। प्रत्येक 'कल्याण'के विशेषाङ्कके अन्तमें लिखी उनकी क्षमा-प्रार्थना भी अत्युत्कृष्ट एवं आकर्षक साहित्यिक वस्तु होती थी। श्रीभाईजीने अपना मन्तव्य लिखितरूपमें बहुत कुछ छोड़ा है और उन्होंने जिन बातोंको भी कहा-लिखा, समर्थ रामदासके समान अपने जीवनमें उतारकर ही कहा-लिखा।

श्रीभाईजीने अपनी पुस्तिका 'कल्याणकारी आचरण'में सामान्य व्यक्तिके लिये सदाचार, धर्म, भक्ति, विनय आदिके अपनाने, विद्यार्थियों एवं आधुनिक शिक्षा-प्राप्त युवकोंको विशेषरूपसे असंयम एवं उच्छृङ्खलताके परित्यागपूर्वक इन गुणोंको आत्मसात् करनेकी प्रार्थना की है। वास्तव-में सबको ऐसा ही करनेका यत्न करना चाहिये। मेरी दृष्टिसे यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

भगवान्‌के भक्त भगवत्स्वरूप ही होते हैं। उनकी मन-बुद्धि लीलामय भगवान्‌में ओत-प्रोत रहती है, और मन एवं बुद्धिद्वारा ही इन्द्रियादिका व्यापार परिचालित होता है। इसलिये भक्तोंके कार्य-कलाप और विचार-व्यापारको भी भगवान्‌की ही लीलाके तुल्य समझना चाहिये। जैसे भगवान्‌के धाम, लीला-क्षेत्र आदि तीर्थस्थान हैं, उसी प्रकार भक्तोंके निवास-स्थान और कर्म-क्षेत्र भी तीर्थ ही बन जाते हैं।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

गृहस्थ संतोंकी परम्परामें

श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय

साधारण सेवकसे लेकर करोड़पति मित्रतकके वे केवल 'भाईजी' थे। सभी उन्हें इसी नामसे सम्बोधित करते थे। बहुतोंको तो उनके वास्तविक नामका पता भी नहीं। वे समानरूपसे सबके स्वजन, सबके आत्मीय थे।

'कल्याण' तथा गीताप्रेसकी जो इतनी अधिक उन्नति हुई है, इसका श्रेय निश्चित रूपसे श्रीभाईजीको ही है। उन्होंने आरम्भमें ही निश्चय किया था कि 'कल्याण'के सम्पादन अथवा ग्रन्थ-प्रणयनके लिये वे एक पैसा भी पारिश्रमिक न लेंगे, भोजन-वस्त्र भी नहीं। परंतु कार्य अवैतनिक है, इसलिये जितना सरलतासे हो सके, उतना ही काम करो—इस प्रकारकी भावना क्षणमात्रके लिये भी भाईजीके मनमें नहीं आयी। वे घोर परिश्रम करते थे और भोजन-शयनके घंटोंको छोड़कर निरन्तर कार्यरत रहते थे।

'कल्याण'के प्रारम्भिक वर्षोंमें श्रीभाईजीके निवास-स्थानपर बिजली नहीं थी, अतः पंखे नहीं थे। गर्मीमें उत्तर-प्रदेशकी विकट गर्मीका अनुमान वही लगा सकता है, जो उन दिनों वहाँ कभी रहा हो। मैं भी सम्पादन-विभागमें था। कामके सिलसिलेमें जब-जब मैं भाईजीके पास गया, देखा कि सारा शरीर पसीनेसे लथपथ है, पर वे पसीनेकी ओर तनिक भी ध्यान दिये बिना लिख-पढ़ रहे हैं। आँखोंमें जलन होने लगती तो पास रखी कटोरीका पानी आँखोंमें लगा लेते थे।

श्रीपोद्दारजीके त्याग, परिश्रम और सेवाके परिणामस्वरूप उत्तरोत्तर उनका प्रभाव बढ़ता गया। गीताप्रेसके बहुमूल्य प्रकाशनों एवं 'कल्याण'. तथा उसके विशेषाङ्कोंके माध्यमसे श्रीभाईजीकी ख्याति देशमें ही नहीं, विदेशतक पहुँच गयी। समाजके शीर्षस्थ धनी उनके दर्शनको लालायित रहने लगे, किंतु वे वैसे ही सीधे-सादे 'भाईजी' बने रहे। अत्यन्त नम्रतापूर्वक वे सबसे यही आग्रह करते थे कि "मैं आपका भाई हूँ; मुझे और कुछ नहीं, केवल 'भाई' कहिये।" उनकी इच्छाके विरुद्ध एक अधिक शब्द 'जी' जोड़कर उन्हें सभी 'भाईजी' कहते थे। स्वयं मानरहित होकर दूसरोंका वे अत्यधिक आदर करते थे।

भाईजी दूसरोंके दुःखसे बहुत शीघ्र द्रवित हो जाते थे। उनका हृदय बहुत ही संवेदनशील था। किसीके कष्टोंसे परिचित होते ही सहायताके लिये उनका मन व्यग्र हो जाता था। ऐसे अवसरोंपर अपने धनिक मित्रोंके अयाचित स्वेच्छापूर्ण प्रदत्त धनका सदुपयोग करनेसे वे नहीं हिचकते थे। बाढ़के समय गीताप्रेसकी ओरसे हुई सेवा-सहायताको गोरखपुर-देवरिया आदि क्षेत्रोंके लोग कभी न भूल सकेंगे।

भाईजीकी दया दयनीय स्थितिके साक्षात्कारतक ही सीमित नहीं थी, लोगोंके दुःखभरे

पत्र पाकर भी वे उनकी सदैव सहायता करते रहते थे। कुछ चालाक व्यक्तियोंने उनकी इस प्रकारकी सहायतासे अनुचित लाभ भी उठाया। निर्धन, दुःखी और विधवाके रूपमें पत्र लिखकर ऐसे लोगोंने भी उनसे धन प्राप्त किया। बादमें पता चलनेपर साथी लोग ऐसे व्यक्तियोंके विरुद्ध कुछ करनेका आग्रह करते, परंतु श्रीभाईजी उनकी विवशता समझकर बात टाल देते थे। वे यथासम्भव किसीको भी दुःखी नहीं करना चाहते थे।

संतोंकी सेवा और सत्कारमें भाईजीको विशेष आनन्द मिलता था। भारतका शायद ही कोई ऐसा संत होगा, जिससे उनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क न रहा हो। यही कारण है कि परमपूज्य श्रीउड़ियाबाबा, श्रीहरिबाबा, श्रीखाकीबाबा, श्रीपौहारीबाबा तथा बाबा श्रीराघवदासजी आदि महान् संतोंकी कृपा भाईजीको प्राप्त थी। वर्तमानमें जो संत विद्यमान हैं, उन सबकी भी भाईजीपर बड़ी कृपा एवं आत्मीयता थी।

धर्मके प्रति भाईजीका दृष्टिकोण बहुत उदार था। सभी धर्मोंके प्रति उनके मनमें आदर-की भावना थी। 'कल्याण'के संत-अङ्क' तथा 'भक्ताङ्क'में विश्वके सभी देशों तथा धर्मोंके भक्तों-संतोंको सम्मानपूर्वक स्थान देना उनकी धार्मिक उदारताका परिचायक है।

योग-वेदान्तका अध्ययन-मनन तथा प्रकाशन करते रहनेपर भी भाईजी हृदयसे भक्त थे। अन्तिम वर्षोंमें उनके हृदयकी मधुरताके स्पष्ट दर्शन सबको होने लगे थे। श्रीराधा-जन्मोत्सवके अवसरपर वे तन्मय हो जाते थे। श्रीभाईजीने सरस पदोंकी रचना भी की है। उन पदोंको देखनेसे पता चलता है कि भाईजी कुशल कवि भी थे। उनके सरस गीतोंके कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। मधुरभावके गीतोंकी रचना करनेपर भी वे अपने प्रवचनसे साधकोंको बराबर सावधान करते रहते थे कि "गोपी-भाव' या 'मधुरभाव'की उपासना बड़ी ही ऊँची और दुर्लभ वस्तु है। भगवान्‌की विशेष कृपासे ही इसका अधिकार प्राप्त होता है। इसका तत्त्व-रहस्य ठीक तरहसे न समझनेके कारण ही साधारण मनुष्य बेसमझीसे इसका दुरुपयोग करने लग जाते हैं।"

भाईजी कबीर, नानक, दादू, नरसी, नामदेव, एकनाथ आदि गृहस्थ संतोंकी परम्परामें थे। इन संतोंकी भाँति उनकी भी यही मान्यता थी कि ईश्वरकी आराधना या प्राप्तिके लिये घर छोड़ना आवश्यक नहीं है।

सचमुच भाईजी तो, बस, 'भाईजी' ही थे। उनके समान वे ही थे। उनकी सभी बातें विलक्षण थीं, अलौकिक थीं। कहलाते तो वे 'भाईजी' थे, किंतु बड़े भाई, संरक्षकके साथ-साथ माँकी ममता और पिताके स्नेहसे भी उनका हृदय परिपूर्ण था। उनके सम्पर्कमें आनेवालोंको यही लगता था, जैसे वह अपने परिवारके परम प्रिय एवं परम आदरणीय व्यक्तिके समीप है।

स्मरण आते हैं मुझे वे दिन, जब 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें काम करते हुए मैं गौरवका अनुभव कर रहा था। कार्य ही लक्ष्य था। कोई निश्चित स्थान नहीं, कोई निश्चित समय नहीं। जीवनमें, बस, उतना ही समय आया, जब मैं देश-कालके बन्धनसे परे था। सन् १९४५की बात है—'गो-अङ्क'की तैयारी हो रही थी। एक गुजराती विद्वान्, जिनका इस विषयपर अच्छा

अधिकार था, बुलाकर रखे गये। वे लेख तैयार करने लगे; परंतु उन्हें हिंदी ठीक नहीं आती थी; वे गुजराती-प्रधान हिंदी लिखते थे और वह भी गुजराती लिपिमें। नागरी लिपिका अभ्यास उन्हें बिल्कुल न था। आवश्यकता थी, उन लेखोंका प्राञ्जल हिंदीमें अनुवाद करनेकी। श्रीभाईजी यदि चाहते तो सरलतासे कुछ ऐसे व्यक्तियोंको बुलाकर रख लेते, जिन्हें गुजराती-हिंदी दोनों लिपियों एवं भाषाओंका ज्ञान हो, किंतु अपने सहयोगियोंका विचार करके उन्होंने ऐसा नहीं किया। श्रीभाईजीने हमें बड़े स्नेहसे गुजराती वर्णमाला सिखायी और उन लेखोंको हिंदीमें अनुवाद करनेका भार सौंप दिया। अयोग्यतावश हमलोगोंसे इस कार्यमें भूलें होती थीं, जिन्हें श्रीभाईजी स्वयं शुद्ध करते थे। इसमें उनका समय एवं शक्ति––दोनों लगते थे, पर श्रीभाईजीको इसीमें प्रसन्नता थी। अपने सहयोगियोंके साथ ऐसा स्नेह-व्यवहार करनेवाले और कहाँ मिलेंगे। यह उनकी आत्मीयताका सांकेतिक निर्देशनमात्र है, वह तो अनुभवकी वस्तु थी। देश-विदेशके असंख्य भाग्यशाली व्यक्तियोंके हृदयपर श्रीभाईजीकी आत्मीयताकी मधुर छाप अङ्कित है।

हमारा दुर्भाग्य है कि अब श्रीभाईजीकी स्मृति ही शेष रह गयी है। भाईजीके चले जानेसे उनसे सम्बन्धित एक विशाल जन-समुदाय आज शोक-संतप्त है।

●

वह अवर्णनीय व्यक्तित्व

श्रीरामनिवासजी ढंढारिया

जगन्नियन्ता प्रभु इस धराधामपर अपने ही स्वरूपांश संत-महात्माओंको समय-समयपर लोक-कल्याणके विशेष प्रयोजनसे भेजते हैं। संत-महात्मा अपनी वाणी, लेखनी, दृष्टि एवं आचार-व्यवहारसे अपने चारों ओर शान्ति, प्रेम, सौमनस्य, श्रद्धा, धर्माचरण, भगवदाराधन आदि शाश्वत सत्योंकी विशिष्टताओंका प्रतिष्ठापन करते हैं––जगत्‌के प्राणियोंका मार्गदर्शन करते हैं, उनका कण्टकाकीर्ण पथ बुहारते हैं, उन्हें मानव-जीवनके एकमात्र लक्ष्य भगवत्प्राप्तिकी ओर ले जाते हैं।

'भाईजी'के स्नेहभरे, आत्मीयतापूर्ण सम्बोधनसे विख्यात, सुप्रसिद्ध धार्मिक मासिक 'कल्याण'के प्रवर्त्तक-सम्पादक, नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका ऐसे ही दुर्लभ संतोंकी श्रेणीमें अग्रणी स्थान है। जीवनके अन्तिम क्षणतक 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होंने लक्ष-लक्ष नर-नारियोंके जीवनको आध्यात्मिकताकी ओर प्रेरित किया है, उनके जीवनमें धर्म और संस्कृतिके प्रति आस्था स्थापित की है, अपने स्नेहका सम्बल देकर उन्हें सही मार्गपर चलते रहनेका साहस प्रदान किया है।

पूज्य श्रीभाईजीके जीवनकी विशिष्टताओंका, उनमें निहित दैवी गुणोंका, उनमें सहज सुलभ करुणा, स्नेह या उनसे सम्बन्धित घटनाओंका आकलन सर्वथा असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। उन्होंने हमेशा अपने गुणोंको छिपानेकी कोशिश की। सम्पर्कमें आनेवाले सभी महानु-भावोंके मनको रखनेकी कोशिशमें सदा अपने हृदयकी भावनाको प्रच्छन्न रखा; सामनेवालेको

किस बातसे प्रसन्नता होगी, इसका उन्होंने सर्वोपरि ध्यान रखा; उनसे मिलनेवालोंके मनमें कोई कष्ट या व्यथाकी अनुभूति न हो, यह उनके सोचनेका प्रधान पक्ष रहा। भारतवर्ष तथा उसकी सीमाओंके बाहर भी अनगिनत महानुभाव उनसे उपकृत हुए हैं—असंख्य अभावग्रस्त प्राणियोंके दु:ख-दर्दको उन्होंने सहलाया है। उन्होंने सभी धर्मोंके आचार्यों, महात्माओं और सम्प्रदायोंके गुरुओंके समक्ष उन्हें प्रभुका स्वरूप मानकर समान आदरभावसे सदा सिर नवाया है। प्राणिमात्रमें अभिव्यक्त श्रीराधा-माधवके स्वरूपकी वन्दना उन्होंने स्वगत और प्रत्यक्षमें बराबर की है। कहीं किसीको कष्टकी अनुभूति हुई और उन्हें इसका पता चला, वहाँ उसके कष्टको यथासाध्य बँटानेके लिये वे विकल हो उठते थे। उनके इस उज्ज्वल स्वरूपको जाननेकी चेष्टा कभी फलीभूत नहीं हुई; क्योंकि उन्होंने किसीके कष्टको बँटाते समय हमेशा अपने स्वरूपको गोपनीय रखा।

जैसे बड़े हीरेकी समग्र चमकमेंसे उसके सहस्र कणोंमेंसे किसी एक कणकी चमकको अलग स्थिर करके नहीं देखा जा सकता, जैसे इन्द्रधनुषकी रंगभरी समग्र मोहकतामेंसे किसी एक रंगको अलग करके उसके स्वरूप-सौन्दर्यका पान नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार श्रीभाईजीके किसी गुण-विशेषको उनके समग्ररूपसे अलग करके देखना असम्भव-सा प्रतीत होता है। उनके व्यक्तित्वका माप, उनके कर्तृत्वकी थाह या उनके संत-हृदयमें विराजित शिशु-सुलभ सरलता, कोमलता और परदु:खकातरताका मूल्याङ्कन या मानक स्थापित ही नहीं हो सकता।

संसारके जन-मानसका यह विश्वास है कि इस धराधामपर संत-महात्मागण जगन्नियन्ता प्रभुके द्वारा किसी विशेष प्रयोजनसे भेजे जाते हैं और पूज्य श्रीभाईजीके अवतरणसे इस मान्यताकी सत्यता सिद्ध हुई है। पूज्य श्रीभाईजीने विशाल हिंदू-धर्मकी पताकाको अपने अनवरत एवं निष्ठा-रत कार्यसे विश्व-क्षितिजपर हिमालयकी-सी ऊँचाइयोंपर लाकर स्थापित किया। वास्तवमें पूज्य श्रीभाईजीने किस-किसको क्या-क्या प्रदान किया है, यह तो उनके साथ एक बार जाने-अनजाने भी सम्पर्कमें आनेवाले महानुभावको ही ज्ञात हो सका है।

●

महामहिम, भाग्यवान् और भगवत्स्वरूप भक्तोंके स्मरण-ध्यानमात्रसे ही पाप-राशि भस्म हो जाय, मुक्ति दासीकी तरह पीछे-पीछे घूमे और प्रभुके चरणोंमें अचल मति, रति और गति प्राप्त हो जाय तो कौन-सा आश्चर्य है। भगवान्‌की तरह महापुरुषोंके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है। उनके स्वरूपका ध्यान करनेसे उनके भाव, गुण और चरित्र हृदयमें आ जाते हैं, उनका स्वरूप चित्तमें अङ्कित हो जाता है और जैसे प्रकाशके आते ही अन्धकार मिट जाता है, वैसे ही भक्तोंके चरित्र-गुणादिकी स्मृति अन्तःकरणमें आते ही समस्त कलुषको नष्ट कर देती है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

श्रीकृष्णप्रेमस्वरूप श्रीभाईजी

श्रीबनवारीलालजी गोयन्दका

धरम राजनय ब्रह्मबिचारू । इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥
सो मति मोरि भरत महिमाही । कहै काह छलि छुअति न छाँही ॥

महाराज जनकजी ज्ञानके साक्षात् स्वरूप थे; उनके यहाँ शुकदेव-जैसे परम अवधूत भी उपदेश लेनेके लिये आते थे। वे ही जनकजी रात्रिके समय एकान्तमें श्रीरामप्रेमकी मूर्ति श्रीभरतजीके विषयमें अपनी सहधर्मिणी श्रीसुनयनाजीसे कह रहे हैं—'धर्मकी कोई बात होती, राजनीतिकी कोई बात होती, ब्रह्मविद्याकी कोई बात होती तो वहाँ मेरी बुद्धिका कुछ प्रवेश था; परंतु मेरी बुद्धि श्रीभरतजीकी महिमाकी छायाको छल करके भी छू नहीं पाती।' श्रीभरतजीकी महिमा तो निराली है; पर श्रीजनकजी महाराजकी यह उक्ति सभी प्रेमी-भक्तों और संतोंके विषयमें चरितार्थ होती है। भक्तों और संतोंकी स्थिति वास्तवमें अवर्णनीय होती है। अतएव उनके विषयमें जो कुछ कहा जाता है, उससे उनके बाह्य स्वरूपका ही परिचय प्राप्त होता है। उनका वास्तविक स्वरूप तो सदा अज्ञेय ही रहता है। फिर मेरी अपनी योग्यता कुछ भी नहीं। अतएव श्रीकृष्णप्रेम-स्वरूप परमपूज्य श्रीभाईजीके विषयमें कुछ भी कहनेका साहस करना एक अत्यन्त तुच्छ जन्तुके समुद्रकी परिधिको नापनेके समान है। किंतु अपनी वाणीको और स्वयंको पवित्र करनेके लिये कुछ बातें नीचे लिखी जा रही हैं।

बचपनसे ही श्रीभाईजीके प्रति मेरा आकर्षण था। एक बार श्रीभाईजी कलकत्ता पधारे हुए थे और श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़ियाके यहाँ ठहरे थे। श्रीज्वालाप्रसादजीसे मेरी साधन-सम्बन्धी बातें होती रहती थीं। अतः उनकी मुझपर बड़ी कृपा थी। उन्होंने कहा—'श्रीभाईजी आये हुए हैं, उनसे तुम्हारा परिचय करा दूँगा।' उन्होंने श्रीभाईजीसे मेरी भेंट करवा दी। मैंने साधना-सम्बन्धी कई बातें उनसे पूछीं। बड़े स्नेहके साथ श्रीभाईजीने उनका उत्तर दिया। इस भेंटकी और उनकी कही बातोंकी मेरे मनपर गहरी छाप पड़ी।

इसके बाद गीताभवन, ऋषिकेशमें मैं सत्सङ्गके निमित्तसे गया हुआ था। वहाँ मैंने श्रीभाईजीसे समय माँगा और उन्होंने समय दिया। मैं उनके पास गया। उन दिनों भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके प्रति मेरी सख्यभावकी उपासना थी। सख्यभावकी उपासनाका क्रम मैंने उन्हें बताया। सुबहसे शामतक कन्हैयाके साथ सख्यभावकी भावनाका जो क्रम चलता था, वह बतला-कर मैंने कहा—'मुझे तो वंशीवाले श्रीकृष्ण बड़े मीठे, बड़े अच्छे लगते हैं। मेरे पास एक छोटा-सा चित्र है, वह मैं आपको दिखाता हूँ। मुरलीधर भगवान् मुझे बड़े प्यारे लगते हैं।' वह चित्र मैंने उनको दिखाया। चित्र देखकर भाईजी बोले—'भैया, व्रजमें वंशीवाले ही थे। तुम यह चित्र ले जाओ और अपनी उपासनामें रखो। यह मुझे भी बहुत प्रिय लगता है, बहुत अच्छा है।'

श्रीभाईजीके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ने लगा । सन् १९५७में श्रीभाईजी रतनगढ़ गये हुए थे । मैं उनसे मिलनेके लिये रतनगढ़ पहुँचा । भाईजी मिले । मैंने उनसे कहा—'भाईजी, मैं कुछ दिन यहाँ ठहरूँगा । इन दिनों मैं सब समय आपके पास ही रहना चाहता हूँ ।' मेरे भोले आग्रहको सुनकर वे हँसने लगे और बोले—'भैया, रातको तो सोना ही होगा । हाँ, दिनभर मेरे पास रहना ।' जिस दिन मैं पहुँचा, उस दिन शामको उनसे साधन-सम्बन्धी चर्चा दो घंटे हुई । उनके विषयमें मेरे मनमें जो भाव था, वह और कुछ अपनी साधनाकी बात भी मैंने उनसे कही । श्रीभाईजी बहुत प्रसन्न हुए । मुझे एकान्तमें बातें करनी थीं । दूसरे दिन श्रीभाईजी और मैं एक मोटरमें बैठकर जंगलमें गये । ड्राइवरको छोड़कर हमलोगोंके साथ अन्य कोई व्यक्ति नहीं था । निर्जन स्थानपर पहुँचकर मोटर एक ओर रोक दी गयी और एक छोटा-सा कम्बल बिछाकर श्रीभाईजी और मैं—दोनों बैठ गये । श्रीभाईजीने मुझसे कुछ पूछनेको कहा । मैंने अनुरोध किया—'जिस प्रकार जसीडीहमें आपको भगवान्के दर्शन हुए थे, वही दर्शन आप मुझे करा दीजिये ।'

श्रीभाईजी बोले—'नहीं-नहीं, यह बात क्या कहते हो ?' अपने महत्त्वको छिपानेका उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, पर मैंने यही कहा—'मैं तो आपका अपना हूँ, मुझसे आप अपने स्वरूप-को क्यों छिपाते हैं ?' मेरे बालसुलभ आग्रहको देखकर उनका हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने अत्यन्त संकुचित हुए-से अपने विषयमें एक बात मुझे बतायी । उन्होंने यह बात सहज ढंगसे कही थी, पर मुझे वह बड़ी ही गोपनीय लगी और उससे श्रीभाईजीके स्वरूपका रहस्य कुछ अंशोंमें मेरी समझमें आया । मुझे लगा कि जो महान् विभूति मेरे सामने विराजमान है, उसकी महिमाके करोड़वें अंशकी भी कल्पना मैंने पहले नहीं की थी । ऐसे महिमान्वित पुरुषको सामने पाकर मैं आत्मविभोर हो गया और मेरी आँखोंसे अपने सौभाग्य एवं धन्यतापर झर-झर आँसू बहने लगे । अपलक दृष्टिसे मैं उनको देखता रह गया कि ये कितने महान्, कितने विलक्षण हैं । चलनेके पूर्व उन्होंने कहा—'तुम्हारे स्नेहवश मेरे मुँहसे कुछ शब्द निकल गये हैं, पर इनकी चर्चा किसीसे मत करना ।' दूसरे दिन हमलोग पुनः जंगलमें गये । फिर उनसे बहुत महत्त्वपूर्ण बातें हुईं । इस प्रकार श्रीभाईजीके साथ मेरी यह प्रथम अन्तरङ्ग भेंट हुई और इस भेंटमें उनके मुखसे जो-जो बातें सुनीं, वे इतनी अद्भुत, इतनी ऊँची थीं कि उनका वास्तविक अर्थ मैं स्वयं नहीं समझ सका और जितना मैं समझ पाया, वह भी वाणीसे व्यक्त होना सम्भव नहीं ।

श्रीभाईजीके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता गया तथा मैं उनकी बतायी साधन-पद्धतिसे अपनी शक्ति एवं योग्यताके अनुसार चलता रहा । इससे श्रीभाईजी बड़े प्रसन्न थे । उनके साथ पत्र-व्यवहार भी बराबर होता और समय-समयपर प्रत्यक्ष मिलन होनेपर भी बातें होती रहीं । एक बारकी बात है, मैं सत्सङ्गके निमित्त कलकत्तासे बाहर कहीं जा रहा था । इसकी सूचना पत्रद्वारा मैंने उनको दी । उस पत्रके उत्तरमें उन्होंने लिखा—'तुम सत्सङ्गके लिये जा रहे हो, सत्सङ्गका लाभ उठाओगे । भैया, मैं तो कामसे फुर्सत नहीं पाता, सत्सङ्गसे वञ्चित रहता हूँ । दूसरी एक बात और है कि सत्सङ्गमें जाऊँ तो कैसे ? एक हटे, तब न दूसरेसे बात हो । वह सामनेसे हटे, तब न मैं किसी अन्यको देखूँ—

हटे वह सामनेसे, तब कहीं मैं अन्य कुछ देखूँ।
सदा रहता बसा मनमें तो कैसे अन्यको लेखूँ ?
उसीसे बोलनेमें ही मुझे फुरसत नहीं मिलती।
तो कैसे अन्य चर्चाके लिये फिर जीभ यह हिलती ?
सुनाता वह मुझे मीठी, रसीली बात है अनुपम।
तो कैसे मैं सुनूँ किसकी, छोड़ वह रस मधुर अनुपम ?
समय मिलता नहीं मुझको, टहलसे एक पल उसकी।
छोड़कर मैं उसे, कैसे करूँ सेवा कभी किसकी ?
रह गयी मैं नहीं कुछ भी किसीके कामकी हूँ अब।
समर्पण हो चुका मेरा जो कुछ भी था, उसीके सब॥

:o: :o: :o:

चलत-चितवत, दिवस जागत सुपन-सोवत रात।
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥

भैया, यहाँ तो केवल हृदयकी बात नहीं है, हृदय और बाहर भी वैसा ही होता रहता है। तब क्या किया जाय ? किवाड़ बंद किये रहता हूँ।

लुट गया डेरा, नहीं कुछ बच रहा। हर तरफ हर वक्त ऊधम मच रहा॥
कर रहा है वह शरारत दिन औ रात। हो गयी मेरी सभी वे किश्तें मात॥

इन शब्दोंपर गम्भीरतासे विचार करनेपर उनकी स्थितिका कुछ परिचय मिलता है।

एक बार मैंने उनको पत्र लिखा, पर उत्तर देनेकी उनकी स्थिति नहीं थी। वे परम दिव्य भावराज्यमें अवस्थित थे। अचिन्त्य भावमें डूबे हुए उन्होंने लिखा—'तुम्हारे पत्रका उत्तर तो 'दिमाग ठीक' होनेपर लिखूँगा, पर पहले तुम यह पढ़ो—

कैसे देखूँ दूर मैं, प्रिय जब रहते पास।
करती मैं इससे सदा प्रिय पद-पद्म निवास॥
निरख रहे मुझको सदा प्रिय नित निज रस-नैन।
मेरे दृग भी लग रहे मस्त सदा सुख-चैन॥
रस-वर्षा करते मधुर प्रिय मुझमें दिन-रात।
रहती रसमें मग्न, सब डूबे रहते गात॥
मिले नित्य रहते सभी, मन-मति, इन्द्रिय-अङ्ग।
बिना किसी व्यवधानके नित नव-नव रस-रङ्ग॥
भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा मिटी, रही न देहासक्ति।
प्रियतममें नित बढ़ रही अति निर्मल अनुरक्ति॥

इस पदमें श्रीभाईजीकी स्थितिकी कुछ झलक है कि वे श्रीश्यामसुन्दरसे किस प्रकार घुले-मिले रहते थे। मन-मति-इन्द्रियाँ जिस समय श्यामसुन्दरसे मिली रहती हैं, उस समय वे महान् दिव्य रूपमें परिणत हो जाती हैं। यह भी कहा जा सकता है कि वे अति दिव्य बन जाती हैं; क्योंकि दिव्यसे ही दिव्यका संयोग हुआ करता है। श्रीभाईजीके लिये यह बात घंटे-दो-घंटेकी नहीं थी, अपितु प्रियतम श्यामसुन्दर दिन-रात उनके सामने बैठे रहते थे और उनको अपने मधुर

प्रेमके वशीभूत बनाये रखते थे। श्रीभाईजीके नेत्र श्रीश्यामसुन्दरको निरन्तर निरखते हुए रसास्वादन करते रहते थे और प्रियतम श्यामसुन्दर भी सतत श्रीभाईजीको निरखते रहते थे। न कोई व्यवधान था, न किसी प्रकारकी रोक। नित्य संयोग, नित्य दर्शन, नित्य सङ्ग और नित्य मिलन था। नित्य संनिधिमें दूर देखनेकी बात उठती ही नहीं; इसलिये श्रीभाईजी कहते हैं——

'कैसे देखूं दूर मैं, प्रिय जब रहते पास।'

इसी प्रकार एक दिन वे परम दिव्य भाव-राज्यमें थे। उसी राज्यमें स्थित रहते हुए उनकी लेखनी चल गयी। मैं अपनी योग्यतासे यही समझा हूँ कि वह लेखनी उनकी नहीं थी, वह लेखनी स्वयं श्रीराधामाधवकी थी, श्रीराधामाधव ही लिखा रहे थे। पत्रके लेखनकी पद्धति ही इस तथ्यकी साक्षी है। मेरे पास आनेवाले उनके प्रत्येक पत्रमें अन्तमें 'तुम्हारा——हनुमान' इस प्रकार लिखा रहता था। पर उस दिन पत्रके अन्तमें 'तुम्हारा——हनुमान' नहीं लिखा था, बल्कि पत्रमें अन्तमें 'तुम्हारा——हनुमान'के स्थानपर 'राधामाधव' लिखा था। 'हनुमान'की जगह 'राधामाधव'का होना ही वास्तविकताको उद्घाटित करता है। पत्रका आरम्भ इस प्रकार था—— 'प्यारे बनवारी, सभी प्यारे, सभी प्यारी, सबमें सदा श्रीराधामाधव, सबमें श्रीराधामाधवकी मनोहर लीला है।

राधा-माधव, राधा-माधव छाये देश-काल सब ओर।
नाच रही राधा मतवाली, मुरली टेर रहे मनचोर।।
देखो-सुनो, सदा सबमें सर्वत्र भरे दोनों रसधाम।
मधुर मनोहर मूर्ति मुरलि-धुनि बरसाती रस-सुधा ललाम।।
लीला लीलामय ही है सब, लीला लीलामय सर्वत्र।
लीला लीलामय ही रहते करते लीला विविध विचित्र।।
नित्य मधुर दर्शन-सम्भाषण-स्पर्श, मधुर नित नूतन भाव।
नित नव मिलन, नित्य मिलनेच्छा, नित नव रस आस्वादन-चाव।।'

इस प्रकार श्रीभाईजी श्रीराधामाधवमें नित्य स्थित रहते थे और श्रीराधामाधवने ही उनमें इन भावोंकी अभिव्यक्ति करवा दी। मेरा परम सौभाग्य था कि ऐसी चीजोंके मुझे दर्शन हुए।

श्रीभाईजीका पाञ्चभौतिक कलेवर आज इन नेत्रोंसे दृश्य नहीं है; पर मेरी भावनासे भाईजी आज भी कहीं गये नहीं हैं, हमारे समीप हैं। वह जो कलेवर दीख रहा था, वह अदृश्य हो गया है; पर वे अदृश्य नहीं हुए हैं। उनकी उपस्थितिमें एक दिन मैं उनके पास बैठा हुआ था। श्रीभाईजीकी शारीरिक अस्वस्थताके कारण मनमें चिन्ता होती थी कि हम उनके स्नेहपूर्ण संरक्षणसे वञ्चित न हो जायँ। मेरी चिन्ता श्रीभाईजीके हृदयमें प्रतिबिम्बित हो गयी। उन्होंने बड़ी गम्भीरता और स्नेहभरे शब्दोंमें कहा——'भैया, आज तुम्हें एक बात कह रहा हूँ, ध्यानसे सुनना। मेरा यह शरीर चला भी जाय तो तुम अपनेको असहाय मत मानना। आज मैं जिस प्रकार तुमलोगोंकी सँभाल करता हूँ, बादमें भी उसी प्रकार सँभाल करता रहूँगा।' सुनते ही मेरी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली; मैं उनके चरणोंपर गिर पड़ा।

श्रीभाईजीने जो कुछ दिया या देना चाहा, उसका सहस्रांश भी मैं नहीं ले पाया। यही आशा लगाये बैठा हूँ कि उनकी दिव्य कृपा-कणसे कभी-न-कभी जीवन धन्य हो जायगा।

●

वे श्रीचरण

श्रीपुरुषोत्तमदासजी मोदी

उस दिन मैं त्याग, तपस्या और साधनाके प्रतीक भाईजीके दर्शन तथा पावन चरणस्पर्शके लिये अपने सहपाठी भाई कृष्णचन्द्रको ढूँढ़ रहा था कि वे मुझे पूज्य भाईजीके दर्शन करा दें, विशेषकर ऐसे समय जब कि स्वास्थ्यके कारणोंसे डाक्टरोंके आदेशसे भाईजीको किसीसे मिलने नहीं दिया जाता था। भाई कृष्णचन्द्र मेरे लिये दर्शनकी व्यवस्था कर देते थे। वे ही उस दिन श्रीभाईजीके पार्थिव शरीरके भस्मावशेष जहाँ सुरक्षित हैं, उसकी ओर संकेत करते हुए बोले—'श्रीभाईजीकी समाधि यही है।' मनने कहा—'भाईजी समाधि-अवस्थामें हो सकते हैं, भाईजीकी समाधि नहीं हो सकती।'

'भाया, तूँ राजी है ना, तेरो काम कइयाँ चाल र्‍यो है।' अनेक व्यक्तियोंके समूहमें भी वे मेरे संकोचशील स्वभावको स्पर्श करते हुए स्वयं आगे बढ़कर पूछ लेते थे और अपने अनन्त आशीर्वादकी चादरसे मुझे आवृत कर लेते थे। वे नेत्रहीनोंके नेत्र थे और मूक-बधिरकी वाणी। वे दलित-गलितकी आशा थे, प्राण थे। गीताप्रेस और 'कल्याण' उनकी साधना और तपस्याके विश्वविश्रुत स्मारक हैं ही, गोरखपुर नगरमें उनकी कीर्ति-पताका फहराती और भी अनेक संस्थाएँ हैं। 'मूक-बधिर-विद्यालय', 'अन्ध-विद्यालय', 'कुष्ठ-सेवाश्रम' आदि वे संस्थाएँ हैं, जहाँ पूज्य भाई-जीने मानवताकी सेवाद्वारा भगवान्‌की आराधना की। अन्य विद्यालयोंमें भी साधनोंके अभावसे ग्रस्त तथा समर्पण और सेवाकी माँग करता हुआ 'मूक-बधिर-विद्यालय' भाईजीका वास्तविक स्मारक है।

भाईजी कल्पवृक्ष थे। कितने ही ऐसे अवसर आये, जब मुझे साथ लेकर लोग भाईजीसे संस्था अथवा समारोहके लिये सहायता माँगने गये। माँगनेवाले बड़े संकोचसे कह पाते थे; वे यदि पचास माँगते थे तो श्रीभाईजी सौ सुनते थे। कितनी बार श्रीभाईजी आवश्यकताका अनुमान नहीं लगा पाते थे तो कह देते थे—'भाया, जो तूँ ठीक समझै, दे दिये, मेरा सै मँगा लिये।'

श्रीभाईजी मानवमात्रके प्रति विनयावत रहते थे और विशेषकर ब्राह्मणों और विद्वानोंके समक्ष उन्हें बैठनेको सदा उच्च आसन प्रदान करते थे और हृदयमें भी उन्हें उच्च आसनपर ही आसीन करते थे।

भगवान् कृष्णकी भाँति उन्होंने युद्धमें—अंग्रेजी शासनके विरुद्ध क्रान्तिमें—जिन होठोंसे क्रान्तिघोष किया, उन्हीं होठोंसे राधाकी आराधनाके समर्पण-गीत गाये। जहाँ उनके चरण पड़ते थे, वह तीर्थ बन जाता था। अनेक मधुर स्मृतियाँ हृदयको गद्‌गदकर कण्ठ अवरुद्ध कर देती हैं, नेत्र सजल हो उठते हैं, वाणीको शब्द नहीं मिलते। सच्चे अर्थोंमें वे छोटे-बड़े सभीके 'भाई' थे।

युवावस्थामें वे कर्मयोगी थे; कर्मने उन्हें धर्मकी प्रेरणा दी और वे व्यष्टिमें समष्टि हो गये। आज वे नहीं हैं, किंतु उनके पावन यशकी सौरभ दिग्-दिगन्तमें व्याप्त है। आशिष्के लिये उठती हुई वह भुजा तथा वे चरण, जिनपर मस्तक स्वयं नत हो जाता था, आज प्रत्यक्ष नहीं हैं; किंतु दूर क्षितिजोंमें आज भी उनकी स्मृतिकी साकार प्रतिमा दीख रही है।

●

स्नेह तथा नम्रताकी मूर्ति—श्रीभाईजी

श्रीरामरक्खाजी

आजसे लगभग चालीस वर्ष पूर्व मुझे अपने दो मित्र त्यागी महानुभावोंके साथ स्वर्गाश्रम जानेका सुअवसर प्राप्त हुआ। उन दिनों वट-वृक्षके नीचे सत्सङ्ग हुआ करता था और सत्सङ्गी नर-नारी स्वर्गाश्रमके ही मकानोंमें रहा करते थे। उस समय गीताभवन नहीं बना था। तीन-चार दिनतक हमलोग वहाँ ठहरे और प्रातःसे सायंकालतक सत्सङ्गके सभी कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होते रहे। कहनेकी बात नहीं है कि वह सत्सङ्ग एक अद्भुत प्रसङ्ग था और उसकी अमिट छाप मेरे हृदयपर पड़ी। ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका इस सत्सङ्गके अधिष्ठाता देवता थे और भाईजी उसमें स्नेह-दीपकी ज्योति जलाते थे। भाईजी अपने स्नेह और सरलताके जादूसे उस पहली भेंटमें ही मुझे बहुत समीप ले आये और वह समीपता चालीस वर्षतक बढ़ती ही गयी। यह उनके हृदयकी कोमलता और सबको अपना लेनेवाली सहृदयताका नमूना है। मुझे स्मरण नहीं कि कैसे उनका इतना सामीप्य मैं प्राप्त कर पाया। संत-हृदयका यह स्वभाव ही है कि एक बार जिसे वे अपना लेते हैं, फिर उसके दुर्गुणों और त्रुटियोंकी ओर न देखकर उसे स्नेह ही प्रदान करते हैं; उनके पास इसके सिवा और होता भी कुछ नहीं। गङ्गाकी रेणुकामें उस स्थूलकाय महापुरुषको 'भज मन नारायण-नारायण'की धुनिके साथ नाचते, बच्चेकी सरलतासे उछलते एवं भाव-विभोर हुए देखकर मुझे विस्मयमिश्रित बहुत आनन्द हुआ। यह घटना मेरे लिये तो आह्लादिनी और अनोखी थी।

श्रीभाईजी कितना व्यस्त जीवन बिताते थे—जो व्यक्ति उन्हें जानते हैं, उन्हें यह भली प्रकार ज्ञात है। 'कल्याण'के सम्पादनका बोझ ही पर्याप्त था। इसके अतिरिक्त साधक-जिज्ञासु उनसे परामर्श लेते रहते थे। अनेक पत्र आते थे, जिनके उत्तर उन्हें देना होता था। अन्तिम रुग्णा-वस्थामें भी जब-जब मैंने उन्हें पत्र लिखा, उन्होंने अपने हाथसे उसका उत्तर दिया। उनके पास पत्रोंका उत्तर देनेवाले साथी थे, टाइप-यन्त्र थे; परंतु मेरे सभी पत्रोंका उत्तर वे अपने हाथसे ही लिखकर देते रहे। संत बड़ी-बड़ी बातोंमें ही महान् नहीं होते, अपितु उनके चरित्रकी छोटी-छोटी बातें भी उनके स्वच्छ हृदयको दर्शाती हैं। मेरा हृदय हमेशा यह देखकर कृतज्ञताके भावोंसे भर जाता था। इसे मैं अपना सौभाग्य और उनकी सहृदयता ही मानता रहा।

मैंने अपनी कठिनाइयों आदिके विषयमें जब भी उनसे परामर्श माँगा, किसी सहायताकी याचना की, उन्होंने तत्काल उत्तर दिया और सत्परामर्श प्रदान किया। उनके विचार, साधना-पद्धति और उनकी अपनी उच्च स्थितिका परिचय उनकी पुस्तकों, 'कल्याण'के असंख्य लेखों तथा उनके पत्रोंका अध्ययन करनेसे प्राप्त हो जाता है। उसके विषयमें और कुछ कहनेकी अपेक्षा ही कहाँ है? परंतु मुझे एक बार उन्होंने बहुत एकान्तमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा (शब्द तो मुझे स्मरण नहीं हैं, परंतु भाव यह था) कि भगवान् निश्चित हैं और उनके सगुणरूपका साक्षात्कार उन्हें हुआ है तथा सांनिध्य प्राप्त है। दूसरे समय यह कहा कि 'साधना तो मूक होकर उनके

साथ एक हो जाना है।' इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे भगवान्‌के सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपोंके अनुभवी थे और यह स्थिति कितनी महान् तथा दुर्लभ है--इसकी कल्पना करना भी हमारे लिये सम्भव नहीं है। वे जब-जब गुरुकुल पधारे, उन्होंने मुझे स्मरण किया और दर्शन देकर ही गये। १९५५में जब वे वृन्दावन पधारे उन दिनों मैं वृन्दावन था। अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी वे मुझसे मिलना नहीं भूले।

आजभी वह दृश्य मेरे सामने है, जब सन् १९६९की गर्मियोंमें अन्तिम बार उनके दर्शन स्वर्गाश्रममें मुझे हुए थे। तब वे मेरा हाथ अपने हाथोंमें लेकर बैठे थे, सारे हृदयका स्नेह उँडेल रहे थे। रोगी होते हुए भी अपने कमरेसे बाहर आ गये और साधना-सम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर दे रहे थे। उनके स्पर्शसे एक सरल, पवित्र, पावन धारा निकलती थी।

●

हिंदूधर्मके प्रमुख आधार-स्तम्भ—श्रीपोद्दारजी

श्रीकेशवराम एन० अयंगर

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे हमलोग अत्यन्त मर्माहत हुए हैं। सहसा हम एक ऐसे व्यक्तिकी दयायुक्त उपस्थितिसे वञ्चित हो गये हैं, जिनको हम गत पचास वर्षोंसे हिंदूधर्मके प्रमुख आधार-स्तम्भके रूपमें पाते रहे। यद्यपि मुझे कभी उनसे व्यक्तिगतरूपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, सन् १९५७में केवल कुछ पत्र-व्यवहार ही हुआ था, 'कल्याण-कल्पतरु'के द्वारा उनसे हमारा सम्पर्क बना रहा और हम दक्षिणवालोंको निरन्तर यह आश्वासन मिलता रहता था कि हमारे देशके उत्तरी भागमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका एक अंश विद्यमान है। जब कभी श्रीकाञ्ची-कामकोटि-पीठके हमारे पूज्य आचार्यश्री गीताप्रेसके कार्यकी चर्चा करते, तब हमें उनकी मुखाकृतिपर संतोष एवं प्रसन्नताकी आभा दिखायी पड़ती और उससे हमलोग भी आनन्दित हो जाते।

न जाने किस विशेष हेतुसे सैंतीस वर्ष पश्चात्, अर्थात् सन् १९७१में मेरे परमपूज्य गुरुदेव जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराजने आदेश दिया कि अपने हिंदूधर्मके लघुविश्वकोषकी रूपरेखाके सम्बन्धमें उनकी सम्मति एवं निर्देश प्राप्त करने हेतु श्रीपोद्दारजीकी सेवामें उसे प्रस्तुत करूँ। यह संग्रह मैंने श्रीपोद्दारजीकी सेवामें २० फरवरी, १९७१को भेज दिया था। मेरा विश्वास है कि वह सामग्री श्रीपोद्दारजीके हाथोंमें पहुँच गयी थी और उसको उनका आशीर्वाद प्राप्त हो गया था। परंतु अपने कार्यमें हम उनका बहुमूल्य मार्गदर्शन प्राप्त नहीं कर सके—इस कारण आज उनके परलोक-गमनसे हमें और अधिक व्यथा है। अब तो इसी बातसे संतोष करना होगा कि इस कार्यकी जानकारी उन्हें हो गयी थी और इस प्रकार उनका मूक आशीर्वाद एवं शक्ति इसे प्राप्त हो गयी थी।

भगवान्‌से प्रार्थना है कि हमारे सभी देशवासियोंको और विशेषरूपसे उन सभी व्यक्तियोंको, जो अपनी सामर्थ्यके अनुरूप धर्मके संरक्षण एवं संवर्धनमें लगे हैं, श्रीपोद्दारजीसे शक्ति और आशीर्वाद प्राप्त होते रहें।

●

भगवत्-शक्ति-सम्पन्न श्रीभाईजी

पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र

श्रीभाईजी एक महापुरुष थे, प्राणिमात्रको भगवान्का स्वरूप समझते थे। अतः वे निरन्तर प्राणिमात्रकी सेवामें संलग्न रहते थे। इसमें विशेषता यह थी कि उनकी सेवा गुप्त होती थी, उसको वे प्रकट नहीं होने देते थे। वस्तुतः सच्चे भक्त और दानी अपनी सेवा और दानको वहुमूल्य निधि समझते हैं, अतः उसको वे छिपाकर ही रखते हैं।

ज्ञानप्राप्तिके दो साधन हैं—अध्ययन एवं भगवत्कृपा। जिन भाग्यशाली जीवोंको भगवान्का साक्षात्कार हो जाता है, वे कुछ पढ़े-लिखे न होनेपर भी सब विद्याओंमें पारंगत हो जाते हैं। भगवद्दर्शनके वाद मनुष्यमें ज्ञानका प्रकाश आ जाता है, जिससे उसके हृदयमें जो वाङमय-ब्रह्म प्रसुप्त रहता है, वह जाग्रत् हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें कथा है कि जब ध्रुवको भगवान्ने दर्शन दिया था, तव उसके मनमें भगवान्की स्तुति करनेकी इच्छा हुई थी। उस समय अन्तर्यामी भगवान्ने उसकी इच्छाकी पूर्तिके लिये अपने ब्रह्ममय शङ्खको उसके कपोलसे स्पर्श करा दिया, जिससे उसके हृदयमें सुप्त शास्त्रज्ञान जाग्रत् हुआ और उसने स्तुति की—

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥

(श्रीमद्भागवत ४।९।६)

'प्रभो! आप सर्वशक्तिसम्पन्न हैं; आप ही मेरे अन्तःकरणमें प्रवेशकर अपने तेजसे मेरी इस सोयी हुई वाणीको सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों एवं प्राणोंको भी चेतना देते हैं। मैं आप अन्तर्यामी भगवान्को प्रणाम करता हूँ।'

इसी भगवच्छक्तिसे जागृत ज्ञानद्वारा भाईजीने नारद-भक्तिसूत्रकी व्याख्या की तथा 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' आदि विपुल साहित्यका प्रकाश किया। इसी भगवद्दर्शनसे प्राप्त ज्ञानप्रकाश-द्वारा ब्रह्माने वेदोंको रचा। ऋषियोंने पुराणोंकी और महर्षि वाल्मीकिने एवं तुलसीदास-प्रभृति कवियों एवं संतोंने जन-कल्याणार्थ विपुल ग्रन्थोंकी रचना की। वस्तुतः भगवद्दर्शनके बाद जो शक्ति प्राप्त होती है, वह अलौकिक होती है।

भगवान्से बढ़कर भगवान्के भक्त होते हैं; इस रहस्यको श्रीभाईजी समझते थे। अतः उनके समक्ष जितने संत-महात्मा आते थे, उनकी सेवा वे भली-भाँति करते थे। उनमें गुणग्राहकता थी; साथ ही वे गुण-परीक्षक भी थे। उन्होंने एक बालसंन्यासीकी सेवा अपने पास रखकर आजीवन की। **'स्वगणे परमा प्रीतिः'** के अनुसार इन दोनोंमें वह सात्विक प्रेम हुआ कि वे कभी वियुक्त नहीं रहे। दोनोंका यह प्रेम-सम्बन्ध परम दिव्य, परम अलौकिक है।

'सबहि मानप्रद आपु अमानी'—श्रीभाईजी इस उक्तिके आदर्शरूप थे। विद्वानोंके प्रति उनके हृदयमें इतनी श्रद्धा थी कि शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो। बड़े-बड़े संत, भगवद्भक्त, महात्मा भी उनसे मिलकर आनन्दित होते थे। वास्तवमें श्रीभाईजी सिद्ध पुरुष थे। उनको दैवी शक्ति प्राप्त थी। बिना दैवी शक्तिके उनके समान योग्यता प्राप्त नहीं हो सकती।

●

सिद्ध-साधक श्रीभाईजी

'द्विवेदी'

श्रीभाईजीका जीवन अध्यात्मप्रधान था। आध्यात्मिक जीवनमें मनुष्य प्रगति नहीं कर सकता, यदि तदनुकूल ही उसका लौकिक जीवन न हो। यही कारण है कि साधकको--चाहे वह ज्ञानमार्गका साधक हो, कर्ममार्गका साधक हो, भक्तिमार्गका साधक हो, क्रियायोगका साधक हो--अपनी आध्यात्मिक साधनाके साथ-साथ भौतिक जीवनके क्रिया-कलापको भी तदनुकूल शुद्ध बनाना पड़ता है। श्रीभाईजीका जीवन ठीक इसी प्रकारका था। उनका साधक-जीवन सर्व-साधारणके लिये अज्ञेय था, परंतु व्यावहारिक जीवन इतना उदात्त और इतना विशद था कि सामान्य जनकी तो बात ही क्या है, बड़े-बड़े विद्वान्, अधिकारी और साधु-संन्यासी भी उनके सामने आनेपर उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। प्राचीन ऋषियोंके समान वे संयम-धनके धनी थे।

श्रीभाईजीने आजीवन संयमकी साधना की, और संयमका उपदेश दिया। शास्त्रोंके प्रति, ब्राह्मण-साधुओंके प्रति, गौ-गङ्गा-गायत्रीके प्रति उनके हृदयमें अगाध श्रद्धा थी। इस श्रद्धाके कारण ही वे अप्रतिम निष्ठावान् बन सके थे। उनके आध्यात्मिक विचारोंमें संकीर्णता न थी। उनका विचार था कि जहाँ कहीं भी अच्छाई मिले, उसे ग्रहण करना चाहिये। और उन्होंने सब ओरसे अच्छाईको ग्रहण किया। उनकी साधना बहुमुखी थी; आचार-नीति-सम्बन्धी जो वैशिष्ट्य उनके जीवनमें झलकता था, वह उनकी साधनाकी सहज परिणतिके अतिरिक्त और कुछ न था।

श्रीभाईजीके पास जो साधन-सम्पत्ति थी, वह एक जन्ममें संचित होनेवाली नहीं थी; वह तो अनेक जन्मकी संचित निधि थी, अतः युवावस्थामें ही उन्होंने भगवद्दर्शन प्राप्त कर लिया था। श्रीभगवान्ने कहा है--

'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥'

अवश्य ही श्रीभाईजीके सम्बन्धमें भी यही बात थी। इस प्रकारके भगवद्दर्शनका दृष्टान्त श्रीराम-कृष्ण परमहंसके जीवनमें भी उपलब्ध होता है। उनकी भी अनेक जन्मकी संचित साधन-सम्पत्ति थी, तभी वे जीवनमें इतनी जल्दी इस प्रकारकी उच्च आध्यात्मिक स्थितिको पहुँच गये थे। भगवद्दर्शनसे साधकमें स्वभावतः शक्तिपातकी क्षमता प्राप्त होती है। यह क्षमता श्रीरामकृष्ण परमहंसके जीवनमें अपूर्वरूपमें प्राप्त होती थी। बंगालके अनेक महात्माओंमें शक्तिपातकी क्षमता थी। इसी शक्तिपातके द्वारा गुरु अपने शिष्योंके जीवनको नियन्त्रणमें रखता है।

श्रीभाईजी स्वयं अध्यात्मपथके पथिक थे और दूसरोंको भी साधनामें लगाते थे। भगवद्दर्शन करनेके बाद श्रीभाईजीके साधन-जीवनमें शिथिलता नहीं आयी। उनकी निष्ठामें वृद्धि हुई और वे अत्यन्त जागरूक हो उठे। 'कल्याण'का प्रकाशनकार्य जब बम्बईसे हटकर गोरखपुरमें गीताप्रेससे होने लगा, उस समय श्रीभाईजीका सम्पादकीय विभाग, नगरके जन-जीवनसे अलग बाबा गोरखनाथ-

के मन्दिरके समीप था। वह स्थान अरण्यके समान था और साधन-भजनकी दृष्टिसे बहुत ही रमणीय था तथा पवित्र और एकान्त था। वहाँ प्रतिदिन श्रीभाईजीके सत्सङ्गमें अनेकों साधक एकत्र होते थे। वस्तुत: वह सत्सङ्ग-मण्डली 'साधक-मण्डली' थी। साधन-भक्तिके अङ्गस्वरूप स्मरण, श्रवण, कीर्त्तनादिके सम्बन्धमें श्रीभाईजीके प्रवचन होते थे, उनमें नाम-जपपर विशेष जोर दिया जाता था। सब साधकोंको एक डायरी रखनी पड़ती थी और व्यावहारिक जीवन-शुद्धिपर ध्यान दिया जाता था। यद्यपि उनमें दीक्षा-बन्धनसे आबद्ध गुरु-शिष्यका सम्बन्ध न था, तथापि यथार्थरूपमें श्रीभाईजी गुरु-स्थानीय होकर शिष्य-स्थानीय साधकवृन्दका मार्ग-दर्शन करते थे। साधकोंके प्रति उनका प्रेमभाव तथा उनके प्रति साधकोंकी श्रद्धाका भाव—दोनों ही अपूर्व थे।

उन दिनोंकी जीवनचर्यासे जान पड़ता था कि श्रीभाईजीके जीवनमें नियमित नाम-जप तथा संध्या-गायत्री आदिके अनुष्ठानके अतिरिक्त यम-नियमादि योग-साधनके अष्टाङ्गोंकी साधना भी चल रही है। अपने सत्सङ्गमें प्राय: श्रीभाईजी योगदर्शनके इन दो सूत्रोंकी व्याख्या किया करते थे—

(१) **'परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।'** (२ । १५)

(२) **'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।'** (१ । ३३)

अर्थात् (१) विषय-सुखके भोगकालमें भी परिणाम-दु:ख, ताप-दु:ख और संस्कार-दु:ख बना रहता है, और गुणोंके स्वभावमें भी विरोध है; इसलिये विवेकी पुरुषके लिये सब कुछ (सुख भी, जो विषय-जन्य है) दु:ख ही है। (२) सुखी, दु:खी, पुण्यात्मा और पापियोंके विषयमें यथाक्रम मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षाकी भावनाके अनुष्ठानसे चित्त प्रसन्न और निर्मल होता है।

श्रीभाईजी कोरे आदर्शवादी न थे, वे आदर्शको व्यवहारमें अभ्यस्त करनेके पक्षपाती थे। इसलिये सत्सङ्गमें जो कुछ कहते थे, वह उनके जीवनका किसी-न-किसी रूपमें अनुभूत होता था। यही कारण था कि उनका प्रवचन इतना हृदयग्राही होता था। उन दिनों 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें इस प्रकारके पत्र अधिक संख्यामें आते थे, जिनमें शास्त्रीय शङ्का-समाधान, साधन-सम्बन्धी जिज्ञासा तथा जीवनको शुद्ध बनानेके विषयमें उपाय पूछे जाते थे। जो लोग श्रीभाईजीके सत्सङ्ग-में आते थे, उनकी साधनामें रुचि थी और कभी-कभी कुछ साधकोंको भावोद्रेक भी हो जाता था। कभी-कभी बाहरसे आये हुए साधकोंके भावोद्रेकका भी संगम हो जाता था।

श्रीभाईजीके जीवनमें जो एक अद्वितीय घटना थी, वह थी उनका साधनाके एक व्यापक परिवेषकी रचना। 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ,' 'गीता-रामायण-परीक्षाएँ', 'नाम-जप विभाग' तथा 'साधक-संघ' उस व्यापक परिवेषके अङ्ग थे। इनके द्वारा लाखों-लाखों नर-नारियोंको आध्यात्मिक साधनामें लगाकर उनका उपकार तो होता ही था, स्वयं इस परिवेषमें रहनेके कारण श्रीभाईजीके साधन-जीवनको बड़ी शक्ति प्राप्त होती थी। ये परिवेष उनके साधन-जीवनके प्रमुख अङ्ग थे और इनके द्वारा उनका जीवन अपूर्व गौरवमय हो गया था। ये उनके जीवनके अभूतपूर्व तत्त्व थे। इनके द्वारा श्रीभाईजीने एक सुदृढ़ दुर्गकी रचना की थी, जिसके भीतर विघ्नोंका प्रवेश

दुर्घट था और वे निश्चिन्त होकर अपने साधन-साम्राज्यका संचालन करते थे। यही उनके नैतिक जीवनकी सहज स्वाभाविक कुशलताका मूल आधार भी था।

श्रीभाईजीने साधन-भक्तिके क्षेत्रसे रागानुगाभक्तिके क्षेत्रमें कब पदार्पण किया था, इसको निश्चयपूर्वक बतलाना कठिन है। सुप्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थ 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु'में लिखा है--

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेमप्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥

'पहले भजनमें श्रद्धा उत्पन्न होती है, श्रद्धाके बिना भजन विडम्बनामात्र है। श्रद्धाके बाद सत्सङ्गकी रुचि, उसके बाद भजन-साधन अर्थात् श्रवण, स्मरण, कीर्त्तन आदि नवधा-भक्तिकी साधना, साधन-भक्तिकी परिपक्वावस्था आनेपर अनर्थ-निवृत्ति होकर निष्ठाकी उत्पत्ति, निष्ठासे ही रुचि, तब भजनमें आसक्ति उत्पन्न होती है--भजन किये बिना रहा नहीं जाता। उसके बाद भावकी प्राप्ति होती है और तदनन्तर प्रेम उत्पन्न होता है। यही साधनभक्तिका क्रम है।'

साधन-भक्तिसे रागानुगाभक्तिमें पहुँचनेके लिये इतनी सीढ़ियोंको पार करना पड़ता है। मेरा विश्वास है, श्रीभाईजी उस समयतक रागानुगाभक्तिकी साधनाके क्षेत्रमें पदार्पण कर चुके थे। इस पथमें वे कुछ दूरतक अग्रसर हो चुके थे। रागानुगा अर्थात् प्रेमाभक्तिके क्षेत्रमें श्रीभाईजी कहाँतक अग्रसर हुए थे, इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन है। श्रीभाईजी भक्ति-साधनाके इस क्षेत्रमें इस युगके अद्वितीय साधक थे। भावजगत्में उनका प्रवेश हो गया था और उस जगत्के व्यक्तियोंसे उनका समागम होता था। इस विषयमें मेरे एक विश्वस्त महानुभाव-द्वारा प्राप्त तथ्यका उद्‌घाटन करना आवश्यक जान पड़ता है। आज वे महानुभाव हमारे बीचमें नहीं हैं। उन महानुभावका जीवन भजनप्रधान था और वे श्रीभाईजीके आन्तरिक प्रेमीजनोंमेंसे थे। उनकी मुझपर बड़ी कृपा थी और वे अत्यन्त रहस्यकी बात भी मुझसे छिपा नहीं रखते थे। एक दिन उनके साथ साधन-भजनकी वार्ता चल रही थी। उन्होंने बतलाया कि एक दिन वे श्रीभाईजीसे मिलने गये। कमरा बंद था, इसलिये बाहर ही बैठ गये। उनको ऐसा लगा कि श्रीभाईजीके कमरेमें दो-चार आदमी बैठे हुए हैं और श्रीभाईजीसे कुछ परामर्श चल रहा है। अचानक सन्नाटा छा गया और थोड़ी देरमें कमरेका दरवाजा खुला। श्रीभाईजी अभी भावावेशमें अलसाये हुए-से थे। उन महानुभावने पूछ ही लिया--'भाईजी, किससे बातें हो रही थीं?' उत्तर मिला--'वे ही, सनकादिक थे।' बस, इतनी बातें हुईं, दोनों चुप। श्रीभाईजी अभी भावावेशसे पूर्णतः प्रकृतिस्थ नहीं हुए थे। वे महानुभाव आश्चर्यचकित थे। कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होनेपर उन्होंने श्रीभाईजीसे पूछा--'क्या बातें हो रही थीं?' श्रीभाईजीने इस बातको पूर्णतः गुप्त रखनेका कड़ा आदेश दिया था।

वस्तुतः भगवान्‌की लीला और देवी-देवताओंका दर्शन भावजगत्‌की वस्तु है। भावजगत्में उनकी नित्य स्थिति है। श्रीवृन्दावनमें होनेवाली नित्य रासलीला भी भावजगत्‌की वस्तु है; प्राकृतिक जगत्‌की नहीं। भावजगत्में प्रवेश होनेपर साधक इन लीलाओंमें सम्मिलित हो सकता है, प्रत्यक्ष अवलोकन करनेकी तो बात ही क्या है। श्रीभाईजी अपनी साधनाके बलपर इसी

भावजगत्में विचरण करनेवाले साधक थे। वस्तुतः साधककी यह स्थिति सिद्धावस्थाके बहुत आगे आती है। श्रीभाईजी इसी कोटिके साधक थे। उन्होंने निरन्तर साधनाके द्वारा अपने जीवनको धन्य बना लिया था। उनकी जागतिक उपलब्धि इसकी ही छाया थी। श्रीराधाजीकी आराधना उनकी साधनाकी बाह्य परिणति थी। श्रीराधाष्टमीका उत्सव तथा अन्यान्य इसी प्रकारके उत्सव वैष्णव-तन्त्रके अनुसार साधन-भक्तिके अङ्ग थे।

श्रीभाईजीके दीर्घकालीन वाससे गीतावाटिका एक पुण्य-तीर्थस्थल बन गयी है। इतना ही नहीं, नाम-जप, कीर्त्तन, भजन-साधन, देवाराधन, पूजा-पाठ आदिके निरन्तर अनुष्ठानसे गीतावाटिका विश्वमें एक विशिष्ट आध्यात्मिक केन्द्र बन गयी है। अब भी वहाँ सर्वस्व त्याग करके केवल साधना और साधु-सेवामें जीवनको समर्पण करनेवाले सेवकोंका समागम तथा आजीवन साधनाके पथमें विचरण करनेवाले साधकोंका दर्शन प्राप्त होता है।

•

अध्यात्म-जगत्की जीती-जागती संस्था

श्रीगोपालदत्तजी शर्मा, ज्यौतिषशास्त्री

श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका परलोकगमन धार्मिक और साहित्यिक जगत्की अपूरणीय क्षति है। श्रीभाईजीमें गीतोक्त दैवी-सम्पदाके अधिकांश लक्षण विद्यमान थे। क्रोध तो उन्हें स्पर्श ही नहीं कर सका था। इस आसुरी सम्पद्-बाहुल्य सृष्टिमें अध्यात्म-सिद्धान्तप्रधान 'कल्याण'का सम्पादन और गीताप्रेसकी सेवा करके वे अमर हो गये। वे स्वयं एक अध्यात्म-जगत्की जीती-जागती संस्था थे।

विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जब काशी आते, तब वे महामना मालवीयजीसे अवश्य मिलते थे। मैंने काशीमें प्रत्यक्ष देखा है कि महात्माजी मालवीयजीको जब प्रणाम करते थे, तब महामना कहते थे--'मैंने आपको देखते ही सिर झुका लिया था।' श्रीभाईजीके सम्बन्धमें भी यही बात देखनेमें आती है। बड़े-बड़े महात्मा-संत जब श्रीभाईजीसे मिलते, तब वे उनके सामने नतमस्तक हो जाते थे; किंतु श्रीभाईजी इतने सावधान थे कि वे उनसे पहले ही प्रणाम करने लग जाते थे। श्रीभाईजी बड़े ही नम्र, मृदु, निरभिमान, सहनशील और शालीन थे--

उनके जीवनके अनेक बहुमूल्य संस्मरण हैं--

सन् १९५३के दिसम्बरमें बाँकुड़ामें श्रीभाईजीसे मेरी भेंट हुई थी। वार्तालापमें ज्यौतिषका प्रसङ्ग आया। ज्यौतिषशास्त्रमें लाक्षणिक जन्म-पत्रिकाके भी निर्माणका प्रकार है। प्रसङ्गवश मैंने इसका उल्लेख किया। कलकत्ताके एक योग्य पण्डित महोदयने इस मतका विरोध किया और कहा कि ऐसा सम्भव नहीं है। मैंने प्रमाणरूपमें श्रीभाईजीकी जन्म-कुण्डलीका नक्शा बतलाया। नक्शा देखकर श्रीभाईजी बहुत प्रसन्न हुए। दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया एवं श्रीमदनलाल चूड़ीवाला (वर्त्तमानमें स्वामी

श्रीआत्मानन्द) मेरे पास पहुँचे और उन्होंने जन्म-पत्री-निर्माणका मूक प्रश्न उपस्थित किया। पहले तो मैंने इसे अस्वीकार कर दिया, किंतु जब यह ज्ञात हुआ कि श्रीभाईजीकी सम्मतिसे ये लोग आये हैं, तब मैंने बतलाना ठीक समझा। गणना करके मैंने उनकी जन्म-पत्रिका बतलायी।

इसके बाद श्रीभाईजीके अनेक पत्र मेरे नाम आये, जो आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं। अब जब कभी मैं उनके भावपूर्ण पत्रोंको पढ़ता हूँ, नेत्र झरने लग जाते हैं। अब ऐसा गुण-ग्राहक मित्र कहाँ मिलेगा ?

६ सितम्बर १९५२को श्रीभाईजीको ७०वें वर्षकी मङ्गलकी दशा आयी थी। मङ्गल द्वितीयेश सप्तमेश होनेसे काशीके कई पण्डितोंने मङ्गल मारकेश बतलाया था। मैंने गणना की और त्रैलौक्य-ज्ञानदीपक चक्रसे ग्रहों और भावोंको कसा तो मङ्गलको मारकेश नहीं पाया। तब चक्रसहित सारा गणना-पट्ट लिखकर भेज दिया। इसपर उनका पत्र आया। उसमें अनेक बातोंके साथ उन्होंने लिखा——

'मैंने आपके पत्रको कई बार पढ़ा है और मैं उसपर बार-बार सोचता हूँ और सीखता हूँ। पत्रमें व्यक्त किये हुए ज्यौतिष-सम्बन्धी विचारोंको 'कल्याण'में प्रकाशित करनेकी सोच रहा हूँ। मेरे जीवनके सम्बन्धमें आपकी लिखी बातें प्रायः ठीक हैं। भविष्य-जीवनके लिये आपके विचार स्तुत्य हैं। भगवान्‌की कृपासे मुझे मारकेशकी चिन्ता नहीं है। विनाशी शरीर तो जायगा ही, दो दिन आगे या पीछे। पर 'यह मङ्गल मारकेश नहीं होता', आपकी यह घोषणा आपके ज्यौतिष-सम्बन्धी......।" आगे इस पत्रकी प्रतिलिपि लिखकर मैं अपनी प्रशंसापरक बातें प्रकट करनेमें असमर्थ हूँ। यद्यपि इन पत्रोंमें भाईजीकी उदारता, वैदुष्य, गुण-ग्राहकता आदि प्रकट होते हैं।

उसी पत्रमें श्रीभाईजी आगे लिखते हैं——'मुझे आप यह आशीर्वाद दें कि मेरे चित्तमें निरन्तर मृत्युके अन्तिम समयतक भगवान्‌की मधुर स्मृति बनी रहे और उनकी स्मृतिमें ही मर्त्यजीवनका अन्त हो।'

भाईजीने क्या-क्या किया——देश, धर्म, समाज और दीन-आर्त्तजनोंकी कितनी सेवा की—— इसके विवरणसे एक बहुत बड़ा पोथा तैयार किया जा सकता है। इस छोटे स्मरणमें उनका विवरण सम्भव नहीं। गागरमें सागर नहीं समा सकता। मैंने उनको बहुत नजदीकसे देखा है। उनके गुण, कर्म, स्वभाव आदि बड़े ही पवित्र और पावन थे। 'कल्याण'के प्रत्येक अङ्कमें 'शिव' नामसे प्रकाशित उनके बहुमूल्य विचारोंसे विद्वान् और बहुश्रुत भी प्रभावित होते रहे हैं।

श्रीभाईजीने गृहस्थमें रहकर भी साधुजीवन बिताया। पर निष्क्रिय साधुजीवन नहीं, निरन्तर निष्काम कर्मयोगी बने रहकर। उनके जीवनमें भक्ति और कर्मयोगका बड़ा सुन्दर समन्वय था।

श्रीभाईजीकी गुण-गाथा बड़ी है; कहाँतक लिखा जाय।

●

भगवत्प्राप्त महापुरुष

वैद्यराज पं० श्रीविद्याधरजी शुक्ल

'यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ।'

श्रद्धेय श्रीभाईजी भगवत्प्राप्त महापुरुष थे। बिना भगवत्संनिधिके दैवी सम्पदाके सभी गुण किसी मानवमें नहीं आते। गीताके सोलहवें अध्यायमें—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

—आदि दैवी सम्पदाके जो २६ गुण बतलाये गये हैं, वे इस महामानवमें विद्यमान थे। श्रीभाईजी सदा यही कहा करते थे कि—'मङ्गलमय भगवान् जो कुछ भी करते हैं, हमारे मङ्गलके लिये ही करते हैं। समस्त जीवोंपर उनकी मङ्गलमयी कृपा सदा बरसती रहती है। उनकी मङ्गलमयता और कृपालुतापर विश्वास न होनेके कारण ही मनुष्य दुःखी होता, अपने भाग्यको कोसता और भगवान्पर दोषारोपण करता है। फोड़ा होनेपर चीर देना, विषम ज्वर होनेपर चिरायते तथा नीमका कड़वा क्वाथ पिलाना और कपड़ा पुराना एवं गंदा हो जानेपर उसे उतारकर नया पहना देना जैसे परम हितके लिये ही होता है, वैसे ही हमारे अत्यन्त प्रिय सांसारिक सुखोंका छीना जाना, नाना प्रकारके दुःखोंका प्राप्त होना और शरीरका वियोग हो जाना भी मङ्गलमय भगवान्के विधानसे हमारे परम हितके लिये ही होता है। हम अपनी बे-समझीसे ही उन्हें भयानक दुःख मानकर रोते-कलपते हैं; किंतु इन सारे दृश्योंके रूपमें, इन सभी स्वाँगोंको धारण करके नित्य नव-सुन्दर, नित्य नव-मधुर हमारे परम प्रियतम भगवान् ही अपनी मङ्गलमयी लीला कर रहे हैं—इस बातको हम नहीं समझते। दुःखके रूपमें भगवान्का विधान ही तो आता है और वह विधान अपने विधाता भगवान्से अभिन्न है। सारांश यह कि भगवान् ही दुःखके रूपमें प्रकट हैं और वे इस रूपमें प्रकट हुए हैं हमारे परम कल्याणके लिये ही। वे कृपाके सागर हैं, कृपा ही उनका स्वभाव है, वे नित्य कृपाका ही वितरण करते हैं।'

महामानवके वियोगमें रोते-कलपते व्यक्तियोंके लिये—मेरे-जैसे दुःखी-वियोगीके लिये कितने आश्वासन देनेवाले वचन हैं! ये वचन भगवान्के मङ्गलमय विधानमें दृढ़ विश्वासके साकार स्वरूप हैं। ऐसा अनुभव होता है कि महामृत्युके रूपमें आनेवाले श्रीकृष्णका ही दिव्यवाणीमें दिव्य सुस्वागत हो रहा है। यह है महामानवकी अभयता। शरीरकी विशेष चिन्तनीय दशामें भी श्रीभाईजीने मुझसे कहा—'पण्डितजी, मेरा क्या बिगड़ता है? शरीर रहे या जाय, मैं शरीर थोड़े ही हूँ।'

श्रीभाईजीकी उदार दृष्टिमें सब रूपोंमें—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'आत्मवत्सर्वभूतेषु', 'वासुदेवः सर्वमिति'

——अपने इष्टदेव ही दृष्टिगोचर होते थे। मृत्यु भी श्रीकृष्ण, दवाके रूपमें भी श्रीकृष्णका महा-प्रसाद——यह थी उनकी परिशुद्ध दृष्टि।

दयाके तो श्रीभाईजी सागर ही थे। जब मैं पहले-पहल गोरखपुर आया, गीताप्रेसके मुद्रक एवं संचालक कर्मवीर श्रीघनश्यामदासजी जालान मुझे श्रीभाईजीके पास ले गये। श्रद्धेय श्रीभाईजीका सत्सङ्ग हुआ। मैं सत्सङ्गमें था ही। सत्सङ्ग होनेपर श्रीघनश्यामदासजीने श्रीभाईजी-से मेरा परिचय कराया और कहा——'ये पण्डितजी शास्त्रोंके ज्ञाता, कर्मकाण्डी, ज्योतिषी और आयुर्वेदमें निपुण हैं; अपने यहाँ औषधालयमें प्रधान वैद्यके स्थानपर आये हैं।' महामना परमदयालु श्रीभाईजीने अन्तर्दृष्टिसे देखा——'पण्डितजी सभी बातोंमें निपुण हैं, किंतु अर्थाभावमें हैं, अर्थके लिये आये हैं। भक्त सुदामा आनन्दकंद परात्पर सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णके पास आकर खाली हाथ कैसे लौट सकते हैं। चाहे प्रत्यक्षमें न माँगते हों, किंतु किसीके आग्रहसे ही आये हैं। मेरे पास आनेका फल तो मिलना ही चाहिये।' दयासागर जो ठहरे। श्रद्धेय श्रीभाईजीने भी नाटक किया——मेरे पैर छूए, प्रणाम किया और 'आइये' कहकर भीतर ले गये। भीतर ले जाकर मुझे एक रजत-मुद्रा दी। श्रीभाईजी रुपया अपने पास रखते नहीं थे, किसीको कुछ देना होता, तब अपने यहाँसे दिलवा देते थे। यह मैंने बहुत बार देखा है। किंतु जहाँतक मुझे स्मरण है, रुपया श्रीभाईजीने किसीसे लिया नहीं। मैं बहुत देरसे उनके पास बैठा था। श्रीभाईजीने अपनी मुट्ठीसे रुपया निकाला और आग्रह करके मेरे हाथमें दे दिया। मैंने कई बार अस्वीकार किया, किंतु श्रीभाईजीका आग्रह था——'लेना ही होगा'। मैंने ले लिया। रुपयेका स्पर्श होते ही मन बदल गया——'महापुरुषने दिया है, इसमें कोई रहस्य होगा।' मुद्रा ले आया और घर पहुँचकर उसे सुरक्षित रख दिया। वह मुद्रा जबसे आयी, तभीसे मेरे घरमें लक्ष्मीदेवीका आगमन आरम्भ हुआ; अकेली श्रीलक्ष्मीजी ही नहीं, परमदयालु श्रीभगवान् भी हृदयमें आ गये। यह है दया-सागरकी दयालुता।

श्रीभाईजीमें कितनी सहृदयता थी, कितनी दयालुता थी, कितना प्यार था——यह शब्दोंमें व्यक्त नहीं किया जा सकता; जो श्रीभाईजीकी संनिधिमें रहा है, वही उसे जान सकता है, अनुभव कर सकता है। ऐसे नित्यलीलालीन भगवत्प्राप्त महापुरुषके प्रति अपनी श्रद्धा स्थूल शब्दोंमें क्या व्यक्त करूँ? रोम-रोम श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहा है। **'पर दुख दुखी, सुखी पर सुख ते'**——यह उनका व्रत था। **'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।'** ——वे तो सभीमें श्रीराधा-माधवका दर्शन करते थे। ऐसे थे वे महापुरुष। यह तो एक छोटी-सी घटना है। उनके जीवनसे कितने व्यक्तियोंका महान् उपकार हुआ है, यह लेखनीसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। भगवत्प्राप्त पुरुष तो भगवान्के ही रूप होते हैं और भगवान्की महिमा शारदा और शेष भी नहीं गा सकते।

●

भाईजीकी कृपासे नवजीवनकी प्राप्ति

श्रीओंकारमलजी पोद्दार

परमपूज्य श्रीभाईजीसे मेरा सम्पर्क संवत् १९८९में हुआ और यह सम्पर्क उत्तरोत्तर दृढ़ होता रहा। उनका मुझपर बड़ा ही स्नेह था। उनके साक्षात्कार एवं पत्र-व्यवहार आदिसे जीवनमें सतत प्रेरणा मिलती रही। आज उनके नित्यलीलालीन होनेपर अनेकानेक प्रसङ्ग मानसमें उमड़-उमड़कर आते हैं। उनका अभाव बड़ा खलता है।

संवत् २०११की आषाढ़ शुक्ल, १३ सोमवार (दिनाङ्क १३-७-५४)की एक घटना बरबस आँखोंके सामन आ जाती है। हमलोग स्वर्गाश्रमसे ऋषिकेश जा रहे थे। गङ्गा पार करनेके लिये प्रातः १० बजे बोटमें बैठे। स्त्री-बच्चोंसहित हमलोग लगभग २१ व्यक्ति थे। बोटके रवाना होते ही मेरे मनमें एक शङ्का उठी--'कहीं बोट बंद हो जाय तो?' भगवत्प्रेरणा, सचमुच गङ्गाकी बीच-धारामें बोटका इंजिन बंद हो गया। बोट-ड्राइवरने ब्रेक लगाया, पर ब्रेक भी निष्फल। बोट धारामें पड़कर भँवरकी तरफ चल पड़ा। अब डूबा, तब डूबा। सभी यात्री भगवान्‌को, श्रीसेठजीको, श्रीभाईजीको--'बचाओ-बचाओ'के आर्तनादसे पुकारने लगे। उसी समय परमपूज्य श्रीभाईजी गीताभवन संख्या २से निकलकर बाहर आये और बोटकी यह दशा देखकर तीन बार जोर-जोरसे--'नारायण-नारायण-नारायण'--पुकारा। अप्रत्याशित रूपसे बोटका बहना बंद होकर वह वहीं रुक गया। बोटको स्टार्ट करनेकी चेष्टा की गयी, पर वह स्टार्ट नहीं हुआ। श्रीसेठजी, एवं गीताभवनके सभी सत्सङ्गी भाई-बहिन बोटके यात्रियोंके सुरक्षार्थ घाटपर उच्च स्वरसे भगवन्नाम-संकीर्तन करने लगे। तेज धाराके कारण नाव भेजनेके सभी प्रयास निष्फल हो गये। अन्तमें ऋषिकेशसे एक खूब मोटा रस्सा लाकर एक विशाल पेड़में बाँधा गया। दूसरे सिरेपर एक नौका बाँधकर बोटकी तरफ छोड़ी गयी। नाव बोटसे कुछ दूरीपर लगी। सभी यात्रियोंको येन-केन-प्रकारेण नावपर सवार कराया गया। भगवान्‌की मर्जी, यात्रियोंके सवार होते ही नावम बँधा हुआ मोटा रस्सा भी पत्थरकी रगड़ खाकर कट गया और नाव गङ्गामें बह चली। अगाध जलराशि, तेज बहाव। कहीं कोई सहारा नहीं! दोनों किनारोंपर एकत्रित संत-महात्मा, सत्सङ्गी एवं बन्धुगण तथा नावमें बैठे सभी यात्री उस करुणामयको आर्त-स्वरसे पुकार रहे थे। बड़ा ही करुण दृश्य था। अन्ततोगत्वा जैसे-तैसे नाव किनारे लगी। जबतक नाव किनारे न लगी, सभीके प्राण कण्ठमें अटके रहे। हमलोग ढाई बजे वापस गीता-भवन पहुँचे। जब हमलोग परमपूज्य श्रीभाईजीको प्रणाम करने गये, तब वे बड़ी ही आत्मीयतासे मिले और मुस्कराते हुए बोले--'आपलोगोंको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, पर भगवान्‌ने रक्षा की।'

....

इस प्रकार श्रीभाईजीकी करुण पुकारसे भगवान् नारायणने भँवरमें पड़े हुए बोटको बचाकर यात्रियोंकी प्राणरक्षा की। सचमुच श्रीभाईजीकी कृपासे ही हमलोगोंको नव-जीवनकी प्राप्ति हुई।

●

भारतीय संस्कृतिके जीवन्त स्वरूप

श्रीगिरिजाशंकरजी त्रिवेदी

सन् १९४४की बात है। मैं मिडिल स्कूलका विद्यार्थी था। पिताजी आजीविकाके सिलसिलेमें बम्बईमें रहा करते थे। वे 'कल्याण'के ग्राहक थे। गाँव आते समय 'कल्याण'के कुछ अङ्क वे साथ ले आते। इस तरह मुझे 'कल्याण' पढ़नेका अवसर मिला। उसमें छपी बातें मेरे किशोर मनपर गहरा असर करतीं। एक बार पिताजीके बम्बई लौट जानेके बाद मैंने निश्चय किया कि मैं भी 'कल्याण'का ग्राहक बनूँगा। पैसा जुटाना टेढ़ी खीर थी, पर एक उपाय सूझा। तीन पैसेका पोस्टकार्ड खरीद लाया और उसपर लिखा—'श्रीमान् सम्पादकजी! मैं गाँवके स्कूलका विद्यार्थी हूँ। आपका 'कल्याण' मुझे बहुत अच्छा लगता है, पर चंदेके लिये मेरे पास पैसे नहीं हैं। दो-तीन महीनेमें पैसे इकट्ठे करके आधे सालका चंदा भेज दूँगा.... आपका.....'

कार्ड लेटर-बक्समें छोड़कर दो-चार दिनतक अपनी इस नासमझीपर पछताता रहा। सोचता रहा कि 'भला बिना जान-पहचानके इतने बड़े पत्रके सम्पादक मुझ-जैसे 'गवँई' (गाँव)के लड़केको क्या उत्तर देंगे? उलटे कहीं डाँट ही न पिलायें।'

ठीक आठवें दिन एक हस्तलिखित कार्ड मेरे नाम आया। लिखा था..."प्रिय गिरिजा-शंकर! तुम्हारा पत्र मिला। 'कल्याण' पढ़नेमें तुम्हारी रुचि जानकर प्रसन्नता हुई। भारतीय सभ्यता और संस्कृतिके संस्कार बचपनसे ही हमारे बच्चोंमें पनपें, यही मेरी कामना है। एक सालतक तुम्हारे लिये मुफ्त 'कल्याण' भेजनेके लिये व्यवस्था-विभागको कह दिया है। खूब पढ़ो। इच्छा-शक्तिमें धनाभाव कभी बाधक नहीं बन सकता। शेष भगवत्कृपा! तुम्हारा भाई—हनुमानप्रसाद पोद्दार।"

पत्र पढ़कर लगा कि किसीने वात्सल्यभरे हाथोंसे मुझे ऊपर उठा लिया है। आज भी पत्रकी स्मृतिसे मन कृतज्ञतासे भर उठता है।

सोचता हूँ...श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने न जाने कितने तरुणोंको अपने सहज सौजन्य और औदार्यसे भारतीय संस्कृतिके जीवन्त स्वरूपका दर्शन कराया होगा।

●

भगवान् प्रेमके कारण भक्तोंके पीछे-पीछे घूमा करते हैं। उनके सुख-दुःखमें अपना सुख-दुःख मानते हैं। उनके लिये अपनी आन-बान और स्वयं श्रीलक्ष्मीजीतककी चिन्ता नहीं करते। भक्तवर भीष्मकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये अपनी शस्त्र न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञाको भङ्ग कर देते हैं। और अर्जुनके साथ तो उन्होंने क्या-क्या नहीं किया!

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

एक कटु यथार्थ

श्रीकृपाशंकरजी शुक्ल

मैं उन दिनों कलकत्ताके हिंदी स्कूलोंमें गीताका अध्यापन-कार्य करता था, जब वहाँकी गीता-प्रचार-शाखाके अध्यक्षके सहयोगसे मुझे पूज्य 'भाईजी'के सांनिध्य-लाभका अवसर प्राप्त हुआ। श्रीभाईजीके सौम्य व्यक्तित्वकी इतनी जीवन्त छाप मुझपर पड़ी कि मैं अपने मनको यह स्वीकार करनेके लिये राजी नहीं कर पा रहा हूँ कि वे दिवंगत हो चुके हैं। इस कटु यथार्थकी अनुभूति मुझे हो या न हो, किंतु इस भ्रान्तिसे यह सत्य छिपाया नहीं जा सकता कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके नित्यलीलालीन होनेसे धार्मिक जगत्में एक ऐसी भयावह रिक्तता पैदा हो गयी है, जिसका ख्याल करते ही मन अधीर हो उठता है। लुप्तप्राय सद्ग्रन्थोंको सर्वसाधारणके लिये नाममात्रके मूल्यपर सुलभ बनानेवाले भाईजीके पुनीत प्रयासको यदि निरन्तर गतिमान् नहीं रखा गया तो यह उनके प्रति कृतघ्नता और भारतीय जनजीवनके लिये आत्मघाती भूल होगी। भाईजीने एक दिन गीता-प्रसार-सम्बन्धी चर्चाके दौरान हमलोगोंके समक्ष यह इच्छा व्यक्त की थी कि 'देशके हर विद्यालयमें गीता अनिवार्यरूपसे पढ़ायी जानी चाहिये। वह दिन निश्चय ही उनकी पावन स्मृतिके लिये बहुत शुभ दिन होगा, जब उनकी यह इच्छा सम्पूर्ण भावसे पूरी हो जायगी। अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें पूज्य भाईजी युवकोंमें बढ़ती हुई उच्छृङ्खलता एवं नास्तिकताको देखकर विशेष चिन्तित रहा करते थे। हमलोगोंको इस ओर भी ध्यान देना होगा। आज धार्मिक मूल्योंकी ह्रासोन्मुख स्थितिमें जब उनकी सबसे ज्यादा जरूरत थी, वे चले गये। श्रीभाईजी जो पथ प्रशस्त कर गये हैं, उसपर चलकर ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धा व्यक्त कर सकते हैं।

•

जो भगवान्का स्वरूप है, वही संतका स्वरूप है। संतका कोई लक्षण बतलाया नहीं जा सकता। जिसमें सब है, जो सब है, जो सबसे अलग है और जिसमें सबका अत्यन्ताभाव है, वही संत है। उसे ब्रह्म कहो, ईश्वर कहो, जगत् कहो अथवा संत कहो, एक ही बात है।

—पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा

•

कथनी और करनीमें सामञ्जस्य

श्रीरामजीवनजी चौधरी

वर्ष और माह तो ठीकसे याद नहीं, लेकिन करीब २४-२५ वर्ष पूर्व राजस्थानमें अकाल पड़ा था। उस समय स्थान-स्थानपर गीताप्रेसद्वारा कम मूल्यपर गेहूँ बेचनेकी योजना बनी एवं सरदारशहरमें हमारे निवास-स्थानपर भी दूकान खोली गयी। इसकी व्यवस्थाके लिये गीताप्रेसके कार्यकर्ता सरदारशहरमें हमारे यहाँ ही ठहरे थे। कारण, मेरे पूज्य पिताजी एवं पितामहकी परम श्रद्धेय श्रीसेठजी एवं श्रीभाईजीके साथ घनिष्ठ आत्मीयता थी। दूकानके द्वारा सेवाका कार्य अच्छी तरह चला। हमें जहाँतक याद है, उस समय गेहूँ बाजारमें एक रुपयेका ५ सेर मिलता था, गीताप्रेसकी दूकानसे १ रुपयेका ६ सेर गेहूँ दिया जाता था। रचनात्मक सहायता-कार्यका एक अभिनव रूप देखकर हमारा हृदय इन महापुरुषोंके चरणोंमें श्रद्धावनत हो गया। इस सम्बन्धमें एक बार इलाहाबादसे गोरखपुर जाते हुए रेलयात्रामें पूज्य भाईजीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने अपना परिचय दिया। उन्होंने सेवाकार्यके लिये खुली दूकानके बारेमें जानकारी करनी चाही। मैंने जितनी जानकारी थी, वह उन्हें बता दी। उन्होंने पूछा कि 'आप उसमें क्या सेवा करते हैं?' मैंने कहा कि 'सब कार्य हमारे यहाँसे ही सम्पन्न होते हैं एवं गीताप्रेसके कार्यकर्त्ता भी हमारे यहाँ ही ठहरे हुए हैं।' इस उत्तरसे उन्हें संतुष्टि नहीं हुई और पुनः पूछनेपर मैं बगलें झाँकने लगा। मुझे अनुभव हुआ कि मैं अपना कर्तव्य ठीकसे नहीं निबाह रहा हूँ। अतः सरदारशहर लौटकर दूकानके सेवा-कार्यमें मैं भी हाथ बँटाने लगा। इस तरह इन महापुरुषके सांनिध्यसे मैंने कर्तव्य-निष्ठाका स्वरूप जाना और जीवनमें इसपर चलनेका बराबर प्रयत्न करता रहा हूँ।

इसके बाद भी कई बार मैंने पूज्यपाद भाईजीके दर्शन किये हैं। वे इतने संकोची थे कि दर्शनार्थ आनेवालोंको कभी निराश नहीं करते थे एवं अपनी कार्यव्यस्ततामें अथवा अस्वस्थतामें भी अधिक समयतक बैठे रहनेपर भी मिलने आनेवालोंको अपनी ओरसे कभी उठकर जानेको नहीं कहते थे। दर्शनार्थी अपनी इच्छासे उठकर चले जायँ तो भले ही।

एक बार मैंने पूज्य भाईजीसे वर्तमान आध्यात्मिक परिस्थितिके बारेमें शङ्का की एवं कहा कि 'साधककी अपनी शङ्काओंका समाधान ठीकसे नहीं हो पाता, इससे वह भटक जाता है। महात्माओंके बाह्य जीवनमें ठाट-बाट अधिक होनेसे साधक भी सादा जीवन बितानेकी प्रेरणा नहीं पाता।'

इसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा, उसका सार था कि 'सभी क्षेत्रोंमें घोर नैतिक पतन हुआ है। आध्यात्मिकताके नामसे भी दूकानें खोली जाती हैं। वाणीमें और रहन-सहनमें फैशन आ गया है। दूसरे हमें देखकर कैसे मुग्ध हों, कैसे हमारी वाणी, पोशाक, चाल आदिपर रीझें—यही लक्ष्य धार्मिक कहलानेवालोंका हो गया है। कथनी-करनीमें सामञ्जस्य नहीं है। अतः ऊपर-

के रहन-सहनसे मुग्ध होकर अपनेको धोखेमें नहीं डालना चाहिये। अपने साधन-पथपर दृढ़तासहित अग्रसर होना चाहिये।'

इस संदर्भमें मैं पूज्य श्रीभाईजीके एक पत्रका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता। हमारे पूज्य गुरुदेवके ब्रह्मलीन होनेपर साधन-पथपर अग्रसर होते रहनेमें कुछ शङ्का होने लगी। उसके समाधानके लिये मैंने एक पत्र पूज्य श्रीभाईजीको लिखा था--उत्तरमें ज्येष्ठ शुक्ल ९, सं० २०१०का जो पत्र आया था, उसमें लिखा था--

'गुरुके शरीरसे न रहनेपर दूसरा गुरु बनाना ठीक नहीं है। गुरुतत्त्व तो नित्य है। गुरुद्वारा बताये गये मन्त्र तथा साधनको करते रहना चाहिये। इसमें दूसरेको कुछ बताते रहने और पूछते रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

'साधनका पथ--भगवान्का पथ तो सीधा पथ है; उसपर जो चल रहा है, वह अग्रसर हो रहा है। उसमें भूलने-भटकनेका कोई भय नहीं है। अपने लक्ष्य और साधनपर दृढ़ विश्वास रखना चाहिये।'

पूज्य भाईजीकी कथनी और करनीमें सामञ्जस्य था। सचमुच श्रीभाईजीकी रहनी आदर्श थी, जो दूसरोंको मूक प्रेरणा देती थी।

उनके दर्शनार्थ जब भी गया हूँ एवं उनको प्रणाम किया है, तब वे बराबर संकोचका अनुभव करते थे और कहते थे--'यह क्या कर रहे हैं?' उनके पार्थिव शरीरके अभावमें आज अँधेरा-ही-अँधेरा है। उनके बारेमें कुछ कहना या लिखना अपने मन और लेखनीको पवित्र एवं धन्य करना है, वर्ना हमारा यह प्रयास सूर्यको दीपक दिखानेके सदृश है।

●

महात्माके सङ्गसे जैसा लाभ होता है, वैसा लाभ संसारके किसीके भी सङ्गसे नहीं हो सकता। संसारमें लोग पारसकी प्राप्तिको बड़ा लाभ मानते हैं, परंतु संतोंके सङ्गका लाभ तो बहुत ही विलक्षण है। पारस लोहेको सोना बना सकता है, परंतु पारस नहीं बना सकता। लेकिन संत-महात्मा पुरुष तो सङ्ग करनेवालेको अपने समान ही संत-महात्मा बना देते हैं। इसलिये महात्माओंके सङ्गके समान संसारमें और कोई भी लाभ नहीं है। परम दुर्लभ परमात्माकी प्राप्ति महात्माओंके सङ्गसे अनायास ही हो जाती है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

सेवाकी सरल प्रेरणा

श्रीमती सावित्री त्रिपाठी

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी आदर्श सत्पुरुष ही नहीं, महापुरुष थे । उनके प्रवचन बड़े प्रभावशाली होते थे । मैं भाग्यशालिनी हूँ, जो श्रीभाईजीकी छत्रछायामें बाल्यकालसे पली और सयानी हुई । एक बार अपने प्रवचनमें उन्होंने दीन-हीन पुरुषोंकी सेवा-सहायताके लिये प्रेरित करते हुए कहा——

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १४ । ८)

'मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय । इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये ।'

इस ऋषि-वाक्यसे बढ़कर और कौन साम्यवाद होगा ? इसे हृदयसे स्वीकार कर लिया जाय तो निश्चय ही वर्तमान अशान्ति मिट जाय; पर इसे हम श्रद्धापूर्वक जीवनमें उतार लें, तब न?

फिर भाईजीने कहा——'हमारा धनिकवर्ग अपने विलासपूर्ण जीवनमें जितना धन नष्ट करता है, यदि उसका सदुपयोग करता तो समाज और देशका बड़ा हित हो सकता था । पर उन्हें अपने शौकसे, अपने भोगसे, अपने विलाससे कहाँ अवकाश है, जो दरिद्रनारायणपर दृष्टि डालनेका कष्ट करें ।

'हमारे मारवाड़ी घरोंमें स्त्रियाँ कम खर्च नहीं करतीं । वे वस्त्रोंपर ही हजारों रुपये व्यय करती रहती हैं । मैंने देखी है——डेढ़-डेढ़ हजार रुपयेकी ओढ़नी । इतनी कीमती ओढ़नी ओढ़कर वे संतोषका अनुभव करती होंगी, पर वे चाहें तो पचास-साठ या सौ-सवा सौ रुपयेकी भी ओढ़नीसे काम चला सकती हैं । इस प्रकार वे रुपये बचाकर गरीब, असहाय, अनाथ, कोढ़ी, रोगी आदि विपत्तिग्रस्त व्यक्तियोंकी सेवा कर सकती हैं । विश्वास कीजिये, यह सेवा साक्षात् दीनबन्धु भगवान्‌की, दीनानाथकी, श्रीनारायणकी, श्रीरामकी, श्रीकृष्णकी सेवा है । इससे दुर्दशा-ग्रस्त मनुष्य-जातिका हित तो होगा ही, निश्चय ही ऐसा करनेवाले भाई-बहनोंका परम कल्याण भी होगा ।'

देव-पुरुष श्रीभाईजीका यह उपदेश अब भी रह-रहकर मेरे कानोंमें जैसे गूँजता रहता है । मेरे विवाहके अवसरपर भेजा हुआ उनका शुभाशिष् संचित निधिकी भाँति मेरे पास सुरक्षित है ।

•

जीवनदानी नानाजी

श्रीदिलीपकुमारजी भरतिया

मैंने अपनी कालेजकी शिक्षा १९६६ जूनमें समाप्त की। बम्बई विश्वविद्यालयसे एम० काम० डिग्री प्राप्त करनेके पश्चात् परिवारवालोंकी यह स्वाभाविक रूचि रही कि मेरा विवाह हो जाय। भाग्यसे मेरा विवाह श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी दौहित्री पुष्पादेवीके साथ सम्पन्न हुआ और मुझे विलक्षण नानाजी प्राप्त हुए।

विवाहके एक साल बादसे अर्थात् १९६८से मेरा स्वास्थ्य खराब रहने लगा। दिन-पर-दिन शरीर अस्वस्थ रहने लगा और पेटकी तकलीफ बढ़ने लगी। एक वर्षतक गिरिडीह एवं कलकत्तामें तरह-तरहके इलाज हुए, पर तनिक भी लाभ नहीं हुआ।

१९६९के जनवरी मासमें नानाजीने मेरे परिवारवालोंसे विनम्र आग्रह करके मुझे गोरखपुर इलाज करवानेके लिये बुलाया। मैं यहाँ ५ या ६ तारीखतक पहुँचा। उन दिनों वे कहा करते थे––'मेरे हृदयमें कोई भी संकल्प-विकल्प नहीं उठता, परंतु मैं आपको नीरोग देखना चाहता हूँ।' उनको भावी घटनाओंका पूर्ण ज्ञान था। वे जानते थे, आगेका समय खराब है और शायद पूरे पेटका आपरेशन करना होगा। पर वे अपने भविष्यके ज्ञानको प्रकट करना नहीं चाहते थे।

डाक्टरोंकी सलाहके अनुसार पूज्य नानाजीको केवल 'अपेण्डिक्स'के आपरेशनकी जँची। २५ जनवरीको आपरेशन हुआ। आपरेशन थियेटरमें मुझे ले जाते वक्त उन्होंने सर्जन महोदयसे कहा––'आप केवल 'अपेण्डिक्स'का आपरेशन कीजियेगा, पूरा पेट मत खोलियेगा।' भावी सत्यके अन्तरालमें वे जानते थे कि पूरा पेट खोला जायगा। सर्जन महोदयने उस समय उन्हें कहा––"पेट खोलना कोई बच्चोंका खेल नहीं है। अगर 'अपेण्डिक्स' देखनेसे रोगका निदान ठीक नहीं हो सका तो पूरा पेट खोलकर इनकी बीमारीका कारण पता लगाऊँगा।'

अस्तु, पूरे पेटका बड़ा आपरेशन हुआ। पेटमें 'अल्सर' मिला। पेटका काफी हिस्सा निकाल दिया गया। आपरेशन सफल हुआ। पर असह्य पीड़ा थी, सारा शरीर जल रहा था। पर इस असह्य वेदनामें भी जब-जब पूज्य नानाजी पास आकर बैठ जाते, शान्तिका अनुभव होता। उनके आते ही मनको बड़ा बल मिलता। वे आश्वासन देते––'आप ठीक हो जायँगे, भगवान्को नित्य-निरन्तर याद रखिये।'

चार दिनतक असह्य पीड़ा और वेदना रही, पाँचवें दिनसे कुछ राहत मिलने लगी। मेरी हालतमें कुछ सुधार और लाभ हुआ कि अचानक पेटमें पुनः भीषण पीड़ा आरम्भ हो गयी। सब डाक्टर महानुभाव घबरा गये। स्थिति चिन्तनीय होने लगी। पर नानाजी सब कुछ व्यवस्था करते हुए भी अविचल थे। मुझे अच्छी प्रकारसे स्मरण है कि जब मैंने पूज्य नानाजीको प्रथम आपरेशनके बाद कहा––'मुझे बड़ा कष्ट है', तब उन्होंने बड़ी ही गम्भीर मुद्रामें उत्तर दिया था––'कष्ट तो और भी आगे है।' अर्थात् दूसरे आपरेशनकी जानकारी उन्हें थी। पेटमें असह्य दर्द

तो था ही, उल्टियाँ होने लगीं। नानाजी बार-बार कमरेमें आते, सिरपर और मुखपर हाथ फेरते और भगवन्नाम—'ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः' का उच्चारण करते। उस समय मुझे जिस आन्तरिक सुखकी अनुभूति होती, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता।

प्रथम आपरेशनके पश्चात् सर्जन महोदय बाहर चले गये थे। उन्हें बुलाया गया। वे आये। स्थिति देखकर वे घबरा गये; परंतु नानाजीने उन्हें हिम्मत और बल दिया। पुनः आपरेशन होना तय हुआ। जब मुझे दूसरा आपरेशन करानेके लिये आपरेशन थियेटरमें ले जाया जा रहा था, मेरा हृदय भावी शारीरिक पीड़ा और मानसिक कष्टसे विदीर्ण होता चला जा रहा था, आँखोंसे आँसू झर रहे थे। पूज्य नानाजी बगलमें जाकर बड़े ही स्नेह और प्यारभरे शब्दोंमें बोले—'आप रोते क्यों हैं, हमलोग आपके साथ जो हैं।' उस समय मनको बड़ा संतोष हुआ, परंतु जीवन-मृत्युके बीच मैं झूल रहा था। 'आपरेशन थियेटर'में बेहोशीके इंजेक्शन देनेके वक्ततक अखण्डरूपसे पूज्य नानाजीकी स्मृति बनी रही।

आपरेशन हुआ और सफल हो गया। परंतु उस प्रक्रियामें होनेवाली पीड़ाका लेखनी-द्वारा चित्रण नहीं हो सकता। पूज्य नानाजी आकर आश्वासन देते—'यह आँधी आयी है, यह भी निकल जायगी।' वे हास्पिटल प्रतिदिन सुबह ९ बजेसे १० बजेके बीच आते। मैं मन-ही-मन उनके आनेकी प्रतीक्षा करता; क्योंकि उनके आते ही हृदय शान्त और शीतल हो जाता। एक बार जब मैं बुरी तरह रोकर उन्हें शारीरिक कष्टकी स्थिति बताने लगा, तब वे बोले—'आप धीरज रखें, अधिक न बोलें। बोलनेसे कष्ट होगा। मुझे सारी स्थितिका ज्ञान है। मैं आपके दोनों आपरेशनोंके समय आपरेशन थियेटरके अंदर था। मैंने सब कुछ देखा है। मैं आप सबको देख रहा था, पर मुझे कोई नहीं देख पा रहा था। मैं आपरेशन थियेटरके बाहर लोगोंके समक्ष भी था और थियेटरके अंदर भी। मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ। मुझे झूठ बोलकर आपसे क्या लेना है।' उस समय मैं और नानाजी दोनों ही थे; और लोग कमरेके बाहर चले गये थे।

दूसरे आपरेशनके दो-तीन दिन बाद स्थिति फिर खराब होने लगी। मुझे उस स्थितिका ठीक अनुभव नहीं हुआ। बादमें घरवालोंने मुझे बताया कि 'आपका चेहरा विकृत हो गया था, डाक्टर स्वयं घबरा रहे थे; तब सबके प्रबल आग्रहसे पूज्य नानाजीने रात्रिमें कमरेको बंदकर कुछ किया और मेरी स्थितिमें सुधार होने लगा।'

उस समय मैं गोरखपुर १० अप्रैल १९६९तक रहा। वे नित्य-प्रतिदिन कम-से-कम एक वक्त मुझे देखनेके लिये नीचे कमरेमें आया करते थे। मैं उनसे आग्रह करता—'आप नीचे क्यों आते हैं, मैं आपसे मिलने ऊपर आ जाया करूँ।' वे बड़ी ही मधुर वाणीमें कहते—'मुझे नीचे आकर मिलनेमें सुख मिलता है। मैं जो कुछ भी आपके लिये कर रहा हूँ, अपने सुखके लिये कर रहा हूँ, मुझे इसमें सुख मिलता है।'

दूसरे आपरेशनके पाँच महीने बादतक स्वास्थ्य ठीक चलता रहा, परंतु फिर शारीरिक स्थिति गिरने लगी। पूज्य नानाजीको आगे आनेवाली घटनाओंकी जानकारी थी ही। मुझे एक-दो पत्रोंमें उन्होंने संकेत-सा भी किया।—'भारी-से-भारी कष्टमें भी मन विचलित न होने पाये, आप हिमालयकी तरह दृढ़ रहें और मन अखण्डरूपसे भगवान्‌की स्मृति करता रहे।' सन् १९६९के श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर मैं गोरखपुर आया। उत्सवके चौथे दिन रात्रिमें १० बजे अचानक पेटमें

भयंकर पीड़ा शुरू हो गयी। बस, यही कह सकता हूँ कि शरीरसे प्राण नहीं गये, बाकी कुछ नहीं रहा। प्राण रह-रहकर निकलना चाह रहे थे, परंतु पूज्य नानाजीकी अनन्त असीम कृपासे जीवन-दान जो मिलना था।

मुझे आपरेशनके लिये दिल्ली ले जानेका निश्चय हुआ। दिल्ली ले जानेके दो दिन पूर्व पूज्य नानाजी अस्वस्थ अवस्थामें भी अकेले कमरेमें आये। उनके अतिरिक्त उस समय कमरेमें और कोई नहीं था। वे करीब २० मिनटतक बैठे रहे और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, वे अपनी अमृतमयी दृष्टिसे मुझे जीवन-दान देनेका एक बार फिरसे संकल्प कर रहे हैं।

जब मुझे दिल्ली ले जानेका समय आया, पूज्य नानाजी मेरे कमरेमें आये। पूज्य नानाजीने आश्वासनभरे शब्दोंमें कहा—'आप घबराते क्यों हैं। हम आपके साथ जो हैं।' हमलोग दिल्ली पहुँचे। दिल्लीके डाक्टरोंने स्थितिका अध्ययन करके कहा—'८० प्रतिशत उम्मीद नहीं है कि ये बच जायँ; २० प्रतिशत बचनेकी आशा है।' आपरेशन होना अनिवार्य था। तीसरा आपरेशन २५ सितम्बर १९६९को हुआ। आपरेशन हुआ और इस सफलताका एकमात्र रहस्य केवल पूज्य नानाजीकी असीम कृपा और स्नेह था। भयानक-से-भयानक कष्ट रहा। शारीरिक कष्टके साथ-साथ मानसिक अवस्था भी बहुत खराब थी, परंतु पूज्य नानाजीकी कृपासे जीवनका वह तूफान भी निकल गया। पूज्य नानाजीकी निरन्तर स्मृति बनी रहती और सांनिध्यका अनुभव होता रहता।

ठीक होनेपर मैं दिल्लीसे गिरिडीह चला गया। नानाजी मुझे बराबर पत्र देते रहे। एक पत्रमें उन्होंने लिखा—'जगत्का कोई भी संयोग और वियोग, उत्पत्ति और विनाश मेरे मनको तत्वत: विचलित नहीं कर सकते। आप स्वस्थ हो जायँ, बस, मैं यही चाहता हूँ। मुझे लोक और परलोककी कोई चिन्ता नहीं, पर आपके स्वास्थ्यकी चिन्ता है।' पत्रोंके द्वारा वे आश्वासन, स्नेह और आशीर्वाद देते रहे।

स्वास्थ्यकी ओर दृष्टि रखते हुए इलाजके लिये परिवारवालोंने ६ अप्रैल १९७०को मुझे पुन: पूज्य नानाजीके पास गोरखपुर भेज दिया। तबसे मैं यहीं हूँ। पूज्य नानाजीकी अन्तर्धान-लीलाके समय मैं उनके समीप था।

पूज्य नानाजीने मेरे जीवनमें भगवद्-रसकी धारा प्रवाहित करनेका पूरा प्रयास किया। संसारका सुख और वैभव कहीं भी मिल सकता है, वह भी मिला और अब भी प्राप्त है, परंतु जीवनमें भगवत्प्रीति तो कवल पूज्य नानाजी-जैसे महाभागवतसे ही प्राप्त हो सकती है। उन्होंने इसका मेरे हृदयमें बीजारोपण किया और उसे अङ्कुरित करनेका सतत प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे कई पारमार्थिक अनुभूतियाँ करायीं, जिन्हें मैं अपनी अमूल्य निधिके रूपमें गुप्त ही रखना चाहता हूँ।

पूज्य नानाजी जीवनके अन्तिम दो वर्षोंमें बहुत बीमार रहे। उनकी अस्वस्थ अवस्था देखकर मेरे मनमें, हृदयमें बड़ी व्यथा और वेदना होती। दो-तीन बार मैंने उनसे अपनी व्यथा कही। प्रत्येक बार वे मुस्करा दिये और बोले—'मुझे इस बीमारीमें बड़ा सुख मिलता है।'

उन्होंने मुझे जीवनदान दिया, इसे मैं कभी भूल नहीं पाऊँगा। मेरा शेष जीवन श्रीराधा-माधवके स्मरण-चिन्तनमें बीत जाय—बस, मेरी यही पूज्य नानाजीसे याचना है। मुझे विश्वास है, पूज्य नानाजी मुझे इसके लिये निराश नहीं करेंगे।

●

मद्रासके नगर संकीर्तनमें

मद्रासके भावुक भक्तों द्वारा पुष्पवर्षा

बम्बई नगरके गण्यमान्य नागरिकोंके बीच ओजस्वी भाषण

सम्पूर्ण नगर स्वागतके लिये उमड़ पड़ा

'मोहिं सुधि बिसरत नाहीं'

श्रीमती पुष्पा भरतिया

क्या कहूँ--कैसे कहूँ--लिखने बैठी अवश्य हूँ, परंतु अन्तर्दाहकी असीम वेदनाका धूमिल चित्र भी खींचनेमें मेरी लेखनी सफल हो पायेगी, यह विश्वास नहीं है। हाथ काँप रहे हैं--नेत्र बरबस बरस रहे हैं--मन-प्राण बहुत ही बोझिल हो गये हैं।

अतीतकी सुखद स्मृतियाँ, जो मात्र स्वप्न बनकर रह गयी हैं, अनायास उद्बुद्ध होकर अतिशय व्याकुल कर रही हैं--मन रो रहा है--प्राण रो रहे हैं; पर हाय रे! किससे कहूँ--कौन सुनेगा मुझ अभागिनकी करुण पुकार? कौन पोंछेगा इन अभागे आँसुओंको? कौन दुलरायेगा अपने स्नेहसिक्त करोंसे? अब जीवनमें बचा ही क्या है?

साँस चल रही है; पर लगता है, प्राण नहीं--स्पन्दन नहीं जीवनमें--हृदयमें दुःखका भार लिये, अत्यन्त उदास, अतिशय खिन्न, सिसकती, रेंगती जिंदगी जा रही है अवसानकी ओर मन्थर गतिसे। जिसे चाहनेवाला दुनियामें न हो, मौतको भी उसकी चाह नहीं होती--शायद बस...इसीलिये जी रही हूँ--मर नहीं पायी।

नानाजीकी अनुपस्थितिकी मर्मान्तिक पीड़ासे व्यथित अभागे प्राण जब उस समय ही नहीं निकले, तब अब तो न जाने कबतक ढोना पड़ेगा इनका भार मुझे--जीवनके सार-सर्वस्व नानाजी ही चले गये छोड़कर, तब भी प्राणोंका मोह न छूट सका मुझसे तो अब क्या छूटेगा? अस्तु,

नानाजीकी छत्रछायामें हम बच्चे बढ़ते रहे--उनका सहज स्नेह हमें अबाधरूपसे मिलता रहा--हमलोगोंकी स्वच्छन्द क्रीड़ाके उपयुक्त सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहतीं। जब भी कुछ माँग होती, हमारे नानाजी अविलम्ब उसे पूरा कर देते--जीवनमें कभी भी, किसी भी प्रकारके अभावका अनुभव नहीं किया मैंने उनके जीवनकालमें--बचपनके सलोने दिन कब, कैसे बीत गये, हम जान भी नहीं पाये।

मैं करीब ९ वर्षकी थी, तब नानाजी सारे परिवारके साथ रतनगढ़ गये थे। वहाँ बैठक-में वे सम्पादनका कार्य किया करते थे। सर्दीके दिनोंमें वे कम्बल या मोटी चादर ओढ़कर बैठा करते थे। नानाजीके सामीप्य और स्पर्शमें मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुआ करती थी। उतनी देरके लिये मैं अपनेको बहुत ही गौरवशालिनी अनुभव करती। बस, इसीलिये मैं ठिठुरती ठंडमें बिना कुछ गर्म कपड़े पहने चली जाती बैठकमें। नानाजीका ध्यान सहज ही आकृष्ट होता मेरी तरफ और वे अपनी दुलारभरी भाषामें कहते--'सी लाग जासी छोरी! तूँ सूटर भी कोनी पैर राख्यो। आ मेरी कम्बल में बड़ जा।' और वे अपनी कम्बलसे दोनों हाथ निकालकर मुझे अपनी ओढ़ी कम्बलसे आवृत कर लेते--मुझे अभिवाञ्छितकी प्राप्ति हो जाती और मैं खिल उठती। छोटे-बड़े मेरे भाई-बहिन ललचायी नजरोंसे देखते रह जाते और मैं नानाजीके स्नेहपर अपना एकाधिपत्य जमा, चैनकी नींद सो जाती।

यों तो नानाजी हम सभी बच्चोंको बहुत अधिक प्यार करते थे, परंतु उनका स्नेह मेरे प्रति अपेक्षाकृत अधिक रहता। वे कहा भी करते थे, 'मुझे तुम चारों बच्चे बहुत ही प्रिय हो, परंतु तुम्हारे प्रति मेरा बहुत मोह है।' नानाजीकी अयाचित अनुकम्पा मुझपर विशेषरूपसे रहती और मैं अनायास अतिशय सुगमतासे प्राप्त उनके अपरिसीम प्यारसे ओत-प्रोत अपने सौभाग्यपर स्वतः ही मोहित रहती।

समय बीतता गया और समयके साथ-साथ मैं भी बढ़ती गयी। अब नानाजीको मेरी शादी करनी थी--और आखिर वह दिन आ ही गया, जो हर लड़कीके जीवनमें एक दिन आता ही है। शादी हो गयी मेरी। मुझे बिदा करना था--हृदयमें उल्लास और आँखोंमें आँसू लिये नानाजी मेरे पास आये। मैं स्थिर-पलकोंसे देख रही थी अपने नानाजीके स्नेहपूरित छलछलाये नेत्रयुगलको। अब मेरा धैर्य भी बाँध तोड़ चुका था--मैं नानाजीके गलेमें हाथ डालकर फफक-फफककर रोने लगी। नानाजी बहुत कुछ कहना-समझाना चाहते थे मुझे, पर उमड़े हुए स्नेहको भेदकर वाणी कण्ठसे बाहर आ जो नहीं पाती थी। कबतक मैं रोती रही, मुझे भान नहीं; हाँ, किसीने जबर्दस्ती मुझे नानाजीसे अलग किया। नानाजीने बहुत कठिनाईसे अपनेको सँभाला तथा अश्रुपूरित कण्ठसे मेरे कर्त्तव्योंका बोध कराते हुए मुझे जल्दी ही वापस बुलानेकी सान्त्वना दी और मुझे बिदा कर दिया गया।

मेरी शादी ४ मार्चकी थी और मेरी एम० ए०की फाइनल परीक्षा मार्चके अन्तिम सप्ताह-में। मैं १३-१४ मार्चतक वापस आयी। पढ़ाई कुछ भी नहीं हुई थी। सालभरका, और फिर एम०ए०का कोर्स १५ दिनमें तैयार करना असम्भव था। मैं नानाजीके पास गयी। मैंने कहा--'नानाजी, मेरी तैयारी बिल्कुल नहीं हुई है। मैं परीक्षा नहीं दूँगी। हाँ, अगर आप चाहते हैं कि मैं परीक्षा दूँ तो आप अपने मुँहसे कह दीजिये, मेरी सेकंड डिविजन आ जायगी।' नानाजी पहले तो आनाकानी करते रहे, पर मेरे बाल-हठके सामने उन्हें झुकना ही पड़ा। आखिर उन्होंने कह ही दिया--'परीक्षा तो दो, सेकंड डिविजन आ जायगी।' जो सत्यसंकल्प हैं, जिनके दिव्य मानसतलमें किसी भी संकल्पका उन्मेष होते ही वह तत्क्षण संघटित हो जाता है, उन्होंने जब अपनी वाणीसे कह दिया, तब मेरे लिये संशयका स्थान ही कहाँ रह गया था। मैंने १५ दिन पढ़कर परीक्षा दी और गुड सेकंड क्लासके मार्क्स थे मेरे। नानाजी सर्वसमर्थ थे, सब कुछ करनेकी--देनेकी सामर्थ्य थी उनमें। यह नितान्त सत्य है--इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे जीवनमें कई बार हुआ है। अनुभव प्रचारकी वस्तु नहीं; अतः उनको गोपनीय रखना ही उचित है।

जितने दिन मैं ससुराल रही, नानाजीका पत्र प्रायः प्रत्येक दिन ही मिलता--किसी दिन नहीं पहुँचता तो दूसरे दिन दो पत्र साथ-साथ मिलते। पत्र देखते ही मैं आनन्द-विभोर हो उठती--गोल-गोल, मोती-सी सुन्दर-सुघड़, स्नेहपूरित अक्षरावलिको देखते ही मैं खुशीसे मत्त हो उठती। लिफाफेके ऊपर भी 'बेटी' लिखे बिना नानाजीका मन नहीं मानता। सदा 'बेटी पुष्पा भरतिया' करके ही वे पता लिखते अपने हाथोंसे। आज भी मेरे जीवनकी अमूल्य निधिके रूपमें मुझे उनके हाथोंसे लिखे अनेकों पत्र हैं। जब भी उन्हें पढ़ती हूँ, लगता है--नानाजी मेरे सामने बैठे हैं और बड़े ही प्यारसे--लाड़भरी मनुहारसे मुझे नानाविध शुभ प्रेरणा दे रहे हैं।

किसी भी कारणवश मुझे पत्र देनेमें यदि एक दिनका भी विलम्ब हो जाता तो नानाजी चिन्तित हो उठते। मेरे पत्रके किसी भी शब्दसे 'नैराश्य' या 'उदासी'का क्षीण-सा भी आभास उन्हें मिलता तो वे आकुल हो उठते। प्रातः नानाजीका भोजन करनेका समय होता, प्रायः उसी समय डाक आया करती थी। कार्यभारकी अधिकताके कारण नानाजी भोजन करते समय भी आयी हुई डाक एवं पत्रोंको देखा करते थे। नानी भोजन कराने आती थी। अगर मेरा पत्र होता तो नानाजी नानीको पढ़कर सुना देते थे। पत्र पढ़ते-पढ़ते उनकी विचित्र-सी दशा हो जाती––आँखोंसे झर-झर आँसू गिरने लगते, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता उनका। नानीका भी असीम स्नेह है मेरे प्रति––उसका भी कलेजा भर आता। स्थितिके गाम्भीर्यको कम करनेके हेतु नानी व्यङ्गका पुट देती-सी कहती––'पैली थे रो ल्यो, फेर बाँचिओ (पहले आप रो तो लें, फिर पढ़ियेगा।) बेरो कोनी जी कित्तो मोह है थारो उँ छोरी मैं (पता नहीं, कितना मोह है आपका उस लड़कीमें।)' नानीकी व्यङ्गयुक्त प्रेमिल वाणी सुनकर नानाजी अनायास ही हँस पड़ते और फिर बातोंका प्रवाह बदल जाता। मैं जब गोरखपुर आती, तब नानी या स्वयं नानाजीके द्वारा मुझे इन सब बातोंकी सूचना मिलती।

जब मैं यहाँ रहती, नानाजी चाहते कि मैं उनके पास जाऊँ, बैठूँ; पर इन दिनोंमें प्रायः नानाजी बाह्यज्ञान भूलकर भावराज्यमें खो जाते थे, प्रायः नानाजी कमरा बंद रखने लगे थे। इस कारण कई बार कई-कई दिनोंतक यहाँ रहते हुए भी मुझे उनके पास बैठनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हो पाता था। कई दिनों बाद देखनेपर नानाजी उलाहना देते, न आनेका कारण पूछते। मैं कहती––'मैं तो आयी थी; पर आपका दरवाजा बंद था, नानाजी!' वे कहते––'दरवाजा तो बंद था, पर तुम्हारे लिये थोड़े बंद था; तुम खटखटा लेती, खुलवा लेती।' कई बार उन्हें मेरी आवाज-से या आहटसे यह पता चल जाता कि मैं ऊपर आयी हूँ तो कितने भी आवश्यक कार्यमें रत क्यों न हों, उठकर तुरंत दरवाजा खोल मुझे अंदर बुला लेते एवं अपने सहज स्नेहसे मेरे अणु-अणुको सिक्त कर देते।

सुखके दिनोंकी रफ्तार इतनी तेज होती है––कब आये, कब चले गये––पता भी नहीं चलता।

नानाजीकी दृष्टिमें अब पट-परिवर्तन करनेका समय आ चुका था। यों तो नानाजी प्रायः बीमार ही रहने लगे थे इन दिनोंमें, पर इस बार तो बीमारी उनके पार्थिव कलेवरको हमसे पृथक् करने ही आयी थी।

नानाजी सर्वज्ञ थे––वे जानते थे, जाना है; पर जानेसे पहले किसी-न-किसी रूपमें मेरे मलिन शरीरद्वारा उनकी सेवा हो जाय, यह उनकी हार्दिक अभिलाषा हो गयी थी। इसके अन्तरालमें भी असीम, अगाध स्नेहका समुद्र लहरा रहा था उनका मेरे प्रति। उनकी सेवाका उपकरण बन मैं कृतार्थ हो जाऊँ––यह स्नेह-भावना––मङ्गल-भावना निहित थी उनकी इस अभिलाषामें।

नानाजीके शरीरमें भीषण दाह था; हाथों और सिरपर ठंडे हाथोंका स्पर्श अच्छा लगता था उन्हें। सभी चाहते कि उनकी सेवाका सौभाग्य उन्हें भी प्राप्त हो। एक सज्जन बर्फसे स्पृष्ट हाथ लगा रहे थे, मैं पासमें खड़ी थी। नानाजीकी मुख-मुद्रासे मुझे यह आभास हुआ कि उन्हें इस

प्रकार हाथ लगाना विशेष रुचिकर नहीं लग रहा है। मैंने उनको दूसरी तरहसे हाथ रखनेको कहा। बस, अब तो नानाजीको बोलनेका अवसर मिल गया। स्नेहभरी खीझसे बोले—'खड़ी-खड़ी अकल बतावै है, यो तो कोनी कि आप इ कर देवै (खड़ी-खड़ी सिखा रही है; यह तो नहीं कि अपने हाथोंसे कर दे।)'—इस उक्तिका लक्ष्य क्या है, यह समझते उन सज्जनको देर नहीं लगी। वे हट गये और मैं उनकी जगह बैठकर उनके सुधापूरित आदेशका पालन करने लगी।

आखिरी दिनोंमें नानाजीको प्यास लगती, पर उनके गलेसे पानी नहीं उतरता था। उनको ड्रापरसे बूँद-बूँद करके पानी दिया जाता था। कई लोगोंने चेष्टा की पानी पिलानेकी, पर नानाजी सदैव मुझे ही पिलानेको कहते। कारणविशेषसे यदि मुझे बाहर आ जाना पड़ता तो मुझे खोजकर बुलवाया जाता। ऐसा विलक्षण था उनका प्यार मेरे प्रति। क्या लिखूँ, क्या नहीं, हमारे जीवनके कण-कणमें प्रविष्ट थे वे। तब फिर हमारे लिये अवशिष्ट ही क्या रहा। उनकी अयाचित कृपाका दान सदैव अनवरतरूपसे हमें मिला, मिलता है, मिलता रहेगा।

नानाजीने स्वयं मुझे अपने पत्रमें लिखा था—'तुम जहाँ भी रहो, मेरा स्नेह तुम्हारी सम्पत्ति है; मेरा शरीर रहे या न रहे, तुम जहाँ भी रहोगी, तुम्हें वह अबाधरूपसे मिलता रहेगा।'

कालमानसे एक वर्षकी अवधि समाप्त होनेको आयी, नानाजीका पार्थिव कलेवर हमसे बिछुड़ गया। कई बार चित्त बहुत उदास हो जाता है—प्राणोंमें हाहाकार-सा होने लगता है; कान उनकी मधुस्यन्दी गिरा सुननेको विकल हो उठते हैं; आँखें उनके अलौकिक देदीप्यमान मुखमण्डलको देख पानेके लिये मचल उठती हैं। उस समय हृदयकी कैसी विचित्र दशा हो जाती है, कह नहीं सकती; परंतु असम्भव वस्तुके लिये किये गये संकल्पकी सफलता कैसे सम्भव है। अब तो हम अभागे उस सुखकी सुखद कल्पनामात्र ही कर सकते हैं। जहाँ उनकी छत्रछाया नहीं, वहाँ विषाद-वेदनाकी भट्ठी निरन्तर धक्-धक् जलती ही रहेगी। अस्तु,

इस प्रकार अपने स्नेहदीपकी ज्योति जलाकर, हम भोले बच्चोंको अयाचित सौभाग्य प्रदानकर, भावके दिनमणि आज अस्ताचलमें समा गये हैं।

यह सत्य है कि निष्ठुर नियतिने उनकी प्रत्यक्ष संनिधिसे हमें वञ्चित कर दिया है, पर अप्रत्यक्षरूपसे आज भी वे हमारे साथ हैं। मुझे पग-पगपर इसकी अनुभूति होती है। उनके वरदहस्त अब भी हमारी सँभालके लिये सचेष्ट हैं, यही अनुभूति मेरी जीवन-संजीवनी है।

●

जब प्रातःकाल सूर्य उदय होता है, तब ज्यों-ज्यों सूर्य नजदीक आता है, त्यों-ही-त्यों सूर्यके प्रकाशका अधिक असर पड़ता है। वैसे ही हम जितने ही महात्माओंके समीप होते हैं, उतना ही हमको अधिक लाभ मिलता है। वे एक ज्ञानके पुञ्ज हैं, उस ज्ञान-पुञ्जसे हमारे अज्ञानान्धकार-का नाश होकर हमारे हृदयमें भी ज्ञान-सूर्यका प्राकट्य होता है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

भक्तिरूपा महासिद्धिसम्पन्न श्रीभाईजी

श्रीगोविन्ददासजी वैष्णव

श्रीभाईजीका प्रथम दर्शन मुझे सन् १९३६में गीतावाटिकामें होनेवाले एकवर्षीय अखण्ड हरिनाम-संकीर्त्तन-यज्ञके दौरान हुआ था। तबसे लेकर उनके श्रीराधामाधवकी नित्यलीलामें लीन होनेतक समय-समयपर मुझे उनके दर्शन, सम्भाषण तथा सत्सङ्गका सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। जीवनके अन्तिम ८-१० वर्ष प्रायः वे भावसमाधिकी अवस्थामें रहते थे, पर लोक-प्रसिद्धिसे बचनेके लिये उस अवस्थाको 'माथेकी खराबी' कहा करते थे। एक सज्जनने पूछा—'भाईजी, ऐसा कहना झूठ नहीं है क्या?' उन्होंने सहजभावसे उत्तर दिया—"संसारकी दृष्टिमें जब उसके कामका नहीं रहा तो 'माथा खराब' ही तो है।"

मैं देखता था, भाईजी अपने प्रवचनोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी माखनचोरी, ऊखल-बन्धन, मृद्भक्षणादि बाल-लीलाओंका वर्णन करते हुए भाव-विभोर और हँसते-हँसते आनन्दमग्न हो जाते थे। अनेक भाषाओंके विद्वान्, 'कल्याण'-जैसे सुप्रसिद्ध धार्मिक पत्रके यशस्वी सम्पादक तथा विश्वप्रख्यात महापुरुषके हृदयकी ऐसी सरलताको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। एक बार किन्हीं महानुभावने कहा—'भाईजी, ऐसी लीलाओंको अधिक न कहा करें।' भाईजी बोले—'क्या करूँ? भीतर यही जो भरा हुआ है।'

भाईजीके नित्यलीलालीन होनेके दो-ढाई मास पूर्वकी बात है कि मैं गीतावाटिकामें ही था। मेरे सामने एक साधन-साध्य-सम्बन्धी आध्यात्मिक समस्या उपस्थित थी। ता० ७ जनवरी १९७१की शामको साढ़े छः बजे भाईजीके पास पहुँचकर मैंने बातचीतकी इच्छा प्रकट की। उस समय भाईजी चारपाईपर लेटे हुए विशेषाङ्कका प्रूफ देख रहे थे। बोले—'स्वास्थ्य खराब है, पेटमें दर्द है।' उचित तो यही था कि मैं उस समय कुछ न पूछता, परंतु कामना थी। मैं बैठा ही रहा। भाईजीका स्वभाव ऐसा कोमल था कि वे जहाँतक हो सकता था, किसीको निराश नहीं करते थे। बोले—'अच्छा, सुना जाइये।' मैंने अपने प्रश्न उन्हें सुना दिये। मेरे प्रश्नोंका उतर देते हुए भाईजीने कहा—"अद्वैत तो मैं भी मानता हूँ, परंतु मेरे अद्वैतका अर्थ है—'सब श्रीकृष्ण हैं।' वे ही सगुण हैं और निर्गुण भी हैं। उनके नाम, रूप, लीला, धाम आदि सभी नित्य हैं। उनकी मङ्गलमय देह भी नित्य है। उनके माता-पिता—श्रीनन्द-यशोदा, ग्वाल-बाल, सखागण, श्रीराधारानी आदि गोपीजन भी नित्य हैं। उनके परमधाममें स्थल, मकान, सरोवर, बाग-बगीचे, पुष्प, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि सभी हैं, परंतु प्राकृत नहीं, चिन्मय हैं, भगवत्स्वरूप हैं। वहाँ मायाका, जडताका प्रवेश नहीं है। इस जगत्में जो कुछ भी है, वह उस परमधामकी छाया है। कुछ लोग श्रीकृष्णको मायोपाधिक मानते हैं, कुछ लोग श्रीकृष्णका विकास मानने लगे हैं। मैं ऐसा कुछ नहीं मानता। मैं तो उनको सच्चिदानन्दघन ब्रह्म, पूर्ण पुरुषोत्तम मानता हूँ। स्वयं आदिशंकराचार्यने श्रीकृष्णको अपने 'प्रबोधसुधाकर'में **'सच्चिन्मयो नीलिमा'** कहा है।

"भगवान् श्रीकृष्णका जो ज्ञान है, वही पूर्ण तत्त्वज्ञान है। उसे ही समग्र 'ब्रह्मज्ञान' कहते हैं। केवल निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान उससे कुछ नीचे उतरकर है; क्योंकि उसमें सगुण ब्रह्मका ज्ञान शेष रह जाता है। वह पूर्ण तत्त्वज्ञान भक्तिसे ही होता है—'**भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।**' जो लोग श्रीकृष्णको मायोपाधिक, प्रतीतिमात्र, सत्ताशून्य मानते हैं, उनके ज्ञानको तो मैं ज्ञान मानता ही नहीं। वह तो ज्ञानाभिमान है, अज्ञान है, वास्तविक ज्ञान नहीं है। श्रीमद्भागवतमें मायावाद नहीं है।

"ब्रह्मज्ञान होनेपर सभी ब्रह्मज्ञानियोंको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होगी ही, यह नियम नहीं है। जिसके ऊपर भगवान् या भगवत्प्रेमी किसी संतकी कृपा होगी, उसीको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होगी; अन्यथा नहीं। ब्रह्मज्ञान होनेपर भी देवर्षि नारद, शुकदेवको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हुई, परंतु याज्ञवल्क्यको नहीं हुई। यदि प्रेम चाहिये तो भक्ति करें; ज्ञान चाहिये तो भी भक्ति करें। केवल भक्तिसे ही प्रेम, ज्ञान, धाम आदि सबकी प्राप्ति हो जायगी। भगवान्ने स्वयं कहा है—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (गीता १०।११)

"भक्तके लिये अद्वैत-ज्ञानके साधनकी कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुन, वसुदेव, गोपियों तथा उद्धव आदिको जो ज्ञान दिया था, वह ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञान नहीं, भगवत्तत्त्वका ज्ञान है, जिसे समग्र ब्रह्मका ज्ञान कहते हैं। भगवान् श्रीरामने महाराज दशरथको भगवत्तत्त्वका ज्ञान कराया था। इसका स्पष्ट प्रमाण यही है कि सभी भक्तोंको अन्तमें भगवान्की प्रेम-सेवा मिली, केवल मोक्ष नहीं हुआ। यदि ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानका उपदेश किया होता तो उन्हें कैवल्य-मुक्ति होनी चाहिये थी, पर हुई नहीं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ सामान्य जीवोंके लिये हैं। मोक्षसंन्यासी प्रेमियोंके लिये 'प्रेम' पञ्चम पुरुषार्थ है।"

श्रीभाईजीके शब्द ज्यों-के-त्यों मैंने नोट नहीं किये थे, जितना और जैसा मैं स्मरण रख सका, उतना और वैसा ही लिखा है।

भाईजीमें और कोई सिद्धि थी या नहीं, इसका मुझे पता नहीं; परंतु उन्हें सम्पूर्ण सिद्धियों-की जननी भगवद्भक्तिरूपा महासिद्धि प्राप्त थी—ऐसा मेरा विश्वास है।

●

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई।
अबरन-बरन न गनिय रंक-धनि, बिमल बास निज सोई॥
बाम्हन-छत्री, बैस-सूद्र, सब भगत समान न कोई।
धन वह गाँव, ढाँव, अस्थाना, ह्वै पुनीत सँग लोई॥
होत पुनीत जपै सतनामा, आपु तरै तारै कुल दोई।
जैसे पुरइन रह जल भीतर, कह कबीर जग में जन सोई॥

—संत कबीर

●

आदर्श शिक्षक

ठा० श्रीगंगासिंहजी

परमपूज्य श्रीभाईजीसे मेरा सम्बन्ध सन् १९२८ ई०में हुआ। उनके स्वभाव, गुण, एवं अत्यन्त आत्मीयता और प्यारभरे व्यवहारसे वह उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता गया। उनके साथकी अनेकों सुखद एवं प्रेरणाप्रद स्मृतियाँ हैं।

कुछ वर्ष पहलेकी बात है कि पूज्य भाईजी अपनी मौजसे लेटे हुए थे। मैं उनके बिल्कुल समीप बैठा हुआ था। मैंने उनके शरीरपर एक तिनका पड़ा हुआ देखा तो उसे उठाकर फेंक दिया। उन्होंने पूछा—'क्या है ?' मैंने कहा—'कचरा था।' इसपर वे बोले—'शरीर भी कचरा है, कचरेपरसे कचरेको उठाकर क्या फेंकना ?' उनके इस कथनसे मुझे पता चला कि वे शरीरके प्रति कितने उदासीन थे।

श्रीभाईजी छोटे-से-छोटे काम करनेमें भी संकोचका अनुभव नहीं करते थे, बल्कि उस कार्यको उत्साहपूर्वक करके एक आदर्श स्थापित कर देते थे। लगभग १२ वर्ष पूर्व मैं 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें ही काम करता था। हमलोग कुएँपर स्नान किया करते थे। कुआँ आफिसके समीप था। आफिस जाते समय पूज्य श्रीभाईजी जान-बूझकर उधरसे नहीं निकलते थे—इसलिये कि लोगोंको संकोच होगा, इनके स्वच्छन्द स्नानमें बाधा आयेगी। पर एक दिन जब और लोग नहीं थे, मैं अकेला ही था, वे कुएँके समीप चले आये। उन्होंने देखा कि स्नान करनेवाले सज्जनोंने दातुन करके दातुनोंको जिस डिब्बेमें डालना चाहिये, उसमें न डालकर इधर-उधर फेंक दिया है। इस प्रकार यत्र-तत्र पड़े दातुनोंसे गंदगी फैल रही थी। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा और वे अपने हाथसे दातुन उठा-उठाकर उस डिब्बेमें डालने लगे। मैंने कहा—'भाईजी, आप यह क्या कर रहे हैं ? आप रहने दीजिये' और मैं भी दातुन उठा-उठाकर डिब्बेमें डालने लगा। पर श्रीभाईजी इस कार्यसे विरत नहीं हुए और वे दातुन तबतक उठाकर डिब्बेमें डालते रहे, जबतक दातुन समाप्त न हो गये। पीछे लोगोंको श्रीभाईजीकी इस चेष्टाका पता चला और सब यथास्थान डिब्बेमें ही दातुन डालने लगे। यह था उनका किसीको अपने कर्तव्यका बोध करानेका तरीका। उन्हें जो कहना था, वह उन्होंने वाणीसे नहीं, क्रियासे कहा।

श्रीभाईजी एक उच्चकोटिके भगवत्प्राप्त महापुरुष थे। उनके चरण-स्पर्शसे एक विलक्षण अनुभूति होती थी। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि भगवान्की कृपासे मुझे परमपूज्य श्रीभाईजी मिले और मेरा विश्वास है कि श्रीभाईजीकी कृपासे मुझे भगवान् भी मिल जायँगे।

●

परम उदारमना महामानव—श्रीभाईजी

श्रीरामसूरत त्रिपाठी

परमादरणीय श्रीभाईजी अपने उदारचरितके लिये विख्यात थे। सहृदयता, सदाशयता एवं परदु:खकातरताकी वे साकार मूर्ति थे। उनका परिवार कुछ इने-गिने अत्यन्त निकटके लोगोंका समूहमात्र नहीं था, अपितु उनके विशाल परिवारमें वे सभी लोग सम्मिलित थे, जिनसे कभी किसी अवसरपर भी श्रीभाईजीका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सम्पर्क हो जाता था। श्रीभाईजीका द्वार सभीके लिये समानरूपसे खुला रहता था। अतिथिगण आ रहे हैं—संख्याकी क्या चिन्ता। सभीके भोजन-निवासकी सम्यक् एवं संतोषजनक व्यवस्था श्रीभाईजीकी ओरसे पहलेसे ही प्रस्तुत थी। याचकगण श्रीभाईजीकी गुहार लगाते आते—कोई भी रिक्तहस्त नहीं लौटता था। कभी विधवा असहाय माँ-बहनोंकी सहायता श्रीभाईजी करते तो कभी कन्याओंके विवाह सम्पन्न करानेका दायित्व वहन करते। साधु-महात्मागणका श्रीभाईजी विनम्रताके साथ हार्दिक स्वागत, सत्कार एवं बिदाई करते। गोरखपुर विश्वविद्यालयके हिंदी-विभागाध्यक्ष डाक्टर श्रीगोपीनाथजी तिवारीने एक प्रसङ्गमें बताया था कि श्रीभाईजीके पास उनके द्वारा गत २५ वर्षोंमें प्रेषित तीन-चार सौ विद्यार्थियोंमेंसे कोई भी निराश नहीं लौटा। यह तो एक व्यक्तिके माध्यमसे आये छात्रोंकी संख्या है, श्रीभाईजीके पास न जाने कितने माध्यमोंसे तथा स्वतन्त्र भी छात्र आते थे। उनके पास पहुँचनेके लिये किसी माध्यमकी आवश्यकता नहीं थी।

मुझे सन् १९३४से ही पूज्य श्रीभाईजीका स्नेह एवं कल्पवृक्षतुल्य सांनिध्य प्राप्त रहा।

सन् १९६५में मैं एक वर्ष गीतावाटिकामें भाईजीके पास रहा। वहाँसे जब मैं प्रस्थान करने लगा, तब श्रीभाईजीने जीवनमें सफलताके लिये चार सूत्र मुझे प्रदान किये थे—

१. पूरी निष्ठा एवं ईमानदारीके साथ कर्तव्यका पालन करना।
२. किसीका बुरा करना तो दूर, उसकी कल्पना भी न करना।
३. हर छोटे-बड़ेके व्यक्तित्वका सम्मान करना।
४. ईश्वरको सदैव स्मरण रखना और एक ईश्वरपर ही भरोसा रखना।

इन सूत्रोंमें केवल एकका पल्ला पकड़ लेनेसे जीवन सफल हो जाय। श्रीभाईजी इन सूत्रोंका विश्लेषण करते हुए कहा करते थे—'एक व्यक्ति दूसरेका बुरा करनेके लिये तब संनद्ध होता है, जब उसके अपने मन एवं शरीर द्वेष एवं ईर्ष्याग्निसे दहक रहे होते हैं। अग्नि पहले उसे ही जलाती है, जहाँ वह होती है। अतएव पहले बुरा करनेकी कल्पना करनेवाला ही उसका शिकार होता है, जलता है, भस्म होता है। अत: बुरा पहले बुरा करनेवालेका होगा। जिसे वह शिकार बनाता है, उसका बुरा होगा कि नहीं—यह उसके प्रारब्धके अधीन है।' उनका कहना था कि 'हर व्यक्तिका एक व्यक्तित्व होता है, प्रत्येकमें सम्मानप्राप्तिकी कम-बेश भावना सुषुप्त अथवा जाग्रत् अवस्थामें वर्तमान रहती है। कभी भी किसीके व्यक्तित्व एवं सम्मान-भावनाको

आघात वाणी अथवा कर्मसे नहीं पहुँचाना चाहिये। वाणीका आघात व्यक्तिको मर्माहत कर देता है और वह सदाके लिये आपका शत्रु बन सकता है।'

श्रीभाईजी कोरे उपदेशक नहीं थे, अपितु सिद्धान्तोंको स्वाचरणमें चरितार्थ करते थे। अपने सम्पर्कके ३५ वर्षोंमें मैंने देखा है कि श्रीभाईजीने कभी अपने सहकर्मियों अथवा साधारण निम्नस्तरके कर्मचारीके प्रति भी रोष, अथवा कठोर शब्दका प्रयोग, नहीं किया। कोई कभी उनके यहाँसे तिरस्कृत अथवा बहिष्कृत नहीं हुआ। ऐसा था, सभीके प्रति मानव-प्रेमसे लबालब भरा उनका नवनीत-सदृश हृदय।

रात्रिके शयन-कालके अतिरिक्त श्रीभाईजीके कमरेकी ट्यूबलाइट बहुधा जलती रहती थी, जिसके प्रकाशमें बैठा एक महामानव 'कल्याण'के माध्यमसे मानवकी कल्याण-साधनामें रत रहता था। प्रकाश कमरेमें अब भी है, परंतु श्रीभाईजी कुटियाके पास भाव-समाधिमें हैं और उनके कक्षसे निरन्तर गूँज आती है—**'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥'**

हे महामानव, हमें आशीर्वाद दें कि हम आपके उपदेशोंको जीवनमें चरितार्थ करनेकी क्षमता प्राप्त करें।

●

श्रीराधामाधवके अनन्य भक्त

स्वामी श्रीरँगीलीशरण देवाचार्य

श्रीमान् भाईजी भगवान् श्रीराधामाधव प्रभुके अनन्य रसनिष्ठ रसिक भक्त थे। आपने अपनी ललित लेखनी और जन-कल्याणी वाणीसे भारतभूमिपर भगवान्‌की भक्ति-भावनाकी भागीरथी बहाकर असंख्य नर-नारियोंको भगवान्‌के अभिमुख किया।

मेरे गुरुदेव मान्यवर बाबा श्रीविहारीदासजी महाराज श्रीभाईजीसे चिरकालसे परिचित थे। वे श्रीभाईजीके भावुक हृदयकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे; परंतु मुझे श्रीभाईजीके दर्शन करनेका सौभाग्य १५ वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ। बाबा श्रीराघवदासजीने अपने आश्रम बरहज (देवरिया) में एक संत-सम्मेलनका आयोजन किया था। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ था। श्रीभाईजी भी उसमें पधारे थे। वहाँ उनसे परिचय हुआ। सम्मेलनसे मैं श्रीभाईजीके निवास-स्थान, गीता-वाटिका आ गया। वहाँ मैं पंद्रह दिन रहा। श्रीभाईजीने मुझे भागवतकी कथा सुनानेको कहा। १३ दिनतक कथा हुई। श्रीभाईजी कथाके आरम्भमें स्वयं अपने हाथसे पूजन करते और आद्यन्त उपस्थित रहकर कथा-श्रवण करते थे। इतने बड़े विद्वान् एवं अनुभवी भक्त होनेपर भी वे मेरी कथाको बड़े मनोयोगसे सुनते थे। यही उनकी महानता थी, जो सबको मोहित करती थी।

उन्होंने श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-सम्बन्धी लगभग एक हजार पदोंका प्रणयन किया है, जो भावजगत् एवं साहित्यकी अनमोल निधि हैं।

●

श्रीभाईजीकी उदार-भावना

श्रीहरिशंकरजी गौहिल

पूज्य श्रीभाईजी उदार-भावनावाले महामानव थे। हिंदूधर्मके महान् उन्नायक होते हुए भी अन्य धर्मोंके प्रति उनका कितना सम्मान था, इसका मैंने स्वयं अनुभव किया है। एक बार मैं पूज्य भाईजीके दर्शनके लिये गया। व्यस्त होते हुए भी समाचार मिलते ही उन्होंने मुझे बुलाया। मैं यह देखकर स्तब्ध रह गया कि जिस स्थानपर बैठकर पूज्य भाईजी प्रतिदिन कार्य किया करते थे, वहाँ ईसामसीहका चित्र लगा हुआ है। मनमें कौतूहल हुआ। मैंने विनम्रतासे भाईजीसे पूछा—'आपने ईसामसीहके चित्रको इतना ऊँचा स्थान क्यों दे रखा है?' भाईजीने कहा—"ईसामसीह महान् संत थे। उन्होंने जगत्को प्रेम और सेवाका पाठ पढ़ाया। उनका कहना था कि भगवान्का राज्य बच्चों एवं दरिद्रोंके लिये है और हमारे धर्मशास्त्र भी भगवान्को 'दरिद्रनारायण' मानते हैं। ऐसे महापुरुषके प्रति श्रद्धा कैसे न रखी जाय?"—यह थी भाईजीकी धर्मनिरपेक्षता—राजनीतिक नेताओंकी तथाकथित धर्मनिरपेक्षतासे कितनी भिन्न, कितनी ऊँची! श्रीभाईजीके चरणोंमें मैं नतमस्तक हो गया। मुझे अशोक महान्का स्मरण हो आया। इतिहासके स्वर्णिम पृष्ठ भाईजीके चरित्रसे गौरवान्वित हो रहे हैं। कितने महान् थे वे—हिमालयसे भी ऊँचा, सागरसे भी गहरा था उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

उनकी दानशीलता एवं प्रसिद्धि-पराङ्मुखताकी भी अनन्त गाथाएँ हैं। पूज्य भाईजी इतने सरल थ कि किसीका भी दुःख देखकर द्रवित हो जाते थे। निःस्वार्थ सेवा एवं सहायता करना उनका स्वभाव था। उनकी महानताकी एक घटना प्रायः स्मरण हो आती है। मैं उन दिनों 'श्रीमारवाड़ी इंटर कालेज'का प्रधानाचार्य था। भाईजीके दर्शनके लिये गया। वे बाहर ही बैठे हुए थे। पास बैठाकर स्नेहपूर्वक हाल-चाल पूछा। विद्यालयकी चर्चा भी चल पड़ी। उन दिनों विद्यालयमें आर्थिक कठिनाई थी। विद्यालयकी प्रबन्ध-समितिके पदाधिकारी एवं सदस्य उसके लिये प्रयत्नशील थे। मेरे मुँहसे विद्यालयके आर्थिक संकटकी बात निकल गयी। भाईजीने तुरंत कहा—'आप परसों कालेजके चपरासीको भेज दें।' कर्मचारी गया और उन्होंने विद्यालयके नाम पर्याप्त धनका एक चेक भेज दिया तथा साथ ही यह भी लिख भेजा कि 'यह कदापि जाहिर न किया जाय कि यह धन मेरे पाससे आया है। इसे गुप्तदानके रूपमें विद्यालयके हिसाबमें लिखा जाय।' यह थी पूजनीय श्रीभाईजीकी प्रसिद्धि-पराङ्मुखता—दान देकर नाम लिखानेवालोंसे कितनी भिन्न! सच्चे कर्मयोगी थे वे।

पूज्य भाईजी इस युगकी महान् विभूति थे। उन्होंने अपने आदर्शोंको अपने जीवनमें उतारा था। हे युगपुरुष! आपके पावन-चरणोंमें कोटि-कोटि नमन!

•

सेवापरायण श्रीभाईजी

श्रीकृष्णदत्त शर्मा

श्रीभाईजीको मैं धर्मके ताऊजी मानता हूँ। मेरे पिताजी लगभग ५० वर्षोंसे उनके निकट सम्पर्कमें रहे। श्रीभाईजीने उन्हें सगे छोटे भाईसे भी अधिक माना और जन-सेवाके कार्योंमें उनका निस्संकोच सहयोग लेते रहे। श्रीभाईजीका सम्पूर्ण जीवन सेवा-कार्योंसे भरा था। कोई उनका क्या वर्णन करे। एक घटनाका उल्लेख करता हूँ। एक बार गोरखपुर जिलेके खड्डा ग्राममें आग लगी। आसपासके कई गाँव जल गये। श्रीभाईजीको पता चला, तुरंत मोटर निकलवाकर चल पड़े। पिताजीको बुलाया। कहा—'खड्डा चलना है। कम्बल-धोती ले लें, शायद वहीं रहना पड़े।' वहाँ पहुँचकर अग्निकाण्डसे जले हुए दृश्यको देखकर श्रीभाईजीके नेत्र जलसे पूर्ण हो गये। पिताजीसे कहा—'गोवर्धनजी, आप यहीं रहें, मैं गोरखपुर जाकर प्रबन्ध करता हूँ। आप नाली-दार टीनों, वस्त्र, अनाज आदिसे इनकी सहायता कीजिये। रुपये एक बार यहाँसे किसी व्यापारीसे उधार ले लें, गीताप्रेसके नाम लिखवाकर।'

एसा था उनका हृदय। कहने लगे—'हम पक्के मकानोंमें रहते हैं। इन बेचारोंके झोंपड़े थे, वे भी जल गये।' करुणा उनमें कूट-कूटकर भरी थी। किसीके कष्टको देखकर वे स्वाभाविक-रूपसे आर्द्र हो जाते थे।

पिताजी कहा करते थे तथा बात भी सत्य थी कि 'भाईजी शक्तिके स्रोत हैं। वे किसीको कोई कार्य सौंपकर उसे करनेकी क्षमता भी प्रदान करते हैं।' गत वर्षोंमें पिताजीका स्वास्थ्य प्रायः ठीक नहीं रहता था। पर जैसे ही श्रीभाईजी उन्हें बुलाकर कहते—'आप चले जाइये, वहाँ सेवाकार्यमें जाना है', पूज्य पिताजी पूर्ण स्वस्थ होकर जाते। ६४ वर्षकी अवस्थामें भी गाँव-गाँव पैदल चलकर जाते, जब कि घरपर बिस्तरसे उठनेतककी क्षमता भी उनमें नहीं रहती थी। सेवाका सारा काम बड़े उत्साहके साथ करते थे। बादमें अनुभव करते थे कि मैंने असम्भवको भी सम्भव कर दिया है। यह सेवा-शक्ति उन्हें श्रीभाईजी ही देते थे।

भाईजी पिताजीसे बराबर कहते थे—'सेवा-भाव मनमें होता है, सेवाकी दूकान नहीं होती।' यह कथन उनके जीवनमें पूर्णरूपसे चरितार्थ हुआ है। जहाँ आवश्यकता देखी, वे सेवाकार्य शुरू कर देते। पासमें रुपया नहीं रहता तो उधार लेकर कार्य आरम्भ कर देते। बादमें हजारों-हजारों रुपयोंकी व्यवस्था अपने-आप हो जाती तथा बड़े पैमानेमें अन्न-वस्त्र आदिका वितरण होता। ऐसे सेवापरायण थे श्रीभाईजी।

●

मेरे जीवनको प्रेरणा देनेवाले

श्रीबदरुद्दीन राणपुरी

पूज्य श्रीभाईजीके विषयमें मैं क्या लिखूं ? हृदय भीतरसे रो रहा है। एक दिन भी वे भूलते नहीं। श्रीभाईजी मेरे जीवनको प्रेरणा देनेवाले महापुरुष थे। उनकी प्रेरणासे इस दासने जीवनकी सफलताका मार्ग प्राप्त किया है। उनके जीवनका सूत्र था--'सेवा'। किसी भी प्रकारसे सेवा करो। वे जन-सेवाको प्रभु-सेवा मानते थे--प्राणिमात्रमें परमात्मा विराज रहा है। इस प्रकार प्रभु-सेवाको उन्होंने खूब महत्त्व प्रदान किया। एक जलती हुई मोमबत्ती अन्धकारका नाश कर सकती है तथा बहुतेरी मोमबत्तियोंको जलाकर प्रकाशित कर सकती है। इससे वह अपनी कुछ हानि नहीं करती, बल्कि प्रकारान्तरसे अनेकगुना वृद्धि करती है। इस प्रकार इस महापुरुषने अनेक दु:खी तथा निरुत्साही मनुष्योंको जीवन बनानेकी प्रेरणा प्रदान की है। हमारे यहाँ राजुलामें 'कल्याण-मण्डल' नामक संस्था चल रही है। उसके द्वारा अनेक दीन-दु:खियोंको अन्न, कपड़ा, दवा आदि प्रदान किया जाता है। इस संस्थाको स्थापित करनेकी दिव्य प्रेरणा उनसे ही प्राप्त हुई थी।

अपने दिव्य संदेशको लोगोंमें पहुँचानेके लिये 'कल्याण' मासिक पत्रके द्वारा उन्होंने अथक परिश्रम किया। अपना नाम प्रकाशित हो या अपना यश फैले--इसकी इच्छा इस महापुरुषको कदापि न थी। गीताप्रेसके द्वारा उन्होंने लाखों लोगोंके पास पानीके मूल्यमें अनेक धार्मिक तथा जीवनोपयोगी पुस्तकें पहुँचायी हैं। यह उनके जीवनका एक चमत्कार है। इस प्रकार घर-घर पानीके भाव पुस्तकोंको पहुँचानेके फलस्वरूप एक जलती दीपबत्तीके द्वारा मानो अनेक बत्तियोंको जलाकर उन्होंने समूचे भारतमें दिव्य प्रकाश फैलाया है।

भाईजी संतोंके सेवक, सत्साहित्यके स्रष्टा, तत्त्वचिन्तक और प्रभुके प्यारे भक्त थे। वे परिवार-सहित होनेके कारण गृहस्थ कहे जा सकते हैं। उन्होंने अन्तिम श्वासतक अपने सारे जीवनको प्रभुके कार्यमें लगाया। प्रभुके कार्यके लिये ही वे जन्मे, प्रभुके कार्यके लिये जिये और प्रभुके तेजमें समा गये। जीवनमें सहनशीलताकी साधना करके वे सहनशील महापुरुष बन गये थे।

जैसे गुलाबका फूल अपने संसर्गमें आनेवाले सज्जन या दुर्जनको विना मूल्य, विना भेद-भावके सुगन्ध प्रदान करता है, उसी प्रकार इस महापुरुषने अपना सारा सुवास जगत्को प्रदान करके सदाके लिये प्रस्थान किया है। इन आध्यात्मिक महापुरुषके रिक्त स्थानकी पूर्ति कदाचित् ही जगत्में हो सके। हम सब लोगोंको उनका सहवासी होनेके नाते उनके पवित्र जीवनका अनुसरण करना चाहिये और उनके जीवनसे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

●

स्नेह और सौजन्यकी मूर्त्ति श्रीभाईजी

पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री

मेरा और श्रीभाईजीका परिचय प्रायः ३५ वर्ष पुराना था। इतनी लंबी अवधिमें जब-जब उनसे भेंट हुई है, तब-तब वे मुझे बड़े भाईके समान अनुभव हुए। उन्होंने मुझे उसी रूपमें प्यार दिया।

सौराष्ट्रके एक देहातका निवासी होते हुए भी मैं बाल्यकालसे 'कल्याण'का ग्राहक और प्रेमी था। एक बार श्रीभाईजीने मुझे पत्रमें लिखा था—'आप जूनागढ़ प्रदेशके निवासी हैं और हिंदीमें लिख सकते हैं। आप सौराष्ट्रके भक्तप्रवर नरसी मेहताजीका एक प्रामाणिक जीवन वार्ताके रूपमें लिख भेजिये। अगर योग्य लगा तो वह गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित कर दिया जायगा।

पत्रको पढ़कर मैं अधिक प्रोत्साहित हुआ। मैंने नरसी मेहतापर पुस्तक लिखना आरम्भ किया। हिंदीमें पुस्तक लिखनेका मेरा यह प्रथम प्रयास था। परंतु श्रीभाईजीके उत्साह-प्रदानसे ही मैं 'भक्त नरसिंह मेहता' पुस्तक लिखनेमें सफल हुआ। पुस्तक तैयार होनेपर मैंने उसे श्रीभाईजीके पास भेज दिया। प्रसन्नताकी बात है कि श्रीभाईजीने उसे सुधारकर गीताप्रेससे प्रकाशित कर दिया। पुस्तकके मुद्रणके पूर्व मुझसे पूछा गया कि 'आप यह पुस्तक किस शर्तपर गीताप्रेसको देना चाहते हैं?'

मेरे मनमें गीताप्रेसके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। मैंने लिख दिया—'यह पुस्तक मैं बिना किसी शर्तके दे रहा हूँ।' मेरे प्रत्युत्तरसे भाईजीको अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उसी समयसे श्रीभाईजीको मैं अपना आध्यात्मिक प्रेरक मानता हूँ।

× × ×

सन् १९४९-५०का समय था, जब श्रीभाईजीके प्रथम दर्शन मुझे हुए। गीतावाटिका मुझे तपोवन-सी प्रतीत हुई। श्रीभाईजीने स्नेहसे गले लगा लिया और मेरा हाथ पकड़कर चारपाईपर बैठा लिया। 'कल्याण'के विशेषाङ्क 'हिंदू-संस्कृति-अङ्क'की पूर्व तैयारियाँ हो रही थीं। टाइटलके ऊपरवाले चित्रमें श्रीरामसभाका दृश्य भी अङ्कित करना था। सम्पादकीय विभागके सदस्य उस चित्रके सम्बन्धमें विचार-विमर्श कर रहे थे। एक सदस्यने आकर श्रीभाईजीसे कहा—'वाल्मीकि-रामायणमें कुत्तेके न्याय माँगनेका प्रसङ्ग नहीं मिल रहा है। अब तो उसे किसी अन्य रामायणमें देखना होगा...।'

'वह प्रसङ्ग मैंने देखा है।' मैं बीचमें ही बोल पड़ा। 'मुझे रामायण दीजिये, अभी निकाल देता हूँ।'

उन महाशयने मुझे रामायणकी पुस्तक लाकर दे दी। ध्यानसे देखनेपर भी उक्त प्रसङ्ग उस प्रतिमें नहीं मिला। महाशय बोले—'हमलोग दो-तीन बार देख चुके; वह प्रसङ्ग है तो जाना-माना, पर वाल्मीकि-रामायणमें उसका उल्लेख नहीं है।'

'तो फिर जबतक प्रमाण न मिले, हम इस प्रसङ्गवाले चित्रको टाइटलके ऊपर कैसे दे सकते हैं ?'––भाईजी बोले ।

श्रीभाईजीके ये शब्द सुनकर मुझे ज्ञात हुआ कि किस प्रकार 'कल्याण'में प्रकाशित होने-वाली चीजोंके लिये शास्त्रका आधार लिया जाता है । 'कल्याण'की प्रतिष्ठाका यही तो प्रधान हेतु है ।

'मैंने तो उसे वाल्मीकि-रामायणमें ही देखा है; किंतु मेरे पास निर्णयसागर प्रेसकी प्रति है ।'––मैंने कहा ।

निर्णयसागरकी प्रति देखी गयी और वह प्रसङ्ग मिल गया । सभी प्रसन्न हुए । श्रीभाईजीने प्रसन्नतामें भरकर मुझे गलेसे लगा लिया ।

उसके बाद दो-एक बार झूसीके महोत्सवमें भी हमलोग मिले । उनका सदा-प्रसन्न स्वभाव सभीको आकर्षित कर लेता था । झूसीमें एक दिन एकादशीके फलाहारमें कोई अच्छी नमकीन वस्तु बनी हुई थी । परंतु वह कुछ कड़ी हो गयी थी; उसे चबानेमें थोड़ा कष्ट मालूम होता था । श्रीभाईजीने पूज्य ब्रह्मचारीजीसे कहा––'आपकी यह वस्तु देखनेको लिये तो अच्छी है, मगर चखनेके लिये नहीं है ।' सुनकर सभी लोग हँस पड़े ।

हमारा अन्तिम और अविस्मरणीय मिलन २७ अप्रैल १९६८को प्रातः १० बजे हुआ । मैं हरिद्वारकी यात्रा करके गीताभवन पहुँचा । वहाँके व्यवस्थापकसे हमने कहा––'हम श्रीभाईजीके दर्शन करनेके लिये आये हैं और कल हरिद्वार वापस लौट जायँगे । अतः आज ही श्रीभाईजीसे मिलना है ।'

'वे किसीसे नहीं मिलते', व्यवस्थापक महोदयने कहा । 'उनकी तबीयत अच्छी नहीं है ।'

'यह तो मुझे मालूम है', मैंने कहा । 'मगर यहाँतक आनेपर भी एक छोटा भाई बड़े भाईसे बिना मिले कैसे जा सकता है । आप कृपया उन्हें मेरा स्मरण दिला दीजिये; वे चाहेंगे तभी मैं मिलूँगा, अन्यथा मिलनेका आग्रह छोड़ दूँगा ।'

श्रीभाईजीको मेरे आनेकी सूचना दी गयी और स्वास्थ्य अच्छा न होनेपर भी वे मिले––गले लगाकर मिले । आश्चर्य तो तब हुआ, जब वे हमलोगोंके साथ शुद्ध गुजराती भाषामें वार्ता-लाप करने लगे । मेरी धर्मपत्नी और बालक भी वार्तालापको समझ सकें, इस आशयसे श्रीभाईजी गुजराती बोले । मुझे इसके पहले मालूम ही नहीं था कि भाईजी इतनी शुद्ध गुजराती बोल सकते हैं । प्रायः आधे घंटेतक बैठकर उठते हुए आशीर्वादके शब्दोंमें मैंने कहा––'आप शीघ्र ही स्वस्थ हो जाइये ।'

'अब तो शेष जीवन श्रीभगवान्‌के चरणोंमें ही बीते, यही आशीर्वाद दीजिये ।' वे बोल उठे । 'अब स्वास्थ्यका क्या करना है ।'

'वही तो स्वस्थताका लक्षण है ।' मैंने **'स्वे आत्मनि स्थितः'** का अर्थ घटाकर कहा ।

भाईजीका प्रत्युत्तर नहीं मिला, मगर उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहती हुई मैंने स्पष्ट देखी । मेरे विदा होनेके समय भी वे उठ खड़े होनेकी चेष्टा कर रहे थे, मगर मैंने उन्हें रोक दिया और

कहा––'बस, आप खड़े होनेकी तकलीफ न कीजिये।' वे हाथमें रखी हुई मालाके सहित हाथ जोड़कर बोले––'आवजो' (पधारियेगा)।

आज हमारे बीच भाईजी नहीं रहे––भौतिक दृष्टिसे नहीं रहे; मगर आध्यात्मिक दृष्टिसे देखा जाय तो 'कल्याण'में लिखे हुए उनके लेखोंमें, उनके अनेकानेक व्याख्यानोंमें और उनके अनेक ग्रन्थोंमें हमारे 'भाईजी' सदैव विद्यमान हैं और विद्यमान रहेंगे। उन्होंने अपने एक वाक्य-द्वारा हमलोगोंके लिये कार्यक्षेत्र खोल दिया––'अगर हमारे हृदयमें धर्म रहेगा तो सब कुछ रहेगा; अगर हमारे हृदयसे धर्म उठ गया तो सब कुछ उठ जायगा।'

●

एक अलौकिक अनुभव

वैद्यराज पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी महाराज

पूज्य श्रीभाईजी हम सबको अनाथ बनाकर स्वयं श्रीराधामाधवकी नित्यलीलामें लीन हो गये। श्रीभाईजीकी जीवनज्योति विलीन होनेके साथ ही मानो धर्मज्योति विलीन हो रही है। मनसा-वाचा-कर्मणा सबके हृदय एवं प्राणोंको सुख पहुँचानेवाले श्रीभाईजी आज हमारे मध्यसे लुप्त हो गये। सबको ऐसा लग रहा है मानो उनका सर्वस्व लुट गया।

श्रीभाईजीके सम्बन्धमें घटित कुछ अलौकिक घटनाएँ मेरी जानकारीमें हैं। उन घटनाओंमेंसे केवल एक घटनाका उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ––

सन् १९६५को आषाढ़ मासमें मेरी ज्येष्ठ पुत्री किशोरीबाईके पित्ताश्मरीका ऑपरेशन डा० श्रीताराचन्दद्वारा नयी दिल्लीमें स्थित उनके सैनीटोरियममें प्रातःकाल हुआ। ऑपरेशनके समय एक परम सम्मान्या माताजी भी वहाँ सैनीटोरियममें उपस्थित थीं। उन्हें अनुभव हुआ कि वहीं पार्श्वमें पूज्य भाईजी खड़े हुए आशीर्वाद दे रहे हैं। ऑपरेशन लगभग डेढ़ घंटेतक हुआ। इतने समयतक उन्हें वहाँ भाईजीके दर्शन होते रहे, यद्यपि पूज्य भाईजी उस समय गीतावाटिका, गोरखपुरमें विराज रहे थे। ऑपरेशनके बाद चेत होते ही किशोरीबाईने कहा––'ऑपरेशनके समय पूज्य भाईजी मेरे सामने खड़े थे और मुझे देख रहे थे। किंतु अब वे नहीं दिखायी दे रहे हैं।'

भाईजीके अन्य कृपापात्रोंके मुखसे भी इस प्रकारकी स्वानुभूत अलौकिक घटनाओंको सुननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। पर श्रीभाईजी इस प्रकारकी घटनाओंको कभी महत्त्व नहीं देते थे। वास्तवमें श्रीभाईजी-जैसे संतके लिये ये घटनाएँ नगण्य हैं।

●

श्रीभाईजीका अनुपम स्नेह

श्रीनंदलाल चूड़ीवाला

श्रीभाईजीका स्मरणमात्र उनकी आह्लादकारी स्मृतियाँ जगा देता है; उनसे प्राण पुलकित हो उठते हैं। एक प्रसङ्ग स्मरण हो आया है--श्रीभाईजी सपरिवार कलकत्ता पधारे थे। मैं दर्शनार्थ उनके आवासपर गया हुआ था। मैं कुछ गम्भीर मुद्रामें खड़ा था कि अचानक श्रीभाईजी अपने कमरेसे बाहर आये। मुझे देखते ही वे वात्सल्यभरी वाणीमें बोले--'हाँसतौ रया कर, सुस्त मत रया कर।'--उनके इन शब्दोंको सुनते ही मेरे हृदयका सारा विषाद निमिष-मात्रमें लुप्त हो गया। एक अपूर्व आनन्दका स्रोत जैसे इन शब्दोंके साथ ही मेरे हृदयमें फूट पड़ा। मैं इसे सदैव उनका अमोघ वरदान मानता हूँ।

श्रीभाईजी-जैसे महामानवके सांनिध्यसे बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है। उनकी आत्मीयता, स्नेह और वात्सल्यसे बढ़कर मेरे लिये और भी कोई वरदान हो सकता है--ऐसा मैं नहीं मानता। जब-जब हमलोग गीतावाटिकासे वापस आते, वात्सल्यपूरित बिदाईके वे दृश्य अपूर्व होते थे। अपने ही हाथोंसे फल छीलकर हँसते हुए वे हमें प्रदान करते थे। स्नेहका ऐसा अक्षय स्रोत अलौकिक ही कहा जा सकता है।

विधि-विधानवश जब कभी दुश्चिन्ताओंकी दुर्निवार बाढ़ आयी, विषाद घनीभूत हुआ, मैंने सदैव उनसे मार्ग-दर्शनकी याचना की और अपने अत्यन्त व्यस्त समयमेंसे कुछ क्षण निकालकर उन्होंने पत्रद्वारा मुझे आलोकित किया। उनकी अहैतुकी कृपासे इस प्रकारके अनेक पत्र प्राप्त करनेका सौभाग्य मुझे मिला है। इसी प्रकारके एक पत्रका कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ--

"भैया, संसार सचमुच दुःखमय, अनित्य और नित्य अशान्तिसे पूर्ण है। हमलोग मोहवश इस संसारसे नित्य सुख-शान्तिकी आशा करते हैं। यही हमारा मोह है और इसी कारण हमें नित्य नयी अशान्ति तथा दुःख भोगना पड़ता है। मैं अपने मनकी स्थिति क्या बताऊँ? मुझे इधर संसारकी असत्ता, अनित्यता आदि देखकर वैराग्य-सा हो रहा है। एकमात्र भगवान्‌के चिन्तन-के सिवा और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। यहाँ तो जो होना है, वह होगा ही। संसारमें रोज ही लाखों जनमते हैं, लाखों मरते हैं। बड़े-छोटे परिवर्तन प्रतिक्षण होते रहते हैं--यही प्रकृतिके संसारका स्वरूप है। इसमेंसे अपनेको निकालकर नित्य भगवान्‌में स्थित रहना चाहिये। नित्य भगवान्‌में स्थिति ही असली 'स्वस्थता' है। यहाँका दुःख कभी मिट नहीं सकता; क्योंकि यह है ही 'दुःखालय' और 'दुःखयोनि' (दुःखोंका भंडार और दुःखोंका खेत)। अतएव जबतक यहाँ मनुष्य अनुकूलताकी आशा करता है--सुखकी आशा करता है, तबतक नये-नये दुःख आते रहते हैं। यही दुःखका कारण है। इसी दुःखसे मैं, तुम तथा सभी दुःखी हैं। यह दुःख संसारका कोई प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति दूर कर दे--यह असम्भव है। **'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्'**।"

श्रीभाईजीके ऋषि-तुल्य व्यक्तित्वके निकट आते ही असत्‌का सारा कलुष-कल्मष अपने-आप धुल जाता था; एक अनिर्वचनीय आनन्दमें मन-प्राण मग्न हो जाते थे।

●

आध्यात्मिक-सांस्कृतिक क्रान्तिके अग्रदूत पोद्दारजी

श्रीलक्ष्मीशंकरजी व्यास

श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतीय पत्रकारिताके गौरव-इतिहासमें चिर-स्मरणीय रहेंगे। स्मरणीय ही नहीं, पत्रकारिताके उच्चादर्शों तथा उसके गौरवकी स्थापना करनेवालोंमें उनका प्रमुख स्थान होगा। देशकी वर्तमान पीढ़ीकी भाँति ही आप आनेवाली पीढ़ियोंके लिये भी भारतकी आध्यात्मिकताके आलोक-स्तम्भ बने रहेंगे, इसमें संदेह नहीं। आपका व्यक्तित्व जहाँ करुणा और विनम्रताका सतत स्रोत रहा है, वहीं आपका कर्तृत्व भारतीय धर्म एवं संस्कृतिका प्रेरणाकेन्द्र रहा है। भारतीय आध्यात्मिकता और राष्ट्रीयताकी भावनासे ओत-प्रोत हो प्रायः पचास वर्षोंतक आपने लोकजीवनके उन्नयनका महान् कार्य किया। आपने सन् १९२६ ई०से लगातार ४५ वर्षोंतक 'कल्याण'का सम्पादन किया तथा उसके माध्यमसे भारतको आध्यात्मिकताका सहज बोध कराया और राष्ट्रको सांस्कृतिक संजीवनी दी। आध्यात्मिकता और राष्ट्रीयताका मणिकाञ्चनयोग आदरणीय पोद्दारजीके महान् व्यक्तित्वमें अलौकिकरूपसे मूर्तिमान् हुआ था।

श्रीपोद्दारजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण'का प्रकाशन भारतीय पत्रकारिताके इतिहासमें एक नवीन अध्यायका श्रीगणेश करनेवाला है। महान् सम्पादकके साथ ही श्रद्धेय पोद्दारजी महान् लेखक भी थे। आपने भारतीय जनमानसके नैतिक उत्थानके लिये ४ दर्जनसे अधिक पुस्तकोंका प्रणयन किया है और गीताप्रेससे प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्यका सम्पादन किया है। स्त्रियों तथा विशेषतः बच्चोंके चरित्र-निर्माण एवं नैतिक उत्थानके लिये आपने जो साहित्य लिखा और लिखवाया है, उसका भी विशेष महत्त्व है। नयी पीढ़ीके बालक-बालिकाओंमें सांस्कृतिक संस्कार उत्पन्न करनेमें आपका यह साहित्य आप ही अपना उदाहरण है। 'कल्याण'के माध्यमसे यह साहित्य आध्यात्मिकताके संदर्भमें तो आया ही है, इससे राष्ट्रभाषा हिंदीका भी देश-विदेशमें अभूतपूर्व प्रचार हुआ है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनने आपकी इस महान् सेवाकी सराहना की थी। राष्ट्रभाषा हिंदीके माध्यमसे आपने देशको सांस्कृतिक सूत्रमें एकबद्ध करनेमें महान् सफलता प्राप्त की है। मासिक 'कल्याण'की प्रसार-संख्या एक लाख साठ हजारसे अधिक है। देशमें ही नहीं, विदेशोंमें भी इसकी हजारों प्रतियाँ जाती हैं। 'कल्याण'के रामायणाङ्क, शिवाङ्क, नारी-अङ्क, सत्कथा-अङ्क, हिंदू-संस्कृति-अङ्क आदि अपने-अपने विषयके विश्वकोष-जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

सन् १९२७में 'कल्याण'के दूसरे वर्षका विशेषाङ्क 'भगवन्नामाङ्क' प्रकाशित हुआ। इस विशेषाङ्कके लिये पोद्दारजीने महात्मा गांधीसे रामनामकी महिमापर विशेष लेख प्राप्त किया। गांधीजीने इसमें लिखा कि 'जहाँ बुद्धि समाप्त हो जाती है, वहाँ रामनाम आता है।' नाम-जपके महत्त्वके सम्बन्धमें आपने गांधीजीसे वार्त्ता कर जो लेख प्राप्त किया, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। नाम-जपकी अलौकिक अनुभूति-प्रतीति करनेवाले पोद्दारजीका कथन है—'मैं कह सकता हूँ कि नाम-जप और प्रभु-कृपाके सिवा मेरे जीवनमें और कुछ भी अवलम्ब नहीं है।' भारत, भारती और भारतीयताके गौरव-स्थापक पोद्दारजीकी पावन-स्मृतिको शत-शत अभिनन्दन।

●

श्रीभाईजीकी अनोखी व्यावहारिक आत्मीयता

डा० श्रीमाधोदासजी व्यास

नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एक ऐसे महापुरुष थे, जिनके निजी और सार्वजनिक जीवनमें एकरसता थी। दोनोंमें किसी प्रकारका वैषम्य नहीं था, दुराव-छिपावकी तो कल्पना भी सम्भव नहीं थी। उनके लिये सारा संसार श्रीराधाकृष्णमय था। उनका जीवन एक खुली पुस्तक था। इसी कारण उनके भाषणों, लेखों, वार्तालाप एवं पत्र-व्यवहारसे भवताप-दग्ध प्राणियोंको सच्ची सान्त्वना, शान्ति, संतोष एवं आत्मिक आनन्दकी उपलब्धि होती थी।

चूरू (राजस्थान) के ऋषिकुलमें अध्यापकों और कर्मचारियोंकी न तो वेतन-शृङ्खला है और न निश्चित वार्षिक वृद्धिका प्राविधान है। सबको घरेलू आवश्यकताके अनुसार वेतन दिया जाता है और समय-समयपर इसी आवश्यकतानुसार वार्षिक वृद्धि भी की जाती है। वेतन-शृङ्खला और वार्षिकवृद्धिके स्थानपर विवाह-शादी, गमी तथा अन्य अवसरोंपर होनेवाले खर्चोंकी पूर्तिके लिये कर्मचारियों और अध्यापक-वर्गको एक मुश्त रकम दी जाती है। व्यवस्थासे सम्बन्ध होनेके कारण यह रकम श्रीभाईजी अपनी ओरसे देते थे।

भाईजी न केवल कर्मचारियोंसे, बल्कि इनके परिवारवालोंसे भी घनिष्ठ सम्पर्क रखते थे और इसके द्वारा उनके परिवारकी आर्थिक कठिनाइयोंसे अपने आपको अवगत रखते थे। जब कभी परिवारवाले भाईजीको आर्थिक कठिनाईका पत्रद्वारा संकेत करते तो भाईजी शीघ्र उनके लिये आवश्यक और उचित धनराशिकी व्यवस्था कर देते। ऐसी थी भाईजीकी परदुःखकातरता और उदारता।

किसी कर्मचारीके आकस्मिक अथवा असामयिक निधनपर उसके परिवारके लिये आवास, बच्चोंके लिये शिक्षा तथा उसके आश्रित वयस्क सम्बन्धियोंके लिये नौकरी आदिकी व्यवस्था करनेका दायित्व भी भाईजी अपने ऊपर ले लेते थे। फलस्वरूप ऋषिकुलमें आज भी ऐसे अध्यापक विद्यमान हैं, जो वर्षोंसे संस्थाकी सेवा पूर्ण संतोष एवं निष्ठाके साथ कर रहे हैं।

आज हमारी निजी शिक्षण-संस्थाओंके संचालकके रूपमें भाईजी-जैसे उदार, निरभिमान, परदुःखकातर, निष्काम तथा व्यावहारिक समाजवादी कार्यकर्त्ताओंकी नितान्त आवश्यकता है।

●

धन मोरि आज सुहागिन घड़िया ॥
आज मोरे अँगना संत चलि आये, कौन करौं मिहमनिया।
निहुरि-निहुरि मैं अँगना बुहारौं, मातौं मैं प्रेम-लहरिया ॥
भाव के भात, प्रेम के फुलका, ग्यान की दाल उतरिया।
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलिहरिया ॥

—संत दूलनदास

●

अभिनव चैतन्य—श्रीभाईजी

डा० श्रीतपेश्वरनाथजी

श्रीभाईजी हिंदीके एक यशस्वी पत्रकार, कीर्तिमान् सम्पादक, पौराणिक समीक्षक, प्रबुद्ध लेखक, मधुर वक्ता और श्रीकृष्णभक्त कवि थे। वे बहुभाषाविद्, विचारक और समाज-सुधारक भी थे। पर इन सबसे ऊपर वे मानवताकी मञ्जुल मूर्ति थे। उनके अवसानसे हमारा सांस्कृतिक क्षितिज धूमिल हो गया है। आजकी चन्द्रचुम्बिनी सभ्यताके अन्धयुगमें पोद्दारजी भारतीय संस्कृति, धर्म और विश्वासके ऐसे मणिदीप थे, जिसके प्रखर प्रकाशमें असंख्य लोकहृदय आलोकित हुए हैं।

विक्रमीय संवत् २०२६के फाल्गुन मासमें मैं उनके दर्शनार्थ पहुँचा। जाते ही मैंने झुककर भाईजीका चरण-स्पर्श करना चाहा, पर उन्होंने प्रसन्नताभरी मुस्कानके साथ मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये और 'हरिस्मरण' कहते हुए मुझे अपने पास बिस्तरपर बैठा लिया। श्रीभाईजीकी विनम्रताने मेरी लघुताको जैसे अङ्गीकार कर लिया हो। भाईजीके इस शील-सौजन्यसे मैं मन्त्र-बद्ध-सा हो गया।

उनका व्यक्तित्व अतीव आकर्षक था। गौर वर्ण, उज्ज्वल आनन, ममताभरी दृष्टि, ओठोंपर सहज मुस्कान, तेजपूर्ण उन्नत ललाट और उस ललाटपर पीत गोपीचन्दन, जो वैष्णव-हृदय श्रीपोद्दारजीकी राधा-उपासनाका प्रतीक था। खादीके शुभ्र वस्त्रोंमें उनकी निर्मलता एवं राष्ट्रीयता जैसे उझकी पड़ती थीं।

आधुनिक बौद्धिक युगमें पोद्दारजी भक्ति-आन्दोलनके पुरोधा थे। जैसे मुगलयुगमें चैतन्य और वल्लभाचार्यने उत्तरापथमें भक्ति-भावना जगायी थी, वैसे ही आङ्गल-युगमें पोद्दारजीने भारतीय जन-मनमें धर्म-प्राण फूँके थे। आजके इस सर्वथा प्रतिकूल परिवेशमें उन्होंने जिस दृढ़ आस्था और अविचल आत्मविश्वासके साथ प्रेम-धर्मकी ज्योति जलायी, वह विस्मयकारिणी है। प्रेमाभक्तिके तो वे अद्वितीय प्रवक्ता थे। मेरा तो विश्वास है कि वे मध्ययुगीन प्रेमी संत श्रीश्रीचैतन्यदेवके ही नवीन संस्करण थे। जिन लोगोंको आजसे प्रायः ४०० वर्ष पूर्व प्रकट हुए श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुके दर्शन एवं नाम-कीर्त्तनके श्रवणका सौभाग्य नहीं मिला था, वे इस युगमें प्रेममूर्ति श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके दर्शन तथा प्रवचनकी पीयूष-वर्षासे परितृप्त हुए हैं। दुर्भाग्य तो उनका है, जिनके सामनेसे वह प्रेममूर्ति अभी-अभी खिसक गयी और वे उनकी वाणीके श्रवण एवं पवित्र दर्शनका प्रत्यक्ष लाभ प्राप्तकर मन-प्राणोंको सींचनेसे वञ्चित रह गये। ऐसे विषाद-मग्न जनोंके परितोषके लिये पोद्दारजीका अमर साहित्य प्रचुरमात्रामें प्रस्तुत है। अब तो यही उनका यशःकाय है, जिसके दर्शन-सेवनसे मानवजीवनके चरम लक्ष्यतक पहुँचा जा सकता है। भारतवर्षकी जनताके संस्कारोंमें जबतक धर्मभावना एवं प्रेम-भक्तिके अवशेष सुरक्षित रहेंगे, तबतक श्रीपोद्दारजी लोक-मानसमें विराजमान रहेंगे। मेरी कामना है कि भाईजीके जीवनवृत्तको विस्तृत-रूपमें संकलितकर प्रकाशित किया जाय, जिससे कालान्तरमें असंख्य श्रद्धालुओंको इस अभिनव चैतन्यके 'चरितामृत'का पान करनेसे चिर तृप्तिका अनुभव हो। उनके प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

महामनीषी श्रीभाईजी

श्रीजयगोपालजी मिश्र 'फतेहपुरी'

मैं सन् १९६२में श्रीभाईजीके सम्पर्कमें आया। उनका सांनिध्य मेरे लिये गौरवका विषय बना। हमारी 'रेल-हिंदी-समिति'के तत्त्वावधानमें आयोजित कवि-सम्मेलनोंमें पधारे हुए कवियों और विद्वानोंका वे बराबर अपने निवासस्थानपर भरपूर स्वागत-सत्कार और बिदाई करते थे। एक बार श्रीबलवीरसिंहजी 'रंग' विचरते हुए आ गये। हमारे सामने उनके स्वागतकी समस्या आ गयी। मैंने भाईजीको फोन किया—'आपकी गीतावाटिकामें रंगजीकी काव्य-गोष्ठी बुलायी जायगी।' भाईजी फोनपर ही अपनी स्वीकृति देते हुए पूछते हैं—'उनके साथ कितने साहित्यकार होंगे?' हमने उत्तर दिया—'केवल ५० या ५५ व्यक्ति पहुँचेंगे।'

भाईजी अस्वस्थ थे। वे छतके ऊपरके कमरेमें रहते थे और नीचे उतरना मना था; पर हम देखते क्या हैं कि भाईजी नीचे वाटिकामें कुर्सी-मेज लगवाकर विधिवत् जलपानका प्रबन्ध करा रहे हैं।

थोड़ी देरमें कवि-सम्मेलनका दौर चला। भाईजीको बीच-बीचमें मैं कहता—'आप अब न बैठें, कमरेमें जाकर विश्राम करें।' परंतु वे अन्ततक बैठे रहे। बादमें उन्होंने पूछा—'क्या बिदाई दी जाय?' मैंने कहा—'रामचरितमानसकी एक पोथी आपके हस्ताक्षरसहित और दो सौ रुपये।'

कहनेकी देर थी। भाईजीने मेरी इच्छाका पालन आदेशकी भाँति किया। ऐसा कौन करता होगा। वे बिना प्रचार ऐसे अनुदान चुपचाप दे दिया करते थे। ऐसी घटनाएँ एक नहीं, अनेक हैं।

भाईजी बड़े ही सरल एवं मानवमात्रकी सम्मान करनेकी क्रियामें अग्रणी थे। क्या मजाल कि कोई उन्हें पहले प्रणाम कर ले; ज्यों ही व्यक्ति सामने आया कि उनके दोनों हाथ जुड़ जाते थे और वे अपना प्रणाम निवेदन कर देते थे। उनके इस विचित्र स्वभावसे परिचित होनेके कारण मैं भाईजीको प्रणाम करनेमें जल्दी करता; क्योंकि सदा मैं भाईजीको नत होकर प्रणाम निवेदन करनेका आदी था। किंतु भाईजी मुझसे पहले ही माथा टेककर बड़ी हैरतमें डाल देते थे।

भाईजीके कार्योंपर पोथियों-पर-पोथियाँ लिखी जा सकती हैं; किंतु भाईजीके जिस जीवनकी झाँकी उनसे मिलनेवालोंके हृदयपटलपर अङ्कित है, उसका वास्तविक रूप उनका हृदय ही जानता है; वे स्वयं उसे वाणीद्वारा व्यक्त करनेमें असमर्थ हैं।

संसारमें श्रीभाईजी-जैसे महामनीषीका अवतार सहस्रों वर्षों बाद होता है। हम धन्य हैं कि हमने उनका दर्शन प्राप्त किया। अब भी जब हम श्रीभाईजीकी याद करते हैं, तब बड़ी-बड़ी समस्याओंका हल स्वयं निकल आता है। लगता है; भाईजी कह रहे हैं—'ऐसे करो, काम बनेगा।' युगावतारी, पूज्य श्रीहनुमान्‌जीके प्रसादस्वरूप धर्मचेता महामनस्वी श्रीभाईजीके चरणोंमें हमारा शत-शत नमन!

●

संतत्वके मूर्तिमन्त आविष्करण

श्रीराममाधव चिंगले

श्रीभाईजी संत एकनाथ, भक्त नरसी मेहता आदिकी भाँति गृहस्थ संत थे। उनकी गृहस्थी स्वयंके कुटुम्ब-परिवारतक ही सीमित नहीं थी, वह उनके औदार्यके कारण व्यापकतम रूप धारण कर चुकी थी। **'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'**—इस सूक्तिके वे मूर्तिमन्त उदाहरण थे।

हमारे धार्मिक साहित्यमें संतोंके लक्षण यत्र-तत्र प्रचुरताके साथ बतलाये गये हैं। गीतामें बतलाये गये स्थितप्रज्ञके लक्षण, भगवद्भक्तके लक्षण, गुणातीतके लक्षण, दैवी सम्पदाके लक्षण—ये सब संत-पुरुषोंके ही लक्षण हैं। भागवतके एकादश स्कन्धमें भागवतोत्तमके लक्षण विस्तारसे कहे गये हैं। श्रीभाईजी उच्चकोटिके संत थे। उनमें गीता एवं भागवतमें वर्णित संत-लक्षण प्रचुररूपमें विद्यमान थे। गीताप्रेससे प्रकाशित 'एक महात्माका प्रसाद' पुस्तकके निवेदनमें श्रीभाईजीने संतमहिमा इन शब्दोंमें बतलायी है—'महात्माओंकी महिमा अवर्णनीय है। उनका संसारमें रहना और विचरना सहज लोक-कल्याणके लिये ही होता है। जैसे सूर्य सहज ही जीवमात्रको प्रकाश देता है, जैसे चन्द्रमा सहज ही समस्त जगत्में सुधाधारा बहाकर सबको शान्ति प्रदान करता है, वैसे ही महात्मागण (उनके सम्पर्कमें आनेवाले) सबके अज्ञानान्धकारका नाश करके विमल ज्ञानका प्रकाशन प्रदान करते हैं और अपनी अमृतमयी वाणीसे सबको परम शान्ति देते हैं। महात्माओंका मिलन, उनका सत्सङ्ग, उनका वचन अमोघ होता है।' इन शब्दोंमें श्रीभाईजीका आत्मवृत्त ही द्योतित होता है।

भाईजीका जीवन श्रीराधाकृष्णके लीलारसमें निमज्जित था। अपनी भावशक्तिके प्रभावसे उन्होंने अगणित साधकोंको भगवद्भावराज्यमें प्रविष्ट कराके उनका उद्धार किया है।

एक ही जन्ममें सन्मार्गगामी मनुष्य आत्मोद्धार तथा लोकोद्धारके महान् ध्येयसे प्रेरित होकर कितना बड़ा काम कर सकता है और अपने दुर्लभ नरदेहको कितना सार्थक कर सकता है, श्रीभाईजीका जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है। परमभागवत श्रीनारदजीके भक्तिसूत्रका एक दिव्य अंश प्रस्तुत संदर्भमें स्मरण हो आता है—**'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति।'** श्रीभाईजीद्वारा लिखित, प्रेरित, प्रोत्साहित, सम्पादित धार्मिक ग्रन्थ-सम्पदाने अनेक पथभ्रष्ट पतित मानवोंको सन्मार्गप्रवण करके, उन्हें पावन बनाकर उनका उद्धार किया है। दुःखाघातके कारण जीवनसे ही हताश अनेक मानवोंको भाईजीने 'कामके पत्र'-द्वारा सामयिक अनमोल उपदेश देकर—आशादायक शब्दोंद्वारा ढाढ़स बँधाकर आत्मघातसे परावृत्त किया है और उन्हें सही रास्तेपर लाकर, उनमें आशा और नव उत्साहका निर्माण करके नया जीवन प्रदान किया है। इन्हीं पत्रोंद्वारा उन्होंने कितने ही स्त्री-पुरुषोंका बिगड़ा हुआ पारिवारिक जीवन फिरसे बनाया है और कितने ही पतित-जनोंको पापमय जीवनसे छुड़ाकर सन्मार्ग और धर्ममार्गपर प्रवृत्त किया है। ऐसे व्यक्तियोंकी

संख्या थोड़ी नहीं, लाखोंमें है। मैं श्रीभाईजीके हिंदी तथा अंग्रेजी ग्रन्थों, लेखों, पत्रों आदि विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध होनेवाले वचनामृतसे अनेक वर्षोंसे लाभ उठाता आया हूँ। उनका पठन-चिन्तन मेरे दैनंदिन जीवनके कार्यक्रमका एक आवश्यक अङ्ग है। इससे मुझे जो लाभ हुआ है, उसका वर्णन करना शब्दोंसे बाहरकी बात है।

लेखकके नाते 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमें श्रीभाईजीके साथ मेरा अनेक बार सम्बन्ध हुआ है। ऐसे अवसरोंपर मुझे उनका सम्पादन-कौशल तथा रोम-रोममें व्याप्त हुआ संतत्व अच्छी तरहसे देखनेको मिला है। 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ भेजे हुए मेरे लेखोंमें कभी तो वे एक-दो महत्त्वपूर्ण शब्दोंके फेरफारद्वारा मेरे मूल आशयको स्वर्णिम बना देते थे और कभी अपनी ओरसे पाद-टिप्पणियाँ देकर मूल प्रमेयका स्वानुभवमूलक उपयुक्त उदाहरणोंद्वारा समर्थन करते। उनके पारसतुल्य स्पर्शद्वारा किये हुए इन परिवर्तनोंसे मेरे मूल लेखमें जो जादूभरा गम्भीर परिवर्तन हो जाता था, उसे देखकर मेरे हर्षका ठिकाना न रहता। मैं उनके सम्पादन-कौशलपर मुग्ध हो जाता।

आज श्रीभाईजी सशरीर हमारे बीच नहीं हैं। अतएव स्वाभाविक ही उनके वियोगके कारण हमारा अन्तःकरण शोकाकुल है। परंतु हमारा कर्त्तव्य है कि उनके पवित्र आचार-विचार, उद्गार, भगवन्मय जीवन तथा अमृततुल्य दिव्य ग्रन्थों और उपदेशोंसे प्रेरणा पाकर अपने स्वयंके जीवनको समुन्नत करें और साथ ही दूसरोंको भी उनके जीवन, विचारों तथा उपदेशोंसे परिचित कराके उन्हें सत्पथपर प्रवृत्त करें।

●

परम संत

श्रीसुरेन्द्रप्रसादजी गर्ग

सन् १९३२में मुझे परमपूज्य भाईजीद्वारा लिखी गयी कुछ छोटी-छोटी पुस्तकें पढ़नेका अवसर मिला और तभीसे उनके पतितपावन चरणोंमें मेरी श्रद्धा बनी। मैंने उन्हें श्रीमद्भगवद्-गीता तथा श्रीमद्भागवतकी एक जीवित प्रतिमूर्ति पाया। मैंने गङ्गाके पवित्र तटपर भी उनके प्रवचन सुने। उनके गुणोंको लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता। अलबत्ता उनका एक महान् गुण विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। उन्होंने एक बार प्रवचनमें कहा था—'जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि।' उनकी स्वयंकी दृष्टि सदा दूसरोंके गुणोंको ही देखा करती थी, अवगुणोंको नहीं। संतका स्वभाव है—'सर्वत्र पवित्रता एवं शुद्धताका दर्शन करना'। वे परम संत थे।

●

प्रेमरसमें निमग्नहृदय श्रीभाईजी

श्रीकृपाशंकरजी रामायणी

सम्मान्य भाईजीके अमर नामके पूर्व 'स्वर्गीय' विशेषण जोड़ते हुए कर काँप रहा है, लेखनी भी प्रकम्पित हो रही है, हृदय रुदन कर रहा है।

'श्रीविष्णुसहस्रनाम-स्तोत्र'में भगवान्‌के सहस्र नाम संकलित हैं। भावुक भक्तजन इस स्तोत्ररत्नका नित्य पारायण करते हैं। प्रत्येक नामका संकलन गम्भीर एवं उदात्त आशयसे परि-पूरित है। संकलनकर्ता हैं––वेदान्त-सूत्रोंके निर्माता, अष्टादश-पुराणोंके रचयिता, वेदोंके व्याख्याता, भारतीय संस्कृतिके अमर व्याख्याता महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास। भगवान्‌के उन हजार नामोंमें तीन नामोंका उल्लेख एक साथ क्रमसे किया गया है––'अमानी मानदो मान्यः'। इन नामोंमें 'मान्य' शब्दकी परिभाषा संनिहित है और मान्यता प्राप्त करनेका उपाय भी निर्दिष्ट है। 'मान्य' वह है, जो स्वयं अपना मान विगलित करके सबको समानरूपेण मर्यादापूर्वक मान समर्पित करता है और उसीका 'मान्य' होना भी सम्भव है, जो स्वयं मानविरहित होकर सबको आदरपूर्वक सम्मान अर्पित करता है। अनेक बारके मधुर सम्पर्कके अनन्तर मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि इस वाक्य-के आदर्श थे––परम सम्मान्य श्रीपोद्दारजी। वे 'सबहि मानप्रद आपु अमानी' थे।

पुण्यश्लोक श्रीपोद्दारजी भारतीय चेतनाके उदार संवाहक थे। भारतके प्रति, भारतीयताके प्रति उनका अविचल अनुराग था। बाह्याडम्बरसे वे सर्वथा शून्य थे; उसके प्रति उनकी परम अनास्था थी। उनका हृदय भक्ति-रसार्णवमें सतत निमग्न रहता था। उनकी स्नेहपूर्ण दृष्टि एवं मधुर वाणीमें प्रेमरस छलकता था; क्योंकि उनका दिव्य मानस प्रेम-रससे ओत-प्रोत था। साथ ही वे मर्यादापालक भी थे। उनके द्वारा मर्यादाका कभी अतिक्रमण नहीं होता था। यह उनका अपना वैशिष्ट्य था। वे एक साथ श्रीराम और श्रीकृष्णके––मर्यादा और प्रेमके समुदार उपासक थे। यही श्रीरामकृष्णैक्य है। उनमें नेम-प्रेमके निर्वाहकी अनोखी क्षमता थी।

इन पंक्तियोंको लिपिबद्ध करते समय उनके अनेक भाव-संस्मरण हृदयको विह्वल कर रहे हैं। उनमेंसे केवल एकका उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ। मैं उनके लोकोत्तर गुणोंसे, उनकी अनुभव-सिद्ध रसमयी वाणीसे, उनके मन-वचन-कर्मकी एकतासे, उनके मानरहित संत-हृदयसे अत्यन्त प्रभावित था। यदा-कदा उनके सामने आत्मविस्मृत भी हो जाता था। एक दिन पतितपावनी भगवती जाह्नवीके पावन तटपर स्थित गीताभवनमें सायंकालीन सत्सङ्गके अनन्तर ऐसा ही प्रसङ्ग समुपस्थित हो गया। मेरी विनम्रता सीमाका निपट अतिक्रमण कर गयी। भाव-विह्वल वे भी थे, परंतु उन्होंने अपनेको सँभाला और मुझे अपने हृदयसे लगा लिया। आत्मविभोर था मैं। गद्‌गद होकर मेरे प्रिय भाईजीने कहा––'आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं...।' मुझे आज भी विह्वल कर रहा है वह अनूठा भाव-स्मरण। आज ही क्या, आजन्म विह्वल बनाता रहेगा। इसमें मैंने मर्यादा तथा भावुकताका अनोखा समन्वय अनुभव किया है।

उदारचरित्र श्रीभाईजीके सदृश पुरुषरत्न इस रत्नगर्भा वसुंधरापर यदा-कदा ही जन्म-धारण करके धराको कृतकृत्य करते हैं। ऐसे भक्तोंको उत्पन्न करके माताका मातृत्व सार्थक होता है। ऐसे भक्तोंको ही लक्ष्य करके देवर्षि श्रीनारदने दिव्य उद्घोष किया था--

कण्ठावरोधरोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ।

(नारदभक्तिसूत्र ६८)

'भगवान्‌के अनन्य भक्तोंका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है और नेत्र अश्रुपूरित हो जाते हैं, जब वे परस्पर भगवत्सम्बन्धी चर्चा करते हैं। ऐसे भक्त अपने कुलोंको तथा पृथ्वीको पवित्र करते हैं।'

देवर्षिके इस सूत्रके प्रत्यक्ष उदाहरण थे हमारे श्रीभाईजी। निस्संदेह उनके समुत्पन्न होनेसे उनका वंश पवित्र हो गया। आज उनकी पैतृकभूमि रतनगढ़ गौरवान्वित है तथा कर्मभूमि गोरख-पुर उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण' मासिकपत्रके कारण विश्वविख्यात है।

श्रीभाईजीने जीवनपर्यन्त विश्वके कल्याणकी ही कामना की। पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग करके श्रीभाईजीने प्रेममय श्रीकृष्णके नित्यलीलामय, भावमय परमधाम गोलोकमें नित्य स्थान प्राप्त किया है। रसमयी भावनासे ओत-प्रोत श्रीभाईजी महाभाव-रसराजस्वरूप श्रीराधा-माधवके अनोखे एवं अनूठे रसराज्यमें--ऐश्वर्य-गन्धलेशशून्य विशुद्ध माधुर्यरससे परिपूर्ण भावराज्य-में--अपने परमप्रेमास्पद, रसिकचूड़ामणि, रासविहारीके साहचर्यमें नित्य रसमय विहार कर रहे हैं।

श्रीभाईजीकी पावन स्मृति भावपरिपूर्ण है। उनकी उपस्थितिमें जब-जब मुझे उनकी स्मृति होती थी, मैं एक पवित्र स्नेह-ज्योतिके, प्रेमस्वरूप श्रीजानकीरमणके पादपद्मकी अनुरागमयी ज्योति-के, महारासरस-रसिक श्रीराधारमणकी भाव-परिपूरित भक्तिकी ज्योतिके दर्शन करता था। आज उनकी पाञ्चभौतिकी लीला-संवरणके अनन्तर भी उनकी भाव-स्मृति वैसी ही भावमयी बनी हुई है और वह बड़े ही पवित्र रूपोंमें समुदित होकर मुझे सात्त्विक शक्ति तथा दिव्य प्रेरणा देती है।

●

सोई साध-सिरोमणी, गोबिंद-गुण गावै।
राम भजै, बिखिया तजै, आपा न जनावै॥
मिथ्या मुखि बोलै नहीं, परन्यंदा नाहीं।
औगुण छाड़ै, गुण गहै, मन हरिपद माहीं॥
निर्बैरी सब आतमा, पर आतम जानै।
सुखताई समता गहै, आपा नहिं आनै॥
आपा-पर अंतर नहीं, निर्मल निज सारा।
सतवादी साचा कहै, लैलीन बिचारा॥
निर्भै भजि न्यारा रहै, काहूँ लिपत न होई।
दादू सब संसार मैं ऐसा जन कोई॥

—संत दादूदयाल

●

सबके विश्वासपात्र

श्रीकैलाशचन्द्र सेकसरिया

श्रीभाईजी मेरे धर्मके नानाजी थे; पर उनका स्नेह, उनकी कृपा मुझे अपने नानाजीसे भी बहुत अधिक प्राप्त हुई थी। उनकी आत्मीयता इतनी महान् थी कि जो भी उनके सम्पर्कमें आया, वह यही मानता है कि उन्होंने मुझे सबसे अधिक प्यार किया। मेरा हृदय उनकी आत्मीयतासे भरा है। मैं उसके सम्बन्धमें क्या लिखूँ ?

श्रीभाईजीके प्रति किसीको भी अपना हृदय खोलकर रखनेमें संकोच नहीं होता था। बड़े-बड़े महात्मा, धनपति, विद्वान् तथा राज्याधिकारी अपनी छिपी-से-छिपी कमजोरी भी उनके सामने रखते थे और उनसे परामर्श लेते थे। वे बराबर कहा करते थे कि "पैसेवालोंकी स्थिति ऐसी विकट होती है कि वे भीतर-ही-भीतर जलते हैं, पर बाहरसे रो भी नहीं पाते।' उन्होंने बताया—"एक बार मैं पूज्य श्रीमालवीयजी महाराजके पास वाराणसीमें उनके निवास-स्थानपर बैठा था कि देशके एक प्रसिद्ध श्रीमन्त पूज्य श्रीमालवीयजी महाराजके दर्शनार्थ आये। कुछ देर बाद जब मैं मालवीयजीको प्रणाम करके विदा होने लगा, तब श्रीमन्त महोदयने कहा—'भाईजी, आप रुकियेगा, आपसे कुछ बात करनी है।' मैं बाहर रुक गया। थोड़ी देर बाद वे सज्जन आये और मुझे बिल्कुल एकान्तमें ले गये। हम दोनों एक पेड़के नीचे बैठ गये। बैठते ही श्रीमन्त महोदयके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। मैं इसका कारण नहीं समझ पाया। सोचा, ये अभी शान्त हो जायँगे; पर वे रोते ही रहे। लगभग पौन घंटे रोते रहे होंगे। उनकी इस दयनीय दशाको देखता हुआ मैं अवाक् बैठा रहा। खूब रोनेके पश्चात् जब उनका मन हल्का हुआ, तब उन्होंने कहा—'भाईजी, वर्षोंसे घुट रहा था; कोई ऐसा स्वजन ही नहीं मिला, जिसके सामने दो आँसू भी गिरा सकूँ। आपकी स्नेह एवं आत्मीयताकी बार-बार स्मृति होती थी, पर आपसे भेंट ही नहीं हो पायी। आज आपके सामने रोकर अपने हृदयका भार हल्का किया है।' पीछे उन्होंने अपने दुःखके कारण विस्तारपूर्वक बतलाये। मैं तो आश्चर्यचकित रह गया कि बाहरसे इतने सम्पन्न, इतने सुखी दिखायी देनेवाले इन महानुभावके हृदयमें दुःखका कितना भीषण ज्वालामुखी धधक रहा है। मैंने उन्हें बड़े ही प्यार-भरे शब्दोंमें सान्त्वना दी और अपनी योग्यताके अनुसार उनकी समस्याओंका समाधान बतलाया। मेरी बातोंसे उनको बड़ा संतोष हुआ। वे बोले—'भाईजी, मैं आपकी बातोंके अनुसार चलनेकी चेष्टा करूँगा। सचमुच आपने मेरे दुःखके हेतुओंका बड़ा ही सरल समाधान बता दिया है।' हम दोनों घर चले आये।"

इस घटनासे मुझे यह पता चला कि श्रीभाईजी कैसे-कैसे लोगोंके विश्वासपात्र थे।

हिंदू-जातिके महान् रक्षक

भक्त श्रीरामशरणदासजी

पूज्य प्रातःस्मरणीय परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हिंदू-जाति, हिंदू-धर्म, हिंदू-सभ्यता-संस्कृति, हिंदी, हिंदुस्थानके महान् रक्षकोंमेंसे थे। वे सनातनधर्मके तो मानो साक्षात् सूर्य ही थे। भारत-माताके सच्चे लाल और रत्न थे। विश्वकी एक महान् दिव्य विभूति थे, सर्वगुणसम्पन्न थे।

मेरे ऊपर श्रीभाईजीकी बड़ी कृपादृष्टि थी। उनको मैं अपने पूज्य पिताके तुल्य मानता था और इधर वे भी मुझे वैसा ही स्नेह देते थे। लगभग ३५ वर्ष पूर्व प्रयागराजमें कुम्भके शुभ अवसरपर उनके दर्शन हुए थे। इस प्रथम मिलनमें जो अद्भुत आनन्द प्राप्त हुआ था, वह वर्णनातीत है।

वे गौ-ब्राह्मणोंके भक्त थे। गोरक्षा-आन्दोलनमें उन्होंने जिस तत्परताके साथ तन-मन-धनसे सहयोग दिया, वह सर्वविदित है। गोरक्षा-आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण मुझे भी जत्थेके साथ एक महीनेके कारावासका दण्ड मिला था। हमें तिहाड़ जेलमें भेजा गया था और उसी जेलमें थे पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज। भारतके कोने-कोनेसे पधारे हजारों बड़े-बड़े संत-महात्मा, मण्डलेश्वर, विद्वान्, गोभक्त और धार्मिक व्यक्तियोंसे समूची जेल भरी हुई थी। श्रद्धेय भाईजी इस आन्दोलन-की सर्वोच्च समितिमें थे। श्रीभाईजी तिहाड़ जेलमें बंदी बनाये गये संत-महात्माओं और नेताओंसे भेंट करने तथा उनसे आन्दोलनके सम्बन्धमें परामर्श लेनेके लिये पधारे। श्रीभाईजीको अपने बीच देखकर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। विचार-विमर्श करनेके उपरान्त श्रीभाईजीने भाषण दिया। भाषण इतना प्रभावशाली था कि उसको सुनकर सभी उत्साहसे भर गये। जिन बातोंको लोग जेलके कष्ट समझ रहे थे, उनको सहन करनेमें उनकी गौरव-बुद्धि हो गयी।

श्रीभाईजीने अपने भाषणमें कहा—'यदि हमने जेलके इन तुच्छ कष्टोंको कष्ट माना और तनिक-से कष्टसे घबरा गये तो हम गोरक्षा कैसे कर सकेंगे? गोरक्षार्थ कष्ट सहन करना कष्ट नहीं, महान् तप है। गोरक्षार्थ कष्ट-सहन महान् पुण्योंसे प्राप्त होता है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि आज हमें अपने जीवनमें गोमाताकी रक्षाके लिये कष्ट सहन करनेका अवसर मिला है। यह हमारा मनुष्यजीवन और यह हमारा तुच्छ शरीर किस काम आयेगा? यह शरीर तो सदा नहीं रहता, एक दिन यह धूलमें मिल ही जाता है। यदि इससे गोरक्षार्थ कुछ हो जाय तो इसीमें हमारे जीवनकी सार्थकता है। जिस पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक परात्पर ब्रह्म एवं भगवान्का राम-कृष्णके रूपमें अवतार हुआ और भगवान् श्रीकृष्ण गोरक्षार्थ नंगे पाँवों जंगल जाते हैं और अपना 'गोपाल' नाम रखवाते हैं, जिस पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये भारतके चक्रवर्ती सम्राट् दिलीप अपनेको खूँखार शेरके सामने माँसके लोथड़ेकी तरह खानेके लिये फेंक देते हैं और लाखों क्षत्रिय गोरक्षार्थ हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर कर चुके हैं, यदि उन्हीं पूज्या गोमाताओंकी रक्षाके लिये हमें जेलकी यातनाएँ सहनी पड़ें तो उन्हें सहर्ष भोगना

चाहिये और इसे महान् तप मानकर प्रसन्न होना चाहिये। जो जेलमें कष्ट भोगते हैं, उनका पुण्योदय हुआ है कि उन्हें गोमाताकी रक्षाके लिये कष्ट सहनेका परम सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। यदि गोरक्षार्थ यह शरीरतक काम आ जाय तो इससे बढ़कर मनुष्य-जन्मकी सार्थकता और क्या होगी?'

श्रीभाईजीका भूदेव ब्राह्मणोंके प्रति सदा पूज्यभाव रहा। जब कोई पण्डित उनसे मिलने आते, श्रीभाईजी बड़ी ही नम्रतापूर्वक उन्हें चरण छूकर प्रणाम करते थे और अपनेसे ऊँचे आसनपर बैठाते थे। बहुत वर्ष पूर्व जयपुर (राजस्थान) में सनातनधर्मकी एक बड़ी सभा आयोजित हुई थी। भारतके कोने-कोनेसे सनातनधर्मके उच्चकोटिके विद्वान् उसमें पधारे थे। विशेषाग्रह करके गोरखपुरसे श्रद्धेय श्रीभाईजीको भी बुलाया गया था। विश्वविख्यात भाईजीको देखकर सभी सनातनधर्मी विद्वान् बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें मञ्चपर अपने पास बैठनेको कहा। श्रीभाईजीने स्पष्ट शब्दोंमें मना कर दिया और कहा—'आप मेरे पूज्य भूदेव ब्राह्मण हैं। इस गद्दीपर बैठनेके आप ही अधिकारी हैं। मैं तो आपका तुच्छ सेवक हूँ। मुझे ऊपर बैठनेका अधिकार नहीं है।' यह ब्राह्मण-भक्ति देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गये।

बादमें आपसे सभामें भाषण देनेको कहा गया। आपने मना किया और कहा—'मैं तो आप पूज्य भूदेव ब्राह्मणोंके श्रीचरणोंमें बैठकर आपके श्रीमुखसे कुछ सुननेके लिये आया हूँ। मुझे आप पूज्य ब्राह्मणोंके श्रीमुखसे सुननेका अधिकार है, आपको सुनानेका अधिकार नहीं है।' परंतु सभीने बहुत आग्रह किया। सबके आग्रहके सामने श्रीभाईजी नतमस्तक थे। आपने सभामें विराजमान सभी पूज्य भूदेव ब्राह्मणोंके श्रीचरणोंमें हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और खड़े होकर शास्त्रानुसारी ऐसा सुन्दर भाषण दिया और वर्णाश्रमधर्मकी महिमापर ऐसा अद्भुत प्रकाश डाला कि सभी विद्वान् आश्चर्यचकित रह गये। भाषण समाप्त करते हुए आपने ब्राह्मणोंके श्रीचरणोंमें पुनः करबद्ध प्रणाम किया और सबसे आशीर्वाद माँगा—'जीवनके शेष श्वास भगवान्‌की स्मृतिमें बीतें।' उपस्थित सभी विद्वान् श्रीभाईजीके भाषणकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे और सभीने आपको भारतकी एक अद्भुत दिव्य विभूति माना।

हिंदू-जाति, सत्यसनातनधर्म, साधु-संत, गौ-ब्राह्मण, देवमन्दिर, वेद-पुराण—श्रीभाईजीके ये ही प्राण थे और समस्त जीवन आपका इनकी रक्षा और सेवामें ही व्यतीत हुआ। हमलोगोंका परम कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार श्रद्धेय श्रीभाईजीने जीवनभर सनातनधर्म और हिंदू-जातिकी रक्षा और सेवा की, उसी प्रकार प्राणपणसे हम भी करें। यही उन महापुरुषके श्रीचरणोंमें सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

महात्माओंमें उत्तम गुण, उत्तम आचरण और उत्तम भाव होते हैं; उनका ज्ञान भी उच्चकोटिका होता है। उनके सङ्गसे ये सब चीजें किसी-न-किसी अंशमें बिना जाने-पहचाने भी आ ही जाती हैं। यदि पहचान हो जाती है और महात्माके अलौकिक प्रभावका ज्ञान हो जाता है, तब तो वह, जैसा उसका ज्ञान होता है, उसके अनुसार लाभ उठा लेता है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

मेरे आराध्य !

श्रीबजरंगलालजी आसोपा

मैंने कभी भी पूज्य भाईजीको मानवके रूपमें नहीं देखा। मैं सदैव उन्हें 'आराध्यदेव !' सम्बोधित करता और प्रभु मानकर उनकी पूजा करता रहा। अवश्य ही मैं भाग्यशाली था, अतः सर्वान्तिर्यामी भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे मुझ तुच्छ प्राणीका ऐसा भाग्योदय हुआ कि मैं करुणामूर्ति पूज्यचरणके सम्पर्कमें आ गया।

आज पहली बार मैं उस रहस्यको प्रकट करता हूँ, जो इतने वर्षोंतक मैंने गोपनीय ही रखा। सर्दीके दिन थे। एक रात दुःखसे व्याकुल होकर मैं खूब रोया और भगवान्को याद करता-करता सो गया। ब्राह्ममुहूर्त्तमें लगभग ३-४ बजे एक स्वप्न देखा।—"जैसे कोई चकाचौंध करनेवाला मन्द-मन्द मनोहारी शीतल प्रकाश हो; पहले मैदान, फिर बर्फसे आच्छादित पहाड़-ही-पहाड़। शुभ्र ज्योत्स्नासे युक्त चाँदी-जैसी श्वेत पर्वतमालाएँ, उनमें शिलाएँ, कल-कल करती गङ्गाकी धारा, फव्वारेकी तरह झरने। मैं देख रहा हूँ आकुल-व्याकुल, बैठा हूँ एक शिलापर। साक्षात् प्रभु ही बोलते हैं बड़ी ही मधुर वाणीमें आकाशवाणीसे—'तुम इनके पास चले जाओ। ये तुम्हें सँभाल लेंगे।' मैंने इधर-उधर झाँका कि तत्काल मेरे 'आराध्यदेव' जिनसे न तो मेरा परिचय था, न जिनके बारेमें किसीने कभी चर्चा ही की थी, मेरे सामने दो फीटकी दूरीपर खड़े दिखायी दिये। खादीके वस्त्र, तेजस्वी पर विनयशील गम्भीर मुखारविन्द। उनकी स्थिति यह थी कि उनकी देह पृथ्वीको स्पर्श न करती हुई पृथ्वीसे दो फुट ऊँची थी। थोड़ी देर बाद पुनः आकाशवाणी हुई—'तुम्हें ये अवश्य ही शरण देंगे, तुम इनके पास चले जाओ। मैंने इन्हें तुम्हारे लिये प्रेरित कर दिया है। रोओ मत, अपना जीवन इन्हें दे दो और इनकी सेवा करो।' मैंने पूज्यवरकी ओर देखा। वे मुझे देखकर गद्गद हो गये। मैंने उनके चरण पकड़ लिये। खाली जगहमें चरणोंके नीचे अपना मस्तक रख दिया। उन्होंने अपना वरदहस्त मेरे मस्तकपर रख दिया और अपना लिया।"

यह स्वप्न था। यह स्वप्न होनेके पश्चात् मैंने श्रीभाईजीको पत्र लिखा—'मुझे ऐसा स्वप्न आया है और मैं आपकी शरण लेना चाहता हूँ। भगवान्की कृपा, उन्हीं दिनों भाईजीका दिल्ली-आगमन हुआ। मैं दिल्ली पहुँच गया। उनके प्रथम दर्शनसे ही मुझे स्वप्नमें देखा वही स्वरूप याद आ गया। श्रीभाईजी मेरे हो गये और मैं उनका। श्रीभाईजीसे मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ, वह अविस्मरणीय ही रहेगा। उन्होंने मुझ अकिंचनको एवं मेरी पत्नीको अपने परिवारका एक अङ्ग बना लिया और इतना प्यार दिया कि उसकी स्मृति अधीर बना देती है। श्रीभाईजीके अभावमें अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? बस, अश्रुपूरित नेत्रोंसे पूज्यवरके पतितपावन स्वरूपका स्मरण करते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।

●

नवयुवकोंको सन्मार्ग दिखानेवाले

श्रीगोविन्दजी शास्त्री

बाईस वर्ष पहलेकी बात है। मनमें बड़ी अशान्ति थी। युवावस्था होनेके कारण समवयस्कोंमें ही बैठना होता था, किंतु पारिवारिक परम्परा और घरमें सुलभ पुस्तकोंके पढ़नेसे वह युवकोंका सङ्ग मुझे अरुचिकर था। अवस्थाके प्रभाव और यौवनके उष्णतापूर्ण उन्मादसे भरे विचारों और वार्तालापोंसे मन कुंद हो जाता था। मेरी स्वयंकी ऐसी विवशता थी कि अकेला रह नहीं पाता था और साथियोंके नामपर वे ही परिचित व्यक्ति, उनके वे ही अमर्यादित और वासनाभरे वार्तालाप। बड़ी दुविधामें जीवन था। जाने किन क्षणोंमें यह निश्चय कर बैठा कि इस दुनियासे दूर कहीं एकान्तमें गिरि-कन्दरामें जाकर उपासना की जाय; किंतु साहस नहीं हो रहा था। सोचा, ऐसा करनेसे पहले किसीसे पूछ क्यों न लूँ। घरमें पितामह थे––स्वर्गीय पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी शर्मा। सामने जबान खोलनेका मुझे साहस ही नहीं हो सका। फिर यह भी मनमें आया कि एकमात्र पौत्र होनेके कारण वे मुझे जाने नहीं देंगे। हमारे यहाँ 'कल्याण' आता था और उसके अध्ययनमें मुझे बड़ी रुचि थी, अतएव 'कल्याण'-सम्पादकको ही पत्र लिखकर राय पूछनेका विचार हुआ। मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। एक अपरिचित व्यक्तिको लिखा गया मेरा यह पहला पत्र था। मनमें संकोच भी था कि जाने वे मेरे पत्रका उत्तर भी देंगे या नहीं। पर इतना सत्य था कि अपनी मनोभूमि और परिस्थिति मैंने पत्रमें निस्संकोच लिख दी थी। एक सप्ताहके भीतर ही मुझे उत्तर मिल गया और मुझे स्पष्ट कहा गया, 'ऐसा न किया जाय। घरसे दूर जाकर भी आदमी दूर नहीं जा सकता और चाहे तो घरमें रहकर भी दूर रह सकता है।' यह था पुण्यश्लोक पोद्दारजीसे मेरा पहला परिचय। उनका वह पत्र मेरे लिये आज भी अमूल्य निधि है। उस पत्रसे मुझे सही दिशा मिली। आज भी जब सप्तशतीका पाठ करता हूँ तो समाधि-सुरथके रूपमें मैं अपने आपको पाता हूँ और श्रीपोद्दारजीका वह पत्र मुझे सप्तशतीके रहस्यके रूपमें स्मरण हो आता है। न जाने मुझ-जैसे कितने अल्पज्ञोंको उन्होंने उबारा था।

इसके पश्चात् लिखनेकी प्रेरणा हुई। बहुत कुछ लिखा, पर प्रकाशित करनेके लिये भेजनेका साहस ही नहीं हो सका। जाने वह कौन-सी अज्ञात प्रेरणा थी, जिसने मुझे विवश कर दिया और मैंने कुछ पङ्क्तियाँ श्रीभाईजीके पास भेज दीं। श्रीभाईजीने कृपा करके वे पङ्क्तियाँ कल्याणमें प्रकाशित कर दीं। इसे देखकर कितने दिनोंतक मैं हर्षविभोर होता रहा। आज सभी पत्रोंकी परिक्रमा करके आ गया हूँ, पर इसका सारा श्रेय पूज्य पोद्दारजीको ही है। इस जीवनको जो भी कुछ मिला है, वह महामना पोद्दारजीके ही कारण––यह कहनेमें मुझे गौरवका अनुभव हो रहा है। मेरी भाँति न जाने कितने नवोदित साहित्यकारोंको प्रोत्साहन देकर श्रीभाईजी प्रकाशमें लाये हैं।

●

सेवाव्रती महामानव

श्रीनर्मदेश्वरजी चतुर्वेदी

भाईजीका स्मरण आते ही उनके स्मृति-चित्र कई रूपों और रंगोंमें उमड़कर चल-चित्रकी भाँति मानस-पटलपर तरङ्गायित हो जाते हैं——एक-से-एक बढ़कर मोहक एवं आकर्षक । उनके सम्पर्क अथवा सांनिध्यमें आना संचित शुभकर्मोंका सुफल था । उनसे एक बार मिलकर उन्हें भुलाया नहीं जा सकता था । ऐसा लगता था, जैसे किसी चिरपरिचित आत्मीय शुभचिन्तकसे मिल रहे हैं । उनकी मितभाषी, किंतु सौम्य मधुर मूर्तिकी छाप इतनी गहरी तथा टिकाऊ बन गयी है कि नहीं लगता कि वे अब हमारे बीचमें नहीं हैं । भाईजी अनासक्त गृहस्थ होनेके साथ ही निरभिमान तथा विनयशील थे । वे सफल सम्पादक, कुशल व्यवस्थापक, नेक सलाहकार, सहृदय सहायक और समर्थ संरक्षक भी थे । वे निर्बलके सम्बल और अनुत्साहीके प्रेरणा-स्रोत थे । एक सच्चे वैष्णवके रूपमें वे हिंदू मिशनरी थे, किंतु किसी भी इतर धर्मावलम्बीके प्रति उनके मनमें असहिष्णुता न थी । नरसी भगतने 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाणे रे' में वैष्णवका जो लक्षण बतलाया था, उसे भाईजीने अपने जीवनमें चरितार्थ किया था । भाईजी सही अर्थमें सेवाव्रती महामानव थे ।

भाईजीके सार्वजनिक जीवनका सूत्रपात क्रान्तिकारीके रूपमें हुआ था, परंतु उनके राष्ट्रीय संस्कार राजनीतिक चेतनासे अधिक सच्ची देशभक्तिकी भावनासे ही ओत-प्रोत थे । कदाचित् उनकी इसी भावनाका विकास ईश्वर-भक्तिमें लक्षित हुआ और उनकी क्रान्ति-निष्ठा परमेश्वरकी शक्तिरूपा श्रीराधाके प्रति भक्ति-भावमें केन्द्रित हुई । उनका जीवन एक अर्पित जीवन था, इसलिये फलाशारहित कर्म ही उनको अभीष्ट था । उनकी भक्ति-भावना और संकल्प-शक्ति इतनी प्रबल थी कि उनकी प्रत्येक क्रिया देवोपासनाका ही एक अङ्ग बन गयी थी । उनका कुछ अपना कहनेको नहीं रह गया था । परिचित-अपरिचित——सभी उनके स्नेह और कृपाके पात्र थे ।

तीस-पैंतीस वर्षोंकी लंबी अवधिके बीच मुझे नाना प्रसङ्गोंमें भाईजीसे मिलनेके सुअवसर मिले । उनसे मिलकर सदा नयी स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती रही । श्रीभाईजीमें दायित्व-बोध इतना प्रबल था कि वे 'कल्याण' एवं पुस्तकोंमें किसी भूलको सहन नहीं कर पाते थे । उसे देखकर तिलमिला उठते थे । इसी कारण बड़े-से-बड़े विशेषाङ्ककी देखभाल आद्योपान्त करनेमें कभी हिचकते न थे ।

भारतवर्ष, विशेषतः उत्तरभारतके धार्मिक अथवा सांस्कृतिक क्षेत्रमें राष्ट्रीय महत्वकी शायद ही ऐसी कोई योजना रही हो, जिसमें भाईजीका किसी-न-किसी रूपमें योगदान न रहा हो । इस कारण वे देशकी अनेकानेक योजनाओं तथा आयोजनोंसे सम्बद्ध रहते थे । मन्त्रणासे लेकर आर्थिक सहयोग देनेतकमें उनका हाथ रहता था, परंतु वे इतने आत्म-निःस्पृह तथा लजीले स्वभावके थे कि उसकी चर्चातकसे वे बचना चाहते थे ।

विद्यावारिधि महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराजको अभिनन्दन-ग्रन्थ अर्पित करनेकी योजना बनायी गयी । सीमित साधनोंसे कार्यारम्भ तो हुआ, किंतु अर्थाभावके कारण उसमें बाधा पड़ने

लगी। डॉ० सम्पूर्णानन्दका ध्यान जब इस ओर आकर्षित हुआ, तब उन्होंने स्वभावतः भाईजीसे भी सम्पर्क स्थापित करनेका सुझाव दिया। श्रीगोपालचन्द्रसिंहने दिल्लीसे अपनी कारद्वारा ऋषिकेश साथ चलनेके लिये मुझे प्रेरित किया। हमलोग श्रीभाईजीसे गीताभवनमें मिले। हमारी सुख-सुविधाका उन्होंने बहुत ध्यान रखा। भाईजीका आतिथ्य भारतीय आदर्शोंके अनुरूप था। उनके साथ 'जंगलमें भी मङ्गल' मनाना सर्वथा सम्भव था। दूसरे दिन जब हम बिदा लेने गये, तब भाईजीने हमें भाव-भीनी ममताभरी बिदाई दी। उनका अर्थगर्भित योगदान हमारी योजनाके कार्यान्वियनमें बड़ा सार्थक सिद्ध हुआ।

भाईजी लिखनेमें ही नहीं, बोलनेमें भी दक्ष तथा कुशल थे। उनका प्रवचन सुननेका जिसे सुयोग मिला था, वे उनकी अन्तर्भेदी एवं तलस्पर्शी वाणीसे सुपरिचित हैं। वे सहज ही हृदयग्राही प्रभाव उत्पन्न करनेमें समर्थ थे, जिसमें ओजस्वितासे अधिक तेजस्विता थी। श्रीभाईजी-का सादा जीवन, सरल स्वभाव और परमार्थ-परायण व्यवहार हमारे लिये सदा प्रेरणाप्रद बने रहेंगे। ऐसे महामानवका पुण्य-स्मरणकर हम अपनेको धन्य मानते हैं।

●

पथ-प्रदर्शक श्रीभाईजी

श्रीसत्यदेवजी ब्रह्मचारी

श्रीभाईजीकी ज्यों ही स्मृति होती है, त्यों ही आँसू बहने लगते हैं। मेरा उनसे लगभग ३० वर्षसे सम्पर्क था और मैंने उन्हें सदैव एक-सा ही स्थिर पाया। उनकी आवाजकी गम्भीरता बड़ी प्रभावकारिणी थी, उससे मुझ-जैसे चञ्चलबुद्धिको भी एकदम शान्तचित्त होना पड़ता था। श्रीभाईजीने जीवनभर लोगोंको सत्पथपर चलनेकी प्रेरणा दी। ऐसे अनेक प्रसङ्ग मेरे स्वयंके जीवनमें घटित हुए हैं। संन्यास-आश्रम ग्रहण करनेपर भी मैं प्रायः सार्वजनिक हितके कार्योंमें रुचि लेता रहा हूँ। जब कभी संघर्ष या कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयकी स्थिति आती, मैं श्रीभाईजीसे सलाह लेता और वे कृपापूर्वक मेरा पथ-प्रदर्शन करते।

श्रीभाईजीकी आत्मीयता ऐसी थी कि उसके स्मरणमात्रसे हृदय द्रवित हो जाता है। पिछले दिनों 'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन'की स्थापनाके सम्बन्धमें भुवनेश्वरमें चर्चा चली तो वहाँके मुख्य मन्त्री श्रीविश्वनाथदासजीकी आँखोंसे आँसू झरने लगे। उन्होंने कहा—'पहले मेरा विचार केवल बदरीनाथधाममें ही वेद-भवन स्थापित करनेका था। चारों धामोंमें वेद-भवन स्थापित करनेका प्रयास श्रीभाईजीकी ओरसे ही हुआ।'

मैं भी श्रीभाईजीके आदेशानुसार ही निष्कामभावसे 'वेद-भवन-न्यास'का कार्य देख रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि श्रीभाईजीकी प्रेरणासे ही 'वेद-भवन-न्यास'का कार्य हो रहा है और वे इसे अवश्य देखते होंगे।

श्रीभाईजी-जैसे देवतुल्य मानव सदियोंमें जन्म लेते हैं। लोगोंको सन्मार्ग दिखाकर एवं मानव-कल्याणमें अपना जीवन व्यतीतकर वे प्रभुके लीलाधाममें लीन हो गये। मेरे लिये पश्चा-त्ताप एवं दुःखकी बात है कि श्रीभाईजी-जैसे महापुरुषका साथ पाकर भी मैं विशेष लाभान्वित नहीं हो सका।

●

श्रीभाईजीका अहैतुक प्यार

श्रीरामप्रसादजी दीक्षित

श्रीभाईजीके साथ मेरा साक्षात्कार बाईस वर्ष पहले हुआ था। प्रथम भेंटमें ही मैंने उनका सहज सौहार्द प्राप्त किया। पीछे जब-जब मैं उनसे मिला, उन्होंने वही प्रेम-वर्षा मुझपर की। मुझे वे अपने अनुजके रूपमें मानकर वैसा ही व्यवहार करते। कभी भी मुझसे न कुछ चाहा, न लिया; सदा देते ही रहे। जीवनकी अनेकानेक घटनाएँ हैं, जिनमेंसे दो-चार पङ्क्तिबद्ध करता हूँ।

उनसे मिलनेके दो वर्ष पश्चात् मैं बीमार पड़ा। दशा बिगड़ती ही गयी और डाक्टर भी निराश होने लगे। मेरी पत्नीने श्रीभाईजीको पत्रद्वारा सूचना दी। भाईजीने तार दिया, जिसमें उन्होंने भगवान्के मङ्गलमय विधान और कृपापर विश्वास रखनेको कहा। मेरी स्थिति सुधरने लगी और मैं १०–१२ दिनमें स्वस्थ हो गया।

मेरी कन्याका बड़ा ऑपरेशन प्रयागमें हुआ। डाक्टरोंने कहा था कि बचनेकी आशा ५० प्रतिशत है। कन्या बहुत घबरायी हुई थी। ऑपरेशन होनेपर कन्याने मुझे बताया कि ऑपरेशन थियेटरमें उसका पेट चीरनेके पहले उसने अपने समीप श्रीभाईजीको मेजपर प्रत्यक्ष बैठे देखा; वे मुस्करा रहे थे। उसकी सारी घबराहट चली गयी और ऑपरेशन सफल हुआ। हमलोग तो बाहर बैठे ऑपरेशनके समय 'नारायण' नामका जप कर रहे थे; क्योंकि भाईजीने एक बार कहा था कि किसी संकटमें इस नाम-जपसे संकट-निवृत्ति हो जाती है। भाईजी उस समय प्रयागसे लगभग १५० मील दूर गोरखपुरमें थे।

लगभग १८ वर्ष पहलेकी बात है। मैं उस समय मुजफ्फरनगरमें था। भाईजी दिल्लीसे ऋषिकेश कारद्वारा जा रहे थे। रास्तेमें मुजफ्फरनगर पड़ता है। लगभग ३ बजे जब मैं कोर्टमें काम कर रहा था, वे एकाएक आ गये। मैं उनको लेकर तुरंत घर आया और वहाँ पूजाके कमरेमें भगवान्के श्रीविग्रहके सामने बैठाया। भगवान्के भोग लगाकर एवं थोड़ा जलपान करके वे चले गये। इसके बाद उस कमरेमें दो दिनतक अत्यन्त सुगन्ध आती रही, जो बाहरतक फैल जाती थी।

मेरी कनिष्ठ पुत्रीको लकवा मार गया। भाईजीको फोनद्वारा सूचना देकर मैं उसे उन्हींके पास ले आया। ३ मासतक वह बिल्कुल नहीं उठ पाती थी, पर कोई औषध नहीं दी गयी। जिस दिन भाईजीने अपनी इहलीला संवरण की, उसी दिन वह अपने-आप खड़ी होकर चलने लगी और अबतक ठीक है।

जीवनमें अनेकानेक घटनाएँ हैं, जिनका लिखना सम्भव नहीं है। यह तो उनके अहैतुक प्रेमका स्वरूप था, जो वे सबको मुक्तहस्तसे वितरण करते थे। उनके निधनसे आज न जाने कितने नर-नारी हमारी तरह ही रो रहे होंगे। उनकी दृष्टिमें प्रत्येक प्राणी उनका भगवान् था और इसी भावसे वे सबकी सेवा करते थे। उन्होंने सदैव सबको दिया-ही-दिया। ऐसे दीनबन्धु, करुणा-सागर, सर्वसुहृद् कहाँ मिलेंगे? षोडशगीतकी इन पङ्क्तियोंके रूपमें हम उनसे प्रार्थना करते हैं—

मेरी त्रुटि, मेरे दोषोंको तुमने देखा नहीं कभी।
दिया सदा, देते न थके तुम, दे डाला निज प्यार सभी॥

●

भारतीय संस्कृतिका सबसे उत्तम संदेशवाहक

श्रीकार्ल जी०, लार्ष (जर्मनी)

पंद्रह वर्ष पूर्व सन् १९५६में मुझे उस महान् आत्माके दर्शनका सौभाग्य मिला था। एक व्यक्तिके जीवनकालमें १५ वर्षकी अवधि लंबी है। इस अवधिमें मेरा सम्पर्क अनेक व्यक्तियों एवं महापुरुषोंसे हुआ। अब अपने जीवनके उत्तरार्द्धकालमें मैं यह कह सकता हूँ कि श्रीभाईजीसे मेरी भेंट अत्यन्त आवश्यक थी। भारतदेशके मेरे प्रवासके प्रारम्भिक दिनोंमें बम्बईमें एक भारतीयने मुझसे कहा था––'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार एक विलक्षण पुरुष हैं'––और मैंने अपने सम्पर्कमें उन्हें ऐसा ही पाया। मैंने उनके रूपमें एक विलक्षण पुरुषके ही दर्शन नहीं किये, मुझे उनके रूपमें एक संतकी प्राप्ति हुई। जो लोग उनसे एक बार भी मिले हैं, वे उस उदार आत्माको कभी भूल नहीं सकते। मेरे प्रति उनके ये शब्द––'आप हमारे परिवारके एक सदस्य हैं', कोरे शब्द नहीं हैं। उनके आत्मीयतापूर्ण आतिथ्य-सत्कारके कारण भारतमें मैंने अपनेको कभी विदेशी-अजनबी अनुभव नहीं किया। इसके अतिरिक्त उनके आतिथ्य-सत्कारसे मुझे ऐसे देशका वास्तविक दर्शन हुआ, जिसका शताब्दियोंसे संतों, महात्माओं एवं दार्शनिकोंने मानवीय अध्यात्मके एक विलक्षण मन्दिरके रूपमें निर्माण किया है। श्रीभाईजीद्वारा की गयी निर्धन तथा आर्त्त जनोंकी सेवाके कार्योंका महत्त्व वे ही लोग जान सकते हैं, जिन्हें उनकी सेवा-सहायता प्राप्त हुई है। मुझे उन प्रेरणा-स्रोतोंकी तलाश थी, जिनसे भाईजी इस महान् सेवाकार्यमें प्रेरणाशक्ति प्राप्त करते थे। मैंने उनकी शिक्षाओंका भली-भाँति अध्ययन करनेका यत्न किया और मुझे उनकी––'आनन्द-की लहरें' नामक लघु पुस्तिकामें अपनी खोजका उत्तर प्राप्त हो गया––

"कोढ़ी, अपाहिज, दु:खी-दरिद्रको देखकर, यह समझकर कि 'यह अपने बुरे कर्मोंका फल भोग रहा है, जैसा किया था वैसा ही पाता है'––उसकी उपेक्षा न करो, उससे घृणा न करो और रूखा व्यवहार करके उसे कभी कष्ट न पहुँचाओ। वह चाहे पूर्वका कितना ही पापी क्यों न हो, तुम्हारा काम उसके पापको देखनेका नहीं है; तुम्हारा कर्त्तव्य तो अपनी शक्तिके अनुसार उसकी भलाई करना तथा उसकी सेवा करना ही है।"

ऐसे श्रेष्ठतम विचारोंका उत्स कहाँ पाया जाता है? श्रीभाईजीने गीताके इस ज्ञानको कि 'सभी प्राणियोंमें स्वयं भगवान्का निवास है' अपने जीवनद्वारा प्रमाणित कर दिया।

उनके परलोकगमनसे हुए रिक्त स्थानकी पूर्ति कौन करेगा? इस नश्वर संसारसे उनके प्रयाणसे उन लोगोंकी महती क्षति हुई है, जिनका उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क था। मैं जीवंत हिंदू-धर्मकी श्रेष्ठतम विशेषताओंके प्रतीकके रूपमें श्रीभाईजीका सम्मान करता हूँ। लेकिन वे मात्र भारतके ही नहीं, सम्पूर्ण मानवताके हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि उनके उपदेशोंको सद्भावनामें विश्वास रखनेवाले सभी लोग सुनें और पालन करें। उन्होंने अपना सर्वोत्तम अंशदान मानव-मुक्तिके लिये अर्पण किया।

मेरा विचार श्रीभाईजीकी पुस्तकोंको जर्मन भाषामें अनुवाद करके प्रकाशित करनेका है, परंतु मैं अच्छा अनुवाद नहीं कर पाता, इसलिये यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पायी है। श्रीभाईजीकी पुस्तकें जर्मन लोगोंके लिये भी बहुत लाभदायक होंगी। श्रीभाईजी–जैसे संतोंको जर्मन भाषा आनी चाहिये थी। मैं उन्हें भारतीय संस्कृतिका सबसे उत्तम संदेशवाहक समझता हूँ।

श्रीभाईजीकी पुस्तकोंको और अपने हाथसे मुझे लिखे गये उनके अनेक पत्रोंको मैं उन महान् आत्माकी व्यक्तिगत धरोहरके रूपमें सुरक्षित रखूँगा।

●

महान् संत

श्री रुडोल्फ स्वेस, लूजर्न (स्विट्ज़रलैंड)

महान् संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परलोकगमनका समाचार पाकर मुझे बहुत दुःख हुआ और अभी भी हो रहा है। श्रीपोद्दारजी सदा-सर्वदा मेरी स्मृतिमें बने रहेंगे और उनके साथ रहनेका जो सौभाग्य मुझे मिला था, वह मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। उनके साथ बिताये गये थोड़ेसे समयमें ही मैंने उनका स्नेह, उनका प्रेम, उनके विचार, बल्कि उनकी जीवन-पद्धतिका परिचय प्राप्त कर लिया था।

भारत जाते हुए जेरुशलममें मुझे कैमरान नामके एक भारतीय सज्जन मिले थे। उन्होंने ही मुझे गीताप्रेसका पता दिया था। अयोध्यासे चलकर मैं १७–३–६३ ई० रविवारको गोरखपुर पहुँचा। मुझे पूरा गीताप्रेस देखनेका सौभाग्य मिला। गीताप्रेस मुझे एक संग्रहालय-सा प्रतीत हुआ। मुझे आज भी संगमरमरके उन पत्थरोंकी स्मृति है, जिनपर पूरी गीता खुदी हुई है। संध्यासमय जब मैंने गीताप्रेसमें ही रात बितानेकी इच्छा प्रकट की, तब मुझे बताया गया कि मेरे ठहरनेकी व्यवस्था गीतावाटिकाके सामने स्थित श्रीभाईजीके अतिथि-गृहमें की गयी है।

उस आनन्ददायक बगीचे (गीतावाटिका)में जब मैं पहुँचा, तब अँधेरा फैलने लगा था। वहाँ बरामदेमें कुछ अन्य सम्मान्य व्यक्तियोंके साथ बैठे हुए श्रीपोद्दारजीका मैंने सर्वप्रथम दर्शन किया। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। रात्रि बिताकर जब मैं प्रातःकाल उन्हें प्रणाम करके चला, तब मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेरी कारमें खाने-पीनेका बहुत-सा सामान और ढेर सारे ताजे फल रखे हुए थे।

नेपालकी यात्रा पूरी करके मैं वापस गोरखपुर ८ नवम्बर १९६३को (सम्भवतः दुर्गा-नवमीके दिन) पहुँचा। वहाँ गीतावाटिकामें मेरा ऐसा स्वागत हुआ मानो कोई स्वजन परदेशसे लौटा हो। वहाँ मेरी भेंट बाबा श्रीचक्रधरजी महाराजसे भी हुई। श्रीपोद्दारजीके साथ मैं दुर्गानवमीकी पूजामें भी सम्मिलित हुआ। उस दिन भी मैं अतिथि-गृहमें ठहराया गया और दूसरे दिन पूरा दिन वहाँ बिताकर सायंकालकी ट्रेनसे मैं वहाँसे विदा हुआ।

मुझे आज भी श्रीपोद्दारजी और उनके परिवारका स्मरण बार-बार होता है, मैं प्रायः उनकी तथा उनके सहकर्मियोंकी प्रशंसा करता रहता हूँ। मुझे विश्वास है कि उनके विचार तथा उनके कार्य उनके सम्मानित मित्रों और सहकर्मियोंके द्वारा आगे भी विश्वमें फैलते रहेंगे।

●

पत्रकारों एवं सम्पादकोंके प्रेरणा-स्रोत

श्रीओमप्रकाश पण्डित 'पत्रकार'

आधुनिक भारतके हिंदी-साहित्यकी सेवाके लिये जीवन समर्पित करनेवालोंमें श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम अविस्मरणीय रहेगा।

आजसे लगभग ८ वर्ष पूर्व उनके दिल्ली-आगमनपर मुझे उनके दर्शन करनेका अवसर एक पत्रकार-सम्मेलनमें प्राप्त हुआ था। जब मैं वहाँ पहुँचा, तब मैं उन्हें पहचान नहीं सका; क्योंकि मेरी धारणा थी कि 'कल्याण'-जैसे बड़े पत्रका सम्पादक अच्छे तड़क-भड़कवाले कपड़ोंमें बैठा होगा। मैं अन्य पत्रकारोंसे कुछ पहले पहुँच गया था। वहींपर मेरे परिचित एक हिंदू-महासभाई नेता मिल गये। मुझे देखते ही उन्होंने मेरा परिचय श्रीपोद्दारजीसे करवाया। मैं उनकी सादी वेष-भूषाको देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

'अच्छा तो आप हिंदुस्थान समाचार-समितिके प्रतिनिधि हैं। समितिका कार्य तो सुचारुरूपसे चल रहा है?'——उनके इस प्रश्नका उत्तर यद्यपि मैंने दे दिया; फिर भी मनमें सोच रहा था कि मेरे मित्रने मेरा परिचय तो करवा दिया, किंतु प्रश्नकर्ताका नहीं। मैं चुप रहा। स्वयं पोद्दारजी मेरी भावनाको जान गये और बोल उठे——'मैं हनुमानप्रसाद पोद्दार हूँ।' आश्चर्यचकित मैं देखता रह गया। जिस मधुर वाणीमें उन्होंने आत्मीयताके साथ अपना परिचय दिया, उससे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ और मेरी आँखें सीधे उनके चरणोंमें चली गयीं। खादीकी धोती और कुर्ता——यह उनका पहनावा था।

मैंने कहा——"बाल्यावस्थासे ही मुझे 'कल्याण'को देखनेका अवसर मिला है। आपने 'कल्याण'के द्वारा हिंदू-संस्कृतिकी बड़ी सेवा की है।" मेरे शब्द सुनकर श्रीपोद्दारजी संकुचित-से हो गये और बोले——'मैंने धूलिके एक कणमात्रके बराबर हिंदू-संस्कृतिकी सेवा की है। इच्छा तो बहुत-कुछ है, परंतु स्वास्थ्य साथ नहीं देता।' मैंने कहा——'स्वास्थ्य इत्यादिकी चिन्ता परमेश्वरपर ही क्यों नहीं छोड़ देते? क्योंकि आप तो उन्हींका कार्य कर रहे हैं।' इतना कहना ही था कि वे काफी भावुक हो उठे। तुरंत बोले——'कल्याण'का सम्पादन मैं थोड़े ही करता हूँ। मेरी केवल अँगुली चलती है; परंतु मुझे स्वयं पता नहीं चलता कि वह कौन-सी छिपी शक्ति है, जो मेरी अँगुलियोंको कलमपर ढकेल देती है और उसके पश्चात् वह धारा-प्रवाह चलती रहती है। कभी-कभी तो मैं इस कार्यमें इतना लीन हो जाता हूँ कि मेरे सामने अगर कोई व्यक्ति खड़ा हो जाय तो मुझे उसका ध्यान ही नहीं रहता।'

श्रीपोद्दारजीने आगे कहा——'दुःखका विषय है कि हिंदीका इतना विशाल साहित्य देशमें विद्यमान है, किंतु देशके लोगोंकी रुचि इसके प्रति कम होती जा रही है। धार्मिक ग्रन्थोंको तो पढ़े-लिखे लोग स्थान ही नहीं देना चाहते। हम अपनी सामर्थ्य एवं शक्तिके अनुसार इसको आगे बढ़ानेका प्रयत्न कर रहे हैं।'

मुझे अनुभव हुआ कि पोद्दारजीके हृदयमें हिंदी भाषा तथा धर्म-शास्त्रोंके प्रति युवा पीढ़ीकी उपेक्षावृत्तिसे एक गहरी कसक है। वास्तवमें श्रीभाईजी हिंदी पत्रकारों एवं सम्पादकोंके लिये एक आदर्श प्रेरक थे। उन्होंने अपना सर्वस्व हिंदी और सनातनधर्मकी सेवाके लिये समर्पित कर दिया था।

●

भक्तवाञ्छा-कल्पतरु

श्रीराधेश्यामजी खेमका

परम श्रद्धास्पद श्रीभाईजी संत-परम्पराके एक रत्न थे। जिन लोगोंने श्रीभाईजीके सत्सङ्ग-का लाभ प्राप्त किया है, वे परम धन्य हैं।

पूज्य भाईजीको भगवत्कृपापर अटूट विश्वास था, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव वे स्वयं किया करते थे और अपने सम्पर्कमें आनेवालोंको भी कराते थे। कुछ वर्ष पूर्व वे काशी पधारे हुए थे। मैं भी उनके दर्शनार्थ गया। प्रभु-कृपाके सम्बन्धमें चर्चा चल रही थी। पूज्य भाईजीने कहा—'प्रभुकी कृपा तो सदा अहर्निश संसारके प्रत्येक प्राणीपर रहती ही है। हमें केवल उस कृपाके अनुभव करनेकी आवश्यकता है।' हमलोगोंने भगवत्कृपाकी चर्चा सुन ली। दूसरे ही दिन भाईजीके सांनिध्यमें भगवान्‌की कृपाका एक प्रत्यक्ष चमत्कार भी देखनेको मिला।

पूज्य भाईजीकी प्रेरणासे उनके एक बहुत पुराने प्रेमी श्रीआनन्दरामजी जालान काशीवासके निमित्त कुछ दिनोंसे काशीमें निवास कर रहे थे। उनकी यह दृढ़ इच्छा थी कि 'अन्तिम समयमें मुझे पूज्य भाईजीके दर्शन प्राप्त हो जायँ और उनके चरणोंमें ही मैं अपने प्राण-त्याग करूँ।' पर क्या यह भी किसीके वशकी बात है? वृद्धावस्था थी तथा कुछ समयसे वे अस्वस्थ चल रहे थे; किंतु अस्वस्थता सामान्य थी—कोई विशेष बात नहीं थी। भाईजी उनसे मिलनेके लिये उनके निवासस्थानपर गये और अत्यन्त प्रसन्न मुद्रामें जालानजीसे बातचीत की। श्रीजालानजीने अपनी आन्तरिक इच्छा श्रीभाईजीके सामने प्रकट की। भाईजी मुस्करा दिये। पर जिस रात्रिको भाईजी उनसे मिलने गये, उसी रात्रिको अचानक तीन बजे श्रीआनन्दरामजीकी स्थितिमें विशेष परिवर्तन हुआ। ऐसा लगा कि उनके लिये भगवान्‌के घरका बुलावा आ गया है। इसका अनुमान स्वयं श्रीआनन्दरामजीको भी होने लगा। उन्होंने कहा—'श्रीभाईजीको बुला लिया जाय।' भाईजीको तत्काल इसकी सूचना दी गयी। सूचना प्राप्त होनेके बाद पूज्य भाईजीको वहाँ पहुँचनेमें देर ही क्या हो सकती थी। उनके पहुँचते-पहुँचते ही श्रीआनन्दरामजीका पाञ्चभौतिक शरीर शान्त हो गया।

अप्रत्याशितरूपमें श्रीजालानजीकी अन्तिम मुराद पूरी हुई। मणिकर्णिका-घाटपर चिता लगायी गयी और उसपर श्रीआनन्दरामजीका पार्थिव शरीर रखा गया। ज्यों ही अग्नि-संस्कारका समय आया कि जिन ब्राह्मणदेवको उनके पुत्रोंकी अनुपस्थितिमें अन्त्येष्टि-संस्कारके लिये बुलाया गया था, उन्होंने अग्नि-संस्कार करनेसे इन्कार कर दिया। एक नयी समस्या खड़ी हो गयी। सभी लोग उन्हें समझाने लगे। इस प्रकार दस-पंद्रह मिनट उन्हें समझानेमें लग गये, पर वे तैयार नहीं हुए। उसी क्षण एक ईश्वरीय चमत्कार और दिखायी पड़ा। श्रीआनन्दरामजीका एक पुत्र—जो बिहारमें रहता था तथा जिसके आनेका न तो कोई समाचार था, न कोई आशा थी और न कोई कल्पना थी—उसी समय आकर चिताके समक्ष खड़ा हो गया। श्रीजालानजीका

दाह-संस्कार पुत्रके ही द्वारा होना था। यदि ब्राह्मणदेव उस क्षण अस्वीकार न करते और उन्हें समझाने-बुझानेमें दस-पंद्रह मिनटकी देर न होती तो पुत्रको यह अवसर कैसे प्राप्त होता। सभी लोग आश्चर्यचकित थे। समस्याका समाधान भगवान्ने किस रूपमें दिया, यह कोई समझ नहीं पा रहा था।

पूज्य भाईजीने गत दिवस इतना ही कहा था—'प्रभुकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव करो।' इस घटनाद्वारा सत्यका प्रत्यक्षीकरण हो गया। साथ ही यह ज्ञात हुआ कि संतके प्रति की गयी सच्ची अभिलाषा भगवान् पूर्ण करते हैं।

●

वे सदा जीवित रहेंगे

श्रीश्रीकृष्ण अग्रवाल

परमपूज्य श्रीभाईजीके सम्पर्कमें आनेका मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनसे मुझे जो प्राप्त हुआ है, वह वाणीमें व्यक्त होना सम्भव नहीं है।

बात संवत् २०१४की है। हमारी मिलके स्टाफके कुछ सदस्य मिलके गेटपर भूख-हड़ताल कर रहे थे। मुझे व्यवस्थाकी नयी-नयी जिम्मेवारी मिली थी। कुछ अनुभव भी नहीं था। मैं काफी घबरा भी गया था। अचानक मनमें आया कि पूज्य भाईजीसे फोनपर बात करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिये। स्टाफके जो सदस्य हड़तालपर थे, उनका पक्ष न्यायसंगत नहीं था। पूज्य भाईजी तो नवनीतके समान कोमल हृदयके थे। उनसे बात करनेमें यही झिझक थी कि वे यह न कह दें कि 'इस सारे मामलेको मिल-जुलकर शान्तिसे सलटा देना चाहिये।' फिर भी मैंने उनको टेलीफोन किया। वे उन दिनों रतनगढ़ थे। फाल्गुन कृष्ण ५ सं० २०१४की रातको करीब ८॥ बजे उनसे बात हुई। उन्होंने मुझे बहुत हिम्मत बँधायी तथा कहा—'घबराना नहीं, सब ठीक हो जायगा। यदि अपनी बात न्यायपूर्ण हो तो हड़ताल करनेवालोंके दबावमें न आकर खूब दृढ़तासे काम लेना; पर कभी किसीका अहित न सोचना, न करना।' मुझे ऐसा लगा कि स्वयं भगवान्ने ही मुझे सफल होनेका वर दे दिया। कुछ समयके बाद हड़ताल स्वयमेव समाप्त हो गयी तथा सबने हड़ताल करनेवालोंको ही दोषी ठहराया।

जीवनमें और भी कई ऐसे प्रसङ्ग आये हैं, जब पूज्य भाईजीके आशीर्वादसे मेरी कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ हल हो गयी हैं। पूज्य भाईजीको स्मरण करके भगवान्से जब कभी मैंने याचना की, कभी निराश नहीं हुआ।

पूज्य भाईजीने अपनी वाणी तथा आचरणद्वारा मानवकी आत्माको ऊँचा उठानेमें बहुत मदद की है। लाखों-लाखों व्यक्तियोंको आपके जीवनसे प्रेरणा मिली है तथा उन्होंने अपनी जीवन-धाराको आध्यात्मिकताकी ओर मोड़ा है। आनेवाली पीढ़ी कैसे विश्वास करेगी कि इस धरापर एक ऐसे महान् पुरुषका आविर्भाव हुआ था! समयके प्रवाहके साथ हम अपने बड़े-बड़े नेताओं, सम्राटों तथा मन्त्रियोंको, जिनके समाचारोंसे आजके समाचार-पत्र भरे रहते हैं, भूल जायेंगे; पर पूज्य भाईजी-जैसे महापुरुष तो मानवके अन्तरमें सदाके लिये जीवित रहेंगे।

●

सरलताकी मूर्त्ति

श्रीगोकुलदासजी डागा

बात सन् ५४की है। स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजके सांनिध्यमें गोहत्या-निरोध-आन्दोलन कलकत्तामें चल रहा था। समाचार मिला कि किसी कार्यवश पूज्य भाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दार कलकत्ता आये हुए हैं। स्थानीय नवयुवक कार्यकर्ताओंने उनके आगमनका लाभ उठाना चाहा और उक्त अवसरपर एक प्राइवेट मीटिंगका आयोजन किया।

दिनके ३ बजे मीटिंग प्रारम्भ होनेवाली थी। पूज्य भाईजीके अलावा कुछ विशिष्ट कार्यकर्त्ता-गण आमन्त्रित थे। प्रायः सभी आ गये थे, पर भाईजीका कोई पता नहीं था। ३ बज चुके थे। सभी लोग भाईजीके इंतजारमें थे। अन्तमें करीब ३॥ बजे एक सज्जन बोल उठे—'भाईजी न मालूम आयें न आयें, मीटिंग चालू कर देनी चाहिये।' इतनेमें कमरेके द्वारके पास ही बैठा सीधा-सादा लिबास पहने एक वृद्ध व्यक्ति बोल उठा—'मैं तो आ गया हूँ।'

सुनते ही हम सब अवाक् रह गये। हममेंसे कोई भी व्यक्ति पूज्य भाईजीको चेहरेसे नहीं पहचानता था। अतः उस सीधे-सादे व्यक्तिको द्वारके पास बैठा हुआ देखकर हमलोगोंने न तो कोई आपत्ति की और न ज्यादा परिचय लेनेकी आवश्यकता समझी।

पर जब मालूम हुआ—ये ही हैं पूज्य भाईजी, तब हम सभी बड़े शर्मिंदा हुए और आदरपूर्वक उन्हें उनके लिये निश्चित स्थानपर बैठाया।

●

वे सबके अपने थे

वे सबके अपने थे—सबके बाबूजी-भाईजी-नानाजी थे, सबके प्राणोंके स्पन्दन थे। गीता-वाटिकाके प्राण थे। आज उनके अभावमें गीतावाटिकाका पत्ता-पत्ता, कण-कण उनके लिये क्रन्दन कर रहा है। उनके अभावकी पूर्ति संसारमें हम लोगोंके लिये तो कोई भी करनेवाला नहीं है। वे चलते-फिरते भागवतशास्त्र थे। अष्टादश पुराणों, सारी श्रुतियों एवं उपनिषदोंका सार उनके अन्दर मूर्त था। वे वाणीसे अमृत उँड़ेलते रहते थे। जिसकी ओर एक बार देख लेते, उसे ऐसा लगता मानो कौन-सी निधि मिल गयी। वह सदाके लिये निहाल हो जाता था। ऐसा था उनका प्यार।

बस, संसारके कण-कणमें ये आँखें उन्हें देखनेकी सतत चेष्टा करती रहें। उनकी पावन स्मृति ही हमलोगोंके लिये अब परम धर्म है। उनकी पावन स्मृतिमें ही सुखानुभूति होती है। बाकी सब ओर निराशा-ही-निराशा है। कहीं कोई अपना नहीं दीखता; जो अपने थे, वे चले गये। अब उस रूपमें वे हमारे साथ नहीं हैं। यों तो वे नित्य ही हमलोगोंके साथ हैं।

—सावित्री बाई सेकसरिया

●

श्रद्धाञ्जलि

देश और संस्कृतिके थे तुम चिर-विश्वासी ।
राधा-माधव-भक्ति खिंची मनमें रेखा-सी ।।
'रामचरितमानस' नित मानसमें लहराया ।
गीताका संदेश कोटि कण्ठोंसे गाया ।।
तुम तो लीला-लीन अब नित्य हो गये 'रास'में ।
भाईजी ! श्रद्धा तुम्हें अर्पित है हर साँसमें ।।

——डॉ० रामकुमार वर्मा

•

स्नेहमूर्ति

श्रीमती शारदादेवी त्रिवेदी

क्या कहूँ उन महापुरुषके लिये, उन देवपुरुषके लिये । उन-जैसे तो वे ही थे। कहाँ हैं उनकी उपमा ?

पिछले बाईस वर्षोंसे मुझे उनके अति निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य मिला था । सदा मुस्कराती उनकी मुखमुद्रा । समस्त संसारके प्रति करुणा सँजोये हुए उनके वे नेत्र प्रत्येक प्राणीके प्रति सदा स्नेह ही बरसाते रहे । सचमुच श्रीभाईजी प्रेम, विनम्रता एवं सहिष्णुताकी मूर्ति थे । उन महामहिमके लिये संसारका प्रत्येक विधान, प्रत्येक स्पन्दन, उनके प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णका प्रत्यक्ष रूप ही बन गया था । उनमें एक असाधारण भगवदीय दीप्ति थी । जो भी उनके सम्पर्कमें आता, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता ।

बात सन् १९६४की है——मेरी माँ बहुत अस्वस्थ थीं। दिल्लीके एक बड़े अस्पतालमें उनका ऑपरेशन होनेको था । पूज्य श्रीभाईजी भी अस्पतालमें उपस्थित थे । माँका ऑपरेशन लगभग दो-तीन घंटेतक चलता रहा । पूज्य भाईजी अपनी समस्त भगवत्ता अपने ही भीतर समेटे हुए साधारण पुरुषकी तरह ऑपरेशन रूमके बाहर बेंचपर चिन्तित-से बैठे थे——जैसे आज उनका जाने कितना प्रिय सुहृद् अस्वस्थ हो । वे कैसे चिन्तित न होते, सम्पूर्ण संसार तो उनका अपना ही था, प्रत्येककी पीड़ा उनकी अपनी पीड़ा थी । ऑपरेशन प्रारम्भ होनेपर वे हम सब लोगोंसे बोले——'हरिः शरणम्' मन्त्रका मनमें जप करो और स्वयं भी बराबर जप करते रहे । उनके अधर मन्त्र-जपसे बराबर स्फुरित हो रहे थे । ऐसी थी उनकी ईश्वर-निष्ठा एवं प्रत्येक प्राणीके कष्ट-निवारणके लिये आतुरता !

कहीं मान नहीं, कहीं बड़प्पन नहीं, सम्मानकी भावना उन्हें छूतक नहीं गयी थी । न वेष-भूषासे उनकी महानताका आभास होता था, न उनकी सरल मुखमुद्रासे और न उनके व्यवहारसे ही । सबको सदा यही अनुभूति होती थी कि 'वे तो मेरे ही हैं, बिल्कुल मेरे अपने हैं ।' मुझे ही नहीं, उनके सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक प्राणीको ऐसी ही अनुभूति होती थी और जीवनपर उनकी एक अमिट छाप अङ्कित हो जाती थी । आज हमारे प्राण बिलख-बिलखकर रो रहे हैं, पर कहाँ मिलेगा उनके जैसे स्नेहामृतका एक भी कण !

•

स्नेह-स्रोत सूख गया !

जीवनके उषाकालमें ही, जब कि मनुष्यका व्यक्तित्व किसी अदृष्ट गन्तव्यकी ओर उन्मुख रहता है, मुझे उनके अत्यन्त निकट आनेका, रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। बचपनके सरल और कोरे कागज-जैसे मनपर पूज्य बाबूजीकी स्नेहमयी छवि सहज अङ्कित हो गयी--उनके प्रति अपनेपनका भाव अनायास प्रगाढ़तम होता गया और बाबूजीने भी वैसा ही स्नेह सदा दिया। हँसने-खेलनेके दिनोंमें ही पितृ-वियोगका क्रूर आघात लगा--परंतु बाबूजीको पानेके बाद उनके स्नेह-पयोनिधिमें डूबनेपर इस महान् दुःखका भी विशेष भान नहीं हुआ।

समय बीतता गया और उनकी स्नेहमयी छत्रछायाके नीचे रहकर मैं बढ़ने लगा। न जाने कौन-सा सम्मोहन था उनमें, जिससे खिंचा रहनेके कारण कई बार बाहर जानेकी बात सोचनेपर भी, कई बार इधर-उधर जानेपर भी उनकी संनिधिमें ही रहनेका सुयोग बनता रहा और बाबूजीका अद्भुत स्नेह ही मुझे निरन्तर मिलता रहा।

आश्चर्य होता है कि किसीको इतना स्नेह कोई दे ही कैसे सकता है। परंतु बाबूजी तो स्नेहके अगाध सागर थे और उस प्रेम-वारिधिके चरणोंमें सिर रख देनेके लिये हृदय आकुल रहता था।

स्नेहदानकी उनकी यह अपूर्व पद्धति मेरे लिये विलक्षण थी। आज दुर्भाग्यवश उनके पार्थिव कलेवरके अन्तरालसे अभिव्यक्त स्नेहस्रोत सूख चुका है; तथापि मैं अनुभव करता हूँ कि उनका स्नेह सतत मेरे साथ है, भविष्यमें भी अवश्य रहेगा और यही मेरी निधि है--यही मेरा सम्बल है।

--**राधेश्याम पालड़ीवाल**

●

हे वाटिकाके चाँद ! तेरा अनजाना परिचय !! तेरा अनगाया गीत !!!

श्रीराधेश्याम बंका

यदि अपना परिचय देनेकी चाह स्वयं तुझमें न हो तो कौन तुझे समझ सकेगा, किसमें सामर्थ्य है, जो तुझे जान सके। तुम्हारे स्वरूपको तभी दूसरा जान सकेगा, तुम्हारा स्वरूप तभी दूसरेकी पहुँचके अंदर आ सकेगा, जब तुम स्वतः स्वयंका परिचय दो। सब कुछ तुम्हारे ऊपर है। चकोर-चकोरी चाँदको तभी देख पाते हैं, जब चाँद स्वयंको दिखा देना चाहे। चाँद चाहे अपनी केवल एक कला ही दिखाये या केवल दो कलाएँ दिखाये अथवा सम्पूर्ण कलाएँ दिखाये, चकोर-चकोरी उतना ही देख पाते हैं, जितना चाँद दिखाना चाहता है; और सोलहों कलाओंसे उदित होकर भी यदि चाँद अपने ऊपर मेघका आवरण डाल ले तो क्या चकोर-चकोरी उसे देख सकेंगे ? इसी प्रकार हे चन्द्र-प्रभामय ! यह सब कुछ तुम्हारी चाहपर निर्भर है। स्वयंको न दिखाओ, न जनाओ, थोड़ा जनाओ, ज्यादा जनाओ, पूर्णतः जनाओ या पूर्णतः प्रकट होकर भी आवरण डाल लो, रह-रहकर छिप जाओ--यह सभी कुछ तुमपर निर्भर है। कृपामय ! यह सब तुम्हारी चाह और कृपाके आश्रित है। तुम्हारी चाह जब होगी, तभी तुम्हारे चकोर-चकोरी तुम्हें देख पायेंगे; जितने अंशमें दिखानेकी चाह होगी, उतने ही अंशका दर्शन सम्भव होगा। सुहृद् ! अपने इस निज-जनकी मनोकामनाको पूर्ण करनेकी चाह तुममें कभी उदित होगी क्या ?

× × ×

सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

तुमने स्वयंको कितना छिपाया, कितना चुराया, कितना दुराया; पर आवरण रह न सका। तेरी अनजानी बातोंको तेरे अधरोंके हास्यने, तेरे नयनोंके लास्यने अनजाना नहीं रहने दिया। शशिके सुनहले विलासने और रूपहले प्रकाशने शशिको अनावृत कर ही दिया। मेघोंकी गलियोंमें चाँद छिपता रहा, लुकता रहा; पर कबतक ? अब तो बात चुपचाप फैल चुकी; तभी तो सभी तेरा गीत गा रहे हैं ?

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

कोयलकी कूकने तेरी कहानी बेलाके फूलसे कही, पर कही किस प्रकार ? कहीं डरते-डरते कि कोई सुन न ले—कहीं आधी रातके समय, कहीं वनके सुनसान एकान्त प्रान्तमें। पर बेलाका फूल सिहर उठा, खिल उठा। और देखो न ! आत्मविभोर बेलासे अनजाने ही तेरी गाथाकी गन्ध बिखर रही है, जिसे तनमें लपेटती जा रही है वायु, और अब शिष्टांशको समेटती जा रही है दूर्वादलावली। पवन कानों-कान कुछ कह जाता है और सुन लेती हैं लताएँ। लताएँ झूम-झूमकर कुछ गुनगुना रही हैं और वृक्षोंकी डालियाँ झुक-झुककर सुन रही हैं।

आज प्रकृतिके प्राङ्गणमें तेरा गीत गुनगुनाया जा रहा है।

अरे, यह क्या ? आम्र-वृक्षोंकी पत्रावलियोंका समूह भी तेरी ही चर्चा कर रहा है। लताएँ फूलती जा रही हैं और तेरी चर्चा फैलती जा रही है। लताओंके कुसुम निखरते जा रहे हैं और तेरा अनजाना सौरभ अनजाने बिखरता जा रहा है। प्रकृतिका प्रत्येक दल, प्रत्येक पल तेरा ही गीत गा रहा है। प्रत्येक स्पन्दनमें तेरी ध्वनि है। तेरा अनजाना परिचय आज सभीने जान लिया। तेरा अनगाया गीत आज सभीके कण्ठोंमें गूँज रहा है।

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

●

'भाया राजी है ना' ?

'भाया, राजी है ना, घरमेंसे राजी है ना'—कमरेमें प्रवेश करते ही, सारे कार्योंसे विरत होकर, स्नेह-सिक्त नयनोंसे अनजाने ही, अनचाहे ही, पता नहीं क्या-कितना देकर विभोर कर देते थे बाबूजी। घरके प्रत्येक व्यक्तिका नाम लेकर कुशल पूछते थे और काम करते-करते बीच-बीचमें धीरेसे यों देख लेते थे—मानो कह रहे हों—चिन्तित क्यों हो, मैं जो हूँ। और सचमुच-सचमुच उस क्षण चिन्ताकी छायाका लवलेश भी नहीं रहता था। उनके वरद हस्तका स्पर्श होते ही समस्त मानस-परिताप विगलित होकर बह जाते थे और कर्ण-पुटोंमें उनका मधुसिक्त स्वर जाते ही क्या हो जाता था—इसकी व्याख्या वाणी नहीं कर सकेगी। वह तो अनुभव ही किया जा सकता था—गूँगेके गुड़की भाँति। हम सभी उस स्नेह-सागरमें डूबे हुए, इतराते हुए, जैसे मनमें आता, करते थे। मनमें एक अहंकार लेकर, अभिमान लेकर, अनुभूति लेकर कि यह स्नेह-सिन्धु हम सभीका है, प्रत्येकका अपना है, केवल हमारा है।

परंतु नियतिका क्रूर हास्य ! विधाताको हमारा यह अहंकार अखर गया; दैवके मनमें

हमारे इस अनूठे सौभाग्यसे ईर्ष्या हो गयी और हम सब लुट गये। हमारे अपने––हमारे सर्वस्व बाबूजी कालके कराल कुचक्रके अन्तर्गत हमसे छीन लिये गये। हमारा सुहाग लुट गया। वही गीतावाटिका है, वही कोठी है, वही कमरा है; पर सब सूना है––एक विधवाकी माँगकी तरह।

बाबूजी, हम सभी व्यथित हैं। जिनके चेहरेपर विषादकी छाया देखकर भी आप अपना समग्र अध्यात्म ताकपर रखकर एक साधारण मनुष्यकी तरह हमलोगोंके कुशल-क्षेमके लिये चिन्तित हो जाते थे, पास बुलाकर सान्त्वना देते थे, सहलाते थे, दुलराते थे––जबतक हमारा मन सामान्य नहीं हो जाता था, आज उन सभीका हृदय क्रन्दन कर रहा है; पर आप अपने मधुवर्षी नयनोंको निमीलित किये निस्पन्द क्यों हैं? एक बार, सिर्फ एक बार तो पुनः उसी भाँति दुलरा लीजिये। गोदीमें सिर रखवाकर प्यारसे सहला दीजिए। गलत-सही––जब जैसे जो चाहा, आपने दिया और हम सभी उस अनोखे प्यारके उन्मादमें सब कुछ बिसरा बैठे, अवहेलना कर बैठे आपके आदेशोंकी; और शायद इसीलिये आप हम सबसे रूठ गये हैं।

यों न रूठो, बाबूजी! आखिर तो हम नादान आपके हैं––केवल आपके। बस, एक बार तो कह दीजिये––'क्यूँ भाया राजी है ना'। अपना वरद हस्त रखकर एक बार, सिर्फ एक बार..........

––दाऊलाल कोठारी

●

पावन-स्मरण

लगता है पल-पलमें ऐसा, तुम चल करके आओगे।
स्नेह-दानके द्वारा अनुपम, देव, हमें अपनाओगे॥
जब आती है याद तुम्हारी, मन रोकर रह जाता है।
हम हैं स्मरण तुम्हारा करते, हृदय सरस हो जाता है॥

जड़-चेतनमें व्याप्त रहे हो, नित्य तुम्हारी है सत्ता।
बिना तुम्हारे इङ्गितके हिल सकता नहीं एक पत्ता॥
हरि-लीलामें नित्य-लीन तुमसे जग जीवन पाता है।
हम हैं स्मरण तुम्हारा करते, हृदय सरस हो जाता है॥

स्नेहासीस हमें दो अपनी, यह सौभाग्य हमारा है।
सत्पथपर वरदान तुम्हारा, जीवनका ध्रुवतारा है॥
प्रेमदान करते रहते हो, प्रेम हमारा नाता है।
हम हैं स्मरण तुम्हारा करते, हृदय सरस हो जाता है॥

––जगदीशप्रसाद शर्मा

●

उन्हींका पाला-पोसा

क्या लिखूँ--आजसे ४० वर्ष पूर्व मैं एकदम अनाथावस्थामें बाबूजीके पास आया था। पिताकी मृत्यु मेरे बचपनमें ही हो गयी थी। चाचाची (दुजारीजी)ने पढ़ाया और वे ही मुझे भाईजीके सम्पर्कमें लाये। गीताप्रेसमें काम करता था--भाईजीकी सेवाका पूरा मौका मुझे मिलता था। उन्होंने भी अपना पूरा स्नेह मुझे दिया। अपने परिवारके सदस्यकी भाँति ही वे मुझे समझते थे। मेरा उनसे सम्बन्ध क्या था, कह नहीं सकता; क्योंकि वे ही मेरे सब कुछ थे। बाबूजी हमेशा 'भैया' कहकर पुकारते थे। इन दो अक्षरके सम्बोधनमें इतना प्यार भरा रहता था कि सुनकर मन एकदम गद्गद हो उठता था। मैं भी उनका आश्रय एवं प्यार पाकर अपने सभी दुःखोंको भूल गया था। मैं खुद तो क्या, मेरे बच्चे भी उन्हींकी छत्रछायामें पले हैं। मेरी तो सामर्थ्य ही क्या थी; उन्हींकी कृपासे आज सभी बच्चे योग्य हो गये हैं। उनके रहते मैंने किसी कामकी चिन्ता नहीं की। उन्हींकी कृपासे सभी कार्य सानन्द सम्पन्न होते आये हैं। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे ऐसा आश्रयदाता मिला। बहुत विश्वास था उनका मुझपर।

लगभग दस वर्ष पूर्व मेरे सिरपर काफी जोरकी चोट लगी थी। बचनेकी कोई आशा न थी। सभी आशा छोड़ चुके थे, पर शायद कुछ दिन उनकी सेवा करनेका सौभाग्य और प्राप्त होना था और बाबूजीको भी मेरा अभाव सह्य न था। इसीलिये उन्होंने मुझे जीवनदान दिया। इससे बढ़कर और क्या कृपा हो सकती है? यहाँतक कि जीवनके अन्तिम दिनोंमें--जबकि उनकी हालत काफी खराब थी, तब भी--उन्होंने मुझे याद किया।

क्या कहूँ, मैं तो उन्हींका पाला-पोसा हूँ। एकदम अनाथ आया था--उन्हींके चरणोंमें पला, उन्हींके सामने गार्हस्थ्य-जीवनमें प्रवेश किया और अब यही इच्छा है कि जीवनके कुछ दिन--जो बच गये हैं, उन्हींकी स्मृतिमें बीत जायँ।

—दुलीचन्द दुजारी

●

यही हमारा सौभाग्य है

क्या समुद्रको सीपसे उलीचा जा सकता है? क्या एक चींटी एक विशाल पर्वतको नाप सकती है? समुद्रकी गहराईकी क्या कोई थाह है?

बाबूजीका चरित अपार है। यह ग्रन्थ क्या, उनके कार्योंपर ऐसे कई ग्रन्थ तैयार हो जायँ तो भी उनकी महिमाका पूरा वर्णन नहीं हो सकता। पर उनका यत्किंचित् पावन-स्मरणकर हम अपने आपको पवित्र कर लें--यही हमारा सौभाग्य है।

—हरिकृष्ण दुजारी

●

अनुपम आकर्षक स्नेह-प्रतिमा

परमश्रद्धेय पूज्यचरण श्रीभाईजीका सर्वप्रथम दर्शन मुझे ८-९ वर्षकी अवस्थाम अपने गाँव लोसल (राजस्थान)में हुआ । मेरे पूज्य पिताजी वैकुण्ठवासी श्रीरामकिशनजी कावराके प्रेमाग्रह-के फलस्वरूप वे जसीडीहमें भगवद्दर्शन होनेके पश्चात् सत्सङ्ग-प्रचारके हेतु परमपूज्य श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ वहाँ पधारे थे। उस समय उन दोनों महान् विभूतियोंका पावन दर्शन करके एवं पूज्य श्रीभाईजीकी 'परम मधुर युगल नाम—राधाकृष्ण सीताराम'की कीर्तन-ध्वनि सुनकर मेरा मन अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया और मुझपर उनके भक्ति-भावकी अमिट छाप पड़ गयी। पूज्य पिताजी प्रारम्भसे ही 'कल्याण' मँगाया करते थे; अतः उसमें दिये हुए सुन्दर, मनोहर चित्रोंको और भक्त-चरित्रोंको देख-पढ़कर तो वह छाप और अधिक गहरी हो गयी। 'कल्याण'के प्रति मेरा आकर्षण इतना बढ़ा कि मैं उसके लेखों और चित्रोंकी प्रतिलिपि करके उनका एक 'कल्याण'-जैसा ही अङ्क बना लेता और उसे ही बारंबार पढ़कर मुग्ध होता रहता था।

कुछ वर्षों बाद काशी आनेपर एक बार आग्रह करके पूज्य पिताजीके साथ गोरखपुर गया। वहाँ श्रीभाईजीके दर्शन एवं सत्सङ्गसे मैं और भी अधिक प्रभावित हुआ। बादमें मैं चूरू (राजस्थान)के ऋषिकुलमें पढ़ने लगा। वहाँ श्रीभाईजीका कभी-कभी आगमन होता था, उनके वहाँ भक्तिरसपूर्ण प्रवचनोंको सुनकर मेरा मन उनकी ओर इतना आकृष्ट हो गया कि उनके निबन्ध-ग्रन्थ 'तुलसीदल' और 'नैवेद्य'को ही बारंबार पढ़ता रहता। मैं उनके ग्रन्थोंके आशीर्वादसे ही कुछ सीख पाया हूँ। श्रीभगवान्‌की कृपासे मुझे भाईजी-जैसे भगवत्प्राप्त महापुरुषका सम्पर्क प्राप्त हो गया।

वहाँसे पढ़कर आनेपर मेरी इच्छा गीताप्रेसमें ही कार्य करनेकी प्रबल हो गयी और मैं कुछ दिन गीतावाटिकामें, 'कल्याण'-सम्पादकीय विभागमें काम सीखने लगा। उस समय पूज्य श्रीभाईजीका विलक्षण भगवत्प्रेममय स्वरूप एवं उनकी अद्भुत प्रतिभासम्पन्नता, कार्य-पटुता, सम्पादन-कौशल और सबके प्रति क्षमापूर्ण निश्छल प्रेम-व्यवहार आदि वैशिष्ट्य लोकोत्तर रूपमें दृष्टिगोचर हुआ, जो मनपर एक सरस प्रभाव जमाये हुए है। मुझसे बहुत बड़ी-बड़ी गलतियाँ होती रहतीं, किंतु वे ऐसे विशाल हृदयके थे कि उनको अपनेमें ही लीन कर लेते थे।

परमपूज्य श्रीसेठजीकी एवं श्रीभाईजीकी मेरे प्रति जो आत्मीयता और स्नेह था, उसको शब्दोंमें व्यक्त करना सम्भव नहीं है। वे दोनों ही मुझे पुत्रवत् प्यार करते थे। वे दोनों ही महामानव चले गये ! अब तो उनकी अनुपम मूक-आशीर्वादमयी और स्नेहभरी मुख-मुद्राकी पावन स्मृति ही परम कल्याणप्रद सम्बल रह गयी है।

—वासुदेव काबरा

मेरे बाबूजी !

क्या लिखूँ ? क्या कहूँ ? मैं मामूली पढ़ा-लिखा हूँ; दूसरे, लिखनेकी तो बात ही क्या, उनकी स्मृति आते ही आँखें डबडबाने लगती हैं, बुद्धि कुण्ठित हो जाती है और प्राण रो उठते हैं। लगता है--रहा ही क्या है मेरे पास, जिसे दूँ--मेरा तो सर्वस्व लुट चुका है; अब क्या कहना और क्या सुनना.........

अल्हड़ बचपनको पारकर यौवनकी देहलीमें कदम रखनेके पूर्व ही सेहरा बाँधकर जब मैंने रतनगढ़की हवेलीमें प्रवेश किया.........शुभ्र खादीकी धोती और कुरतेके सादे परिधानमें बाबूजीका रूप मुझे चुम्बककी भाँति अपनी ओर आकर्षित करने लगा................ मन-प्राणोंपर एक विचित्र सम्मोहन-सा छा गया। अनजाने ही अपना सब कुछ समर्पण कर डालनेकी भावना बलवती हो उठी.........और एक अनिर्वचनीय आनन्दसे हृदय भर उठा। स्नेह किसे कहते हैं--जीवनमें प्रथम बार मैं अनुभव कर पाया.........बिदाके समय अपनी लाड़िली बेटीको कण्ठसे लगाये झर-झर झरते नयनोंने दूसरी अमिट छाप डाल दी और मैं सर्वथा अवश हो उठा.......स्नेहके पयोनिधिमें ऐसा डूब गया कि लाख हाथ-पैर मारनेपर भी उससे बाहर आना मेरे वशकी चीज नहीं रही। लाल रोलीका टीका लगाकर अपने वरद हस्तमें शुभ्र अक्षत लेकर जब अपनी हथेली बाबूजीने मेरे मस्तकपर रखी.........मैं यन्त्रवत् उनके चरणोंमें झुक पड़ा..........और उनके अनुपम स्नेहकी शीतल छत्रछायाने मुझे पूर्णरूपसे आच्छादित कर लिया........उस क्षणसे लेकर आजतक बाबूजीने मुझे जो स्नेह दिया है--किन शब्दोंमें उसका वर्णन करूँ मैं ? बाबूजीके रूपमें मुझे क्या मिला ?--किसे बताऊँ ? पर आज वे ही बाबूजी मुझे छोड़कर चले गये........और इस सांघातिक पीड़ाको भी मेरा पाषाण-हृदय सहन कर गया....इससे अधिक स्नेहहीनताका प्रमाण मैं दे ही क्या सकता हूँ !

मेरे संरक्षक, मुझे सलाह देनेवाले, मुझे स्नेह देनेवाले......मेरे सर्वस्व थे मेरे बाबूजी ! अपनी प्रत्येक बात मैं उनसे कहकर ऊहापोहरहित हो जाता। उनके सामने मैं अबोध शिशुकी भाँति था--उत्तरदायित्वका भार था उन कंधोंपर, जो सर्वसमर्थ थे। अब बाबूजी सम्पूर्ण उत्तर-दायित्वका वह भार मुझ अनुभवहीनपर डालकर चले गये--कैसे निभा पाऊँगा इसे मैं ? मेरी पूजनीया माँजी, बाबूजीकी लाड़िली बेटी और बाबूजीके अनुपम वात्सल्यमें आपाद-मस्तक डूबे उनके बच्चे--बाबूजी उनकी सँभाल मुझे दे गये हैं। मैं तो सबकी ओरसे सर्वथा निश्चिन्त था--और उनको भी बाबूजी-सा कल्पवृक्ष सहज प्राप्त था--अब कैसे सँभालूँगा इन्हें मैं ? बाबूजीके स्नेह-रससे सिञ्चित रहकर ही मैं तो स्वयं भी चल रहा था--आज उनकी अनुपस्थितिमें मैं तो स्वयं ही अनाथ हो चुका हूँ। मैं तो स्वयं ही अँगुली पकड़कर चलता था--और मेरा वही सहारा मुझसे छिन गया...............

बाबूजी छोड़कर चले गये.....जीवनके सम्पूर्ण सुख-स्वप्न टूट गये। अब तो स्नेह-हीनता का निविड अन्धकार मुझे चारों ओरसे घेरे हुए है--रास्ता नहीं दीख रहा है। व्यथासे मन-प्राण फट जाना चाहते हैं, और एकाकी मैं पद-पदपर ठोकर खाता चल रहा हूँ !

--परमेश्वरप्रसाद फोगला

बिछुरे पितु कें जग सूनौ भयौ

व्यथासे फटते प्राणोंकी लेखनीको हृदयके हाहाकारकी कृष्ण मसिमें डुबोकर जो दो शब्द लिखनेका प्रयास करती हूँ, अनायास दर-दर बहती अश्रुकी प्रवाहिणी उसे भी धो दे रही है। पर........आज........आज कौन पोंछेगा इन आँसुओंको ....अब मैं अनाथ जो हो चुकी हूँ। मेरे सुखके लिये सतत प्रयत्नशील रहनेवाले, मेरे इस लहलहाते हँसते उपवनको स्नेह-सुधासे सींचनेवाले, इसकी रक्षा करनेवाले मेरे बाबूजी तो मुझे छोड़कर चले गये........अब मेरे पास रहा ही क्या ? उनकी उपस्थितिमें राज-पुत्री-सी रहनेवाली मैं आज तो सर्वथा भाग्यहीना हूँ। मेरे पास तो निधि वे थे.....वल उनका था......और वह अनमोल निधि ही मुझसे छिन गयी।

बाबूजी चले गये.........मुझे छोड़कर मेरे बाबूजी चले गये। वे बाबूजी, जो मुझे कभी उदासतक नहीं देखना चाहते थे........आज जब वे ही मुझे फूट-फूटकर रोते देखकर भी मुझपर सदय नहीं होते, कण्ठसे लगाकर नहीं पुचकारते........अपना अमोघ वरद हस्त मेरे सिरपर नहीं रखते........तब रोऊँ भी किसके सामने........मेरी रुचिका आदर करने-वाले, मेरी सुननेवाले तो थे मेरे बाबूजी......अब तो यह अरण्य-रोदन ही है।

जगत्‌में आँख खोलनेके क्षणसे लेकर अबतक मैं अपने बाबूजीके स्नेहके ऐसे चक्रव्यूहमें रही, जहाँसे बाहर मैं निकल ही न सकी.........इस दुःखालयके स्वरूपको मैं ठीक-ठीक समझ ही न सकी.........इस परिधिमें निश्चिन्तता मेरी सहचरी थी और मैं इठलाती फिरती थी। उनका निरुपम स्नेह सर्वाङ्गपूर्ण था। मुझे अन्य किसीकी आवश्यकता ही नहीं थी। पर हाय रे, आज मेरा वह चक्रव्यूह टूट गया है........मेरा रक्षा-कवच लुट गया है.......मेरी चिरसखी निश्चिन्तता मुझ अभागिनका साथ छोड़कर भाग चुकी है...........अवश्य ही व्यथा और आँसू आजीवन मेरा साथ निभानेको दृढ़प्रतिज्ञ हो गये हैं।

बाबूजीके अनुपम अनाविल विशुद्ध स्नेहके स्थानपर आज मेरे पास हैं आँसू और टीस.........जो मेरे मन-प्राणको मथे डालते हैं........मेरा सर्वस्व लुट गया। जिनके प्राणोंसे मैं अनुप्राणित हुई.......जिनकी स्नेहमयी छत्रछायामें मैं अबतक फली-फूली, उनके निस्पन्द हो जानेपर भी मैं निष्प्राण न हो सकी.........मेरे निर्लज्ज प्राण इस शरीरका परि-त्याग न कर सके। मेरा वज्रनिर्मित हृदय नहीं फट सका। मैं प्रस्तर-प्रतिमा-सी देखती रही और बाबूजी मुझे छोड़कर चले गये।

बाबूजी,

आप-सा पिता और मेरी स्नेहमयी जननी-सी माँ..........इन्हें प्राप्तकर मैं धन्य हो उठी थी। परंतु उस स्नेहशीला जननीके स्नेहपूर्ण नयनोंसे भी बह रही है आँसुओंकी धारा........ उसका गरिमामण्डित मुख म्लान हो रहा है—पर आज मेरी राजरानी माँकी अन्तर्व्यथाको कौन समझे ? उसके जीवनमें सुखकी सरिता प्रवाहित करनेवाले तो थे आप और केवल आप..... आज वह किसे कहे ? बाबूजी, मेरी माँको छोड़कर आप क्यों चले गये.........?

बाबूजी,

किसके सहारे अपनी लाड़ली बेटीको छोड़कर आप चले गये ? इतना लाड़ लड़ाकर, अब रोनेके लिये मुझे आपने क्यों छोड़ दिया ? अब किसकी गोदमें मुँह छिपाकर अपना सब दुःख भुलाऊँ मैं ?

बाबूजी,

जीवनमें मैं तो कभी अभावकी कल्पना ही नहीं कर सकी।......आपमें मुझे तो सब-कुछ मिल जाता था। पर आज........आज आपकी राजकुमारी बेटी सर्वथा अभागिन दीना है। सब कुछ खो चुका है उसका।

बाबूजी,

राखीका त्यौहार आता..........मुझे स्वप्नमें भी कभी कल्पनातक नहीं होती........ मैं किसके राखी बाँधूँ। आपकी वरद भुजापर कच्चा धागा लपेटकर जब आपके चरणोंमें मैं सिर रख आपका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करती.....तो गर्वसे मैं फूल जाती.........मेरे तो ऐसे बाबूजी हैं...........मुझे अन्य किसीकी क्या आवश्यकता.............पर आज मैं किसके पास जाऊँ ? आपके बिना यह प्रसङ्ग मेरे जीवनसे उठ गया। भातके समय अपने स्नेहके तानों-बानोंमें बुनी हुई सुरंग चुनरी जब आप मेरे सिरपर रखते और श्रीराधामाधवकी नित्य क्रीड़ा-स्थली अपने समर्थ पिताके हृद्देशको चुनरीसे मैं नापती.....मनुष्योंकी कौन कहे....देवता भी उस क्षण मेरे भाग्यसे ईर्ष्या करने लगते। मैं कृतकृत्य हो उठती........मुझे मेरा मनचाहा मिल जाता, पर आज मुझ-सी अभागिन दूसरी कौन है........अब तो यह आयोजन ही मेरे जीवनसे सदा-सर्वदाके लिये लुप्त हो चुका है।

बाबूजी,

जीवनमें ऐसा कोई प्रसङ्ग नहीं........जहाँ आप मेरे सुख-संयोजनके लिये आतुर न रहे हों।.........पर अब मेरा अपना कौन है ? ऐसा समर्थ दूसरा है ही कौन ? किसे सँभलाकर आप चले गये।

बाबूजी,

आपने संसार बसाया था मेरे लिये, इसे सींचा था मेरे लिये.....और आप ही उसे उजाड़कर चले गये।.....मुझे अनाथ बनाकर इस अकरुण जगत्‌में अकेली छोड़कर चले गये।.....

बाबूजी,

मेरा तो सब कुछ लुट गया.....अवश्य ही मेरे निर्लज्ज प्राण शरीरका मोह नहीं त्याग सके........।

बाबूजी,

आपकी संनिधि ही मेरे जीवनका सर्वोपरि सुख था।........मुझे तो वही चाहिये, बाबूजी... ......बाबूजी..........बाबूजी............।

—सावित्री

●

काश, वह प्यार-दुलार सदा मिलता !

नवम्बर १९५८में मैं पहली बार गोरखपुर आया। नया स्थान था; जिसके लिये आया था, उस कारण एक संकोचका आवरण मनको घेरे हुए था। उस समयतक मैं नानाजीके उस स्नेहपूर्ण व्यक्तित्वसे सर्वथा अपरिचित ही था। मेरे मनमें कल्पनाकी तूलिकासे उनके व्यक्तित्वका निर्माण-सा हो रहा था, पर जिस प्रकारका उनका मोहक व्यक्तित्व था, उससे वह सर्वथा भिन्न था।

वात्सल्यरससे भीगे एक स्मितके साथ उन्होंने कुशल-समाचार पूछे। वह मुस्कराहट ही ऐसी थी, जिसने बरबस ही मुझे उनकी ओर खिंच जानेके लिये बाध्य-सा कर दिया। एक ऐसा सम्मोहन-सा हो गया कि वहाँसे उठनेका मन ही नहीं हो रहा था। अपने डेढ़-दो दिनके कार्यक्रममें कई बार उनके पास गया, पर हर बार किसी अव्यक्त आकर्षणसे अपनेको उनकी ओर खिंचता अनुभव करता रहा।

जिस दिन लौट रहा था, उस दिन भी मैं प्रणाम करने गया। प्रणाम करते समय उन्होंने अपना वरद हस्त मेरे मस्तकपर रख दिया। उनके कोमल करके स्पर्शसे ऐसा भान हुआ कि किसीने अभय-दान दे दिया हो।

पर आज जब उन बातोंको स्मरण करता हूँ तो आँखें गीली हो जाती हैं। अपने चारों तरफ अन्धकार-ही-अन्धकार प्रतीत होता है। जीवनमें एक ऐसी रिक्तताका अनुभव होता है, जिसकी पूर्ति होना असम्भव है। काश, वह प्यार-दुलार सदा मिलता !

—जगदीशप्रसाद भालोटिया

●

चरण-चिन्तन

विषय-पङ्कमें लीन विकल जन-मीन पा गये जीवन,
नित्य-नवीन हो गये धरतीके नन्दनवन उपवन।
मानवता हो गयी दिव्य, भागवत राज्य फिर आया,
तूने जड-चेतनके कण-कणमें भगवान दिखाया।
तेरे वन्दनमें अगणित मस्तक नत हैं, उपकारी !
तेरे चरण-कमलका ही चिन्तन है सम्बल भारी॥

दे सकता क्या जगत अकिंचन, सबने तो है पाया,
तूने दिया, दिया ही केवल, देना ही बतलाया।
भक्ति-सम्पदा थी तेरे जीवनकी अमिट कमाई,
तूने तन-मन-धनके बन्धनमें विरक्ति अपनाई॥
जय अभिनव हनुमान! राममय ! पवनतनय-बलधारी !
तेरे चरण-कमलका ही चिन्तन है सम्बल भारी॥

—रामलाल

●
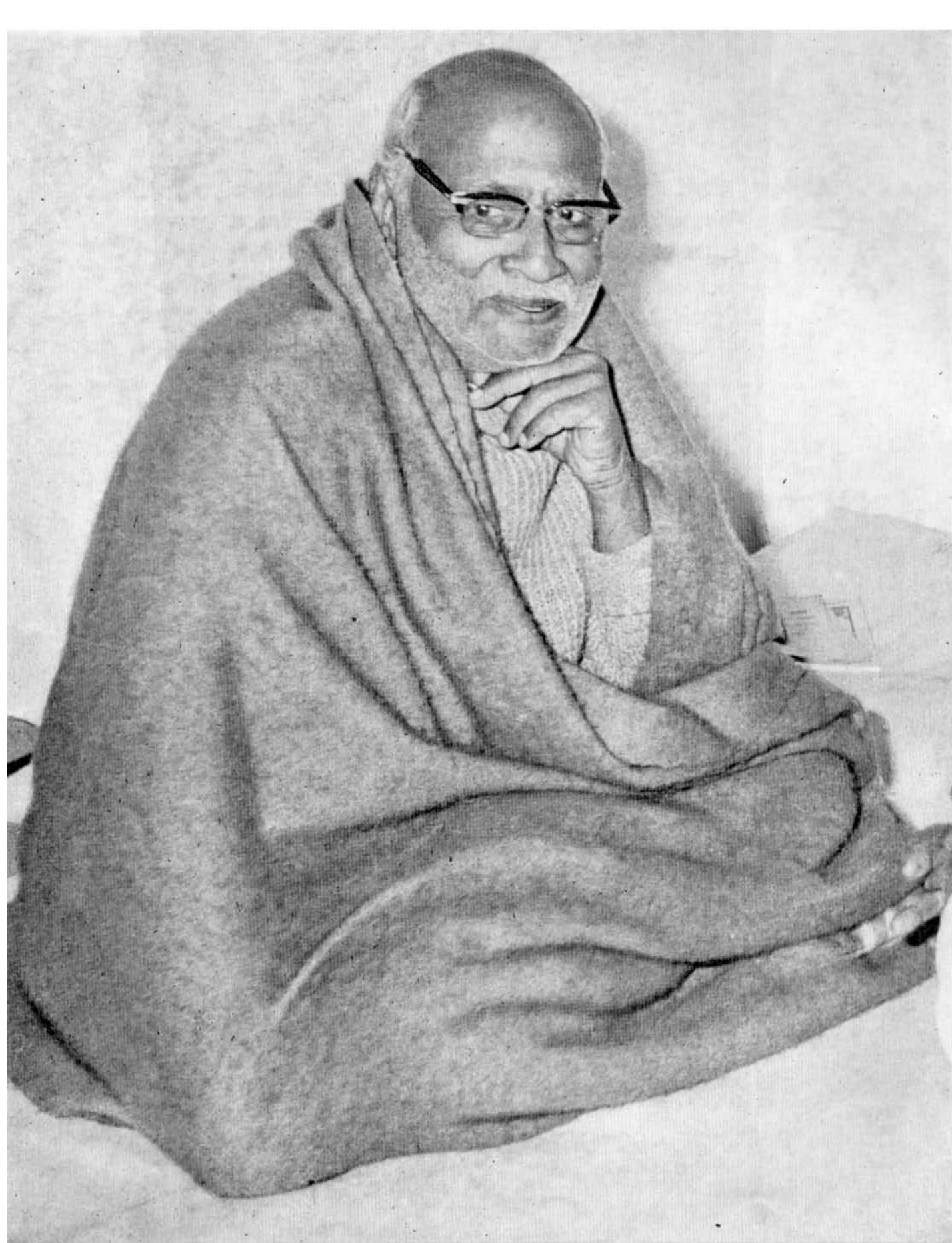
स्नेह के अविरत-स्रोत

वे सुख अब दुख देत

जिसके जीवनकी सबसे बड़ी निधि लुट चुकी हो, वह अभागा क्या रोये ! उसके अन्त-र्दाहका शमन आँसू बेचारे क्या करेंगे ! !

जबसे होश सँभाला, स्नेहके एक ऐसे अनुपम परिधानमें अवगुण्ठित रही कि अभाव, पीड़ा मेरा स्पर्श ही न कर सके.......उस गोदीमें बैठकर बाल-सुलभ चपलता की, जहाँसे सुखका अनवरत स्रोत प्रसरित होता था.......उस बोधिवृक्षकी शीतल सघन छायामें निवास किया, जहाँ विशुद्ध स्नेह-ही-स्नेह था। जगन्नियन्ताने अपनी असीम अनुकम्पासे मुझ अभागिनकी झोलीमें इतना कुछ डाल दिया कि मैं उसे सँभाल ही न सकी ! छोटे-से जीवनमें मैंने सब कुछ पा लिया। नानाजीके रूपमें मुझे ऐसे कल्पवृक्षकी प्राप्ति हो गयी, जहाँ प्रत्येक इच्छित वस्तु अपने-आप मिल ही जाती थी। वास्तवमें नानाजीको पाकर कुछ भी अलभ्य नहीं रह गया था मेरे लिये।

चिन्ता किसे कहते हैं, मैं अनुभव ही नहीं कर सकी थी........जो मनमें आया, उन्हें कह दिया और सर्वथा निश्चिन्तता प्राप्त कर ली........पर आज.........आज देखती हूँ मेरा सब कुछ खो गया। जीवनकी प्रत्येक घटनामें, दुःख-सुखमें नानाजीकी स्नेह-भीनी स्मृति लड़ीकी तरह पिरोई हुई है।.......कोई ऐसा प्रसङ्ग नहीं, जिसमें नानाजीका अपार स्नेह मुझे अभिषिक्त न कर चुका हो। मेरे इस अभावको पूरा कौन करे ? कहाँसे पाऊँ मैं वह स्नेह, जिसकी स्मृतिसे मेरा हृदय फटने लगता है, मेरी आँखें बरबस बरस पड़ती हैं.......मन-प्राणोंपर एक गहन तिमिर-सा मूर्त हो उठता है।

क्या कहूँ ? क्या लिखूँ ? कैसे बताऊँ कि मैंने क्या खोया है ? कुछ भी खोकर यदि उन्हें पा सकती तो सम्भवतः संतोष कर लेती,.......पर.......नियतिके इस क्रूरतम उपहास-का चित्रण किन शब्दोंमें करूँ ?

वे स्वर्णिम दिन, जिनकी पावन स्मृति ही अब शेष रही है, एक ऐसी कसक उत्पन्न कर देते हैं, जिसे मैं शब्दोंमें व्यक्त ही नहीं कर सकती। वह दुलार, वह लाड़, जिसे पाकर मैं उन्मत्त-सी हो उठी थी, मुझसे छिन गया।.......वे नानाजी, जिनकी गोदमें सिर रखकर मैं सब कुछ भूल जाती थी, मुझे छोड़कर चले गये।.......अब क्या शेष रहा है मेरे पास.......?

—राधादेवी

●

मुझे तो रोनेका भी हक नहीं

वात्सल्यका छलकता सागर, स्नेहकी साकार मूर्ति, करुणाका अनवरत स्रोत, परम उदार, सदा सहज ही प्राणिमात्रके हित-चिन्तन और सुख-सम्पादनमें रत अपने सर्वस्व, अपने नानाजीके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन समर्पित करने बैठा तो हूँ अवश्य........परंतु अन्तरसे हूक-सी उठती है........"अभागे ! तू क्या अर्चना करेगा ? तुझे तो रोनेका भी हक नहीं।"

क्रूर नियतिने मेरा सृजन ही सम्भवतः इसीलिये किया था कि मैं अपने ही हाथों अपने समस्त सुख-स्वप्नोंकी आधारशिला अपने नानाजीको अग्निके समर्पित करूँ——उनका अग्नि-संस्कार करूँ, जिनके प्राणोंसे मैं अनुप्राणित हुआ, जिनकी गोदमें खेलकर बड़ा हुआ, जिनका अमोघ आशीर्वाद मेरा रक्षाकवच है, वात्सल्य-दानमें जिनकी कोई तुलना थी ही नहीं, जिनका स्नेहपूर्ण दृष्टिपात मात्र ही जीवनमें सुख एवं शान्तिका सृजन कर देता था, जिनकी मधुर रसपूत वाणी प्राणोंको सुधासिक्त कर देती थी, जिनके पास पहुँचते ही कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता था, जो मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थे, मेरे सर्वस्व थे। मैं ही वह पाषाण-हृदय हूँ, जिसने अपने ही हाथोंसे उठाकर, अपने ही नहीं, अपितु लाखों नर-नारियोंकी आशाके केन्द्रबिन्दु, लोक-परलोकके सुगम पथ-प्रदर्शक, सहज स्नेही, परम स्वजनको, गद्दे-तोषकके नरम बिछावनके स्थानपर सूखी लकड़ियोंपर लिटा दिया.....जिन्हें खादीकी चद्दर ओढ़ाते समय भी वार-वार मनमें आता——कहीं यह चुभ न जाय उनके कोमल अङ्गोंपर, ओढ़ावन ओढ़ाया शुष्क रसहीन कठोर काष्ठका। जिन्हें तनिक-सी भी गर्मीमें कष्ट पाते देखकर मन आलोड़ित होने लगता, उनको ही अपने ही हाथोंसे लपटोंकी भेंट कर दिया.......जिनके श्रीमुखका दर्शन प्राणोंमें अपरिमित उल्लास भर देता था.....उस दिव्य आभासे देदीप्यमान रहनेवाले मुखमण्डल——उस मस्तकको अपने हाथोंसे खण्ड-खण्ड कर डाला; पर प्रस्तरनिर्मित मेरा हृदय खण्ड-खण्ड न हो सका ! न ही उस धधकती ज्वालाओंमें कूदकर उनसे एकात्मता स्थापित करनेका साहस ही मुझमें आ सका ! आता भी कैसे ? क्रूर नियतिका उपहास अभी पूर्ण नहीं हुआ था।.....इस कठोरतम कर्म करनेके बाद भी मैं जीवित हूँ, शायद अपने पूर्वसंचित दुष्कर्मोंको भोगनेके लिये। सब कुछ समाप्त हो गया। रह गया मैं और मेरे जीवनकी सर्वोपरि निधिरूप वह राखकी ढ़ेरी, जिसे देखकर जीवनभर, बस, रोना-ही-रोना है। यही मेरी अर्चना है और आँसूकी बूँदें हैं मेरी अर्चनाके उपकरण !!!

——सूर्यकान्त फोगला

मेरे नानाजी : मेरी स्मृतियाँ

'नानाजी' शब्दका अर्थ तो सभी जानते हैं; परंतु मेरे लिये इस शब्दका अर्थ है—'स्नेहका एक घनीभूत पुञ्ज—ऐसा स्नेह-सुधा-सिन्धु, जिसमें डूबकर मैं निकल नहीं पाता था।'

'नानाजी' शब्दके उच्चारणके साथ ही हृदयमें जो प्रतिबिम्बित होने लगता है, उसमें स्नेह तथा प्यारके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुका अस्तित्व कदापि नहीं है। जीवनभर जिसके प्यारकी लहरोंमें स्नान किया, आज उसी स्नेह-प्रतिमाके न रहनेपर उसके बारेमें कुछ लिखना कितना कठिन है—इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

नानाजी एक विशाल वट-वृक्षकी भाँति थे। असंख्य लोगोंने उसके नीचे आश्रय प्राप्त किया। शान्ति एवं शीतलता तो जो भी उसके नीचे आये, उन सबको बिना माँगे मिली; परंतु मेरे लिये तो वे कल्पवृक्ष थे—ऐसा कल्पवृक्ष, जिसके पल्लवोंके प्रत्येक कम्पनसे वात्सल्य झरता रहता था। पत्ते झड़ने लगे, डालियाँ सूखने लगीं; परंतु वात्सल्यका वह रस जबतक चेतना रही, अक्षुण्ण रहा। नानाजीकी चेतना—उनके प्राण सहज स्नेह और वात्सल्यके पर्याय थे—प्रेम ही उनका प्राण था।

अन्तिम बीमारीके दिनोंमें, भयानक पीड़ामें भी मुझे देखकर उनकी स्नेहभरी मुस्कान याद करके आज आँखें बरबस भरी आती हैं। किसी रात्रिको उनकी सेवामें देरतक जग जाता तो किस स्नेहसे सिरपर हाथ फेरते हुए कहते—'जा बेटा, अब सो जा। बहुत देर हो गयी है।' कभी रात्रिमें कहींसे लौटनेमें थोड़ी भी देर हो जाती तो मन-ही-मन प्रतीक्षा करते रहते। आनेपर कहते—'बहुत देर कर दी न; जाओ, अब सो जाओ।'

स्नेहसे सने नहीं, स्नेहसे विरचित ये शब्द अब कहाँ, किसके मुखसे सुननेको मिलेंगे? उनकी एक मुस्कानसे, स्नेहभरे शब्दसे सारी थकान दूर हो जाती थी। उनके स्नेहके इस जादूने तो अन्तिम समयतक यह आभास ही नहीं होने दिया कि नानाजी अब जा रहे हैं—सदाके लिये जा रहे हैं, इस रूपमें अब कभी नहीं मिलेंगे।

वे चले ही गये, सदाके लिये। कभी लौटकर न आनेके लिये चले गये। पर जब नानाजी-को जाना ही था तो उन्होंने इतना अद्भुत, इतना अपार, इतना अगाध स्नेह दिया ही क्यों? जो व्यक्ति 'उस' स्नेह-सागरमें चौबीसों घंटे किलोल करता हो, उसका वह समुद्र सूख जाय और उसकी जगह प्रकट हो जाय तपता मरुस्थल, उसकी दशा, उसकी मनोव्यथाको व्यक्त नहीं किया जा सकता। मैंने सब समय प्रत्येक परिस्थितिमें नानाजीका स्नेह प्राप्त किया, इसलिये पल-पलपर उनकी बातें, उनका मुस्कराना, उनका स्नेह, सिरपर हाथ फेरना मुझे याद आता है। पर वह निर्झर, जो प्राणोंमें रस भरता था, सूख गया। वे दिन निश्चय ही अब लौटकर कभी नहीं आयेंगे। अब तो बची है—केवल उन सुखद क्षणोंकी सिसकती स्मृतियाँ और उनका गूँजता हुआ वह स्वर कि—'अब सब कुछ समाप्त हो गया।'

—चन्द्रकान्त फोगला

बस, यही अभिलाषा है !

पहली बार मुझे श्रीभाईजीका दर्शन सन् १९२८के प्रारम्भमें बीकानेरमें हुआ था। वे नाम-प्रचारके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करते हुए दो दिनके लिये वहाँ पधारे थे। उनका सर्वप्रथम भाषण सुननेपर मेरे मनमें ऐसी छाप पड़ी कि वे जो कुछ कहते हैं अनुभवके आधारपर कहते हैं, केवल पढ़ी-पढ़ायी अथवा सुनी-सुनायी बात नहीं कहते। जबतक वे बीकानेरमें रहे, व्याख्यानके बाद भी मैं घंटों उनके पास बैठता और उनके साथ भगवद्‌विषयक चर्चा होती रहती। उनके इस प्रथम समागमका मनपर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि स्वाभाविक ही उनके निकट सम्पर्कमें कुछ दिन रहनेकी प्रबल भावना जाग्रत् हुई। यह लालसा क्रमशः बढ़ती गयी और सन् १९२९ के ग्रीष्ममें मुझे उनके साथ गोरखपुरमें लगभग डेढ़ महीने रहनेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ। इस छोटी-सी अवधिमें उनके भगवत्सम्बन्धी प्रौढ़ विचारों एवं अनुभवोंको जानने तथा उनके भगवन्मय जीवनको अत्यन्त निकटसे देखनेका अवसर मुझे प्राप्त हुआ। उनके लोकोत्तर व्यक्तित्व-का मनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि १०-१५ दिनके बाद ही बुद्धिने यह निर्णय ले लिया कि सब कुछ छोड़कर इन्हींके चरणोंमें रहा जाय और शेष जीवन इन्हींकी छत्रछायामें बिताया जाय। यह निर्णय लेना मेरे लिये जितना सहज था, उसे कार्यान्वित करना उतना ही कठिन सिद्ध हुआ। मुझे बीकानेर छोड़नेमें चार वर्ष लग गये और जनवरी सन् १९३३में ही मैं अपने इस मनोरथको पूर्ण कर पाया।

मेरा श्रीभाईजीके साथ यह चालीस वर्षसे ऊपरका सम्पर्क मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने अनेक जन्मार्जित सुकृतोंके फलरूपमें उन्हींकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमें उन्होंने जैसा अद्भुत स्नेह मुझे दिया और जिस प्रकार मेरा लाड़ रखा, उसे शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी उऋण नहीं हो सकता और न होना ही चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबलधारामें बहते हुए मुझ पामरको उन्होंने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी बना दिया। मेरी त्रुटियोंकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया और मेरे द्वारा उन्हींकी प्रेरणासे हुए तनिक-से भी अनुकूल आचरणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे मेरे बड़े भाई, सखा एवं स्वामी ही नहीं थे, मेरे पथप्रदर्शक, जीवन-सर्वस्व थे और हैं।

श्रीभाईजी इस युगकी एक महान् विभूति थे। भारतीय संत-परम्परामें उनका बहुत ऊँचा स्थान था। वे ज्ञानोत्तर भाव-राज्यमें प्रतिष्ठित थे। जिस 'पराभक्ति'की प्राप्ति श्रीमद्भगवद्-गीतामें ब्रह्मभूत होनेके बाद बतायी गयी है, जिस भक्तिके द्वारा मनुष्य भगवान्‌को तत्त्वसे जानकर उनमें प्रविष्ट हो जाता है, उनके साथ घुल-मिलकर एक हो जाता है, उनका प्रतिरूप ही बन जाता है, वह उनके अंदर मूर्त थी। यही नहीं, श्रीकृष्णप्रेमकी उच्चतम भूमिकामें वे स्थित थे। उनका मन, बुद्धि, वाणी—सब कुछ श्रीकृष्णमय हो गये थे। 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि'—नारद-भक्ति-सूत्रका यह वाक्य उनमें पूर्णरूपेण चरितार्थ था। विशुद्धप्रेमाभक्तिका आदर्श एवं भगवन्नामकी महिमाको प्रतिष्ठित

करनेके लिये ही जगत्में उनका आविर्भाव हुआ था। हमलोगोंका अनिर्वचनीय सौभाग्य था कि वे हमारे बीच हमारे निजजन,--हमारे पिता, बन्धु, संरक्षक, मार्गदर्शक एवं मित्रके रूपमें इस धराधामपर रहे और हमारे-जैसे अगणित जीवोंको उन्होंने अपनी पीयूषवर्षिणी वाणी, आदर्श भक्तोचित व्यवहार, अमोघ लेखनी तथा भगवन्मय जीवनसे कल्याणकी ओर अग्रसर किया। इस भारतभूमिको,--विश्वको उन्होंने अध्यात्मज्ञानकी जो अमूल्य निधि दी है, उसका मूल्याङ्कन शब्दोंद्वारा सम्भव नहीं है। उनके प्रति श्रद्धाञ्जलिके रूपमें जो कुछ भी कहा जाय थोड़ा है। मैं उनके विषयमें क्या श्रद्धाञ्जलि अर्पण करूँ, उनकी स्मृति-मात्रसे हृदय भरा आता है। उनके वियोगको हृदय सहन कर गया--यही मेरी प्रेमशून्यताका प्रमाण है। बस, शेष जीवन श्रीभाईजी-की और उनके अपने श्रीराधामाधवकी स्मृतिमें बीत जाय--यही अभिलाषा है!

—चिम्मनलाल गोस्वामी

●

जीवनका आधार शेष है दो मुट्ठी भर राख

हा! बीत गयी वह राका-रजनी,
टूट गये वे सुखके सपने,
स्नेहसूत्र खण्डित होते ही
बिखर गयी मालाकी मणियाँ।
शेष रह गयी टीस हृदयकी,
बहती सतत नयन जलधारा॥

पापी-तापी, नीरस मनकी,
असहायोंकी, दीन-दुखीकी,
गौ-ब्राह्मणकी, आर्तजनोंकी,
पीर नसावन, मन बहलावन
करनेवाला चला गया हा!
चला गया हा! चला गया रे!!

विरह-विकल जीवन-साथीका
मान-मनावन, लाड़-लड़ावन,
सुख-संयोजन, रीझ-रिझावन
करनेवाला चला गया हा!
चला गया हा! चला गया रे!!

उजड़ गया नव वृन्दा-कानन!
व्रज-अवनीकी इस बगियाको
सरस बनानेवाली सरिता
सूख गयी है!
रूखी धरती, सूखे तरुवर,
विरह-तापसे जलती डालें,
झुलसे पत्ते,

कहाँ-कहाँ पी, रटे पपीहा,
साँवर व्रजसे चला गया हा!
चला गया हा! चला गया रे!!

बिछुड़े पीकी याद रह गयी,
केवल साथ समाधि रह गयी,
चिताभूमिकी भस्म रह गयी,
थाती केवल राख रह गयी!

उसी राखपर आँख टिकाये,
उसी भस्मसे आस लगाये,
नव-जीवनकी, पुनर्मिलनकी
साध सँजोये,

उसके सम्मुख शीश झुकाते,
दुखड़ा कहकर रोते-गाते,
भावभरे कुछ पुष्प चढ़ाते।
बीत रहीं जीवनकी घड़ियाँ,
बिखर रहीं आँसूकी लड़ियाँ,
जुड़ पातीं यदि टूटी कड़ियाँ।
रोता-रीता, रिसता, निर्धन
आहें भरता सूना तन-मन,
जीवन-धनसे विरहित जीवन।

ढाढ़स देती, धैर्य बँधाती
महाप्राणकी साख।
जीवनका आधार शेष है
दो मुट्ठी भर राख!

●

आशिष दो, हरिरूप !

महामोहकी निबिड़ निशामें सुप्त रहा जग सारा,
किंकर्त्तव्यविमूढ़ मूढ़-सा था मानव बेचारा।
पश्चिम-संस्कृतिकी फैली थी तिमिर-राशि-सी माया
आस्थाओंको निगल रही थी नास्तिकताकी छाया ॥ १ ॥
मोह रही थी असुर-सम्पदा इन्द्रजाल फैलाये,
प्रज्ञामयी प्रभात-विभा ले तब भूपर तुम आये।
दिव्यलोकके नव दिनमणि-सा दर्शन हुआ तुम्हारा,
दूर किया 'कल्याण'-किरणसे तुमने तिमिर-पसारा ॥ २ ॥
धरा धन्य हो गयी तुम्हारे पाकर पावन पगको,
नव जागर्ति, नवीन चेतना दी तुमने इस जगको।
जन-मानसमें प्रणय-तरंगें उठने लगीं अभङ्गा,
घर-घरमें हो चली प्रवाहित भक्ति-भावकी गङ्गा ॥ ३ ॥
आदर बढ़ा धर्म शाश्वतका, होती हरिकी पूजा,
संकीर्तनका दिव्य घोष था स्वर्गलोकतक गूँजा।
फिरने लगी कोटि नामोंके जपकी मञ्जुल माला,
ज्ञानयज्ञ था भाव-जगत्में जाग्रत् हुआ निराला ॥ ४ ॥
कर्मयोगका पाठ विश्वको तुमने पुण्य पढ़ाया,
दुखियोंकी सेवाके पथपर सबको सदा बढ़ाया।
देश-भक्ति भी प्राप्त हुई थी तुम-सी किस नेताको,
कलिमें स्थापित किया तुम्हींने कृतयुगको, त्रेताको ॥ ५ ॥
तुम संस्कृत-संस्कृतिके रक्षक, सेवक गोमाताके,
पाया तुमने पावन पदको सबके ही भ्राताके।
धार्मिक संघ-समाज कौन, जो पोषित हुआ न तुमसे,
सबको किया कृतार्थ, रहे तुम भूपर कल्पद्रुम-से ॥ ६ ॥
मन्दहास-मण्डित मुख-मण्डल, प्रीतिसनी मृदु वाणी,
तेजस्वी उन्नत ललाट, वह वक्तृ-कला कल्याणी।
स्नेह-सान्त्वना-अभय-दायिनी करुणा-दृष्टि तुम्हारी,
किसका चित्त न हर लेती थी, किसे न लगती प्यारी ॥ ७ ॥
दीनबन्धुता तुल्य तुम्हारी है किसमें अनहोनी ?
गुन-गाहकता कहाँ तुम्हारे सिवा सुलभ्य सलोनी ?
घट-घटमें निज इष्टदेवका दर्शन किसको होता ?
कौन अकेलेमें परदुखसे कातर हो-हो रोता ?॥ ८ ॥

कौन हमें अब प्रेम-समादर देकर पास बिठाये ?
तुम-सा स्नेह सगा भाईका कहाँ आज हम पायें ?
किसकी दायीं भुजा शीशपर अब दे सकती छाया ?
तुमको खोकर हमने जगमें सूना सब कुछ पाया ॥ ९ ॥

हैं उपकार अपार तुम्हारे; कौन, भला, बतलाये ?
नभमें तारे सब कितने हैं—कौन अहो ! गिन पाये ।
तन भूतलपर, मन मुरारिमें डूबा रहा तुम्हारा,
तुम करते थे वही यन्त्र-से, जो यन्त्रीको प्यारा ॥ १० ॥

पहुँचे तुम उस प्रेम-धाममें, जहाँ एक प्रियतम हैं,
तुम्हें याद करते हम दृगमें लिये अश्रु हरदम हैं ।
आशिष दो, हरिरूप ! तुम्हें अब भूलें नहीं कदा हम,
पुण्य तुम्हारे उपदेशोंपर चलते रहें सदा हम ॥ ११ ॥

—रामनारायणदत्त 'राम'

प्रेमका नित्य निर्झर

वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ।

जन-जनको जीवन-दान दिया,
सारे जगका कल्याण किया ।
जिसकी नौका डूबती मिली,
पतवार उसीका थाम लिया ॥

करुणाकर उन-सा कौन अपर ?
वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ॥ १ ॥

दुखियोंका दुःख हरण करते,
क्षुधितोंका उदर-भरण करते ।
आया विपत्तिका मारा जो,
थे उसे भुजाओंमें भरते ॥

पर-सुख-सुखिया, पर-दुख-कातर ।
वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ॥ २ ॥

आश्रय-विहीनके दृढ़ आश्रय,
भयभीतोंको करते निर्भय ।
थे श्रान्तोंके विश्रामालय,
इहलोक और परलोक उभय--

बन जाते थे उनको पाकर ।
वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ।। ३ ।।

जब जहाँ कभी आया संकट,
दुर्भिक्ष, बाढ़, भूचाल विकट ।
हो जाती थी तब वहाँ सदा
उनकी सहायता सहज प्रकट ।।

दुखियोंका दुख लेते थे हर ।
वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ।। ४ ।।

गुण-गणकी जिसके थाह नहीं,
जिसकी कोई निज चाह नहीं ।
वचनामृतसे जिसने किसके
हर लिया हृदयका दाह नहीं ?

थे जन-जीवन-पथ-कण्टक-हर ।
वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ।। ५ ।।

राधा-माधव-लीला रसमय,
राधा-माधव-लीला मधुमय,
उसमें प्रविष्ट, हो उसमें लय,
अनुभूतिपूर्ण तात्त्विक परिचय

कर दिया प्रकट इस पृथ्वीपर ।
वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ।। ६ ।।

--माधवशरण

●
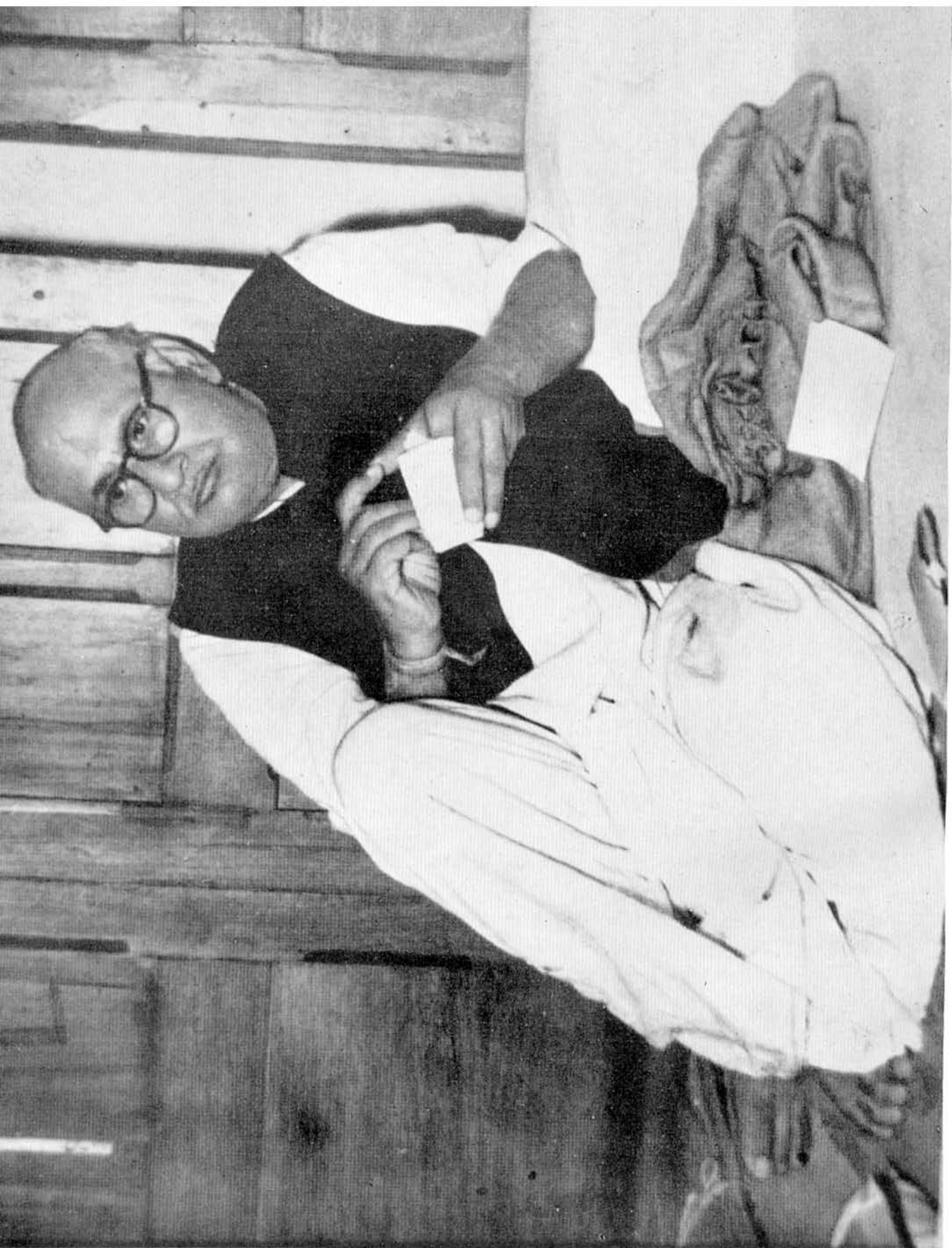
जीवन-यात्रा

काम-क्रोध-लोभ-मद-विरहित, शोक-मोह-भय-भ्रमसे हीन।
ज्ञानमूर्ति, निष्काम निष्ठ अति, पावन परम प्रेमरस-पीन॥
नित्य शान्ति, आनन्द नित्य ही, तृप्ति नित्य अविचल अत्यन्त।
सर्वभूतहितरति स्वाभाविक, समता ममतारहित अनन्त॥
वज्रादपि कठोर निजहित जो, परहित कोमल कुसुम-समान।
अचल प्रतिष्ठित दैवी सम्पद, नित्य ज्ञान-विज्ञाननिधान॥
जिनमें भरे अखण्ड पूर्ण आनन्द, प्रेम शुचि, निर्मल ज्ञान।
जिनमें रोम-रोममें छाये रहते स्वयं नित्य भगवान॥
जिनके तन-मन-वचन बहाते अविरल भगवद्-रसकी धार।
ऐसे संतोंके पद-कमलोंमें प्रणाम है बारंबार॥

संत भगवत्स्वरूप होते हैं और उनके पवित्र जीवनसे नित्य-निरन्तर भगवद्-रसकी विश्वपावनी अखण्ड सुधा-धारा प्रवाहित होती रहती है, जो जगत्के जीवोंको मृत्युके भीषण पाशसे मुक्तकर अमृतत्व प्रदान करती है। वे संत ज्ञानके ज्योतिःपुञ्ज होते हैं और अपने दिव्य प्रकाशसे तमोमय प्राणियोंके अज्ञानान्धकारको दूरकर उन्हें परमात्माके परम प्रकाशमय स्वरूपमें पहुँचा देते हैं। ऐसे संत जहाँ होते हैं, वह देश धन्य है; जिस जातिमें होते हैं, वह जाति धन्य है; जिस कुल-परिवारमें होते हैं, वह परिवार धन्य है और जिस कालमें होते हैं, वह काल धन्य है। वस्तुतः ऐसे भगवत्स्वरूप संतोंका जीवन जगत्के जीवोंके कल्याणार्थ ही उत्सर्गीकृत होता है। उनका अपना कोई प्रयोजन नहीं रहता शरीरसे—जीवनसे। जितने दिन प्रारब्धवश उनका भौतिक शरीर रहता है, उनके द्वारा सहज ही जगत्के जीवोंका कल्याण होता रहता है। ऐसे संत वास्तवमें जाति, सम्प्रदाय, देश आदिकी सीमासे बाहर पहुँचे हुए या इस जागतिक प्रपञ्चके स्तरसे बहुत ऊपर उठे हुए होते हैं। इसीसे वे समदर्शी, समतास्वरूप और निरपेक्ष सर्वकल्याणकारक होते हैं। वे अपने-परायेका भेद न रखकर सबमें भगवान्के दर्शन करते या सबमें आत्मोपलब्धि करते हैं एवं सबको सुख पहुँचाने तथा सबका हित करनेकी सहज चेष्टा उनके द्वारा होती रहती है। वे अत्यन्त विरक्त होते हुए ही सहज ही जन-कल्याणमें प्रवृत्त रहते हैं—उनका जीवन ही सहज जन-कल्याण-स्वरूप होता है। ऐसे ही संत अपने अस्तित्वमात्रसे विश्व-कल्याणके कारण हुआ करते हैं—ऐसे संतोंके श्रीपद-कमलोंमें कोटि-कोटि साष्टाङ्ग प्रणिपात।

संतोंकी जीवनीका अध्ययन करनेवालोंको शुभके आचरणमें लाभ प्राप्त होता है तथा भगवान्की ओर प्रवृत्त होनेमें प्रेरणा मिलती है। ऐसे ही महात्माओंके मङ्गलमय चरित्रों तथा उपदेशोंसे जगत्के जीवोंका वास्तवमें कल्याण-साधन हुआ करता है। अतः ऐसे महात्माओंके जीवन-वृत्त एवं उपदेशोंका प्रचार-प्रसार जितना अधिक हो, उतना ही मङ्गल है।

'शिव'

भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्‌की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

की

पुण्यस्मृति

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

संत-परम्परा और श्रीभाईजी

श्रीभगवान् कहते हैं——

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥
(श्रीमद्भागवत ११ । १४ । १६)

'जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो जगत्‌के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मननमें तल्लीन रहता है, जो कभी किसी भी प्राणीसे वैर नहीं रखता, जो सर्वत्र समदृष्टि है, उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर इस विचारसे घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूल उड़कर मुझपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ।'

संत-महिमा

भगवान्‌के भक्त, भगवान्‌के प्यारे, भगवान्‌के तत्त्वको यथार्थतः जाननेवाले और भगवान्‌के ही स्वरूपभूत प्रातः-स्मरणीय पूज्यचरण संत-महात्माओंकी महिमा कौन गा सकता है ? उनके अनन्त कल्याणगुणोंका बखान कौन कर सकता है ? परंतु उनकी स्मृति अन्तःकरणको पवित्र करती है, उनके आदर्श चरित्रोंका मनन हृदयको विशुद्ध भगवद्भावसे भर देता है और उनका गुणगान जिह्वाको पवित्र करके उसमें भगवद्गुणगानकी योग्यता प्रदान करता है।

संतोंकी पहचान

जो नित्यसिद्ध सत्य-तत्त्वका साक्षात्कार करके, उसकी अपरोक्ष उपलब्धि करके उस सच्चिदानन्द-स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो चुके हैं, वे संत हैं। वह सत् ही चेतन है, वह चेतन ही आनन्द है अर्थात् वह सत् चेतन और आनन्दरूप है, वह चेतन सत् और आनन्दरूप है और वह आनन्द सत् और चेतनरूप है। इस आदिमध्यान्तहीन सच्चिदानन्दमें जो सहज प्रतिष्ठित हैं, वे संत हैं। अथवा संत वे हैं, जो मोक्षका भी निरादर करके प्रेम-सुधार्णव भगवान्‌के दिव्य प्रेमको प्राप्त कर चुके हैं। निर्गुणी और प्रेमी संतोंके भगवान् ही सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं, वे ही परमात्मा हैं और वे ही प्रेमास्पद भगवान् हैं। यह तत्त्व स्वरूपतः अद्वैत है या द्वैत, इसकी मीमांसा नहीं हो सकती। भेद और अभेद, सविशेष और निर्विशेष, अवस्था और अधिकारके अनुसार सभी सत्य हैं। अखण्ड और समग्र सत्यमें प्रतिष्ठित पुरुषकी अनुभूति या स्वरूपस्थितिका विषय है यह; इसको लेकर विवाद करनेकी आवश्यकता नहीं। हाँ, शास्त्रोंने इस प्रकारके अनुभूति-प्राप्त संतोंका——संत, साधु, प्रेमी, भक्त, भागवत, योगी, ज्ञानी, स्थितप्रज्ञ, मुक्त आदि विभिन्न नामोंसे वर्णन किया है, जो साधनभेदसे सभी सार्थक और सत्य हैं। पर उन सभी संतोंमें कुछ ऐसे लक्षण होते हैं, जो प्रायः समानभावसे सर्वत्र पाये जाते हैं।

संतके लिये शास्त्रोंमें अनेकों लक्षणोंका निर्देश मिलता है, किंतु वस्तुतः संत समस्त लक्षणोंसे ऊपर उठे होते हैं। किसी भी लक्षणके द्वारा कोई भी विषयी पुरुष संतको कभी नहीं पहचान सकता। प्रथम तो जिसने जिस वस्तुकी उपलब्धि ही नहीं की, वह केवल उसका नाम सुनकर ही कैसे उसके असली-नकली होनेका निर्णय कर सकता है। जिसने हीरा देखा ही नहीं, वह हीरे और काँचके अन्तरको कैसे समझ सकता है। दूसरे, संतोंके लक्षणोंमें कई तो ऐसे हैं, जो स्वसंवेद्य हैं और कई ऐसे हैं, जिनके स्वरूपका यथार्थ निर्णय स्वयं उनका आचरण करनेवाले केवल अनुभवी पुरुष ही कर सकते हैं; विषयी पुरुष अपनी विविध दोषमयी विषयासक्तिसे भ्रमित और मोहसे आवृत मलिनबुद्धिके तराजूपर उनको नहीं तौल सकता। वह जिस बातको अपनी विपरीत और अज्ञानभरी

दृष्टिसे दोष समझेगा, सम्भव है, वही संतका आदर्श गुण हो। ऑपरेशन करते हुए डाक्टरकी क्रियामें, बच्चों और शिष्योंको वत्सलतापूर्ण हृदयसे डाँटते-धमकाते हुए माता-पिता और सद्गुरुकी शिक्षामें और कराहते हुए रोगीको कुपथ्य न देनेमें अज्ञ पुरुष निर्दयताका आरोप कर सकते हैं; परंतु क्या यह वास्तविक दया नहीं है ? इसी प्रकार अन्यान्य गुणोंकी भी बात है। मूर्ख मनुष्य यदि अनाज तौलनेके एक बड़े काँटेके एक पलड़ेपर बहुमूल्य हीरा रखकर और उसे सेर-दो-सेरके वजनका भी न पाकर उसको किसी भी कामका न समझे तो इससे जैसे हीरेकी कीमत कुछ भी कम नहीं हो जाती, इसी प्रकार असंतकी मलिन बुद्धि न तो संतको पहचान सकती है और न उसके किसी निर्णयसे संतका यथार्थ स्वरूपनिर्देश ही होता है।

संतोंका यथार्थ परिचय संत-कृपासे ही मिल सकता है। श्रद्धा, सेवा और जिज्ञासासे ही मनुष्यको संत-कृपाकी प्राप्ति हो सकती है। इतना होनेपर भी अकारण-कृपालु संतोंका अज्ञात सङ्ग भी कभी व्यर्थ नहीं जाता; उस अज्ञात सत्सङ्गसे, जिस महान् कल्याण-कल्पतरुका भगवत्प्रेमरूपी अमर फल है, उसका अक्षय बीज तो हृदय-क्षेत्रमें पड़ ही जाता है, जो अनुकूल वातावरण पाकर अङ्कुरित होता है और फूलता-फलता है।

संतोंके स्वभावमें विभिन्नता

सिद्ध संतोंकी स्वरूपस्थिति एक-सी होनेपर भी व्यावहारिक जगत्में उनके स्वभावमें बहुत ही विभिन्नता रहती है। जो संत, जिस देशमें, जिस परिस्थितिमें, जिस शिक्षा-दीक्षामें, जिस वातावरणमें प्रकट हुए हैं और पले हैं, प्रायः उसीके अनुसार उनका स्वभाव भी होता है। कोई अत्यन्त एकान्तसेवी, निवृत्तिपरक होकर लोकालयसे सर्वथा अपनेको अलग रखना चाहते हैं, कोई दिन-रात विभिन्न प्रकारके लोगोंमें रहकर उनकी सहायता करते, उन्हें मार्ग बतलाते, अन्याय-अत्याचारका सामना करते हैं और सत्यधर्मकी प्रतिष्ठा करनेमें लगे रहते हैं। एकान्त-वासी संत भी कम लोक-सेवा नहीं करते। एकान्त स्थानमें उनका दिन-रात भगवान्के साथ आत्मासे ही नहीं, शरीर-मन-वाणीसे भी संयोग रहना जगत्के लिये बहुत ही कल्याणकारी होता है। उनका अस्तित्व ही जगत्के लिये बहुत बड़ा आश्वासन और महान् लाभ है। लोकालयमें रहनेवाले संतोंमें गृहस्थ, संन्यासी—दोनों ही होते हैं और गृहस्थोंमें भी स्वभाव तथा रुचिभेदके अनुसार कोई त्यागमार्गी और कोई अत्यागमार्गी होते हैं—कोई विषयोंके स्वरूपतः त्यागकी शिक्षा देते हैं तो कोई राग-द्वेषत्यागपूर्वक वशमें किये हुए मन-इन्द्रियोंसे भगवत्प्रीत्यर्थ विषय-सेवनकी सम्मति देते हैं और तदनुसार ही दोनोंकी अपनी रहनी-करनीमें भी अन्तर होता है। ऐसे संत सभी देशों, सभी जातियों, सभी धर्मों और सभी सम्प्रदायोंमें प्रायः सभी युगोंमें होते आये हैं।

संतसे जगत्का उपकार

परमात्माको प्राप्त ऐसे संत स्वयं ही कृतार्थ नहीं होते, वे संसारसागरमें डूबते-उतराते हुए असंख्य प्राणियों-का उद्धार करके उन्हें परमात्माके परमधाममें पहुँचानेके लिये सुदृढ़ जहाज बन जाते हैं। उनका सङ्ग करके उनके वचनानुसार आचरण करनेपर उद्धार होता है, इसमें तो आश्चर्य ही क्या है, उनके स्मरणमात्रसे, स्मरण करनेवालेका केवल मन ही नहीं, उसका घरतक तत्काल विशुद्ध हो जाता है। महाराजा परीक्षित् मुनिवर शुकदेवजीसे कहते हैं—

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः॥

(श्रीमद्भागवत १ । १९ । ३३)

'मुनिवर ! आप-जैसे महात्माओंके स्मरणमात्रसे ही गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं। फिर दर्शन, स्पर्श, पाद-प्रक्षालन और आसनादि-प्रदानका सुअवसर मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है ?'

ऐसे महात्माओंका संसारमें रहना और विचरना चेतन प्राणियोंको ही नहीं, जड जल, मृत्तिका और वायु आदिको भी पवित्र करने और उनको तरन-तारन बनानेके लिये ही होता है। धर्मराज युधिष्ठिरजी महात्मा विदुरजीसे कहते हैं—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥
(श्रीमद्भागवत १ । १३ । १०)

'प्रभो ! आप-जैसे भागवत (भगवान्के प्रिय भक्त) स्वयं ही तीर्थरूप हैं। आपलोग अपने हृदयमें विराजमान भगवान्के (नाममात्रके) द्वारा तीर्थोंको (सच्चे) तीर्थ बनाते हुए—अर्थात् उक्त तीर्थस्थलोंमें जानेवाले लोगोंको उद्धार करनेकी शक्ति उन तीर्थोंको प्रदान करते हुए विचरण करते हैं।'

संतका जीवन ही जगत्के कल्याणके लिये होता है। अतएव उनका जगत्पर जितना उपकार है, उतना और किसीका भी नहीं है। उनका लोकसेवाव्रत और उनका यथार्थ विश्वप्रेम जगत्में जिस कल्याणकी सुधाधारा बहाता रहता है, वह धारा यदि कभी सूख गयी होती तो अबतक सारा जगत् सर्वथा राक्षसोंकी भयानक क्रीडास्थली बन गया होता। देवासुरयुद्ध चलता है, जिसमें कभी-कभी असुरोंकी विजय होती है, राक्षसोंका अभ्युदय भी होता है; परंतु संतोंका अस्तित्व और उनका अनवरत कल्याण-वितरण राक्षसोंको स्थायी नहीं होने देता। संत जब निरुपाय-से हो जाते हैं या स्वयं अपनी तपःशक्तिसे कार्य न लेकर भगवान्से काम लेना चाहते हैं, तब संतोंके रक्षणार्थ स्वयं भगवान्को अवतीर्ण होना पड़ता है; वस्तुतः भगवान्के अवतारमें प्रधान हेतु 'साधु-परित्राण' ही है। संत जगत्में जिन विशुद्ध सात्त्विक परमाणुओंको फैलाते रहते हैं, उन्हींसे सत्त्वगुण और सदाचारकी रक्षा होती है। संत प्रत्यक्ष भगवान्के विग्रह हैं। भगवान्से मिलना बहुत कठिन है, परंतु संत हमसे मिलनेके लिये ही संसारमें हमलोगोंके बीचमें रहते हैं—इससे ये हमारे लिये भगवान्से बढ़कर उपादेय हैं; क्योंकि ये संसारसे सर्वथा पृथक् रहकर भी, प्रपञ्चसे सर्वथा उदासीन होनेपर भी हमारे बहुत ही निकट रहते हैं और हमें हाथ पकड़कर वैकुण्ठधाममें पहुँचा देते हैं। यही तो इनका सबसे बड़ा चमत्कार है। संतोंकी वेष-भूषा, उनकी भाव-भङ्गी, उनकी शिक्षा-दीक्षाकी ओर न देखकर उनकी नित्य समता, बुद्धिमत्तापूर्ण असाधारण सरलता और प्रभुमय जीवनसे सबको लाभ उठाना चाहिये। संत विश्वके सूर्य हैं, उसके प्राण हैं, उसके आकाश हैं, उसके हृदय हैं, उसके अवलम्बन हैं, उसके आत्मीय हैं और उसके आत्मा हैं। वे स्वयं सब समय परमात्मामें स्थित रहते हुए ही, प्रत्येक प्रतिकूलतामें साक्षात् आत्मस्वरूप अनुकूलताका स्वाभाविक अनुभव करते हुए ही जगत्के प्राणियोंकी दुःखदायी प्रतिकूलताको अनुकूलतामें परिणत करनेके लिये प्रयत्नवान् रहते हैं। उनकी वाणीसे अमर ज्ञानामृत झरता है, उनके नेत्रोंसे प्रेमकी शीतल सुखद ज्योति निकलती है, उनके मस्तिष्कसे जगत्का कल्याण प्रसूत होता है, उनके हृदयसे आनन्दकी धारा बहती है। जो उनके सम्पर्कमें आ जाता है, वह पाप-तापसे मुक्त होकर महात्मा बन जाता है। वे जिस देशमें रहते हैं, वह देश पुण्यतीर्थ बन जाता है; वे जो उपदेश करते हैं, वह पावन शास्त्र हो जाता है; वे जिन कर्मोंको करते हैं, वही कर्म सत्कर्म समझे जाते हैं—

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि।
(नारदभक्तिसूत्र ६९)

वह देश धन्य है जहाँ ये रहते हैं, वह माता धन्य है जिसकी कोखसे ये प्रकट होते हैं, वह मनुष्य धन्य है जो इनके सम्पर्क आता है, वह वाणी धन्य है जो इनका स्तवन करती है और वे कान धन्य हैं जिनको इनके उपदेशामृत-पान करनेका अवसर मिलता है।

साधन-सिद्ध संतोंके अतिरिक्त परमात्मा जीवोंके प्रति दयापरवश होकर कभी-कभी उच्च कोटिके संतोंको, अपने खास पार्षदोंको—आधिकारिक पुरुषोंको भी संसारके उन दुःखी जीवोंका उद्धार करनेके लिये भेज दिया करते हैं। वे महापुरुष त्रितापानलसे जलते हुए जीवोंको समझा-बुझाकर, उनके सामने परम विशुद्ध आदर्श रखकर और उनकी यथायोग्य सेवा कर उनके हृदयोंमें परमात्मस्वरूपको जाननेकी इच्छा और परमात्माको प्राप्त करनेकी शुभाकाङ्क्षा उत्पन्न कर देते हैं और फिर उनको भगवत्-साक्षात्कारके योग्य बनाकर कृतार्थ कर देते हैं।

गुप्त संत और उनके कार्य

अधिकांश सच्चे संत प्रायः अपनेको लोगोंमें प्रकट नहीं करके ही जगत्‌में विचरण किया करते हैं। संत-परम्पराके परम प्रसिद्ध चिरंजीवी संत आज भी हैं और वे हमलोगोंके बीचमें आते भी हैं, पर हम उन्हें पहचान नहीं सकते। भिन्न-भिन्न स्तरोंमें भगवान्‌का कार्य करनेवाले ऐसे हजारों संत पृथ्वीपर हैं, जो लोकचक्षुसे परे रहकर अपना महत् कार्य कर रहे हैं। कहते हैं कि संतजगत्‌में सब कार्य नियमपूर्वक होते हैं। नये संतोंकी दीक्षा, पुरानोंके द्वारा विभिन्न कार्योंका सम्पादन, संतजगत्‌में शासन, नवीन कार्योंकी सूचना, जगत्‌के विपत्तिनिवारणकी व्यवस्था, प्रकृतिकी क्रियाओंद्वारा यथायोग्य दण्ड-विधान आदि महत्त्वपूर्ण कार्य सिद्ध संतोंके एक सुसंगठित मण्डल और उनकी विभिन्न अनेकों शाखाओंद्वारा संचालित होते रहते हैं। ऐसे संतोंके सर्वोपरि संचालक परम सद्‌गुरु भगवान् शंकर हैं, जो रुद्ररूपसे जगत्‌का संहार और सुन्दर शिवरूपसे उसका सदा कल्याण करते रहते हैं। उनकी अधीनतामें अनेकों सिद्ध-महात्मा संत पुरुष निरन्तर भगवल्लीलामें सहायक होकर भगवदाज्ञानुसार कार्य कर रहे हैं। इन संतोंको कुछ लेना है नहीं, पूजा करवानी नहीं, ख्याति और प्रशंसासे कोई सरोकार नहीं और लोगोंका प्रमाणपत्र न होनेसे इनका कोई नुकसान होता नहीं; फिर ये क्यों किसी बहिर्वेषमें जगत्‌के लोगोंके सामने प्रकट होकर अपना परिचय दें? हाँ, अधिकारी पुरुषको इनमेंसे किन्हीं-किन्हींके दर्शन आज भी होते हैं, हो सकते हैं। कहा जाता है कि देवर्षि नारद, सनकादि, भगवान् दत्तात्रेय, शुकदेव, मैत्रेय आदि प्राचीन और शंकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द, कबीर, नानक, तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास आदिसे लेकर रामकृष्ण परमहंस, विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभृति अर्वाचीन अनेकों संतोंके दर्शन आज भी उनके अन्तरङ्ग भक्तोंको होते हैं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

इन्हीं संतोंकी परम्परामें हमारे श्रीभाईजीका महनीय स्थान है, जिनका आविर्भाव भगवान्‌के 'विशेष कार्य'के लिये हुआ था––जैसा कि आगेके पृष्ठोंमें दी गयी उनकी 'जीवनयात्रा'से स्पष्ट होता है।

●

जिन तन मन प्राण दीन्हो सब मेरे हेत,
औरहू ममत्व बुद्धि आपनी उठाई है।
जागत हू सोवत हू गावत हैं मेरे गुण,
करत भजन-ध्यान दूसरे न काँई है॥

तिन के मैं पीछे लग्यो फिरत हूँ निसिदिन,
सुंदर कहत मेरी उन तें बड़ाई है।
वहै मेरे प्रिय, मैं हूँ उनके आधीन सदा,
संतन की महिमा तौ श्रीमुख सुनाई है॥

––संत सुन्दरदास

●

जीवनयात्रा

[भगवान्‌के लीला-चरित्रोंकी भाँति ही संतोंके जीवन-वृत्तका भी मन-बुद्धि-चित्त-द्वारा आकलन नहीं किया जा सकता। उसका भी शाखाचन्द्रन्यायसे संकेतमात्र ही होता है। भगवत्प्रेम ही भक्तका स्वरूप है और प्रियतम प्रभुकी रुचि ही उसका जीवन। यही जीवन था श्रीभाईजीका। उनकी जीवन-झाँकीको उनके सम्पर्कमें आये असंख्य बड़भागी सज्जनोंने देखा-सुना है—अपनी-अपनी भावनाके अनुसार उसकी अवधारणा की है। यह जीवन-वृत्त ऐसे ही अनेकों दर्शकोंके दर्शनका स्फुट संकलनमात्र है। संतके जीवनकी प्रत्येक घटना-क्रियाका विधान और संचालन होता है—लीलामयके द्वारा अपने किसी विशेष उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ही। लौकिक मन-बुद्धिकी पहुँच वहाँ कहाँ। अतः इस जीवन-वृत्तमें तथ्योंके चयनमें, स्थान, समय और नामके उल्लेखमें पाठकोंको यदि कहीं कोई भूल प्रतीत हो तो वे इस ओर ध्यान न दें। इस वृत्तसे भगवद्विश्वास, भगवत्प्रेम, स्नेह, सौहार्द, वात्सल्य और परहित-सुख-सम्पादनका पाठ हम पढ़ सकें—यही इस प्रयासका मूल उद्देश्य है।]

यात्रारम्भ

(संवत् १९४९—१९७५)

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

वंश-परिचय

शूरों, सतियों और संतोंकी पुण्यभूमि राजस्थानमें रतनगढ़ नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। यह अंग्रेजी राज्यमें बीकानेर राज्यका तहसीलस्तरीय शासन-केन्द्र था। इसमें मारवाड़ी अग्रवालोंके कई घराने शतियोंसे बसे हुए हैं, जिनमें गर्ग तथा बाँसल गोत्रके वैश्योंकी कुलीनता सर्व-स्वीकृत है। बाँसल गोत्रके इन्हीं राजस्थानी अग्रवालोंकी एक शाखा 'पोद्दार' नामसे अभिहित की जाती है। यह 'अल्ल' अथवा 'उपाधि' वृत्तिमूलक है। इस वंशके पूर्वपुरुषोंको मध्यकालमें हिंदू तथा मुसलमान सामन्तोंके यहाँ असाधारण ईमानदारीके कारण 'पोत' अथवा खजानेका काम सौंपा जाता था। कालान्तरमें यह वृत्ति ही उनकी वंशानुगत पदवी हो गयी*। भाईजीका आविर्भाव रतनगढ़के इन्हीं पोद्दारोंके एक परिवारमें हुआ था। रतनगढ़की इस शाखाके प्रवर्तक सेठ साखीराम थे—

* ईमानदारी तो इस वंशके व्यक्ति-व्यक्तिमें समायी हुई थी। चरित्रनायकके पूज्य पिताश्री तो ईमानदारीकी प्रतिमूर्ति थे। अपने पूज्य पिताके सम्बन्धमें एक बार चर्चा करते हुए श्रीभाईजीने कहा था—

"नेक कमाईका पैसा ही पूज्य पिताजीको स्वीकार था। दूसरेका पैसा अथवा दूसरेकी चीज भूलसे भी घरमें आ न जाय—इसका वे बड़ा ध्यान रखते थे। उनकी मान्यता थी कि भूलसे भी आयी हुई या रही हुई परायी चीज घरको बरबाद करके जायगी। जबतक परायी चीज लौटा न दी जाती, तबतक उनके चित्तको चैन नहीं मिलता। एक दिनकी घटना है, कलकत्तामें कपड़ेका व्यापार था। एक पुर्जेमें भूलसे १००) (सौ रुपये) ज्यादा जोड़में लग गये। भुगतान देनेवाली पार्टीके यहाँ भी भूल हो गयी। वे भी इस भूलको पकड़ नहीं सके और भूल-ही-भूलमें पूज्य पिताजीके पास हिसाबसे १००) ज्यादा आ गये। पूज्य पिताजीके यहाँ श्रीकेवलसिह नामक एक व्यक्ति हिसाब-किताबका काम करता था। दो दिन बाद उसने हिसाबकी जाँच की तो १००)की भूल ध्यानमें आयी और उसने पिताजीको सारी बात बता दी। पूज्य पिताजीने कहा—'१००) ज्यादा क्यों आ गये? लाये ही क्यों?'

"श्रीकेवलसिहने बताया—'पुर्जे लगानेवालेने हिसाबमें भूल कर दी और उस बेचारेने ठीकसे देखा नहीं।'

"पूज्य पिताजीने कहा—'पुर्जेको ठीक प्रकारसे देखना चाहिये था। खैर, अभी जाओ और १००) लौटाओ।'

"श्रीकेवलसिहने कहा—'अब तो शाम हो गयी है।'

"वह पूरा बोल भी नहीं पाया था कि पिताजीने कहा—'शाम हो गयी तो क्या हुआ? अभी देकर आओ। देकर आये बिना हम रोटी नहीं खायेंगे। जबतक यह पैसा हमारे पास रहेगा, हम रोटी नहीं खायेंगे। यह पैसा हमारे घरमें दो दिन रहा, अतः दो दिनका ब्याज भी देकर आओ।"
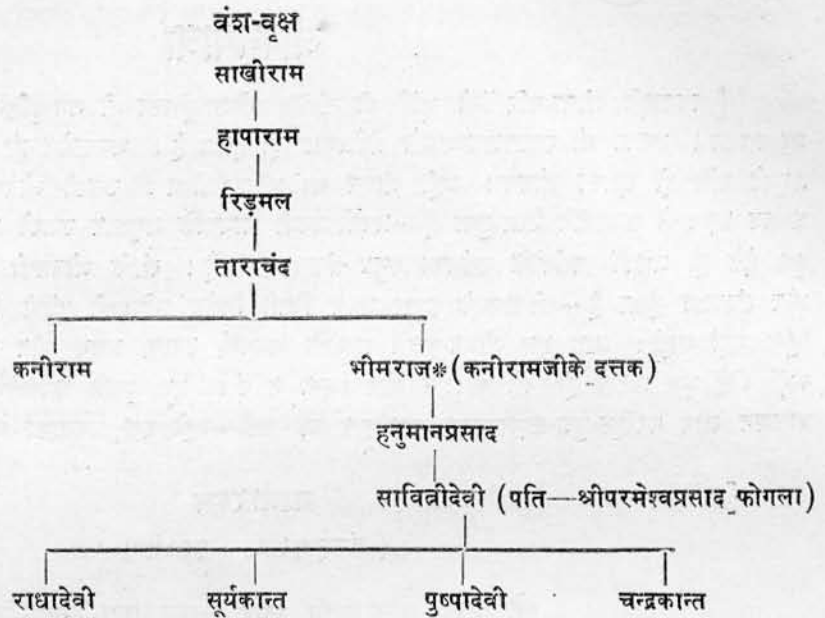
श्रीहनुमानप्रसादजीके पितामह सेठ ताराचंदजीकी गणना नगरके इने-गिने व्यापारियोंमें थी। वे बड़े ही धर्म-प्राण थे। उनके दो विवाह हुए थे और दोनों स्त्रियोंसे एक-एक पुत्र थे—कनीराम और भीमराज। इनमें कनीराम पहली पत्नीसे थे, भीमराज दूसरी पत्नीसे। पिताने बाल्यावस्थामें ही इन दोनोंको पैतृक व्यवसायमें लगा दिया। वयस्क होनेपर बड़े लड़के कनीरामने राजस्थानसे बाहर जाकर व्यापार करनेकी इच्छा व्यक्त की। ताराचंदजी उनकी बुद्धिमत्ता और अध्यवसायसे आश्वस्त थे, अतः उन्होंने सहर्ष इसकी अनुमति दे दी।

पितामहकी आसाम-यात्रा

उन दिनों राजस्थानमें यातायातकी बहुत कम सुविधाएँ उपलब्ध थीं। रतनगढ़से निकटतम रेलवे स्टेशन वर्तमान फुलेरा जंकशनका पार्श्ववर्ती कुचामनरोड था। कहीं भी बाहर जानेके लिये रतनगढ़वासियोंको ऊँट या ऊँट गाड़ीपर बैठकर तीन दिनकी दुर्गम तथा खतरनाक यात्रा करके वहाँ पहुँचना पड़ता था। युवक कनीरामको अपने कुछ सम्बन्धियोंसे पता चला कि आसाममें व्यापार फैलानेका पर्याप्त क्षेत्र है। अतः धनोपार्जनकी आशामें पथकी कठिनाइयोंकी परवाह न करते हुए वे आसामके लिये रवाना हो गये और कई दिनोंकी रेलयात्राके पश्चात् शिलंग पहुँचे। रतनगढ़से शिलंग जानेवाले मारवाड़ी व्यापारियोंमें ये सर्वप्रथम थे। कालान्तरमें इन्हींकी प्रेरणासे रतनगढ़के और भी परिवारोंको शिलंग जाकर व्यापार आयोजित करनेका सुयोग प्राप्त हुआ।

व्यापार-स्थापना

शिलंग पहुँचनेके थोड़े ही दिनों बाद इन्हें सेनाको खाद्य-सामग्री पहुँचानेका ठेका मिल गया। काम बहुत बड़ा था। उसे अकेले सँभाल पानेमें कठिनाईका अनुभव कर कनीरामजीने रतनगढ़से अपने पिता ताराचंदजी और छोटे भाई भीमराजको भी आसाम बुला लिया। पूर्वी कमानके विभिन्न सेना-केन्द्रोंपर सामग्री पहुँचानेकी सुविधाके विचारसे कुछ दिनों बाद उन्होंने गौहाटी तथा कलकत्तामें दो नयी शाखाएँ खोल दीं। मुख्य कार्यालय शिलंगमें ही रखा। स्थायीरूपसे परिवारके साथ रहते हुए ये वहींसे सारा कारोबार देखते रहे।

* कनीरामजीके कोई संतान न थी, अतः उन्होंने अपने छोटे भाई भीमराजको गोद ले लिया। इससे दत्तक पुत्रके रूपमें ये ही उनके उत्तराधिकारी हुए।

आनुवंशिक धर्माचरण

कनीरामजी जितने कुशल व्यापारी थे, उतने ही आस्थावान् गृहस्थ भी। रामचरितमानसमें उनकी अगाध श्रद्धा थी। वे उसका नियमितरूपसे पाठ किये बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करते थे। दैवयोगसे उनकी धर्मपत्नी रामकौर देवी भी सात्विक विचारकी थीं। सामान्य पढ़ी-लिखी होनेपर भी सत्सङ्ग तथा स्वाध्यायसे शास्त्रका मर्म ग्रहण करनेकी उन्होंने अद्‌भुत क्षमता उपार्जित कर ली थी। श्रीहनुमान्‌जी उनके इष्ट थे। मानस-पाठ और निरन्तर नामजप किया करती थीं। वेदान्तमें उनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। वे बड़ी मितव्ययी थीं। गृहस्थीके खर्चोंमें कमी करके, बचे हुए पैसे सत्कार्योंमें व्यय करना उनका स्वभाव बन गया था। प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमाको ब्राह्मण-विद्यार्थी-भोजन करानेका उनका नियम था। वे बड़ी ही साहसी, सहिष्णु तथा नियमपालनमें कठोर थीं। स्त्री होते हुए भी निर्भयता उनका नैसर्गिक गुण था। इसके साथ उनमें नम्रता इतनी थी कि प्यार और सेवासे रूखे और असंतुष्ट व्यक्तिको अपना बना लेनेमें उन्हें देर नहीं लगती थी। इससे पास-पड़ोसके कई परिवारोंमें उनकी धाक थी। जन्म-विवाह, मरनी-करनी आदि अवसरोंपर इन घरोंमें भी सामाजिक कृत्योंकी व्यवस्थाका भार उन्हींपर रहता था। वे स्वयं अत्यन्त परिश्रमशील थीं और परिवारके सभी लोगोंको निरन्तर काममें लगाये रखती थीं। इन असाधारण गुणोंके कारण घरकी वास्तविक कर्त्ता वे ही थीं, कनीरामजी भर्ता थे और परिवारके सदस्य इन दोनोंके परिश्रमके भोक्ता मात्र।

रामकौर देवीकी कार्य-कुशलतासे कनीरामजीको गृहप्रबन्धसे निश्चिन्त होकर अपना सारा समय और शक्ति व्यापारमें लगानेका अवसर मिला। दम्पतिकी धर्मनिष्ठा और कर्त्तव्यपरायणतासे कारबारमें आशातीत सफलता मिली, जिससे अल्पकालमें ही पोद्दार-संस्थान शिलंगकी एक सम्पन्न व्यापारिक कोठी बन गया।

समस्या और समाधान

वयके साथ वैभवकी अनगिनत सीढ़ियाँ पार करते-करते सेठ कनीराम तीसरेपनमें ही थकावटका अनुभव करने लगे। पर अबतक उन्हें संतानका मुख देखनेका सौभाग्य प्राप्त न हो सका, भविष्यमें भी इसकी आशा मृगमरीचिकामात्र थी।

अपने पिता सेठ ताराचंद तथा कुछ अन्य विशिष्ट सम्बन्धियोंकी सम्मति प्राप्तकर कनीरामजीने अपने छोटे भाई भीमराजको दत्तक पुत्र घोषित करके उन्हें अपनी सारी सम्पत्तिका अधिकारी बना दिया। भीमराजजी बड़े भाई कनीरामजीको ही अपना धर्मपिता और भाभी रामकौर देवीको धर्ममाता मानकर सेवा करने लगे। इस भावसम्बन्धका वे आजीवन निर्वाह करते रहे।

भीमराजका विवाह हो चुका था। उनकी पत्नी रिखीबाईको रामकौर देवीका पुत्रवधूके रूपमें अगाध स्नेह प्राप्त हुआ। व्यापारके सिलसिलेमें उन्हें कलकत्ता रहना पड़ता था, किंतु अब कनीरामजी और रामकौर देवीके वात्सल्यसे आकृष्ट होकर वे दोनों बराबर शिलंग आते-जाते रहते। कभी-कभी माताकी सेवाके लिये भीमराजजी पत्नीको शिलंग छोड़ जाते थे। उनके आत्मीयतापूर्ण व्यवहारसे रामकौर देवी और कनीरामजीको संतानहीन होनेका दुःख भूल गया।

एक नयी चिन्ता

इस प्रकार सुखके प्रकाशमय दिवस बीतते-बीतते कनीरामजीकी अवस्था ढल चली। रामकौर देवीको इसके साथ ही एक अन्य चिन्ताने आ घेरा। भीमराजका विवाह हुए कई वर्ष बीत चुके थे, किंतु कोई संतान हुई ही नहीं। रामकौर देवी इस आशङ्कासे निरन्तर भयभीत रहने लगीं कि कहीं उनकी भाँति पुत्रवधूकी भी कोख खाली न रह जाय। इस कुयोगको टालनेके लिये उनसे जो कुछ दान-पुण्य बन पड़ता, वे बराबर करती थीं। किंतु कार्य सिद्ध होते न देखकर उनकी बेचैनी सीमाको पार करने लगी।

शिलंगमें सब प्रकारकी भौतिक सुविधाएँ प्राप्त थीं, फिर भी था वह परदेस ही। रामकौर देवीका साधु-संतोंमें बहुत विश्वास था और अवतारोंमें अगाध निष्ठा थी। किंतु राजस्थानी दम्पतिके लिये आसामके उस नये वातावरणमें आस्थाकी स्थापना एवं विकासके लिये उपयुक्त आधार प्रस्तुत ही नहीं हो पाता था। उस प्रदेशके धार्मिक आचार-विचार, उनकी जन्मभूमिकी रीति-नीतिसे सर्वथा भिन्न थे। अतः प्रकृत प्रसङ्गमें वहाँके लोगोंसे किसी प्रकारकी सहायता-प्राप्तिकी आशा न देखकर वे पतिकी अनुमति प्राप्तकर एक नौकरको साथ लेकर रतनगढ़ चली गयीं। यहाँ स्वजनोंतकसे अपनी मनोव्यथा व्यक्त न कर वे उसके शमनार्थ प्रकृतिके अनुकूल साधनोंके अनुसंधानमें लीन रहने लगीं।

आध्यात्मिक उपचार

पंद्रहवीं शताब्दीके आरम्भसे ही रतनगढ़की प्रसिद्धि नाथपंथी साधनाके विशिष्ट केन्द्रके रूपमें रही है। इस समय यह नाथपंथ तथा वैष्णव-सम्प्रदायके अनेक लब्धप्रतिष्ठ साधकोंसे विभूषित था। नाथ-योगियोंमें मोतीनाथजी (टूँटिया महाराज), लक्ष्मीनाथजी, मंगलनाथजी तथा बखन्नाथजी अपनी अलौकिक सिद्धियोंके लिये विख्यात थे और स्थानीय निम्बार्क-पीठके आचार्य मेहरदासजी वैष्णव-भक्तिसाधनाके पुरस्कर्ताके रूपमें प्रतिष्ठित थे। रामकौर देवी रतनगढ़में अपने पूर्व निवास-कालसे ही इन संतोंकी यथोचित सेवा करती रहती थीं, इसलिये इनपर सभी कृपाभाव रखते थे। सालासरके प्रसिद्ध हनुमान्जी उनके इष्टदेव थे। वे उनका स्मरण करती हुई नामजपके साथ ही नित्य रामचरितमानस और हनुमान-कवचका पाठ करती थीं।

रतनगढ़के इस प्रवास-कालमें रामकौर देवीने अपने गुरु बाबा मेहरदासजीकी प्रेरणासे अभीष्ट-सिद्धिके लिये स्थानीय लक्ष्मीनारायण-मन्दिरमें विष्णुसहस्रनामके १०८ सम्पुट पाठका आयोजन किया। अनुष्ठान समाप्त होनेपर यथोचित रीतिसे साधु-ब्राह्मण-भोजन तथा दरिद्रनारायण-सेवाकी व्यवस्था हुई।

सत्सङ्ग और पुण्यकर्मानुष्ठानका क्रम महीनों चलता रहा। इसी बीच एक दिन अध्यात्म-चर्चाके ही प्रसङ्गमें बाबा बखन्नाथजीको भान हुआ कि रामकौर देवी भीमराजके संतानहीन रहनेसे दुःखी रहती है। उन्होंने समय पाकर यह बात टूँटिया महाराजके सामने रखी और प्रकारान्तरसे रामकौर देवीकी इच्छापूर्तिका प्रस्ताव किया। टूँटिया महाराज रामकौर देवीको सम्बोधित करते हुए बोले—'और कौन, मैं ही आ जाऊँगा। तेरे पौत्र होगा, असामान्य।' नाथजीने इसके साथ ही रामकौर देवीसे भावी संतानके लक्षण बताते हुए कहा कि 'जन्मके समय बालकके शरीरमें ये चिह्न होंगे—मस्तकपर श्रीरेखा, कंधोंपर बाल, दाहिनी जङ्घापर काला तिल और मुँहमें एक तार, जिसे अँगुली डालकर निकालनेपर ही वह रोयेगा।' इसके थोड़े ही दिनों बाद टूँटिया महाराजका शरीर छूट गया। इस प्रकार मातृभूमिमें स्वजनों तथा संतोंकी शीतल छायामें कई महीने निवास कर रामकौर देवी मनोकामना-सिद्धिकी आशा लेकर प्रसन्न-हृदय शिलंग लौट गयीं।

इन्हीं दिनों रतनगढ़में देवी रामकौरने बाबा मेहरदासजीसे पौत्र-रत्न-प्राप्तिके लिये एक अनुष्ठान करवाया। बाबा मेहरदासजी निम्बार्क-सम्प्रदायके थे। अनुष्ठानके विधिवत् पूर्ण होते ही बाबा मेहरदासजीने कहा—'रामकौर ! तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। यह अभिमन्त्रित जल तू अपनी बहू रिखीबाईको पिला देना। निश्चय ही एक भगवद्भक्त धर्मात्मा पौत्रकी प्राप्ति होगी, जो वंशकी कीर्तिको उज्ज्वल करेगा। उसका नाम हनुमान्जीके नामपर रखना।'

जन्म

शिलंग पहुँचनेके कुछ समय बाद उन्हें ज्ञात हुआ कि रिखीबाई गर्भवती है। इस संवादने निराश कुटुम्बियोंके मनमें उत्साहकी एक नयी चेतना भर दी। समय पूरा होनेपर रामकौर देवीकी चिर आकाङ्क्षा बलवती हुई। आश्विन कृष्ण १२, शनिवार सं० १९४६ (१७ सितम्बर १८९२)को रिखीबाईने पुत्ररत्न प्राप्त किया। यह सुयोग हनुमान्जीके ही दिन शनिवारको संघटित हुआ।

नवजात शिशुके विचित्र लक्षण

सौरगृहमें उपस्थित स्त्रियोंको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नवजात बालकके शरीरपर असाधारण लक्षण थे—माथेपर श्रीकी तरहका लाल चिह्न था, कंधोंपर केश थे और दाहिनी जङ्घापर काले तिल-जैसा निशान था। इन बाह्य लक्षणोंके अतिरिक्त एक अन्य आश्चर्यजनक बात देखनेमें आयी कि वह जन्म लेनेके बाद रोया नहीं। बादमें एक कुशल स्त्रीके द्वारा मुँहमें अँगुली डालकर कोई तार-जैसी मांसनलिका निकालनेपर उसने सामान्य बालकोंकी भाँति रोना आरम्भ किया।

नामकरण

दादी रामकौर देवीने अपनी हनुमत्-निष्ठाके अनुकूल बालकको इष्टदेवकी कृपाका प्रसाद मानकर उसका नाम 'हनुमानबख्श' (अर्थात् 'हनुमान्‌जीका दिया हुआ') रखा। पीछे बख्शका स्थान 'प्रसाद'ने ले लिया। प्यारका नाम 'मन्नालाल' पड़ा, जिसे स्वजनों एवं स्नेहियोंके मुखने 'मन्नू' अथवा 'मानिया'का रूप देकर इनके बाल-कलेवरकी स्थायी संज्ञा बना दी।

रामकौर देवी यह न भूलीं कि हनुमानप्रसाद टूँटिया बाबाका ही प्रतिरूप है। बड़े होनेपर भी वे बराबर इनसे कहा करती थीं—'तू नाथजीके ही आशीर्वादसे मिला है।'

मातृवियोग

इस मङ्गलमयी घटनाके साथ ही पोद्दार-परिवारके अबाध सुखभोगकी यवनिका गिरी। आपत्तियोंके दृश्य आरम्भ हुए। प्रपौत्रके आविर्भावके दो मास बाद ८४ वर्षकी दीर्घ आयु भोगकर सेठ ताराचंद परलोक सिधारे। भरा-पूरा परिवार छोड़कर एक सौभाग्यशाली गृहस्थकी भाँति उनका लोकान्तरण किसी भी दृष्टिसे असामयिक तथा अप्रत्याशित न था। किंतु इसके दो वर्ष बाद ही एक घटना ऐसी घटी, जिसने सारे परिवारको अथाह शोकसागरमें डुबा दिया। श्रावण कृष्ण १, सं० १९५१को सामान्य बीमारीके बाद माता रिखीबाई अबोध शिशुको नियतिकी गोदमें रखकर दिवंगत हो गयीं। मातृहीन शिशुके पालन-पोषणका सारा भार दादीपर आ गया। अबतक वे भावनासे ही उसका स्नेह-पोषण करती थीं, किंतु परिवर्तित परिस्थितिमें शिशुके शरीर-पोषणका भी दायित्व उनपर आ पड़ा। अतः बालक जब जानने-पहचानने योग्य हुआ तो मातारूपमें उसने दादी रामकौर देवीको ही पाया। उसने उन्हें ही 'माँ' कहना आरम्भ किया और यह सम्बोधन जीवनपर्यन्त चलता रहा। पिताने गृहस्थी चलानेके लिये दूसरा विवाह किया। विमाता रामदेवी भी 'मानिया'के पालनमें पर्याप्त रुचि लेती थी, किंतु उनके स्नेहमें स्वभावतः नैसर्गिकताका अभाव था। बेचारी जन्मदात्री माँका हृदय कहाँसे लाती।

भीषण रोगसे मुक्ति

मातृक्रोड़से वञ्चित होनेके लगभग एक वर्ष बाद सं० १९५३में बालक हनुमानप्रसाद सहसा सूखारोगसे आक्रान्त हो गया। उस समय उसकी आयु तीन वर्षसे कुछ अधिक थी। रामकौर देवी उसे लेकर शिलंगसे रतनगढ़ आयी हुई थीं। उन्होंने स्थानीय चिकित्सकोंकी राय लेकर हर सम्भव प्रकारसे उपचारका प्रबन्ध किया, किंतु स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ती चली गयी। अन्तमें सभी ओरसे निराश होकर उन्होंने देवी-देवताओं तथा संत-महात्माओंकी शरण ली और पूजापाठ, जप-दान-अनुष्ठानादिका मार्ग अपनाया। ईश्वरकी कृपासे रोगमुक्तिके लक्षण दिखलायी देने लगे और शनैः-शनैः बालक पूर्णतया स्वस्थ हो गया। तब दादी उसे लेकर शिलंग चली गयी।*

भूकम्पसे प्राण-रक्षा

बालक हनुमानप्रसादका रोग-जर्जर शरीर अभी पूर्णरूपसे स्वस्थ नहीं हो पाया था कि उसकी जीवन-

* रामकौर देवीद्वारा अपनी बाल्यावस्थामें की गयी सेवाओंका कृतज्ञतापूर्ण स्मरण करते हुए एक स्थानपर भाईजी लिखते हैं—"माताजीकी बहुत छोटी उम्रमें मृत्यु हो जानेसे मेरी दादीने मुझको पाला। उनका मुझपर जो स्नेह था एवं उन्होंने मेरे लिये जितने कष्ट सहे, उनका बदला मैं हजार जन्म सेवा करके भी नहीं चुका सकता।"—'ईश्वरकी सत्ता और महत्ता'

नौका एक घातक भँवरमें फँस गयी। सं० १९५३में आसाममें एक भीषण भूकम्प आया। उस समय उसकी आयु लगभग चार वर्षकी थी। यह अप्रत्याशित दुर्घटना संध्याके लगभग ५ बजे घटी। सारा शिलंग कुछ ही क्षणोंमें ध्वंसावशेषमें परिणत हो गया। बड़े-बड़े प्रासाद भूलुण्ठित हो मलबेके नीचे दबे हुए लोगोंके आर्तनादसे श्मशान-से भयानक लगने लगे। स्थान-स्थानपर धँसी और फटी हुई पृथ्वी प्रलयका-सा दृश्य उपस्थित करती थी।

कनीरामजीकी कोठी पूरी तरह नष्ट हो गयी। उसके भीतर अतिथिरूपमें आयी हुई उनकी बहिनकी दो अबोध संतानें--एक कन्या और एक पुत्र दब गये। ये दोनों ही हनुमानप्रसादके समवयस्क थे। उनकी बहिन और रामकौर देवी किसी प्रकार बच निकले। बालक हनुमानप्रसाद उस समय भजनलाल श्रीनिवासके गोलेमें अकेले ही किसी व्रतके उद्यापनमें प्रसाद ग्रहण करनेके लिये गया हुआ था। वह गोलेके पीछे रसोईघरमेंसे भोजन करके निकल ही रहा था कि भूकम्पके धक्केसे पृथ्वी काँपने लगी और कड़ाकेके शब्दके साथ पत्थरकी वर्षा होने लगी। मकानकी दीवारें, छत देखते-देखते पृथ्वी चूमने लगीं।

हनुमानप्रसाद प्राणोंका संकट देखकर अनवरत चिल्लाता रहा। उसका भी शरीर हजारों शिलंग-वासियोंकी भाँति क्रूर नियतिचक्रमें पिस गया होता, किंतु जगत्पिताके अदृश्य हाथोंने उसके चारों ओर दीवारकी भाँति खड़े पत्थर, उनके ऊपर एक पत्थरकी चौड़ी पट्टी और उसके ऊपर असंख्य पत्थर रखकर सुरक्षित गुफा बना दी, जिसमें वायुका प्रवेश भी कठिनाईसे सम्भव था। भूकम्प बंद होनेपर घोर वर्षा हुई। उसी बीच निकटस्थ गोलेमें आग लग गयी। पत्थर और पानीका उत्पात बंद होनेके बाद दादा कनीराम और दादी रामकौर देवी तीनों बालकोंका पता लगानेके लिये बाहर निकले। बहिनके दोनों बच्चे गोलेमें पत्थरोंके नीचे मरे मिले। पास ही दूसरी बहिनके पौत्र श्रीराम गोयन्दकाका भी शव मलबेके नीचे दबा मिला। इन दृश्योंने उनके धैर्यका बाँध तोड़ दिया। अपने बुढ़ापेकी लकड़ी और कुलकी एकमात्र आशा-किरणके अस्तित्वके प्रति गहरी आशङ्काने उन्हें चेतनाशून्य-सा कर दिया। इसी स्थितिमें रोते-बिलखते वे दोनों श्रीनिवासके गोलेके पास आये। अन्तःप्रेरणासे साहस बटोरकर कनीरामजी जोर-जोरसे 'मन्नू-मन्नू' पुकारने लगे। मलबेसे घिरे रोते हुए नन्हे-से बालकके कानोंमें पड़े इन शब्दोंने संजीवनी बूटीका काम किया। वह साहस बटोरकर चिल्लाया--'यहाँ हूँ, जल्दी निकालिये।' शब्दोंके सहारे स्थानका संधान पाते ही सबने जुटकर कुछ ही क्षणोंमें सारा मलबा हटा दिया। देवनिर्मित गुफाका द्वार खुलते ही 'मन्नू' दौड़कर बाबाकी गोदीमें चढ़ गया। खोयी हुई जीवन-निधिको पाकर कनीरामजीने उसे हृदयसे चिपका लिया। वियोग-दुःखके उद्रेकसे दोनों एक-दूसरेकी अन्तर्ज्वालाको आँसुओंकी धारासे सींचते रहे। इस बीच रामकौर देवी अपने इष्टदेव श्रीहनुमान्‌जीकी अहैतुकी कृपाका स्मरण कर मौन भावाञ्जलि अर्पित करती रही थीं। इस घटनाको देखकर उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि अपने प्रसादरूपमें दिये गये बालकके प्राणोंकी रक्षा संकट-मोचन हनुमान्‌ने स्वयं उपस्थित होकर की है।

शिलंगसे कलकत्ता स्थानान्तरण

भूकम्पजनित भयानक तबाही, अपार आर्थिक हानि एवं कई स्वजनोंकी मृत्युसे कनीरामजीके हृदयपर गहरा धक्का लगा*। उनका मन शिलंगसे उचट गया। उन्होंने वहाँका सारा धंधा समेटकर परिवारसहित कलकत्ता चले जानेका निश्चय किया। किंतु कारोबार लंबा था, उसे इतनी जल्दी समेटनेमें भारी घाटेका भय था। इस चिन्ताने उन्हें और उद्विग्न कर दिया। शरीर उत्तरोत्तर क्षीण होता गया और कलकत्ता जानेकी योजनाके कार्यान्वित होनेके पूर्व ही मार्गशीर्ष शुक्ल १, सं० १९५६को उनका परलोकवास हो गया। धर्मपिताके दिवंगत होनेसे भीमराजजी असहाय हो गये। अकेले अपने बूतेपर शिलंग, कलकत्ता और गौहाटी— तीनों स्थानोंका व्यापार चलाना उनके लिये सम्भव नहीं था। अतः सं० १९५८में शिलंगकी दूकान बंद करके वे सपरिवार

* भूकम्पमें कनीरामजीके घर तथा दूकानमें रखा लाखों रुपयोंका माल नष्ट हो गया था···यहाँतक कि खानेके लिये भी कोई वस्तु नहीं बच रही थी।

कलकत्ता चले आये। इसके अनन्तर रामकौर देवी बालक हनुमानप्रसादको साथ लेकर अधिकांश रतनगढ़में रहने लगीं।

शिक्षा

पतिके देहावसानके बाद रामकौर देवीकी भी शिलंगवाससे अरुचि हो गयी। वहाँपर अब उनके साथ मात्र पौत्र रह गया। उसके पिता श्रीभीमराज सपरिवार कलकत्तामें रहते थे। शोकसंतप्त मनके लिये एकान्तवास असह्य हो गया। रामकौर देवी मन्नूको साथ लेकर कलकत्ता चली आयीं और उसका नाम विशुद्धानन्द स्कूलमें लिखा दिया; किंतु यह शिक्षा-व्यवस्था टिक नहीं पायी। कलकत्तेमें रामकौर देवीका मन नहीं लगा। इस आपत्ति-कालमें सान्त्वना-प्राप्तिका एकमात्र स्थान उनकी दृष्टिमें राजस्थान ही दिखायी पड़ा। निदान, पौत्रको साथ लेकर वे रतनगढ़ चली आयीं।

हनुमानप्रसादकी आयु अब लगभग ६ वर्षकी हो चुकी थी। किंतु आपत्तिजनित पारिवारिक अव्यवस्था तथा शिलंगसे कलकत्ता और रतनगढ़के आवागमनके झमेलेमें फँसे रहनेके कारण रामकौर देवी उनकी पढ़ाईकी व्यवस्था नहीं कर पायी थीं। इस ओर ध्यान देना आवश्यक था। अतः पतिवियोगका दुःख भूलकर वे कर्त्तव्य-पालनमें संलग्न हो गयीं।

(महाजनी)

रतनगढ़में एक सरकारी प्राइमरी स्कूल था। उसके अतिरिक्त निजी तौरसे शिक्षा देनेवाले गुरुओंकी कई घरेलू पाठशालाएँ थीं। इनमें हिंदीके साथ ही महाजनीकी पढ़ाई होती थी। सरकारी स्कूलकी अपेक्षा इन व्यक्तिगत पाठशालाओंमें छात्रोंपर अधिक ध्यान दिया जाता था। पैतृक व्यवसायमें योग देनेके लिये भी महाजनीका ज्ञान आवश्यक था। अतः हनुमानप्रसादका प्रवेश इन्हीं पाठशालाओंमेंसे एक पाठशालामें करा दिया गया। वह 'जोरजी'की पाठशाला कही जाती थी। इन गुरुजीका वास्तविक नाम जोरावरमल था। 'जोरजी' उसीका लोक-व्यवहृत संक्षिप्त रूप था। यहाँ बालक हनुमानप्रसादको महाजनीके साथ हिंदी और गणितका ज्ञान कराया गया। रोकड़-खाता आदि लिखनेका सामान्य ज्ञान इन्होंने यहीं प्राप्त किया। आगे चलकर कलकत्ता और बम्बईके व्यापारिक जीवनमें महाजनीका यह आरम्भिक ज्ञान बहुत समृद्ध हो गया। व्यक्तिगत प्रयाससे इन्होंने कालान्तरमें महाजनीकी अनेक लिपियों—बीकानेरी, जैसलमेरी, भिवानीवालोंकी, हरियाणवी आदिके भी पढ़ने और लिखनेमें दक्षता प्राप्त कर ली।

(उर्दू)

रामकौर देवीका मायका अमृतसरमें था। नैहरवालोंका अनुरोध वर्षोंसे इन्हें अमृतसर बुलानेका चल रहा था। सं० १९५७में ये पौत्रको लेकर अमृतसर गयीं। वहाँ उसके पढ़ानेकी चिन्ता हुई। रतनगढ़में पढ़ाईका जो क्रम चल रहा था, उसके टूट जानेसे बालकका मानसिक विकास अवरुद्ध होनेकी आशङ्का थी। स्कूलोंमें उसके प्रवेशके सम्बन्धमें पता लगानेपर भाषाकी समस्या सामने आयी। उन दिनों पंजाबमें उर्दू भाषाका बोलबाला था। प्रारम्भिक स्तरसे लेकर उच्च कक्षाओंतक उसीका प्राधान्य था। हनुमानप्रसादका प्रवेश जिस पाठशालामें हुआ, वह इसका अपवाद न थी। दादीके आग्रहसे तथा उनके भाईके प्रभावसे उस स्कूलका शिक्षक-वर्ग हनुमानप्रसादकी शिक्षामें अतिरिक्त रुचि लेता था। परंतु उर्दू भाषाके सीखनेमें इनका मन ही नहीं लगता था। इनके अबतकके सारे पैतृक तथा सामाजिक संस्कार इसके विपरीत थे। अतः एक महीनेके अनवरत परिश्रमके बाद भी शिक्षक इन्हें उर्दू वर्णमालाकी समुचित जानकारी करानेमें असफल रहे। भाईजीको इस आरम्भिक असमर्थतासे उर्दू लिपि न सीख पानेका परवर्ती जीवनमें बराबर खेद बना रहा।

(संस्कृत)

यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि आधुनिक विश्वमें गीता-तत्त्व एवं गीता-साहित्यके प्रख्यात वेत्ता तथा प्रचारक श्रीहनुमानप्रसादजीकी संस्कृत-शिक्षाका सूत्रपात गीताके ही माध्यमसे छः वर्षकी अबोधावस्थामें हुआ और वह

भी किसी पाठशाला या संस्कृत विद्वान्के सांनिध्यमें न होकर एक विद्वान् महात्माके आश्रममें उन्हींके द्वारा हुआ। श्रीबखन्नाथजी दर्शनार्थ उपस्थित होनेवाले श्रद्धालुओंको श्रीमद्भगवद्गीता तथा विष्णुसहस्रनामके पाठ तथा अध्ययन-का उपदेश करते थे। इसी परिपाटीके अनुसार उन्होंने सहजरूपसे बालक हनुमानप्रसादको गीता पढ़ाना प्रारम्भ किया था।

दादी रामकौर देवी अपने रतनगढ़-निवासके समय संत श्रीबखन्नाथजीके पास नित्य सत्सङ्गके लिये जाया करती थीं। साथमें बालक हनुमानप्रसाद भी रहता था। नाथजीकी इस मातृहीन बालकपर विशेष कृपा रहती थी। आश्रम-भूमिपर झड़बेरीकी कई एक झाड़ियाँ थीं। उनके फलोंमें अद्भुत मिठास होती थी। किंतु नाथजीके डरसे बिना आज्ञा लिये कोई उन्हें तोड़ नहीं सकता था। दादी तो सत्सङ्गमें व्यस्त रहती, किंतु हनुमानप्रसादका मन बेरोंके लिये ललचाया रहता। नाथजी इनकी इच्छा देखकर पूछते—'बेर खाओगे?' स्वीकारात्मक उत्तर पाकर वे इन्हें झाड़ियोंसे तोड़कर बेर खानेकी अनुमति दे देते। मनचाही वस्तु पाकर बालक हनुमानप्रसाद उछल-उछलकर झाड़ियोंसे पके बेर तोड़ता और खाकर आनन्दित होता। कभी-कभी दादीके साथ इसके आश्रमपर पहुँचनेके पहले ही नाथजी पके बेर तुड़वाकर अपने पास रख लेते थे और आनेपर थोड़े-थोड़े करके देते थे। इस प्रकार नाथजीसे हनुमानप्रसादकी आन्तरिक निकटता बढ़ती गयी और धीरे-धीरे उनसे इसका भय छूट गया। बखन्नाथजीने इस आत्मीयताका लाभ उठानेकी बात सोची। अब जब भी अपनी दादीके साथ ये नाथजीके आश्रममें जाते, वे पहले गीताका एक श्लोक स्वयं कहते, फिर उसे इनसे दुहरवाते। कभी इन्हें उद्विग्न देखकर कहते—'बेर खाकर आ जाओ, पीछे गीता पढ़ना।' इस क्रमसे गीताका पाठ चलने लगा। नाथजीकी यह पद्धति उपयोगी सिद्ध हुई। 'मन्नू'ने एक वर्षके भीतर सारी गीता कण्ठस्थ करके नाथजीको सुना दी। पौत्रकी अद्भुत प्रतिभा तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति देखकर दादीको अपार प्रसन्नता हुई। इस छोटी उम्रमें भी ये गीताके क्लिष्ट शब्दोंका शुद्ध उच्चारण कर लेते थे, केवल एक शब्द कहनेमें जबान लटपटा जाती थी और वह था निम्नाङ्कित श्लोकका 'अश्वत्थामा' शब्द—

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥

(गीता १। ८)

इसे वे 'अश्वस्थामा' कह जाते थे। नाथजी 'मन्नू'को बार-बार सिखाते—कभी पुचकारकर, कभी आँख दिखाकर और कभी कानमें कहकर—"अश्वस्थामा नहीं, छोरा! उच्चारण करो 'अश्वत्थामा'।" किंतु उच्चारण-दोष अपने स्थानसे तिलभर भी हटनेका नाम न लेता।*

आठ वर्षकी आयुतक रतनगढ़में बाबा बखन्नाथके सांनिध्यमें गीतापाठके व्याजसे संस्कृतकी यह मौलिक शिक्षा ही हनुमानप्रसादके लिये प्रसादरूप बन गयी। इसके बाद ये न किसी संस्कृत-पाठशालामें पढ़ सके न किसी संस्कृतके विद्वान्द्वारा घरपर शिक्षा पानेका ही सुयोग प्राप्त कर सके। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित विशाल संस्कृत-वाङ्मय 'कल्याण'के विशषाङ्कोंमें छपनेके लिये आयी हुई भारतीय संस्कृतिके आर्षग्रन्थोंपर आधारित सामग्री-का सम्पादन तथा स्वयं उनके द्वारा लिखे गये मौलिक लेखोंका प्रासाद नींवके इन्हीं रोड़ोंपर खड़ा हुआ।

श्रीबखन्नाथजीका हनुमानप्रसादपर यह स्नेह आजीवन बना रहा। ये भी उनपर अगाध श्रद्धा रखते रहे। रतनगढ़से कलकत्ता चले जानेपर ये जब कभी वहाँ जाते, नाथजीके दर्शन अवश्य करते थे। बखन्नाथजी इन्हें सदाचार, भजन, भगवान्पर आस्था और नाम-जपका उपदेश करते थे। यद्यपि व्यक्तिगतरूपसे वैराग्य, योग और वेदान्त ही उनकी साधनाके मुख्य अङ्ग थे, तथापि इनकी रुचि देखकर वे भक्ति-साधनापर ही अधिक जोर देते थे। साम्प्रदायिक दुराग्रहसे नाथजी सर्वथा मुक्त थे। वे व्याख्यान नहीं देते थे, प्रश्न करनेपर ही बात

* प्रसङ्गवश यह वृत्तान्त सुनाते हुए श्रीभाईजीने बताया था कि कुछ बड़े होनेपर उन्हें 'अश्वत्थामा' कहना तो आ गया, किंतु थोड़ी-बहुत हकलाहट बनी रही। कुछ विशेष शब्दोंके उच्चारणमें जिह्वा थम जाती थी। इस प्रकारके उच्चारण-दोषसे बचनेके लिये इन्होंने एक नयी तरकीब निकाली। जिन शब्दोंके उच्चारणमें इन्हें कठिनाई होती थी, बातचीतमें उनके पर्याय अथवा समानार्थक शब्द सतर्कतापूर्वक प्रयुक्तकर इस दोषका मार्जन कर लेते थे।

करते थे। हनुमानप्रसाद जब दर्शनार्थ उनके पास जाते, तब वे इनसे कहा करते थे—'गायोंकी सेवा किया करो, बीमारोंकी सेवा किया करो, अनाथोंकी सेवा किया करो। यह न भूलो कि भगवान् सभीमें हैं।' उनके संसर्गसे इनके मनमें जीवदया, मानव-सेवा तथा भगवत्सत्ताकी सर्वव्यापकतामें निष्ठा बढ़ी और इनके संस्कार बद्धमूल हो गये।

(हिंदी)

हिंदी वर्णमालाका आरम्भिक ज्ञान हनुमानप्रसादको जोरजीकी पाठशालामें हुआ और उसका व्यावहारिक ज्ञान सामाजिक सम्पर्क एवं स्वाध्यायसे। पीछे कलकत्तावासके समय तत्कालीन हिंदीके प्रसिद्ध विद्वानों एवं सम्पादकोंके सम्पर्कमें आकर इन्होंने हिंदी-साहित्यका समुचित ज्ञान प्राप्त किया। किशोरावस्थामें ही सामाजिक तथा राजनीतिक विषयोंपर इनके द्वारा लिखे गये लेख पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होने लगे।

(बँगला)

आसाममें जन्म लेने और पिताके साथ बाल्यावस्थामें ही कलकत्ताकी दूकानपर बंगाली ग्राहकोंसे व्यापारिक सम्बन्धके कारण बँगला इनकी एक प्रकारसे मातृभाषा ही हो गयी थी। पिताजी बँगलाके अच्छे जानकार थे। वे अपने साथ बैठाकर इन्हें उसका साहित्य पढ़ाते, बँगला-साहित्यकी पुस्तकें मँगाकर देते और उन्हें पढ़नेके लिये बराबर प्रोत्साहित किया करते थे। पीछे कलकत्ताके क्रान्तिकारी जीवनमें वङ्गीय राष्ट्र-भक्तोंके साथ सम्पर्क और बँगला समाचार-पत्रोंके अध्ययन तथा शिमलापालकी नजरबंदीमें वङ्गीय धार्मिक साहित्यके गहन अनुशीलनसे बँगला भाषा और साहित्यमें इनकी गहरी पैठ हो गयी। इसके फलस्वरूप इनके लिखने और बोलनेमें प्रयुक्त बँगलाको देख-सुनकर, उस भाषाका मर्मज्ञ भी यह नहीं भाँप सकता कि बँगला इनकी मातृभाषा नहीं है। 'कल्याण'-का सम्पादन करते समय बँगला भाषाके लेखों, विशेषकर महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराजके दार्शनिक निबन्धोंका हिंदी रूपान्तर प्रायः ये स्वयं करते थे। बँगला भाषामें इनकी दक्षताका प्रमाण वङ्गीय साहित्य परिषद्के गोरखपुर अधिवेशन (२५ दिसम्बर, १९६२) में स्वागताध्यक्ष-पदसे दिया गया इनका भाषण था, जिसे सुनकर समागत वङ्गभाषी विद्वान् भी आश्चर्य-चकित हो गये थे।

(गुजराती और मराठी)

व्यापारके सिलसिलेमें बंबई-प्रवासमें इनको गुजराती तथा मराठी सीखनेका अवसर मिला। इन दोनों भाषाओंके सीखनेमें वहाँ भी भाईजीने किसी शिक्षकका सहारा नहीं लिया। अभ्याससे लिपि-ज्ञान प्राप्त करके फिर उसके साहित्यका आलोडन अन्तःप्रेरणासे किया और प्रवृत्तिके अनुकूल तत्त्वग्रहण करते रहे। इनकी रुचि धार्मिक साहित्यमें विशेषरूपसे थी। अतः गुजराती तथा मराठी–दोनोंके आध्यात्मिक और उसमें भी मुख्यतः भक्ति-साहित्यका इन्होंने गहन अनुशीलन किया। दिनभर ये व्यापारिक धंधेमें लगे रहते, रातमें पूजा, ध्यान और भोजनके पश्चात् घंटों स्वाध्यायमें बिताते। यह क्रम सामान्यरूपसे बारह बजेतक चलता, कभी-कभी पृष्ठोंके साथ ही खिसकती हुई घड़ीकी छोटी सूई दो तक पहुँच जाती थी। गुजराती और मराठीका यह ज्ञान इनके सम्पादकीय जीवनमें वरदान सिद्ध हुआ। इन भाषाओंमें लिखे विद्वानों एवं धर्माचार्योंके लेखोंका अनुवाद बहुधा ये स्वयं कर लेते थे। दूसरे सज्जनोंसे कराये गये अनुवादके एक-एक शब्दको मिलाकर भूलोंको ठीक करते थे। भाईजीने गुजराती तथा मराठी साहित्यमें निहित दुर्लभ तत्त्वों एवं रहस्योंका हिंदी-भाषी जनताके लिये सशक्त एवं प्रभावशाली रूपान्तर प्रस्तुत करनेकी क्षमता इसी प्रकार उपार्जित की थी।

(अंग्रेजी)

भारतीय भाषाओंके ज्ञानोपार्जनकी ही पद्धति अंग्रेजी सीखनेमें भी अपनायी गयी। इसका श्रीगणेश तो रतनगढ़में ही हो चुका था, किंतु विकास हुआ कलकत्तामें। वहाँ कालीगोदाममें दुतल्लेपर बालकोंका एक स्कूल था। नीचे 'बलदेवदास ठाकुरदास बिड़ला'की फर्म थी। इस स्कूलके सर्वेसर्वा थे पं० श्रीअयोध्याप्रसाद। वे आर्यसमाजी विचारके थे। यहाँ हिंदीके साथ अंग्रेजी शिक्षा देनेकी व्यवस्था थी। अयोध्याप्रसादजी अंग्रेजीके अच्छे

विद्वान् होनेके अतिरिक्त बड़े ही सदाचारनिष्ठ शिक्षक थे । श्रीअयोध्याप्रसादजीके पास व्यक्तिगतरूपसे कुछ दिनों अध्ययन करके इन्होंने अंग्रेजीका सामान्य ज्ञान प्राप्त किया। व्यावसायिक व्यस्तताके कारण यह क्रम थोड़े ही दिन चल सका । इनके पिताजी अंग्रेजी जानते थे । उनके यहाँ पास-पड़ोसके लोग तार और चिट्ठियाँ पढ़ाने तथा पत्रोंपर अंग्रेजीमें पता लिखाने आया करते थे। उन दिनों कलकत्ता-जैसे उन्नत नगरमें भी मारवाड़ी-समाजमें अंग्रेजी जाननेवाले कम ही थे। पिताकी अनुपस्थितिमें उनकी अंग्रेजी तार तथा पत्र पढ़नेकी सेवाका दायित्व हनुमानप्रसाद बड़ी कुशलतासे निभाने लगे । अंग्रेजी-साहित्यके दर्शन एवं सदाचार-सम्बन्धी कुछ ग्रन्थ इन्हें अत्यन्त प्रिय लगे--विशेषरूपसे जेम्स एलेन और लिली एलेनके नैतिकता तथा सदाचारपरक ग्रन्थ। अंग्रेजीके शून्यवादी (निहिलिस्ट) साहित्यमें गहरी रुचि होनेके कारण इन्होंने उस समयतक प्रकाशित उसकी अधिकांश उपलब्ध पुस्तकें पढ़ डालीं।

इस प्रकार भाईजीकी बाल्यावस्थामें विविध भाषाओंके जो संस्कार बीजरूपमें आरोपित हुए, उनका उनके आगामी जीवनमें व्यापक रूपसे विकास हुआ। यद्यपि उन्हें किसी विद्यालयका छात्र बननेका गौरव प्राप्त नहीं हुआ, तथापि लोकोत्तर प्रतिभा और अनवरत स्वाध्यायसे उन्होंने उसकी कमी ही पूरी नहीं की, बल्कि एक कुशल व्यापारीकी भाँति उसे बढ़ाकर अमितगुना कर लिया। इस विस्मयकारी उत्कर्षका कारण थी इनके द्वारा की गयी अखण्ड अक्षरोपासना। भाईजीने अक्षर पढ़ा कम, उसकी साधना अधिक की। इसीसे उनकी लेखनीके संस्पर्शसे निर्गत शब्द 'शब्द-ब्रह्म' और वाक्य 'महावाक्य'की भाँति सर्वमान्य एवं मननीय बन गये। आदि गुरुओंसे प्राप्त ज्ञान-बीजको अपनी साधनाके बलसे इन्होंने वृक्ष बना दिया। भाग्यचक्रने नियमित क्रमसे इन्हें किसी भी पाठशाला-का प्रमाण-पत्र प्राप्त करनेका अवसर नहीं दिया। सारा अध्ययन राजमार्गसे हुआ। विधिमार्गसे पार की गयी कक्षाओंमें योग्यताकी इयत्ता होती है, राजपथके इस निराले राहीको नियतिने उससे दूर रखकर कक्षाहीन असीम ज्ञानका अधिकारी बना दिया।

(अन्य भाषाएँ)

उपर्युक्त भाषाओंके अतिरिक्त राजस्थानी भाषापर उनका पूर्णाधिकार था। राजस्थानी तो उनकी मातृभाषा थी ही। उन्होंने राजस्थानीमें सुन्दर काव्य-रचना भी की। असमियाका भी अच्छा-खासा ज्ञान था। गुरुमुखी भाषाके समाचारपत्र वे सरलतासे पढ़ लेते थे। उड़िया तथा तमिळ भाषा भी सीखनेका प्रयास हुआ था, पर वह प्रयास अधूरा ही रह गया।

दीक्षा

रामकौर देवीकी आन्तरिक इच्छा हनुमानप्रसादको अध्यात्मनिष्ठ सद्गृहस्थ बनानेकी थी। बाल्यावस्थासे ही उसकी गम्भीर प्रकृति, चञ्चल तथा उद्दण्ड प्रकृतिके समवयस्क बालकोंके सङ्गका त्याग, एकान्तप्रियता, खेल-कूद छोड़कर पढ़ाई-लिखाईमें अधिक मन लगाना आदि इसकी सूचना देने लगे कि बड़े होनेपर वह उनके सपनोंको साकार करेगा। पौत्रके मानसमें अध्यात्मतत्त्व स्थायीरूपसे प्रतिष्ठित करनेके विचारसे उन्होंने उसे स्थानीय निम्बार्कपीठके आचार्य बाबा श्रीमेहरदासजीके प्रशिष्य बाबा श्रीव्रजदासजीसे सं० १९५७में वैष्णवी दीक्षा दिला दी। गलेमें तुलसीकी भागवती कंठी पहनायी गयी। इस समय ये आठ वर्षके थे। राधापरत्व इस सम्प्रदायकी अपनी विशेषता है। अबोध बालक हनुमानप्रसादके हृदयमें इस प्रकार राधा-तत्त्वका बीजारोपण अत्यन्त स्वाभाविक पद्धतिसे और सहसा हुआ, किंतु भाईजीके परवर्ती जीवनमें इसके कायाकल्पी प्रभावको किसी अदृश्य शक्तिके द्वारा सुनियोजित मानना असंगत न होगा।

श्रीव्रजदासजीद्वारा मन्त्रोपदेश ग्रहण करनेके पश्चात् दादीके निर्देशानुसार हनुमानप्रसादकी क्रियात्मक दीक्षा आरम्भ हुई। इसका श्रीगणेश 'हनुमत्कवच' तथा 'हनुमानचालीसा'से हुआ। वह बालक हनुमानप्रसादकी दिनचर्याका एक अनिवार्य अङ्ग बन गया। दादीने धीरे-धीरे अन्य देवताओंकी भी स्तुतियाँ इन्हें सिखा दीं और ये सूर्य, गण-पति, देवी तथा शिवके स्तोत्रोंका नियमसे पाठ करने लगे। घरमें दुर्गासप्तशतीका नवरात्रमें साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान

और देवीभागवतकी स्तुतियोंका पाठ पूर्ण विधि-विधानके साथ आयोजित किया जाता था। स्तोत्रपाठ तथा धार्मिक अनुष्ठानोंमें प्रगाढ़ आस्थाके बीज हनुमानप्रसादके मानसमें इसी स्थितिमें आरोपित हुए।

उपनयन-संस्कार

रतनगढ़में रहते हुए ही दादीने सं० १९५७में हनुमानप्रसादको यज्ञोपवीत-दीक्षा दिलानेका उपक्रम किया। स्थानीय पण्डित श्रीछोटेलालजी बड़े ही त्यागी, सदाचारी और विद्वान् थे। बालक हनुमानप्रसादका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हुआ। विद्वान् पण्डित श्रीछोटेलालजी संयोगवश रतनगढ़ आये हुए थे। ये रतनगढ़की खेमका पाठशालामें प्रधानाचार्य थे। पीछे ये हरद्वारमें रहने लगे थे।

विवाह

हिंदू समाजके कतिपय अन्य वर्गोंकी भाँति उन दिनों मारवाड़ी अग्रवालोंमें भी बाल-विवाहकी प्रथा थी। हनुमानप्रसाद १२ वर्षके हो चुके थे। परिवारकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। मारवाड़ियोंमें सामाजिक दृष्टिसे भी 'कनीराम भीमराज' फर्मकी प्रतिष्ठा थी। कलकत्तामें इनके पिता भीमराजजीका उन्नतिशील कारोबार था। इससे रामकौर देवीके पास अच्छे-अच्छे घरानोंके विवाह-प्रस्ताव आने लगे। रतनगढ़के भी कई सम्बन्धी हनुमान-प्रसादके विवाहके लिये जोर डालने लगे। रामकौर देवीको रुपये-पैसेका लोभ न था। वे पौत्रके लिये एक कुल-शील-सम्पन्ना कन्यामात्र चाहती थीं। बहुत कुछ सोच-विचारकर सभी दृष्टियोंसे अपने परिवारके अनुकूल उन्हें रतनगढ़का ही एक सम्बन्ध पसंद आ गया। गुरुमुखरायजी ढंढारियाकी पुत्री महादेवी बाईसे उनकी सगाई पक्की हो गयी। दुर्भाग्यसे विवाहके कुछ समय पूर्व वह लड़की भीषण रूपसे चेचकसे आक्रान्त हो गयी। परिवारके लोग उसके जीवनकी आशा खो बैठे। काफी दिनोंतक शय्याग्रस्त रहनेके बाद ईश्वरकी कृपासे उसके प्राण तो बच गये, किंतु सारा शरीर मधुके छत्तेकी भाँति चेचकके दागोंसे विकृत हो गया। कुमारी महादेवीका सौन्दर्य और स्वास्थ्य, दोनों शीतला देवीकी भेंट हो गये। इसके साथ ही वे एक हाथ और एक पैरसे भी विकलाङ्ग हो गयीं। पुत्रीकी ऐसी दशा देखकर ढंढारियाजीको चिन्ता हुई कि रामकौर देवी सम्बन्ध करना अस्वीकार न कर दें। विवाहका दिन निकट आनेपर वे रामकौर देवीके पास गये और बड़े ही आर्त्तस्वरमें उन्होंने अपनी विवशता कह सुनायी। रामकौर देवी मर्यादानिष्ठ सात्त्विक विचारकी महिला थीं--उन्होंने बड़े ही सहानुभूतिपूर्ण शब्दोंमें कन्याके पिताको सान्त्वना देते हुए कहा--

'कन्याका वाग्दान एक बार ही होता है; किसी लड़केके साथ एक बार सम्बन्ध स्थिर हो जानेपर फिर दूसरे पुरुषके साथ उसे नहीं दिया जाता। मैं अपने पौत्रका विवाह महादेवीके साथ करनेका वचन दे चुकी हूँ। महादेवीके जीवित रहते मैं अपने इस वचनका त्याग कदापि नहीं करूँगी।'

गुरुमुखरायजीके चले जानेपर रामकौर देवीने पौत्रको बुलाया और सारी बातें बताकर इस सम्बन्धमें उसकी राय जाननी चाही। हनुमानप्रसादका विनीत उत्तर था, 'इसमें मेरी सम्मतिकी क्या आवश्यकता है। आप जो करेंगी, वही मेरे लिये शुभ होगा।' इसके बाद भीमराजजीको रामकौर देवीने सारा वृत्तान्त लिख भेजा। उनकी भी सहमति प्राप्त होनेपर विवाहकी तिथि निश्चित कर दी गयी।

निश्चित तिथिके कुछ समय पूर्व ही भीमराजजी विवाहकी तैयारीके लिये सपरिवार कलकत्तासे रतनगढ़ आ गये। ज्येष्ठ कृष्ण ४, सं० १९६१को बालक हनुमानप्रसाद गाजे-बाजेके साथ विवाहके बन्धनमें जकड़ दिये गये।

विवाहके उपरान्त कुछ दिन रतनगढ़में रहकर भीमराजजी माता, पुत्र तथा पत्नीको लेकर कलकत्ता लौट आये।

व्यवस्था-परिवर्त्तन

कलकत्ता चले आनेके बाद हनुमानप्रसादके जीवनमें एक नये युगका आरम्भ हुआ। इसके पूर्व उसके जीवन-सूत्रका संचालन दादीके हाथमें था। बाल्यावस्थामें 'मार्जार-शावक-न्याय' ही श्रेयस्कर होता है। अब समझदार हो जानेपर उसे अपनी जीवन-नौका स्वतः संचालित करनेका अवसर दिया जाने लगा। नियन्त्रण

अब भी दादी और पिताका ही था, किंतु उसकी डोर बहुत ही ढीली थी। प्रवृत्तियोंको स्वतन्त्ररूपसे स्वाभाविक विकासका अवसर देनेके लिये यह आवश्यक भी था। यह सोचकर दादी रामकौर देवीने अपनी अधिकार-सीमा स्वतः संकुचित कर ली। किंतु किशोरावस्थाके प्रवाहमें हनुमानप्रसाद कलकत्ता नगरीकी चकाचौंधमें दिग्भ्रान्त न हो जाय, इसलिये पिताका अनुशासन आवश्यक था। रामकौर देवीने बालकके कल्याणके लिये यही व्यवस्था की। 'अहं' को 'इदं'में विलीन करना ही उनके साधक-जीवनका मूल-मन्त्र था।

अब रामकौर देवीके समयका अधिक भाग साधन, भजन, देव-दर्शन और दीन-दुःखियोंकी सेवामें बीतने लगा। प्रातः गङ्गा-स्नान, साँवलियाजीके मन्दिरकी मङ्गल-आरतीका दर्शन, पञ्चमुखी हनुमान् तथा सत्यनारायण मन्दिरोंमें पूजा-पाठ, कथा-श्रवण, निर्धन रोगियोंको दवाका वितरण उनकी दिनचर्या हो गयी।

पितृ-चरणोंका सांनिध्य

भीमराजजी बड़े ही सरल, सादगीपसंद, सेवाभावी और सात्त्विक प्रकृतिके व्यक्ति थे। कनीरामजीके देहावसानके बाद उन्होंने शिलंगकी दूकान बंदकर सारा कारोबार कलकत्तामें ही केन्द्रित कर लिया था। यहाँ पगया पट्टीकी पारख कोठीमें उनकी कपड़ेकी दूकान थी। इसके सामने श्रीहरिदास साँवलकाकी फर्म स्थित थी। हनुमानप्रसाद पिताके पथ-प्रदर्शनमें दूकानका काम सीखने लगे। धीरे-धीरे परिश्रम और सूझ-बूझसे इन्होंने दूकानके काममें पूरी दक्षता प्राप्त कर ली। सद्व्यवहार और ईमानदारीसे ग्राहकोंकी संख्या बढ़ने लगी। जो एक बार इनकी दूकानपर आ जाता, वह इनका अपना हो जाता। इससे अल्पकालमें ही व्यापारका आशातीत विकास हो गया। पूजाके दिनोंमें आधीराततक इन्हें छुट्टी न मिलती। इनकी कार्य-कुशलताको देखकर भीमराजजीने धीरे-धीरे हाथ समेटना आरम्भ किया और फिर सारा भार इन्हींपर आ गया। अब माल मँगाना, गाँठें खुलवाना, रोकड़ रखना, तकादा-वसूलीका प्रबन्ध करना आदिमें ही व्यस्त रहनेके कारण ये खाने-पीनेका समय भी मुश्किलसे निकाल पाते थे। पुत्रके काम सँभाल लेनेसे भीमराजजीको परमार्थ-साधन और समाज-सेवाके लिये पर्याप्त समय मिलने लगा। गीतापारायण, विष्णुसहस्रनाम-पाठ तथा नाम-जपकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। भीमराजजी व्यापारके साथ ही इनके चरित्र-निर्माणपर विशेष ध्यान देते थे। वे इन्हें कहीं भी अकेले जाने नहीं देते थे। जब कभी ये दूकानसे बाहर जाते तो दरबान इनके साथ रहता। वे स्वयं मितव्ययी थे, अतः पुत्रमें भी इस गुणका विकास देखना चाहते थे*।

रातमें वे दूकानपर सत्सङ्ग कराते थे। इसमें १०—१५ व्यक्ति नियमित रूपसे आते थे। छुट्टीके दिन संख्या बढ़ जाती थी। भीमराजजी रामायण, महाभारत और भागवतकी कथाएँ पढ़कर सुनाते थे। समागत सत्सङ्गियोंके मनोरञ्जन एवं सामान्य ज्ञान-वर्द्धनके लिये वे उन्हें अखबारोंमें प्रकाशित देश-विदेशके समाचार भी बताते थे।

धार्मिक कार्योंमें उनकी बड़ी रुचि थी। अपने साथियों—श्रीमदनगोपाल कोठारी, श्रीशिवनारायण व्यास तथा श्रीशिवप्रताप आचार्यके सहयोगसे उन्होंने 'सनातनधर्म पुष्टिकारिणी सभा' नामक एक संस्था स्थापित की थी। इसके मन्त्री वे स्वयं थे और सहायक थे श्रीशिवप्रसाद आचार्य तथा श्रीशिवनारायण व्यास। इसका एक कार्यालय खोला गया था, जिसके हिसाब-किताब तथा पत्र-व्यवहारका सारा कार्य पं० बालरुचि शर्मा नामके एक उत्साही

* भाईजीने पिताद्वारा प्राप्त मितव्ययिताकी शिक्षाके सम्बन्धमें कलकत्ता-जीवनकी एक घटनाका उल्लेख करते हुए बताया—'एक दिन मैं बाजारसे दो आनेका एक कंघा खरीद लाया। जब पिताजीको इसका पता चला, तब उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और कहा, 'बेटा! तुम्हें एक सीखकी बात कहता हूँ। तू एक कंघा खरीद लाया, अच्छा किया; पर अपने यहाँ पचासों कंघे रखे हैं। हम तो दूसरोंको बाँटते हैं। भेद इतना है कि घरका कंघा गोल है, तू जरा लंबा ले आया है। यह देखनेमें सुंदर लगता है, उपयोग तो दोनोंका समान है। अपने लिये कोई चीज तभी खरीदनी चाहिये, जब वह आवश्यक हो।' पिताजीकी यह सीख इनके मनमें बैठ गयी और ये आजीवन उसका पालन करते रहे। इन्होंने कभी अपने लिये कोई अनावश्यक वस्तु नहीं खरीदी। जो अपने पास रही, उसीसे काम चलानेकी चेष्टा की।

दादी रामकौर देवीका नैहर अमृतसरमें था। वहाँसे चन्दन और हाथीदाँतके कंघे प्रचुर मात्रामें आते थे। पिताजीने इसी तथ्यको लक्ष्यकर उपर्युक्त बात कही थी।

समाजसेवी करते थे। इस सभामें सनातनधर्मके सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये बाहरसे विद्वानों, पण्डितों और संत-महात्माओंको बुलाकर उनके व्याख्यानोंका आयोजन किया जाता था। होशियारपुरके प्रसिद्ध सनातनधर्मोपदेशक स्वामी जगदीश्वरानन्दजी भारतीका सर्वप्रथम कलकत्ता-आगमन इसी सभाके आह्वानपर हुआ था। उनका भीमराज-जीपर बहुत स्नेह था*। आवश्यकता पड़नेपर सभाके कार्योंमें शर्माजीको हनुमानप्रसादका सहयोग बराबर मिलता रहता था। यह सभा इनकी जेल-यात्राके समय सं० १९७३तक चलती रही।

भीमराजजी पण्डितों और साहित्यकारोंका बड़ा सम्मान करते थे और समय-समयपर उन्हें आर्थिक सहायता देते रहते थे। इससे उनकी दूकानपर साहित्य-प्रेमियोंकी बैठक जमी रहती थी। हनुमानप्रसादका कलकत्ताके तत्कालीन गण्यमान्य साहित्यकारोंसे परिचय इसी माध्यमसे हुआ।

साधु-संन्यासियों† तथा दीन-दुःखियोंकी सेवाके लिये भीमराजजी सदैव तत्पर रहते थे। आपत्कालमें निज-पर-भेद त्यागकर वे लोगोंकी तन-मन-धनसे सहायता करते थे। इससे वे बहुत लोकप्रिय हो गये थे। सबके प्रति आत्मीयताकी भावना रखकर सेवा करना उनका स्वभाव था। इतना करते हुए भी वे प्रचार तथा आत्म-विज्ञापनसे सदैव दूर रहते थे।

गायोंके प्रति उनके हृदयमें अपार श्रद्धा थी। सिंधी महात्मा श्रीहासानंदजी जब गोरक्षा-भावनाके प्रचारके संदर्भमें कलकत्ता आये थे, तब भीमराजजीसे उन्हें सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ था। श्रीहासानंदजी काला कपड़ा पहनते थे, काला झंडा लेकर गायोंके लिये प्रचार करते थे और चंदा इकट्ठा करते थे। इस कार्यमें इन्हें भीमराजजीका सक्रिय सहयोग प्राप्त होता था।

नियमित जीवनका आरम्भ

विवाहके बाद कलकत्ता आनेपर पिताजीकी देख-रेखमें हनुमानप्रसादका जीवन व्यवस्थितरूपसे चलने लगा। यहाँ इनके मुख्यरूपसे काम थे——दूकान देखना, साधु-महात्माओंका सत्कार, दादी और पिताके निर्देशानुसार साधना करना, समाज-सेवा और स्वाध्याय। दिन-रात ये इन्हीं कार्योंमें व्यस्त रहते थे। न कहीं आते-जाते थे और न किसीके साथ बैठकर व्यर्थकी बातोंमें समय नष्ट करते थे। घरपर आये दिन साधु, महात्मा, पण्डित और विद्वान् पधारा करते थे।

वैष्णवेतर सम्प्रदायवालोंसे सम्बन्ध

कलकत्तामें दानचंद चोपड़ा नामके एक जैन व्यापारी थे। हनुमानप्रसादकी उनके साथ बड़ी आत्मीयता थी। चोपड़ाजीके यहाँ जैनमुनि प्रायः आया करते थे। उनके सत्सङ्गमें ये अनिवार्यरूपसे उपस्थित रहते थे। इससे इन्हें भारतीय संस्कृतिकी वैष्णवेतर विचारधाराओंको समझनेमें सहायता मिली और उनके हृदयपर किशोरावस्थामें ही धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारताके पुष्ट संस्कार पड़ गये।

हनुमानप्रसादके मनपर पिताकी लोकसंग्रही विचार-धारा, घरके आध्यात्मिक वातावरण तथा सदाचार-निष्ठ जीवन-पद्धतिका गहरा प्रभाव पड़ा। अपनी अवस्थाके अनुसार ये भीमराजजीको सेवा-कार्योंके सम्पादनमें यथाशक्ति सहयोग भी देते रहे। इसी समय इन्होंने निश्चय कर लिया——'जहाँतक बन पड़े, जीवनको पवित्र रखना, चरित्रवान् बनना, चुपचाप काम करना, ख्याति-नामसे दूर रहना, अपने सत्कार्यका कोई भौतिक पुरस्कार न स्वीकार करना और न उसकी चाह ही करना।' आगे चलकर भाईजीके विराट् व्यक्तित्वमें इन गुणोंका विस्मयकारी विकास देखनेमें आया।

'आत्मा वै जायते पुत्रः'——यह श्रुतिवाक्य व्यवहार-भूमिपर अवतरित होकर इनके जीवनमें चरितार्थ हुआ।

* स्वामीजी परिणत वयमें कैलास चले गये थे। कलकत्ता छोड़नेके बाद उनसे भाईजीकी भेंट हिमालयकी यात्राके समय केवल एक बार हुई थी।

† इनके घरके पास ही मन्नालाल सुराना नामके एक मारवाड़ी ओसवाल रहते थे। सुराना-परिवार भी रतनगढ़का ही निवासी था। इससे उनके साथ इनकी बड़ी आत्मीयता थी। मन्नालालजीकी एक बहनने संन्यास ले लिया था। वह भी वहीं रहती थीं। रामकौर देवी उससे बहुत स्नेह करती थीं। अतः वह भिक्षा इनके घरसे भी ग्रहण करती थीं।

एक अलौकिक आत्मोत्सर्ग

सं० १९६४में भाईजीके जीवनकी सर्वाधिक रहस्यपूर्ण घटना घटी। उस समय इनकी आयु पंद्रह वर्ष-की थी। एक दिन ये अपने ननिहाल चाँदपुर (पूर्वी बंगाल) जा रहे थे। सुखलाल नामक जमादार साथ था। कलकत्तासे चाँदपुर स्टीमरमें बैठकर जाना पड़ता था । स्टीमरमें इनके पास ही एक बंगाली परिवार बैठा, जिसमें दम्पतिके साथ उनकी १३-१४ वर्षकी कन्या और ५ वर्षका बालक था । हनुमानप्रसादने स्नेहवश बालकको कुछ मेवे खानेको दिये। कुछ देरमें स्टीमर लोहजंग (तारपासा) नामक स्टेशनपर पहुँच गया। वह परिवार वहाँ उतरकर डोंगीपर बैठा और गन्तव्य स्थानको चला गया।

इसके चार वर्ष बाद श्रावण कृष्ण ९, सं० १९६९को काफी रात बीते कलकत्ताकी पगया पट्टीमें स्थित पारख कोठीवाली अपनी दूकानमें सहसा इन्हें एक पत्र मिला। खोलनेपर देखा कि उसे 'सरोजिनी' नामकी किसी बालिकाने भेजा है। पत्रमें जो पता लिखा था, उससे इन्हें ज्ञात हो गया कि यह लड़की वही है, जिससे बंगाली परिवारके साथ चाँदपुर जाते समय स्टीमरपर भेंट हुई थी। पत्रमें उसने अपना वर्त्तमान पता कालीघाट बताया था। जहाजपर भेंटके समय उस बालिकाने बातचीतके प्रसङ्गमें सुखलाल जमादारसे इनका नाम तथा पता पूछ लिया था और उसे डायरीपर लिख लिया था। इनसे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत् होनेपर एक दिन उसने बर्दवानकी बाढ़के सम्बन्धमें प्रकाशित सूचनाके प्रसङ्गमें इनका नाम और वर्त्तमान पता समाचार-पत्रोंमें पढ़ा था। उसी सूत्रसे यह पत्र आया था। पत्रमें अपने जीवनकी अनबूझ पहेलीका संकेत करते हुए उसने हनुमानप्रसादके प्रति प्रथम दर्शनमें ही लौकिक विषय-वासनासे मुक्त आत्म-समर्पणका उल्लेख करते हुए इस जीवनमें अन्य किसीको वरण न करनेकी अपनी दृढ़ भावना व्यक्त की थी। इसके साथ ही उसने माता-पिताद्वारा सं० १९६७में किसी अन्य व्यक्तिके साथ परिणय-सूत्रमें बाँधे जाने, उस व्यक्तिके संसर्गसे पूर्णतया अस्पृष्ट रहने और अन्ततोगत्वा उस लौकिक सम्बन्धको त्यागकर अपने दिव्य सम्बन्धीकी खोजमें माताद्वारा विदाईके समय दी गयी ३० गिन्नियों-को लेकर कलकत्ता आनेकी बात लिखी थी और इनसे अगले दिन कालीघाट-मन्दिरके पास ९ बजे प्रातः एक बार आकर दर्शन देनेकी प्रार्थना की थी।

यह पत्र पाकर हनुमानप्रसाद किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। बालिकाके पत्रसे सात्त्विक प्रेमभाव झलक रहा था, इसलिये ये उसके स्नेहानुरोधको ठुकरा न सके। दूसरे दिन प्रातः साथमें अपने एक मित्र बालचंद मोदीको लेकर ये कालीघाटकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचनेपर कहीं कोई लड़की दिखायी न दी, इसलिये चिन्तितभावसे लौट आये। दूसरे दिन उसका एक पत्र और मिला, जिसमें लिखा था—'आप जिस समय वहाँ पहुँचे थे, मैं वहीं थी; किंतु आपके साथ एक सज्जन और थे, इससे मैंने मिलना उचित नहीं समझा। अब आपको मुझे खोजनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने आपका स्थान जान लिया है। स्वयं आकर मिलूँगी।' थोड़ी देर बाद उसी रातको एक पत्र फिर मिला, जिसमें इनसे 'आउटराम घाट'के स्टैचूके पास आकर मिलनेकी प्रार्थना की थी। हनुमानप्रसाद दूसरे दिन वहाँ गये। प्रातः सात बजेका समय था। पर उस दिन भी वह बालिका वहाँ न मिली; मिला केवल एक चिट, जिसमें लिखा था—'आपके आनेमें विलम्ब होनेसे मैं जा रही हूँ। यहाँ ठहरना मेरे लिये निरापद नहीं। अब मैं आकर स्वयं मिलूँगी।'

उसी दिन रातमें जब ये दूकान बंद करके अपने हरिसन रोडपर स्थित मकानकी ओर जा रहे थे, तब रास्तेमें शिव-मन्दिरके पास उन्हें एक सिख-जैसा बालक मिला। उसने रास्ता रोककर अपना परिचय बताते हुए कहा—'मैं सरोजिनी हूँ।' हनुमानप्रसादको ध्यानपूर्वक देखनेपर उसे उस कृत्रिम वेषमें भी पहचाननेमें देर नहीं लगी। इसके बाद दोनोंमें घंटों बातें हुईं। सरोजिनीने अपने सर्वस्व-अर्पणकी प्रतिज्ञासे इन्हें अवगत कराया। हनुमानप्रसाद उसके लोकोत्तर प्रेम और त्याग-भावनासे अभिभूत थे, बोले—'देवि ! मेरा विवाह हो चुका है। ऐसी स्थितिमें अपने व्यक्तिगत आचार और जातीय संस्कृतिकी आजतक सुरक्षित मान्यताओंको छोड़कर यह शरीर तुम्हें अपनानेमें विवश है; किंतु तुम्हारे सात्त्विक प्रेमका मैं अभिनन्दन करता हूँ। तुम यहीं रहो। मैं तुम्हारे जीवन-यापनकी पूरी व्यवस्था कर दूँगा।' सरोजिनी इस उत्तरसे रंचमात्र भी खिन्न नहीं हुई। वह अन्तस्तलसे इन्हें वरण कर

चुकी थी; किंतु उस वरणमें भोगलिप्सा रंचमात्र भी न थी, अतः शारीरिक नैकट्य प्राप्त करनेकी कामनाका प्रश्न ही नहीं था। उसने उत्तर दिया—'मेरा दूर रहना ही उचित है। मैं भाव-सुमनोंसे ही आपकी अर्चना करती रहूँगी।' इतना कहकर वह वहाँसे चली गयी। जाते समय इस मधुर मिलनके प्रतीकस्वरूप वह अपनी सोनेकी अँगूठी इन्हें दे गयी। कहना न होगा कि घंटोंतक एक-दूसरेके अत्यन्त निकट खड़े होकर बातें करते हुए भी इन दोनोंके चित्तमें न तो कोई विकार उत्पन्न हुआ न इन्होंने एक-दूसरेका स्पर्श ही किया।

इस भेंटके कुछ ही दिनों बाद सं० १९६९के कार्तिकमें सरोजिनीका एक पत्र आया। उसमें लिखा था—"शरीर वियोग-व्यथा सहनेमें असमर्थ है। अब इसे नहीं रखूँगी—'हिंदू रमणी वरे एक पति'।" यह संवाद पाकर हनुमानप्रसादने अनेक सूत्रोंसे उसे ढूँढ़नेका प्रयत्न किया, किंतु कोई पता न चला। पीछे ज्ञात हुआ कि उसने प्रयागमें जाकर त्रिवेणी-संगममें जल-समाधि ले ली।

कलकत्तामें अन्तिम भेंटके समय सरोजिनीद्वारा प्रदत्त अँगूठीको स्वर्ण-पदकमें परिवर्तित करके इन्होंने उसीकी स्मृतिमें जलंधर-कन्या-महाविद्यालयकी एक प्रतिभा-सम्पन्न बालिकाको पुरस्काररूपमें प्रदान कर दिया।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें इस प्रसङ्गकी चर्चा करते हुए श्रीभाईजी सरोजिनी देवीके विशुद्ध निष्काम प्रेम तथा रहस्यमय आत्मोत्सर्ग और तत्सुख-सुखित्वकी वृत्तिका स्मरणकर भाव-विभोर हो जाते थे।

प्रथम पुत्रकी प्राप्ति

कलकत्ता आनेके बाद हनुमानप्रसादका दाम्पत्य-जीवन बड़ा सुखमय रहा और ज्येष्ठ कृष्ण ८, सं० १९६६ को रतनगढ़में महादेवीके गर्भसे एक पुत्रका जन्म हुआ। रामकौर देवीने प्रपौत्रका मुँह देखकर अपना भाग्य सराहा, किंतु यह प्रसन्नता अल्पकालिक रही। प्रसूति-गृहमें ही ज्येष्ठ शुक्ल ६, सं० १९६६को पुत्रको अनाथ कर महादेवी गोलोक सिधारीं। इसके बाद दो महीनेके भीतर ही श्रावण कृष्ण चतुर्दशीको नवजात शिशु भी जगज्जननीका प्यारा हो गया।

स्वामी जगदीश्वरानन्दसे सत्सङ्ग

पत्नी और पुत्रकी अन्त्येष्टि करके रतनगढ़से कलकत्ता आनेपर हनुमानप्रसादका मन एक विचित्र-सी स्थितिमें था। इन्हीं दिनों 'सनातनधर्म पुष्टिकारिणी सभा'के अधिवेशनमें भाग लेनेके लिये स्वामी जगदीश्वरानन्दजी भारती कलकत्ता पधारे। भीमराजजीके साथ उनकी पहलेसे ही घनिष्ठता थी। ये उक्त सभाके संस्थापक तथा मन्त्री भी थे, इसलिये इन्हींके पास स्वामीजी ठहरे। स्वामीजीके सत्सङ्गसे इनका हृदय कुछ हल्का हुआ।

स्वामी शंकरानन्दकी राजनीतिक प्रेरणा

उक्त घटनाके थोड़े ही समय बाद कलकत्तामें एक मद्रासी महात्माका आगमन हुआ। इनका नाम था स्वामी शंकरानन्द। श्रीहरिराम गोयन्दकाके बगीचेमें इनका आसन लगा। स्वामीजीकी हठयोगमें विशेष गति थी। बगीचेमें उन्होंने सात दिनकी समाधि लगाकर लोगोंको आश्चर्यचकित कर दिया। अध्यात्ममार्गके पथिक होते हुए भी वे राजनीतिमें उग्र विचारधाराके समर्थक थे। हनुमानप्रसादसे उनका प्रगाढ़ स्नेह हो गया। उनके घनिष्ठ सम्पर्कसे इनकी विचारधारा क्रान्तिके अणु-परमाणुओंसे वेष्टित हो चली।

दूसरा विवाह

हनुमानप्रसादको राजनीतिकी ओर मुड़ते देखकर भीमराजजी चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा कि गृहस्थीके बन्धनसे मुक्त रहनेपर इनका समय इसी प्रकारके कामोंमें लगेगा। इससे व्यापारकी हानि तो होगी ही, जीवन भी खतरेमें पड़ जायगा। भीमराजजीकी इच्छा पुत्रका कार्यक्षेत्र व्यापारतक ही सीमित रखनेकी थी। इसके अतिरिक्त वंशपरम्पराका चलाना भी आवश्यक था। इस हेतु पुनः विवाहका प्रसङ्ग चलाया गया। हनुमानप्रसाद इससे भागना चाहते थे, किंतु दादी और पिताके स्नेहानुरोधकी अवज्ञा ये न कर सके। निदान राजगढ़ (राजस्थान)के सेठ श्रीमँगतूराम सरावगीकी पुत्री सुवटी बाईके साथ, वैशाख शुक्ल ३, सं० १९६८को, इनका द्वितीय विवाह सम्पन्न हो गया।

पिताका स्वर्गवास

कच्ची गृहस्थीको सँभालनेका प्रयास चल ही रहा था कि भीमराजजी रोगाक्रान्त हो गये। हनुमानप्रसाद-पर दूकानका भार छोड़कर वे इसी स्थितिमें वायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे रतनगढ़ चले गये। वहाँकी जलवायु आरोग्य-प्रद है, वहाँ स्वजनों, स्नेहियों और कुशल चिकित्सकोंकी देख-रेखमें स्वास्थ्य-लाभ हो जायगा——रामकौर देवीने भी यही सोचा था। किंतु विधाताका विधान कुछ और ही था। लाख प्रयत्न करनेपर भी रोग काबूमें न आ सका और श्रावण कृष्ण ५, सं० १९६९को भीमराजजीका भौतिक शरीर मातृभूमिकी गोदमें विसर्जित हो गया। पति गये, दो पुत्रवधुएँ गयीं, पौत्रवधू गयी, प्रपौत्र गया, हतभाग्या रामकौर देवी यह दिन देखनेको ही बच रही थी। जीवनभर विषम परिस्थितियोंसे जूझते हुए उसने हार नहीं मानी थी, किंतु इस घटनाने उसकी कमर तोड़ दी। कलेजा बैठ गया और नेत्रोंकी ज्योति मन्द हो गयी।

पितृक्रियाके अनन्तर हनुमानप्रसाद परिवारको लेकर पुनः कलकत्ता आ गये। दूकानका काम चलने लगा। परंतु अब उसमें इनकी वृत्ति उतनी नहीं रमती थी, जितनी पिताके समयमें। इसके कारण थे——अनवरत पारि-वारिक आपत्तियाँ, धार्मिक प्रवृत्ति और राजनीतिका आकर्षण।

इन्होंने अपनी आँखों दादा कनीरामजीका अपार वैभव शिलंगके भूकम्पमें क्षणमात्रमें ही नष्ट होते और कुछ समय पश्चात् स्वयं उन्हें विदा होते देखा था——हजार प्रयत्न करनेपर भी पिता भीमराजजी उस गौरवको पुनः स्थापित करनेमें असमर्थ रहे। अन्ततोगत्वा वे भी उसीमें खटते-खटते दम तोड़ गये। यह सब देखकर इन्हें अनुभव हुआ कि व्यापार वृत्तिका साधन हो सकता है, प्रवृत्तिकी सीमा नहीं। दादी रामकौर देवीकी संरक्षकता-में इनकी जैसी शिक्षा हुई थी, उसमें उपार्जन एवं संग्रहकी अपेक्षा दान तथा सेवा-भावनाकी ही प्रधानता थी, भोगकी अपेक्षा त्यागद्वारा आत्मोत्कर्ष-सम्पादनका अधिक महत्त्व था। पिताके सामने ही उनकी देख-रेखमें सामाजिक तथा धार्मिक कार्योंमें हनुमानप्रसाद सक्रिय सहयोग देने लगे थे। भीमराजजीके दिवंगत होनेपर बन्धन खुल गये। रामकौर देवी वृद्धावस्था और पुत्र-शोकसे जर्जर हो गयी थीं। पौत्रकी सद्वृत्ति और कर्त्तव्य-परायणतापर उनका अगाध विश्वास भी था। इसलिये इनकी गति-विधियोंपर नियन्त्रण उन्हें अभीष्ट न था। परिवारमें और कोई वयोवृद्ध था नहीं।

ऐसी दशामें युवक हनुमानप्रसादको अपने इच्छानुसार जीवन-नौका चलानेकी खुली छूट मिल गयी। इन्होंने अपना अधिकांश समय धर्म, राजनीति और समाज-सेवासे सम्बन्धित कार्योंमें लगानेका संकल्प किया। प्रवृत्तिके तीव्र झकोरोंसे वृत्तिकी चट्टान टूटने लगी। दूकानका काम ढीला पड़ गया। परमार्थके सामने अर्थ नतमस्तक हो गया।

समाज-सेवा

सार्वजनिक जीवनके परिष्कार तथा विकासमें आरम्भसे ही इनकी रुचि थी। अब ये कलकत्ताकी तत्कालीन सभा-सोसाइटियोंमें स्वतन्त्रतापूर्वक भाग लेने लगे। जातीय जीवनके उस नवोन्मेष-कालमें राष्ट्रीय, धार्मिक, साहि-त्यिक, जातीय, शैक्षणिक आदि लोक-संस्थाओंका बाहुल्य था। कार्यपटुता, योग्यता, ईमानदारी, सूझ-बूझ तथा विनयशीलताके कारण सभी जगह इनकी पूछ थी और सभी इन्हें अपना सहयोगी बनानेको लालायित रहते थे। समाज तथा देशकी सेवा इनके जीवनका मुख्य उद्देश्य बन चुकी थी, अतः न्यूनाधिक मात्रामें उपर्युक्त सभी संस्थाओं-को इनकी सेवाओंका अंशदान प्राप्त हुआ। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं——हिंदू क्लब, हिंदू सभा, वैश्य सभा, हिंदी साहित्य परिषद्, साहित्य-संवर्द्धिनी समिति, बड़ा बाजार पुस्तकालय तथा सावित्री कन्या पाठशाला। इनके अतिरिक्त सांस्कृतिक पर्वों तथा धार्मिक मेलोंमें भी सेवा-कार्योंके आयोजनका मुख्य दायित्व प्रायः इन्हींको सौंपा जाता था। 'शीतला मेला' आदिमें इनके द्वारा गठित स्वयंसेवक-दलने प्रशंसनीय सेवाकार्य किया था।

ये हनुमानप्रसादद्वारा प्रकटरूपमें की जानेवाली सेवाओंके क्षेत्र थे। इनके अतिरिक्त स्थिति और पात्रके अनुसार ये गुप्त सेवाओंकी भी व्यवस्था करते रहते थे, जो इनकी अन्तिम साँसतक उसी रूपमें गतिशील रहीं। किंतु उसका आभास पाना अन्तेवासियों और निकटतम सम्बन्धियोंके लिये भी असम्भवप्राय था।

वङ्गभङ्ग और स्वदेशी-आन्दोलन

हनुमानप्रसादको विवाहके बाद रतनगढ़से कलकत्ता आये कुछ ही दिन हुए थे कि १९ जुलाई १९०५ ई० (सं० १९६२)को लार्ड कर्जनद्वारा की गयी वङ्ग-विच्छेद-घोषणाकी प्रतिक्रियामें सारा बंगाल एकमत, एकप्राण होकर प्रलयंकर स्वरमें हुंकार उठा। अंग्रेजी सरकारकी इस विनाशकारी योजनाके विरोधमें कासिम बाजारके राजा मणीन्द्रचन्द्रकी अध्यक्षतामें एक विशाल सभा आयोजित की गयी, जिसमें वङ्गवासियोंने सामूहिक रूपसे विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका व्रत लिया। इसीने आगे चलकर देशव्यापी 'स्वदेशी-आन्दोलन'का रूप धारण कर लिया। पूरे बंगालमें उत्कट देशप्रेमकी एक दैवी चेतना व्याप्त हो गयी। अंग्रेजी वस्तुओंकी सरेआम होली जलायी जाने लगी। विदेशी मालके साथ विदेशी शिक्षाके भी बहिष्कारकी लहर फैली। विद्यार्थी विद्यालयोंको छोड़कर बाहर निकल आये। सड़कों, चौराहों और गलियोंमें—जहाँ भी देखिये, वहीं देशभक्तिके गीत गाते हुए उत्साही छात्रोंकी टोलियाँ घूमती नजर आतीं। उनके गानका प्रायः टेक होता था—

'निज वास भूमे परवासी होलो'
(हम अपने ही देशमें परदेशी हो गये)

देशभक्ति—जागृतिकी यह लहर इतनी प्रबल तथा व्यापक थी कि पत्र-पत्रिकाओं, नाटक-संगीत, कविताओं-लेखों—सभीमें एक स्वरसे देशभक्तिके गीत गाये जाते थे। वेश्याएँतक इसी भावके गाने गाकर श्रोताओंका उद्बोधन करती थीं।

आगे चलकर विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारकी भावनाने इतना व्यापक रूप धारण कर लिया कि लोग विदेशी साहित्य तथा विदेशी नौकरीका भी परित्याग करने लगे। विदेशी वस्तुओंमें मुख्यतः विदेशी वस्त्रोंकी होली जलानेकी प्रथा-सी हो गयी थी। लाखोंका माल चन्द मिनटोंमें स्वाहा कर दिया जाता था। नगर-नगरमें यही हाल था। इस प्रकारकी लोक-व्यापकता ही स्वदेशी-आन्दोलनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। कांग्रेसका जन्म इससे वर्षों पूर्व हो चुका था और वही इस युगकी सर्वाधिक प्रभावशाली शहरी संस्था थी; किंतु उसका प्रभाव अधिकतर शिक्षितवर्गपर ही था, जब कि स्वदेशी-आन्दोलनने निरक्षर तथा निरीह ग्रामवासियोंतकके हृदयमें राष्ट्रप्रेमकी ज्वाला प्रज्वलित कर दी थी।

स्वदेशी-व्रत

ये सारी घटनाएँ हनुमानप्रसादकी आँखोंके सामने घट रही थीं। इस समय इनकी आयु तेरह वर्षकी थी। ये न किसी स्कूलके विद्यार्थी थे और न किसी राजनीतिक पार्टीके सदस्य ही थे। स्वभावसे ये शान्तिप्रिय थे। फिर भी देशव्यापी विद्रोहाग्निसे अपनेको अलग न रख सके। अन्तःप्रेरणा एवं संस्कारोंने इन्हें विवश कर दिया। सं० १९६२में, जिन दिनों स्वदेशी-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था, अपने पिताके मित्र तथा स्नेही प्रसिद्ध पत्रकार पं० दुर्गाप्रसाद मिश्रके यहाँ इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका देखनेसे इन्हें ज्ञात हुआ कि इँग्लैंडसे जो कपड़े आते हैं, उनमें माँड़ी देनेके लिये जानवरोंकी चर्बीका उपयोग होता है। इस जानकारीसे इनके मनमें विदेशी कपड़ोंके प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। इन्होंने निश्चय किया कि अब विदेशी कपड़ा नहीं पहनना है। निदान ये ढाका-के बने कपड़े प्रयोगमें लाने लगे। पीछे मनमें आया कि हाथके कते सूत तथा हाथके बुने कपड़े ही पहनने चाहिये। गांधीजीने हाथके कते-बुने कपड़ोंके सम्बन्धमें प्रचार आरम्भ किया, उससे दो वर्ष पहलेकी यह बात है। उस समय देहाती जुलाहे हाथकी कती-बुनी मोटी खादी बनाते थे। हनुमानप्रसादने उसे पहनना आरम्भ किया। खादीकी धोती चादर-जैसी मोटी होती थी। ऊपर पहननेके वस्त्र भी इतने मोटे होते कि दर्जी उनकी सिलाई नहीं कर पाते थे; अतएव इन्हें एक वर्षतक बिना कुर्ते-कमीजके ऊपरका अङ्ग खद्दरकी चादरसे ढककर रहना पड़ा। पीछे गांधीजीके प्रभाव-प्रचारसे जब महीन खादी बनने लगी, तब समस्याका स्वतः समाधान हो गया। शुद्ध खादीके प्रयोगके नियमका निर्वाह जीवनके अन्तिम क्षणतक होता रहा। कहना न होगा कि परवर्ती स्वदेशी-आन्दोलनके कर्णधार राष्ट्रपिता गांधी इस समयतक विदेशी वस्त्रोंका ही व्यवहार करते थे। उन्होंने स्वदेशी

वस्त्र धारण करनेका नियम भाईजीके एक-दो वर्ष बाद लिया। पीछे श्रीभाईजीकी इस भावनाके साथ स्वदेशी-आन्दोलनका सम्बन्ध जुड़ गया।

धीरे-धीरे घरमें भी खद्दरकी साड़ियोंका प्रयोग होने लगा।*

कलकत्ता-कांग्रेस

बंगालके नवयुवकोंमें अंग्रेजी शासनके विरुद्ध क्रान्तिकी यह भावना बड़े वेगसे फैलने लगी। उन्हीं दिनों सन् १९०६ ई० (सं० १९६३) में इण्डियन नैशनल कांग्रेसका अधिवेशन कलकत्तामें हुआ। इसमें पहली बार स्वराज्य-प्राप्तिके लक्ष्यकी घोषणा की गयी। राष्ट्रीय भावोंसे अभिषिक्त होनेके कारण १५ वर्षकी छोटी आयुमें ही हनुमानप्रसाद इसमें कांग्रेसके एक सदस्यके रूपमें सम्मिलित हुए। उस समय राष्ट्रीय विचारधाराके लोग दो दलोंमें विभक्त दिखायी दिये—गरम दल और नरम दल। इनमें प्रथम उग्रवादी राजनीतिका समर्थक था और दूसरा शान्तिवादी विचारधाराका। यह राष्ट्रीय जागृतिकी शैशवावस्था थी। कांग्रेसमें नरमदली विचारधाराका प्राबल्य था। यह दल अंग्रेजी सरकारसे कुछ सुधारों और नौकरियोंकी माँगमें ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझता था। इस अधिवेशनकी विभिन्न सभाओंमें उक्त दोनों दलोंके नेताओंने विदेशी सत्तासे मुक्तिके लिये राष्ट्रीय आन्दोलनका स्वरूप निर्धारित करनेके सम्बन्धमें जो विचार प्रस्तुत किया, हनुमानप्रसादको उनमें उग्रवादी सिद्धान्त ही समयोचित जान पड़ा। अतः इस समयसे वे इसीके समर्थनमें प्राणपणसे लग गये।

अघोषित युद्ध

स्वदेशी-आन्दोलनके रूपमें अंग्रेजी शासनकी कुटिल एवं शोषक नीतिके विरुद्ध सरकार और जनताके बीच अघोषित युद्ध आरम्भ हुआ। राजतन्त्रने कूटनीतिक चालों और पशु-शक्तिसे उसे दबानेका कोई तरीका बाकी नहीं छोड़ा। किंतु जनता झुकी नहीं। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनके रूपमें स्वतन्त्रताकी अग्नि सुलगती रही। राष्ट्रीयता और देशभक्तिके उद्रेकसे जो युद्धोत्साह उत्पन्न हुआ था, जन-जनके हृदयमें दासतासे मुक्तिकी जो अग्नि प्रज्वलित हो गयी थी, उसने शनैः-शनैः प्रचण्ड ज्योति-पुञ्जका रूप धारण कर लिया। सरफरोश परवानें उसके चतुर्दिक् मँडराने लगे।

अबतक इस राष्ट्रीय आन्दोलनके कर्णधारोंका यह विश्वास था कि बहिष्कार और स्वदेशी-भावनाके प्रचारसे वे अंग्रेजी सरकारद्वारा किये गये वङ्ग-भङ्ग-विषयक निर्णयको रद्द करानेमें सफल हो जायँगे। किंतु शासनकी राजनीतिको देखकर अब उन्हें आभास मिलने लगा कि उनके द्वारा अपनाये गये साधन लक्ष्य-प्राप्तिके लिये उपयुक्त नहीं हैं। सभी दृष्टियोंसे समृद्ध एवं सुसंगठित विदेशी सरकारके नृशंसतापूर्ण दमन-चक्रका खुले आम मुकाबला करनेके लिये उनके पास साधनोंका अभाव है, इस तथ्यसे वे अनभिज्ञ न थे। किंतु उसके सिवा सम्मानपूर्ण अस्तित्वका कोई दूसरा मार्ग भी न था। ऐसी स्थितिमें उन्हें सशस्त्र क्रान्तिका रास्ता अपनाना ही श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। आत्माहुतिकी इस भावनाके उदय होते ही उनका लक्ष्य मात्र वङ्ग-विच्छेदको समाप्त करना न रहकर सम्पूर्ण देशको अंग्रेजोंके चंगुलसे मुक्त करना हो गया।

---

* इस सम्बन्धमें परवर्ती जीवनका एक रोचक प्रसङ्ग देना असंगत न होगा। बंगालसे निष्कासित होनेके बाद जिन दिनों ये बम्बईमें रहते थे, इनकी पत्नी मायके गौहाटी गयीं हुई थी। इनके श्वसुर श्रीसीतारामजीका वहीं कारोबार था। इन्होंने अपनी पत्नीके लिये वस्त्रोंका एक पारसल भेजा। श्वसुर महाशय उसे लेकर अंदर गये और अपनी पत्नीको पुकारकर राज-स्थानीमें कहा 'रामदेईकी माँ, कँवरजीने एक पारसल भेजा है। बड़ा भारी पारसल है।' उस समय वे रसोईघरमें थीं। वहींसे बोलीं—'खोलिये, देखूँ, क्या है ?' सीतारामजीने पारसल खोला। उसमें दो खद्दरकी साड़ियाँ निकलीं। उसे देखते ही वे रोने लगे और स्त्रीको फिर पुकारा—'यहाँ तो आ, देख तो सही, कँवरजीने कैसी साड़ियाँ भेजी हैं।' भाईजीकी सास बाहर आयीं। साड़ी देखकर उनके भी नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। व्यथा एवं उलाहनासे भरे शब्दोंमें बोलीं—'हाय ! कितनी मोटी साड़ियाँ हैं। ये तो मेरी बेटीसे भी भारी हैं। ये भी, भला, पहननेकी हैं ?' पास ही खड़ी पुत्री (भाईजीकी पत्नी) ने किसी प्रकार समझा-बुझाकर उन्हें सान्त्वना दी। उन्हें यह जानकर बड़ा कष्ट हुआ कि उनकी पुत्री ससुरालमें इस प्रकारकी साड़ीका प्रयोग करती है।

गुप्त समितियोंका संगठन

सरकारकी दमननीतिने असंतोषको रहस्यमयी धाराओंमें ढकेल दिया। स्थान-स्थानपर गुप्त समितियोंका निर्माण होने लगा। दबी हुई चिनगारियाँ अङ्गारोंका रूप धारण करने लगीं। बंगालके जनजीवनमें व्याप्त क्रान्तिकी इन लपटोंसे मारवाड़ी युवक अप्रभावित न रह सके। कलकत्तामें उनमेंसे कुछ प्रगतिशील विचारके लोगोंने एक 'गुप्त समिति' स्थापित की—'गुप्त' इसलिये कि इसकी सारी कार्यवाही गोपनीय रखी जाती थी। हनुमानप्रसाद इसके सक्रिय सदस्य थे।

सभी सदस्योंके लिये पाँच नियमोंका पालन अनिवार्य था—

१. सूर्योदयसे पहले उठना।

२. व्यायाम करना।

३. परस्पर प्रेम-व्यवहार रखना।

४. गीताका नियमितरूपसे पाठ करना।

५. समितिकी कार्यवाहियोंको गुप्त रखना।

इसकी बैठक महीनेमें दो बार होती थी। इस समितिके कार्योंमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था—तत्कालीन मारवाड़ी समाजकी बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह-जैसी अनेक कुप्रथाओंको दूर कर उसमें नवीन सुधारवादी विचारधाराका प्रभावशाली ढंगसे प्रचार।

'मारवाड़ी सहायक समिति'से सक्रिय सहयोग

यह प्रबुद्ध मारवाड़ी युवकोंद्वारा सं० १९६९में स्थापित हुई थी। इसका मुख्य कार्य था—चिकित्सा, अकालसेवा, बाढ़-पीड़ितोंकी सहायता आदि लोकोपकारी कार्योंका आयोजन। इसके मन्त्री श्रीज्वालाप्रसाद कानोड़िया थे। सं० १९६९में बर्दवानकी प्रलयंकारी बाढ़में इसने बहुत बड़े पैमानेपर बाढ़-पीड़ितोंकी सहायता करके ख्याति-लाभ किया था। हनुमानप्रसाद पोद्दार सेवायोजकोंमें अग्रगण्य थे। अखबारोंमें सहायता-कार्यके लिये जो भी अपील निकाली गयी थी, उसमें इनका भी नाम था। इन्होंने अपने मित्र श्रीडूँगरमल लोहियाको सहायता-कार्यके लिये बर्दवान भेजा। 'मारवाड़ी सहायक समिति' एक औषधालय भी चलाती थी। उसमें होमियोपैथिक, ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक आदि विविध पद्धतियोंसे चिकित्सा की जाती थी। इस समितिकी ओरसे ही एक दातव्य औषधालय खोलनेके उद्देश्यसे श्रीडूँगरमल लोहियाको हनुमानप्रसादने सं० १९६९-७०में रतनगढ़ भेजा था। आगे चलकर इसके कतिपय सदस्य, जिनमें श्रीप्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया और श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार विशिष्ट थे, विप्लववादी कार्यकलापोंमें संलग्न होनेके कारण राजद्रोहके अपराधी घोषित कर दिये गये। इससे यह समिति सरकारकी आँखोंमें चढ़ गयी। इस अवसरपर कलकत्ताके तत्कालीन मारवाड़ी-समाजमें समादृत और अंग्रेजी शासनके विश्वासपात्र डा० सर कैलासचन्द्र बोसके प्रयत्नसे इसकी गुप्त समितियाँ समाप्त कर दी गयीं। फलतः राष्ट्रीय तथा राजनीतिक विचारधाराका सर्वथा परित्याग कर यह मात्र समाज-सेवी संस्था रह गयी। इसका परिवर्तित नाम 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी' हो गया।

साहित्य-संवर्द्धिनी समिति

इसकी स्थापना मारवाड़ी युवकोंके मानसिक विकासके लिये हुई थी। यह सदस्योंको विचारोत्तेजक पुस्तकें उपलब्ध कराती थी और उनमें साहित्य-प्रेमके साथ ही देश-प्रेम जाग्रत् करनेके लिये विभिन्न प्रकारके साहित्यिक आयोजन करती थी। इस समितिका अन्य मुख्य कार्य था—साहित्यका प्रकाशन। इसके मन्त्री श्रीनारायणदासजी बाजोरिया थे। कलकत्तामें सबसे पहले गीताका सानुवाद प्रकाशन इसी समितिने किया था, जिसके सम्पादक थे पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर। गीताके इस संस्करणकी विशेषता थी—आवरण-पृष्ठपर भारतमाताका एक हाथमें गीता और दूसरे हाथमें तलवार लिये हुए तेजस्वी चित्र। छपते ही इसकी हजारों प्रतियाँ विप्लव-वादियोंमें बाँट दी गयीं। इस प्रकाशनसे सरकारके कान खड़े हो गये। उसने इसका अर्थ लगाया—भारत-

माताद्वारा सशस्त्र क्रान्तिके लिये देशवासियोंका खुला आह्वान। पुलिसने कार्यालयपर छापा मारकर बची-खुची प्रतियाँ जब्त कर लीं।

इन समितियोंकी राजद्रोहपूर्ण कार्यवाहियोंको समाप्त करनेके उद्देश्यसे पौष सं० १९६५ (दिसम्बर १९०८ ई०) में सरकारने एक दमनकारी विधान पास किया। इसके अनुसार इस प्रकारकी संस्थाओंमें भाग लेनेवाले, उनसे सम्बन्धित सभाओंकी आयोजना करनेवाले, उन्हें चंदा देनेवाले तथा प्रकारान्तरसे सहमति एवं प्रोत्साहन देनेवाले दण्डनीय घोषित कर दिये गये। बंगालकी सभी समाज-सेवी संस्थाएँ इस विधानके चंगुलमें आकर अवैध करार दे दी गयीं।

क्रान्तिकी बाइबल—गीता

बीसवीं शतीके प्रथम चरणमें उद्दीप्त इस राष्ट्रीय जागृतिकी मूल प्रेरकशक्ति धार्मिक तथा दार्शनिक निष्ठा थी। इसीलिये इसे 'धार्मिक राष्ट्रीयता'के नामसे अभिहित किया जाता है। इसके प्रमुख कार्यकर्त्ता बाल गङ्गाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, अरविन्द घोष—सभी प्रगाढ़ धार्मिक निष्ठाके व्यक्ति थे। लाला लाजपतरायके मतानुसार 'देशभक्तिको धर्मनिष्ठाका स्वरूप देकर उसे ही अपने जीवन-मरणका लक्ष्य निश्चित करनेमें मानव-जीवनकी सार्थकता है।' इस धार्मिक प्रवृत्तिने उन्हें राष्ट्रमें परमात्मदर्शनकी शक्ति दी।

देशभक्तिको धर्मके रूपमें प्रतिष्ठित करनेमें गीता और स्वामी विवेकानन्दद्वारा उपदिष्ट वेदान्त-दर्शनका सर्वाधिक योग था। उच्च जीवन-मूल्योंका प्रतिपादन इन्हींके आधारपर हुआ। मातृभूमिकी रक्षाके लिये सर्वस्व न्योछावर करने और हँसते-हँसते मृत्युका आलिङ्गन करनेके लिये गीतोपदिष्ट तत्त्वज्ञानने अद्‌भुत प्रेरणा प्रदान की। इस दार्शनिक विचारधाराका प्रमाण इस तथ्यसे भी मिलता है कि क्रान्तिकारियोंके पास गीता सदा रहती थी। उनकी रचनाओंमें भी गीताका सर्वत्र उल्लेख पाया जाता है। तत्कालीन सरकारी रिपोर्टोंमें भी इसकी चर्चा मिलती है कि गिरफ्तार करनेके पूर्व आतङ्कवादियोंकी पुलिसद्वारा ली गयी तलाशियोंमें गीता सभीके पास मिलती थी। यह राजनीतिक पुनर्जागरणकी बाइबल बन गयी थी।

हनुमानप्रसादने इस महत्ताको देखकर ही 'साहित्य-संवर्द्धिनी समिति'-द्वारा युगानुकूल नयी सज-धज—खड्गहस्ता भारतमाताके चित्रसहित गीता प्रकाशित करवायी थी। श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्सङ्गसे इनकी गीतानिष्ठा उत्तरोत्तर पुष्ट होती गयी। आगे चलकर इन दोनों धर्मप्राण महापुरुषोंद्वारा 'गीताप्रेस'की स्थापनाके पश्चात् गीताका विश्वव्यापी प्रचार सम्भव हुआ।

धर्म एवं राजनीतिक क्षेत्रमें बढ़ती हुई रुचिके कारण इन्होंने बँगला और अंग्रेजीके तद्विषयक ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्वक अनुशीलन किया। विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरसे भी ये बराबर मिलते रहे। 'मार्डन रिव्यू' के सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जीके लेखोंसे प्रभावित होकर ये उनके सम्पर्कमें आने लगे और कुछ ही समयमें उनके विशेष कृपापात्र बन गये।

कलकत्ता उन दिनों हिंदी-साहित्यकारोंका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। पत्रकारिताके क्षेत्रमें तो उस समय उत्तरी भारतके किसी भी नगरमें संख्या और गुण—दोनों दृष्टियोंसे कहीं भी इतनी प्रतिभाएँ एकत्र नहीं देखी जा सकती थीं।

स्वदेशी-आन्दोलनमें हनुमानप्रसादका सर्वप्रथम परिचय 'संध्या'के सम्पादक श्रीब्रह्मबोध उपाध्यायसे हुआ। इसके बाद ये पं० गिरीशपति काव्यतीर्थ तथा श्रीश्यामसुन्दर चक्रवर्तीसे भी मिले। उसी समय बँगलाके प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय लेखक श्रीसखाराम गणेश देउस्करसे घनिष्ठता हुई। उनकी 'देशेर कथा' पढ़कर ये बहुत प्रभावित हुए। बँगला पत्र 'युगान्तर'के आरम्भसे ही ये नियमित पाठक रहे। उसके लेख इनकी विचारधाराको मोड़नेमें विशेष सहायक हुए। भारतमित्रके सम्पादक बा० बालमुकुन्द गुप्त तथा उनके विनोदी सखा पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीसे हनुमानप्रसादका घर-जैसा सम्बन्ध था। पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे और 'कलकत्ता समाचार'के मुद्रक पं० झाबरमलजी शर्मासे इनकी गाढ़ी मित्रता हो गयी। इन पत्रोंमें धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विविध

लोकोपकारी विषयोंके लेख और कविताएँ निकलती थीं। इनसे जनशिक्षा तथा मनोरञ्जन, दोनों उद्देश्योंकी सिद्धि होती थी। साथ ही राष्ट्रभाषाका प्रचार भी होता था।

इनके अतिरिक्त हिंदी-साहित्यके अनुशीलन तथा हिंदी भाषाके प्रसारके लिये कुछ स्वतन्त्र संस्थाएँ भी संगठित की गयी थीं। इनमें दो मुख्य थीं—'हिंदी साहित्य परिषद्', जिसके मन्त्री पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी थे और 'एकलिपि विस्तार परिषद्', जिसका आयोजन जस्टिस शारदाचरण मित्रकी अध्यक्षतामें हुआ था। इस समयके कलकत्ताके अन्य साहित्यकार थे—श्रीअमृतलाल चक्रवर्ती, श्रीनवजादिकलाल श्रीवास्तव, श्रीयशोदानन्द अखोरी, श्रीरामलाल वर्मा और श्रीराधामोहन गोकुलजी। इन सबसे हनुमानप्रसादका स्नेह-सम्बन्ध था, अतः इनकी सम्पादकीय प्रतिभा तथा साहित्यिक व्यक्तित्वके निर्माणमें इन सभी महानुभावोंका न्यूनाधिक योगदान रहा है।

साहित्यकारोंके सम्बन्धसे इनकी कारयित्री प्रतिभा अङ्कुरित होने लगी। धर्म, समाज-सुधार और राजनीति तत्कालीन साहित्य-रचनाके मुख्य उपजीव्य थे। हनुमानप्रसादकी इन तीनोंमें न्यूनाधिक रुचि थी। स्वाध्यायसे लेखन-शैली भी परिष्कृत हो गयी थी, अतः वे निबन्ध लिखकर पत्र-पत्रिकाओंमें भेजने लगे। 'नवनीत', 'कलकत्ता समाचार' आदि पत्र-पत्रिकाओंमें उन्हें उचित स्थान मिला। 'नवनीत'में प्रकाशित 'निवृत्तिका सच्चा स्वरूप' शीर्षक इनके लेखकी बड़ी चर्चा रही।

राष्ट्रनेताओंसे नैकट्य

उन दिनों कलकत्ता राष्ट्रीय क्रान्तिका गढ़ बन गया था। वह भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्रामका कुरुक्षेत्र बन रहा था। इसलिये देशके कोने-कोनेसे चोटीके नेता वहाँ बराबर आते रहते थे। स्थानीय सामाजिक संस्थाएँ उनका स्वागत करतीं, उनके व्याख्यानका प्रबन्ध करतीं, उन्हें अभिनन्दनपत्र देतीं और आजादीकी लड़ाईके लिये थैली भेंट करतीं। लिलुआकी 'मारवाड़ी सहायक समिति' इनमें अग्रणी थी। इस प्रकारके समारोहोंका आयोजन प्रायः उसीके तत्वावधानमें होता था। दूसरा स्थान हिंदू महासभाका था। हनुमानप्रसाद पोद्दारका इन दोनों संस्थाओंसे सम्बन्ध था।

ऐसे अवसरोंपर इनकी सेवाएँ इन संस्थाओंको अनायास उपलब्ध हो जाती थीं।

सन् १९१५में महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रिकासे लौटनेपर रंगून होकर जब कलकत्ता पधारे, तब हिंदू सभाकी ओरसे हनुमानप्रसादने मन्त्रीके रूपमें उनका स्वागत कर, अल्फ्रेड थियेटरमें उन्हें अभिनन्दन-पत्र दिया। गांधीजीसे यह उनकी पहली भेंट थी। इसके बाद बम्बईके प्रवासकालमें गांधीजीसे उनका घर-जैसा सम्बन्ध स्थापित हो गया, जो अन्ततक एकरस बना रहा।

श्रीगोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य बाल गङ्गाधरसे भी इनका परिचय उनके कलकत्ता-आगमनके समय स्वागत-सत्कारके आयोजनके माध्यमसे हुआ था। तिलकके क्रान्तदर्शी व्यक्तित्वमें इन्हें विशेष आकर्षण दिखायी पड़ा।

हिंदू विश्वविद्यालयकी स्थापनाके निमित्त धनसंग्रहके लिये सं० १९७२में महामना मदनमोहन मालवीय कलकत्ता आये। हिंदू सभाकी ओरसे उनके अभिनन्दनका प्रबन्ध हुआ। आरम्भमें अपेक्षित सफलता न मिलनेसे मालवीयजी कुछ निराश हुए। हनुमानप्रसादकी मारवाड़ी समाजमें साख थी। ये मालवीयजीको लेकर सेठोंके पास गये। सेठ युगलकिशोर बिरलासे परिचय कराया। इस सम्बन्धमें ये कुछ प्रतिष्ठित बंगाली लोगोंसे भी मिले। इन्हींके प्रयत्नसे बाबू रूड़मल गोयनकाने अपना विशाल पुस्तकालय हिंदू विश्वविद्यालयको दान कर दिया और बाबू सुबोधचन्द्र मल्लिकने एक लाख रुपया प्रदान किया। इस माध्यमसे मालवीयजीसे इनकी बड़ी आत्मीयता हो गयी। आगे चलकर तो वे इनसे पितृवत् स्नेह करने लगे। उन्होंने अपने पुत्र राधाकान्त मालवीयको बहुत दिनोंतक इनकी संरक्षकतामें रखा और उनके व्यावहारिक जीवनके निर्माणमें इनसे योग लेते रहे। 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमें इनके गोरखपुर आ जानेपर जब कभी मालवीयजी वहाँ गये तो इनके पास ही ठहरे। हनुमान-प्रसादके प्रति उनका यह स्नेह-सद्भाव अन्तिम समयतक बना रहा।

राजर्षि टंडन एक बार हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके कार्यसे कलकत्ता गये। इन्होंने समितिकी ओरसे उनके ठहरने तथा व्याख्यानादिका सारा प्रबन्ध कराया। तबसे टंडनजी इनके अभिन्न मित्र हो गये।

अन्य वङ्ग-विभूतियोंसे स्नेह-सम्बन्ध

स्वदेशी-आन्दोलनके प्रवाहमें सुभाषचन्द्र बोस जिन दिनों आई०सी०एस०से हटकर देश-सेवाके क्षेत्रमें आये, हनुमानप्रसाद सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ताके रूपमें प्रसिद्ध हो चुके थे। हनुमानप्रसाद उनके निःस्वार्थ, सच्चे, देशात्मबोधी और उच्च नैतिक आदर्श-सम्पन्न व्यक्तित्वसे बहुत प्रभावित हुए। एक ही क्षेत्रमें कार्य करते हुए दोनोंमें घनिष्ठ प्रेमभाव स्थापित हो गया। इनके कलकत्ता छोड़नेके बाद यद्यपि यह सम्बन्ध पत्राचार अथवा प्रत्यक्ष सम्पर्कसे पोषित न हो पाया, फिर भी सुभाषबाबूके महान् आदर्शों, त्याग तथा उत्कट देशप्रेमके प्रति इनके हृदयमें बड़ा सम्मान रहा।

माँ आनन्दमयीसे इनकी पहली भेंट सं० १९६९में ढाकामें हुई। उन दिनों ढाकामें इनका पाटका काम था—श्रीनौरंगराम रामचन्द्रकी हिस्सेदारीमें। इस सिलसिलेमें ये वहाँ जाया करते थे। माँ आनन्दमयी भी तब ढाकामें ही निवास करती थीं। उस समय भी उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। इन्होंने माँका प्रथम दर्शन यहीं किया। कुछ बातचीत भी की। इसके बाद इन्हें माँके साक्षात्कारका संयोग काशीमें प्राप्त हुआ। पीछे तो माँकी इनपर अगाध वत्सलता एवं कृपा आजीवन बनी रही। जब-जब माँके दर्शन हुए, माँने बड़े ही स्नेहसे इनका स्वागत किया।

श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका प्रथम सत्सङ्ग

श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका पोद्दारजीके मौसेरे भाई थे। मारवाड़ी समाजमें आध्यात्मिक महापुरुषके रूपमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वे जब कभी कलकत्ता आते तो प्रायः अपने बालसखा श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका अथवा स्नेही श्रीजोखीरामजी गोयन्दकाके पास ठहरते थे। श्रीबद्रीदासजी और श्रीकेदारनाथजी धानुकासे भी उनका घनिष्ठ परिचय था। इन्हीं लोगोंके द्वारा श्रीसेठजीके सत्सङ्गकी व्यवस्था होती थी। हनुमानप्रसादने सत्सङ्गियोंके मुखसे उनके तत्त्वज्ञानकी प्रशंसा सुन रखी थी, किंतु साक्षात्कारका सुयोग नहीं मिला था।

सं० १९६७–६८में श्रीगोयन्दकाजीका कलकत्ता-आगमन हुआ। संयोगवश अबकी बार उनका सत्सङ्ग पगया पट्टीमें श्रीहरबख्शजी साँवलकाकी दूकानपर आयोजित हुआ। यह स्थान हनुमानप्रसादकी दूकानके सामने ही पड़ता था। श्रीबद्रीदासजी और श्रीकेदारनाथजी धानुका हनुमानप्रसादके यहाँ दलाल थे। उनसे इन्हें इसका पता पहले ही चल गया था। अतः दूकानका काम निपटाकर ये नित्य श्रीसेठजीके सत्सङ्गमें जाने लगे। उनका प्रेमिल स्वभाव, मौलिक चिन्तन तथा दम्भहीन अन्तःकरण देखकर ये मुग्ध हो गये। इसके बाद श्रीसेठजीको सत्सङ्गके लिये ये अपनी दूकानपर भी लाने लगे। यद्यपि इस समयतक हनुमानप्रसादके मस्तिष्कमें राजनीतिक तथा सामाजिक विचारोंका घोर झंझावात चल रहा था, फिर भी श्रीसेठजीके सत्सङ्गमें इन्हें कुछ ऐसा आकर्षण, ऐसा रस मिलने लगा कि उधरसे समय निकालकर ये उनके कलकत्ता आनेपर नियमितरूपसे संत-समागमका लाभ उठाने लगे। इसके पीछे अचिन्त्यशक्तिकी कौन-सी मङ्गल-विधायिनी प्रेरणा काम कर रही थी, उसका रहस्य बादमें खुला।

श्रीअरविन्दकी स्नेह-प्राप्ति

इन्हीं दिनों श्रीअरविन्द घोष बड़ौदा छोड़कर कलकत्ता आ गये। वे पहले अपने मौसा श्रीकृष्णकुमार मित्रके यहाँ कालेज स्क्वेअरवाले मकानमें ठहरे। कृष्णकुमारबाबूसे हनुमानप्रसादकी पहलेसे ही अच्छी जान-पहचान थी। उनके माध्यमसे इन्हें श्रीअरविन्द घोषका भी स्नेह प्राप्त हो गया। सं० १९६४में घोष महाशयने नैशनल कालेजमें प्रिंसिपलके पदपर कार्य करना आरम्भ किया। इस संस्थाका उद्देश्य था, विदेशी शासकोंद्वारा स्थापित महा-विद्यालयोंका स्वदेशी-आन्दोलनमें बहिष्कार करनेवाले छात्रोंके लिये राष्ट्रीय शिक्षाकी व्यवस्था करना। धीरे-धीरे यह क्रान्तिकारियोंका गढ़ बन गया।

राष्ट्रकी प्रसुप्त आत्माको उद्‌बुद्ध करनेके लिये उन्होंने भी अपने विचारोंके प्रसारका माध्यम समाचार-

पत्रोंको ही बनाया। उनके सम्पादनमें तीन पत्र निकले—'कर्मयोगिन्'* (अंग्रेजी), 'बंदे मातरम्' (बँगला) और 'धर्म' (बँगला)। हनुमानप्रसाद इन्हें बड़े चावसे पढ़ते थे। श्रीअरविन्दके परवर्ती जीवनकी योग-साधनाके उत्कर्ष, उनके पांडिचेरी आश्रमकी सदाचार-पद्धति और भारतके आध्यात्मिक पुनर्जागरणमें उनके महान् योगदानके प्रति इनके हृदयमें बड़ी श्रद्धा थी। इन्होंने अपने कई स्वजनों एवं सहचरोंको पांडिचेरी आश्रममें जानेकी प्रेरणा दी।

अग्निवर्षी समाचार-पत्र

राष्ट्रीय भावनाको उद्दीप्त करनेमें कलकत्ताके बँगला, हिंदी और अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओंने घृताहुतिका काम किया। समसामयिक बँगला पत्रोंमें तीन बड़े ही प्रभावशाली पत्र थे—'बंदे मातरम्', 'युगान्तर' और 'संध्या'। 'बंदे मातरम्'के सम्पादक-मण्डलमें प्रमुख थे श्रीअरविन्द घोष, 'संध्या'के सम्पादक थे श्रीब्रह्मबोध उपाध्याय और 'युगान्तर'के श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्त। इन पत्रोंने शासनद्वारा अपनायी गयी दमन-नीतिकी खुलकर आलोचना की। बंगाल सरकारने प्रतिक्रियामें अभियोग चलाकर इनका मुँह बंद करनेकी योजना बनायी। पहला प्रहार राष्ट्रवादी 'बंदे मातरम्'पर हुआ। सं० १९७७में राजद्रोहका मुकदमा कायम करके श्रीअरविंद घोषको जेलमें डाल दिया गया; किंतु उक्त पत्रके सम्पादक-रूपमें उनका अस्तित्व प्रमाणित न हो सकनेके कारण कुछ ही दिनों बाद सरकारको उन्हें छोड़ देना पड़ा। इसके बाद 'युगान्तर'की बारी आयी। इसके सम्पादक श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्दके भाई) बड़े ही उग्र विचारोंके व्यक्ति थे। उनकी प्रेरणासे इस पत्रमें सर गुरुदास बनर्जी, सर चन्द्रमाधव घोष एवं उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारियोंके छद्मनामसे उत्तेजक लेख प्रकाशित होते रहते थे। इस पत्रकी आग्नेय भाषासे नवयुवकोंको विदेशी शासन और उसके कर्णधारोंको समाप्त करनेके लिये आत्माहुतिकी प्रेरणा मिलती थी। उसका संदेश था—

ज्वलुक ज्वलुक विप्लववह्नि नगरे नगरे।
भस्म होक् राक्षसेर स्वर्ण लंकापुरी॥

'विप्लवाग्नि नगर-नगरमें प्रज्वलित हो। राक्षसराज रावण (अर्थात् अंग्रेजी सरकार)की स्वर्णपुरी (लङ्का) भस्म हो।'

सरकार इसके विप्लवी स्वरसे संत्रस्त हो उठी। राजद्रोहपूर्ण सामग्री प्रकाशित करनेके अभियोगमें प्रेस-विधानके अन्तर्गत सर्वप्रथम इसके प्रिंटर गिरफ्तार हुए। किंतु एकके कैद होनेपर दूसरे नियुक्त होते रहे और समाचार-पत्र निकलता रहा। अतः सरकारने क्रुद्ध हो उसके सम्पादक श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्तको कारागारमें डाल दिया। इससे कुछ दिनोंके लिये उसका प्रकाशन स्थगित हो गया। किंतु उत्साही आतङ्कवादियोंके प्रयाससे यह पुनर्जीवित हो गुप्तरूपसे निकलने लगा। अब पत्रका स्वर अधिक उग्र हो गया। वैधानिक तथा प्रकट रूपमें प्रकाशित इसकी प्रति पैसेसे प्राप्त होती थी; किंतु अब अवैधानिक तथा प्रच्छन्न रूपमें प्रकाशित इसकी दुर्लभ प्रतिका मूल्य घोषित हुआ—

'युगान्तरेर मूल्य—फिरंगीर काटा मुण्ड' (अंग्रेजका कटा हुआ सिर)।

मुकदमा चलनेपर श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्तको एक वर्षका सपरिश्रम कारावास मिला, फिर भी उनका बोया हुआ बीज निःशेष नहीं हुआ। वह प्रचण्डतर स्वरमें क्रान्तिका बिगुल बजाता रहा, आग उगलता रहा और मातृभूमिकी लज्जारक्षाके लिये उसकी वेदीपर उसकी प्यारी संतानोंको सर्वस्व बलिदान करनेकी प्रेरणा देता रहा।

धधकती ज्वालामें

बंगालके विप्लववादियोंका घनिष्ठ सम्पर्क हनुमानप्रसादको क्रान्तिकी धधकती ज्वालामें अन्ततोगत्वा खींच ही ले गया। श्रीयतीन्द्रनाथ दासकी प्रेरणासे ये 'स्वदेश बान्धव समिति'के सदस्य बन गये। इस संस्थाके बाह्य और

* श्रीअरविन्द घोषकी कृतियोंका अपने विचारोंपर प्रभावका विवेचन करते हुए श्रीभाईजीने बताया था कि 'कर्मयोगिन्' पहले 'धर्म'के नामसे प्रकाशित होता था। इसमें सं० १९६५के आस-पास 'देशभक्ति कि ?' (देशभक्ति क्या है ?) शीर्षकसे एक लेख निकला था, जिसमें उन्होंने लिखा था, 'देशात्मबोधका नाम देशभक्ति है।' यह व्याख्या इन्हें अत्यन्त उपयुक्त एवं प्रिय लगी। इनकी देशभक्तिका स्वरूप-निर्माण इसी आदर्शपर हुआ। इस दिशामें बंकिमबाबूके 'आनन्दमठ'से भी इन्हें पर्याप्त प्रेरणा मिली।

आन्तरिक रूपमें दिन-रातका अन्तर था। वह बाहरसे सुधारवादी थी, भीतरसे घोर संहारवादी। इसके सदस्योंको गीता हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी और निःस्वार्थभावसे देशके लिये प्राणत्यागका व्रत लेना पड़ता था। ईश्वरमें पूर्ण विश्वासके साथ देशकी सेवाके द्वारा ईश्वरसेवाका पाठ पढ़ाया जाता था। गीतोक्त निष्काम कर्म-योगकी शिक्षा दी जाती थी। इसमें कार्य करते हुए ये ढाकाकी क्रान्तिकारी संस्था 'अनुशीलन समिति'के श्रीकुलीनबिहारी बोस, श्रीअमियनाथ भट्टाचार्य, श्रीरासबिहारी बोस, श्रीविपिनचन्द्र गांगुली तथा श्रीवैद्यनाथ दास-जैसे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेताओंके सम्पर्कमें आते रहे।

दमनचक्रकी प्रगति

अंग्रेजी सरकार बंगाली आतङ्कवादियोंसे त्रस्त हो गयी। अपनी सत्ताकी प्रतिष्ठा एवं अस्तित्व-रक्षाके लिये उसे पशुशक्तिके नृशंसतापूर्ण प्रयोग एवं प्रदर्शनका आश्रय लेना पड़ा। उसने सं० १८१८ ई०के रेगुलेशनके अनुसार कलकत्ताके ९ प्रमुख क्रान्तिकारियोंको दिसम्बर १९०८में 'देश-निकाले'का दण्ड दिया। क्रान्तिकारी समितिके सक्रिय सदस्य होनेसे इन देशभक्तोंके विरुद्ध चलाये गये मुकदमोंकी पैरवीके सिलसिलेमें हनुमानप्रसादने भी काफी दौड़धूप की।

मानिकतल्ला बम अभियोग

जिन दिनों यह मुकदमा चल ही रहा था, मानिकतल्लाका प्रसिद्ध बमकाण्ड हुआ। विप्लववादियोंकी योजना मुजफ्फरपुरमें स्थानान्तरित कलकत्ताके भूतपूर्व प्रेजीडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्डको बमसे उड़ानेकी थी। किंतु निशाना चूक जानेसे दो निरीह व्यक्तियोंकी हत्या हो गयी। यह घटना ३० अप्रैल, १९०८को घटी। इसमें श्रीअरविन्द, खुदीराम बोस, बारीन्द्र घोष, प्रफुल्ल चक्रवर्ती, नरेन्द्र गोस्वामी, कनाईलाल दत्तसहित ३६ अभियुक्तोंके विरुद्ध २०६ गवाह और ४००० लिखित प्रमाण, और अन्य बहुत-सी सामग्री प्रस्तुत की गयी थी। क्रान्तिकारी-समितिको इसकी भी पैरवीमें हनुमानप्रसादकी सेवाएँ प्राप्त हुईं।

श्रीअरविन्दकी अन्तर्धान-लीला

इसके बाद एड़ी-चोटीका पसीना एक कर देनेपर भी श्रीअरविन्दके विरुद्ध अभियोग साबित न हो सका। अतः विवश होकर सरकारको उन्हें छोड़ देना पड़ा। परंतु उनकी गति-विधिपर उसकी कड़ी नजर बनी रही। वह उन्हें किसी मुकदमेमें फिर फँसाकर जेलमें ठूँसनेकी फिक्रमें थी। श्रीअरविन्दसे यह बात छिपी नहीं थी। उनकी आन्तरिक वृत्तियोंमें भी अलक्षित रूपसे परिवर्तन संघटित हो रहा था। निदान अंग्रेजी सरकारके ही मायाजालसे नहीं, दुर्निवार्य भवजालसे भी मुक्ति पानेका उन्होंने संकल्प कर लिया और एक दिन सहसा अन्तर्धान हो गये। यह घटना १९१०की है। इस रहस्यपूर्ण योजनाका पता श्रीअरविन्दके मौसेरे भाई श्रीसुकुमार मित्र (श्रीकृष्ण-कुमारके पुत्र) आदि कतिपय अन्तरङ्ग सदस्योंके साथ हनुमानप्रसादको भी ज्ञात था।

देशबन्धुकी दानशीलता

श्रीचित्तरंजन दासकी उदारताके सम्बन्धमें इसके पूर्व हनुमानप्रसाद लोगोंके मुखसे भाँति-भाँतिकी चर्चा सुना करते थे। क्रान्तिकारियोंके मुकदमेकी पैरवीके सिलसिलेमें इन्हें उनके आचार-व्यवहारको अत्यन्त निकटसे देखने-परखनेका सुयोग मिला। उनके व्यक्तित्वमें इन्हें दैवी-सम्पत्तिके अक्षय कोषके दर्शन हुए। अगाध विद्वत्ताके साथ ही करुणा और अपरिग्रह उनके हृदयकी सहज वृत्ति थी। उनके द्वारपर अर्थार्थियोंकी भीड़ लगी रहती थी। दीन विद्यार्थी, धनाभावसे चिकित्सा करानेमें असमर्थ रोगी, पुत्रीका विवाह एवं मृत पिताका शवदाह करनेमें अशक्त निर्धन, कङ्कालशेष क्षुधार्त, वृत्तिहीन मजदूर आदि विविध रूपोंमें अभावग्रस्त मानवताको यथाशक्ति तृप्त करना ही उनके जीवनका लक्ष्य था। हनुमानप्रसादने साथ रहकर देखा कि सुबहसे शामतक वे जितना कमाते हैं, वह सब सूर्यकी किरणोंके साथ ही विलीन हो जाता है। दो हाथोंसे धन-संग्रह करते हैं और उसे हजार हाथोंसे हजार हाथोंमें पहुँचा देते हैं। मनीआर्डरके फार्म मुंशीके पास पहले ही नाम-पता लिखे हुए रखे रहते हैं, रुपये

आते ही डाकघरमें भेज दिये जाते हैं। डुमरावँ राज्यका मुकदमा जीतनेपर उन्हें एक दिनमें एक लाख रुपयेसे अधिक मेहनतानेके रूपमें मिला। घर पहुँचते-पहुँचते हाथ खाली हो गया। उनके दानकी विशेषता थी उसकी रहस्य-मयता। उनका सारा दान गुपचुप होता था। जैसे––यदि उन्हें पता लग जाता कि अमुक गृहस्थ अभावग्रस्त है तो उससे अपरिचित किसी दूसरे आदमीके हाथ रुपये यह कहलाकर भेजते थे कि 'तुमने अमुक जगह काम किया था, उसका रुपया बाकी रह गया था। यह ले लो।' कभी किसीकी नितान्त आवश्यकताका समाचार पाकर उसे अपने आदमियोंके द्वारा घर बुलाते और कहते––'देखो, हमारा अमुक काम है। तुम उस स्थानपर जाकर उसे कर आओ। यह रुपये लो। हिसाब पीछे दे देना।' उस काममें खर्च होता था पाँच रुपये तो पंद्रह रुपये अग्रिम दे देते थे। लौटनेपर जब वह शेष रुपये लौटाने लगता तो उसे वापस करते हुए कहते––'हम फालतू बैठे हैं क्या कि तुमसे हिसाब लें? जाओ, घर जाओ; हिसाब लेना होगा, तब हम अपने-आप तुमको कहला देंगे।' इससे, वह समझ जाता और प्रसन्न-वदन लौट जाता।

एक बारकी बात है। गांधीजी देशबन्धुसे मिलने उनके घर आये। उस समय पोद्दारजी भी वहाँ मौजूद थे, और भी कई लोग आ गये थे। दासबाबूने उन्हें संतुष्ट कर विदा किया। गांधीजीने इसके पूर्व उनकी दानशीलताके और भी कई किस्से सुन रखे थे। उन्होंने देशबन्धुसे कहा, 'दासबाबू! आपकी तो रुपयेमें बारह आने कमाई लोग ठग ले जाते हैं।'

दासबाबूने उत्तर दिया––'बापू! मेरी जगह आप होते तो जरूर यही बात होती। पर मेरा तो एक-एक पैसा भगवान्की सेवामें लगता है। मैं तो भगवान् समझकर देता हूँ। भगवान्की चीज भगवान्को अर्पित करता हूँ।' गांधीजी प्रसन्न हो गये।

देशबन्धु इसी प्रकार राजनीतिमें भी बड़े सच्चे, स्पष्टवक्ता और सिद्धान्तवादी थे। जो सिद्धान्त मान लेते थे, उसपर पूरा-पूरा अमल करते थे। गांधीजीकी भी जो बात उनको नहीं जँचती, स्पष्ट कह देते थे।

वे कभी अपने दातारूपको प्रकट नहीं होने देते थे। दानका मान न चाहना ईश्वरीय गुण है। यह उनके स्वभावमें कूट-कूटकर भरा था। कलकत्ता छोड़नेके बाद उनसे भाईजीकी भेंट नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनमें हुई थी। पीछे भी उनके जीवन-कालमें जब कभी ये कलकत्ता गये, उनसे बराबर मिलते रहे। हनुमानप्रसादपर उनकी अमानी प्रवृत्तिकी गहरी छाप पड़ी। देशबन्धुके संसर्गसे दानशीलतामें ही उनकी आस्था नहीं दृढ़ हुई, दान देनेमें अहंताका परिहार और गृहीताको भगवत्स्वरूप माननेकी दृष्टि भी उन्हें मिल गयी।

पारिवारिक आपत्ति

इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलनके प्रवाहमें इनकी जीवन-नौका वेगसे बह रही थी कि घरेलू आपत्तियोंके जलावर्त्तमें फँसकर उसकी प्रगति बाधित होनेका योग आ गया। द्वितीय पत्नी सुवटी बाईसे माघ कृष्ण १२, सं० १९७३को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दो दिनकी आयु भोगकर वह परलोक सिधार गया। इसके छः दिन बाद माघ शुक्ल ४, सं० १९७३को प्रसूति-ज्वरसे शोकातुरा माता भी उसकी अनुगामिनी हुई।

आर्त्तसेवाकी शिक्षा

श्रीभाईजीके पिता श्रीभीमराजजीके मित्रोंमें श्रीशरत्चन्द्र बनर्जी नामके एक प्रसिद्ध डाक्टर थे। ये कालीघाटमें रहते थे। श्रीभीमराजजीके देहावसानके बाद भी इनके यहाँ बराबर आते-जाते रहते थे। हनुमानप्रसादपर उनका स्नेह था। वे होमियोपैथीके अच्छे ज्ञाता थे। इसके अतिरिक्त तन्त्र-मन्त्रमें भी विश्वास रखते थे। उनके पास अभिमन्त्रित जड़ी-बूटियाँ रहती थीं। रोग-निवारणके लिये वे उनका भी प्रयोग करते थे। वे विदेशोंसे दवा मँगाकर शीशियोंमें भरकर रखते थे। इन दवाओंके प्रकृत नामको बदलकर वे अपनी पद्धतिसे अंग्रेजी वर्णमालाके अक्षरोंपर एक्स, वाई, जेड––ऐसे विचित्र नाम रखते थे। प्रत्येक रोगीको वे जड़ीके साथ दवाकी पूरी शीशी देते थे। किसीसे कुछ लेते नहीं थे।

प्रातःकाल उनकी बैठकमें रोगियोंकी अपार भीड़ लग जाती थी। कलकत्ताके बड़े-बड़े सेठ, साहूकार, वकील, बैरिस्टर, मध्यम और निम्नवर्गके लोग जब चारों ओरसे निराश हो जाते, तब शरत्बाबूकी शरणमें आकर त्राण

पाते थे। ऐसे असाध्य रोगियोंको देखनेकी, जो उनके पास नहीं आ सकते थे, उनकी अनोखी पद्धति थी। प्रातः ही रोगियोंके सम्बन्धी शरत्‌बाबूके पास जाकर रोगीका नाम, पता और यथासम्भव रोगका विवरण लिखा आते थे। दवाखानेसे छुट्टी पानेपर वे अपना बेग हाथमें लेते। फिर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उनके घर पहुँचते। दवा देकर बिना एक पैसा लिये, यहाँतक कि सवारीका किराया भी न लेकर अपने घर लौट आते। रोगियोंको वे उपदेश देते थे—'भगवान्‌पर विश्वास रखो, भगवान्‌में निष्ठा रखनेसे सब कुछ हो सकता है।' हनुमानप्रसादने उनकी चिकित्साके कई चमत्कार देखे—

एक दिन उनके पास एक व्यक्ति आया। उसकी स्त्री विषम प्रसव-पीड़ासे व्याकुल थी––बच्चा न होनेसे बड़ी तकलीफमें थी। उन्होंने एक यन्त्र निकाला और उसे देते हुए कहा––'इसे स्त्रीके हाथमें बाँध देना, बाँधते ही बच्चा हो जायगा। किंतु इसके बाद यन्त्रको अविलम्ब खोल लेना, नहीं तो आँततक नीचे आ जायगी।' आगन्तुक व्यक्तिने वैसा ही किया। पीड़ारहित प्रसव हुआ। स्त्री और बच्चा दोनों स्वस्थ रहे।

इसी प्रकार शरत्‌बाबूने भाईजीकी मरणासन्न छोटी बहन अन्नपूर्णा (पूर्णीबाई)की प्राणरक्षा कर लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया। पूर्णीबाई उस समय ४ वर्षकी थी। असामान्य रोगसे ग्रस्त होकर मृत्युकी गोदमें खेलने लगी। हालत नाजुक देखकर रातमें नगरके सबसे प्रसिद्ध डाक्टर सर कैलासचन्द्र बुलाये गये। उन्होंने लड़कीको देखकर कहा––'यह नहीं बचेगी।' वह बेहोश थी, उसकी जबान बंद थी। अन्तिम समय निकट जानकर कफन मँगा लिया गया। इतनेमें दादी रामकौर देवीको सहसा शरत्‌बाबूकी याद आ गयी। हनुमानप्रसादसे कहा—'जरा शरत्‌बाबूके यहाँ हो आओ। ईश्वरके हाथ बहुत लंबे होते हैं।' ये ट्रामपर चढ़कर शरत्‌बाबूके घर गये और बहनकी गम्भीर बीमारीका विवरण उन्हें बताया। शरत्‌बाबू बोले, 'ऐसी बात है ?' इसके बाद वे भीतर गये और हाथमें पूजाघरसे तुलसीकी एक सूखी पत्ती लेकर लौटे। उसे इनके हाथोंमें देते हुए बोले, 'इस पत्तीको गङ्गाजलमें पीसकर दो चार बूँद बच्चीके मुँहमें डाल देना। भगवान्‌ने चाहा तो यह अवश्य काम करेगी। अगर आज रातभर बच जाय तो कल प्रातः फिर आना।' ये उस पत्तीको लेकर घर आये और निर्देशानुसार पीसकर अपनी बहनको पिला दिया। रात सकुशल बीत गयी। प्रातः उसने आँखें खोल दीं और वह बोलने लगी। सवेरे शरत्‌बाबूके पास जाकर इन्होंने सारी बात बतायी। इसके बाद ये रोज जाते और एक पत्ती ले आते। शरत्‌बाबू कहते—'यह ठाकुरजीका प्रसाद है। सब कुछ कर सकता है।' एक महीनेमें वह बालिका पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो गयी। केवल एक कसर रह गयी। विषमज्वरके प्रभावसे उसका सुनना कम हो गया। यह दोष अबतक बना है। मात्र तुलसीके एक सूखे पत्तेने यमके दूतोंको लौटा दिया। हनुमानप्रसादको शरत्‌बाबूने चिकित्साके इन चमत्कारों––जड़ी-बूटीके विविध प्रयोगोंके रहस्य बतानेकी बात कही थी, किंतु इसके पूर्व कि वे अपनी यह थाती इन्हें सौंप सकें, 'रोड़ा-काण्ड'में इनकी गिरफ्तारीका वारंट आ गया और अलीपुर जेलमें इनके बंदी-जीवन व्यतीत करते समय ही वे दिवंगत हो गये।

शरत्‌बाबू बड़े ही तेजस्वी और हँसमुख स्वभावके थे। जिस समय हनुमानप्रसाद उनके घनिष्ठ सम्पर्कमें आये, उनकी आयु साठ वर्षके लगभग थी, फिर भी उनके शरीरमें युवकों-जैसी चुस्ती थी। उनके संसर्गसे इन्हें कई शिक्षाएँ मिलीं––परोपकार करना, सेवा करना, उसके बदलेमें कुछ चाहना नहीं, लेना नहीं, अपना काम अपने ही हाथों करना, भगवान्‌की कृपापर अखण्ड विश्वास रखना। भाईजीको अपने जीवनादर्शके निर्माणमें उनसे प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त हुई।

तन्त्रकी शिक्षा और तारायन्त्रकी साधना

शरत्‌बाबू होमियोपैथी तथा जड़ी-बूटीके अतिरिक्त तन्त्रविद्याके भी ज्ञाता और साधक थे। वस्तुतः उनकी चिकित्सा-पद्धतिकी असाधारण सफलताका यही रहस्य था। उन्होंने हनुमानप्रसादको तन्त्र एवं पूजा-पद्धतिकी शिक्षा दी। किस तरहसे संयम––ब्रह्मचर्यपालन करना चाहिये और कैसे-कैसे खान-पानमें संयम करना चाहिये, निष्ठाके साथ किस प्रकार नामजप करना चाहिये—इन सब तत्त्वोंका विधिवत् ज्ञान कराया। उनके निर्देशनमें इन्होंने कुछ दिनोंतक इसका अभ्यास भी किया।

बंगाली अध्यात्मसाधकोंके सम्पर्कमें इनकी तन्त्रविद्यामें रुचि बढ़ती गयी। संयोगसे विख्यात वङ्गीय तान्त्रिक वामा-खेपाके शिष्य तारकबाबूसे इनका सम्पर्क हो गया। उन्होंने इन्हें तारादेवीकी उपासना सिखायी। इसमें तारायन्त्रकी साधना प्रमुख थी। साधनाका रूप किंचित् राजसिक है। इसमें मांस-मदिरा आदिका प्रयोग अनिवार्य होता है। भाईजीको इन पदार्थोंसे जन्मना अरुचि थी। तारकबाबू लाख समझाते कि यह सब तुम्हें माँके लिये करना है, किंतु यह बात हनुमानप्रसादके गले न उतर सकी। अतः देवीकी साधनामें इन पदार्थोंको छोड़कर और सब कर लेते—मदिराके स्थानपर शरबतसे काम चल जाता और मांसके स्थानपर शाकाहारी भोग।

साधना करते-करते इन्हें तारादेवीका ध्यान होने लगा और उनकी मुखमुद्राका आभास भी मिलने लगा। किंतु इसका क्रम राजनीतिक सक्रियताके बढ़ जानेसे बीचमें ही टूट गया।

विप्लववादियोंकी कार्य-प्रणाली

क्रान्तिकी मशाल जलाये रखनेके लिये पैसेकी जरूरत थी। विप्लववादियोंको चंदा देनेमें पुलिसके कोप-भाजन बननेका भय था। इससे सामान्यतया लोग उन्हें चंदा नहीं देते थे। जो सहानुभूति रखते थे, वे ही सहायता करते थे—वह भी छिपकर। हथियारोंके खरीदने और कार्यकर्ताओंकी जीवन-रक्षाके लिये धन-संग्रह अनिवार्य था। इसलिये और कोई चारा न देखकर उन्हें अवाञ्छनीय पद्धति अपनानेके लिये विवश होना पड़ा। और यह पद्धति वही थी, जिसे अभावग्रस्त साहसी लोग अनादिकालसे अपनाकर 'साहसिक'की उपाधि पाते रहे हैं।

ये लोग डाका डालने लगे। यद्यपि हनुमानप्रसाद समितिकी इस योजनामें प्रत्यक्ष सहायक नहीं बन पाये, फिर भी वे उसके मनसा समर्थक बने रहे। डाका डालनेमें भी वे लोग अपने सामने एक महान् आदर्श रखते थे। जिस घरमें बहुत पैसा होता था, डाका वहीं पड़ता था। युवक पिस्तौल, कटारी आदि अस्त्रोंसे लैस होकर जाते। घरके भीतर पहुँचकर बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंको 'दादी, माँ' आदि कहकर प्रणाम करते और अपने उद्देश्य बताते हुए कहते—'देशके लिये धनकी जरूरत है। देशकी सेवाके लिये हम आपके पास आये हैं। देशके लिये हम आपसे धनकी भिक्षा माँगते हैं। आपका धन देशके काममें लगेगा।' यही बात पुरुषोंसे भी कहते। यदि वे लोग बिना कुछ कहे-सुने दे देते तो जितना दे देते, उतनेमें ही संतोष करके चले जाते। आनाकानी करते तो पिस्तौल दिखाकर चाभी ले लेते और धन निकालकर चले जाते। पर यह मजाल नहीं कि इस धनमेंसे एक पैसेका पान भी स्वयं खाते। जो भी धन आता, उसका पैसा-पैसा देशके काममें खर्च होता।

मातृभूमिकी गौरवरक्षाके लिये आत्माहुति करनेवाले इन विप्लववादियोंको इस देश-सेवाका पुरस्कार क्या मिलता? घरवालोंकी फटकार, देश-निकाला, समाजमें तिरस्कार, पुलिसके कोड़े, बिजलीके शॉक, जेलकी असंख्य अकल्पनीय यातनाएँ और अन्तमें फाँसीका तख्ता। किंतु इन सबको हँसते-हँसते झेलते हुए, वे राष्ट्र-सेवामें तल्लीन रहते। मातृभूमिका बन्धन काटनेमें प्राप्त मृत्युकी गोद उन्हें हिमानी-सी शीतल लगती और असह्य शारीरिक यन्त्रणा पुष्प-शय्या-सी सुख-स्पर्शपूर्ण। हनुमानप्रसाद इसके अपवाद न थे। कारावास और मृत्युदण्डकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा ये भी करते थे।

राजद्रोहियोंकी सूचीमें

क्रान्तिकारियोंसे घनिष्ठ सम्पर्क, उनके मुकदमोंकी सरेआम पैरवी तथा गुप्त समितियोंमें सक्रिय भाग लेते रहनेसे हनुमानप्रसादका नाम पुलिसकी डायरीमें आ गया और इनकी गति-विधियोंका सतर्कतासे निरीक्षण होने लगा।

बहुत दिनोंसे आकाशमें घुमड़ते हुए बादल एक दिन बरस कर ही रहे। सं० १९७१में पुलिसका दल आ धमका। पूरे घरकी तलाशी हुई, किंतु कोई आपत्तिजनक सामग्री न मिलनेसे पुलिस हाथ मलती हुई लौट गयी। इसके बावजूद कोई षड्यन्त्र बनाकर वह इनका चालान कर देती, यदि इनके ससुर श्रीमँगतूरामजी सरावगी बीचमें न आ जाते। उनकी पुलिसके उच्च अधिकारियोंसे जान-पहचान थी। उनसे मिलकर उन्होंने मामला शान्त

कर दिया। किंतु यह उपचार तात्कालिक ही था। रोग ज्यों-का-त्यों बना रहा। पुलिस उपयुक्त अवसरकी ताकमें बैठी रही। इधर भी बिना किसी प्रकारके भय एवं संकोचका अनुभव किये कार्यक्रम योजनाबद्ध रूपसे चलते रहे।

तृतीय विवाह

द्वितीय पत्नीके दिवंगत होनेके बाद हनुमानप्रसादको राजनीति और समाज-सेवामें अहर्निश व्यस्त रहते देखकर दादी रामकौर देवीने इन्हें एक बार फिर गृहस्थीकी ओर खींचनेके विचारसे घर बसानेकी सलाह दी। दादीकी कोई बात इनकार करना इनके शीलके विरुद्ध था। अतः इन्होंने उस प्रस्तावका न तो विरोध किया न समर्थन ही। अतः रामकौर देवीने सेठ श्रीसीताराम साँगानेरियाकी पुत्री रामदेई बाईसे विवाहकी बात पक्की कर ली। साँगानेरियाजी गौहाटीमें रहते थे। वहीं बारात गयी और वैशाख शुक्ल ३, सं० १९७३को विवाह सम्पन्न हो गया।

रोड़ा-काण्ड

मानिकतल्ला बम अभियोगके लगभग ६ वर्ष बाद (सन् १९१४ ई०)में क्रान्तिवादी आन्दोलनकी दूसरी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। यह 'रोड़ा-काण्ड'के नामसे प्रसिद्ध है। इसका संक्षिप्त वृत्त इस प्रकार है—

कलकत्तामें 'आर० बी० रोड़ा ऐंड कम्पनी' नामकी एक फर्म थी। यह बंगालमें विदेशोंसे आग्नेयास्त्र आयातित करनेवाली प्रमुख संस्था थी। २६ अगस्त, १९१४ ई० को इसने जर्मनीसे ४६,००० कारतूस और ५० पिस्तौलोंका पार्सल प्राप्त किया। ये १० पेटियोंमें बंद थे। आतङ्कवादियोंकी गुप्त समितिको इसका पता चल गया। हनुमानप्रसाद इससे सम्बद्ध थे। रोड़ा कम्पनीमें विदेशोंसे आये मालको छुड़ाकर लानेवाले कर्मचारी श्रीशचन्द्र भी इस समितिके सदस्य थे। उन्होंने बंदरगाहपर जाकर माल छुड़ाया और उसे बैलगाड़ीपर लदवाकर साथ चले। पूर्वयोजनानुसार रास्तेमें बैलगाड़ीपर लदी पेटियाँ ही गायब नहीं कर दी गयी; उनके साथ बैलगाड़ी, गाड़ीवान तथा माल छुड़ाकर साथ आनेवाले रोड़ा कम्पनीके कर्मचारी श्रीशचन्द्र भी लुप्त हो गये। कम्पनीके दफ्तरमें समयसे माल न पहुँचनेपर तहलका मच गया। इसमें क्रान्तिकारियोंकी साजिशकी गन्ध पाकर पुलिस सरगर्मीसे जाँच-पड़ताल करने लगी।

पेटियोंमें रखे ५० पिस्तौल तो उसी रातको गुप्त समितिके बंगाली सदस्योंमें बाँट दिये गये, किंतु कारतूसोंकी पेटियाँ छिपानेमें सदस्योंको बड़ी परीशानीका सामना करना पड़ा। इस कार्यमें हनुमानप्रसादके जमादार सुखलालने बड़ी तत्परता एवं सतर्कता दिखायी। समितिके सदस्योंके अतिरिक्त पं० बाबूराव विष्णु पराड़करका भी कारतूसोंको सुरक्षित स्थानोंमें रखवानेमें हाथ था।

इसके बाद सं० १९७३ (१९१६ ई०) के मार्चमें सी० आई० डी०के एक बंगाली पुलिस इंस्पेक्टरने श्रीफूलचन्द्र चौधरीसे भेंट की और उन्हें बताया कि 'एक बंगाली क्रान्तिकारी युवकने पुलिसके सामने सारा भेद खोल दिया है।' उसने जो रिपोर्ट लिखायी है, उसमें आपलोगोंके नाम हैं। ये नाम थे—फूलचन्द चौधरी, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, ज्वालाप्रसाद कानोड़िया, घनश्यामदास बिरला, ओंकारमल सराफ तथा हनुमानप्रसाद पोद्दार। उसने इसी सिलसिलेमें बातको आगे बढ़ाते हुए कहा, 'यदि मुझे दस हजार रुपये मिल जायँ तो सारे कागज-पत्र नष्ट कर दूँगा। आपलोग इस प्रकार एक बहुत बड़ी आफतसे छुट्टी पा जायेंगे।' इंस्पेक्टरके इस प्रस्तावपर सदस्योंमें विचार-विनिमय हुआ, किंतु घूस देनेकी बात ठीक नहीं जँची। इंस्पेक्टरको इसकी सूचना दे दी गयी।

समितिके सदस्योंमें फूलचन्द चौधरी सरकारके अधिन्यास-कार्यालयके कर्मचारी थे। उनके कार्यालयका सर्वोच्च अधिकारी अंग्रेज था, वह उन्हें बहुत मानता था। कलकत्ताके पुलिस कमिश्नर टैगर्ट उसके साले लगते थे। फूलचन्दने अपने साहबसे सारा वृत्तान्त बताते हुए पुलिस इंस्पेक्टरके विरुद्ध जाँच करानेको कहा। इन लोगोंने सोचा था कि इससे मामला दब जायगा, किंतु परिणाम उल्टा हुआ। पुलिस कमिश्नर टैगर्टने जाँच की। उसे सं० १९७१की फाइल भी इस सिलसिलेमें प्राप्त हो गयी। शिकायत साधार पाकर उसने उक्त पुलिस इंस्पेक्टरको मुअत्तल कर दिया। परंतु प्राप्त कागजोंसे उसकी यह धारणा दृढ़ हो गयी कि इन लोगोंका सम्बन्ध
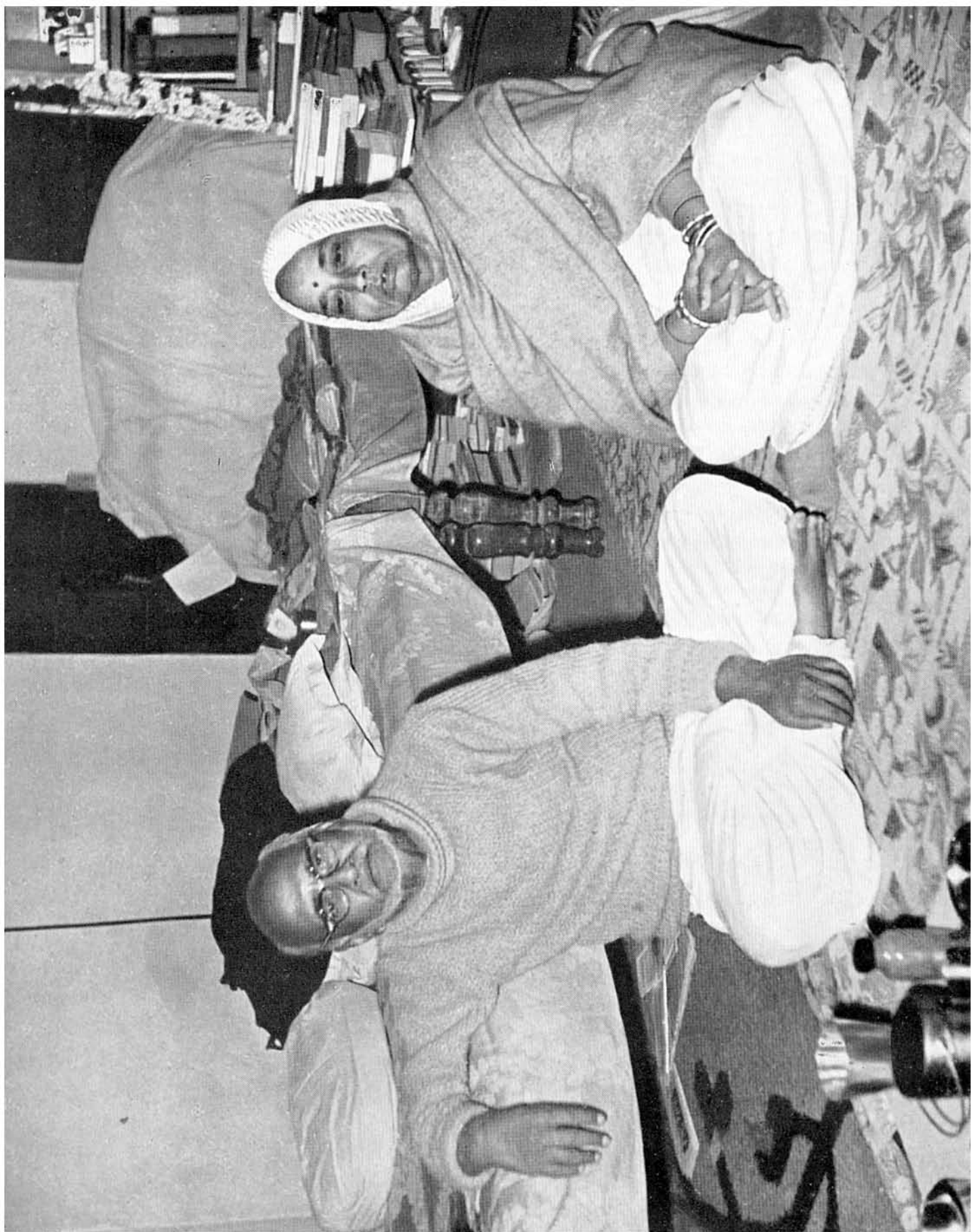
इस घटनासे अवश्य रहा है। अतः राजद्रोहका अभियोग लगाकर भारतीय दण्ड-विधानकी धारा १२०के अन्तर्गत सभीके विरुद्ध गिरफ्तारीके वारंट जारी करा दिये।

इस काण्डमें लिलुआकी गुप्त समितिके दो सदस्य--श्रीप्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका और श्रीकन्हैयालालजी चितलानिया पहले ही पकड़े जा चुके थे। शेष पाँचकी गिरफ्तारीका आदेश अब निकला। हनुमानप्रसादको इसकी सूचना एक महीने पहले ही श्रीफूलचन्द चौधरीसे मिल गयी थी, किंतु पकड़े जानेके भयसे न तो ये कहीं अन्यत्र भागकर छिपे और न इन्होंने अपनी क्रान्तिचर्यामें ही कोई परिवर्तन आने दिया। क्लाइवस्ट्रीटमें 'बिरला ब्रॉफ ऐंड कम्पनी' नामकी एक दूकान थी, उसीमें ये भागीदारके रूपमें काम करते रहे। एक दिन अकस्मात् वहाँ पुलिस सदल-बल आ धमकी। १६ जुलाई, १९१४ ई० (श्रावण कृष्ण ५, सं० १९७३) को इन्हें अपने तीन अन्य साथियोंसहित राजद्रोहके अपराधमें बंदी बनाकर जेल भेज दिया गया।

कारावास-सेवन

डुराण्डा हाउस कारागार--आरम्भमें १५ दिनतक इन लोगोंको कलकत्ताके डुराण्डा हाउस कारागारमें रखा गया। डुराण्डा हाउस पूरी तरह कैदियोंसे भर गया था। हनुमानप्रसाद, श्रीज्वालाप्रसाद कानोड़िया, श्रीओंकारमल सराफ और श्रीफूलचन्द चौधरी चार पृथक् कोठरियोंमें रखे गये। यहाँकी गंदगी तथा दुर्व्यवस्था देखकर इन लोगोंने जेलद्वारा दिया गया भोजन करना अस्वीकार कर दिया। इस कारण पहले दिन इन्हें निराहार रहना पड़ा। इनके सद्व्यवहारसे प्रसन्न होकर जेलरने दूसरे ही दिनसे चौकीदारद्वारा बाहरसे भोजन मँगानेकी व्यवस्था करा दी। चौकीदारने इन लोगोंसे कहा, 'आपलोग भोजन घरसे मँगा लीजिये, मैं भीतर पहुँचा दूँगा।' हनुमानप्रसादने पं० श्रीझाबरमलजी शर्माको एक पत्र लिखा। उन्होंने नियमितरूपसे चारों व्यक्तियोंके घरसे भोजन भिजवानेकी व्यवस्था कर दी। यह क्रम डुराण्डा हाउसके बंदीकालतक चलता रहा। गुप्तचर-विभागके अधिकारियोंने इस बीच नाना प्रकारके भय और प्रलोभन* दिखाकर इन्हें अपने सहकर्मी क्रान्तिकारियोंके नाम बतानेको कहा, किंतु ये टस-से-मस न हुए। अन्ततोगत्वा भारतीय दण्ड-विधानकी धारा १२० एके अन्तर्गत राजद्रोहका अभियोग लगाकर चारोंको अलीपुर जेलमें स्थानान्तरित कर दिया गया।

समाजमें आतङ्क

मारवाड़ी समाज अपने प्रतिष्ठित लोगोंकी इस व्यापक गिरफ्तारीसे संत्रस्त हो गया। लोगोंमें भय छा गया। समाजके अच्छे-अच्छे लोग, जिनसे इन लोगोंका घरेलू सम्बन्ध था, इनके कुटुम्बियोंसे मिलनेमें कतराने लगे। जिन लोगोंसे गहरा सम्बन्ध था, उन लोगोंने चुपकेसे रामकौर देवीके पास कहला दिया कि 'हमारे पास आपका कोई आदमी न आये।' मारवाड़ियोंकी सभाएँ आयोजित हुईं, जिनमें मञ्चपर खड़े होकर समाजके गण्यमान्य लोगोंने इन गिरफ्तार होनेवाले राजनीतिक कार्यकर्ताओंको 'समाजका कलङ्क' कहा। हनुमानप्रसाद भी उनके कोपभाजन बने। आतङ्क इस सीमातक फैला कि इनके प्रयाससे 'साहित्य-संवर्द्धिनी समिति'द्वारा प्रकाशित गीताकी शेष प्रतियाँ, जो छिपाकर रखी गयी थीं--जला दी गयीं।

हनुमानप्रसादको कारावासमें इन सारी बातोंकी सूचना मिलती रही। किंतु उन्हें इसपर न कोई आश्चर्य हुआ न चिन्ता ही। जीवनका यह कठोर यथार्थ उन्हें अविदित न था कि अन्धकारमें छाया भी शरीरका साथ छोड़ देती है।

घरकी स्थिति

पिताके दिवंगत होनेके अनन्तर इनके सत्सङ्ग, समाज-सेवा और राजनीतिमें अहर्निश व्यस्त रहनेके कारण दूकानका काम ढीला पड़ गया था। घाटेपर चलते-चलते उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी। कई हजारका

---

* पुलिसने इन्हें शारीरिक यातना नहीं दी। केवल यह कहकर धमकाती रही कि 'फाँसीपर लटका दिये जाओगे, उम्रभरकी कैद होगी, घरवाले भूखों मरेंगे, तुम्हारा अभी विवाह हुआ है, पत्नीको पुलिसवाले मारेंगे। बड़ी दुर्दशा होगी' आदि। किंतु जेलमें बंद अन्य क्रान्तिकारी बंगाली तरुणोंको बिजलीके धक्के दिये गये थे और मारा भी गया था।

कर्ज हो गया। इससे विवश हो सं० १९७२में उसे बंद कर देना पड़ा। इसके बाद श्रीनागरमलजी अजीतसरियाके साथ इन्होंने जूटका काम करना आरम्भ किया, किंतु यह भी लाभप्रद सिद्ध नहीं हुआ। अन्तमें इन्होंने 'बिरला श्रॉफ ऐंड कम्पनी' स्थापित की। यह अभी शैशवास्थामें ही थी कि राजनीतिक वात्याचक्रने इन्हें अत्याचारी शासनसे लोहा लेनेवाले स्वतन्त्रता-प्रेमियोंके प्रकृत आवासका अतिथि बना दिया।

अलीपुर जेलका जीवन

हनुमानप्रसाद श्रीज्वालाप्रसाद कानोड़िया, श्रीओंकारमल सराफ तथा श्रीफूलचन्द चौधरी––चारों राजनीतिक बंदियोंको अलीपुर जेलमें पृथक्-पृथक् एकान्त कोठरियोंमें रखा गया। कोठरीके भीतर सोनेके लिये एक लंबा चबूतरा था। कोठरीमें ही मल-मूत्रके लिये मिट्टीके बर्तन रखे रहते थे। कोठरीके बाहर भी एक चबूतरा था और सामने खुला आँगन। उसके आगे एक दरवाजा और था। दिनमें बाहरवाला दरवाजा बंद रहता था, रातको दोनों बंद हो जाते थे। पहले दिन वहाँ भी डुराण्डा हाउसकी भाँति तीनोंको भूखा रहना पड़ा; परंतु दूसरे दिनसे जेलरने घरसे भोजन मँगानेकी अनुमति दे दी। इन्होंने पं० झाबरमलजी शर्माको सूचना देकर पूर्ववत् घरसे भोजन मँगानेकी व्यवस्था कर ली। चारोंका भोजन साथ आता था।

अध्यात्मनिष्ठ विप्लववादी विचारधारामें निष्णात होनेसे जेलयात्रा इन्हें रञ्चमात्र भी कष्टकर नहीं प्रतीत हुई। मानसिक स्थिति पूर्णतया संतुलित रही। चिन्ता केवल एक बातकी थी और वह थी गृहस्थीकी दयनीय स्थिति। घरमें रह गयी थीं पाँच स्त्रियाँ––बूढ़ी दादी, विमाता गौराँबाई और पत्नी रामदेई तथा दो छोटी बहनें––कमला बाई और अन्नपूर्णाबाई। इनमें माँ गौराँबाई उन दिनों अपने मायकेमें थीं। इन सबकी देखभालकी व्यवस्था करनेवाला कोई पुरुष न था। भरण-पोषणके लिये भी अपेक्षित साधनोंकी कमी थी। हनुमानप्रसादकी परिवार-सम्बन्धी यह उद्विग्नता भी शीघ्र शान्त हो गयी।

नाम-साधनाका समारम्भ

इस चिन्ताजनक स्थितिमें इन्हें अशरण-शरण भगवान्का नाम याद आया। जेलके यातनापूर्ण जीवनमें किस प्रकार उसके नियमित जपकी व्यवस्था हुई और उससे उद्विग्न मानसको कितनी शान्ति मिली, इसका विवरण भाईजीके ही शब्दोंमें देखिये––

"अलीपुर जेलमें भगवन्नामका जप प्रारम्भ किया, जिससे दो-तीन घंटेके अंदर ही बहुत अधिक शान्ति मिली। वहाँ पहुँचनेपर पहले-पहल बड़ी व्याकुलता प्रतीत हुई; सब तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा दीखता था, घरवालोंके पास खानेके लिये एक पैसा भी नहीं था। सं० १९७३की बात होगी––अक्षयतृतीयाको ही तीसरा विवाह हुआ था, जिसके दो-तीन महीने बाद जेल जाना पड़ा था। इसलिये चिन्ताओंका पहाड़ सामने दीखने लगा था।

"उस समय माला फेरनेकी बात याद आयी। सिपाहीसे माला माँगी तो उसने कहा कि 'माला तो नहीं है।' उसने एक कील (काँटी) दे दी, जिससे दीवालपर बिस्वोंके द्वारा मालाकी संख्या पूरी करके लकीर कर देता। उस समय बड़े प्रेमसे खूब मन लगाकर––२-३ घंटे भजन हुआ, जिससे बड़ी शान्ति मिली। ऐसे तो पहले भी सप्तशतीके पाठ (नवरात्रमें) तथा नित्यप्रति शिव-महिम्नस्तोत्र, हनुमान-कवच, सूर्य-कवच तथा गोपाल-सहस्रनाम आदिके पाठ-जप आदि बहुत करता था; किंतु वास्तविक जप* यहींसे शुरू हुआ।"

यहीं इन्हें नाम-माहात्म्यका परिचय मिला। फिर तो भगवान्का यह षोडशनामात्मक मन्त्र भाईजीका आजीवन सहचर रहा। दूसरोंको भी उसका महत्त्व बताकर ये जपकी प्रेरणा देते रहे।

कारावधिकी समाप्ति

डुराण्डा हाउस और उसके बाद अलीपुर जेलमें बंद करनेके बाद बंगाल सरकारने इन लोगोंके विरुद्ध राजद्रोहका मुकदमा चलानेके लिये अपेक्षित साक्ष्योंको एकत्र करनेका भरसक प्रयास किया, किंतु कोई ठोस आधार

* जप निम्नाङ्कित षोडशाक्षर नाममन्त्रका होता था––

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हाथ न लगा। इन्हें छोड़नेसे क्रान्तिके भड़कनेकी आशङ्का थी, और दमनद्वारा शान्ति एवं व्यवस्था खतरेमें पड़ जाती। अतः बहुत सोचने-विचारनेके बाद गवर्नरने अपने सलाहकारोंकी राय लेकर इन लोगोंको कलकत्तासे दूर कहीं बाहर ले जाकर 'भारत-रक्षा-विधान'के अनुसार नजरबंद करनेका निर्णय किया। बंगाल सरकारके सचिवने अपने पत्र दिनाङ्क २१ अगस्त, १९१६के द्वारा इसकी सूचना हनुमानप्रसादको दी। यह पत्र इन्हें २२ अगस्तको मिला। सरकारके उक्त आदेशानुसार इन्हें २३ अगस्तको बाँकुड़ा जिलेके पुलिस अधीक्षकसे पुलिस उपमहानिरीक्षक (डी० आई० जी०)द्वारा निर्दिष्ट समय और स्थानपर मिलनेका निर्देश प्राप्त हुआ। इसके बाद इन्हें उक्त पुलिस अधीक्षकके ही आदेशानुसार कार्य करना था। प्राप्त आदेशपत्रमें इन्हें बाँकुड़ा जिलेके शिमलापाल थानेके क्षेत्रमें थानाध्यक्षके आदेशानुसार किसी स्थानपर रहनेका आदेश तथा नजरबंदी-कालकी जीवन-चर्या-विषयक पालनीय कतिपय अनिवार्य प्रतिबन्धोंका विस्तारसे उल्लेख था।

जेलके संतरीसे यह आदेशपत्र भाईजीको २२ अगस्तकी संध्याको प्राप्त हुआ। इसके साथ ही जेलके अधिकारियोंको पृथक्‌रूपसे यह आदेश दिया गया था कि कलकत्तासे बाँकुड़ा जाते समय इन्हें एक घंटेके लिये अपने घरवालोंको देखनेकी सुविधा दी जाय।

वे अविस्मरणीय क्षण

सरकारी व्यवस्थाके अन्तर्गत २२ अगस्तको एक घंटेके लिये भाईजी स्वजनोंसे मिलने पारख कोठी आये। इन्हें देखकर घरमें हाहाकार मच गया। हनुमानप्रसादने दादीका चरण-स्पर्श किया। बुढ़िया फूट पड़ी। अपने जीवनदीपको पुनः देख पानेकी आशा वह छोड़ चुकी थी। उसे सामने पाकर उस सब कुछ खो चुकनेवाली वृद्धाके विषाद-विगलित हृदयकी स्नेहधारा नेत्रोंसे बह चली। उसने देखा 'मन्नू'का चमकता ललाट साँवला हो गया है, चेहरेपर कारावासकी काली रातें और तपते हुए दिन अमिट रेखाएँ छोड़ गये हैं, शरीर पीला हो गया है। हृदयने यह अनुभव कर धैर्य धारण किया कि उसका लाड़ला—बुढ़ापेकी एकमात्र लकड़ी, अभी जीवित है। यही क्या कम था ? किंतु एक क्षणमें ही दृश्य बदला; सोचा, आगे वह देखनेको मिल सकेगा—इसका विश्वास ही क्या ? वह आये दिन ऐसे युवकोंके फाँसीपर लटकाये जानेका संवाद सुनती थी। स्मरण आते ही दिल बैठ गया। इस प्रकारके संकल्प-विकल्प रह-रहकर शून्य हृदयमें कौंधते रहे और उस स्नेह-विह्वल वृद्धाके निरीह नेत्र मघा नक्षत्रके मेघकी भाँति बरसते रहे। आँसुओंसे अभिषिक्त करते हुए उसने इनको हृदयसे चिपका लिया। बहनें बिलख-बिलखकर रो रही थीं और नव-विवाहिता पत्नी एक कोनेमें हिचकियाँ भर-भरकर अपार दुःख-सागरकी थाह ले रही थी। एक घंटेका समय होता ही कितना है ! देखते-देखते निर्मम कालके पंखोंपर चढ़कर वह तिरोहित हो गया। सारी कहानी—घरकी स्थिति, पड़ोसियोंके ताने, भाई-बन्धुओं, सगे-सम्बन्धियों एवं परि-चितोंका उपेक्षापूर्ण व्यवहार तथा भावी जीवनकी व्यवस्था—अनकही ही रह गयी। सबको यथासम्भव परितोष देकर, असहाय परिजनोंको करुणा-सिन्धुके सर्वसमर्थ हाथोंमें सौंपते हुए इन्होंने उनसे बिदा ली।

बाँकुड़ामें भाईजीके मौसेरे भाई सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका व्यापार था तथा इनके मामा श्रीमेघ-राज बाजोरियाकी भी दूकान थी। किंतु इन्हें वहाँ किसी भी सम्बन्धी या अन्य व्यक्तिसे मिलनेकी मनाही थी।

बाँकुड़ाके लिये प्रस्थान

ये रातमें ही कलकत्तासे बाँकुड़ाके लिये रवाना हो गये। प्रातः ४ बजे वहाँ पहुँच गये। दिनमें १२ बजे पुलिस-कप्तानके दफ्तरमें उपस्थित हुए। साथमें मामाके लड़के श्रीशिवबख्श बाजोरिया भी थे। वहाँ पहले इनका फोटो लिया गया। फिर दसों अँगुलियोंकी छाप ली गयी और तीन भाषाओं—हिंदी, बँगला और अंग्रेजीमें इनसे हस्ताक्षर करवाये गये। इसके बाद इन्हें शिमलापाल गाँवमें अधरचन्द्र राय नामक व्यक्तिके मकानमें रहकर नजरबंदीके दिन काटनेका आदेश मिला।

शिमलापालका अज्ञातवास

शिमलापाल बाँकुड़ासे २४ मीलकी दूरीपर स्थित एक छोटा-सा गाँव है। उस समय वहाँ एक थाना था, केवल दो-तीन पक्के मकान थे और शेष सब झोपड़ियाँ थीं। शिमलापालको बाँकुड़ासे एक कच्ची सड़क जाती थी। यात्राका साधन केवल बैलगाड़ी थी। इन्होंने १० बजे रातको बैलगाड़ीपर बैठकर शिमलापालके लिये प्रस्थान किया।* दूसरे दिन १० बजते-बजते ये वहाँ पहुँच गये। सीधे थानेपर गये और संयोगसे थानेदार अरुणकुमार सिंह उस समय वहाँ उपस्थित मिल गये। वे कुर्सीपर बैठे थे। पास ही चार-पाँच कांस्टेबल कम्बल-पर बैठे थे। वहाँ कुर्सी एक ही थी। नमस्कार करके अपना परिचय देनेके बाद ये एक ओर खड़े हो गये। थानेदार समझ गये कि राजनीतिक बंदी होनेके कारण जमीनपर बैठनेमें इन्हें संकोच हो रहा है। वे कुर्सीसे उठ पड़े और हाथ पकड़कर मुस्कराते हुए उन्होंने इन्हें भी साग्रह अपने साथ कम्बलपर बैठा लिया। फिर बोले—'यहाँ केवल एक कुर्सी रहती है। तीन और कुर्सियाँ हैं, किंतु वे सभी कमरेमें बंद रहती हैं—विशेष अवसरके लिये। इससे कभी-कभी आप-जैसे सम्भ्रान्त लोगोंके आ जानेपर बड़ी परीशानी होती है। कुर्सी न होनेसे आपको कम्बलपर बैठनेके लिये कहा था, और कोई बात नहीं थी।' इसके बाद उन्होंने अधरचन्द्र मंडल नामक एक स्थानीय व्यक्तिके पूर्वनिश्चित मकानमें इनके ठहरनेकी व्यवस्था करा दी। यह मकान थानेसे एक फर्लांगकी दूरीपर था। नित्य प्रातः ७ बजे इन्हें थानेपर हाजिरी देनी पड़ती थी। थोड़े ही दिनोंमें इनके निश्छल तथा प्रेमपूर्ण व्यवहारसे थानेके सभी कर्मचारी इनके साथ कुटुम्बी-जैसा व्यवहार करने लगे। उन दिनों बंगाली और गैर-बंगालीका भेदभाव नहीं था। आजकी तरह भाषा-विवादसे सामाजिक वातावरण विषाक्त नहीं हुआ था। शिमला-पालमें केवल चार हिंदीभाषी थे—दो बिहारके और एक यू० पी०के कांस्टेबल तथा चौथे हनुमानप्रसाद। किंतु पास-पड़ोसकी सारी बंगाली जनता इनसे बड़ी एकात्मता रखती थी।

स्वावलम्बन

बाँकुड़ासे शिमलापाल जाते समय भोजन बनानेके लिये ये एक रसोइया साथ ले गये थे। उसने माँग की—३० रुपये वेतन, एक रुपया रोज गाँजेके लिये तथा भोजन। इन्हें कुल मिलाकर ८० रुपये सरकारकी ओरसे मिलते थे—५० रुपये घरवालोंके तथा ३० रुपये इनके अपने खर्चके लिये। इन्होंने दो-तीन दिन तो उस रसोइयेको रखा; पीछे स्वयं अपने हाथसे भोजन बनाने लगे। बर्तन भी ये अपने हाथसे साफ कर लेते थे। प्रातः उठकर घरकी सफाई करना, घरके आस-पास लगे पेड़-पौधोंको सींचना, कपड़े धोना आदि घरके छोटे-बड़े काम स्वयं कर लेते थे। यह परिश्रमशीलता भाईजीकी चिरजीवनसङ्गिनी रही।

अधिकारियोंसे सौहार्द

तीन महीने बाद थानेदार अरुणकुमार सिंहकी बदली हो गयी। उनके स्थानपर राजाराम मंडल नामके एक दूसरे थानेदार आये। ये भी बड़े सज्जन थे। उनके समयमें पुलिसवालोंसे इनका घरका-सा सम्बन्ध हो गया। नियमानुसार ये पुलिस थानेपर नित्य जाया करते थे। धीरे-धीरे पुलिस अधिकारियोंके ये इतने विश्वास-पात्र हो गये थे कि जब थानेके इन्चार्ज अफसर नहीं रहते थे, तब पुलिसकी डाकके थैले ये ही खोलते। नियम तो यह था कि इनकी डाक पुलिसकी मार्फत आये; पर ढंग कुछ ऐसा बैठा कि ये ही पुलिसकी डाक भी सँभालते

---

* मामाके लड़के श्रीशिवबख्श बाजोरियाकी पत्नीने इन्हें गाड़ीमें बैठते समय तराशे हुए फल खानेको दिये तथा कुछ फल साथमें रख दिये। उन्होंने कहा—'यात्राके समय फल खाकर जानेसे यात्रा कुशलपूर्वक सम्पन्न होती है।' भगवान्‌की कृपासे भाभीकी वह मङ्गल-कामना सफल हुई और शिमलापालका जीवन इनके लिये वरदान सिद्ध हुआ। भाईजीने भाभीकी इस मङ्गल-कामनाको जीवनभर स्मरण रखा। इतना ही नहीं, ये अपने यहाँसे बिदा होनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको फल खिलाकर तथा साथ देकर बिदा करते थे। श्रीराधाष्टमीके अवसरपर सैकड़ों व्यक्तियोंकी एक-एक दिनमें बिदाई की जाती थी, पर उस समय भी ये इस परिपाटीका निर्वाह पूर्ण उल्लासके साथ करते थे। आज भी इनके परिवारमें यह परम्परा अक्षुण्ण है।

और पत्रोंका उत्तर भी लिखवाते। धीरे-धीरे इनको थानेके कागज-पत्रोंकी इतनी जानकारी हो गयी थी कि ये थानेके रजिस्टरोंमें रिपोर्ट लिखवाते और कभी-कभी स्वयं लिखते। एक बार किसी मुकदमेके सिलसिलेमें इन्होंने ६० पृष्ठकी रिपोर्ट लिखी थी। वह रिपोर्ट आज भी थानेके पुराने रेकर्ड्समें उपलब्ध है। १९६० ई०में भाईजीके साथ जो लोग शिमलापाल गये थे, वे उसे देखकर आये थे।

उस समय गाँवोंमें बँगला पढ़े-लिखे लोग बिरले ही मिलते थे। थानोंपर नियुक्त कर्मचारियोंमें थानाध्यक्ष ही प्रायः साक्षर होता था। ऐसी स्थितिमें दैवयोगसे उपलब्ध सुविधाका मंडलजीने सादर सदुपयोग किया। मंडलजी इससे कानूनकी सीमाके बाहर जाकर भी इनकी सुख-सुविधाका प्रबन्ध करते रहे।

बाँकुड़ा और कलकत्ताके उच्च पुलिस अधिकारियोंका थानेकी जाँचके लिये शिमलापाल आना-जाना लगा रहता था। एक चटर्जी महाशय थे—पुलिसके इन्सपेक्टर; वे अक्सर आया करते थे। सरकारी कामकाज निबटानेके बाद वे घंटों बैठकर इनसे भक्तिचर्चा किया करते थे। मजिस्ट्रेट भी आते थे तो बिना इनसे मिले नहीं जाते थे। वे सभी लोग भीतरसे यह अनुभव करते थे कि ये राजनीतिक बंदी बनकर मातृभूमिके लिये ही इतना कष्ट झेल रहे हैं, अतः सभी सहानुभूति रखते थे। उस समय बंगालमें देशप्रेमकी ऐसी लहर दौड़ गयी थी कि समाजके सभी वर्गोंके लोग—चाहे वे किसान हों, मजदूर हों या सरकारी कर्मचारी—अन्तस्तलसे विदेशी शासनद्वारा पहनायी गयी परतन्त्रताकी बेड़ीसे भारत-माताको मुक्त करानेके समर्थक थे, अपनी व्यक्तिगत परिस्थितिसे भले ही वे उसमें सक्रिय सहयोग देनेमें असमर्थ रहे हों।

शास्त्राध्ययन

शिमलापालमें एक ग्रामीण डाक-घर था। उसके पोस्टमास्टर श्रीकृष्णचन्द्र स्थानीय प्रारम्भिक पाठशालाके प्रधानाध्यापक भी थे। वे अत्यन्त विद्याव्यसनी और शीलसम्पन्न व्यक्ति थे। उनके पास बँगला भाषाकी धार्मिक पुस्तकोंका विशाल भंडार था। उससे इनको बड़ा सहारा मिला। प्रवासकालमें इस पुस्तकालयकी सारी पुस्तकें एक-एक करके इन्होंने पढ़ डालीं। वहाँ अखबार भी आता था। भाईजी उसे भी पढ़ते।

स्वजन-सम्पर्क

इनका पत्र-व्यवहार केवल घरवालोंसे हो सकता था। इनके नामसे आनेवाले पत्र बाँकुड़ामें ही पुलिसद्वारा खोल लिये जाते थे। फिर वहाँसे सिपाहीके हाथ शिमलापाल भेजे जाते थे। इनसे मिलनेके लिये कलकत्ताके पुलिस-कार्यालयकी स्वीकृति लेनी अनिवार्य थी। एक बार दादी रामकौर देवी और मामा श्रीमेघराज बाजोरिया इसी प्रकार पुलिस अधीक्षकका आदेश प्राप्त करके शिमलापाल आये थे। स्थानीय पुलिसद्वारा इनके सद्व्यवहार तथा सच्चरित्रताके विषयमें की गयी रिपोर्टके आधारपर इन्हें दो बार पैरोलपर घर जानेकी अनुमति भी मिली, जिसका वर्णन आगे किया जायगा। उस समय इन्हें कलकत्ताके पुलिस स्टेशनपर दिनमें एक बार हाजिरी देनी पड़ती थी।

सेवा-कार्य

ईश्वरकी कृपासे इस नजरबंदीके जीवनमें इन्हें जन-सेवाका एक बहुत ही उत्कृष्ट माध्यम प्राप्त हो गया। वह था—गरीब ग्रामीणोंकी चिकित्साका। सरकारकी ओरसे माहमें एक बार कलकत्तासे मिस्टर वास नामक सिविल सर्जन इनका स्वास्थ्य देखनेके लिये आया करते थे। इसी ग्राममें एक अन्त्यजके लड़केकी जाँघमें फोड़ा हो गया। जब सिविल सर्जन साहब भाईजीको देखनेके लिये आये, तब लोग उस लड़केको भी दिखानेके लिये ले आये। दयार्द्र होकर सिविल सर्जनने भाईजीसे कहा—'यदि तुम मेरे पीछे इसकी मरहम-पट्टी करना स्वीकार कर लो तो मैं चीरा लगा दूँ।' इन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। साहबने चीरा लगा दिया। उसके बाद ये उसके घर जाकर नित्य मरहम-पट्टी किया करते थे। कुछ दिनोंमें उस लड़केको आराम हो गया। सिविल सर्जन जब दूसरी बार आये, तब लड़केको स्वस्थ देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

वास साहब बड़े ही साधु स्वभावके थे। उन्होंने भाईजीसे कहा––'तुम यहाँ बैठे-बैठे क्या करते हो?'

इन्होंने उत्तर दिया––'कुछ नहीं।'

वे बोले––'मैं तुमको दो काम बताता हूँ। एक––तुम्हारे पीछे जो जमीन पड़ी है, उसमें फलोंके पौधे लगाओ। मैं बीज भेज दूँगा। तुम्हारे पीछे बड़ी सुन्दर फुलवारी तैयार हो जायगी और दूसरा––यहाँ आस-पास कोई डाक्टर नहीं है। तुम होमियोपैथिक दवाओंका वितरण किया करो।' भाईजीने कहा––'मैं होमियोपैथिक चिकित्सा जानता नहीं।'

उन्होंने बड़े प्यारसे कहा––'मैं हूँ तो ऐलोपैथिक सर्जन, पर मेरा विश्वास होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिपर भी है। मैं तुम्हारे पास होमियोपैथिक दवाएँ तथा उसका साहित्य भिजवा दूँगा। तुम भगवान्‌का नाम लेकर निश्शङ्क काम आरम्भ करो। सफल हो जाओगे।'

वास साहबने अपने वचनके अनुसार एक पुस्तक और होमियोपैथिक दवाएँ भेज दीं। भाईजी पुस्तकके आधारपर रोगके लक्षण मिलाकर दवा देने लगे। लोगोंको बहुत लाभ हुआ। इन दिनों भाईजीकी धर्मपत्नी शिमलापाल आ गयी थीं। वे भी इस कार्यमें हाथ बँटाने लगीं। शीशियाँ साफ करना, उनपर लेबल लगाना, दवाकी पुड़िया बनानेके लिये कागज काटकर रखना तथा दवाकी पुड़ियाँ बाँधना आदि उनके जिम्मे था।

एक दिन एक मुसल्मान स्त्री अपने तीस-पैंतीस वर्षके गूँगे पतिको साथ लेकर आयी। पति पेटकी असह्य पीड़ासे छटपटा रहा था। भाईजीने स्त्रीसे पतिकी बीमारीका विवरण पूछकर 'ओपियम ३०'की १०-१२ पुड़ियाँ दे दीं। पाँच-छः दिन बाद उस युवकको लेकर सैकड़ों स्त्री-पुरुष आये। श्रीभाईजी इतनी भीड़का हेतु नहीं समझ पा रहे थे, पर वे आये थे कृतज्ञता ज्ञापित करनेके लिये। उन लोगोंने बताया—'उस दवासे गूँगे व्यक्तिका पेटका दर्द ही नहीं अच्छा हो गया, उसको वाक्‌शक्ति भी प्राप्त हो गयी।' भाईजी आश्चर्यचकित होकर सोच रहे थे कि भगवदिच्छासे ही दवाका संयोग लग गया। पीछे पता चला कि छः वर्ष पहले उसे चेचक हो गयी थी। उसीके प्रभावसे वह गूँगा हुआ था। दवा खानेसे बहुत-सा सड़ा मल निकला और वह बोलने लगा। इसी प्रकार एक बार गाँवमें हैजा फैला। इन्होंने उससे प्रभावित ९० व्यक्तियोंका उपचार किया और उनमेंसे ८७ व्यक्तियोंकी प्राणरक्षा हुई। इन दीन-दुःखियोंकी सेवासे इन्हें उनका स्नेहपूर्ण सच्चा आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

नाम-जप, भगवान्‌के ध्यान आदिके कारण वृत्तिमें इतनी कोमलता आ गयी थी कि जब कभी कोई व्यक्ति किसी पक्षीको पकड़कर इनके सामनेसे गुजरता तो ये उसको पैसा देकर पक्षीको छुड़ा देते थे। गाँवके लोगोंकी समझमें ही नहीं आता था कि इनको पैसा देनेपर क्या मिला।

नामनिष्ठाका चमत्कार

एक बार भाईजीको मोतियाज्वर (टायफाइड) हो गया। शिमलापालका अकेला जीवन, कोई साथ नहीं था। छोटे-से गाँवमें कोई वैद्य-डाक्टर भी नहीं था। एक बंगाली वैद्य थे, दो-चार दवाएँ उनके पास रहा करती थीं। पड़ोसमें ही उनका घर था। ये भाईजीके पास आया करते थे। एक दिन घबराहट ज्यादा बढ़ गयी। मनमें आया––'क्या भगवान्‌के नाममें इतनी भी शक्ति नहीं कि मेरी घबराहट मिटा दे।' इतना सोचकर भाईजीने भगवन्नामका जप आरम्भ कर दिया। उस जपका अनोखा फल हुआ। मनको शान्ति मिली। शान्ति ही नहीं मिली, ज्वर भी उतरने लगा। नाम-जपने उस ज्वरको पूर्णतया दूर कर दिया।

एक अनुभव और हुआ। ऐसा समाचार आया कि दादी रामकौर देवी बीमार हैं और मिलना चाहती हैं। पर कमजोरीके कारण वे शिमलापाल नहीं आ सकतीं। नजरबंदीके नियमानुसार श्रीभाईजी शिमलापालसे बाहर नहीं जा सकते थे। कलक्टर भी बाहर जानेकी आज्ञा नहीं दे सकता था। इनके मनमें दादीजीसे मिलनेकी तीव्र इच्छा जगी। बंगाल-सरकारको तार दिया, पर अस्वीकृति आ गयी। बड़ी व्याकुलता हुई। फिर उसी भगवन्नामका आश्रय लिया। इस निमित्तसे जप आरम्भ कर दिया। उसी दिन एक मुसल्मान डिप्टी कलक्टर मुआइना करनेके लिये थानेमें आये। वे चटगाँवके निवासी थे। बड़े सहृदय तथा राजनीतिक बंदियोंके प्रति

आदर-भाव रखनेवाले थे। सरकारी अधिकारी होनेसे देशभक्तोंकी सहायता करनेमें भय था, परंतु भारतीय होनेके कारण हृदयमें राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंके प्रति सम्मान था। वे भाईजीसे मिलनेके लिये आये। इन्होंने उनसे सारी बातें बता दीं। सब सुनकर वे बोले—'आपके लिये कल ही आर्डर आता है।'

इनको विश्वास नहीं हुआ। ये जानते थे कि आर्डर कलक्टर नहीं, गवर्नर ही दे सकता है और मिल सकता है एकमात्र कलकत्तासे। इतने समयमें तो कलकत्ता आना-जाना भी सम्भव नहीं है। इन्होंने पूछा—'कल कैसे आ सकता है?' डिप्टी कलक्टरने कहा—'देखिये, कल आ जाता है।' डिप्टी कलक्टर साहबकी बड़ी पहुँच थी। उन्होंने अपने दौरेका सारा कार्यक्रम स्थगित कर दिया। वे उसी दिन बाँकुड़ा गये और बाँकुड़ासे कलकत्ता जाकर गवर्नरके सेक्रेटरीसे मिले। पूरी रिपोर्ट देकर उनसे कहा—'पंद्रह दिनके लिये इन्हें पैरोलपर छोड़ना चाहिये।'

इसके फलस्वरूप पंद्रह दिन तो नहीं, सात दिनके लिये पैरोलपर जानेकी आज्ञा हो गयी और वह दूसरे दिन ही भाईजीको प्राप्त हो गयी।

इसी प्रकार एक दिन इन्हें किसी सम्बन्धीसे समाचार मिला कि फूफा श्रीज्वालादत्तजी सख्त बीमार हैं। उन्हें देखनेके लिये भी मनमें व्यग्रता हुई, किंतु स्वीकृति मिलनेकी कोई आशा दिखायी नहीं पड़ी। निदान इस बार भी प्रार्थना और नाम-जपका आश्रय लिया। संयोगवश उसी दिन इनके स्नेही पुलिस इंसपेक्टर चटर्जी महाशय आ गये। इन्होंने अपनी समस्या उनके सामने रखी। इंसपेक्टर साहबने कलकत्ता जाकर इन्हें पैरोलपर जानेकी स्वीकृति भिजवा दी।

इन घटनाओंसे भाईजीकी भगवन्नामके प्रति निष्ठाको प्रगाढ़ होनेमें सहायता प्राप्त हुई।

विपत्तिके साथी

पैरोलपर की गयीं शिमलापालसे कलकत्ताकी अपनी दो यात्राओंमें इन्होंने यह अनुभव किया कि राजनीतिक बंदी होनेके कारण समाजके अन्य लोगोंकी कौन कहे, सगे-सम्बन्धी भी इन्हें देखकर मुँह फेर लेते थे। लोग कहते सुने गये—'समाजका कलङ्क चला गया। अच्छा हुआ, छुट्टी मिली।' किंतु सत्का कभी अत्यन्ताभाव नहीं होता। मेघाच्छन्न आकाशमें भी कुछ तारे टिमटिमाकर उनका अस्तित्व प्रमाणित कर देते हैं। यही स्थिति इनके साथ थी। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका जब भी बाँकुड़ासे कलकत्ता आते, तब इनके घर अवश्य जाते। दादी रामकौर देवीसे मिलकर हाल-चाल पूछ जाते। वे बाँकुड़ासे श्रीभाईजीके लिये खाने-पीनेकी आवश्यक वस्तुएँ भी शिमला-पाल भेजा करते थे। श्रीसेठजीके अतिरिक्त उस समय इनके परिवारके दुःख-सुखकी खबर लेनेवालोंमें 'कलकत्ता समाचार'के सम्पादक पं० श्रीझाबरमलजी शर्मा, श्रीरामकुमार गोयन्दका, श्रीबनारसीलाल झूँझनूँवाला और श्रीमोतीलाल जाजोदिया थे। ये लोग इनके घरकी भी सार-सँभाल करते और यथावसर शिमलापालमें भी इनका कुशल-समाचार लेते हुए सहायता पहुँचाया करते थे। इन लोगोंकी उस समयकी सहानुभूति भाईजीको आजीवन इनका कृतज्ञ बनाये रही।

धर्मपत्नीका शिमलापाल-आगमन

पंद्रह महीनेतक स्थानीय पुलिसके द्वारा निरन्तर इनके उत्तम चरित्र तथा व्यवहारकी रिपोर्ट होती रही। एक दिन थानेदारने इनसे कहा—'सरकारपर आपके सदाचरणका प्रभाव पड़ा है। आप चाहें तो अपनी धर्मपत्नीको साथ रखनेके लिये आवेदन-पत्र दे दें। भाईजीने गवर्नरके नाम इस आशयका एक प्रार्थनापत्र दिया। थोड़े दिनों बाद स्वीकृति मिल गयी। श्रीमती रामदेई कलकत्तासे शिमलापाल आ गयीं। उनके रहनेसे भाईजीको भोजनादिकी व्यवस्थासे तो मुक्ति मिली ही, दवाके वितरणमें भी सहयोग मिलने लगा। इससे साधन-भजनके लिये अपेक्षाकृत अधिक समय निकल आया। पतिके साथ वे भी परमार्थ-पथ प्रशस्त करनेमें संलग्न रहने लगीं। इस तरह छः महीने और कटे। वैशाख सं० १९७५के प्रथम सप्ताहमें बाँकुड़ाके कलक्टरका पत्र आया, जिसमें इन्हें अविलम्ब बाँकुड़ा जानेका आदेश था। ये बाँकुड़ा गये। वहाँ इनसे एक ऐसे कागजपर हस्ताक्षर करनेको

कहा गया, जिसमें इनके आजीवन राजनीतिमें भाग न लेनेकी बात लिखी थी। इन्होंने इनकार कर दिया। उस दिनकी बात वहीं समाप्त हो गयी। ये शिमलापाल लौट आये। इसके एक सप्ताह बाद शिमलापाल थानेमें बंगाल सरकारका दूसरा आज्ञापत्र आया, जिसमें सन् १९१८ ई० के तीसरे रेगुलेशनके अनुसार इनकी नजरबंदी समाप्त करके २४ घंटेके अंदर बंगाल छोड़ने और दूसरा आदेश न मिलनेतक पुनः बंगालकी सीमामें प्रवेश न करनेका उल्लेख था। इस प्रकार २१ महीनेकी नजरबंदी समाप्त हुई।

नजरबंदीकी उपलब्धि—साधनात्मक उत्कर्ष

शिमलापालके अनिवार्य एकान्तवासकी प्रारम्भिक स्थितिमें इन्हें कुछ परीशानीका अनुभव अवश्य हुआ। यह धारणा प्रायः दृढ़ हो गयी कि अब शेष जीवन अंग्रेजी शासनके अवाञ्छित अतिथिके रूपमें ही बिताना पड़ेगा। परिस्थितियोंके करवट लेनेपर यदि उसकी नजर और टेढ़ी हुई तो फाँसीके तख्तेपर झूल जाना भी अप्रत्याशित नहीं था। घरकी स्थिति सम्बल और माँझीसे विरहित जर्जर नौका-जैसी थी। दस-पंद्रह दिनोंतक मनमें ये विचार मँडराते रहे, फिर धीरे-धीरे शान्ति आ गयी।

अन्तर्द्वन्द्व समाप्त होनेपर त्याग-वैराग्य, ध्यान-स्वाध्याय और नाम-जपका प्रकरण प्रारम्भ हुआ। प्रातः चार बजे उठते, 'हरे राम—' षोडशमन्त्रकी तीस माला पूरी करनेके बाद शौच जाते। ६ बजेसे पूर्व बाहर निकलनेका आदेश नहीं था। अतः प्रायः घरपर ही नहा लेते; समय रहता तो नदीमें स्नान कर आते। नहाकर संध्या-वन्दन करते। फिर गीता और विष्णुसहस्रनामका पाठ और तदनन्तर ध्यान। ध्यानके लिये इनका अवलम्ब था रविवर्माका बनाया हुआ ध्रुव-नारायणका एक चित्र, जिसे ये कलकत्तासे ही साथ ले आये थे। यह ध्यान तीन बार नियमितरूपसे होता था—प्रातः, अपराह्णमें तथा रातको। सब मिलकर इसमें ८ घंटे लग जाते थे। शेष समय नाम-जपमें और स्वाध्यायमें जाता था। इनकी चेष्टा यही रहती थी कि नाम-जप छूटे नहीं।

इस जीवनमें नामके प्रति इनकी रुचि इतनी प्रगाढ़ हुई कि नामका जप छूटना इन्हें असह्य हो जाता। जब कोई व्यक्ति इनसे मिलने आता, तब इन्हें अनुभव होता—जैसे कोई बाधा आ गयी हो। किसी व्यक्तिके आनेपर उससे बोलना ही पड़ेगा और बोलनेका अर्थ है—उतनी देरके लिये नामको विराम देना। अतएव जब कोई व्यक्ति आ ही जाता, तब ये ऐसी चेष्टा रखते कि आनेवाला ही बोलता रहे, इनको न बोलना पड़े। जब आनेवालेकी बातका उत्तर देनेके लिये बोलना अनिवार्य हो जाता, तब ये नपे-तुले शब्दोंमें उत्तर देकर चुप हो जाते। जब आनेवाला व्यक्ति बहुत देरतक बैठा रह जाता, तब इनको उसकी उपस्थिति असह्य हो जाती और ये नम्र शब्दोंमें कहते—'देखिये, मैं तो निकम्मा हूँ; बहुत देर हो गयी है, आपको काम होगा। अतः अब आप पधारिये।' इस प्रकार इनकी यही चेष्टा रहती कि कोई भी व्यक्ति मिलने न आये और कोई आये भी तो इनको न बोलना पड़े एवं वह शीघ्र लौट जाय।

उस समय यदि इनके द्वारा किसीके प्रति रूखा व्यवहार हो जाता तो बादमें इन्हें बड़ा पश्चात्ताप होता। एक दिन ये स्वाध्याय कर रहे थे। एक सज्जन चाकू माँगनेके लिये आये। स्वाध्यायमें विघ्न होनेके भयसे इन्होंने कह दिया—'अभी नहीं, पीछे ले जाइयेगा।' वे तो चले गये, पर उनके जानेके बाद इनको बड़ा परिताप हुआ। ये दौड़े हुए उनके पास गये, उनसे क्षमा-याचना की और अत्यन्त प्रेमका व्यवहार करके उन्हें संतुष्ट किया। उपनिषद्, पुराण, दर्शन, गीतापर विविध टीकाएँ, गौडीय-वैष्णव-सम्प्रदायके ग्रन्थ आदिका अनुशीलन इनका इसी स्थितिमें हुआ।

प्रातःकाल ये श्रीविष्णुभगवान्‌के चित्रपटकी पूजा करते थे। थानेके बगीचेमें बेलाके बहुत-से पौधे थे। वहाँसे कोई बाहरी व्यक्ति फूल तोड़ नहीं सकता था। किंतु इनके लिये रोक नहीं थी। ये नित्य नाम-जप करते हुए जाते और वहाँसे फूल चुन-चुनकर लाते। स्वयं उनकी माला गूँथकर भगवान्‌को पहनाते। प्रत्येक वस्तु भगवान्‌को भोग लगाकर ग्रहण करते थे। जल भी पीते तो पहले भगवान्‌को निवेदन करके। प्रत्येक एकादशी-

व्रतके दिन ये निर्जल, निराहार रहते। एकादशीके दिन प्रातःकाल उठकर जपमें लग जाते और जबतक एक लाखकी संख्या पूर्ण नहीं हो जाती, तबतक जप करते रहते।

६ महीनेतक लगन और श्रद्धाके साथ ध्यानका अभ्यास करनेसे उसमें इन्हें बड़ी सफलता प्राप्त हो गयी। एक दिन ये अपनी झोपड़ीमें बैठे हुए थे और झोपड़ीका दरवाजा खुला हुआ था। सामनेसे एक गाय जा रही थी। इनके मनमें आया कि गायके स्थानपर भगवान् विष्णुको देखूँ। ध्यानका अभ्यास परिपुष्ट हो ही चुका था। मनमें धारणा करते ही गायका दिखना बंद हो गया और उसके स्थानपर भगवान् विष्णुकी मूर्ति दिखायी देने लगी। इस सफलतासे इनको बड़ी प्रसन्नता हुई। पर इनके मनमें आया—शायद संयोगवश ऐसा हो गया है। इन्होंने इसकी परीक्षाके लिये आकाशकी ओर देखा। आकाशमें एक पक्षी उड़ रहा था। इन्होंने धारणा की और पक्षीके स्थानपर खुली आँखोंसे भगवान् विष्णुकी मूर्ति दिखायी देने लगी। पीछे सामनेके पेड़पर दृष्टि गयी और उसके स्थानपर भी भगवान् विष्णुकी मूर्ति दिखायी दी। इस प्रकार जिस वस्तुके स्थानपर इन्होंने भगवान् विष्णुको देखना चाहा, वहीं वह वस्तु दिखायी देनी बंद हो गयी और उसके स्थानपर भगवान् विष्णु दिखायी देने लगे।*

नारद-भक्तिसूत्रोंकी व्याख्या

शिमलापालके जीवनमें अपने स्वाध्यायके क्रममें इन्हें देवर्षि नारदकृत भक्तिसूत्रोंकी बँगला लिपिमें मुद्रित पुस्तिका हाथ लगी। सूत्रोंके भाव इन्हें बड़े प्रिय लगे। इन्होंने उन सूत्रोंपर गम्भीर मनन किया। इन सूत्रोंसे इन्हें अपनी साधनामें बड़ी सहायता मिली। सूत्रोंपर बार-बार विचार करनेसे उनमें नये-नये भाव उदय होने लगे। इन्होंने उन भावोंको लिपिबद्ध करना आरम्भ कर दिया और थोड़े ही दिनोंमें सब सूत्रोंपर विस्तृत टीका तैयार हो गयी। उस समय इसे प्रकाशित करनेका कोई विचार नहीं था, स्वान्तःसुखाय ही सूत्रोंके भाव लिखे गये थे। बादमें यही व्याख्या 'कल्याण'के अङ्कोंमें क्रमशः छपी और फिर कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ यह 'प्रेम-दर्शन' नामसे पुस्तकरूपमें गीताप्रेससे प्रकाशित हुई।†

नारद-भक्तिसूत्रोंकी टीकाके सम्बन्धमें विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि शिमलापाल-जीवनमें श्रीभाईजीकी साधना श्रीविष्णुभगवान्‌के ध्यान एवं षोडश-मन्त्रके जपके रूपमें चल रही थी, पर फिर भी इन्होंने २५ वर्षकी छोटी उम्रमें प्रेमरूपा भक्तिकी व्याख्या करते हुए साधनाके जो सिद्धान्त दृढ़ताके साथ लिखे हैं, अपने प्रौढ़ जीवनमें भी ये उनका उसी रूपमें आदर करते रहे। लगता है—भगवान्‌को इनके द्वारा जो महान् कार्य करवाना

* अपने परवर्ती जीवनमें इस घटनाका उल्लेख करते हुए एक बार इन्होंने कहा था—"जो यह कहते हैं कि ध्यान नहीं होता, उनको हमारा उत्तर यह है कि हम ध्यान नहीं करते। ध्येयाकार वृत्तिका नाम ही 'ध्यान' है। हम जिसका ध्यान करें, उसके आकारकी वृत्तिका बन जाना ही 'ध्यान' है और यह अभ्याससाध्य है। महर्षि पतञ्जलिने ठीक कहा है कि 'जो अभ्यास दीर्घकालतक निरन्तर सत्कारपूर्वक किया जाता है, उसका सुन्दर फल अवश्य मिलता है।' मैं आजकल भगवान् विष्णुकी उस मूर्तिका ध्यान नहीं करता, पर इस समय उसका स्मरण आते ही वह मूर्ति ज्यों-की-त्यों मेरे सामने आ जाती है।"

† इस टीकाका उल्लेख करते हुए श्रीभाईजीने अपनी 'प्रेम-दर्शन' पुस्तककी भूमिकामें लिखा है—'भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये भक्ति ही सर्वप्रधान साधन है और साध्यरूपमें वही भगवत्प्रेम है। भक्तिशास्त्रपर कुछ भी व्याख्यानरूपमें लिखनेका मुझे अधिकार नहीं, तथापि इस कार्यमें मेरी जो प्रवृत्ति हुई, उसको विज्ञ महानुभाव भगवत्प्रेरणा और भगवत्कृपा ही समझें।'

इन सूत्रोंपर प्राप्त टीकाओंमें यह टीका सर्वोत्तम है। इस टीकाका अंग्रेजी एवं संस्कृतमें भी अनुवाद हो चुका है। तीनों भाषाओंकी प्रतियोंको मिलाकर अबतक इस पुस्तककी १,४२,५०० प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इससे इसकी लोक-प्रियताका अनुमान लगाया जा सकता है।

था, उसका श्रीगणेश सहजरूपमें—श्रीभाईजीके अनजानमें ही इस टीकाके रूपमें हो गया। अतएव इस टीकाके द्वारा जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ है, उसका कुछ संकेत कर देना आवश्यक है। भक्तिसूत्रोंकी टीकामें श्रीभाईजीने यह स्पष्ट करना चाहा है—"भगवान् रसमय हैं, रसमें ही परम आनन्द है—**'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'** भक्तिसे ही उस रसमय भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। भक्तिसे ही वह ऋषि-मुनि-देव-दुर्लभ परमानन्द मिलता है। अतएव प्रेमाभक्तिका ही आश्रय सबको लेना चाहिये। परंतु इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि ज्ञानसे इस भक्तिका कोई विरोध है। गोपियोंका उदाहरण हमारे सामने है। उनके मनमें श्रीभगवान्के माहात्म्यका ज्ञान था। श्रीभगवान्का ज्ञान ही न हो तो प्रेम किसके प्रति हो। और यह भी सत्य है कि अभिन्न अखण्ड अनन्य अविकारी प्रेम होनेपर ही प्रेमास्पदके हृदयके वास्तविक तत्त्वका—प्रियतमके मनकी बातका पता चलता है। अतएव ज्ञान और भक्तिका कोई विरोध नहीं है। इसी प्रकार प्रेमा-भक्ति और कर्मका भी विरोध नहीं है। भगवान्के लिये निष्काम कर्म करने ही चाहिये और कर्मोंका सर्वथा त्यागी भक्त भी अहर्निश भगवान्के प्रेममें मस्त होकर भगवच्चिन्तनरूपी कर्म तो छोड़ ही नहीं सकता। इसलिये प्रेमाभक्तिमें ज्ञान और कर्म दोनों ही रहते हैं; अवश्य ही रहते हैं वे भक्तिके अनुकूल होकर। शुष्क ज्ञान और कर्मको इस भक्तिमें स्थान नहीं है। अन्यान्य साधनोंद्वारा भगवान् अन्यान्य रूपोंमें प्राप्त होते हैं, परंतु प्रेमरूपा भक्तिद्वारा तो वे प्रियतमरूपमें मिलते हैं—**'स प्रेष्ठं लभते।'** यह प्रेम ही चरम या पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसमें मोक्षका भी संन्यास हो जाता है। यही जीवनका परम फल है।"

अपनी प्रौढ़ावस्थामें अर्थात् गोरखपुर-आगमनके पश्चात् तो श्रीभाईजी लोक-परलोकके दिव्य-अदिव्य भोगोंकी एवं मोक्षकी कामनासे विरहित, किसी भी प्रकारकी स्वसुख-कामनाके लेशाभासरूप मलिनतासे शून्य और अपूर्णता, अनित्यता तथा प्राकृत परिवर्तनशीलताकी कटुतासे अस्पृष्ट प्रेमरूपा भक्तिके रस-सागरमें आपादमस्तक निमग्न हो गये। श्रीराधामाधव ही उनके सर्वस्व हो गये, उन्हींमें डूबे रहना और उन्हींमें डूबनेकी जीवमात्रको प्रेरणा देना—यही उनका जीवन था। लगता है—इसी महत्तम कार्यके लिये उनका आविर्भाव हुआ था। उनके द्वारा जो अन्य कार्य हुए हैं, वे इसी महान् कार्यके अङ्गरूप हैं—इसीके पूरक हैं। वैसे श्रीभाईजी-जैसे प्रेमी संतके आविर्भावके वास्तविक प्रयोजनकी कल्पना भी भौतिक मन-बुद्धिसे सम्भव नहीं है।

शिमलापाल-जीवनकी उपलब्धि

शिमलापाल-जीवनमें भाईजी आवश्यक एवं अनिवार्य मानकर नाम-जप, ध्यान आदिकी साधनाका अनुसरण करते थे। यह अनिवार्यता विवशता-जनित न होकर प्रियता-प्रेरित थी। इस प्रकारकी साधनाओंमें ये आन्तरिक प्रेरणासे प्रवृत्त हुए थे, इसलिये यह अनवरत चलती रहती। इस समयसे ही भगवान्के प्रति यह प्रियता-बुद्धि भाईजीके स्वभावकी सहज वृत्ति बन गयी।

शिमलापालकी इस नजरबंदीने भाईजीके जीवनमें एक महान् परिवर्तन कर दिया, एक अपूर्व मोड़ ला दिया। एकान्त-साधनासे वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयीं। राजनीति और समाज-सेवा, देशप्रेम और लोकमङ्गलकी भावना उत्तरोत्तर अध्यात्मभावनामें पर्यवसित होती गयी। भगवत्प्रेमके आगे सारे प्रेम फीके पड़ते गये। परवर्ती जीवनमें लोकसेवा और अध्यात्मभावना दोनों समानान्तर बहती रहीं—वस्तुतः लोकसेवा उनकी अध्यात्मभावना-का ही प्रतिरूप थी।

शिमलापालसे बिदाई

पौने दो वर्ष शिमलापाल रहकर श्रीभाईजीने सचमुच ही एक नया परिवार बसा लिया था । सरल ग्रामवासियोंके ये अपने-से-अपने बन गये थे। उनके सुख-दुःखमें हाथ बँटाकर, उनकी सेवा करके, इन्होंने उनके हृदयपर स्नेहाधिकार कर लिया था। सरकारद्वारा नजरबंदीकी अवधिकी समाप्तिके आदेशकी सूचना जब ग्रामवासियोंको मिली, तब वे भौंचक्के-से हो गये और एक अभूतपूर्व पीड़ाका अनुभव करने लगे । आह, जो प्रतिदिन उनकी सार-सँभाल करता था, अपने हाथों अपने हृदयके प्रेमसे सानकर दवा देता था, जिसके पास वे अपना रोना सुनाकर हृदयको हल्का करते थे, जो सबको प्यार एवं सम्मान देता था, वह उनके मध्यसे चला जायगा ! ग्रामवासियोंकी आँखोंसे आँसू बह चले और सबने आकर भाईजीको घेर लिया । उधर बाँकुड़ा जानेके लिये बैलगाड़ी तैयार खड़ी थी । ये हाथ फैलाकर, आन्तरिक स्नेहसे एक-एकको हृदयसे लगाकर सान्त्वना दे रहे थे, उनके आँसू पोंछ रहे थे; पर सबके हृदयका बाँध टूट गया था। इस प्रकारके निस्स्वार्थ प्रेम एवं सेवाका यह प्रथम आदर्श उन्होंने जीवनमें देखा था। पर कर्त्तव्य तो करना ही था। इन्होंने सबसे जान-अनजानमें हुई अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगी और आशीर्वाद चाहा कि भगवान्‌की ओर जीवनकी गति तीव्रतासे बढ़ चले। सबने हृदय भरकर आशीर्वाद दिया। श्रीभाईजी भी पत्नीसहित सुबुक-सुबुककर रो रहे थे और रोते-रोते ही दोनों बैलगाड़ीपर बैठ गये । गाड़ी चली--लगता था शिमलापालके निवासियोंका हृदय चला जा रहा है--आगे-आगे गाड़ी जा रही थी और पीछे-पीछे चल रहा था--शिमलापालका जन-समूह--आबाल-वृद्ध नर-नारियाँ । श्रीभाईजी हाथके इशारेसे सबसे लौट जानेका संकेत कर रहे थे, पर भाव-प्रवाहका बाँध टूटनेपर उसकी गतिमें विराम आना कठिन होता है। शिमलापाल गाँव बहुत पीछे छूट गया। भाईजीको ग्रामवासियोंके लौटनेकी चिन्ता हुई। इन्होंने साहस बटोरा और अवरुद्ध कण्ठसे अस्पष्ट वाणीमें हाथ जोड़कर प्रार्थना की--'भैयाओ ! बहुत दूर चले आये, अब लौट जाइये; अब आगे मत चलिये। आपलोग कितनी दूर चलेंगे ? आपलोगोंका प्यार-स्नेह मैं जीवनभर स्मरण रक्खूँगा। वह मेरे जीवनकी परम निधि है.........।' अन्तस्तलसे निकले शब्दोंका प्रभाव हुआ और ग्रामवासी वहीं रुक गये। गाड़ी आगे बढ़ने लगी। ग्रामवासी तबतक वहाँ खड़े रहे, जबतक गाड़ी आँखोंसे ओझल न हो गयी। ये भी ग्रामवासियोंकी ओर मुँह किये उनको निहारते रहे । कई घंटोंकी यात्राके पश्चात् ये बाँकुड़ा पहुँचे। अच्छा पुरस्कार देकर गाड़ीवानको बिदा किया। बाँकुड़ामें सम्बन्धियों और मित्रोंसे मिलकर रेलगाड़ीद्वारा ये आसनसोल आये। दादी तथा अन्य कुटुम्बी पहलेसे ही आसनसोल पहुँच गये थे। सभीको साथ लेकर ये वहाँसे रतनगढ़के लिये रवाना हुए।

श्रीमालवीयजी महाराजको इनके बंगालसे निष्कासित होकर रतनगढ़ जानेकी सूचना मिली। उन्होंने इस आशङ्कासे कि अंग्रेजोंके प्रभावमें आकर बीकानेरके महाराजा श्रीगङ्गासिंहजी पोद्दारजीको तंग न करें, उनके नाम एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने श्रीभाईजीकी धर्मनिष्ठा, देशसेवा, सज्जनता और योग्यताको ध्यानमें रखकर उनके साथ सद्भावपूर्ण व्यवहार करनेका अनुरोध किया था। मालवीयजीने उस पत्रकी एक प्रतिलिपि भाईजीको भी रतनगढ़ भेज दी।

मध्ययात्रा

पितृभूमिकी शरणमें

शिमलापालसे आसनसोल होते हुए श्रीभाईजी तीसरे दिन सपरिवार रतनगढ़ पहुँचे । वहाँ घरके सिवा और था ही क्या ? बाप-दादोंके समयसे रतनगढ़का कारोबार समाप्त हो गया था। दो पुश्तसे बंगाल ही वृत्ति-व्यापारका केन्द्र रहा। शिलंगके भूकम्पमें दादाकी कमाई मिट्टीमें मिल गयी थी, पिता अपने पैरोंपर खड़े होनेका प्रयास करते-करते चल बसे। उनसे रिक्थरूपमें जो कलकत्तेकी पारख कोठीवाली कपड़ेकी दूकान मिली थी, वह देश-सेवा, समाज-सेवा, संत-महात्माओंकी पूजा और धर्मानुष्ठानोंमें समर्पित हो गयी थी । बंगालकी तीन पुश्तकी कमाईमें सरकारी निष्कासन-आदेशके समय परिवारके पास बच रहा था——हजारों रुपयेका कर्ज; उसीका बोझ सिरपर लेकर अनिवार्य परिस्थितियोंमें इन्हें राजस्थान लौटना पड़ा । भाग्यकी विडम्बनासे आज रतनगढ़का यह समृद्ध परिवार अपने ही घरमें 'शरणार्थी' बन गया था। पर श्रीभाईजीपर इस स्थितिका प्रभाव नहीं था। स्थितिके सुधारकी चिन्ता एवं चेष्टा अवश्य थी, पर स्थितिजनित दुःख नहीं था। कारण, यह स्थिति स्वयं वरण की हुई थी। जिस दिन राजनीतिमें भाग लेना आरम्भ किया था, उसी दिन इसपर गम्भीरतासे विचार कर लिया गया था। फाँसीपर लटक जानेकी तैयारी लेकर ही उस ओर मुँह किया था । फिर शिमलापालमें तो भगवान्की कृपा एवं अहैतुक सौहार्दके अनेक बार दर्शन हो चुके थे। साधनाका क्रम ठीक चल ही रहा था। पर कर्त्तव्य तो करना ही चाहिये और उसीकी चिन्ता थी।

वृत्तिकी चिन्ता

परिवारके भरण-पोषणकी समस्या सामने आयी। व्यापार वंशानुगत पेशा था——उसमें इनकी गति भी थी। किंतु उसके लिये पूँजी अपेक्षित थी। कलकत्ताके हितैषियों एवं मित्रोंके सम्बन्ध ढीले पड़ गये थे——कुछ राजकोपकी आशङ्कासे और कुछ आर्थिक स्थिति कमजोर हो जानेसे सगे-सम्बन्धी भी किनाराकश हो चुके थे। ऐसी स्थितिमें पूँजी आती कहाँसे ? पर श्रीभाईजीने उस विश्वम्भरका पल्ला पकड़ा था और वे ही योगक्षेमका निर्वाह कर रहे थे। आध्यात्मिकताकी दृढ़ रज्जुमें बँधी होनेसे कुटुम्बकी नौका इस झंझावातमें बहने नहीं पायी ।

सेठ जमनालालजी बजाजका आत्मीयतापूर्ण आह्वान

श्रीभाईजी किंकर्त्तव्यविमूढ़-से हुए भगवान्की ओरसे प्राप्त मानस प्रकाश-किरणोंकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि अचानक बम्बईसे सेठ जमनालालजी बजाजका एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था——'बम्बई चले आओ। कोई काम शुरू कर दिया जायगा । अभी मेरे साथ रहना । फिर धंधा स्थिर हो जानेपर परिवारको भी बुला लेना ।' यह पत्र पाकर इन्हें आश्चर्य हुआ । सेठ जमनालालजी बजाजसे उनकी एक बारकी ही मुलाकात थी——उस समयकी, जब वे कलकत्तामें इनके मित्र ओंकारमलजी सराफके यहाँ एक लड़कीकी शादीमें बरातीके रूपमें आये थे। बारात धामणगाँव (महाराष्ट्र) से आयी थी और श्रीजमनालालजी भी उसमें सम्मिलित थे। यह अल्पकालिक परिचय इतने आड़े समयमें आश्चर्यका हेतु बनेगा, यह सामान्यतया अकल्पनीय था। भगवान् पर्देके पीछेसे सब संचालन कर रहे थे। पत्र पानेके एक-दो दिन बाद श्रीभाईजी बम्बई चले गये——परिवारको यह आश्वासन देकर कि पाँच-छः महीनेमें आकर उन्हें ले जायँगे या पहले बुला लेंगे।

भाईजीकी बम्बई-यात्रा भाद्र सं० १९७५में हुई। वहाँ शान्ताक्रुजमें इनकी बुआ रहती थीं। उन्हींके पास ये ठहरे। दूसरे दिन प्रातः सेठ जमनालालजी बजाजके घर पहुँचे । कुशल-क्षेम पूछनेके बाद सेठजीने इन्हें वहाँ व्यापारका ढंग बैठानेमें आवश्यक परामर्शके लिये रोक लिया। उनके स्नेहपूर्ण व्यवहारको देखकर ये गद्गद हो गये।

ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उनके रूपमें भगवान्ने एक आत्मीय तथा सच्चे सहयोगीको भेज दिया था। पीछे साथमें रहनेसे श्रीबजाजजी भी इनकी प्रतिभा एवं व्यवहारकी मधुरतासे बड़े ही प्रभावित हुए और वे अपने कार्योंमें इनका सहयोग लेने लगे। इतना ही नहीं, बजाजजी अपने हृदयकी गुप्त-से-गुप्त बातें इन्हें बतलाते, इनकी सुनते और परामर्श लेते-देते थे।

योगक्षेमकी व्यवस्था

बम्बईके व्यावसायिक जीवनमें भाईजीका प्रवेश रूईकी दलालीके माध्यमसे सं० १९७५में हुआ। यह काम श्रीगुलाबराय नेमानीके साझेमें था। तीन-चार महीनेतक चलकर यह बंद हो गया।

इसके बाद शेयरोंकी दलालीकी ओर प्रवृत्ति हुई। यह भी साझेमें थी और साझेदार थे——श्रीमदनलाल चौधरी। यह एक वर्षतक चली। लाभ-हानि बराबर रही। घरका खर्चा अच्छी प्रकार चलता नहीं था, इसलिये इससे भी इन्हें हाथ खींच लेना पड़ा।

शेयरोंकी दलालीमें भाग्य-परीक्षाका तीसरा खेल सं० १९७७में आरम्भ हुआ। 'ताराचन्द घनश्यामदास' फर्मके मालिक श्रीश्रीनिवासदास बालकृष्णलाल पोद्दारके साझेमें। इस नयी फर्मका नाम पड़ा——'एस० डी० पोद्दार ऐंड कम्पनी।' इसमें तीन लाख रुपये व्यापारियोंके जिम्मे लेने रह गये, जिसमेंसे दो लाख तो किसी प्रकारसे निकल आये, पर एक लाख डूब ही गये। श्रीश्रीनिवासदासजीका इनपर बहुत स्नेह और इनकी ईमान-दारीपर अखण्ड विश्वास था। दोनों भाइयोंने मुनीमोंको यह कहकर डाँट दिया कि 'सब कुछ हमारी सम्मतिसे हुआ है। हनुमानप्रसादकी इसमें कोई गलती नहीं है। घाटा हुआ तो क्या हुआ?' मित्र तो अपना कर्त्तव्य-पालन करके संतुष्ट हो गये, किंतु इनके हृदयपर इस घाटेके कारण भारी धक्का लगा। ये बार-बार यही सोचते थे कि मेरेद्वारा एक स्वजन——एक सच्चे मित्रकी इतनी बड़ी रकमकी हानि हुई है। इस ग्लानिका शरीरपर प्रभाव आना स्वाभाविक था। स्वास्थ्य-सुधारके लिये इन्हें नासिक जाना पड़ा और वहाँ ये लगभग एक मास रहे।

हठयोगका अभ्यास

स्वास्थ्य-लाभके निमित्त की गयी इस नासिक-यात्रामें भाईजीकी एक दक्षिणी योगीसे भेंट हो गयी। वे हठयोगकी क्रिया करते थे और प्राणायामादि अष्टाङ्गयोगके भी अच्छे ज्ञाता थे। वे अद्वैतमतके उपासक थे। इन्होंने उनसे हठयोगकी कुछ क्रियाएँ——नेती-धौती आदि सीखीं तथा स्वयं उनको किया। प्राणायामका भी अभ्यास किया। इन क्रियाओंसे इन्हें शारीरिक लाभ तो हुआ, पर आध्यात्मिक लाभका कोई विशेष अनुभव नहीं हुआ।

सेठ जमनालालजी बजाजको जब व्यापारमें हुए घाटेका पता चला तो उन्होंने भाईजीको अपने यहाँ बुलाकर अपने साले तथा प्रधान मुनीम श्रीचिरंजीलाल जाजोदियाके साथ 'चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद'के नामसे कालबादेवी रोडपर अलसी आदिके सट्टेकी दलालीका काम आरम्भ करा दिया। इसके अतिरिक्त निजी व्यापार और आढ़तका काम भी आरम्भ हो गया।

आर्त्तरक्षा

वैसे इस फर्मका मुख्य धंधा था रुईका निर्यात करना। महाराष्ट्र, नागपुर और वर्धासे रुई मँगाकर विदेश भेजी जाती थी। इस कामको विशेषरूपसे श्रीचिरंजीलालजी देखते थे। चिरंजीलालजीका यह स्वभाव था कि न तो वे किसीका एक पैसा लेते थे और न अपना ही एक पैसा डूबने देते थे। बड़े हिसाबी-किताबी व्यक्ति थे। इस फर्ममें रुईके लेन-देनका बाहरी लोगोंका भी काम कराया जाता था।

जोधपुर (राजस्थान)की ओरके साँगीदास थानवी नामके एक सज्जन रुईके इस व्यापारसे सम्बद्ध थे। उनका काम भाईजीकी फर्मके मार्फत होता था। हिसाबमें कभी कोई गड़बड़ी नहीं होती थी। एक बार उक्त व्यापारीने इनका काम किया और उसमें ६०-७० हजार रुपये लग गये। वे महानुभाव रुपये नहीं दे सके। भाईजीको विदित था कि उनके पास रुपये नहीं हैं और घाटा अधिक है, इसीसे विवश हैं। पर श्रीचिरंजीलालजी इस प्रकार

गम खानेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने जब देखा कि वे रुपये नहीं दे पा रहे हैं तो उनके विरुद्ध दीवानीमें दावा दायर किया। भाईजीने जाजोदियाजीसे नालिश न करनेके लिये कहा-सुना; पर उन्होंने समझाया कि व्यापारमें इस प्रकार रुपये छोड़नेसे फर्म फेल हो जायगी। श्रीभाईजी स्वतन्त्र थे नहीं, इसलिये उनका आग्रह देखकर चुप हो गये। बात सत्य थी ही। कागजपत्र भी दुरुस्त थे। अतः इनकी उक्त व्यापारीपर डिग्री हो गयी। चिरंजीलालजीने प्रयास करके रुपये वसूल करनेके लिये कुर्की जारी करा दी। भाईजी उस व्यापारीकी इस स्थितिसे परिचित थे कि उनके पास नकद कुछ भी नहीं है। जो कुछ है, गहना है। यदि वह भी चला गया तो परिवारको खानेके लाले पड़ जायँगे। बेचारोंके लिये बड़े संकटकी स्थिति हो जायगी। इनके मनमें उसके प्रति बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई। किंतु चिरंजीलालजीकी प्रकृतिको समझकर उनसे कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। इन्हें एक उपाय सूझा। इन्होंने तत्काल उसे फोन किया—'हमारे यहाँसे आपके यहाँ कुर्की जा रही है, आप सावधान हो जाइये और गहना, सामान आदि जो कुछ इधर-उधर करना हो, कर दीजियेगा।' इतना संकेत पाते ही उन सज्जनने गहना-सामान आदि अपने मित्रके यहाँ रखवा दिया; कुर्कीवाले गये, पर उन्हें कुछ नहीं मिला। वे खाली हाथ लौट आये। चिरंजीलालजीके मनमें बड़ा विचार हुआ कि कुर्कीमें कुछ नहीं मिला। भाईजी श्रीजाजोदियाजीकी मानसिक वेदना जानते ही थे। अतएव सान्त्वना देनेके लिये इन्होंने श्रीजाजोदियाजीको वास्तविक स्थिति बतला दी—'बेचारेके पास नकद कुछ है नहीं, गहना और सामान है; वह भी आपने ले लिया तो वे तथा उनके परिवारवाले भूखों मर जायँगे। अतएव मैंने फोनद्वारा उन्हें कुर्की आनेकी बात बता दी और कह दिया था कि गहना आदि घरमेंसे हटा दें।' श्रीजाजोदियाजी भाईजीकी बात सुनकर सन्न रह गये। वे इनके स्वभावकी विचित्रतासे परिचित थे तथा इनको वे बहुत मानते थे। पूरी बात सुनकर वे बोले—'आपको जब फोन ही करना था तो मुझे पहले ही क्यों नहीं कह दिया?. कुर्की भेजते ही नहीं। व्यर्थ ही उसमें कुछ रुपये और लग गये तथा परीशानी हुई।'

इसी प्रकार इसके पूर्व श्रीबालकृष्णलालके साझेमें व्यापारियोंके यहाँ लाखसे ऊपर रुपये डूबनेपर इन्होंने तंग करके वसूल करनेकी अपेक्षा संतोष करके घर बैठना ही श्रेयस्कर समझा था।

यह कारोबार भाईजीके बम्बई-प्रवास-कालके अन्त (सं० १९८४)तक चलता रहा। इससे बड़ा लाभ यह हुआ कि इनको परिवारके भरण-पोषणकी चिन्तासे एक सीमातक मुक्ति मिल गयी। अब वे अपना कुछ समय इच्छानुसार अन्य कार्योंमें सुविधापूर्वक लगा सकते थे।

आर्तरक्षाकी एक और घटना है—'मारवाड़ी अग्रवाल महासभाके खजांची श्रीराजाराम मीतानने अपने खर्चके लिये दो हजार रुपये रोकड़मेंसे ले लिये। पता लगते ही कमेटीवालोंने उन्हें पुलिसमें गिरफ्तार करा दिया। किसीको अपना सहायक न देखकर उसने भाईजीके सामने अपनी संकटपूर्ण परिस्थितिको निवेदन किया। भाईजीके हाथमें भी उस समय रकमकी छूट बिल्कुल नहीं थी। परंतु संकटमें पड़े भाईकी सहायता और वह भी कहनेपर न की जाय, यह इन्हें सहन नहीं हुआ। इन्होंने अपने मित्रोंसे दो हजार रुपये उधार लिये और उसे जमा करवा-कर श्रीराजारामको छुड़ा लिया। श्रीराजारामका रोम-रोम श्रीभाईजीके उपकारके प्रति कृतज्ञतासे भर गया।

ऐसी और भी अनेकों घटनाएँ हैं। वास्तवमें श्रीभाईजीका सम्पूर्ण जीवन ही सेवामय था।

राजनीतिक प्रवृत्तिका पुनरुत्थान

शिमलापालके नजरबंदी-जीवनमें की गयी कठोर साधनासे वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयी थीं। अंग्रेज सरकारकी बर्बरताके प्रति असंतोष-वृत्ति तथा देश-सेवा एवं समाज-सेवाकी जो भावनाएँ थीं, वे उसी रूपमें विद्यमान थीं। हाँ, शिमलापालमें २१ महीनेतक नाम-जप और ध्यानकी जो साधना की गयी थी, उसके फलस्वरूप हिंसावादी राजनीतिमें उनका विश्वास समाप्त हो चला था। सात्विक भावोंके उद्रेकसे अंग्रेजोंको 'शत्रु' समझकर उनकी हत्या करके मातृभूमिकी बन्धन-मुक्तिका प्रयास इन्हें अनुचित लगने लगा। पीछे महात्मा गांधीकी घनिष्ठतासे तथा

साधनाकी परिपक्वताके कारण हिंसावृत्ति सर्वथा शमित हो गयी। इस समय ये देश-सेवा और समाज-सेवाका कोई सक्रिय ठोस रूप ढूँढ रहे थे, जिसका प्रभाव चिरस्थायी हो और जिसमें परपक्षके अनिष्टकी भावना न होकर देशके निर्माणकी भावनाका प्राधान्य हो। इसी चिन्तनके साथ ये राजनीतिक एवं सामाजिक गति-विधियोंमें भाग लेते रहे।

बम्बई आनेके डेढ़ वर्ष बादतक अंग्रेजी सरकारके गुप्तचर इनके पीछे लगे रहे। यद्यपि क्रान्तिकारियोंके साथ इनका गुप्त सम्बन्ध था, तथा उनको ये यथासम्भव सहायता भी देते रहते थे, फिर भी गुप्तचरोंको इस रहस्यकी जानकारी नहीं हो पायी। उनको क्रान्तिकारी-आन्दोलनमें भाईजीकी सक्रिय संलग्नताका कोई प्रमाण प्राप्त न हो सका। अतः सरकारने गुप्तचरोंद्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट्सके आधारपर इनकी गति-विधियोंके सम्बन्धमें की जानेवाली जाँच बंद कर दी। साथ ही, इनके बंगालसे निष्कासनका आदेश भी वापस ले लिया।

उस समय गुप्तचर श्रीभाईजीकी गति-विधियोंका पता लगानेके लिये किस रूपमें आते थे तथा किस प्रकार उनकी धार्मिक प्रवृत्ति एवं शान्त जीवनको देखकर इनसे पैसा ठगकर लौट जाते थे, इसका उल्लेख करते हुए श्रीभाईजीने एक बार बताया था—

"एक दिन एक बंगाली सज्जन मेरे पास आये। वे एक गौड़ीय सम्प्रदायके साधुके वेषमें थे। बोले—'आपसे वार्तालाप करना है।' मैंने वेषके अनुसार भगवच्चर्चा प्रारम्भ की। वे भी बोलते रहे। उनसे चैतन्य-महाप्रभुकी एवं भक्तिरसकी बहुत-सी बातें हुईं। बड़ा अच्छा सत्सङ्ग हुआ। उस दिन वे चले गये। दूसरे दिन फिर आये। प्रसङ्गवश उन्होंने कहा—'मेरे पास कमण्डलु नहीं है, मुझे एक कमण्डलु दिलवा दीजिये।' मैंने उन्हें एक कमण्डलु दिलवा दिया। फिर बोले—'हम आज प्रयाग जायँगे। हमें प्रयागका टिकट कटवा दीजिये।' मैंने उन्हें प्रयागका टिकट मँगवा दिया। संयोगकी बात, मालवीयजी महाराज बम्बई आये हुए थे और उसी गाड़ीसे वापस लौटनेवाले थे। मैं उनको बिदाई देने स्टेशन गया था। मालवीयजी महाराजको प्रणाम करनेके पश्चात् मेरे मनमें आया कि 'बंगाली स्वामीजीसे भी मिल लिया जाय। वे भी तो इसी ट्रेनसे जा रहे हैं।' मैंने उन्हें ट्रेनमें देखा, पर वे मिले नहीं। मैंने सोचा—'नहीं आये होंगे, कुछ बात हो गयी होगी।'

"इसके तीन-चार दिन बाद कांग्रेसके अधिवेशनके लिये एक स्पेशल ट्रेन कलकत्ता जा रही थी। उसमें गांधीजी थे, मुहम्मद अली आदि थे। पासके एक डिब्बेमें मैं भी था। अचानक हो-हल्ला हुआ। मैंने डिब्बेसे बाहर निकलकर देखा—मुहम्मद अली साहब एक साधुको पीट रहे थे। मैं मुहम्मद अली साहबके पास गया। मैंने कहा—'अली साहब! आप यह क्या कर रहे हैं? एक साधुको पीट रहे हैं?' अली साहबने तत्काल उत्तर दिया—'भाईजी, आप चुप रहिये; हम जानते हैं यह कौन है। यह सी० आई० डी०का आदमी है और हमलोगों-को धोखा देकर हमलोगोंके साथ कलकत्ता जाना चाहता है।' मैंने कहा, 'ये स्वामीजी ३-४ दिन पहले मेरे पास भी आये थे और बहुत देरतक बातें करते रहे थे। इन्होंने मुझसे एक कमण्डलु माँगा था। मैंने कमण्डलु खरीदवा दिया था। प्रयागके लिये टिकट भी कटवा दिया था। मुझे क्या पता कि ये महाशय इस प्रकार साधुका स्वाँग बनाये घूम रहे हैं।' फिर मैंने उस साधुबाबासे पूछा—'महाराज! आपको उस दिन टिकट बनवा दी थी, आप उस दिन क्यों नहीं गये?' इसपर वे बोले—'हमारा कमण्डलु ही खो गया था, इसलिये उस दिन जाना नहीं हुआ।' मैंने कहा—'महाराजजी! झूठ न बोलिये। ठीक-ठीक कहिये कि आप कौन हैं।' मेरे इस व्यवहारका उनपर प्रभाव पड़ा और उन्होंने स्वीकार किया—'मैं सी० आई० डी० का आदमी हूँ। मैं कलकत्तासे बम्बई आया था और अब वापस कलकत्ता जाना चाहता हूँ।' इतनेमें गांधीजी भी वहाँ आ गये। सब लोग खड़े हो गये। उन संन्यासी महाराजको छुड़ा दिया गया।"

राजनीतिके क्षेत्रमें

बम्बई-प्रवासकालमें श्रीभाईजीका तत्कालीन राष्ट्रीय स्तरके सभी सम्मान्य राजनीतिक नेताओंसे सम्पर्क एवं घनिष्ठ परिचय हुआ। सेठ जमनालालजी बजाज बम्बईमें राजनीतिक जागृतिके प्रकाशस्तम्भ थे तथा राष्ट्र-

नेताओंके कल्पवृक्ष माने जाते थे। बम्बईमें जो भी नेता आते, उनके मेहमान बनते। लेमिंग्टन रोडपर स्थित उनकी कोठी 'मणि-भवन' राष्ट्रीय अतिथि-गृह बन गयी थी। श्रीजमनालालजी श्रीभाईजीकी कार्यकुशलता, विनम्रता, सेवा-भावना एवं राष्ट्र-निष्ठासे पूर्णतया परिचित थे। अतः उन्होंने 'मणि-भवन'में आतिथ्यकी सारी व्यवस्था श्रीभाई-जीको ही सौंप रखी थी। नेताओंके आनेपर उनके भोजन, भ्रमणका प्रबन्ध तथा आवश्यकतानुसार मार्ग-व्यय आदिकी सम्मानपूर्ण व्यवस्था की जाती थी तथा कभी-कभी नेताओंके घर जाकर उनकी आवश्यकताओंका ज्ञान करके उनकी पूर्तिकी भी व्यवस्था की जाती थी। इस प्रकार श्रीभाईजी तत्कालीन सभी नेताओंके निकट सम्पर्कमें आये तथा वे अपने शील-सौजन्य एवं मधुर स्वभावसे सबके प्रीतिपात्र बन गये।

देश-सेवाकी भावना पूर्ववत् थी—कुछ बढ़ी ही थी; उसका केवल बाह्यरूप बदला था। अतएव देश-सेवाके लिये गठित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके प्रति श्रीभाईजीके मनमें बड़ा सम्मान था। राष्ट्रनेताओंके घनिष्ठ सम्पर्कने उसमें और भी वृद्धि कर दी। अतः बम्बईके व्यापारिक जीवनमें व्यस्त रहते हुए भी श्रीभाईजी कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनोंमें सम्मिलित होते रहे।

सं० १९७७की नागपुर कांग्रेसमें भी ये सम्मिलित हुए। वहाँ ये अपने कलकत्ता-जीवनके श्रद्धास्पद देशबन्धु चित्तरञ्जनदाससे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। पुरानी स्मृतियाँ जाग उठीं। बड़ी देरतक बातें होती रहीं।

सं० १९७८में कांग्रेस-अधिवेशन अहमदाबादमें हुआ। उसके सभापति हकीम अजमल खाँ थे। कांग्रेसकी कार्यवाहियोंमें भाग लेनेका यह इनका अन्तिम अवसर था। इसके बाद इनका उससे क्रियात्मक सम्बन्ध एक प्रकार-से समाप्त हो गया। राजनीतिसे उपरामता शिमलापालसे ही आरम्भ हो गयी थी। बम्बई आनेपर महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक और लाला लाजपतराय आदिके चुम्बकीय व्यक्तित्वके प्रभावसे पुरानी अधसूखी डालें कुछ हरी हो चली थीं, किंतु साधनात्मक प्रवृत्तिमें तीव्रता आनेसे इन महापुरुषोंके जीवनसे भी श्रीभाईजीने तत्त्व-शिक्षा ही अधिक ग्रहण की, राजनीतिक प्रेरणा कम।

कांग्रेस-अधिवेशनों तथा बम्बईमें राजनीतिक क्षेत्रके चोटीके नेताओंके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहनेसे भाईजीको देशके अन्य कई प्रसिद्ध देशभक्तों, विद्वानों, समाजसेवकों और साम्प्रदायिक नेताओंसे मिलने और विचार-विमर्शका अवसर प्राप्त हुआ। इनमें विशिष्ट थे—श्रीविट्ठलभाई पटेल, श्रीवल्लभभाई पटेल, श्रीविनायक दामोदर सावरकर, काका कालेलकर, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, श्रीविनोबाजी, श्रीकिशोरीलाल मश्रूवाला, श्रीमहादेव देसाई, दादा धर्मा-धिकारी, श्रीकृष्णदास जाजू, मौलाना शौकत अली, मुहम्मद अली, जिन्ना और नारीमैन। दादा भाई नौरोजीसे कल-कत्ताका परिचय था। बम्बई आनेपर उनसे विशेष सम्पर्क नहीं हो पाया था कि वे दिवंगत हो गये। जिन्ना साहबके बारेमें श्रीभाईजी कहा करते थे—'जिन्ना साहबसे मेरा सैकड़ों बार मिलना हुआ। बड़ा प्रेमका सम्बन्ध था। वे पीछे इतने कट्टर हो गये थे, पहले बड़े भले आदमी थे; कट्टर मुसल्मान नहीं थे, नमाज नहीं पढ़ते थे।'

लोकमान्यसे नैकट्य

उन दिनों श्रीबाल गंगाधर तिलककी राजनीतिक विचारधारा श्रीभाईजीके मनोऽनुकूल पड़ती थी। कलकत्तामें क्रान्तिकारी जीवन व्यतीत करनेके समयसे ही ये उनके प्रशंसक थे। बम्बई आनेपर राजनीति-क्षेत्रमें कार्य करते हुए ये उनके अत्यन्त निकट आ गये। उनके साथ घरपर घंटों बैठकर राजनीतिक चर्चा करते रहते। तिलक महाराजकी मृत्यु १ अगस्त १९२० ई० को हुई। उस समय भाईजी उनके पास थे। उनके शरीर छोड़नेके पूर्वका एक संस्मरण सुनाते हुए भाईजीने कहा था—'आर्योंके आदिनिवासके विषयमें तिलक महाराजने पुनः एक पुस्तक तैयार की थी, जिसमें उन्होंने अपनी पुरानी मान्यताओंका* खण्डन किया था। नयी मान्यताके अनुसार आर्य भारतवर्षके ही थे। इस पुस्तककी पाण्डुलिपि मैंने देखी थी, परंतु उसे प्रेसमें छापनेके लिये देनेसे पहले

* तिलक महाराजने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरायन'में सिद्ध किया था कि आर्य उत्तरी ध्रुवके निवासी थे।

ही तिलक महाराजका देहान्त हो गया । इसके पश्चात् उस पुस्तककी पाण्डुलिपि क्या हुई, कुछ पता नहीं चला। मैंने उनके उत्तराधिकारियोंसे उस पुस्तकके सम्बन्धमें पूछताछ की, किंतु कोई संधान न मिल सका ।'

लाला लाजपतरायके स्नेहकी प्राप्ति

लाला लाजपतराय स्वदेशी-आन्दोलनके सम्बन्धमें बराबर बम्बई आया करते थे। उनकी राष्ट्रीयता धर्म-भावनासे अनुप्राणित थी । उनके लिये वह अध्यात्मसाधनाका ही प्रतिरूप थी । श्रीभाईजीको लालाजीकी इस विचार-पद्धतिमें अपने हृदयकी वाणीकी प्रतिध्वनि सुनायी दी। विचारसाम्य सम्पर्क-स्थापनाका कारण बन गया। लालाजी बम्बई आनेपर इनके अतिथि होने लगे। एक दिन वे बिना पूर्व सूचनाके सहसा आ गये। उस समय श्रीभाईजी जुहूमें रहनेवाले एक ज्योतिषीसे मिलने गये हुए थे। लौटनेपर लालाजीने भेंट होते ही पूछा--'कहाँ गये थे?' इन्होंने बतलाया--'जुहूमें एक ज्योतिषी रहते हैं, उनसे मिलने गया था।' लालाजीने हँसकर पूछा--'वह कुछ जानता भी है? कल जाओ तो पूछकर आना--लाजपतराय कब पकड़ा जायगा। मेरे अमुक-अमुक साथी पकड़ लिये गये । मैं अभीतक नहीं पकड़ा गया।'

गांधीजीसे सम्पर्क-वृद्धि

महात्मा गांधीसे श्रीभाईजीका प्रथम परिचय उनके सम्मानमें कलकत्तामें आयोजित अभिनन्दनके अवसरपर हुआ था। बम्बईके प्रवास-कालमें गांधीजीसे इनका बराबर मिलना होता रहा और परिचय धीरे-धीरे आत्मीयतामें परिणत हो गया। गांधीजी बहुत बार श्रीभाईजीके घरपर भी पधारते थे और दादी रामकौर देवीसे मिलकर बड़े प्रसन्न होते थे। गांधीजीकी सादगी, सेवावृत्ति, स्वदेशी-निष्ठा, स्वावलम्बन, आध्यात्मिकता, रामनाममें निष्ठा आदि चारित्रिक विशेषताओंका भाईजीपर बड़ा प्रभाव पड़ा । गांधीजी भी श्रीभाईजीकी विनम्रता, सरलता, पवित्रता, निष्कपटता, भगवद्भक्ति, निःस्वार्थभावना, सेवावृत्ति, ऋजुता, अमानिता आदि गुणोंपर मुग्ध थे। वे इन्हें पुत्रवत् प्यार करने लगे थे। गांधीजीकी आत्मीयताकी बातें श्रीभाईजी बड़े ही भावभरे हृदयसे सुनाया करते थे। उसकी चर्चा आगे की जायगी ।

महाराजा सिंधियासे भेंट

राजनीति-क्षेत्रके नेताओंके अतिरिक्त श्रीभाईजीको समाजके प्रतिष्ठित अन्य वर्गोंके लोगोंका भी सांनिध्य प्राप्त हुआ। इनमें महाराजा सिंधिया मुख्य थे। महाराजा साहबके सम्बन्धमें श्रीभाईजी कई बातें सुनाते थे। एक प्रसङ्गका उल्लेख करते हुए इन्होंने कहा था--

"ग्वालियरके महाराजका बम्बईमें महल था। वे वहाँ बराबर आते थे। मैं उनके पास जाया करता था। इस समय जो महाराजा हैं, उनके वे पिता थे। ग्वालियरके महाराजा बड़े सीधे थे। प्राणायाम करते थे। कहा करते थे कि यदि मेरी रियासत चली जाय तो भी मैं दो रुपये रोज मजदूरी करके कमा सकता हूँ। मुझे कोई शर्म नहीं है। बीकानेरके महाराजा श्रीगंगासिंहजी जब-जब बम्बई आते थे, इन्हींके यहाँ ठहरा करते थे; बड़ी दोस्ती थी--उन दोनोंमें । हिंदू विश्वविद्यालयकी एक सभा बम्बईमें हुई थी, जिसमें गांधीजी, मालवीयजी एवं बीकानेरके महाराजा भी सम्मिलित थे। वह सभा इन्हीं ग्वालियरके महाराजाके महलपर हुई थी। महाराजा ग्वालियर जब भी बम्बई आते थे, मुझे सूचित कर देते थे। कहा करते थे--'तुम आया करो।' मुझसे बड़ा प्रेम करते थे। बहुधा कहा करते थे--'देखो! तुमलोग समझते हो, हमलोग बड़े सुखी हैं, रईस हैं, इतने लोग सेवा करनेवाले हैं; किंतु हमलोग बड़े दुःखी हैं। प्रजाका डर, एजेन्टका डर, वाइसरायका डर बराबर लगा रहता है। हमलोग केवल रईस कहलाते हैं, हमें स्वतन्त्रता नहीं है।" वे बड़े स्वतन्त्र प्रकृतिके थे और उन्हें राज्य जानेकी कोई चिन्ता नहीं थी। उनके पास रुपये बहुत थे, वे रुपये ब्याज एवं व्यापारमें लगाने बम्बई आया करते थे।

इस प्रसङ्गसे यह भी विदित होता है कि उस समयके राजनीतिक पुनर्जागरणने समाजके सभी वर्गोंको झकझोर दिया था। राजा-महाराजा भी अंग्रेजी शासनकी कूटनीतिके शिकार होकर घुटनका अनुभव करने लगे थे। उनमें-से अनेक स्वावलम्बी और स्वतन्त्र विचारके भी थे। महाराज ग्वालियर इन्हींमेंसे एक थे।

खादी-प्रचार

श्रीभाईजीके खादी-प्रेमकी चर्चा पहले हो चुकी है। ये स्वयं तो खादी पहनते ही थे, बम्बई आकर इन्होंने खादीके प्रचारमें भी सहयोग दिया। मित्रोंके सहयोगसे 'मारवाड़ी खादी प्रचारक मण्डल' नामक एक संस्थाका गठन हुआ। जयपुरसे खादी मँगवायी जाती थी। श्रीभाईजी अपने साथियोंको साथ लेकर खादीके प्रचारके लिये बम्बईके जन-संकुल बाजारोंमें फेरी लगाते थे। साथी लोगोंमेंसे कोई खादीका बंडल पीठपर लाद लेता था और ये हाथमें गज और कैंची लेकर चलते थे। सुबह ७ बजे निकलते थे और १० बजे लौट आते थे। यह क्रम कुछ दिन चला। इनके द्वारा प्रदर्शित जनसेवाके इस मार्गका बहुतोंने अनुसरण किया। इष्टकी सेवा लोक-लज्जा, मान-प्रतिष्ठा आदि सब कुछ त्यागनेसे ही होती है—यह अध्यात्म-क्षेत्रमें जितना सत्य है, उतना ही, जीवनके व्यावहारिक क्षेत्रमें भी।

श्रीजमनालालजी बजाज गांधीजीके अनन्य भक्त थे। अतएव वे खादीके प्रचारमें तन-मन-धनसे लगे थे। राजस्थानकी रियासतोंमें खादी-प्रचारका कार्यक्रम बना। पहले बीकानेरके महाराजासे मिलकर उनके यहाँ खादी-प्रचार करनेका निश्चय किया गया। श्रीभाईजीने उनको इस कार्यमें सहयोग दिया। भाईजी उनके साथ बीकानेर गये तथा दोनोंने महाराजा साहबसे भेंट की एवं खादीके प्रचारमें सहयोग देनेकी प्रार्थना की। खादीद्वारा देशके गरीबोंको भोजन मिलेगा, इस दलीलसे प्रभावित होकर महाराजा साहबने इसके प्रचारमें सहयोग देनेका आश्वासन दिया।

खादीके सम्बन्धमें विचार

श्रीभाईजी खादीके प्रचारमें तत्परतासे लगे थे; पर इसके साथ उनकी परमार्थभावना किस प्रकार जुड़ी हुई थी, यह श्रीभाईजीके एक लेखसे प्रकट होती है। 'कल्याण'में इन्होंने 'खादी और परमार्थ' शीर्षकसे अपने विचार प्रकाशित किये थे, जो इस प्रकार हैं—

"खादी इस समय राजनीतिक आन्दोलनमें शामिल है; पर वास्तवमें यह केवल राजनीतिक ही नहीं है, इसका सम्बन्ध तो सदाचार, वैराग्य और ईश्वर-भक्तिसे विशेष है। राजनीतिक दृष्टिसे नहीं, मैं तो अपने विश्वास-के अनुसार शुद्ध धार्मिक दृष्टिसे खादीका व्यवहार करनेके लिये 'कल्याण'के सभी पाठक-पाठिकाओंसे प्रेमपूर्वक अनुरोध करता हूँ।

"इस समय देशमें ऐसा कोई वस्त्र नहीं है, जो इससे ज्यादा पवित्र हो या जिसमें हिंसा न होती हो। विलायती और मिलके कपड़ोंमें चर्बी लगती है, जिसमें अपवित्रता और हिंसा दोनों ही सम्मिलित हैं। रेशमी वस्त्रोंको प्राचीनकालमें शुद्ध मानते थे, पर अब तो रेशमके धागे बनानेमें असंख्य जीव उबलते हुए जलमें डाले जाते हैं। इससे रेशम भी अपवित्र और हिंसामय है। ऊनी कपड़े इस देशमें हमेशा लोग नहीं पहन सकते, परंतु खादी उपर्युक्त दोनोंकी अपेक्षा पवित्र और हिंसारहित है। पवित्रताका असर मनपर होता है, जिससे भगवान्में मन लगता है।

"खादी पहनते ही सादगी आ जाती है, शौकीनी छूटते ही अनेक दोष आप ही चले जाते हैं। कपड़ेका खर्च कम हो जाता है। खादीमें ज्यादा बानगी नहीं होती। अनेक बानगी होनेसे ही लोग बिना प्रयोजन अधिक कपड़े खरीदकर पेटियाँ भर लेते हैं। परंतु खादी पहननेसे यह दोष दूर हो जाता है। खादीके स्वाभाविक ही मोटी होनेसे शर्म दूर होती है और सहज ही वैराग्य बढ़ता है। सदाचार तो इसमें आ ही गया। पवित्रता, सादगी और सदाचारके मिल जानेसे एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है, जो परमार्थमें बड़ी सहायता करती है।

"इसके सिवा खादीमें सबसे बड़ी बात है—गरीब-भूखोंकी सेवा और देशकी संस्कृतिका सम्मान। आज करोड़ों स्त्री-पुरुष कार्यके अभावसे अन्न-वस्त्र नहीं पाते। देश खादी पहनने लगे तो पींजने, कातने, बुनने आदिमें लगकर करोड़ों भाई-बहन सुखी हो सकते हैं। घरसे कुछ दिये बिना ही बड़ा दान और विराट्रूप भगवान्की पूजा हो जाती है और साथ ही परमुखापेक्षी जनता स्वावलम्बन सीखकर सुखी हो सकती है।

"इस प्रकार खादीमें पवित्रता, अहिंसा, सादगी, स्वावलम्बन, सदाचार, वैराग्य, दान और भगवान्की पूजारूप परमार्थ भरा है। अतएव सभी भाई-बहनोंको खादी जरूर ही पहननी चाहिये। परंतु यह करना चाहिये ईश्वरको स्मरण करते हुए ईश्वरके लिये ही।" ('कल्याण', वर्ष ५, पृष्ठसंख्या ८४५-४६)

विदेशी वस्त्रोंकी होली

स्वदेशी-आन्दोलनके दो पक्ष थे--अपने देशमें बनी वस्तुओंका प्रयोग और विदेशोंसे आयातित मालका बहिष्कार। बहिष्कारकी क्रियाने आगे चलकर ध्वंसात्मक रूप धारण कर लिया और मैन्चेस्टर एवं लिवरपूलकी मिलोंमें बने लाखों रुपयोंके मूल्यवान् वस्त्र सरे बाजार जलाये जाने लगे।

गांधीजीने विलायती कपड़ोंकी होली जलाना आरम्भ किया। उमर सोभानी नामके एक मुसल्मान उद्योगपति थे। उनकी कपड़ेकी मिल थी। उस मिलके अहातेमें होली जलायी गयी थी, जिसमें लाखों-लाखों बहुमूल्य विदेशी कपड़े अग्निदेवको भेंट चढ़ाये गये। बहिष्कारकी यह मशाल श्रीभाईजीके द्वारपर भी आयी। गांधीजी घरपर जाकर विलायती कपड़े माँगकर लाये थे। गांधीजी दादी रामकौर देवीसे कपड़े माँगने भाईजीके घर स्वयं आये थे। दादीने उन्हें बहुत-से मिलके कपड़े दिये थे।

गांधीजीकी इस चेष्टाका कुछ लोगोंने विरोध किया। उन्होंने तर्क रखा कि 'इस प्रकार कपड़ोंको जलानेसे देशकी हानि है। ये कपड़े गरीबोंको, जिन्हें इनकी आवश्यकता है, बाँट दिये जायँ।' पर गांधीजी अपने निश्चय पर दृढ़ थे। उन्होंने उत्तर दिया--"जब हमें यह पता चल जाय कि अपनी जेबकी बोतलमें शराब है और हमें शराब पीनी नहीं चाहिये तथा शराब पीना पाप है, तब क्या वह शराबकी बोतल दूसरोंको दे दें और कहें--'लो, शराब पी लो'? हम उस शराबकी बोतलको नष्ट ही करना चाहेंगे। यही बात विदेशी कपड़ोंके सम्बन्धमें है। विदेशी कपड़ा पहनना महापाप है। तो पापका कपड़ा मैं दूसरोंको कैसे पहननेके लिये दे दूँ? उसे तो जला ही देना चाहिये।" भाईजी इन सब घटनाओंके द्रष्टा ही नहीं, गांधीजीके साथ इस व्यापक राष्ट्रीय नाटकके एक विनीत सहयोगी भी रहे।

दादी रामकौर देवीसे गांधीजी विदेशी कपड़े माँगकर ले गये थे, पर भाईजीकी धर्मपत्नीके पास विदेशी कपड़े अभी थे। श्रीभाईजीने उनको जलानेका निश्चय किया। धर्मपत्नीने वस्त्रोंको अग्निकी भेंट न करके उन्हें गरीबोंको बाँट देनेकी दलील रखी, पर इन्होंने गांधीजीके विचार बताकर उसे वस्त्र जला देनेके लिये राजी कर लिया। धर्मपत्नीने अपने पासके सब विलायती कपड़े इन्हें दे दिये।

भाईजीने पूछा--"और तो कोई विदेशी कपड़ा घरमें बचा नहीं है न?"

पत्नीने कहा--"नहीं।"

भाईजीने फिर सावधान किया--"फिर देख लो, शायद कहीं बचा-खुचा पड़ा हो।"

पत्नीने उत्तर दिया--"सब देख लिया। कहीं कुछ नहीं है।"

भाईजीने अपने शब्दोंको फिर दोहराया--"एक बार और देख लेना चाहिये।"

पत्नीने भी अपना उत्तर दोहरा दिया--"अब कुछ बचा नहीं है।"

श्रीभाईजीको एक कपड़ा दिखलायी दे रहा था। इसीलिये वे बार-बार सावधान करते हुए कह रहे थे--"एक बार और देख लेना चाहिये। मुझे लगता है कि एक कपड़ा और है।" इतना कहकर भाईजीने आँख झुकाकर पत्नीकी साड़ीकी ओर देखा। पत्नीकी भी दृष्टि अपने शरीरपर पहनी हुई साड़ीपर गयी। सचमुच वह विदेशी साड़ी थी। भाईजीके बार-बार आग्रह करनेका अर्थ पत्नीकी समझमें अब आया। "अभी आती हूँ"--यह कहकर वह कमरेमें गयी, अपनी साड़ी बदली और वह अन्तिम अवशेष साड़ी भी जलानेके लिये एकत्रित विदेशी वस्त्रोंके ढेरपर डाल दी। यह था कर्त्तव्यपालनके प्रति दोनोंका उत्साह!

सक्रिय राजनीतिसे उपरामता

सं० १९७८के बाद श्रीभाईजीने कांग्रेस-अधिवेशनोंमें सम्मिलित होना बंद कर दिया। इसका कारण था उस समयकी कांग्रेसके कर्णधारोंकी नीतिसे असहमति। कांग्रेसका उद्देश्य था—देशको स्वतन्त्रताकी प्राप्ति कराना। इसके लिये कर्णधार समाजमें स्वतन्त्रताकी भावना जाग्रत् करते थे तथा परतन्त्रताके प्रति असंतोष उत्पन्न करते थे। परिणामस्वरूप देश-सेवाके साथ-साथ जनतामें परस्पर राग-द्वेष, घृणा, प्रतिस्पर्धा, स्वार्थवृत्ति आदि दुर्गुणोंके बढ़नेकी पूरी आशङ्का थी। इनमेंसे कुछ वृत्तियाँ तो राष्ट्रीय आन्दोलनके उस शैशव-कालमें ही—जब पाना था केवल दण्ड और तिरस्कार तथा देना था सर्वस्व—झाँकने लगी थीं। श्रीभाईजीका मत था कि देश-सेवा साध्य नहीं, साधन है; कारण मानव-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान्‌की प्राप्ति करना है। अतएव देश-सेवा भगवत्-प्राप्तिका साधन होना चाहिये। दूसरे, असंतोष उत्पन्न करनेसे देशका परिणाममें कल्याण नहीं है; माना, उससे स्वतन्त्रताकी प्राप्तिका आन्दोलन तीव्र हो जायगा; पर स्वतन्त्रता प्राप्त होनेपर जन-स्वभावमें बैठा हुआ वह असंतोष देशवासियोंमें परस्पर कलह, द्वेष, हिंसा आदिकी सृष्टि करेगा। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि देशवासियोंको आत्मबलकी प्राप्तिकी ओर लगाया जाय तथा उनमें देशकी संस्कृति, धर्म, आचार, शिक्षा आदिके प्रति गौरवबुद्धिका निर्माण किया जाय। इसकी सिद्धिके लिये इन्होंने आत्मशोधन, विचारोंके संस्कार, धर्म और संस्कृतिके प्रति अनुरागके जागरण, नैतिक साहित्यके निर्माण एवं प्रचार-प्रसारके साधनोंपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता बतायी। इनके विचारमें केवल भौतिक साधनोंका अवलम्बन लेकर चलनेसे व्यक्ति, संगठन, समाज और देशमें नाना प्रकारकी विकृतियाँ बढ़ रही थीं तथा और भी बढ़नेकी आशङ्का थी। इनका विश्वास था कि आत्मजय ही विश्वविजयका प्रथम सोपान है—**'जगज्जितं केन ? जितं मनः येन।'** अतएव सबसे पहले आत्मजयी होनेकी साधनामें ये तीव्रतासे बढ़ रहे थे। शक्तिके मूलकेन्द्रसे अपना सम्पर्क बनानेके पश्चात् ही तो दूसरोंको अपने द्वारा शक्ति वितरण की जा सकती है। इस प्रकार उद्देश्यके प्रति मौलिक मतभेद था। पर देशसेवाको साध्य न मानते हुए भी इन्होंने अपने कृतित्वद्वारा जितनी देशसेवा की है, उसका शतांश भी अनेकों व्यक्तियों एवं संस्थाओं-द्वारा नहीं हो पाया।

पारिवारिक दायित्वका निर्वाह

व्यापार, समाज-सेवा आदि कार्योंमें व्यस्त रहते हुए भी भाईजी पारिवारिक उत्तरदायित्वके निर्वाहमें निरन्तर सतर्क रहे। छोटी बहन अन्नपूर्णा बाई विवाहके योग्य हो गयी थी। उसका सम्बन्ध बैठानेके लिये ये व्यग्र थे। सम्बन्धियोंके सहयोगसे एक लड़का मिल गया। ये सपरिवार बाँकुड़ा गये। आषाढ़ शु० ४, सं० १९७६को विवाह सम्पन्न हुआ। इस यात्रामें इन्हें श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ कई दिन सत्सङ्ग-चर्चा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार दूसरी छोटी बहन चंदाबाईका विवाह ज्येष्ठ शु० ६, सं० १९७९को रामगढ़ (राजस्थान)में सम्पन्न हुआ। इस विवाहमें लक्ष्मणगढ़निवासी श्रीबालूरामजी, जो 'रामनामके आढ़तिया'के नामसे विख्यात थे, भी सम्मिलित हुए। श्रीआढ़तियाजी बड़े ही प्रसन्नचित्त एवं भजनानन्दी पुरुष थे। अतएव उनकी उपस्थितिसे विवाहमें आध्यात्मिकताका पुट आ गया। भाईजीका संकेत पाते ही आढ़तियाजी मौजमें भरकर भजन गाते और दोनों ओरके व्यक्ति मुग्ध हो जाते। श्रीभाईजीने विवाह सम्पन्न होनेपर मिठाईके साथ धार्मिक पुस्तकें भी बँटवायी थीं।

स्वदेशी-आन्दोलन और सुधारवादी विचारोंसे प्रभावित होकर भाईजीने राजस्थानी भाषामें कुछ विवाह-गीत लिखे। बहन चंदाके विवाहमें इनके लिखे गीत गाये गये। लोगोंको वे बहुत पसंद आये। इससे परम्परासे प्रचलित अश्लील विवाह-गीतोंको बंद करने तथा उनके स्थानपर सदाचार एवं ईश्वरभक्तिसे पूर्ण गीतोंके प्रचलनमें बहुत प्रेरणा मिली। इन गीतोंका संग्रह 'मारवाड़ी धार्मिक गीत' नामसे निकला। धार्मिकता एवं नैतिकताका पुट इनकी विशेषता थी।

विवाहमें स्वदेशी वस्त्रोंका प्रयोग

भाईजीकी खादी-निष्ठाका पारिवारिक धरातलपर दर्शन चंदाबाईके विवाहमें हुआ। इसमें सब कपड़े खादीके ही काममें लाये गये। मारवाड़ी अग्रवालोंमें चुनरीका बड़ा महत्त्व है। वह महीन कपड़ेकी होती है और रँगरेज लोग उसे बड़ी चतुरतासे रँगते हैं। इन्होंने सुझाव दिया कि उसके स्थानपर खादीका कपड़ा पीले रंगमें रँगकर प्रयोगमें लाया जाय। वैसा ही हुआ।

बहिनकी आत्महत्या

भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र है। बहिन चंदाका विवाह बड़ी धूमधामसे हुआ, पर ससुरालवालोंका व्यवहार उसके प्रति कड़ा था। इससे वह बड़ी दुःखी रहती थी। एक दिन अचानक उसके कुएँमें गिर जानेकी सूचना भाईजीको मिली। उन दिनों ये बम्बईके बाहरी हिस्से––मलाड़में रहते थे। चंदाबाईकी ससुराल बम्बईमें ही थी, इससे वह समय-समयपर मिलने आ जाती थी। रक्षाबन्धनके दिन वह मायके आयी। उसने श्रीभाईजीके हाथमें राखी बाँधी। दिनभर वहीं रही। संध्याको अपने घर लौट गयी। ससुरालवालोंने बहुत कहा-सुना, पर वह चुप रही। ससुरालवाले उसके पीछे ही पड़ गये। उन्होंने क्रोधमें भरकर यहाँतक कह दिया––'जाओ, मर जाओ; कुएँमें गिर जाओ।' चंदाबाईको बड़ा दुःख हुआ। वह उसी दुःखके आवेशमें उठी और जाकर घरके समीपवाले कुएँमें कूद पड़ी। उसका तत्काल देहान्त हो गया।

क्षणभरमें ही सारे मुहल्लेमें शोर हो गया। ससुरालवाले अत्यधिक भयभीत हो गये। उन्हें लगा कि पुलिस आयेगी और उन्हें पकड़कर ले जायगी। साथ ही समाजमें बदनामी होनेका भी डर था। मुकदमा भी चलनेकी आशङ्का थी। भाईजीको इसका पता चला। ये तत्काल घटनास्थलपर गये। जाते ही पूरी परिस्थिति समझ गये। चंदाबाईपर इनका बड़ा स्नेह था; पिताकी मृत्युके बाद एक प्रकारसे ये ही उसके सर्वतोभावेन संरक्षक रहे, विवाह भी इन्होंने ही किया था। भरी आयुमें बहिनको अकालकाल-कवलित देखकर ये किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, पर धीरज नहीं खोया। मनमें विचार किया कि 'बहिन तो चली गयी; अब कुछ भी किया जाय, वह लौट नहीं सकती। अतएव ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि उसके ससुरालवालोंको कोई परीशानी न हो।' ऐसा विचार करके इन्होंने कुएँपर अपनी बहिनके कपड़े, तौलिया, बाल्टी और लोटा रखवा दिये। तबतक पुलिस आ गयी। जाँच होने लगी। पुलिसने इनके बयान लिये। मृत स्त्रीके भाई और घरके कर्त्ता होनेसे इनके शब्दोंका महत्त्व था। इन्होंने पुलिस अधिकारीसे साफ-साफ कह दिया––'हमें किसीपर तनिक भी संदेह नहीं है। लगता है––यह नहाने आयी थी। पैर फिसल गया, कुएँमें गिर गयी। इसके पास कोई नहीं था।' परिवारके लोगोंने श्रीभाईजीको सच्ची बात कहनेकी प्रेरणा दी, पर इन्होंने उस समय बहिनके प्यारको प्रधानता न देकर विषम परिस्थितिमें अपने कर्त्तव्यका निर्वाह किया। बहिनके पतिदेवपर इस लोकोत्तर उदारताका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने ऐसे व्यवहारकी कल्पना भी नहीं की थी। पीछे उनमें बड़ा परिवर्तन आया। भाईजीने, जो इस हृदयद्रावक दुर्घटनामें निमित्त बने थे, बहिनके ससुरालवालोंको क्षमा ही नहीं कर दिया, वे उनसे आजीवन पूर्ववत् स्नेह-सम्बन्धका निर्वाह करते रहे। परंतु बहिनकी दर्दनाक बिदाईका श्रीभाईजीके मनपर बड़ा प्रभाव रहा। जीवन कितना क्षणभङ्गुर है तथा जगत्‌के व्यवहारका कितना बीभत्स रूप होता है––दोनों चीजोंको इन्होंने निकटसे देख लिया। भगवान्‌ने यह अनोखा दृश्य दिखाया!

सामाजिक जीवनमें रुचि

वङ्गभूमिमें बीते दिनोंके सामाजिक संस्कार बम्बईके अपेक्षाकृत मुक्त तथा संत्रासरहित जीवनमें विकसित होते रहे। आरम्भमें पारिवारिक आपदाओं, व्यापारिक व्यस्तताओं तथा राजनीतिक गति-विधियोंके कारण इनके विकासकी गति कुछ धीमी रही; किंतु जैसे-जैसे भाईजीकी प्रवृत्ति इन कार्योंसे हटती गयी, उनका अधिकाधिक समय लोकसेवामें लगने लगा। इसका कार्यक्रम यद्यपि बम्बई-आगमनके एक वर्ष बाद सं० १९७६से ही चलने लगा था, तथापि पूर्ण संलग्नता राजनीतिसे विरतिके बाद ही आयी।

अग्रवाल महासभाके कार्योंमें योगदान

कलकत्ताकी 'मारवाड़ी सहायक समिति'की ही भाँति बम्बईके मारवाड़ी अग्रवालोंने सं० १९७६में एक विशाल समाजसेवी संस्था 'अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा'की स्थापना की। यह एक राष्ट्रीय स्तरका जातीय संगठन था—जिसका मुख्य उद्देश्य था मारवाड़ी अग्रवालोंका सामाजिक उत्थान। इसके कार्यकर्ता अत्यन्त दूरदर्शी और उदार थे। अतः कहनेको ही यह मारवाड़ियोंकी संस्था थी, अपने कार्य-कलापद्वारा वस्तुतः वह सभी अग्रवाल वैश्यों एवं समस्त हिंदू जनताकी सेवा करती थी। राष्ट्रीय कांग्रेसकी ही भाँति इसके विधानमें भी देशके विभिन्न नगरोंमें वार्षिक आयोजनोंकी व्यवस्था थी। भाईजीको सामाजिक संस्थाओंमें कार्य करनेका प्रगाढ़ अनुभव था, इसमें उनकी गहरी रुचि भी थी। अतः इस संस्थाकी ओर उनका आकर्षण हुआ। इसके आरम्भकाल सं० १९७६से ही ये उसके सक्रिय सदस्य बन गये। महासभाके व्यवस्थापकोंने इनका स्वागत किया। प्रथम अधिवेशन हैदराबादमें हुआ। इसके अध्यक्ष सेठ श्रीरामलाल गनेड़ीवाला थे। भाईजी समय-समयपर महत्त्व-पूर्ण मामलोंमें उनसे परामर्श करने हैदराबाद जाया करते थे। सं० १९७७में ये महासभाकी बम्बई प्रान्तीय शाखाके मन्त्री चुन लिये गये। इसी वर्ष महासभाका द्वितीय अधिवेशन बम्बईमें आयोजित किया गया। उसकी सफलताका बहुत कुछ श्रेय भाईजीको था। इसके बाद तृतीय अधिवेशन कलकत्तामें और चौथा इन्दौरमें बड़ी धूमधामसे सम्पन्न हुए। भाईजी इन सभी अधिवेशनोंमें सभाके एक प्रतिष्ठित कार्यकर्ताकी हैसियतसे भाग लेते रहे।

अग्रवाल महासभाकी समाज-सेवाका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत था—बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह-जैसी सामाजिक कुरीतियोंका विरोध, धार्मिक पर्वों एवं सामाजिक उत्सवोंका सुरुचिपूर्ण ढंगसे आयोजन, दीन-दुःखियोंकी सेवा, शिक्षा-प्रसार, राष्ट्रीय भावनाका प्रसार आदि।

शिष्ट होलीका आयोजन

उन दिनों बम्बईमें होलीके दिनोंमें बड़ी हुल्लड़बाजी होती थी। लोगोंको कमरोंके दरवाजे खुलवाकर जबरदस्ती बाहर निकाला जाता था और उनपर कीचड़-राख आदि गंदी वस्तुएँ डाली जाती थीं। तरह-तरहके अपशब्द बोले जाते थे और गंदी तथा बीभत्स चेस्टाएँ की जाती थीं। एक बार भाईजीको भी इसका शिकार बनना पड़ा। कुछ परिचित व्यक्तियोंने इनके कमरेका दरवाजा खोलकर इन्हें बाहर निकाल लिया और इनपर कीचड़ आदि डाला। यद्यपि ये स्वयं उसमें सम्मिलित नहीं हुए, किंतु दुर्दशा तो भोगनी ही पड़ी। इनके मनमें इसकी बड़ी प्रतिक्रिया हुई। इन्हें इस हुल्लड़बाजीमें सिवा हानि तथा प्रमादके और कोई लाभ नहीं दिखायी दिया। भाईजीने होलीके इस बीभत्स स्वरूपको बदलनेका निश्चय किया। ये समाजके प्रतिष्ठित लोगों तथा नवयुवकोंसे मिले और उनको इससे होनेवाली हानियाँ समझाकर इसके स्थानपर नगर-कीर्त्तन निकालनेकी योजना बनायी। यह निश्चय हुआ कि यदि किसीको कुछ डालना हो तो केवल रंग, गुलाल आदिका प्रयोग कर सकता है। पहले तो परम्परावादियोंने इस योजनाका बड़ा विरोध किया, किंतु ये अपने निर्णयपर दृढ़ रहे। अपने साथियोंके साथ घूम-घूमकर इन्होंने लोगोंको इसकी उपयोगिता बतायी। समाजके प्रबुद्ध वर्गपर इसका अच्छा असर हुआ। फिर एक-एक करके विरोधी भी इसमें सम्मिलित होने लगे और कुछ ही वर्षोंके प्रयाससे पुरानी अभद्रताएँ बहुत सीमातक बंद हो गयीं। इस योजनाकी सफलतासे भाईजी तत्कालीन बम्बईके हिंदू-समाजमें सुधारकोंके नेता माने जाने लगे। होलीपर की जानेवाली इस प्रकारकी बीभत्सताओंके विरुद्ध भाईजीने 'कल्याण'में भी कई लेख प्रकाशित किये।*

---

* होली हिंदुओंका बहुत पुराना त्योहार है। आजकल जिस रूपमें यह मनाया जाता है, उससे तो धर्म, देश और मनुष्य-जातिको बड़ा ही नुकसान पहुँच रहा है। यह त्योहार असलमें मनुष्य-जातिकी भलाईके लिये ही चलाया गया था। परंतु आजकल इसका रूप बहुत ही बिगड़ गया है। इस समय अधिकांश लोग इसको जिस रूपमें मनाते हैं, उससे तो सिवा पाप

समाज-सुधार-विषयक इन कार्योंके अतिरिक्त भाईजी विभिन्न प्रकारसे अभाव-ग्रस्त लोगोंकी सेवा भी किया करते थे। गुप्तरूपसे विधवाओं और अनाथोंको सहायता, निर्धन विद्यार्थियोंकी शिक्षा-व्यवस्था, रोगियों-दुःखियोंकी तन-मन-धनसे सेवा, विद्वानों-कलाकारोंको प्रोत्साहन आदि। आर्थिक स्थिति अच्छी न होनेपर भी ये इन कार्योंके लिये घरके आवश्यक खर्चोंपर नियन्त्रण कर रुपयेकी व्यवस्था येन-केन प्रकारेण कर लेते थे।

गुंडोंद्वारा प्रवञ्चित स्त्रियोंका उद्धार

भाईजीको अपने कुछ मित्रोंसे ज्ञात हुआ कि नगरके कुछ अवाञ्छनीय तत्वोंने एक बड़ा ही घृणित व्यापार चला रखा है। वे देशके सुदूर कोनोंसे भोली लड़कियों और स्त्रियोंको भगाकर बम्बई ले आते हैं और उनसे वेश्यावृत्ति कराते हैं। इनका जाल सारे देशमें फैला हुआ था––अनेकों दलाल थे––पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही। श्रीअच्युतमुनिजीके पुत्र शिक्षा प्राप्त करके उन दिनों बम्बईमें ही काम करते थे। उन्होंने ....से इसकी चर्चा करते हुए किसी प्रकार अभागी स्त्रियोंको पापका शिकार बननेसे बचानेकी व्यवस्था करनेका प्रस्ताव किया। उक्त महानुभावने भाईजीसे कहा––'यह बड़ा अमानुषिक कार्य हो रहा है। यदि हमलोग इस काममें कुछ कर सकें तो बड़ा उपकार हो।' नारी-जातिके प्रति मातृबुद्धि होनेसे उनके सम्मान एवं धर्मकी रक्षाके इस कार्यका भाईजीने हृदयसे समर्थन किया, किंतु सक्रिय सहयोग देनेमें असमर्थता प्रकट की। ये बोले––'भाई, काम तो बहुत बड़ी सेवाका है, पर वेश्यालयोंमें जाना अपने वशकी बात नहीं है। इस सम्बन्धमें कोई और सेवा हो सके तो की जा सकती है।' हाँ, इन्होंने कार्य-कर्त्ताओंकी रक्षा-व्यवस्थामें पूरा सहयोग देनेका वचन दिया। इनसे प्रोत्साहित होकर श्रीअच्युतमुनिजीके पुत्र एवं उनके सहयोगी विशुद्ध सेवाभावसे वेश्यालयोंमें जाने लगे और वहाँ जो भी नवागत लड़कियाँ दिखायी देतीं, उनसे वे परिचय पूछते, उन्हें अपने घरमें ले आते या अपने साथ सिनेमा ले जाते, वहाँ उनको समझा-बुझाकर उनके घरका पूरा पता आदि जान लेते, तब कभी किसी आदमीके साथ और कभी उनके परिवारवालोंको बुलाकर उन्हें घर भेज देते थे। भाईजी इस सारी व्यवस्थाके संचालक थे। इस प्रकार कई स्त्रियोंका उद्धार हुआ।

एक बार अनिवार्य परिस्थितियोंमें भाईजीने भी उसी प्रकारकी एक पापरत लड़कीका उद्धार किया। वह लड़की पंजाबकी रहनेवाली थी। इस काण्डको लेकर गुंडोंने इनके विरुद्ध पुलिसमें रिपोर्ट कर दी। सी० आई० डी०के इन्सपेक्टर श्रीपटवर्धनने इन्हें बुलाया। भाईजीने उनको पूरी परिस्थिति बतला दी। श्रीपटवर्धन साहब

बढ़ने और अधोगति होनेके और कोई अच्छा फल नहीं दीखता। अतएव सभी स्त्री-पुरुषोंको चाहिये कि वे गंदे कामोंको बिल्कुल ही न करें। इनसे लौकिक और पारमार्थिक दोनों तरहके नुकसान होते हैं।

फागुन सुदी ११से चैत वदी १तक नीचे लिखे काम करने चाहिये––

(१) फागुन सुदी ११ को या और किसी दिन भगवान्की सवारी निकालनी चाहिये, जिसमें सुन्दर-सुन्दर भजन और नामकीर्त्तन हों।

(२) सत्सङ्गका खूब प्रचार किया जाय। स्थान-स्थानमें इसका आयोजन हो, सत्सङ्गमें ब्रह्मचर्य, अक्रोध, क्षमा, प्रमादके त्याग, नाममाहात्म्य और भक्तिकी विशेष चर्चा हो।

(३) भक्ति और भक्तकी महिमाके तथा सदाचारके गीत गाये जायँ।

(४) फागुन सुदी १५को हवन किया जाय।

(५) श्रीमद्भागवत और श्रीविष्णुपुराण आदिसे भक्त प्रह्लादकी कथा सुनी और सुनायी जाय।

(६) साधकगण एकान्तमें भजन-ध्यान करें।

(७) श्रीश्रीचैतन्यदेवकी जन्मतिथिका उत्सव मनाया जाय। महाप्रभुका जन्म होलीके दिन ही हुआ था। उसीके उपलक्ष्यमें मुहल्ले-मुहल्ले घूम-घूमकर नाम-कीर्त्तन किया जाय। घर-घरमें हरिनाम सुनाया जाय।

(८) धुरेंडीके दिन ताल, मृदङ्ग और झाँझ आदिके साथ बड़े जोरसे नगर-कीर्त्तन निकाला जाय, जिसमें सब जाति और सभी वर्णोंके लोग बड़े प्रेमसे शामिल हों।

('कल्याण' वर्ष २, पृष्ठसंख्या ३८१)

बड़े ही सज्जन व्यक्ति थे। उनकी भी इस प्रकारकी प्रवञ्चित स्त्रियोंके प्रति सहानुभूति थी। पर वे इस सेवाके गम्भीर परिणामोंसे भी परिचित थे। उन्होंने भाईजीको बड़े प्रेमसे समझाते हुए कहा—'बदमाशोंका एक बहुत बड़ा गिरोह है, जो यह पाप-कर्म करता है। उनको किसीकी हत्या करनेमें संकोच नहीं होता। आप भले घरके व्यक्ति हैं, विशुद्ध सेवाभावसे इस कार्यमें पड़े हैं; पर यह बड़ी जोखिमका काम है। कहीं आप इन बदमाशोंके कुचक्रके शिकार न हो जायँ। आपकी सरलताका वे दुरुपयोग करेंगे और झूठा इलजाम लगाकर उल्टे आपको ही फाँस देंगे। दूसरे, आप अभी नौजवान हैं। भगवान् न करें, कहीं आपके मनमें कुछ गड़बड़ी आ गयी तो। आगके स्पर्शसे जलना सहज है। अतएव आप हमारी सलाह मानकर इस कार्यको छोड़ दें। हमलोग यथाशक्ति इस व्यापारको समाप्त करनेके लिये प्रयत्न करते रहेंगे।' भाईजीको श्रीपटवर्धन साहबकी ये बातें युक्तिपूर्ण लगीं। अतएव इन्होंने उस कार्यसे अपना हाथ खींच लिया।

स्वाध्याय

कलकत्ताकी भाँति सत्साहित्यके अनुशीलनका क्रम बम्बईमें भी चला। वहाँ बँगला-साहित्यका अध्ययन हुआ था, यहाँ मराठी और गुजरातीका। इनमें भी, पूर्वकी भाँति, भक्ति-साहित्यमें ही श्रीभाईजीकी विशेष रुचि रही और उस क्षेत्रमें इन्हें जो कुछ भी प्राप्त हो सका, वह इन्होंने पढ़ डाला। मराठी और गुजरातीके विशाल वैष्णव भक्ति-साहित्यका इनके द्वारा आलोडन हुआ। गुजराती भाषामें श्रीकृष्णभक्त कवियों तथा वेदान्तके कई ग्रन्थोंके भाष्य पढ़े। श्रीनरसी मेहताका साहित्य इन्हें विशेष आकर्षक लगा।

अरबीमें मुसलमान संतोंकी एक प्रसिद्ध पुस्तक थी, उसका गुजरातीमें अनुवाद प्रकाशित हुआ। श्रीभाईजीने उसे कई बार पढ़ा और अपने मित्रोंको भी सुनाया। पीछे इसका हिंदी रूपान्तर श्रीश्रीगोपाल नेवटियाने किया था इस ग्रन्थके अध्ययनसे इनके मनमें मुस्लिम संतोंके प्रति आदरभावकी वृद्धि हुई।

मराठीमें इन्होंने संत नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, पुरन्दरदास तथा समर्थ रामदासके चरित्र और रचनाओंका अध्ययन किया। इससे इन्हें इन दोनों भाषाओंके साहित्यका अन्तरङ्ग परिचय प्राप्त हुआ, जो कालान्तरमें इनके सम्पादकीय जीवनमें बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। 'कल्याण'के सामान्य तथा विशेष अङ्कोंमें ये इसी ज्ञानके आधारपर गुजराती तथा महाराष्ट्रीय संतोंके जीवन-दर्शनके मर्मस्पर्शी वर्णमय चित्र प्रस्तुत कर सके। वे लेख यद्यपि भक्तिके दृष्टिकोणसे लिखे गये थे, फिर भी श्रीभाईजीके इन भाषाओंके प्रगाढ़ साहित्य-ज्ञान एवं प्रतिभाके कारण साहित्यिकता उनमें अपने-आप आ गयी।

लेखन

बम्बईमें ग्रन्थानुशीलनके साथ-साथ आध्यात्मिक विषयोंपर निबन्ध लिखनेका भी क्रम चला। 'वेङ्कटेश्वर-समाचार' तथा कई अन्य स्थानीय पत्रोंमें इनके लेख प्रकाशित होने लगे। उद्देश्य तो मात्र सद्विचारोंका प्रचार था, किंतु इस प्रकार लिखते रहनेसे शैलीमें निखार स्वाभाविकरूपसे आने लगा। उन दिनों इन्होंने अपनी साधनाके अनुभवोंपर एवं ऊँचे साधकों तथा महात्मा पुरुषोंकी अनुभूतियोंके अध्ययन तथा मननके आधारपर एक छोटी पुस्तिका—'मनको वशमें करनेके उपाय' लिखी थी। इस पुस्तकमें मनके स्वरूपका सुन्दर विवेचन प्रस्तुत करते हुए कुछ सरल साधनोंका उल्लेख किया गया है, जिनके पालनसे मनका संयम सम्भव है। सचमुच साधकोंके लिये यह बड़ी उपयोगी रचना है। पीछे तो 'कल्याण'का आरम्भ होनेसे लेखनकार्य तीव्रतासे होने लगा।

रामनामके आढ़तियाजीसे सम्पर्क

महापुरुषोंके जीवनमें देखा गया है कि भगवान्को उनके द्वारा जो कार्य करवाना होता है, उसके अनुरूप सहयोगियोंकी व्यवस्था भी वे कर देते हैं। भगवान्को श्रीभाईजीद्वारा भगवन्नामके जप एवं कीर्तनका प्रचार-प्रसार जगत्में करवाना था। अतएव उन्होंने श्रीभाईजीके पास एक अद्भुत नाम-प्रेमीको भेज दिया। ये सज्जन लक्ष्मणगढ़ (राजस्थान)के निवासी एक गृहस्थ महात्मा थे। इनका नाम था बालूरामजी। ये नवद्वीपके भक्त

श्रीरामकरणजीके अनुयायी थे। नवद्वीपका भगवन्नामसे एक विशेष सम्बन्ध है। श्रीश्रीमहाप्रभुके द्वारा वहाँके कण-कणमें नाम-कीर्तनका रस प्रवाहित है। आज भी हरिनाम-भक्तिका प्रभाव नवद्वीपमें वर्तमान है। अतएव नवद्वीप-वास एवं नामप्रेमी श्रीरामकरणजीके सम्पर्कसे श्रीबालूरामजीमें भी नाम-प्रेमकी प्रवाहिणी प्रस्फुटित हुई थी। इनकी राम-नाम-साधना इतनी उच्चकोटिकी थी कि ये अहर्निश नशेमें मस्त हो झूमा करते थे। लौकिक भोगों तथा सुख-सुविधाओंको तिलाञ्जलि देकर राम-नामरूपी रतनधन एकत्र करना ही इनके जीवनका मुख्य लक्ष्य बन गया था। इनकी भावदशाकी विचित्र कथाएँ सुनाते-सुनाते श्रीभाईजी स्वयं आत्मविभोर हो जाते थे तथा श्रोताओं-को भी आत्मविभोर कर देते थे। श्रीभाईजीने इनके युवक पुत्रके निधनपर इनकी मनोदशाका बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन सुनाया था——

"जब बालूरामजीके जवान पुत्रकी मृत्यु हुई, तब वे बड़े प्रेमसे करताल बजाते हुए शवके साथ चले। लोगोंने समझा, शायद पागल हो गये हों। पर बात ऐसी नहीं थी। वे सर्वथा अपने आन्तरिक आह्लादसे ही कीर्तन करते जा रहे थे। जब लोगोंको यह ज्ञात हुआ कि ये पूरे होश-हवासमें रहकर ही कीर्तन कर रहे हैं, तब एकसे नहीं रहा गया। उसने कहा——'भगतजी ! यह समय दूसरा है, आपको चुप रहना चाहिये।' भगतजी भला कब चुप रहनेवाले थे। उन्होंने हँसकर जबाब दिया——'अरे ! उसी दिनकी तो बात है, जब मैं कीर्तन करते हुए, करताल बजाते हुए इसे ब्याहने ले गया था। अब भगवान्‌के घर जाते हुए इसके साथ कीर्तन करता जा रहा हूँ, तो कौन-सी बुरी बात है ?' लोग उत्तर सुनकर चुप हो गये।

"बड़े ही प्रसन्नचित्तसे वे शव-संस्कार करके घर लौट आये। लोक-व्यवहारके अनुसार स्त्रियाँ सहानुभूति प्रकट करने आतीं और रोने लगतीं। ये लँगोट बाँध लेते और आँगनमें कीर्तन करते हुए नाचने लगते। स्त्रियाँ इन्हें नाचते देखकर चुप होकर अपने घर लौट जातीं। बारह दिनोंतक इनका यही क्रम रहा। श्राद्ध होनेतक ये धूमधामसे कीर्तन करते रहे। फिर रामनामकी आढ़त करते हुए घूमने लगे।"

सं० १९७८ वि०में बालूरामजीका बम्बई-आगमन हुआ। श्रीभाईजीका उनसे परिचय हुआ और दोनोंमें बड़ी आत्मीयता हो गयी।

भक्त बालूरामजी हरिनामका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही बम्बई आये थे। उनके कीर्तनका मन्त्र था——

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'

भक्त-मण्डली झाँझ-करताल-ढोलक आदिके साथ कीर्तन करती थी। कीर्तन करते-करते बालूरामजीको भावावेश हो जाता था। वे उसीके प्रवाहमें आत्मविभोर हो नृत्य करते-करते मूर्च्छित हो जाते थे। श्रीभाईजी इनकी कीर्तन-निष्ठासे बहुत प्रभावित हुए। 'हरे राम·····' मन्त्रका ये पहलेसे जप करते ही थे। इस मन्त्रके प्रति इनकी रुचि और बढ़ी तथा इसके प्रचार-प्रसारमें इन्होंने मानवताका त्राण अनुभव किया।

नाम-जपके अतिरिक्त अब भाईजीने कीर्तनका प्रचार आरम्भ किया। ये स्थान-स्थानपर कीर्तन-यज्ञोंका आयोजन करने लगे। उन आयोजनोंमें कीर्तन करते-करते भाईजी आत्मविभोर हो जाते थे। सच्चे नाम-प्रेमीकी वाणीसे निकली नाम-ध्वनि श्रोताओंको भी नाम-प्रेमी बनाने लगी और अनेकों व्यक्ति नाम-कीर्तन-प्रेमी हो गये।

मधु-संचय

सच्चा साधक मधु-संचयी होता है। जहाँ कोई पुष्प खिला दिखायी दिया कि वह वहींसे मधु बटोर लेता है। बम्बई-जीवनमें श्रीभाईजी संत-महात्माओं एवं विद्वानोंके दर्शन-सत्सङ्गकी बराबर चेष्टा रखते थे। जिन-जिनसे ये मिलते, वे भी इनकी पवित्रता, सरलता, निष्कपटता, साधनकी ओर सच्ची प्रवृत्ति आदिको देखकर मुग्ध हो जाते थे और इनपर अपना स्नेह उँड़ेल देते थे। भगवान्‌की कृपाका भाईजीके जीवनमें अवतरण हो रहा था और आगे चलकर उसका पूर्ण प्रकाश होनेवाला था। अतएव इनके व्यक्तित्वमें एक अद्भुत आकर्षण आरम्भसे ही विद्यमान था। श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी यह विशेषता उनकी चिरसङ्गिनी रही। जीवनके अन्तिम क्षणतक

जो भी इनसे मिला, वह इनका हो गया––फिर चाहे वह कितना ही बड़ा महात्मा, विद्वान्, धनपति, राज्याधिकारी क्यों न हो।

अपनी मधु-संचयी वृत्तिके कारण श्रीभाईजीका परिचय कब्बूभाई नामके गुजराती संतसे हुआ। ये संत अपने सत्सङ्गमें नित्य कीर्तन कराते थे। एक-दो बारके जानेसे ही श्रीभाईजीसे इनकी बड़ी आत्मीयता हो गयी। फिर तो श्रीभाईजी बहुत बार इनके दर्शन करते थे।

पं० श्रीनरहरि शास्त्रीके साथ भी भाईजीका स्नेह-सम्बन्ध था। ये एक महाराष्ट्रीय विद्वान् थे। इनका गुजराती भाषामें गीतापर बड़ा सारगर्भित प्रवचन होता था। इसमें हजारोंकी भीड़ एकत्रित होती थी। श्रोताओंमें सभी तरहके लोग होते थे––बड़े-बड़े अधिकारी, वकील, जज, अध्यापक, व्यापारी आदि। प्रत्येक रविवारको प्रवचन होता था, जिससे सभी वर्गके लोगोंको लाभ उठानेका अवसर मिले। श्रीभाईजीपर ये बड़ा स्नेह रखते थे। इनके प्रवचनोंकी व्यवस्थामें श्रीभाईजीका भी हाथ रहता था।

इन संतोंके सांनिध्यसे श्रीभाईजीकी बढ़ती हुई आध्यात्मिक प्रवृत्तिको बल मिला।

इसी प्रकार पं० श्रीहरिबक्सजी जोशीका सम्पर्क भी श्रीभाईजीके लिये बड़ा प्रेरणाप्रद रहा। श्रीजोशीजी राजस्थानके गाँगियासर ग्रामके रहनेवाले हैं। वे उस समय बम्बईमें वेंकटेश्वर-प्रेसके औषधालयमें प्रधान वैद्यके रूपमें कार्य करते थे। श्रीभाईजीके पास वे बराबर आया-जाया करते थे, बड़ी ही आत्मीयताका सम्बन्ध उनके साथ स्थापित हो गया था। श्रीजोशीजी संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित हैं और शास्त्र एवं साहित्यका अनुशीलन करना उनका व्यसन है। संस्कृतके हजारों-हजारों श्लोक उनको कण्ठस्थ हैं। भागवतकी ओर उनकी विशेष रुचि है। श्रीभाईजीको ये भागवतके श्लोक एवं उनका गूढार्थ सुनाया करते थे। श्रीकृष्ण-लीलाके श्लोकोंका सुन्दर रूपमें पाठ और उनका भाव सुनकर भाईजी तन्मय हो जाते थे। श्रीनारद-भक्तिसूत्रोंकी व्याख्या लिखते समय श्रीकृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी ग्रन्थोंका थोड़ा अवलोकन एवं मनन श्रीभाईजीने किया था। श्रीजोशीजीके सङ्गसे भी श्रीकृष्ण-भक्तिका रस इनके अन्तर्हृदयमें भरता जा रहा था और धीरे-धीरे उसने एक विशाल मधु-सागरका रूप धारणकर इन्हें आत्मसात् कर लिया तथा उसकी उत्ताल तरंगोंके यत्किंचित् दर्शन जगत्के प्राणियोंको भी सुलभ हुए।

अध्यात्मभावनाका पुनरुद्रेक

इतने दिनोंतक लोक-जीवनकी विभिन्न पगडंडियोंपर चलते-चलते भाईजीको अनुभव होने लगा कि अन्य प्रकारके लौकिक कार्योंसे अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होनेपर भी समाज-सेवा या देश-सेवा जीवनका लक्ष्य नहीं बन सकता, परम लक्ष्यकी प्राप्तिका साधन भले ही बन जाय। अतः व्यापार, राजनीति और समाज-सेवाके स्तरोंको पार करता हुआ उनका मन-विहंग गुरुत्वाकर्षणरहित साधनाके अनन्ताकाशमें विचरण करनेके लिये उद्विग्न हो उठा। अर्थोपार्जन, देशभक्ति और समाज-सेवाके प्रति उत्साह जैसे-जैसे कम हुआ, उसी अनुपातमें भगवच्चरणोंके प्रति इनका आकर्षण बढ़ता गया। अब व्यापार, राजनीति और लोकाराधनका स्वतन्त्र वृत्तिके रूपमें अस्तित्व असम्भव हो गया; वे भक्तिके अङ्ग होकर और उससे अनुरञ्जित होकर ही हृदयमें स्थान पा सकते थे। इस उत्कृष्ट मनोभूमिके निर्माणका उपक्रम जीवन-सूत्रका संचालक श्रीभाईजीके आविर्भावके पूर्वसे ही कर रहा था। उनके बम्बई-जीवनमें भी वही हो रहा था।

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका संसर्ग

अपनी छोटी बहिन अन्नपूर्णा बाईके विवाह (आषाढ़ शु० ४, सं० १९७६)के संदर्भमें श्रीभाईजी बाँकुड़ा गये थे और वहाँ इन्होंने कुछ दिन श्रद्धेय श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)का सत्सङ्ग-लाभ किया था। विवाह-कार्य करके ये बम्बई लौट आये थे, किंतु श्रीसेठजीके सत्सङ्गके प्रति इनके हृदयमें आकर्षण उत्पन्न हो गया। अतएव उनके पुनर्दर्शनकी इच्छा मनमें होती रहती थी। संयोगवश श्रावण १९७७में सेठ जमनालालजी बजाजने चक्रधरपुर जाकर श्रीसेठजीसे मिलनेका विचार किया। श्रीभाईजीको इसकी सूचना मिली। ये भी उनके साथ चक्रधरपुर चले गये। श्रीसेठजी श्रीभाईजीकी लेखन-योग्यतासे परिचित थे ही। उन्होंने अपनी दो छोटी

पुस्तिकाओं 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' और 'प्रेमभक्ति-प्रकाश'के भाषा-संस्कारका काम श्रीभाईजीको सौंपा। श्रीभाईजीने उनकी भाषा ही नहीं सुधारी, एक प्रकारसे उनका कायाकल्प कर दिया। श्रीसेठजी अपने मूल भावोंको अत्यन्त स्पष्ट एवं प्रभावशाली शैलीमें अभिव्यक्त देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया भाईजीके कलकत्ता-जीवनके घनिष्ठ मित्र थे। वहाँ रहते हुए ही भाईजीने उनका श्रीसेठजीसे परिचय करा दिया था। कालान्तरमें वे श्रीसेठजीके अनन्य भक्त हो गये। उनकी इच्छा रहती थी कि श्रीसेठजीका भाईजीको विशेष सांनिध्य प्राप्त हो। इस विचारसे उन्होंने भाईजीको एक पत्र लिखकर श्रीसेठजीको बम्बई बुलानेका सुझाव दिया। इसके फलस्वरूप भाईजीने स्वयं तो श्रीसेठजीके पास तार और पत्र भेजे ही, अपने मित्रोंको भी विनयपूर्ण पत्र भेजनेकी प्रेरणा दी। भक्तोंका आग्रह देखकर श्रीसेठजीने स्वीकृति भेज दी।

संवत् १९७९को शरद् ऋतुमें श्रीसेठजी बम्बई पधारे। उनके साथ २०-२५ व्यक्ति कलकत्तासे गये थे। श्रीभाईजीकी प्रेरणासे स्टेशनपर सैकड़ों व्यक्तियोंने श्रीसेठजीका भव्य स्वागत किया। सवारीका प्रबन्ध था। भीड़ अधिक होनेसे श्रीसेठजी स्वागतमें आये लोगोंके साथ पैदल चलकर स्टेशनसे सुखानन्दजीकी धर्मशाला गये। एक जुलूस-सा हो गया था। श्रीसेठजी १० दिन बम्बई विराजे। उनका प्रवचन सुखानन्दजीकी धर्मशालामें 'निष्काम कर्मयोग'पर हुआ। कीर्तनकी व्यवस्था नर-नारायणजीके मन्दिरमें हुई। इसके बाद दूसरा व्याख्यान सुखानन्दजीके मकानपर हुआ। इसका विषय था––'नवधा-भक्ति'। फिर श्रीशिवनारायणजी नेमाणीकी वाड़ीमें गीता और स्त्रीधर्मपर उपदेश एवं तत्त्व-विवेचनका क्रम चलता रहा। बड़ी संख्यामें स्त्री-पुरुष उनके प्रवचनोंका श्रवण करते थे। श्रोताओंकी सत्सङ्ग-निष्ठा देखकर श्रीसेठजी बहुत प्रसन्न हुए।

सत्सङ्गके कार्यक्रमका श्रीगणेश

श्रीसेठजीके पावन सत्सङ्गकी धारा बह रही थी। एक-एक करके दस दिन व्यतीत हो गये। अन्तिम दिन प्रवचन करनेके बाद श्रीसेठजीने सत्सङ्गी भाई-बहनोंसे एक प्रार्थना की। उन्होंने बड़ी ही विनम्रताके साथ आग्रह-भरे शब्दोंमें कहा––'मेरे जानेके बाद आपलोग प्रतिदिन नियमसे सत्सङ्ग करें।' इसके उत्तरमें श्रीशिवनारायणजी नेमाणीने विनीतभावसे कहा––'सत्सङ्ग अवश्य होना चाहिये। नित्यप्रति होना चाहिये। सत्सङ्गके लिये स्थान तो मैं अपनी वाड़ी (धर्मशाला)में कम-से-कम पाँच वर्षके लिये देता हूँ, पर वक्ताकी व्यवस्था आप करें।' श्रीसेठजी बोले––'ज्वालाप्रसादजी कुछ दिनोंके लिये सत्सङ्ग करा सकते हैं। हाँ, एक बार तो उन्हें कलकत्ता जाना पड़ेगा। अपनी माताजीकी आज्ञा लेकर फिर यहाँ आ सकते हैं।' इस प्रसङ्गको आगे बढ़ाते हुए उन्होंने फिर कहा––'बाहरके व्यक्तिका बराबर रहना सम्भव नहीं; आपलोग इतने हैं, स्वयं सत्सङ्ग चलानेकी चेष्टा करें। वक्ता यहाँ आपलोगोंमेंसे ही निकल आयेगा।' यह कहकर उन्होंने भाईजीको आदेश दिया कि वे प्रतिदिन कुछ देरतक सत्सङ्गकी बातें कहा करें। श्रीभाईजीने बड़े ही विनम्र शब्दोंमें अपनी लाचारी व्यक्त की। उन्होंने कहा–'अभी मेरा स्वयंका जीवन भगवान्की ओर नहीं लग पाया है, मैं दूसरोंको इसके लिये किस मुँहसे कहूँ। मुझमें स्वयं वैराग्य नहीं है, जगत्के मिथ्यात्वपर अभी दृढ़ आस्था नहीं जमी है। ऐसी स्थितिमें मेरा दूसरोंको उसके विषयमें कुछ भी कहना एक प्रकारसे दम्भ ही होगा। पहले अपना जीवन वैसा बने, तब भगवान्की इच्छासे किसीको कुछ कहा जा सकता है।' पर श्रीसेठजीने आग्रह किया और बोले––'भगवच्चर्चा करनी है। भगवान्, शास्त्र एवं संतोंकी बातें पढ़कर सुना देनी हैं। यह उपदेश नहीं है। भगवान्के तथा भगवद्भक्तोंके गुण, स्वभाव, महत्त्व आदिकी चर्चा करके स्वयंको पवित्र करना है।' श्रीभाईजी सुन रहे थे। अन्तर्हृदयमें उन्हें भगवान्का संकेत प्राप्त हो रहा था––'सत्सङ्ग-चर्चा करनेके लिये तुम्हें शास्त्रोंका अध्ययन-मनन करना होगा, उनकी बातोंको स्मरण रखना होगा। इससे मन पवित्र होगा तथा वृत्तियाँ भगवान्की ओर लगेंगी। अतएव सत्सङ्ग-चर्चा तुम्हारी साधनामें सहायक सिद्ध होगी।' भगवान्के इस संकेतको पाकर श्रीभाईजी नतमस्तक हो गये। श्रीसेठजीने इसे इनकी स्वीकृति मान ली। श्रीभाईजीने सत्सङ्ग करानेका भार स्वीकार कर लिया, इससे सभी भाई-बहनोंको बड़ी

प्रसन्नता हुई। सभी श्रीभाईजीके पवित्र सात्त्विक जीवन एवं उनके भगवद्विश्वाससे परिचित थे। सभीके हृदयमें उनके प्रति बड़ी आत्मीयता, प्यार और स्नेह भी था।

श्रीभाईजीकी स्वीकृति मिलनेपर श्रीसेठजीको विश्वास हो गया कि अब बम्बईमें नियमितरूपसे सत्सङ्ग होने लगेगा तथा लोगोंमें भगवद्भाव बढ़ेगा। दस दिनतक श्रद्धालुओंको ज्ञान, कर्म और भक्तिकी त्रिवेणीमें अवगाहनका सुयोग प्रदानकर श्रीसेठजी अपने साथियोंके साथ बाँकुड़ा चले गये।

सत्सङ्ग-भवनकी स्थापना

भगवान्‌की अन्त:प्रेरणा एवं श्रीसेठजीके आदेशानुसार नेमाणी-वाड़ीमें भाईजीने सत्सङ्ग कराना आरम्भ किया। इनके सामने एक कठिनाई थी कि धार्मिक विषयोंपर प्रवचन करनेका इन्हें अभ्यास नहीं था। कलकत्ताके राजनीतिक जीवनमें व्याख्यान देनेका अभ्यास हुआ था अवश्य; किंतु उसका विषय इससे भिन्न था—दोनोंमें पूर्व-पश्चिमका अन्तर था। भगवत्कृपाके जो दर्शन पद-पदपर इन्हें हो रहे थे, उसके परिप्रेक्ष्यमें श्रीभाईजीने शिमलापालमें शास्त्रोंका अध्ययन किया ही था, और भी अध्ययन होने लगा। भगवान् हृदयमें बैठकर नये-नये भावोंका स्फुरण कर रहे थे। अतः इस दायित्वके निर्वाहकी चिन्ता इनके मनमें नहीं थी। नेमाणी-वाड़ीमें एक बड़ा हाल था तथा कुछ कोठरियाँ। कोठरियोंमें एक छोटा-सा पुस्तकालय खोल दिया गया और हालमें प्रतिदिन सबेरे एवं रात्रिमें सत्सङ्ग चलने लगा। श्रीभाईजीकी विषयको स्पष्ट करनेकी शैली, इनकी सरल-मधुर भाषा, प्रवचन करते समय इनके शरीरकी सात्त्विक भाव-भङ्गिमा आदि श्रोताओंको मन्त्र-मुग्ध बना देती थीं। इतना ही नहीं, सत्सङ्गमें सुनी बातोंको अपने जीवनमें उतारनेका निश्चय बहुत लोगोंने किया। हृदयकी सचाईसे कहे हुए शब्दोंका प्रभाव होना स्वाभाविक था। वाड़ीमें प्रातःकाल गीता-शिक्षाकी भी व्यवस्था थी। कुछ लोग वहाँ गीता पढ़नेके लिये आते थे। वाड़ीकी सँभालके लिये एक नेपाली पण्डित रखे गये। वे कई वर्ष वहाँ रहे, बड़े सात्त्विक विचारोंके थे। कुछ ही दिनोंके अभ्यासके अनन्तर भाईजीका गीतापर धाराप्रवाह प्रवचन चलने लगा। यह क्रम कई वर्षोंतक चला। गीताकी दो आवृत्तियाँ पूरे विस्तारके साथ समाप्त हुईं। सोलहवें अध्यायके पहले तीन श्लोकोंकी व्याख्या लगातार कई महीनोंतक चलती रही। इन श्लोकोंमें भगवान्‌ने दैवी सम्पद्को प्राप्त पुरुषके लक्षणोंका उल्लेख किया है। श्रीभाईजीने भगवान्‌की वाणीकी व्याख्या बड़े विस्तारसे की और दैवी-सम्पदाके एक-एक लक्षण—अभय, दान, दम, तप, आर्जव आदिपर बड़ी सूक्ष्म एवं रहस्यपूर्ण बातें बतायीं। अठारहवें अध्यायके छासठवें श्लोक—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

—पर भी एक महीने प्रवचन हुआ। गीतापर आचार्योंके जो भाष्य एवं टीकाएँ हैं, उन सबकी व्याख्या करके ये सुनाते। साथ ही श्लोकोंपर अपने मनमें नये-नये भावोंकी जो स्फूर्ति होती, उसका वर्णन भी करते जाते। सत्सङ्गमें प्रतिदिन साठ-सत्तर भाई-बहन उपस्थित होते थे। आजके भौतिक युगमें बम्बई-जैसी मोहमयी नगरीमें विशुद्ध सत्सङ्गकी दृष्टिसे होनेवाले आयोजनमें इतने व्यक्तियोंका नियमितरूपसे उपस्थित होना इस आयोजनकी बड़ी सफलता थी।

कुछ दिनों बाद श्रीभाईजी रात्रिमें रामचरितमानसपर भी प्रवचन करने लगे। प्रवचन आरम्भ करनेके पहले प्रतिदिन 'वर्णानामर्थसंघानाम्'से लेकर 'बंदउँ गुरु पद कंज'तक स्तुति करते। फिर प्रवचन आरम्भ होता। बड़ा ही गम्भीर, ओजस्वी और प्रभावपूर्ण विवेचन करते। श्रोता मुग्ध हो जाते।

भाईजीके इस सत्सङ्गमें अच्छे-अच्छे लोग आते थे। उसमें मारवाड़ी, मराठी और गुजराती—सभी वर्गोंके लोग रहते थे। सेठ जमनालालजी बजाज जब-जब बम्बईमें रहते, बराबर उपस्थित होते थे। गांधीजीके अनुयायी श्रीकृष्णदास जाजू नियमितरूपसे आते थे। बीच-बीचमें साधु-महात्मा भी पधारते रहते थे। श्रीभाईजी उनका बड़ा आदर-सम्मान करते और उनसे सत्सङ्ग करवाते थे। महात्माओंके आग्रहसे प्रतिदिनके सत्सङ्गका कार्यक्रम

भी चलता था। उन दिनों बम्बईमें बहुधा आनेवाले अथवा वहीं रहनेवाले विद्वानों एवं महात्माओंमें मुख्य थे—श्रीअच्युतमुनिजी, श्रीभोलेबाबा, श्रीहरिबाबा, स्वामी योगानन्दजी, स्वामी एकरसानन्दजी, स्वामी कृष्णानन्दजी, वल्लभ-सम्प्रदायके आचार्य गोस्वामी गोकुलनाथजी, रामानुज-सम्प्रदायाचार्य स्वामी अनन्ताचार्यजी, महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराजके गुरु स्वामी विशुद्धानन्दजी, स्वामी भास्करानन्दजी, स्वामी उत्तमनाथजी, अहमदाबादके प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी अखण्डानन्दजी आदि-आदि। 'सत्सङ्गभवन'की प्रवचन-मालाके संयोजकरूपमें भाईजीकी इन महात्माओंके साथ केवल जान-पहचान ही नहीं रही, एक ही पथके पथिक होनेके नाते गाढ़ी मित्रता-सी हो गयी, जिससे आगे चलकर 'कल्याण'के सम्पादन-कालमें इन्हें उनका अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ।

गीता-शिक्षककी भूमिका

भाईजीके प्रवचनोंका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनसे आकृष्ट होकर स्थानीय मारवाड़ी विद्यालयके प्रिंसिपल श्री एन० एम० लालानीने एक दिन श्रीभाईजीसे कहा—'आप हमारे बालकोंको एक घंटे गीताकी शिक्षा दिया करें तो बड़ी कृपा हो। इससे बच्चोंका बड़ा कल्याण होगा।' भाईजी इस विद्यालयकी कार्यकारिणी समितिके सदस्य थे तथा बालकोंके चारित्रिक विकासमें इनकी सदासे रुचि रही थी। अतः इन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। श्रीभाईजी नियमितरूपसे विद्यालयमें जाते और छात्रोंको बड़े ही प्यारसे एक घंटे गीता-सम्बन्धी सुन्दर-सुन्दर बातें सुनाया करते थे। श्रीभाईजीकी स्नेहपूर्ण बातोंको बच्चे बड़े ही प्रेमसे सुनते थे। उनकी गीताके प्रति आस्था बढ़ने लगी। गीताज्ञान बड़ा ही गम्भीर है; उसमें ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारीके लिये पर्याप्त सामग्री है तथा साधारण-से-साधारण व्यक्तिके लिये भी। अतएव श्रीभाईजी बच्चोंको गीताका कुछ परिचय प्राप्त हो जाय, इस हेतुसे उसके चुन-चुनकर कुछ अध्याय पढ़ाने लगे। गीताकी साप्ताहिक एवं पाक्षिक परीक्षाएँ भी होती थीं। श्रीभाईजी बच्चोंको प्रेरित करते हुए समझाते थे—'जो बातें बतलायी जाती हैं, तुमलोग उनपर मनन करके इनसे अपने जीवनमें कुछ भी लाभ उठा सकोगे तो मैं अपनी सेवा सफल समझूँगा।' श्रीभाईजीके स्नेहभरे व्यवहार एवं आडम्बरशून्य पवित्र सच्चे आचरणका वहाँके अध्यापकों आदिपर बड़ा प्रभाव पड़ा। पं० श्रीरमापतिजी शास्त्री उन दिनों उस पाठशालामें अध्यापनकार्य करते थे। वे बराबर कहते थे—'हनुमानप्रसादजी-जैसे गीताके अनुसार आचरण बनानेवाले पुरुष विरले ही मिलेंगे।' प्रसिद्ध समाजवादी नेता स्वर्गीय डा० राममनोहर लोहिया उन दिनों इस विद्यालयके विद्यार्थी थे। भाईजीकी गीता-शिक्षाकी बात उन्हें जीवनभर स्मरण रही। अपने व्याख्यानोंमें उन्होंने कई बार इसकी चर्चा की और भाईजीसे जब-जब मिलते, उनके उस समयके स्नेह-सौहार्दका वर्णन करके पुलकित हो जाते थे।

निराकारकी साधना

श्रद्धेय सेठजी जब १० दिनके लिये बम्बई पधारे थे, तब श्रीभाईजीने उनसे निर्विशेष ब्रह्मकी धारणा एवं ध्यानकी काफी चर्चा की थी। उन दिनों इनकी चित्तवृत्ति निर्गुण-निर्विशेष ब्रह्मके ध्यानकी ओर अधिक थी। ये नियमितरूपसे ध्यान करते थे। श्रीसेठजीके सत्परामर्शसे उस ध्यानमें इन्हें विशेष लाभ हुआ था। उन दिनों इनकी ध्यानकी स्थिति कितनी ऊँची थी, इसका कुछ परिचय श्रीभाईजीके श्रद्धेय सेठजीको लिखे पत्रोंसे मिलता है। नीचे हम केवल तीन पत्रोंका मुख्य अंश उद्धृत कर रहे हैं—

सं० १९८० वि० वैशाख मासके एक पत्रमें लिखा है—'मेरे ध्यानकी स्थिति ठीक लगती है। कार्य करते समय समष्टि चेतनमें स्थिति निरन्तर बनी रहती है। यों भी शायद कहा जा सकता है कि कार्य-कालमें क्रियासहित और जो कुछ भी भान होता है, वह स्वप्नकी सृष्टिवत् होता है। साथ-ही-साथ यह प्रत्यक्ष-सा भास होने लगता है कि स्वप्नवत् भी नहीं है। वास्तवमें परमात्मा-ही-परमात्मा है। ऐसी स्थितिमें किसी-किसी समय बिलकुल अचिन्त्य अवस्था हो जाती है। तब कार्यमें रुकावट भी आती है। ध्यान करते समय तो अब प्रायः बाहरके शब्दोंका भी ख्याल नहीं रहता। सारे आकारोंका अभाव करनेवाली वृत्ति भी शान्त होकर अचिन्त्यके अस्तित्वमें विलीन हो जाती है। केवल बोधस्वरूप आनन्दघन ही रह जाता है। ध्यानके बाद और समय जो

स्थिति रहती है, वह ऊपर लिखी ही गयी है। शरीरको या जगत्को सत्य मानकर तो शरीरमें स्थिति कभी होती ही नहीं। पर न जाने क्यों जगत्की क्रियाओंसे, जो शरीरद्वारा होती हैं और जो समय-समयपर केवल स्वप्नकी सृष्टि या आकाशमें तिरमिरोंके समान ही अपना अस्तित्व रखती हैं, उनसे भी उपराम होनेकी स्फुरणा होती है। ऐसी स्फुरणा होती है कि ये क्रियाएँ भी न हों तो अच्छा है। आपके साथ या किसी गङ्गा-तीरवर्ती देशमें रहा जाय तो ठीक है। पर ऐसी स्फुरणा होते समय भी जगत्का अस्तित्व स्वप्नवत् ही रहता है। यह अच्छी बात है और जो कुछ मेरे लिये ठीक समझा जाय, लिखना चाहिये। ध्यानकी स्थिति निरन्तर गाढ़ बनी रहे, जगत्की स्वप्नवत् स्फुरणा भी न हो।'

सं० १९८० वि० श्रावण मासके पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था—'रातमें सोनेके अतिरिक्त अन्य समयमें अधिकांश कालमें प्रायः इस प्रकारकी भावना हुआ करती है। किसी समय भूल हो जानेपर फिर तत्क्षण भावना जाग्रत् हो जाती है। भूलकी स्थिति अधिक कालतक नहीं रहती। जगत् स्वप्नवत् मृगतृष्णाके जलवत् प्रतीत होने लग जाता है। इस प्रकारकी स्थिति है। हर्ष-शोकका विकार बहुत ही कम होता है। अब मेरे लिये जो कुछ ठीक समझा जाय, उसी तरह करना चाहिये।'

सं० १९८० वि० कार्तिक मासके पत्रमें लिखा—'पत्र लिखते समय आनन्दमय, बोधस्वरूप परमात्मामें प्रत्यक्षवत् स्थिति है। कलमसे अक्षर लिखे जा रहे हैं। लिखनेकी जो स्फुरणा हो रही है, वह सच्चिदानन्दके अन्तर्गत कल्पितरूपसे भास रही है। कभी-कभी यह भी नहीं भासती। एक परमात्माके अतिरिक्त किसी भी वस्तुके अस्तित्वका अनुभव नहीं रह जाता। मानो अनन्त जलके अथाह समुद्रमें एक बर्फ-पिण्डके आकारकी प्रतीति हो रही थी, वह भी मिट गयी। केवल जल-ही-जल रह गया—फिर भी कलम चल रही है, लिखा जा रहा है। हाँ, बोधस्वरूप आनन्द, भूमानन्दकी स्थितिमें कोई अन्तर आता हुआ नहीं दीखता। स्थिति क्या है, वह लिखा नहीं जा सकता—बहुत देर बाद फिर लिखनेकी स्फुरणा-सी अनुमान होती है; पर भाव उसी तरह हैं। इस समय जैसी स्थिति है, वह सदा एक-सी नहीं रहती। बीच-बीचमें कुछ परिवर्तित-सी दीखती है। पर परिवर्तन-कालमें भी अधिक-से-अधिक इतना ही परिवर्तन होता है—अचिन्त्यकी स्थितिसे एक प्रकारके अनुभवगम्य आनन्दकी स्थिति तथा इससे भी कुछ नीचे आनन्दकी स्थितिके द्रष्टाकी स्थिति होती है। काम करते समय, जिस समय विषयोंकी स्फुरणा होती है, उस समय उस शरीरके सहित और सारे विषय अपने समष्टि, सर्वव्यापी चेतनस्वरूपमें कल्पित भ्रमवत् ही प्रतीत होते हैं, पर प्रतीत अवश्य होते हैं। हाँ, कभी-कभी इस तरह होते-होते विषयोंके अस्तित्वकी प्रतीति भी सर्वथा नष्ट हो जाती है। कोई वृत्ति अवशिष्ट नहीं रहती। एक अनुपम, अनिर्वचनीय, अप्रमेय आनन्दकी इन्द्रिय-मन-बुद्धिसे अतीतकी अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह अवस्था पीछे अच्छी तरह स्मरण भी नहीं रहती, विस्मृत भी नहीं होती, शब्दोंमें उसका वर्णन नहीं कर पाता।'

इन उद्धरणोंसे यह स्पष्ट है कि ज्ञानकी बातें श्रीभाईजीके लिये केवल सुनने-सुनानेकी चीज नहीं थीं, बल्कि वे सचमुच इनके अन्तस्तलमें जा पहुँची थीं। उन दिनों जगत् इनके लिये सत्य वस्तु नहीं रह गया था। पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि जगत्को मिथ्या माननेके साथ आजकलके ज्ञानाभिमानीकी भाँति ये भगवान्के विग्रह-अवतार आदिको भी मिथ्या—कल्पित मानते थे। उन दिनों इनके ध्यानकी ऐसी ऊँची अवस्था थी कि रात्रिमें लगातार नौ-नौ घंटे वे समाधिस्थ-से रहते थे। एक बार सत्सङ्गकी चर्चा करते हुए इन्होंने बताया—'ध्यानकी उस अवस्थामें मुझे शरीरका बिल्कुल ध्यान नहीं रहता था। यदि उस अवस्थामें मेरे शरीरमें कोई सुई चुभो देता तो मुझे उसकी बिल्कुल भी प्रतीति नहीं होती—ध्यानकी इतनी गाढ़ अवस्था होती थी और व्यवहार करते समय यह प्रतीति होती थी कि आकाशमें तिरमिरोंकी भाँति जगत् शुद्ध अनन्तानन्द बोधस्वरूपानन्द ब्रह्ममें भ्रमवत् है।' परंतु इस स्थितिमें भी श्रीभाईजीकी भगवान् तथा भगवन्नामपर आस्था ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। भगवान्के साकार-विग्रहके प्रति इनके मनमें यह भाव कदापि नहीं था कि यह भी तिरमिरोंकी भाँति एक मिथ्या प्रतीति है। ये तो भगवान् तथा भगवन्नामकी कृपाका पद-पदपर अनुभव करते थे।

भगवान् श्रीरामके दर्शन

ज्ञानकी साधनाके साथ-साथ नामजपका क्रम बराबर चल रहा था। भगवान्को इन्हें ज्ञानकी चरम अनुभूति कराकर अपने सगुण स्वरूपमें ही लीन कर लेना था। अतएव उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपासे एक विशेष अनुभूति श्रीभाईजीको करवायी। इस अनुभूतिका उल्लेख श्रीभाईजीने इस प्रकार किया था——

"प्रसङ्ग सम्भवतः संवत् १९७९ वि०का है। मेरे एक मित्र थे श्रीसागरमलजी गनेड़ीवाला। मैं तथा वे दोनों ही नवयुवक थे। उन दिनों मैं कभी-कभी धार्मिक नाटक देख लिया करता था। एक नाटक-कम्पनीमें 'भक्त सूरदास' नाटकका अभिनय होनेवाला था। श्रीसागरमलजी मेरे घरपर आये और बोले——'भाईजी, भक्त सूरदास नाटक देखने चलिये।' मैं उनके साथ चल दिया। रास्तेमें मुझे प्यास अनुभव हुई। श्रीसुखानन्दजीकी चाल (मकान) रास्तेमें ही पड़ती थी। श्रीसुखानन्दजी श्रीसागरमलजीके फूफा थे और श्रीसागरमलजी उन्हींके यहाँ रहते थे। श्रीसागरमलजीने कहा——'भाईजी! कहाँ पानी खोजेंगे? अपने घरपर ही चलिये, वहीं पानी पिया जाय।' हम दोनों घरपर पहुँचे। पानी पीनेके लिये बैठे थे कि परस्परकी चर्चामें रामनामके महत्वका प्रसङ्ग छिड़ गया। श्रीसागरमलजी नामके प्रेमी थे, पर उनका कहना था——'समझकर लिये बिना भगवान् रामके नामसे कोई लाभ नहीं होता। राम-शब्दको भगवान् रामका नाम समझकर लेनेसे ही लाभ होता है, अन्यथा नहीं।'

"मेरा विश्वास भगवान्के नामपर दूसरे ही ढंगका था। मैंने कहा——'किसी प्रकारसे राम-नाम लिया जाय, लाभ होता ही है। 'राम' शब्दके यदि 'रा' और 'म'——ये दो अक्षर मुखसे निकल गये तो प्राणीकी सद्‌गति होगी——इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।'

"श्रीसागरमलजीके गले यह बात नहीं उतरी; उन्होंने इसपर विवाद छेड़ दिया। मैंने उन्हें एक कथा सुनाकर कहा——'मरते समय किसीके मुखसे 'हराम' शब्द निकल गया, इसीसे उसकी सद्‌गति हो गयी! कारण, 'हराम' में 'राम' शब्द सम्मिलित है।'

"श्रीसागरमलजीने पुनः तर्क किया——'राम' शब्दको अंग्रेजीमें 'आर' 'ए' 'एम' (RAM) लिखा जाता है और इस शब्दका अंग्रेजी भाषाके अनुसार अर्थ होता है——'मेढ़ा'। यदि कोई अंग्रेज मरते समय मेढ़के भावसे 'राम' पुकार उठे तो क्या उसकी सद्‌गति हो जायगी? उस अंग्रेजके ज्ञानमें 'राम'का अर्थ मेढ़के अतिरिक्त कुछ है नहीं। बोलिये, क्या उत्तर है?'

"मैंने कहा——'ज्ञान-अज्ञानसे, श्रद्धा-अश्रद्धासे, भावसे-अभावसे-कुभावसे——किसी भी प्रकारसे यदि जिह्वापर रामका नाम आ जाय तो भगवान्का नाम तार देता है। मेरे विश्वासके अनुसार उस अंग्रेजकी गति हो ही जानी चाहिये।' यह विवाद हो ही रहा था कि मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी।

"पीछे क्या हुआ, यह मुझे पता नहीं; पर होश होनेपर श्रीसागरमलजीने मुझे बताया था कि 'तुम्हारी आँखें खुली थीं, पर बाह्यज्ञान नहीं था। तुम ज्यों-के-त्यों उसी स्थानपर बैठे रहे। मैंने सोचा कि तुम बेहोश हो गये हो। मैं रातभर तुम्हारे पास बैठा रहा। मैं तो घबरा गया था कि क्या हो गया। सबेरे बड़ी कठिनतासे तुम्हें उठाया, सीढ़ियोंसे नीचे ले गया, मोटर मँगवायी और मोटरमें बैठाकर तुम्हें घरपर पहुँचाया। साथमें मैं गया। घर पहुँचनेपर मैंने तुम्हें शौचसे निवृत्त होनेके लिये कहा, पर तुम्हें बिल्कुल होश नहीं था, तुमने मेरी बातका उत्तर नहीं दिया। तुम उसी प्रकार बाह्यज्ञान-शून्य थे। मेरे मनमें आया——तुम्हारे सिरपर ठंडा पानी डाला जाय। मैंने तुम्हें पकड़कर पानीके नलके नीचे बैठा दिया। तुम्हारे सिरपर नलसे पानीकी धार गिरने लगी। इसी बीच संगीताचार्य श्रीविष्णु दिगम्बरको तुम्हारी ऐसी स्थिति हो जानेकी सूचना भेज दी गयी थी। श्रीविष्णु दिगम्बर सूचना प्राप्त होते ही चले आये। घरवाले तथा हमलोग सब परीशान थे, बड़ी चिन्ता हो रही थी। श्रीविष्णु दिगम्बरने आते ही तुमको देखा और बोले——'कुछ मत करो। इन्हें शान्त रहने दो।' उन्होंने अपने दो विद्यार्थियोंको बुलवाया और स्वयं तानपूरा लेकर उनके साथ——

'रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम।'

कीर्तनकी मधुर ध्वनि छेड़ी। तुम बीचमें बैठे थे और चारों ओर अन्य लोग थे। सम्भवतः पौन घंटेतक कीर्तन होनेके बाद तुमको होश आया। रात्रिके ९ बजेसे प्रातः ९ बजेतक लगभग बारह घंटे यह स्थिति बनी रही।

"होश आनेपर मैं सकुचा गया। मैंने श्रीविष्णु दिगम्बरको प्रणाम किया। सब पूछने लगे––'क्या हुआ, क्या देखा ?' मैंने कहा––'मुझे इतना ही स्मरण है वनवेषधारी भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और श्रीसीताजीके दर्शन हुए। कितनी देरतक हुए, यह याद नहीं है। बातें भी हुई थीं, पर सब बातें स्मरण नहीं। केवल दो ही बातें याद हैं––एक तो भगवान्ने यह कहा कि 'किसी भी प्रकारसे भगवन्नाम लेनेवालेकी सद्गति होगी ही।' दूसरी बात, भगवान्ने परम भक्त श्रीविष्णु दिगम्बरका नाम इसी सिलसिलेमें लिया था। इसके अतिरिक्त और कुछ याद नहीं।'

"श्रीसागरमलजीने मुझे याद दिलाना चाहा––'तुम रातको उस समय कह रहे थे कि 'ये हैं भगवान्, इनके चरण पकड़ लो।' पर मुझे इन शब्दोंकी स्मृति नहीं थी। इस प्रसङ्गको सुनकर श्रीविष्णु दिगम्बर तो स्नेहातिरेकसे रोने लगे थे।"

शिरोवेदना और उसका उपचार

श्रीभाईजीके हृदय एवं मस्तिष्क––दोनों ही भगवान्से जुड़ते जा रहे थे। भगवान्के निर्विशेष ब्रह्म-स्वरूपकी ज्योति मस्तिष्कको उद्भासित कर रही थी तथा रसमय भाव हृदयमें संचित होता जा रहा था। यद्यपि ये सारी बातें भगवत्कृपासे ही इनके जीवनमें हो रही थीं, तथापि निमित्तकी दृष्टिसे कहा जा सकता है कि इनकी साधनाकी लगन भी अद्भुत ही थी। साधनाकी तत्परता ऐसी थी कि ये रातमें नींद प्रायः दो-ढाई घंटेसे अधिक नहीं लेते थे। कामकाज अथवा अन्य पारमार्थिक प्रचारमें शरीरको, मस्तिष्कको काफी परिश्रम पड़ता था। फिर भी ये बड़ी लगनके साथ रात्रिमें साधना करते। परंतु शरीर तो आखिर प्राकृतिक नियमोंके बन्धनमें ही रहता है। नींद न लेनेके कारण इनके सिरमें भयानक पीड़ा प्रारम्भ हुई। बड़े-बड़े वैद्य-डाक्टरोंके द्वारा औषधोपचार हुआ। हजारों रुपये खर्च किये गये, पर कोई लाभ नहीं हुआ। श्रीयादवजी त्रीकमजी महाराज उस समय बम्बईके प्रसिद्ध वैद्य थे। उन्होंने वैद्यकशास्त्रपर कई अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं। श्रीयादवजी भाईजीपर बड़ा स्नेह रखते थे और इनके घर बराबर आया करते थे। एक दिन भाईजीने अपने सिरदर्दकी चर्चा श्रीयादवजीसे की। उन्होंने कहा––'औषधके चक्करमें न पड़कर तुम नंगे सिर रहनेका अभ्यास करो।' उन दिनों नंगे सिर रहनेकी समाजमें प्रथा नहीं थी, पर श्रीयादवजी महाराजकी आज्ञा मानकर इन्होंने नंगे सिर रहना आरम्भ किया। आरम्भमें ५-७ दिन तो इन्हें कुछ दिक्कत अनुभव हुई, किंतु पीछे सिरका दर्द ठीक हो गया। इसके बाद गर्मियोंके दिनोंमें भी ये बिना छाता लगाये घूमते थे। केवल वर्षासे बचनेके लिये छाताका प्रयोग करते थे। सिरका दर्द इस भाँति एक बार बंद होकर फिर जीवनमें कभी नहीं हुआ।

प्रार्थनाके चमत्कार

भगवत्स्मरणके अतिरिक्त समस्त कार्योंको प्रपञ्चका ही प्रतिरूप मानकर भाईजी अपनी वृत्तियोंको समेटकर निरन्तर साधना-रत रहने लगे। शनैः-शनैः आध्यात्मिक जीवन विकसित हो रहा था। इस विकासमें तीव्रता उत्पन्न करनेके लिये भगवान्ने इन्हें अपनी कृपाकी कुछ झाँकियाँ दिखाना आरम्भ किया।

एक गुजराती सज्जनको फाटके (सट्टे)में बड़ा घाटा लगा। उस समय उन्हें कोई सहायक नहीं मिला। भाईजीका उनसे परिचय था। उनके मनमें आया––भाईजीके पास चला जाय। इनके पास आकर उन्होंने करुणा-पूर्ण हृदयसे सारी परिस्थिति बता दी तथा २७ हजार रुपये उधार माँगे। इनका हृदय दयासे पूर्ण तो आरम्भसे ही था, भजनके प्रभावसे और भी कोमल होता जा रहा था। इन्होंने बिना अपने साझेदारसे परामर्श किये रोकड़में लिखे एकमुश्त सत्ताईस हजार रुपये उन्हें अपने रोकड़ियेसे दिला दिये। वे रुपये लेकर चले गये, पर

जिस दिन रुपये वापस करनेका वचन दे गये थे, परिस्थितिवश उस दिन न लौटा सके। उधर दूसरे दिन ही साझेदारद्वारा रोकड़ सँभाली जानेवाली थी। न तो इन्होंने कोई बेईमानी की थी न उन गुजराती सज्जनके मनमें ही कोई बेईमानी थी; पर परिस्थिति ऐसी हो गयी थी कि दूसरे दिन रोकड़ सँभालते समय इन रुपयोंके सम्बन्धमें पूछे जानेपर इनके पास कोई उत्तर न था। सम्भव था, सच-सच बतला देनेपर भी इनका विश्वास साझेदारको उस समय न होता और ये बेईमान सिद्ध हो जाते। इन सब बातोंको सोचकर इनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो गया। सत्ताईस हजार रुपये कहींसे उधार मिलनेका भी ढंग नहीं था। अतः सर्वथा उद्विग्नचित्तसे ये दूकानसे बाहर निकल पड़े। निरुद्देश्य चले जा रहे थे। जिह्वा भगवन्नामकी रट लगा रही थी। दो-तीन मील पैदल चले गये। यह भी पता नहीं था कि किस पथसे किस ओर जा रहे हैं। हठात् एक मित्रसे भेंट हो गयी। उसने पूछा—'उदास क्यों हो? कहाँ जा रहे हो?' इन्होंने कहा—'यों ही।' मित्रने आग्रहसे पूछा—'बताओ, क्या बात है?' इन्होंने बतला दिया—'सत्ताईस हजार रुपयेकी जरूरत है।' मित्रने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—'आज मेरे रुपये आनेवाले थे। चलो, बैंकमें पता कर लें। यदि आये होंगे तो मैं तुम्हें दे दूँगा।' भगवान्की कृपाशक्ति पर्देके पीछेसे सब सँभाल रही थी। संयोगसे सामने ही इंडिया बैंक था। दोनों मित्र ठीक बैंकके सामने फुटपाथपर मिले थे। अतः दोनोंको बैंकमें जानेमें बिलम्ब नहीं हुआ। मित्रने जो सहानुभूति प्रकट की थी, उसमें सर्वथा शिष्टाचार ही था। उसे यह विश्वास था कि उस दिन तो बैंकमें रुपये नहीं ही आयँगे। इस प्रकार रुपये भी न देने पड़ेंगे तथा सुन्दर ढंगसे मित्रोचित व्यवहार भी निभ जायगा। पर दैवका विधान दूसरा था। बैंकके बाबूसे पूछते ही उत्तर मिला—'अभी-अभी रुपये आये हैं।' यह उतनी ही रकम थी, जितनीकी इन्हें आवश्यकता थी। बैंकके क्लर्कका उत्तर इन्होंने भी सुन लिया था। अतः अब कोई बहाना भी नहीं चल सकता था। मित्रने असमञ्जसमें पड़कर उतने ही रुपयेका चेक काट दिया। रुपये मिल गये। रुपये लेकर इन्होंने अपनी दूकानकी रोकड़में जमा कर दिये। प्रतिष्ठा बच गयी। कुछ दिन बाद उस गुजराती सज्जनने रुपये लौटा दिये और इन्होंने मित्रके रुपये लौटा दिये। भगवान्की अप्रत्याशित कृपा पाकर इनका रोम-रोम कृतज्ञतासे भर गया। अशरण-शरण किस ढंगसे सारी व्यवस्था बैठा देते हैं, यह देखकर ये आश्चर्यमें डूब गये।

भगवान्ने अपनी भक्तवत्सलता एवं कृपाकी एक झाँकी और दिखायी। इस झाँकीका स्मरण श्रीभाईजी आजीवन करते रहे। अपने प्रवचनोंमें भगवत्कृपाका प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर इस घटनाका उल्लेख वे अवश्य करते थे। एक बार व्यक्तिगत चर्चामें इन्होंने कहा—

"मेरे एक साथी थे हरिराम शर्मा। वे रुईकी दलाली करते थे। वे मेरे पास ही रहते थे, मेरे घरपर ही भोजन करते थे। भाई श्रीरामकृष्ण डालमिया उन दिनों सट्टा करते थे। इस काममें उन्हें कुछ घाटा लग गया था। मैंने हरिरामको सावधान कर दिया था—'तुम गरीब आदमी हो। अतएव भाई रामकृष्णके साथ सट्टेका काम मत करना। भाई रामकृष्णको कुछ घाटा लगा हुआ है, और लग जायेगा तो वह तो तुरंत दे नहीं सकेगा, और तुम्हारा फर्म फेल हो जायगा।' पर भाई रामकृष्ण सट्टेका बड़ा काम करता था और इससे हरिरामको दलालीसे अच्छे पैसे मिल जाते थे। बस, दलालीके लोभमें वह मेरी बात न मान सका और भाई रामकृष्णका काम करवाता रहा। जबतक नफा होता रहा, तबतक हरिरामको भी दलाली मिलती रही; परंतु विधाताका विधान कुछ और था। एक सप्ताहमें करीब ५०-६० हजारका घाटा हो गया। भाई रामकृष्णके पास तुरंत देनेको था नहीं। हरिरामको उनका पेमेंट करना था। वह मेरे पास आया और बोला—'श्रीरामकृष्णजीका इस प्रकार काम करवा दिया था, उसमें इतने रुपये घाटेके लग गये हैं। अब क्या करें?' मैंने कहा—'भाई, तुमने क्यों करवाया? मैंने तो तुम्हें पहले ही सावधान कर दिया था, परंतु तुमने मेरी बात नहीं मानी।' अब तो वह बहुत कातर हो गया और पूछने लगा—'अब क्या करें?' मेरे मुँहसे निकला—'भगवान्के सामने रोओ; और क्या करोगे?' बस, उसने बात पकड़ ली। वह गद्दीके समीपवाले कमरेमें जाकर बैठ गया और उसने क्या प्रार्थना की, क्या कहा—मुझे कुछ पता नहीं।

"हमलोगोंकी बातें होनेके थोड़ी देर बाद श्रीताराचंद घनश्यामदास फर्मके श्रीबालकृष्णलालजी पोद्दारका फोन आया कि 'यदि आप अपोलोबंदरकी ओर घूमने चलें तो मैं मोटर लेकर आ जाऊँ।' मैंने कहा––'आ जाइये।' आजकल जिस भागका नाम 'मैरीन ड्राइव' है, वह पहले 'अपोलोबंदर' कहलाता था। वे मोटर लेकर आ गये और मैं उनके साथ घूमने चला गया। हरिरामकी बात मैं भूल गया। घूमकर हमलोग रात्रिमें करीब ८ बजे लौटे। मुझे छोड़नेके लिये वे घरतक आये। जब हमारी मोटर घरके सामने रुकी, तब अचानक श्रीबालकृष्णलालजीको हरिरामकी याद आयी। वे बोले––'भाईजी, आपका हरिराम आजकल कहाँ है?' मैंने कहा––'भाई रामकृष्णका उसने सौदा करवा दिया था। उसमें घाटा लग गया है। भाई रामकृष्णके पास पैसा देनेको है नहीं। हरिरामका काम फेल हो जायगा, इसलिये वह रो रहा है।' वे पैसेवाले व्यक्ति थे, पर पैसेके सम्बन्धमें कुछ अनुदार थे। किंतु भगवान्‌की माया। बोले––'कल सुबह आदमी भेज दीजियेगा, चेक मँगवा लीजियेगा।' ये शब्द सुनते ही मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा––'आप किसको दे रहे हैं? यह पैसा फिर आनेवाला नहीं है।' वे बोले––'रुपये वापस मिल जायँगे, इस आशासे थोड़े दे रहा हूँ। हमारे मनमें आ गया, इसलिये दे रहा हूँ।' मैंने कहा––'अच्छी बात है।' श्रीबालकृष्णलालजी अपने घर लौट गये।

"अब मेरे मनमें विचार हुआ कि रुपये मँगवाने चाहिये कि नहीं। मैंने अपने मित्र श्रीविरदीचंदजी पोद्दारको बुलाया और उनसे सलाह ली कि क्या करना चाहिये। वे बड़े सात्त्विक प्रकृतिके व्यक्ति हैं। उन्होंने कहा––'भाईजी, द्रौपदीका चीर आपने बढ़ाया था क्या? भगवान्‌की प्रेरणासे ही श्रीबालकृष्णलालजी आये और रुपये भी उन्हींकी प्रेरणासे मिल रहे हैं। आप रोकनेवाले होते कौन हैं?' एक-दो अन्य मित्रोंसे भी सलाह ली। सभीकी यही राय हुई। मैंने भाई रामकृष्णको बुलाया। उसे पूरी बात बता दी। भाई रामकृष्णने 'हैंडनोट' लिख दिया तथा राजस्थानमें उनके जो मकान हैं, उनके पट्टे दे दिये और कहा कि 'ये सब चीजें उन्हें दे दी जायँ, रुपये मँगवा लिये जायँ।' मैंने 'हैंडनोट' एवं मकानोंके पट्टे रख लिये। सुबह हैंडनोट एवं मकानोंके पट्टे देकर एक आदमीको श्रीबालकृष्णलालजीके पास भेजा। श्रीबालकृष्णलालजीने ब्लैंक चेक (बिना रुपया भरे) हस्ताक्षर करके दे दिया और कहलाया––'जितने रुपये चाहिये, उतने चेकमें लिख दिये जायँ। इस समय बैंकमें हमारे खातेमें दो लाख रुपये हैं।' इतना ही नहीं, उन्होंने हैंडनोट तथा मकानोंके पट्टे लौटा दिये और कहलाया––'मैं पट्टे-हैंडनोट रखकर रुपया नहीं दे रहा हूँ।' मैं तो भगवान्‌की लीला देखकर मुग्ध हो रहा था। बैंकसे रुपये आ गये और हरिरामका भुगतान हो गया। इसके बाद भगवान्‌की कृपासे दो-तीन महीनेमें ही भाई रामकृष्णने रुपये कमा लिये और श्रीबालकृष्णलालजीके रुपये ब्याजसहित लौटा दिये गये।" इस प्रकार भगवान् अपनी कृपाको विविध रूपोंमें दिखा-दिखाकर श्रीभाईजीको अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे।

भगवत्कृपाके विविध रूपोंमें दर्शन

भगवत्कृपा भगवान्‌के कृपापात्र जीवके साथ बड़े ही विषम तथा विचित्र आचरण भी करती है। वह कभी तो उसके प्राणाधिक प्रिय स्वजनोंका बिछोह करवाकर उसे दारुण सांसारिक व्यथाका पात्र बना देती है, कभी घोर अपमान, प्रतिष्ठानाश, धनहानि, रोग-कष्ट आदिके प्रसङ्ग उपस्थित करती है। अवगुण्ठनमयी भगवत्कृपाकी इन विविध-विचित्र लीलाओंद्वारा भगवदनुरागी भगवदीय जनको उसके विविध रूपोंमें दर्शन प्राप्त होते हैं तथा वह प्रत्येक वेषमें अपने प्रभुकी ही झाँकी करके प्रसन्न होता है।

भाईजीके जीवनकालमें भी भगवत्कृपा दारुण व्यथा-प्रसङ्गोंका भी भीषण रूप धारणकर प्रकट हुई। बम्बईमें सं० १९७७ वि०के श्रावण-मासमें उन्हें एक पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई। लगभग १८-१९ मास ही यह दुलारा शिशु अपने माता-पिता तथा अन्य स्वजनोंको अपनी मधुर शैशवोचित क्रीड़ाओंका आनन्द-दान दे सका। सं० १९७८ वि०के माघ या फाल्गुन मासमें ही माँकी गोदको सूनी करके यह शिशु काल-कवलित हो गया। सर्वप्रथम दुलारी पुत्र-संतानके यों असमयमें ही मृत्युके ग्रास हो जानेसे माँके मातृसुलभ कोमल हृदयको कितनी व्यथा हुई होगी, इसका अनुमान कोई कैसे लगायेगा। भाईजी इस दारुण पुत्र-शोकके मर्माघाती प्रसङ्गमें

भी अविचलित ही रहे । उन्हें इस घटनामें भी भगवान्‌की विशेष कृपाका ही अनुभव हुआ। महापुरुषोंके जीवनमें ऐसे प्रसङ्ग उनके कुन्दन-सरीखे जीवनमें अधिक दीप्ति लाने तथा जन-साधारणके सम्मुख भगवद्भक्तोंका निर्मल यश प्रकाशित करनेके लिये भगवान्‌के मङ्गलमय विधानसे ही आते हैं। भक्तप्रवर श्रीनरसी मेहताने ऐसे ही दारुण पुत्र-शोकके अवसरमें जो पद गाया था, उसकी ये अनमोल पङ्क्तियाँ आज भी भक्तोंकी भगवन्निष्ठाका पुण्यप्रतीक बनकर दिग्दिगन्तमें गूँज रही हैं—

'भल्यूं थयुं भाँगी जंजाळ। सुखे भजीश्यूँ श्रीगोपाळ॥'

भाईजीने भी मन-ही-मन कुछ इसी तरहकी भाषामें अपने उद्‌गार व्यक्त किये होंगे—'भगवत्कृपा ! तुझे लाख-लाख धन्यवाद । अच्छा किया, जो पुत्ररूपमें प्रकट संसारसे निबद्ध करनेवाले एक बन्धनको तूने काट डाला। अब भगवान्‌के निश्चिन्त भजनका मार्ग सुलभ हो गया।'

भगवत्कृपाका यह प्रकाश अभी और होनेवाला था। पुत्रशोककी व्यथा पारिवारिक प्राणियोंके हृदयसे अभी निकल ही नहीं पायी थी कि भाईजीको जन्मदात्री माँसे भी अधिक स्नेह-वात्सल्य-दान देनेवाली तथा इनको सम्पूर्ण पारिवारिक झंझट-चिन्ताओंसे निर्मुक्त रखनेवाली दादी रामकौर देवीको परमधाम पधारनेका आमन्त्रण प्राप्त हो गया। भाईजीके शैशवमें ही उनकी गर्भधारिणी माँके परलोक सिधारनेपर दादी रामकौर देवीने ही इन्हें पाला-पोसा तथा इनमें भगवद्भावके संस्कारोंका वपन किया। शिशुकालमें जीवनरक्षा करनेवाली तथा कैशोर एवं तरुणावस्थामें सम्पूर्ण पारिवारिक चिन्ताओंसे मुक्ति-प्रदायिनी यह देवी भाईजीके जीवनके लिये रक्षा-कवच बनी हुई थी। अचानक ही प्रभुने यह छत्रछाया भी भाईजीके मस्तक परसे अपसारित करके इन्हें केवल अपने ही वरद हस्तकी शीतल शंतम छायाके नीचे ले लिया और परम निरापद एवं सुरक्षित बना दिया।

दादी रामकौर देवी अचानक बीमार पड़ी तथा बिना किसी विशेष कष्टभोगके ही वैशाख शु० १३, नृसिंह-जयन्ती सं० १९८०को परमतत्वमें लीन हो गयी। प्रत्यक्षदर्शी दर्शकोंका कथन है कि उसने अन्तिम क्षणोंमें भी 'सोऽहं, सोऽहं'का जाप करते हुए ही देहत्याग किया था। भाईजीने अपनी इस जननी, संरक्षिका तथा गुरुस्वरूपा दादी रामकौर देवीकी अन्त्येष्टि एवं श्राद्धकर्म शास्त्रोचित रीतिसे सम्पन्न किये।

हृदय-विदारक प्रसङ्गोंकी इस शृङ्खलामें भी भाईजीने भगवत्कृपाकी मधुर छविके दर्शन ही किये। विपत्तिकालमें ही भगवन्निष्ठजनोंकी निष्ठाकी गम्भीरताका पता लगता है। प्रसिद्ध रामभक्त महात्मा बनादासजीने पुत्रशोकके प्रसङ्गमें अपने हृदयोद्‌गार नीचे लिखे पद्यरूपमें व्यक्त किये थे—

कृपापात्र को रुज मिले निर्धनता-अपमान।
कुल-कुटुंब को नास, भै, अति करुना भगवान॥
अति करुना भगवान बंस को छेदन कीना।
ममता रही न कहूँ, सिथिल मन, तन सुठि खीना॥
बनादास पीछें दिए दृढ़ता, आतम-ज्ञान।
कृपापात्र को रुज मिले निर्धनता-अपमान॥

'राखनहार जु हैं भुजचारि' (चतुर्भुजद्वारा प्राणरक्षा)

भक्तका जीवन भगवान्‌का होता है। अतएव उसकी रक्षा एवं उसका भरण-पोषण भगवान् करते हैं। भूकम्पमें किस प्रकार भगवान्‌ने भाईजीकी रक्षा की थी, यह पहले वर्णन किया जा चुका है। बम्बई-जीवनमें भी भगवान्‌ने दो बार इनके प्राणोंकी रक्षा करके अपनी अद्भुत भक्तवत्सलताका परिचय दिया।

बम्बई आये कुछ ही दिन हुए थे तथा व्यापारका ढंग भी अभी पूरी तरहसे बैठ नहीं पाया था। दूकानसे निवास-स्थान दूर पड़ता था। धंधेका काम निबटाकर घर जानेमें रात हो जाती थी। इसी आवागमनमें एक दिन एक लोमहर्षक घटना हो गयी। इस प्रसङ्गको भाईजीने स्वयं लिखकर 'कल्याण'के 'ईश्वराङ्क'में पृष्ठ ६१४पर प्रकाशित किया है। नीचे हम उन्हींके शब्दोंको उद्धृत कर रहे हैं—

"सन् १९१६की बात है, मैं बम्बईमें रहता था। रातको अपने फूफा श्रीलक्ष्मीचंदजी लोहियाके घरपर, जो बम्बईसे कुछ दूर बी० बी० ऐंड० सी० आई० रेलवेके शान्ताक्रुज स्टेशनके समीप पं० श्रीशिवदत्तरायजी वकीलके बँगलेमें रहते थे, जाकर खाया और सोया करता था। एक दिनकी बात है। रातको करीब आठ बजे थे। कृष्णपक्षकी अँधेरी रात थी। मैं लोकल ट्रेनसे जाकर शान्ताक्रुजके प्लेटफार्मपर उतरा। अब तो दोनों ओर स्टेशन है, उस समय एक ही ओर था और रोशनीका प्रबन्ध नहीं था, न इंजनमें सर्चलाइट थी। श्रीशिवदत्त-रायजीके बँगलेमें जानेके लिये रेलवे लाइन पारकर उस ओर जाना पड़ता था। मैंने बेवकूफी की। दौड़कर इंजनके सामनेसे लाइन पार करने लगा। लोकल ट्रेन एक-दो मिनट ही ठहरती थी। मैं नया था। मैंने समझा, गाड़ी छूटनेसे पहले ही मैं लाइन पार कर जाऊँगा। परंतु ज्यों ही मैंने लाइनपर पैर रखा, त्यों ही गाड़ी छूट गयी। ईश्वरीय प्रेरणा और प्रबन्धसे उसी समय किसी अज्ञात पुरुषने मेरा हाथ पकड़कर जोरसे खींच लिया। मैं दूसरी लाइनपर जाकर गिर पड़ा। गाड़ी सर्राटेसे निकल गयी। तीन काम साथ हुए—मेरा लाइन पारकर जाना, गाड़ीका छूटना और किसी अज्ञात व्यक्तिद्वारा खींचा जाना। एक-ही-दो सेकंडके विलम्बमें मेरा शरीर चकनाचूर हो जाता। परंतु बचानेवाले प्रभुने उस अँधेरी रातमें उसी जगह पहले ही मुझे बचानेका प्रबन्ध कर रखा था। मैं थर-थर काँप रहा था। ईश्वरकी दयालुतापर मेरा हृदय गद्‌गद हो रहा था। आँखोंसे आँसू बह रहे थे। मैंने स्टेशनके धुँधले प्रकाशमें देखा—एक नौजवान बोहरा मुसल्मान खड़ा हँस रहा है और बड़े प्रेमसे कह रहा है—'आइंदा ऐसी गलती न करना। आज भगवान्‌ने तुम्हारे प्राण बचाये।' मैंने मूक अभि-वादन किया, कृतज्ञता प्रकट की। लाइनपर बिछे रोड़ोंमें जा गिरा था, परंतु दाहिने पैरमें एक रोड़ेके जरा-सा गड़नेके सिवा मुझे कहीं चोट नहीं आयी। मैं दौड़कर घर चला गया और ईश्वरको याद करने लगा।"

आजानुबाहुने इस प्रकार अपने आश्रितजनके जीवनकी रक्षा की। यह घटना इनके बढ़ते हुए भगवद्-विश्वासको पुष्ट करनेमें बड़ी सहायक हुई।

भगवत्कृपाके दर्शनका एक और प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। इस प्रसङ्गको भी भाईजीने स्वयं लिखकर 'कल्याण'में प्रकाशित किया था। प्रसङ्ग इस प्रकार है—'सन् १९२६ ई० की बात है। मैं लक्ष्मणगढ़ (जयपुर) के सेठ श्रीलच्छीरामजी चूड़ीवालाके धन और परिश्रमसे स्थापित ऋषिकुलके उत्सवमें शरीक होनेके लिये बम्बईसे जा रहा था। अहमदाबादसे दिल्ली एक्सप्रेसके द्वारा रवाना हुआ। मैं सेकंड क्लास (द्वितीय श्रेणी)में था। मेरे साथ एक छोटा ब्राह्मण-बालक ऋषिकुलमें भर्ती होने जा रहा था। मैं इधरकी एक सीटपर सोया था और सामनेकी सीटपर वह सोया था। दूसरे दिन सुबह अंदाज पाँच बजे थे। ब्यावर स्टेशनपर एक टी० टी० ई० (टिकट परीक्षक) महोदय हमारे डिब्बेमें सवार हुए। मैं जिस सीटपर सोया था, उसी सीटपर मेरे पैरोंके पास वे बैठ गये। मैं जग रहा था। अपने पैरोंके पास किसीका बैठना मुझे अच्छा नहीं लगा। शिष्टाचारके नाते मैं उठ बैठा। सोया था, तब मेरा सिर सीटकी अन्तिम खिड़कीके पास था, जागकर उठ बैठा तो वह खिड़की खाली हो गयी। मैं बीचकी खिड़कीके पास बैठ गया और टी० टी० ई० महोदय इधरकी तीसरी खिड़कीके पास बैठे थे। तीनों खिड़कियाँ बंद थीं। मैं टी० टी० ई० महोदयके साथ बातें कर रहा था। इतनेमें ही पीछेसे बड़े जोरसे आवाज हुई और दूसरी सीटपर सोये हुए ब्राह्मण-बालकने एक चीख मारी। हमलोग भौंचक्के रह गये। पीछे घूमकर देखा तो पता चला कि एक बहुत बड़ा पत्थर खिड़कीके काँचको लगा। खिड़कीका बहुत मोटा शीशा टूटकर चूर-चूर हो गया और उसके टुकड़े उछल-उछलकर सब तरफ बिखर गये। उसीका एक जरा-सा टुकड़ा बालकके सरपर लगा था। इसीसे उसने चीख मारी थी। मैं सोया होता तो अवश्य ही खिड़कीके पास मेरा सिर रहता और वह जरूर ही पत्थर और काँचकी चोटसे टूट जाता, परंतु बचानेवालेने टी० टी० ई० महोदयको भेजकर मुझे उठनेकी प्रेरणा की। मैं बैठा हो गया और बच गया। यह घटना अजमेरके पास मकरेरा और सरधना स्टेशनके बीचकी है।'

—'ईश्वराङ्क', पृष्ठ ६१४

टी० टी० ई० महोदयने इस घटनापर भाईजोसे कहा था––'ऐसी घटनाएँ इस लाइनपर होती रहती हैं। आपको भगवान्ने बचा लिया। आप उठकर बैठ गये, नहीं तो आपका सिर बुरी तरह घायल हो जाता।'

भाईजी जब लक्ष्मणगढ़ पहुँचे, तब रात्रिमें इन्हें एक स्वप्न हुआ, जिसमें भगवान्ने कहा––'देखो, तुम्हें कई बार बचा चुका हूँ। तुम निश्चिन्त रहो, तुमसे मुझे अपना कार्य कराना है।' इस यात्राके थोड़े दिन बाद 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ हुआ और भगवान्ने भाईजीको अपना यन्त्र बनाकर उनसे जो आध्यात्मिक प्रचार करवाया, वह सर्वविदित है।

दैन्यका आविर्भाव

भगवत्कृपाकी विविध रूपोंमें अनुभूति प्राप्त करनेसे भाईजीको भगवान्की कृपाशीलतापर अखण्ड विश्वास हो गया। वे प्रभुके आर्ति-हारी स्वभावका प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर कृतज्ञतासे गद्गद हो गये। उसकी महत्ताके प्रकाशमें अपनी हीनताका बोध होते ही इनका हृदय दैन्यसे भर गया। भाईजीने अपनेको पूर्णरूपसे भगवच्चरणोंमें अर्पित कर दिया। इनके द्वारा निम्नाङ्कित पदकी रचना इसी स्थितिमें हुई थी––

अब हरि एक भरोसो तेरो।
नहिं कछु साधन ग्यान-भगति को, नहिं बिराग उर हेरो॥
अघ ढोवत अघात नहिं कबहूँ, मन बिषयन को चेरो।
इंद्रिय सकल भोगरत संतत, बस न चलत कछु मेरो॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-सरिस अति प्रबल रिपुन तें घेरो।
परबस पर्‍यो, न गति निकसन की, जदपि कलेस घनेरो॥
परखे सकल बंधु, नहिं कोऊ बिपदकाल को नेरो।
दीनदयाल दया करि राखहु, भव-जल बूड़त बेरो॥

पद-रचनाका आरम्भ यहींसे हुआ। सचमुच हृदय जब विगलित हो जाता है, तब वह वाणीके रूपमें प्रवाहित हो उठता है।

साधना-समितिकी स्थापना

भाईजी स्वयं तो साधनामें तत्परतासे जुटे हुए थे ही––अविराम गतिसे उनकी मन-बुद्धि, इन्द्रियाँ मानव-जीवनके परम लक्ष्य श्रीभगवान्की ओर दौड़ रही थीं, साथ-ही-साथ अपने साथियोंकी ओरसे भी ये उदासीन नहीं थे; क्योंकि 'सर्वभूतहिते रताः––सब प्राणियोंके हितमें स्वाभाविक लगे रहना'––भाईजीका जीवन था।

सत्सङ्गियोंके जीवनको साधनाकी ओर उन्मुख करनेके विचारसे भाईजीने एक 'साधक-समिति'की स्थापना की। उसमें पचाससे अधिक सदस्य थे। प्रत्येक साधकके लिये समितिके निम्नाङ्कित नियमोंका पालन करना अनिवार्य था––

(१) प्रातःकाल उठते ही भगवन्नामका स्मरण करना।
(२) स्नानके पूर्व अशुचि अवस्थामें भी कम-से-कम एक बार भगवन्नामका स्मरण करना।
(३) स्नान करते समय कम-से-कम एक बार भगवन्नामका स्मरण करना।
(४) कम-से-कम एक कालकी संध्या करना।
(५) गायत्री-मन्त्रकी कम-से-कम एक माला जपना।
(६) श्रीगीताजीके प्रधान-विषयोंका पाठ करना।
(७) श्रीगीताजीके कम-से-कम एक अध्यायका अर्थसहित पाठ करना।
(८) श्रीगीताजीका पाठ करते समय श्रीभगवन्मूर्तिका चिन्तन करना।
(९) कम-से-कम पाँच मिनट ध्यान करना।

(१०) 'कर प्रणाम तेरे चरणोंमें' 'पत्र-पुष्प'के इस पदका अर्थ समझते हुए प्रातःकाल पाठ करना।
(११) कम-से-कम पाँच मिनट व्यायाम करना।
(१२) अपनेसे बड़े जो घरमें हों (माता-पिता आदि), उनके चरणोंमें प्रणाम करना।
(१३) सत्सङ्ग अथवा सच्छास्त्रोंका कम-से-कम आधा घंटा स्वाध्याय करना।
(१४) षोडश-नामके मन्त्र (हरे राम हरे राम)की कम-से-कम पाँच माला जपना।
(१५) भोजन करते समय भगवन्नामका चिन्तन करना।
(१६) बलिवैश्वदेव करना।
(१७) शयन करते समय भगवन्नामका स्मरण करना।
(१८) विदेशी मिलोंके बने एवं हिंसायुक्त रेशमी वस्त्रोंका न पहनना।
(१९) मादकद्रव्यों—भाँग, गाँजा, सुल्फा, तम्बाकू, बीड़ी आदिका सर्वथा त्याग करना।

भाईजीने इन नियमोंका आचरण स्वयं अपने जीवनमें दृढ़तापूर्वक किया। उन्हें साधनाके क्रममें यह निश्चित हो गया कि मनुष्यको साधना-मार्गसे विचलित करनेवाला मात्र चञ्चल मन है। अतः आरम्भमें इनके द्वारा उपदिष्ट सदाचार-पद्धतिका मूलाधार बना मनोनिग्रहका प्रयास। 'मनको वशमें करनेके कुछ उपाय' नामकी पुस्तक इसी स्थितिकी देन है।

सामूहिक जपयज्ञका श्रीगणेश

जेल-जीवनसे भगवन्नामके प्रति भाईजीकी निष्ठा दृढ़ हो चली थी। शिमलापाल-जीवनमें नाम-जप बड़ी तत्परतासे होता रहा। बम्बई आनेके पश्चात् भी नाम-जपका वह क्रम बराबर चलता रहा तथा नाम अपना विलक्षण प्रभाव प्रकटकर इन्हें अपनी ओर खींचता चला जा रहा था। भाईजीको यह अनुभव होने लगा कि वर्त्तमान समयमें नाम ही परम साधन है, परम आश्रय है—जिसकी शरणमें आकर जीव लोक-परलोकको ऊँची-से-ऊँची वस्तुको प्राप्त कर सकता है। अतएव उन्होंने समाजमें भी नाम-प्रचारकी योजना बनायी। संवत् १९७९में सत्सङ्गका कार्यक्रम आरम्भ होनेपर इन्होंने सामूहिक 'जपयज्ञ'का श्रीगणेश किया। इस जपयज्ञकी पूर्णाहुति होलीके समय हुई। उस अवसरपर बड़े उत्साहसे समारोह मनाया गया—ब्राह्मण-भोजन, भजन, कीर्त्तन आदिकी व्यवस्था सुचारुरूपसे की गयी। इस जपयज्ञका यह प्रभाव हुआ कि हजारों व्यक्ति नाम-परायण हो गये। कुछ मास नियमितरूपसे जप करनेपर लोगोंपर नामका अद्भुत प्रभाव प्रकट हो गया और उन्होंने नाम-जपको अपनी दैनिक साधनाका प्रधान अङ्ग बना लिया। आगे चलकर 'जपयज्ञ' नियमितरूपसे चलने लगा और इसे वार्षिक पारमार्थिक योजनाका रूप दे दिया गया। 'कल्याण'के प्रवर्त्तनके पश्चात् इसका प्रचार देशके कोने-कोनेमें ही नहीं, विदेशोंमें भी हुआ और आजतक वह अक्षुण्णरूपसे चल रहा है।

साधनामें उन्नतिके कारण

श्रद्धेय श्रीसेठजीके सत्सङ्गके प्रति समाजमें बड़ी रुचि बढ़ रही थी। हजारों स्त्री-पुरुष उनके सत्सङ्गसे लाभान्वित हो चुके थे। सं० १९७८-७९में श्रीसेठजीने विचार किया कि उत्तराखण्डकी पवित्र भूमिमें कुछ दिनोंके लिये सत्सङ्गका आयोजन किया जाय। ऋषिकेशका गङ्गातट इसके लिये चुना गया। सत्सङ्ग-प्रेमियोंको सूचना दी गयी और चुने हुए श्रद्धालु व्यक्ति वहाँ पहुँचे। उस समयका ऋषिकेश आजका ऋषिकेश नहीं था, वह वास्तवमें तपस्या-भूमि था। सत्सङ्गमें जानेवालोंके लिये न ठहरनेके लिये स्थानकी ठीक व्यवस्था थी न अन्य सुविधाएँ हीं उपलब्ध थीं। भाईजी भी तीन दिनके लिये उस सत्सङ्गमें सम्मिलित हुए। श्रीसेठजीने कुछ साधकोंको उत्साहित करनेकी दृष्टिसे कह दिया कि 'हनुमानकी तरह साधनामें तत्परतासे लगना चाहिये। उसकी निराकारके ध्यानकी स्थिति ऐसी है।' श्रीसेठजीके मुखसे ऐसी बातें सुनकर लोगोंकी लालसा जगी कि भाईजीसे साधनामें उन्नतिके हेतुओंकी जानकारी की जाय। लोग भाईजीसे प्रेमपूर्वक आग्रह करने लगे। भाईजी बड़े

ही संकुचित हो गये, पर लोग माननेवाले नहीं थे। आखिर इन्होंने उसका रहस्य खोलते हुए निम्नलिखित छः बातें बतायीं—

'(१) भगवान्, शास्त्र तथा महापुरुषके वचनोंमें अविचल श्रद्धा एवं विश्वास करना।

(२) वे जैसे कहें, उसीके अनुसार प्राणपर्यन्त साधन करना।

(३) परमात्माकी अनिर्वचनीय कृपाका हर समय अनुभव करना।

(४) भगवान्‌के नामका निरन्तर जप करना।

(५) अपनी साधनाका किंचित् भी अभिमान न करना।

—इन पाँच बातोंसे साधनामें मुझे बहुत लाभ हुआ। इनके अतिरिक्त एक बातसे मुझे और सहायता मिली—जब श्रद्धालु श्रोता मुझसे मिलते थे, अपने-आप अन्तःकरणमें बहुत ऊँची-ऊँची बातें स्फुरित होती थीं और मैं उन्हें कहता था। कहनेके बाद स्वाभाविकरूपसे ही उन कही हुई बातोंके अनुसार अपना जीवन बनानेका प्रयत्न होता था। इन्हें ही मेरी साधनाकी कुंजी समझें।'

भाईजी तीन दिन ऋषिकेश रहे, पर इतने अल्पकालमें उन्होंने सत्सङ्गियोंमें श्रद्धा-प्रेमकी नदी बहा दी। भाईजीने कुछ भगवच्चर्चा की। अपने अनुभवकी बातोंको उन्होंने बड़े ही विनम्र एवं मधुर शब्दोंमें रखा। सत्सङ्गी भाई-बहनोंपर उस चर्चाका बड़ा प्रभाव पड़ा।

श्रीविष्णु दिगम्बरकी राग-सेवा

बम्बई-जीवनकी विशेष उपलब्धियोंमें प्रसिद्ध संगीताचार्य श्रीविष्णु दिगम्बर पलुस्कर महाराजका स्नेह-सम्बन्ध भी है। भाईजीके साथ इनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। महाराजजी भाईजीके स्नेहशील, सेवा-परायण एवं आध्यात्मिक जीवनसे बहुत प्रभावित थे। वे भाईजीके घर आते रहते थे। एक बार उनके मनमें आया कि वे भाईजीको थोड़ा संगीत सिखा दें। उन्होंने भाईजीके सामने अपना मन्तव्य व्यक्त किया। भाईजीने उनके कृपापूर्ण प्रस्तावको हृदयसे स्वीकार किया, पर समयका संकोच बताया। श्रीविष्णु दिगम्बर महाराजको तो इन्हें संगीत सिखाना था। उन्होंने कहा—'मैं स्वयं प्रतिदिन नियमितरूपसे तुम्हारे घरपर तुम्हें संगीत सिखाने आया करूँगा।' और वे बराबर आने लगे। पर भाईजीका उस समयका जीवन साधना एवं सेवाका जीवन था। अतएव वे महाराजजीकी कृपासे लाभ नहीं उठा सके। महाराजजी पूरे दो महीने बराबर आये, पर भाईजीको ठीकसे समय ही नहीं मिल पाया। इस विवशताके कारण भाईजी संगीत नहीं सीख पाये। परंतु श्रीविष्णु दिगम्बर-के साहचर्यसे वे विभिन्न राग-रागिनियोंसे यत्किंचित् परिचित हो गये थे। इनके रचे हुए पद विभिन्न राग-रागिनियोंमें गेय हैं।

श्रीविष्णु दिगम्बरके संगीत-ज्ञानकी चर्चा करते हुए भाईजी कहा करते थे—'वे संगीतके इतने बड़े ज्ञाता थे कि एक ही पदमें एक साथ छतीसों रागिनियाँ गा सकते थे—एक-एक शब्दमें राग बदल सकते थे।'

श्रीविष्णु दिगम्बर महाराज रामायणकी बड़ी ही सरस कथा कहते थे। संवत् १९८०के पुरुषोत्तम (अधिक ज्येष्ठ) मासमें सत्सङ्ग-भवनमें भाईजीने उनकी कथाका आयोजन किया। वे रामचरितमानसकी कथा साज-बाज और भजन-कीर्तनके साथ करते थे। इसके अतिरिक्त विशेष अवसरोंपर भी उनकी कथा सत्सङ्ग-भवनमें होती रहती थी।

कथाके पूर्व जिस समय वे 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम'का संकीर्तन साज-बाजके साथ आरम्भ करते थे, उनकी रस-परिप्लुत स्वर-लहरी सारे वातावरणको राममय बना देती थी—श्रोता भाव-विभोर हो झूम उठते थे। गांधीजी प्रत्येक कांग्रेस-अधिवेशनमें श्रीविष्णु दिगम्बरको बुलाकर आरम्भमें 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम'का सामूहिक कीर्तन कराते और उसको राष्ट्रीय कीर्तनके नामसे पुकारते थे।

भाईजीसे परिचय होनेके बाद श्रीविष्णु दिगम्बरकी यह भक्ति-निष्ठा और दृढ़ होती जा रही थी। भाईजीका 'मेरे एक राम-नाम आधार' प्रतीकवाला पद उन्हें अत्यन्त प्रेरणाप्रद लगा। वे इससे इतने प्रभावित हुए कि

इसीके आदर्शपर उन्होंने 'राम-नाम-आधार-मण्डल' नामक एक संस्था स्थापित की । इसमें उनके अनुरोधसे भाईजीके कई प्रवचन हुए । भाईजीका उक्त पद इस मण्डलमें नित्य गाया जाता था ।

अपने जीवनके पिछले दिनोंमें श्रीविष्णु दिगम्बरने यह नियम बना लिया था कि जो भी संगीतकी शिक्षा लेने आये--'चाहे वह हिंदू, मुसलमान, ईसाई या पारसी, कोई भी हो, उसे संतोंके पदोंके गायनद्वारा ही संगीत सीखना पड़ेगा ।'

अन्तिम अवस्थामें उन्होंने यह नियम बना लिया था कि उनके कानोंमें निरन्तर--'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम' कीर्तनकी ध्वनि पहुँचती रहे। उनके बहुत शिष्य थे। जहाँ वे रहते, वहाँ दो-दो शिष्य बराबर बैठे इस कीर्तनका गान करते रहते थे। यह क्रम दिन-रात समानरूपसे चलता रहता था।

श्रीविष्णु दिगम्बरने संगीत-शिक्षाके लिये एक गान्धर्व-महाविद्यालय खोल रक्खा था। वह बम्बईमें संगीत-शिक्षाकी प्रमुख संस्था थी। आयका कोई सबल स्रोत न होनेके कारण उसपर ७५ हजार रुपयेके लगभग ऋण हो गया। पण्डितजी उसके लिये चिन्तित रहने लगे। भाईजीको इसका पता चला। पण्डितजीकी एतद्विषयक उद्विग्नता देखकर ये बहुत दुःखी हुए; किंतु इनके अपने पास इतना रुपया था नहीं । अतः उससे मुक्तिका कोई मार्ग तत्काल इन्हें न सूझ पड़ा। इन्होंने इसके लिये ऋण लेनेका निश्चय किया । अपने कतिपय मित्रों और परिचितोंसे अपने नाम ऋणरूपमें ७५ हजार रुपये एकत्रकर श्रीविष्णु दिगम्बरको ऋणमुक्त करा दिया। इस ऋणका शोधन बारह वर्ष बाद सं० १९९२में गोरखपुर आनेके पश्चात् हो पाया। उपर्युक्त ऋणदाताओंमें जिन लोगोंने दानरूपमें गान्धर्व-महाविद्यालयको ऋणका धन प्रदान कर दिया, उन्हें छोड़कर शेष सभीका पैसा भाईजीने पाई-पाई चुका दिया; कुछ लोगोंको सूद भी दिया।

भाईजीका श्रीविष्णु दिगम्बरसे यह स्नेह-सम्बन्ध उनके अन्तिम क्षणतक बना रहा । भाईजीके सुनाये हुए उनके अनेक संस्मरण हैं, जो समयसे प्रकाशित हो सकते हैं।

'भाईजी' नामका श्रीगणेश

अपने स्नेहशील, सेवापरायण स्वभावसे ये इतने लोकप्रिय हो गये थे कि गरीब-अमीर, छोटे-बड़े, धार्मिक-अधार्मिक--सभी लोग इन्हें अपना मानने लगे तथा ये सबको अपने स्वजनकी भाँति अनुभव होने लगे। सभीको ऐसा लगने लगा था कि 'ये ऐसे व्यक्ति हैं, जो सभी प्रकारके भेद-भावोंसे ऊपर हैं। ये छोटेके लिये छोटे हैं, बड़ेके लिये बड़े हैं; सुखीके साथ सुखी हैं, दुःखीके साथ दुःखी हैं। इनका हृदय धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी प्रकारकी संकीर्णताओंसे रहित है। ये पूर्ण सदाचारी होते हुए भी पथ भूले हुए भाई-बहनोंके प्रति उसी प्रकार स्नेहसे भरे हैं, जैसे एक साधुपुरुषके प्रति। अपने लिये नियमोंके पालनमें कट्टर हैं, पर दूसरोंको उसके लिये बाध्य नहीं करते । ये किसीको भी संकोचमें डालने या विवश करनेके पक्षमें नहीं हैं। ये सभीके अपने हैं--स्वजन हैं। अतएव किसीको भी अपने हृदयकी चाहे-जैसी बात--पूर्ण विश्वासके साथ इनके सामने रखनेमें तनिक भी संकोच नहीं होता।' इस प्रकार सबके विश्वासभाजन, स्नेहभाजन, प्रीतिभाजन, श्रद्धाभाजन, आत्मीय होनेके कारण लोग स्वभावतः इन्हें अपने सगे भाईके रूपमें अनुभव करने लगे । श्रीश्रीलालजी याज्ञिक इनके मित्रोंमेंसे थे । श्रीयाज्ञिकजी हिंदू विश्वविद्यालयके प्राध्यापक पं० श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिकके मौसेरे भाई थे। इनके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंसे श्रीश्रीलालजीका बराबर मिलना-जुलना होता था। उन्हें सभी व्यक्तियोंमें इनके प्रति एक ही प्यार एवं स्नेहभरी भावनाके दर्शन हुए--'पोद्दारजी हमारे भाई हैं ।' श्रीश्रीलालजीको इसकी स्वयं अनुभूति थी ही। बस, वे इनको 'भाईजी'के नामसे पुकारने लगे । फिर तो समाजमें छोटे-बड़े, सभी उन्हें 'भाईजी' कहकर पुकारने लगे। इनका 'भाईजी' नाम 'पोद्दारजी', 'हनुमानप्रसादजी' आदि नामोंसे भी अधिक प्रचलित हो गया--कारण, सबके हृदयकी स्वाभाविक अनुभूति इनके प्रति भाईके रूपमें ही थी।

गीतामें भगवान्ने कहा है––'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**'––'मैं प्राणिमात्रका अहैतुक स्नेही हूँ।'––इसका उदाहरण 'श्रीभाईजी'ने अपने जीवन एवं व्यवहारद्वारा उपस्थित कर दिया। 'भाईजी'––'सुहृद्' शब्दका पर्याय है और यह भगवान्के उस दिव्य स्वभावका परिचायक है, जो भक्तोंका अवलम्बन है।

एकनिष्ठ प्रेमी श्रीगम्भीरचंदजी दुजारी

समुद्रकी ओर बढ़ती हुई सुरसरिमें यहाँ-वहाँसे झरते हुए झरने आ-आकर मिल जाते हैं, अपने प्रेष्ठ जलधिसे मिलनकी आकाङ्क्षा लेकर, और अपना अस्तित्व खोकर––सुरसरिमें विलीन होकर बह चलते हैं उसीके साथ। यदि अपनी स्वतन्त्र सत्ताको बनाये रखनेकी कामना उनमें रहे तो प्रेष्ठसे मिलनकी साध कभी पूर्ण होनी सम्भव नहीं। अञ्जलिभर जल लेकर वे कितनी दूर बढ़ेंगे? चट्टानोंको कैसे वे भेदकर चलेंगे? कैसे बालुकामय प्रदेशको परितृप्त करते हुए––उसकी प्यासको बुझाते हुए अपनी गतिको बनाये रखनेमें समर्थ होंगे? पर सुरसरिका संगम उनको निश्चिन्त कर देता है इन सब बाधाओंकी चिन्तासे। इसी प्रकार जब कोई महापुरुष––कोई प्रेमी संत धराधाममें पधारते हैं, अनन्तजन्मोंकी साध लिये हुए कुछ महाभाग-जीव उन महापुरुषों––प्रेमी भक्तोंका सङ्ग प्राप्त करते हैं एवं उनके दर्शनसे, स्पर्शसे, सम्पर्कसे अपने जीवनको पवित्र करते हुए प्राप्तव्यको प्राप्त कर लेते हैं। भाईजीसे ऐसे अनेकों संस्कारी जीवोंका सम्पर्क हुआ और उन्होंने अपने योग्यतानुसार उनसे आन्तर-बाह्य सम्बन्ध स्थापित कर यथाधिकार भगवत्प्रेमको प्राप्त किया। इन्हीं परम बड़भागी महानुभावोंमें श्रीगम्भीरचंदजी दुजारीका नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये महानुभाव सं० १९८०में २२ वर्षकी अल्पायुमें भाईजीसे आकर मिले और सदाके लिये इनके हो गये।

सत्सङ्गके प्रति बाल्यकालसे विशेष रुचि रहनेके कारण ये अपना अधिकांश समय सत्सङ्ग-भजनमें ही लगाते थे। अपने व्यापारका कार्य बहुत कम सँभालते थे। भाईजीसे मिलते ही इन्हें अपने जन्म-जन्मान्तरका सम्बन्ध स्मरण हो आया और इन्होंने भाईजीको ही अपना सर्वस्व स्वीकार कर लिया। भाईजीकी सेवा करना, उनके जीवनकी छोटी-छोटी क्रियाओं एवं घटनाओंको देखना, उनके पत्रोंको पढ़ना, प्रतिलिपि रखना, भाईजीके सम्बन्धमें लोगोंसे चर्चा करना और अत्यन्त दैन्यके साथ भाईजीसे उनके जीवनकी बातोंको पूछना, जानना और अपनी टूटी-फूटी भाषामें उसे लिपिबद्ध करना––इसीको उन्होंने अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया। भाईजी-को यह रुचिकर नहीं हुआ। ये बार-बार इन्हें इससे विरत करने लगे; पर पहाड़से उतरती हुई नदीके प्रवाहको रोकना जिस प्रकार असम्भव होता है, उसी प्रकार दुजारीजीको इस प्रयत्नसे रोकना सम्भव नहीं हुआ। भाईजीने इनके इस कार्यमें अनेक बाधाएँ डालीं, लोगोंको इनसे अपने सम्बन्धमें कुछ भी बतानेसे रोका; पर दुजारीजी भाईजीके जीवनकी छोटी-से-छोटी बातको भी अपने ढंगसे लिखते रहे। जब प्रेमपूर्वक समझानेका इनपर कोई भी प्रभाव लक्षित नहीं हुआ, तब भाईजीने अपने स्वभावके विपरीत इनका तिरस्कार करना प्रारम्भ किया; पर ज्यों-ज्यों यह सब-कुछ होता गया, त्यों-ही-त्यों इनकी अपने कार्यके प्रति लगन बढ़ती गयी। पचासों कापियाँ भर गयीं। रात-दिन ये पुरानी बातोंको पढ़ने और नवीनके संग्रह करनेमें लगे रहे। निष्ठाके सामने पत्थर भी पिघल जाते हैं, फिर भाईजी तो नवनीत-हृदय ठहरे। सब प्रकारका विरोध करते हुए भी कभी-कभी इनके आँसुओंसे द्रवित होकर भाईजी इन्हें अपने जीवनकी बातें––गुह्य बातें भी बता देते थे––यह आदेश देते हुए कि 'उन्हें अपने-आपतक ही सीमित रखियेगा।' जिसको पारस प्राप्त हो जाता है, वह उसे छिपाना चाहता है; क्योंकि उसे उसके छिन जानेका भय रहता है। परंतु जिसे संतके रूपमें दिव्य पारस प्राप्त हो जाता है, वह मुनादी पीटता हुआ घूमता है––'हे जगत्के जीवो! देखो, इधर देखो; तुमलोगोंको निर्मल एवं भाग्यशाली बनानेके लिये––तुम्हारे समस्त दुःख-क्लेशोंको शान्त करनेके लिये––तुम्हें अपनी प्रीतिके सुधार्णवमें निमग्न करानेके लिये भगवान्ने कृपा करके एक पारस प्रकट किया है'; क्योंकि वह जानता है––इस पारसको कोई चुरा नहीं सकता, कोई छीन नहीं सकता और इसकी शक्ति एवं प्रभाव कभी कम नहीं हो सकते। दुजारीजीने भी यही किया––जो-जो व्यक्ति उनके सम्पर्कमें आये, उनको प्रेमपूर्वक, सम्मानपूर्वक––कभी-कभी थोड़ा खीझकर, उपालम्भ देकर भी––भाईजीके जीवनकी बातें सुनाते और उनका सम्बन्ध भाईजीसे बनाते। 'कल्याण' और गीताप्रेसकी

सेवामें लगे प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियोंको इस ओर लगानेका श्रेय उन्हींको है। श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी-जैसे वरिष्ठ एवं एकनिष्ठ सेवकोंके जुटानेका श्रेय भी उन्हींको है। उपर्युक्त कार्योंके अतिरिक्त वे नाम-प्रचार, कीर्तन-आयोजन, सत्सङ्ग-आयोजन, साधु-सेवा तथा 'कल्याण'के कार्यमें भी भाईजीका सहयोग करते रहे। 'श्रीभगवन्नामाङ्क'के कार्यमें उनका विशेष सहयोग रहा। 'कल्याण'के उन्होंने हजारों सदस्य बनाये। आज जगत्‌को भाईजीके जीवनके विषयमें जो कुछ तथ्य ज्ञात हैं, वे उन्हींके सत्प्रयत्नका फल है। वे भाईजीके जीवनवृत्तको संसारके समक्ष प्रकाशित करना चाहते थे, किंतु इस उत्कट अभिलाषाको लिये हुए ही संवत् २०१८में वे भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित हो गये।

पारसी प्रेतके लिये श्राद्ध-व्यवस्था

भाईजीका बम्बई-प्रवास आध्यात्मिक चमत्कारोंका विशाल भंडार है। साधनात्मक उपलब्धियोंके साथ-साथ इनकी भी वृद्धि होती गयी। नीचे भाईजीके ही शब्दोंमें एक ऐसी घटना वर्णित है, जिसमें विभिन्न देवयोनियोंकी सत्यता प्रमाणित होती है। यह घटना संवत् १९८२के आस-पास घटित हुई थी। एक प्रसङ्गमें भाईजीने यह घटना सुनायी थी—

"साधना प्रारम्भ होनेपर उसमें बड़ी तीव्रता आने लगी। मैं प्रतिदिन सायंकाल भोजन करनेके पश्चात् लगभग आठ बजे घरसे निकल जाता था और चौपाटी स्ट्रैंडमें जो बहुत-सी बेंचें पड़ी रहती थीं, वहाँ बैठकर नाम-जप एवं भगवच्चिन्तन करता था। वह स्थल बिल्कुल एकान्त था तथा प्रकाश अधिक न रहनेसे वहाँ अँधेरा-सा रहता था। यह मेरा प्रतिदिनका काम था। एक दिन मैं एक बेंचपर बैठा नाम-जप कर रहा था। अचानक मेरी बेंचके ठीक सामने मेरे पैरोंकी तरफ एक पारसी सज्जन खड़े दिखायी दिये। वे सफेद कपड़े पहने हुए थे। पारसियोंमें जो पुरोहित होते हैं, वे विशेष प्रकारकी पोशाक पहनते हैं। वे वैसी ही पोशाक पहने हुए थे। मैं अपना नाम-जप करता रहा और वे सज्जन सामने खड़े रहे। वे बहुत देरतक उसी रूपमें खड़े रहे, पर मैं चुप रहा और नाम-जप करता रहा। बहुत देर होनेपर मनमें आया कि 'एक भले आदमी सामने खड़े हैं और इन्हें इसी प्रकार खड़े बहुत देर हो गयी है; अतएव इनको बैठनेके लिये कह दिया जाय।' ऐसा विचार आते ही मैंने उनसे कहा—'साहेबजी,* आप बैठ जाइये। खड़े-खड़े आपको बहुत देर हो गयी।' मेरे इतना कहनेपर वे बोले—'आप डरियेगा नहीं, मैं प्रेत हूँ।' उन सज्जनने ज्यों ही अपनेको 'प्रेत' बतलाया, मैं भयभीत हो गया। मुझे पसीना हो आया। वे समझ गये कि मैं डर रहा हूँ। उन्होंने फिर कहा—'आप डरिये नहीं, मैं आपका अनिष्ट नहीं करूँगा। मैं तो आपसे सहायताकी याचना करने आया हूँ। आपका मङ्गल होगा।' उनके इस आश्वासनसे मैं कुछ आश्वस्त हुआ। पीछे उन्होंने कहा—'यदि आप मुझसे पहले बात नहीं करते तो मैं बोल नहीं पाता; क्योंकि मुझमें ताकत नहीं है कि बिना किसीके पहले बात किये मैं अपनी ओरसे यहाँके लोगोंसे बोल सकूँ। यही हेतु है कि मैं इतनी देर प्रतीक्षा करता रहा कि आप बोलें। प्रेतलोकमें अनेक स्तर हैं। प्रेतोंके अनेक प्रकारके अधिकार हैं; उनकी विभिन्न शक्तियाँ हैं। कोई प्रेत सभी जगह आ-जा सकते हैं; कोई नहीं आ-जा सकते। कोई अनेक काम कर सकते हैं, कोई नहीं कर सकते। जैसे इस लोकमें मनुष्योंके अलग-अलग अधिकार हैं, शक्तियाँ हैं, बल हैं, वैसे ही वहाँपर है। मैं प्रेतयोनिमें हूँ। मैं सब जगह जा सकता हूँ, हर एकको दिखायी दे सकता हूँ; पर मुझसे पहले कोई बोले नहीं तो मैं बोल नहीं सकता। मैं पारसी हूँ, पर मेरी हिंदूशास्त्रोंमें श्रद्धा है। मेरी मृत्यु अभी हालमें ही हुई है। प्रेतलोकमें मेरी स्थिति अच्छी नहीं है; आप कृपा करके किसीको गया भेजकर मेरे लिये पिण्डदान करवा दें तो मेरी सद्‌गति हो जायगी।' मैंने उनसे प्रश्न किया—'गयामें हिंदुओंके द्वारा श्राद्ध किया जाता है। आप पारसी हैं, आपलोग श्राद्धपर विश्वास नहीं करते; फिर श्राद्ध करानेकी बात कैसे कहते हैं?'

"प्रेतने उत्तर दिया—'सत्य यदि सत्य है तो वह जाति-सापेक्ष नहीं है। भिन्नता जातिमें होती है। जाति तो यहाँके व्यवहारको लेकर है; जीवमें जातिका भेद नहीं होता। जीवमें पारसी, हिंदू, ईसाईका सवाल नहीं। जिस जीवको प्रेत बनना होता है, वह बनता ही है।'

* पारसियोंमें सम्मानार्ह व्यक्तियोंको 'साहेबजी' कहकर सम्बोधित करते हैं।

"पीछे तो मैंने उनसे बहुत-सी बातें पूछीं–जैसे प्रेतलोककी स्थितिके सम्बन्धमें, वहाँके जीवनके सम्बन्धमें, कर्मोंके फलके बारेमें आदि-आदि। उन्होंने सब बातोंका सविस्तर उत्तर दिया। अब मैं उन बातोंको भूल गया हूँ। पर मुख्य बात मुझे स्मरण है। उन्होंने बताया—'किसीके प्रति वैर लेकर मरनेवालेकी बहुत दुर्गति होती है। उसे नरकोंमें बड़ा कष्ट होता है।' मैंने उनसे पूछा—'क्या नरक सत्य हैं?' बोले—'हाँ, सब सत्य हैं।' फिर उन्होंने कहा—'जीवनमें किसीके प्रति द्वेष रहा हो तो मरनेसे पहले उससे क्षमा माँग ले तथा अपने मनसे उसके प्रति वैरभावका त्याग कर दे। इसके अतिरिक्त जो धनके लिये किसी दूसरेकी हत्या करता है, उसकी बड़ी दुर्गति होती है। किसीको आश्वासन देकर न देनेवालेकी भी दुर्गति होती है। ब्राह्मण और गरीबका धन अपहरण करनेवालेकी बहुत दुर्गति होती है। माता-पिता और गुरुका अपमान करनेवालेकी बड़ी दुर्गति होती है। व्यभिचारीकी भी बड़ी दुर्गति होती है।' इस प्रकार उन्होंने मुझे बहुत-सी बातें बतायीं। उन्होंने यह भी बतलाया कि 'प्रेतलोकमें बहुत-से सद्भावनायुक्त प्रेत हैं, बहुत-से दुर्भावनायुक्त। बहुत-से सात्त्विक वृत्तिके हैं तथा बहुत-से तामस वृत्तिके। वृत्तिके अनुसार उनके स्वभाव एवं कर्म होते हैं। इस जीवनके ममता तथा राग-द्वेषके सम्बन्ध उनको स्मरण रहते हैं और वैसा ही वे यहाँके व्यक्तियोंको मानते हैं तथा उसी प्रकारका बर्ताव उनके साथ करनेकी चेष्टा करते हैं। परंतु सभी प्रेम या द्वेषका बर्ताव नहीं कर पाते, इसलिये दुःखी रहते हैं। अच्छे प्रेतोंको कुछ दिन वहाँ रखकर पितृलोकमें भेज दिया जाता है, जो प्रेतलोकका ही एक अङ्ग है। वहाँ उन्हें कर्मानुसार अच्छी-बुरी स्थिति प्राप्त होती है। वहाँ भी पहलेका किया हुआ भजन स्मरण रहता है और भजनकी वृत्ति बनी रहती है। पहलेके अभ्यासके अनुसार वहाँ भजनकी प्रवृत्ति होती है और भजन होता है। प्रेतलोकमें शान्त प्रेत भी बहुत हैं, जो किसीका बुरा करना नहीं चाहते। किसी दुष्कर्मवश उनको प्रेतत्वकी प्राप्ति हो गयी रहती है। प्रेतलोकके प्राणियोंके लिये अन्न-जल-वस्त्रादिका दान उनके नामपर घरवालों एवं मित्रोंको सदा करते रहना चाहिये; वहाँ उनके अंदर वासना होती है, जो यहाँ दान देनेसे ही पूर्ण होती है। प्रेतोंके उद्धारके लिये तथा उनको सद्गतिकी प्राप्ति करानेके लिये श्राद्ध एवं पिण्डदान, गयाश्राद्ध, भागवत-पारायण, विष्णुसहस्रनामके पाठ, गायत्री-जप और अपने-अपने धर्मानुसार भगवान्‌की प्रार्थना करनेसे उन्हें बहुत लाभ होता है।'

"और भी बहुत-सी बातें उन्होंने बतायीं। फिर उन्होंने अपने बम्बईके स्थानका नाम-पता बतलाया। इतना वार्तालाप करनेके पश्चात् वे अन्तर्धान हो गये। मैं लौट आया। दूसरे दिन उनके कथनानुसार मैंने उनका पता लगाया। वे बम्बईके बांदरा नामक अञ्चलमें रहते थे। छः महीने पहले उनकी मृत्यु हुई थी। उनका नाम आदि सब मिल गया। वे पारसी होनेपर भी गीताका पाठ किया करते थे। सब बातोंका ठीक-ठीक पता लग जानेपर मैंने अपने पास रहनेवाले एक ब्राह्मणको, जिनका नाम हरिराम था, उनका गयामें श्राद्ध एवं पिण्डदान करनेके लिये भेजा। उन्होंने गयामें जाकर उन पारसी सज्जनका पिण्डदान और श्राद्ध किया। जिस दिन गयामें उनके लिये पिण्डदान हुआ, उसी दिन चौपाटीमें ही उनके फिर दर्शन हुए और उन्होंने कहा—'मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने आया हूँ। आपने मेरा काम कर दिया। अब मैं प्रेतलोकसे उच्चलोकमें जा रहा हूँ।' मुझे उनकी बात सुनकर बड़ा संतोष हुआ।

"पहले मैं श्राद्ध-तर्पण आदिपर थोड़ा संदेह करने लगा था, सुधारवादियोंके साथ रहनेके कारण ही इस प्रकारकी वृत्ति हो चली थी। पारसी प्रेतसे मिलने तथा उससे वार्त्तालाप होनेके पश्चात् श्राद्ध-तर्पणपर मेरी दृढ़ आस्था हो गयी। उसके बाद मैंने शिशिरकान्ति घोषके पुत्र श्रीपीयूषकान्ति घोषकी 'मृत्युर् पर पारे' ('मृत्युके उस पार') नामक ग्रन्थ तथा इस विषयकी अन्य पुस्तकें देखीं। इस अध्ययनसे भी श्राद्ध आदिमें निष्ठा बढ़ी और हमारे घरमें बड़ी श्रद्धाके साथ श्राद्ध-कर्म होने लगा।"

चैत्र कृष्ण १०, २०२४ (४ अप्रैल, १९६७)को गीताभवनमें प्रवचन देते हुए भी प्रसङ्गवश भाईजीने ऐसी ही बातें कहीं थीं—'हम श्राद्ध-तर्पणपर बहुत जोर देते हैं। इसके हमें नये-नये अनुभव प्राप्त हुए हैं। यह बिल्कुल सच्ची बात है, मानो ऋषियोंने यह सब देखकर लिखा हो—उन लोकोंमें जा-जाकर लोकोंकी स्थिति देख-देखकर लिखा हो। ऐसी बात नहीं है कि लोगोंको रोचक और भयानक बातें बताकर अच्छे काममें लगाया गया हो। श्राद्ध-तर्पण और पितरोंके लिये हमेशा दान करना चाहिये। यह केवल शास्त्रकी

बात नहीं है। बम्बईमें प्रेतसे मेरी बात हुई थी, मैंने बहुत-सी बातें उससे जानी। फिर तो मैंने इसका पता लगाया। यह बात सबके सामने कहनेकी नहीं है, पर मैंने बहुत-से लोकोंका पता लगाया और उनसे अब भी मेरा कुछ सम्बन्ध है। विभिन्न लोकोंसे, वहाँके कुछ तत्त्वोंसे मेरा सम्बन्ध अब भी है। अब भी वहाँकी कुछ बातें जाननी होती हैं तो जाननेकी चेष्टा की जाती हैं। कोई जाननेमें आती हैं, कोई नहीं आतीं। कोई देरसे आती हैं, कोई बिल्कुल नहीं आतीं; क्योंकि उनपर अपना वश तो है नहीं। वहाँपर अपनी कोई ताकत तो चलती नहीं। वहाँ किसीके जरिये काम करना पड़ता है। पर यह बात नितान्त सत्य है कि श्राद्ध-तर्पण करना चाहिये।'

इसी प्रकार एक अन्य प्रवचनमें भाईजीने बताया था कि 'मनुष्यके मरते ही उस (जीव)का पाञ्चभौतिक स्थूलशरीरसे सम्बन्ध छूट जाता है और उसे तुरंत एक आतिवाहिक देहकी प्राप्ति होती है। मृत्युका अर्थ है—पाञ्चभौतिक स्थूलदेहसे केवल सम्बन्ध-विच्छेद। मृत्युसे स्थूलशरीर तो छूट जाता है, पर आतिवाहिक देहमें सूक्ष्मशरीर रहता है। कुल पाँच प्रकारके शरीर होते हैं—(क) पाञ्चभौतिक देह, जो मृत्युलोकके मानव या मानवेतर प्राणियोंको कर्मफलानुसार प्राप्त होती है। (ख) वायुप्रधान देह, जो पितरोंको या प्रेतोंको पितृलोकके भोग या प्रेतलोककी यातना भोगनेके लिये मिलती है। (ग) तेजप्रधान देह, जो देवोंको या देवलोकमें जानेवाले जीवात्माओंको स्वर्गके दिव्य भोग भोगनेके लिये मिलती है। (घ) चिन्मय देह, जो भगवान्‌को या भगवान्‌के नित्यपार्षदोंको प्राप्त रहती है। और (ङ) भावदेह, जो गोपियोंको महारासमें जानेके पूर्व प्राप्त हुई थी और जिससे गोपियाँ श्रीराधामाधवकी सेवामें नित्यलीन रहती हैं—

"मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः।"

'व्रजके गोपोंने देखा कि उनकी-उनकी पत्नियाँ उनके-उनके पास ही है।' गोपियोंका पाञ्चभौतिक शरीर घरपर था। वस्तुतः उनका भाव-वपु ही रासमें गया था।'

प्रेत-दर्शनकी इस घटनासे भाईजीकी परलोकके सम्बन्धमें जिज्ञासा बढ़ी और उन्होंने अपने साधन-बलसे वहाँकी कुछ आत्माओंसे सम्पर्क स्थापित कर लिया। उनके माध्यमसे ये यदा-कदा परलोकगत आत्माओंकी स्थितिका विवरण ज्ञातकर मृतकोंके सम्बन्धियोंको सान्त्वना प्रदान करते थे। श्रीभाईजीके महाप्रयाणके १० मास पूर्व एक सम्भ्रान्त विद्वान् जिज्ञासुने प्रेतसे भेंट होनेकी घटनाका उल्लेख करते हुए भाईजीसे पूछा—'क्या आपका दिव्यलोकोंसे सम्बन्ध है?' भाईजी सकुचा गये, पर उनका आग्रह देख तथा आत्मीयतापर मुग्ध होकर उन्होंने बताया—"मेरा कुछ लोकोंसे सम्बन्ध है। वहाँके कुछ प्राणियोंसे भी सम्बन्ध है। अमुक आदमीकी मृत्युके बाद क्या स्थिति है, इसका पता लगाना होता है तो वहाँके वासियोंसे कहा जाता है। वे प्राणी अमुक नाम एवं अमुक गोत्रवाले अमुक आदमीकी अमुक स्थानपर मृत्यु हुई तथा उसका दाह-संस्कार अमुक स्थानपर हुआ— ये जानकारियाँ प्राप्त करके वहाँ उस व्यक्तिका पता लगाते हैं और पता लगनेपर मुझे बता देते हैं। बहुत लोग मिलने-जुलनेवाले आते हैं। वे अपने स्वजनों-मित्रों आदिकी गतिके विषयमें पूछते रहते हैं। इस प्रकार १०-२० केस बराबर पता लगानेके लिये रहते हैं। मैं उन लोकोंके प्राणियोंको वह केस बता देता हूँ। उनके प्रयत्नसे कुछ व्यक्तियोंका ठीक-ठीक पता लग जाता है, कुछका अधूरा पता लगता है और कुछका बिलकुल ही पता नहीं लगता। उन लोकोंके प्राणियोंके द्वारा वहाँकी बहुत-सी बातें ज्ञात होती रहती हैं। अमुक मृत व्यक्तिके लिये क्या उपाय करवाना चाहिये, जिससे उसकी सद्‌गति हो जाय—इसका संकेत भी उनसे प्राप्त हो जाता है। पीछे उस व्यक्तिके लिये वैसा उपाय करवा दिया जाता है और उसकी सद्‌गति हो जाती है।

"दो-तीन वर्ष पूर्व बनारसके एक होटलमें एक सज्जनने अपने एक स्वजनकी हत्या कर दी थी। मृत व्यक्तिकी पत्नी गोरखपुरकी ही लड़की है। वह बहुत दुःखी थी। उसने अपने पतिके विषयमें मुझसे जानना चाहा। मैंने उन लोकोंके प्राणियोंसे पता लगाया और उनका बताया हुआ उपाय करवाया। उस व्यक्तिकी सद्‌गति हो गयी। और भी बहुत-सी बातें हैं, जो बतानेकी नहीं हैं। परलोकमें गये हुए कई व्यक्तियोंसे मेरा वार्तालाप हुआ है; पर सब बताया नहीं जा सकता। गोरखपुरके एक सज्जनके पुत्रकी मृत्यु बहुत वर्षों पहले हुई थी, उसकी भी इसी प्रकार सद्‌गति हो गयी।

"मान लें यहाँ अमुक शहरमें या प्रान्तमें हमारे कोई परिचित हैं। हम उन्हें उस शहर या प्रान्तके किसी व्यक्तिके विषयमें पता लगानेके लिये कहें तो वे परिचित व्यक्ति उनका पता लगानेका प्रयत्न करते हैं; परंतु प्रान्त और शहरकी सीमा बहुत बड़ी होनेसे वे किसीका पता लगा पाते हैं, किसीका नहीं। कहीं कोई व्यक्ति उस प्रान्तको छोड़कर दूसरे प्रान्तमें चला जाता है तो उस प्रान्तमें रहनेवाले अपने किसी मित्रको उनका पता लगानेके लिये कहा जाता है। वे मित्र कभी प्रयत्न करते हैं, कभी नहीं भी करते। यही स्थिति अन्य लोकोंकी भी है। जिन व्यक्तियोंसे हमारा परिचय है, वे अपने लोकमें हमारे बताये हुए नामके व्यक्तिका पता लगाते हैं। वहाँ पता न चलनेपर वे अपने परिचित अन्य लोकोंके व्यक्तियोंको अपने लोकोंमें पता लगानेके लिये कहते हैं तो कभी वे पता लगाकर बताते हैं, कभी नहीं भी बताते। इधर एक स्वजनने अपनी नानीके विषयमें पता लगानेके लिये कहा था। मैंने प्रयत्न किया था, पर अभीतक उनका पता नहीं लग पाया है।

"हमारे पृथ्वीलोककी भाँति उन लोकोंमें भी सभी तरहके प्राणी होते हैं। प्रेतोंमें भी कुछ बड़े ईमानदार होते हैं और कुछ यहाँके स्वभावके अनुसार धोखा देनेवाले भी होते हैं। उन लोकोंसे सम्पर्क स्थापित करनेकी कई विधियाँ हैं, जिन्हें मैं बताना नहीं चाहता; किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि वहाँके लोकोंसे सम्पर्क स्थापित हो सकता है।"

यह तो प्रेतलोक आदिकी बात हुई। भाईजीकी पहुँच ऊँचे-से-ऊँचे लोकोंतक थी। भाईजीके एक श्रद्धालु श्रीरामनिरंजनजी रूँगटाका २१ अगस्त, १९६१को शरीर शान्त हो गया। इसकी सूचना फोनद्वारा भाईजीको गोरखपुर प्राप्त हुई। इन्होंने सूचना प्राप्त होते ही कहा—'श्रीरूँगटाजीका श्रीकृष्णके दिव्यधाममें उनके एक परम-निकटस्थके रूपमें प्रवेश हो गया', और अपने हाथसे इस आशयका तार लिखकर अपने सेवकको दे दिया। यहाँ हम भाईजीके हाथके लिखे तारके मजबूनका छायाचित्र दे रहे हैं—

(श्रीरूँगटाजीके निधन-संवादसे यहाँ सभीको बड़ा दुःख हो रहा है। वैसे विशुद्ध प्रेमी जगत्में दुर्लभ हैं।

राधाष्टमी-उत्सव-प्रासादका तो एक आधारस्तम्भ ही टूट गया। तथापि इस बातसे बड़ा आनन्द है कि उनका श्रीकृष्णके दिव्यधाममें उनके एक परमनिकटस्थके रूपमें प्रवेश हो गया, जो अत्यन्त दुर्लभ है। उनकी पत्नी और उनके पुत्र-पुत्रवधुओंसे मेरी हार्दिक सहानुभूति ।

हनुमान)

सामाजिक सुधारोंमें योगदान

बम्बई-जीवनमें भाईजीके द्वारा होनेवाले अनेकविध सामाजिक कार्योंमें वृद्ध-विवाहको रोकनेका प्रयत्न भी था। एक घटना है—नासिकके एक वृद्ध मारवाड़ी सज्जन पैसेके बलपर विवाह करना चाह रहे थे। उनका रुईका बड़ा काम था और समाजमें अच्छी प्रतिष्ठा थी, इससे कोई विरोध नहीं कर पा रहा था। भाईजीको जब उसकी सूचना मिली, तब ये अपने कुछ साथियोंको लेकर नासिक पहुँच गये। ये लोग सत्याग्रह करनेकी तैयारी करके गये थे। भाईजीने कोर्टसे इंजंक्शन करवा लिया और शादी नहीं होने दी। उस समय बड़े दिनोंकी छुट्टियाँ चल रही थीं, कोर्ट खुलते नहीं थे; अतः जजके घर जाकर इंजंक्शन-आर्डर करवाना पड़ा। लड़कीके नकली माँ-बाप आये, उन्हें पकड़वाया गया।

इन कार्योंके कारण बम्बईके लोग भाईजीको 'सुधारकोंका नेता' मानने लगे थे। यद्यपि भाईजी पूरे सुधारक तो नहीं थे—इनपर प्राचीनताके प्रबल संस्कार थे, तथापि किसी भी बुराईका सुधार करानेमें ये अगुआ रहते थे।

अग्रवाल-महासभा, फतेहपुर

भाईजीका 'मारवाड़ी-अग्रवाल-महासभा'के साथ समाज-सेवाकी दृष्टिसे सम्बन्ध था। उनकी परमार्थ-साधनामें इससे बाधा आती थी। फिर भी ये प्रत्येक अधिवेशनमें जाया करते थे। उसमें हेतु था—लोगोंका विश्वास, प्रेम तथा आकर्षण। कई लोग तो इन्हें अपने-से-अपना मानते थे। महासभाका ७वाँ अधिवेशन चैत्र शुक्ल १, सं० १९८२को फतेहपुर (राजस्थान)में हुआ था। श्रीशिवनारायणजी नेमाणी उसके सभापति थे। नेमाणीजीका इनपर इतना विश्वास था कि सभापतिकी हैसियतसे दिया जानेवाला भाषण उन्होंने इनसे ही तैयार करवाया। इस बार सभाके प्रति भाईजीने भी बड़ी रुचि प्रकट की। कई प्रस्ताव किये। अधिवेशनके साथ ही कवि-सम्मेलन हुआ था। लोगोंने बड़े आग्रहसे इन्हें ही सभापति बनाया। हिंदी-साहित्यकी रक्षाके सम्बन्धमें इन्होंने बड़ा ही मर्मस्पर्शी भाषण दिया तथा भाषणके अन्तमें स्वरचित एक कविताका पाठ किया। साहित्य-प्रेमी श्रोता कविता सुनकर आनन्दमग्न हो गये।

मनकी अधीरता

संवत् १९८२के आरम्भमें भाईजीकी साधनाकी यह स्थिति थी कि भगवत्प्राप्तिके लिये मन अधीर होने लग गया था। परंतु इन्हें एक त्रुटि अनुभव हो रही थी। प्रथम वर्षोंमें ध्यानकी जो स्थिति बड़ी तीव्रतासे उत्पन्न हुई थी, उसमें अब विशेष प्रगति नहीं हो रही थी, वह रुकी हुई प्रतीत होती थी। ये सोचते थे—'अबतक जो उन्नति हुई, उसमें मेरा पुरुषार्थ सर्वथा हेतु नहीं है; वह तो भगवत्कृपाका ही परिणाम है। परंतु क्या अब भगवत्कृपा उस रूपमें नहीं है ?' इस उधेड़-बुनकी स्थितिमें भाईजीने श्रीसेठजीको एक पत्र लिखा, जो इस प्रकार है–

"मेरा साधन एवं प्रेम तो पहले भी ऐसा ही था; फिर क्या कारण है कि उस वर्ष तो एक ही सालमें इतना साधन बढ़ा और उसके बाद साधन वहीं ठहर गया। मुझमें जैसा बल उस समय था, वैसा अब भी है। फिर साधन क्यों रुक गया ? मुझे तो यही जान पड़ता है कि उस समय मेरे साधनकी उन्नतिमें मेरा बल, प्रेम कुछ भी नहीं था। जो कुछ हुआ, सब प्रभुके अद्भुत अनुग्रहसे ही हुआ; नहीं तो इतने अल्पकालमें इस प्रकार कैसे होता ?

"मेरा ही बल कुछ कर सकता तो अब वह क्यों नहीं करता ? परंतु आश्चर्य तो इस बातका है कि प्रभुने दया करके इतना योग प्रदान किया और अबतक उसका क्षेत्र-विस्तार भी बराबर हो रहा है। फिर क्या कारण है कि बचा हुआ 'योग' प्राप्त होनेमें विलम्ब हो रहा है। अतएव इसमें कहींपर दोष है तो वह मेरी अनन्यतामें ही है। नित्याभिमुख हुए बिना 'योगक्षेम'का वहन परमात्मा क्यों करें ? परंतु फिर वही प्रश्न आता है कि अनन्यता तो पहले भी नहीं थी, नित्याभिमुख तो मैं पहले भी नहीं था। फिर क्या कारण है कि उस समय तो इतना हुआ और अब नहीं होता ? क्या प्रभुके अनुग्रहमें विषमता है ? नहीं, यह तो असम्भव बात है। वहाँ अगर विषमता होती तो पहले ही इतनी दया क्यों होती ? कहीं-न-कहीं मेरा ही कोई महान् दोष है, जो प्रभुकी पद-पदपर प्रकट होनेवाली अपार कृपाका अनुभव नहीं होने देता। पर इस दोषको दूर करना भी प्रभुके ही अधिकारमें है। यदि मैं ही दोष हटा सकता तो अबतक हटा क्यों नहीं देता ? अतः सब तरहसे दोषी-निर्दोष, साधक-असाधक––जो कुछ भी क्यों न समझा जाऊँ वा होऊँ, अब तो बेड़ा पार होना ही चाहिये।

"माना कि प्रेम-परीक्षा होती है; पर मैं कब कहता हूँ कि मुझमें प्रेम है। प्रेम होता तो बिना मर्जीके ही प्रभुको बँधना पड़ता। फिर तो इतनी अनुनय-विनय करनेकी आवश्यकता ही मुझे नहीं होती। गरज होती, प्रेमकी भूख होती तो स्वयं सूरदासजीके कृष्णकी भाँति उन्हें मेरे पीछे-पीछे फिरना पड़ता। परंतु यहाँ तो प्रेमहीनको अपनाकर जबर्दस्ती प्रेमी बनाना है। फिर प्रेमकी परीक्षा क्यों होती है ? प्रेम हो तो परीक्षा हो; पता नहीं, इसका क्या अर्थ है ? मुझे तो कभी आश्चर्य होता है और कभी हर्ष।"

भाईजीके हृदयमें साधनकी तीव्रताके लिये कितनी छटपटाहट थी तथा भगवान्की कृपाको सक्रिय करने-वाला दैन्य भी कितनी मात्रामें उनमें पनप चुका था, यह इस पत्रसे स्पष्ट हो जाता है। भक्तकी आतुरता, अधीरता, दैन्य आदि ही भगवान्को अपनी कृपाका प्रकाश करनेके लिये विवश करता है। फिर भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु हैं; भक्तके हृदयमें छटपटाहट हो और वे व्यवस्था न करें, यह सम्भव नहीं है। भगवान् भाईजीकी अन्तर्व्यथाको देख-सुन रहे थे और उसीके अनुरूप घटनाचक्र घुमा रहे थे। पर यह सब हो रहा था पर्देके पीछेसे।

श्रीसेठजीके स्वास्थ्य-लाभके लिये अनुष्ठान

भाद्रमास १९८३में श्रीसेठजी अकस्मात् अस्वस्थ हो गये। उपचार हुए। किंतु उनसे कोई लाभ देखनेमें नहीं आया तो स्वजनों एवं शुभचिन्तकोंको चिन्ता हुई। बीकानेर-निवासी पं० श्रीगणेशदत्तजी व्यास सेठजीके यज्ञो-पवीत-गुरु थे। उनका ज्योतिष तथा तन्त्रशास्त्रपर अच्छा अधिकार था। उन्होंने श्रीसेठजीकी जन्मपत्री देखी तथा ग्रहोंका विचार किया तो उन्हें पता चला कि ग्रह बहुत कड़े हैं, उनकी शान्ति आवश्यक है; अन्यथा शरीरकी हानि हो सकती है। उनका विचार हुआ कि रोगशमनके लिये ग्रहशान्तिके निमित्त अनुष्ठानकी व्यवस्था करनी चाहिये। उन्होंने यह बात श्रीसेठजीके कुटुम्बियोंसे कही, किंतु किसीने उन्हें इस कार्यके लिये प्रोत्साहित नहीं किया। श्रीव्यासजीका श्रीसेठजीपर बड़ा स्नेह था; वे यह भी जानते थे कि भाईजीकी श्रीसेठजीपर अगाध श्रद्धा है। अतः उन्होंने यह संवाद एक पत्रद्वारा इनके पास पहुँचाया। पण्डितजीने उसमें लिखा था––'अनुष्ठान तो हम कर देंगे, किंतु व्यय तुम्हें वहन करना होगा।' भाईजीने श्रीव्यासजीके प्रस्तावका सहर्ष अनुमोदन करते हुए उसके व्ययका सारा प्रबन्ध अपनी ओरसे कर दिया तथा किसीसे भी इसकी चर्चा नहीं की। भगवान्की कृपा, अनुष्ठान पूर्ण होते-होते श्रीसेठजी स्वस्थ हो गये।

'कल्याण'का प्रवर्त्तन

बम्बई-जीवनकी सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है––'कल्याण'का प्रवर्त्तन। संवत् १९८२की बात है। उन दिनों भाईजीके निर्गुण-निर्विशेषका ध्यान चल रहा था तथा उसमें भाईजीकी पर्याप्त प्रगति भी हो गयी थी। साथ ही उनकी अपनी स्वतन्त्र पारमार्थिक इच्छा भी नहीं रही थी। अपने हृदयके भावोंका परिचय देते हुए एक पत्रमें भाईजीने श्रीसेठजीको लिखा था––

"साधकके अन्तरकी प्रत्येक भावना और चित्त-तरंगकी प्रत्येक क्षुद्र-से-क्षुद्र लहरीको अन्तर्यामी प्रभु जानता है; साधक तो, बस, प्रभुके इङ्गितके अनुसार चलता रहे'—यह उपदेश इस बार सत्सङ्गमें सुना, तबसे न आशा है न निराशा, न इच्छा है न अनिच्छा। न बन्धनका पता है न मोक्षकी अभिलाषा।"

इस प्रकार अपनी उन्नतिकी चाह न होनेपर भी भाईजीके कोमल हृदयमें एक अन्य चाह बलवती हो चली थी कि 'सांसारिक जीव कैसे सुखी हों ?' जीवोंके दुःखका चित्र इनके सामने आता था और ये उनके दुःखका ठीक-ठीक अनुभव करते हुए उसके निराकरणके लिये बड़े चिन्तित हो जाते थे। इस अवस्थामें सं० १९८२के चैत्रमासमें भाईजीने श्रीसेठजीको एक पत्रमें लिखा—'देखा जा रहा है कि संसारके जीव बहुत दुःखी हो रहे हैं। किसी भी दशामें उन्हें शान्ति नहीं है। देश-देशमें, घर-घरमें कलह हो रहा है। जीव एक-दूसरेका अनिष्ट कर रहा है। ऐसी स्थितिमें इन जीवोंका उद्धार अवश्य होना चाहिये। जगत् तो इस दुःख-दावानलमें दग्ध हो रहा है। ऐसी स्थिति बनी रही तो थोड़े ही दिनों बाद घर-घरमें, भाई-भाईमें भयानक मार-काट होनी सम्भव है। लोगोंमें भगवान्‌के प्रति विश्वास उठता जा रहा है। दिन-पर-दिन जगत्‌का भविष्य—कम-से-कम एक बारके लिये तो अत्यन्त भयानक दीखता है। ऐसी स्थितिमें जीव कबतक पड़ा रहेगा ? भगवत्कृपाका अनवरत प्रवाह बहाये बिना, भला, किस प्रकार उन्हें शान्ति मिल सकती है। यदि जीवको अपने ऊपर रहनेवाली नित्य भगवत्कृपा-का सरलतासे अनुभव होने लगे तो जीव कृतार्थ हो जाय। पर मायाकी कितनी प्रबल शक्ति है। परमात्माकी असीम कृपाका पद-पदपर प्रत्यक्ष दर्शन करता हुआ भी मोहावृत्त जीव बार-बार भूल जाता है। पर वह प्यारा अपनी मनोहर छटा दिखलाकर बारंबार आता है। यदि जीव उसे पकड़ ले तो वह अपनेको पकड़वानेको भी तैयार जान पड़ता है। पर आश्चर्य तो यह है कि जीव उसे पकड़ता नहीं, हाथमें आये हुएको छोड़ देता है। जिस समय वह किसी और रूपमें अपनी सत्ता दिखलाता है, उस समय तो इसे कुछ आनन्द-सा होता है, पर उस आनन्दमें आनन्दरूपको न पहचानकर जीव उसे छोड़ देता है। फिर पश्चात्ताप होता है। मालूम नहीं, वह पश्चात्ताप असली होता है या बनावटी। असली होता तो क्यों नहीं उसे पकड़ लेता ? वह तो बारंबार पकड़वानेका मौका देता है। ऐसी स्थितिमें जीवका मोह कैसे नाश हो ? किस जादूसे जीव मोहसे छूट सके ? जिस उपायसे जीवके अन्तरमें तत्काल बिजली-सी दौड़ जाय, उसे चेतना हो जाय और वह उस चेतनाको पकड़ ले, उन्हें किसी भी तरह छोड़े ही नहीं, किसी भी भुलावेमें वह न भूले—यह उपाय होना ही चाहिये।'

यह थी भाईजीके हृदयमें जगत्‌के जीवोंके दुःखनिवारणके लिये व्यथा। भक्तके हृदयमें उत्पन्न व्यथा भगवान्‌में प्रतिबिम्बित हो जाती है। भक्तकी करुण पुकारपर ही तो भगवान् अवतार लेते हैं। भाईजीकी अन्त-र्व्यथापर भगवान्‌की कृपाशक्ति सक्रिय हो गयी और एक वर्षके पश्चात् अर्थात् चैत्र शुक्ल ९, सं० १९८३को 'कल्याण'के प्रवर्त्तनकी व्यवस्था हो गयी तथा श्रावण कृष्ण ११, सं० १९८३को उसका प्रथम अङ्क प्रकाशित हुआ। भगवान् भाईजीके द्वारा विविध रूपोंमें सेवा ग्रहण कर ही रहे थे; अब उन्होंने उसका एक ठोस रूप 'कल्याण'के रूपमें प्रस्तुत किया और भाईजी भगवान्‌के हाथके यन्त्ररूपमें उसकी सेवामें लग गये। प्रथम अङ्कने ही देशके बड़े-बड़े मनीषियों, संतों, महात्माओं, विद्वानों, भक्तों, व्यापारियों आदिको मुग्ध कर दिया। उसके प्रवर्त्तनकी गाथा विस्तारपूर्वक आगे दी जायगी।

गङ्गातटवासकी अभिलाषा

भगवान् भाईजीके जीवनको तीव्रतासे अपनी ओर खींच रहे थे। भगवान् जिसके जीवनको अपनी ओर खींचना चाहें—वह, भला, जगत्‌में कैसे फँसा रह सकता है। उसके मनमें स्वतः जगत्‌के प्रपञ्चसे वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है। फिर तो बाँध टूटनेपर जल-प्लावनका प्रवाह जैसे बड़े वेगसे आकर गाँवोंको बहा ले जाता है, वैसे ही विषयतृष्णाका बाँध टूट जानेपर प्राणोंमें भगवत्प्रेमके जिस प्रबल उन्मत्त वेगका संचार होता है, वह सारे बन्धनोंको एवं प्रतिबन्धोंको तत्काल ही छिन्न-भिन्न कर डालता है। अपने प्रेमीके अभिसारमें दौड़नेवाली प्रेमिकाकी

भाँति उसे रोकनेमें किसी भी सांसारिक प्राणी-पदार्थ-प्रलोभनकी शक्ति समर्थ नहीं होती। वह अनन्तका यात्री अनन्त परमानन्द-सिन्धु-संगमका पूर्ण प्रयासी बन जाता है। यही स्थिति भाईजीकी हो रही थी। उनका मन जगत् तथा जगत्के कार्योंसे हट रहा था—काम-धंधेसे उन्हें उपरामता हो रही थी। 'परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थसे मेरी तृप्ति होगी ही नहीं'—यह धारणा उनकी दृढ़ बन गयी थी। अतएव उनकी समस्त क्रियाएँ परमात्माकी प्राप्तिके लिये होने लगीं। परमात्माकी प्राप्तिकी उत्कण्ठा भाईजीको उन्मत्त बनाने लगी—परमात्माको पानेके लिये इनके प्राण छटपटाने लगे। अतः इन्होंने समस्त सांसारिक बन्धनोंको तिलाञ्जलि देकर संन्यास ग्रहण करनेका विचार कर लिया और अपने लिये कमण्डलुकी भी व्यवस्था कर ली। पर, **'तेरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और'**—ये स्वतन्त्र नहीं थे, भगवान् अपने इच्छानुसार यन्त्रवत् इनका संचालन कर रहे थे। भगवान्से संन्यास ग्रहण करनेकी स्वीकृति नहीं मिली। अतः विवशतः गङ्गातटपर किसी एकान्त स्थानमें रहकर परमात्माको प्राप्त करनेकी साधना करनेका मनमें निश्चय किया गया। अब उस दिनकी प्रतीक्षा होने लगी, जिस दिन यह सुयोग संघटित हो जाय। हृदयकी आकुलता वाणीमें मुखरित हो गयी और ये गा उठे—

होगा कब वह सुदिन, समय शुभ, मायावी मन बनकर दीन।
मोहमुक्त हो, हो जायेगा पावन प्रभु-चरणोंमें लीन॥
कब जगकी झूठी बातोंसे हो जायेगी घृणा इसे।
कब समझेगा उसे भयानक, मान रहा रमणीय जिसे॥
पुण्यभूमि ऋषिसेवितमें कब होगा इसका निर्जन-वास।
गङ्गाकी पुनीत धारासे कब सब अघका होगा नाश॥
कब साधनके प्रखर तेजसे सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषयविमुख हो, हरिकीविमल भक्तिको पायेगा॥
कब यह मोह-स्वप्न छूटेगा, कब प्रपञ्चका होगा बाध।
पर-वैराग्य प्रकट कब होगा, कब सुख होगा इसे अगाध॥
कब प्रतिबिम्ब बिम्ब होगा, कब नहीं रहेगा चित्-आभास।
निजानन्द निर्मल अज-अव्ययमें कब होगा नित्य निवास॥

('कल्याण' वर्ष १, पृष्ठ ३६२)

अग्रवाल-महासभाका कलकत्ता-अधिवेशन

बढ़ती हुई उपरामताको तीव्र करनेकी अभिसंधिसे भगवान्ने कलकत्तामें 'मारवाड़ी-अग्रवाल-महासभा'के अधिवेशनकी व्यवस्था की।

संवत् १९८४के चैत्र शुक्लमें यह अधिवेशन बड़े गरम वातावरणमें हुआ। इस बार महासभाके दोनों परस्परविरोधी वर्ग आमने-सामने आ गये—एक था सुधारवादी और दूसरा परम्परावादी, जिसे पंचायत-पार्टीके नामसे भी अभिहित किया जाता था। सुधारवादी लोग विधवा-विवाह, विलायत-यात्रा आदि प्रगतिशील सामाजिक प्रथाओंके समर्थक थे और पंचायत-पार्टी इनको आर्य-संस्कृतिके लिये घातक मानती थी। पंचायत-पार्टीके सदस्योंने श्रीसेठजीके पास तार भेजकर अपने विरोधियोंद्वारा आहूत कलकत्ता-सम्मेलनको सहयोग न देनेका उनसे अनुरोध किया। श्रीसेठजीने परामर्श करनेके लिये भाईजीको बाँकुड़ा बुलाया। वहाँ इनसे तथा अन्य मित्रोंसे परामर्श करके अन्ततोगत्वा कलकत्ता-सम्मेलनमें भाग लेनेके पक्षमें निर्णय हुआ। श्रीसेठजी और भाईजी कलकत्ता गये। कलकत्तामें महासभामें सम्मिलित होनेके लिये बाहरसे आनेवाले प्रतिनिधियोंके समक्ष विरोधीदलके लोग उग्र प्रदर्शन कर रहे थे। अतएव ये लोग हबड़ा स्टेशन न उतरकर एक स्टेशन पहले ही उतर गये और वहाँसे कलकत्ता चले गये। कलकत्तामें ये लोग 'गोविन्द-भवन'में ठहरे। प्रातःकाल पहुँचते ही नित्यकर्मसे निवृत्त होकर भाईजीने दोनों दलोंमें आपसमें द्वेष मिटे—मित्रता हो, इस उद्देश्यसे बड़ा ही विचारपूर्ण भाषण दिया। दोनों ओरके लोगोंपर

इस भाषणकी बहुत ही सुन्दर प्रतिक्रिया हुई । महासभाका अधिवेशन तीन दिन हुआ । तीनों दिन ही भाईजी-का अधिकांश समय समझौता करवानेमें व्यतीत हुआ। दोनों पार्टियोंके लोगोंको ये बड़े ही प्रेमसे खूब समझाते रहे, पर समझौता न हो सका। हाँ, भाईजीके बीचमें पड़ जानेसे यह लाभ अवश्य हुआ कि जो अधिक गड़बड़ होनेकी आशङ्का थी, वह न होकर अधिवेशनका कार्य सानन्द सम्पन्न हो गया।

श्रीसेठजी सैद्धान्तिक प्रश्नको लेकर अधिवेशनमें सम्मिलित नहीं हुए। पर भाईजी उदार स्वभावके थे। अतएव अधिवेशनवालोंके विचारोंसे असहमत होते हुए भी, महासभाके कार्यमें अवाञ्छनीय अशान्ति न हो—इस उद्देश्यसे वे उसमें सम्मिलित हुए । सचमुच इनकी उपस्थितिसे अधिवेशनका कार्य शान्तिपूर्वक पूर्ण हो गया।

इस सम्मेलनमें समाजके धनी-मानी तथाकथित कर्णधारोंके राग-द्वेष, चुगली-निन्दा, दुर्वाद-प्रलापादिका नग्न ताण्डव देखकर भाईजीको आन्तरिक कष्ट हुआ। उनके मनमें आया कि 'इस प्रकारके जातीय अधिवेशन आत्म-विज्ञापन, पद-लोलुपता तथा दुर्वृत्तियोंकी रङ्गभूमि बन गये हैं। अतः ऐसी संस्थाओंके कार्य-कलापोंमें सक्रिय भाग लेनेसे अपनेको विरत कर लिया जाय।'

अधिवेशनके पश्चात् भाईजी अपनी जन्मभूमि आसाम गये । इनके सास-ससुर गौहाटीमें रहते थे और उन दिनों उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। भाईजी गौहाटी पहुँचे। कलकत्ताके राग-द्वेषके नग्न दृश्यको देखनेसे व्यवहार-संकोच करनेकी वृत्ति बड़ी प्रबल हो उठी थी। इन्होंने वहीं निश्चय कर लिया कि बम्बईकी दूकानसे अलग होना है और दूकानवालोंको तार दे दिया कि दूकानके धरू सौदे (माथे और नावे)को बराबर कर दो।

व्यापारिक जीवनकी इतिश्री

बम्बई रहकर भाईजीने लाखों रुपयोंका व्यापार किया, नफा-नुकसान हुआ; पर इनकी पारमार्थिक साधना ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी, त्यों-ही-त्यों इन्हें बम्बईके प्रपञ्चमय जीवनसे उपरामता होने लगी। अब इन्हें बम्बईमें एक-एक दिन भारी लगने लगा। पर इन्हें अभी 'चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद' फर्मसे अपना हिस्सा निकालना था। यद्यपि इनके पास उस समय पूँजी एकत्रित नहीं हुई थी, तथापि फर्ममें उस समय कुछ लाभ था। इसलिये अपने साझेदारसे इन्होंने अपना हिस्सा निकालनेका प्रस्ताव बड़ी ही नम्रतापूर्वक किया। साझेदार इनके व्यवहारसे इतने मुग्ध थे कि वे इनको छोड़नेको तैयार नहीं हुए; पर जब इन्होंने विशुद्ध परमार्थ-साधनके लिये ऐसा करनेकी बात उन्हें समझायी तो वे राजी हो गये । भाईजीकी उपरामवृत्तिसे वे अच्छी प्रकार परिचित थे। साझेदार व्यावहारिक व्यक्ति थे। मनमें भाईजीके प्रति स्नेह एवं सम्मान होते हुए भी उन्हें अपना स्वार्थ प्रिय था। अतएव उन्होंने हिसाबमें इच्छानुसार जमा-खर्च किया। भाईजीको इसकी कुछ भी परवाह न हुई । इनकी एकमात्र यही कामना एवं चेष्टा रही कि सद्भावपूर्वक काम सलट जाय। साझेदारने जैसे-जैसे लिखापढ़ी करनेको कहा, इन्होंने वैसे-वैसे सब कर दी और व्यापारके क्षेत्रसे अलग हो गये—सदाके लिये। फिर जीवनभर कोई भी काम आजीविका-उपार्जनका इन्होंने नहीं किया।

संसारकी नश्वरताकी अनुभूति

भाईजीका मन पारमार्थिक साधनाकी ओर बढ़ रहा था और भगवत्कृपासे बम्बईके प्रपञ्चमय जीवनसे उन्हें उपरामता होने लगी थी। दैवप्रेरणासे जगत्की नश्वरताके विविध चित्र इनके सामने आ रहे थे। उसी समय एक विशेष चित्र सामने आया। भाईजीके एक मित्र थे, वे बड़े ही शौकीन थे। अपने शरीरकी सार-सँभालका वे बड़ा ध्यान रखते थे। पर दैवकी गति विचित्र है। वे अचानक बीमार हुए और उनका शरीर छूट गया। परिवार एवं स्वजनोंके हृदय चीत्कार कर उठे। सबने रोते-रोते अर्थी तैयार की और शवको श्मशानघाट ले चले। भाईजी भी उस शव-यात्रामें थे। श्मशानघाटपर पहुँचनेपर चिता बनायी गयी और उसपर मित्रका शव रख दिया गया। आगका संयोग होते ही चिता धू-धू करके जल उठी और मित्रका वह शरीर, जिसे वह दिनभर सजाया करता था, जलने लगा। वे सुन्दर-सुन्दर केश फुर-फुर जलते हुए क्षणोंमें राख हो गये । भाईजी यह

सब दृश्य देख रहे थे। इनके हृदयमें एक अजीब-सा कम्पन हुआ। जगत्‌के इस नश्वर रूपको देखकर वैराग्यकी भावना प्रखर होने लगी। वहीं श्मशानभूमिमें जलती चिताकी ओर देखते हुए ये मन-ही-मन गुनगुनाने लगे और हृदयकी भाव-तरंगोंने वाणीका रूप ले लिया। वहीं श्मशानमें एक लंबा पद बन गया, जो इस प्रकार है—

पलभर पहले जो कहता था, यह धन मेरा यह घर मेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥
जिस चटक-मटक औ फैशनपर तू है इतना भूला फिरता।
जिस पद-गौरवके रौरवमें दिन-रात शौकसे है गिरता॥
जिस तड़क-भड़क औ मौज-मजोंमें फुरसत नहीं तुझे मिलती।
जिस गान-तान औ गप्प-शप्पमें सदा जीभ तेरी हिलती॥
इन सभी साज-सामानोंसे छुट जायेगा रिश्ता तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ १॥
जिस धन-दौलतके पानेको तू आठों पहर भटकता है।
जिन भोगोंका अभाव तेरे अन्तरमें सदा खटकता है॥
जिस सबल देह, सुन्दर आकृतिपर तू इतना अकड़ा जाता।
जिन विषयोंमें सुख देख रहा, पर कभी नहीं पकड़े पाता॥
इन धन-जोबन, बल-रूप—सभीसे टूटेगा नाता तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ २॥
जिस तनको सुख पहुँचानेको तू ऊँचे महल बनाता है।
जिसके विलासके लिये निरन्तर चुन-चुन साज सजाता है॥
जिसको सुन्दर दिखलानेको है साबुन-तेल लगाता तू।
जिसकी रक्षाके लिये सदा है देवी-देव मनाता तू॥
वह धूलि-धूसरित हो जायेगा सोने-सा शरीर तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ३॥
जिस नश्वर तनके लिये किसीसे लड़नेमें नहिं सकुचाता।
जिस तनके लिये हाथ फैलाते, जरा नहीं तू शरमाता॥
जो चोर-डाकुओंके डरसे नित पहरोंके अंदर सोता।
जो छायाको भी भूत समझकर डरता है, व्याकुल होता॥
वह देह खाक हो पड़ा अकेला सूने मरघटमें तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ४॥
जिन माता-पिता, पुत्र-स्वामीको अपना मान रहा है तू।
जिन मित्र-बन्धुओंको, वैभवको अपना जान रहा है तू॥
है जिनसे यह सम्बन्ध टूटना कभी नहीं तैंने जाना।
है जिनके कारण अहंकारसे नहीं बड़ा किसको माना॥
यह छूटेगा सम्बन्ध सभीसे, होगा जंगलमें डेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ५॥
है जिनके लिये भूल बैठा उस जगदीश्वरका पावन नाम।
तू जिनके लिये छोड़ सब सुकृत पापोंका है बना गुलाम॥
रे भूले हुए जीव! ये सब कुछ पड़े यहीं रह जायेंगे।
जिनको तैंने अपना समझा, वे सभी दूर हट जायेंगे॥

हो जा सचेत, अब व्यर्थ गवाँ मत, जीवन यह अमूल्य तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ६ ॥

——जगत्‌में स्वजनों-मित्रोंकी मृत्युके प्रसङ्ग बराबर आते हैं, पर भाईजीके संवेदनशील पवित्र हृदयपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। बम्बईको सदाके लिये नमस्कार करनेकी इनकी बढ़ती हुई प्रवृत्तिको इस प्रसङ्गने भी बढ़ावा दिया।

एक महात्माकी सेवा

कलकत्तासे लौटनेपर भाईजीको एक महात्माकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ। राजस्थानके प्रसिद्ध संत श्रीउत्तमनाथजी महाराज बम्बई पधारे। नाथजी महाराजने 'अनुभव-प्रकाश' नामसे एक ग्रन्थ तैयार किया था। उस ग्रन्थको छपवानेके लिये वे बम्बई पधारे थे। महाराजजीकी इच्छा थी कि पुस्तक शुद्ध छपे। हिंदी भाषाका ज्ञान महाराजजीको विशेष नहीं था। इसलिये 'प्रूफ-संशोधन' की सेवा भाईजीके ऊपर आयी। इनके पास समयका बड़ा संकोच था, फिर भी इन्होंने नाथजी महाराजकी सेवा स्वीकार की। समय निकालकर ये वेंकटेश्वर-प्रेसमें जाते तथा महाराजजीके सामने ही प्रूफ-संशोधन करते। आवश्यकता होनेपर महाराजजीकी सम्मतिसे भाषाका भी सुधार करते थे। नाथजी इनके साधु-स्वभावसे अतिशय प्रसन्न हुए। वे कृपा करके सत्सङ्ग-भवनमें नित्य प्रातः पधारते तथा वहाँ उनका वेदान्त-विषयक सुन्दर प्रवचन होता। लगभग डेढ़ महीनेमें 'अनुभव-प्रकाश' छपकर तैयार हुआ। महाराजजीकी सेवा पूर्ण हुई और उन्होंने अन्तर्हृदयसे भाईजीको आशीर्वाद दिया।

बिदा-कालका भागवत-अनुष्ठान

बम्बईसे अब शीघ्र चलना तो था ही। अतः प्रभुको एक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेके लिये १०८ विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा माधवबागमें श्रीमद्भागवतके १०८ सप्ताह-पाठका बृहत् आयोजन बिरला-बन्धुओंकी तरफसे करवाया गया। उन दिनों बिरला-परिवारके सभी सज्जनोंसे भाईजीका घनिष्ठ सम्बन्ध था। अनुष्ठानमें भाईजीने पण्डितोंके साथ ऐसा सुन्दर व्यवहार किया कि सभी मुग्ध हो गये और सबने अपने अन्तर्हृदयका आशीर्वाद उन्हें प्रदान किया।

भगवान् विष्णुका ध्यान

इधर कई वर्षोंसे निराकारके ध्यानका अभ्यास खूब तेजीसे हो रहा था; पर भगवान्‌को इनके द्वारा संसारमें सदाचार, धर्म एवं सगुण-भक्तिका प्रचार कराना था। इसलिये सं० १९८४के ज्येष्ठ मासमें बिना किसी प्रकारकी चेष्टाके सहसा निराकारके ध्यानकी जगह शिमलापालकी भाँति श्रीविष्णुभगवान्‌की मूर्तिका प्रत्यक्षवत् ध्यान होने लगा। ये ध्यानमें मस्त रहते हुए 'कल्याण'के 'भगवन्नामाङ्क'का सम्पादन बड़ी तत्परताके साथ करने लगे।

'कल्याण'का प्रथम विशेषाङ्क 'भगवन्नामाङ्क'

'कल्याण'की लोकप्रियता बढ़ रही थी। भाईजी भी यन्त्रवत् उसके कार्यमें संलग्न थे। शास्त्रों एवं संतोंके चरित्रोंका अध्ययन बड़े मनोयोगपूर्वक हो रहा था। संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी भाषाके अच्छे-अच्छे ग्रन्थ एकत्रित कर लिये गये थे और भाईजी रात-दिन उन्हींमें डूबे रहते थे। बड़ा उत्तरदायित्व सिरपर था——कोई ऐसी बात 'कल्याण'में न प्रकाशित हो जाय, जो शास्त्रोंको अभिमत न हो, जो परिणामतः किसीका अहित करनेवाली हो, जिसके पालनमें किसीके साधनमें विकृति आ जाय आदि-आदि। यथासम्भव दैनिक व्यवहारको शुद्ध करनेवाली, दैवी सम्पदाको बढ़ानेवाली, परस्पर प्रेम-सौहार्दकी वृद्धि करनेवाली, पर साथ ही जगत्‌की ओर बहनेवाली वृत्तिको भगवान्‌की ओर मोड़नेकी प्रेरणा देनेवाली——जगत्‌के प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियोंकी ओरसे निराशा उत्पन्नकर भगवान्‌की आशाको उद्‌बुद्ध करनेवाली बातोंको ही प्रधानता दी जा रही थी। साधनके रूपमें नाम-जप, भगवान्‌का पूजन तथा स्वरूपका ध्यान एवं भगवान्‌की कृपापर विश्वास करनेकी प्रेरणा दी जा रही थी। 'जप-यज्ञ'का आरम्भ हो चुका था और पाठक-पाठिकाएँ नियमितरूपसे उसमें आहुति डाल रही थीं। भाईजीकी यह दृढ़ आस्था एवं अनुभव था कि नाम-परायण होनेसे परमार्थकी ऊँची-से-ऊँची स्थिति सहज ही प्राप्त की जा सकती है। अतएव आगामी वर्षके प्रथम अङ्कमें 'भगवन्नाम'पर विशेष प्रकाश डालनेका निश्चय

किया गया। समाजमें शास्त्रोंके प्रति आदर था, पर पढ़े-लिखे लोग उनको वर्त्तमान समयके लिये अनुपयुक्त समझते थे। अतएव आवश्यकता इस बातकी थी कि समाजका जिन व्यक्तियोंके प्रति सद्भाव, सम्मान, श्रद्धा थी, उन लोगोंसे भगवन्नामके महत्त्व एवं प्रभावपर प्रकाश डलवाया जाय। इस हेतुसे प्रथम विशेषाङ्कके रूपमें 'भगवन्नामाङ्क' निकालनेका निश्चय किया गया। श्रीगम्भीरचंदजी दुजारी इस कार्यमें उनके सहयोगी थे। भगवान्‌के स्वरूपको तथा भगवन्नामकी महिमाको प्रकट करनेवाले प्रसङ्गोंके सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित तथा नामके महत्त्व एवं प्रभावका उद्घोष करता हुआ 'भगवन्नामाङ्क' प्रकाशित हुआ। यह एक सर्वथा नवीन एवं विलक्षण वस्तु थी। जनताने उसका बड़ा आदर किया।

'भगवन्नामाङ्क'के प्रकाशनसे श्रीभाईजीकी लेखन–सम्पादनकी योग्यतापर विद्वान्, महात्मा एवं भक्तलोग मुग्ध हो गये। चारों ओरसे बधाईके पत्र-संदेश भाईजीके पास आने लगे। भाईजी भीतर-ही-भीतर मुस्करा रहे थे कि भगवान्‌ने किस प्रकार उन्हें अपने हाथका यन्त्र बनाकर कार्य करवाया और अब किस प्रकार उसका सुयश दिलवा रहे हैं। साथ ही यह भी इनके मनमें था कि लोगोंकी प्रशंसासे कहीं गङ्गातटपर रहनेकी कामना दब न जाय। अतएव दोनों दृष्टियोंसे इस प्रशंसाके प्रति उनकी सहज वितृष्णा थी। पर श्रीसेठजी तथा सभी सत्सङ्गी भाई-बहन 'कल्याण'को उत्तरोत्तर उन्नत देखना चाहते थे। भाईजीने श्रीसेठजीसे 'कल्याण'-कार्यसे छुट्टी माँगी और शेष जीवन गङ्गातटपर रहकर भजन-साधनमें बितानेका अपना निश्चय बताया। श्रीसेठजी भाईजीकी सत्यता एवं साधनकी लगनपर मुग्ध थे। उन्होंने पत्रका उत्तर देते हुए अनुरोध किया कि "कल्याण'के सम्पादनका काम तो तुमको ही करना है––फिर तुम चाहे गङ्गातटपर रहो, चाहे और कहीं। हाँ, उसके मुद्रण एवं वितरणकी व्यवस्था गीताप्रेस, गोरखपुरसे हो सकती है। अतएव तुम बम्बईसे एक बार गोरखपुर आ जाओ। दो-तीन महीने वहाँ रहकर 'कल्याण'का काम वहाँके लोगोंको समझाकर पीछे तुम जहाँ जाना चाहो, चले जाना और वहींसे प्रतिमास छापनेकी सामग्री भेज दिया करना।" भाईजीको यह प्रस्ताव अपने मनके अनुकूल प्रतीत हुआ और इन्होंने इसको स्वीकार कर लिया तथा उसीके अनुरूप व्यवस्था करनेमें वे जुट गये।

मित्रकी स्नेहभरी सीख

भाईजीके बम्बई छोड़नेके निश्चयका समाचार पाकर उनके मित्र पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी उनसे मिलने आये। उन्होंने भाईजीसे कहा––"भाईजी! आप हमें छोड़कर जा रहे हैं, मन बड़ा भारी है। आपके जीवनकी सरलता, पवित्रता एवं सत्यताकी मेरे हृदयपर गहरी छाप पड़ी है। मैं चाहता हूँ कि आपका भावी जीवन भी ऐसा ही बना रहे और आप अपने साधनमें उत्तरोत्तर उन्नति करते रहें। मेरी समझसे इससे आपको एक बातमें बड़ा लाभ होगा––आप किसी भी 'सत्सङ्गी'से––जिसके साथ पारमार्थिक साधनाका सम्बन्ध हो––पैसेका सम्बन्ध कभी मत रखियेगा।" उनकी यह बात भाईजीने गाँठ बाँध ली और जीवनभर इन्होंने इस बातका ध्यान रखा कि परमार्थ-सम्बन्धी सलाह लेनेवालों तथा सत्सङ्गके निमित्त आने-जानेवालोंसे पैसेका सम्बन्ध न रखा जाय। श्रीजोशीजी महाराजकी इस सीखका उल्लेख कृतज्ञताभरे शब्दोंमें भाईजी जीवनभर करते रहे––'इस नियमका पालन करनेसे मेरा बड़ा उपकार हुआ। कई बार इस तरहके मौके आये। लोगोंने आग्रह किया, प्रलोभन दिया––'यह ले लो, वह ले लो;' पर श्रीजोशीजी महाराजकी सीखका ध्यान सदा रहा। लोगोंके आग्रहके कुछ दिन बाद यह स्पष्ट भी हो गया कि यदि उस समय उनका आग्रह मान लिया जाता तो कितनी फजीहत होती। पैसेका सम्बन्ध रखता तो लोग यही समझते कि यह सत्सङ्ग इसीलिये कराता है कि यह हमसे पैसा ऐंठना चाहता है। पैसा आता या नहीं ––यह तो भगवान् जानें; पर आता भी तो वह गिरानेवाला होता। इस नियमने मेरी सब प्रकारसे रक्षा ही रक्षा की।"

बम्बईसे बिदाई

भाईजी कहीं एकान्त स्थानमें रहते हुए भजन करनेकी कामनासे बम्बईसे बिदा ले रहे हैं—यह संवाद आगकी भाँति चारों ओर फैल गया। जो-जो इस संवादको सुनते, वे ही अधीर हो जाते कि क्या सचमुच भाईजी बम्बईसे हमलोगोंको छोड़कर जा रहे हैं। जहाँ दो-चार प्रेमी मिलते, वहीं चर्चा प्रारम्भ हो जाती––'भाईजी चले जायेंगे, पीछे हमलोगोंकी सँभाल कौन करेगा? कौन प्यार करेगा, कौन इतना मानेगा, कौन हमारे दुःखमें

आँसू बहायेगा, कौन हमारे आँसू पोंछेगा, कौन हमें सत्पथपर चलनेकी प्रेरणा देगा, कौन हमसे भगवन्नामका जप करवायेगा, कौन हमें गीताका उपदेश सुनायेगा, कौन हमारी छोटी-छोटी अच्छाइयोंकी प्रशंसा कर हमें प्रोत्साहन देगा, कौन उत्सवोंका आयोजन कर संत-महात्माओंके दर्शनोंका सुयोग प्रदान करेगा, कौन अनाथों, विधवाओं, गरीबों एवं असहायोंके लिये अन्न, वस्त्र, औषधकी व्यवस्था करेगा, कौन हमें सच्चा मानव बननेकी एवं मानव-जीवनके चरम लक्ष्य—भगवत्प्राप्तिको इसी जन्ममें प्राप्त कर लेनेकी बार-बार प्रेम एवं आग्रहके साथ प्रेरणा देगा ? इस प्रकारके भावोंसे भावित व्यक्ति भाईजीके पास जाकर अनुनय-विनय करते, उन्हें समझाते, अश्रुपूरित नेत्रों एवं अवरुद्ध कण्ठसे उनसे भीख माँगते—'आप हमें छोड़कर अन्यत्र न जायँ'।

भाईजी सबके सम्मान, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, आत्मीयता, सौहार्दका आदर करते और स्वयं द्रवितहृदय तथा आर्द्रकण्ठसे सबको समझाते एवं प्रार्थना करते—'मैं आपलोगोंके प्यारका ऋणी हूँ और सदा रहूँगा। यह आपलोगोंके सात्त्विक प्रेमभरे सम्पर्कका ही प्रभाव है कि मेरा मन अब इस प्रपञ्चसे उचट रहा है और मैं कहीं एकान्तमें रहकर—माँ गङ्गाकी गोदमें बैठकर भगवान्का स्मरण करना चाहता हूँ। आप मेरे हैं, मैं आपका हूँ। मुझे आप अपना मानते रहें—बस, यही प्रार्थना है, यही याचना है, यही भीख है। मेरे द्वारा यहाँ रहते हुए जाने-अनजाने अनेकानेक अपराध हुए हैं। उन सबके लिये मैं आप सब लोगोंसे क्षमाकी भीख माँगता हूँ। आपलोग अन्तर्हृदयसे आशीर्वाद दें कि मेरा शेष जीवन भगवच्चरणोंकी स्मृतिमें ही बीते, वही मेरा साधन और वही मेरा साध्य हो जाय।' आनेवालोंका हृदय भर आता, आँखें बरस पड़तीं और अन्तर्हृदयसे सद्भावना एवं आशीर्वाद निकलता—'आपकी कामना, आपका मनोरथ भगवान् पूर्ण करेंगे।'

इस प्रकार मान-प्रतिष्ठा, सुख-समृद्धिको हेय वस्तुकी भाँति त्यागकर अपने सीमित साधनोंसे अपना तथा परिवारका निर्वाह करते हुए भजन करनेकी उत्कट अभिलाषासे चल पड़ना किसी शूरवीरका ही काम है। भाईजी अपने ध्येयपर अटल थे। अतएव चारों ओरका प्यारभरा आग्रह उनको अपने निश्चयसे विचलित न कर सका। गोरखपुर चलनेकी तैयारी होने लगी और भाद्र कृष्ण १२, संवत् १९८४के दिन ३५ वर्षकी अल्प आयुमें अपना सब कारोबार निपटाकर सदाके लिये भगवच्चिन्तनमें लगे रहनेकी इच्छासे भाईजी बम्बईसे बिदा हो गये।

रात्रिको दिल्ली एक्सप्रेससे रवाना होना था। स्टेशनपर सहस्रों नर-नारी उपस्थित थे। इसमें समाजके प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके साथ सामान्य लोग भी थे। भाईजीने सबसे अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमाकी भीख माँगी और आजीवन अपनेपर कृपा बनाये रखनेकी प्रार्थना की। गाड़ी रवाना हो गयी। उपस्थित महानुभावोंने भगवान्के नामका जयघोष किया तथा भाईजीने डिब्बेके फाटकके पास खड़े होकर बरसते हुए नेत्रोंके साथ दोनों हाथ जोड़कर सबसे बिदा ली। गाड़ी बढ़ती गयी, लोग एकटक भाईजीकी ओर देखते रहे और भाईजी भी उसी प्रकार हाथ जोड़े सबकी ओर निहारते रहे। जब सब ओझल हो गये, तब भाईजी अपनी सीटपर आकर बैठ गये और बहुत देरतक वैसे ही बैठे रहे। उधर लोगोंने अपनी आँखें पोंछी और परस्पर यह कहते हुए—"भगवान्ने सच्चे प्यारकी एक जीती-जागती प्रतिमा—हमारा-जैसा ही एक भाई हमारे बीच भेजा था और आज उसे उन्होंने हमसे छीन लिया। नियति ! तुम बड़ी क्रूर हो, पर तुम्हारा मनोरथ सफल न हो पायेगा। तुम हमारे हृदयसे—हमारे मन-प्राणोंसे, हमारे भाईजीको, उनके प्यारको, उनके स्नेहको, उनके वात्सल्यको, उनके सौहार्दको, उनकी दयाको, उनके अपने-पनको छीन नहीं पाओगी। हम भाईजीके हैं, भाईजी हमारे हैं और सदा रहेंगे।" बम्बई शहरको पार करती हुई गाड़ी बढ़ती गयी। रात बीती, प्रातःकाल आया और गाड़ी खंडवा स्टेशनपर पहुँची। भाईजीने गाड़ीसे उतरकर वहाँ स्नान-संध्या की और अपने साथ जो भोजन-सामग्री लाये थे, उसमेंसे कुछ लेकर प्लेटफार्मपर बैठकर ग्रहण करने लगे। श्रीगम्भीरचंदजी दुजारी सनावदसे, जहाँ उनका व्यापार था, खंडवा आ गये थे। भाईजी श्रीदुजारीजीसे बम्बईके स्वजनों-मित्रों आदिके छलछलाते प्रेमकी चर्चा करने लगे। उस चर्चामें वे इतने डूब गये कि गाड़ीकी सीटी बजनेके पश्चात् वे दौड़कर उसपर सवार हुए। टिकटोंका बटुआ श्रीदुजारीजीके हाथमें था, वह उन्हींके हाथमें रह गया। दुजारीजी भी भाव-विभोर थे। जब गाड़ी दूर चली गयी, तब उन्हें टिकट अपने पास रह जानेकी बात स्मरण हुई। उन्होंने स्टेशन-मास्टरसे मिलकर सब स्टेशनोंपर तार दिलवा दिया, जिससे भाईजीको टिकटके लिये परीशानी न हो। दूसरे दिन श्रावण-पूर्णिमा थी। श्रावणीकर्म करना आवश्यक समझकर उस दिन भाईजी कानपुरमें ही ठहर गये और उन्होंने माँ गङ्गाके पावन तटपर बड़ी श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक श्रावणीकर्म किया। रात्रिमें वे गाड़ीपर सवार हुए एवं प्रातःकाल गोरखपुर पहुँच गये।

उत्तरयात्रा

परीक्षाकी घड़ियाँ

गोरखपुर पहुँचकर भाईजी 'कल्याण'के कामकी व्यवस्थामें लग गये। बम्बईसे इनके साथ श्रीशंकरलाल नामक एक सज्जन आये थे, जो वहाँ 'कल्याण'के आफिसका कार्य करते थे। बम्बईके मित्रों-सत्सङ्गियोंको भाईजीका अभाव अखरने लगा। कई व्यक्तियोंके करुण पत्र आये। दूसरे, भगवान्‌को इनके सामने प्रलोभन फेंककर इनकी चाहकी परीक्षा लेनी थी। सभी भक्तोंके जीवनमें स्वरूप-दर्शनके पूर्व इसी प्रकारकी परीक्षाएँ हुई हैं। गोरखपुर आये १५ दिन भी नहीं हुए थे कि बम्बईसे एक स्वजनका बड़ा ही आग्रहपूर्ण बुलावा आया। उनकी व्यापारिक स्थिति अत्यन्त डाँवाडोल हो गयी थी, भाईजीके प्रयत्नसे उसके सरलतापूर्वक सुलझ जानेकी आशा थी। अतएव उन्होंने भाईजीसे बम्बई आकर अपनी रक्षा करनेके लिये प्रार्थना की। भाईजीके हृदयमें उन स्वजनके प्यारके लिये एक विशेष स्थान था। अतएव--बम्बई गये और उन्होंने स्वजनके संकटकी निवृत्तिमें पूर्ण सहयोग प्रदान किया। बम्बई जानेपर इनके सामने भगवान्‌के भेजे हुए कई प्रलोभन आये, किंतु ये अविचल रहे। इन प्रलोभनोंकी चर्चा करते हुए भाईजीने एक बार बताया था--

"गोरखपुर आनेके १०-१५ दिन बाद '........'के कामसे मैं बम्बई गया। श्रीजमनालालजी बजाज स्वयं मिलने आये और बोले--'बापू (महात्मा गांधी) कहते हैं कि तुम गोरखपुर या और कहीं मत जाओ, यहीं रहो। बम्बईमें न रहना चाहो तो और कहीं रहो, पर हमारे (बापूके) साथ काम करो। तुम्हारे-जैसे व्यक्तियों-की इस समय आवश्यकता है।' मैंने कहा--'कहीं भी काम करनेका मन नहीं है।' श्रीजमनालालजीने वचन लिया--'अच्छा ! पर यदि कहीं भी काम करो तो हमसे पूछकर करना, हमारी रायके बिना मत करना।' मैंने उनके प्रेमपूर्ण आग्रहको स्वीकार किया और उन्हें वचन दिया--'कहीं भी काम करनेका मन हुआ तो आपको सूचित कर दूँगा।'

"एक प्रलोभन और आया--मेरे बम्बई पहुँचनेका समाचार पाकर श्रीरामनारायणजी रुइया बम्बई आये। वे उस समयके बड़े व्यापारी थे। उनकी ३-४ बड़ी मिलें थीं। वे पूनाके पास लोनावलामें रहते थे। बम्बईमें उनका कारोबार था। बहुत वृद्ध हो गये थे। मेरे पास आकर कहने लगे--'भाईजी ! देखें, मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ। मेरे ३-४ लड़के हैं, वे अभी काममें होशियार नहीं हुए हैं। आप उनके संरक्षक (गार्जियन) बन जाइये। आपको सालमें एक लाख रुपया मिल जायगा। रहनेके लिये अच्छा बँगला है, मोटरगाड़ी है। आपको कुछ करना नहीं है, केवल इनको सँभालना है।' मैंने निवेदन किया--'रुपयेका तो प्रश्न मेरे सामने नहीं है। पर आपके प्रेमपूर्ण आग्रहके सामने मैं क्या कहूँ, मैं आपके सामने बच्चा हूँ; पर मेरा विचार न तो बम्बईमें रहनेका है और न कोई काम करनेका। गोरखपुर कुछ दिनके लिये 'कल्याण'का काम सँभालनेके उद्देश्यसे जाना हुआ है। वहाँसे गङ्गातटपर एकान्तमें भजन करनेका मन है।' श्रीरुइयाजीको मेरी बात जँच गयी और वे लौट गये।"

ऋद्धि-सिद्धिकी प्राप्तिके लिये लोग क्या-क्या नहीं कर डालते। परंतु भाईजीने द्वारपर आयी हुई लक्ष्मीको लौटा दिया। प्रभुने परीक्षा ली, पर ये सर्वथा उत्तीर्ण हो गये।

भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा

इस प्रकार भगवान्‌ने परीक्षा लेनी चाही, पर भाईजी भगवान्‌की कृपा एवं वत्सलतासे ही इस परीक्षामें सर्वथा उत्तीर्ण हुए। बम्बईका काम पूरा करके भाईजी भाद्र शुक्ल ३, सं० १९८४को पुनः गोरखपुर आ गये और 'कल्याण'के दूसरे वर्षके दूसरे अङ्कके कार्यमें जुट गये। ऊपरसे ये सब कार्य कर रहे थे, किंतु इनके अन्तरमें भगवद्दर्शनकी लालसा पल-प्रतिपल तीव्र होती जा रही थी। मन छटपटा रहा था--'नाथ ! तुम यह क्या खेल खेल रहे हो--जो दीखते हुए भी नहीं दीखते, निकट होते हुए भी हाथ नहीं आते ? मन्द-मन्द मुस्कराते

हो और मनको लुभाते हो, किंतु सामने आकर मुझे हृदयसे नहीं लगा लेते---अपने प्यारसे मुझे अभिषिक्त नहीं कर देते ? नाथ ! अब तो तुम्हारे सिवा कुछ भी नहीं चाहिये। शीघ्र आओ---मेरे सामने चले आओ। विलम्ब न करो। मैं कबसे तुम्हारी बाट देख रहा हूँ। अब तो शीघ्र प्रकट होकर अपनी दिव्य ज्योति तथा भक्तचित्त-तापहारी छटा दिखलाओ। अब मुझसे रहा नहीं जाता---बिना तुम्हें देखे मन किसी प्रकार भी नहीं मानता।' हृदय भावोंसे उद्वेलित हो रहा था। उस समय इनके तन-मन-प्राणकी क्या स्थिति रही होगी, उसकी कल्पना भी हम संसारी जीव नहीं कर सकते। जिस महाभाग्यशाली व्यक्तिके हृदयमें ऐसी लालसा जगती है, वही उसको जानता है। भगवान्‌के दर्शनके लिये भाईजीके आकुल प्राणोंकी व्यथा मारवाड़ी भाषाकी निम्नलिखित काव्यमयी पङ्क्तियोंमें मुखरित हो उठी---

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै, एक तुही मन भावै है।
तनै मिलण नै आज मेरो, हिवड़ो उझल्यो आवै है॥
तळफ रह्यो ज्यूँ मछली जळ बिन, अब तूं क्यूँ तरसावै है।
दरस दिखाणै मैं देरी कर क्यूँ अब और सतावै है॥
पण जो इसी बात मैं तेरो चित राजी होतो होवै।
तो कोई भी आँट नहीं, मनै चाहै जितणो दुख होवै॥
तेरै सुख सैं सुखिया हूँ मैं, तेरे लिये प्राण रोवै।
मेरी खातर, प्रियतम ! अपणै सुख मैं मत काँटा बोवै॥
पण या निश्चय समझ, तनें मिलणै की खातर मेरा प्राण।
छिन-छिन मैं ब्याकुल होवै है, दरसण की है भारी टाण॥
बाँध तुड़ाकर भाग्या चावै, मानै नहीं किसी की काण।
आठूं पैहर उड्या-सा डोलै, पलक-पलक की समझै हाण॥
पण, प्यारा तेरी राजी मैं है नित राजी मेरो मन।
प्राणाधिक दोनूं लोकाँ को, तूँ ही मेरो जीवन-धन॥
नहीं मिलै तो तेरी मरजी, पण तन-मन तेरै अरपण।
लोक-बेद है तूँ ही मेरो, तूँ ही मेरो परम रतन॥
चातक की ज्यूँ सदा उडीकूँ, कदे नहीं मुँह नैं मोड़ूँ।
दुख देवै, मारै, तळफावै, तो भी नेह नहीं छोड़ूँ।
तरसा-तरसाकर जी लेवै, तो भी तनै नहीं छोड़ूँ।
झाँकूँ नहीं दूसरी कानी, तेरै मैं ही जी जोड़ूँ॥

('कल्याण', वर्ष २, पृष्ठ १६४)

हृदय जब उद्वेलित होता है, तब भावोंका प्रभाव फूट पड़ता है अनन्त स्रोतोंके रूपमें। यही स्थिति थी भाईजीकी। ये उस दिव्य रूप-माधुरीको प्राप्त करनेके लिये अपना सर्वस्व होमनेको तैयार थे---

मिलनेको प्रियतमसे जिसके प्राण कर रहे हाहाकार।
गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी दूरीको वह किसी प्रकार॥
नहीं ताकता किंचित् भी शत-शत बाधा-विघ्नोंकी ओर।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते मधुर बाँसुरी नन्दकिशोर॥
मिली हुई जो कहीं भाग्यवश उसको हैं आँखें होती।
वही जानता कीमत, जो उस रूप-माधुरीकी होती॥
कुछ भी कीमत हो, परंतु है रूप-रसिक जन जो होता।
दौड़ पहुँचता लेनेको तत्काल, नहीं पलभर खोता॥

सचमुच इनके तन-मन-प्राण भगवान्‌की रूप-माधुरीके दर्शनके लिये छटपटा रहे थे––न दिनमें चैन था न रातमें नींद। अजीब-सी आकुलता हृदय और आँखोंमें छायी हुई थी !

भगवान् श्रीविष्णुके दर्शन

भक्तके हृदयकी छटपटाहट भगवान्‌के हृदयमें प्रतिबिम्बित हो जाती है और वे अपने प्राकट्यकी भूमिकाका निर्माण कर देते हैं। श्रद्धेय श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) स्वास्थ्यलाभके लिये जसीडीह (बिहार)में बिराज रहे थे। श्रीसेठजीको भाईजीके हृदयकी आकुलताका परिचय मिला। उन्होंने तार देकर भाईजीको अपने पास बुलाया। भाईजी जसीडीह पहुँचे और इन्होंने श्रीसेठजीसे एकान्तमें बड़े ही प्रेमसे बातें कीं। इन्होंने भगवान्‌के दर्शनकी अपनी एकान्त अभिलाषाको उनके समक्ष रख दिया। भाईजीके प्रेमी मित्र श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया उस समय वहीं थे। भाईजी उनसे भी अपने हृदयकी लालसाको छिपा न सके। कानोडियाजीने भाईजीको और भी उत्साहित किया। सजातीय प्रेरणा प्राप्तकर लालसा तीव्रतर हो गयी। संवत् १९८४, आश्विन कृष्ण ६, शुक्रवारके दिन भाईजी श्रीसेठजीके पास बैठे हुए थे। श्रीसेठजी अस्वस्थ थे; अतः वे पलंगपर लेटे हुए थे। भाईजीके समीप श्रीघनश्यामदासजी जालान बैठे थे। ध्यानविषयक चर्चा चल पड़ी। भाईजीने बताया कि किस प्रकार शिमलापालमें खुली आँखोंसे भगवान् विष्णुका ध्यान होने लगा था, पीछे कुछ समयके लिये निर्विशेष ब्रह्मका ध्यान हुआ; इसी बीच भगवान् श्रीरामचन्द्रके ध्यानमें दर्शन हुए तथा इस समय पुनः भगवान् विष्णुका ध्यान होता है। श्रीसेठजीने कहा––'भगवान्‌का दर्शन होनेके बाद तत्वज्ञान उसी समय हो जाना चाहिये। यदि कोई प्रतिबन्ध होता है तो उस समय नहीं होता। किंतु उसका भार भगवान्‌पर आ जाता है और वे पुनः एक, दो, चार बार दर्शन देकर उसको तत्वज्ञान करा देते हैं। जिसको एक बार भगवान्‌के दर्शन हो गये, उसकी मुक्तिमें तो कोई संशय रहता ही नहीं।'

इसके पश्चात् श्रीसेठजीने भाईजीसे पूछा––"तुमको जो विष्णुभगवान्‌का ध्यान होता है, उसके सम्बन्धमें तुम्हारी क्या धारणा है ? तुम उसको ध्यान मानते हो या साक्षात् दर्शन ?"

भाईजी––"बातचीत होने या स्पर्शके सिवा वह साक्षात्‌के-जैसा ही होता है।"

श्रीसेठजी––"यदि तुम उसको साक्षात् समझते हो तो चरणस्पर्श करनेकी कोशिश नहीं की क्या ? यह तो तुम्हारी दृढ़ भावना ही लगती है।"

भाईजी––"मुझे भी दृढ़ भावना ही लगती है। जबतक मैं ध्यान करता हूँ, तभीतक मूर्ति दिखलायी देती है। परंतु भगवान्‌के साथ आस-पासकी चीजें भी दिखलायी देती हैं।"

इतना सुननेपर श्रीसेठजीने कहा––"इसे तो ध्यानकी गाढ़-स्थिति समझना चाहिये।"

श्रीसेठजीके सोनेका समय हो गया था, अतएव भाईजी और श्रीघनश्यामदासजी वहाँसे उठ गये।

इस प्रकार सामान्य चर्चा हुई; किंतु इससे भाईजीके हृदयमें भगवान्‌के दर्शनोंकी जो उत्कण्ठा थी, वह बड़ी तीव्र हो गयी। श्रीकानोडियाजीसे श्रीसेठजीके प्रभाव और महत्वकी बातें ये सुन चुके थे। अतएव भाईजीके मनमें प्रबल इच्छा हुई कि भगवान्‌के साक्षात्कारके लिये श्रीसेठजीसे प्रार्थना करनी चाहिये। भाईजीने अपनी इच्छा श्री-घनश्यामदासजीसे व्यक्त की और वे दोनों दिनमें लगभग २ बजे श्रीसेठजीके पास गये। भाईजी अपनी इच्छाको श्रीसेठजीके सामने व्यक्त नहीं कर पाये थे कि श्रीसेठजीने कहा––'आज ध्यानके लिये पहाड़ीपर चलनेका विचार है।' दस-बारह व्यक्ति और आ गये और सब लोग पहाड़ीपर गये। आगे-आगे श्रीसेठजी चल रहे थे। कई स्थानों-पर दृष्टि गयी तथा साथियोंको वे स्थान पसंद भी आये, किंतु श्रीसेठजीने उनके लिये अपनी स्वीकृति नहीं दी। पीछे श्रीसेठजीने एक स्थान पसंद किया जो श्रीमहेन्द्र सरकारकी कोठीके दक्षिण-पूर्वभागमें सीताफलके वृक्षके समीप था। सब लोग वहाँ बैठ गये। श्रीसेठजीके सामने भाईजी बैठे और इनके अगल-बगल श्रीज्वालाप्रसादजी और श्रीघनश्यामदासजी थे।

श्रीसेठजीने भाईजीसे कहा—'हनुमान ! आँख खोले हुए जिस तरह भगवान्‌का ध्यान किया करते हो, उसी तरह करना चाहिये और ध्यानकी बात कहनी चाहिये ।' भाईजी चुप रहे, किंतु श्रीसेठजीका पुनः आदेश पाकर इन्होंने वन्दनाके चार श्लोकोंका पाठ किया—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

पीछे थोड़ी देर चुप रहकर भाईजी बोले—"मुझे जिस प्रकार भगवान्‌के रूपका दर्शन हो रहा है उसके अनुसार बोल रहा हूँ। आपलोग भी उसी प्रकार ध्यान करें।"

भाईजी कमलासीन श्रीविष्णुभगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करने लगे । थोड़ी देर बाद बोले—"चरणस्पर्श करनेके लिये मैं आगे हाथ बढ़ाना चाहता हूँ, परंतु बढ़ते नहीं हैं। हाथ रुक गये हैं ।"—इतना कहकर ये चुप हो गये तथा पुनः बोले—"हाथ तो बढ़ते हैं, पर भगवान् पीछेकी ओर सरक गये हैं।" फिर थोड़ी देर बाद बोले—"यह देखो, भगवान्‌के चरण मेरे समीप आ गये हैं, मैं स्पर्श कर रहा हूँ, आप भी स्पर्श करें।" इतनेमें ही ये जोरसे बोले—"भगवान् तो अन्तर्धान हो गये।"

श्रीभाईजीने यह सब दर्शन और उसका वर्णन खुली आँखोंसे किया। इसपर श्रीसेठजी बोले—"अन्तर्धान होनेकी बातका और तो क्या पता, परंतु मेरे मनमें यह स्फुरणा हुई कि हनुमानसे यह बात पूछूँ कि तुम ध्यानकी बात कहते हो या मैं कहूँ ।" इसपर श्रीभाईजी बोले—"ध्यानकी बात मैं ही कहूँगा, पर मुझे चरणोंका स्पर्श अवश्य होना चाहिये।" श्रीसेठजीने कहा—"जिस प्रकारसे ध्यान हुआ था, उस प्रकारसे होना सहज है, पर चरणोंके स्पर्शकी बात अगले (श्रीभगवान्)की मर्जीपर है।"

इतनेमें भाईजीकी पुनः वही स्थिति हो गयी और इनको फिर भगवान्‌के दर्शन होने लग गये । इनकी आँखें खुली हुई थीं। ये बोले—"किसीको दर्शन करना हो तो मेरे पास आकर दर्शन करो। भगवान्‌के चरण ये हैं; मैं स्पर्श कर रहा हूँ, आप लोग भी स्पर्श करें।" यों कहकर इन्होंने चरण पकड़नेके लिये हाथ आगे बढ़ाये और फिर बाह्यज्ञानशून्य होनेसे वहीं लुढ़क गये।

श्रीसेठजीने कहा—"घनश्याम, इसे उठाओ ।" श्रीघनश्यामदासजीसे भाईजी उठे नहीं। तब श्रीसेठजीके कहनेपर श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडियाने भाईजीको उठाकर अपनी गोदमें लिटा लिया। भाईजी निःस्पन्द और निश्चल अवस्थामें थे। लगभग डेढ़ घंटे श्रीज्वालाप्रसादजीकी गोदमें लेटे रहे।

भाईजीकी ऐसी अवस्था हो जानेपर श्रीसेठजीने भगवान्‌के ध्यानका वर्णन करना चाहा । आरम्भमें 'त्वमेव माता' आदि श्लोकोंका पाठ करके वन्दना की और 'प्रेमभक्तिप्रकाश' पुस्तिकामें वर्णित पूजा-पद्धतिके अनुसार मानसिक पूजा की। पीछे बहुत ही मार्मिक शब्दोंमें भगवान्‌की स्तुति की। स्तुति समाप्त होनेके कुछ देर बाद भाईजीने आँखें खोलकर पुनः आँखें बंद कर लीं। फिर थोड़ी देर बाद आँखें खोलकर बोले—"भगवान् तो चले गये।"

इसपर श्रीसेठजीने कहा—"हमलोगोंको भी चलना चाहिये ।" इसके बाद सब लोग उठ गये और जहाँ ठहरे थे, वहाँके लिये चल पड़े। आगे-आगे श्रीसेठजी चल रहे थे; पीछे श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया एवं श्रीघनश्यामदासजी जालान भाईजीको पकड़े हुए ला रहे थे। भाईजीको शरीरका होश बिलकुल नहीं था। उनके

पग डगमगा रहे थे। निवास-स्थानपर लानेके बाद लोगोंने इन्हें तख्तपर लिटा दिया। लेटे-लेटे हुए भी ये भावकी स्थितिमें बोल रहे थे—"भगवान् शेषशय्यापर लेटे हुए हैं।" आदि-आदि।

रात्रिमें भाईजीको नींद नहीं आयी। रातभर ये एक विशेष प्रकारके आनन्दमें मस्त रहे। भाईजीकी यह आनन्दमग्न विचित्र स्थिति देखकर उपस्थित सभी बन्धु इनके भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। कुछ लोगोंने तो कहा—"हमारा भी भाग्योदय कब होगा, जब हमें इस प्रकार भगवान्के साक्षात् दर्शन होंगे?"

उस दिन भगवान्के जो दर्शन भाईजीको हुए, उससे इनके तन-मन-प्राण शीतल हो गये। उस दिव्य रूप-छटाके दर्शनकर इनकी स्थिति विलक्षण हो गयी। भगवान्का जो रूप इन्होंने देखा, वह सर्वथा अचिन्त्य था, वाणीमें उसका वर्णन होना सम्भव नहीं है। परंतु भाईजीके हृदयका वह दर्शनोल्लास वाणीके रूपमें प्रकट हो गया और उसने एक पदका रूप ले लिया—

है जो त्रिगुणातीत, नित्य, अज, अव्यय, नाम-रूप-गति-हीन।
हिममें नीर-सदृश जो व्यापक सबमें, सबसे परे, अलीन॥
अद्वय कारण, अद्वय, जिसमें है सबका अत्यन्ताभाव।
शुद्ध बोधघन, सत्य, स्वस्थ, सनातन, रहित भावमय भाव॥

रवि-शशि-अनल प्रकाशित होते जिसका तेज अंश पाकर।
व्योम, वायु, रस, भूमि, अग्निका एकमात्र जो है आकर॥
अधिष्ठान सब जगका, निज मायामें रचता नाना वेश।
परद्रष्टा, अनुमन्ता, जो भर्ता, भोक्ता ईश्वर, परमेश॥

सुधा-सने सौन्दर्य-राशिका है जो अति अनुपम सागर।
त्रिभुवनकी सब रूप छटा है जिसकी नन्ही-सी गागर॥
कर अधीन निज-प्रकृति, योगमायासे अघटन घटनाकर।
है नित नूतन वेष धारता, विश्वविमोहन बाजीगर॥

सबका जो सर्वस्व, आत्मवित्, भक्तोंका जो जीवन-धन।
जिसके परमानन्द रूपसे, नित्यानन्दित हैं निज-जन॥
प्राणाधिक आराध्यदेव जो, नित नव-नव आनँद-निर्झर।
भक्तवश्य साकार सगुण, जन-मन-पङ्कजका जो दिनकर॥

जीवन-मन-तन-सुधि-हर होती जिसकी मधुर मन्द मुसकान।
जिसकी सुन्दर छटा निरखकर छुटती लोक-वेद-कुल-कान॥
देव, दनुज, मुनि, ऋषि, जिसके दर्शनको संतत ललचाते।
विविध भाँति तप-साधन करते, नहीं सहजमें हैं पाते॥
जन्म-जन्मसे लगी हुई थी जिनके दर्शनकी आशा।
रूप-सुधा-वारिधि-अवगाहनकी जिसके थी अभिलाषा॥
जिसने अपने मिलनेकी व्याकुलता भर दी थी मनमें।
विरहानल था धधक उठा, जिससे उसके सारे तनमें॥
वही ब्रह्म साकार प्रकट हो, अद्भुत दर्शन है देता।
सत्वर अगणित जन्मोंकी अघराशि पूर्ण है हर लेता॥
यह साधन-विहीन था, कारण किंतु एक बलवान अपार।
निश्चित ब्रह्मरूप गुरुवरकी थी अनुकम्पा पारावार॥

उनकी प्रेम-रज्जुसे हरिको बँधना पड़ा स्वयं तत्काल।
रखनी पड़ी अभय करनेको नत मस्तकपर भुजा विशाल॥
कोमल कर-स्पर्शसे जनको निर्भय नित्य पड़ा करना।
चरण-स्पर्श अभयवाणी, मधुर प्रसादसे दुख हरना॥

उस छवि-राशि अमितका वर्णन करनेमें वाणी लाचार।
मापा कभी न जा सकता है हाथोंसे आकाश अपार॥
भाग्यवती जिन आँखोंने वह देखी रूप-छटा अनुपम।
तृप्त हो गयीं, नहीं बता सकती हैं, वर्णनमें अक्षम॥

वाणी कुछ प्रयास करती है, नेत्रोंका सहाय लेकर।
मनमोहनके अतल रूपकी मधुर स्मृतिमें मन देकर॥
उस स्मृतिमें जाते ही तत्क्षण रूपमग्न मन हो जाता।
मनके रुकते ही वाणीका काम नहीं कुछ हो पाता॥

रुकी लेखनी, बंद हो गयी, चलता नहीं हाथ आगे।
क्षमा कीजिये प्रेमी पाठक, सरल पाठिका सद्भागे॥
पूर्ण प्रेमसे मिल करके, सब करिये उनका प्रेमाह्वान।
जिससे सत्वर पुनः प्रकट हों सबके सम्मुख श्रीभगवान॥

इस घटनाके ३ दिन पश्चात् भाईजीको पुनः श्रीविष्णुभगवान्‌के दर्शन हुए। दूसरे दिन भाईजीने श्रीसेठजीसे इन घटनाओंके सम्बन्धमें बातें कीं। भाईजीने प्रश्न किया—'भगवान्‌ने कृपा करके सबके सामने इस प्रकारका अपूर्व प्रभाव दिखाया। जो कार्य बहुत एकान्तमें होता है, वह इतने लोगोंके समक्ष क्यों हुआ और केवल मुझे ही दर्शन क्यों हुए?'

श्रीसेठजीने उत्तर दिया—इससे जगत्‌का लाभ ही होगा। यह काम समझकर ही हुआ है।

भाईजी—मैं तो पूछता हूँ कि इतना प्रत्यक्ष प्रभाव सब लोगोंके सामने होनेमें हेतु क्या है?

श्रीसेठजीने उत्तर दिया—'जिसके द्वारा भगवद्भक्तिके प्रचारकी अधिक सम्भावना होती है, उसको भगवान् इस प्रकारसे दर्शन देते हैं। दर्शन तो औरोंको भी देते हैं, परंतु यों सबके सामने नहीं देते। उदाहरणके लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी खोजमें वानरोंको भेजते समय केवल श्रीहनुमान्‌को ही अँगूठी दी। वे जानते थे कि इसीके द्वारा काम होनेवाला है, इसी प्रकार परमात्मा जिसके द्वारा विशेष काम होनेवाला समझते हैं, उसीको अपना दिव्य रूप दिखाकर प्रभावान्वित करते हैं।'

इस तथ्यकी भाईजीके भावी जीवन और कार्योंद्वारा पूर्णरूपसे पुष्टि होती है। इनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण' तथा गीताप्रेसके सम्पूर्ण साहित्यने देश-विदेशमें—सर्वत्र पहुँचकर करोड़ों-करोड़ों व्यक्तियोंको भगवान्‌की ओर लगाया। इसी प्रकार भाईजीके सम्पर्कसे, उनके भाषणोंसे, उनके पत्रों आदिसे कितने-कितने लोगोंको भगवद्भाव-की प्रेरणा मिली है—इसका लेखा-जोखा प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। भगवान् जिसको अपने हाथका यन्त्र बनायें, उसके लिये वे सब कुछ कर सकते हैं। भाईजीका जीवन इसका उज्ज्वल उदाहरण है।

भाईजी जसीडीहसे गोरखपुर आ गये। गोरखपुरमें जहाँ ये रहते थे, वहाँ नित्यप्रति सत्सङ्ग होता था। लोगोंको जसीडीहकी घटनाओंकी जानकारी हो गयी और वे भाईजीसे भाँति-भाँतिके प्रश्न करने लगे। भाईजी बड़े संकोचमें पड़ गये। घटना एकान्तमें होती तो उसे ये किसीके समक्ष प्रकटतक नहीं होने देते; किंतु भगवान्‌ने दस-पंद्रह व्यक्तियोंके समक्ष कृपा की थी। अब उसको छिपाना इनके लिये सम्भव नहीं था। उपस्थित लोगोंने

अपने स्वजनों, मित्रों, प्रेमियोंको इस घटनाकी सूचना दे दी। भाईजीके सामने सचमुच बड़े ही संकोचकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसी संकोचकी स्थितिमें आश्विन शुक्ल २, संवत् १९८४को भाईजीने श्रद्धेय श्रीसेठजीको एक पत्र लिखा—

श्रीहरिः

गोरखपुर
आश्विन शुक्ल २, संवत् १९८४

परम पूज्यवर,

हृदयसे प्रणाम।

सर्वसाधारणके सामने ऐसी अलौकिक घटना हो जानेसे बड़ा हल्ला-सा मच गया है। सम्भव है कि कुछ लोग इसमें मेरा कुछ प्रभाव समझें या बड़ाई करें, जैसे कि लक्षण दीख रहे हैं। वास्तवमें मुझे इसमें कोई भी अपनी बड़ाईकी बात नहीं दीखती। इससे मैं तो जो कुछ उचित समझता हूँ, वह लोगोंसे कहता ही हूँ, पर यदि लोग किसी तरहसे इस बातका यथार्थ तत्त्व जान जायँ कि इस घटनामें मेरा कोई बल, सामर्थ्य या प्रेम कारण नहीं है, इसमें केवल भगवत्कृपा ही प्रधान कारण है, तो सम्भवतः बड़ाईका कलङ्क दूर हो सकता है। लोगोंके पूछनेपर मैं कोई बात नहीं कहता तो ये दुःखित होते हैं और समझते हैं कि यह बात छिपाता है। इधर, कहनेमें अन्तःकरण और वाणीमें संकोच होता है तथा उन लोगोंका या मेरा कोई लाभ नहीं दीखता। इस स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये? यदि इतने जोरका आन्दोलन न होता तो इतनी बात नहीं होती; परंतु प्रभुके सदिच्छानुसार जो हुआ, वह बड़े ही मङ्गलके लिये हुआ है—इसमें कोई भी शङ्का नहीं है। इस सम्बन्धमें अन्तःकरणमें जो भाव उठते हैं, सिर्फ वे ही आपकी सेवामें लिखे गये हैं।

आनन्दमय, आनन्दमय, आनन्दमय!

अनुगत—
हनुमान

जसीडीहमें भगवान्के दर्शन देनेकी बात कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई आदि स्थानोंमें फैल गयी। लोगोंके पत्र भाईजी और श्रीसेठजीके पास आने लगे। उधर भगवान्ने पुनः दर्शन देकर भाईजीको कृतार्थ किया। उस दिनकी घटनाको भाईजीने अपनी डायरीमें लिख लिया था, जो इस प्रकार है—

श्रीहरिः

"सं० १९८४ वि०, आश्विन शुक्ला ६, रविवार ता० २-१०-१९२७ ई०

स्थान—कान्तिबाबूका बगीचा* (गोरखपुर शहरके बाहर), दक्षिण तरफके कमरेके पासवाला बीचका (बड़ा) कमरा।

समय—प्रातःकाल करीब साढ़े सात बजे सत्सङ्गके समय, कई लोग उपस्थित थे।

ध्यानकी बात हो ही रही थी, ध्यान भी हो रहा था। अकस्मात् परम प्रकाश हो गया, भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हुए। आकाशमें खड़े थे। करीब ५-६ मिनटतक दर्शन होते रहे। मुझसे कुछ भी बोला न गया। उनके मुखारविन्द और नेत्रोंसे कृपा झलक रही थी। जैसे पिता अपने पुत्रको और मित्र अपने मित्रको स्नेह और प्रेमकी दृष्टिसे देखता है—ऐसा भाव प्रत्यक्ष प्रतीत होता था। यह भी अनुभव हो रहा था कि भगवान् कुछ कहना चाहते हैं और फिर भी जब कभी उनकी या मेरी इच्छा हो, पधारकर दर्शन देनेके लिये प्रस्तुत हैं। कुछ समय बाद अकस्मात् अन्तर्धान हो गये। दिनभर उपरामता रही।"

इस घटनाकी सूचना देते हुए भाईजीने श्रीसेठजीको एक पत्र लिखा—

* यह वही स्थान है, जो आजकल गीताप्रेसके अधिकारमें है, और जिसका नाम है—गीतावाटिका नं० २।

श्रीहरिः

गोरखपुर
आश्विन शुक्ल ७, सं० १९८४

पूज्य चरणोंमें,

हार्दिक प्रणाम।

यहाँ प्रतिदिन प्रातःकाल ध्यानकी बातें होती हैं। कल प्रातःकाल ध्यानके समय करीब छः-सात मिनट आँखें खुले हुए, जसीडीहकी तरहसे ही श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होते रहे। कोई बुलाने या दर्शन करनेकी भावना भी जाग्रत् नहीं हुई थी, परंतु बड़ा ही विलक्षण आनन्द रहा। बुलानेकी इच्छा तो नहीं होती; परंतु अब ऐसा विश्वास होता है––जब इच्छा हो, तभी भगवान्‌के दर्शन और उनसे वार्तालाप हो सकते हैं।

अनुगत–
हनुमान

इस प्रकार भगवान्‌ने तीन बार प्रकट होकर भाईजीके नेत्रोंको सफल किया। जब भगवान् किसीपर कृपा करने लगते हैं, तब वे कृपा करते हुए अघाते नहीं। आश्विन शुक्ला द्वादशीको पुनः भगवान्‌ने प्रकट होकर दर्शन दिये। इस घटनाको भी भाईजीने अपनी डायरीमें लिख लिया था, जो इस प्रकार है––

"सं० १९८४ वि०, मिति आश्विन शुक्ला १२, शनिवार ता० ८–१०–१९२७ ई०।

स्थान––कान्तिबाबूका बगीचा, दरवाजेके सामनेवाली दक्षिणाभिमुखी कोठरी, जिसमें आफिस था।

"दिनके करीब १२ बजे उपरामताने जोर पकड़ा। मैं बाहर बैठा हुआ था। घरमें चूना पोतनेवाले मजदूरोंका काम देखनेकी चेष्टा कर रहा था कि अचानक किसीके द्वारा खींचा-सा जाकर कोठरीके अंदर चला गया और मैंने अंदरसे किवाड़ बंद कर लिये। उत्तरकी खिड़कीके पास कुर्सीपर बैठ गया और मनकी भावनाके अनुसार किसीके बैठनेके लिये सामने एक कुर्सी और रख ली। अकस्मात् प्रकाश हो गया। महान् शान्ति-सी प्रतीत होने लगी। मेरी उस समयकी अवस्थाका मैं वर्णन नहीं कर सकता। तत्काल ही भगवान्‌का आविर्भाव हो गया। मेरे सामनेकी कुर्सीपर एक बार उनका चरण-स्पर्श हुआ। फिर आकाशमें ही उनकी स्थिति रही। मैं मन्त्रमुग्ध-सा हो रहा था। मेरे आनन्दका पार नहीं था। प्रभु मेरे सामने स्थित हुए करुणा और प्रेमके साथ महान् आनन्दकी वर्षा कर रहे थे। मैं कुछ बोल नहीं सका, न स्तुति कर सका; चरणस्पर्श मैंने उसी समय कर लिये। मन-ही-मन भगवान्‌की इस अयाचित कृपाको देखकर परम आह्लादित हो रहा था। बहुत देरतक यह स्थिति रही। फिर भगवान् बोले, मानो आनन्दका समुद्र उमड़ा––'तेरी कुछ इच्छा बाकी है?' बड़ी हिम्मतसे एक-दो वाक्य मेरे मुँहसे निकले––'कुछ नहीं, केवल आप.....'

इस समय भगवान्‌की मधुर मुस्कान कुछ अनोखी ही थी। भगवान्‌ने हँसकर मानो मेरा समर्थन किया। फिर धीरे-धीरे बीच-बीचमें रुककर कुछ बातें कहीं––

'१. दर्शनोंकी बातें गुप्त रखनेमें ही अधिक लाभ है।

२. धर्मके नामपर परस्पर लड़नेवाले मेरा प्रभाव नहीं जानते।

३. मेरे अवतारका समय अभी बहुत दूर है।

४. जगत्‌का कुछ भला करना हो तो भेद छोड़कर नामका प्रचार कर। लोगोंसे कह दे कि इस कालमें नामसे ही सब कुछ हो जायगा। मेरे अवतारमें भी नाम ही हेतु होगा।

५. जो लोग नामका सहारा लेकर पापको आश्रय देते हैं, उनको सावधान कर कि उनकी शुद्धि यमराज भी नहीं कर सकता।

६. पापोंके नाश तथा भोगोंकी प्राप्तिके लिये भी नामका प्रयोग करना मूर्खता है। पापका नाश तो

फलभोग और प्रायश्चित्तसे भी हो जाता है। क्षणिक भोगोंकी परवाह नहीं करनी चाहिये। भोगोंके आने-जानेमें लाभ-हानि ही क्या है।

७. नाम तो प्रियसे भी प्रियतम वस्तु है। इसका प्रयोग तो इसीके लिये करना चाहिये।

८. दम्भ बहुत बढ़ गया है। दम्भ मेरी प्राप्तिमें सबसे बड़ा बाधक है। दम्भियोंसे सावधान रह और उनको भी सावधान कर दे कि उनकी बुरी गति होगी। काम-क्रोधसे भी दम्भ बुरा है।

९. किसीको भी मेरे दर्शनोंका पक्का आश्वासन मत दे।

१०. जसीडीहमें हुई बातोंके सिवा मेरी कही हुई बातोंका मेरे नामसे प्रचार कर।

११. अब इस तरह नहीं आऊँगा। तेरे बिना बुलाये ही दो बार आ गया। मुझे ये बातें कहनी थी; इसलिये अब जब भी चाहे, स्मरण कर बुला सकता है।'

इसके बाद भगवान् चुप हो गये। मैं बड़े हर्षके साथ उनकी ओर ताकता रहा। उस समय जगत्में मुझे उनके सिवा मानो कुछ नहीं भासता था। किसीकी स्फुरणातक नहीं थी। अकस्मात् श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये। मेरी स्थिरदृष्टि विचलित हो गयी। मैं देखता हूँ कि पूर्व औरकी खिड़कीसे 'श्री.....' ताककर देख रहे हैं। मैंने सामनेकी कुर्सीको अलग हटाकर किवाड़ खोल दिया। उस समय घड़ीमें करीब सवा-दो बजे थे। इसके बाद करीब चालीस घंटेतक उपरामता बनी रही।"

× × ×

जब भाईजीको भगवान्की कृपा प्राप्त हुई, उस समय उनकी धर्मपत्नी उनके पास नहीं थीं। वे रतनगढ़ थीं। भगवद्दर्शनका शुभ संवाद सुनकर वे अपनी सासके सहित रतनगढ़से गोरखपुर आ गयीं। जब वे एकान्तमें अपने पतिदेवसे मिलीं, तब उनके नेत्रोंसे हर्ष एवं दुःख-मिश्रित आँसू बहने लगे—हर्ष तो इस बातका कि उनके पतिदेवको सुर-मुनि-दुर्लभ भगवान्के अलौकिक स्वरूपका दर्शन हुआ और दुःख इस बातका कि भगवान्के दर्शनके पश्चात् अब उसे इनके चरणोंकी सेवाका कैसे सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा! भाईजीने उसके आँसू देखे और बड़े स्नेहसे पूछा—'तुम रोती क्यों हो?' धर्मपत्नीने अपनी व्यथा उनसे निवेदन की—'आपको भगवान् प्राप्त हो गये। आप निहाल हो गये। पर मेरा तो संसार लुट गया।' भाईजी पत्नीके अन्तर्भावको समझ गये। उन्होंने रोती हुई धर्मपत्नीके सिरपर अपना दाहिना हाथ रक्खा और कहा—'अरी, मैं तो तेरे लिये वैसा ही हूँ, जैसा पहले था।'

हाथका स्पर्श होना था कि धर्मपत्नीको अन्तरिक्षमें चतुर्भुज भगवान् विष्णुके दर्शन हुए। उनकी अन्तर्व्यथा-का शमन हो गया। भगवान्ने कृपाकर अपने स्वरूपकी वह झाँकी उनके समक्ष लगभग ६ मासतक उसी रूपमें प्रकट रखी। सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते—सब समय, सब काम करते हुए भगवान्का वह स्वरूप उन्हें अन्तरिक्षमें प्रकट दिखायी पड़ता। इस प्रसङ्गसे कुछ अवधारणा की जा सकती है भाईजीपर भगवान् श्रीविष्णुकी कितनी कृपा थी।

भगवद्दर्शनके पश्चात् एक अजीब मस्ती भाईजीके तन-मन-प्राणोंमें छा गयी। उनके नेत्रोंकी विलक्षणताके सम्बन्धमें तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। जिन भाग्यशाली व्यक्तियोंको उस समय उनके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे परम धन्य हैं।

आश्विन कृष्ण द्वादशीको भगवान्ने अपने नामके प्रचारका जो आदेश दिया था, उसके पालनकी चेष्टामें भाईजी जुट गये। उन्होंने जसीडीह जाकर श्रद्धेय श्रीसेठजीसे इसके लिये परामर्श किया। भगवान्के आदेशका प्रचार करनेके लिये भाईजीने उसको एक पुस्तिकाके रूपमें तैयार किया, जो गीताप्रेससे 'दिव्य संदेश'के नामसे प्रकाशित है।

जसीडीहसे लौटनेपर भगवान्ने भाईजीपर पुनः कई बार कृपा की। उक्त घटनाके सम्बन्धमें उन्होंने श्री-सेठजीको पत्र लिखा, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

श्रीहरिः

गोरखपुर
कार्तिक कृष्णा १४,१९८४

श्रीपूज्यचरण,

हृदयसे प्रणाम ।

गत शुक्रवार (कार्तिक कृष्णा ११, १९८४)को मैं यहाँ पहुँच गया था । आपके आज्ञानुसार प्रश्नोंका उत्तर जाननेकी भावना मनमें थी। कार्तिक कृष्णा १२, १९८४, शनिवारको प्रातःकाल करीब साढ़े पाँच बजे स्नान-संध्याके उपरान्त मैं एकान्तमें बैठा था। बैठे-बैठे ही नींद या बेहोशी-सी हो गयी। उसमें श्रीभगवान् दीख पड़े। उन्होंने मानो इस भावके शब्द कहे—

'१. जिन सात विषयोंके प्रचारकी बात तुमलोगोंने तय की है, उनका प्रचार जितने अधिक देशों और अधिक लोगोंमें हो, वैसी चेष्टा करो। लोगोंको समझा दो कि उनके माननेसे ही कल्याण हो सकता है।

२. अन्य धर्मावलम्बियोंके किसी भी धर्मग्रन्थका नाम न लेकर गीतोक्त भक्तियुक्त निष्कामकर्मका भाव ग्रहण करके लिये कहो।

३. एक बार जिसने मेरा नाम ले लिया, उसका भला होनेमें कोई शङ्का नहीं करनी चाहिये।

४. मेरी प्रेरणाके अनुसार कितना प्रचार हुआ है और हो रहा है, उसका पता पीछे लगेगा।

५. मेरे मिलनेकी इन बातोंको प्रकाशमें लानेसे हानि है।'

इतनी बातें सुननेके बाद मुझे चेत हो गया। ऊपर जो बातें लिखी हैं, उनके शब्द तो कुछ दूसरे ही थे, पर भाव यही था।

× × ×

आज सोमवार, प्रातःकाल करीब साढ़े छः बजे मैं तथा कुछ सत्सङ्गी भाई ध्यानके लिये बीचवाले बड़े कमरेमें बैठे थे। भगवान्‌को स्मरण करनेका विचार एकान्तमें था; परंतु न जाने क्यों पहलेसे ही ऐसी प्रेरणा होने लगी थी—इसी समय स्मरण किया जाय। तदनुसार प्रश्नोंका उत्तर जाननेके लिये भगवान्‌का स्मरण और आह्वान किया गया। थोड़ी ही देरमें भगवान् वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। लोगोंको ध्यानमें आज विशेष शान्ति मिली।

भगवान्‌से जिन बातोंके पूछनेकी मनमें भावना हुई थी, वे इस प्रकार हैं—

१. पहले प्रेरणा करनेपर भी संतोषजनक कार्य क्यों नहीं हुआ ?

२. नामका प्रचार किस तरह किया जाय ? क्या संन्यास लेनेसे अधिक प्रचार हो सकता है ?

३. किस नामका प्रचार किया जाय ?

प्रश्नोंका उत्तर निम्नलिखित मिला—

'१. कल कहा ही था—कार्यका पता पीछे लगेगा। डाले हुए बीजोंका विस्तार फल लगनेपर ज्ञात होगा। असंतोष मत करो, कार्य करो।

२. कलके कहे अनुसार जितना अधिक लोगोंमें प्रचार कर सको, उतना करो। स्थान-स्थानपर कीर्तन होना बहुत अच्छा है। संन्यासकी अभी आवश्यकता नहीं, आगे चलकर विशेष लाभ हो सकता है।

३. कोई खास नाम नहीं है। मेरे भावसे कोई-सा भी नाम मनुष्य ले सकता है।'

इसके बाद इतना और कहा—'कल संकेतसे प्रश्नका उत्तर दे दिया गया था। आज फिर स्मरण किया, इसलिये आना हुआ; परंतु मुझे बुलानेके भावसे स्मरण नहीं करना चाहिये। यह नीचा भाव है। उस दिनका संकेत तू समझा नहीं। उचित समझनेपर हम स्वयं आ सकते हैं। इन सब बातोंको इस प्रकार प्रकाशित करनेमें हानि है।'

इतना कहते ही भगवान् अन्तर्धान हो गये। कोई आधे घंटेतक दर्शन होते रहे। यही आजकी घटना है।

एक बार तो इस घटनाको लेकर स्वयं आपकी सेवामें उपस्थित होनेका विचार हुआ था; परंतु पीछे यही ठीक समझा कि रजिस्ट्री चिट्ठीके द्वारा ही यह विषय लिखकर भेज दिया जाय। भगवान्‌की प्रेरणा जैसे प्रकाशित करना ठीक समझें, वैसे कर सकते हैं। मेरी समझसे तो अभी इसका प्रकाशित न किया जाना ही भगवान्‌की प्रेरणाके अनुकूल है।

सात बातोंके सम्बन्धमें मेरी ऐसी स्फुरणा हुई कि इनके सम्बन्धमें तीन-चार पृष्ठका एक लेख लिखा जाय, जिसमें इन सात बातोंका खुलासा हो और उस लेखका बंगला, मराठी, गुरुमुखी, गुजराती, तमिल, उर्दू और अंग्रेजी आदि भाषाओंमें अनुवाद करवाके लाखोंकी संख्यामें ट्रेक्ट (पैम्फ्लैट) छपाये जायँ और वे बहुत कम मूल्य या बिना मूल्य भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंमें और इंगलैंड, अमेरिका आदि देशोंमें भी प्रचारित किये जायँ। भारतके और विलायतके प्रायः बहुत-सी भाषाओंके पत्रोंमें भी प्रकाशित करवानेकी चेष्टा की जाय तो बहुत लोगोंके पास इस संदेशके पहुँचनेमें सुगमता हो सकती है।"

× × ×

इन घटनाओंके पश्चात् इस प्रकारकी घटनाओंको भाईजीने अपनी व्यक्तिगत डायरीमें लिखना बंद कर दिया। इन्हीं दिनों उनको भगवान्‌ने यह प्रेरणा की—'उन्हें अपने जीवनको बाहरी रूपसे बिल्कुल साधारण रखना चाहिये, जिससे कोई उन्हें पहचान न सके।' किंतु जिसके हृदयमें आनन्दका समुद्र लहरा रहा हो, उसके आनन्दके कुछ सीकर बरबस विकीर्ण हो ही जाते हैं। नित्य-प्रति सत्सङ्ग होने लगा और रात्रिमें संकीर्तन। सत्सङ्ग और संकीर्तनमें भाग लेनेवाले सभी महानुभाव बड़े ही प्रेमी और श्रद्धालु थे। भाईजी 'जय हरि गोविन्द राधे गोविन्द'की ध्वनिके साथ संकीर्तन करवाते और प्रेम-विभोर हो जाते थे। कार्तिक कृष्णा ३०, १९८४ दीप-मालिकाके दिन श्रीलक्ष्मीदेवीके पूजनके पश्चात् भाईजीने संकीर्तन प्रारम्भ किया। नित्य-प्रति ग्यारह-बारह बजे संकीर्तन समाप्त हो जाता था, परंतु उस दिन भाईजी अजीब मस्तीमें थे और रात्रिके पौने दो बजेतक संकीर्तन करवाते रहे। संकीर्तनके पश्चात् इन्होंने संकीर्तनकी महिमाके सम्बन्धमें कहा—

"भगवान्‌के नामका कीर्तन करनेसे अनन्त लाभ होता है। कीर्तनसे कीर्तन-समाधि हो जाती है; क्योंकि इसमें सब इन्द्रियाँ एकाग्र हो जाती हैं। कीर्तनकी ध्वनि जितनी दूर जाती है, वहाँतककी वायु, स्थान, पृथ्वी, लकड़ी, पत्थरके सहित सुननेवाले सभी जीव-जन्तु पवित्र हो जाते हैं। यह तो स्थूल दृष्टिकी बात हुई। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर पता चलता है कि जैसे हजारों कोस दूरके शब्द रेडियोद्वारा सुनायी देते हैं, वैसे ही भगवन्नामरूपी शब्द सर्वत्र फैलकर सारे संसारको पवित्र बना देता है। वास्तवमें कीर्तनकी महिमा अनिर्वचनीय है। पापोंको जलानेके लिये संकीर्तनके समय ताली बजानी चाहिये। संत तुकारामजीने कहा है—'करतल सों ताली देत, राम मुख बोली, जली पाप जुँ की होली।' स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे—'यदि पापोंका नाश करना चाहते हो तो प्रातः-सायं ताली बजाकर नाम लिया करो। जैसे ताली बजानेसे वृक्षके पक्षी उड़ जाते हैं, उसी प्रकार जहाँ हरिनाम लिया जाता है, वहाँ पाप ठहर नहीं सकता।' बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि भगवन्नामके रहते हुए भी लोग संसारकूपमें पड़े हुए हैं।"

इस प्रकार श्रीभगवान्‌के आदेशसे भाईजी भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामके प्रचारमें तत्परतासे जुट गये। पीछे तो इन्होंने देशके विभिन्न भागोंकी लंबी-लंबी यात्राएँ कीं और भगवान्‌के संदेशको दूर-दूरतक प्रसारित किया।

× × ×

इस प्रकार सच्चिदानन्दघन, जगन्नियन्ता, सर्वलोकमहेश्वर भगवान्‌ने विष्णुरूपमें प्रकट होकर भाईजीके सामने अपने निर्गुण-सगुणतत्वके रहस्यका उद्घाटन किया और अपनी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, नाम-महिमा आदिके प्रचारका महान् कार्य करनेके लिये इन्हें योग्य यन्त्र बना लिया। भगवान्‌के आदेशकी प्राप्तिके पश्चात् भाईजीने अपने संन्यास-ग्रहण तथा एकान्त-वासके संकल्पका एक प्रकारसे विसर्जन ही कर दिया तथा वे गोरखपुरको ही अपनी कर्म-भूमि बनाकर 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके प्रकाशनोंके माध्यमसे जगत्‌रूप प्रभुकी सेवामें प्राण-पणसे जुट गये। 'कल्याण'का छोटा-सा पौधा भाईजीके आध्यात्मिक-रससे सिञ्चित होकर एक विशाल बोधि-वृक्ष बन गया और वह देश-विदेशमें छा गया। गीताप्रेसका कार्य-विस्तार होने लगा और भाईजीके कुशल लेखन एवं सम्पादनसे उसके

द्वारा उपनिषद्, पुराण, महाभारत, गीता, रामायण, स्तोत्रग्रन्थ, भक्तचरित्र तथा ज्ञान-वैराग्य एवं भक्तिका मर्म समझानेवाले निबन्ध-ग्रन्थों तथा पद्यात्मक साहित्यका छोटे-बड़े रूपोंमें प्रकाशन हुआ, जो भारत एवं विदेशोंके लाखों-करोड़ों नर-नारियोंके हृदयोंमें भगवद्भाव एवं भगवद्विश्वासकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हुआ। इसके साथ-साथ भाईजी अपने विश्वरूप प्रभुकी तन-मन-धनसे भी अहर्निश सेवा करते रहे। उनके द्वारा अभावग्रस्त एवं आर्त प्राणियोंकी सेवाका जो लोकोत्तर कार्य हुआ, वह सर्वविदित है।

भगवद्दर्शनके पश्चात् भक्तके लिये फिर कुछ करनेको शेष नहीं रह जाता; भगवान् उसके तन-मन-प्राणोंमें छा जाते हैं और उसके मनके द्वारा सहज रूपमें उनकी स्मृति होती है और प्रत्येक इन्द्रियसे जो कुछ भी होता है, वह भगवत्सेवाका कार्य ही होता है—यहाँतक कि भक्तकी श्वास-प्रश्वास-क्रिया भी भगवत्सेवारूप ही होती है। भाईजीकी ऐसी ही स्थिति हो गयी थी। परंतु भगवान्‌को इतनेसे संतोष नहीं हुआ। वे भाईजीको अपने वृन्दावनस्वरूपका दर्शन कराकर महाभाव-रसराजके लीला-समुद्रमें डुबा देना चाहते थे। भाईजी बम्बई-प्रवासमें श्रीहरिबक्षजी जोशीके सम्पर्कमें रहनेके कारण उनके द्वारा भागवत सुनते थे तथा स्वयं भी उसका अध्ययन एवं चिन्तन करते थे। वहाँ सत्सङ्ग-भवनमें ये प्रतिदिन जो प्रवचन करते थे, उसमें गीताकी मधुसूदनी नामकी भक्तिपरक टीकाका विशेष आधार लेते थे। मधुसूदनी टीकामें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी महिमा गायी गयी है। उसी समय इन्होंने शिशिरकुमार घोषद्वारा लिखित सम्पूर्ण 'अमिय निमाईचरित' पढ़ा। उसमें श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुका जीवन-वृत्त है। गौड़ीय सम्प्रदायके ऐसे ही कुछ और ग्रन्थ भी इन्होंने पढ़े। इन सब ग्रन्थोंके अध्ययन एवं चिन्तनसे इनके मनमें भगवान् श्रीकृष्णके प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया था, पर साधना भगवान् विष्णुकी ही चलती रही। भगवान् विष्णुके दर्शनके कुछ दिन पश्चात् एक दिन भगवान् विष्णुका ध्यान हो रहा था कि इनके मनमें आया—'भगवान्‌की लीला भी देखनेको मिले।' यह वृत्ति उत्पन्न होते ही इन्हें ऐसा भान हुआ कि भगवान् कह रहे हैं—'मेरे विष्णुरूपमें तो दो ही प्रकारकी लीलाएँ होती हैं—अवतार-लीला या वैकुण्ठकी नित्य लीला। इस स्वरूपमें कोई मानव-लीला नहीं है। मानव-लीला सर्वोच्च रूपमें और पूर्णरूपमें हुई है—श्रीकृष्णस्वरूपमें। तुमको अब श्रीकृष्ण स्वरूपका अनुभव होने लगेगा।' उस रातको इनके मनमें बड़ा आनन्द रहा और स्वप्नमें श्रीकृष्णके दर्शन हुए। पहले गीतावक्ताके दर्शन हुए, पीछे वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णके दर्शन। श्रीकृष्णस्वरूपके साथ राधाके दर्शन नहीं हुए। उसी समय ऐसा भान हुआ कि वे कह रहे हैं—'जो गीतावक्ता हैं, वे ही वृन्दावनविहारी हैं। इनकी तुमपर बड़ी कृपा है। इन्होंने तुमको अपना मान लिया है। इनकी लीला अब तुम्हें देखनेको मिलेगी।' दूसरे दिन भगवान् विष्णुके ध्यानके समय इन्हें विष्णुके स्थानपर अपने-आप वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णका ध्यान होने लगा और उसके पश्चात् यही ध्यान होता रहा। विष्णुका ध्यान बंद हो गया। उन दिनों यह बात इनके मनमें दृढ़ हो गयी थी कि तत्व एक ही है—जो विष्णु हैं, वे ही शिव हैं, वे ही राम हैं, वे ही कृष्ण हैं, और वे ही दुर्गा हैं आदि-आदि। अतएव चाहे राधाकृष्ण कहो, चाहे सीताराम, चाहे शिव-पार्वती—बात एक ही है। परंतु ध्यान श्रीकृष्णका होता था। ध्यान होते-होते वृन्दावनकी लीलाओंके दर्शन भी होने लगे। आरम्भमें वात्सल्य-लीलाओंके दर्शन हुए, कुछ समय बाद सख्य-लीलाके दर्शन हुए। पीछे तो श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंके दर्शन होने लगे और ये उन्हींमें डूब गये—महाभाव-रसराजके अनन्त लीलार्णवमें इतने गहरे निमग्न हो गये कि इनका अन्तर्बाह्य सब कुछ श्रीराधा-कृष्णमय हो गया। वे ही इनमें अवस्थित होकर इनके लोक-व्यवहारका निर्वाह करने लगे। भाईजीका यह लोक-व्यवहार कितना मधुर, कितना सरस, परहित-निरत तथा लोकहितसे पूर्ण था—यह सर्वविदित है।

भाईजीके अन्तर्मानसमें दिव्य भगवल्लीलाएँ चलने लगीं और वे भावराज्यमें ही अवस्थित रहने लगे। भाव-समाधि इसी स्थितिका बाह्य स्वरूप था। यह स्थिति लोकचक्षुसे सर्वथा अतीत तथा मन-बुद्धि-चित्तसे भी परेकी है। अतएव प्राकृत मन-बुद्धिद्वारा उसका आकलन शब्दोंमें तथा स्थूल वाणी अथवा लेखनीद्वारा उसका व्यक्तीकरण सम्भव नहीं; भगवत्कृपाका विशेष प्रकाश होनेपर ही उसका यत्किंचित् आभास मिल सकता है। भगवान्‌की कृपा हुई तो भविष्यमें भाईजीके विस्तृत जीवन-वृत्तमें उनके आगेके जीवनके साथ-साथ भीतरी जीवनका भी कुछ दिग्दर्शन कराया जायगा। भगवान् हमें उसके लिये शक्ति प्रदान करें।

गोरखपुर-आगमनसे महाप्रयाणतक

(जीवनयात्रा तिथिक्रमके अनुसार)

भाद्र, सं० १९८४	'कल्याण-कार्यालय'का बम्बईसे गोरखपुर स्थानान्तरण, गीताप्रेससे उसके प्रकाशनका आरम्भ।
मार्गशीर्ष, सं० १९८४	भगवन्नाम-प्रचारार्थ सत्सङ्ग-मण्डलीके साथ भ्रमण (गोरखपुरसे हबड़ा, कलकत्ता, नलबाड़ी, गौहाटी, शिलंग, तिनसुकिया, डिब्रूगढ़, नौगाँव, कलकत्ता, भागलपुर, गोरखपुर, झाँसी, खंडवा, बम्बई, अहमदाबाद, बोरावड़, मूँडवा, बीकानेर, रतनगढ़से गोरखपुर।)
वैशाख शु० ४, सं० १९८५	गोरखपुरमें साधन-कमेटीकी स्थापना।
आश्विन शु० २, सं० १९८६	महात्मा गांधीका गोरखपुर-आगमन और गीताप्रेसमें भाषण।
पौष शु० १३, सं० १९८६	प्रयागके कुम्भमें गीता-ज्ञानयज्ञका आयोजन, मालवीयजीद्वारा शुभारम्भ। पं० श्रीविष्णु दिगम्बर पलुस्करकी नियमित कथा आदि
फाल्गुन शु० १, सं० १९८६	गोरखपुरमें हिंदी-साहित्य-सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन, साहित्यकारोंका आतिथ्य।
आषाढ़ शु० १, सं० १९८७	गोरखपुर जिलेमें बाढ़-पीड़ितोंकी सहायता।
कार्तिक कृष्ण ४, सं० १९८८	परमहंस विशुद्धानन्दका काशीमें दर्शन।
सं० १९८९	गोरखपुर-जेलमें देवदास गांधीकी सेवा।
आश्विन कृ० २, सं० १९८९	गीता एवं रामायण-परीक्षा-समितिकी स्थापना।
सं० १९९०	श्रीचिम्मनलाल गोस्वामीका 'कल्याण-कल्पतरु'के सम्पादनकार्यके लिये गोरखपुर-आगमन।
सं० १९९१	बिहार-भूकम्प-पीड़ितोंकी सहायता।
श्रावण-भाद्र, सं० १९९१	गोरखपुर जिलेमें बाढ़-पीड़ितोंकी सेवा।
आषाढ़ शु० १, सं० १९९३	गोरखपुरमें एक वर्षका बृहत् अखण्ड-संकीर्तन।
आषाढ़, सं० १९९३	पं० जवाहरलाल नेहरूका बाढ़-निरीक्षणके सम्बन्धमें गोरखपुर-आगमन और गीतावाटिकाकी कीर्तन-झाँकीको नमन।
शरद् पूर्णिमा सं० १९९३	स्वामी चक्रधरजीका गोरखपुर-आगमन।
माघ कृ० १, २, सं० १९९३	पं० मदनमोहनजी मालवीयका गीतावाटिकामें आगमन और निवास।
सं० १९९५	राजस्थानमें आकालसेवाकी व्यवस्था।
सं० १९९६-९७	एकान्त-साधनाके लिये दादरी (हरियाणा)में निवास।
सं० १९९७	बंगालके भीषण अकालमें सहायता।
मार्गशीर्ष शु० १०, सं० १९९८	पुत्री (श्रीसावित्रीबाई)का विवाह।

पौष शु० ४, सं० १९९८	द्वितीय विश्वयुद्धमें कलकत्तासे भागकर आये हुए हजारों यात्रियोंकी रतनगढ़ रेलवे-स्टेशनपर सेवा-व्यवस्था ।
पौष, सं० १९९८	रतनगढ़में चक्षुदान-यज्ञका आयोजन ।
भाद्र, सं० १९९९	बीकानेर राज्यमें अतिवृष्टिसे पीड़ित जनताकी सेवा ।
चैत्र कृष्ण ३, सं० १९९९	रतनगढ़में बृहत् संकीर्तन एवं विष्णु-यज्ञका आयोजन ।
कार्तिक, सं० २०००	भाईजीकी अस्वस्थता—रतनगढ़में चिकित्सा-व्यवस्था ।
पौष शु० १५, सं० २००१	हिंदूकोड-बिल-विरोधी अभियान ।
सं० २००३	नोआखाली-काण्डसे पीड़ित हिंदुओंकी सहायताके लिये गीता-प्रेस-सेवक-मण्डल-द्वारा व्यापक व्यवस्था ।
मार्गशीर्ष, सं० २००३	मालवीय श्राद्ध-अङ्कका प्रकाशन ।
पौष शु०, सं० २००६	रामजन्मभूमि, अयोध्यामें मूर्तिप्राकट्यके अनन्तर अखण्ड-कीर्तन आदिकी व्यवस्था ।
वैशाख कृष्ण ६ से ९, सं० २०१०	गो-सेवक-परिषद्, दिल्लीके अध्यक्षपदसे भाषण । प्रयाग-कुम्भमें सत्सङ्ग
सं० २०११	पूर्वी उत्तरप्रदेशके बाढ़-पीड़ितोंमें सहायता-कार्य ।
वैशाख शु० ८, सं० २०१२	राष्ट्रपति डा० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीद्वारा गीताप्रेसके नये द्वार तथा लीलाचित्र मन्दिरका उद्घाटन ।
सं० २०१३	धर्म-प्रचारार्थ सम्पूर्ण भारतवर्षके तीर्थोंकी ६०० व्यक्तियों-सहित रेलसे यात्रा ।
भाद्र कृष्ण ८, सं० २०१५	श्रीकृष्ण-जन्मभूमि, मथुराके मन्दिरका उद्घाटनोत्सव
माघ शु० ९, सं० २०१६	शिमलापाल (प० बंगाल)की दूसरी यात्रा ।
माघ शु० १०, सं० २०२१	'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'की स्थापनामें योगदान ।
माघ शु० ११, सं० २०२१	श्रीकृष्ण-जन्मभूमि मथुरामें विशाल भागवत-भवनकी योजना एवं शिलान्यास ।
कार्तिक कृ० ९, सं० २०२३	गोरक्षा-आन्दोलनका संयोजन ।
सं० २०२३	बिहारके अकालमें सेवा ।
सं० २०२५-२६	राजस्थानके भीषण अकालमें मनुष्यों और गो-वंशकी प्राणरक्षाके लिये बृहत् सेवाका आयोजन ।
सं० २०२६	आसामके तूफानग्रस्त क्षेत्रोंमें सेवा-कार्य ।
सं० २०२७	पाकिस्तानके तूफान्न-पीड़ितोंकी सहायता ।
सन् १९२८से १९७२तक	गोरखपुरमें निवास करते हुए 'कल्याण' एवं गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंका सम्पादन एवं मौलिक साहित्यका सृजन ।
महाप्रयाण	गीतावाटिका, गोरखपुरमें २२ मार्च, १९७१ (चैत्र कृष्ण १०, सं० २०२७) प्रातः ७ बजकर ५५ मिनटपर ।
अन्त्येष्टि	दौहित्र सूर्यकान्तद्वारा गीतावाटिका, गोरखपुरमें ।

भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्‌की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

चिर-विश्रामकी पूर्व-भूमिका

विश्वलीला-सूत्रधार, जगन्नियन्ता प्रभु संतोंके जीवनसे, क्रियासे, वाणीसे जगत्में एक आदर्शकी स्थापना करवाते हैं। अतएव संतोंके अवतरणके समान ही उनका महाप्रयाण भी विश्वके जीवोंके लिये परममङ्गलकारी, भगवद्भाववर्धक एवं आदर्शस्वरूप होता है। मायाबद्ध जीव देहको ही सब कुछ मानता है, परंतु संतके लिये इस देहका एक धूलिकणसे अधिक महत्त्व नहीं होता। इसके अतिरिक्त प्रायः संतोंकी महाप्रयाण-लीला घोर यातनापूर्ण होती है, जिससे उसे देखकर जगत्के जीवोंको यह प्रत्यक्ष अनुभव हो जाय कि जगत् दुःखालय एवं दुःख-स्वरूप है। साथ ही उनको यह ज्ञान भी हो जाय कि भगवान्ने संतोंकी जिस स्वाभाविक स्थितिका दिग्दर्शन गीता आदि ग्रन्थोंमें यह कहकर कराया है—दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः'—'भीषण-से-भीषण दुःखमें भी वे विचलित नहीं होते'—वह केवल कहनेकी चीज नहीं, संतोंका जीवन उसका प्रत्यक्ष उदाहरण होता है।

यही हेतु है कि विश्वमें आजतक जितने भी बड़े-बड़े संत, भक्त एवं विचारक हुए हैं, प्रायः सभीने शरीर छोड़नेके पूर्व भयंकर व्याधि एवं कष्टका भोग किया है। 'भाष्य' लिखते समय श्रीआद्यशंकराचार्य इतने भीषण और तीव्र वेदनायुक्त बवासीरसे पीड़ित हो गये कि रक्तस्राव अत्यधिक होनेके कारण उनका शरीर निरे अस्थि-पञ्जरके रूपमें दिखायी पड़ता था। श्रीरामकृष्ण परमहंस अन्तिम अवस्थामें गलेके कैंसरसे पीड़ित रहे। शिष्यों-ने उनसे जगन्माता कालीसे रोग-मुक्तिके लिये प्रार्थना करनेको कहा, परंतु उन्होंने इसे माँका आशीर्वाद माना और शिष्योंके आग्रहको अस्वीकार कर दिया। यही स्थिति अरुणाचलके संत श्रीरमण महर्षिकी थी। उनके हाथमें कैंसर हो गया था और जब डाक्टरोंने उनके हाथ और भुजाकी शल्यक्रिया करनी चाही, तब वे उस प्रस्तावसे इस शर्तपर सहमत हुए कि रोगसे आक्रान्त भागको या सम्पूर्ण शरीरको चेतनाशून्य नहीं किया जायगा। सम्पूर्ण भुजा और हाथको शल्यक्रिया करके खोल दिया गया, जब कि पूज्य महर्षि उस क्रियाको इस सहजभावसे देख रहे थे, जैसे मृत-पशुकी खाल निकाली जा रही हो।

भाईजी संतोंकी इसी परम्परामें थे। अतएव भगवान्‌की इच्छा थी कि उनका पार्थिव शरीर भी ऐसी भयंकर व्याधिसे ग्रस्त हो, जिससे वे बिदा होते-होते लाखों-लाखों स्वजनों-भक्तोंको यह प्रदर्शित कर सकें कि हम शरीर नहीं, आत्मा हैं और आत्मा इस शरीरसे भिन्न है—केवल 'द्रष्टा' है। शरीरकी दृष्टिसे लगभग दो वर्षोंतक श्रीभाईजीने भीषण व्याधिका उपभोग किया, पर भीषण कष्टकी इस लंबी अवधिमें भी वे उससे सर्वथा अप्रभावित रहे। न उन्हें कोई भय था न चिन्ता, न दुःख न विषाद। वे सर्वथा शान्त, सुस्थिर, अविचल, अम्लान रहे—अपनी मस्तीमें मस्त रहे। ऐसा लगता था, जैसे वे इस भीषण व्याधिके द्रष्टामात्र हों।

घोर-से-घोर शारीरिक यन्त्रणाको भाईजीने कितनी प्रसन्नतापूर्वक सहन किया, किस प्रकार कठिन परीक्षाकी घड़ियोंमें भी उन्होंने अपने सिद्धान्तोंका हनन नहीं होने दिया, परम भयावह मृत्युवेष सजकर पधारे अपने प्रियतम प्रभुका किस उल्लासके साथ—हँसते-हँसते स्वागत किया, पूर्ण विवशतामें भी दूसरोंकी सुख-सुविधाका कितना ध्यान रखा—नीचेकी पंक्तियोंसे इसका कुछ ज्ञान पाठकोंको होगा।

जिस भीषण बीमारीका निमित्त बनाकर श्रीभाईजीने अपनी इह-लीलाका संवरण किया, उसके सर्वप्रथम दर्शन २२ अप्रैल, सन् १९६९को ऋषिकेशमें हुए थे। पीछे उसके दौरे बराबर आते रहे। इस दौरेके समय उनके पेटमें दाहिनी ओर पित्ताशय (GALL BLADDER) एवं वृक्क (KIDNEY) के बीच एक गोला-सा बन जाता था तथा उसमें और पेटके ऊपरी भागमें भीषण पीड़ा होती थी। दर्दका शमन होनेके साथ-साथ वह गोला भी अदृश्य हो जाता था। कई प्रकारसे एक्सरे (X-RAY) लिये गये; पाखाना, पेशाब, खून आदिकी कई प्रकारसे जाँच की गयी। पर डाक्टर-वैद्य किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँच पाये कि इस पीड़ाका वास्तविक कारण क्या है। पित्ताशय एवं मूत्राशयमें पथरी है, यह तो सभी डाक्टरोंकी निश्चित राय थी; पर पेटमें जिस स्थानपर गोला बनता था, वह इन दोनोंके कारण हो—ऐसा वे निश्चितरूपसे निदान नहीं कर सके। पेटकी जितनी भीषण व्याधियाँ हो सकती हैं, सभीकी आशङ्का किसी-न-किसी रूपमें बतलायी जाती थी—जैसे आँतका मुड़ जाना, पेटमें फोड़ा बनना,

आँतके किसी भागका सड़ना, वायु-गुल्म, वृक्कका अपने स्थानसे हट जाना आदि। कैंसर होनेका भी संदेह हो रहा था। ४ नवम्बर १९७०को जो भीषण दौरा हुआ था, उसके बादसे गोलेका पूर्णतया शमन हुआ ही नहीं। यद्यपि उसकी आकृति दौरेके शमन हो जानेपर कुछ कम हुई थी, फिर भी उसका स्पष्ट अनुभव होता था तथा उसे दबानेसे पीड़ा होती थी। इससे डाक्टरोंका यह अनुमान और भी पुष्ट हो गया कि पेटमें कैंसर पनप रहा है। १६ फरवरी, सन् १९७१के पश्चात् पीलियाका अनुभव होने लगा––पेशाब पीला हो गया, आँखें पीली हो गयीं तथा शरीर भी पीला हो गया। जो गोला बना हुआ था, वह बहुत कड़ा हो गया और समूचा पेट अस्वाभाविक स्थितिमें रहने लगा। अन्तिम दिनोंमें बीच-बीचमें श्वास-कष्टका अनुभव होने लगा, जिससे भी यह स्पष्ट अनुमान होता था कि पेटमें कैंसर ही है। पर पेटको खोले बिना यह किसीके लिये निश्चितरूपसे कहना सम्भव नहीं था कि रोग क्या है।

जनवरी मासके अन्तिम सप्ताहकी बात है––

रोग बढ़ता जा रहा था। स्थानीय डाक्टर महोदय, जिन्हें श्रीभाईजीके परिवारका एक अङ्ग ही समझना चाहिये, बड़े चिन्तित हो रहे थे। बीच-बीचमें उनकी आँखें सजल हो जाती थीं। उनकी इस विवशताकी स्थितिको देखकर श्रीभाईजीने उनसे कहा––'आपलोग मुझे प्रेमसे देखनेके लिये आते हैं तो मैं भी प्रेमसे दिखा देता हूँ, दवा आदि ले लेता हूँ। जब आपलोगोंको जाँचसे कोई गम्भीर बात ज्ञात होती है, तब आपलोग बड़े गम्भीर हो जाते हैं, आपसमें धीरे-धीरे परामर्श करने लग जाते हैं; पर मुझपर रोगकी गम्भीरताके ज्ञानका कुछ भी प्रभाव नहीं है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जो होना है, वह होगा ही; पहलेसे ही उसके लिये रोने क्यों बैठें? मृत्यु जब आनी होती है, तभी आती है; मनुष्य चिन्ता और भयसे बार-बार क्यों मृत्युको प्राप्त हो? शरीरकी अस्वस्थताको दूर करनेके लिये आपलोग पूरे प्रयत्नशील हैं ही, मैं भी दवा ले रहा हूँ। बीमारी जब ठीक होनेको होगी, तभी होगी; जब बढ़नी होगी, तब बढ़ेगी ही। आपलोग अपनी समझसे अच्छे-से-अच्छे उपचार कर रहे हैं। इसपर भी बीमारी बढ़ती जा रही है। भीषण कष्ट है, पर अंदर-ही-अंदर मुझे बड़ा आनन्द है। पीड़ाके रूपमें भगवान्‌के सम्पर्ककी अनुभूति हो रही है। कष्ट-पीड़ाके रूपमें भगवान् ही याद आते हैं––कष्ट-पीड़ा भी तो भगवान्‌के ही रूप हैं।'

चन्दनके समीप चाहे जिस भावनासे पहुँचा जाय, चन्दन पास आनेवालेको सौरभ ही देता है। संतोंके जीवनमें इसके प्रत्यक्ष उदाहरण प्राप्त होते हैं। श्रीभाईजी भी अपने उपचारके लिये पधारे हुए डाक्टर महोदयोंका 'उपचार' करना चाहते थे। उन्हें डाक्टर महोदयोंके 'भवरोग'की चिन्ता थी। वे जानते थे कि 'डाक्टर महोदयोंके पास समयका अत्यन्त अभाव रहता है, अतएव एकान्तमें बैठकर भजन-पूजन करना उनके वशकी बात नहीं। इन्हें ऐसा ही साधन बतलाना चाहिये, जिससे ये लोग अपना चिकित्साका कार्य करते हुए ही जीवनके चरमोद्देश्य––भगवत्प्राप्तिको चरितार्थ करनेमें सफल हो सकें।' जिस दिन अस्पतालके विश्रामका दिन होता था, उस दिन श्रीभाईजी डाक्टर महोदयोंको प्रेरित करते हुए कहते––"आपलोगोंके पास जो रोगी आते हैं, उनकी सेवा भगवान्‌की सेवा है। भगवान्‌ने गीतामें आदेश दिया है––

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।' (१८।४६)

'अर्थात् जिसके जिम्मे जो काम हो, वह अपने उसी कामके द्वारा भगवान्‌की सेवा करे।' आपलोगोंके जिम्मे रोगियोंकी सेवाका काम है। वास्तवमें रोगीके रूपमें भगवान् ही आपसे सेवा चाहते हैं। रोगीको देखते, उससे बात करते, उसको दवा देते समय यह भाव आपलोगोंको मनमें रखना चाहिये कि भगवान् ही हमसे इस रूपमें सेवा ले रहे हैं। जहाँ रोगीके रूपमें भगवान्‌की अनुभूति हुई, वहाँ उसका उपचार सुन्दर-से-सुन्दर रूपमें होगा और वह क्रिया भजन बन जायगी तथा वह भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाली हो जायगी।" डाक्टर महोदय इस प्रकार व्यावहारिक भजनका तरीका प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाते थे।

दूसरे दिन श्रीभाईजी उसी प्रसङ्गको आगे बढ़ाते हुए फिर कहने लगे...."भगवान्‌ने गीतामें कहा है--

'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचार।' (३।९)

'अपने कर्तव्यका पालन करो--नहीं, नहीं, 'समाचर' अर्थात् भली प्रकार ठीक-ठिकानेसे उसका आचरण करो।' 'कैसे करो ?' 'मुक्तसङ्गः'--आसक्ति-ममतारहित होकर--लगाव (Attachment) न रखते हुए करो।' 'क्यों करो ?' 'तदर्थम्'--अर्थात् भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करो। आप समझें, रोगीके रूपमें स्वयं भगवान् हैं, इनकी सेवा आसक्ति-ममतासे रहित होकर अपनी पूरी समझ-बूझके साथ करनी चाहिये।"

इस प्रकार भीषण स्थितिमें भी वे अपने रोगको विस्मृतकर डाक्टर महानुभावोंके 'भवरोग'की निवृत्तिकी चिन्ता करते और उसकी निवृत्तिका सरल मार्ग बताते। डाक्टर महानुभाव आश्चर्यचकित थे कि ये कैसे व्यक्ति हैं, जो सर्वथा लाचारी एवं भीषण चिन्ताकी स्थितिसे भी अप्रभावित रहकर अपने आदर्श स्वभाव एवं 'कर्तव्य'का पालन करते हैं।

फरवरीके प्रथम सप्ताहमें--

डाक्टर महानुभावोंको अपने विषयमें चिन्तित देखकर श्रीभाईजीने उनसे कहा--'आपलोग जब देखने आते हैं, उस समय मुझे रोग याद आता है; अन्यथा जब मैं दिनमें कमरा बंद किये अकेला रहता हूँ, तब रोगकी स्मृति मुझे प्रायः नहीं रहती। मैं अपने काममें, भगवत्-स्मरणमें लगा रहता हूँ।'

श्रीभाईजी पुनः बोले--"शरीर ही बीमार होता है, आत्मा बीमार थोड़े ही होता है। हमने शरीरके साथ अपना तादात्म्य कर रक्खा है, इससे शरीरकी अस्वस्थताके साथ हम अस्वस्थ हो जाते हैं। दूसरे, हमारे विचारोंका शरीर एवं स्वास्थ्यपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। मैंने फ्रांसके एक प्रसिद्ध डाक्टरकी लिखी पुस्तक अंग्रेजीमें पढ़ी है। उन्होंने यह समझानेके लिये कि 'विचारोंका शरीरकी स्वस्थता-अस्वस्थतापर कितना प्रभाव पड़ता है।' लिखा है--मेरा एक रोगी ठीक हो गया था। मैं उसे देखने उसके कमरेमें गया तो मैंने पाया कि वह प्रायः स्वस्थ हो गया है। मैंने उसे देखकर कह दिया कि 'आप प्रायः ठीक हो गये हैं। आपकी रिपोर्ट तैयार है, मँगवा लीजियेगा।' उधर मेरा एक दूसरा रोगी उसी दिन बहुत अधिक अस्वस्थ हो रहा था। मैं पहले रोगीको देखनेके बाद उस रोगीको देखने उसके कक्षमें पहुँचा। रक्त, पेशाब आदि लेकर जब मैं अस्पताल गया और मैंने उन चीजोंकी जाँच करवायी तो मुझे लगा--यह रोगी अब जल्दी ही बिदा होनेवाला है। मैंने तुरंत उसकी रिपोर्ट तैयार की और उसमें लिखा कि अब 'आप जल्दी ही बिदा होनेवाले हैं। जो काम आपको करना हो, कर लीजिये, वसीयतनामा (WILL) लिखना हो तो वह लिख लीजिये।' मैंने रिपोर्ट अपने सहायकको दे दी। उससे रिपोर्ट भेजनेमें भूल हो गयी। उसने मरणासन्न रोगीकी रिपोर्ट ठीक होनेवाले रोगीके पास भिजवा दी। ठीक हुए रोगीने रिपोर्ट पढ़ी तो वह घबरा गया। रिपोर्टमें स्पष्ट लिखा था--'अब तुम्हारे बचनेकी कुछ भी आशा नहीं है।' बेचारा रोगी यह रिपोर्ट पढ़ते ही हक्का-बक्का रह गया और वह सचमुच बिदा होनेकी स्थितिमें आने लगा। घरवाले अचानक उसकी ऐसी स्थिति देखकर घबरा गये। दौड़कर वे अस्पतालसे मुझे लिवा ले गये और उन्होंने बताया कि 'जबसे रोगीने आपकी भेजी रिपोर्ट देखी है, तभीसे उसकी हालत इस प्रकार गम्भीर हो गयी है।' मैंने अपनी भेजी रिपोर्ट माँगी और उसे देखते ही मैं समझ गया कि किस प्रकार कम्पाउंडरकी भूलसे दूसरे मरणासन्न रोगीकी रिपोर्ट इनके पास पहुँच गयी है। मैंने रोगीको तथा उसके घरवालोंको समझाया--'यह रिपोर्ट भूलसे यहाँ आ गयी है। आपकी रिपोर्ट अस्पतालमें रखी हुई है। आप बिल्कुल ठीक हैं, आप घर लौट सकते हैं।' इतना ही नहीं, मैंने झटपट आदमीको भेजकर उनकी रिपोर्ट मँगवायी और उन्हें दिखायी। अपनी सही रिपोर्ट देखकर वह व्यक्ति प्रफुल्लित हो उठा और मृत्युके भयके कारण उसके शरीरमें जो-जो विकृतियाँ उत्पन्न हुई थीं, वे सब ठीक हो गयीं। विचारोंका इतना प्रभाव पड़ा।"

इसी प्रकार रतनगढ़ (राजस्थान)की एक घटना श्रीभाईजीने सुनायी थी--"एक सामान्य ब्राह्मण-परिवारमें स्त्रीने श्रावणी पूर्णिमाके दिन श्रवणकुमारकी आकृति द्वारपर अङ्कित करनेके लिये एक लोटेमें गेरू घोलकर रखी।

पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल सूर्योदयके पश्चात् जल्दी ही भद्रा* लगनेवाली थी। अतएव उसने रात्रिमें ही गेरूको पीसकर पानीमें घोलकर लोटेमें रख दिया था, जिससे सबेरे उठते ही वह भद्रासे पहले श्रवणकी प्रतिकृति अङ्कित कर ले। चारपाईके नीचे लोटा रखकर वह सो गयी। पासकी चारपाईपर उसके पति सोये थे। प्रातः सूर्योदयसे पूर्व उन्हें शौच जानेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। वे उठे और उन्होंने चारपाईके नीचे रखा हुआ लोटा उठा लिया और शौचके लिये पासके जंगलमें चले गये। मलत्याग करनेपर जब उन्होंने अपवित्र अङ्गको धोया, तब देखा—सारी जमीन लाल हो गयी है; उनको लगा—पाखानेके रास्ते इतना खून गिरा है। 'इतना खून गिरा है'—यह बात मनमें आते ही वे घबरा उठे और बेहोश होकर वहीं गिर पड़े। कुछ देर बाद किसी पड़ोसीने उन्हें वहाँ जंगलमें अचेत अवस्थामें पड़े देखा और वह जैसे-तैसे उन्हें घर लाया। उनकी हालत गम्भीर होने लगी। इधर स्त्रीने देखा कि 'आज त्योहारका दिन है, ये बीमार हो रहे हैं। त्योहारकी पूजा नहीं हो पायेगी तो और अपशकुन होगा। भद्रा लगनेवाली है; उचित यही है कि जल्दीसे श्रवणकी आकृति अङ्कित कर दी जाय।' इसके लिये वह गेरूका लोटा ढूँढ़ने लगी, पर लोटा उसे वहाँ नहीं मिला। वह बहुत दुःखी हो गयी और घबरायी हुई कहने लगी—'अरे! चारपाईके नीचेसे लोटा किसने लिया?' ब्राह्मणको कुछ होश हो चला था, उसने पत्नीकी बात सुनी। उसने हिम्मत करके जैसे-तैसे उत्तर दिया—'चारपाईके नीचे रखा लोटा तो मैं शौचके लिये ले गया था।' स्त्रीने कहा—'रात्रिमें उसमें गेरू घोलकर रखी गयी थी, जिससे भद्रा लगनेके पूर्व श्रवणकी आकृति बना दी जाय।' गेरूकी बात सुनते ही ब्राह्मणमें चेतनता आ गयी। वह हठात् उठ बैठा और पूछने लगा—'क्या सचमुच उसमें घोली हुई गेरू थी?' ब्राह्मणीने उत्तर दिया—'हाँ! उसमें गेरू ही थी।' लोटेमें गेरू ही थी—इतना निश्चय होते ही ब्राह्मणकी कायरता दूर हो गयी। वह उठ बैठा और कहने लगा—'अरे, वह सब गेरूका रंग था, मुझे कुछ भी नहीं हुआ है; मेरे शरीरसे खून नहीं गिरा है।' और वह ब्राह्मण ठीक हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि विचारोंका, मनके भावोंका शरीरपर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है।"

भाईजीने आगे बताया—'क्रोधके आवेशसे रक्तचाप बढ़ जाता है, हृदयकी धड़कन बढ़ जाती है। जो व्यक्ति हृदयकी तकलीफसे बचना चाहता हो, वह क्रोध करना छोड़ दे।'

'इन तथ्योंको ध्यानमें रखते हुए डाक्टरको चाहिये कि जब वह रोगीको देखे, तब मुखकी मुद्राको कभी गम्भीर न बनाये। हँसमुख रहे। इससे रोगीका बहुत कुछ रोग तो बिना दवा ही ठीक हो जाता है।'

डाक्टर महोदय श्रीभाईजीके इस गम्भीर विवेचनसे बड़े प्रभावित हुए और अपने लिये एक सुन्दर उपदेश प्राप्त करके प्रसन्न हो गये।

१७ फरवरीकी बात है—

डाक्टर महोदयोंके प्यार एवं स्नेहसे गद्गद हुए श्रीभाईजीने कहा—'आपलोगोंका प्रयत्न सफल नहीं हो रहा है, इसका आपलोग कुछ विचार न करें। आप सद्भाव एवं प्यार दे रहे हैं—हमें उससे बड़ा बल मिलता है। सद्भाव एवं प्यारभरे हृदयका बड़ा प्रभाव होता है। यह बात केवल कहनेकी नहीं है, सत्य है।'

मुँहद्वारा पथ्य प्रायः नहीं जा पा रहा था। अतएव पोषणके लिये नसद्वारा ग्लूकोज सैलाइन चढ़ाया जाता था। २५ फरवरीको ग्लूकोज सैलाइन चढ़ने (Transfusion)के समय श्रीभाईजीने कहा—"प्रार्थनाका बड़ा चामत्कारिक प्रभाव होता है। हमने अपने जीवनमें इसका बहुत बार अनुभव किया है। प्रार्थनासे भीषण-से-भीषण रोग ठीक हो सकते हैं, इसकी एक घटना स्मरण हो आयी है। कलकत्तामें श्रीरूड़मलजी गोयन्दका एक प्रसिद्ध व्यवसायी हुए हैं। एक बार उनको प्लेग हुआ। १०४-५ डिग्री बुखार और दोनों जाँघोंमें बड़ी-बड़ी गिल्टियाँ निकल आयी थीं। उस समय कलकत्तामें सर कैलासचन्द्र बोस बड़े प्रसिद्ध डाक्टर थे। उन्हें बुलाया गया। उन्होंने देखकर कह—'बचनेकी आशा बिलकुल नहीं है। रात निकलना कठिन है। सावधान रहना चाहिये।' वे यह कहकर चले गये। श्रीरूड़मलजी संस्कृतके पण्डित थे। भागवत पढ़ा करते थे। भागवतके माहात्म्यमें एक जगह नारदजीने श्रीसनकादिसे उनकी प्रशंसामें यह कहा कि "आप सदा बालकरूपमें इसलिये बने रहते हैं कि आप 'हरिः शरणम्' मन्त्रका जप नित्य करते हैं।" श्रीरूड़मलजीको वह प्रसङ्ग स्मरण हो आया। उन्होंने अपने सेवक गोविन्द-

* ज्योतिषशास्त्रका एक योग, जिसमें शुभ कार्य नहीं किये जाते।

को बुलाया और कहा—'गङ्गाजल लाओ, शरीर पोंछेंगे।' गङ्गाजल आ गया। उन्होंने अँगौछेको गङ्गाजलमें भिगोकर सारा शरीर पोंछवाया। कमरा बंद करके भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति सामने रख ली और श्रीकृष्णमें मन लगाकर 'हरिः शरणम्' मन्त्रका जप करने लगे। १२ घंटेतक तो वे जप करते रहे, पीछे उन्हें स्मरण नहीं रहा कि क्या हुआ। लगभग ४ बजे जब चेतना हुई, तब उन्हें लगा—शरीर हल्का है, बुखार नहीं है। उन्होंने टटोलकर देखा—दोनों गिल्टियाँ भी गायब हैं। तब उन्होंने उठकर एवं चलकर देखा—बिल्कुल स्वाभाविकता अनुभव हुई। तब उन्होंने कमरेका दरवाजा खोला और नौकरको आवाज दी। नौकर आया और सेठजी अपने दैनिक कृत्यमें लग गये। अब वे बिल्कुल स्वस्थ थे।

"दूसरे दिन प्रातःकाल सर कैलास श्रीरूड़मलजीके पड़ोसमें एक अन्य रोगीको देखने आये। रोगीको देखनेपर डाक्टर साहबने सेठजीके परिवारके एक सज्जनसे पूछा—'आपलोग रात्रिमें कितने बजे श्मशानसे लौटे? उन्होंने पूछा—'किसकी अन्त्येष्टिकी बात कह रहे हैं?' डाक्टर साहब बोले—'श्रीरूड़मलजीकी हालत रातमें बहुत अधिक खराब थी; रात्रिमें उनका शरीर शान्त हो गया होगा और अन्त्येष्टि भी हो गयी होगी। आपको पता नहीं चला क्या?' सेठजीने कहा—'हमें तो कुछ भी पता नहीं है।' तब डाक्टर साहब पता लगाने श्रीरूड़-मलजीके घरपर आये। आते ही उन्होंने देखा कि श्रीरूड़मलजी चाँदीकी चौकीपर चाँदीके थालमें पीताम्बर पहने प्रसाद पा रहे हैं। उन्हें इस प्रकार खाते देख डाक्टर साहबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्हें लगा—इन्होंने रात जैसे-तैसे निकाल दी है और अब ये संनिपातकी अवस्थामें खाने बैठ गये हैं।' डाक्टर साहबने पूछा—'सेठजी! किसके कहनेसे खा रहे हैं?' सेठजी बोले—'जिसकी दवासे ठीक हुए हैं? इतना सुननेपर भी डाक्टर साहबको लगा—ये संनिपातमें ही बोल रहे हैं। डाक्टर साहब घरवालोंको सावधान करके चले गये कि 'आपलोग ख्याल रखें, ये संनिपातमें खा रहे हैं।' पर श्रीरूड़मलजी तो पूर्ण स्वस्थ हो गये थे। उन्होंने छककर प्रसाद पाया और पूर्ण स्वस्थ रहे।

"पीछे श्रीरूड़मलजीने स्वयं पूरी बात सुनायी कि 'जब डाक्टर साहबने कह दिया कि रात्रि निकलनी कठिन है, तब हमें मरनेका सोच तो रहा नहीं। भागवत-माहात्म्यके अन्तर्गत श्रीनारद-सनकादिका प्रसङ्ग स्मरण हो आया और हमने श्रीसनकादिके प्रिय मन्त्र 'हरिः शरणम्'का जाप शुरू कर दिया।

"ऐसे अनेकों प्रसङ्ग हमने देखे-सुने तथा अनुभव किये हैं कि 'भगवान्पर विश्वास हो और सच्चे हृदयसे भगवान्से प्रार्थना की जाय तो भगवान्के यहाँ सब कुछ सम्भव है।' पर मेरे यह सब सुनानेका अर्थ यह नहीं कि आपलोग मेरे लिये प्रार्थना करें। मेरे मनमें न जीनेकी इच्छा होती है न मरनेकी। जैसा भगवान्ने रच रक्खा है, वही होना चाहिये। हम शरीर तो हैं नहीं, हम हैं आत्मा। शरीरके जानेसे आत्माका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। पीड़ा शरीरमें होती है। कभी अनुभव होती है, कभी नहीं भी होती। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ और निश्चय कर लें तो कलसे दवा बंद कर दें। फिर जैसा होना होगा, हो जायगा। उसके लिये भगवान्के विचारको बदलनेकी हमलोग चेष्टा ही क्यों करें? भगवान्से प्रार्थना हो तो उनके विधानके अनुकूल हो। यदि कहीं भगवान्के विधानके विरुद्ध हमारी इच्छा हो तो उसे वे पूरी न करें—यह प्रार्थना करनी चाहिये।"

श्रीभाईजीके भौतिक कलेवरका भगवान्के विधानानुसार अब अवसान होना था। अतएव शरीर उस ओर अग्रसर हो रहा था। कोई भी उपचार सफल नहीं हो पा रहा था। भौतिक साधन तभी सफल होते हैं, जब उनकी सफलता भगवान्के विधानके अनुसार अभिप्रेत होती है। भगवान्के विधानके प्रतिकूल जगत्की किसी भी शक्तिका कोई भी प्रयत्न कारगर नहीं हो सकता। पर अन्तिम श्वासतक सात्विक प्रयत्न करते रहना शास्त्र एवं संतोंके आदेशानुसार कर्तव्य है।

श्रीभाईजीकी शारीरिक स्थितिमें जब कोई सुधार लक्षित नहीं हो रहा था, तब स्थानीय डाक्टर महानुभावोंके आग्रहसे गोरखपुरसे बाहरके योग्य डाक्टर महानुभावोंको बुलाया गया। २६ फरवरीको कानपुर मेडिकल कालेजके सर्जरीके प्रोफेसर डा० ताराचन्दजी विशुद्ध आत्मीयताके नाते श्रीभाईजीको देखनेके लिये पधारे। डा० ताराचन्दजी श्रीभाईजीका निरीक्षण करनेपर चिन्तित हो उठे। वे रोगकी भीषणतासे परिचित थे। उन्होंने बड़े गम्भीर एवं चिन्तासूचक स्वरमें अपनी अनुभवयुक्त राय दी—'तत्काल ऑपरेशन किया जाना चाहिये, अन्यथा जीवनको खतरा है। इतना गम्भीर ऑपरेशन यहाँ होना सम्भव नहीं। बाहर जाना चाहिये।' डाक्टर साहबकी राय सुनकर घरवाले, स्वजन एवं स्थानीय डॉक्टर महानुभाव—सभी घबरा गये। प्रायः सभी ऑपरेशनपर जोर देने लगे। बाहर जानेका निश्चय तत्काल होना चाहिये, सब ओरसे यही माँग आने लगी। सबकी भय एवं चिन्तासे अभिभूत मनःस्थिति देखकर श्रीभाईजीने डॉक्टर श्री एम० एन० चक्रवर्ती महोदयको अपने पास बुलाकर धीरेसे कहा—'मेरी शरीरमें आस्था नहीं है। शरीर जब जाना होगा, जायगा। कर्त्तव्य है कि जबतक शरीर है, तबतक इसकी सँभाल करनी चाहिये।' पीछे श्रीभाईजी बँगलामें बोलने लगे—

'आमार शरीरेर सङ्गे सम्बन्ध रयेछे बलिया वेदनार बोध हय। जखन शरीरेर सङ्गे आमार सम्बन्ध थाके ना, तखन व्यथा अनुभव करिबार प्रश्नइ उठे ना।'

—हमारा जब शरीरके साथ सम्बन्ध रहता है, तब वेदनाका बोध होता है; पर जब शरीरसे अपनेको पृथक् अनुभव करता हूँ, तब कष्टके अनुभवका प्रश्न ही नहीं रहता। पर यह बात आपसे कहनेमें संकोच नहीं है; कारण, आप श्रीरामकृष्ण परमहंसके भक्त हैं। बाहर जानेपर वहाँके स्वजनों एवं डाक्टरोंके सामने यह बात कहनेमें हमें संकोच होगा। अपनेमें तनिक भी अभिमान व्यक्त न हो तथा डाक्टर महानुभावोंका अपमान भी न हो—इसपर ख्याल रखना है। मेरे उपर्युक्त कथनमें लोगोंको अभिमान दीखेगा और डाक्टर महानुभाव अपना अपमान मानेंगे कि हमारे चिकित्सा-विज्ञान-सम्मत परामर्शको ये लोग भावुकतावश अस्वीकार कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, रोगीके शरीरकी लाचारीकी स्थितिमें आवश्यक उपचार करना डाक्टर महानुभावोंका कर्त्तव्य है। हम अपने सिद्धान्तकी दृढ़तासे डाक्टर महानुभावोंके आवश्यक उपचार करनेके मार्गमें बाधा उपस्थित करके उन्हें कर्तव्यच्युत करें—हमें इस बातका भी संकोच है।'

इस प्रकार अपने सिद्धान्तकी रक्षाके साथ दूसरेके कर्तव्यपालनका इतना ध्यान इस लाचारीकी स्थितिमें भी श्रीभाईजी रख रहे हैं—यह देखकर डाक्टर चक्रवर्तीकी आँखें सजल हो उठीं।

श्रीभाईजीने आगे कहा—"भगवान्पर विश्वास करके अपनी जो मान्यता है, सिद्धान्त है, उसके अनुसार इलाज किया जाय। किसीका तिरस्कार न हो जाय—मुझे यह संकोच बना है। बाहर जानेपर हमारा संकोच और बढ़ेगा। वहाँ डाक्टरोंने परिस्थितिकी गम्भीरताको समझकर कोई बात कही और हम उसे न मान पाये तो उनका तिरस्कार होगा। वे लोग इन्सुलिन-जैसी अशुद्ध, अपवित्र, हिंसायुक्त औषध देंगे; सब लोग कहेंगे—'शरीर बचाना धर्म है, पीछे प्रायश्चित्त कर लिया जायगा।' इस प्रकार अशुद्ध औषध सेवनकर पीछे प्रायश्चित्त करनेकी बात छोड़िये। वह हमें किसी भी रूपमें मान्य नहीं है। इन सभी कारणोंसे बाहर जानेमें हम हिचकते हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि हम ऑपरेशनसे डरते हैं। ऑपरेशन करानेमें हमें कोई डर नहीं है। ऑपरेशन करानेवाले बहुत लोग अच्छे होते हैं; हमारा रोग अच्छा नहीं होगा, कौन कह सकता है। अच्छा होना होता है तो हो जाता है, नहीं होना होता तो नहीं होता। चिकित्सा कर्तव्य है, करनी चाहिये; पर दवा रोगीको बचा नहीं सकती। इसके अतिरिक्त हम जानते हैं, शरीरसे हमारा सम्बन्ध नहीं; शरीरकी बीमारीसे आत्मा बीमार नहीं होता—यह मरेगा नहीं और शरीर जबतक है, तबतक यह बीमार है, रहेगा—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(गीता २। १३)

"जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है।' ये सब बातें जीवनभर कहीं हैं, पढ़ी हैं; ये सब अपने लिये नहीं हैं क्या ? वास्तवमें हमलोगोंको मोह हो गया है। नाम-रूपको लेकर हमने मान लिया है कि 'मैं देह हूँ' और अपनेको बीमार अनुभव करने लगे हैं। न 'यह' देह है, न 'यह' बीमार है।"

डा० चक्रवर्ती महोदय श्रीभाईजीके इन शब्दोंको सुनकर आत्मविभोर हो गये।

उसी दिन सायंकाल घरवालों, डाक्टरों एवं स्वजनोंके सामने प्रातःकालके प्रसङ्गको दोहराते हुए श्रीभाईजीने बोलनेकी शक्ति क्षीण होनेके कारण बीच-बीचमें विराम लेते हुए कहा—"हम बाहरवालोंके समक्ष भी अपने सिद्धान्त-पर दृढ़ रह सकते हैं, पर उसमें उनका तिरस्कार होनेका मनमें संकोच है। पीड़ा शरीरमें है। जब हम उसे स्मरण नहीं करते, तब पीड़ा अनुभव नहीं होती। अभी हमारे पेटमें बहुत दर्द था और है; पर जबतक आपलोगोंसे बात की, तबतक उसका कुछ भी अनुभव नहीं रहा, दर्दको भूले रहे। बाहर जानेपर बाहरके डाक्टरों—मित्रोंका तिरस्कार न हो जाय, हमें इसीकी विशेष चिन्ता है। इसके अतिरिक्त हमारे मनमें आता है कि बाहर जानेकी बात तभी होती है, जब आपलोगोंके उपचारसे लाभ न हो; पर आपलोगोंके विशुद्ध प्यारसे भरे हृदयमें तो भगवान् प्रकाश नहीं देंगे, बम्बई-कलकत्ताके बड़े-बड़े डाक्टर, जो पैसेको प्रधानता देकर आयेंगे तथा सब काम करेंगे, उनको भगवान् प्रकाश देंगे—यह तो केवल आस्तिकताका जनाजा है—उपहास है।·······जगत्की दृष्टिसे जो अच्छे-से-अच्छे साधन उपलब्ध हों, उनको किया जाय; पर विश्वास भगवान्के मङ्गलविधानपर रहे।····· हमारा विचार तो निश्चित है—किसी भी हालतमें 'इन्सुलिन' नहीं लेना है, चाहे प्राण रहें या जायँ।

डॉ० श्रीघनश्यामदास सिंहल बनारस हिंदू विश्वविद्यालय मेडिकल कॉलेजमें सर्जरीके रीडर हैं। फरवरीके अन्तिम सप्ताहमें वे प्रातः ७ बजे श्रीभाईजीसे मिलने पधारे। आते ही अभिवादनके पश्चात् डाक्टर साहबने श्रीभाईजीके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें जानना चाहा। श्रीभाईजीने संक्षेपमें उन्हें अपने स्वास्थ्यका परिचय दिया। पीछे वे अपने सेवकसे बोले—'पहले डाक्टर साहबके शौच-स्नानकी व्यवस्था करो और इन्हें जलपान कराओ।' डाक्टर साहब यह सुनते ही बोल पड़े—'मैं सुबह ३॥ बजेकी गाड़ीसे आया था। वहीं वेटिंगरूममें ठहर गया। स्टेशनपर शौच-स्नानसे निवृत्त होकर, चाय पीकर आया हूँ। आपको कोई कष्ट नहीं करना है।'

बीचमें ही बातको विराम देते हुए गम्भीर स्वरमें श्रीभाईजीने कहा—'आपने यह कष्ट दे दिया न कि चाय पीकर वहाँसे आये हैं।' डाक्टर साहब भाईजीका आत्मीयताभरा उत्तर सुनकर संकुचित हो गये और उन्होंने नीचे जाकर चाय ली और जलपान किया।

रात्रिमें जब डाक्टर सिंहल वाराणसी लौटने लगे, तब वे श्रीभाईजीको प्रणाम करने गये। श्रीभाईजीने कहा—"'नारायण' नाम लेकर जाइये" और मालवीयजी महाराजकी बात सुनाने लगे कि किस प्रकार उन्हें यह मन्त्र महामनासे प्राप्त हुआ था। पीछे बोले—'मेरे लिये चिन्ता मत कीजियेगा।' डा० सिंहलने कहा—'भाईजी ! घरवाले, मित्र, स्वजन, जनता, डाक्टरलोग—सभी चिन्तित हैं। इस भीषण स्थितिमें यदि कोई निश्चिन्त है तो आप। आपपर इस सांघातिक स्थितिका तनिक भी प्रभाव नहीं है।'

इसी प्रकार जब डा० ताराचन्दजी पधारे थे, तब उन्हें देखते ही पूछने लगे—'प्रसन्न हैं ? घरमें सब प्रसन्न हैं ?' फिर जब इन्हें देखकर डाक्टर साहब अपनी राय बताने लगे, तब उनसे बार-बार कहते रहे—'आप चाय-जलपान कर लें; पीछे बात हो जायगी।' इतना ही नहीं, जब डाक्टर साहब बाहर जाकर जलपान कर रहे थे, तब घरवालोंसे उनके लौटनेकी व्यवस्थाके बारेमें विचार करने लगे। सबने कहा—'आप इस सांघातिक स्थितिमें इन सब बातोंकी चिन्ता मत कीजिये; पर वे अपनी पीड़ाका विस्मरण कर बराबर सबकी सुख-सुविधाकी चिन्ता करते रहे।

श्रीभाईजी भगवान्के भक्त थे। वे अखिल विश्व-ब्रह्माण्डके रूपमें अपने प्रभुको ही अभिव्यक्त हुआ अनुभव करते थे। सभी भूत-प्राणियोंके प्रति उनका भगवद्भाव था। अतः उनमें नित्य अहिंसाकी प्रतिष्ठा थी। उन्होंने जीवनभर अपने कण-कणसे अहिंसा, प्राणी-प्रेम एवं पवित्रताका दान किया है।

श्रीभाईजी आदर्श गृहस्थ संत थे, अतएव शरीरकी अस्वस्थतामें उपचार करवाते थे; पर इस बातका वे बराबर ध्यान रखते थे कि जो औषध वे ले रहे हैं, उसमें किसी भी रूपमें कोई जान्तव पदार्थ या अन्य कोई अशुद्ध वस्तु न हो। आजकल पशु-पक्षियोंकी हत्या कर उनके रक्त, मांस एवं विभिन्न अङ्गोंके रसोंसे अनेक प्रकारकी औषधोंका निर्माण हुआ है, जो अनेक भीषण रोगोंमें बहुत लाभप्रद भी सिद्ध हुई हैं। परंतु श्रीभाईजी इस प्रकारकी औषधोंसे सदा सर्वथा सावधान रहे। वे प्रयोग की जानेवाली प्रत्येक औषधमें सम्मिलित किये गये पदार्थोंके विषयमें पूरी जानकारी करनेके पश्चात् ही उसका सेवन करते थे। किसी औषधमें यदि तनिक भी कोई जान्तव पदार्थ सम्मिलित पाया जाता तो वे उसे नहीं लेते थे; फिर चाहे वह कितनी ही लाभकर क्यों न हो।

लगभग बीस वर्षोंसे उन्हें मधुमेह (डायबिटीज)की बीमारी थी। इसके लिये वे अपने भोजनपर बराबर नियन्त्रण रखते थे तथा आवश्यक होनेपर कुछ दवा भी ले लिया करते थे। मित्रोंने तथा डाक्टरोंने 'इन्सुलिन' का इन्जेक्शन लेनेके लिये अनेक बार कहा, पर वे जानते थे कि 'इन्सुलिन' पशुओंके किसी अङ्गविशेषके रससे बनता है। अतएव उन्होंने कभी उसका सेवन नहीं किया।

रोग सुरसाकी भाँति अपना रूप-विस्तार करता जा रहा था और उसके विकराल रूपको देखकर डाक्टर महानुभाव चिन्तित होते जा रहे थे। २७ फरवरीको दिल्लीके प्रसिद्ध सर्जन डा० मेहरा श्रीभाईजीको देखनेके लिये पधारे। उन्होंने भी परिस्थितिकी गम्भीरताको समझकर अपनी राय दी—'घरवाले इनका जीवन महीनों-वर्षोंतक देखना चाहते हैं, पर वर्तमान परिस्थितिमें ये कुछ ही दिनोंके मेहमान हैं। ऑपरेशन करनेसे आशा है, कुछ लाभ हो। पर रक्तमें शर्करा (Sugar) रहनेके कारण ऑपरेशन खतरेसे खाली नहीं होगा। हम पूरा प्रयत्न रखेंगे कि इनके सिद्धान्तकी रक्षाके लिये इन्हें 'इन्सुलिन'के इन्जेक्शन न दिये जायँ।' स्थानीय डाक्टरों तथा कतिपय स्वजनोंने श्रीभाईजीपर दबाव डाला कि वे ऑपरेशनके लिये तैयार हो जायँ; पर श्रीभाईजीने सर्जन महोदयसे पूछा—"ऑपरेशनके बाद यदि मधुमेहके कारण घाव नहीं भरा तो आप क्या करेंगे ?" सर्जन महोदय श्रीभाईजी-जैसे संतके सामने सच्ची बात न छिपा सके। उन्होंने कहा—'उस स्थितिमें हम आपकी जीवन-रक्षाके लिये आपसे छिपाकर 'इन्सुलिन' दे देंगे। उस समय हमारा कर्तव्य किसी भी उपायसे आपके जीवनको बचाना होगा। पेटके ऑपरेशनमें 'इन्सुलिन'के इन्जेक्शनके सिवा मधुमेहके नियन्त्रणके लिये दूसरा कोई साधन हमारे पास नहीं है।' इसपर श्रीभाईजीने कहा—"इन्सुलिन'का प्रयोग करके अपना जीवन बचाना मैं नहीं चाहता। जीवन तो एक दिन जाना है ही। फिर किसी प्राणीकी हिंसासे बने 'इन्सुलिन'को लेकर इसे बचानेका पाप क्यों स्वीकार किया जाय ?" और उन्होंने ऑपरेशन न करानेका अपना निश्चय सब डाक्टरों और स्वजनोंको सुना दिया। सर्जन महोदय श्रीभाईजीकी इस दृढ़ताको देखकर चकित रह गये। उन्होंने कहा—"भाईजी ! आपकी महानताका यही हेतु है कि आप सिद्धान्तको जीवनसे भी श्रेष्ठ मानते हैं। अन्यथा हम जानते हैं कि बड़े-बड़े धार्मिक लोग 'इन्सुलिन'का प्रयोग बिना किसी हिचकके बराबर कर रहे हैं।'

अहिंसाका उपदेश तो सभी करते हैं, पर समयपर उसका पालन कोई विरला ही कर पाता है। श्रीभाईजीकी यह आचारनिष्ठा जगत्‌को पवित्र करती रहेगी।

× × ×

उपचार चल रहा था, पर स्थितिमें सुधार होनेके स्थानपर वह निरन्तर बिगड़ती जा रही थी। डाक्टर महानुभावोंकी चिन्ता बढ़ रही थी। उसे देखकर श्रीभाईजीने कहा—'देखिये, विपरीत स्थितिमें भगवान्‌पर विश्वास बढ़ता रहे, यही तो आस्तिकता है।.... मैं अभी सोच रहा था कि व्यष्टि एवं समष्टिमें भी ऐसे अवसर आते हैं, जब चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार छा जाता है। जहाँ भी हाथ डालिये, निराशा, असफलता ही मिलती है। जिससे सुरक्षाकी आशा करते हैं, उससे पराभव प्राप्त होता है। इसी प्रकार शरीरकी ऐसी स्थिति हो रही है कि जो कुछ भी दिया जाता है, वह विपरीत फल दिखाता है। आपलोग अपनी समझसे पूर्ण सद्भावनासे उपचार कर रहे हैं। आपलोगोंके स्नेह-प्यारको देखकर मैं आपलोगोंका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। प्यार-स्नेहका बदला नहीं दिया जा सकता। भगवान् उसका बदला देते हैं। आपलोग विश्वास रखें, यह भगवान्‌का विपरीत रूप है; भगवान्‌का भयानक रूप भी होता है। मैं भीतरसे बहुत प्रसन्न हूँ। जब कष्ट अधिक होता है, तब उसका अनुभव होता है; पर मेरे मनमें चिन्ता नहीं है। अपने कर्तव्यमें कमी नहीं करनी चाहिये। अभी रोग और बढ़ सकता है—मस्सा

हो सकता है, बीकोलाई (B-coli) हो सकती है। जब राजा कमजोर होता है, तब छोटे-छोटे शत्रु भी सिर उठाने लग जाते हैं। ऐसी ही इस शरीरकी दशा हो रही है। वह अत्यधिक कमजोर हो गया है। अतएव नये-नये रोग प्रकट हो रहे हैं। आपलोग चिन्ता न करें; जैसा होना है, होगा और उसमें मङ्गल ही होगा।'

रोगकी निरन्तर बढ़ती स्थितिको देखकर सबका चित्त बड़ा उदास रहने लगा; जो भी श्रीभाईजीके दर्शनार्थ आता, उसकी आँखें छलक पड़तीं। श्रीभाईजी इस अधीरताको कम करना चाहते थे, अतएव वे उद्बोधन करते हुए कहते—'भगवान्ने गीतामें कहा है—**'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।'** (१३।८)

"जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोग निरन्तर शरीरके साथ लगे हैं; इन सबको देखकर शरीरसे वैराग्य करना चाहिये। ......संसारका अर्थ है—**'संसरति इति संसारः।'** अर्थात् जो गतिमान् है, चल रहा है, उसका नाम 'संसार' है। यहाँकी कोई भी स्थिति स्थायी नहीं है। हमलोगोंका बचपन बीता, युवावस्था बीती; बचपनकी वे उमंगें, वे विचार मर गये; इसी प्रकार वृद्धावस्था भी मर जायगी।

"शरीरके प्रति 'मैं'पन तथा 'मेरा'पन हो रहा है, इसीसे दुःख-सुख होते हैं। यह 'मैं-मेरापन' हटा कि फिर कुछ भी नहीं है।.......बस, प्रतिकूलतामें, विपरीततामें, भगवान्पर विश्वास बना रहे, बढ़ता रहे—यह विश्वास कि जो हो रहा है, भगवान्के मङ्गलविधानसे ठीक हो रहा है।"

स्वजन, मित्र, डाक्टर आदि महानुभाव रोगकी निरन्तर बढ़ती एवं गम्भीर होती हुई स्थितिमें भगवान्की मङ्गल-मयताके दर्शन करनेमें अपनी असमर्थता अनुभव कर रहे हैं, इस तथ्यसे श्रीभाईजी परिचित थे। अतः वे जब भी कुछ बोलनेकी शक्ति अनुभव करते, इसी बातको दोहराते। ३ मार्चको अपने पुराने सहयोगी, स्वजन, बन्धु डॉ० भुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'की आँखोंमें जब उन्हें अश्रुबिन्दु दिखायी दिये, तब उन्हें सान्त्वना देते हुए श्रीभाईजीने कहा—'प्रतिकूलतामें भगवान्की मङ्गलमयतापर विश्वास हो, तभी तो विश्वास है। शरीर रहे चाहे न रहे, उनसे यह न कहा जाय कि आप इस प्रतिकूलताको बदलिये।'

श्रीभाईजीके २६ फरवरीके उपर्युक्त स्पष्टीकरणके बाद गोरखपुरसे बाहर जाकर ऑपरेशन करानेकी बात तो समाप्त हो गयी थी। पर बाहरसे डाक्टर बुलाकर परामर्श करनेका आग्रह सब ओरसे हो ही रहा था। ४ मार्चको एक कैंसरके विशेषज्ञ महानुभावको बम्बईसे बुलानेकी चर्चा चली। श्रीभाईजीको इस बातकी जानकारी हो गयी। वे घरवालोंसे बोले—'डाक्टरोंको बाहरसे क्यों बुला रहे हो? वे लोग बाहरसे आयेंगे, वही बात बतायेंगे जो यहाँके डाक्टर महानुभाव बतला रहे हैं। बाहरसे डाक्टरोंको बुलानेमें जो रुपया खर्च कर रहे हो, वह गरीबोंकी सेवामें खर्च करना चाहिये।'

६ मार्चको दर्दका भीषण दौरा आया। कई तरहके इंजेक्शन देनेके बाद लगभग एक घंटेमें दर्द कुछ शान्त हुआ। डा० लाहिड़ी महोदय आजके दर्दकी भीषणताको देखकर बहुत ही चिन्तित एवं व्यथित हो रहे थे। घरवालों एवं स्वजनोंकी आँखें बरस रही थीं। श्रीभाईजी इस गम्भीरताको कम करनेके उद्देश्यसे बोले—

"भगवान् कहते हैं—

आमि तोमार कथा सुनिबो ना,
आमि तोमार कथा मानिबो ना,
आमि यथेच्छाचारी,
जा इच्छा होबे करिबो,
तातेइ तोमार कल्याण।

'मैं तुम्हारी बात सुनूँगा नहीं, मैं तुम्हारी बात मानूँगा नहीं, मैं यथेच्छाचारी हूँ.....जो मनमें आयगा, करूँगा और उसीमें तुम्हारा मङ्गल है।' भगवान् जो करते हैं, उसमें मङ्गल-ही-मङ्गल है। आपलोग प्यारसे, सद्भावसे, हितदृष्टिसे जो कर रहे हैं, करते रहिये। वह सफल नहीं हो रहा है तो क्या; आपकी भावनाके कारण वह मङ्गलमय है। भावना ही किसी कार्यको शुभ-अशुभ रूप देती है। यज्ञ भी किया जाय तो वह अशुभ भावनासे अमङ्गलकारी हो सकता है। आपलोग रोगीका ऑपरेशन करते हैं, उसका अङ्ग काटते हैं; पर उसमें रोगीकी हित-भावना होनेसे आपकी वह क्रिया मङ्गलमयी होती है।"

× × ×

७ मार्चको अपने परिवारके व्यक्तियोंके समक्ष श्रीभाईजीने कहा--

'जबसे मैंने होश सँभाला है, किसीका बुरा नहीं किया है, न चाहा है। सबमें भगवान्को देखनेका प्रयत्न किया है। इसमें कहीं सफल हुआ हूँ, कहीं असफल भी। शत्रु तो मेरा कोई है ही नहीं। शरीरमें कष्ट होनेसे मुझे उसकी अनुभूति होती है, पर मैं भीतरसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

१० मार्चको रात्रिमें साढ़े ग्यारह बजे श्रीभाईजीका जी घबराने लगा। पासमें बैठी दौहित्री राधाने कहा--'नानाजी ! आपका जी घबरा रहा है ?' श्रीभाईजीने कहा--'हाँ, जी घबराता है, पर मेरा क्या लेता है।' दौहित्रीने उत्तर दिया--'नानाजी ! आपका जी घबराना देखकर हमलोगोंका तो जी घबराता है।' 'श्रीभाईजी पुनः बोले--'न जीनेका अर्थ है न मरनेका अर्थ है; सब व्यर्थ है। जो जीको अपना मानता है, उसका जी घबराता है। मैं जीको अपना नहीं मानता तो मेरा जी क्यों घबरायेगा ?'

× × ×

श्रीभाईजीकी अनुभूति थी कि भगवान्के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुकी कोई सत्ता नहीं है। उनकी यह अनुभूति 'कल्याण'के जन्मसे पूर्वसे ही थी। अपनी इस मान्यताको उन्होंने विक्रम-संवत् १९८०से पूर्व एक पदमें अभिव्यक्त किया था, जो इस प्रकार है--

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे, नाथ !
जहाँ दुःख, वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ ॥
नाथ ! छिपा लो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारेमें।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें इक कोनेमें, जग सारेमें ॥
रोग-शोक, धनहानि, दुःख, अपमान घोर, अति दारुण क्लेश।
सबमें तुम, सब ही तुममें है, अथवा सब तुम्हरे ही वेष ॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मैं किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःख-वेष धारणकर, नाथ !
जहाँ दुःख, वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ ॥

इसके पश्चात् 'कल्याण'के माध्यमसे तथा प्रवचनोंद्वारा अपनी इस अनुभूतिको उन्होंने सहस्रों बार दोहराया। जीवनके अन्तिम वर्षोंमें तो उनकी स्थिति विचित्र-सी हो गयी थी। उस समयकी उनकी अनुभूतिके विषयमें मुझ-जैसा सामान्य प्राणी क्या लिखे। रोग बढ़ता जा रहा था एवं पोषण-तत्व किसी भी रूपमें शरीरमें नहीं पहुँच पा रहा था। इससे उन्हें बोलनेमें कष्ट हो रहा था। ८ मार्चको अचानक उनके मनमें आया--अपनी इस अनुभूतिको लिखितरूपमें जगत्को दे जाऊँ। उन्होंने सर्वथा अशक्तिकी अवस्थामें भी काँपते हुए हाथोंसे कलम पकड़ी और लेटे-लेटे दो पद लिखे, जो उनकी उस समयकी मनःस्थितिके सजीव चित्र हैं। जगत्के लिये उनके वे अन्तिम लिखित उपदेश हैं; पर दुःखकी बात है कि उन्होंने वे दोनों पद बँगला लिपिमें लिखे। शारीरिक भीषण अशक्तिसे हाथ काँपनेके कारण उन पदोंकी लिखावट अस्पष्ट है। बहुत प्रयत्न करनेपर भी अभीतक वे दोनों पद पूरे पढ़नेमें नहीं आये। उनका जितना अंश स्पष्ट हो पाया है, वह नीचे दिया जा रहा है--

अबकी बार व्याधि. . .पीड़ा सज प्रिय तुम आये।
बीच-बीचमें स्वाँग बदलते रहते तुम मनभाये ॥
देख तुम्हारी इस आकृतिको घरवाले थर्राये।
... ... ॥
... ... ।
... ... ॥
छोड़ शरीर तुम्हें पा नित मैं सानँद मौन समाऊँ।
.....................मैं सुख-संग सिधाऊँ ॥
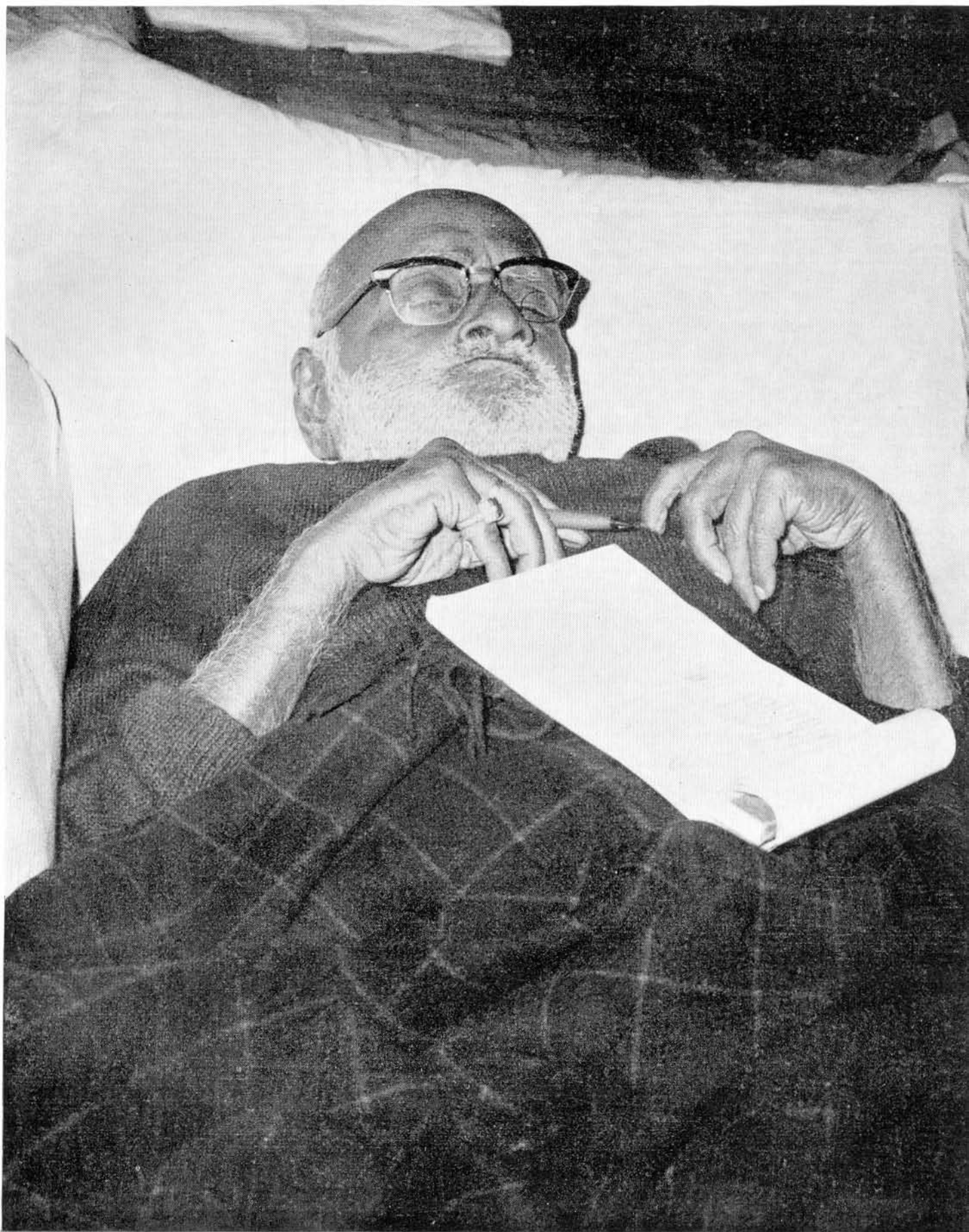
चिर-विश्राम के एक सप्ताह पूर्व काव्य-रचनामें संलग्न

पर कैसे बच्चों, मित्रों, घरवालोंको समझाऊँ।
कैसे आश्वासन दूँ, कैसे उन्हें रहस्य बताऊँ॥

× ×

मेरी करुण प्रार्थना सुनकर इन्हें तुम्हीं समझा दो।
.................सबको कुछ अपना मर्म जता दो॥
हो जायें ये निहाल जानकर गूढ़ रहस्य तुम्हारा।
मिट जाये तुरंत इनका भ्रम-शोक, मोह-दुख सारा॥

पा जायें ये तुमसे, प्यारे! ज्ञान-प्रेम सुख-आलय।
सदा-सर्वदाको मिट जाये मायामय दुःखालय॥
तुमसे होता नहीं अमङ्गल कभी किसीका, प्यारे!
करते नित मङ्गल........................॥

भोक्ता-भोग्य-भोग—सब कुछ ही यहाँ बने हो तुम ही।
खेल-खिलौना बने............खेलते तुम ही॥
कभी...........सब बन स्वयं नाचते-गाते।
कभी व्याधि.....दुख-शोक-मोह सज पड़े सिसकते॥

लीलामय! तुम नित मनमानी लीला करते रहते।
... ... ॥
क्यों वैसी रचना करते हो, मजा तुम्हें क्या आता।
होता कोई......तो इसे समझ कुछ पाता॥

× × ×

१३ मार्चको रात्रिमें श्रीभाईजी डा० चक्रवर्तीसे बोले––'आप जो कर रहे हैं, वह भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं और भगवान्‌की सेवा करनेवालेको भगवान् ही मिलते हैं।' इसके पश्चात् परिवारवालों, स्वजनों एवं मित्रोंके प्यारकी चर्चा करते हुए वे बोले––'श्रीगोस्वामीजी (चिम्मनलालजी) जबसे आये हैं, तबसे सर्वथा मेरे अनुकूल रहकर सब काम कर रहे हैं। बाबा (स्वामी चक्रधरजी)के सम्बन्धमें मैं क्या कहूँ, वे मेरे भक्त हैं, मैं उनका भक्त हूँ।' अपने जीवनके सम्बन्धमें उन्होंने उन्हीं बातोंको दोहराया, जो ७ मार्चको उन्होंने कही थीं। अन्तमें बोले––'जिन-जिनको मैंने भगवद्धाम-प्राप्तिका आश्वासन दिया है, उन्हें निश्चितरूपसे उसकी प्राप्ति हो जायगी, उन्हें विश्वास रखना चाहिये।' उस दिन उनके कहनेमें सबको ऐसा लगा, जैसे वे सबसे बिदाई ले रहे हों। उनकी बातें सुननेपर सभीके नेत्र बरस पड़े। वातावरण अत्यन्त गम्भीर हो गया। पर क्या उपाय था?

१४ मार्चको सायंकालसे शरीरकी स्थिति गम्भीर होने लगी। रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) बहुत कम हो गया, नाड़ी रुक-रुककर चलने लगी, हृदयकी ध्वनिमें परिवर्तन आ गया, श्वासकी गतिमें विकार आ गया। डाक्टर-वैद्योंकी रायमें श्रीभाईजीके लिये प्रभातका दर्शन कठिन था, पर इस गम्भीर स्थितिमें भी श्रीभाईजी निश्चिन्त थे, शान्त-सुस्थिर थे।

रात्रिमें साढ़े बारह बजे जब डाक्टर चक्रवर्ती उनकी नाड़ी अनुभव करनेकी असफल चेष्टा कर रहे थे, श्रीभाईजीने बहुत ही मन्द स्वरमें धीरेसे कहा––'विचार-शक्ति बिल्कुल ठीक है; स्मरण-शक्ति कभी ठीक रहती है, कभी नहीं। मुँहसे बोला नहीं जाता।' इतना कहकर उन्होंने अपने काँपते हुए दाहिने हाथको धीरेसे ऊपर किया और डाक्टर साहबसे इशारेमें पूछा––'आपने भोजन किया कि नहीं?' जहाँ घड़ी-पल गिने जा रहे थे, वहाँ श्रीभाईजीको डाक्टर साहबके भोजनकी चिन्ता बनी थी! यह है उनकी वास्तविक स्थितिकी एक झलक।

भगवान्के विधानसे शरीरको अभी एक सप्ताह और रहना था। दूसरे दिन प्रातःकाल स्थितिमें सुधार हो गया। नाड़ी पुनः अपने स्थानपर आ गयी, श्वासकी गति स्वाभाविक हो गयी; पर यह स्थिति २४ घंटे बाद पुनः परिवर्तित होने लगी। २-३ दिन बाद तो कई भीषण उपद्रव बढ़ गये; पर शरीरकी उस सर्वथा लाचारीकी अवस्थामें तथा भीषण कष्टमें भी श्रीभाईजीके मुखपर, आँखोंमें वही प्रसन्नता, वही गम्भीरता, वही स्थिरता, वहीं निश्चिन्तता, वही प्यार झलक रहा था। उनकी विचारशक्ति पूर्णरूपसे ठीक थी तथा वे अपने मनको अपने इष्टमें स्थिर किये हुए थे। जब पीड़ा अधिक होती, तब उनके मुखसे 'राम-राम' या 'नारायण-नारायण' नामका उच्चारण होता था। श्रीभाईजीकी श्रीभगवान्के नामपर सबसे अधिक निष्ठा थी। एक बार उन्होंने ऋषिकेशके सत्सङ्गमें कहा था––'मैं भगवान्के नामके जपपर जोर क्यों देता हूँ ? इसका कारण यही है कि मैंने जीवनभर यही किया है। जो कुछ भी अच्छी बात जीवनमें आयी है, वह नाम-जप एवं भगवत्कृपाके प्रतापसे। पारमार्थिक जीवनका प्रारम्भ नाम-जपसे हुआ और जीवनमें साधना भी इसीकी हुई। मैं नाम-महिमाको अर्थवाद नहीं मानता। मैंने नाम-जपसे बहुत-बहुत बड़े कार्य सफल होते देखे हैं और स्वयं मेरे जीवनमें हुए हैं। नामकी जो महिमा कही जाती है, वह सत्य है और अनुभवकी वस्तु है। अतः इसे बलपूर्वक कहनेमें कोई संकोच नहीं।'

श्रीभगवन्नामकी इस निष्ठाका वे अन्तिम श्वासतक निर्वाह करते रहे। २० मार्चकी रात्रिकी बात है–– श्रीभाईजीके नीचेके होंठ हिल रहे थे, मानो उनमें कम्पन हो रहा हो। डा० चक्रवर्ती महोदयके मनमें आया कि मुँहमें दाँत न होनेके कारण होंठ काँप रहा है। यदि इस प्रकार बराबर होंठमें कम्पन होता रहा तो दुर्बलता बढ़ती जायगी। वे श्रीभाईजीके समीप बैठकर बोले––'भाईजी ! आपका होंठ काँप रहा है; दाँत लगा दिये जायँ, जिससे काँपना बंद हो जाय। कम्पन दुर्बलता बढ़ायेगा।' डा० साहबकी प्यारभरी सलाहसे श्रीभाईजीका हृदय भर आया और उन्होंने अपनी वास्तविक बात उन्हें बतला दी। बोले––'जप करछि––जप कर रहा हूँ।' यह उस समयकी बात है, जब कि उनके शरीरका प्रत्येक कोष (Cell) पानीकी एक-एक बूँदके लिये तरस रहा था, मुँहमें 'थ्रश' ('Thrush'—एक रोग-विशेष, जिसमें जीभ, मसूढ़ों एवं गलेमें घाव हो जाते हैं, उनपर सफेद पापड़ी आ जाती है)के कारण ड्रॉपरसे बूँद-बूँद करके पानी जीभपर डाला जा रहा था और उसके ६ दिन पहलेसे नसद्वारा ग्लूकोज आदि नहीं जा पा रहा था—अर्थात् ट्रांस्फ्यूजन (Transfusion) भी बंद था।

विधिका विधान ! २१ तारीखके दोपहरमें कलाईके समीपसे नाड़ी लुप्त हो गयी, रक्तचाप बहुत कम हो गया, श्वास-कष्ट बढ़ गया तथा पेटमें भीषण दर्दका दौरा आ गया। इंजेक्शन दिये गये, पर दर्द कम नहीं हुआ। धीरे-धीरे नाड़ीने कोहनीका स्थान भी छोड़ दिया, पर श्रीभाईजीकी विचार-शक्ति वैसी ही बनी हुई थी। सभी डाक्टर-वैद्य आश्चर्यचकित थे। रात्रिमें लगभग ११ बजे (अर्थात् शरीर छूटनेके ८ घंटे पूर्व) जब डाक्टर चक्रवर्ती एवं डाक्टर शर्मा महोदय श्रीभाईजीको देख रहे थे, तब श्रीभाईजीने साहस करके अपना दाहिना हाथ काँपते-काँपते थोड़ा-सा उठाया और इशारा करके पूछा––'आपलोगोंने भोजन किया है कि नहीं ?' श्रीभाईजीकी इस प्यारभरी सँभालने डाक्टरोंके हृदयको मथ दिया और उनके नेत्रोंसे आँसू बरस पड़े। आज भी जब डाक्टर महानुभाव इस प्रसङ्गको स्मरण करते हैं, तब वे अधीर हो जाते हैं।

जैसे-तैसे २२ तारीखका प्रातःकाल हुआ। सब घरवालोंने अनुभव किया, अब शरीरके अवसानका समय आ पहुँचा है। उन्होंने श्रीभाईजीसे बड़े ही दैन्य एवं करुणभावसे प्रार्थना की। श्रीभाईजी शान्तचित्तसे सबकी प्रार्थना सुनते रहे और अन्तमें उन्होंने अपने काँपते हुए दोनों हाथ उठाये और उन्हें मिला लिया––सबसे बिदाई ले ली ! इससे ठीक दस मिनट पश्चात् एक हिचकी आयी, मुँहसे रक्तका एक कुल्ला निकला और श्रीभाईजी चिरनिद्रामें सो गये.......भगवान्की नित्यलीलामें लीन हो गये। उनका दाहिना हाथ आशीर्वादकी मुद्रामें ऊपर उठा हुआ था तथा नेत्रोंमें वही प्यार, वही वात्सल्य, वही करुणा भरी थी। ऐसा लगता था––जाते-जाते वे सबपर अपने आशीर्वाद एवं प्यारकी वर्षा कर रहे हैं।

भाव-भास्कर का अस्ताचल गमन

विखण्डित वीणा--रोता रव

श्रीमती राधादेवी भालोटिया

[श्रीतुलसीदासजीने संतोंके विषयमें कहा है--'बिछुरत एक प्रान हर लेहीं।' सचमुच संत अपने महाप्रयाणकालमें अपने स्वजन-स्नेही-आत्मीयजनोंको कल्पनातीत दुःख-महार्णवमें निमग्न करके इस लोकसे बिदा होते हैं। वे स्वयं तो सुख-दुःखसे अतीत होते हैं--कुसुमाधिक कोमलता एवं वज्राधिक कठोरता युगपत् उनके हृदयमें विद्यमान रहती है, पर जिनसे वे अकारण स्नेह पालते हैं--अहर्निश सींचकर जिनकी स्नेहवल्लीको पल्लवित, पुष्पित एवं फल-समन्वित करते हैं, उन्हें अचानक ही अदर्शन-तापसे जलाने-झुलसानेमें तनिक भी नहीं सकुचाते। अयोध्यावासी नर-नारियोंको जो महाशोक भगवान् श्रीरामके वनगमनके समय अनुभव हुआ था, व्रजवासी गोप-गोपाङ्गनाओंको जो विरह-वेदना भगवान् श्रीकृष्णके मथुरा-गमन-कालमें सहन करनी पड़ी, वैसी ही वियोग-व्यथाका अपने आत्मीय स्वजन-स्नेहियोंको अनुभव करानेके लिये श्रीभाईजीकी महाप्रयाण-लीला सम्पन्न हुई। उस व्यथा-महार्णवके कुछ सीकरमात्र लेखनीद्वारा पत्रोंके कलेवरमें चित्रित किये जा सकते हैं। 'विखण्डित वीणा--रोता रव'की पंक्तियाँ' सचमुच बहती हुई अविरल अश्रुधाराके प्रवाहके साथ-साथ ही लिखी गयी हैं। श्रीभाईजीके महाप्रयाणकालमें स्वजनोंके हृदयोंमें जो घनीभूत पीड़ा उत्पन्न हुई थी, उसका एक धूमिल-सा चित्र, आशा है, पाठकोंको भी इन पंक्तियोंमें उपलब्ध होगा।]

नानाजी हमको छोड़कर चले गये! सदा-सर्वदाके लिये हमें अनाथ करके, हम अभागोंको बिलखता छोड़कर नानाजी चले गये, चले गये नानाजी !! नानाजी हमको छोड़कर चले गये !!! आँसू इस व्यथाका अनुमान नहीं लगा सकते। क्रन्दन आज शान्ति नहीं दे सकता।

वस्तुतः शरीरमें प्राणकी अनुभूति ही अश्रु और क्रन्दनका संचार करती है। हमारे प्राणोंकी आधारशिला तो थे हमारे नानाजी और आज जब वे ही निःस्पन्द, निश्चेष्ट होकर धरित्रीकी गोदमें लेटे हैं, तब हमारे प्राणोंमें स्पन्दनका सृजन कौन करेगा? कहाँसे गति आयेगी प्राणरहित देहमें? पर हाय रे, हमारे निर्लज्ज प्राण स्पन्दनहीन नहीं हो सके--हम सबके नेत्रोंसे अश्रु शृङ्खलाबद्ध होकर ऐसे टपक रहे हैं, मानो सम्पूर्ण व्यथाको बहा डालनेके लिये कृतप्रतिज्ञ हों। हृदयका हाहाकार चीत्कारमें परिणत हो गया है--कहीं हृदय फट न पड़े, इस आशङ्कासे भीत हो उठा है।

वृक्ष, लता-वल्लरियाँ भी आज स्तब्ध हैं, किंतु आजकी स्तब्धतामें तो मानवीय मन-बुद्धिमें भी जड़िमाका संचार कर देनेकी क्षमता है। पर नहीं, हमारे प्राणोंमें जड़िमाका विस्तार न हो सका।

वाटिकाके करुण क्रन्दनसे आकाश फटने लगा है; करुणाकी एक समवेत धारा फूट पड़ी है, जिसमें हम मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग भी, लगता है, आपादमस्तक डूब चुके हैं। चारों ओर दीख रही है दर-दर बहती अश्रुधारा और सुन पड़ रहा है--अपना सब-कुछ खो चुकनेवाले अभागोंका, सर्वस्व छिने हुए अनाथोंका दर्दभरा चीत्कार ! पर कौन पोंछे इन आँसुओंको? सान्त्वनाके शब्दोंका कोष आज रिक्त जो हो चुका है। इस अनित्य--दुःखालय जगत्में सुखकी अनुभूति यदि कहीं भी हुई तो वह नानाजीकी संनिधिमें। जब वे ही छोड़कर चले गये, तब हाहाकारके अतिरिक्त बचा ही क्या? अब तो आँसू ही हमारे चिरसङ्गी हैं और व्यथाका प्राङ्गण ही क्रीड़ास्थली है हमारी--नानाजी जो चले गये!

दिनकर उदय होते हैं सम्पूर्ण दृश्य जगत्को उद्भासित करनेके लिये। किंतु आजके सूर्योदयके साथ एक अभिनव केतु भी आया था, जिसने 'भावके रवि'को ग्रस लिया ! और इस ग्रहणकी कोई निर्धारित अवधि ही नहीं। इस अहंता-ममताके धरातलपर जो प्रीतिके सहज दाता दिनमणि थे, वे पुनः स्नेहकी ज्योतिका दान करने नहीं आयेंगे, हमारे प्राण उन किरणोंसे आलोकित नहीं होंगे।

सोमवार, बाइस मार्च, १९७१ (तदनुसार चैत्र कृष्ण दशमी, सं० २०२७ वि०)को प्रातः सात बजकर पचपन मिनटपर नानाजीने हमको छोड़ दिया—दृष्टि घुमा ली उन्होंने हम भाग्यहीनोंकी ओरसे।

गत चार महीनोंसे ही नानाजीका स्वास्थ्य ढीला था। तेरह फरवरीको म्यूनोमाइसिनके इंजेक्शनकी अनिष्ट प्रतिक्रिया (रिऐक्शन) हो गयी थी और उस दिन भी शारीरिक स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गयी थी—एक परमादरणीयके शब्द हैं—'वे मृत्युके बिन्दुको छूकर लौटे हैं।'

उस दिन भी नानाजीकी चेतना लुप्त हो चुकी थी—नाड़ी अपना स्थान छोड़ चुकी थी और श्वास मृत्युकालीन ऊर्ध्वश्वासके रूपमें परिणत हो चुके थे। परंतु तत्क्षण डाक्टरोंकी हाथ-की-हाथ प्राप्त हुई सहायतासे (दो इन्जेक्शनके अनन्तर) नाड़ी लौट आयी और लगभग पाँच-छः घंटेके प्रयाससे वे प्रायः ठीक हो गये थे।

महान् अनिष्टकी जो विभीषिका वातावरणमें अभी-अभी व्याप्त हुई थी, वेदना-सहिष्णुताकी जीवन्त प्रतिमा नानाजीको उठकर शौच जाते देखकर समाप्तप्राय हो गयी—अब इनका स्वास्थ्य ठीक है, इस सान्त्वनासे प्रत्येक व्यक्तिका मन उल्लसित हो उठा।

नानाजी महासिद्ध थे—उनपर कर्मजगत्का कोई भी प्रतिबन्ध वास्तवमें नहीं था। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जीवन-मरण उनके लिये समान अर्थ रखते थे।

मेरी अपनी मान्यता है, कदाचित् हम सबकी सम्मिलित अभिलाषा—उन्हें इस धराधामपर और भी कुछ दिन, मास, वर्ष रखनेकी लालसा सच्चे अर्थमें प्रबलतर, प्रबलतम हो जाती और वही अभिलाषा अपनी गरिमासे उनमें प्रतिबिम्बित हो जाती तो वे इस कलेवरमें कुछ दिन, कुछ मास, कुछ वर्ष और भी विराजित रहते। परंतु हम निष्ठाहीनोंमें सचाई कहाँ? अतएव नानाजी चले गये। हाँ, परिवार, स्वजन और श्रद्धालुओंकी व्यथाका भी उन्हें पूरा-पूरा ठीक-ठीक ज्ञान था; अतः उन्होंने आँखमिचौनीका खेल प्रारम्भ कर दिया।

इसके अतिरिक्त महासिद्ध संतका जीवन—जीवनका कण-कण दूसरेके पीड़ा-निवारणके लिये उसकी पीड़ा-को, भयंकर-से-भयंकर कर्मजन्य भोगोंको किस प्रकार हँसते-हँसते वरण कर लेता है, इसका भी अप्रतिम निदर्शन थे हमारे नानाजी। वे जानते थे, उनसे जुड़े प्राणियोंमें कुछके अतिरिक्त प्रायः सबका जीवन ही वैसा बन ही नहीं सका, जिससे सभी हँसते-हँसते महाभाव-रससमुद्रमें गोते लगा सकें। उनके अपने परिवारके सदस्य भी जगन्नियन्ताकी कसौटीपर खरे नहीं उतर सकेंगे, इसका भी उन्हें ठीक-ठीक भान था। अतः समवेत कर्मकी उस अपार राशिमेंसे कुछ भीषण कर्मोंका चयन उन्होंने कर लिया और स्वयं उन्हें भोगकर उनका समूल नाश करनेकी एक वृत्ति उनके परदुःख-कातर हृदयमें स्वाभाविक ही जाग्रत् हो उठी।

संतके हृदयका निश्चय और उसका मूर्त होना दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं। किसी एकके अतिरिक्त कोई नहीं जान सका—क्यों उस इन्जेक्शनके बाद भी नानाजी स्वस्थ होनेके बदले बार-बार नयी-नयी व्याधिका उल्लसित हृदयसे आदर कर रहे हैं। नानाजीके पेटमें निरन्तर दर्द बना रहने लगा। यों तो वर्षोंसे वे पूर्ण स्वस्थ नहीं रहते थे। मधुमेह (डायबिटीज), रक्तचाप (ब्लडप्रेशर), हृद्रोग (हार्ट ट्रबल) आदिके रोगी थे वे। अतः निर्बलता—निरन्तर कमजोरीका अनुभव उनके शरीरको होता ही रहता था। पर उस स्थितिमें भी वे प्रायः बीस घंटे अपना लेखन-सम्पादन आदिका कार्य नियमित करते थे। कभी कोई व्यतिक्रम उन्हें जैसे सुहाता ही न था।

किंतु इस बार तो इस नाटकका पटाक्षेप भिन्न गतिसे होना था—शारीरिक दुर्बलता बढ़ती ही चली गयी, 'कल्याण' आदिका कार्य भी शनैः-शनैः कम होने लगा, प्रायः लेटे ही रहने लगे नानाजी।

तथापि कोई इसकी गन्धतक न पा सका कि वस्तुतः कारण क्या है। दवा निरन्तर चल रही थी, लेकिन कोई लाभ नहीं हो पाता था।

गोरखपुरके सभी गण्य-मान्य डाक्टर उनके परिवारके सदस्य-से थे। डाक्टर उन्हें सम्बोधित भी करते थे—'बाबूजी' अथवा 'भाईजी' कहकर ही—और विश्वबन्धु नानाजीके स्नेहपूरित नेत्र भी उन्हें सदा पुत्र या अनुजके रूपमें ही देखते थे। अतः सम्पूर्ण डाक्टरोंकी प्रतिभाका सम्मिलितरूपसे—साथ ही पारस्परिक विचारके सहित—उनके रोग-निवारणके लिये उपयोग होने लगा। उनके आरोग्य-लाभके लिये सबका हृदय वेदनासे मथित होने लगा। बाबूजी आरोग्य-लाभ नहीं कर रहे हैं—कोई भी कर दे, कैसे भी कर दे—मेरे बाबूजीको स्वस्थ कर दे—मेरे भाईजी स्वस्थ हो जायँ—इस भावनासे भावित होकर पूरे डाक्टरोंके समुदायने नानाजी.......से प्रार्थना की—'आप बाहरसे किसी सुयोग्य, अनुभवी बड़े डाक्टरको बुलाकर परामर्श अवश्य लें—यह हमारी इच्छा है, हमारी रुचि है।'

नानाजीके लिये इस आग्रहका कोई खास अर्थ नहीं था। वे जानते थे—मङ्गलमयका प्रत्येक विधान मङ्गलमय होता है। औषध भी लाभ-हानि तभी करती है, जब विश्वनियन्ताका विधान तदनुरूप होता है। साथ ही जगत्के धरातलपर अवश्य ही उनकी पार्थिव देह पञ्चतत्वोंसे निर्मित थी; परंतु वस्तुतः तो वहाँ 'कृष्णतत्व'के अतिरिक्त कुछ था ही नहीं। फिर उनके लिये कहाँ स्थान था इन सब बातोंका ?

तथापि दूसरेको तनिक-सी भी प्रसन्नताका जिसमें भान हो, उस बातका अनुमोदन—उसका आदर उनका नित्य स्वभाव था।

लखनऊ, दिल्ली, वाराणसी, कानपुर आदिसे कई बड़े मान्य 'सर्जन' और 'फिजीशयन' आये और सबने अपनी-अपनी राय निस्संकोचरूपसे दी। पर उनकी रायका उपयोग नहीं किया जा सका; क्योंकि निदानात्मक ऑपरेशन भी सबकी दृष्टिमें ही परिणामतः अत्यन्त भयावह प्रतीत हो रहा था।

शरीर पीड़ाका अनुभव करता था—यदा-कदा कुछ कराहकी-सी ध्वनि भी मुखसे निस्सृत होती थी। परंतु जब डाक्टरोंकी टोली कमरेमें प्रवेश करती, नानाजीकी स्वाभाविक मुस्कान उनके होठोंपर आ जाती थी। उन्हें तो सभी आनेवालोंको अपनी स्नेह-सुधासे सिञ्चितकर भगवान्के नेह-नगरकी डगरपर चला देना ही मात्र अभीष्ट था। प्रभु-प्रेरित वे आते भी थे अपने किसी पूर्व-सुकृतके फलस्वरूप इस दिशाकी ओर देर-सबेर बढ़नेके लिये ही। इसे डाक्टर तो नहीं समझ पाते, परंतु इस प्रकार मृत्युकी विभीषिकाका सहर्ष स्वागत करनेवाला, इस भीषण कष्टकी स्थितिमें भी मुस्कानेवाला, आनेवालेकी सुख-सुविधाका ध्यान रखनेवाला रोगी आजतक तो नहीं मिल सका था उन्हें और—यह आश्चर्यजनक स्थिति सहज ही एक विचित्र आदर-बुद्धिका उन्मेष कर देती थी आनेवालेके मनमें। वे नहीं जानते थे कि—

'देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे, नाथ !
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ ॥'

× ×

'तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मैं किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ॥'

—ये पंक्तियाँ कवि-कल्पना नहीं थीं, अपितु नानाजीके जीवनका कण-कण उस साँचेमें ढला हुआ था।

डाक्टरोंके आनेका क्रम चलता रहा, और प्रत्येक डाक्टर ही आप्यायित-सा होकर लौटता रहा। परंतु नानाजीके स्वास्थ्यमें सुधार नहीं आया। निदानरूपसे पेट खोलकर देखनेमें कई अड़चनें थीं। एक अड़चन यह थी कि नानाजी मधुमेह (डायबिटीज)के रोगी थे, अतः रक्तमें चीनीका अनुपात कम करनेके लिये 'इन्सुलिन' देना आवश्यक था और 'इन्सुलिन'में सम्भवतः गायके उदरका कोई रस-विशेष डाला जाता है। नानाजीने कड़े शब्दोंमें घोर विरोध कर दिया—'मैं मर भले ही जाऊँगा, परंतु इस औषधका प्रयोग नहीं करूँगा।' एक और माननीय व्यक्ति भी इसके कट्टर समर्थक थे—ऐसी दशामें कोई भी डाक्टर साहस ही नहीं बटोर सके, बिना

इन्सुलिनके ऑपरेशन करनेका। और वस्तुतः तो नानाजी और वे मान्य व्यक्ति—दोनों ही ऑपरेशनके सर्वथा विपक्षमें थे; क्योंकि भविष्यका चित्र उनके सामने स्पष्ट था और किसी भी डाक्टरको नानाजी-जैसे सार्वभौम व्यक्तिके उपचारमें असफल होनेके कारण लाञ्छित होना पड़े, यह तो उन्हें कदापि सह्य था ही नहीं। अस्तु,

नानाजीके स्वास्थ्यकी स्थिति शनैः-शनैः बिगड़ती ही चली गयी....। भोजन आदि तो दूर, फल-रस आदि भी सर्वथा बंद हो गये। आगे चलकर शरीर-रक्षाके लिये दो तीन आउंस जल भी चौबीस घंटेमें वे नहीं ले पाते थे।

सम्पूर्ण शरीरमें भयंकर दाह उत्पन्न हो गया था। गलेमें भीषण जलन थी—जलके स्पर्शसे भी जलन बढ़ जाती थी। इस कारणसे प्यासकी आत्यन्तिक अनुभूति निरन्तर बनी रहनेपर भी वे जलतक नहीं पी पाते थे। परंतु उस कष्टकी स्थितिमें भी उनके अन्तस्तलमें अखण्ड शान्ति विराजित थी। क्यों न हो—इस प्रपञ्च-राज्यमें शान्ति-सुखका आभास भी जिन सुख-सागर, अखण्ड शान्तिके आगार, सुखकंद श्रीकृष्णचन्द्रके प्रतिबिम्बकी छायाकी छाया मात्र है—वे स्वयं नानाजीके अस्तित्वके अन्तरालमें नित्य अभिव्यक्त थे।

अपनेसे मिलने आनेवालोंका वे दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन करते.....तनिक-सा भी शारीरिक कष्ट अपेक्षाकृत कम रहनेकी स्थितिमें उनसे कुशल-प्रश्न करते—उनके भोजनादिकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें परिवारके सदस्योंको प्रेरणा देते..........। स्नेहका, दूसरेके सुख-संयोजनका ऐसा निदर्शन जगत्‌में कहाँ मिलेगा?

जो हो, स्वाभाविक करुणावश स्वीकृत की हुई अन्यकी कर्मराशिके परिणाम-स्वरूप नानाजीने जगत्‌की सबसे भीषण अचिकित्स्य व्याधि कैन्सरको वरण किया था......। परंतु वह भी ठीक-ठीक प्रमाणित न हो सके, घरवाले स्वजनोंका मानसिक संतुलन अस्त-व्यस्त न हो उठे—इस ओर भी उन्होंने ध्यान रक्खा। उक्त रोगके अधिकांश लक्षण तब प्रगट होने लगे—जब उनका शरीर सर्वथा अशक्त हो चुका था—और एक विशेष परीक्षण (बायप्सी) के लिये भी, जिससे कैन्सरका असंदिग्ध निर्णय हो सके, अवकाश नहीं रह गया था।

छः मार्चको दिनके लगभग बारह बजेसे पेटमें असह्य पीड़ा आरम्भ हो गयी। वे चाहते तो इसे भी अप्रकट रख सकते थे; परंतु अब तो दृश्य-परिवर्तनका समय आ चुका था। वेदना सह्यताकी सीमाका अतिक्रमण कर चुकी थी—नानाजीके मुखसे भी कराहनेकी-सी आवाज आने लगी। पर उस समय भी वे बार-बार 'नारायण, हे राम' आदि भगवान्‌के मङ्गलमय नामोंका ही उच्चारण कर रहे थे।

कुछ देर बाद रक्तमिश्रित वमन प्रारम्भ हो गया। दो-दो, तीन-तीन मिनटके अन्तरसे उल्टियाँ होने लगीं और उनसे पर्याप्त रक्त बाहर आने लगा।

परिवारके, स्वजनोंके प्राण रो उठे—कण-कणमें व्यथाकी भीषण तरंगें उठने लगीं—हे करुणावरुणालय! अशरणशरण! हमारे भाईजी, हमारे बाबूजी, नानाजीको स्वस्थ कर दो—मनकी सचाई लेकर सब नत-मस्तक थे सर्वसमर्थ प्रभुके सामने.......। अब तो मात्र वे ही अवलम्बन थे।

नानाजीने उस गम्भीर स्थितिमें परिवारके सदस्योंको एकत्रितकर उन्हें आश्वासन दिया, समझाया, न रोनेके लिये कहा। परंतु स्थितिका गाम्भीर्य धैर्यके बाँधको तोड़ चुका था।

'बाई' (माँ)का हृदय फटने लगा—नानाजीने भी जीवनमें बाईकी रुचिका सदा अनुमोदन किया था—'उन स्नेहशील पिताकी स्नेहकी छत्र-छायासे विरहित मैं न हो जाऊँ', इस कल्पनामात्रसे बाईके प्राण रो रहे थे।

श्रीराधामाधवकी नित्य-क्रीड़ा-स्थली, समर्थ पिताके हृद्देशपर अपना सिर रखकर बाई बिलख उठी—'बाबूजी! मैं आपकी बेटी हूँ, पिता अपनी कन्याको सदा-सर्वदा देता ही रहता है; फिर मेरे तो आधार ही केवल आप हैं। आप-सा समर्थ दाता पिता क्या किसीका होगा? बाबूजी! मैं झोली फैलाकर आपसे भीख माँगती हूँ—आपसे आपको माँगती हूँ। आप ठीक हो जाइये.....मुझे निराश न करिये। यदि आप ही नहीं देंगे तो मुझे देनेवाला इस जगत्‌में और कौन है.....। बाबूजी! आपने संसार बसाया था मेरे लिये......

इस उपवनको सींचा था मेरे लिये। इसे आप ध्वस्त न करें.....आप सब कुछ मेरे लिये करते रहे हैं— बाबूजी ! इस बार भी मेरे लिये आप अपनेको रख लीजिये। मैं अनाथ हो जाऊँगी...आपके अतिरिक्त मेरे जीवनमें सुखका सृजन कौन करेगा ? बाबूजी....बाबूजी....बाबूजी......।' आँखोंसे आँसूकी झड़ी लग गयी.... कण्ठ रुद्ध हो गया........।

वीतराग पिताके नयन-कगारोंसे भी स्नेह-करुणाकी दो बूँदें ढलक पड़ीं। वे जानते थे, जाना अनिवार्य है, तथापि रोती हुई अपनी लाड़िली बेटीके सिरपर हाथ रखकर बोल पड़े नानाजी—'बेटी ! मैं चेष्टा करूँगा, मैं चेष्टा करूँगा। तुमलोग चुप हो जाओ।'

नानाजी प्रयत्न करेंगे—तब तो असम्भव भी सम्भव हो सकता है, मृत्यु क्या छू सकेगी इन्हें ! मनके इस अडिग विश्वासके कारण सहज ही मनमें धीरज आ गया और बाबूजी अब ठीक हो जायेंगे, इस विश्वासने बाईके आँसू भी पोंछ दिये। और लगभग एक घंटेके बाद रक्तके स्थानपर सफेद कफ आने लगा तथा फिर उल्टी भी बंद हो गयी। यश अवश्य मिल गया किसी औषधको।

स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन और नानाजी—दो पृथक् अस्तित्व तो रखते थे नहीं। नानाजीने कौशलका आवरण देकर सत्यका भी पूर्ण आदर करते हुए घरवालोंको उपर्युक्त बात कही थी। वास्तवमें यह आश्वासन नहीं था। 'चेष्टा करूँगा' यह उक्ति मायाके अन्तरालसे हम सबको आवृत कर गयी थी। नानाजी इस बार इस आँखमिचौनीमें भी सफल हो गये और हमारे क्रन्दनमें पुनः शैथिल्य आ गया।

दूसरे दिन पुनः वमन हुआ.......फिर कुछ घंटोंके बाद ठीक हो गया। परीक्षणसे ज्ञात हुआ—उसमें कुछ रक्त भी था, परंतु पित्तकी अधिकता थी। यह उनके खेलकी दूसरी कड़ी थी।

एक औरको आगेकी घटनाओंका पता था। उनके संकेतके अनुसार कलकत्तासे 'ऑक्सीजन-सिलिन्डर' खरीदवा-कर मँगवा लिया गया था....। गोरखपुरमें भाड़ेपर एक सिलिन्डर प्राप्त हो सकता था, किंतु अपनी चीज हो तो ठीक रहे—न जाने अविरामरूपसे उसके प्रयोगकी कब आवश्यकता पड़ जाय, अतः उसकी स्वतन्त्र व्यवस्था कर दी गयी थी।

नानाजीकी शारीरिक दुर्बलता अत्यधिक बढ़ चुकी थी। दस मार्चतक तो वे बिस्तरसे उठकर शौचालयमें शौच जाते रहे, परंतु इस श्रमको शरीर अब सहन नहीं कर पाता था। ग्यारह मार्चके दिन उन्हें तीन-चार दस्त लगे और तब सभी घरवालोंके अत्यधिक आग्रह करनेपर उन्होंने कमरेमें शौच जानेकी स्वीकृति दी। कमरेमें ही कमोडपर वे दो-एक बार उठकर बैठे, परंतु वह शक्ति भी क्रमशः क्षीण-क्षीणतर होती चली गयी और अन्तमें उन्होंने 'बेड-पैन' लेना स्वीकार किया। किंतु वह सेवा भी वे घरके कतिपय सदस्योंके अतिरिक्त किसीसे नहीं लेते थे।

बारह तारीखको रात्रिमें हठात् उनके पेटमें पुनः असह्य पीड़ा आरम्भ हो गयी—कई इन्जेक्शन आदि दिये गये। उन्हें लाभ हुआ या नहीं—यह तो अन्तर्यामी जाने; पर 'घरवाले, बाबा, डाक्टर—सब इस समय-तक मेरे कारण जग रहे हैं, उन्हें कष्ट हो रहा है'—इस प्यारकी भावनासे अभिभूत होकर वे शान्त होकर लेट गये। परिवारके लोग पुनः व्यामोहमें फँस गये—अपना समाधान कर लिया—'अब शायद पीड़ा उपशम-की ओर है।'

रजनी बीती, प्रातः आया—स्वास्थ्य वैसा ही था। दिनमें ग्यारह-बारह बजे उन्होंने एक बार उठकर बैठनेकी इच्छा प्रकट की। सहारा देकर—तकिया-मसनद आदि लगाकर उन्हें बैठाया गया। किंतु उतने श्रमसे ही उनकी नाड़ी अत्यधिक अस्त-व्यस्त हो गयी। श्वास लेनेमें कष्टका अनुभव होने लगा। तुरंत ऑक्सीजनका प्रयोग आरम्भ हुआ। आजकी स्थिति अन्य दिनोंकी अपेक्षा अधिक गम्भीर थी। नानाजीकी अद्भुत सहिष्णुताका, निरुपम धैर्यका प्रतिबिम्ब नानीपर भी है, परंतु आज उसकी धीरता भी उसे छोड़ गयी। अन्तरका दुःख बाहर व्यक्त हो उठा—बिलख उठी वह—'अब क्या होगा ?'

आधे घंटेके बाद स्थिति पुनः ठीक हो गयी--निराशाके घने अन्धकारमें फिर आशाकी क्षीण-क्षीणतर किरण चमक उठी......, पर यह सब भ्रमजाल मात्र था, मायाका पर्दा था, नानाजीके प्रयाणकी पूर्व-भूमिका थी, जिसे कोई भी अन्ततक समझ ही नहीं पाया।

नानाजीकी शारीरिक पीड़ा हम सबोंके हृदयको मथे डालती थी, प्राणोंमें आकुलता—वेदनाका सृजन कर रही थी, फिर भी मनमें यही विश्वास बना हुआ था—'नानाजी अवश्य ठीक हो जायेंगे।'

रात्रिमें पुनः नानाजीने घरके सभी सदस्योंको एकत्रितकर अपने स्नेहिल आदेशोंकी पुनरावृत्ति की।

इससे पूर्व नानाजी अपनेसे सम्बद्ध सभी आर्थिक हिसाब-किताबोंका निपटारा कर चुके थे। घरके प्रबन्धक, संचालक, कर्ता भी वे ही थे। उनके सामने हम सभी अबोध शिशुकी भाँति चिन्ताशून्य रहते थे। आज नानाजीने वह सारा घरका भार भी बाबूजीको सँभला दिया.......हमारा वज्र-निर्मित हृदय उस समय भी नहीं फटा, जब अपने इन जागतिक सम्पूर्ण उत्तरदायित्वको नानाजी दूसरेके कंधेपर डाल रहे थे। लगभग पैंतीस संस्थाएँ नानाजीके संरक्षणमें चलती थीं। यद्यपि उनमेंसे कई संस्थाओंमें तो नानाजीने नाम मात्रके लिये ही पद ग्रहण कर रखा था, तथापि सबका संचालन होता था उनके अमोघ आशीर्वाद और महती कृपाके अन्तरालसे ही। इन सबसे भी—एक-दोके अतिरिक्त—कुछ समय पूर्व ही वे सम्बन्ध-विच्छेद कर चुके थे।

वातावरण क्रन्दनके कोलाहलसे प्रतिनादित हो उठा। सबके हृदय फटने लगे, प्राणोंमें हाहाकार उत्पन्न हो गया। नानाजी नहीं रहेंगे—यह कल्पना ही मानो प्राण-हरण करनेवाली-सी सिद्ध होने लगी। घरवाले नानाजी-की शय्याको चारों ओरसे घेरकर रो रहे थे—अपने दुर्भाग्यको। बाहर राशि-राशि जनसमूह **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की जीवन्त प्रतिमाके शरीरकी यह स्थिति देखकर आँसू बहा रहा था।

वाटिकाके कोने-कोनेमें आर्तनाद व्याप्त हो गया........। नानाजीने मानो सोचा—अभी समय उपयुक्त नहीं। पुनः कुछ सुधारकी भ्रान्ति होने लगी हमें। नानाजीके जीवनकी आशा, हमलोगोंके बीच बने रहनेका आश्वासन—इसके मिथ्या आवरणने पुनः भ्रमका सृजन किया।

जगत्के धरातलपर औषध-विज्ञान जहाँतक सहायता कर सकता है, वहाँतक उन सभी उपकरणोंका पूरा-पूरा ध्यान रखा गया। कदाचित् रक्तकी अत्यधिक अल्पताके कारण बाहरसे रक्त-संचारकी आवश्यकता किसी क्षण हो जाय—इस सम्भावनासे बहुत-से व्यक्तियोंका रक्त-परीक्षण भी करवा लिया गया था। रक्त-परीक्षक डाक्टर चकित देख रहा था—झुंड-के-झुंड लोग प्राणोंका उल्लास लिये चले आ रहे थे। प्रत्येककी अभिलाषा यही थी—मेरे रक्तका कण-कण भी उन स्नेहमूर्तिकी सेवामें लग जाय तो मेरा जीवन-धारण धन्य हो जाय—मेरे साँस लेनेका अप्रतिम-सुन्दर विनियोग हो जाय।

कुछ व्यक्तियोंका रक्त नानाजीके समान श्रेणी (Group)का पाया गया और जिनका रक्त उस श्रेणीका नहीं मिला, उनमें जो अन्तर्दाह जग उठा, उसे चित्रित नहीं किया जा सकता।

किंतु नानाजीके लिये यह सम्भव कहाँ कि अपनी प्राण-रक्षाके लिये ऐसे आधुनिक उपचारका आश्रय वे ले सकें और इसीलिये वह अवसर ही नहीं आया। हाँ, इस अभिलाषासे रक्तका परीक्षण करानेवालोंका उल्लास और एकका रक्त-संचय—उन सबके जीवनके लिये परम शुभ अदृष्टका निर्माण कर ही गया। इस प्रकार मङ्गल-सृजनकी प्रच्छन्न शैली भी उनके जीवनके अन्ततक साथ रही।

कुछ भी आहार शरीरमें न जा सकनेके कारण उन्हें 'ग्लूकोज़ ड्रिप' दिया जाता था—उससे लाभ होता था या नहीं—यह प्रश्न दूसरा है; किंतु नानाजी उसका प्रायः विरोध नहीं करते—सबका मन रखनेके लिये ही।

चौदह तारीखके प्रातः तीन बार प्रयास किया गया नसमें सूई डालनेका; पर चेष्टा सफल न हुई और इस प्रकार उस दिन ड्रिप नहीं दिया जा सका। परंतु इसके अन्तरालमें भी नानाजीकी कृपा ही व्यक्त हुई। उस दिन स्वास्थ्य फिर बिगड़ना जो था। यदि ग्लूकोज़ चढ़ गया होता तो उस अस्वस्थतामें हेतु माना जाता यह ग्लूकोज़ ही, अकारण चिकित्सकवर्ग भी अयशका पात्र बन जाता। सबको बचा लिया नानाजीने इससे।

दोपहरमें नानाजीके स्वास्थ्यने पुनः गम्भीर रूप धारण कर लिया। डाक्टर-वैद्य सर्वथा निराश हो गये—औषध बंद-सी हो गयी। नाड़ीका स्पन्दन कुछ संख्याओंके बाद क्षणिक विरमित हो जाने लगा—तथा अन्यान्य

लक्षण भी पर्याप्त चिन्ताजनक बन गये.....। डाक्टर-वैद्योंके अनुसार कुछ प्रहरोंके ही मेहमान मान लिये गये थे मेरे नानाजी।

उनकी यह दशा देखकर हम सबके मनकी क्या स्थिति हुई, इसे लेखनी अङ्कित नहीं कर सकती। इस महादुःखकी काली घटामें आशाकी एकमात्र रश्मि थे एक कोई.....। परिवारके सभी सदस्योंने जाकर उन्हें घेर लिया। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गयीं सबकी, और वे भी विवश-से हुए, अश्रुपूरित नेत्रोंसे देखते रहे हम सबकी ओर। हमारी माँग थी—'नानाजीका वरद हस्त हमारे सिरपर बना रहे।' और इस माँगकी पूर्ति ही हमें अभीष्ट थी। किंतु.............

कैसे हुआ, क्या हुआ, इसे कहना बनता नहीं; परंतु कुछ हुआ अवश्य। उससे पहले नानाजीके पास भी हम भिखारियोंका दल रो-रोकर अपनी माँग रख चुका था और करुणाके रससे सिक्त एक लहरी उनके मनमें भी सम्भवतः उत्थित हो चुकी थी। जो हो.....करुणाने आज फिर पासा पलट दिया।

रात शान्तिसे बीत गयी और प्रातःकाल नानाजी और दिनोंकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ-से प्रतीत हुए। यह हम सबोंके भ्रमसे आवृत होनेका तीसरा प्रसङ्ग था। वे जानते थे—'जाना है', किंतु उनके जीवनकालमें हम अभागोंको अवसर भी नहीं मिल सका खुलकर रोनेका।

नानाजीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें असह्य प्रदाह तो ज्यों-का-त्यों बना हुआ था ही, बर्फसे स्पृष्ट हाथोंका स्पर्श उन्हें शीतलताका भान कराता था; पर वे अब भी जल नहीं पी पाते थे।

विचित्र-सी स्थिति थी। बाहरसे स्नेहीजनोंके टेलीफोन-तार आनेपर उनका ठीक-ठीक उत्तर देना सम्भव नहीं हो रहा था। आधी घड़ी कुछ ठीक-सी अवस्था और तुरंत उससे विपरीत......। इस झूलेपर झूल रहे थे हम सभी....और व्यामोहवश मान बैठे थे इसे सुधारकी दिशा,—जब कि यह अवस्था प्रयाणकी भूमिका प्रशस्त करती जा रही थी।

नानाजीकी वाणी क्रमशः मन्द-मन्दतर होती चली जा रही थी। स्पष्ट बोल नहीं पाते थे वे। इसी बीच मुँहमें 'थ्रश फंगस्' नामक नवीन उपद्रव सृष्ट हो गया। सारे मुखमें सफेद झिल्ली-सी एकत्रित हो गयी और उसमें जलन और वेदनाका तो कहना ही क्या था।

यह तो निश्चित ही है—औषधसे लाभ तभी सम्भव है, जब विधाताका विधान सहयोग करे। उस रोगमें दो-तीन दिनोंतक तो कुछ भी लाभ नहीं हुआ। जैतूनके तेल (Olive oil) से वस्त्रको सिक्तकर मुखके भीतरी अंशको पोंछ दिया जाता, पर कुछ देरके अन्तरालसे नवीन उजली झिल्ली पुनः व्यक्त हो जाती। तिनकेमें रुई लपेटकर कण्ठके भीतरतक झिल्लीके मार्जनका प्रयास हुआ, परंतु विशेष लाभकी प्रतीति नहीं हुई। उधर पेटमें वायुका वेग बढ़कर भीषण आध्मानका संचार करता ही रहता। वायु-निस्सारणके लिये नलिका (फ्लैटस ट्यूब)का उपयोग किया गया उन्हें आराम पहुँचानेके लिये। दो-दो सौ, ढाई-सौतक बुलबुले देखे गये एक बार तो। तथापि सब उपचार लाभका भ्रम ही सृजन करते रहे। सचमुच कोई लाभ हो नहीं रहा था।

एकको अनुभूति हुई—बीस तारीखको प्रातः पाँच बजेके लगभग। अप्रतिम मधुस्यन्दी स्वरमें नानाजी उनसे कह रहे हैं—'जानेका समय हो गया है।' नानाजीके पार्थिव कलेवरके अन्तरालसे ऐसा म्रदिमा एवं रससे पूर्ण स्वर उन्होंने इसके पूर्व कभी नहीं सुना था। किंतु उनका जीवन है— 'तुम्हारी रुचि ही मेरी रुचि है।' स्वाभाविक ही उनके प्राणोंसे यही उत्तर झंकृत हो उठा— 'आपको जिसमें अधिक-से-अधिक सुखका अनुभव हो, वही करें।' इस प्रकार नानाजी अपनी महायात्राकी सुस्पष्ट सूचना भी दे ही गये। यह घटना घटी थी उस क्षण, जब कि दोनोंमें देशगत व्यवधान था कम-से-कम साठ-सत्तर गजका।

अब तो अग्रिम दृश्यकी प्रतीक्षा थी। नानाजीको शारीरिक दृष्टिसे अत्यन्त कष्ट था। उनकी दशाको देखनेपर कलेजा फटने लगता था; परंतु स्वयंकी दृष्टिसे नानाजी वास्तवमें इन कष्टोंसे सर्वथा परे थे।

बीस तारीखकी रात्रिमें उनसे पूछा गया—'क्या जी घबरा रहा है?' एक मधुर स्मित उनके मुँहपर आया। बड़े प्यारसे बोले—'मेरा तो जी नहीं घबराता; जी अवश्य घबराता है, पर वह मेरा क्या लेता है। मेरा जी बिल्कुल नहीं घबराता।'

सचमुच अहंताका आत्यन्तिक विलय हो चुका था नानाजीके जीवनमें। अपना सर्वस्व स्वाहा करनेके अनन्तर, उसके भस्मावशेषपर जो नृत्य कर सके, वही पथिक बन सकता है राधा-भावके पथका। और मेरे नानाजी इसी महाभावके युगपत् शान्त एवं उच्छलित महासमुद्रमें निरन्तर डूबते-उतराते रहते थे। महाभाव-रस-समुद्रकी उत्ताल तरंगें आत्मसात् किये रहती थीं नानाजीके पार्थिव कलेवरको भी। अतः भौतिकतासे वे सहज पृथक् थे। हाँ, हम सब भाँप न सके इस स्थितिको।

नानीको तीन-चार बार अनुभूति हुई—नानाजीका शरीर अलग शय्यापर अवस्थित है और वे इससे पृथक् अपनेमें लीन हैं।

वाणी स्पष्ट न रहनेके कारण उनके मनोभाव पूरे-पूरे समझे नहीं जा पाते—वेदना होती—हम सब जान नहीं पा रहे हैं इनके इङ्गितको और इन्हें बार-बार बोलनेका प्रयास करना पड़ता है। किंतु निरुपाय थे हम सब। इसपर भी वे हमें प्रबोध देते—'दोष मेरा है, मैं ठीक बोल नहीं पाता और कठिनाई होती है तुम सबोंको समझनेमें।' वे स्नेहस्यन्दी अस्फुट शब्द अब कर्णपुटोंमें अमृत नहीं उड़ेल पायेंगे। भाग्यमें यही बदा था।

उस कष्टकी भयंकरतम स्थितिमें भी उनका दैनंदिन उपासना-क्रम मानसिक रूपसे निर्बाध चलता रहता। पैर सिमटकर बिस्तरपर लेटे-लेटे भी कई बार पद्मासनकी मुद्रा उनकी स्वतः बन जाती थी।

इक्कीस तारीखको सायं पुनः नानाजीके उदरमें भीषण पीड़ा आरम्भ हुई..............। नानाजी यों छटपट कर रहे थे, मानो व्यथा उनके सहनेकी शक्तिको अतिक्रमित कर गयी थी। फिर भी हम चेत न सके कि आज सहसा यह परिवर्तन क्यों। हृदयको बल देनेके लिये कई इन्जेक्शनके उपयोग हुए। नानाजीने कहा—'मुझे जल्दी नींदके लिये इन्जेक्शन लगा दीजिये—दर्द सहन नहीं हो रहा है।'

बाबा एवं डाक्टरोंके परामर्शसे नींदका इन्जेक्शन दिया गया। पर नींद ही नहीं आयी, दर्द भी कम नहीं हुआ—और नानाजी वैसे ही तड़पते रहे।

नानाजीसे एक बार पूछा गया था—'आपके कहाँ कष्ट है, बताइये।' इसपर उनका यह उत्तर मिला था—'भैया! कोई ऐसा स्थान ही नहीं, जहाँ पीड़ा न हो। कहाँ-कहाँ बताऊँ?' पर वे ही नानाजी आज इस भाँति तड़प रहे थे। हम नहीं समझ सके, हमारी अंधी आँखें नहीं देख सकीं; पर अब तो इस नाट्यके अन्तिम पटाक्षेपका समय आ चुका था। हाँ, उस कष्टमें भी नानाजीको पूरा बाह्य ज्ञान था। डाक्टरोंको देखकर उन्होंने पूछा—'आपलोगोंने भोजन किया या नहीं? एक चिकित्सककी आँखोंसे अनायास आँसू टपक पड़े।'

उन भीषण कष्टके क्षणोंमें भी परिवारके छोटे शिशुओंको देखकर नानाजी अपने अप्रतिम प्यारसे उन्हें स्नान करा ही देते थे। ऐसा स्नेहदानी अब कहाँ?

इससे पूर्व कतिपय स्नेही-स्वजनोंको, परिवारके एक व्यक्तिको विभिन्न स्वप्नोंमें नानाजीकी ओरसे यह स्पष्ट संकेत भी मिल चुका था कि 'अब बिदाका क्षण आ रहा है।' तथापि आशाकी मरीचिका विश्वास करने नहीं देती थी इन संकेतोंपर। अपितु वे संकेत ही भ्रामक प्रतीत होते थे। पर वह भ्रम ही सत्यरूपमें परिणत हुआ।

नानाजीका कष्ट बढ़ता गया। नाड़ी कोहनीपर उपलब्ध हो रही थी, वहाँ भी उसकी गति विषम थी। श्वास लेनेमें कष्ट हो रहा था.....। धीरे-धीरे श्वासकी गति बढ़ गयी; परंतु नानाजीके मुख-सरोजपर सहज आनन्दके लक्षण उस समय भी स्पष्ट परिलक्षित हो रहे थे।

एक अन्तिम भ्रमका सृजन इस रूपमें हुआ—यह चरम परीक्षा है, यह पर्यवसित होगी नानाजीके स्वास्थ्य-लाभमें। सारी रात इसी प्रकार बीत गयी। रातमें एक बार वायु-निस्सारणके लिये ऐलोपैथिक उपचार किये गये, पर उससे भी कोई लाभ नहीं हुआ..........अपितु दर्द अधिक बढ़ गया।

बाईस मार्चको प्रातः लगभग पाँच बजे श्वासकी गति पहलेसे भी अधिक बढ़ गयी। श्वास लेनेमें पर्याप्त कष्टका अनुभव होने लगा। नानाजीसे पूछकर उन्हें ऑक्सीजन दिया गया..........फल कुछ भी न निकला। शय्याके चारों ओर बैठे हम सब अभागे उस दारुण कष्टकी स्थितिको देख रहे थे, परंतु थे सर्वथा निरुपाय।

लगभग साढ़े छः बजे बाईको भान हुआ—बाबूजी खड़े हैं—उसके सिरपर अपना वरद-हस्त

अन्त्येष्टिके पूर्व शास्त्रोचित कर्म आरम्भ हुए
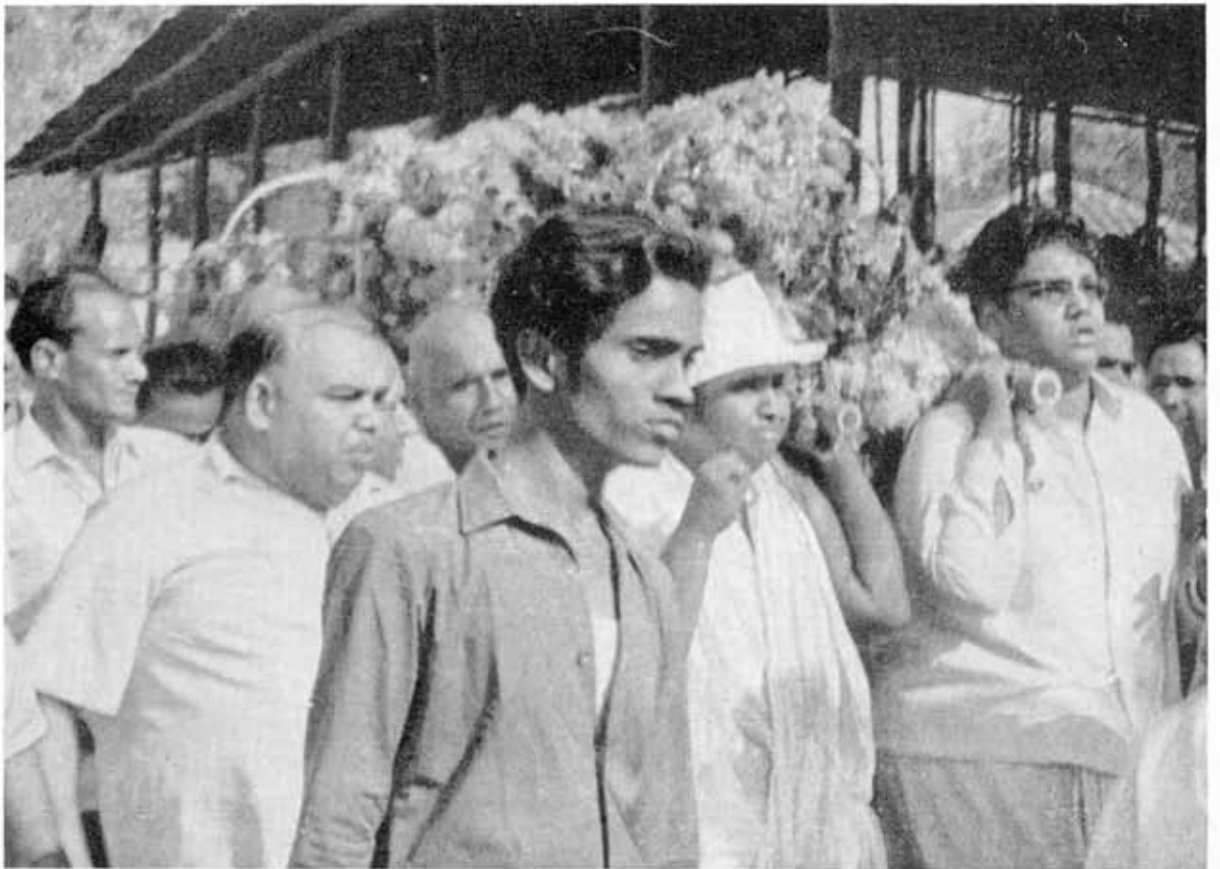
सर्वप्रथम श्रीराधाष्टमीके पंडालमें भाईजीकी अर्थी लायी गयी।
पंडालका एक-एक स्तम्भ—रजः कण तक रो उठा।
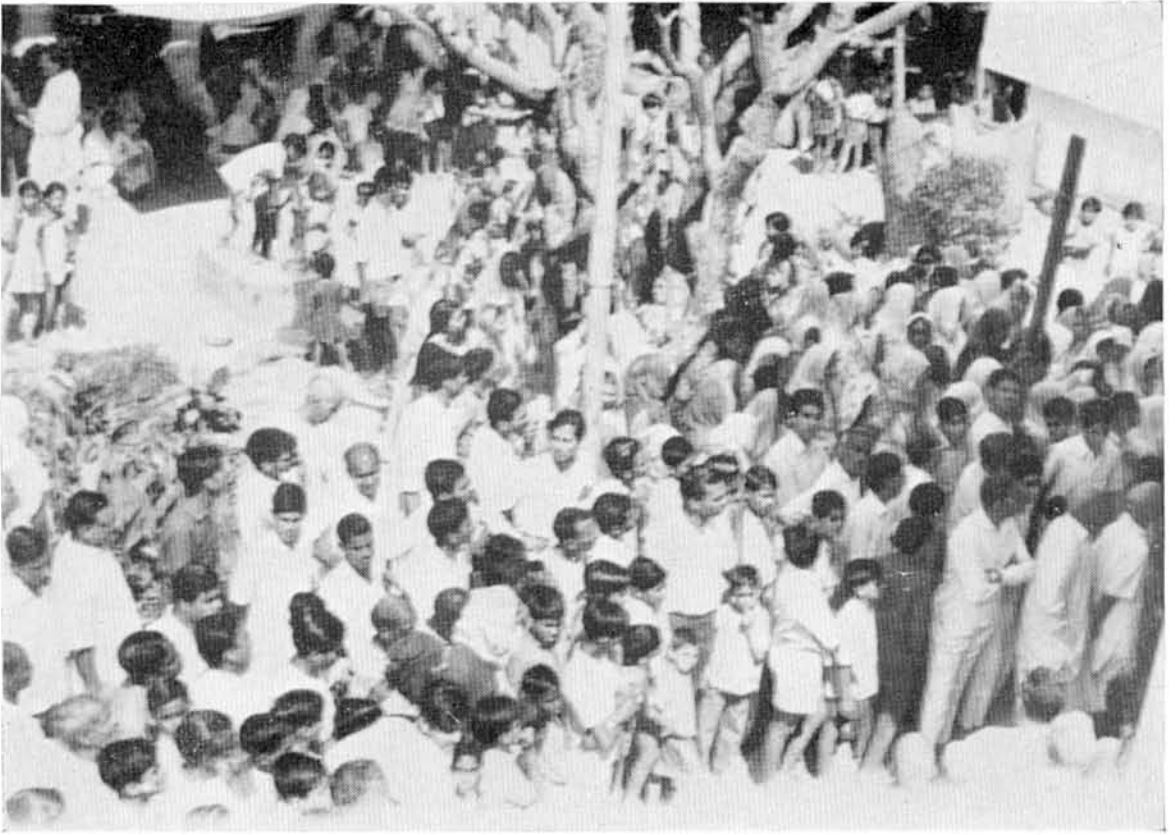
हजारों नर-नारियों द्वारा अन्तिम दर्शन

प्रत्येक व्यक्ति अश्रुपूरित नेत्रोंसे अपने श्रद्धास्पदके निस्पन्द कलेवरको अग्निके समर्पित होते देख रहा था

स्नेह-पुंज चिताकी ज्वालामें

स्नेह-दुर्गके अवशेष
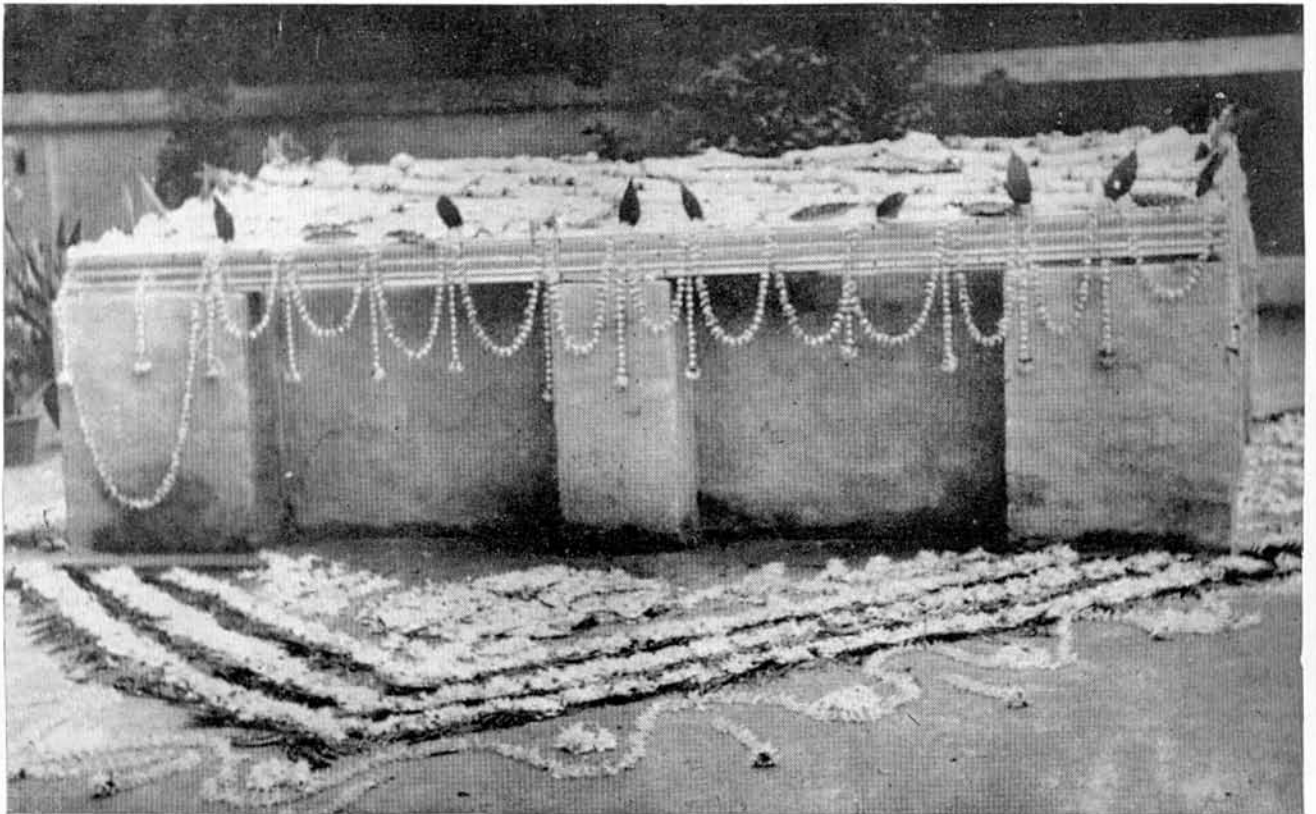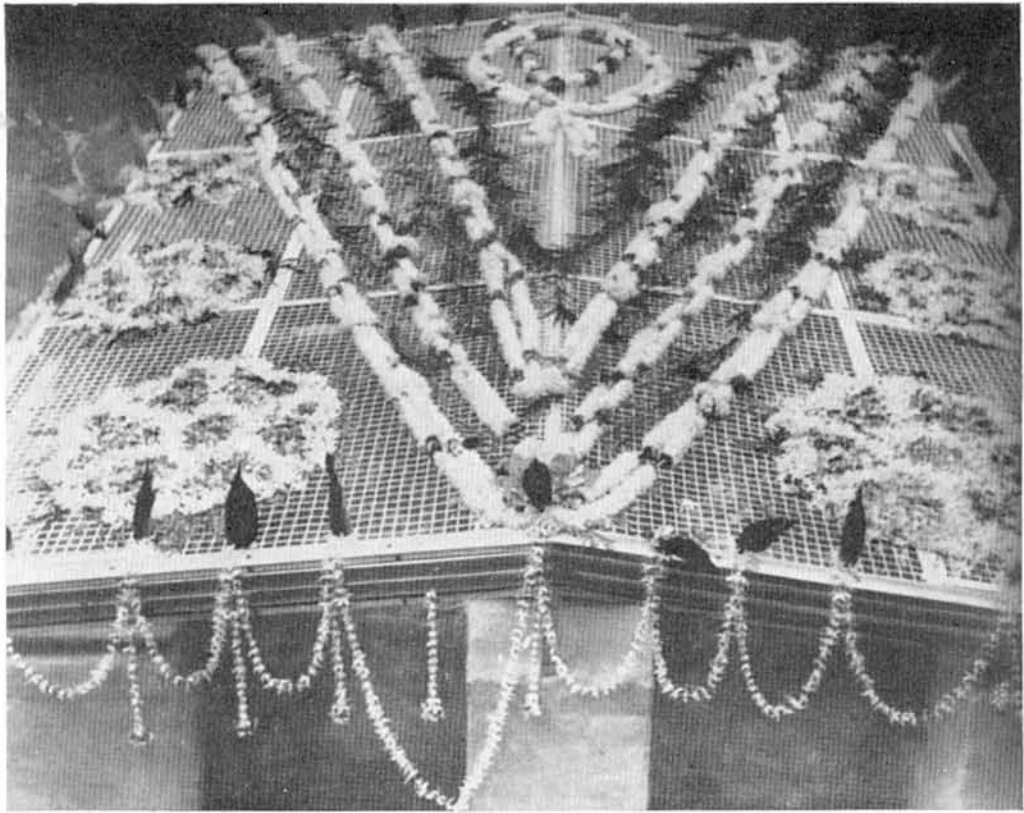
भाव-प्रसूनोंसे अर्चित नित्यलीलालीनकी समाधि

रखकर कह रहे हैं--'बेटी ! इस परिस्थिति-विशेषसे मैं आठ दिन और जीया, और अब मैं............ यह करके जा रहा हूँ।' बाई दूसरी जगह बैठी आँसू बहा रही थी--दौड़कर नानाजीके पास आयी........।

बाबूजीकी सर्वसमर्थतापर बाईका, परिवारका पूर्ण विश्वास था। सब घेरकर बैठे ही थे। रोते हुए बाईने फिर अपने बाबूजीके हाथ पकड़े--आँसुओंसे उनकी अर्चना की और बिलबिला उठी--"बाबूजी ! आपने कहा था --'मैं चेष्टा करूँगा।" मैं उसीपर अपना मन टिकाकर, आशा लगाये बैठी थी; अब आप ठीक हो जाइये, बाबूजी!' समर्थ बापके सामने दीना पुत्री अपनी झोली फैलाकर भीख माँग रही है।" नानी भी फूट पड़ी--'आप हमारी तरफ न देखें; हम तो अनन्त दोषोंसे भरे हुए हैं, पर आपके हैं। जब आप ही हमें छोड़ देंगे, तब क्या होगा ? आपका कष्ट अब नहीं देखा जाता, अब इस कष्टकी लीलाको बदल दीजिये।'

हम सबने भी अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार अपने-अपने दामन फैलाये, परंतु आज नानाजी मौन रहे।

पौन घंटेतक अनवरत यह याचना चलती रही, तथापि नानाजी अडिग ही रहे। लगभग साढ़े सात बजे बाबा भी आ गये--अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे वे स्थितिको देखते रहे। नानाजीके नेत्र स्थिर थे।

सात बजकर पैंतालीस मिनटपर दरवाजा खोल दिया गया--डाक्टर परीक्षा करनेके लिये भीतर आये ....। वे देख ही रहे थे कि नानाजीके मुखसे रक्तका एक कुल्ला निकला और हिचकी-सी आयी। उन्हें शय्यासे उतारकर नीचे लिटाया गया। और सात बजकर पचपन मिनटपर वे नेत्र, जिनसे स्नेहकी अनवरत वर्षा होती रहती थी--जो करुणाका अक्षय कोष थे, मुँद गये सदा-सदाके लिये......। नानाजी हमको छोड़कर चले गये..........।

जो नानाजी हमारा एक आँसू देखनेमें असमर्थ थे--हमारा सुख ही जिनके लिये अपना सुख था--वे चले गये। हम अनाथोंको बिलखता, बिलबिलाता छोड़कर नानाजी चले गये।

सहस्रोंकी संख्यामें एकत्रित जन-समूहके कण्ठसे करुण नाद फूट पड़ा और आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बह चली। किंतु अब नानाजीने अपने कान बंद कर लिये थे.......वे अब हमलोगोंके आर्तनादको सुनने नहीं आयेंगे।

हमारा सर्वस्व लुट गया। जगत्को भी मुँह दिखानेयोग्य थे हम नानाजीके कारण ही और परमार्थका तो आधार ही थे वे। अब रहा ही क्या है ?

आज हजारों दीन-हीन विधवाओंको अपने वैधव्य-दुःखकी सच्ची अनुभूति हो रही थी। पतिके न रहनेपर नानाजीके रूपमें सच्चे पिताका संरक्षण तो उन्हें प्राप्त हो गया था और वे निश्चिन्त हो गयी थीं। पर आज उनके लिये भी बच गया था घना अन्धकार.......। लोक-परलोक दोनोंकी रक्षाके लिये जो अपार विशुद्ध स्नेहभरी निर्मलतम मूर्त छत्रछाया थी, वह उनपरसे अपसारित हो चुकी थी। सबके आँसू तो बाँध तोड़ चुके थे। पर हाय रे ! उन आँसुओंको पोंछनेवाले अपनी आँखें निमीलित किये सामने निश्चेष्ट थे। ऐसा ही होता है विधिका विधान।

दिशाएँ रो रही हैं, आकाश रो रहा है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जड पदार्थ भी आज मानो आँसू बहा रहे हैं। सबका एकमात्र स्वजन जो चला गया, दूर--अत्यन्त दूर--अब लौटकर नहीं आयेगा !! हम बाबाको घेरकर सिर पटक रहे हैं और बाबाके नेत्रोंसे भी अजस्र धारा चल रही है। और एक तरफ चरणोंके निकट बैठी वेदनाकी मूर्ति बनी नानी आँसू बहा रही है.......उसका हृदय फट जाना चाहता है।

किंतु सान्त्वना कौन दे--अश्रु-मार्जन कौन करे......? बाबाका भी सर्वस्व तो नानाजीके साथ ही विलीन हो चुका था !

सब चीत्कार कर रहे हैं--आँसूकी नदी बह चली है। पर अब नानाजी आकर अपने अङ्कमें स्थान नहीं दे रहे हैं।

आज प्रीतिका सूर्य अस्त हो गया--सर्वत्र घटाटोप तिमिरमयी अमा-निशाका साम्राज्य फैला है.....। अब प्रकाश नहीं ! पथ नहीं दीखता और चारों ओर जीवन-विध्वंसक गहन कान्तार घेर चुका है हम सबको। भावके दिनमणि अब हमें एक क्षीण रश्मिका दान भी नहीं करने आ रहे हैं।

इस अतिशय क्रूर वज्रपातके बाद भी जागतिक धरातलके बहुत-से कार्य अभी अवशिष्ट थे। 'अन्त्येष्टि' होनी थी––उसकी 'अन्त्येष्टि', जिसके शरीरके अंशसे हमारा अस्तित्व निर्मित हुआ, जिसने अनुपम प्यारकी अनाविल धारासे निरन्तर हमें अभिषिक्त किया––गोदमें लेकर लाड़ लड़ाये; जिसके वरद-हस्तकी शीतल शंतम छायामें हम पल्लवित-पुष्पित हो सके, जिसके वात्सल्यपूरित स्मित हमारे लिये सुखका सृजन कर देते थे, जिसकी करुणाभरी चितवनसे अपार दुःखोंका पहाड़ पलक गिरते-न-गिरते अदृश्य हो जाता था, जिसकी मधुस्यन्दी गिरा अनजानमें हमारे नारकीय जीवनके कण-कणको भगवान्‌के परम पावन, संविन्मय प्रतिबिम्बके माध्यमसे उद्भासित कर देती थी; जो हमारे––शत-सहस्रोंके जीवनकी आधारशिला था। इतिहासके पन्नोंको आँसुओंसे सिक्त करनेवाली अन्त्येष्टि थी यह––दूसरे शब्दोंमें, हमारे सुख-स्वप्नोंकी––हमारे जीवन-निर्माणकी अन्त्येष्टि ही यह थी। पर शरीरकी बात तो दूर, हमारे निर्लज्ज मन-प्राण भी अन्तिम बिन्दुतक अपना अस्तित्व विलुप्त न कर सके, और अग्रिम कृत्योंका भान भी रह-रहकर होता ही रहा।

उस पावन कलेवरको हुताशनमें समर्पित करनेसे पूर्व शास्त्रोचित कर्म आरम्भ हुए। घरके, कल्याण-परिवारके सभी वयोवृद्ध छातीपर पत्थर रखकर इस कार्यकी ओर अग्रसर हुए।

गोरखपुर शहरमें मुनादी पिटवा दी गयी थी––'जो भी अन्तिम दर्शनके लिये आना चाहें, आ सकते हैं। सायं तीन बजेतक ही पार्थिव देहके दर्शन होंगे।'

शत-सहस्र नर-नारियोंकी अपार भीड़ गीता-उद्यानकी ओर बढ़ चली––प्राणोंका हाहाकार साथ लिये। सबके पास ही अर्चनके उपकरणरूपमें अश्रुकण थे। अश्रुके पाद्य-अर्घ्यके साथ प्रकृतिके दिये हुए कुसुम भी कुछ हाथोंमें थे और मालाएँ भी थीं। और नित्यलीलालीन नानाजी उनकी इस अर्चनाको स्वीकार भी कर रहे होंगे–– भले ही मेरी फूटी आँखें, टूटा हुआ मन और कलुषसे भरा हृदय इसे अनुभव न करे।

दो बज गये........स्नानादि कृत्योंका समापन करके नानाजीको अर्थीपर विराजित करनेका समय हो चुका था........।

जीवनके लंबे पचाससे अधिक वर्षोंतक जिसका अहर्निश संयोग था, जो उनकी चिरसङ्गिनी थी, उनके ही शरीरका आधा अङ्ग थी––सहगामिनी थी, सहधर्मिणी थी........आज उसके प्राणोंका हाहाकार कहाँ किसके हृदयपर प्रतिबिम्बित हो? धक्-धक् जलते हुए हृदयकी मूर्ति नानीकी समय-समयपर वेदनाको हर लेनेवाला और सुखकी प्रवाहिणी सृजन करनेवाला इस समय चिरमौन जो हो चुका था!

स्नान-कृत्य आरम्भ होनेसे पूर्व नानाजीके चरणोंमें सिर रखकर अपने आँसुओंसे चरणोंको स्नान करा दिया था नानीने––उसे बाह्य जलकी आवश्यकता नहीं थी,––अन्तरकी व्यथाका स्रोत उमड़ रहा था, वही पर्याप्त था। जीवनभरकी साधनाको, समर्पणको, अपने आपको उसने नानाजीके चरणोंमें डाल दिया, एक चीत्कारके अन्तरालमें मन-ही-मन यह कहते हुए––'आप मुझे छोड़कर चले गये, पर मेरा अस्तित्व तो इन चरण-नख-चन्द्रोंमें ही है।' अपनी बरसती आँखोंमें चरण-रज-कणिका आँजकर, उमड़ते हृदयमें चरणोंकी चिर-स्मृति सँजोकर वह वेदनाकी पुत्तलिका कक्षसे बाहर आ गयी।

नानाजीकी एकमात्र परम लाड़िली बेटी देख रही है––सर्वसमर्थ पिता अपनी सारी सामर्थ्य-शक्तिको संवरण करके निःस्पन्द हो गया है। वे वरद हस्त, जिनके समुज्ज्वल वितानके परम सुखद आश्रयमें बाईके जीवनके चालीससे अधिक वर्ष बीते थे, आज वे हाथ सक्रिय नहीं हैं। जिन नयनोंसे सतत उसके लिये––सबके लिये स्नेहका निर्झर प्रसरित रहता था, वे आज सदाके लिये गतिहीन हो गये हैं...! चीत्कार निस्सृत हो रहा है––'बाबूजी! बाबूजी!! बाबूजी........' किंतु अब बाबूजी नहीं बोलेंगे, कण्ठसे लगाकर अपने स्नेह-पयोनिधिमें निमग्न नहीं कर देंगे। बेटी फूट-फूटकर रो रही है ....! सम्पूर्ण स्वजन, सम्बन्धी-स्नेहियोंकी आँखें बरसकर वक्षःस्थलको सिक्त कर रही हैं........। वे शिशु और प्रौढ़ शिशु, जिन्होंने नानाजीसे केवल और केवल स्नेहका दान पाया था, बिलख रहे हैं, पर आज उन करुणावारिधिके गाम्भीर्यमें विकम्पन नहीं होता........नानाजी द्रवित नहीं होते, नहीं दुलराते........।

'वे ही जब चले गये, मुझपर अब कौन दया कर दे, प्रियतम!'

अर्थी बँध गयी........ऊपर नानाजीके कमरेसे नीचेके अलिन्द (पोर्टिकोसे सम्बद्ध बरामदे)में ले आयी गयी––हजारोंकी संख्यामें जनसमूह एकत्रित था। चन्दन-पुष्पसे सुसज्जित नानाजीका स्नेहिल मुख-सरोरुह आज भी स्नेहकी दिव्य आभासे देदीप्यमान था––अधरोंपर शान्त स्मित रेखाका आभास अब भी था, अर्धनिमीलित नयनोंसे अव्यक्तरूपमें कृपाका दान भी अक्षुण्ण था।

परिक्रमा करके प्रत्येक व्यक्ति चरणोंमें प्रणाम कर रहा है। महिलादलसे आवेष्टित परिवारकी स्त्रियाँ––निराश्रिता पत्नी, अनाथा बेटी-बहुएँ एक ओर प्रतीक्षा कर रही हैं।

पति ही आर्य-रमणीका श्रृङ्गार है––सुहागकी लालिमा है, सौभाग्यका सविता है। यों तो आज हम सबके सौभाग्यकी संध्या हो चुकी है, परंतु नानीके लिये तो अब कुछ भी शेष नहीं रहा। अपने हाथोंकी चूड़ियाँ उतारकर नानाजीके चरणोंपर चढ़ा दीं उसने........जागतिक सम्पूर्ण सुखोंको––अपने मङ्गलको उतारकर, अपनेसे वियुक्तकर उन्हींके चरणोंमें अर्पित कर दिया.......। उस क्षण उपस्थित सभी प्राणोंमें आर्तनादका एक ऐसा पाषाणभेदी करुण प्रवाह फूट पड़ा, जिसे शब्द चित्रित कर ही नहीं सकते........बाबाकी आँखोंसे अश्रुकी दर-दर प्रवाहिणी प्रसृत हो रही थी। पर यह सब था अरण्य-रोदन ही।

नानाजीकी शीतल, अभय, बरद भुजाओंकी छायाके स्थानपर आज सिरपर सफेद वस्त्र-खण्ड बाँधे अनाथ बालकने, अन्य सभी घरके बच्चोंने, श्वसुर-पिता––नहीं-नहीं अपना सर्वस्व खो डालनेवाले पुत्र-दामादने, बाबाने, अपने हाथोंपर, कंधोंपर अर्थीको विराजित किया। 'हरे राम हरे राम.........कृष्ण हरे हरे' के करुण नाम-कीर्तन और हृदयके हाहाकारसे ओत-प्रोत अन्य भगवन्नाम-ध्वनियोंके साथ सभी चल पड़े––अन्त्येष्टिके लिये निर्दिष्ट स्थान––कुटियाके सामने स्थित गिरिराज-परिसरकी ओर.........।

सर्वप्रथम श्रीराधाष्टमीके पंडालमें नानाजीकी अर्थी लायी गयी........। पंडालका एक-एक स्तम्भ––रजःकणतक रो उठा। आज सम्पूर्ण उत्सवके प्राणकी चिर-बिदाई जो है..........। आगे उत्सव हो सकते हैं, पर होंगे प्राण-रहित........वाद्य बज सकते हैं, पर मधुर-स्वर-लहरीके स्थानपर क्रन्दनके रव ही झंकृत होंगे; पद-कीर्तन भी हो सकते हैं, परंतु गायकके प्राणोंमें उल्लासके स्थानपर भरी रहेगी प्राणहारिणी वेदना ही।

गिरिराज-परिसरमें ८'×१०'की एक तीन फुट ऊँची वेदी बनायी गयी थी........प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राणाधारके निःस्पन्द कलेवरको अग्निके समर्पित होते देख सके, मात्र इसी भावनाको लेकर........।

पुनः नानाजीको स्नान कराया गया और उनके भौतिक शरीरको काष्ठ-चन्दनसे निर्मित चितापर विराजित किया गया........और काँपते हाथोंसे उसपर काठका अम्बार लग गया। छलछलाती आँखोंसे बाबाने भी नानाजीके दिव्य ज्योतिके रुद्ध हुए निर्झर-रूप दोनों नयनोंपर पटीरके दो छोटे-छोटे खण्डोंको सजा दिया। कदाचित् उनकी जीवनभरकी अर्चनाका उपसंहार ही यह था।

चितासे हुतभुक्का विधिवत् संयोग हुआ। कदाचित् उसमेंसे नानाजीको निकाल पाती और स्वयं कूद पड़ती––व्यथाका यह रूप अन्तर्मनमें रहा अवश्य होगा; किंतु अभी साँस पूरी जो नहीं हुई थी। मेरे कलुषित हृदयमें इस साहसका संचार कैसे होता?

सबकी आँखें अविरल अश्रु-धारा बरसा रही हैं। करुण चीत्कारमें कीर्तनका स्वर विलीन हो गया है...। हाहाकार, क्रन्दन और आँसुओंकी अविरल प्रवाहिणीके अन्तरालसे हृदय-प्राणोंपर अँधेरा-सा मूर्त होता जा रहा है। अवश्य ही बाहर अस्ताचलकी ओर जाते हुए दिनकरकी रश्मियाँ, रश्मियोंकी लाली––रक्तिमाके सदृश पावक-की अरुण शिखाएँ चमक रही हैं........।

एक ओर अंशुमाली क्षितिजकी ओटमें जा रहे थे––प्रकृतिका साम्राज्य तमस्में विलीन हो रहा था––दूसरी ओर भाव-भास्कर भी अपनी किरणोंको समेटकर, इसके पूर्व ही, पर आज ही अन्तर्धान हो चुके थे–दृश्य-प्रपञ्च-पर अब अवशिष्ट था स्नेहशून्यताका दुर्भेद्य घनतम तिमिर मात्र। कुछ क्षण पूर्व नीले अम्बरमें उन ज्योतिःपुञ्जके तिरोधानकी लालिमा थी और धरापर चमक रही थीं इन स्नेहपुञ्जकी चितासे निस्सृत लाल-लाल लपटें। किंतु दोनों दिशाओंकी अरुणिमाके अन्तरालसे आवाहन था घोर तमिस्रका, कराल कृष्ण निशाका।

'वह उजड़ गया वन था, जिसमें बहती रसकी धारा, प्रियतम!'

●

जीवनकी कुछ महत्त्वपूर्ण स्फुट बातें

साधनाके दो गुरु

[१]

श्रीभाईजी भगवान्‌के विशेष यन्त्रके रूपमें जगत्‌में अवतीर्ण हुए थे। अतएव उनके जीवनका संचालन पूर्णरूपसे भगवान्‌के द्वारा ही हुआ। व्यावहारिक जीवनमें उन्हें अपनी साधनामें दो महापुरुषोंसे बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई और इस हेतु दोनों महापुरुषोंको वे अपने गुरु मानते थे। एक थे बंगाली महात्मा—श्रीदयालु साधु और दूसरे थे श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका। श्रीदयालु साधु कलकत्ता-जीवनमें इनसे मिले थे। वे उनके पिताजीके पास आते थे और उनपर बड़ा स्नेह और कृपा रखते थे। वे उन्हें एकान्तमें ले जाते और साधनकी बहुत-सी बातें बताते। पीछे श्रद्धेय श्रीगोयन्दकाजीसे भेंट होनेपर उनकी बतायी हुई बातोंसे भाईजीको अपनी साधनामें सहायता प्राप्त होती रही। भगवान् विष्णुका ध्यान और मानसिक पूजा—वे श्रीसेठजीके निर्देशके अनुसार करते थे। पीछे बम्बई जानेपर निर्गुण-निर्विशेषकी साधनामें भी उन्हें श्रीसेठजीसे बड़ी सहायता मिली। उन दिनों श्रीभाईजीने भगवद्‌रूप गुरुकी वन्दनामें एक पद लिखा था, जिसमें उन्होंने अपने इन दोनों गुरुओंका स्मरण संकेतरूपसे एक साथ किया है—

जय देव जय देव जय दयालु देवा।
परम गुरु परम पूज्य परम देव देवा॥
सब बिधि तव चरन सरन आय परचो दासा।
दीन हीन, मति मलीन, तदपि सरन आसा॥
पातक अपार किंतु दया को भिखारी।
दुखित जानि राखु सरन, पाप-पुंज हारी॥
अब लौं के सकल दोष छमा करहु स्वामी!
ऐसो करो, जाते पुनि हौं न कुपथ गामी॥
पात्र हौं, कुपात्र हौं, भलें अनधिकारी।
तदपि हौं तिहारो, अब लेहु मोहि उधारी॥
लोग कहत, हौं तिहारौ, मनहु कहत सोई।
करिये सत्य सोइ नाथ! भव-भ्रम सब खोई॥
मोरि ओर जनि निहारो, देखिय निज तनही।
हठ करि मोहि राखिय, प्रभु! संतन पग पनही॥
बिनवै कहा बार-बार, जानहु सब भेवा।
जयतु, जयतु जय दयालु, जय दयालु देवा॥

निर्गुण-निर्विशेषके ध्यानकी साधनाके पश्चात् भाईजीको पुनः विष्णुभगवान्‌का ध्यान होने लगा और पीछे भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शनोंका भी सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ। इस सौभाग्यके समय श्रद्धेय श्रीसेठजी उपस्थित थे। भगवान् विष्णुके दर्शनके कुछ समय पश्चात् श्रीभाईजीको भगवान् श्रीकृष्णकी अनुभूति हुई और उसके बाद भगवती राधाकी। श्रीराधाकृष्णकी उपासना और उनकी कृपाकी प्राप्ति गुरुकृपाका फल न होकर, प्रिया-प्रियतमकी अहैतुकी कृपाका ही फल था। उक्त दोनों महापुरुषोंका इससे कोई सम्बन्ध नहीं था। श्रीभाईजी अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंतक अपनी साधनाकी प्रारम्भिक अवस्थाके दोनों पूज्य गुरुजनोंको परम सम्मान और आदरके साथ स्मरण करते रहे।

[२]

श्रीभाईजीके सम्बन्धमें लोगोंकी कुछ अलौकिक अनुभूतियाँ

[सच्चे संत विनय एवं दैन्यकी मूर्ति होते हैं। वे अपनेमें कोई गुण नहीं देखते, अपितु उन्हें सभी अपनेसे अच्छे दिखायी पड़ते हैं; कारण उन्हें सब ओर अपने प्रियतमका स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। परंतु भगवान् अपने भक्तका महत्त्व प्रकट करनेके लिये––जगत्‌को उनके स्वरूपका कुछ परिचय कराकर उनसे वास्तविक लाभ उठानेके लिये प्रेरित करते रहते हैं। श्रीभाईजीके महत्त्वके सम्बन्धमें भी देश-विदेशके असंख्य लोगोंको समय-समय-पर अनुभव हुए हैं तथा महाप्रयाणके पश्चात् आज भी अनेकों भाग्यशाली महानुभावोंको उनकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। ऐसे अनेक महानुभावोंने अपनी अनुभूतियोंको लिखकर भेजा था, परंतु श्रीभाईजी अपने आपको सर्वथा छिपाये रखनेकी दृष्टिसे उन पत्रोंको नष्ट कर डालते थे। फिर भी अनेकों पत्र उनकी पुरानी फाइलोंमें प्राप्त हुए हैं। नीचे हम केवल पाँच पत्र प्रकाशित कर रहे हैं––तीन पत्र भावुक भक्तोंके हैं तथा दो पत्र वर्तमान भारतके दो प्रसिद्ध लोकनायकोंके हैं, जो अपने समयके मूर्धन्य मनीषी तथा उच्च कोटिके बुद्धिवादी थे। पाठक इन्हें पढ़ें और स्वयं अनुभव करें कि श्रीभाईजीके रूपमें कितनी महान् विभूति हमलोगोंके बीच विद्यमान रही है।]

(क)

बहिन कृष्णाकुमारीको स्वप्नमें श्रीवृन्दावनविहारीका श्रीभाईजीसे उपदेश लेनेका आदेश

६-५-३५

श्रीयुत सम्पादकजीको कृष्णाकुमारीका 'ॐ नमः कृष्णाय' ज्ञात हो। मुझे तारीख २-५-३५ को स्वप्न हुआ। मैंने स्वप्नमें देखा––भगवान् वृन्दावनविहारी आज्ञा दे रहे हैं कि 'मुझे पानेके लिये और मुझमें प्रेम होनेके लिये...हनुमानप्रसादसे उपदेश लो....'जात पाँत पूछे नहिं कोई। हरिको भजे सो हरि का होई॥' बस, इतना ही मैंने सुना कि आँख खुल गयी। करीब २ बजे थे। मैंने सोचा 'हनुमानप्रसाद' किसका नाम है। यहाँपर तो मैंने किसीका नाम हनुमानप्रसाद नहीं सुना। किसीका नाम होगा तो उसका मुझसे परिचय नहीं है। मैंने अपने मनमें सोचा कि अच्छा होता, अगर मैं पूछ लेती कि कौन हनुमानप्रसाद, कहाँपर रहते हैं। मुझे बहुत दुःख हुआ। अन्तमें यही सोचते-सोचते निद्रा आ गयी और फिर मुझे स्वप्नमें ऐसा सुनायी पड़ा कि 'तुझे भ्रम हो गया कि कौन हनुमानप्रसाद है। अरे, वही हनुमानप्रसाद पोद्दार, कल्याण-सम्पादक, गोरखपुर।' बस, फिर क्या था। मुझे परम आनन्द हुआ। अब आपसे मेरी बार-बार यही प्रार्थना है कि अपनी पुत्री समझकर समय-समयपर आप मुझे उपदेश देते रहिये। भूल-चूक क्षमा कीजिये।

गोरखपुर

ज्येष्ठ सुदी १२, सं० १९९२

श्रीभाईजीका उत्तर बहिन कृष्णाकुमारीको

प्रिय बहिन,

सप्रेम हरिस्मरण।

आपके पत्र आये बहुत दिन हो गये। मैं समयपर उत्तर नहीं लिख सका, इसलिये आप क्षमा करें। स्वप्नकी घटना ज्ञात हुई। जिनको स्वप्नमें श्रीवृन्दावनविहारीकी वाणी सुननेको मिलती है, वे सर्वथा धन्य हैं। मेरा तो यह निवेदन है कि आप श्रीवृन्दावनविहारीसे ही उनके साक्षात् मिलनेका उपाय पूछिये। उनसे प्रार्थना कीजिये कि दूसरे किसीका नाम बतलाकर क्यों छलते हैं। मेरा तो यह विश्वास है कि यदि आपकी प्रार्थनामें करुणा और उत्कट इच्छा होगी तो वे स्वयं अपने मिलनेका उपाय आपको बतला सकते हैं। भगवान् श्यामसुन्दर इतने दयालु हैं कि वे अपने बँधनेकी रस्सी आप ही दे देते हैं और आकर स्वयं बँध जाते हैं। बस, आप यही प्रार्थना कीजिये और दृढ़ विश्वास रखिये कि वे जरूर दर्शन देंगे। जिन्होंने आपको स्वप्नमें मुझसे मिलनेकी

आज्ञा दी है, वे आपकी सच्ची उत्कण्ठा होनेपर नहीं मिलेंगे––ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये। मेरा तो यही निवेदन है।

अपका भाई,
हनुमानप्रसाद

(ख)

नागपुरके पासके किसी ग्रामसे एक सज्जन श्रीदेशपाण्डेजी लिखते हैं––'मैं खाटपर सो रहा था। स्वप्नमें किसी महात्माने मुझे 'साधन-पथ'की पुस्तक दी और जागनेपर वह पुस्तक मुझे बिछावनपर मिली। उस महात्माकी आकृति शिवजीकी-सी थी।

यह पत्र भाईजीने नष्ट कर दिया। श्रीभाईजीने उनके पत्रका जो उत्तर दिया, वह इस प्रकार है—

गोरखपुर,
वैशाख कृ० ८, १९९२

श्रीदेशपाण्डेजी,

सप्रेम हरिस्मरण।

आपका पत्र मिला। आपके पत्रमें लिखी बात यदि सत्य है तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। इससे मैं आपके लेखकी सत्यतामें संदेह करता हूँ––ऐसी बात नहीं समझना चाहिये। मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मुझे इस सम्बन्धमें कुछ भी पता नहीं है। आपका यह पत्र मिलनेसे पूर्व मैं इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानता था। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझमें कोई भी सिद्धि नहीं है। 'साधन-पथ' नामक पुस्तक स्वप्नमें किसी महात्माने आपको दी और जागनेपर वह आपके बिछावनपर मिली––यह आपकी ही श्रद्धाका फल होगा। वे महात्मा कौन थे, मैं कुछ भी नहीं जानता। इसमें क्या रहस्य है, मुझे कुछ भी पता नहीं है। आप कृपया यह अवश्य लिखिये कि उन महात्माने आपको और कुछ कहा या नहीं; कहा तो क्या कहा? आपने उनकी जो आकृति लिखी है, वह तो भगवान् शिवकी-सी मालूम होती है। आप भाग्यवान् हैं, जो स्वप्नमें महात्माने आपको दर्शन दिया। 'साधन-पथ'में जो कुछ लिखा गया है, वह सब शास्त्रोंके आधारपर ही लिखा गया है। मेरा उसमें क्या है। मैं देखता हूँ तो मुझमें वे बातें सब नहीं मिलतीं। अतएव मैं आपको क्या उपदेश दूँ? उपदेश देनेका तो मेरा अधिकार भी नहीं है। 'साधन-पथ' पढ़नेसे आपको शान्ति मिलती है, इसको आप महात्माका प्रसाद समझिये। मेरा कुछ भी न समझिये। आप साधन करके भगवान्को प्राप्त करना चाहते हैं, वह बड़े आनन्दकी बात है।

आपका,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

(ग)

'श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारी' नामक सज्जनको 'हृषीकेश' नामक बालकके दर्शन

१७-१-३५

श्रद्धेय सम्पादकजी,
'कल्याण', गोरखपुर

करीब ११ वर्षका 'हृषीकेश' नामका साँवरे रंगका परम सुन्दर बालक आज करीब १२ बजे दोपहरको आया। उस समय यह 'श्रीराधा-कृष्ण प्रेम-भिखारी' पौष मासके 'कल्याण', भाग ९ (वर्ष ९) संख्या ६को बड़े ध्यान और प्रेमसे पढ़ रहा था। बड़ी नम्रतापूर्वक उस बालकने इस भिखारीसे एक छोटी ताबीजी साइजकी गीता माँगी और कहा कि "गीता अध्याय ९के २२वें श्लोकको पढ़ा दीजिये एवं समझा दीजिये।" ज्यों ही यह

भिखारी **'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां'** पढ़ने लगा, त्यों ही वह कहने लगा कि "गीता भगवान्‌का एक स्वरूप है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।" इस भिखारीने हृषीकेशसे पूछा––"भाई ! तुम कहाँ रहते हो और क्या करते हो ?" उसने प्रेम तथा आनन्दाश्रुओंसहित बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया––"मैं तो 'कल्याण'में रहकर 'कल्याण'-द्वारा सब प्राणियोंकी चिन्ता किया करता हूँ। भक्त ही मेरे चिन्तामणि हैं। भगवान्, भक्त और भागवत–– तीनों एक ही हैं।" तब इस भिखारीने उनसे पूछा––"भाई ! तुम्हारा घर कहाँ है ?" उन्होंने धीमी स्वर-माधुरीसे कहा––"मेरा निवास-स्थान वृन्दावन, सेवाकुञ्जमें है। वहाँके श्रीराधाकृष्ण मेरे इष्टदेव हैं।" इतना सुनकर उन्हें कुछ जलपान करानेकी मेरी इच्छा हुई। तुरंत ही यह भिखारी अन्तरङ्ग-विभागमें कुछ जलपान लानेके लिये गया। लौटकर देखा––हृषीकेश कहीं चले गये हैं। अनुमानतः ५ मिनटका समय लगा होगा। इस भिखारीने बहुत चेष्टा की और स्वयं ४ मीलतक दौड़ा गया, परंतु कहीं कुछ पता न चला। जब इस भिखारीसे हृषीकेशका साक्षात्कार हुआ, तब उस स्थानपर संयोगवश कोई नहीं था। बस, इतना ही आप कृपया सूचित कर दें कि हृषीकेश नामक कोई बालक आपके कार्यालयमें कार्य करता है। क्या वह सेवाकुञ्ज, वृन्दावनमें रहता है ? इस कृपाके लिये यह भिखारी आपका अत्यन्त कृतज्ञ होगा।

आपका विनीत शरणागत,
राधाकृष्ण-प्रेम-भिखारी

श्रीभाईजीका 'श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारीजी'को उत्तर

गोरखपुर
दिनाङ्क २०-१-३५

सम्मान्य श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारीजी,
सादर हरिस्मरण !

आपका तारीख १७-१-३५का पत्र मिला। 'कल्याण'में 'हृषीकेश' नामक कोई परम सुन्दर ब्राह्मण बालक नहीं रहता। सेवाकुञ्ज-विहारी श्रीश्याम-सुन्दर सर्वत्र रहते ही हैं। इसलिये वे 'कल्याण'-कार्यालयमें भी जरूर रहते हैं। 'कल्याण'में विशेषरूपसे रहते हों तो वे जानें। हमलोगोंको तो कभी उन्होंने ब्राह्मण-बालकके रूपमें दर्शन दिया नहीं। सचमुच वे हृषीकेश आपको प्रेम-भिक्षा देनेके लिये यदि आपके समीप पधारे हों तो आप बड़े भाग्यवान् हैं। आपने यह भूल अवश्य की, जो उनको पकड़ नहीं लिया और अपने साथ ही जलपान करानेको नहीं ले गये। उन्होंने आपको हृषीकेश नाम कब और कैसे बतलाया, लिखनेकी कृपा कीजियेगा।

आपका,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

(घ)

श्रीगोविन्दवल्लभजी पंत, गृहमन्त्री—भारत सरकारको श्रीभाईजीके सम्बन्धमें अलौकिक अनुभूति

(श्रीपंतजीका पत्र श्रीभाईजीने नष्ट कर दिया, नीचे श्रीभाईजीद्वारा लिखा गया उत्तरमात्र दिया जा रहा है।)

श्रीहरिः

गीतावाटिका
गोरखपुर

माननीय श्रीपंतजी,
सादर प्रणाम !

आपका कृपापत्र मिला। आप सकुशल दिल्ली पहुँच गये, यह आनन्दकी बात है। आपके इस नये ढंगके पत्रको पढ़कर बड़ा आश्चर्य हो रहा है। पता नहीं, भगवान्‌के मङ्गल-विधानसे क्या होनेवाला है।

आपने जो स्वप्न तथा प्रत्यक्ष चमत्कार देखनेकी बात लिखी, वह मेरी समझमें तो आयी नहीं। हाँ, आपके अज्ञात मनके किन्हीं संस्कारके ये चित्र हो सकते हैं। मेरे बाबत आपने जो कुछ देखा-लिखा, उसके सम्बन्धमें तो इतना ही कह सकता हूँ कि 'मैं न योगी हूँ, न सिद्ध महापुरुष हूँ, न पहुँचा हुआ महात्मा हूँ न किसीको दिव्य दर्शन देकर कृतार्थ करनेकी या वरदान देनेकी ही मुझमें शक्ति है।' मैं साधारण मनुष्य हूँ; मुझमें कमजोरियाँ भरी हैं। भगवान्‌की अहैतुकी कृपा मुझपर अनन्त है, इसमें मेरा विश्वास भी है। मुझे इस पत्रसे पहले आपके स्वप्न तथा जाग्रत्‌में चमत्कार देखनेका कुछ भी पता नहीं था। अतएव मैं क्या कहूँ। अवश्य ही आपके निकट भविष्यमें देहावसानकी जो सूचना इसमें मिली है, उससे मुझे चिन्ता हो रही है। आप उचित समझें तो स्वयं मृत्युञ्जयमन्त्रका जप कीजिये और किन्ही विश्वासी शिवभक्तके द्वारा सवा लाख जप करा दीजिये। मैं यह जानता हूँ—आप आस्तिक हैं। भगवान्‌में और शास्त्रमें आपका विश्वास है। आपने लिखा—'जवाहरलाल भी, ऊपरसे कुछ भी कहें, आस्तिक हैं', सो ठीक है; उनके बारेमें मैं भी यही मानता हूँ।

आपने मेरे लिये लिखा कि—'आप इतने महान् हैं, इतने ऊँचे महामानव हैं कि भारतवर्षको क्या, सारी मानवी दुनियाको इसके लिये गर्व होना चाहिये। मैं आपके स्वरूपके महत्त्वको न समझकर ही आपको 'भारतरत्न' की उपाधि देकर सम्मानित करना चाहता था। आपने उसे स्वीकार नहीं किया, यह बहुत अच्छा किया। आप इस उपाधिसे बहुत-बहुत ऊँचे स्तरपर हैं, मैं तो आपको हृदयसे नमस्कार करता हूँ।' आपके इन शब्दोंको पढ़कर मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। पता नहीं, आपने किस प्रेरणासे यह सब लिखा है। मेरे तो आप सदा ही पूज्य हैं। मैं जैसा पहले था, वैसा ही अब हूँ, जरा भी नहीं बदला हूँ। आप सदा मुझपर स्नेह करते आये हैं और मुझे अपना मानते रहे हैं। मैं चाहता हूँ—वैसा ही स्नेह करते रहें और अपना मानते रहें। मैं आपकी श्रद्धा नहीं चाहता, कृपा तथा प्रीति चाहता हूँ—स्नेह चाहता हूँ। मेरे लायक कोई सेवा हो तो लिखें। आपके आदेशानुसार पत्र जला दिया है। आप भी मेरे इस पत्रको गुप्त ही रखियेगा। शेष भगवत्कृपा।

आपका,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

(ङ)

श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडनको श्रीभाईजीके सम्बन्धमें अलौकिक अनुभूति

(श्रीटंडनजीका पत्र श्रीभाईजीने नष्ट कर दिया। नीचे श्रीभाईजीद्वारा लिखा गया उत्तर दिया जा रहा है।)

श्रीहरिः

गीतावाटिका
गोरखपुर

पूज्यचरण बाबूजी,

सादर प्रणाम !

आपका कृपापत्र मिला। मैंने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि आपके द्वारा मुझको कभी ऐसा पत्र मिलेगा। सात पेजके पत्रमें शुरूसे अन्ततक केवल मेरे दिव्य स्वरूपकी महिमा, दिव्य दर्शनसे परमानन्द तथा उससे प्राप्त लाभ और मेरे गुणोंकी बार-बार बहुत ही बढ़े-चढ़े रूपमें स्तुति भरी है। आप-सरीखे माप-तौलकर बोलने-वाले सत्यवादी पुरुष मिथ्या लिखेंगे—यह सोचनेका भी साहस नहीं होता और लिखेंगे भी क्यों—मुझ नगण्यसे आपको क्या लेना है, पर जो कुछ आपने लिखा है, उसका अधिकांश तो मेरी कल्पनासे भी बाहरकी चीज है। कुछ बातें ऐसी हैं, जो मुझसे बहुत अधिक सहस्रों लोगोंमें हैं; अतः उनका महत्त्व ही क्या है। मैंने आपके हाथके लिखे इस पत्रको रखना बड़े जोखिमका काम समझा, कहीं इसके माध्यमसे मान-बड़ाईके चक्करमें पड़कर व्यक्तिपूजा न कराने लगूँ; कमजोर जो ठहरा। इसीलिये जैसे कई वर्षों पूर्व गङ्गातटपर मेरे साथ रहनेवाले मौनी
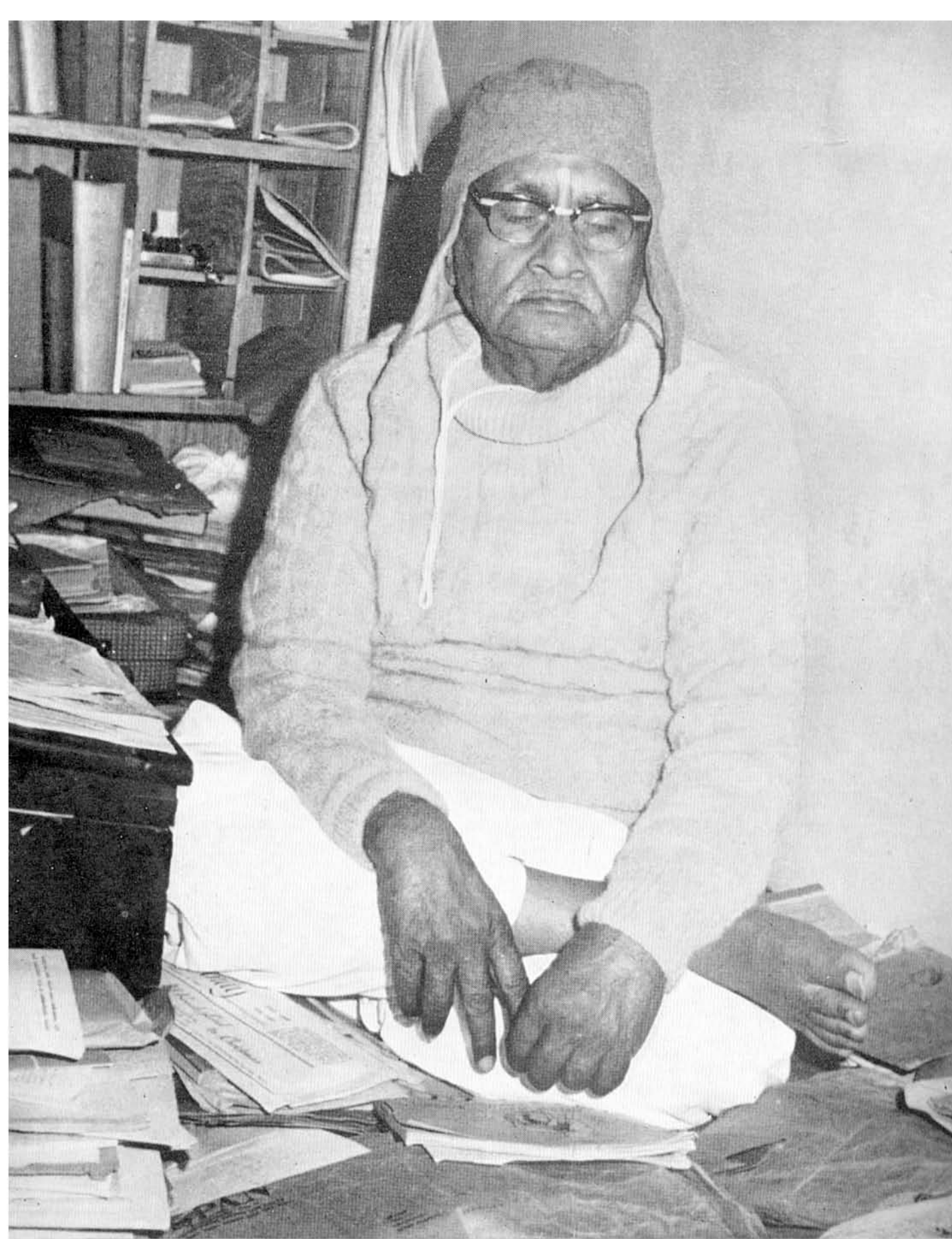
भावोदधि में निमग्न—
'पता नहीं कुछ रात दिवसका, पता नहीं कब संध्याभोर'

स्वामीजीके मेरे सम्बन्धमें अपने अनुभवके आधारपर लिखे वर्णनके ढेर-के-ढेर कागज मैंने अग्निदेवताके अर्पण कर दिये थे, वैसे ही आपके इस पत्रको भी मैंने अग्निरूप दे दिया।

आपने लिखा--'गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा ट्रेनके प्रयाग पहुँचनेपर झूसीमें श्रीब्रह्मचारीजीके यहाँ आपको मेरे स्वरूपके कुछ अस्पष्ट दर्शन हुए थे, तभीसे आप इस प्रयत्नमें थे कि आप मुझे पूर्णरूपसे देख पायें और इस बार आपका वही प्रयत्न पूर्णरूपसे सफल हुआ है।'

अतः जो कुछ भी हुआ हो, आप जानें और आपका प्रयत्न जाने। मेरा स्वरूप तो स्पष्ट सबके सामने है। मैं तो समझता हूँ--आपकी दृढ़ धारणाने ही मूर्तरूप लेकर आपको यह कौतुक दिखलाया है। मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो आपका बच्चा हूँ, आपके स्नेहका पात्र तथा अधिकारी हूँ। सदा ही स्नेह पाता रहा हूँ। वही स्नेह, वही वात्सल्यभाव, वही आत्मीयता रखिये। मुझे सदा अपना बालक मानिये। शिक्षा देते रहिये और आशीर्वाद दीजिये, जिससे जीवनमें मेरेद्वारा ऐसा कोई भी काम न हो, जो आपके निजजनके द्वारा नहीं होना चाहिये और सदा-सर्वदा--मृत्युके अन्तिम क्षणतक भगवान्‌की मधुर पवित्र स्मृति बनी रहे।

कुम्भमें आया और आप वहाँ रहे तो श्रीचरणोंके दर्शन करूँगा।

आपका,
हनुमानप्रसाद

[३]

भाव-समाधि

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन् मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति॥ (विदग्धमाधव)

'मुनिगण अपने मनको विषयोंसे खींचकर जिन श्रीकृष्णचन्द्रमें क्षणभरके लिये लगानेकी इच्छा करते हैं, उन्हीं श्रीकृष्णमें लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर श्रीराधा विषयोंमें लगाना चाहती हैं। ओह, हृदयमें जिन श्रीकृष्णकी लवमात्र स्फूर्तिके लिये योगी उत्कण्ठित होते हैं--यत्न करते हैं, फिर भी जिनकी स्फूर्ति नहीं होती, उन्हींको हृदयसे हटानेके लिये श्रीराधा यत्न करती हैं, पर हटा नहीं पातीं।'

श्रीराधारानीकी जिस भावनाका परिचय इस श्लोकमें दिया गया है, उसकी कुछ झलक हमें श्रीभाईजीके जीवनके अन्तिम कुछ वर्षोंमें प्राप्त हुई थी। उन दिनों उनके अन्तर्मानसमें दिव्य भगवल्लीलाएँ चलने लगी थीं और वे भावराज्यमें ही अवस्थित रहने लगे थे। वास्तवमें यह स्थिति लोक-चक्षुसे सर्वथा अतीत तथा मन-बुद्धि-चित्तसे परेकी है। अतएव प्राकृत मन-बुद्धिद्वारा प्राकृत शब्दोंके माध्यमसे उसका वास्तविक स्वरूप नहीं समझा जा सकता। वह तो नितरां अनुभवगम्य ही है। शब्दोंके माध्यमसे उसका जितना परिचय प्राप्त हो सकता है, उसे देनेका प्रयत्न किया जा रहा है--

उस स्थितिका किंचित् परिचय महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज महाशयको दिसम्बर १९७० में लिखे गये श्रीभाईजीके एक पत्रकी निम्नाङ्कित पंक्तियोंसे प्राप्त किया जा सकता है, जो मूलतः बँगला भाषामें लिखा गया था--

"मैं सदा-सर्वदा इस प्रकारका अनुभव करता हूँ कि भगवान्‌की दिव्य कृपासुधाका वर्षण मेरे ऊपर नित्य हो रहा है.........। वर्त्तमान समयमें बहुत दिनोंसे मेरा शरीर अस्वस्थ है। पर भगवत्कृपासे शरीरकी इस अस्वस्थ अवस्थामें भी मैं विलक्षण आनन्द-लाभ कर रहा हूँ। प्रायः एकान्तमें रहता हूँ और उस समय एक ऐसी स्थिति रहती है, जो सर्वथा अनिर्वचनीय तथा अचिन्त्य है।"

अपनी उस स्थितिका कुछ संकेत श्रीभाईजीने श्रीविश्वनाथदासजी, मुख्यमन्त्री, उड़ीसाको भी १९६९में एक

पत्र लिखकर दिया था। श्रीदास महोदय श्रीभाईजीसे 'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'के संयुक्त मन्त्रीपदपर बने रहनेका आग्रह कर रहे थे और श्रीभाईजी उस उत्तरदायित्वसे मुक्त होना चाहते थे––

"इधर बहुत वर्षोंसे मेरा अन्तर्मन निवृत्तिप्रिय हो रहा है। इसीसे मैं प्रायः प्रतिदिन ही अधिक समय एकान्त बंद कमरेमें रहता हूँ। लोगोंसे मिलने-जुलनेकी वृत्ति नहीं होती। साथ ही इधर कुछ वर्षोंसे भगवत्प्रेरित ही एक विचित्र परिस्थिति और आ गयी है। उसे मैं प्रकाश नहीं करना चाहता और इसीलिये मैंने उसको 'मस्तिष्क ठीक न रहना'की संज्ञा दे रखी है। बात यह है कि अकस्मात् ऐसा हो जाता है कि इन्द्रियोंकी, मनकी सारी क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। जगत्का सर्वथा लोप हो जाता है, केवल प्राण चलते रहते हैं। शरीर जिस अवस्थामें इस प्रकारकी स्थिति होनेके आरम्भमें था, वैसे ही बैठा या पड़ा रहता है। आँखें खुली हों तो भी दीखता नहीं, क्योंकि कोई देखनेवाला ही नहीं रहता। इसको समाधि कहिये या और कुछ। पहले तो किसी समय ऐसी स्थितिकी मैं चाह करता था––उसके लिये प्रयत्न करता था; अब कोई भी प्रयत्न न करनेपर भी, वरं कभी-कभी तो वृत्तियोंको बलात्कारसे संसारमें लगानेकी चेष्टा करनेपर भी अकस्मात् ऐसा हो जाता है और यह स्थिति कुछ मिनटोंसे लेकर १५-२० घंटोंतक भी रह जाती है। उस समय शरीर-मन-बुद्धि सर्वथा अक्रिय रहते हैं। पहले यह स्थिति कई दिनों बाद हुआ करती थी, अब तो बहुत जल्दी-जल्दी हो जाती है। इससे बहुत सँभलकर रहना पड़ता है। वस्तुतः इस स्थितिमें प्रवृत्तिके कार्योंका सर्वथा त्याग ही सुविधाजनक तथा वाञ्छनीय है। पर मैं प्रवृत्तिके कार्योंमें रहता हूँ, इससे कई बार वृत्तियोंको बलात् संसारमें बनाये रखनेका प्रयत्न करना पड़ता है।"

अहा, कितनी विलक्षण भगवत्कृपाका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि वृत्तियोंको बलात्कारसे संसारमें लगानेकी चेष्टा करनेपर भी भाव-समाधिकी स्थिति अनायास प्राप्त हो जाती है!

× × ×

श्रीभाईजीकी इस भाव-समाधिकी स्थितिका कुछ विशेष परिचय १६ अप्रैल, १९६८को स्वर्गाश्रममें प्राप्त हुआ। उस दिन प्रातःकाल ८ बजेसे ही श्रीभाईजी भाव-समाधिमें विलीन हो गये थे। उनको ९ बजे गीताभवनमें 'सत्सङ्ग' के लिये जाना था। इससे वे अपना कमरा खोलकर बैठे हुए काम कर रहे थे कि अचानक वृत्तियाँ लुप्त हो गयीं। घरवालोंने तथा गीताभवनमें सत्सङ्गकी व्यवस्था करनेवाले महानुभावोंने प्रयत्न किया कि उन्हें बाह्य जगत्का भान हो जाय और वे सत्सङ्गमें चले जायँ, पर श्रीभाईजी भाव-समाधिमें लीन थे। दिनमें लगभग ३ बजे उनकी भाव-समाधिमें कुछ परिवर्तन हुआ, वे बीच-बीचमें आँखें खोलकर देखने लगे तथा पूछने लगे––'कितने बजे हैं?' पर अभीतक उनके मन-बुद्धिने जगत्को पूरा नहीं पकड़ा था। संयोगसे एक भावुक विद्वान् वहाँ बैठे थे। वे श्रीभाईजीकी इस भाव-समाधिदशाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उनके मनमें आया––शास्त्रोंमें इस प्रकारकी स्थितिका वर्णन सुना है, पर इस प्रकारकी स्थितिवाले पुरुषके दर्शन तो आज ही हो रहे हैं। वे चुपचाप श्री-भाईजीके कमरेमें बैठे-बैठे इस अनिर्वचनीय स्थितिका आनन्द लेने लगे। उन्होंने देखा कि किस प्रकार लगभग ६-७ घंटे पश्चात् श्रीभाईजीकी भाव-समाधिमें कुछ परिवर्तन हुआ है और वे आँख उठाकर इधर-उधर देखने लगे हैं तथा पूछने लगे हैं––'कितने बजे हैं?' घरवालोंने बतलाया––'तीन बजे हैं', पर फिर कुछ देरके लिये वे निश्चल हो गये। कुछ देर पश्चात् पुनः बाह्य वृत्ति आयी और फिर वही प्रश्न किया––'कितने बजे हैं?' इस प्रकार बाह्य वृत्ति कभी आती थी, कभी पुनः लुप्त हो जाती थी।

विद्वान् महोदयने इस स्थितिका लाभ उठाया और उन्होंने धीरेसे बड़ी विनम्रताके साथ प्रश्न किया–– 'भाईजी, इस प्रकारकी स्थितिके विषयमें शास्त्रोंमें पढ़ा-सुना है, पर जीवनमें आज पहली बार दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। मैं आपकी स्थितिका बहुत मनोयोगपूर्वक अवलोकन करता रहा। आप घंटों एक ही स्थितिमें बैठे रहे––न आपकी आँखें सक्रिय थीं, न आपके शरीरमें कोई स्पन्दन था। घरवालोंद्वारा आपको स्पर्श करके हिलानेपर भी आप उसी निश्चेष्ट स्थितिमें अवस्थित थे। ऐसा लगता था कि आपको स्पर्शका भी भान नहीं था। इस प्रकार आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ सर्वथा निष्क्रिय प्रतीत होती थीं। इस स्थितिको देखकर मेरे मनमें यह जाननेकी तीव्र जिज्ञासा है कि आपकी इस अवस्थामें इन्द्रियोंकी क्या स्थिति रहती है।'

श्रीभाईजीने कहा—'आपकी जिज्ञासा तो ठीक है, पर मैं उस स्थितिके विषयमें बतलानेमें लाचार हूँ। भगवत्कृपासे कैसा क्या होता है—भगवान् जानें। मैं तो अपनेको एक अनिर्वचनीय आनन्दकी स्थितिमें पाता हूँ। ऐसी स्थिति होनेकी सम्भावना होते ही मैं कमरा बंद कर लेता हूँ; पर आज हठात् सब इन्द्रियोंका कार्य एकाएक बंद हो गया, इससे मैं कमरा बंद नहीं कर सका। इसी कारण आपलोग यहाँ बैठे रह गये। इस समय वृत्ति जगत्को पूरा नहीं पकड़ रही है; पर फिर भी आपने जो पूछा है, उसका उत्तर देनेका प्रयत्न करता हूँ। कहीं मेरे बोलनेमें आपको कुछ अटपटापन अनुभव हो तो क्षमा कीजियेगा। उस अवस्थामें आँखें खुली रहनेपर भी दिखायी नहीं पड़ता, कानोंसे सुनता नहीं, त्वक्से स्पर्शका अनुभव नहीं होता। इस प्रकार जब इन्द्रियोंका कार्य होना बंद हो जाता है, तब मन निष्क्रिय हो जाता है और मनके निष्क्रिय होनेसे बुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। इन्द्रियोंके कार्य बंद होनेका अर्थ है—कार्य करनेकी वृत्तिका न रहना। वृत्ति रहनेसे ही तो इन्द्रियाँ कार्य करती हैं।'

प्रश्न—क्या इसके लिये पहले कोई संकल्पका उदय होता है। ?

उत्तर—पहले मैं वृत्तियोंको अन्तर्मुख करने, मनको निष्क्रिय करनेका संकल्प करता था, अभ्यास करता था; पर अब तो बिना संकल्प किये यह स्थिति हो जाती है।

प्रश्न—क्या सब इन्द्रियोंका कार्य एक साथ बंद होता है या इसका कोई क्रम है ?

उत्तर—कभी सब इन्द्रियोंका कार्य एकाएक एक साथ ही बंद हो जाता है, और कभी एक-एक इन्द्रियका कार्य बंद होते-होते सब इन्द्रियोंके कार्य बंद हो जाते हैं। कार्य बंद होनेमें क्रम नहीं है। कभी पहले किसी इन्द्रियका कार्य बंद होता है और कभी किसी इन्द्रियका।

प्रश्न—वृत्ति नहीं रहती तो वृत्ति क्या करती है ?

उत्तर—वृत्ति इन्द्रियोंसे हटकर 'उधर'में केन्द्रित हो जाती है।

प्रश्न—'उधर'का क्या अर्थ या स्वरूप है ?

उत्तर—'उधर'का अर्थ या स्वरूप समझाया नहीं जा सकता। जब बाह्य ज्ञान पूरा हो जाता है, तब 'उधर'की स्मृति नहीं रहती और जब अधूरा बाह्य ज्ञान होता है, तब 'उधर'की कुछ स्मृति तो रहती है, पर वह वाणीमें आ नहीं सकती और जितनी वाणीमें आ सकती है, उसको भी बताना सहज नहीं है।

प्रश्न—किसी कार्यविशेषके लिये मनमें पहलेसे संकल्प किया हुआ रहता है तो उसकी स्मृति होती है क्या ?

उत्तर—कोई प्रबल संकल्प किया रहता है तो कभी-कभी उसकी स्मृति बीचमें जाग्रत् हो जाती है। पर प्रायः नहीं होती। उस अवस्थामें भी क्षीण-सी स्मृति आनेसे जैसे मैंने कमरा बंद होनेसे उसके किवाड़ खोल तो दिये, पर वृत्ति काम नहीं करती कि किसलिये किवाड़ खोले। पर यह भी तभीतक होता है, जबतक वृत्तिमें 'इधर'का—बाह्य जगत्का कुछ अंश रह जाता है।

जब इन्द्रियोंसे कार्य होना बंद होने लगता है, तब मैं अपना कमरा बंद कर लेता हूँ। पर कभी-कभी सब इन्द्रियोंसे एक साथ कार्य होना बंद हो जाता है, तब उस अवस्थामें जैसे हूँ, वैसे ही रह जाता हूँ। वृत्तिके लौटनेमें भी कभी थोड़ी-थोड़ी वृत्ति आती है, कभी एक साथ सारी वृत्ति आ जाती है।

जब वृत्ति जाती है, तब यह भी स्मरण नहीं रहता कि कहाँ हूँ, सामने कौन है। पर यह भी उस समयकी वास्तविक स्थिति नहीं है; क्योंकि इन्द्रियोंके कार्योंका रुक जाना, मन-बुद्धिकी वृत्तियोंसे जगत्का सर्वथा त्याग हो जाना और पूर्णतया वृत्तिका 'उधर' लग जाना ही 'भागवती स्थिति' नहीं है। जबतक वृत्तिजन्य 'इधर'का त्याग और वृत्तिजन्य 'उधर'का ग्रहण है, तबतक प्रकृतिराज्यमें ही स्थिति है। 'भागवती स्थिति'में मन-बुद्धि-अहंकी सत्ता नहीं रहती; उनके स्थानपर भगवत्सत्ता आ जाती है, जिसका ज्ञान भी भगवत्सत्तामें ही होता है, अन्य किसीको नहीं। जब वृत्तिजन्य 'उधर'का ही अर्थ या स्वरूप नहीं समझाया जा सकता, तब इन्द्रिय-मन-बुद्धिसे अतीत भगवत्सत्ताके स्वरूपको समझाना असम्भव है।

प्रश्न—यात्रामें भी क्या यह स्थिति हो जाती है ?

उत्तर––हाँ ! चाहे जब, चाहे जहाँ हो जाती है। यात्रामें भी यह स्थिति होती है, तो वाणीकी क्रिया बंद हो जाती है। मैं चुप हो जाता हूँ, लोग समझते हैं ऐसे ही चुप हो गये होंगे। थोड़ी देर बाद जब स्थिति बदल जाती है, तब मैं बोलने लग जाता हूँ।

प्रश्न––'उधर'की तथा उससे भी परे 'भागवती स्थिति'की प्राप्तिके लिये कभी आपने साधना की थी या वह भगवत्कृपासे अपने-आप होने लगी ?

उत्तर––नाम-जपकी साधना तो पहलेसे ही कुछ थी, पर जेलमें उसमें वृद्धि हुई। पीछे शिमलापालमें ध्यानका आरम्भ हुआ और उसमें अच्छी सफलता मिली। वहाँ विष्णुभगवान्‌का ध्यान करता था। पीछे मैं बम्बई चला गया। ध्यानका अभ्यास चलता रहा, पर विष्णुभगवान्‌के स्थानपर अव्यक्त तत्त्वका ध्यान होने लगा। फिर, 'भगवन्नामाङ्क' निकलनेके एक-दो महीने पहले अपने-आप अव्यक्तके स्थानपर विष्णुभगवान्‌का ध्यान होने लगा। उन दोनों ध्यानोंमें मुझे कोई अन्तर नहीं लगता। जो अव्यक्त है, वही व्यक्त है; जो निर्गुण-निराकार है, वही सगुण-साकार है।

पद्मपुराणमें मैंने पढ़ा था––भगवान् श्रीशिवके प्रश्न करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने स्वरूप-तत्त्वका वर्णन किया है––'मैं किस प्रकार निर्गुण हूँ तथा किस प्रकार सगुण हूँ।' इसी वर्णनके अनुसार अनुभव होता है–– अद्वैत ही लीलाद्वैतके रूपमें लीलायमान है। श्रीराधा कृष्णसे अभिन्न हैं। एक ही तत्त्व लीलाके लिये दो रूपोंमें लीलायमान हैं। श्रीराधा यदि श्रीकृष्णसे भिन्न कोई और तत्त्व होती तो वह बात नहीं रहती। **'रसो वै सः'**–– 'रस वही है', 'रस' और 'रसवाला' दो पृथक्-पृथक् नहीं हैं।

भगवान् सगुण नहीं हैं; क्योंकि वे प्राकृतिक 'गुण'-युक्त नहीं हैं; वे साकार नहीं हैं; क्योंकि वे पाञ्चभौतिक 'आकार' युक्त नहीं हैं। वे अपने स्वरूपभूत गुणोंसे गुणवान् हैं तथा अपने स्वरूपभूत आकारसे आकारयुक्त हैं। उनके प्रत्येक अङ्गसे प्रत्येक कार्य सम्भव है; क्योंकि वे सच्चिन्मय हैं। इस तत्त्वको न समझनेसे ही तो विवाद खड़े होते हैं।

प्रेम निर्गुणतत्त्वमें होता है, प्रेम स्वयं निर्गुण है। 'गुणों'को लेकर प्रेम होना प्रेम नहीं है; क्योंकि वह तो गुणोंसे प्रेम है।

प्रश्न––आपकी जो स्थिति होती है, इस स्थितिवाला कोई व्यक्ति कभी आपको मिला है क्या ?

उत्तर––ठीक स्मरण नहीं है।

प्रश्न––इस स्थितिका शरीरपर कुछ प्रभाव आता है क्या ?

उत्तर––शरीरपर इसका कोई खास प्रभाव नहीं आता। हाँ ! कभी किसी ऐसे 'पोज'में घंटों बीत जाते हैं कि जो अस्वाभाविक है, तो बाह्यवृत्ति आनेपर कुछ असुविधा होती है। जैसे बाह्यवृत्ति लुप्त होनेपर पैर अस्वाभाविक 'पोज'में रहा तो बाह्यवृत्ति आनेपर जब पैर सीधा करता हूँ या चलता हूँ, तब कुछ देरके लिये कुछ असुविधा अनुभव होती है। यदि स्वाभाविक 'पोज'में बैठे-लेटे रहनेपर वृत्ति लुप्त होती है तो घंटों बीत जानेपर भी शरीरपर उसका कुछ प्रभाव नहीं आता।

प्रश्न––आजकल आपकी क्या स्थिति है ?

उत्तर––आजकल वृत्ति जगत्‌को कम पकड़ती है, 'उधर' अधिक जाती है और फिर 'भागवती स्थिति' हो जाती है। कई बार तो अधिक संसारकी वृत्ति शुरू होते ही वृत्ति संसारको छोड़कर 'उधर' चली जाती है।

× × ×

भाव-समाधिके कारण श्रीभाईजी प्रायः प्रतिदिन जगत्‌के कार्य करनेमें असमर्थ हो जाते थे। स्वजनों-मित्रों आदिके पत्र आते, पर वे उनका उत्तर नहीं लिख पाते। इससे पत्र लिखनेवालोंके मनमें विचार हो जाता। वे श्रीभाईजीको पत्र न देनेके लिये उपालम्भ देते। लोगोंके मनके क्षोभको शमन करनेके लिये विवश होकर श्रीभाईजीको अपनी विवशताकी स्थितिका कुछ परिचय उन्हें कराना पड़ता। इस प्रकार आत्मीयजनोंको लिखे पत्रोंमें भी श्रीभाईजीकी इस भाव-समाधि-दशाका कुछ परिचय उपलब्ध होता है। कुछ पत्रोंके अंश नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं––

श्रीभाईजीको अपनी वृत्तिको जबरन संसारमें लगानेकी चेष्टा करनी पड़ती थी और उसके फलस्वरूप आन्तरिक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता था। अपनी इस विवशताका परिचय उन्होंने श्रद्धेय श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)को अप्रैल १९६२में एक पत्रमें दिया था——

"कलकत्ता जानेके पूर्वतक मस्तिष्ककी स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई एक धारामें चल रही थी। अधिक समय बाहरी ज्ञान नहीं रहता था—शरीर बेसुध बैठा रहता था। इस धारामें यहाँ कोई बाधा नहीं थी, कलकत्ता जानेपर बाधा आयी। दिनभर लोगोंसे मिलना, बातचीत करना, जाना-आना आदि करना पड़ता। मस्तिष्क चाहता——किसी भी ऐसी परिस्थितिका स्पर्श न हो——संसार सर्वथा विस्मृत हो जाय और परिस्थिति संसारमें बँधे रहनेको बाध्य करना चाहती थी। बड़ा द्वन्द्व-युद्ध चलता रहता था। दिनमें बात करते-करते गड़बड़ी हो जाती। वृत्तिको जबरदस्ती संसारमें लगानेकी चेष्टा करनी पड़ती। भूले होतीं, उन्हें सँभालनेकी चेष्टा करनी होती। लोगोंके सामने किसी ऐसी चीजके आनेपर एक तमाशा न बन जाय——इव भावनासे वृत्तियोंको संसारमें रहनेके लिये जबरदस्ती करनी पड़ती। इसका परिणाम यह हुआ कि उस सहज धारामें तो बाधा आयी ही, साथ ही चित्तमें एक विचित्र अशान्ति पैदा हो गयी। रातको १२-१ बजे जब सोने जाता, तब दिनभरकी आघात पायी हुई वृत्ति जबरदस्ती संसारको त्याग देती। संसार नहीं रहता, तब संसारकी नींद भी नहीं रहती। लोग समझते, सो रहा है। इस प्रकार रातें बीतीं। कलकत्तेमें शायद ही दो-तीन रातें ऐसी बीतीं होंगी, जिनमें मैं २-३ घंटे सो पाया हूँ।"

श्रीभाईजीकी इस विचित्र विवशताका परिचय उनके इस पत्रसे और भी स्पष्ट हो जाता है——

श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुर
दिनाङ्क २४-९-६७

प्रिय भैया,

इस समय भौतिक जगत् बहुत नीचे स्तरपर है और क्रमशः नीचेकी ओर ही जा रहा है। इसका परिणाम और भी दुःखप्रद होगा। मेरा तो मन आजकल बहुत ही उपरत-सा रहता है। बेचारे लोग आते हैं——अपनी-अपनी समस्या लेकर पत्रादि भी लिखते हैं। सभीमें भगवान् हैं——सबका आदर करना चाहिये; पर मैं कर ही नहीं पाता। बहुतोंकी तो बातें ही आजकल मेरी समझमें नहीं आतीं। मन उनको ग्रहण ही नहीं करना चाहता, मानो संसारकी बातोंके ग्रहण करनेकी दृष्टिसे मनको लकवा मार गया हो। दृष्टिकोण ही बदल गया। जो लोग आते हैं, वे अपने दृष्टिकोणसे अपनी बात ठीक ही कहते हैं; पर उस दृष्टिकोणके अभावमें मुझे उनकी बातका न कोई महत्व दीखता है न निराकरण ही। बड़ी विचित्र स्थिति है। इसीसे अधिक समय सर्वथा अकेला कमरेके किवाड़ बंद करके रहता हूँ। न किसीसे मिलनेका मन करता है न किसीको देखनेका ही। कोई आते हैं, तब बहुत सँभल-सँभलकर बात करता हूँ, जिससे वे अन्य कुछ न समझें; पर उसमें कठिनाई होती है। जीवन-मृत्युमें कोई भेद नहीं दिखायी देता। पर न मैं अपनी बात किसीको समझा सकता हूँ न कोई समझ ही पाता है। आवश्यकता भी नहीं है। सबसे यथायोग्य !

तुम्हारा भाई,
हनुमान

अपनी इस विवशताको उन्होंने कविता-रूपमें भी लिपिबद्ध किया और उसे 'कल्याण'में प्रकाशित किया था——

नाथ ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान !
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान ॥
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़कर तुमको एक।
मिथ्या जगमें रमनेवाले, रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक ॥

आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात।
सुलझानेका उन्हें पूछते साधन, सविनय कर प्रणिपात॥
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मैं, जब न दीखता कुछ सत्, सार।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार॥

('कल्याण' वर्ष ४१, अङ्क १०)

'कल्याण'-सम्पादकीय-विभागके सदस्य श्रीशिवनाथजी दुबेको गीताभवनसे ३-६-६८के अपने पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा—'आजकल मेरे मस्तिष्ककी जो स्थिति है और जो उत्तरोत्तर बढ़ रही है, उसे देखते सम्पादनका काम मैं कर सकूँगा—यह नहीं कहा जा सकता। प्रतिदिन ही ५-७ घंटे बाह्य चेतना सर्वथा लुप्त रहती है। चेतनाके समय भी बार-बार यहाँका सब कुछ लुप्त होता रहता है।

इसी प्रकार अपनी इस विवशताका विस्तृत परिचय उन्होंने अपने एक स्वजनको एक पत्रमें दिया था—

श्रीहरिः

गीताभवन
१७-६-६६

प्रिय भैया.......

सप्रेम हरिस्मरण।

तुम्हारे पत्रादि मिले। भैया, मेरी स्थिति कुछ विचित्र-सी हो रही है। आजकल मस्तिष्क अधिक खराब रहता है। यहाँ बहुत लोग घरमें ठहरे हुए हैं। गीताभवनमें भी बहुत भीड़ है। बहुत लोग मिलना—बात करना चाहते हैं। मैं उनके सामने मस्तिष्कवाली कोई बात प्रकट करना नहीं चाहता, सबके संतोषके लिये यथासाध्य अपनी स्थितिको छिपाता हुआ सबके साथ मिलना तथा ठीक-ठीक बातें करना चाहता हूँ—इसलिये कई बार बड़ी कठिनता होती है। सारी वृत्तियाँ जगत्को सर्वथा छोड़ना चाहती हैं; दूसरी एक वृत्ति चाहती है—'ऐसा न हो, ठीक चेतना बनी रहे।' अतः उस समय बाहरी काम, बाह्य चिन्ता आदिकी ओर वृत्तियोंको जबरदस्ती लगाना चाहता हूँ। किसी-किसी बार तो इसमें सफल हो जाता हूँ; परंतु अधिक बार यही होता है कि बाह्य-चेतना नहीं होती। अपने-आप ही लोगोंको निराश होना पड़ता है। जब बाह्य-चेतना आती है, तब चेतना आनेपर भी प्रायः कोई वृत्ति जगत्को ग्रहण करना नहीं चाहती। उस समय ऐसा लगता है कि कभी बाह्य-चेतना हो ही नहीं—जबतक इस शरीर तथा प्राणका सम्बन्ध है, केवल और केवल वही स्थिति बनी रहे; उससे व्युत्थान हो ही नहीं। जब बाह्य-चेतना पूरी रहती है, तब भी आजकल बहुत दिनोंसे ऐसा ही मन करता है—बड़ी प्रबल इच्छा होती है कि मैं अकेला ही रहूँ। कमरा बंद रहे। जहाँ रहूँ, वहाँ भीड़-भाड़ हो ही नहीं। कमरा खुला भी हो तो न कोई मेरे पास आये न मुझसे जगत्की—जगत्के विषयकी, किसी भी प्रकारकी कोई बात की जाय। मेरे सामने कोई विषय-चर्चा ही न हो। मैं अकेलेमें मन हो तो कोई काम कर लूँ, नहीं तो अपने परमार्थ-चिन्तनमें ही लगा रहूँ।

पर अबतकका जीवन बड़ा भीड़-भाड़का रहा है। घरके ही नहीं—सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सेवा, सहायता, कई ट्रस्ट तथा संस्थाएँ, सत्-साहित्य-प्रचार आदि अनेक विषयोंके सैकड़ों-हजारों झंझट अपने ही स्वभावदोषसे ही लगे रहे हैं। हजारों-लाखों आदमियोंसे परिचय है, पत्र-व्यवहार हुआ है, कभी कहीं मिलना हुआ है। अतः स्वाभाविक ही बड़े सद्भावसे अपनी-अपनी समस्याओंको लेकर लोग मिलना चाहते हैं, पत्र-व्यवहार करना चाहते हैं। मिलनेपर कोई घरकी बात करता है, कोई अपनी समस्याका समाधान चाहता है; कोई किसी विषयमें परामर्श चाहते हैं, सहायता चाहते हैं, सिफारिश चाहते हैं, साधनकी बात पूछते हैं, कोई अपना दुःख सुनाकर दुःख-अशान्तिसे त्राण पानेका उपाय पूछते हैं; कोई धर्म, अध्यात्म, राजनीति आदिके सम्बन्धमें सम्मति, सहायता, सहयोग चाहते हैं। ऐसे हजारों-हजारों प्रश्नोंको लेकर लोग मिलते हैं। मेरा सदाका स्वभाव है—

किसीको मना करनेमें बड़ी कठिनता प्रतीत होती है। यह भी ध्यान रहता है कि इन सभी रूपोंमें भगवान् हैं, फिर मैं इनका तिरस्कार कैसे करूँ ? भगवान्‌की तो पूजा करनी चाहिये, भगवान् उन सबमें निश्चय हैं ही। बहुत-सी बातें संकोचसे ऐसी भी स्वीकार कर लेता हूँ, जो मेरी लौकिक शक्तिसे बाहरकी हैं। सबसे बड़ी कठिनाई होती है एक ही कि मैं इतने सब रूपोंमें भगवान्‌का स्वागत न कर पाकर अकेले ही--सर्वथा अकेलेमें ही अपने भगवान्‌को देखना चाहता हूँ। जन-समूहसे वृत्ति प्रबलतासे हटती रहती है। कभी-कभी ऐसा होता है और आजकल तो रोज ही दिनमें कई बार होता है--मैं बात कर रहा हूँ, वृत्तियाँ जगत्‌को छोड़ने लगीं। दीखना-सुनना बंद होने लगा। किससे क्या कह रहा था, स्मृति नष्ट हो गयी। कौन थे, यह भी भूल गया। कौन क्या कहता है--समझमें नहीं आता। इस अवस्थामें बात करते-करते रुक जाना पड़ता है। कभी तो वृत्ति लौटकर जगत्‌में आ जाती है--मन-इन्द्रियोंका काम सामान्यरूपसे चलने लगता है और फिर ठीक-ठीक व्यवहार होने लगता है। कभी-कभी रही-सही बाह्य-चेतना भी चली जाती है। उस दिन एक सज्जन व्यापारकी बात कहकर राय पूछ रहे थे। दो-चार बातें करके ही मैं रुक गया। उन्हें पता नहीं चला कि मेरे क्या हुआ। कुछ देर बैठकर बेचारे निराश-उदास होकर चले गये। दूसरे दिन आये, तब मैंने उनको प्रकारान्तरसे समझाया। एक दिन एक सज्जन अपनी लड़कीके विवाहमें शामिल होनेके लिये कह रहे थे, दोनों स्त्री-पुरुष साथ थे। बहुत परिचित--बहुत प्रेम रखनेवाले। मैं बात करते-करते रुक गया। आँखें खुली थीं। बाहर कोई परिवर्त्तन नहीं, पर संसारका अभाव हो गया। इन्द्रियोंकी क्रिया बंद हो गयी। मैं बोलता-बोलता रुक गया। उन्होंने मुझे नाराज समझा और वे दुःखी होकर चले गये। ऐसी परिस्थितिमें मेरे मनमें आता है कि यदि मुझसे स्नेह रखनेवाले, मेरे प्रति कृपा करनेवाले, मेरे घर-परिवारके लोग ऐसी व्यवस्था कर देते, जिससे मुझे सर्वथा अकेलेमें रहनेकी सुविधा होती, जगत्‌की बात मेरे सामने आती ही नहीं या बहुत अच्छा होता--जैसे कोई पागल हो जाय, मर जाय तो उससे फिर कोई कुछ आशा नहीं रखता, वैसे ही।

शरीरकी बीमारीमें ऐसी कुछ शान्ति सहज ही मिल जाती है। लोग स्वाभाविक ही कम मिलते-जुलते हैं। घरवाले भी डिस्टर्ब करना नहीं चाहते--आनेवालोंको भी वे समझा देते हैं--उस समय ऐसा मन होता है कि शरीरकी नीरोगतासे तो यह रोग ही अच्छा--यही बना रहे तो कुछ तो राहत मिले।

ऐसी स्थितिमें क्या किया जाय, कुछ समझमें नहीं आता। अभी रातके साढ़े तीन बजे हैं। बीच-बीचमें वृत्तियाँ चेतनाको छोड़ रही हैं। बड़ी मुश्किलसे रुक-रुककर ऊपरकी पङ्क्तियाँ लिख पाया हूँ। तुम सोचना--मेरी कैसे क्या व्यवस्था हो ? लोगोंको भी दुःख न हो और मेरा **'अरतिर्जनसंसदि'** का भी निर्वाह हो जाय।

तुम्हारा भाई,
हनुमान

यह है श्रीभाईजीकी भाव-समाधि-दशाका संक्षिप्त परिचयमात्र। भगवान्‌की कृपा हुई तो भविष्यमें इसपर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

[४]

एक सम्मान्य महात्माको श्रीभाईजीद्वारा अपनी स्थितिके सम्बन्धमें लिखा गया पत्र

(एक अच्छे संन्यासी महात्मा श्रीभाईजीके पास कभी-कभी आते थे तथा उनसे एकान्तमें वार्ता करके चले जाते थे। समय-समयपर वे पत्रद्वारा भी श्रीभाईजीसे कुछ पूछते रहते थे। श्रीभाईजी उनसे अपने जीवनकी, साधनाकी, अनुभूति आदिकी बातें प्रायः छिपाते न थे। उन महात्माके पत्रोंका उत्तर लिखते समय भी वे बहुत खुल जाते थे। नीचे उन्हीं महात्माको श्रीभाईजीद्वारा लिखा गया पत्र दिया जा रहा है। इस पत्रसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भाईजी भगवान्‌के 'विशेष कार्य'के लिये ही धराधामपर पधारे थे।)

श्रीहरिः

गीताभवन, स्वर्गाश्रम
आषाढ़ शुक्ल ५, सं० २०२६

सम्मान्य श्री……

सादर प्रणाम।

आपका पत्र मिला था। आपने मेरे शरीरके सम्बन्धमें चिन्ता प्रकट की, यह आपकी कृपा है। आप जानते हैं—पाञ्चभौतिक शरीर विनाशी है। इससे वास्तवमें हमारा क्या सम्बन्ध है। यह तो नाश होगा ही। इसके लिये कुछ भी चिन्ता नहीं है। भगवत्कृपा तथा आप गुरुजन-स्नेहियोंकी सद्भावनासे मैं 'स्वस्थ' हूँ। फिर, मेरा तो यहाँ वास्तवमें अब कोई काम भी नहीं रहा; जिस कार्यके लिये इस पाञ्चभौतिक शरीरके माध्यमसे मुझे भेजा गया था, उनका वह कार्य पूरा हो गया। जो कुछ मेरेद्वारा होना अभीष्ट था, वह हो गया। उसका फल निश्चय ही बहुत ही श्रेयस्कर—'उनके' इच्छानुसार हुआ है; पर वह क्या है, आगे क्या होगा, यह जाननेकी न मुझे आवश्यकता है न इच्छा। यन्त्रको तो जैसे घुमाया, घूम गया। क्यों घुमाया, घुमानेका क्या परिणाम होगा—यह घुमानेवाले यन्त्री जानें। इसके अतिरिक्त एक बात और है—इस समय जगत् पतनोन्मुख है। कोई क्षेत्र भी ऐसा नहीं है—आध्यात्मिक कहे जानेवाले उच्चस्तरसे लेकर चोरी-डकैती, अनाचार-व्यभिचारके निम्न स्तरतक—जिसमें दम्भ, नीच स्वार्थ, राग-द्वेष, काम-लोभ, मद-अभिमान, ईर्ष्या-वैर आदि न आ गये हों। अतः इस संसारमें—इस देहमें मैं रहना भी नहीं चाहता। यद्यपि सब भगवान्‌की ही लीला है या मायामात्र है, तथापि देह व्यावहारिक जगत्‌में है और वह व्यावहारिक जगत् इस समय गिरते-गिरते बहुत नीचे स्तरपर आ गया है; और उसके नीचे गिरनेकी गति रुकी नहीं है, वरं उत्तरोत्तर जोर पकड़ रही है। ऐसी स्थितिमें इस व्यावहारिक जगत्‌में, इस देहमें रहना भी निरर्थक है। ऐसी कोई कामना तनिक भी नहीं है कि शरीर जल्दी चला जाय, या रहे; पर जल्दी चला जाय—यह अच्छा लगता है। न जायगा तो भी प्रसन्नता है।

मेरी यथार्थ स्थिति और जीवनकी घटनाओंका किसीको भी पूरा पता नहीं है। लोग मेरे प्रेमी बने श्रद्धासे मेरी जीवनी या संस्मरण लिखते हैं, पर उनमें वे यथार्थसे बहुत दूर—केवल बच्चोंकी-सी अपने मनोऽनुकूल बातोंको—सो भी अपनी दृष्टिके अनुसार लिखते हैं। उनसे यथार्थ वस्तुका पता कभी नहीं लग सकता। रही श्रीराधामाधवकी अनुभूतिकी, सो जब मेरी ही बात लोग नहीं जानते, तब श्रीराधामाधवके स्वरूपकी बात कैसे जानेंगे?

आजकल अधिकतर मेरा इस जगत्‌से कोई सम्बन्ध भीतरसे नहीं है। कार्यकालमें—बाहर भी बहुत ही थोड़ा है। और जब जगत्‌की सर्वथा अनुभूति मिट जाती है, उस समय तो भीतर-बाहर कहीं भी जगत् नहीं रह जाता। एकमात्र वे ही रह जाते हैं। यह कोई ध्यान या समाधि नहीं है, जिसका किसी अभ्याससे सम्बन्ध हो, न किसी क्रियाका ही फल है। यह तो उनकी अपनी लीलाकी एक विलक्षण स्फूर्ति है या उनकी लीलाकी लीला है—जो अत्यन्त ही दुर्लभ है। यहीं वास्तवमें ठीक-ठीक स्वरूपका साक्षात्कार होता है। कई बार ऐसा विचार होता है कि इस लीलाकी कुछ, किसी अंशमें अनुभूति अमुक-अमुकको भी हो जाती; पर लीलामयका संकेत इसे स्वीकार नहीं करता और वह जो कुछ कहता है, वही ठीक है।

जगत्‌का क्या होगा—इस स्तरमें उसे जाननेकी न इच्छा है न आवश्यकता। सृजन-संहार इसका स्वरूप ही है। जैसा कुछ उनकी बाह्यलीलाका विधान बन चुका है, वह सामने आता जायगा। कोई यदि चाहे और क्षमता हो तो उसे देखता रहे। नहीं तो, अलग जहाँ है, वहीं बना रहे। इसकी ओर देखे ही नहीं।

आपके प्रश्न तो बहुत हैं, और हैं भी महत्वके; पर इतनेमें ही उनका उत्तर समझ लें। आपके सामने—किसीके सामने भी उन सब चीजोंको प्रकट करनेका निषेध है। जिन बातोंको आपके सामने प्रकट करनेमें संकोच न करनेका आदेश है, वे बातें वहींतक लिखी गयी हैं। इसके आगे बढ़नेका संकेत नहीं है।

जितना, जो कुछ, जिसके लिये मुझसे करवाना अभीष्ट था, उतना वे मुझसे करवा चुके। इसका परिणाम भी वैसे बहुत ही मङ्गलमय हुआ है तथा दूरतक एवं दीर्घकालतक व्यापक होगा; पर अभी अव्यक्तरूपसे स्थित है। कभी शायद प्रकट हो, या न भी हो। मुझे यह जाननेकी इच्छा नहीं है।

बस, इतना ही।

आपका—
हनुमानप्रसाद पोद्दार

[५]

श्रीभाईजीको श्रीनारदजीके दर्शन

एक सामान्य जिज्ञासुने मई सन् १९७०में श्रीभाईजीसे प्रश्न किया—

प्रश्न—आपके लेखोंमें पढ़ा है कि नारद आदि ऋषियोंके दर्शन आज भी होते हैं। आपने यह बात अपने विश्वाससे लिखी है, या अनुभवसे ?

उत्तर—पहले मेरा यह विश्वास था, पीछे मुझे इसका अनुभव भी हुआ। सन् १९३६में यहाँ गोरखपुरमें गीतावाटिकामें एक वर्षके लिये अखण्ड संकीर्तन हुआ था। शिमलापालमें नारद-भक्तिसूत्रोंपर मैंने एक विस्तृत टीका लिखी थी। वह टीका उन दिनों प्रकाशित हो रही थी। भागवतकी कथामें भी नारदजीका प्रसङ्ग सुन रखा था। इन सब हेतुओंसे उन दिनों नारदजीके प्रति मनमें बड़ी भावना पैदा हुई। मनमें बार-बार नारदजीके दर्शनोंकी लालसा जगने लगी।

एक दिन रात्रिमें स्वप्नमें दो तेजोमय ब्राह्मण दिखायी दिये। मैं उन्हें पहचान न सका। परिचय पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि वे नारद और अङ्गिरा हैं। पीछे उन्होंने कहा—'हम कल दिनमें ३ बजे तुमसे मिलनेके लिये प्रत्यक्षरूपमें आयेंगे।' यह स्वप्न प्रायः जाग्रत् अवस्थाके समयका था और इतना स्वाभाविक था कि मुझे उसमें कोई संदेह नहीं रहा। मैंने पीछे बगीचेमें इमलीके पेड़के नीचे एक कुटिया साफ करवाकर उसके सामने एक बेंच लगवा दी और उसपर दो आसन लगा दिये। मैंने किसी व्यक्तिसे भी इसकी चर्चा नहीं की। मैं स्वयं अपने निवास-स्थानके बाहर बरामदेमें बैठ गया और उनकी प्रतीक्षा करने लगा। ठीक ३ बजे दो ब्राह्मण आये और उन्होंने मुझसे मिलना चाहा। मैं उन्हें पहचान गया। ठीक वही आकृति, वही स्वरूप, जो स्वप्नमें मैंने देखा था। मैं पीछे बगीचेमें बढ़ने लगा और वे मेरे पीछे-पीछे चलने लगे। हमलोग उस एकान्त कुटिया-पर पहुँचे। उन दोनोंको मैंने बेंचपर लगे हुए आसनोंपर बैठा दिया, मैं नीचे बैठ गया। दोनों ब्राह्मण सफेद कपड़े पहने हुए थे। पर आसनपर बैठते ही दोनोंका वास्तविक रूप प्रकट हो गया। बड़ा ही भव्य दर्शनीय रूप था। वे कुछ देर बैठे रहे और उन्होंने मुझे कुछ बातें कहीं। पीछे उन्होंने कहा—'जब कभी याद करोगे; तब हम आ जायँगे।' परंतु उसके बाद मुझे इसकी कभी जरूरत नहीं पड़ी और मैंने उन्हें याद नहीं किया।

नारदजीसे वार्तालाप होनेके पहले मेरे मनमें यह बात आती थी कि भगवान्का सगुण रूप दिव्य है, चैतन्य है, भगवद्रूप है। परंतु कभी-कभी अद्वैतके प्रवचनोंको सुननेसे उसमें थोड़ा संदेह हो जाता था कि भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण—इनका स्वरूप कहीं मायिक तो नहीं है। अद्वैत-प्रवचनोंमें यह सुननेको मिलता था कि एकमात्र ब्रह्मतत्व ही सत्य है। इसीसे यह संदेह उत्पन्न होता था। गोरखपुर आनेके बाद यह संदेह बहुत कुछ नष्ट हो चुका था, पर फिर भी कभी-कभी इस प्रकारकी वृत्ति आ जाती थी।

नारदजीने बताया कि—'सत्य एक है, तत्व एक है; वही सत्य—वही तत्व इन भगवत्स्वरूपोंमें नित्य प्रकट है। वे स्वरूप कभी प्रकट होते हैं, फिर मिट या मर जाते हैं—ऐसी बात नहीं है। महाप्रलय त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें होता है। त्रिगुणात्मक प्रकृति जब साम्यावस्थामें आती है, तब महाप्रलय होता है और प्रकृतिजनित पदार्थ उसमें लय हो जाते हैं और प्रकृतिके सम्बन्धको लेकर जो जीव-जगत् है, वह उस समय उस प्रकृतिमें आकर खो

जाता है। फिर भगवान्‌के संकल्पसे प्रकृतिकी सृष्टि आरम्भ होती है। तब वह जीव-जगत् अपने पूर्वके अवशेष कर्मोंको लेकर प्रकृतिमें फिर प्रकट होता है और ये जगत्‌के व्यापार फिरसे चालू हो जाते हैं। दिव्य जगत्‌के जो भगवत्स्वरूप हैं, उनको किसी स्थानकी आवश्यकता नहीं है। दिव्य जगत्‌के जो दिव्य लोक हैं, वे एक ही लोकके विभिन्न नाम और विभिन्न स्वरूप हैं और वहाँ जो भगवत्स्वरूप हैं, उनको किसी मायिक आधारकी आवश्यकता नहीं है। वे नित्य हैं, सत्य हैं, उनके लोक नित्य और सत्य हैं। उन लोकोंमें समस्त पदार्थ भगवत्स्वरूप ही हैं। वे प्रलयमें नष्ट नहीं होते। वे अनादि हैं—अनन्त हैं, यह बात निश्चितरूपसे मान लेनी चाहिये। व्यासने ऐसा ही माना है, शंकराचार्यने भी ऐसा ही माना है और पहलेके ऋषि तो यह मानते ही थे।'

नारदजीके उपदेशके बाद इस सत्यपर दृढ़ निश्चय हो गया और फिर तो अनुभव भी कुछ होने लगा कि ये भगवत्स्वरूप नित्य हैं, चिन्मय हैं; इनमें कोई भेद नहीं। मायाका इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। जितने भी भगवत्स्वरूप हैं, उनमें जो परस्पर द्वन्द्व दिखायी पड़ता है—पुराणोंमें जो कहीं शिवकी महिमा, कहीं विष्णुकी महिमा, कहीं देवीकी महिमा, कहीं श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन है, वह वहाँ-वहाँपर उस-उस स्वरूपके महत्वको बतलानेके लिये है, न कि भगवत्स्वरूपोंमें परस्पर ऊँचा-नीचा भाव दिखलानेके लिये। बहुत स्थलोंपर ऐसी बात कही जाती है कि 'जो विष्णु हैं, वे ही शिव हैं, देवी हैं और जो देवी हैं, शिव हैं, वे ही विष्णु हैं, आदि-आदि।' अर्थात् सभी भगवत्स्वरूप चिन्मय हैं—एक ही भगवत्स्वरूपके अनेक नित्य स्वरूप हैं। अनेक स्वरूप बनते हों, यह बात नहीं है। श्रीकृष्ण बनते हैं, राम बनते हैं, दुर्गा बनती हैं—ऐसी बात नहीं है। वे सब नित्य स्वरूप हैं और सब एक ही भगवान्‌के स्वरूप हैं। एक ही विभिन्न रूपोंमें लीलायमान हैं। अतएव किसी भी स्वरूपको छोटा-बड़ा नहीं मानना चाहिये। जो जिस भगवत्स्वरूपकी उपासना करता है, उसे उस उपासनाको छोड़ना नहीं चाहिये। उसे यह समझना चाहिये कि सब स्वरूप हमारे उपास्यदेवके ही हैं। इस मान्यतामें अपने स्वरूपके प्रति अनन्यता हो गयी और अन्य स्वरूपोंके प्रति विरोध भी नहीं हुआ। श्रीनारदजी महाराजके उपदेशके पश्चात् मेरे जो प्रवचन होते थे तथा मैं 'कल्याण'में जो कुछ भी लिखता था, उसमें इस मान्यताका प्रतिपादन हुआ है। शैव वैष्णवोंका विरोध करते हैं और वैष्णव शैवोंका, शाक्तोंका—यह सब अज्ञान है। किसीका विरोध करनेकी आवश्यकता नहीं है। अपना इष्ट ही विभिन्न भगवत्स्वरूपोंमें विद्यमान है। निर्गुण ब्रह्म भी वे ही हैं। निर्गुण ब्रह्म शक्तिरहित नहीं हैं। शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेद है। जहाँ शक्ति है, वहाँ शक्तिमान् है और जहाँ शक्तिमान् है, वहाँ शक्ति है; दोनों एक ही वस्तु हैं। साकार रूपमें प्रकट होनेपर शक्ति जहाँ क्रियारूपमें लीला करती है, वहाँ शक्तिके दर्शन होते हैं; निर्गुण तत्वमें ऐसी क्रिया नहीं दिखायी देती। वहाँ शक्ति अन्तर्निहित है—शक्तिका अभाव नहीं है। इसीको निर्विशेष स्वरूप कहते हैं—निर्विशेषका अर्थ 'शक्तिरहित' नहीं है।

प्रश्न—नारद वीणा लिये हुए थे क्या? वे आपसे किस भाषामें वार्तालाप कर रहे थे?

उत्तर—नारदजी वीणा लिये हुए नहीं थे। वे मुझ-जैसी वाणीमें बोल रहे थे। वे जिस व्यक्तिके सामने प्रकट होते हैं, उससे वे उसकी समझमें आनेवाली भाषामें बोलते हैं—बंगालीके सामने बँगलामें बोलते हैं, अंग्रेजी समझनेवालेके सामने अंग्रेजीमें बोलते हैं, संस्कृत जाननेवालेके सामने संस्कृतमें। वे समस्त भाषाएँ बोल सकते हैं।

[६]

शिव-शक्तिकी कृपा-प्राप्ति

श्रीभाईजीको भगवान् शंकरकी भी कृपा प्राप्त हुई थी। संवत् १९९०के आरम्भकी बात है। श्रीभाईजी रतनगढ़में थे। 'शिवाङ्क'का सम्पादन हो रहा था। एक दिन इनके मनमें प्रश्न उठा कि 'शिवतत्व ब्रह्मतत्वसे और विष्णु-तत्वसे पृथक् है या एक है? शास्त्रोंमें कहीं एकताकी बात आयी है और जहाँ-तहाँ पार्थक्यकी भी। कहीं विष्णुकी महिमा आती है, कहीं शिवकी महिमा।' मनमें ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि उसी दिन भगवान् शंकर दिखायी दिये और देखते-देखते विष्णु हो गये और विष्णुसे फिर शिव हो गये तथा हँसते रहे दोनों ही रूपोंमें।

ऐसी अनुभूति होनेसे इनको यह निश्चय हो गया कि शिव और विष्णु या ब्रह्म एक ही हैं। इस अनुभूतिके आधारपर श्रीभाईजीने 'शिवाङ्क'में यही प्रतिपादित किया कि शंकर और विष्णु एक ही हैं, कभी शिव विष्णुकी उपासना करते हैं और कभी विष्णु शिवकी।' पीछे तो इनको इसका प्रमाण रामचरितमानसमें उपलब्ध हो गया––'सेवक स्वामि सखा सिय पी के।' पद्मपुराणमें भी देखनेको मिला कि भगवान् राम शिवकी उपासना करते हैं और भगवान् शिव रामकी। शिवपुराणमें भगवान् शिवका वाक्य मिला––'मैं ही विष्णु बन जाता हूँ और मैं ही शिव बन जाता हूँ। दोनों एक ही हैं।' भागवतमें भी आया है कि भगवान् श्रीकृष्णने शिवकी उपासना ही नहीं, सकाम उपासना की। इस प्रकार शिव-विष्णुकी एकताका ज्ञान हुआ।

वैसे भाईजी बचपनमें भागवान् शिवकी उपासना करते थे। कलकत्तामें इनके घरके बगलमें शिवजीका मन्दिर था। वहाँ ये प्रतिदिन जाते, थोड़ी देर बैठते, शिवजीपर बिल्वपत्र चढ़ाते, पूजा करते और 'ॐ नमः शिवाय'की एक-दो मालाका जप करते। पर शिवके सम्बन्धमें इन्हें कोई अनुभव नहीं हुआ था।

इसी प्रकार जब 'शक्ति-अङ्क'की तैयारी हो रही थी, उन दिनों भाईजीको शक्ति-तत्वकी भी कृपा प्राप्त हुई थी। उसी अनुभूतिके आधारपर श्रीभाईजीने 'शक्ति-अङ्क'में शक्ति-तत्वपर लिखा था।

[७]

महामना मालवीयजीके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध

(श्रीभाईजीके शब्दोंमें)

"प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद महामना श्रीमालवीयजीसे मेरा परिचय लगभग सन् १९०६से था। उस समय मैं कलकत्तामें रहता था। वे जब-जब पधारते, तब-तब मैं उनके दर्शन करता। मुझपर आरम्भसे अन्ततक उनकी परम कृपा रही और वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। उनके साथ कुटुम्बका-सा सम्बन्ध हो गया था। वे मुझको अपना एक पुत्र समझने लगे और मैं उन्हें परम आदरणीय पितासे भी बढ़कर मानता। इस नाते मैं उन्हें 'पण्डितजी' न कहकर सदा 'बाबूजी' ही कहता। घरकी सारी बातें वे मुझसे कहते। कुछ समय तो मैं उनके बहुत ही निकट-सम्पर्कमें रहा, इसलिये मुझको उन्हें बहुत समीपसे देखने-समझनेका अवसर मिला। उनकी बहुमुखी प्रतिभा थी और उनका कार्यक्षेत्र भी बड़ा विस्तृत था। वे परम धार्मिक होनेके साथ ही बहुत सुलझे हुए राजनीतिक थे। शिक्षा-विस्तार––प्राचीन सनातनधर्मकी रक्षा करते हुए जनतामें सत्-शिक्षाका प्रसार तो उनके जीवनका प्रधान कार्य था। यहाँ उनके पवित्र जीवनके कुछ संस्मरण संक्षेपमें लिखकर मैं अपनेको पवित्र करता हूँ––

१––वे एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले––"भैया ! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी, पर है महान् 'वरदानरूप'।" इस प्रकार प्रायः आध घंटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा––'बाबूजी ! जल्दी दीजिये, कोई आ जायेंगे।'

तब वे बोले––"लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ मैंने उनसे यह वरदान माँगा कि 'मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मैं कहीं भी जाऊँ, सफलता प्राप्त करूँ।'

"माताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रक्खा और कहा––'बच्चा ! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ, तब जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।'

मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो, मेरे जीवनमें—चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र—मेरी माताकी दी हुई परम दुर्लभ वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।' यों कहकर महामना गद्‌गद हो गये।

मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया। अब तो ऐसा हो गया है कि घरभरमें सभी इसे सीख गये हैं। जब कभी घरसे बाहर निकला जाता है, तभी बच्चे भी 'नारायण-नारायण' उच्चारण करने लगते हैं। इस प्रकार रोज ही—किसी दिन तो कई बार 'नारायण'की और साथ ही पूज्य मालवीयजीकी पवित्र स्मृति हो जाती है।

२—जब मैं बम्बईमें रहता था, अमृतसरमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। लोकमान्य तिलक उसके अध्यक्ष थे। मैं अपने एक तरुण मित्रके साथ बम्बईसे अमृतसर पहुँचा। दिसंबरका अन्त था। उस साल कुछ ही दिनों पहले अमृतसरमें भयानक वर्षा हुई थी। पंजाबकी सर्दी प्रसिद्ध है और इस वर्षाके कारण वहाँ सर्दी बहुत ही बढ़ी हुई थी। हमलोगोंने बम्बईमें सर्दी देखी नहीं थी, इससे साधारण कपड़े ले गये थे। दोनोंके पास ओढ़ने-बिछानेके लिये एक-एक चद्दर और एक-एक हल्का-सा कम्बल था।

अमृतसरमें हमलोग महामना मालवीयजीके डेरेपर जाकर ठहरे। एक बड़ी धर्मशालामें वे ठहराये गये थे। शायद महात्मा गांधीजी भी उसीमें ठहरे थे। रातको हम दोनों दो चारपाइयोंपर सो गये। शरीर ठिठुर रहा था। छातीपर घुटने दिये पड़े थे। कम्बलसे मुँह ढक रक्खा था, पर शरीर काँप रहा था। रातको ९ बजे होंगे। महामना मालवीयजी सबको सँभालते हुए हमलोगोंकी चारपाइयोंके पास आये। मुँह ढके सिकुड़े सोये देखकर उन्होंने पूछा—'कौन हो? कहाँसे आये हो? खाया कि नहीं?' मैंने मुँहपरसे कपड़ा हटाया। तुरंत उठकर खड़ा हो गया और चरणस्पर्श किया। मेरे साथीने भी उठकर चरणस्पर्श किया। हमलोग काँप रहे थे। उन्होंने मुझे पहचानकर पूछा—'कपड़े कहाँ हैं?' मैंने कहा—'बिछा-ओढ़ रक्खे हैं न?' वे बोले—'बस, ये कपड़े हैं? तुम्हें पता नहीं था क्या, यहाँ कितने कड़ाकेका जाड़ा पड़ता है? अमृतसरको बम्बई समझ लिया?' यह कहते-कहते ही उन्होंने अपने साथ आये हुए एक पंजाबी सज्जनसे कहा—'जल्दी आठ कम्बल लाइये।' फिर पूछा—'खाया कि नहीं?' मैंने कहा—'खा लिया।' फिर बोले—'देखो, तुमने बड़ी गलती की, जो मुझसे कहा नहीं। यह तो मैं आ गया, नहीं तो तुमलोगोंको रातको बड़ा कष्ट होता और पता नहीं, इसका क्या नतीजा होता। क्यों इतना संकोच किया?' मैं क्या उत्तर देता। इतनेमें दो-तीन आदमी आठ मोटे कम्बल ले आये। दो-दो कम्बल हमारी चारपाइयोंपर बिछा दिये गये और दो-दो हमलोगोंके ओढ़नेके लिये रख दिये गये। गरम चाय मँगवाकर दोनोंको पिलायी। जबतक हमलोग चाय पीकर सो न गये, तबतक वे वहीं एक कुरसीपर बैठे रहे। हमलोग उनके जानेपर ही सोना चाहते थे, पर उन्होंने कहा—'तुमलोग ओढ़कर सो नहीं जाओगे, तबतक मैं नहीं जाऊँगा।' इसलिये हमें सोना पड़ा। उनकी यह ममता देखकर हमलोगोंका हृदय भर आया।

३—मालवीयजीके चार लड़के थे—रमाकान्त, राधाकान्त, मुकुन्द और गोविन्द। इनमेंसे मुकुन्दको मालवीयजीने मेरे पास बम्बई भेज दिया था—वे वहाँ बहुत दिनोंतक रहे। पीछे दूसरे लड़के राधाकान्त भी वकालतको छोड़कर इलाहाबादसे बम्बई चले गये—सट्टेका व्यापार करने। राधाकान्तजीको एक ज्योतिषी मित्रने बताया—'आपको सट्टेमें बहुत पैसा मिलेगा।' मित्रकी सलाहपर विश्वास करके राधाकान्तजी सट्टेका व्यापार करने लगे। राधाकान्तजी बरबाद हो गये। इन्हीं दिनों मेरा काशी जाना हुआ। मैं मालवीयजीसे मिलने गया। वे राधाकान्तकी बरबादीके कारण बहुत दुःखी थे।

मेरे बम्बई पहुँचनेके बाद शीघ्र ही मालवीयजीका एक तार मिला, जिसमें लिखा था,—"तुम राधाकान्तको कहो, विश्वासपूर्वक आर्तभावसे 'गजेन्द्रमोक्षस्तोत्र'का पाठ करे, ऋण उतर जायगा।" मैंने मालवीयजीका यह आदेश राधाकान्तको बतला दिया, किंतु उन्होंने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। पीछे मालवीयजीका एक पत्र भी मिला। उसमें उन्होंने 'गजेन्द्रमोक्षस्तोत्र'-पाठके महत्त्वविषयक अपने अनुभवोंकी चर्चा करते हुए लिखा था—'मैं नाकतक ऋणमें डूब गया था। मैंने गजेन्द्रमोक्षका विश्वासपूर्वक आर्तभावसे पाठ किया और मेरा ऋण उतर गया।'

४—श्रीबालूरामजी 'रामनामके आढ़तिया'के साथ हमलोग गांधीजीके पाससे मालवीयजीके यहाँ गये थे। मालवीयजी राजा गोविन्दलालजी पित्तीके मकानमें ठहरे हुए थे। जाकर हमलोगोंने उन्हें प्रणाम किया। मालवीयजीने पण्डितजीका परिचय पूछा। मैंने उनका पूरा परिचय दिया और उनको साथ लिवा लानेका हेतु बताया। मालवीय-जीने बड़े ही प्यारसे पूरा विवरण सुना, बार-बार पूछा और पण्डितजीकी बड़ी प्रशंसा की। पीछे उन्होंने अपने हस्ताक्षर कर दिये। वे बड़े चतुर थे। ठीक उन्हींके शब्द हैं—'जबसे मैंने होश सँभाला है, तबसे प्रतिदिन नाम-जप करता हूँ और जबतक होश रहेगा, प्रतिदिन करता रहूँगा।'

मालवीयजीके प्यारकी और भी अनेक स्मृतियाँ हैं।"

[८]

बापूके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध

"बापूके साथ मेरा बहुत अधिक सम्पर्क रहा है और मैंने उनको बहुत निकटसे देखनेके सुअवसर प्राप्त किये हैं। उनसे परिचय तो मेरा बहुत पुराना (सन् १९१५से) था और निकटका था; पर जब मैं बम्बईमें रहता था, तब महात्माजी साबरमती आश्रम, अहमदाबादमें निवास करते थे। उस समय मैं बीच-बीचमें कई बार आश्रममें भी जाया करता था। वे जब बम्बई पधारते, तब स्वर्गीय भाई जमनालालजी बजाजके साथ व्यावसायिक कार्य करनेके कारण उनकी ओरसे महात्माजीके सारे आतिथ्यका काम मेरे ही जिम्मे रहता था। महात्माजी बम्बईमें मेरे घरपर भी कई बार पधारे थे। उनका मेरे साथ सम्बन्ध प्रायः वैसा ही कौटुम्बिक था, जैसा उनके अपने पुत्र भाई देवदासके साथ था।"

बापूके सम्बन्धकी अनेकों मधुर स्मृतियाँ हैं। कुछ यहाँ दी जा रही हैं—

१—"गांधीजी बम्बई पधारे हुए थे और जुहूमें ठहरे थे। उस समय वे कुछ बीमार थे। मैं और शान्तिदेवी बहिन गांधीजीसे मिलनेके लिये गये। उन दिनों गांधीजीका एक पत्र 'नवजीवन' गुजरातीमें निकलता था। जब हमलोग जुहू जा रहे थे, तब रास्तेमें हमें 'नवजीवन'की प्रति मिली। उसमें छपा था—'गांधीजी बीमार हैं, उनसे मिलनेके लिये कोई न जाय।' हमलोग उस समयतक जुहूके समीप पहुँच गये थे। मनमें आया—'समीप आ गये हैं, बँगलेतक हो आयें; फिर लौट जायेंगे, मिलेंगे नहीं।' गांधीजीके निवासपर पहुँचनेपर भाई देवदास हमें नीचे मिले। हमलोगोंने उनसे बापूके स्वास्थ्यके विषयमें पूछा और लौटने लगे। भाई देवदासने कहा—'आपलोग आये हैं, बापूको खबर तो दे दूँ। उतनी देरीतक ठहरिये, लौटते क्यों हैं?' भाई देवदास ऊपर गये और लौटकर बोले—'आपलोगोंको बापूने ऊपर बुलाया है।' अब तो हमलोग विवश थे। हमलोग ऊपर गये और बापूको प्रणाम किया। वे हँसकर डाँटते हुए बोले—'लौट क्यों रहे थे?' मैंने कहा—'बापू! 'नवजीवन'में छपा है, इसलिये लौट रहा था।' बोले—'यह घरवालोंके लिये छपा है क्या? देवदास यहाँ नहीं रहेगा क्या?' फिर उन्होंने समझाया—'देखो, यह तो उनलोगोंके लिये है, जो यहाँ आयें और शिष्टाचारके नाते उनसे मुझे बोलना ही पड़े—चाहे मुझे बोलनेमें कष्ट ही हो। मैं यदि उनसे न बोलूँ तो उनको कष्ट हो, दुःख हो। इसलिये उनलोगोंको आनेसे रोक दिया है। तुम आओ, तुमसे मैं एक शब्द भी न बोलूँ। तुम बैठे रहो; तुमसे न बोलूँ तो तुम्हें उसमें

तनिक भी विचार नहीं होगा। अतएव तुम्हारे आनेमें मुझे क्या संकोच है? आये हो, कुछ देर बैठो।' हमलोग कुछ देर बैठे, फिर लौट आये।"

२––"बापू बम्बई पधारे थे, लेबरनम रोडपर ठहरे थे। उस समय मेरे साथ बालूरामजी नामके एक सज्जन, जो राजस्थानके थे और 'रामनामके आढ़तिया' कहलाते थे, ठहरे हुए थे। श्रीजमनालालजी बजाज भी बम्बईमें थे। मैं, जमनालालजी बजाज तथा रामनामके आढ़तिया––तीनों गांधीजीके पास गये। गांधीजीने पण्डितजीका पूरा परिचय पूछा। बालूरामजीने अपनी बही खोलकर सामने रख दी और बोले––'इसपर सही करो और नाम-जप करो।' वे ऐसे ही बोलते थे। हमलोगोंने गांधीजीको सब बात बतायी। वे बड़े प्रसन्न हुए। बोले––'भगवान्‌में लोगोंको लगाना बड़ा अच्छा काम है।' थोड़ी देर रुककर बोले––'देखिये, आप कहें तो मैं सही कर दूँ, । पर एक बात है––जब मैं अफ्रीकामें था, तब संख्यासे नाम-जप करता था; पर अब तो मेरा दिनभर नाम-जप चलता है। जब उसकी संख्या नहीं है, तब उसको संख्यामें क्यों बाँधते हैं?' इसपर जमनालालजीने कहा––'बापू! आपको सही करनेकी आवश्यकता नहीं है।' बापूने सही नहीं की।"

३––"'कल्याण'का 'भगवन्नामाङ्क' निकलनेवाला था। सेठ जमनालालजीको साथ लेकर मैं बापूके पास गया, रामनामपर कुछ लिखवानेके लिये। बापूने हँसकर कहा––'जमनालालजीको साथ क्यों लाये हो। क्या मैं इनकी सिफारिश मानकर लिख दूँगा? तुम अकेले ही क्यों नहीं आये?' सेठजी मुस्कराये। मैंने कहा––'बापूजी, बात तो सच है, मैं इनको इसीलिये लाया था कि आप लिख ही दें।' बापू हँसकर बोले, 'अच्छा, इस बार माफ करता हूँ, आइन्दा ऐसा अविश्वास मत करना। फिर कलम उठायी और तुरंत नीचे संदेश लिख दिया––

'नामकी महिमाके बारेमें तुलसीदासजीने कुछ भी कहनेको बाकी नहीं रक्खा है। द्वादश मन्त्र, अष्टाक्षर इत्यादि सब इस मोहजालमें फँसे हुए मनुष्यके लिये शान्तिप्रद हैं। इसमें कुछ भी शङ्का नहीं है। जिससे जिसको शान्ति मिले, उस मन्त्रपर वह निर्भर रहे। परंतु जिसको शान्तिका अनुभव ही नहीं है और जो शान्तिकी खोजमें है, उसको तो अवश्य राम-नाम पारसमणि बना सकता है। ईश्वरके सहस्र नाम कहे जाते हैं, इसका अर्थ यह है कि उसके नाम अनन्त हैं, गुण अनन्त हैं। इसी कारण ईश्वर नामातीत और गुणातीत भी है। परंतु देहधारीके लिये नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमें मूढ़ और निरक्षर भी रामनामरूपी एकाक्षर मन्त्रका सहारा ले सकता है। वस्तुतः 'राम' उच्चारणकी दृष्टिसे एकाक्षर ही है और ओंकारमें और राममें कोई फरक नहीं है। परंतु नाम-महिमा बुद्धिवादसे सिद्ध नहीं हो सकी है, श्रद्धासे अनुभवसाध्य है।'

संदेश लिखकर मुस्कराते हुए बापू बोले––'तुम मुझसे ही संदेश लेने आये हो जगत्‌को उपदेश देनेके लिये या खुद भी कुछ करते हो? रोज नामजपका नियम लो तो तुम्हें संदेश मिलेगा, नहीं तो मैं नहीं दूँगा।' मैंने कहा––'बापू, मैं कुछ जप तो रोज करता ही हूँ, अब कुछ और बढ़ा दूँगा।' बापूने यह कहकर कि––'भाई, बिना कीमत ऐसी कीमती चीज थोड़े ही दी जाती है'––मुझे संदेश दे दिया। सेठजीको कुछ बातें करनी थीं। वे ठहर गये। मैंने चरणस्पर्श किया और आज्ञा प्राप्त करके लौट आया।"

४––"गोरखपुर आने (अर्थात् अगस्त १९२७)के पश्चात् किसी कामसे मैं बम्बई गया था और वहाँसे रतनगढ़ जा रहा था। उस समय अहमदाबाद होकर गाड़ी जाती थी। बम्बईसे चलकर जब गाड़ी बदलनेके लिये मैं अहमदाबाद उतरा, तब गांधीजीके दर्शनार्थ उनके आश्रमपर गया। अहमदाबादके निकट ही गांधीजीका साबरमती आश्रम था। मैं आश्रमपर पहुँचा। मेरे हाथमें 'कल्याण'का अङ्क था। संयोगकी बात, उस अङ्कमें 'भगवन्नाम-जप' की प्रार्थना छपी थी। गांधीजीने 'कल्याण'का अङ्क अपने हाथमें ले लिया और उसे देखने लगे। 'भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना'––लेख देखकर पूछने लगे––'यह क्या है?' मैंने बताया कि किस प्रकार 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' भगवान्‌के इस षोडश नाम-मन्त्र-जपके लिये प्रतिवर्ष 'कल्याण'में प्रार्थना प्रकाशित की जाती है और किस प्रकार पाठक-पाठिकाएँ बड़े उत्साहसे नाम-जप करती हैं।' इतना सुनते ही पूछने लगे––'कितना जप हो जाता है?' मैंने कहा––'कई करोड़ हो जाता है।'

इसपर वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'तुम बड़ा अच्छा करते हो। इसमें १०-१५ व्यक्ति भी यदि सच्चे भावसे जप करते होंगे तो उनका उद्धार हो जायगा।' फिर बोले—'देखो, मैं भी नाम-जप करता हूँ", और उन्होंने गोल तकियेके नीचेसे तुलसीकी माला निकाली और दिखाते हुए बोले—'इसीके सहारे रात्रिके समय जप करता हूँ।' संयोगसे उनकी वह माला टूटी हुई थी और मेरी जेबमें तुलसीकी एक नयी माला थी। मेरे मनमें आया—इनकी टूटी मालाकी जगह नयी माला बदल दूँ। मैंने बापूसे प्रार्थना की—'बापू ! आपकी यह माला तो टूट गयी है, इसे आप मुझे दे दीजिये और आप नयी माला ले लीजिये।' और मैंने अपनी जेबमेंसे नयी माला निकालकर उनकी ओर बढ़ायी। बापू बड़े विनोदी थे; उन्होंने बड़ा प्रेमभरा विनोद किया; बोले—'तुम मुझे माला देने आये हो ? अर्थात् मुझे चेला बनाने आये हो ?' मैं तथा पास बैठे सबलोग हँस पड़े। मैंने कहा—'बापू ! माला टूट गयी है, इससे बदलना चाहता था; आपको माला मैं क्या दूँगा।' मेरे उत्तरसे वे बड़े प्रसन्न हुए, फिर बोले—'मुझे नयी माला दोगे तो तुम्हें साथमें कुछ दक्षिणा भी देनी होगी। दानके साथ दक्षिणा भी होती है।' मैंने कहा—'आपकी कृपा है; बोलिये तो क्या देना पड़ेगा ?' तब उन्होंने गम्भीर होकर कहा—'तुम अभी जितना नाम-जप करते हो, उसके सिवा एक माला जप और अधिक कर लिया करो। तब हम तुम्हारी माला लेंगे।' मैंने कहा—'क्या हर्ज है।' बापूने प्रसन्नतापूर्वक नयी माला रख ली। उस दिनसे मैं अपने जपके अतिरिक्त एक माला जप और करता हूँ। आजतक वह नियम अक्षुण्णरूपमें निभता चला आता है।"

५—"सन् १९३२की बात है। भाई देवदास गांधी गोरखपुर जेलमें कैद थे। जेलमें वे बीमार हो गये—टाइफायड हो गया था उनको। जेल अधिकारी भाई देवदासकी सँभाल ठीकसे न कर सके। बापूको पता चला। उन्होंने मुझे लिखा—'देवदास गोरखपुर जेलमें बीमार है। उसकी देखभालका, चिकित्सा आदिका सारा भार तुमपर है।'

बापू उस समय यरवदा जेलमें थे। बापूका आदेश प्राप्त होते ही मैं भाई देवदासकी सेवामें लग गया। कानूनन प्रतिदिन जेलमें जाकर मिलना सम्भव नहीं था, पर मेरे प्रति यहाँके अधिकारियोंकी सदासे ही बड़ी सद्भावना रही है। उन्होंने मुझे प्रतिदिन भाई देवदाससे मिलनेकी अनुमति दे दी। कुछ दिनोंमें भाई देवदास ठीक हो गये और जेलसे छोड़ दिये गये। मैं उन्हें पहुँचाने वाराणसीतक साथ गया था।

मैं तार-पत्रद्वारा बापूको बराबर भाई देवदासकी स्थितिका परिचय कराता रहता था। बापू मेरी इस तुच्छ सेवासे इतने मुग्ध हो गये कि उन्होंने एक पत्रमें लिखा—

यरवदा मंदिर
२१-७-३२

भाई हनुमानप्रसाद,

आपका पत्र मिला और आज तार भी। देवदासके लिये चिन्ता नहीं करूँगा; क्योंकि आप वहाँ हैं और देवदासने मुझको भी....(है) कि आपने उससे बड़ा प्रेम किया था। डाकतार तो अच्छा है। आपके पत्रकी आजकल हमेशा आजकल प्रतीक्षा करता रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

× × ×

६—"'कल्याण'के साथ बापूकी स्मृति जुड़ी हुई है। 'कल्याण'में बाहरी विज्ञापन न छापने और पुस्तकोंकी समालोचना न करनेका सिद्धान्त उन्हींकी सम्मतिसे स्वीकार किया गया था, जो अबतक भगवत्कृपासे चल रहा है।"

× × ×

बापू और श्रीभाईजीमें समय-समयपर विचारोंका आदान-प्रदान भी होता रहा है। ऐसे अनेक पत्र श्रीभाईजीकी पुरानी फाइलोंमें उपलब्ध हुए हैं। यहाँ बापूद्वारा प्रेषित कुछ पत्र दिये जा रहे हैं। पाठक स्वयं अनुभव करें कि बापूका श्रीभाईजीके प्रति कितना प्यार एवं विश्वास था।

(क)

भाई हनुमानप्रसाद,

देवदासकी चिन्ता तुम्हारे सिरसे उतरी, मुझे सब खत मिले हैं। मैं अनुग्रह क्या मानूँ। क्यों मानूँ। ऐसी सेवा मूक रहकर लेना ही मुझे तो सभ्यता प्रतीत होती है। सब सच्ची सेवाका बदला मनुष्य नहीं दे सकता है। ईश्वर ही दे सकता है।

२-८-३२

बापूके आशीर्वाद

(ख)

भाई हनुमानप्रसाद,

तुम्हारे पत्र मुझको हमेशा प्रिय लगते हैं। अबके पत्र अधिक प्रिय लगते हैं क्यों उनमेंसे तुम्हारी सत्य-परायणताका और भी अनुभव मिलता है। बुद्धिके प्रयोग करके मैं अब मेरी बात नहीं समझा सकूँगा। इतना मानो कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ ऐसा लगता है वह मैं नहीं कर रहा हूँ। मुझको कोई करा रहा है। वह मेरी दृष्टिसे निरंजन निराकार राम है, लेकिन दशमुख रावण भी हो सकता है। इसका पता तो मृत्युके बाद ही जहाँतक शक्य है मिल सकता है, और थोड़े परिणामसे मिल सकता है। पूर्णतया तो मिल ही नहीं सकता है क्योंकि मनुष्य हृदयकी बात अन्तर्यामीके सिवा कोई जानता ही नहीं है।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा हो रहा होगा। मुझको लिखा करो।

१६-१२-३२

बापूके आशीर्वाद

(ग)

भाई हनुमानप्रसाद,

मैंने अखबारमें ही देखा था कि.....कृष्णकान्तके सामने खड़ी होगी। मुझे किसीने पूछा भी नहीं था। इलेक्शनके मामलेमें मैं पड़ता ही हूँ थोड़ा और कांग्रेस छोड़नेके बाद तो खतम हो गया।

× × ×

कुछ मतभेद होते हुए भी तुम्हारे प्रेममें कुछ भी न्यूनता नहीं आ सकती है, यह मैं जानता हूँ। यही हाल कई मित्रोंके हैं। यह ज्ञान मुझे नम्र बनाता है।

वर्धा, १४-५-३५

बापूके आशीर्वाद

(घ)

भाई हनुमानप्रसाद,

तुम्हारा खत मिला, तुम्हारे विचारोंको पढ़कर मेरेको बड़ी खुशी होती है और सन्तोष भी। कभी-कभी ऐसा दिल भी करता है कि तुम जैसा आदमी मेरे साथ रहता, भाई जमनालालजी भी ऐसा ही चाहते हैं। पर जहाँपर भी तुम रहो मन साथ है तो साथ ही हो। तुम कल्याण और गीताप्रेससे जो काम करे हो वह ईश्वरकी बड़ी सेवा है। तुम्हारी सेवामें मैं भी अपना हिस्सा मानता हूँ। क्योंकि तुम मुझको अपना समझते हो, वैसा ही मैं भी समझता हूँ।

कल्याणमें जो तस्वीर छपती है उससे मुझको संतोष नहीं है। इतने दागीने* और शृंगार ईश्वरको क्यों, मैंने राघवदासको भी इस बाबत लिखा था।

वर्धा १६-५-३५

बापूके आशीर्वाद

(ङ)

भाई हनुमानप्रसाद,

हिंदी साहित्य सम्मेलन परीक्षाके लिये जो मुझे लिखा है सो समितिको लिखा जाय तो अच्छा होगा। काका साहबको आज प्रयाग भेज रहा हूँ। तुम्हारे पत्रका वे उपयोग करेंगे। मैंने सोचा कि तुम्हारे

* आभूषण

जैसे सज्जन समितिमें सदस्य होंगे और उसको पत्रद्वारा भी मदद देते रहेंगे तो भी अच्छा होगा। कितना भी काम है, कोई-कोई समय तो हाजरी भरना भी सम्भव होना चाहिये। हिंदी भाषाकी उन्नति हिंदी साहित्यकी शंसुद्धि तुम्हारा विषय भी तो है.....और जो कामके लिये मेरे लिखनेका एक अर्थ था उसका उल्टा राघवदासजीने बना लिया। कुछ लिखनेकी इच्छा नहीं होती है। लेकिन तुमको मैं क्या कहूँ? यह मेरा एक वाक्य लेख—योगोंके सम्राट् निष्काम कर्मयोग है।

हरिजन पानी फंडके पैसे दिल्ली ही भेज दीजिये।

मगनवाड़ी, वर्धा
१२-७-३५ बापूके आशीर्वाद

(च)

भाई हनुमानप्रसाद,

तुम्हारा वर्णन हृदयद्रावक है, बाबा राघवदासका वर्णन भी आ गया है। तुम सब पारमार्थिक काम कर रहे हैं। अच्छा है, ईश्वर तुम्हें सराहेगा और हजारों गरीबोंकी रक्षा होगी।

४-८-३६ बापूके आशीर्वाद

[९]

मन्त्रानुष्ठानके सम्बन्धमें श्रीभाईजीका अनुभव

स्वामी श्रीयोगानन्दजी अनुष्ठान-साधनाके एक मर्मज्ञ महात्मा हो गये हैं। बम्बईमें भेंट होनेपर उन्होंने इस विद्याके सहारे श्रीभाईजीकी कुछ सहायता करनेकी इच्छा प्रकट की थी; किंतु श्रीभाईजी सकाम साधनाके विरोधी थे, अतः सहमत न हुए। आगे चलकर उन्होंने अपने एक मित्रको आपद्ग्रस्त देखकर उनके कष्ट-निवारणार्थ स्वामीजीद्वारा निर्दिष्ट मन्त्रानुष्ठान किया। उसका विवरण श्रीभाईजीके ही शब्दोंमें पढ़िये—

"उत्तरप्रदेशमें अनूपशहरके आस-पास गङ्गातटपर निवास करनेवाले बंगाली महात्मा श्रीयोगानन्दजी सरस्वतीसे भी बम्बईके जीवनमें परिचय हुआ। यह परिचय पण्डित श्रीश्रीलालजी याज्ञिकके द्वारा हुआ। एक बार ये बम्बई भी पधारे थे। बड़े सिद्धि-प्राप्त महात्मा थे और मन्त्रानुष्ठानके मर्मज्ञ थे। मेरे साथ बहुत निकटका सम्बन्ध होनेसे ये जान गये थे कि उस समय मुझे कुछ अर्थकी आवश्यकता थी। उन्होंने मुझे भगवान् शंकरका एक मन्त्रानुष्ठान लिखकर भेजा और कहलाया—'इस मन्त्रानुष्ठानके प्रयोगसे भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष होगा और तुम्हारे अभाव पूर्ण हो जायेंगे।' मैंने उनसे कहलाया—'मैं अपने लिये सकाम अनुष्ठान नहीं करता। हाँ, मेरा इन अनुष्ठानोंपर पूरा विश्वास है।' पर वे बराबर लिखते रहे और समझाते रहे। उनका मेरे प्रति बड़ा वात्सल्यभाव था। उन्होंने लिखा—'जैसे वैद्यकी दवा ली जाती है, वैसे ही इस अनुष्ठानको कर लो। क्या आपत्ति है?' मैं उनकी बात स्वीकार नहीं कर सका। किंतु भगवान्की माया बड़ी विचित्र है। मेरे एक मित्रकी आर्थिक स्थिति कुछ समय बाद बहुत कमजोर हो गयी। मित्रका वह आर्थिक संकट बड़ा भयानक था। उनके प्रति मेरे मनमें बड़ा प्यार था। वे बराबर अपनी परीशानियाँ मुझे बताते थे। मेरे मनमें आया कि स्वामी श्रीयोगानन्दजीका बताया हुआ शिवजीका अनुष्ठान अपने लिये तो नहीं करना है, पर मित्रके लिये कर दिया जाय। उस समय मैं गोरखपुरमें था। इसी गीतावाटिकामें रहता था। मैं ऊपरके पूर्ववाले कमरेमें रहता था। मैंने उसी कमरेमें अनुष्ठान आरम्भ किया। बड़ी विधि एवं श्रद्धाके साथ २१ दिनोंतक वह अनुष्ठान चलता रहा। २१वें दिन बड़े भयानक रूपमें भगवान् शंकरका प्राकट्य हुआ। उनका वह भयानक रूप देखकर मैं काँपने लगा। उन्होंने कहा—'तुम्हारा मन्त्रानुष्ठान सफल हो गया, परंतु तुमने उसका प्रयोग कर बहुत अनुचित किया। भविष्यमें इस मन्त्रका अनुष्ठान करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। तुम फिर कभी

इसका अनुष्ठान नहीं करना। और सम्भव है, तुम इस मन्त्रको भूल जाओगे। जिसके लिये यह अनुष्ठान किया है, उसे कह देना कि फिर किसी बहुत बड़े व्यापारको न करे, उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।' इतना आदेश देकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। उस समय '..........' सट्टा किया करते थे। चीनमें बड़े पैमानेपर सट्टा होता था। मुझे ठीक स्मरण नहीं है कि उन्होंने चाँदी बेचनेको लिखा था या लेनेको; पर वे जो लिखना चाहते थे, भाग्यसे उससे उल्टा लिखा गया। अर्थात् लेनेकी जगह बेचना और बेचनेकी जगह लेना लिखा गया और उसीके अनुसार वहाँ सौदा हो गया। सौदा होनेके पश्चात् जब वहाँसे तार आया, तब उनके मनमें बड़ी घबराहट हुई। उन्होंने समझ लिया कि हम जो चाहते थे, उससे उल्टा हो गया है। अतएव उन्होंने जैसे सौदा हुआ था, उससे उल्टा सौदा करनेके लिये तार दिया। पर भगवान्‌की माया विचित्र, वह तार भी उल्टे सौदेका लिखा गया और वह भी जितना वे सौदा करना चाहते थे, उससे दूना हो गया। भगवान्‌को रुपये देने थे, उनकी इच्छाके विपरीत दुगुना उल्टा काम होनेपर भी उस काममें उन्हें ३० लाख रुपये एक महीनेमें मिले। वह मन्त्रानुष्ठान कुछ दिनों बाद मुझे विस्मृत हो गया। उस अनुष्ठानकी क्रिया तो मुझे स्मरण रही, पर मन्त्र मैं सर्वथा भूल गया। इस मन्त्रानुष्ठानके प्रयोगसे मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि इस युगमें भी देवता सिद्ध होते हैं, उनके दर्शन होते हैं तथा उनकी आराधनासे नवीन प्रारब्धका निर्माण होकर कार्य सिद्ध हो जाता है।"

[१०]
उपाधियोंके मोहसे सर्वथा परे

श्रीभाईजीकी अन्तरङ्ग साधना तथा निष्काम सेवासे लोकमान्यता अनायास खिंच आयी। ज्यों-ज्यों उन्होंने उससे दूर भागनेका प्रयत्न किया, वह दूने-चौगुने और फिर अनन्तगुने आकर्षकरूपमें पीछा करती रही। आरम्भ हुआ 'रायसाहबी'से। इसके प्रस्तावक थे—गोरखपुरके तत्कालीन कलक्टर पेडले साहब और बाबू आद्याप्रसाद, नगरपालिकाके अध्यक्ष।

श्रीभाईजीने उनसे हाथ जोड़कर कहा—'महोदय, मैं इसके लायक नहीं हूँ।' छुट्टी मिल गयी। इसके बाद स्थानीय अंग्रेज कमिश्नर होबर्ट साहबने 'रायबहादुर' बनानेकी इच्छा प्रकट की। श्रीभाईजीने उसे भी अस्वीकार कर दिया। फिर संयुक्त-प्रान्त (उत्तरप्रदेश)के गवर्नर सर हैरी हेगने 'सर' (नाइटहुड)का जाल फेंका। वह भी खाली गया। गवर्नर साहबने इसपर प्रसन्नता व्यक्त की। श्रीभाईजीकी सर हैरी हेगसे मैत्री-सी हो गयी थी। श्रीभाईजी बेतकल्लुफीसे बोले—'आप यह उपाधि देकर क्या समझते हैं ?' गवर्नर साहबने हँसते हुए जवाब दिया—'कुत्तेके गलेमें पट्टा डालते हैं'। इस वाक्यका अन्तिम शब्द पूरा नहीं हुआ था कि श्रीभाईजी बोल उठे—'फिर आप पट्टा डाल रहे थे ?' गवर्नर साहबका उत्तर था—'आपने अस्वीकार कर दिया, तब हम कहते हैं; नहीं तो आपका सम्मान करते, आपको धन्यवाद देते कि आपने इसे स्वीकार कर लिया। बड़ा अच्छा किया।'

अन्तमें ब्रह्मास्त्ररूपमें 'भारतरत्न'के संधानका डौल बना और उसके संधाताकी भूमिका निभानेका दायित्व ब्रह्मकुलाग्रणी पं० श्रीगोविन्दवल्लभजी पंतको सौंपा गया। पंतजी उन दिनों भारतके गृहमन्त्री थे। यह उनके शरीर छोड़नेके कुछ पहलेकी बात है। वे गोरखपुर आये और स्टेशनके पास नहर-विभागके अतिथि-गृहमें ठहरे थे। भाईजी उनसे मिलने गये। कुछ देरतक बातें हुईं, फिर वे भाईजीकी कलम लेकर पैडपर कुछ लिखने लगे। लिखनेके बाद बोले—'यह कलम हम प्रसादरूपमें ले जायँ।' भाईजीने कहा—'इसमें भी पूछना है क्या ?' कलम जेबमें चली गयी। फिर पंतजीने एक कागज निकालकर भाईजीको दिया और कहा—'हम इसे भारत सरकारके पास भेज रहे हैं, आपकी स्वीकृति लेने आये थे।' कागजमें भारतरत्नकी उपाधि प्रदान करनेका प्रस्ताव था और उसके निमित्त भाईजीकी स्वीकृति माँगी गयी थी। भाईजीने असहमति व्यक्त करते हुए पंतजीको इसके कारण विस्तारसे समझाये। भाईजीके अन्तर्हृदयकी व्यथाको देखकर पंतजी मान गये और कहा—'ठीक है, नहीं भेजेंगे।' इसके बाद दिल्ली पहुँचनेपर पंतजीने एक पत्र भाईजीको वहाँसे भेजा। उसमें लिखा था—'इससे मुझे यह अनु-

भव हुआ है कि आप उस उपाधिसे बहुत ऊँचे हैं।' इस प्रकार 'उपाधि'को 'व्याधि'का सहोदर मानकर भाईजीने किसी प्रकार अपना पिण्ड छुड़ाया। आधुनिक युगमें साँस लेनेवाले जीवोंके लिये अबतक **'प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा'** पुस्तकोंकी सूक्तिमात्र थी, कर्मयोगी भाईजीने उसे व्यवहारभूमिपर ला प्रतिष्ठित किया।

[११]

एक बड़ा प्रलोभन

(श्रीभाईजीके शब्दोंमें)

"गोरखपुर आनेके बाद एक बड़ा प्रलोभन आया। तत्कालीन सरकारमें शायद रेवन्यू विभागके एक उच्च अधिकारी श्रीमेहताजी थे। उनसे मेरा अच्छा परिचय था। वे मुझे बड़ा सम्मान देते थे। उस समय मालवीयजी-के पुत्र श्रीराधाकान्तके पास कोई काम नहीं था। मेहताजी मालवीयजीके प्रति श्रद्धा रखते थे। श्रीराधाकान्तने मेहताजीको कोई काम देनेको कहा। मेहताजीने कहा—'एक बहुत बड़ा सरकारी काम है। वह काम हम आपको दे सकते हैं; पर वह काम हम भाईजीके नामसे देंगे, आपके नामसे नहीं। भाईजी अपना नाम देनेको तैयार हों तो काम मिल जायगा।' बहुत बड़ा काम था। लाखों रुपये सालकी आमदनी थी। मेहताजीका पत्र लेकर मालवीयजीका आदमी मेरे पास गोरखपुर आया। मालवीयजीने मौखिक रूपसे कहलवाया—'तुम इस कार्यमें अपना नाम दे दो तो तुम्हारे पास पैसा आ जायगा, राधाकान्तके पास भी आ जायगा।' पर मैंने तो यह निश्चय कर लिया था कि कोई भी काम नहीं करना है। मैंने मालवीयजी महाराजको बड़े विनम्र शब्दोंमें कहला दिया —'मैं कोई भी काम करनेमें लाचार हूँ।' भगवान्‌ने परीक्षा लेनी चाही और उन्होंने ही रक्षा की।"

[१२]

श्रीभाईजीकी काव्य-रचनाकी पृष्ठभूमि

[सन् १९५६में तीर्थयात्रासे लौटनेके पश्चात् श्रीभाईजी कई मास बहुत अस्वस्थ रहे। उस अस्वस्थताकी स्थितिमें उन्होंने व्रजरस-सम्बन्धी तथा दैन्यभावके कुछ पदोंकी रचना की थी। सन् १९५८में स्वजनोंके आग्रहसे उन पदोंको एक पुस्तिकाके रूपमें मुद्रित कराया गया। उसकी भूमिकाके रूपमें श्रीभाईजीने जो शब्द लिखे थे, वे नीचे दिये जा रहे हैं। यह भूमिका कम्पोज हो चुकी थी, पर पीछे भाईजीने इसे रोक लिया और दूसरी साधारण भूमिका लिखकर उसमें दे दी। श्रीराधाकृष्ण-लीला-सम्बन्धी पद इसी स्थितिमें लिखे गये हैं। पाठक स्वयं उन पदोंके महत्वका अनुमान लगावें।]

"मङ्गलमय भगवान् अनन्त कृपासिन्धु हैं। उन्होंने कृपा करके मङ्गलमय रोग भेजा। महीनों बिछौनेपर पड़े रहना पड़ा। डाक्टर-वैद्योंने सम्मति दी—'पूर्ण एकान्तमें पूरे आरामसे रहना चाहिये; लोग मिलने-जुलने न पायें, कोई काम न करने दिया जाय।' अतः लोगोंका मिलना-जुलना प्रायः बंद हो गया। काम रहा नहीं। सहज ही अधिक समय अकेले रहनेका सुअवसर मिल गया। चिकित्सा-औषध-पथ्यादिके समयको छोड़कर शेष समय अकेला ही बंद कमरेमें रहता। अकेलेमें रोगका चिन्तन न करके मन दूसरे काममें लगता। वह काम था—आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण। जीवनके सभी तरहके चित्र आते—लोग बड़ा संत, भक्त या महात्मा मानते हैं। ओह, कितना बड़ा धोखा है। जीवनमें कितनी अपार दुर्बलताएँ हैं, कितनी मलिनताएँ हैं और कितने दोष-कलुष भरे हैं।' यह सब देखकर हृदय भर आता, सहज दैन्यभावका उदय होता। आँखोंमें आँसू छलक आते; मन दयासागर, अकारण कृपालु, सहज सुहृद् पतितपावनके पवित्र पादपद्मोंमें लोट जाता एवं बार-बार करुणा-पूर्ण भावसे अपने दोष बता-बताकर अपनी अत्यन्त दीन दशाकी ओर दीनबन्धुकी दयादृष्टिको आकर्षित करता। कभी स्वयं ही अपनेको प्रबोध देने लगता।

"इसी बीच मन्द-मन्द मुस्कराते हुए विश्व-जन-मन-मोहन अनन्त आनन्दाम्बुधि श्रीश्यामसुन्दर आते—हँसकर सिरपर वरद हस्त रखकर कहते—'मूर्ख, क्यों रो रहा है? क्यों दीन-हीन बनकर दुःखी हो रहा है? चल, मेरे

साथ व्रजमें; देख वहाँ मेरी दिव्य लीला और परमानन्द-सागरमें निमग्न हो जा।' श्रीश्यामसुन्दर व्रजेन्द्रनन्दन आनन्द-कंदकी मधुरतम वाणी सुनते ही मनका दैन्य भाग जाता। मन मन्त्रमुग्धकी भाँति उसी क्षण चल पड़ता उनके पीछे-पीछे। वे उसे परमरम्य क्षेत्रमें छोड़कर चले जाते और लग जाते अपने लीलाविहारमें।

"मन स्वच्छन्द विचरण करता—कभी नन्दबाबाके आँगनमें, कभी यशोदा मैयाके प्राङ्गणमें, कभी गोष्ठमें, कभी सखाओंके हास्य-विनोदमें, कभी वनसे लौटकर आवनीमें, कभी कालिन्दीके कूलपर, कभी रासमण्डलमें, कभी प्रेममयी गोपाङ्गनाओंके समुदायमें, कभी अकेली गोपीके घरमें, कभी किसी अकेली सखीके मनमें, कभी सखियोंकी मधुर प्रेमचर्चामें, कभी वंशीवटपर, कभी रासमण्डलमें, कभी श्रावणके झूलोंमें, कभी शारदीय झूलोंमें, कभी होलीके रंगमें, कभी नव प्रफुल्लित कुसुम-सौरभित वृन्दा-काननमें, कभी श्रीमतीके पास, कभी श्रीश्यामसुन्दरके पास, कभी निभृत निकुञ्जोंमें, कभी किशोर-किशोरीकी लीला-विहारस्थलीमें, कभी उनके परस्पर होनेवाले मधुरतम उच्च प्रेमालापोंमें, कभी उद्धव-गोपी-मिलनमें, कभी मथुरामें होनेवाले श्रीकृष्ण-उद्धव-मिलनमें, कभी मथुरा जानेके पश्चात् राधा तथा गोपाङ्गनाओंकी प्रेमविरह-दशामें—इस प्रकार प्रतिदिन-दिनरात महीनोंतक यह दैन्य और लीला-दर्शनका प्रवाह अबाध चलता रहा। मनने शत-शत विविध विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूप-माधुरी देखीं, समझी और किसी-किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। कभी-कभी सौन्दर्य-सुधासागरमें जाकर अपने-आपको खो दिया। वहाँ जो देखा, वह सर्वथा अलौकिक, दिव्य, मन-वाणीसे अतीत था, अत्यन्त विलक्षण था। उसका पूर्ण वर्णन सम्भव नहीं है। उसके लिये शब्द नहीं हैं। परंतु जितना कुछ शब्दोंमें आ सकता था, उसके बहुत ही थोड़े अंशका तथा दैन्यभावकी स्थितिमें प्रकट मनके बहुत ही थोड़े-से उद्गारोंका इन तुकबंदियोंमें चित्रण करनेका प्रयास किया गया है।"

[१३]
समर्पणका एक अनुपम आदर्श

१९५६में जब तीर्थयात्रा ट्रेन द्वारा श्रीभाईजी दक्षिण भारत पहुँचे—शायद बेजवाड़ाके आस-पास, तब वे वहाँके एक प्रतिष्ठित वकीलके घर मिलनेके लिये गये। उन वकील महोदयने बताया कि 'उनके पड़ोसीकी प्रौढ़ा लड़की बड़ी भजनपरायणा है, दिन-रात पूजा-पाठमें लगी रहती है। उससे अवश्य मिलना चाहिये।' भाईजी उससे मिलने गये। साथके लोगोंको बाहर बैठा दिया, भीतर वे अकेले ही गये। जाकर देखते हैं—एक बड़े सात्विक स्थानपर उसने अपने ठाकुरजीका विग्रह विराजमान कर रखा है और उसीके पास काँचमें मँढ़ा हुआ एक फोटो है। भाईजीने उससे पूछा—'ये कौन हैं?' तब उसने बताया—'बहुत वर्षों पूर्व मैंने इनके बारेमें एक पत्रमें पढ़ा था। तबसे मेरा इनके प्रति समर्पणका भाव हो गया। मैंने इनके फोटोके लिये प्रयत्न किया तो बम्बईसे मुझे यह फोटो मिल गया। तबसे मैं इन्हें अपने इष्टदेवके रूपमें पूज रही हूँ।' भाईजीने कहा—'क्या तुम कभी इनसे मिली हो? इन्हें जानती हो? ये कहाँ रहते हैं?' उस महिलाने उत्तर दिया—'मैं इनका नाम जानती हूँ, पर कभी इनसे मिली नहीं हूँ और न मेरा इनसे कोई परिचय है। मैंने इनके चरणोंमें अपनेको समर्पित कर दिया है; अब मुझे इनसे मिलनेकी आवश्यकता नहीं है और न मैं इनका पता-ठिकाना ही जानना चाहती हूँ।' भाईजीने पहचान लिया, यह फोटो उन्हींका था—बम्बईका। उन्होंने बड़े संकोचके साथ उन देवीसे कहा—'बहनजी, अपनी इस फोटोको देखकर मेरी ओर देखिये।' उन्होंने संकोचके साथ फोटोको देखा और भाईजीकी ओर देखा—उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि ये महापुरुष वही हैं, जिनको उसने अपने-आपको समर्पित कर रखा है। वह रोमाञ्चित हो गयी और उसने भाईजीके चरणोंमें अपना मस्तक टेक दिया। कुछ देर बाद वह उठी और चन्दन-पुष्प लेकर पहले उसने भाईजीके मस्तकपर तिलक किया, पीछे चरणोंपर चन्दन चढ़ाकर पुष्प अर्पण किये और प्रणाम करके बोली—'आप जा सकते हैं।' भाईजीने कहा—'देवी! तुम्हारा परिचय मैं जान लेता।' देवीने उत्तर दिया—'मेरे परिचयकी आवश्यकता नहीं है। आप मेरा परिचय जो आपको मिला है, उसे भी अपने किसी व्यक्तिको मत दे दीजियेगा; नहीं तो मेरे यहाँ भीड़ हो जायगी।' भाईजीने उसे अपना

पता-ठिकाना नोट करनेके लिये कहा, पर उसने उत्तर दिया—'मुझे उसकी आवश्यकता नहीं। मेरे मनमें एक साध थी—कभी इन महापुरुषके दर्शन मुझे हो पायेंगे कि नहीं? वह साध अन्तर्यामी प्रभुने बड़े ही विचित्र ढंगसे पूरी कर दी। अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। बस, मेरा यह समर्पण अन्ततक निभ जाय।'

श्रीभाईजी उसके भावको देखकर आत्मविभोर हो गये और मन-ही-मन देवीको आशीर्वाद देते हुए बाहर चले आये। १० वर्ष बाद अपने एक अन्तरङ्ग सेवकको भाईजीने यह घटना बतायी थी। उस देवीका नाम है—चिन्मयी देवी। पर उसके स्थानका नाम-पता अन्ततक श्रीभाईजीने किसीको भी नहीं बताया। पूछनेपर कहते थे—'वह नहीं चाहती कि जगत्का कोई भी व्यक्ति उसके निष्काम मूक समर्पणको जान पाये; ऐसी स्थितिमें तुमलोगोंको जाननेके लिये आग्रह नहीं करना चाहिये।'

धन्य है चिन्मय देवी और धन्य है उसका मूक समर्पण!

[१४]

श्रीकृष्ण-प्रेमसे भावित एक मुसलमान बहनको लिखा गया पत्र

एक परम सम्मान्या मुसल्मान बहनने, जो उन दिनों श्रीकृष्ण-प्रेमसे भावित थीं, श्रीभाईजीको श्रीकृष्णके प्रेमीके नाते अपना धर्मभाई मानकर पत्र लिखा था। श्रीभाईजीने उनके पत्रका जो उत्तर दिया था, उसीका कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है—

श्रीहरिः

डालमिया दादरी (जिन्द स्टेट)
२८-११-३९

प्यारी बहिन,

आपने अपनी ही बातें कीं, बहुत अच्छा किया। परायी बातोंमें क्या रखा है? अपनी बात वही है, जिसमें अपने—सबसे बढ़कर अपने—एकमात्र अपने श्रीकृष्णकी मधुर चर्चा हो। आपकी अपनी बातें श्रीकृष्णकी माधुरीसे रँगी हैं, सनी हैं, इसलिये बड़ी ही मधुर हैं। श्रीकृष्णकी माधुरी हृदयको और दिमागको बेकाबू कर देती है, बहा देती है एक आनन्दकी अनोखी धारामें—समुद्रमें भी बाढ़ आ जाती है और वह भी बहने लगता है।

श्रीकृष्णके एक बड़े प्रेमीभक्त भगवत-रसिकजी कहते हैं—

लखी जिन लाल की मुसुकान।
तिनहिं बिसरी बेद बिधि, जप, जोग, संजम, ध्यान॥
नेम, ब्रत, आचार, पूजा, पाठ, गीता-ग्यान।
'रसिक भगवत' दृग दई असि ऐंचि कैं मुख-म्यान॥

बड़े-बड़े तपस्वियोंको मोहित करनेवाली सद्गुरुकी हँसी, जगत्में आनन्दका समुद्र बहा देनेवाली संतोंकी हँसी, भगवान्के नामपर प्राणोंकी बलि चढ़ानेवाले शहीदोंकी हँसी, अपनी शूरतापर हर्षित न होनेवाले वीरोंकी हँसी, सफलतापर आनन्दको न पचा सकनेवाले सकाम पुरुषोंकी हँसी, बहुत बड़े साधकोंके चित्तको हिला देनेवाली अप्सराओंकी हँसी, महात्मा गांधी-जैसे पुरुषोंको आनन्द-मुग्ध कर देनेवाली शिशुओंकी हँसी—जितने प्रकारकी हँसी—अनादिकालसे अबतक नित्य नवीन रूपोंमें, सदा ताजी होकर, लोगोंके मनोंको मोहती है, उन सारी हँसियोंको एक स्थानमें एकत्र करनेपर भी वह श्रीकृष्णकी मधुर हँसीके सामने समुद्रके सामने एक नन्ही-सी बूँदकी तुलनामें भी नहीं आ सकती। श्रीकृष्णकी उस हँसी, उस मुस्कान, उस माधुरीकी महिमा कौन कह सकता है? जगत्की सारी मधुरिमा, सारा सौन्दर्य जिस नटनागरकी हँसीकी छायाकी छाया नहीं कही जा सकती, वह हँसी कैसी होती है—इस बातको वे ही जानते हैं, जिन्होंने कभी उस हँसीका—उसकी छायाका भी साक्षात्कार किया है। परंतु यह निश्चय है, जिन्होंने वह हँसी देखी है, उनका सब कुछ उस हँसीने हर लिया है, बहन, मैं उस हँसीकी बात क्या

कहूँ ? यह भी नहीं कह सकता कि मैंने कभी उसकी छाया नहीं देखी है, यह भी नहीं कहते बनता कि देखी है। सचमुच देखी होती तो आज कुछ और ही स्वरूप होता आपके इस नाचीज़ भाईका।

सचमुच वे सब कुछ हैं, सब कुछसे परे भी वे ही हैं; वे सर्वेश्वर हैं, सर्वलोकमहेश्वर हैं, योगेश्वरेश्वर हैं; सृष्टि-स्थिति-प्रलय उनके विनोदकी रेखाएँ मात्र हैं। वे हिंदुओंके ईश्वर, वेदान्तियोंके ब्रह्म मुसल्मानोंके अल्लाह, ईसाइयोंके गॉड, प्रेमी क्रिश्चियन संतोंके 'Beloved' सूफियोंके माशूक, आस्तिकोंके अस्तित्व, नास्तिकोंकी नास्ति, वैज्ञानिकोंके नियम और जो कुछ भी कहें––वे सब कुछ हैं; परंतु 'सब कुछ' होते हुए भी वे 'मेरे श्रीकृष्ण' हैं। मेरा उनसे 'मेरे'का नाता है। और आप उस 'मेरे कृष्ण'को 'बन्धु कान्हा' कहकर पुकारती हैं और वे आपको––'बन्धु'के रूपमें आकर्षित करते हैं। आप मेरी बहन तो थीं ही, इस नातेसे बहुत ही सम्माननीय, बहुत ही प्यारी, बहुत ही नजदीकी एक माँके पेटसे जन्मी हुई––से भी अधिक नज़दीकी बहन हैं। वे आपके 'बन्धु' हैं, ठीक है। बहुत अच्छी बात। मेरे तो वे 'सर्वस्व' हैं। वे जिस-किसी भी नातेसे मुझे आकर्षित करें, मैं उसीके लिये तैयार रहना चाहता हूँ। यह तैयारी भी उन्हींके कराये होती है। वे बड़े लीलामय हैं। न मालूम कैसी-कैसी रंगतें दिखलाते हैं। सचमुच आपके सामने मैं बे-पर्द हो गया। पता नहीं, श्रीकृष्णकी क्या मन्शा है; उन्होंने क्यों मेरे जीवनकी गुप्त-से-गुप्त बात किसी अंशमें स्पष्टतौरपर आपके सामने कहलवा दी। मैं, बहन, शरीरसे तो पक्का सनातनी––वर्णाश्रमी हिंदू हूँ, परंतु मैं वस्तुतः कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो 'मेरे' श्रीकृष्णका हूँ—क्या हूँ, सो पता नहीं है। यदि श्रीकृष्ण मुझे अपना बनाया रखें––तो यहाँ कुछ भी हो, कैसी भी हालत हो, नरकका स्थान मेरे लिये सुरक्षित रहे, जगत्‌की गालियोंकी बौछार सदा सिरपर बरसती रहे, मुझे मंजूर है। और उनको छोड़कर ऊँची-से-ऊँची पदवी, बड़े-से-बड़ा सौभाग्य भी मेरे लिये दुर्भाग्य है। फिर हिंदू-मुसल्मानके भेदकी तो बात ही क्या है ? यह सारा भेद यदि तत्वतः देखें तो केवल शरीरको लेकर ही है और यदि मार्ग दिखानेवालोंकी नजरसे देखें तो उस एक ही 'सत्य'को प्राप्त करनेके ये अपने-अपने अलग-अलग अनुभूत रास्ते हैं। जिसने जिस रास्तेसे सफ़र की, और वहाँ पहुँचा, वह उसी रास्तेका बयाँ करता है और ठीक ही करता है। सच्चा सम्बन्ध तो आत्माका है। श्रीकृष्ण आत्माके भी आत्मा हैं, वे हमारे सब कुछ हैं। इसलिये उनके सामने, उनकी तुलनामें किसी भी धर्मकी कोई महत्ता नहीं है। ये मजहब तो बहुत ही इधरकी चीज हैं। श्रीकृष्णका प्रेम तो **'सर्वधर्मान् परित्यज्य'**से ही शुरू होता है। गोपियोंकी चरण-रजकी इच्छा करते हुए उद्धवजीने श्रीमद्भागवतमें कहा है––

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

'अहा, कैसे इन गोपियोंकी चरण-धूलि मेरे मस्तकपर पड़े ? भगवान् मुझे इस वृन्दावनकी कोई बेल, कोई ओषधि, कोई नन्हा-सा झाड़ बना दें, जिसपर इनके कदमोंकी धूलि पड़ती है। इन गोपियोंने श्रीकृष्णके लिये––जिनका छोड़ना बहुत ही कठिन है, उन स्वजनोंको और सनातन धर्मको भी छोड़ दिया और मुकुन्दके उन चरणोंका अनुसरण किया, जिनकी खोज सदा वेद करते रहते हैं, परंतु पाते नहीं।'

कृष्ण-प्रेम-पथ पथिक कें, रहि न सकैं कुल-कान।
मेंड मिटी, फाजिल भए, बेद-पुरान-कुरान॥

यह वेद-पुरान-कुरानका अपमान नहीं है––वेद-शास्त्र अपना फल देकर उसपरसे अपना अधिकार हटा लेते हैं। नारदजीने कृष्णप्रेमीकी व्याख्या करते हुए कहा है––

वेदानपि संन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।

'वह वेदोंका भी भलीभाँति त्याग कर देता है। वही अखण्ड, असीम श्रीकृष्ण-प्रेमको प्राप्त होता है।'

है भी यही बात। नावपर सवार उस पार घर पहुँच गये, फिर नावको सिरपर ढोकर ले चलनेकी क्या जरूरत ? परंतु यह प्रेम जबानकी चीज नहीं है। श्रीकृष्ण-कृपासे ही मिलता है। आपने ठीक ही लिखा है—

'इन्सान तो इतना ही कर सकता है कि उनको याद करें'--परंतु वह याद भी उनकी कृपासे ही कर सकता है। मैं उन्हें रो-रोकर पुकारता हूँ, ऐसी बात नहीं है। मेरे आँसू तो सूख गये हैं। लोगोंके सामने तो मैं कभी रो ही नहीं सकता। एकान्तमें--वे रुलाते हैं तो रोता हूँ, हँसाते हैं तो हँसता हूँ। इस समय आँखोंमें आँसू आ गये। अब तो बह चले हैं·········

आप अपनेमें श्रीकृष्णप्रेम नहीं देखतीं। कहती हैं--'श्रीकृष्णप्रेम, ओ भाई साहब, वह मुझे कब मिलेगा ?' यही तो प्रेमियोंके दिलका फोटो है। उन्हें कभी यह महसूस होता ही नहीं कि हमारे अंदर भी प्रेम है। इसीसे तो प्रेमका स्वरूप है--**'प्रतिक्षणवर्धमानम्'**--प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है। जिस प्रेममें 'बस' है, जो प्रेम यह कहता है कि 'मैं तुझमें पूरा आ गया,' वह तो प्रेम ही नहीं है। ज्ञानियोंकी भाँति प्रेमी यह नहीं कहता कि 'बस, अब कुछ भी मिलना बाकी नहीं है। सब मिल चुका, सब कर चुका।' वह खामोश नहीं हो जाता; वह तो एक-एक क्षणमें अनुभव करता रहता है--अपनी प्रेमकी कमीका। उसमें ज्ञानका अभाव नहीं है। वह प्रेमास्पद प्रियतम श्रीकृष्णके स्वरूपको जानता है, तभी तो सब-कुछ छोड़कर--सबसे नाता तोड़कर उनसे प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करता है। परंतु प्रेममें ज्ञान अलग स्वरूपस्थ होकर नहीं रहता, वह प्रेममें घुल-मिलकर छिप जाता है। इसीसे प्रेमी सदा तृप्त होकर भी अतृप्त रहता है। वह देखता हुआ भी नहीं देखता--देखना ही चाहता है; सुनता हुआ भी सुनना ही चाहता है; मिलता हुआ भी मिलना ही चाहता है। यही तो उसका पागलपन है। एक प्रेमिका गोपी अपनी आँखोंकी दशापर कहती है--

नित के जागत मिटि गयौ वा सँग सुपन-मिलाप।
चित्र-दरसहू कौं लग्यौ आँखिनि आँसू पाप॥
इन दुखिया अँखियान कौं, सुख सिरजौ ही नाँहि।
देखत बनै न देखते बिनु देखे अकुलाँहि॥

'रातको कभी नींद आती ही नहीं; इससे सपनेमें--ख्वाबमें कभी मिलाप हो जाता था, वह भी नहीं होता। और दिनमें आँखोंमें आँसुओंका पाप लग गया, जो उनका चित्र भी नहीं देखने देता। विधाताने इन दुखियारी आँखोंके लिये सुख रचा ही नहीं; देखते समय देखना बन नहीं पड़ता, और बिना देखे ये व्याकुल रहती हैं।'

यह सच है कि किसी दिलमें जब उनकी प्रेमभरी याद भड़कने लगती है, तब वे आकर उस व्यक्तिके रोम-रोममें व्याप्त हो जाते हैं और फिर तमाम वायुमण्डल कृष्णमय ही हो जाता है। इसीसे तो प्रेमियोंकी यह घोषणा है--

नारायन जाके हिएँ सुंदर स्याम समाय।
फूल-पात-फल-डारमें ताकौं वही दिखाय॥
दर-दिवार दरपन भए, जित देखौं, तित तोहि।
काँकर पाथर ठीकरी भए आरसी मोहि॥

कानन दूसरौ नाम सुनै नहिं, एकहिं रंग रँगौ यह डोरौ।
धोखेहु दूसरौ नाम कढ़ै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरौ॥
ठाकुर प्रीति की रीति यही, हम कैसेहुँ टेक तजें नहिं भोरौ।
बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ, जो साँवरौ छाँडि निहारति गोरौ॥

तमाम वायुमण्डल उनसे भर जाता है, वे ही दीखते हैं। फिर भी प्रेमीकी तृप्ति नहीं होती। वह सबको भूल जाता है। **सबमें** उनको देखना तो **सबको** याद रखना है। वह तो, बस, एक उन्हींको लेकर, उन्हींसे मिल-जुलकर, उन्हींके साथ बातचीत कर, उन्हींमें मन-तन रमाकर अपने आपको भुला देता है। एक 'नारायन' नामके पागल कृष्ण-प्रेमी हुए हैं--पंजाबी शरीर था--वृन्दावन वास करते थे--श्रीकृष्णके बड़े प्यारे थे। वे कहते हैं--

जाहि लगन लगी घनस्याम की।
धरत कहूँ पग, परत कितेहीं, भूलि जाय सुधि धाम की॥
छबि निहारि नहिं रहत सार कछु, निसि-दिन-पल-छिन-जाम की।
जित मुँह उठै तितेही धावै, सुरति न छाया-घामकी॥
अस्तुति निंदा करौ भलेंहीं, मेंड तजी कुल-ग्राम की।
'नारायन' बौरी भइ डोलै, रही न काहू काम की॥

जरूर वे 'माशूके-आलम' हैं; परंतु प्रेमी––आशिक तो उन्हें, बस, अपने ही 'माशूक' देखना चाहता है। वह अकेला ही उनके प्रेमकी वह 'मोनॉपली' (एकाधिकार) चाहता है। वह कहता है––

आवहु प्रीतम नैन में पलक बंद करि लेउँ।
ना मैं देखूँ और कौं ना तोहि देखन देउँ॥

इसीसे तो प्रत्येक प्रेमिका गोपीके साथ रास-मण्डलमें अलग-अलग श्रीकृष्ण थे। आज भी वही बात है। प्रेमियोंके लिये वे वैसे ही हैं।

बस, आज वे इतना ही करने देते हैं। बहन, क्या लिखूँ––उनकी एक-एक बातमें रंग भरा है। अनन्त––अजीब आनन्दके फव्वारे छूटते हैं। वे किसके साथ कब, कैसे खेलते हैं, किसको कब, किस खेलमें लगाते हैं—वे ही जानें। विचित्र है, अनूठी है उनकी लीला। बलिहारी है, जै जै।

आपका भाई,
हनुमानप्रसाद

[१५]

श्रीभाईजीका कार्यरत जीवन

श्रीभाईजीका दैनिक जीवन बड़ा ही व्यस्त था। प्रायः प्रातः ४ बजेसे रात्रिके १२ बजेतक वे कार्य करते रहते थे। 'कल्याण'के विशेषाङ्कके दिनोंमें तो बहुधा उन्हें रात्रिके डेढ़-डेढ़ दो-दो बजेतक कार्य करते देखा गया है। वे अपने कागज-पत्र अपने तकियेके नीचे तथा आस-पास रखे रहते थे और जब सोना हुआ, तब वहीं सो जाते थे। भोजनके समय भोजन आनेमें कुछ विलम्ब हुआ तो पुनः काम करने लग जाते थे। भोजन करते समय एक हाथसे डाक उलटते रहते थे। भोजनके उपरान्त विश्राम करते समय लेटे-लेटे या करवट लिये काम करते रहते थे। बीमारीके दिनोंमें पेटपर मिट्टीकी पट्टी रखते थे। उस अवस्थामें भी वे प्रूफ देखने तथा पत्र लिखनेका कार्य किया करते थे। यात्रामें ट्रेनके रवाना होते ही प्रूफ-पत्र निकालकर बैठ जाते थे। प्लेनसे यात्रा करते समय पत्र लिखनेमें व्यस्त रहते थे। स्वजनोंके यहाँ उत्सव या विवाह-शादीमें जाते समय प्रूफ अपने साथ ले जाते थे और जब भी थोड़ा अवकाश मिलता, एक ओर बैठकर काम करने लग जाते।

सायंकाल लगभग छः-साढ़े छः बजे प्रेससे डाक एवं प्रूफ आया करते थे। डाक आते ही उनका कार्यालय चालू हो जाता। जितना प्रूफ आता, वह प्रातःकाल ७ बजे तैयार होकर प्रेस चला जाता, चाहे उसके लिये उनको रात्रिमें अधिक जगना पड़े। लेखोंमें जो भी श्लोक या उद्धरण होते, उनको वे स्वयं मूलग्रन्थोंसे मिलाते और जिन श्लोकोंकी पंक्तियाँ अधूरी रहतीं, उन्हें पूरी करते। ग्रन्थका नाम, अध्याय और श्लोक-संख्या बैठाते, जिससे पाठक कुछ देखना चाहें तो उस संदर्भसे आसानीसे देख सकें। प्रायः लेखक स्मृतिके आधारपर चौपाइयाँ-श्लोक आदि लिख देते हैं, जो मूलसे कुछ-न-कुछ भिन्न होते हैं। उन्हें वे स्वयं ठीक करते।

मिलने आनेवाले व्यक्तियोंका हाथ जोड़कर मधुर मुस्कानके साथ स्वागत करते। आनेवाला व्यक्ति यदि सुपरिचित होता तो उसे कह देते––'तुम अपनी बात कहते चलो' और स्वयं प्रूफ देखने एवं पत्र लिखनेमें लगे रहते। जब वह अपनी बात कह चुकता, तब वे धीरे-से उसका उत्तर दे देते। पहले लगता कि उनका मन अपने

कार्यमें व्यस्त है, कहनेवाला अपनी बात कहता जा रहा है; पर जब उसकी बातका सही उत्तर और वह भी विचार-कर निश्चित किया हुआ दिया जाता, तब आश्चर्य होता कि किस प्रकार विचारने तथा सुननेकी—दोनों क्रियाएँ उनके लिये एक साथ सम्भव थीं। अपने किसी भी सहयोगीके किये हुए कामको बिना सरसरी नजरसे देखे वे नहीं भेजते थे। अपने दायित्वका पूरा निर्वाह करते थे। 'कल्याण'के मूललेख देखते, गैली-प्रूफ देखते तथा पेज-प्रूफ देखते—इस प्रकार तीन बार पूरी सामग्री उनकी नजरसे गुजरती थी।

समयका वे अमूल्य निधिकी भाँति उपयोग करते थे। किसीको जो समय दे देते थे, उसका निर्वाह बड़ी तत्परतासे करते थे। कई बार देखा गया कि सभाओंमें वे समयसे पहुँच जाते और वहाँ कोई भी नहीं मिलता। सभी लोग आधा घंटा–एक घंटा बाद आते। साथीलोग कहते—'हमलोगोंको भी देरसे चलना चाहिये;' पर वे स्वीकार नहीं करते। उनका उत्तर यही रहता—'जो समय निर्धारित हुआ है, उसपर पहुँच जाना चाहिये; और लोग आयें चाहे न आयें।' गाड़ीपर समयसे कुछ पूर्व पहुँचनेकी चेष्टा रखते थे तथा दूसरोंको भी यही शिक्षा देते थे कि 'समयसे पहुँचकर गाड़ीपर सवार होना चाहिये। यह नहीं कि इंजन सीटी दे रहा है और आप सवार हो रहे हैं।'

जहाँतक होता, अपने व्यक्तिगत पत्रोंका उत्तर वे स्वयं देते और वह भी अपने हाथसे लिखकर। सहायताके पत्र तथा दुःखी व्यक्तियोंके पत्रोंका उत्तर तो वे किसी दूसरेसे लिखवाते ही नहीं थे। ऐसे पत्र वे स्वयं चिपकाते भी थे। वैसे भी पत्रोंके चिपकानेमें वे बहुत सावधान थे। गोंद-पानी इस प्रकार लगाना, जिससे पत्रपर कहीं धब्बा या दाग न लग जाय—इसका वे विशेष ध्यान रखते थे। जब कोई पासमें बैठा स्वजन कहता—'लाइये, पत्र मैं चिपका दूँ', तब वे उसे एक पत्र चिपकाकर समझाते कि 'इस प्रकार सफाईसे पत्र चिपकाइये।' इतना ही नहीं, इसके साथ वे श्रीमालवीयजी महाराजका एक संस्मरण सुना देते कि किस प्रकार महामना पत्रोंको चिपकानेमें सावधानी बरतते थे। महामना अपने इस कार्यके लिये श्रीशिवप्रसादजी गुप्तके अतिरिक्त अन्य किसीपर विश्वास नहीं करते थे।

आनेवाले पार्सलोंको खोलनेमें वे बड़ी सावधानी बरतते। पार्सलपर बँधी हुई रस्सीकी गाँठको खोलना और उसे समेटकर रखना, इनका सहज स्वभाव था। पार्सलपर लगा हुआ कपड़ा भी वे बड़े जतनसे सहेजकर रखते थे और उसे अपनी कलमको पोंछने आदिके काममें लेते थे। इसी प्रकार पुरानी आलपिन-क्लिपोंको भी बहुत सँभालकर रखते थे। कागजके छोटे-छोटे सादे टुकड़ोंको भी सँभालकर रखते थे। डाकमें आनेवाले पुराने लिफाफोंको सँभालकर एक बड़े लिफाफेमें रख लेते थे और प्रेस सामग्री भेजते समय उनका उपयोग करते थे। साथी लोग उन्हें उन कामोंके लिये नये लिफाफे देते, पर वे स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार श्रीभाईजी अपने अत्यन्त व्यस्त जीवनमें भी छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान देनेसे नहीं चूकते थे।

[१६]

प्रेमपूर्वक गरीबोंका पेट भरनेवाले

१६ जुलाई, १९६५ की बात है—प्रेसके प्रत्येक विभागके प्रधान कर्मचारी श्रीभाईजीके पास अपनी माँगें लेकर गये। श्रीभाईजीने सबको नमस्कार किया तथा बड़े आदरसे बैठाया। सबने कहा—'भाईजी! हम आपके दर्शन करने आये हैं, अपनी माँग बताने नहीं आये हैं। जो जीवनके आरम्भसे गरीबोंके आँसू पोंछता आया है, जिसके यहाँसे प्रतिदिन प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षमें अनेकों गरीबोंकी सहायता होती रहती है, उस व्यक्तिसे हम अपनी माँग क्या कहें? वह गरीबोंके दुःख-दर्दको जितना जानता है, हम उससे अधिक और क्या कहेंगे? बस, हम आपके दर्शन करके कृतार्थ हो गये। आप अपनी ओरसे जो करेंगे, वह हमारी माँगसे अधिक ही होगा और उससे हमें पूर्ण संतोष होगा।'

श्रीभाईजीने कहा—'आप अपनी-अपनी कठिनाइयाँ कहिये, संकोच न करें। देखें, गीताप्रेस किसी व्यक्तिकी

चीज नहीं है; वह तो भगवान्‌की चीज है, भगवान्‌का काम है। प्रेस मकान और मशीनोंका नाम नहीं है, आपलोग प्रेस हैं; प्रेस जितना हमारा है, उतना ही आपका भी। वास्तवमें तो यह भगवान्‌का है। रही कष्टकी बात, आपलोगोंका कष्ट हमारा ही कष्ट है।'

कर्मचारी श्रीभाईजीकी बात सुनकर आप्यायित हो गये। उनका हृदय भर आया। सबने कहा—'भाईजी! अब हम कुछ बोल नहीं पा रहे हैं। आप जो करेंगे, वही हमारे लिये हितप्रद होगा।' इतना कहकर सबने श्रीभाईजीसे बिदा ली।

कर्मचारियोंके जानेके बाद प्रेसके अधिकारीलोग श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये आये। श्रीभाईजीने अधिकारियोंसे कर्मचारियोंके आने तथा उनसे हुई बातकी चर्चा की और कहा—'आप देखते हैं, कर्मचारियोंका कष्ट वास्तवमें सच्चा है—समय कितना कठिन है। मेरी राय तो यह है कि आपलोग 'कल्याण'का चंदा आठ आने और बढ़ा दें तथा उससे जो ६०-७० हजार रुपये आवें, वे कर्मचारियोंको बाँट दें। बेचारे भूखे हैं। दूसरे प्रेसोंसे अपने प्रेसका वेतन-स्केल अच्छा है, इससे यह सिद्ध नहीं होता कि अपना स्केल अच्छा है। हमलोग अपनी ओरसे अपने कर्मचारियोंका पे-स्केल और अच्छा बनायें। यह प्रस्ताव मैं तो कई बार लिखितरूपमें श्रीसेठजी आदिको भेज चुका था और अब भी कहता हूँ। मैं कोई बात किसीपर लादना नहीं चाहता। सबकी रायसे ही काम होना चाहिये।'

इसके पश्चात् श्रीभाईजी कुछ उत्तेजित होते हुए-से बोले—'मैं तो मनसे हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट हूँ। राग-द्वेषसे पैसेवालोंको खतम करना नहीं चाहता, प्रेमपूर्वक गरीबोंका पेट भरना चाहता हूँ।'

अधिकारी लोग अवाक्-से हुए श्रीभाईजीकी बातें सुन रहे थे।

[१७]
श्रीभाईजीका दैन्य

सन् १९६५की २१ फर्वरीको सायंकाल ६ बजे वृन्दावन नगरपालिकाकी ओरसे श्रीभाईजीका अभिनन्दन किया गया। पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी उस आयोजनके अध्यक्ष थे। नगरपालिकाके प्रधानने अपने भाषणमें श्रीभाईजीके विषयमें बहुत बातें कहीं। अन्तमें उन्होंने कहा—'विनयकी मानो भाईजी मूर्ति हैं।' अध्यक्षके भाषणके पश्चात् श्रीभाईजीका भाषण हुआ। भाईजीने वन्दनाका श्लोक बोलकर कहा—"यहाँ उपस्थित आप सब व्रजवासी महानुभाव, जिनकी चरण-रजका लाभ लेनेका भी मैं अधिकारी नहीं, नीचे बैठे हैं और मैं यहाँ स्टेजपर बैठ गया हूँ—वर्तमान प्रथा ही ऐसी है।

"मैं यहाँ व्रजमें किसी भावको लेकर आता हूँ। मेरे लिये वृन्दावनका प्रत्येक परमाणु आदरणीय-वन्दनीय है।

"मैंने 'अभिनन्दन-पत्र' प्रदान करने तथा स्वीकार करनेका विरोध किया है। सम्भव है, मेरी चेष्टा अधिक मान पानेका प्रयास हो। मनुष्यके अंदर एक छिपी कामना होती है—मान और बड़ाई पानेकी। बहुत बड़े-बड़े त्यागी महात्मा, जो जगत्‌के समस्त पदार्थोंका त्याग कर चुकते हैं, उनमें भी न कहनेपर, न चाहनेपर, अपितु मना करनेपर भी मान-बड़ाईकी अभिलाषा छिपे रूपमें रहती है। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके शब्द हैं—'**सम्मानं कलयातिघोरगरलं नीचापमानं सुधाम्**।' मैंने अभिनन्दन-पत्रके लिये विरोध किया, इसके बदलेमें मानके और शब्द सुननेको मिले। इनसे चित्तमें प्रसन्नता नहीं हुई होगी, यह अन्तर्यामी प्रभु ही जानता है। आप सब आशीर्वाद दें—यह मान चाहनेका, बड़ाई चाहनेका मनोरथ आप सबके आशीर्वादसे दूर हो जाय तथा जैसे पुष्पोंकी माला पहननेमें सुख–प्रसन्नता होती है, वैसे ही जूतोंकी माला पहननेमें भी सुख–प्रसन्नताकी अनुभूति हो।

"महाभारतकी कथा है, जिसका सार यह है—'बड़ोंकी हत्या तलवारसे नहीं होती; बड़ोंके मुँहपर उनकी निन्दा कर देना उनकी हत्या है तथा अपने मुँह अपनी प्रशंसा करना या अपने कानोंसे अपनी प्रशंसा सुनना आत्महत्या है।'

"यदि मान-बड़ाईकी चर्चा सुनना मीठा न लगता तो पूजनीय श्रीब्रह्मचारीजी महाराज आज्ञा ही नहीं देते कि मैं चुपचाप सब स्वीकार करता रहूँ। वास्तवमें मेरी निर्बलता ही इसमें हेतु है।

"आपलोगोंने जो कुछ पढ़कर सुनाया अथवा यों ही कहा, मैं उसे अपनी भावनाके अनुसार आशीर्वाद मानता हूँ। आप श्रीकृष्णके हैं।"

[१८]

श्रीभाईजीका पुस्तक-प्रेम

श्रीभाईजी आदिसे अन्ततक अकिंचन रहे। इस अकिंचन महापुरुषने यदि कुछ संग्रह किया है तो वह है—विपुल साहित्य। संस्कृत, हिंदी, बँगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी और अंग्रेजी भाषाके अच्छे-अच्छे ग्रन्थोंको मँगाना और उनका अध्ययन-मनन करना—यह उनका सबसे प्रिय व्यसन था। जहाँ-कहीं जाते, अच्छे ग्रन्थोंको प्राप्त करनेकी चेष्टा रखते। कलकत्ता-जीवनमें उपयोगी ग्रन्थोंका एक अच्छा संग्रह उनके पास था और शिमला-पालके नजरबंदी-कालमें वहाँके स्कूलके अध्यापक महोदयके पास उन्हें विपुल बँगला साहित्य उपलब्ध हुआ। बम्बई-जीवनमें उन्होंने गुजराती-मराठी साहित्यका तथा अंग्रेजीके अपने विषयके अनुकूल ग्रन्थोंका अच्छा संग्रह किया तथा उनका अध्ययन भी। गोरखपुर आनेके पश्चात् तो उनका ग्रन्थोंका संग्रह बहुत विशाल हो गया। जब कभी वे कलकत्ता जाते, तब अपने व्यस्त कार्यक्रममेंसे समय निकालकर वे कॉलेजस्क्वेयरमें पहुँचते और फुटपाथपर बैठे, पुरानी पुस्तकोंको बेचनेवाले पुस्तक-विक्रेताओंसे अलभ्य पुस्तकें खरीदकर लाते। देशके अच्छे-अच्छे प्रकाशकोंके सूचीपत्र उनके आस-पास पड़े रहते थे और वे उनमेंसे अपने विषयके उत्तम-उत्तम ग्रन्थ बराबर मँगवाते रहते थे। इस व्यसनके परिणामस्वरूप 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागका पुस्तकालय एक सम्पन्न पुस्तकालय है। इतना ही नहीं, श्रीभाईजीका अपना एक निजी पुस्तकालय भी है, जो उनके पैतृक स्थान रतनगढ़में है। उसमें भी बहुत सुन्दर-सुन्दर ग्रन्थोंका संग्रह है।

मुद्रित पुस्तकोंके अतिरिक्त हस्तलिखित पुस्तकोंके संग्रहका भी श्रीभाईजीको व्यसन था। 'कल्याण'में वे बराबर हस्तलिखित पुस्तकोंके लिये अपील प्रकाशित करते रहते थे। 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाएँ उस अपीलके अनुसार प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षाकी दृष्टिसे श्रीभाईजीको भेजते रहते थे। श्रीभाईजी इस प्रकार आये हुए ग्रन्थोंको स्वयं देखते तथा उन्हें बड़े जतनसे सँभालकर रखवाते। साथी लोग कई बार बिखरे पन्नोंको तथा जीर्ण-शीर्ण ग्रन्थोंके प्रति उपेक्षा दिखाते, किंतु श्रीभाईजीको वे चीजें अमूल्य निधि अनुभव होतीं और वे स्वयं समय लगाकर उनको सँभालकर रखवाते। सम्पादकीय विभागमें तथा रतनगढ़के पुस्तकालयमें हस्तलिखित ग्रन्थोंका अच्छा संग्रह है। अपने परिवारके बच्चोंको वे बहुधा कहा करते थे—'मेरी सम्पत्ति तो ये ग्रन्थ हैं। बेटा, तुम इन्हें सँभालकर रखना और इनका उपयोग करना।'

अपने रात-दिनके कार्यरत जीवनमें भी श्रीभाईजी पुस्तकोंके अध्ययनका समय निकाल ही लेते थे। लगभग ५०० पत्र-पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओंकी उनके पास आती थीं और वे सभी पत्रिकाओंपर एक नजर अवश्य डाल लेते थे और जहाँ उन्हें अपने उपयोगकी सामग्री दिखायी देती, वे उसे छाँटकर अलग कर लेते थे। इसी प्रकार जो-जो ग्रन्थ उन्हें भेंटस्वरूप प्राप्त होते थे, उनको थोड़ा-बहुत अवश्य देखते थे। अपनी रुचिसे मँगवाये ग्रन्थोंको तो वे अच्छी प्रकार देखते ही थे। इस प्रकार विभिन्न भाषाओंके विपुल-साहित्यका उन्होंने अध्ययन किया और उसका उपयोग 'कल्याण'के लिये लेख तैयार करने तथा उसका सम्पादन करनेमें हुआ। श्रीभाईजीको विभिन्न भाषाओंके ग्रन्थोंकी बहुत अधिक जानकारी थी। यही हेतु है कि 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंके समय वे बड़ी सरलतासे विभिन्न भाषाके साहित्यसे उस वर्षके विशेषाङ्कके उपयोगकी सामग्री जुटा लेते थे। इस प्रकार 'कल्याण'के प्रत्येक विशेषाङ्कमें उस विषयसे सम्बन्धित प्रायः सभी भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी भाषाके ग्रन्थोंका सार संगृहीत हो गया है।

[१९]

श्रीभाईजीका वसीयतनामा

(२६-२७ दिसम्बर १९६९को श्रीभाईजीका स्वास्थ्य बहुत अधिक खराब हो गया था। गोरखपुरके डाक्टर सभी निराश हो गये थे। दिल्ली ऑपरेशनके लिये जानेकी बात तय हो रही थी। अचानक भगवान्‌की कृपासे स्थितिमें सुधार हो गया। क्या, कैसे हुआ, भगवान् जानें। उसी दिन रात्रिके प्रथम प्रहरमें श्रीभाईजीने एक पैड माँगा और उसपर चुपके-चुपके कुछ लिखना आरम्भ किया। थोड़ा-थोड़ा करके लगभग एक मासमें, अर्थात् २७ जनवरी १९७०को उन्होंने उसे 'मेरा वसीयतनामा' कहकर पूर्ण किया। उसका आवश्यक एवं सर्वसाधारणके लिये उपयोगी अंश यहाँ दिया जा रहा है।)

श्रीहरिः

प्रस्तावना

गोरखपुर

दिनाङ्क--२७-१२-६९

कल ज्यादा दर्द था, आज कुछ कम है। मेरे मनमें आया कि मैं अपनी कुछ मान्यताओं और इच्छाओंको--हो सके तो लिख दूँ। तदनुसार लिखना शुरू किया है। मनकी बातें सारी तो लिखी ही नहीं जायँगी। कुछ बातें लिखी जा सकती हैं। लिखनेके समय मनमें जो चित्र होगा, सत्य-सत्य उसीको अङ्कित करनेका विचार है। कहीं कोई भी राग-द्वेष तथा अन्य कोई भी हेतु नहीं है। लिखा जानेपर जिनको मिले, वे स्वयं अपने लिये कुछ लाभकी बात दीखे और इच्छा हो तो उसे ग्रहण कर सकते हैं।

उम्र ७८ वर्षकी हो गयी। भारतमें प्रायः ६० वर्षकी उम्र मृत्युकी उम्र मानी जाती है। तदनुसार मेरा शरीर तो अधिक टिक रहा है। शरीर छूटनेवाला है ही। इसकी जरा भी चिन्ता या दुःख नहीं होना चाहिये। आत्माका कभी नाश नहीं होता, शरीर नष्ट हुए बिना रहता नहीं। यह अपरिहार्य है। मनुष्य मोहवश अधिक जीना चाहता है। वास्तवमें उसे न तो शरीरको अधिक रखनेकी इच्छा करनी चाहिये और न शरीरके जल्दी नष्ट हो जानेकी। कर्मवश सहज जो कुछ होना है, होता रहे। बस, सावधानी तो केवल एक ही बातकी रखनी है कि हर स्थितिमें भगवान्‌का स्मरण होता है या नहीं।

शरीरमें कहीं भी पीड़ा होगी और वह जिस मात्रामें होगी--उसका अनुभव तो होगा ही; अन्तर इतना ही होता है कि जो शरीरसे अपनेको पृथक् देखता है, उसे पीड़ाके साथ-साथ होनेवाला दुःख नहीं होता--वह इस बातसे दुःखी नहीं होता कि 'मैं बीमार हो गया, भयानक बीमारी है, कब अच्छा होऊँगा, मर तो नहीं जाऊँगा--इत्यादि;' क्योंकि वह नाम-रूपवाले शरीरको 'मैं' नहीं मानता; आत्माको मानता है; आत्मा नित्य नीरोग तथा अमर है। पर उसको (शरीरसे अपनेको पृथक् देखनेवालेको) पीड़ाका ज्ञान--पीड़ाजनित स्थितियोंका भोग तो होगा ही। इस प्रकार मुझे भी पीड़ाका बड़ा अनुभव हो रहा है। पेटका असह्य दर्द सहन करनेमें कष्ट होता है। पता नहीं, शरीर जायगा या रहेगा। वैसे इसकी अब आवश्यकता भी नहीं रही। 'विशेष कार्य' समाप्त हो चुका। अब तो शरीरका प्रारब्ध, जो 'विशेष कार्य'के कारण रुक गया था, समाप्त होते ही शरीर चला जायगा। घरवालोंको, स्वजनोंको, मुझमें किसी भी कारणसे राग रखनेवालोंको मोहवश दुःख होगा ही; पर विधाताका अमिट विधान समझकर दुःख नहीं करना चाहिये और मानव-जीवनकी यथार्थ सफलताके लिये मेरे भावोंके अनुसार या जँचे जैसे ही प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

'मेरा वसीयतनामा'

गोरखपुर

२७-१-७०

मेरी कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं है। भगवान्‌के मङ्गलविधानके अनुसार जो कुछ हुआ है, हो रहा है और होगा--वही ठीक है और वही मेरी इच्छा है।

तथापि मेरे मनमें ऐसी बात आयी थी कि मेरे जीवनकी कुछ अनुभूतियाँ, कुछ खास मान्यताएँ, कुछ परिस्थितियाँ, कुछ कामनाएँ, कुछ विचार—संकेतसे या संक्षेपमें लिख दूँ, जिससे जो लोग कुछ जानना चाहते हैं—जिज्ञासा रखते हैं, जान-समझकर उससे लाभ उठा सकें।

मेरे पास अपना न तो एक पैसा कहीं जमा है, न मेरे कहींसे कोई आमदनी ही है। रतनगढ़में कुछ मकान आदि हैं। उसका वसीयतनामा पहले लिख दिया गया था। अब सम्पत्तिके रूपमें—'ये मेरे कुछ विचार मात्र' हैं, जिन्हें लिख रहा हूँ। ये सर्वसाधारण—पब्लिकमें प्रचारके लिये नहीं हैं। परिवारके, घरके तथा निकट-सम्पर्कके जो लोग हैं, वे इन्हें पढ़ें और जिनको कुछ लेना हो, वे अपना अधिकार समझकर अवश्य ले लें—यह निवेदन है।

मेरे आध्यात्मिक उत्तराधिकारीका कोई एक नामनिर्देश नहीं किया जा सकता, मेरे लिये सभी स्नेहपात्र हैं; पर किसीको उतना ही और वैसा ही उच्चस्तर या मध्यस्तरका अंश प्राप्त होगा, जितनी उसकी मेरे प्रति विशुद्ध भावना रही होगी और जो जितनी आध्यात्मिक भूमिकापर आरूढ़ होगा। हाँ, जिन्होंने दम्भ किया, मुझे ठगने या मुझसे केवल लौकिक भोग-सुख-साधनके लिये सम्पर्क रक्खा है, उनको शायद ही कुछ मिलेगा; किसीको मिलेगा तो वह बहुत ही कम हिस्सा। दम्भी और दूसरोंको ठगनेकी चेष्टा करनेवाले तो स्वयं आत्मवञ्चना करते हैं, उनको कुछ भी प्राप्त होना प्रायः असम्भव है।

मुझमें जिनकी जरा भी श्रद्धा, प्रीति या सद्भावना हो, उनसे मेरा निवेदन है कि वे सभी नर-नारी परम सात्विक, त्यागोन्मुखी, भगवत्सम्बन्धयुक्त जीवन बनायें। 'कल्याणकारी आचरण' नामक पुस्तकमें मेरे जो विचार छपे हैं, उनका यथासाध्य पूरा पालन करें तो अवश्य ही उनको भगवत्कृपासे परमवस्तुकी प्राप्ति होगी।

× × ×

जीवनके शिशुकालमें मुझे अपनी दादीजी श्रीरामकौर देवीसे—मेरी माताजीके बहुत पहले ही परलोकवासी हो जानेके कारण, जिन्होंने मुझे मातासे कहीं अधिक स्नेह-वात्सल्य देकर पाला-पोसा था—बहुत अच्छी शिक्षा मिली। वे साधुओंकी बड़ी भक्त थीं। महान् संत श्रीबखन्नाथजी महाराजकी कृपा मुझे दादीजीके कारण ही प्राप्त हुई थी। स्वामी हरिदासजी आदि महात्माओंका प्रसाद भी उन्हींके कारण मिला था।

पिताजी भी बड़े सात्विक पुरुष थे, उनसे भी संयमकी शिक्षा मिली। यों जीवनके प्रारम्भसे ही मुझे भोग-सुखके विरुद्ध त्याग तथा संयमका क्रियात्मक सजीव पाठ मिला। तदनन्तर कलकत्तामें स्वदेशी-युगके क्रान्तिकारी आन्दोलनसे भी बहुत बड़ी नियमानुवर्तिता, संयम, त्याग, सादगीकी क्रियात्मक शिक्षा मिली; क्योंकि उस समय आन्दोलनका उद्देश्य ही था—देशके लिये तन-मन-धन—सर्वस्व अर्पण कर देना।

राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, व्यापारिक—विभिन्न क्षेत्रोंके महानुभावोंसे बार-बार मिलने, किन्हीं-किन्हींके साथ अत्यन्त न्यून तथा किन्हीं-किन्हींके विशेष अन्तरंग सम्पर्कमें आनेका सुअवसर मिला। उससे मुझे त्यागमय जीवन-निर्माणमें बड़ी सहायता मिली। उसके कुछ बाद ही महामना पं० मदनमोहन मालवीय, डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसाद, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी आदिसे निकटका सम्बन्ध हो गया। राजनीतिक जगत्के अन्य महानुभावोंसे भी मिलना हुआ, पर उपर्युक्त महानुभावोंसे बहुत समीपता हो गयी। खासकर पूज्य मालवीयजी, महात्मा गांधी और श्रीटंडनजीसे तो एक प्रकारका पारिवारिक सम्बन्ध-सा हो गया। ये मुझे अपने परिवारका अत्यन्त विश्वस्त बालक समझते थे। इन लोगोंसे मुझे बहुत कुछ मिला। बीच-बीचमें श्रीजयदयालजी गोयन्दका कलकत्ता पधारते, तब उनके सत्सङ्गका लाभ मिलता। यों आध्यात्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियोंके साथ मेरी धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी चलती रहीं।

× × ×

गोरखपुर आनेपर 'कल्याण'के कारण देशभरके सभी प्रान्तोंके बहुत बड़े सम्मान्य साधु-महात्माओं, आचार्यों, विद्वानों, लेखकों, विभिन्न धर्मोंके माननेवाले महानुभावोंसे मेरा सम्पर्क हो गया। 'कल्याण'के सम्पादन-कार्यमें भगवत्कृपासे सभीका अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ।

सन् १९२७में व्यापारके सारे काम-काजसे सम्बन्ध तोड़कर जब मैं बम्बईसे चला, तब यही निश्चय किया था कि एक बार गोरखपुर जाकर फिर सदाके लिये कहीं पवित्र गङ्गातटपर एकान्त निवास करके जीवनके शेष दिन केवल भजनमें ही बिताने हैं। पर होता वही है, जो श्रीभगवान्के मङ्गलमय विधानके अनुसार होना होता है। 'कल्याण'को गीताप्रेससे प्रकाशित करानेकी व्यवस्था हो जाय—इतने ही कामके लिये मैं गोरखपुर आया था; पर 'प्रेस' तथा 'कल्याण'का काम उत्तरोत्तर बढ़ता गया। आसक्ति या वासनावश उसीमें मेरा मन अधिक-से-अधिक लगने लगा और मेरी एकान्तवासकी इच्छा धरी रह गयी और मैं गोरखपुरका ही हो गया—'करी गोपालकी सब होय।'

× × ×

इसके बाद गोरखपुरमें सावित्रीका जन्म हुआ। मेरा बन्धन और भी दृढ़ हो गया। सावित्रीको बड़े ही प्यारसे पाला-पोसा गया तथा सुसंस्कृत बनानेका यथासाध्य प्रयास किया गया। फल भी हुआ। सावित्रीका शील-स्वभाव बहुत ही श्रेष्ठ है। उसमें ईश्वर-विश्वास है, त्याग है, संयम है, बुद्धि है, भजन तथा सेवामें अभिरुचि है। कर्त्तव्यपरायणता, श्रमशीलता है, उदारता है और अध्यात्मकी ओर झुकाव है। और भी बहुत-से गुण हैं, जो आजके युगमें बड़ी कठिनतासे प्राप्त होते हैं। मेरा उसके प्रति सहज ही अत्यन्त आकर्षण और स्नेह है और मैं उसके लिये सब कुछ करनेको तैयार हूँ। उसपर भगवान्की वस्तुतः बड़ी कृपा है।

मेरे जामाता हैं श्रीपरमेश्वरजी। उनपर भगवान्की बड़ी कृपा है। वे सच्चे मनसे पूर्ण समर्पण करना चाहते हैं। वे अपना अधिक समय भगवच्चिन्तनमें लगाते हैं। व्यर्थ-चर्चा नहीं करते। श्रीपरमेश्वरजी कहीं फालतू आते-जाते नहीं, सिनेमा कभी नहीं देखते, खान-पान, वेष-भूषामें भारतीयता और पवित्रताका ध्यान रखते हैं। मनमें उदारता है, दानवृत्ति है, पैसेका मोह नहीं है, सीधा-सादा जीवन है, अपने लिये बहुत कम खर्च करना चाहते हैं। जो कुछ मैं दे सकता हूँ, मैंने उनको दे दिया है। उसका अभी प्रकाश नहीं दीखता, समयपर दीखेगा।

सावित्रीके चार बच्चे हैं—राधा, सूर्यकान्त, पुष्पा और चन्द्रकान्त। चारों ही अच्छे स्वभावके हैं। आजकलके अनुशासनहीन, स्वेच्छाचारी बच्चोंको देखते ये कहीं बहुत श्रेष्ठ हैं। इन बच्चोंके सम्बन्धमें यह एक निवेदन है कि जीव-जीवनगत न्यूनाधिक दुर्बलताओंके होनेपर भी इन बच्चोंमें कोई ऐसा 'विलक्षण शुभ' अवश्य है, जिसके कारण इन्होंने हमारे घरमें या हमारी लड़कीके यहाँ जन्मग्रहण किया है। अतएव जो लोग मेरे प्रति वास्तविक श्रद्धा-प्रीति रखते हैं, वे भगवद्भावसे सहज ही इन सबके प्रति सद्भाव रखते तथा इनके हित-सुख-सम्पादनका कार्य करते रहते हैं और करते रहेंगे। पर जो 'सहज भाव'से नहीं कर सकते, उनका यह कर्त्तव्य है कि वे इनके साथ सद्भाव रखें और इनके हित-सुख-सम्पादनका (मेरी प्रसन्नता तथा प्रीतिके लिये ही) प्रयत्न करें। ऐसा करनेसे उनके कर्त्तव्यका पालन होगा और उन्हें निश्चित लौकिक-पारमार्थिक लाभ होगा।

सावित्रीके जामाता श्रीजगदीशजी और श्रीदिलीपजी बहुत अच्छे हैं। मुझे दोनों ही बहुत प्रिय हैं।

निकट परिवारके, घरके तथा मेरे निकट एवं मेरे साथ रहनेवाले अन्यान्य सभी, जो मेरे प्रति न्यूनाधिक आत्मीयता, स्नेह-श्रद्धा रखते हैं, मुझे बहुत ही प्रिय हैं। सभीमें न्यूनाधिक सद्गुण हैं; मेरी उन सभीके प्रति सच्ची शुभकामना है। वे सभी मेरे भाव तथा विचारोंका उत्तराधिकार यथायोग्य प्राप्त करें—मेरे साथ भाव-साम्य प्राप्त करके भगवान्के मार्गमें आगे बढ़ें—मैं यह हृदयसे चाहता हूँ और उन सबसे सस्नेह अनुरोध करता हूँ कि वे ऐसा अवश्य करें; इससे उनका कल्याण होगा।

कदाचित् मेरा शरीर पहले छूट जाय और सावित्रीकी माताका बना रहे—तो मैं कहूँगा कि जिनकी मेरे प्रति श्रद्धा-प्रीति, सद्भावना, सहानुभूति या कृपा है, वे सब घरवाले तथा बाहरवाले भी मन-तन-वचनसे ऐसी चेष्टा करें, जिससे सावित्रीकी माँको सुख पहुँचे। वह बड़ी ही सात्विक स्वभावकी. छल-कपट-शून्य, सरल हृदयकी सती साध्वी है। सावित्रीकी माँने मेरी जितनी सेवा की है, जिस परम निष्कामभावसे—उसकी तुलना कहीं नहीं है। उसमें कई ऐसे आदर्श गुण हैं, जो मुझमें नहीं हैं। अतएव उसकी सेवा मेरी सेवासे बढ़कर मुझको सुख देनेवाली है। वास्तवमें जो ऐसा करेंगे, उनका बड़ा ही सौभाग्य होगा।

× × ×

बाबा चक्रधरजी पू० श्रीजयदयालजीकी प्रेरणासे कृपापूर्वक यहाँ पधारे और अबतक मेरे साथ ही हैं। बाबासे मेरा जो कुछ सम्बन्ध है, उसे किन्हीं शब्दोंमें नहीं बतलाया जा सकता। न किसी 'संकेत' या 'न्याय'से ही बतलाया जा सकता है। उन्होंने मेरी जो कुछ सेवा की है, वह अतुलनीय है। मेरे द्वारा किये हुए अपमान तथा दुर्व्यहारको जितना सहा है, उतना सहकर शायद ही कोई अपनेको सुस्थिर रख सके तथा प्रेमका निर्वाह कर सके। उनकी स्थिति क्या है, मैं नहीं बता सकता। इतना जानता हूँ कि वे महान् हैं और सर्वथा 'मेरे अपने'हैं और मुझे वे सर्वथा 'अपना' मानते हैं।

मेरा देहत्याग पहले हो जाय और मेरे बाद उनका शरीर रहे, तब तो मैं चाहता ही हूँ। पहले भी चाहता हूँ कि उनका भीतरी-बाहरी स्वरूप एक-सा 'मूर्तिमान् अध्यात्म' हो––उनके रोम-रोमसे, उनके शरीरको स्पर्श करके जानेवाले वायुसे––लोगोंको अमोघ आध्यात्मिक प्रकाश मिले तथा विशुद्ध आध्यात्मिक बल मिले। उनकी वाणी (चाहे वह मौन भाषामें बोलती हो, चाहे अमौनमें) भगवत्प्रेम-सुधाका प्रवाह बहा दे। पुण्यात्मा अधिकारियोंको ही नहीं, सर्वथा अनधिकारियोंको भी अधिकारी बना दे। आपामर––महान् पातकीतकको भगवान्के प्रेमार्णवमें डुबो दे जबर्दस्ती। कोई किसी प्रकार भी सम्पर्क-लेशको प्राप्त कर ले, वही परम अधिकारी बन जाय। उनकी क्रियामें भगवान्की लीला मूर्तिमान् हो। उनके श्वास-श्वाससे विशुद्ध प्रेमानिलका प्रवाह बहे। ऐसा नाट्य-कौशल हो कि बिना ही रङ्गमञ्चके दिव्य सहज रङ्गमञ्च बन जाय और दर्शकमात्र आप्यायित होकर ही जायँ। इस सिंहनीका दूध ही ऐसा हो, जो बूँद गिरते ही दिव्य स्वर्णपात्र तैयार कर दे। सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान्, भगवत्प्रेम-ही-भगवत्प्रेम––एकमात्र भगवत्प्रेम ही छा जाय। केवल प्रेम ही सुनायी दे, प्रेम ही दिखायी दे, प्रेमका ही स्पर्श हो, प्रेमका ही सौरभ प्राप्त हो और सर्वत्र प्रेमका ही मधुर रसास्वादन हो। भगवान् कहीं मेरा यह सुख-स्वप्न सत्य करें।

× × ×

मैं गीताप्रेस-गोरखपुरमें रहनेके लिये नहीं आया था पर भगवान्के मङ्गलविधानसे रहना हो गया। मैं आया था, उस समय बहुत छोटे रूपमें काम था। एक बड़ी, एक छोटी––केवल दो छपाईकी हाथ-मशीनें थीं। गीता, प्रेमभक्तिप्रकाश, ध्यानसे भगवत्प्राप्ति ––पुस्तकें निकली थीं। भगवान्की प्रेरणासे फिर काम बढ़ता गया। गोविन्दभवनके ट्रस्टियोंमें साहित्यके जानकार केवल एक पुरुष थे––श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया। और सब लोग पूज्य श्रीसेठजी श्रीजयदयालजीके भक्त थे, उनके आदेशानुसार ट्रस्टी बने थे। काम देखते थे श्रीघनश्यामदासजी जालान। मेरे आनेके बाद साहित्य-प्रकाशनका कार्य बढ़ा। लेखक-अनुवादक-सम्पादक मिलते गये। साहित्य-प्रकाशन होता गया।

यह जो मेरेद्वारा गीताप्रेस और 'कल्याण'का कार्य हुआ, हो रहा है—इसमें वास्तवमें मेरा कृतित्व कुछ भी नहीं है। मैं यदि इसके लिये गर्व करूँ तो वह सर्वथा मिथ्याचार और अपराध होगा। मैं तो 'साहित्यसंगीत-कलाविहीन', 'अज्ञानतिमिरान्ध' साक्षात् एक 'जन्तुमात्र' था। भगवान्ने अपने-आप स्वाध्यायका दीर्घकालीन सुयोग दिया, संत-महात्मा-भक्त-विद्वानोंका सङ्ग प्राप्त हुआ, निर्बाध असीम क्षेत्र मिला, बताने, सिखाने तथा सहायता देनेवाले समर्थ साथी मिले। यह सब भगवत्कृपा तथा भगवत्प्रेरणासे ही हुआ।

बिना किसी योजनाके जिस प्रभुने अपनी इच्छासे तुच्छको विशाल किया––गीताप्रेसके कार्यको इतना बढ़ाया, उसकी चतुर्दिक् प्रगति की, वे प्रभु जबतक इसे रखना और चलाना चाहेंगे, तबतक किसी भी बाधा-विघ्न या साक्षात् विध्वंसक भावसे भी इसका कुछ नहीं बिगड़ेगा और यह चलता रहेगा। और जिस क्षण प्रभु इसे रखना नहीं चाहेंगे, उस दिन कोई भी शक्ति इसे बचा नहीं सकेगी।

इस भगवद्विश्वासके सभी अधिकारी हैं और सभीको इससे लाभ उठाना चाहिये।

× × ×

गोरखपुरमें कई सार्वजनिक संस्थाएँ बनीं, उनसे सम्पर्क स्थापित हुआ। इस समय दो संस्थाएँ काम कर रही हैं––(१) 'कुष्ठ सेवाश्रम'; (२) 'मूक-बधिर विद्यालय'। दोनों ही मानव-सेवा करनेवाली संस्थाएँ हैं, दोनोंमें

ही बड़ा उपयोगी कार्य हो रहा है। इन संस्थाओंकी जो कुछ सेवा बन सकी है—उस सेवाके उत्तराधिकारी बहुत लोग हो सकते हैं।

इनके अतिरिक्त एक अखिल-भारतीय संस्था है—'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'। उत्तरप्रदेशके तत्कालीन राज्यपाल साधुमना श्रीविश्वनाथदासजीके मनोरथ तथा प्रयासके फलस्वरूप इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। श्रीअनन्तशयनम् आयंगर महोदय इसके अध्यक्ष हैं और श्रीविश्वनाथदासजी और मैं—इसके संयुक्त-मन्त्री। इस संस्थाके सेवाकार्यका मेरा उत्तराधिकार भी घरवाले तथा मेरे मित्रोंमेंसे कोई भी ले सकते हैं।

× × ×

यों तो मेरे जीवनपर उपनिषदोंका, ऋषियोंका, श्रीमद्भागवतका तथा वैष्णवग्रन्थोंका बड़ा प्रभाव है; महान् आचार्य श्रीशंकराचार्य तथा भगवान् श्रीचैतन्यदेवसे मुझे सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ है। पर यदि सत्य कहा जाय तो मेरे जीवनपर बहुत बड़ा प्रभाव श्रद्धेय पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका है। मेरे जीवनको बहकने तथा एक ही अध्यात्मपथपर सुरक्षित रखनेका सारा श्रेय उन्हींकी कृपाको है। उनको मेरे पास भगवान्ने ही भेजा था। यद्यपि सम्बन्धमें वे मेरे मौसेरे-भाई होते थे, तथापि दूर-दूर रहनेसे मिलनेका काम नहीं पड़ा था। कलकत्तेमें पारख कोठीमें पिताजीके साथ हमारी दूकानपर वे स्वयं आने लगे और उन्होंने मुझे अपनी ओर खींचा। यह लगभग सन् १९१०की बात है, तबसे शरीरके अन्ततक उनकी कृपा बराबर बनी रही। मैंने कई बार गीताप्रेस और 'कल्याण'के कामको छोड़कर भागना चाहा, पर उनकी प्रबल कृपाशक्तिने नहीं भागने दिया। उनसे मुझे जो कुछ मिला, उसकी कहीं तुलना नहीं हो सकती। यों कहना चाहिये कि मुझमें यदि कहीं कोई अच्छापन है तो यह भगवान्के एवं उनके कृपादानका फल है। बुराई सारी मेरी है।

मुझे जो कुछ लाभ हुआ, उसमें उपर्युक्त संत-कृपाके साथ-साथ तीन चीजोंकी प्रधानता है—

१. सबमें भगवान्को देखना।

२. भगवत्कृपापर अटूट विश्वास।

३. भगवन्नामका अनन्य आश्रय।

यही 'मेरी अतुल सम्पत्ति' है और यह इतनी विशाल है कि असंख्य लोगोंके द्वारा इसके ग्रहण किये जानेपर भी यह कम नहीं होगी। आप जो कोई मेरे यथार्थ उत्तराधिकारी बनना चाहें, सबमें भगवान् देखकर सबका हित-सुख-सम्पादन तथा सम्मान करें। निरन्तर बरसनेवाली भगवत्कृपाकी अहैतुकी अनन्त सुधाधारामें सराबोर रहें और अनन्य निष्ठा-विश्वासके साथ भगवन्नाम-जप-कीर्तन करते रहें। ये तीनों करेंगे तो अवश्य ही पारमार्थिक लाभ होगा।

× × ×

मुझसे जीवनमें घरके एवं बाहरके इतने लोग मिले हैं, जिनकी संख्या नहीं की जा सकती। इनमें पूर्व-जन्मोंके सम्बन्धके कारण सम्पर्कमें आकर कर्मानुसार अनुकूल-प्रतिकूल फल देने-लेनेवाले, किसी हेतुसे नये सम्पर्कमें आनेवाले, अनायास सहज ही मिल जानेवाले, किसी लौकिक कार्यके लिये मिलनेवाले, लौकिकके साथ-साथ विधाताके विधानसे किसी अज्ञात 'विशेष कार्य'में भी सहयोग देनेवाले और केवल 'विशेष कार्य'के लिये ही न्यूनाधिकरूपसे सम्पर्कमें आनेवाले—सभी प्रकारके लोग हैं।

शिलंग, कलकत्ता, शिमलापाल, रतनगढ़, बम्बई, गोरखपुर तथा अन्यान्य स्थानोंमें—पूज्य महात्मा, संन्यासी, पूज्य आचार्य, सरकारके उच्च अधिकारी, न्याय-शासन-विभागके अधिकारी, शिक्षा-विभागके महानुभाव, गीताप्रेस, 'कल्याण' तथा 'कल्याण'-सम्पादन-विभागके कार्यकर्ता, सेवा-सहायता आदि कार्योंसे सम्बन्धित, घरमें रहनेवाले, घरके कर्मचारी, सेवक, मित्र, साहित्यिक क्षेत्रमें सम्पर्कमें आनेवाले, 'कल्याण'के लेखक आदिके रूपोंमें मिलनेवाले—ऐसे भी बहुत लोग हैं, जिनका न्यूनाधिकरूपसे भगवान्के 'विशेष कार्य'से सम्बन्ध है। यह आवश्यक नहीं कि उस 'विशेष कार्य'का सबको पता हो। कुछ नाम ये हैं—

द्वारका शारदापीठके जगद्गुरु शंकराचार्य, पुरी गोवर्धनपीठके जगद्गुरु शंकराचार्य, शृंगेरीमठके जगद्गुरु शंकराचार्य, बदरीनाथमठ (ज्योतिर्मठ)के जगद्गुरु शंकराचार्य, श्रीरामानुज-सम्प्रदायके जगद्गुरु श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज, श्रीराघवाचार्यजी महाराज, वल्लभ-सम्प्रदायके आचार्य श्रीगोकुलनाथजी महाराज, महात्मा श्रीभवानीशंकरजी, श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी, स्वामी भोलेनाथजी, स्वामी प्रज्ञानपादजी, स्वामी माधवानन्दजी, योगिराज स्वामी प्रज्ञानाथजी, स्वामी अखण्डानन्दजी (सस्तुँ साहित्यमण्डलवाले), स्वामी प्रेमानन्दतीर्थजी, स्वामी ज्ञानानन्दजी (भारतधर्म महा-मण्डल), स्वामी संकर्षणदासजी, बाबा रामकृष्णदासजी, स्वामी गौराङ्गदासजी, स्वामी चिदानन्दजी सरस्वती, स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी, श्रीगोमतीदासजी, स्वामी मङ्गलनाथजी, स्वामी स्वयंज्योतिजी, स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी, श्रीब्रह्मबाबा, पं० रामवल्लभाशरणजी, श्रीरूपकलाजी, श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजी, श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी, श्रीसतीशचन्द्र मुखर्जी, श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी, गो० दामोदरजी शास्त्री, श्रीकृष्णप्रेमजी, संत तुकड़ोजी, श्रीरसिक-मोहन विद्याभूषण, श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय, श्रीजीव न्यायतीर्थ, श्रीहीरेन्द्रनाथ दत्त, श्रीऐनी बेसेन्ट, श्रीगोपीनाथजी कविराज, महात्मा सीताराम ओंकारनाथ, पं० हाराणचन्द्र शास्त्री, श्रीरामदासजी गौड़, श्रीरामनाथजी सुमन, डॉ० रघुबीर, डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी, डॉ० राधाकमल मुकर्जी, डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, श्रीश्यामा-प्रसाद मुकर्जी, श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय, श्रीबलदेव उपाध्याय, श्रीआनन्दशङ्कर बापूभाई ध्रुव, श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिक, श्रीगंगाशंकरजी मिश्र, श्रीजुगलकिशोरजी बिरला, सर पन्नालाल, श्री एन० सी० मेहता, श्री वी० एन० मेहता, श्री ए० जी० शेरिफ, कमिश्नर बनारस, बीकानेरकी राजमाता सुदर्शना देवी, सर जॉन वुडरफ, श्रीमाधव हरि अणे, श्रीरंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, श्रीअनन्तशयनम् आयंगर, श्रीअयोध्यादासजी बार-ऐट्-ला, श्री आद्याप्रसादजी श्रीवास्तव, श्रीचारुचन्द्र दास बैरिस्टर, श्रीजुगलसिंहजी खीची, बार-ऐट्-ला आदि।

× × ×

जबसे मैंने होश सँभाला है—जहाँतक मुझे याद है—मैंने राग-द्वेषवश, जान-बूझकर ऐसा कोई काम प्रायः नहीं किया है, जिससे किसीको दुःख पहुँचे, या किसीके भी हितका नाश हो।

कलकत्तेमें क्रान्तिकारी महत्वपूर्ण पत्र 'युगान्तर', 'संध्या' तथा विप्लववादियोंके साहित्यके अध्ययन तथा विप्लववादी महान् त्यागपूर्ण जीवनवाले नवयुवकोंके सङ्गसे मेरा मन उनके तथा उस आन्दोलनके प्रति आकृष्ट हो गया था। भारतकी स्वतन्त्रताके क्रान्तिकारी आन्दोलनके समय अवश्य ही अंग्रेजी शासनके प्रति मेरे मनमें द्वेष हो गया था और कुछ अंग्रेज उच्चाधिकारियोंके प्रति भी था—यह केवल भारतकी स्वतन्त्रताको लेकर; पर वह महात्मा गांधीके विशेष सम्पर्कमें आनेपर नष्ट हो गया।

इसके बाद गांधीजीके जीवनकालमें ही मुसल्मानोंकी हिंदू-विरोधी चेष्टाओंके कारण मुसल्मानोंकी उस नीतिके प्रति भी—किसी व्यक्तिके प्रति नहीं—मेरे मनमें विरोध हो गया था, जो कई वर्षोंतक रहा।

इस विरोधी वृत्तिमें भी मेरे मनमें स्वयं बलिदान होकर उनका सुधार करनेकी स्फुरणा होती थी। इसीसे भगवान्‌की कृपासे मेरे द्वारा किसी प्रसङ्गको लेकर ऐसा कोई कार्य नहीं हुआ, जिससे किसी अंग्रेज या मुसल्मानको व्यक्तिगत हानि हुई हो। मेरे बहुत-से ईसाई-मुसल्मान मित्र हैं, जो मुझे भाईके समान प्यार करते हैं। ईसाइयोंमें पादरी श्री सी० एफ० एण्ड्रूज महोदय, श्रीआर्थर मैसी मुझपर बड़ी कृपा रखते थे। मुसल्मानोंमें, डॉ० मोहम्मद सैयद हाफिज, श्रीसैयद कासिम अली, श्रीबदरुद्दीन आदिका मेरे साथ बड़ा प्रेमका सम्बन्ध था, और है। गोरखपुरके कई ईसाई विद्वान् तथा मुसल्मान भाई मेरे साथ बहुत ही प्रेम तथा आत्मीयताका व्यवहार करते थे, रखते हैं। मैं उन सभीका कृतज्ञ हूँ।

जान-बूझकर बुरी नीयतसे कुछ न करनेपर भी मेरे द्वारा मत-सिद्धान्तके आग्रहके कारण, मोह-ममतावश, देशके, समाजके, जातिके, परिवारके, घरके—बहुत लोगोंका बहुत बार अपमान-तिरस्कार हुआ है। मेरे रूखे-कड़े बर्तावसे, असत् व्यवहारसे, कभी-कभी असत् न दीखनेवाले सत्-व्यवहारसे भी, बहुतोंको दुःख पहुँचा है; इसके लिये घर-बाहरके सभीसे सच्चे हृदयसे क्षमा चाहता हूँ। वे सभी मुझपर कृपा करें और मेरे अपराधोंके लिये क्षमा कर दें।

× × ×

भारतवर्षमें तथा बाहर जितने भी ईश्वरोन्मुखी धर्म हैं तथा जिनमें किसी भी नामसे दैवी सम्पदाको प्रथम स्थान है, वे सभी धर्म शुभ हैं, उनमें फलकी दृष्टिसे कोई भेद नहीं मानना चाहिये। मेरा तो यह निश्चय है कि परमतत्त्व, सत्य, परमात्मा, भगवान् या आत्मा 'एक—अद्वितीय' है। वह नित्य अपने ही आपमें, अपनेसे ही लीलायमान है। जितने भी ईश्वरवादी दैवी-सम्पत्तिवान् धर्म हैं, सब विभिन्न दिशाओंसे तथा विभिन्न मार्गोंसे बहती हुई, एक ही समुद्रकी ओर जानेवाली विभिन्न नदियोंके समान भगवत्प्राप्तिके मार्गरूप हैं। विभिन्न धर्मों तथा विभिन्न आचार्यों-संतोंके तत्त्व-निरूपणमें जो भेद दिखायी देता है, वह तो अवश्यम्भावी है। आसामसे, पंजाबसे, दक्षिणसे और हिमालयसे काशी जानेवालोंके मार्ग, काशी एक होनेपर भी, एक-से नहीं हो सकते। इसी प्रकार जो महात्मा जिस मार्गसे तत्त्वधामके अन्तर्द्वारतक बुद्धिके द्वारा पहुँचे हैं, उनकी उन्हें वहाँ पहुँचाकर वापस लौटी हुई बुद्धि उनके नामसे उसी मार्गका वर्णन करेगी और अन्तर्द्वारको ही तत्त्व बताकर उसीका निरूपण करेगी। असलमें जहाँ तत्त्वकी उपलब्धि है, वहाँ तो न प्रश्न है न उत्तर है; कुछ भी बोलना-चालना नहीं है वहाँ। और जहाँ बोलना-चालना है, वहाँ तत्त्वकी उपलब्धि—तत्त्व-स्वरूपता नहीं है। अतएव तत्त्वका वर्णन तो होता ही नहीं, वर्णन होता है—साधन-मार्गका, और साधन-मार्गमें विविधता अवश्यम्भावी है। पहुँचे हुए सभी महात्माओंकी बुद्धि—चाहे वे किसी धर्म-सम्प्रदायके हों—सत्यका ही वर्णन करती है और वह सत्य वहींतक होता है, जहाँतक बुद्धि पहुँच पाती है, देख पाती है।

अतएव मैंने जहाँतक बना है, किसी भी मत-सम्प्रदायके महात्माओंका और उनकी दैवी-सम्पदायुक्त साधन-पद्धतिका कभी विरोध नहीं किया। मुझे ऐसा लगता है कि 'एक ही सत्य विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त है।' मैं यह चाहता हूँ कि मेरी इस मान्यता तथा उपलब्धिके भी लोग उत्तराधिकारी बनें और जो सच्चे मनसे बनना चाहते हैं, उन्हींको मैं यह उत्तराधिकार देता हूँ।

× × ×

पता नहीं, भगवान्‌की किस प्रेरणासे मेरे जीवनमें गरीब, अनाथ, विविध कष्टोंसे पीड़ित नर-नारियोंकी तथा गौ आदि पशु-जातिकी सेवाके सुअवसर प्राप्त होते रहे हैं—और उनमें अनायास ही अबतक इतनी अपार 'धनराशि'का उपयोग हुआ है, जिसकी संख्यापर विश्वास करना कठिन है। फिर आश्चर्य यह है कि बाढ़-अकाल आदि सार्वजनिक सेवाके कुछ कार्योंके अतिरिक्त कहीं किसी सेवाका विज्ञापन नहीं हुआ है और न ऐसे सेवाकार्यके लिये कभी किसीसे कुछ माँगा ही गया है। भगवान्‌की प्रेरणासे भगवान्‌की वस्तु भगवत्स्वरूप महानुभावों तथा देवियोंसे प्राप्त होती रही और भगवत्स्वरूप अभावग्रस्त नर-नारियोंकी सेवामें यथायोग्य लगती रही। मेरी अनुभूतिमें इसमें सभी दिशाओंमें केवल भगवान्‌की मङ्गलमयी प्रेरणाने काम किया। प्रत्येक सत्कर्ममें जरा भी अभिमान न करके उसका एकमात्र कारण मङ्गलमयी भगवत्प्रेरणाको ही मानना चाहिये। मैंने ऐसा मानने तथा अनुभव करनेकी चेष्टा की है। यही सभीको करना चाहिये।

× × ×

मेरी यह दृढ़ मान्यता तथा अनुभूति है कि अपने ही किये हुए कर्मोंके फल-स्वरूप अनिष्टकारक प्रारब्ध हुए बिना कोई किसीका अनिष्ट नहीं कर सकता, पर दूसरेका अनिष्ट करनेका विचार और कार्य करके वह स्वयं अपने नवीन 'पाप-कर्म'का कर्ता अवश्य बन जाता है। अतएव किसी भी प्राणीका किसी प्रकारसे भी कुछ भी अनिष्ट करनेकी बात न सोचनी चाहिये न वैसा कोई कार्य ही करना चाहिये। हाँ, दूसरेका हित-सुख-सम्पादन करनेका विचार तथा प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। वह 'हित-सुख-सम्पादन' भी होगा, उसके प्रारब्धके अनुसार ही। 'पर-हित-सुख-सम्पादन'का हमारा विचार तथा कार्य—हमें पुण्यकर्मका कर्ता बना देगा, जो हमारे लिये शुभ फलका उत्पादक होगा और यदि यही 'पर-हित-सुख-सम्पादन'का विचार और कार्य निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ या उनकी अर्चारूप होगा तो मानव-जीवनके एकमात्र उद्देश्य—'भगवत्प्राप्ति'में सहायक होगा।

कभी अपने किसी 'अनिष्ट'में दूसरे किसीका हाथ दिखायी दे तो दृढ़तासे यह समझना चाहिये कि हमारा 'अनिष्ट' हमारे अपने कर्मजनित प्रारब्धके सिवा दूसरा कोई भी, कभी भी कर नहीं सकता। जिसका हाथ दिखायी देता है, वह तो 'निमित्तमात्र' है और यदि उसने ऐसा किया है तो नया पापकर्म करके अपना ही अनिष्ट किया है; एवं जो अपना अनिष्ट करता है, वह पागल है। पागल सदा ही दयाका पात्र है। अतएव उसके लिये भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये कि भगवान् उसे 'क्षमा' कर दे। कभी उसका बदलेमें 'अनिष्ट' तो चाहे ही नहीं।

किसीको बिना ही जनाये उसका उपकार करना, उसको जनाकर करना, उसके घरवालोंको जनाकर करना, बहुतोंको बताकर करना अथवा विज्ञापन करके करना—सभी परोपकार उत्तम हैं तथा किसी भी रूपमें हों, उन्हें करना कर्तव्य है। पर इनमें एक-से-दूसरा नीचे दर्जेका है।

उपकार करके बदलेमें प्रशंसा चाहना, कृतज्ञता चाहना, समयपर बदलेमें उपकारकी आशा रखना, यश-कीर्ति चाहना, उपकारके अहसानसे दबाकर उससे मनमाना काम करवानेकी चाह करना, भगवान्से बदलेमें सुख चाहना, परलोकमें बदला चाहना—ये सब 'सकाम भाव' हैं। इनमें जो निर्दोष हों, वे सकाम भाव भी रहें तो भी 'उपकार' करना कर्तव्य है।

पर यह सब 'उपकार' है—'प्रेम' नहीं है। प्रेमी कुछ भी करके प्रेमास्पदका उपकार नहीं करता, वह तो अपने ही लिये अपना ही काम करता है। इससे प्रेमास्पद या किसीको जताने-बतलानेका तो प्रश्न ही नहीं उठता, वरं प्रेमीके मनमें कभी यह भी नहीं आता कि मेरा प्रेमास्पद यह जान भी ले कि मेरा प्रेमी मेरे दुःखसे दुःखी है। प्रेमी प्रेमास्पदके दुःखमें उसके सामने बैठकर रोता नहीं, दूसरोंके सामने भी अपनी मानसिक वेदनाको प्रकट नहीं करता। इसका अर्थ यह नहीं कि उसको वेदना कम होती है। बड़ी वेदना होती है, पर वह अपनी वेदनाका विज्ञापन तो करता ही नहीं, अपनी किसी भी चेष्टासे—भाव-भङ्गिमासे भी प्रेमास्पदपर यह असर भी नहीं डालना चाहता कि 'मेरा प्रेमी मेरे लिये इतना दुःखी है'; क्योंकि वह समझता है कि इससे भी प्रेमास्पदपर एक अहसानका भार पड़ेगा। अतएव वह चुपचाप जो कुछ भी अधिक-से-अधिक कर सकता है, करता है। जैसे अपने दुःख-निवारणके लिये कोई स्वाभाविक ही चेष्टा करता है, वैसे ही वह करता है। इतनेपर भी अपने दुःख-निवारणकी चेष्टामें और प्रियतमके दुःख-निवारणकी चेष्टामें एक महत्त्वका अन्तर रहता है। अपना दुःख तो मनुष्य सह भी लेता है, कभी-कभी उसकी उपेक्षा भी कर बैठता है, दूसरोंसे भी उसके निवारणकी आशा करता है; पर प्रियतम-का दुःख न तो वह सह सकता है, न उसकी उपेक्षा कर सकता है और न उसकी निवृत्तिके लिये दूसरोंकी ओर ही ताक सकता है। जो कुछ भी वह कर सकता है, तुरंत तथा पूर्णरूपमें करता है। ऐसे प्रेमीने ही वास्तवमें प्रेमका पाठ पढ़ा है। मुझे भी ऐसे एक-दो प्रेमी प्राप्त हैं, यह मेरे लिये आनन्दकी बात है। वास्तवमें जिनको प्रेमका सेवन करना हो, उन्हें ऐसा बनना चाहिये।

× × ×

वास्तवमें इस पाञ्चभौतिक शरीरसे अपने कर्मके अतिरिक्त, मेरे द्वारा कुछ 'विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी। जिनकी, जैसी जितनी योजना थी, उनकी कृपा तथा शक्तिसे उनका काम बहुत अंशमें पूरा हो गया, यद्यपि मैंने जितना चाहा था, जैसे चाहा था, वैसा नहीं हो पाया। यों तो जितने लोग मेरे सम्पर्कमें आये हैं, उनका कुछ-न-कुछ कल्याण तो अवश्य ही हुआ है और होगा; पर जिन लोगोंने मेरे द्वारा स्वार्थवश अनुचित कार्य करानेकी इच्छा तथा चेष्टा की, वे प्रायः वञ्चित ही रह गये। उनकी प्रगति तो रुक ही गयी, कई किसी अंशमें क्षतिग्रस्त भी हो गये। भगवान् उनका कल्याण करें।

यद्यपि जगत्के मङ्गलके लिये जो कुछ हुआ है, वह बहुत दूर-दूरतक हुआ है तथा उसका प्रभाव व्यापक और दीर्घकालतक रहेगा। 'वह क्या है, कैसा है'—यह न मैं पूरा जानता हूँ न जाननेकी इच्छा है। हाँ, इतना जानता हूँ कि वह प्रभुका कार्य है और महान् है।

मुझमें श्रद्धा-प्रीति-विश्वास रखनेवाले बहुत-से स्त्री-पुरुष हैं। उनमेंसे कई सर्वथा सच्चे हैं, उनको उनकी श्रद्धा, प्रीति, विश्वासके अनुसार भगवान् कल्याण-फल देंगे—निश्चित ही। पर जो लोग अपनेको ऐसा मानते

हुए या बतलाते हुए भी वास्तवमें श्रद्धा-प्रीति-विश्वासयुक्त हृदयसे भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम न चाहकर केवल भोगलिप्सा रखते हैं, उनको मिथ्या आचारके कारण भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी।

वस्तुतः मुझमें कुछ भी नहीं है। जो कुछ है, भगवान्में है। भगवान्के सम्पर्कको लेकर जो मेरे माध्यमसे भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम चाहते हैं, उनके अन्तःकरणकी सत्यताके फलस्वरूप भगवत्कृपासे उनकी प्रेम-कामना पूर्ण होगी। पर मेरे साथ उनका सम्बन्ध केवल भगवत्-सम्पर्कयुक्त ही होना चाहिये, किसी प्रकारकी लौकिकताका सम्मिश्रण उसमें नहीं होना चाहिये। इसलिये मैं इस बातको जानता हूँ कि मुझसे दूर-दूर रहनेवाले कई स्त्री-पुरुष मुझमें भगवत्सम्पर्कित निष्ठा रखनेके कारण भगवत्प्राप्तिके समीप पहुँच रहे हैं, और मेरे पास, सदा मेरे समीप रहनेवाले बहुत-से लोग भाव न रखनेके कारण आत्मवञ्चित हो रहे हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि पास रहनेवालोंमें सभी ऐसे हैं। कई ऐसे लोग हैं--जिनका नाम बताना वर्जित है, जिनको यथार्थ लाभ हो रहा है और होगा।

जो लोग मेरे पास रहकर भी मुझसे दूर-दूर रहते हैं, उनको कुछ भी हाथ नहीं लगता; वे विकृति ही देखते हैं; पर जो दूर रहकर भी अन्तरङ्ग रहते हैं, जिनका श्रद्धापूत हृदय भावसारूप्य पा लेता है, वे भीतरके बहुत कुछ रहस्योंको जान लेते हैं और सत्सङ्गका वस्तुतः उन्हींको लाभ प्राप्त होता है। मेरे जीवनमें भी ऐसे ही दोनों प्रकारके लोगोंसे सम्पर्क रहा है। मैं जिन्हें देना भी चाहता था, प्रयत्न भी मैंने किया था देनेका, हृदयसे परे रहनेके कारण वे कभी उसे ग्रहण नहीं कर सके; पर ऐसे लोग, जिनके लिये मेरी अपनी ओरसे कोई चेष्टा नहीं हुई, हृदयसे भावसारूप्य प्राप्तकर वे बहुत कुछ ले गये। अपनेको जगत्के सामने अपना जाहिर करनेवाले कोरे रह गये और जिनके विषयमें किसीको पता भी नहीं है कि उनसे मेरा कोई सम्पर्क है, वे पा गये। जो पा गये, वे अब भी पा रहे हैं और चूँकि उनका मार्ग मुक्त हो गया है, अतएव वे आगे भी यथाधिकार पाते रहेंगे। अतएव जबतक जीवन है, तबतक जिनको कुछ भी पानेकी इच्छा हो, उन्हें अन्तरङ्ग बननेकी--पास रहने, न रहनेको कोई महत्त्व न देकर--मेरे मनोनुकूल साधनामें नित्य प्रवृत्त रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे कम-से-कम उनका ग्रहणद्वार मुक्त हो जाय। नहीं तो उन्होंने अबतक जो विकृति देखी है, आगे भी वह विकृति ही देखते रहेंगे, उल्टे घाटेमें रहेंगे।

मेरे पास जितने लोग आये हैं--आते हैं--सभी कुछ-न-कुछ देने आते हैं और देकर जाते हैं। भक्ति, श्रद्धा, प्रेम, सद्भाव, शिक्षा, परामर्श, विनय, नम्रता, क्षमा, अहंकार मिटानेवाली दक्षता, दोष दिखानेवाली निन्दा, कर्तव्यका ज्ञान करानेवाली चेतावनी--जिनके पास जो कुछ होता है, दे जाते हैं। लाखों-लाखों नर-नारी ऐसे हैं, जो मेरे पास आये नहीं हैं, पर इसी प्रकारसे उन्होंने मुझको सदा दिया है और अनवरत दे रहे हैं। इसलिये मुझपर तो सभीका उपकार है और मैं सभीका कृतज्ञ हूँ। विभिन्न प्रकारके अनुकूल-प्रतिकूल भावोंको धारण करके आनेवाले सभी लोग एक बहुत बड़ा उपकार करते हैं, यह कि--'मधुर और भयानक सभी रूपोंमें--अनुकूलता और प्रतिकूलताकी पोशाकमें एक भगवान् ही आते हैं'--इस बातको मैं कभी न भूलूँ और राग-द्वेषसे बचकर सदा-सर्वदा हर रंग-रूपमें छिपे हुए उनको पहचान लूँ। इस दृष्टिसे भी सभी मेरे अत्यन्त आदरके पात्र हैं--सभी भगवत्स्वरूप हैं, मैं सभीका हृदयसे नमन करता हूँ। मैंने इस भावके पोषण तथा संवर्द्धनकी चेष्टा सदा की है और मैं चाहता हूँ, मेरे इस भावको मेरे उत्तराधिकारी ग्रहण करें।

× × ×

घरके तथा बाहरके उनलोगोंमें, जो केवल परमार्थ-साधनके उद्देश्यसे ही मेरे सम्पर्कमें आये हैं, दो प्रकारके नर-नारी हैं--

१. पूर्वजन्मसे साधनमें लगे हुए।

२. इस जन्ममें साधनमें लगनेवाले।

इनमें भी दो तरहके हैं—

१. पूर्वजन्ममें मेरे सम्पर्कमें आये हुए।

२. इस जन्ममें सम्पर्कमें आये हुए।

इस जन्ममें अथवा पूर्वजन्ममें मेरे सम्पर्कमें आये हुए लोग भी चार प्रकारके हैं—

१. केवल परमार्थ-साधनमें लगे हुए।

२. न्यूनाधिकरूपमें लौकिक वासनासे मिश्रित परमार्थ-साधनमें लगे हुए।

३. लौकिक वासनाकी प्रधानतावाले तथा

४. केवल लौकिक वासनावाले नाममात्रके साधक।

मैं सबका कल्याण चाहता हूँ, पर भगवान्‌के नियमानुसार उनको पूर्ण सफलता, आंशिक सफलता या असफलता मिलेगी—उनके भावानुसार ही।

केवल परमार्थ-साधनकी दृष्टिसे मेरे साथ भावसाम्य करके जो लोग मेरे अधिक सम्पर्कमें हैं, उनकी सफलता निश्चित है; पारमार्थिक सफलतामें समर्पणकी प्रधानता है। अनुकूल आचरण करनेमें अपनी जानमें शक्तिभर कमी न रक्खे—पर अपने पुरुषार्थका अभिमान कभी न करे। जिनको समर्पण किया है, सर्वतोभावसे उनकी कृपाका पूरा विश्वास रक्खे—सफलता निश्चित है। जो लोग इस स्तरपर हैं, उन्हें और भी बढ़ना चाहिये। जो इस स्तरसे कुछ नीचे हैं या बिल्कुल नहीं हैं—उन्हें शीघ्र प्रयत्न करके लगना चाहिये। जो लोग शुद्धभावसे अनुकूल सेवामें संलग्न हैं, उनका विशेष भार भगवान् वहन करते हैं। सत्सङ्गी साधकोंको निराश न होकर भगवान्‌की अहैतुकी कृपाके बलपर निरन्तर यथासाध्य भगवान्‌के अनुकूल कार्योंमें (यही साधन है) लगे रहकर यह विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌ने उनको अपना लिया है—सर्वथा स्वीकार कर लिया है।

× × ×

मेरे कुछ स्नेही सज्जन, जो मेरे प्रति श्रद्धा तथा सद्भाव रखते हैं, मेरी जीवनी लिखना चाहते हैं या लिख रहे हैं। जहाँतक उनका शुद्ध भाव है, मैं उसका आदर करता हूँ और उनके स्नेहके लिये कृतज्ञता प्रकट करता हूँ; परंतु उनसे मेरा अनुरोध है कि वे इसपर पुनः विचार करें।

प्रथम तो हाड़-मांसके पाञ्चभौतिक अनित्य 'शरीर' तथा उसके कल्पित 'नाम'की जीवनी लिखकर उसको सम्मान प्रदान करना—एक प्रकारसे प्रत्यक्ष ही 'नाम-पूजा' है, जो सर्वथा अवाञ्छनीय है। मैं उस श्रेणीका पुरुष तो हूँ नहीं, परंतु वास्तवमें आत्मस्थित कोई भी पुरुष इस मिथ्या नाम-रूपकी जीवनी तथा उसके महत्वका समर्थन नहीं करते।

दूसरे, लेखक जीवनको, यथार्थ रहस्यको, कार्यके प्रेरक विचारोंको—जो कर्त्ताके जीवनका सच्चा दर्शन कराते हैं—जानते नहीं। फिर, बाहरकी बातोंमें भी जीवनी-लेखक प्रायः उन्हीं बातोंका उल्लेख करते हैं, जिनसे उनका महत्त्व प्रकट होता है। उनकी भूलों तथा कमजोरियोंको छोड़ देते हैं या छिपा देते हैं; क्योंकि जीवनीके लेखकका उद्देश्य यथार्थ जीवन-चित्र उपस्थित करना नहीं, अपितु बड़े ही सद्भावसे उनके गुणोंका प्रचार-प्रसार करके अपनी श्रद्धा प्रकट करना और उन गुणोंके प्रचारद्वारा जगत्‌को लाभ पहुँचाना होता है। पर ऐसा करनेमें जीवनी एकाङ्गी होती है, सच्ची नहीं होती। और असत्यके आश्रयमें तो 'विकृति'की पूरी सम्भावना है ही। इसलिये भी जीवनी लिखनेका समर्थन नहीं किया जा सकता।

तीसरे, मेरा पाञ्चभौतिक शरीर सर्वथा प्राकृत तथा कर्मजनित होनेपर भी इसके द्वारा कुछ 'विशेष कार्य' करानेकी कोई दैवी प्रेरणा थी। उसको न तो मैं बतला सकता हूँ और न कोई लेखक जान ही सकता है। उस 'विशेष कार्य'को लेकर जीवनमें कब-कब, कैसे-कैसे, कौन-कौन-से विचार आये, कैसी-कैसी क्रियाएँ हुईं—यह लेखक नहीं जानते। न मैं ही उनको बता या लिख सकता हूँ। इस अवस्थामें कोई भी जीवनी-लेखक मेरी यथार्थ जीवनी नहीं लिख सकते। मेरे पाञ्चभौतिक 'शरीर तथा नाम'वाले जीवनमें साधारण लोगों-जैसी ही कम-

जोरियाँ हैं। अनेक अवाञ्छनीय चेष्टाएँ हुई हैं, होती हैं। उन्हें छिपाया जायगा तो जीवनी मिथ्या होगी और बताया जायगा तो वह जगत्के लिये और भी हानिकारक कार्य होगा। इसलिये जीवनी लिखकर उसके द्वारा मेरे प्रति सम्मान-प्रदर्शन करनेकी तथा जगत्को लाभ पहुँचानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये।

मेरा सच्चा सम्मान तथा मेरे द्वारा जगत्को लाभ पहुँचानेका साधन है—मेरे भावों, विचारों तथा सम्मति-उपदेशादिके अनुसार जीवनको संयम, त्याग, सेवा, विनय, अनवरत भगवच्चिन्तन, भगवत्-सम्बन्धी वार्तालाप तथा क्रिया-कलाप एवं प्रत्येक कार्यको भगवान्का स्मरण करते हुए (कर्म तथा भोगमें आसक्ति-कामना-ममता न रखते हुए) भगवान्की पूजाके लिये ही करना—इस प्रकारका जीवन बनाना, प्राणिमात्रमें भगवान्को देखकर सबका हित-सुख-सम्पादन करना तथा भगवत्सेवाका जीवन बनाना। यही मेरे भावोंका उत्तराधिकार है और यही मेरी सच्ची सेवा तथा सच्चा सम्मान है एवं इसे मेरे शरीर छूटनेपर ही क्यों, मेरे जीवनकालमें ही—मुझपर स्नेह-श्रद्धा करनेवाले—सभी भाई-बहिन करें। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी और उनका वास्तवमें कल्याण होगा।

× × ×

वास्तवमें निर्दोष आत्माकी दृष्टिमें निन्दा-स्तुतिका कोई अर्थ नहीं है, व्यावहारिक जगत्में इनका स्थान है। पर मनुष्यको निन्दासे सर्वथा लाभ उठाने तथा स्तुतिसे होनेवाले नुकसानसे बचनेकी चेष्टा करनी चाहिये। मैंने बार-बार निन्दाका आदर करके उससे लाभ उठानेकी चेष्टा की है और मेरा यह अनुभव है, निन्दा करने-वालोंमें ७०से ८० प्रतिशततक सच्चे होते हैं, और हमें लाभ पहुँचाते हैं। इसके विपरीत प्रायः २५से ४० प्रतिशत प्रशंसा करनेवाले अतिशयोक्तिपूर्ण एवं मिथ्या वचन बोलते हैं—कुछ जान-बूझकर किसी स्वार्थवश और कुछ भ्रान्त धारणाके कारण—और ये हमें नुकसान पहुँचाते हैं। यथार्थमें तो स्तुति-निन्दा, दोनोंमें ही हर्ष-विषादयुक्त होना अनुचित है, पर स्तुतिका अनादर करना चाहिये और निन्दाके शब्दोंपर गहराईसे ध्यान देकर अपनी त्रुटियोंको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। निन्दा करनेवालेका अनादर तो कभी करना ही नहीं चाहिये। मेरी इस मान्यता-को जो ग्रहण करना चाहें, वे ही इस मान्यताके उत्तराधिकारी हो सकते हैं और वे अनेक हो सकते हैं।

मेरे जीवनमें भी बहुत-सी कमजोरियाँ हैं। मुझसे अपराध बने हैं, उनके लिये मुझे पश्चात्ताप है। परंतु उनका उत्तराधिकारी मैं किसीको नहीं बनाना चाहता। मैं बड़े आग्रहसे सबसे यह अनुरोध करता हूँ—मेरी बुराइयोंकी नकल कभी कोई भी किसी भी हालतमें न करें। मेरे उन्हीं आचरणोंकी नकल करें, जो शास्त्रानुसार वास्तवमें कल्याणकारी हों; जो जरा भी गिरानेवाले हों, उनको किसी भी रूपमें तनिक भी स्वीकार न करें।

मेरे प्रिय चौपाई-दोहे-श्लोक

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
(मानस १।७।१)

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥
(मानस ७।११२ ख)

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
(मानस ४।३)

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥
(गीता ६।३१)

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥
(गीता ६ । ३२)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥
(गीता ६ । २९)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
(गीता ६ । ३०)

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥
(गीता ७ । १९)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
(गीता ७ । १४)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥
(गीता ११ । ५५)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
(गीता २ । ६४)

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥
(गीता २ । ६५)

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥
(गीता ३ । ३४)

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
(गीता ५ । २२)

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥'
(गीता ९ । ३३)

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥
(गीता ८ । १५)

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥
(भागवत १ । १८ । १३)

यावद् भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥
(भागवत ७। १४। ८)

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशोद्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥
(भागवत ११। २। ४१)

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड १९। ३५५-५६)

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥
(गरुडपुराण २। ३५। ५१)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
(गीता १८। ६५)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गीता १८। ६६)

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥
(गीता २। ५६)

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥
(गीता ५। २०)

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥
(गीता १२। १७)

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥
(ईशावास्योपनिषद् १)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
(ईशावास्योपनिषद् ६)

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥
(ईशावास्योपनिषद् ७)
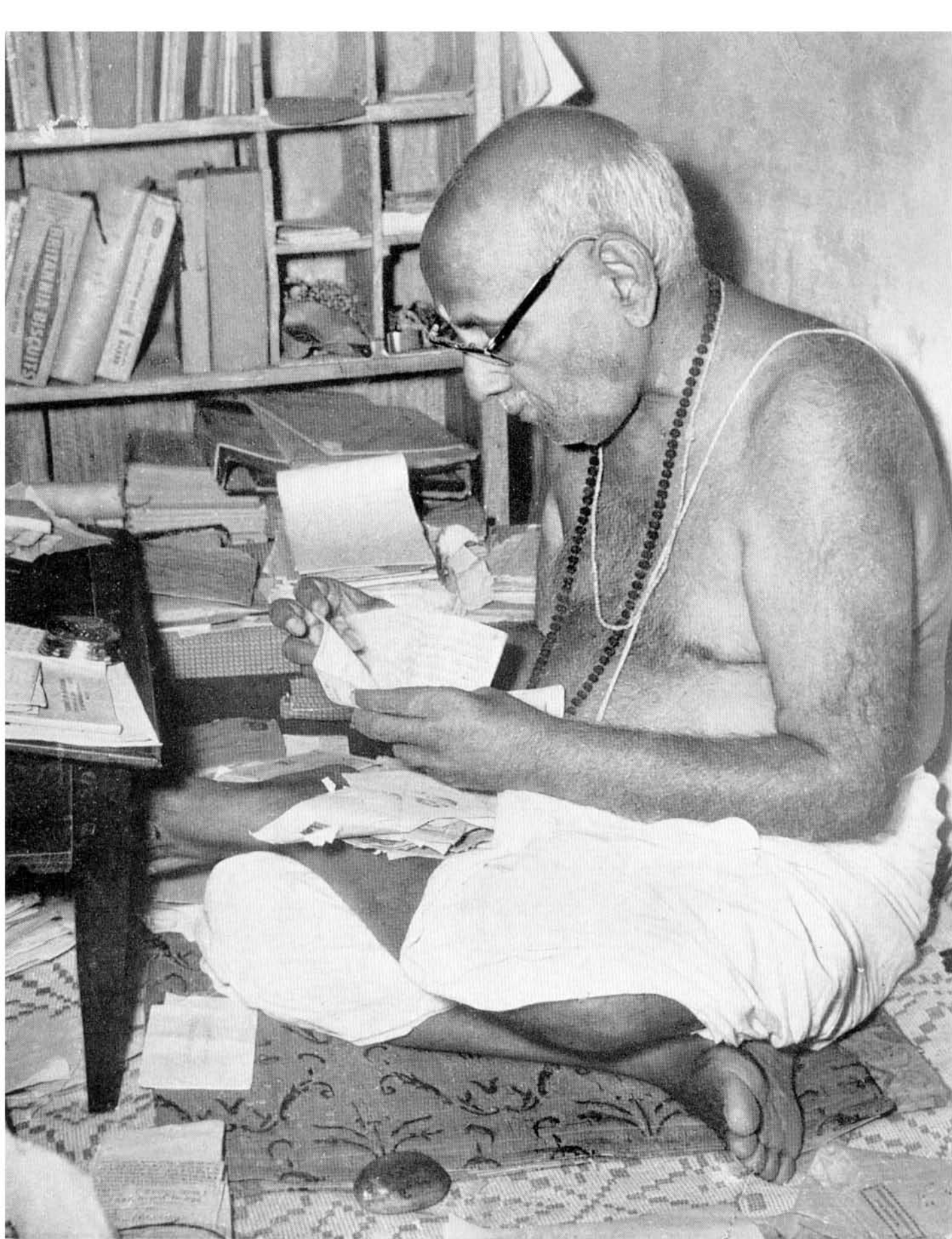
वे स्वयं ही एक संस्था थे

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥
(कठोपनिषद् २ । ३ । १४)

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥
(कठोपनिषद् १ । २ । २३)

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(गीता २ । ७१)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥
(गीता ५ । २९)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
(गीता ४ । ३९)

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु ।
होहु राम को, नाम जपु, 'तुलसी' तजि कुसमाजु ॥
'तुलसी' ममता राम सों, समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार ॥
(दोहावली)

[२०]

श्रीभाईजीका पावन कक्ष

जिस मठाकाशसे निस्सृत शब्दब्रह्मने सम्पूर्ण महाकाशको परिव्याप्त कर लिया है, जिस छोटे-से कक्षमेंसे प्रस्फुटित दिव्यवाणीको समग्र विश्वमें हिंदू-धर्म, संस्कृति तथा तत्त्वचिन्तनकी गरिमाको पुनः-प्रतिष्ठित करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, और जिस कमरेकी प्राचीरोंने क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने अंदर समाहित कर लिया है, वर्षोंतक प्रायः १८ घंटे प्रतिदिन साधनामें रत रहनेवाले कर्मयोगी, दिव्य भगवत्प्रेमकी रसधारा बहानेवाले प्रेमी भक्त एवं माँ भारतीके ज्ञानकोषको अक्षय बनानेवाले ज्ञान-वारिधिने जिस कक्षको धन्य बनाया है; जिसमें बैठकर संतप्रवर श्रीभाईजीने आर्तसेवा, लोक-व्यवहार तथा अन्यान्य क्षेत्रोंमें नवादर्शोंकी स्थापना की है; उसके साथ जुड़ी हुई स्मृतियोंकी अमर कहानी दीर्घकालतक कही-सुनी जायगी, यह निश्चित है।

सहस्रों व्यक्ति खिन्न, निराश, दुःखी प्राणियों एवं पापी-तापी जीवोंके रूपमें प्रविष्ट होकर, प्रफुल्ल, आशान्वित, सुखी एवं पुण्यात्मा बनकर जिस कक्षसे बाहर निकलते दिखायी देते थे; जिसमें श्रीभाईजीको अपने परमाराध्यके अगणित बार दर्शन हुए हैं, प्रेमालाप हुआ है; जहाँ वे प्रिया-प्रियतमकी रसमयी मधुर लीलाओंमें नित्य-निमज्जित रहते थे; उनके कई-कई दिवस और रात्रियाँ भाव-समाधिमें सहज ही व्यतीत हो जाया करती थीं; और जहाँ भाव-विह्वल अवस्थामें उनके अन्तरतमके भाव छन्दोबद्ध होकर अनायास ही फूट पड़ते थे, उस कक्षके भाग्यकी सराहना कौन करे ?

११'×१८'का यही सामान्य-सा कक्ष उनका कार्यालय, वाचनालय तथा पत्रालय था, और औषधालय भी। यही उनका विश्राम-कक्ष और यही स्वागतकक्ष था। पूजन-गृह और भोजन-गृह तो वह था ही। यदा-कदा सत्सङ्ग-भवन भी बन जाता था। यही था उनका कोषागार और यही शयनागार भी। इसी कक्षकी दीवारोंसे सटकर कतिपय भाग्यवान् उनकी मुख-माधुरी तथा मधुरस्मितका पान करते हुए अघाते नहीं थे। घंटों एकटक निहारनेके पश्चात् भी उन्हें सतत देखते रहनेकी प्यास बनी ही रहती थी। **'देखत-देखत जनम सिरानो, तऊ नैंन नित तरसत'**-जैसी स्थिति थी।

महाप्राण श्रीभाईजीके जीवनकी सांध्यवेलामें उनकी हृदय-विदारक शारीरिक स्थिति, प्राणहारी व्याधि एवं असह्य वेदनामें भी उनकी अखण्ड धीरता, विलक्षण शान्ति तथा सतत स्वरूप-स्थितिका दर्शन करनेका अवसर अन्य भग्न-हृदय अभागोंके साथ इन निर्जीव प्राचीरोंको ही सर्वाधिक प्राप्त हुआ है। और अन्ततोगत्वा इसी कक्षमें नित्यलीलालीन श्रीभाईजीने अपने नित्यधामकी ओर महाप्रस्थान भी किया। उस भाग्यवान् कक्षमें नित्य अवस्थित उन प्रेमपुञ्ज, करुणासागरके दिव्य परमाणु तथा उनकी शय्यापर विराजित उनकी छायामूर्तियाँ अशान्त, क्लान्त जीवोंको चिर-शान्तिका दान करती रहती हैं और भावी पीढ़ियोंको भी करती ही रहेंगी, उनकी मनोव्यथा हरती ही रहेंगी—इसमें संदेह नहीं है।

आज भी इस कक्षसे निस्सृत होनेवाली **'प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे'** की मङ्गमयी ध्वनि सुनने-वालोंको भावविभोर कर देती है। उनमें नवजीवन और नव-आशाओंका पुनःसंचार सहज ही हो उठता है। उस पावन कक्षको, उस कक्षकी पावन सामग्रीको, उसके निर्माणमें उपादानरूपसे प्रयुक्त पावन कण-कणको, पावन अणु-अणुको हमारा कोटि-कोटि नमन, कोटि-कोटि प्रणाम !

[२१]
नव-तीर्थस्थली गीतावाटिका

श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा

'गोधन' पत्र, जिसके सम्पादनका सौभाग्य मुझे प्राप्त है—'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति-अङ्क' प्रकाशित किया जा रहा था। स्मृति-अङ्कके लिये कुछ चित्र और लेख-सामग्री श्रद्धेय भाईजीके सहयोगियोंसे प्राप्त करनेकी दृष्टिसे मैं दिनाङ्क १२ जुलाई, १९७१को गोरखपुर पहुँचा। गोरखपुरकी यह मेरी प्रथम यात्रा थी। गीता-वाटिकामें प्रवेश करते ही ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं प्राचीन ऋषि-मुनियोंके किसी आश्रममें आ पहुँचा हूँ। गीता-वाटिकामें मैं तीन दिन रहा और वहाँके नैसर्गिक सौन्दर्य और वहाँके निवासियोंके त्याग, तप और साधनामय जीवनको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने श्रद्धेय श्रीभाईजीकी समाधिके दर्शन किये। जिस चबूतरेपर श्रीभाईजीका अन्तिम संस्कार हुआ था, वहीं उनके पार्थिव शरीरके अवशेष सुरक्षित रखे गये हैं और उन्हें एक सुन्दर पारदर्शी आवरणसे आच्छादित कर दिया गया है, ताकि वर्षा आदिका उनपर कोई प्रभाव न हो सके। मैंने पूज्य श्रीभाईजीके अवशेषोंके दर्शन करके उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। जब मैं श्रीभाईजीकी समाधिपर पुष्प अर्पित कर रहा था, तब मुझे ऐसा लगा कि श्रद्धेय श्रीभाईजी स्वयं उपस्थित होकर मेरी पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर रहे हैं—बड़े स्नेहके साथ मेरा अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं।

श्रद्धेय भाईजीकी ३५ वर्षकी दीर्घकालीन तपश्चर्या, ऋषि-मुनियोंकी तरह उनके सात्विक और समर्पित जीवन तथा सतत साधनासे गीतावाटिका एक तीर्थस्थल बन गयी है। वहाँ निवास करनेवाले श्रीभाईजीके सभी सहयोगी बड़े विद्वान्, सहृदय और समर्पित जीवनवाले महानुभाव हैं। श्रीभाईजीके स्नेहपूर्ण व्यवहारके कारण अनेक विद्वान् गीताप्रेस और 'कल्याण'के कार्यमें योगदान करते रहे हैं।

श्रीभाईजीके निधनके पश्चात् गीतावाटिका और भी दर्शनीय स्थल बन गयी है। यह हर्षकी बात है कि जिस तपोभूमिके कण-कणसे श्रीभाईजीका सम्पर्क रहा है, जिसके निर्माण और विकासमें उन्होंने मनोयोगपूर्वक योगदान किया, जहाँ बैठकर ३५ वर्षतक निरन्तर 'कल्याण' पत्रका सम्पादन करके देश-विदेशमें आध्यात्मिक ज्ञानकी धारा प्रवाहित की, वहीं श्रीभाईजीका महाप्रयाण हुआ और वहीं अन्त्येष्टि-संस्कार उनके दौहित्र श्रीसूर्यकान्त फोगला-द्वारा किया गया।

श्रीभाईजीका यों तो राष्ट्रव्यापी परिवार है, किंतु उनके पार्थिव शरीरसे सम्बन्धित परिवारमें उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामदेई बाई, सुपुत्री श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला, उसके पतिदेव तथा बच्चे हैं। श्रीभाईजीका यह छोटा-सा परिवार उनके पुनीत विचारों तथा संस्कारोंसे दीक्षित है। श्रीभाईजीकी धर्मपत्नी, जिन्हें सब 'माँ' कहकर सम्बोधित करते हैं, एक अत्यन्त सहृदया, धर्मनिष्ठ पतिपदपरायणा महिला-रत्न हैं। भाईजीके आध्यात्मिक,

सांस्कृतिक और सार्वजनिक जीवनके विकासमें पूजनीया माँका बहुत बड़ा योगदान है। माँकी तरह उनकी सुपुत्री श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला भी अपने पिता श्रीभाईजीकी उदात्त भावनाओं और प्रभुनिष्ठाकी प्रतिमूर्ति हैं। श्रीभाईजीके जीवनमें जो गरिमा और सद्गुण थे, वे श्रीमती सावित्रीदेवीमें पूर्णतया विकसित हुए हैं और यह बड़े सौभाग्यका विषय है कि श्रीमती सावित्रीदेवी एक सुयोग्य पितृनिष्ठ उत्तराधिकारी पुत्रकी भाँति श्रीभाईजीके उद्देश्यों और विचारोंके प्रचार तथा प्रसारमें संलग्न हैं।

गीतावाटिकामें हमें श्रीभाईजीके अनन्य सहयोगी और अभिन्न स्नेही स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराजके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य स्वामीजी बड़े तपोनिष्ठ, परम विद्वान् और अन्तर्मुखी विभूति हैं। अपने आरम्भिक जीवनमें आप स्वाधीनता-संग्रामके अग्रगण्य सेनानी रहे और इधर वर्षोंसे भाईजीके साथ साधना और प्रभुचिन्तनमें तल्लीन हैं।

श्रीभाईजीकी यह साधना-स्थली--गीतावाटिका चिरकालतक भाग्यशाली जीवोंको आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

[२२]

श्रीभाईजीकी जीवनधाराके सहायक स्रोत

डा० श्रीभगवतीप्रसाद सिंह

लोकवन्द्य भाईजीकी जागतिक लीलाका प्रकाश असंख्य तत्वों और व्यक्तियोंके माध्यमसे हुआ। उनकी जीवनयात्रामें समय-समयपर पूर्वसंस्कारोंकी प्रेरणासे कितने ही भाग्यवान् उनके सम्पर्कमें आये, उनके द्वारा आयोजित महानाटकमें अपना अंशदान किया और मञ्चसे तिरोहित हो गये; कितने ही पटाक्षेपतक अपनी भूमिका निभाते रहे। एक पूर्वनिश्चित योजनाके अनुसार अदृष्ट सूत्रधार इन सबको यथाशक्ति, यथासमय और यथास्थान भाईजी-की अर्चनाका अवसर प्रदानकर कृतार्थ करता रहा--अपने-अपने सेवाधिकारके क्रमसे। इनमें बड़े-छोटे, ऊँच-नीच, स्वजन-परिजन, दूर-निकटका कोई भेद नहीं था। भेदातीत व्यक्तित्वके संस्पर्शसे लोककी कल्पित और यथार्थ--सारी सीमाएँ स्वतः अपना अस्तित्व खो देती थीं।

भाईजी यों तो सर्वरसवैद्य थे, सर्वभाव-प्रपूरक रूपमें विख्यात थे, किंतु उनके जीवनमें विशेषतया दास्य, सख्य और माधुर्यकी तरंगें निरन्तर उच्छलित होती रहती थीं। उनके स्वरूपावेशके ये तीन मूल तत्व थे। कर्मयोग तथा भक्तियोगके क्षेत्रमें उनके सम्पर्क एवं सेवाका सुयोग पानेवाले कुछ महानुभावोंमें इन तत्वोंका विशेष विकास दिखायी पड़ा--वे एक प्रकारसे इनके मूर्त प्रतीक-से हो गये। उनके कार्यव्यापारसे ही नहीं, इङ्गित और चेष्टाओं-तकसे इन भावोंकी सतत अभिव्यक्ति होती रहती है। अनेक सम-विषम परिस्थितियोंकी कसौटीमें ये खरे उतरते रहे हैं। परीक्षा, ताप और संघर्षने इन्हें अद्भुत कान्ति प्रदान की। इनके जीवनका आदर्श ही बन गया--

'देवो भूत्वा यजेद्देवम्'

मेरी दृष्टिमें श्रीभाईजीके स्वरूपमें उक्त तीन प्रकारकी निष्ठाओंके प्रतिनिधि हैं--समर्पणमूर्ति माँजी, जनम-जनमके साथी राधाबाबा एवं सर्वात्मना अनुगत गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी और अनन्य सेवक श्रीरामसनेहीजी। भाईजीके जीवनमें इनका विशिष्ट स्थान है; इनके सम्बन्धमें स्वयं भाईजीको कदाचित् यह घोषणा करनेमें संकोच न होता--

'ये सब सखा सुनहु मुनि मोरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥'

अतः इनके सम्पर्क, सूत्र तथा भावासक्तिका किंचित् दिग्दर्शन अप्रासङ्गिक न होगा।

(१) समर्पणमूर्ति माँजी

श्रीभाईजीकी जीवन-जाह्नवीमें उनकी सङ्गिनी माँजीका व्यक्तित्व सरस्वतीकी भाँति विलीन है, उनका पृथक् अस्तित्व रहा ही नहीं, इसलिये उनपर अलगसे कुछ कहने या लिखनेका प्रश्न ही नहीं उठता। पतिकी जीवन-तरंगोंके साथ ही उनका आरोह-अवरोह होता रहा। क्रान्तिके झंझावातोंके थपेड़े वे मूकभावसे झेलती

रहीं, शिमलापालकी नजरबंदीमें पतिकी साधना तथा जनसेवामें सर्वात्मना सहयोग देती रहीं, बम्बईके व्यापारिक जीवनकी दैव-नियोजित असफलताओंके बीच सदा प्रसन्न रहकर आत्मदेवको अनवरत अविचल रहनेका अवसर देती रहीं और गोरखपुरमें जीवनके उत्तरकालकी यश, समृद्धि, मानादिकी अजस्र वर्षासे परिवारकी सँभाल जिस स्थितप्रज्ञतासे वे करती रहीं—वही भारतीय नारीका चिरंतन आदर्श है।

भाईजीके विश्व-बन्धुत्व, करुणाशीलता तथा शरणागत-वत्सलताके आदर्शको व्यवहारमें परिणत करनेमें माँजीका अपार योगदान रहा है। गीतावाटिकामें भाईजीका सांनिध्य प्राप्त करनेके लिये हजारों लोग आये; उनके साथ अपने व्यक्तिगत दुःख-सुख तथा गुण-अवगुणोंको लिये हुए कुटुम्बी एवं इतर जन भी आये। माँजीने उनकी निजी अयोग्यताओंकी ओर न देखकर उनको सदैव वात्सल्यभावसे अपनाया, उनके भौतिक अभावको दूर किया और सान्त्वना तथा स्नेहकी अविरल धारासे उनकी मानसिक चिन्ताओं एवं अन्तर्मलको धोया। उनकी ममतामयी मूर्ति तथा समताप्रेरित व्यवहारका स्मरण कर अल्प सम्पर्कमें आये महानुभाव भी भाव-विभोर हो जाते हैं। स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजका श्रीभाईजीके परिवारसे दीर्घकालसे सम्बन्ध रहा है; वे तो अपने प्रवचनों-में प्रसङ्ग-वश माँजीके असीम गुणोंका बखान करते नहीं अघाते।

माँजीके बाह्यरूपका यह आंशिक परिचय मात्र है; उनका आन्तरिक स्वरूप भाईजीके साथ एकाकार है—दुग्धमें धवलता तथा जलमें शीतलताकी भाँति। भाईजीका पावन-स्मरण इस दृष्टिसे उन्हींका स्मृत्यर्चन है—महर्षि वाल्मीकिने कहा था—

'कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्'

(२) स्वामी श्रीचक्रधरजी

स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराजका भाईजीसे बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भावका सम्बन्ध रहा है—इनमें कौन बिम्ब है, कौन प्रतिबिम्ब—कहा नहीं जा सकता। स्थिति-भेदसे दोनों ही दोनों भावोंका यथेच्छ आजीवन आस्वादन करते रहे—भावलोकमें ही नहीं, व्यावहारिक भूमिमें भी। इस सम्बन्धमें भाईजीके मुखसे समय-समयपर निकले अनेक उद्गार स्वतःप्रमाण हैं—

—'बाबाके लिये मैं क्या कहूँ? बाबा मेरे भक्त हैं—मैं बाबाका भक्त हूँ।'

—'मेरी तो सम्पत्ति बाबा ही हैं।'

—'बाबा ही तो हमारी पूँजी हैं, और पूँजी ही क्या है?

—'बाबासे मेरा जो कुछ सम्बन्ध है, उसे किन्हीं शब्दोंमें नहीं बतलाया जा सकता।.......उनकी स्थिति-क्या है, मैं नहीं बता सकता। इतना जानता हूँ कि वे महान् हैं और सर्वथा मेरे अपने हैं।'

इस महान् व्यक्तित्वका भाईजीसे सम्पर्क किस प्रकार हुआ, इसकी अपनी एक कहानी है।

बाबाका शरीर ग्राम–फरवरपुर (गया-बिहार)का है। परम्परागत वैदुष्यसम्पन्न 'मिश्र'-उपाधिधारी ब्राह्मण कुलमें इनका आविर्भाव पौष कृष्ण ९, संवत् १९६९को हुआ था। भाईजीकी भाँति आरम्भिक जीवनमें इनका भी उग्र राजनीतिसे सम्बन्ध रहा है। उसमें इन्हें सहसा उन्नतिशील अध्ययन-व्यवस्थाका परित्याग कर संवत् १९८७-८८में बंदी-जीवनकी असह्य यातनाएँ सहनी पड़ीं। कारागारसे मुक्त होनेके पश्चात् भगवान्की विशेष इच्छासे ये संन्यासी हो गये और बड़े ही विरक्तभावसे रहने लगे। कलकत्ताके फुटपाथोंपर भिखमंगों एवं कोढ़ियोंके बीच पड़े रहते थे। पीछे श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ ये बाँकुड़ामें रहने लगे। श्रीसेठजीने वर्षोंतक बड़े ही स्नेह-प्यारसे इन्हें रखा। उन दिनों ये निर्गुण-निर्विशेष तत्वके उपासक थे और श्रीसेठजी निर्गुण-निर्विशेष तत्वके पूर्ण ज्ञाता होते हुए भी सगुण-साकार तत्वका भी विवेचन किया करते थे। इन्हें वह रुचिकर नहीं होता था। श्रीसेठजीसे ये शास्त्रार्थ करने लग जाते। श्रीसेठजीने इन्हें शास्त्र-प्रमाणोंसे बहुत समझाया, पर ये उनके तर्कोंको स्वीकार नहीं कर पाये। श्रीसेठजीने कहा—'आप एक बार भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारसे मिल लें।' पर इन्होंने पोद्दारजीसे मिलनेकी अनिच्छा प्रकट की। किंतु विधिका विधान! श्रीसेठजी गोरखपुर आनेवाले थे। उन्होंने स्वामीजीसे कहा—'आप अमुक तिथितक गोरखपुर पहुँच जाइये, मैं भी वहाँ आता हूँ।' ये गोरखपुर

आ गये; पर किसी विशेष अड़चनके कारण श्रीसेठजी गोरखपुर नहीं पहुँच पाये। आश्विन पूर्णिमा सं० १९९३ को ये गोरखपुर आये। गीताप्रेस जानेपर पता चला कि श्रीसेठजी अभी नहीं पहुँचे हैं। इन्होंने पोद्दारजीका निवास-स्थान पूछा और प्रेसके कर्मचारियोंके निर्देशानुसार ये गीतावाटिका आये।

श्रीपोद्दारजीने स्वामीजीको देखते ही गद्‌गद भावसे आसनसे उठकर चरण-स्पर्श करके प्रणाम किया। श्रीभाईजीके चरण-स्पर्श करते ही स्वामीजीको ऐसी विचित्र अनुभूति हुई, जैसे 'विश्वका सम्पूर्ण व्रजरस उनके मानसमें उड़ेल दिया हो ?' उस दिन रास-पूर्णिमाका महापर्व था। अपने पूर्व जीवनमें कट्टर वेदान्ती होते हुए भी स्वामीजी रासेश्वरीके दिव्य आकर्षणसे अपने उपार्जित संस्कारोंका परिवर्त्तन रोक न पाये। आये थे योगी संन्यासी बनकर, हो गये चिरवियोगिनी राधाके अनुगत अविरल भक्त।

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

—की भक्ति-साहित्यके इतिहासमें महिमामयी पुष्टि एवं पुनरावृत्ति हो गयी।

इसके बाद स्वामीजीने गीतावाटिकामें ही पीछेकी ओर इमलीके पेड़के नीचे कुछ दिनोंतक वास किया। उन दिनों गीतावाटिकामें वर्षभरका अखण्ड संकीर्त्तन चल रहा था। आगन्तुकोंकी भीड़से साधनामें बाधा होते देखकर ये वहाँसे हटकर नगरके दूसरे छोरपर हनुमानगढ़ीके पास जाकर रहने लगे। यहाँ चार-पाँच महीने बिताकर श्रीसेठजीके अनुरोधसे उनके साथ चूरू (राजस्थान) गये और फिर गीताकी टीकाके कार्यसे श्रीसेठजीके सांनिध्यमें कुछ दिन बाँकुड़ामें बिताये।

इस बीच भगवत्कृपासे स्वामीजीको श्रीभाईजीके स्वरूप और उनसे अपने सम्बन्धका यथार्थ बोध हो गया। सन् १९३९में 'गोविन्द भवन' (कलकत्ता)में ये भाईजीसे मिले। श्रीभाईजीने स्वामीजीसे प्रस्ताव किया—'महाराज ! हम दोनों साथ-साथ इस भाँति रहें कि किसी प्रकारका भेद लक्षित न हो।' स्वामीजीने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और ११ मई १९३९से बाबाका 'क्षेत्र-संन्यास' लेकर श्रीपोद्दारजीके साथ अखण्डरूपसे वास करनेका महाव्रत आरम्भ हुआ।

श्रीभाईजीसे बाबाका जन्म-जन्मान्तरका रहस्यपूर्ण भाव-सम्बन्ध शनैः-शनैः व्यक्त होने लगा और कालान्तरमें वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि बाबा और भाईजी—दो शरीर एक प्राण हो गये। श्रीभाईजी और बाबा एक दिनके लिये भी कभी अलग नहीं हुए, सदा साथ रहे। श्रीभाईजीने बाबाके इस व्रतका आजीवन निर्वाह किया और उसे इस खूबी और खूबसूरतीके साथ निभाया कि लोकदृष्टि किंचित् अंशमें भी उनकी पृथक्ताका संधान नहीं कर पायी। श्रीभाईजीके लीलालीन हो जानेपर बाबाने उनके तथा अपने—दोनोंके उत्तरदायित्वका भार अपने कंधोंपर धारण कर रखा है—श्रीभाईजीकी समाधिके समीप स्थल-संन्यास लेकर।

बाबा अनेक भाषाओं—संस्कृत, हिंदी, बँगला, अंग्रेजीके प्रकाण्ड पण्डित हैं। उनका शास्त्र-ज्ञान अगाध है। संगीत-शास्त्रका भी उनको अच्छा ज्ञान है और उनकी वाणीमें भी बड़ा प्रवाह एवं आकर्षण है। श्रीभाईजीकी रुचिका अनुसरण करते हुए उन्होंने वर्षोंतक वाणीका पूर्ण संयम रखा और उन्हींकी प्रेरणासे 'श्रीकृष्णलीला-चिन्तन' नामसे श्रीकृष्णकी बाल एवं पौगण्ड लीलाओंका बड़ा ही मनोहर शब्द-चित्र प्रस्तुत किया, जो वर्षोंतक धारावाहिक रूपसे 'कल्याण'के साधारण अङ्कोंमें छपता रहा और अभी हालमें गीताप्रेससे पुस्तकरूपमें प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त उनके तीन और छोटे ग्रन्थ 'सत्सङ्ग-सुधा', 'प्रेम-सत्सङ्ग-सुधा-माला' और 'महाभागा व्रजदेवियाँ' नामसे गीताप्रेससे छप चुके हैं, जो प्रेमी साधकोंके लिये बड़े उपयोगी हैं।

परमश्रद्धेय गुरुदेव महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज बाबाकी साधनधाराके बड़े ही प्रशंसक हैं। मैं जब कभी उनसे मिला, या गीतावाटिकासे सम्बद्ध गोरखपुरका जब कभी कोई व्यक्ति उनके दर्शनोंके लिये उपस्थित हुआ, तब भाईजीके कुशलक्षेमके साथ ही वे बाबाके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें भी बड़े ही उल्लासके साथ जिज्ञासा व्यक्त करते रहे हैं। जबसे भाईजीका तिरोधान हुआ, वे बाबाके बारेमें सम्बद्ध लोगोंसे बराबर पूछते रहते हैं और यदा-कदा अपने कृपापात्रोंको उनके दर्शनकी प्रेरणा भी देते हैं।

श्रीभाईजीकी अन्तिम साध थी––"मेरा देहत्याग पहले हो जाय और मेरे बाद उनका (बाबाका) शरीर रहे, तब तो मैं चाहता ही हूँ, पहले भी चाहता हूँ कि उनका भीतरी-बाहरी स्वरूप एक-सा 'मूर्तिमान् अध्यात्म' हो। उनके रोम-रोमसे, उनके शरीरसे स्पर्श करके जानेवाले वायुसे लोगोंको अमोघ आध्यात्मिक प्रकाश मिले... .....एकमात्र भगवत्प्रेम ही छा जाय।" बाबाका वर्त्तमान जीवन सर्वप्रकारेण तद्भावभावित होकर श्रीभाईजीके इसी स्वप्नको साकार करनेकी दिशामें गतिशील है।

(३) गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी

वर्त्तमान 'कल्याण'-सम्पादक गोस्वामीजी बीकानेरकी सत्सङ्ग-गोष्ठियों (सं० १९८५)में भाईजीकी वाग्धारा एवं लोकोत्तर आध्यात्मिक व्यक्तित्वके दर्शनसे आकृष्ट होकर अनुगत हुए।

ये महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराजके छात्र रह चुके हैं। उन्हींके अन्तेवासीके रूपमें इन्होंने हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसीसे एम० ए० किया और फिर बीकानेर-राज्यमें उच्च पदपर नियुक्त हो गये। बीकानेरमें श्रीभाईजीका एक-ही-दो दिनोंका सांनिध्य इनके भावी जीवनका नियामक बन गया।

सं० १९९०में ये बीकानेर-राज्यकी नौकरी छोड़कर 'कल्याण'के सम्पादन-विभागमें कार्य करनेके लिये सपत्नीक गोरखपुर आ गये। और तबसे इन्होंने ममताके सारे बन्धनोंको समेटकर स्थायीरूपसे भाईजीके साथ दृढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। 'कल्याण-कल्पतरु'का विकास इन्हींके श्रम एवं तत्परतासे हुआ। भाईजीको 'कल्याण'के सम्पादनमें भी इनका अनवरत सहयोग प्राप्त हुआ।

इनकी अंग्रेजी, संस्कृत तथा हिंदी भाषाकी प्रकाण्ड विद्वत्ताका प्रसाद गीताप्रेसको अनेक रूपोंमें प्राप्त हुआ जैसे––श्रीसेठजीकी 'गीता-तत्त्वविवेचनी टीका', रामचरितमानस, श्रीमद्भागवत तथा वाल्मीकि-रामायण (लङ्का-काण्डतक) आदि ग्रन्थोंके प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद सरल, सुस्पष्ट तथा परिमार्जित भाषामें। श्रीभाईजीकी परम्पराका निर्वाह इनके द्वारा किस सीमातक सफल हो सकता है, 'श्रीरामाङ्क'का प्राकट्य इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

श्रीगोस्वामीजीके विषयमें अधिक लिखनेमें संकोच हो रहा है, कारण वे हमारे साथ इस ग्रन्थके सम्पादनमें हैं। उपर्युक्त पङ्क्तियाँ भी उनके हृदयको व्यथित करेंगी––यह मैं जानता हूँ, परंतु इनके लिये तो मैं सर्वथा विवश हूँ।

(४) 'दादा' श्रीरामस्नेही

अपने अनन्य सेवक श्रीरामस्नेहीको 'दादा'की उपाधि स्वयं भाईजीने दी थी और उसके अनन्य सम्बोधन-कर्त्ता भी वे ही थे।

श्रीस्नेहीने अपने आविर्भावसे कानपुर जिलेके एक कायस्थ परिवारको पवित्र किया था और संवत् १९९८ में ये श्रीभाईजीकी सेवामें आये तथा एकान्त सेवकके रूपमें उनके अन्तिम श्वासतक परिचर्यामें संलग्न रहे।

श्रीरामस्नेहीका सेवादर्श––लोकातीत है। भक्तिशास्त्रमें––पौराणिक कालमें दास्यभावनाके जिन भक्तोंकी चर्चा है और मध्यकालीन भक्ति-साहित्यमें उसके व्रती जिन संत-महापुरुषोंका उल्लेख मिलता है, उसके स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन सेव्यके चरणोंमें इनके आत्मलयी व्यक्तित्वके साक्षात्कारसे हो जाता है। रात-दिन भाईजीकी सब प्रकारकी टहलमें व्यस्त रहना––उनके संकेतों और कभी-कभी उनके अभावमें स्वानुभूतिजन्य प्रेरणासे ही आवश्यकताओंकी पूर्ति करना, अत्यन्त स्वल्पाहार और शीत-ताप-लज्जा-निवारणमात्रके लिये नितान्त आवश्यक मात्रामें सादे वस्त्र धारण करना, भाईजीके पास आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको उनकी ही भाँति समादर देना और उन्हींका प्रतीक मानना—श्रीरामस्नेहीका जीवन रहा है। सर्वदा प्रसन्नवदन, स्वल्प-सम्भाषी, एकोन्मुखी, चेतन जगत्के साथ अचेतनवत् असम्पृक्त श्रीरामस्नेही ही भाईजीकी सेवाके यथार्थ अधिकारी थे और हैं। उनका जीवनादर्श त्याग, श्रद्धा एवं सेवाकी दिव्य किरणोंके इस तर्कगुम्फित और ज्ञानमुग्ध युगके सहस्रों नर-नारियोंका आन्तर तम दूर कर सकता है।

●

पद्मपत्रमिवाम्भसा की सजीव-प्रतिमा

लोकाराधन

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे, तोये मन अभिमान न आणे रे ।।
सकल लोक माँ सहुने वंदे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच-काछ-मन निश्चळ राखे, धन-धन जननी तेनी रे ।।
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी, पर-स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे ।।
मोह-माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मन माँ रे।
राम नाम सुं ताळी लागी, सकल तीरथ तेना तन माँ रे ।।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम-क्रोध निर्वार्या रे।
भणे नरसैंयो, तेनु दरसन करताँ कुळ एकोतेर तार्या रे ।।

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

संतोंका लोकाराधन

'संत' शब्द संस्कृतके 'सत्' शब्दका बिगड़ा हुआ रूप है। 'सत्'का अर्थ है—'जिसका अभाव कभी न हो, जो सदा रहे'। गीतामें भी यही बात कही गयी है—'असत्' (जो है नहीं, जिसकी सत्ता ही नहीं है) तो कभी होता नहीं और 'सत्'का कभी अभाव (नाश) नहीं होता—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'** आत्मा अथवा परमात्मा ही 'सत्' है, कारण उसका कभी विनाश नहीं होता। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥ (२। १७)

'अविनाशी तत्व उस आत्माको ही जानो, जिसने इस सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त कर रखा है। इस आत्माका नाश कोई करना भी चाहे तो नहीं कर सकता।'

इसलिये गीतामें 'ब्रह्म' अथवा परमात्माका एक नाम ही 'सत्' कहा गया है—'**ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।**'—"'ओम्', 'तत्' और 'सत्'—ये तीन ब्रह्मके ही नाम हैं।"

यह ब्रह्म आकाशकी भाँति सूक्ष्म, अव्यक्त, अनन्त, असीम एवं सर्वव्यापक है। ऐसा कोई काल अथवा देश नहीं है, जहाँ परमात्मा न हों। वही आकाश जब किसी स्थूल आवरणसे आवृत हो जाता है, तब उसे भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। इसी प्रकार एक ही सर्वव्यापक आत्मा जब भिन्न-भिन्न शरीर और मन-बुद्धि आदिसे अपनेको परिच्छिन्न (सीमित) मान लेता है, तब उसकी 'जीव' संज्ञा हो जाती है; वस्तुदृष्टिसे है वह अपरिच्छिन्न आत्मा ही। जो जीव अपने इस आत्मस्वरूपको यथार्थरूपमें पहचानकर उसके साथ एक हो जाता है, अपनेको शरीर आदि जड उपाधियोंसे—जो उससे सर्वथा भिन्न हैं—अलग कर लेता है, उसीको 'संत' कहते हैं। 'सत्' नामके परमात्मासे अभिन्न हो जानेके कारण ही—उस व्यक्तिको संत (सत्) कहा जाता है। ऐसे संतका फिर कोई पृथक् अस्तित्व नहीं रह जाता। जैसे नदीका जल समुद्रमें मिल जानेपर समुद्र ही बन जाता है; अथवा जैसे घड़ेके फूट जानेपर घड़ेके अंदर रहनेवाला आकाश सर्वव्यापक आकाशसे एक हो जाता है, उसी प्रकार भगवत्प्राप्त जीव भी भगवत्स्वरूप ही हो जाता है। हम अज्ञानियोंकी दृष्टिमें ही उसका पृथक् अस्तित्व रहता है, वास्तवमें तो वह सर्वव्यापक सत्तामें विलीन हो जाता है। इसीलिये जीवमात्रमें वह अपनेको ही व्याप्त देखता है, सबके सुख-दुःख उसके अपने सुख-दुःख हो जाते हैं और उसके द्वारा किसीकी जो भी सेवा होती है, उसे वह अपनी ही सेवा समझता है। अपनी सेवा अपने हाथसे करनेपर अथवा स्वयं अपनेको सुख पहुँचानेपर क्या हम अभिमान करते हैं या अपनेपर अहसान करते हैं? इसी प्रकार संतके द्वारा की हुई जगत्‌की सेवा—प्राणिमात्रकी सेवा अपनी ही सेवा होती है। इसके लिये उसे प्रयास नहीं करना पड़ता—केवल इतनी ही बात नहीं है, 'मुझे अमुककी सेवा करनी है'—यह सोचना भी नहीं पड़ता। अपने अङ्गोंकी सेवाकी भाँति वह सर्वथा स्वाभाविक

होती है। अपने किसी अङ्गको मच्छर काटने लगे तो क्या हम सोचते हैं कि उसे उड़ा देना चाहिये ? हम चाहे जैसा भी आवश्यक कार्य कर रहे हों, हमारा हाथ अपने-आप उसे उड़ा देनेके लिये उठ जाता है। हमारे शरीरमें घाव [हो जानेपर जैसे हम अनायास ही उसकी मरहम-पट्टी करनेमें लग जाते हैं, भूख अथवा प्यास लगनेपर उस भूख अथवा प्यासको शान्त करनेकी स्वाभाविक ही चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार संतके द्वारा दूसरोंके दुःखको दूर करनेकी—जहाँ-कहीं अन्न-जलका अभाव अथवा कष्ट हो, वहाँ अन्न-जल पहुँचानेकी, व्याधिग्रस्त प्राणियोंके औषध, चिकित्सा आदिके द्वारा रोग-निवारणकी, बाढ़-अकाल-भूकम्प-महामारी-अग्निदाह आदि दैवी प्रकोपोंसे पीड़ित मानवों एवं पशुओं आदिकी सहायतामें जुट जानेकी स्वाभाविक ही प्रवृत्ति होती है। दूसरोंको सम्मान देनेकी, अपराध करनेवालोंको क्षमा कर देनेकी ही नहीं, अपितु अपकारके बदले उनको प्यार देने एवं सुख पहुँचानेकी चेष्टा भी उसके द्वारा स्वाभाविक ही होती है। इन सबके लिये उसे प्रयास नहीं करना पड़ता। इसलिये संतके अंदर गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णित दैवी गुणोंका स्वाभाविक ही विकास होता है; क्योंकि वह जो कुछ करता है, अपने लिये ही करता है; उसके लिये कोई 'दूसरा' होता ही नहीं। वह प्राणिमात्रके अंदर अपने आत्माका ही दर्शन करता है। और अपना अनिष्ट कोई कैसे करेगा, अपनेपर कोई कैसे आक्रोश करेगा। अपना अपमान, अपने प्रति असद्व्यवहार कोई कर ही नहीं सकता। संतके संतत्वका मूलस्रोत उसकी सबके प्रति आत्मदृष्टि ही है। यह आत्मदृष्टि जितनी दूरतक जिसकी हो चुकी है, उतनी दूरतक उसके अंदर संतोचित गुणोंका विकास होगा ही। जहाँ सूर्य है, वहाँ प्रकाश होगा ही; जहाँ अग्नि है, वहाँ उष्णता अपने-आप आयेगी ही; जहाँ बर्फ होगी, वहाँ ठंडक पहुँचेगी ही। अस्तु !

संतकी सर्वत्र वास्तविक आत्मदृष्टि हो जानेके कारण उसका अपने शरीरके साथ लगाव—आत्मबुद्धि सर्वथा नहीं रह जाती। इसीलिये वह कष्टसहिष्णु होता है, शीतोष्ण एवं सुख-दुःखमें उसकी समता हो जाती है, मानापमान उसके लिये कोई अर्थ नहीं रखते; उसके लिये शत्रु-मित्र समान हो जाते हैं, ऊँच-नीच कुछ नहीं रह जाता—'दुख-सुख सरिस प्रसंसा-गारी।' इसीलिये उसके काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि सारे विकार नष्ट हो जाते हैं। उसके लिये लोभनीय अथवा आकर्षणकी कोई वस्तु रह ही नहीं जाती। क्रोध करे तो वह किसपर करे ? उसकी दृष्टिमें प्रतिकूलता नामकी कोई वस्तु रहती ही नहीं। शरीरमें तादात्म्य —आत्मबुद्धि न रह जानेके कारण बड़े-बड़े बलिदान उसके लिये सहज-सुकर हो जाते हैं। भर्तृहरि राज्यका अनायास त्याग कर देते हैं। सूफी संत मंसूर हँसते हुए सूलीपर चढ़ जाते हैं, सुकरात हँसते हुए जहरका प्याला पी जाते हैं, महात्मा जड़भरत राजा रहूगणकी पालकी ढोना स्वीकार कर लेते हैं, राजा शिबि कबूतरकी रक्षाके लिये अपने शरीरका मांस कटवा देते हैं, दधीचि देवताओंकी रक्षाके लिये अपने शरीरके चमड़ेको जंगली गायोंसे चटवा देते हैं, राजा रन्तिदेव अड़तालीस दिनोंके उपवासके बाद प्राप्त हुए अन्न-जलका एक चण्डाल एवं उसके कुत्तोंके लिये परित्याग कर देते हैं, राजा हरिश्चन्द्र स्वप्नमें दिये हुए वचनकी रक्षाके लिये अपना राज्य त्याग देते हैं, चण्डालकी दासता स्वीकार करते हैं और अपने इकलौते पुत्रका दाह तबतक नहीं होने देते, जबतक अपनी पत्नीके शरीरका आधा वस्त्र नहीं उतरवा लेते। संतोंद्वारा ये सब बलिदान इसीलिये सम्भव होते हैं कि उनकी अपने शरीरमें अहंबुद्धि और उससे सम्बन्धित धन-जनके प्रति ममता नहीं रह जाती।

संतोंके मुख्यतया दो विभाग होते हैं––एक तो वे ज्ञानमार्गी संत, जिनकी सर्वत्र आत्मबुद्धि होती है, जो अपने अस्तित्वको सर्वव्यापक सत्तामें विलीन कर देते हैं, जिनका अपना कोई अस्तित्व नहीं रह जाता; दूसरे वे प्रेमी संत, जो अपने उपास्य भगवान्‌से पृथक् बने रहकर उनकी सेवाको ही परम साध्य मानते हैं, जो उनमें विलीन होना नहीं चाहते, अपितु उन **'रसो वै सः'**के आस्वादक ही बने रहना चाहते हैं। इन दूसरी कोटिके संतोंके बारेमें ही स्वयं भगवान्‌के ये वाक्य हैं––

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(श्रीमद्भागवत)

'मेरी प्रेममयी सेवाको छोड़कर मेरे प्रेमी भक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य––इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंको भी नहीं चाहते, मेरी सेवा ही चाहते हैं।' ऐसे भक्त अपने प्रभुको ही सर्वत्र व्याप्त देखते हैं और अपनेको उनसे अलग––उनका सेवक मानते हैं। इसीका नाम 'अनन्य भक्ति' है, जिसका वर्णन रामचरित-मानसमें स्वयं भगवान् रामने हनुमान्‌के प्रति इन शब्दोंमें किया है––

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

इस श्रेणीके संत जगत्‌को भगवद्‌रूप मानकर, अथवा यों कहें कि प्राणिमात्रको अपने इष्टदेवका स्वरूप मानकर, उनकी सेवा करते हैं। अपने आपकी तो कभी मनुष्य उपेक्षा अथवा अवहेलना भी कर देता है, परंतु अपने स्वामी, अपने जीवनसर्वस्व, अपने प्रियतम प्राणवल्लभकी क्या कोई कभी उपेक्षा कर सकता है? ऐसे भक्त-कोटिके––भगवत्प्रेमी संतोंके द्वारा जगत्‌की जो प्रेममयी सेवा होती है, उसकी कहीं तुलना नहीं है। श्रीभाईजी इसी कोटिके संत थे; इसीलिये उनके द्वारा अपने विश्वरूप प्रभुकी जो सेवा हुई है, वह अनुपम है, निराली है। यही है संतका लोकाराधन।

एक बात और है। ऐसे संत भगवान्‌के हाथके यन्त्र होते हैं। वे सर्वथा कर्तृत्वाभिमानशून्य होते हैं। कर्म जितने और जिसके द्वारा भी होते हैं, मन-बुद्धि-अहंकारसे प्रेरित होते हैं और ऐसे संतोंके मन-बुद्धि-अहंकार निश्शेषरूपसे भगवदर्पित हुए रहते हैं। गीतामें भक्तका लक्षण ही बताया गया है––**'मय्यर्पितमनोबुद्धिः।'** जिसके मन-बुद्धि-अहंकार सर्वथा भगवान्‌को अर्पित हो चुके––उनपर जिसका अपना कोई अधिकार नहीं रह गया, उसकी क्रियामात्र फिर भगवत्प्रेरित होती है; क्योंकि उसके पाञ्चभौतिक ढाँचेका चालक फिर भगवान्‌के अतिरिक्त कोई नहीं रह जाता। इसीलिये कहा जाता है कि ऐसे भगवान्‌के यन्त्र स्वयं भगवत्स्वरूप ही होते हैं। ऐसे लोगोंके लिये ही देवर्षि नारदने अपने भक्तिसूत्रमें कहा है––**'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।'** (भगवान्‌में और उनके भक्तमें कोई अन्तर नहीं रह जाता।) उनकी दृष्टि भगवन्मयी हो जाती है, उनके नेत्रोंसे भगवान् ही झाँकते हैं। उनकी वाणी भगवद्वाणी होती है। उनकी सारी इन्द्रियाँ भगवद्-रूप हो जाती हैं। इसीलिये भक्तिके परमादर्श श्रीगोपीजनोंके लिये स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके वचन हैं––**'ता मन्मनस्का मत्प्राणाः'**––श्रीगोपीजनोंका मन मेरा ही मन है, उनके प्राणोंमें भी मैं ही बसता हूँ, उनके रूपमें मैं ही साँस लेता हूँ। उनके कर्म भी भगवान्‌के ही कर्म होते हैं––**'मत्कर्मकृत्।'**

श्रीभाईजी ऐसे ही थे और इसी दृष्टिसे हमें उनके जीवन और कृतित्वको देखना चाहिये।

●

श्रीभाईजीकी सेवाका आदर्श

श्रीभाईजीकी सेवाभावना सर्वविदित है। सेवा उनका प्राण था, उनका जीवन था, उनका सहज स्वभाव था। श्रीभाईजीके पास अपना एक पैसा भी नहीं था, पर इन सेवा-कार्योंके लिये उन्हें कभी धनकी कमी नहीं रही। गोरखपुरके सेंट ऐंड्रूज कॉलेजके प्रिन्सिपल महोदय मिस्टर चाकोने एक बार अपने कॉलेजके महोत्सवमें श्रीभाईजीका परिचय देते हुए ईसाईधर्मके प्रमुख व्यक्तियोंके सामने कहा था––"श्रीभाईजीको सभी 'भाईजी'के नामसे पुकारते हैं। मैंने अपने अनुभवसे पाया कि वे सही अर्थोंमें सभीके 'भाईजी' हैं। उनकी आत्मीयता जाति, धर्म एवं देशकी सीमामें आबद्ध नहीं है, वह सबको सहज ही सुलभ है। उनके विचार एवं व्यवहारमें 'पर' कोई है ही नहीं। वे सबके 'भाईजी' हैं। दूसरे, श्रीभाईजीके पास अपना कुछ भी नहीं है, पर सेवा-कार्योंके लिये उन्हें कभी धनकी कमी अनुभव नहीं होती है—"He has no money, but be lacks no money." सचमुच श्रीभाईजीको सेवा-कार्योंके लिये कभी धनकी कमी अनुभव नहीं हुई। वे बराबर कहते थे––'सेवा करनेवालोंकी कमी है, धनकी नहीं। वह तो आयेगा ही ईश्वरकी कृपासे। पर सेवा होनी चाहिये सच्चे अर्थमें।'

देशके प्रायः सभी भागोंसे उनके पास प्रतिदिन अनेकों पत्र ऐसे व्यक्तियोंके आते थे, जो अपनी या अपने परिवारकी चिकित्साके लिये, बच्चोंकी परीक्षाकी फीस देने या पुस्तकें खरीदनेके लिये, अन्न-वस्त्रकी व्यवस्था करनेके लिये, कन्याके विवाहके लिये, अपनी गायोंके लिये अन्न-घासकी व्यवस्था करने आदि कार्योंके लिये उनसे आर्थिक सहयोगकी प्रार्थना करते थे। उन पत्रोंको श्रीभाईजी स्वयं पढ़ते और यथासाध्य सहायता भिजवानेका प्रयत्न करते थे––किसीको मनीआर्डरद्वारा, किसीको बीमाद्वारा। प्रतिदिन अनेकों व्यक्ति उनके यहाँ पधारकर अपनी माँग रखते थे और उनमेंसे एक भी खाली हाथ नहीं लौटता था। श्रीभाईजी सभीको कुछ-न-कुछ सेवा करके ही बिदा करते थे। इसके अतिरिक्त बाढ़, अकाल, भूकम्प आदि दैवी-प्रकोपोंके समय श्रीभाईजीके द्वारा देशके विभिन्न भागोंमें सेवाका बहुत अधिक कार्य हुआ है। उन सबका विवरण दिया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो जाय।

श्रीभाईजीकी यह सेवा इतनी सहज, शान्त एवं प्रच्छन्न रूपमें सम्पन्न होती रही है कि उनके परिवारके सदस्य एवं अत्यन्त निकटके स्वजन भी उसे जान नहीं पाते थे। 'दाहिना हाथ जो दे, उसे बायाँ हाथ न जान पाये'–– यह उक्ति श्रीभाईजीपर पूर्णरूपसे चरितार्थ होती है। इतना ही नहीं, जब कभी वे प्रत्यक्षमें किसीको कुछ देते थे, तब उनके मुखपर दैन्य, करुणा, कृतज्ञता, संकोच आदिके भाव इतने स्पष्ट होते थे कि सामनेवालेका हृदय उनके प्रति श्रद्धासे नत हो जाता था कि यह दाता भी कितना विचित्र है कि देते समय 'संकुचित' हो रहा है।

यह उदारतापूर्ण सेवावृत्ति श्रीभाईजीमें जीवनके आरम्भसे ही थी। जब वे व्यवसाय करते थे, तब भी उनका स्वभाव इसी प्रकार उदार एवं सेवामय था। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसकी सेवाओंमें लगनेके पश्चात् तो उनके शरीरका एक-एक कण तथा जीवनका एक-एक श्वास विश्वरूप प्रभुकी सेवामें नियोजित रहा। 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके प्रकाशनोंद्वारा वे ज्ञानका तो मुक्तहस्तसे वितरण करते ही थे, साथ ही वे भौतिक पदार्थों—साधनोंद्वारा 'आर्तनारायण'की सेवा करनेमें निरन्तर संलग्न रहे। अन्तिम बीमारीमें भी जबतक उनमें कुछ शक्ति रही, वे अपने

नाम आये अभावग्रस्त व्यक्तियोंके पत्र स्वयं पढ़ते-सुनते रहे और अपने स्वजनोंके द्वारा उन्हें सहायता भिजवाते रहे। यह क्रम १३ मार्च, सन् १९७१ तक चलता रहा। लगता है, उस दिन श्रीभाईजीको यह अनुभव हो गया था कि अब उनका शरीर भगवान्‌के विधानानुसार रहनेका नहीं है। और तब उनमें बोलने, ठीकसे संकेत करनेकी भी सामर्थ्य अवशेष नहीं रह गयी थी; अतएव उस रात्रिमें उन्होंने अपने सेवाके हिसाबकी सब कापियाँ नष्ट करवा दीं एवं जो धन-राशि अवशेष थी, उसकी वितरण-सूची लिखवा दी। इसके पश्चात् उन्होंने बड़े विनम्र शब्दोंमें—अपने परिवार एवं स्वजनोंको सेवाभावनाको अक्षुण्ण रूपमें अपनाये रखनेके लिये प्रेरित करते हुए अपने सेवा-आदर्शका स्वरूप संक्षेपमें बताया—

"गोरखपुर आनेके पश्चात् (सन् १९२७से) अर्थकी दृष्टिसे मैं निःस्व रहा हूँ—न मेरे पास अपना एक पैसा है, न कहीं कुछ जमा है, न मैंने कुछ कमाया है। गीताप्रेस, 'कल्याण' या अन्य किसी भी संस्थासे मेरा आर्थिक सम्बन्ध नहीं रहा है। न मैंने भेंट-पूजा-उपहारके रूपमें किसीसे भी एक पैसा कभी लिया है। अवश्य ही मेरेद्वारा विभिन्न संस्थाओंकी, भूकम्प, बाढ़, अकाल, अग्निदाह आदि दैवी प्रकोपोंसे पीड़ित प्राणियोंकी एवं विधवा बहनों-की सहायतामें प्रचुर अर्थ व्यय हुआ है—(कई करोड़ रुपये अबतक व्यय हो चुके होंगे); पर वस्तुतः उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। यह सब हुआ है, उन लोगोंके भाग्यसे और दाताओंके भगवत्प्रेरित या स्वेच्छाप्रेरित दानसे। इसके लिये भी किसीपर दबाव डालनेकी बात ही नहीं। मैंने न तो किसीसे माँगा है न अपील की है, वरं परिस्थितिवश कभी-कभी दानकी रकम पूरी-की-पूरी या अधूरी वापस कर दी है। जब 'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'का निर्माण हुआ और उसके लिये दानकी अपील प्रकाशित हुई, तब उसमें सब ट्रस्टियोंके साथ मेरा नाम भी प्रकाशित कर दिया गया। पर मैंने उसमेंसे अपना नाम निकलवा दिया और तब उन पत्रोंको भिजवाया। मैंने कभी अर्थके लिये की जानेवाली अपीलमें अपना नाम नहीं दिया है। इस प्रकारकी सहायताके लिये जो पैसे आते थे, उनमेंसे मैंने एक-एक पैसेका हिसाब रखा है; किसकी सेवामें वे पैसे लगे, यह भी बराबर लिखता रहा हूँ। तीन वर्षतक उस हिसाबको रखता था। तीन वर्षके पश्चात् उस हिसाबको नष्ट कर डालता था। कहाँसे पैसा आया, किस-किसको दिया गया—इसको मैंने यथासम्भव किसीपर प्रकट नहीं होने दिया। मनीआर्डर-बीमा जिन स्वजनोंकी मार्फत करवाता था, उन्हें भी यथासम्भव नाम-ज्ञान नहीं होने देता था। कारण, मैंने जिसको जो कुछ दिया है, वह भगवद्भावसे दिया है, वह मेरी अर्चाका एक स्वरूप रहा है। जिस कार्यके लिये जितने पैसे प्राप्त होते थे, उस कार्यमें उतने पैसे अवश्य लगा देता था। चेष्टा तो यह रखता था कि उसमें कुछ अपने पाससे भी सम्मिलित कर दूँ। मेरे पासका अर्थ है—मेरे ऐसे साथी, ऐसे स्वजन, जिनका मुझसे कोई अलगाव न रहा हो।"

श्रीभाईजीकी सेवाकी भावना इतनी प्रबल थी कि कभी पैसा पास नहीं होता तो वे अपनी पत्नीके गहनोंकी भी बिक्री कर डालते थे। नीचे श्रीमोहनलाल सारस्वत, रतनगढ़को लिखे गये एक व्यक्तिगत पत्रका कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है, जो इस बातका प्रमाण है—

श्रीहरिः

गोरखपुर
ज्येष्ठ बदी २, २०१०

प्रिय श्रीमोहनजी,

सादर सप्रेम हरिस्मरण।

आपका ता० २७-५-५३ का पत्र मिला। एक कार्ड जयपुरसे मिला था।······की पत्नीको १५) रु० मासिक देकर रसीद लेते रहियेगा।

श्री······की बाबत लिखा, सो ठीक है; मुझे स्वयं उनकी बड़ी चिन्ता है। उनकी बीमारीकी स्थिति सुनकर मैं और कुछ भी कर नहीं सकता; जो कुछ व्यवस्था हो सकी, उनको दे दिया तथा भविष्यमें (छः महीनेके लिये सोचकर) सौ रुपये प्रतिमास भेजनेकी बात उनसे कह दी है। पर आप जानते हैं, मैं तो सर्वथा अकिंचन हूँ। मेरे पास पैसा नहीं। दुनियाकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो गयी है कि पहले लोग अपनी इच्छासे अच्छे काममें पैसा लगानेको कहते थे; अब वह तो सर्वथा बंद हो गया—कहनेपर भी नहीं होता। मैं बम्बईसे काम छोड़कर इसीलिये आया था कि एक पैसा भी कमाऊँगा नहीं, पैसेका सम्बन्ध किसीसे रखूँगा नहीं, गरीबीसे रहूँगा। लगभग २० वर्षोंतक ऐसा निभ गया। उसके बाद मायाके चक्करमें फँसा। पैसोंका सम्बन्ध होने लगा—चाहे परोपकारके लिये ही हो; परंतु किसीसे माँगा नहीं। इधर दो-तीन वर्षोंसे मित्रोंके, अभावग्रस्तों-के आग्रहसे लोगोंसे कहनेका कुछ काम पड़ा। बड़ा कटु अनुभव हुआ। मनमें ग्लानि हो गयी। कहनेपर काम नहीं हुआ। यदि कुछ हुआ तो बड़े भारी अहसान तथा ऋणका बोझ उठाकर। मित्र लोग, तथा जिनके अभाव है, वे इस बातको कैसे समझें। मैं बहुत असमञ्जसमें पड़ जाता हूँ। श्री·········को कह तो दिया, पर मेरे पास एक पैसा भी नहीं। प्रेसकी रोकड़से—उचंतमेंसे लेकर उनको रुपये दे दिये, पर अभीतक वे वापस नहीं किये जा सके। पिछले दिनों एक सज्जनको ६००) रुपये देने थे—सहायतामें। कहीं प्रबन्ध नहीं हुआ—सावित्रीकी माँका एक गहना बेच कर दिया। यह स्थिति है। कैसे लेता-देता हूँ, इसीसे आप अनुमान कर सकते हैं। किससे कहूँ? लाभ भी क्या है? इसीसे श्री·········को पत्र नहीं दिया। उनके दो पत्र आये—एक पहले आया था, दूसरा आज आया। आप उन्हें मेरे नाम लिखकर एक सौ रुपया दे दीजियेगा।

उन्होंने रु० २८७) अंदाज ऋणके लिखे हैं, मासिक खर्चके भी १५०) अंदाज बतलाये हैं और ठंडी जगह जानेकी बात लिखी है। बातें तीनों ही ठीक हैं, पर मैं उन्हें क्या लिखूं? मेरे पास कोई व्यवस्था नहीं है। १००) रु० महीना तो छः महीनेतक मैं किसी प्रकार भेजता रहूँगा, पर इससे अधिक कुछ भी करनेकी मेरी परिस्थिति नहीं है। उनके ऋणके रुपये मैं शीघ्र भेज दूँ—ऐसी मेरी बड़ी इच्छा है; पर जबतक व्यवस्था न हो, तबतक मैं क्या लिखूं?..........उनकी बाहर जानेकी बाबत भी मैं क्या लिखूं? उनके शरीरपर बुरा असर न पड़े, इसलिये उनको न लिखकर ये समाचार मैंने आपको लिखे हैं। आप इनका सारांश स्पष्ट उन्हें बता दीजिये। मैं हृदयसे उनकी सेवा करना चाहता हूँ; पर कर सकूँगा तभी, जब भगवान् चाहेंगे। उनको मैं अभी पत्र नहीं लिख रहा हूँ।

आपका भाई,
हनुमान

यह है श्रीभाईजीकी सेवाका आदर्श! सेवाको श्रीभाईजी मानवमात्रके लिये श्वास-प्रश्वासकी भाँति अनिवार्य मानते थे। सेवाकी अनिवार्यता एवं स्वरूपका विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा है—

"जिसके पास जो कुछ है, वह सब-का-सब 'परार्थ' है, सबका मिला हुआ—सम्मिलित धन है, उसमें सबका भाग है, वह सबका है, उसका नहीं है। जहाँ-जहाँ उसकी आवश्यकता हो, वहाँ-वहाँ सम्मान, श्रद्धा, सद्भाव, उदारता, सदाशयता एवं समादरके साथ उसका उपयोग करना कर्त्तव्य है।"

गीताप्रेसके विकासमें योगदान

गोरखपुरमें गीताप्रेसकी स्थापनाका मूल उद्देश्य गीतोपदिष्ट तत्त्वज्ञानका संदेश भारतके कोने-कोनेमें पहुँचाना था। इसके आदि प्रवर्त्तक थे श्रद्धेय सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका। वे स्वयं तत्त्वज्ञानी महापुरुष थे—गीता-अनुशीलनमें उनका समस्त साधनापूर्ण जीवन व्यतीत हुआ था। उनको दिव्य आत्मप्रकाशकी प्राप्ति भी इसी माध्यमसे हुई। श्रीसेठजीकी यह आन्तरिक अभिलाषा थी कि उनके द्वारा उपार्जित इस अपौरुषेय ज्ञानका व्यापक प्रसार हो।

गीताका स्वाध्याय करते हुए जब वे गीताके १८वें अध्यायमें पहुँचे, तब उन्हें गीताके उपसंहार-प्रकरणमें भगवान्‌की घोषणाके ये दो श्लोक मिले—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(गीता १८।६८-६९)

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको प्राप्त होगा—इसमें कोई संदेह नहीं है। उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है, तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई होगा भी नहीं।'

बस, श्रीसेठजीके हृदयमें भगवान्‌की वाणी गूँजने लगी। उन्हें अपने जीवनकी साधना मिल गयी। 'जो परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा'—भगवान्‌की इस आज्ञाके पालनके लिये यह आवश्यक हो गया कि पहले स्वयं उस शास्त्रके मर्मको हृदयंगम किया जाय। श्रीसेठजीने गीताके अर्थ और भावोंको समझनेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

गीताका पाठ, चिन्तन और मनन करते हुए सेठजीको विचित्र अर्थ उद्भासित होने लगे, जिनका प्रकाशन उनके सत्सङ्ग और प्रवचन-गोष्ठियोंमें शनैः-शनैः होने लगा। गीता अब उनके जीवनसूत्रकी संचालिका बन गयी और वे सर्वात्मना उसीमें तल्लीन रहने लगे। देखते-देखते वह स्थिति आ गयी, जब उनकी इच्छा महदिच्छामें परिणत होकर इस महावाणीके रूपमें स्पष्टतः सुनायी देने लगी—'मेरी वाणी गीताका प्रचार करो।' फिर तो श्रीसेठजीके लिये गीताका प्रचार भगवत्कार्य हो गया और अपने धर्मनिष्ठ स्वभावके अनुसार उन्होंने उसे इतनी गम्भीरतासे ग्रहण किया कि इस कार्यको व्यावहारिक रूप देनेमें वे प्राणपणसे जुट गये। उनका अपना व्यक्तित्व तो गीतामय था ही, उन्होंने अपनी सीमित शक्ति और साधनोंके अनुसार मानवताके एक बृहदंशको उसी साँचेमें ढालनेका संकल्प किया। गीताप्रेसकी स्थापना इसी संकल्पको पूरा करनेके उद्देश्यसे हुई। यह योजना किन सोपानोंको पार करते हुए वर्त्तमान स्थितितक पहुँची, इसकी कहानी बड़ी रोचक है। संक्षेपमें वह इस प्रकार है—

सेठजीके पास गीताकी पदच्छेद-अन्वयसहित एक पुस्तक थी, वह नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे प्रकाशित हुई थी और उसके टीकाकार थे श्रीजालिमसिंहजी। आरम्भमें सेठजीका प्रवचन उसी पुस्तकके पाठपर आधारित होता था। श्लोकोंकी व्याख्या तथा तत्त्वनिरूपण वे अपने ढंगसे करते थे। सत्सङ्गियोंको श्रीसेठजीद्वारा की गयी व्याख्या रुचिकर लगी और उनके आग्रहपर श्रीसेठजीने उसे लिखवाकर 'वणिक् प्रेस', कलकत्तासे पुस्तकाकार छपवा दिया।

पुस्तकके छप जानेपर उसमें छपाईकी प्रचुर भूलें देखकर उन्हें बड़ा खेद हुआ। उनके मनमें आया कि इस दोषसे बचनेके लिये अपना प्रेस होना आवश्यक है। श्रीघनश्यामदासजी जालान श्रीसेठजीके अनन्य श्रद्धालु भक्तोंमेंसे थे। श्रीघनश्यामदासजी जालानने श्रीसेठजीकी इच्छा-पूर्तिमें सहयोग देनेके उद्देश्यसे प्रस्ताव किया कि 'यदि यह प्रेस गोरखपुरमें खोल दिया जाय तो मैं उसकी व्यवस्था देख लूँगा।' निदान गोरखपुरमें प्रेस खोलना निश्चित हो गया। साथ ही यह भी तय हुआ कि यह प्रेस श्रीसेठजीद्वारा स्थापित कलकत्ताकी प्रसिद्ध समाजसेवी संस्था 'गोविन्द-भवन-कार्यालय'के तत्त्वावधानमें संचालित होगा और इस मुद्रणालयका नाम होगा—'गीताप्रेस।'

गोरखपुर लौटकर श्रीघनश्यामदासजी इस विचारको व्यावहारिक धरातलपर लानेमें संलग्न हो गये। उन्होंने प्रेसके लिये उर्दू (अब हिंदी) बाजारमें दस रुपये मासिक किरायेपर एक छोटा-सा मकान लिया। प्रारम्भमें पाँच रुपये मासिक वेतनपर गाँव-गाँव जाकर गीताकी पुस्तक बेचने और उसका प्रचार करनेके लिये एक ब्राह्मण देवताकी नियुक्ति हुई, जिनका नाम था पं० श्रीसभापतिजी मिश्र। वे गाँवोंके मन्दिरों, विद्यालयों और संस्कृत-पाठशालाओंमें घूम-घूमकर गीता-प्रचार करते थे। श्रीघनश्यामदासजी जालानने व्यवस्था कर दी थी कि 'जो भी विद्यार्थी गीताका एक अध्याय कण्ठस्थ करके सुना देगा, उसे आठ आनेका पुरस्कार दिया जायगा।' उन दिनों आठ आनेका आजके दस रुपयेसे भी अधिक महत्त्व था; वह भी गाँवके विद्यार्थियोंके लिये, जिन्हें एक पैसा भी कठिनाईसे ही कभी मिलता था। इस प्रकार पुरस्कारके प्रलोभनसे भी छोटे विद्यार्थी गीता कण्ठ करते थे। इस गीता-प्रचारके लिये गीताकी पुस्तकें कलकत्तासे मँगायी जाती थीं।

मकान किरायेपर लेनेके पश्चात् २९ अप्रैल १९२३ (वैशाख शुक्ल १३, सं० १९८०) को उसके एक कमरेमें प्रेसका शुभारम्भ हुआ, जिसका नाम रखा गया—गीताप्रेस। २४ सितम्बर १९२३को ६००) रुपयेमें छपाईकी मशीन खरीदी गयी और कलकत्तासे टाइप तथा टाइपकेस आदि आ गये। छपाईका काम प्रारम्भ हो गया। कुछ ही दिनोंमें यह अनुभव हुआ कि हैंडप्रेससे कुशलतापूर्वक और अच्छी छपाई सम्भव नहीं है। इसके लिये कम्पोजिंग-विभागसे कम्पोज करवाकर रायगंज मोहल्लेमें स्थित 'भारत प्रिंटिंग प्रेस'से छपाईका काम करवाया जाने लगा। वह व्यवस्था भी संतोषजनक प्रतीत नहीं हुई। अतः अक्तूबर १९२३ ई० को २,००० रुपयेमें एक ट्रेडिल मशीन खरीदी गयी। इसे उर्दू बाजारवाले पुराने कमरेमें ही बैठाया गया। अब कम्पोजिंग और छपाई साथ-साथ होने लगी। किंतु कार्य-प्रसार तीव्रगतिसे होता जा रहा था। अतः इस व्यवस्थामें भी न्यूनताका अनुभव हुआ और उसे दूर करनेके लिये जनवरी १९२४ ई० को एक बड़ी मशीन खरीद ली गयी। इसी अवधिमें तीन पुस्तिकाओंका प्रकाशन हुआ—(१) त्यागसे भगवत्प्राप्ति, (२) गजल-गीता और (३) प्रेमभक्ति-प्रकाश।

भगवान्‌की इच्छासे कार्यका निरन्तर विस्तार होता गया और जुलाई १९२६में हिंदी बाजारसे गीताप्रेस अपने वर्तमान स्थानमें स्थानान्तरित हो गया। अगस्त १९२७में श्रीभाईजी बम्बई छोड़कर गोरखपुर आ गये तथा 'कल्याण'का प्रकाशन गीताप्रेससे आरम्भ हो गया। बस, गीताप्रेसका कार्य-विस्तार होने लगा और बढ़ते-बढ़ते आज उसने एक विशाल मुद्रणालयका रूप ले लिया है। लगभग २ दर्जन बृहदाकार स्वयं-चालित मशीनोंद्वारा प्रतिदिन लाखों ताव (पेपर शीट) मुद्रित हो रहे हैं। सन् १९७०में ८,२३,५६,०२५ इम्प्रेशन्स हुए थे। इससे उसके विशाल कार्यका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। आज लगभग पौने छः सौ पुस्तकें विभिन्न आकार-प्रकारोंमें मुद्रित होकर देश-विदेशमें भगवद्भाव एवं दैवी-सम्पदाका प्रचार-प्रसार कर रही हैं। गीताप्रेसद्वारा अबतक कितना विपुल साहित्य प्रकाशित हो चुका है, उसके आँकड़े आगे दिये जा रहे हैं। गीताप्रेसकी पुस्तकोंकी प्रामाणिकता, शुद्धता, सरलता, आकर्षक-रूप आदिका परिचय जन-जनको है। अतः उसके सम्बन्धमें क्या कहा जाय। पुस्तकोंकी भाँति गीताप्रेसने भगवान्‌के विभिन्न स्वरूपों एवं देवी-देवताओंके हजारों प्रकारके रंगीन चित्र प्रकाशित किये हैं, जिनके माध्यमसे लोगोंको अपनी उपासनामें बड़ी सहायता प्राप्त हुई है।

गीताप्रेसके इस विपुल सत्साहित्यके निर्माण, प्रकाशनमें श्रीभाईजीकी साधना, आध्यात्मिक स्थिति, ऋषि-जीवन, सूझ-बूझ, लेखन-शक्ति, सम्पादन-प्रतिभा, व्यवहार-कुशलता, विद्वानों-महात्माओंके प्रति भक्तिभावकी ही देन

है। समूचे साहित्यकी प्रत्येक पङ्क्ति, प्रत्येक शब्द श्रीभाईजीके दृष्टि-पथसे निकला है। प्रत्येक चित्र उनकी भावना एवं अनुभूतिका प्रसाद है। वस्तुत: गीताप्रेस एवं श्रीभाईजी पर्याय हैं।

गीताप्रेसके विकासमें श्रीघनश्यामदासजी जालानका भी विशेष योगदान था। गीताप्रेसके संचालन एवं व्यवस्थाके साथ उनका इतना तादात्म्य हो गया था कि मानो वे मूर्तिमान् गीताप्रेस थे। गीताप्रेसके छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े कार्यसे आपका शरीरके अवयवों तथा क्रियाओंके सदृश अभिन्न क्रियात्मक सम्बन्ध था। श्रद्धेय श्रीसेठजीके प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी; उन्हींकी पावन संनिधिमें ज्येष्ठ शुक्ला ६, सं० २०१५ को स्वर्गाश्रममें पवित्र गङ्गातटपर आप भगवान्के चरणोंमें समर्पित हो गये।

श्रीभाईजीके महाप्रयाणतक अर्थात् ३१ मार्च, १९७१तक गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा प्रकाशित साहित्य

हिंदी-संस्कृत

(१) श्रीमद्भगवद्गीता	१,४६,७०,८००
(२) श्रीरामचरितमानस	९२,५८,४५०
(३) अन्य रामायण	२,१४,५००
(४) महाभारत	२,२५,०००
(५) श्रीमद्भागवतपुराण	४,६५,२५०
(६) उपनिषद्	५,७१,४९०
(७) नारद-भक्तिसूत्र	६,८७,२५०
(८) स्तोत्रादि	३१,६७,२५०
(९) सूर-साहित्य	१,३५,०००
(१०) मानसेतर तुलसी-साहित्य	३९,६०,०००
(११) श्रीमद्भगवद्गीता-सम्बधी साहित्य	८,२३,५००
(१२) तुलसी-सम्बन्धी साहित्य	७,३९,२००
(१३) अन्य पुराण	३२,२५०
(१४) व्रज-रस-साहित्य	३,१२,२५०
(१५) संत-चरित	२५,५०,८५०
(१६) संत-वाणी	७४,७७,०००
(१७) महिलोपयोगी साहित्य	२९,९३,५००
(१८) बालोपयोगी साहित्य	३,९८,१३,२५०
(१९) प्रकीर्ण	१,७२,०६,८५०
	१०,५३,०३,६४०

अंग्रेजीमें प्रकाशित साहित्य

(१) श्रीमद्भगवद्गीता	७,४१,२५०
(२) श्रीरामचरितमानस	५,०००
(३) वाल्मीकि-रामायण—खण्ड—१	२,०००
खण्ड—२	२,०००
(४) प्रकीर्ण	८,८१,५००
	१६,३१,७५०
महायोग—	१०,६९,३५,३९०

●

'कल्याण'का जन्म और विकास

भाईजीकी जीवन-व्यापिनी साधनाके व्यक्त-प्रतीक 'कल्याण' मासिक पत्रका बीजारोपण बड़े ही सहज रूपमें हुआ—अनियोजित, अलक्षित और अघोषित। घटना इस प्रकार है—

संवत् १९८३ (चैत्र शुक्ल १, २ और ३को 'मारवाड़ी अग्रवाल महासभा'का वार्षिक अधिवेशन दिल्लीमें हुआ। इसके सभापति थे, सेठ जमनालालजी बजाज और स्वागताध्यक्ष, श्रीआत्माराम खेमका। आरम्भमें खेमकाजीने कुछ कारणोंसे स्वागताध्यक्ष होना अस्वीकार कर दिया। पीछे सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके आग्रहसे वे राजी हो गये। अधिवेशन जल्दी होनेवाला था। प्रश्न उठा स्वागत-भाषण लिखनेका। खेमकाजी शास्त्रज्ञ विद्वान् थे, पर उन्हें हिंदी लिखनेका अभ्यास नहीं था। उन्होंने श्रीसेठजीसे भाषण तैयार करवा देनेकी प्रार्थना की। श्रीसेठजीने दिल्ली जाकर भाईजीको भाषण तैयार कर देनेका आदेश दिया। श्रीभाईजी दिल्ली गये और उन्होंने २४ घंटेके अंदर अत्यन्त सारगर्भित भाषण लिखकर मुद्रित करवा दिया। लोग उसमें व्यक्त किये गये विचारोंसे बहुत प्रभावित हुए।

अधिवेशनमें भाग लेनेके लिये सेठ घनश्यामदास बिरला भी आये थे। उनका यद्यपि भाईजीके विचारोंसे पूर्ण मेल नहीं था, तथापि यह भाषण उन्हें भी पसंद आया। दूसरे दिन अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने भाईजीसे कहा—'भाई ! तुमलोगोंके विचार कहाँतक ठीक हैं, इसकी आलोचना हमें नहीं करनी है। पर इनका प्रचार तुमलोगोंके द्वारा समाजमें हो रहा है। जनता उन्हें दूरतक मानती भी है। यदि तुमलोगोंके पास अपने विचारों और सिद्धान्तोंका एक पत्र होता तो तुमलोगोंको और भी सफलता मिलती। तुमलोग अपने विचारोंका एक पत्र निकालो।'

भाईजीने उक्त प्रस्तावके महत्त्वका समर्थन करते हुए भी पत्रकारिताके सम्बन्धमें अपना अनुभव न होनेसे उसे व्यावहारिक रूप देनेमें असमर्थता प्रकट की। उस समय तो यह चर्चा यहीं समाप्त हो गयी, किंतु आगे चलकर यही 'कल्याण'के आविर्भावका कारण बनी।

अधिवेशन समाप्त होनेपर सभीने अपने-अपने गन्तव्य स्थानको प्रस्थान किया। श्रीभाईजी बम्बईकी ओर चले। उन दिनों दिल्लीसे बम्बई जानेके लिये रेवाड़ी होकर अहमदाबाद जाना पड़ता था और वहाँसे गाड़ी बदलकर बम्बई। भाईजी दिल्लीसे रेवाड़ी गये। उस समय श्रीजयदयालजी गोयन्दका चूरूसे भिवानी आये हुए थे। रेवाड़ीसे भिवानीके लिये आधे घंटेका रास्ता था। श्रीभाईजी उनके दर्शनार्थ रेवाड़ीसे भिवानी गये। एक दिन वहाँ रहे। श्रीसेठजीको बाँकुड़ा जाना था। भिवानीसे रेवाड़ी लौटते समय श्रीसेठजी और भाईजी, दोनों साथ थे। इस आधे घंटेके सत्सङ्गमें प्रसङ्गवश भाईजीने श्रीसेठजीसे दिल्ली अधिवेशनमें दिये गये बिरलाजीके सुझावकी चर्चा की। श्रीसेठजीको यह विचार बहुत सुंदर लगा। इनलोगोंके साथ श्रीसेठजीके अनुगत सेठ लच्छीरामजी मुरोदिया नामक एक सात्विक प्रकृतिके सज्जन भी थे। वे बोल उठे—'मंजूर, मंजूर; बहुत अच्छी बात है।' लच्छीरामजीको भाईजी 'ताऊजी' कहते थे। इनके हृदयमें उनके प्रति बहुत सम्मान था। वे डिब्बेके एक कोनेमें भाईजीको ले गये, इन्हें बहुत समझाया और इनसे वचन ले लिया कि मैं प्रतिदिन दो घंटे सम्पादनका कार्य कर दिया करूँगा। इनसे वचन लेकर वे श्रीसेठजीके पास आये और बोले—'सेठजी, हनुमान-को मंजूर है।' भाईजीने बीचमें ही कहा—'कैसे मंजूर है ? मुझे इस कामका तनिक भी ज्ञान नहीं है।' पर मुरोदियाजीने—'चुप रहो' कहकर इन्हें आगे कुछ कहनेसे रोक दिया और श्रीसेठजीसे फिर कहा, 'इसे मंजूर है।' भाईजीको चुप हो जाना पड़ा। अब नामका प्रश्न आया। भाईजीके मुँहसे निकला—'कल्याण'। श्रीसेठजी एवं श्रीलच्छीरामजी—दोनोंको यह नाम पसंद आ गया। यह बात चैत्र शु० ९, सं० १९८३ श्रीरामनवमीके दिनकी है। इसीके साथ यह भी तय हो गया कि अक्षयतृतीयासे 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ कर दिया जाय और उस तिथिको पहला अङ्क निकाल दिया जाय। इसके बाद रेवाड़ी पहुँचकर दोनों दो ओर चले गये—

यशस्वी 'कल्याण' सम्पादक

श्रीसेठजी बाँकुड़ाको और भाईजी बम्बईको। भाईजी बम्बई आकर अपने काममें लग गये। अक्षयतृतीया आयी और चली गयी, अङ्क नहीं निकल पाया।

एक दिन 'श्रीखेमराज श्रीकृष्णदास प्रेस'के मालिक श्रीकृष्णदासजी भाईजीसे मिलने आये। बातचीतके दौरान 'कल्याण' निकालनेकी चर्चा आयी। श्रीकृष्णदासजी बोले—'भाईजी, पत्र अवश्य निकालना चाहिये।' भाईजीने उत्तर दिया—'मुझे पत्र निकालनेका न अनुभव है और न सम्पादनकी योग्यता ही।' श्रीकृष्णदासजी बोले—'हम तो बैठे हैं, भाईजी! हमारे प्रेस है, हम सब कर देंगे। आप केवल लेख दे दें।' भाईजीने बहुत टाल-मटोल की, पर वे माने नहीं। अन्तमें उन्होंने आवेशमें आकर कहा—'देखिये, भाईजी! आपको भगवान्ने आसाममें भूकम्पसे बचाया और यहाँ रेलवे इंजनसे बचाया। इन घटनाओंमें आप अपनेसे बचे हों, यह बात नहीं है। भगवान्ने ही आपको बचाया। आपसे भगवान्का कोई बड़ा काम करवाना चाहते हैं। इसीलिये उन्होंने आपको बचाया है।' उनके इस तर्कके सामने भाईजी मौन हो गये। श्रीकृष्णदासजीने 'कल्याण'के रजिस्ट्रेशनकी व्यवस्था कर दी। इसके बाद लेख इकट्ठे किये गये, उनका सम्पादन हुआ और पुनः लिखकर उन लेखोंको प्रेसमें छपनेके लिये दे दिया गया। श्रावण कृष्ण ११, सं० १९८३को 'कल्याण'का पहला अङ्क निकला। इस प्रथम अङ्कमें प्रथम पृष्ठपर 'बंदौ चरन सरोज तुम्हारे' प्रतीकवाला सूरदासजीका पद था, दूसरे पृष्ठपर सम्पादकीय निवेदन, जिसका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार था—"'कल्याण'की आवश्यकता सबको है। जगत्में ऐसा कौन मनुष्य है, जो अपना कल्याण नहीं चाहता। उसी आवश्यकताका अनुभव कर आज यह 'कल्याण' भी प्रकट हो रहा है। जिसको इस 'कल्याण'के सम्पादनका भार दिया गया है, वह इस बातको भलीभाँति जानता है कि उसमें 'कल्याण'के सम्पादनकी योग्यता और सामर्थ्य नहीं; वह अभी कल्याणसे दूर है, परंतु कल्याणकामी अवश्य है। इस 'कल्याण'की किंचित् सेवासे उसकी कल्याण-कामनामें बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है। इसी विश्वाससे वह सब प्रकारसे अपनी अयोग्यताका अनुभव करता हुआ भी परमात्माकी पल-पलपर प्रकट होनेवाली अपार अनुकम्पाका और पूजनीय महापुरुषोंकी विशाल कृपाके भरोसे इस कार्यका भार उठा रहा है।"

इस अङ्कमें श्रीसेठजीके दो लेख और एक पत्र तथा गांधीजीका एक लेख दिया गया था। शेष पृष्ठोंमें नये-पुराने संतोंकी वाणी, शास्त्रोंसे उद्बोधक सामग्रीका संकलन तथा भाईजीकी अपनी रचनाएँ थीं। प्रकाशक था—'सत्सङ्ग-भवन'। लोगोंने अङ्कको बहुत पसंद किया। चारों ओरसे उसकी प्रशंसा होने लगी। पीछे अपने-आप लेखक उसकी ओर आकृष्ट हुए और लेख जुटने लगे। भाईजीके इस प्रयासमें विद्वानों और महात्माओंके आशीर्वाद प्राप्त हुए, लेखकोंका अयाचित सहयोग मिलने लगा, जिससे सारी व्यवस्था अपने-आप बैठने लग गयी। प्रारम्भमें इसके १६०० ग्राहक थे—सभी बनाये हुए, बने हुए नहीं।

'कल्याण'के लिये गांधीजीका आशीर्वाद तथा सुझाव

'कल्याण'के लोकोपकारी रूपकी प्रतिष्ठाके लिये भाईजी उसके आविर्भाव-कालसे ही प्रयत्नशील रहे। नवोदित पत्रके लिये देशके जाने-माने नेता और विद्वानोंकी सद्भावना प्राप्त करनेके उद्देश्यसे इन्होंने समकालीन अध्यात्मनिष्ठ, राष्ट्रसेवकोंमें अग्रगण्य महात्मा गांधीसे भी सम्पर्क स्थापित किया था। इस सम्बन्धमें श्रीभाईजीने बताया था—

"'कल्याण'के लिये गांधीजीका आशीर्वाद प्राप्त करने मैं एवं सेठ जमनालालजी बजाज दोनों गये थे। गांधीजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'कल्याण'में दो नियमोंका पालन करना—'बाहरी कोई विज्ञापन नहीं देना तथा पुस्तकोंकी समालोचना मत छापना।' विज्ञापन न छापनेके सम्बन्धमें उन्होंने हेतु यह बताया कि 'तुम अपनी जानमें पहले-पहले यह देखकर विज्ञापन लोगे कि वह किसी ऐसी चीजका न हो, जो भद्दी हो और जिसमें जनताको धोखा देकर ठगनेकी बात हो। पर जब तुम्हारे पास विज्ञापन आने लगेंगे और लोग उनके लिये अधिक पैसे देने लगेंगे, तब तुम्हारे विरोध करनेपर भी... साथी लोग कहेंगे—'देखिये, इतना पैसा आता है, क्यों न यह विज्ञापन स्वीकार कर लिया जाय?' बस, पैसेका प्रलोभन आया कि फिर जनताके लाभ-हानिकी बात

एक ओर रह जायगी। अतएव आरम्भसे ही यह नियम बना लो कि बाहरी विज्ञापन स्वीकार करना ही नहीं है। समालोचनाके सम्बन्धमें यह बात है कि—जो लोग समालोचनाके लिये अपनी पुस्तकें तुम्हारे पास भेजेंगे, उनमेंसे अधिकांश इसलिये भेजेंगे कि तुम्हारे पत्रमें उनके ग्रन्थकी प्रशंसा निकले। यथार्थ समालोचना करानेके लिये अपनी पुस्तक भेजनेवाले विरले ही होते हैं। ऐसी स्थितिमें पुस्तकें चाहे जैसी हों, या तो उनकी झूठी प्रशंसा करनी होगी या उन साहित्यकारों, लेखकोंसे झगड़ा मोल लेना पड़ेगा। इसलिये समालोचना मत छापना।' मैंने कहा—'बापू! आपका आशीर्वाद चाहिये, भगवान् शक्ति देंगे। इन दोनों नियमोंका दृढ़ताके साथ पालन होगा।' बापूने 'कल्याण'की सफलताके लिये हृदयसे आशीर्वाद दिया। तबसे आजतक 'कल्याण'की वही नीति चली आ रही है। गांधीजीने जो आशङ्का व्यक्त की थी, आगे चलकर वह सामने आ गयी। ज्यों-ज्यों 'कल्याण'का प्रचार बढ़ने लगा, त्यों-त्यों विज्ञापनवालोंके आग्रह आने लगे। जब इसके एक लाख ग्राहक हो गये, तब तो लोग खूब अधिक पैसा देकर विज्ञापन छपानेको तैयार हो गये। समालोचनाके लिये भी बहुत-सी पुस्तकें आयीं, बहुत तरहसे दबाव डाले गये। पर भगवान् रक्षा करते चले आ रहे हैं।"

●

श्रीभाईजीकी साहित्यिक सेवाएँ

१३ महीनेतक 'कल्याण' बम्बईमें निकला। पीछे श्रीभाईजीका मन एकान्तवासके लिये छटपटाने लगा। वे गङ्गाके तटपर एकान्तमें रहकर साधना करना चाहते थे। बम्बईका कारोबार उन्होंने बंद कर दिया। श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको उन्होंने अपनी एकान्तवासकी इच्छा लिखी। श्रीसेठजीने उत्तर दिया—"कल्याण'का काम तुमको ही करना है। कहीं भी एकान्तमें रहकर उसका सम्पादन तुम वहाँसे कर देना। परंतु एक बार 'कल्याण'के प्रकाशन एवं वितरणकी व्यवस्था समझानेके लिये तुम गोरखपुर जाकर तथा कुछ महीने रहकर वहाँके व्यवस्थापकोंको काम समझा दो।" श्रीभाईजीको यह बात रुचिकर हुई। वे गोरखपुर आकर 'कल्याण' के कामकी व्यवस्था ठीक करनेमें लग गये। इसी बीच श्रीभाईजीको भगवान् श्रीविष्णुकी कृपा प्राप्त हुई और उन्होंने आदेश दिया कि 'संन्यास नहीं लेना चाहिये। गोरखपुर रहकर मेरी भक्तिका तथा नामका प्रचार करना चाहिये।' भगवदिच्छाके सामने भाईजीकी इच्छा विलीन हो गयी और वे यहीं रह गये। 'कल्याण'द्वारा जो विश्वरूप प्रभुकी सेवा हुई है, वह सर्वविदित है।

४४ वर्षकी लंबी अवधिमें 'कल्याण'के माध्यमसे लाखों-लाखों देशवासी उनके उपदेशामृतका पानकर भगवान्‌की ओर आकृष्ट हुए हैं और उन्होंने जीवनके परम लक्ष्य—भगवान् या भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्तिके महत्वको समझा है और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये किस प्रकार सुगमतासे बढ़ा जा सकता है, इसकी शिक्षा ग्रहण की है। हजारों-हजारों निराश व्यक्तियोंने आशा, उत्साह, स्फूर्ति, नवीन चेतना प्राप्त की है और उत्साहहीनता, निराशा और विनाशके गर्तमें गिरकर वे अपना सर्वस्व नष्ट करनेकी कुचेष्टासे विरत हुए हैं। आपसके मनो-मालिन्यको धोकर परस्पर प्रेमकी प्रतिष्ठा करनेकी प्रेरणा कितने परिवारोंको, कितने स्वजनोंको, कितने मित्रोंको प्राप्त हुई है—इसका हिसाब लगाना असम्भव है। मानव-स्वभावकी दुर्बलताओंसे घिरे रहकर सन्मार्गसे फिसलते हुए कितने-कितने साधक, गृहस्थ, विरक्त, नवयुवक भगवान्‌की सौहार्दमयी पतितपावनताका परिचय प्राप्तकर, पापपङ्कसे निकलकर सत्त्वगुणकी ओर अग्रसर हुए और उन्नतिके शिखरपर पहुँचे हैं। जीवनकी ऐसी कौन-सी गुत्थी, समस्या, पहेली, उलझन है, जिसका समाधान श्रीभाईजीकी लेखनी या वाणीसे निकले शब्दोंसे प्राप्त न हुआ हो। यही हेतु है कि २२ मार्च १९७१को प्रातःकाल जब ये महामानव अपनी इहलौकिक लीलाका संवरण कर भगवान्‌की नित्यलीलामें लीन हो गये, तब देशके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक विषादकी एक तीव्र लहर दौड़ गयी और अच्छे-अच्छे विरक्त महात्माओंतक, जिनकी दृष्टिमें जगत्‌का अस्तित्व ही नहीं है, श्रीभाईजीके तिरोधान-से मर्माहत हो उठे और उनके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह बह चला। देशके एक सिरेसे दूसरे सिरेतकसे अगणित लोगोंके

करुण पत्न, तार, टेलीफोन आये हैं और अबतक आ रहे हैं, जिनको देखकर पता चलता है कि श्रीभाईजीका 'परिवार' कितना विस्तीर्ण, कितना विशाल है। सहस्रों व्यक्तियोंको अपने सगे-स्वजनों, गुरुजनों, प्रेमियोंकी बिदाईसे जितनी पीड़ा नहीं हुई, उतनी पीड़ा उन्हें श्रीभाईजीकी बिदाईसे हुई है। यही उन महामानवकी सार्वभौमता है।

श्रीभाईजीने 'कल्याण' मासिक पत्नद्वारा पत्नकारितामें नया कीर्तिमान स्थापित किया है। बिना किसी प्रकारके विज्ञापन एवं प्रचारके विशुद्ध आध्यात्मिक एवं धार्मिक चर्चाके आधारपर 'कल्याण' प्रतिमास १,६५,०००की संख्यामें प्रकाशित होता है और भारतवर्षके हिंदी-अहिंदी सभी प्रान्तोंमें समानरूपसे समादृत है। विदेशोंमें भी इसकी पर्याप्त प्रतियाँ जाती हैं। उसके प्रतिवर्षके विशेषाङ्क अपने-अपने विषयके विश्वकोष हैं। सहस्रों अहिंदीभाषी जनोंने 'कल्याण' पढ़नेके लिये हिंदी सीखी है।

'कल्याण' एक विशुद्ध आध्यात्मिक पत्न है, अतएव इसके सम्पादकका जीवन पूर्णतया अध्यात्मनिष्ठ होना चाहिये। 'कल्याण'के विकासमें परमश्रद्धेय श्रीभाईजीकी आध्यात्मिक स्थिति ही प्रधान हेतु रही है। उनका जीवन भगवद्विश्वास, भगवत्प्रेम, भगवद्भक्ति, ज्ञान एवं निष्काम कर्मका मूतिमान् आदर्श था। गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णित दैवी-सम्पदाके गुण सहज एवं स्वाभाविकरूपसे उनमें प्रतिष्ठित थे। जो कुछ वे 'कल्याण'में लिखते थे, वह सब उनमें था। उनके पवित्र जीवन, पवित्र वाणी, पवित्र लेखनी, पवित्र दृष्टि, पवित्र विग्रहसे नित्य-निरन्तर भगवद्रसकी विश्वपावनी अखण्ड सुधा-धारा प्रवाहित होती रहती थी और वह जगत्के जीवोंको सहज ही अमृतत्व प्रदान करती थी। यही हेतु है कि 'कल्याण'का छोटा-सा पौधा सहजरूपसे विकसित होता हुआ आज इस रूपमें जनता-जनार्दनकी सेवा कर रहा है। 'कल्याण'की सेवामें श्रद्धेय श्रीभाईजीने अपने जीवनका क्षण-क्षण तथा शरीरका कण-कण होम दिया था। वास्तवमें 'कल्याण' और श्रीभाईजी पर्याय हो गये हैं। 'कल्याण'-के लिये की गयी उनकी सेवाओंका वर्णन कोई क्या कर सकता है; वह तो अनुभवगम्य है, उसका वाणीमें आना असम्भव ही है।

'कल्याण'के अबतकके प्रकाशित विशेषाङ्क

वर्ष विशेषाङ्कका नाम	संवत्	प्रकाशित प्रतियाँ
१. (इस वर्ष विशेषाङ्क नहीं निकला)	——	
२. भगवन्नामाङ्क	१९८४	११,०००
३. भक्ताङ्क	१९८५	१५,०००
४. श्रीमद्भगवद्गीताङ्क	१९८६	१६,५००
५. श्रीरामायणाङ्क	१९८७	२०,२५०
६. श्रीकृष्णाङ्क	१९८८	१७,५००
७. ईश्वराङ्क	१९८९	२१,०००
८. शिवाङ्क	१९९०	२२,५००
९. शक्ति-अङ्क	१९९१	२५,६००
१०. योगाङ्क	१९९२	३४,१००
११. वेदान्ताङ्क	१९९३	३७,५००
१२. संत-अङ्क	१९९४	३५,०००
१३. मानसाङ्क	१९९५	४३,६००
१४. गीतातत्त्वाङ्क	१९९६	५०,६००
१५. साधनाङ्क	१९९७	५५,६००

१६. भागवताङ्क	१९९८	६५,१००
१७. संक्षिप्त महाभारताङ्क	१९९९	७०,६००
१८. संक्षिप्त वाल्मीकि-रामायणाङ्क	२०००	५७,६००
१९. संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क	२००१	९०,१००
२०. गो-अङ्क	२००२	१,०१,३००
२१. संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क	२००३	१,०१,४००
२२. नारी-अङ्क	२००४	१,१५,९००
२३. उपनिषद्-अङ्क	२००५	१,०७,०००
२४. हिंदू-संस्कृति-अङ्क	२००६	१,२५,२००
२५. संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क	२००७	१,१०,६००
२६. भक्त-चरिताङ्क	२००८	१,२०,४००
२७. बालकाङ्क	२००९	१,१५,९००
२८. संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क	२०१०	१,१९,९००
२९. संत-वाणी-अङ्क	२०११	१,२३,७००
३०. सत्कथाङ्क	२०१२	१,२१,१००
३१. तीर्थाङ्क	२०१३	१,२०,७००
३२. भक्ति-अङ्क	२०१४	१,१५,०००
३३. मानवताङ्क	२०१५	१,१५,०००
३४. संक्षिप्त देवीभागवताङ्क	२०१६	१,२५,०००
३५. संक्षिप्त योगवासिष्ठ-अङ्क	२०१७	१,३१,०००
३६. संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क	२०१८	१,५१,०००
३७. संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क	२०१९	१,४१,०००
३८. श्रीकृष्णवचनामृताङ्क	२०२०	१,३५,०००
३९. श्रीभगवन्नाम-महिमा और प्रार्थनाङ्क	२०२१	१,४२,०००
४०. धर्माङ्क	२०२२	१,५०,०००
४१. श्रीरामवचनामृताङ्क	२०२३	१,५०,०००
४२. उपासनाङ्क	२०२४	१,५०,०००
४३. परलोक और पुनर्जन्माङ्क	२०२५	१,६०,०००
४४. संक्षिप्त अग्निपुराण-गर्गसंहिताङ्क	२०२६	१,६५,०००
४५. संक्षिप्त अग्निपुराण, गर्गसंहिता-नरसिंहपुराणाङ्क	२०२७	१,७५,०००
४६. श्रीरामाङ्क	२०२८	१,६५,०००

●

'कल्याण-कल्पतरु' अंग्रेजी मासिक पत्रिकाकी सेवा

हिंदी-मासिक पत्र, 'कल्याण'की तरह अंग्रेजीमें 'कल्याण-कल्पतरु'का प्रकाशन संवत् १९९१ वि० (जनवरी सन् १९३४ ई०)से प्रारम्भ हुआ। 'कल्याण-कल्पतरु'के प्रकाशनका उद्देश्य वही है, जो 'कल्याण'का है। 'कल्याण'से केवल हिंदी-भाषा-भाषी ही लाभान्वित हो पाते थे। 'कल्याण'-पत्रिकाद्वारा दिया जानेवाला संदेश अंग्रेजी-भाषा-भाषी जन-समुदायतक भी पहुँच सके, इस हेतुसे अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'कल्याण-कल्पतरु'का मुद्रण एवं प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसकी प्रतिमास लगभग पाँच हजार प्रतियाँ प्रकाशित होती हैं। अनेक कठिनाइयोंके कारण 'कल्याण-कल्पपरु'के प्रकाशनको कुछ मासके लिये स्थगित करनेके दो-तीन बार अवसर आये, परंतु भगवान्की कृपासे वह अपने पाठकोंके हाथमें सदा पहुँचता रहा है। इसके सम्पादक हैं—श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री तथा श्रीभाईजी इसके कंट्रोलिंग एडीटर रहे। उनकी देख-रेखमें तथा परामर्शसे पत्रिकाका कार्य होता रहा है। विदेशोंमें इसकी माँग अच्छी है और लोग इससे बहुत लाभान्वित हुए हैं। अबतक 'कल्याण-कल्पतरु'के निम्नलिखित विशेषाङ्क प्रकाशित हो चुके हैं।

List of the Special Numbers of 'Kalayana-Kalpataru'

1. The God-Number	1934
2. The Gita-Number	1935
3. The Vedanta Number	1936
4. The Sri Krishna-Number	1937
5. The Divine Name Number	1938
6. The Dharma-Tattva Number	1939
7. The Yoga Number	1940
8. The Bhakta Number	1941
9. The Sri Krishna-Leela Number, Part I	1942
10. The Sri Krishna-Leela Number, Part II	1944
11. The Cow Number	1945
12. The Gita-Tattva Number, Part I	1946
13. The Gita-Tattva Number, Part II	1947
14. The Gita-Tattva Number, Part III	1948
15. The Manasa Number, Part I	1949
16. The Manasa Number, Part II	1950
17. The Manasa Number, Part III	1951
18. The Bhagavata Number, Part I	1952
19. The Bhagavata Number, Part II	1954
20. The Bhagavata Number, Part III	1955
21. The Bhagavata Number, Part IV	1956
22. The Bhagavata Number, Part V	1957
23. The Bhagavata Number, Part VI	1959
24. The Valmiki-Ramayana Number, Part I	1960
25. The Valmiki-Ramayana Number, Part II	1961
26. The Valmiki-Ramayana Number, Part III	1962
27. The Valmiki-Ramayana Number, Part IV	1963
28. The Valmiki-Ramayana Number, Part V	1965
29. The Valmiki-Ramayana Number, Part VI	1966
30. The Valmiki-Ramayana Number, Part VII	1967
31. The Valmiki-Ramayana Number, Part VIII	1969
32. The Valmiki-Ramayana Number, Part IX	1970

'महाभारत' मासिक पत्रिकाका सम्पादन

इन प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रन्थोंकी उपलब्धि जनताको हो सके, इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये 'महाभारत' नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन नवम्बर १९५५से आरम्भ किया गया। श्रीभाईजी इसके सम्पादक थे। पत्रिकामें ग्रन्थके मूल श्लोक तथा उसका हिंदी अर्थ दिया जाता था। किंतु कई अपरिहार्य कारणोंसे 'महाभारत' मासिक पत्रका प्रकाशन स्थगित करना पड़ा। महाभारत कुल सात वर्षतक--कार्तिक सं० २०१२ वि० (नवम्बर सन् १९५५ ई०)से सं० २०१८ (सन् १९६२)तक प्रकाशित होता रहा और प्रतिमास औसतन ७,५०० प्रतियाँ उसकी छपती थीं। इस अवधिमें इसके अङ्कोंमें क्रमशः सम्पूर्ण महाभारत, हरिवंश नामक उसका खिलभाग, सनत्सु-जातीय (शांकरभाष्य), जैमिनीयाश्वमेधपर्व और सम्पूर्ण वाल्मीकि-रामायणका प्रकाशन हुआ। 'महाभारत' पत्रिकाके लिये शास्त्र-ग्रन्थोंका प्रामाणिक एवं सुन्दर अनुवाद पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री करते थे।

श्रीभाईजीका साहित्य

परमश्रद्धेय नित्यलीलालीन श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजीने लगभग २५ हजार पृष्ठोंका अपना मौलिक साहित्य दिया है, जिसमेंसे लगभग ६ हजार पृष्ठोंका साहित्य स्वतन्त्र पुस्तकरूपमें प्रकाशित हो चुका है। बाकी साहित्य 'कल्याण'के अङ्कोंमें बिखरा पड़ा है, लोगोंके पास पत्ररूपमें है तथा गीताप्रेससे प्रकाशित विभिन्न पुस्तकोंमें संगृहीत हैं। इस बिखरे साहित्यको स्वतन्त्र पुस्तकरूप देनेका कार्य हो रहा है। इस साहित्यमें निबन्ध, पारमार्थिक एवं व्यावहारिक गुत्थियोंको सुलझानेवाले निदशोंसे पूर्ण पत्र तथा भक्तों एवं संतोंके जीवन-वृत्त आदि हैं। साथ ही उन्होंने व्रजभाषा, खड़ी बोली एवं राजस्थानी भाषाओंमें लगभग दो हजार पदोंकी रचना भी की है, जिनमें अनुभूतिकी तीव्रता दर्शनीय है। ये सभी हिंदी साहित्यकी अमूल्य निधियाँ हैं। टीकाकारके रूपमें उन्होंने रामचरितमानस, विनयपत्रिका आदि प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी टीकाएँ भी की हैं, जिनका समाजमें बहुत ही आदर हुआ है। वे लाखोंकी संख्यामें छप चुकी हैं। श्रीभाईजीकी विवेचन-शैली एवं भाषा इतनी सुबोध एवं लालित्यपूर्ण है कि पाठक उसे पढ़ते-पढ़ते अपूर्व आनन्दमें विभोर हो जाता है और गहन-से-गहन विषयोंको भी हृदयंगम कर लेता है। नीचे हम उनके पुस्तकरूपमें मुद्रित मौलिक साहित्यकी सूची दे रहे हैं--

निबन्ध-संग्रह

पुस्तकका नाम	अबतक प्रकाशित प्रतियाँ
१. भगवच्चर्चा--भाग-१ (तुलसीदल)	३८,०००
२. भगवच्चर्चा--भाग-२ (नैवेद्य)	३२,२५०
३. भगवच्चर्चा--भाग-३	४०,०००
४. भगवच्चर्चा--भाग-४	१०,०००
५. भगवच्चर्चा--भाग-५	१०,०००
६. भगवच्चर्चा--भाग-६ (पूर्ण समर्पण)	११,०००

७. भवरोगकी रामबाण दवा (विचारात्मक निबन्ध)	६३,२५०
८. श्रीराधामाधव-चिन्तन (श्रीराधामाधवके स्वरूप, प्रेम एवं लीलातत्वका विशद विवेचन)	१५,०००
९. श्रीराधामाधव-चिन्तन––परिशिष्ट	५,०००

पत्र-संग्रह

(साधना एवं व्यवहारके सम्बन्धमें पत्ररूपमें दिये गये निर्देश)

१०. लोक-परलोकका सुधार––भाग–१	३५,३५०
११. लोक-परलोकका सुधार––भाग–२	३१,२५०
१२. लोक-परलोकका सुधार––भाग–३	१५,०००
१३. लोक-परलोकका सुधार––भाग–४	१५,०००
१४. लोक-परलोकका सुधार––भाग–५	१५,०००

पद-संग्रह

(खड़ी बोली, ब्रजभाषा एवं राजस्थानीके पदोंका संग्रह)

१५. पत्र-पुष्प (भजन-संग्रह भाग–५)	३,२५,०००
१६. प्रार्थना-पीयूष	१५,०००
१७. हरिप्रेरित हृदयकी वाणी	५,०००
१८. श्रीराधामाधव-रस-सुधा (खड़ीबोलीके अनुवादसहित)	५,०००
१९. श्रीराधामाधव-रस-सुधा (ब्रजभाषाके अनुवादसहित)	१९,०००
२०. श्रीराधामाधव-रस-सुधा (केवल मूल)	२०,०००
२१. ब्रज-रस-माधुरी	५,०००
२२. ब्रज-रसकी लहरें	५,०००
२३. मधुर भाग–१ (झाँकी संख्या ४०)	१०,०००
२४. मधुर भाग–२ (झाँकी संख्या ३२)	१०,०००
२५. शिव-चालीसा	४,२०,०००

समाज-निर्माणात्मक साहित्य

२६. हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप	१,००,०००
२७. सिनेमा––मनोरञ्जन या विनाशका साधन	१,९०,०००
२८. विवाहमें दहेज	१,१०,०००
२९. नारी-शिक्षा	२,९०,०००
३०. स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	५,६०,०००
३१. वर्त्तमान शिक्षा	६९,२५०
३२. गो-वध भारतका कलङ्क	१,६०,०००
३३. बलपूर्वक देवमन्दिर-प्रवेश और भक्ति	२६,०००
३४. हिंदू क्या करें	१,५०,०००
३५. समाज-सुधार	४०,०००

साधना-साहित्य

३६. मानव-धर्म	१,२६,०००
३७. साधन-पथ	१,००,०००
३८. श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत-महोत्सवकी प्राचीनता, महिमा और पूजाविधि	५,०००
३९. मनको वशमें करनेके कुछ उपाय	३,०५,०००
४०. श्रीभगवन्नाम	१,३१,२५०
४१. दिव्य संदेश	३,६०,०००
४२. गीतामें विश्वरूपका दर्शन	२५,०००
४३. ब्रह्मचर्य	४२,०००
४४. सत्सङ्गके बिखरे मोती	७०,२५०
४५. मनुष्य सर्वप्रिय और सफल-जीवन कैसे बने ?	२०,०००
४६. जीवनमें उतारनेकी सोलह बातें	६०,०००
४७. कल्याणकारी आचरण	३०,०००
४८. प्रार्थना	१,०५,२५०
४९. गोपी-प्रेम	१,४५,२५०
५०. रस और भाव	८,०००
५१. रासलीलाका रहस्य	५,०००
५२. श्रीकृष्ण-महिमाका स्वरूप	५,०००
५३. पूर्णपरात्पर श्रीकृष्णका आविर्भाव	५,०००
५४. भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप-तत्त्व	५,०००
५५. स्वयं भगवान् कब और क्यों आते हैं	५,०००
५६. श्रीराधाका प्रेम-स्वरूप-गुण-तत्त्व	५,०००

उद्‌बोधक साहित्य

(जीवनमें आशा, स्फूर्ति और उत्साह प्रदान करनेवाला साहित्य)

५७. कल्याण-कुञ्ज भाग–१	१,०२,०००
५८. कल्याण-कुञ्ज भाग–२	४५,०००
५९. कल्याण-कुञ्ज भाग–३	४०,०००
६०. मानव-कल्याणके साधन (कल्याण-कुञ्ज भाग–४)	१५,०००
६१. दिव्य सुखकी सरिता—(कल्याण-कुञ्ज भाग–५)	१५,०००
६२. सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (कल्याण-कुञ्ज भाग–६)	१५,०००
६३. दैनिक कल्याण-सूत्र	३५,०००
६४. आनन्दकी लहरें	३,६०,२५०
६५. दीन-दुःखियोंके प्रति कर्त्तव्य	३५,०००
६६. सात बातें	४३,६००

भक्त-गाथा-साहित्य

६७. उपनिषदोंके चौदह रत्न ८४,२५०

(गीताप्रेससे प्रकाशित भक्त-चरित्रोंमें अधिक चरित्र उन्हींके लिखे हुए हैं।)

टीका-साहित्य

६८. प्रेम-दर्शन ९४,२५०

(श्रीनारद-भक्तिसूत्रोंकी विस्तृत व्याख्या—हिंदीमें)

श्रीभाईजीकी हिंदी पुस्तकोंका संस्कृत-अनुवाद

६९. श्रीप्रेमदर्शनम् (प्रेमदर्शनका अनुवाद) ५,०००

७०. रसभावविमर्शः (श्रीराधामाधव-प्रेमतत्त्वका विशद विवेचन) ८,०००

५३,९४,०००

Shri H. P. Poddar's Writings reproduced in English

71. The Philosophy of Love	43,250
72. Way to God-Realization	72.250
73. Gopi's Love for Sri Krishna	68,250
74. Our Present-Day Education	5,750
75. The Divine Name and Its Practice	65,250
76. Wavelets of Bliss	74,250
77. The Divine Message	98,000
78. Transcendent Bliss and Love	8,000
89. Nectarean Bliss of Sri Radha-Madhava	5,000
80. Fountain of Bliss	5,000
81. Path to Divinity	5,000
82. Turn to God	5,000
83. Look Beyond the Veil	5,000
	4,60,000

श्रीभाईजीद्वारा अनूदित साहित्य

८४. श्रीरामचरितमानस–मोटा टाइप (टीकासहित) ६८,८५०

८५. श्रीरामचरितमानस–मझला साइज (टीकासहित) ७,६५,०००

८६. विनय-पत्रिका (टीकासहित) ३,९०,०००

८७. दोहावली (टीकासहित) २,३४,०००

श्रीराधाकृष्णकी प्रेमाभक्तिका प्रचार

श्रीराधाकृष्णकी प्रेमाभक्तिका प्रचार ही श्रीभाईजीके जीवनका मुख्य उद्देश्य था, जिसके लिये उनका आविर्भाव इस धराधामपर हुआ था।

भक्ति-रसमें व्रज-रसकी माधुरी अनुपमेय है। भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दनने व्रजमें प्रकट रहकर रसकी जो मधुरातिमधुर धारा बहायी, उसकी जगत्में क्या, विश्व-ब्रह्माण्डमें कोई तुलना नहीं है। बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र तथा ज्ञानी-विज्ञानी इस रसके लिये तरसते हैं। भाईजीने समय-समयपर मधु रसपर अथवा दूसरे शब्दोंमें श्रीराधा-कृष्णके कामगन्धलेशशून्य अलौकिक प्रेमपर 'कल्याण'के लिये लिखे गये लेखोंमें, विशेष अवसरोंपर पढ़े गये लिखित व्याख्यानोंमें तथा व्यक्तिगत पत्रोंके रूपमें जो कुछ लिखा है तथा दैनिक सत्सङ्गमें अथवा अन्य समारोहोंमें मौखिक-रूपसे जो कुछ कहा है, वह आध्यात्मिक जगत्की एक अमूल्य निधि है।

श्रीभाईजीने राधाके स्वरूपका एवं प्रेमका बड़ा ही सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। व्रज-रसके प्राण श्रीव्रजराजकुमारकी आत्मा श्रीराधिका हैं—**'आत्मा तु राधिका तस्य।'** एक रूपमें जहाँ श्रीराधा श्रीकृष्णकी आराधिका—उपासिका हैं, दूसरे रूपमें वे उनकी आराध्या—उपास्या भी हैं—**'आराध्यते असौ इति राधा।'** शक्ति और शक्तिमान्में वस्तुतः कोई भेद न होनेपर भी भगवान्के सविशेष रूपोंमें शक्तिकी प्रधानता है। शक्तिमान्की सत्ता ही शक्तिके आधारपर है। शक्ति नहीं तो शक्तिमान् कैसे? **'रस्यते असौ इति रसः'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार रसकी सत्ता ही आस्वादके लिये है। अपने-आपको अपना आस्वादन करानेके लिये ही स्वयं रसरूप (**'रसो वै सः'**) श्रीकृष्ण 'राधा' बन जाते हैं। इसीलिये व्रज-रसमें 'राधा'की विशेष महिमा है। श्रीकृष्ण प्रेमके पुजारी हैं, इसीलिये वे अपनी पुजारिनकी पूजा करते हैं, उन्हें अपने हाथों सजाते-सँवारते हैं, उनके रूठ जानेपर उन्हें अपने प्राणोंके निर्मञ्छनद्वारा प्रसन्न करते हैं। 'चाँपत चरन मोहनलाल' तथा—

'देख्यौ दुर्‌यौ मैं कुंज कुटीर में बैठ्यौ पलोटत राधिका पायन।'

श्रीभाईजीने श्रीराधाके दिव्यातिदिव्य स्वरूप, उनके प्रेमकी अलौकिक महिमा, श्रीकृष्णके साथ उनका पवित्रतम सम्बन्ध आदि दुरूह एवं गूढ़ विषयोंका बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया है तथा प्रसङ्गवश श्रीराधाके विषयमें तथा श्रीराधाकृष्णके प्रेम-सम्बन्धमें उठायी गयी विविध शङ्काओंका बड़े ही सुन्दर ढंगसे समाधान किया है। आधुनिक विषय-विमोहित एवं काम-सुखको ही सब-कुछ माननेवाले भौतिकवादी जगत्को श्रीभाईजीकी यही सबसे बड़ी और महनीय देन है।

श्रीराधाकी भाँति श्रीकृष्णकी पूर्ण भगवत्ता, उनका परम दिव्य स्वरूप, उनका सच्चिदानन्दमय भगवद्देह, श्रीकृष्णके प्राकट्यकी महिमा तथा उनका जन्म-महोत्सव, उनकी विरुद्धधर्माश्रयता, उनकी सर्वमान्यता, श्रीकृष्ण-चरितकी उज्ज्वलता तथा उनको प्रियतमरूपमें प्राप्त करनेकी साधना आदि विषयोंपर भी उन्होंने प्रचुर प्रकाश डाला है।

उनके 'श्रीराधामाधव-चिन्तन' आदि ग्रन्थमें श्रीराधा-कृष्णके स्वरूपको, उनके परस्परके पवित्रतम सम्बन्धको, उनकी विभिन्न मधुर लीलाओंको—जिनमें प्रणय, मान एवं विरह, सभी हैं—ठीकसे समझनेका 'मापदण्ड' प्राप्त होता है। साथ ही श्रीराधा-कृष्णके सम्बन्धमें अबतक जो भी साहित्य संस्कृत, हिंदी तथा अन्य भाषाओंमें प्राप्त है, उसके अध्ययन, मनन एवं आलोचनकी 'कसौटी' वह ग्रन्थ प्रस्तुत करता है। बिना एक 'कसौटी'को सामने रखे—श्रीराधा-माधवके स्वरूप तथा उनकी पारस्परिक मधुर लीलाओंके तत्त्वका यथार्थ ज्ञान न होनेके कारण ही—न केवल हिंदी-साहित्यमें प्राप्त रचनाओं अपितु संस्कृत साहित्यकी भी एतद्विषयक रचनाओंके अध्ययनके सम्यक् आनन्दसे हम अभीतक बहुत अंशोंमें वञ्चित रहे हैं तथा हमने अनेकों भ्रान्त धारणाओंका सृजन कर लिया है।

जगज्जननी श्रीराधा
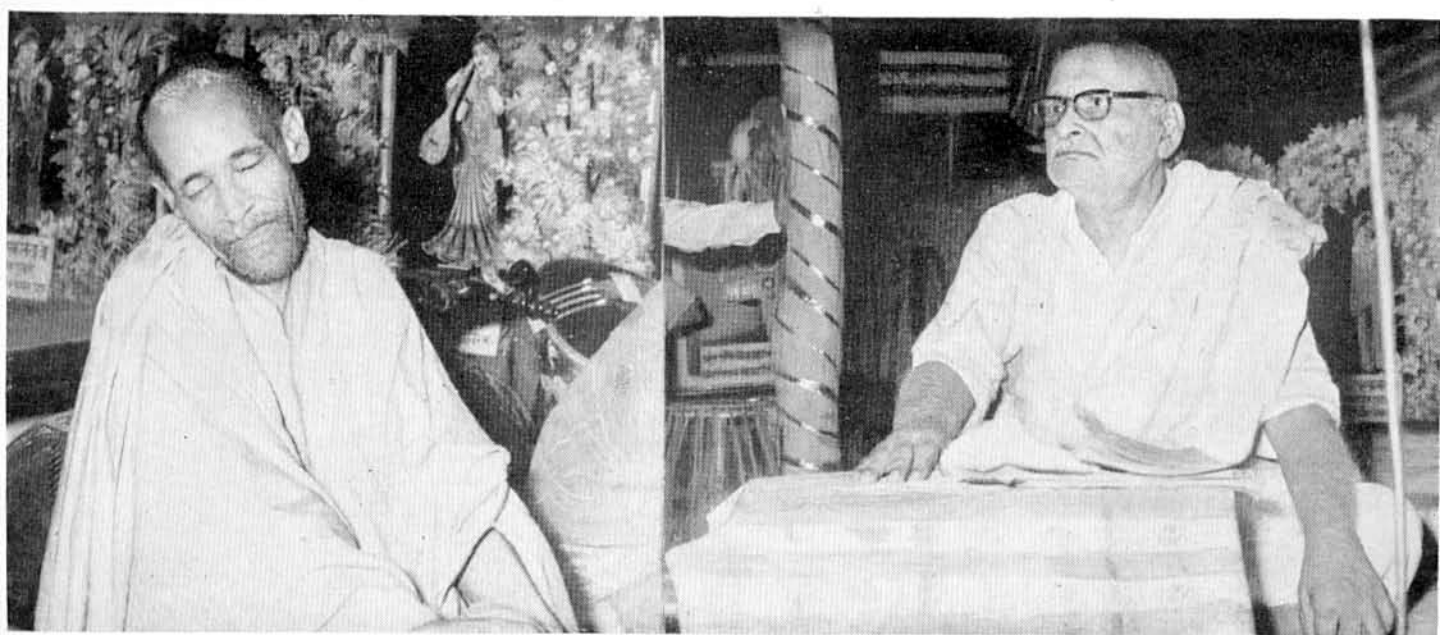
उत्सव प्रासादकी आधार-शिला एवं उत्तुंग शिखर

मंचकी सुसज्जा देख सूत्रधार खिल उठा
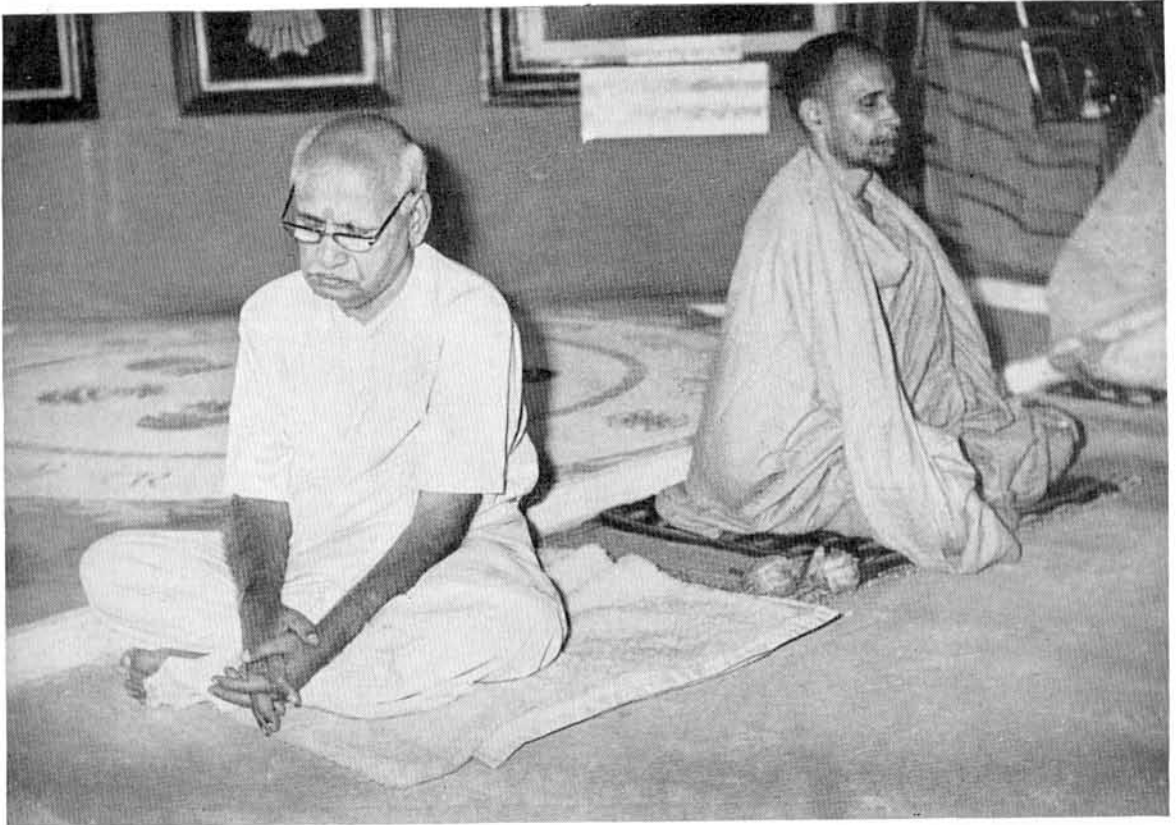
कलेवर, महोत्सवके मंच पर, मन नित्योत्सवमें

श्रीराधा प्राकट्यकी प्रतिक्षामें
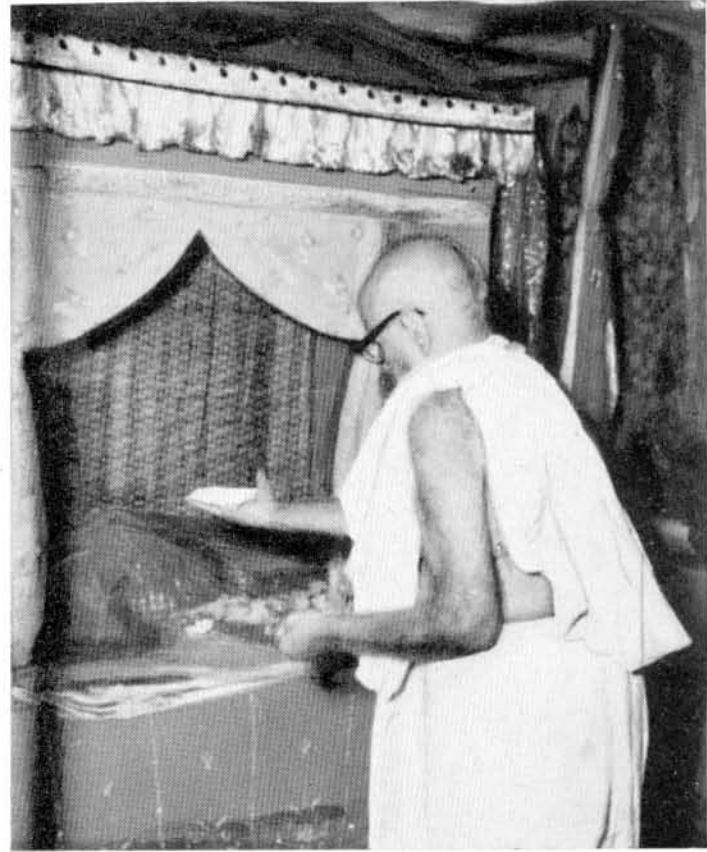
कर्पूर एवं वस्त्रसे नीराजन

श्रीराधा.महिमा पर गहन रसानुभूति पूर्ण प्रवचन

समर्थ पिता और लाडिली बेटी उत्सवका संचालन करते हुए

अपनी मानी हुई कसौटीके आधारपर ऐसा करके जहाँ एक ओर हमने अपनी हानि की है, वहाँ दूसरी ओर श्रीराधा-कृष्णविषयक प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थों एवं कवि-लेखकोंके प्रति अन्याय भी किया है।

साहित्यके अध्ययन करनेवालोंकी भाँति ही, साहित्य-प्रणेताओंके समक्ष भी श्रीराधा-कृष्णके स्वरूप एवं उनकी लीलाओंके सम्बन्धमें एक 'सैद्धान्तिक मापदण्ड' न रहनेके कारण सूरदास आदि कुछ भक्तकवियोंको छोड़कर शेष कवि, जिन्होंने श्रीराधामाधवको अपने काव्यका विषय बनाया, बहुत कुछ पथ भूल गये हैं। अतः श्रीराधा-कृष्णविषयक साहित्यके प्रणेता कवि एवं लेखकोंसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे श्रीभाईजीद्वारा रचित ग्रन्थोंमें प्रस्तुत किये गये श्रीराधाकृष्णके पवित्रतम स्वरूप एवं सम्बन्धको अपने सामने रखकर साहित्यका सृजन करेंगे तो ऐसा सात्विक साहित्य प्रकट होगा, जो भक्तिक्षेत्रकी तो अमूल्य निधि होगी ही, समाजके पतनोन्मुख नैतिक स्तरको भी उन्नत करनेमें सक्षम होगा।

इसी प्रकार श्रीभाईजीने भावराज्यकी लोकोत्तर महिमा, ज्ञानराज्यकी सीमाको पार करनेपर भावराज्यमें प्रवेशके लिये अधिकारकी प्राप्ति, भावराज्यमें प्रिया-प्रियतमका नित्य लीलाविहार, भगवदवतारका रहस्य तथा श्रीकृष्णकी माखनचोरी, चीरहरण एवं रासक्रीडा आदि मधुरातिमधुर, किंतु तर्कशील व्यक्तियोंको भ्रमित कर देनेवाली विविध दिव्य लीलाओंका मर्म बड़ी ही सुन्दर एवं सुबोध शैलीसे समझाया है, जिसे पढ़कर उनके सम्बन्धमें अज्ञानवश की जानेवाली अनेकानेक शङ्काओंका सम्यक्तया निराकरण हो जाता है। रासलीलाके सम्बन्धमें प्राचीन आचार्यों एवं अन्य महानुभावोंके कई मत हैं। कुछ लोग इसे आध्यात्मिक रूपक मानते हैं, कोई-कोई इसे काम-विजयकी लीला कहते हैं--इत्यादि। इन सभी मतोंकी समीक्षा करते हुए श्रीभाईजीने यह बतलाया है कि 'यह तो भगवान्का आत्मरमण--अपनी स्वरूपभूता श्रीगोपीजनोंके साथ रमण है, जिसके द्वारा प्रभुने यह दिखलाया है कि लोक-वेद--सबका त्याग करके उनपर अपने आपको न्योछावर कर देनेवाले भक्तोंको किस प्रकार वे अपना स्वरूप-दान करते हैं, सर्वथा उनके अधीन हो जाते हैं। श्रीकृष्णका यह रमण वस्तुतः 'स्वरूप-वितरण' ही है।' इसी प्रसङ्गमें यह भी बताया गया है कि भगवान् श्रीकृष्णका सम्पूर्ण चरित्र परमोज्ज्वल एवं आदर्श होनेपर भी उनकी सभी लीलाएँ अनुकरणीय नहीं हैं तथा सबका अनुकरण करने जाकर मनुष्य पतनके महान् गर्तमें गिर जायगा। भक्त-शिरोमणि सम्राट् परीक्षित्के द्वारा रास-लीलाके प्रसङ्गमें शङ्का उठाये जानेपर श्रीमद्भागवतके वक्ता स्वयं शुकदेव मुनि इस प्रकारकी चेतावनी बहुत पहले हम लोगोंको दे गये हैं।

प्रेमतत्वकी श्रीभाईजीने बड़ी ही मार्मिक एवं अधिकारपूर्ण व्याख्या की है तथा प्रेमके रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एवं महाभाव--इन स्तरों एवं उनके अवान्तर भेदोंको बड़े ही सुन्दर ढंगसे समझाया है। 'प्रेम' शब्दका प्रयोग आजकल लौकिक पति-पत्नीके पारस्परिक सम्बन्धके अर्थमें होने लगा है। कहीं-कहीं तो अवैध आसक्तिको भी 'प्रेम' कहा जाता है, जिससे इस शब्दकी सात्विकता एवं पवित्रता नष्ट हो गयी है और लोग 'प्रेम' नामसे ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। श्रीभाईजीके साहित्यिक अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पति-पत्नीके लौकिक सम्बन्धका नाम 'प्रेम' नहीं 'काम' है, जिसका आधार है, भोग--निजेन्द्रिय-तृप्ति, जब कि प्रेमका आधार है, त्याग--प्रेमास्पद-सुखैक-लालसा। भगवत्प्रेमी इस लोक और परलोकके भोगोंसे ही नहीं, मोक्षतकके सुखसे बहुत पहले ऊपर उठ जाता है। इसीलिये प्रेमियोंने भगवत्प्रेमको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष--इन चारोंसे ऊँचा, पञ्चम पुरुषार्थ माना है। इसमें स्व-सुख-वासनाका लेश भी नहीं होता। इस प्रेमकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति ही 'श्रीराधारानी' हैं। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति उत्कट चाहसे तथा भगवत्कृपासे ही सम्भव है, त्यागकी भित्तिपर ही प्रेमके दिव्य प्रासादका निर्माण होता है, प्रेमके लिये विषय-वैराग्यकी परम आवश्यकता है--इत्यादि विषयोंपर भी श्रीभाईजीने अद्भुत प्रकाश डाला है।

प्रेमकी चरम परिणति श्रीगोपीजनोंमें ही हुई है। इन्हें प्रेमका मूर्तिमान् विग्रह कहें तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। इसीलिये 'प्रेमतत्व'के साथ-साथ गोपाङ्गनाओंपर भी श्रीभाईजीने विस्तृत साहित्य दिया है। श्रीभाईजीने बताया है कि श्रीगोपाङ्गनाएँ श्रीराधाकी ही अंशभूता अथवा कायव्यूहरूपा हैं। इनका एकमात्र कार्य है--श्रीप्रिया-

प्रियतमका परस्पर मिलन कराना एवं दोनोंकी प्राणपणसे प्रेममयी सेवा करना। **'तत्सुखसुखित्वम्'** ही इनका आदर्श है, जो प्रेमका मूलमन्त्र है। इसीलिये देवर्षि नारदने अपने भक्तिसूत्रोंमें इन्हींको भक्तिका सर्वश्रेष्ठ आदर्श माना है—**'यथा व्रजगोपिकानाम्।'** जिनकी चरण-रजकी कामना स्वयं जगत्पिता ब्रह्माने ही नहीं, उद्धव-जैसे भक्ताग्रगण्योंने की है, जिनका दर्जा भगवान्‌ने ब्रह्मा, शंकर, भगवान् संकर्षण, भगवती लक्ष्मीसे—यहाँतक कि अपनेसे भी ऊँचा बताया है—**'न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः। न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥'** उन गोपीजनोंकी महिमा क्या कही जाय। इन गोपीजनोंके सहस्रशः यूथ हैं और सखी, सहचरी, प्रियनर्मसखी, मञ्जरी, दूती आदि अनेकों भेद हैं। इन सबके स्वरूप, सेवा, प्रेम तथा गोपीभावकी साधना आदि अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्यपूर्ण विषयोंकी बड़ी ही समीचीन एवं साङ्गोपाङ्ग व्याख्या श्रीभाईजीने की है। इसी प्रसङ्गमें उन्होंने यह भी बताया है कि गोपीभावकी साधना केवल स्त्रियाँ ही कर सकती हों, ऐसी बात नहीं है। सुतरां, इसके लिये स्त्रियोचित वेष सजनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो लोग ऐसा करते हैं, वे गोपीभावका एक प्रकारसे उपहास ही करते हैं। वस्तुतः यहाँ स्त्री-पुरुष-सम्बन्धकी तो कोई कल्पना ही नहीं है। यह तो एक पवित्रतम अप्राकृत भाव है, जो सर्वथा राग-गन्धसे शून्य है।

स्वकीया एवं परकीया भावोंको लेकर भी साधनाक्षेत्रमें तथा साहित्यिक क्षेत्रमें श्रीराधा-माधवके पवित्रतम सम्बन्धके प्रति अनेक भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हैं। श्रीभाईजीके इस ग्रन्थमें स्वकीया और परकीया भावका यत्र-तत्र जो विवेचन हुआ है, उसे दृष्टिमें रखकर श्रीराधामाधव एवं गोपी-कृष्णके प्रेम-सम्बन्धके विषयमें विचार करनेपर हृदय उसकी पवित्रतम एवं उज्ज्वलतम आभासे उद्भासित हो उठता है।

सचमुच श्रीभाईजीका साहित्य व्रज-रस—मधुररसका एक अमूल्य आकर है। हमारी धारणाके अनुसार इस विषयपर ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण, सुगम, सरस और प्रामाणिक विवेचनात्मक साहित्य कदाचित् किसी भी भाषामें आजतक नहीं लिखा गया है। संस्कृत-साहित्यमें अवश्य ही इस प्रकारकी सामग्री प्रचुररूपमें उपलब्ध है, परंतु वह यत्र-तत्र इतनी बिखरी पड़ी है कि उसके मर्मको हृदयंगम करते हुए उसका सम्यक्तया विश्लेषण तथा उपयोग करके समन्वित रूप देना श्रीभाईजी-जैसे पुरुषका ही काम था। श्रीभाईजीके साहित्यमें भक्तिशास्त्रका मर्म एवं व्रज-साहित्यका निचोड़ बहुत कुछ आ गया है। श्रीभाईजीने जो कुछ लिखा है, वह वैष्णव-शास्त्र एवं रसिक सम्प्रदायके सिद्धान्तोंद्वारा पूर्णतया सम्मत तो है ही, उसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनके प्रत्येक शब्दपर अनुभवकी पुट लगी है। अतः स्वाभाविक ही श्रीभाईजीके साहित्यके मनोयोगपूर्वक अध्ययन-मननसे एवं उसमें वर्णित सिद्धान्तोंको अपने जीवनमें उतारनेसे मनुष्य परम दुर्लभ मोक्षको भी लघु बना देनेवाले भगवत्प्रेमके मार्गमें अनायास ही अग्रसर हो सकता है। इस प्रकार मधुर-भावकी साधना करनेवालोंके लिये श्रीभाईजीका साहित्य बहुत उपयोगी है। मधुरभावकी उपासनाके नामपर व्यक्तिगत जीवनमें तथा समष्टिरूप समाजमें बहुत गंदगी आयी है और आनेकी सम्भावना है। कारण, मधुर-रसका 'पारा' यदि विधिपूर्वक सेवन न किया गया तो वह फूट पड़ता है और सारे शरीर और मनको क्षत-विक्षत कर डालता है। श्रीभाईजीके इस ग्रन्थमें प्रस्तुत मधुर-भावकी उपासनाके सिद्धान्तोंको पकड़कर चलने-वालेका नैतिक स्तर निरन्तर उन्नत होता जायगा और वह सांसारिक भोगोंके दलदलसे—नीच कामके चंगुलसे निकलकर विशुद्ध प्रेम-राज्यमें प्रवेश कर पायेगा।

श्रीभाईजीके श्रीराधाकृष्ण-सम्बन्धी साहित्यपर कतिपय गण्यमान्य विद्वानों, भक्तों एवं महात्माओंके विचार, जो कई वर्ष पूर्व प्राप्त हुए थे, नीचे दिये जा रहे हैं—

आचार्य श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी

"श्रीभाईजीके 'राधामाधव-चिन्तन'में भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनका अद्भुत समन्वय है। यह भाईजी-जैसे भक्तकी लेखनीसे ही लिखा जा सकता था। शास्त्रका अध्ययन इसमें बड़ी गहराईसे स्थित है। निरन्तर चिन्तन-मनन और स्वानुभूतिसे पवित्रीकृत हृदयमें ही शास्त्र ऐसा रूप ग्रहण कर सकता है। श्रीराधारानीके दिव्य रूप और भगवान् श्रीकृष्णके चिद्घनविग्रह रूपका विवेचन इस प्रकारकी सहज वाणीमें वही कर सकता है, जिसने उन्हें पाया है, सौ-सौ रूपोंमें उनका साक्षात्कार किया है।"

षोडशगीतके प्रणेता और उसके यथार्थ ग्राहक

व्रजसाहित्यके मर्मज्ञ श्रीप्रभुदयालजी मित्तल

"श्रीभाईजीकी रसवती लेखनीसे निस्सृत श्रीराधा-माधव-सम्बन्धी इस साहित्य-सरितामें अवगाहन कर अतीव आनन्द प्राप्त किया। महाभाव और रसराज-स्वरूप श्रीराधा-कृष्णके तत्वका जैसा साङ्गोपाङ्ग विवेचन इन रचनाओं-में हुआ है, उससे श्रीभाईजीके दीर्घकालीन अध्ययन और गहन चिन्तन-मननका प्रत्यक्ष परिचय मिलता है।

श्रीराधा-कृष्ण-तत्व वास्तवमें व्रजकी वस्तु है। व्रजके महात्माओंने अपनी दीर्घकालीन साधनाके फलस्वरूप इसे प्रकट किया था और व्रजके विद्वानोंने ही अपनी प्रकाण्ड विद्वत्तासे इसका प्रसार-प्रचार किया था। किंतु श्रीभाईजीकी इन रचनाओंमें इस विषयका जैसा मर्मस्पर्शी कथन हुआ है, उससे व्रजके बड़े-से-बड़े विद्वान्को भी अब नूतन प्रकाश मिलेगा।"

श्रीस्वामीजी श्रीश्रीकमलनयनाचार्यजी शास्त्री, श्रीधाम वृन्दावन

"यद्यपि महानुभावोंने प्रेमका **'गुणरहितं कामनारहितं सूक्ष्मतरमनुभवरूपं प्रतिक्षणवर्धमानम्'** यह लक्षण माना है, तथापि 'श्रीराधामाधव-चिन्तन'में लेखकने प्रेमतत्वका जो चित्र खींचा है, वह यथार्थमें श्रीविहारिणीजी एवं श्रीविहारीजीकी अपनी देन प्रतीत होती है; क्योंकि लेखककी हृदयभित्तिपर पहले पूर्वरागका उदय था, अब प्रौढ़रागरञ्जित राकेशका समुदय हृदयगगनपर हो रहा है।

पोद्दारजीके तत्तत् व्याख्यानों एवं लेखोंकी शृङ्खलासे यह प्रतीत होता है कि ये सज्जन उस पवित्रतम भूमिकापर समारूढ़ हैं, जहाँ परमैकान्तिक जन—श्रीस्वामिनीवल्लभके कृपाकटाक्षसे प्लावितहृदय ज्ञानी महानुभाव रस-मानसमें मरालवत् विहार करते हैं। यथा च—

ज्ञानी तु परमैकान्ती तदायत्तात्मजीवनः।
तत्संश्लेषवियोगैकसुखदुःखस्तदैकधीरिति ॥

इस भावनामें पगे हुए श्रीपोद्दारजीका जीवन ही मानो परम शेषी श्रीदिव्य-दम्पतिके मुखविकासार्थ एवं परमामोदके लिये ही संसारमें है; अन्यथा इनका शरीर-धारण करना निजकृत कर्माकर्म-भोगके लिये सिद्ध नहीं हो रहा है।"

शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी

"श्रीराधामाधव-चिन्तन, आदि साहित्य निश्चित ही किसी व्यक्तिविशेषकी अपनी कृति नहीं हो सकता। मुझे तो ऐसा अनुभव होने लगा कि मानो भाईजीके माध्यमसे श्रीराधारानीने स्वयं ही अपने कुछ मार्मिक उद्गार भक्तोंको वरदोपहारके रूपमें प्रदान किये हैं। श्रीभाईजीपर करुणामयी रासेश्वरी महारानीकी असीम कृपा मालूम पड़ती है, तभी वे इस निगूढ़ तत्त्वके प्रतिपादनमें सक्षम हो पाये हैं।"

श्रीराधामाधव-रस-सुधा (षोडश-गीत)

श्रीभाईजीके श्रीराधाकृष्ण-सम्बन्धी साहित्यमें 'श्रीराधामाधव-रस-सुधा' पुस्तिकाका सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'श्रीराधामाधव-रस-सुधा' श्रीभाईजीके १६ गीतोंकी एक छोटी-सी पुस्तिका है। इन सोलह गीतोंमें श्रीप्रिया-प्रियतमके परस्पर प्रेमालापका सुमधुर चित्रण किया गया है। इनमेंसे आठ पदोंमें श्रीकृष्णके श्रीराधाके प्रति प्रेमोद्गार और शेष आठमें श्रीराधाके श्रीकृष्णके प्रति प्रेमोद्गार वर्णित हैं। रस-साहित्यमें अधिकांश रचनाएँ ऐसी ही उपलब्ध होती हैं, जिनमें श्रीकृष्ण प्रेमास्पदके रूपमें और श्रीराधा प्रेमिकाके रूपमें चित्रित की गयी हैं। इन सोलह गीतोंमें आठ पद ऐसे हैं, जिनमें श्रीकृष्ण श्रीराधाको अपनी प्रेमास्पदा मानकर उन्हें प्रेमकी स्वामिनी और अपनेको प्रेमका कङ्गाल स्वीकार करते हैं और उनके उत्तररूपमें आठ पद श्रीराधाके द्वारा कहे गये हैं, जिनमें श्रीराधा अपनेको अत्यन्त दीना और श्रीकृष्णको प्रेमके धनीरूपमें स्वीकार करती हैं। इस प्रकार इन सोलह पदोंमें प्रेमिगत दैन्य और प्रेमास्पदकी महत्ताका उत्तरोत्तर विकास दृष्टिगत होता है। पदोंके आमुख-रूपमें दिये गये महाभाव-रसराज-वन्दना शीर्षक पाँच दोहे श्रीराधाकृष्णके स्वरूप एवं उनके परस्पर सम्बन्धका सूत्ररूपमें दिग्दर्शन कराते हैं और अन्तमें 'पुष्पिका'के नामसे लिखे गये पाँच दोहे भी उनके उसी पारस्परिक प्रेमकी महत्ता, त्यागमयता तथा अहंकार-शून्यताकी ओर इङ्गित करते हैं।

श्रीराधामाधवके स्वरूप एवं सम्बन्धपर श्रीभाईजीकी उक्त षोडशगीतकी भूमिकाके रूपमें लिखी गयी निम्नाङ्कित पंक्तियाँ मननीय हैं—

"सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका आनन्दस्वरूप या ह्लादिनी शक्ति ही श्रीराधाके रूपमें प्रकट है। श्रीराधाजी स्वरूपतः भगवान् श्रीकृष्णके विशुद्धतम प्रेमकी ही अद्वितीय घनीभूत नित्य स्थिति हैं। ह्लादिनीका सार प्रेम है; प्रेमका सार मादनाख्य महाभाव है और श्रीराधाजी मूर्तिमती मादनाख्य महाभावरूपा हैं। वे प्रत्यक्ष साक्षात् ह्लादिनी शक्ति हैं, पवित्रतम नित्य वर्द्धनशील प्रेमकी आत्मस्वरूपा अधिष्ठात्री देवी हैं। कामगन्धहीन, स्वसुख-वाञ्छा-वासना-कल्पना-गन्धसे सर्वथा रहित, श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी श्रीकृष्णसुखजीवना श्रीराधाका एकमात्र कार्य है—त्यागमयी पवित्रतम नित्य सेवाके द्वारा श्रीकृष्णका आनन्दविधान। श्रीराधा पूर्णतमा शक्ति हैं, श्रीकृष्ण परिपूर्णतम शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान्में भेद तथा अभेद दोनों ही नित्य वर्तमान हैं। अभेदरूपमें तत्त्वतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण अनादि, अनन्त, नित्य एक हैं और प्रेमानन्दमयी दिव्य लीलाके रसास्वादनार्थ अनादिकालसे ही नित्य दो स्वरूपोंमें विराजित हैं। श्रीराधाका मादनाख्य महाभावरूप प्रेम अत्यन्त गौरवमय होनेपर भी मदीयतामय मधुर स्नेहसे आविर्भूत होनेके कारण सर्वथा ऐश्वर्यगन्ध-शून्य है। वह न तो अपनेमें गौरवकी कल्पना करता है न गौरवकी कामना ही। सर्वोपरि होनेपर भी वह अहंकारादि-दोष-लेश-शून्य है। यह मादनाख्य महाभाव ही राधा-प्रेमका एक विशिष्ट रूप है। राधाजी इसी भावसे आश्रयनिष्ठ प्रेमके द्वारा प्रियतम श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं। उन्हें उसमें जो महान् सुख मिलता है, वह सुख, श्रीकृष्ण 'विषय' रूपसे राधाके द्वारा सेवा प्राप्त करके जिस प्रेमसुखका अनुभव करते हैं, उससे अनन्तगुना अधिक है। अतएव श्रीकृष्ण चाहते हैं कि मैं प्रेमका 'विषय' न होकर 'आश्रय' बनूँ, अर्थात् मैं सेवाके द्वारा प्रेम प्राप्त करनेवाला 'विषय' ही न बनकर सेवा करके प्रेमदान करनेवाला भी बनूँ। मैं आराध्य ही न बनकर, आराधक भी बनूँ। इसीसे श्रीकृष्ण नित्य राधाके आराध्य होनेपर भी स्वयं उनके आराधक बन जाते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण प्रेमी हैं, वहाँ श्रीराधा उनकी प्रेमास्पदा हैं और जहाँ श्रीराधा प्रेमिकाके भावसे आविष्ट हैं, वहाँ श्रीकृष्ण प्रेमास्पद हैं। दोनों ही अपनेमें प्रेमका अभाव देखते हैं और अपनेको अत्यन्त दीन और दूसरेका ऋणी अनुभव करते हैं; क्योंकि विशुद्ध प्रेमका यही स्वभाव है। पाठक विशेष गहराईमें जाकर इन पदोंके भावोंको ग्रहण करनेका प्रयास करेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि श्रीराधाकृष्णके प्रेमका स्वरूप कितना पवित्रतम समर्पणपूर्ण तथा दिव्य है। इसी प्रेमको आदर्श मानकर प्रेममार्गके साधक अपना मार्ग निश्चय करें और श्रीराधा-माधवके चरणोंमें प्रेम प्राप्त करें, इसी हेतु इन पदोंका प्रकाशन किया गया है।"

इन षोडश-गीतोंमें एक राधाकृष्णप्रेमी संतने विलक्षणता और स्थायी गुण देखे हैं उन्होंने इन पदोंको श्रीधाम वृन्दावनके एक प्रमुख देवालय श्रीराधारमण-मन्दिरमें तथा श्रीपुरीधामके श्रीजगन्नाथ-मन्दिरमें उक्त मन्दिरके अधिकारियोंकी अनुमतिसे व्रजभाषाके अनुवादसहित संगमरमरके प्रस्तरखण्डोंमें उत्कीर्ण करवाया है। पुरीके मन्दिरमें उनका उत्कल भाषामें अनुवाद भी मूल-गीतोंके साथ उत्कीर्ण किया गया है।

इतना ही नहीं, वन्दना और पुष्पिकासहित इन पदोंको व्रजभाषा एवं अंग्रेजी-भाषान्तरोंके साथ ताम्रपट्टोंपर भी उत्कीर्ण कराके गोरखपुरमें सुरक्षित रखा गया है। साथ ही व्रजभूमिके श्रीवृन्दावन एवं जतीपुरा—इन दोनों प्रमुख तीर्थस्थानोंपर तथा बीकानेर (राजस्थान)में भी भक्तोंद्वारा षोडश-गीत-भवनोंका निर्माण कराके उनमें मूल-गीतोंके ताम्रपट्ट विग्रहरूपमें स्थापित किये गये हैं, और उनकी नियमितरूपसे पूजा और रात्रिमें २ से ४॥ बजेतक पाठ होता है। गोरखपुरकी गीतावाटिकामें तथा अन्य कई स्थानोंपर भी नियमितरूपसे व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूपसे भावुक-भक्तगण इनका रात्रिमें २ से ४॥ बजेतक पाठ करते हैं और उनमेंसे कइयोंको इस पाठके फल-स्वरूप श्रीराधामाधवकी विशेष कृपाके दर्शन भी हुए हैं।

'श्रीराधामाधव-रस-सुधा'के संस्कृत, तमिल, तेलुगु, मलयालम्, कन्नड़, अंग्रेजी, फ्रेंच एवं जर्मन भाषाओंमें अनुवाद श्रीराधामाधव-सेवा-संस्थानके द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। 'श्रीराधा माधव-रस-सुधा'के खड़ी बोली, बँगला, सिंधी, उड़िया, मराठी, उर्दू तथा रशन (रूसी) भाषाओंमें भी अनुवाद हो चुके हैं और ये अनुवाद संस्थानसे यथासमय ही प्रकाशित होंगे।

●
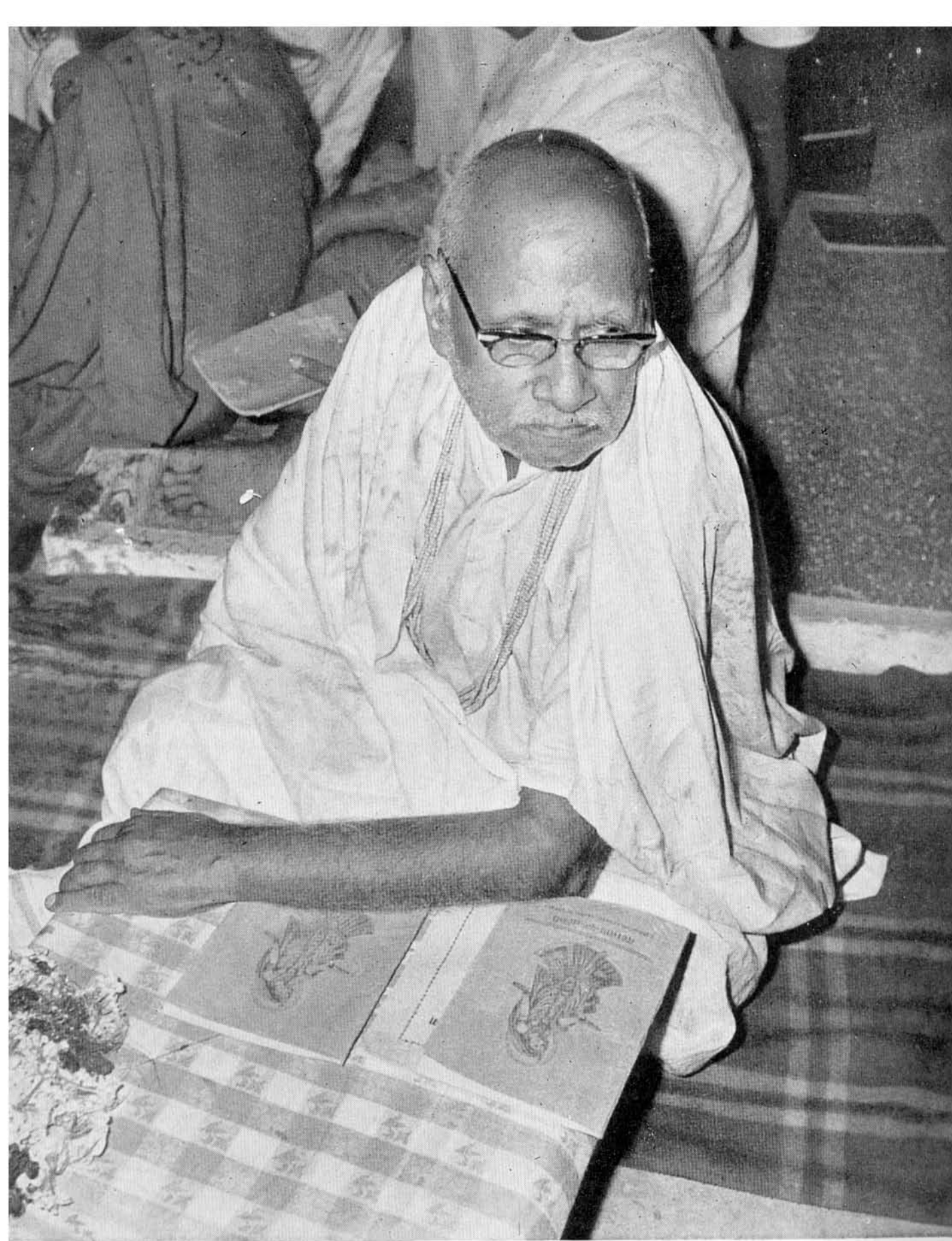
श्रीराधाष्टमी-महामहोत्सवके कर्णधार

श्रीराधाष्टमी-महोत्सव

एक महोत्सव-प्रेमी

श्रीराधाष्टमी-महोत्सव श्रीभाईजी और पूज्य बाबा (स्वामी चक्रधरजी)का अपने हाथोंसे वपन किया हुआ तथा अपने अन्तरकी छलकती स्नेह-सुधासे सिञ्चित किया हुआ साधनाका वह अमर बोधिवृक्ष है, जिसकी सघन छायामें आकर लाखों-करोड़ों व्यक्ति आश्रय पा सकते—शान्ति अनुभव कर सकते हैं—और मानव-जीवनके चरम लक्ष्यकी ओर अग्रसर हो सकते हैं। महाभाव-रस-समुद्रमें अवगाहन करनेकी अभिलाषा रखनेवालोंके लिये यह सागरके गर्भमें स्थित वह प्रकाश-स्तम्भ है, जो दिशा और गंतव्यका सही मार्ग-दर्शन करता है। उन्हीं दक्ष एवं पावन हाथोंसे भावके इस गगनचुम्बी प्रासादका शिलान्यास हुआ है, जिसके चमचमाते शिखर युगोंतक त्रस्त मानवताको भावकी ओर आकर्षित करते रहेंगे, जिसके विशाल द्वार कभी ऊँच-नीच, गरीब-अमीरके भेदकी ओर दृष्टिपात नहीं करते, जहाँसे याचक खाली हाथ नहीं लौटता। इसके निर्माणका श्रेय उन महासंतको है, जिनके लिये अनुकूलता, प्रतिकूलता, सुख-दुःख समान अर्थ रखते थे, महाभावके युगपत् शान्त एवं उच्छलित सागरमें जो निरन्तर डूबते-उतराते रहते थे, जिनकी उपस्थिति ही उस महोत्सवका प्राण थी—जिनका सक्रिय सहयोग ही उत्सवकी आधारशिला थी। पर हाय रे अकरुण नियति—आज इस महामहोत्सवके प्राणोंकी चिर-बिदाई हो चुकी है—श्रीभाईजीकी सशरीर संनिधिका अप्रतिम सुख हमसे छिन चुका है। परंतु श्रीराधाष्टमी-महोत्सवमें हमारे भाईजी आज भी उसी रूपमें हम अभागोंपर कृपावृष्टि करनेके लिये उपस्थित रहते ही हैं—भले ही हमारी अंधी आँखें उन्हें न देख सकती हों।

सदा ही रुग्ण रहनेवाले भाईजीके दुर्बल शरीरमें श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके समय अपरिमित उल्लास भर जाता था—एकान्त कक्षमें बैठे अपने लेखन-कार्यमें व्यस्त-से प्रतीत हो रहे भी भाईजीको उत्सव सुचारुरूपसे साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न हो सके, यही अभिप्रेत था और उनकी यह इच्छा ही सबपर उसी रूपमें मूर्त हो उठती थी। सभी प्राणपणसे इस प्रयासमें जुट पड़ते—और भाईजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा कार्यकर्ताओंको मत्त बना देती—हाँ, वह नहीं समझ पाता, इस सफलताके अन्तरालमें हैं भाईजीका अनुपम स्नेह और कृपा ही।

दो-तीन दिन पहलेसे विभिन्न नगरोंसे आनेवालोंका ताँता बँध जाता था—आस-पासके सभी स्थानोंमें यथासम्भव आगन्तुकोंके ठहरनेकी व्यवस्था करनेपर भी समुचित व्यवस्था नहीं हो पाती और गीतावाटिकासे दूर अन्यान्य स्थानोंपर भी प्रबन्ध करना पड़ता। प्रत्येक आगन्तुकसे वे स्वयं मिलते, उसकी आवास-व्यवस्थाके सम्बन्धमें उससे प्रश्न करते और घरवालोंको आगन्तुकोंका उचित आदर और उनकी समुचित व्यवस्थाके लिये बार-बार आदेश देते। हजारोंकी संख्यामें लोग एकत्रित होते और भाईजीका स्नेह पाकर धन्य हो उठते। प्रातः और सायं कीर्तन, पद, प्रवचन आदिका आयोजन होता और भाईजी ही उसका संचालन करते। भाईजीकी मूर्त संनिधि वाद्य-यन्त्रोंकी मधुर झंकृति और गायकका आलाप वातावरणको सात्विकताके ऐसे रंगमें रँग देते कि मानस स्वतः सत्की ओर अग्रसर होनेका प्रयास करता—और उस भूमिपर पड़ा भाईजीके प्रवचनका अमोघ बीज निश्चय ही सत्को अंकुरित करेगा, भले ही कालमान उसका कुछ भी हो।

भजन आदिकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें भी भाईजी पूर्ण सतर्क रहते। सर्वत्र भगवद्दर्शन उनको सहज होता था और प्रभुकी साङ्गोपाङ्ग अर्चना करना उनका नित्य-स्वभाव था—उसमें त्रुटि उन्हें सहन हो ही कैसे सकती थी।

उत्सवके लगभग एक मास पूर्वसे पंडालकी सज्जा आरम्भ हो जाती—चित्रकार, राजमिस्त्री, बढ़ई आदि सब दत्तचित्तसे उसमें लग जाते। भाईजी भी उन्हें उत्साहित करनेको प्रातः और सायं नियमितरूपसे पंडालमें आते और वस्तुओंको देखते हुए उनके सम्बन्धमें आदेश देते। उनके स्नेह-भीने शब्दोंको सुनकर श्रम तो सर्वथा दूर हो ही जाता, प्राणोंमें अनुपम उल्लास-सा भर उठता और समयका बन्धन तोड़कर सब लगे रहते। रात-दिन कार्य चलता—परंतु भाईजीके स्नेहपूरित वचनोंका सम्मोहन ही था, जो कभी किसीको श्रान्तिका अनुभव ही होने नहीं देता था।

अष्टमीको प्रातः ४॥ बजेसे शहनाई-वादन प्रारम्भ होता और उस शहनाईके साथ ही भाईजीका स्नेहभीना स्वर सुन पड़ता। कक्षसे बाहर आकर वे छतपर खड़े हो जाते। कार्यकर्ताओंके प्राणोंमें अभिनव स्फूर्ति आ जाती और वातावरणमें आनन्द-सा छा जाता।

प्रभात-फेरी प्रारम्भ होती ५॥ बजेसे 'राधिका रमण' 'अम्बुज नयन'का 'मधुर स्वर कानोंमें रस-सुधा उड़ेलने लगता और 'हरे राम हरे राम' संकीर्तन प्रारम्भ होता। भाव-विभोर--उन्मत्त-से नृत्य करते लोग ऊपर भाईजीके पास जाते और भाईजी भी अपने कमरेसे बाहर छतपर आकर खड़े हो जाते। मुखपर स्वाभाविक मुस्कान, श्वेत खादीके वस्त्र और मस्तकपर पीत चन्दनका गोल टीका--दोनों हाथ जोड़े भाईजी खड़े हैं--नेत्र सजल हैं। कीर्तन करनेवाले गाते-नाचते उनके चरणोंमें ढुल पड़ते और भाईजीका वरद-हस्त मस्तकपर पा कृतकृत्य हो जाते। ऐसा अनुपम दृश्य उपस्थित हो जाता, जो मात्र अनुभवगम्य ही था--शब्द उसका चित्राङ्कन नहीं कर सकते।

लगभग ८॥ बजे विशाल पंडालमें बिछी दरीपर आकर गरिमाके मूर्तिमान् रूप भाईजी भी आकर बैठ जाते--वही सादा वेष, स्वाभाविक मुस्कान और स्नेहिल नयन। न ऊँचा आसन है, न ऊँचा मञ्च; सहसा देखकर विश्वास हो नहीं पाता कि यही हैं वे ?। एक मूक प्रश्नचिह्न लिये श्रोता मन्त्रमुग्ध-से बैठे रहते। भाईजीका प्रवचन प्रारम्भ हो गया--एक होड़-सी लगी है सबमें उनका प्रवचन रिकार्ड करनेकी। सामने काठकी चौकीपर दस-बारह माइक लगे हैं--टेपरिकार्डरोंकी लाइन लगी है--परंतु भाईजीको इससे कोई प्रयोजन नहीं, उन्हें तो भगवद्भावका वितरण करना ही मात्र अभिप्रेत था और उसे वे करते रहते।

प्रवचनके उपरान्त भाईजी कुटियासे बाबाको ले आते--और दोनों मञ्चपर विराजमान हो जाते। दोनों महापुरुषोंके नेत्र पूर्णतः उन्मीलित हो हम अभागोंपर अनुपम कृपाकी वर्षा करते। हमारी साधनाकी सर्वोपरि सिद्धि यही थी--हमारे सम्पूर्ण आयोजनका अभिलषित यही था। आँखें बंद किये सभी ५ मिनटतक जन्मकी प्रतीक्षा करते और बारह बजे शङ्ख, घंटा, घड़ियालके स्वरसे दिशाएँ निनादित हो उठतीं। केटिया पहने, हाथमें कपूरकी आरती लिये भाईजी नीराजन करते--और अन्तरके किसी कोनेमें गूँज उठता--'हाँ-हाँ आज श्रीराधाका जन्म हुआ है और हम सब इस मङ्गलमय घड़ीमें उनकी सन्निधिमें हैं।'

लगभग ४ बजेतक कार्यक्रमका समापन होता--और फिर प्रसाद-वितरण। भाईजी भी इसके उपरान्त ही विश्राम करते। रात्रिमें भी पद-कीर्तन होता और भाईजी उसमें पूरा सहयोग देते। दूसरे दिन होता है--दधिकाँदो। दधि-कर्दम उत्सवका विशिष्ट अङ्ग है--मनों दहीके साथ हरिद्रा, केशर, कपूर, इत्र, गुलाबजल आदि मिलाकर यह तैयार किया जाता--श्रीराधाकुमारीके अर्पण होनेके उपरान्त सब भाव-विभोर होकर दही एवं मक्खनको एक दूसरेपर डालते, उछलते और कीर्तन करते। सचमुच दधिकी कीच-सी मच जाती थी। इसके लिये निर्दिष्ट स्थानमें सम्पूर्ण रात्रि अल्पना की जाती और सबेरे भाईजी अपने हाथसे उसका पूजन करते। दधि-कर्दमका प्रारम्भ होता उद्दाम कीर्तनसे। उद्दाम संकीर्तन भाईजीको विशेष प्रिय था। वे कहते थे--उद्दामका अर्थ है--उद्दण्ड, जिसमें नियमका कोई बन्धन न रहे--लोग सब कुछ भूलकर भावमें विभोर होकर नृत्य करें; बस, अन्य कुछ भी स्मरण न रहे। और भावुक हृदयोंको अनेक अनुभूतियाँ भी उस नृत्यके अन्तरालमें होती रही हैं। भाईजी अपने प्रवचनमें सदा ही कहा करते थे--श्रीराधाका जन्म-महोत्सव, जिसे आज हम मना रहे हैं, कोई खेल नहीं, बड़ी उच्चकोटिकी साधना है--और यहाँ जो जिस भावसे आयेगा, उसे वही मिलेगा। तमाशा देखनेवालोंके लिये यह तमाशा है और दोष देखनेवालोंको इसमें दोष भी बहुत मिल जायेंगे। पर वस्तुतः है यह साधनाकी ऊँची-से-ऊँची वस्तु।

उत्सव सम्पन्न होनेपर भाईजी भावभीनी बिदाई सबको देते। वे कहते--आज यह उत्सव सम्पन्न हो रहा है--खतम नहीं--खतम तो यह होता ही नहीं, यह तो नित्य चलता रहता है। आजके इस शुभ अवसरपर हम कामना करें--हमें भी श्रीराधारानीकी कृपाका एक सीकर प्राप्त हो जाय। आनेवाले सब कष्ट उठाकर आये हैं, उनका स्नेह है, कृपा है। कार्यकर्ताओंने कार्य किया है, वह भी सराहनीय है; पर धन्यवाद किसे दूँ ? सभी तो अपने हैं। मैं तो सबसे यही प्रार्थना करूँगा कि सब ऐसी कृपा करें, जिससे मेरा मन भी श्रीराधाकी ओर बढ़ चले।
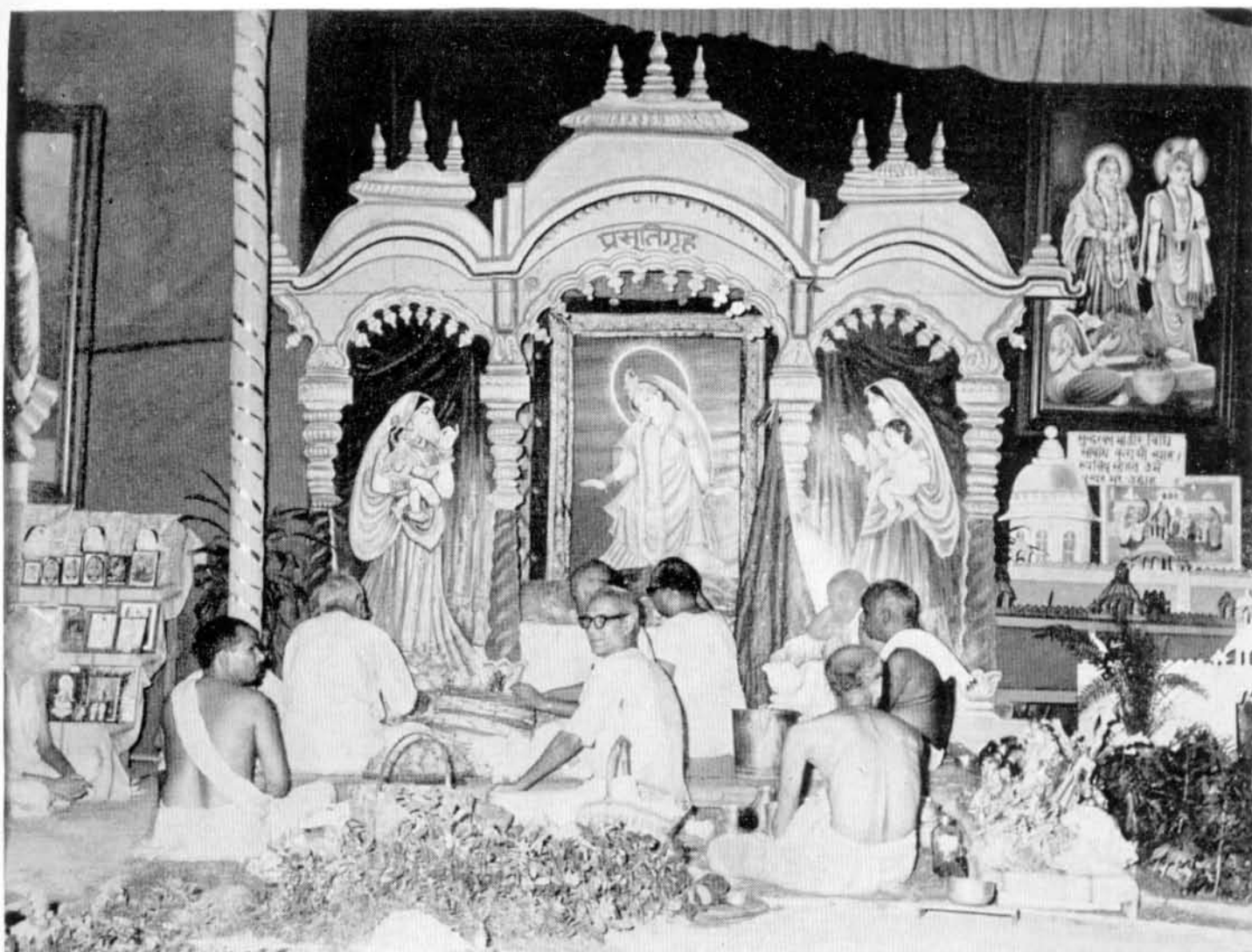
श्रीराधा कुमारीका पूजन

पूजनकी सम्पन्नता साष्टांग प्रणमनसे
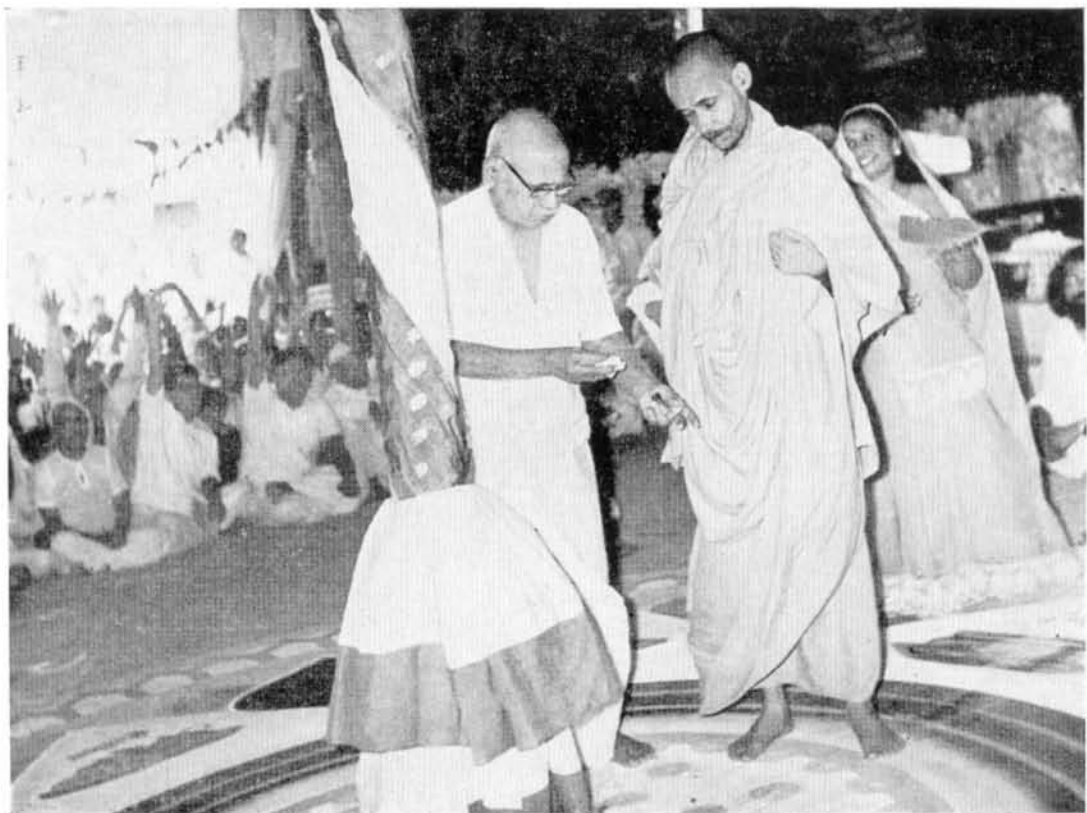
अल्पना-स्थली की अर्चना

डाँडिया नृत्यके लिये प्रस्तुत स्वरूप एवं उत्सुक दर्शक

भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्‌की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

पर अब तो हम अभागोंके पास रह गयी है मात्र उनकी स्मृति ही। अवश्य ही यह उत्सव हमारे भाईजीद्वारा संचालित एक परम्परा है––उनकी अभिलषित वस्तु है––उनकी रुचिका कार्य है। वे चाहते थे स्थान-स्थानपर, नगर-नगरमें इसका प्रचार-प्रसार हो और धूमधामसे श्रीराधा-प्राकटचका उत्सव मनाया जाय।

आज यह उत्सव प्राणरहित हो गया है––भाईजीकी मूर्त उपस्थितिके अभावमें उत्सवकी प्रत्येक सज्जा, प्रत्येक अङ्ग अपूर्ण है। हर्ष और उल्लासके स्थानपर हैं अश्रु और क्रन्दन। सज्जाके सौन्दर्यसे कसक बिखर रही है––गायकके कण्ठसे रुदनका स्वर फूट रहा है, वाद्य-यन्त्रोंसे पीड़ा झंकृत हो रही है––मञ्चका सूनापन मन-प्राणोंको बेध रहा है। आँखें ढूँढ़ रही हैं एक और केवल एकको––उनको जो उत्सवके प्राण थे, सर्वस्व थे। पर हाय रे ! वे ही अदृश्य हो चुके हैं। जो सबके अपने थे, वे ही चले गये। रह-रहकर मनमें आता है––भाईजीकी रुचिके अनुरूप हम चल सकें। यही तो हमारा लक्ष्य है––और यह उत्सव भाईजीकी रुचिका ही प्रतीक है। उनकी चलायी हुई परम्पराका निर्वाह ही हमारे जीवनका केन्द्र-बिन्दु बना रहना चाहिये। साथ ही यह भी नितान्त सत्य है कि भाईजी आज भी इस उत्सवमें पधारकर हमपर कृपाकी वर्षा करते ही हैं।

× × ×

श्रीराधाजीका सम्बन्ध लौकिक लीलासे कम रहा। भगवान्‌की ह्लादिनी––आनन्दरूपा निजशक्ति होनेके कारण उनका श्रीकृष्ण-आनन्द-विधानसे ही विशेष सम्बन्ध रहा; अतः जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी विभिन्न रूपोंमें तथा विभिन्न भावोंसे सर्वत्र पूजा-उपासना हुई, उनका प्राकटच-महोत्सव जैसे सर्वत्र मनाया जाने लगा, श्रीराधाजीका महोत्सव स्वाभाविक ही उस प्रकार नहीं मनाया गया। परंतु भगवत्प्रेमके उच्चतम साधनराज्यमें तो श्रीराधाजीके दिव्य आदर्शको सामने रखनेकी परम अनिवार्य आवश्यकता है ही; विश्वजगत्‌के मानवप्राणीके लिये भी पारस्परिक प्रेमकी वृद्धिके हेतु जिस त्यागकी आवश्यकता है और जिसके बिना प्रेम एक केवल मोहका पर्यायवाची बना रहता है, वह त्याग भी राधाजीके परम त्यागमय जीवनको आदर्श मानकर चलनेसे शीघ्र सिद्ध हो सकता है। इसके लिये श्रीराधाजीके दिव्य प्रेमका, दिव्य भावोंका, उनके महान् त्यागका, उनकी दिव्य जीवनचर्याका और उनके स्वरूप-तत्त्वका स्मरण परम आवश्यक है और इसी महान् उद्देश्यको लेकर हमारे परमश्रद्धेय नित्यलीलालीन श्रीभाईजीने लगभग ३० वर्ष पूर्व प्राचीन परम्परागत राधा-जन्म-महोत्सवको देशभरमें व्यापकरूप देने, उनकी महान् शिक्षाके प्रचार-प्रसारके द्वारा क्षुद्र 'स्व'की सेवामें लगे हुए और पशुता तथा असुरताकी ओर जाते हुए एवं अधोगामी मनुष्यको ऊपर उठाकर उसको वास्तविक मानव बनाने तथा साधनाके उच्च स्तरपर पहुँचानेके लिये इस आयोजनका एक महोत्सवके रूपमें अपने यहाँ प्रारम्भ किया था। भगवान् श्रीराधामाधवकी कृपासे इस आयोजनमें उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त होती गयी और यह आयोजन एक साधनाके विशाल बोधिवृक्षके रूपमें परिणत हो गया। इतना ही नहीं, यहाँके महोत्सवसे प्रेरणा ग्रहणकर तथा 'कल्याण'में प्रकाशित इन महोत्सवोंपर दिये गये परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके अनुभूतिपूर्ण, सारगर्भित प्रवचनोंसे प्रभावित होकर देशके कोने-कोनेमें श्रीराधारानीका यह प्राकटच-उत्सव मनाया जाने लगा है। इसकी व्यापकता दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। परिणामस्वरूप श्रीराधारानी तथा श्रीगोपाङ्गनाओंके सम्बन्धमें फैले हुए मोहजनित दुर्भावोंका नाश होकर उनके परमोच्च दिव्य जीवनकी भी झाँकी कहीं-कहीं होने लगी है। आध्यात्मिक जगत् परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके इस परम पावन प्रयासके प्रति सदा ऋणी रहेगा।

प्रतिवर्षकी परम्पराके अनुसार इस वर्ष भी श्रीराधाष्टमी-महोत्सव बड़े ही समारोह एवं उत्साहके साथ मनाया गया, यद्यपि श्रीभाईजीके वियोगजन्य दुःखकी छाया उसपर अवश्य थी। श्रीभाईजी अमूर्त्तरूपसे उत्सवमें सम्मिलित रहे। श्रीराधारानीने चाहा तो आगे भी प्रतिवर्ष श्रीराधा-जन्म-महोत्सव गोरखपुरमें इसी प्रकार मनाया जाता रहेगा। हमारी श्रीराधारानीके भक्तोंसे विनम्र प्रार्थना है कि वे अपने-अपने स्थानपर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूपमें प्रतिवर्ष इस महोत्सवका आयोजन करें और श्रीराधारानीकी कृपा प्राप्त करें। साथ ही परमभागवत श्रीभाईजीद्वारा प्रचारित साधना-जगत्‌की एक महती परम्पराको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें अपना सहयोग प्रदानकर पुण्यके भागी बनें।

श्रीभगवन्नाम-प्रचार

श्रीमुकुन्द गोस्वामी

श्रीभगवन्नामपर श्रीभाईजीकी रुचि जीवनकालके प्रारम्भसे ही थी। आस्तिक परिवारमें जन्मग्रहण करनेसे तथा दादी रामकौर देवीकी शिक्षाओंके कारण वे बाल्यकालसे ही भगवन्नामका जप किया करते थे। फलतः बाल्य जीवनमें उन्हें नामजपकी महिमाके चमत्कारोंके दर्शन भी यदा-कदा होते थे।

सन् १९१६में क्रान्तिकारी दलकी प्रवृत्तियोंमें सहयोग देनेके कारण जब तत्कालीन अंग्रेजी सरकारने उन्हें अचानक ही बंदी बनाकर कलकत्तेके डुलण्डा हाउस-स्थित अलीपुर जेलमें बंद कर दिया, तब एक बार उनकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया।

श्रीभाईजीने वहाँ 'हरे राम····'के षोडशनामात्मक महामन्त्रका जप प्रारम्भ कर दिया और तत्काल ही उन्हें शान्ति-लाभ हो गया। निराशाके बादल हट गये, हृदयमें शान्ति, आनन्द तथा भगवद्विश्वासकी ज्योति जगम-मगाने लगी।

अलीपुर जेलसे श्रीभाईजी शिमलापाल नामक बंगाल प्रान्तके एक छोटे-से गाँवमें नजरबंदके रूपमें स्थानान्तरित कर दिये गये। शिमलापालके अपने २१ माहके बंदी-जीवनमें भी उनकी नामजपकी साधना चलती रही। इस समय नामजपके प्रति उनकी रुचि इतनी अधिक बढ़ी कि जब कोई व्यक्ति उनसे मिलने आता, तब उन्हें ऐसा लगता, मानो कोई 'बाधा' आ गयी हो। वे सोचते कि व्यवहारके नाते उन्हें उससे कुछ बातचीत करनी पड़ेगी तथा उतने समय मुखसे नामजप छूट जायगा, जो उन्हें असह्य था। शिमलापालमें नामजपके फलस्वरूप श्रीभाईजीके अनेकों संकट टले, प्रतिकूलता अनुकूलतामें परिवर्तित हो गयी तथा ध्यानयोगमें सुदृढ़ स्थिति प्राप्त हो गयी।

अपने बम्बईके प्रवासकालमें श्रीभाईजीका परिचय 'रामनामके आढ़तिया' श्रीबालूरामजीसे हुआ। श्रीभाईजीसे उनका परिचय शीघ्र ही प्रगाढ़ आत्मीयताके रूपमें परिणत हो गया और ऐसे नाम-प्रेमी एवं भगवद्विश्वासीका सम्पर्क श्रीभाईजीको स्वाभाविक ही रुचिकर हुआ।

सत्सङ्गमें श्रीभाईजीने भगवन्नाम-जपके साधनपर ही सर्वाधिक बल दिया। उनका कहना था—'भगवान्‌के मङ्गलमय नामसे ऐसा कौन-सा कार्य है, जो सिद्ध नहीं हो सकता; ऐसा कौन-सा महापाप है, जिसका नाश नहीं हो सकता; ऐसी कौन-सी परम गति या मुक्ति है, जो नामसे नहीं मिलती? परंतु विचारनेकी बात तो यह है कि नामका उपयोग कहाँ करना चाहिये। क्या नाम ऐसा तुच्छ पदार्थ है, जो केवल पापोंके धोनेमें ही लगाया जाय या इस लोक अथवा परलोककी किसी नाशवान् भोग्य वस्तुकी प्राप्तिके लिये उसका प्रयोग किया जाय? जो पाप प्रायश्चित्तसे या फलभोगसे नाश हो सकते हैं, जो क्षणभङ्गुर भोग्य पदार्थ पुण्यबलसे मिल सकते हैं, उनके लिये नामका प्रयोग करना चमकीले पत्थरोंके लिये महारत्न दे देनेके समान मूर्खताका कार्य है। भगवन्नाम तो प्यारी-से-प्यारी वस्तु है। उसके जपसे नामरूपी बड़े-से-बड़े आदरणीय अतिथि हमारे जिह्वाद्वारपर आकर उपस्थित होते हैं, जिनकी चरणरज मस्तकपर चढ़ानी चाहिये। ऐसे परम पूजनीय अतिथिसे झाड़ू दिलवाकर घरका मैला साफ करवाना क्या बुद्धिमानीका काम है? क्या यह हीनता नहीं है? जिसके स्वागतके लिये सब जगहकी सफाई और सजावट करनी चाहिये, उसीसे घरका आँगन साफ करवाना क्या नीचापन नहीं है? यदि है तो फिर नामका प्रयोग पापोंके नाशमें नहीं करना चाहिये।'

श्रीभाईजीकी नाम-प्रीतिने जगत्के जीवोंको भी नाम-परायण होकर भगवत्प्रीतिके परम लाभसे लाभान्वित होनेकी प्रेरणा देनेको प्रेरित किया। समाजमें भी नाम-प्रचारकी योजना बनी। सं० १९७९में सर्वप्रथम जपयज्ञका श्रीगणेश हुआ, जिसकी पूर्णाहुति होलीके अवसरपर हुई। जपयज्ञका समापन-समारोह बड़े उत्साहसे मनाया गया, जिसमें ब्राह्मण-भोजन, भजन-कीर्तन आदिका आयोजन हुआ। जपयज्ञके फलस्वरूप हजारों व्यक्ति नाम-पारयण हो गये। कुछ मासके नियमित जपसे उनको नामके अद्भुत प्रभावका अनुभव हो गया तथा उन्होंने नामजपको अपनी दैनिक साधनाका प्रधान अङ्ग बना लिया। आगे चलकर इसी जपयज्ञकी आयोजना प्रतिवर्ष नियमित रूपसे होने लगी।

सं० १९८३में 'कल्याण'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 'कल्याण'के माध्यमसे माघ सं० १९८३में प्रकाशित उसके प्रथम वर्षके ७वें अङ्कमें उसी वर्षकी फाल्गुन पूर्णिमातक अर्थात् २ मासके अल्प समयमें षोडश-मन्त्रके साढ़े तीन करोड़ नामजप करनेकी प्रार्थना श्रीभाईजीने 'कल्याण'के प्रेमी पाठक-पाठिकाओंसे की। सच्चे नाम-प्रेमीकी प्रार्थनाका अद्भुत प्रभाव होना ही था। 'कल्याण'-प्रेमियोंने नामजपमें इतना उत्साह प्रदर्शित किया कि साढ़े तीन करोड़ मन्त्र-जपके स्थानपर लगभग पैंतीस करोड़ मन्त्रोंका जप हुआ। इसके पश्चात् तो श्रीभाईजी नाम-प्रचारपर तुल गये और उन्होंने 'कल्याण'का प्रथम विशेषाङ्क ही (श्रावण, १९८४ वि०में) 'श्रीभगवन्नामाङ्क' प्रकाशित किया, जिसमें नाम-महिमापर शास्त्रके वचन एवं संतोंके अनुभवपूर्ण लेख प्रकाशित हुए। इस अङ्कके पठन-मननसे सहस्रों व्यक्ति नाम-परायण हुए। इसके अनन्तर श्रीभाईजी प्रतिवर्ष 'कल्याण'में नाम-जपके लिये प्रार्थना प्रकाशित करने लगे, जिसका देशके कोने-कोनेमें ही नहीं, अपितु विदेशोंतकमें आदर तथा पालन होता। फलस्वरूप करोड़ोंकी संख्यामें प्रतिवर्ष नामजप होने लगा, जो अबतक भी हो रहा है।

'कल्याण'में भगवन्नाम-जपकी प्रार्थना प्रकाशित कर लोगोंको नामपरायण करनेके प्रयासका देशके सभी संत-महात्माओं, विद्वानों एवं धार्मिक प्रवृत्तिके जननेताओंने हार्दिक स्वागत किया। महात्मा गांधीजी भी रामनामके पुजारी थे तथा उन्होंने भी श्रीभाईजीके इस नाम-प्रचारकी प्रशंसा की।

श्रीभाईजी इस नामजप-प्रचार-यज्ञको कलिकालमें जीवोंके उद्धारका एकमात्र सुलभ, सरल एवं सर्वोत्कृष्ट साधन मानकर किये जा रहे थे। उनके नाम-प्रचार-कार्यसे प्रसन्न होकर तथा श्रीभाईजीको अपने आदेशसे जीवनपर्यन्त इस कार्यमें प्रवृत्त करानेके उद्देश्यसे गोरखपुरस्थित कान्तिबाबूके बगीचेमें आश्विन शुक्ला १२, सं० १९८४ वि०, तदनुसार दिनाङ्क ८ अक्तूबर, १९२७को दिनके १२ बजे साक्षात् दर्शन देकर भगवान्ने आदेश दिया कि 'जगत्का कुछ भला करना हो तो भेद छोड़कर मेरे नामका प्रचार कर। लोगोंसे कह दे कि इस कालमें नामसे ही सब कुछ हो जायगा। भविष्यमें होनेवाले मेरे अवतारमें मेरा नाम-प्रचार ही हेतु होगा। जो लोग मेरे नामका सहारा लेकर पापको आश्रय देते हैं, उनको सावधान कर कि उनकी शुद्धि यमराज भी नहीं कर सकता।'

साक्षात् भगवदादेशको शिरोधार्य कर श्रीभाईजी नाम-प्रचार-कार्यमें प्राणपणसे प्रवृत्त हो गये।

जसीडीहमें श्रीभाईजीको भगवद्दर्शन तथा गोरखपुरमें भगवन्नाम-प्रचारकी भगवदाज्ञाका संवाद ज्यों-ज्यों विभिन्न शहरोंमें बसे भाईजीके प्रेमी भगवदनुरागी सज्जनोंको प्राप्त होने लगा, त्यों-ही-त्यों विभिन्न स्थानोंसे उन्हें भगवन्नामके प्रचारहेतु पधारनेका प्रेम तथा आग्रहयुक्त निमन्त्रण प्राप्त होने लगा। प्रेमी भक्तोंका प्रबल आग्रह देखकर कलकत्ते तथा आसाम-प्रान्तके स्थानोंमें जाकर भगवन्नाम-जप एवं संकीर्तनके प्रचार करनेकी प्रार्थना श्रीभाईजीने स्वीकार कर ली। श्रीभाईजीकी भगवन्नाम-प्रचार-यात्राका संवाद जानकर अनेक प्रेमी भक्त उनके साथ चलनेको प्रस्तुत हो गये। गोरखपुरसे कलकत्तेके लिये १६ संकीर्तन-प्रेमियोंकी मण्डलीने मार्गशीर्ष कृष्णा १० सं० १९८४ वि०को प्रस्थान किया। कलकत्तेके दो दिनोंके प्रवासकालमें भाईजीका अधिकांश समय भगवन्नाम-संकीर्तन तथा नाममहिमा-प्रवचनमें ही व्यतीत हुआ।

श्रीभाईजी श्रीभगवन्नाम-जपके सम्बन्धमें कहते थे––"मैं भगवान्‌के नामपर जोर क्यों देता हूँ? इसका कारण यही है कि मैंने जीवनभर यही किया है। जो कुछ भी अच्छी बात जीवनमें आयी है, वह नामजप एवं भगवत्कृपाके प्रतापसे। पारमार्थिक जीवनका प्रारम्भ नामजपसे हुआ और जीवनमें साधना भी इसीकी हुई।

"मैं नाम-महिमाको अर्थवाद नहीं मानता हूँ। मैंने नामजपसे बहुत बड़े-बड़े कार्य सफल होते देखे हैं और स्वयं मेरे जीवनमें हुए हैं। नामकी जो महिमा कही जाती है, वह सत्य है और अनुभवकी वस्तु है। अतः इसे बलपूर्वक कहनेमें कोई संकोच नहीं।"

जो वाणी सत्यकी अनुभूतिसे प्राणान्वित होती है, उसका श्रोताओंपर तत्काल प्रभाव होता है। श्रीभाईजीकी सत्य-समन्वित वाणीने सहस्रों लोगोंमें नाम-प्रेमकी ज्योति जगा दी, जिसके फलस्वरूप उनके जीवनकी धारा भगवान्‌की ओर प्रवाहित हो उठी।

मार्गशीर्ष कृष्णा १२ संवत् १९८४ वि०को श्रीभाईजी अपनी संकीर्तन-मण्डलीके सहित आसामकी यात्राके लिये रवाना हो गये।

श्रीभाईजीके साथ नाम-संकीर्तन-प्रचार-मण्डल नलवाड़ी, गौहाटी आदि स्थानोंमें प्रेमीभक्तोंके घरोंमें, सार्वजनिक स्थानोंपर तथा शहरकी गलियों, सड़कों तथा बाजारोंमें एवं स्टेशनके प्लेटफार्मों एवं यात्राके समय रेलगाड़ीके डिब्बेमें सर्वत्र भगवन्नामकी मधुर ध्वनिसे वातावरणको पवित्र बनाता रहा। जगह-जगह श्रीभाईजीकी सलाह तथा प्रार्थना मानकर अनेक लोगोंने भगवन्नामजपका नियम ग्रहण किया तथा दुर्गुणोंके त्यागका संकल्प लिया। मार्गशीर्ष कृष्ण ३० संवत् १९८४ वि०को प्रातः श्रीभाईजी अपनी मण्डलीके साथ अपनी प्रिय जन्म-भूमि शिलंगके लिये रवाने हुए।

शिलंगमें सत्सङ्गके लिये एकत्रित प्रेमीजनोंके समूहमें प्रवचन करते हुए श्रीभाईजीने कहा––"शिलंग आनेपर मेरे हृदयमें नये-नये भाव उत्पन्न हो रहे हैं, क्योंकि यह मेरी जन्म-भूमि है। मैं यहाँ केवल एक संदेश लेकर आया हूँ और वह है 'श्रीभगवन्नाम'। शास्त्रोंका कथन है, महापुरुषोंका उपदेश है, अनेकों बड़े-बड़े महात्माओंके अनुभव हैं, श्रीभगवान्‌की दिव्य वाणी है और मेरा विश्वास तथा अनुभव है। वर्तमान समयके देशके सबसे बड़े दो नेता—महात्मा गांधी तथा महामना मालवीयजी भगवन्नामके बड़े भक्त हैं। रामनामके सम्बन्धमें किसी प्रमाणकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। इस घोर कलिकालमें नामके समान अन्य कोई सहारा नहीं।"

शिलंगसे गौहाटी, तिनसुकिया, डिबरूगढ़, शिवसागर, नौगाँव आदि स्थानोंमें भगवन्नाम-संकीर्तनकी पावन मन्दाकिनी बहाते हुए तथा भगवन्नाम-जपकी महिमापर प्रकाश डालते हुए अपनी आसाम-प्रान्तकी यात्रा समाप्तकर श्रीभाईजी अपने कीर्तनमण्डलसहित कलकत्ता लौट आये।

श्रीभाईजीकी यह नाम-साधना जीवनभर चलती रही। मन्त्र भी उन्होंने परिवर्तित नहीं किया। जीवनभर षोडशमन्त्रका जप करते रहे। वर्तमान समयके लिये भगवन्नाम-स्मरणको ही श्रीभाईजी एकमात्र साधन मानते थे। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है—'इस समय नामके सिवा संसारसागरसे पार कर देनेवाला दूसरा कोई भी सहज साधन मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता·····मैं भगवन्नामकी महिमा क्या लिखूँ? मैं तो नामका जिलाया जी रहा हूँ।' श्रीभाईजीका अनुभव था कि भगवन्नामकी साधनामें भगवान्‌की सहायता बराबर मिलती रहती है। नाम-साधनामें लगे एक संन्यासी महात्माको आश्वस्त करते हुए उन्होंने कहा था––'भगवान् भले ही दूसरी प्रार्थना सुननेमें थोड़ी देर भी कर दें, पर यदि कोई सचमुच चाहे कि उसके द्वारा निरन्तर नामजप हो और इसके लिये वह भगवान्‌से प्रार्थना करे तो यह प्रार्थना निश्चय ही तत्क्षण पूरी हो जायगी।'

श्रीभाईजीने सं० २०२४ वि० में एक बार अपने प्रवचनमें कहा था––"भगवन्नामके अनुभव मैं क्या बताऊँ? जीवनमें जो कुछ भी अच्छापन है, वह केवल भगवन्नाम और भगवत्कृपाकी महिमा है। बाकी सारी बुराई मेरी

है। मैं सच कहता हूँ, मेरे पास अगर कोई धन है तो भगवन्नाम और भगवत्कृपाका। इसका मुझे अभिमान है। अभिमान होना नहीं चाहिये, पर अभिमान है कि मुझपर भगवान्‌की अनन्त कृपा बरस रही है। यह मुझे निरन्तर भान होता है, आजसे नहीं, बहुत पहलेसे ऐसा भान होता है कि मुझपर भगवान्‌की अनन्त कृपा बरस रही है। तुलसीदासजीके एक पदकी अन्तिम दो पंक्तियोंको मैंने अपने जीवनमें बहुत अच्छा समझा और उसको उतारनेकी चेष्टा की—

सकल अंग पद बिमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिंहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है॥

"सारे अङ्ग, हे नाथ! आपके चरणोंसे विमुख हैं। केवल जीभने नामकी ओट ले रखी है और एक ही विश्वास है—'प्रभु-मूरति कृपामई है'।" बड़े-बड़े संकट आये—संकटोंकी अवधि नहीं। जिस समय पकड़ा गया, उस समय घरपर बड़ा संकट था। उसके बाद एक व्यापारमें घाटा लगा, उसका बड़ा संकट था। एक बार हमारे कुछ दोस्तोंने एक कांस्पिरेसी (षड्यन्त्र) की और एक बहुत बड़े निन्दनीय अपराधमें फँसाना चाहा। बिलकुल झूठी चीज थी। उसमें भी भगवान्‌की कृपाने बचाया। आप सबको अपने अनुभवके रूपमें केवल दो ही बातें मैं कह सकता हूँ—एक तो भगवत्कृपापर विश्वास और एक भगवन्नामका आश्रय। उसके सिवा न बुद्धि है, न विद्या है, न कला है। मैं कुछ नहीं जानता। साहित्यका मुझे क्या पता? मैं लिखा-पढ़ा नहीं, परंतु सभी जगह बड़े-बड़े साहित्यिक लोगोंने मुझपर कृपा की। हिंदुस्तानके मूर्धन्य बड़े-बड़े लेखकोंका 'कल्याण'में सहयोग मिला। श्रीविष्णु दिगम्बर-सरीखे महान् संगीताचार्य मुझे संगीत सिखानेके लिये महीनोंतक घरपर आये, पर मैं अभागा कि नहीं सीखा। इतना उनका प्रेम मेरे प्रति था। देशके बड़े-बड़े मूर्धन्य व्यक्ति, जैसे मालवीयजी (लोग मालवीयजीको पण्डितजी कहते थे, परंतु मैं उनको 'बाबूजी' ही कहा करता था), उन मालवीयजीके परिवारका मैं था। गांधीजीने मुझे अपने परिवारका माना। श्रीअरविन्दके साथ मेरा सम्बन्ध रहा। मेरे अयोग्य होते हुए भी क्यों इतनी बातें हुईं? मैंने अनुभव किया, मेरी अयोग्यताकी अपेक्षा भगवान्‌की कृपा कहीं अधिक बड़ी शक्ति रखती है और वह कृपा मुझपर निरन्तर बरसती रहती है। उस कृपाके भरोसे मुझे अशान्तिके स्थानपर शान्ति मिली। दुःख और निराशा जहाँ चारों ओर मँडरा जाते, ऐसी अवस्थामें मुझे आशा मिली, विषादसे निकलनेका पवित्र और सरल मार्ग मिला। और यह सब हुआ केवल भगवत्कृपा और भगवन्नामसे।"

श्रीभाईजी तो अपने सत्सङ्गमें नामजपके महत्वपर सदैव प्रकाश डाला ही करते थे, व्यक्तिगतरूपसे साधना पूछनेवालोंको भी वे नामजपकी साधना अवश्य बताते थे। तुलसीदासजीकी ये पंक्तियाँ उन्हें अत्यन्त प्रिय थीं—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

कोई भले ही अपनेको कितना ही पापी, अपराधी बताता, श्रीभाईजी उसे प्रेमपूर्वक नामजपकी सलाह देते तथा कहते कि 'जितनी शक्ति भगवन्नाममें पाप-नाशकी तथा कल्याण करनेकी संनिहित है, उतनी शक्ति पापोंके समूहमें नहीं, उनके इस आश्वासनसे प्रेरणा प्राप्तकर अनेकों पापमग्न जीवोंकी नामजपमें प्रवृत्ति हुई तथा उनके जीवनमें आमूलचूल परिवर्तन हो गया।

श्रीभाईजी जहाँ-कहीं जाते, भगवन्नाम-संकीर्तनका आयोजन अवश्य होता। उनके रतनगढ़-प्रवासकालमें अखण्ड नाम-संकीर्तन तथा संत-समारोहके मधुर पावन प्रसङ्गोंकी स्मृति वहाँकी जनता कभी नहीं भुला सकती। गोरखपुरमें उनके निवासस्थान गीतावाटिकामें वर्षव्यापी अखण्ड नाम-संकीर्तन-यज्ञका आयोजन (सन् १९३६में) अत्यन्त ही भगवत्प्रीतिवर्धक एवं उल्लासपूर्ण रीतिसे सम्पन्न हुआ था। उनसे प्रेरणा प्राप्तकर अनेकों गृहस्थ, विरक्त, आबाल-वृद्ध नर-नारियोंने भगवन्नाम-जपका व्रत ग्रहण किया तथा उससे लाभान्वित हुए। उनके ही प्रेमपूर्ण आग्रहको मानकर उनके निकटस्थ बाबा चक्रधरजी प्रतिदिन तीन लाख नामजपका व्रत वर्षोंतक अखण्डरूपसे पालन करते रहे। श्रीभाईजीके जीवनकालके अन्तिम वर्षोंमें उनके निवासस्थान गीतावाटिकामें अखण्ड मधुर 'हरे राम' नामका संकीर्तन होता रहा तथा वे बड़े ही मनोयोगसे उसे सुना करते थे। वे अपने सत्सङ्गमें कहा करते थे—'गीतावाटिकामें इस समय एक ही सर्वोत्तम बात हो रही है और वह है—अखण्ड भगवन्नाम-संकीर्तन।' यह नाम-संकीर्तन उनके जीवनके अन्तिम क्षणतक होता रहा तथा आज भी हो रहा है। उनके निर्देशनमें मनाये जानेवाले श्रीराधाजन्म-महामहोत्सवके आयोजनमें, जो प्रतिवर्ष गीतावाटिकामें सम्पन्न होता रहा, नाम-संकीर्तन एक विशेष महत्व रखता था। यह उद्दाम नाम-संकीर्तन श्रीराधाष्टमीके दिन तथा उससे अगले दिन मनाये जानेवाले दधिकर्दमोत्सवके दिन भी किया जाता। उसमें भाव-विभोर होकर नाचने लग जानेवाले तथा बैठे रहकर ही कीर्तन करनेवाले सहस्रों आबाल-वृद्ध नर-नारियोंको घंटोंतक जगत्की विस्मृति होकर सर्वथा एक अभिनव भवद्रसकी अनुभूति होती। इस उद्दाम नाम-संकीर्तनका दृश्य विलक्षण ही होता। कहीं कोई उदरपर्यन्त लंबी श्वेत दाढ़ीवाला वृद्ध पुरुष देह-ज्ञान भूलकर नृत्यपरायण हो रहा है तो कहीं युवक, किशोर एवं अल्पवयस्क बालक अपनी सुधि भूलकर उन्मत्तसे बने नाच रहे हैं। इस कीर्तनमें सम्मिलित लोग आयु, वर्ण, शिक्षा, सम्पन्नता तथा पदके समस्त भेदोंको भूलकर एक साथ भगवन्नामका अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे उच्चारण करते हुए नाचते थे। उद्दाम संकीर्तनमें नाचनेवाले व्यक्तियोंमें ऊँची-से-ऊँची डिग्री-प्राप्त शिक्षित वर्ग भी होता तथा अक्षर-ज्ञान-शून्य भावुक लोग भी होते; बड़े-बड़े धनपति भी होते तथा परम अकिंचन एवं मध्यवित्तीय स्थितिके लोग भी। उच्च न्यायालयके जज, प्रोफेसर, डाक्टर तथा राज्य-अधिकारी लोग भी होते तथा साधारण ग्रामीण लोग भी। ऐसी विभिन्न योग्यता, पद, वर्ण तथा रुचिके लोगोंको एक ही मञ्चपर भेद-ज्ञान-शून्य बनाकर भगवान्‌के पावन नामोंका उच्चारण करवाते हुए जगत्की विस्मृति कराके नचा देनेकी सामर्थ्य श्रीभाईजी-जैसे लोकोत्तर महापुरुषमें ही थी।

ऐसे भावपूर्ण दृश्य देखकर श्रीभाईजीको 'अभिनव चैतन्य'के नामसे पुकारनेको जी चाहता था। वे भगवन्नाम-प्रीतिके साक्षात् विग्रह थे। वे स्वयं अन्तिम श्वासतक नाम-जप करते रहे तथा असंख्य लोगोंको नाम-परायण बनाया। उनका कथन था—"प्रेमपूर्वक किये गये नाम-जपकी महिमा तो अपार है ही, लेकिन यदि कोई अनजाने, भूलसे, किसीके आग्रहको मानकर या अवहेलनासे ही एक बार भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, उसका भी उद्धार हो जायेगा। सूअरके द्वारा आहत होनेपर एक यवनके मुखसे मरते समय जो गाली निकली —'हराम', उसमें भी 'राम' शब्दके निकलनेसे उसकी मुक्ति हो गयी। इस कथाका अपने विश्वासके साथ वर्णन करते-करते श्रीभाईजी एक बार भावावेशमें देह-ज्ञानशून्य हो गये थे तथा कई घंटों बाद बाह्य चेतना प्राप्त हुई। इस देह-ज्ञानशून्य अवस्थामें उन्हें भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए। यह प्रसङ्ग विस्तारसहित अन्यत्र दिया गया है।

श्रीभाईजीका नाम-प्रेम अपूर्व था। वे सबको सदैव दो ही बातें बताते थे—भगवन्नामका आश्रय तथा भगवत्कृपापर विश्वास। श्रीभाईजीके पुण्यस्मरणके इस पावनकालमें हमें भी चाहिये कि हम भगवन्नाम-जपका व्रत लें।

●
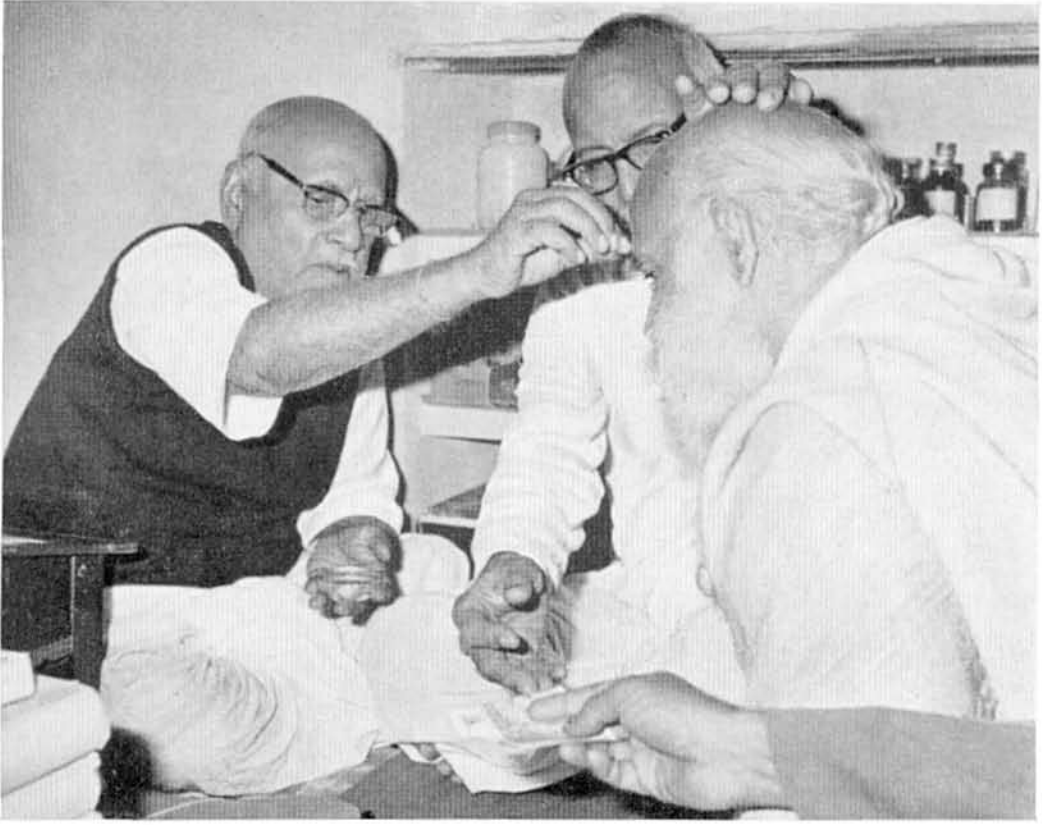
आदर्श ब्रह्मण्यता
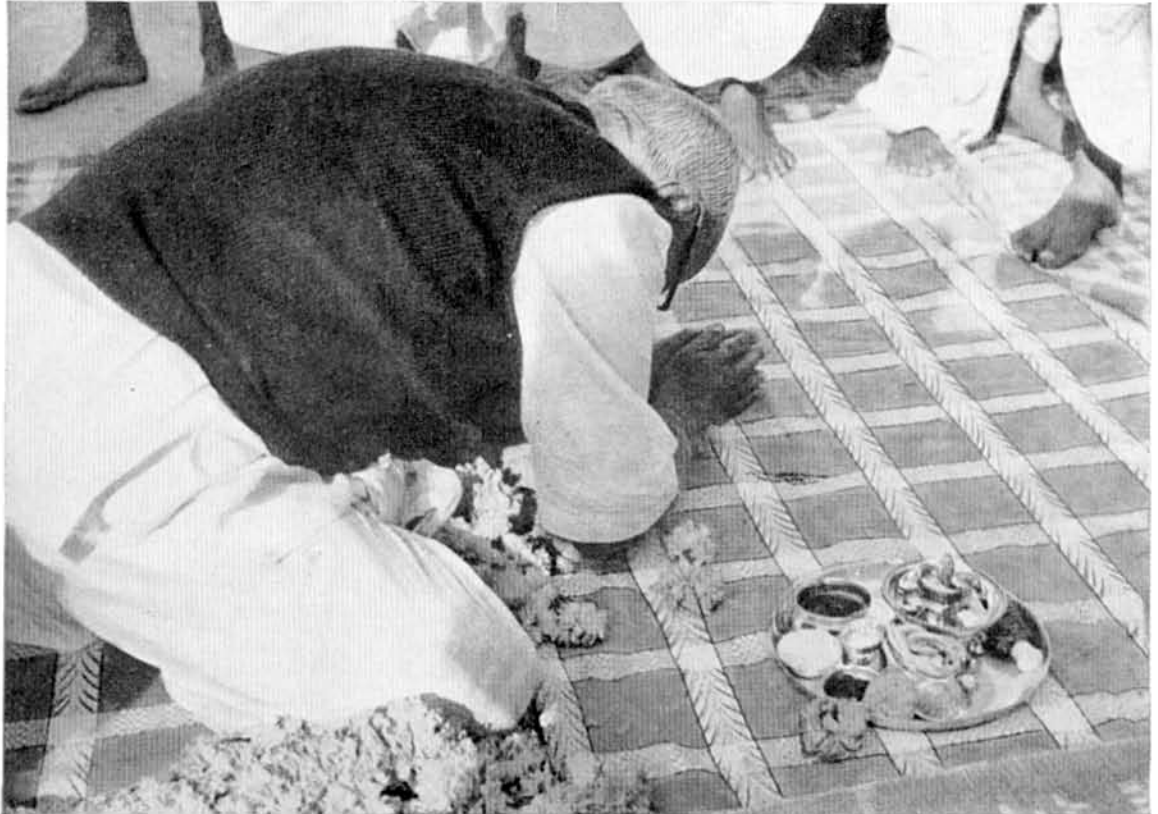
सीयराममय सब जग जानी करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी
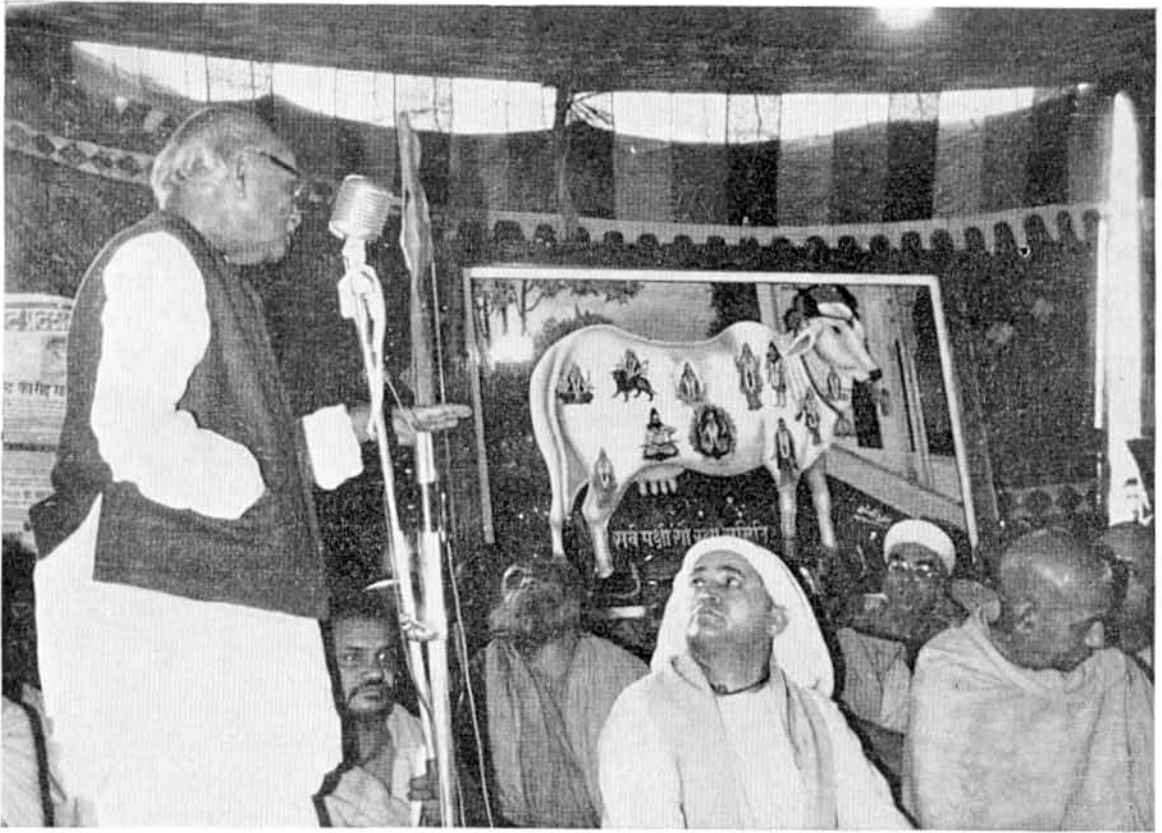
गोरक्षा महाभियान समितिके प्रमुख संचालक

गोरक्षार्थ आमरण अनशनव्रती महात्माके समीप विचारमग्न

गोरक्षा-आन्दोलनके प्राण—भाईजी

श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा

मन्त्री—गोरक्षा महाभियान समिति, दिल्ली

श्रद्धेय श्रीभाईजी देशकी एक विभूति थे। उनका जन्म ही लोककल्याण तथा धर्म और संस्कृतिके उन्नयनके लिये हुआ था। गोमाताकी रक्षा एवं संवर्धनमें श्रीभाईजीका योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण है। श्रीभाईजीके रोम-रोममें गोभक्ति समायी हुई थी। स्वराज्य होनेके बाद भी भारतवर्षमें गोहत्याका कलङ्क न मिटनेसे उनका हृदय अत्यन्त दुःखी था। यद्यपि भाईजी संत-पुरुष थे, किसी प्रकारके संघर्ष और आन्दोलन या राजनीतिक वितण्डावादमें उनकी कभी रुचि नहीं रही, परंतु गोहत्याके कलङ्कके निवारणार्थ वे चाहते थे कि गोभक्त लोग अधिक-से-अधिक बलिदान करें। उन्होंने अपने एक लेखमें लिखा था कि—"भारतवर्ष ऋषि-मुनियोंकी भूमि और धर्मका क्षेत्र है। यहाँ गोहत्याकी कल्पना नहीं होनी चाहिये। यहाँ आज भारतीयोंकी स्वतन्त्र सरकार होनेपर भी भारतवासी अत्यन्त दुःखपूर्ण हृदयसे प्रतिदिन लगभग ३० हजार गौओंकी नृशंस हत्या देख रहे हैं और सरकारसे इस महापापका परित्याग कर देनेके लिये अनुरोध कर रहे हैं। धर्मप्राण भारतमें गोहत्या-निवारणके लिये आन्दोलन करना तथा साधु-महात्माओंको जेल जाना और प्राणोत्सर्ग करना पड़ रहा है। यह वास्तवमें लज्जा और दुर्भाग्यकी बात है। महात्मा गांधीजीने कहा था कि 'मैं गोरक्षाको स्वराज्यसे भी बढ़कर मानता हूँ।' उन्हीं गांधीजीके देशमें और उन्हींके अनुयायी कहलानेवाले लोगोंके शासनमें अबाध-रूपसे गोहत्या चलती रहे और गोहत्याबंदीके लिये शान्तिमय आन्दोलन करने और बिना किसी उपद्रवके अपना प्राणोत्सर्ग करनेवाले साधु-महात्माओंके प्रति अवाञ्छनीय व्यवहार किया जाय, यह तो वास्तवमें हमारा घोर पतन है। मैं किसी भी राजनीतिक दलसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। गोहत्याका पाप सदाके लिये बंद हो जाय, केवल इसी पवित्र उद्देश्यसे केन्द्रीय सरकारसे प्रार्थना करता हूँ कि वह शीघ्र ही संविधानमें उचित परिवर्तन, परिवर्धन करके केन्द्रद्वारा ही कानूनन सर्वथा गोवंशका वध बंद कर दे और अपने तथा देशके परमकल्याणमें कारण बने। अपनी-अपनी रुचि तथा शक्तिके अनुसार देशके सभी लोगोंको केन्द्रीय सरकारपर निर्दोष, परंतु प्रभावशाली ऐसा दबाव डालना चाहिये, जिससे सरकार आगामी गोपाष्टमीसे पहले-पहले सम्पूर्ण गोहत्याबंदीकी घोषणा कर दे।"

श्रीभाईजीने सन् १९६६-६७के गोरक्षा-आन्दोलनमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। यों तो स्वराज्य-प्राप्तिके पश्चात् जब कभी गोहत्या-निवारणके लिये शान्तिमय सत्याग्रह-आन्दोलन हुआ, तभी श्रीभाईजीने उसमें सक्रिय सहयोग दिया। स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजद्वारा संचालित 'समस्त गोरक्षा सत्याग्रह आन्दोलन'में भी भाईजीका पूर्ण संरक्षण प्राप्त हुआ। गोलोकवासी लाला हरदेवसहायजीद्वारा संचालित गोहत्या-निरोध-आन्दोलनमें भी भाईजीका पूरा सहयोग मिला। सन् १९६६-६७के आन्दोलनमें भी श्रीभाईजीने पूर्ण मनोयोगसे भाग लिया और आन्दोलनका सम्पूर्ण आर्थिक उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया तथा उसका सुन्दर रूपमें निर्वाह किया। श्रीभाईजी आरम्भसे ही गोरक्षा-आन्दोलनको दृढ़ताके साथ चलाये जानेके पक्षमें थे और 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समिति'के संगठनके निर्माणमें उनका प्रमुख हाथ था। सन् १९६६में श्रद्धेय भाईजीके ऋषिकेशस्थित निवास-स्थानपर ही इस संगठनकी भूमिका तैयार की गयी थी और पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी तथा श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीको एक-दूसरेके साथ सम्पर्कमें लाने और इस संगठनको खड़ा करनेका श्रेय श्रीभाईजीको ही प्राप्त है। स्वास्थ्य अनुकूल न होनेपर भी आप 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान समिति'की बैठकोंमें भाग लेते रहे और उसके संचालनमें सहयोग देते रहे। आप अपने पत्रोंद्वारा बराबर आन्दोलनके संचालनमें प्रोत्साहन और मार्गदर्शन प्रदान करते रहे। आपने सरकारकी उपेक्षा-नीतिपर खेद व्यक्त करते हुए एक बार लिखा—"सरकारका चाहे जो रुख हो, आन्दोलनको जारी रखना ही उचित है। आगे चलकर सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या तो बंद होगी ही, इस सरकारके सिरपर सदाके लिए कलङ्कका टीका लग जायगा। और जो पाप होगा, उसका फल तो बाध्य होकर इसके कर्णधारोंको भोगना ही पड़ेगा। गोरक्षा-समितिके संचालक यदि शिथिल होकर तपस्या छोड़ देंगे तो वे भी कर्त्तव्यच्युत ही होंगे। मङ्गलमय भगवान् सबको सद्बुद्धि दें—सबका मङ्गल करें।"

श्रीभाईजी आरम्भसे ही इस पक्षमें थे कि गोरक्षाके निमित्त अनशनद्वारा संत-महात्मा तथा अन्य सज्जन अपने प्राणोंको संकटमें न डालें। लेकिन यदि एक बार अनशन करनेका निश्चय कर लिया जाय और अनशन आरम्भ हो जाय तो फिर उसे उद्देश्य पूर्ण हुए बिना नहीं छोड़ना चाहिये। पिछले गोरक्षा-आन्दोलनके समय पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी और जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी, पुरी––स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराजद्वारा जो आमरण अनशन किया गया, उसके सम्बन्धमें भी भाईजीका यही अभिमत रहा। उन्होंने 'कल्याण'में लिखा था––

"मनुष्य बिना मृत्युके मरता नहीं और मृत्युकाल आनेपर बचता नहीं। और यदि किसी मृत्युमें निमित्त महान् गौरवयुक्त हो—धर्मयुक्त हो, भगवदर्थ, धर्मरक्षार्थ किसीके प्राण विसर्जित होते हों तो वह बहुत बड़ा सौभाग्य है तथा आदर्श तो है ही। मेरा परमपूज्य आचार्यजी (श्रीशंकराचार्यजी) तथा श्रीब्रह्मचारीजीके जीवनसे मोह है तथा मैं इनके जीवनसे देश तथा धर्मका बड़ा लाभ मानता हूँ। इससे मैं निश्चय ही यह चाहता था कि इनके जीवनकी रक्षा हो। वे जब अनशनव्रत करनेको प्रस्तुत हुए थे, उस समय भी मेरा मन सर्वथा उनके अनुकूल नहीं था। पर जब व्रत ले लिया गया, तब इनकी जीवन-रक्षाके साथ ही इनके जीवनके व्रतकी रक्षाका प्रश्न जीवन-रक्षाके प्रश्नसे भी अधिक महत्वका हो गया। इसीसे मैं चाहता था कि इनके जीवनकी रक्षा तो हो, पर वह हो इनके वचनानुसार सरकारके द्वारा सम्पूर्ण गोवंशकी रक्षा होनेपर ही––कम-से-कम सम्पूर्ण गोवंशकी रक्षाके लिये कानून बनानेके सिद्धान्तको मान लेनेका पूर्ण आश्वासन मिलनेपर ही। दुःखकी बात है कि वैसा नहीं हुआ।"

श्रीशंकराचार्यजीके अनशनके समय श्री एस० के० पाटिलने कहा था––'यदि शंकराचार्यजीकी मृत्यु हो गयी तो वह हिंदूधर्मपर कलङ्क होगा।' इसपर भी भाईजीने 'कल्याण'में लिखा था––"शंकराचार्यजीकी मृत्यु नहीं हुई, उनका अनशन टूट गया, पर हम श्रीपाटिलकी बातसे सहमत नहीं हैं। शंकराचार्यजीकी मृत्यु होती तो वह हिंदू-धर्मका कलङ्क नहीं होता, प्रत्युत वर्तमान राजसत्तापर कलङ्क होता, जिसके कारण शंकराचार्यजीकी मृत्यु होती। साथ ही मृत्यु होती तो हिंदू-धर्म कलङ्कित नहीं होता, प्रतिष्ठित होता। जिसके अनुयायियोंमें अपनी माँगके लिये आत्मसमर्पण करनेकी इतनी विशाल शक्ति है, यह तो धर्मके प्रभावका द्योतक होता न कि कलङ्कका। श्रीशंकराचार्यजीका जीवन-कार्य भी अमर और प्रभावी हो जाता।"

यद्यपि श्रीभाईजी 'गोरक्षा-महाभियान-समिति'की सम्पूर्ण गोहत्याबंदीकी माँग पूरी न होनेसे क्षुब्ध थे और उन्हें यह संदेह था कि वर्तमान सरकार सम्पूर्ण गोहत्याबंदीकी माँगको स्वीकार करेगी, फिर भी वे निराश न होकर ईश्वरकी शक्तिपर विश्वास करते हुए आन्दोलनको जारी रखनेके पक्षमें थे। उनका यह विश्वास था––"भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, उनकी कृपासे सबमें सद्बुद्धि उदय हो जाय तो निश्चय ही भारतवर्षसे गोवंशके बधका पाप दूर हो सकता है और साथ ही गोरक्षाका समुचित प्रबन्ध भी। कानूनके द्वारा गोवंशकी हत्याकी सर्वथा बंदी चाहनेवाले लोग भगवान्पर भरोसा रखते हुए तथा सबका भला चाहते हुए अपने शान्त एवं अहिंसा-पूर्ण प्रयत्नोंको सतत चालू रखें—न कभी उत्साहमें शिथिलता आने दें, न प्रयत्नमें; सचाईके साथ साधनामें संलग्न रहें। फल तो भगवान्के हाथ है।"

गोरक्षा-आन्दोलनको इस प्रकार श्रीभाईजीका प्रखर मार्गदर्शन और संरक्षण प्राप्त होता रहा। सन् १९५३-५४ में मैंने अपने पत्र 'आलोक'में गोवंशकी आर्थिक महत्तापर एक लेख लिखा था। उसकी भाईजीने अपने पत्रद्वारा सराहना की थी। उसके बाद तो गोरक्षा-आन्दोलनके सिलसिलेमें अनेक बार ऐसे प्रसङ्ग आये कि भाईजीके साथ बराबर सम्पर्क होता रहा। पूज्य लाला हरदेवसहायजीके गोलोकवासके पश्चात् जब मेरे ऊपर 'भारत गोसेवक समाज'के कार्य और 'गोधन' पत्रके सम्पादनका भार डाला गया, तब भाईजीका निरन्तर मार्गदर्शन मिलता रहा। सन् १९६६-६७के गोरक्षा-आन्दोलनका सारा कार्य 'भारत गोसेवक समाज'के कार्यालयद्वारा संचालित होनेपर तो भाईजीके साथ बहुत ही निकट-सम्पर्क आया और उस समय मुझे उनके विशाल हृदय और महानताके दर्शन करनेका अवसर मिला।

पूज्य भाईजीके निधनसे न केवल गोरक्षा-आन्दोलनकी, बल्कि समग्र राष्ट्रकी अपरिमित क्षति हुई है और जो आध्यात्मिक ज्योति असंख्य लोगोंके पथको आलोकित कर रही थी, वह विलुप्त हो गयी। मुझे विश्वास है कि उनका महान् जीवन सदा श्रद्धालुजनोंको प्रेरणा देता रहेगा।

●

भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास

डा० श्रीकमलादत्तजी त्रिपाठी, संयुक्त मन्त्री

विश्ववाङ्मयकी सर्वप्रथम कृतिके रूपमें वेदोंका सर्वोच्च स्थान और सर्वत्र पुनीत आदर है। आस्तिक-जन तो वेदको नित्य, अपौरुषेय तथा भगवान्‌का निःश्वासरूप मानते हैं। भारतीय समाजका यह परम सौभाग्य है कि वेदके कारण ही आध्यात्मिकताके क्षेत्रमें भारतकी गणना शीर्षस्थानीय है।

वैदिक ज्ञानके आलोकका विस्तार, वैदिक संस्कृतिका भारतमें पुनः विशेष प्रचार, वेदोंका देश-विदेशमें प्रसार, वेदोंका अध्ययन-अध्यापन, वेदों एवं वैदिक साहित्यका प्रकाशन, वैदिक ऋचाओंका नित्य गान एवं पाठ, वैदिक सत्योंके उद्‌घाटनार्थ शोधकार्य आदि कार्योंको करनेकी स्फुरणा भारतीयताकी मूर्ति सम्माननीय श्रीविश्वनाथ दासजीके हृदयमें श्रीबदरीनाथ-धामकी यात्रा करते समय हुई थी। उस समय श्रीदास महोदय उत्तरप्रदेशके राज्य-पाल थे। उनके मित्र श्रीपरेशचन्द्रजी चटर्जी भी इस यात्रामें उनके साथ थे। श्रीदास महोदयने अपने विचार अपने आदरणीय मित्रके समक्ष व्यक्त किये। श्रीचटर्जी महोदयने इन विचारोंकी सराहना की तथा पुरीमें वेद-भवनके निर्माणके लिये पचास हजार रुपये देनेका वचन दिया। उस यात्रामें जगन्नाथपुरीमें वेद-भवनकी स्थापनाका निश्चय हो गया।

श्रीबदरीनाथधामकी यात्रासे लौटनेपर श्रीदास महोदयका जब गोरखपुर आना हुआ, तब उन्होंने इस सम्बन्धमें भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे चर्चा की। श्रीपोद्दारजीको श्रीविश्वनाथदासजीके विचार बड़े ही महत्त्वपूर्ण लगे और उन्होंने उनको कार्यान्वित करनेकी मुक्तकण्ठसे सम्मति दी। पहले विचार केवल श्रीजगन्नाथपुरीमें ही वेद-भवनकी स्थापनाका था, पर श्रीभाईजीने निवेदन किया—'केवल जगन्नाथपुरीमें ही क्यों, भारतकी चारों दिशाओंके चारों धामों—बदरीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वरम् और द्वारका—में वेद-भवनकी स्थापना होनी चाहिये।' श्रीदास महोदयको योजनाका यह व्यापक रूप बड़ा प्रिय लगा। तभी यह निश्चय हो गया कि वैदिक ज्ञानके प्रचार-प्रसारके लिये व्यापक योजना बनाकर अवश्य सोत्साह कार्य करना चाहिये। भाईजीने गोरखपुरके गोरक्षपीठाधिपति पूज्य महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीसे इस कार्यमें साथ रहनेकी प्रार्थना की। उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। फिर श्रीश्रीप्रकाशजीसे भी सहयोग चाहा गया। वे भी इसके लिये तैयार हो गये। फलतः गोरखपुरके श्रीगोरखनाथ-मन्दिरके पवित्र स्थानमें दिनाङ्क २७ जनवरी, १९६५के पावन दिन सम्मिलित विचार-गोष्ठीमें इस न्यासकी नींव पड़ी। इस संस्थाके महासचिवके रूपमें श्रीविश्वनाथजी सक्रिय हो गये। समाजके व्यक्तियोंसे मिलकर कार्यकी महानतासे अवगत कराना तथा कार्यके संचालनके लिये धन-संग्रह करना श्रीविश्वनाथदासजीका मुख्य कार्य हो गया और संयुक्त-मन्त्रीके रूपमें सहयोग दे रहे थे श्रीभाईजी। भाईजी कई स्थानोंपर उनके साथ गये। कई व्यक्तियोंने धनका दान दिया केवल यही देखकर कि श्रीभाईजी इस कार्यमें रुचि ले रहे हैं। दो विभूतियोंके सम्मिलित प्रयाससे जून १९६८तक लगभग आठ लाख रुपये संगृहीत हो गये।

श्रीदास महोदय एवं श्रीभाईजीके प्रयाससे जगद्‌गुरु श्रीशंकराचार्योंने 'संरक्षक-पद' स्वीकार किया, विद्वानोंने सदा सत्परामर्श दिया, उद्योगपतियोंने धन एवं वस्तुसे सहयोग दिया, सामाजिक नेताओंने समुचित वातावरणका निर्माण किया, कर्मठ कार्यकर्ताओंने अपने तपसे कार्यको आगे बढ़ाया। आज अनेक स्थानोंपर वेद-भवनकी शाखाएँ अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें संलग्न हैं। वर्त्तमान मुख्य केन्द्र इस प्रकार हैं—(१) श्रीबदरीनाथ वेद-भवन, बदरीनाथ, (२) वेद-भवन महाविद्यालय, रुद्रप्रयाग, (३) पुरी वेद-भवन, जगन्नाथपुरी, (४) श्रीजगन्नाथ वेद-कर्माङ्ग विद्यापीठ, जगन्नाथपुरी, (५) रामेश्वरम् वेद-भवन, रामेश्वरम्, (६) वेद-भवन महाविद्यालय, रामेश्वरम्, (७) द्वारका वेद-भवन, द्वारका, (८) राजकीय शुक्लयजुर्वेद पाठशाला, द्वारका, (९) वेद-भवन विद्यालय, कालड़ी (केरल), (१०) वेद-भवन विद्यालय, गोकर्ण (मैसूर), (११) वेद-भवन विद्यालय, श्रीरंगम् (तमिलनाडु) एवं (१२) वेद-भवन विद्यालय, प्रयाग (उ०प्र०)।

इन विद्यालयोंमें वैदिक विषयोंके अध्ययनके साथ-साथ अन्य विषयोंका भी अध्ययन कराया जाता है। जगन्नाथ-पुरीमें नित्य यज्ञ होता है। विद्यालयोंमें वैदिक मन्त्रका पाठ सिखाया जाता है तथा चारों धामोंके मन्दिरोंमें वैदिक ऋचाओंका प्रतिदिन पाठ होता है--अवश्य ही शीत ऋतुमें बदरीनाथके स्थानपर रुद्रप्रयागमें नियमका निर्वाह किया जाता है। श्राद्ध-संतर्पण-योजनाके अन्तर्गत ५००) दान देनेवाले व्यक्तिके सम्बन्धीकी निधन-तिथिपर श्राद्ध-पक्षमें एक दिन श्राद्ध करनेकी भी व्यवस्था श्रीबदरीनाथमें चालू है। अनेक योजनाओंका क्रियान्वय अभी शेष ही है। अब संयुक्त मन्त्री होनेके नाते मुझे भी कुछ समय देना ही पड़ता है। श्रीसत्यदेवजी ब्रह्मचारीकी कर्मठतासे तथा अन्य हितैषियोंके सहयोगसे वेदभवनके पौधेको, जिसका वमन श्रीदास महोदय तथा श्रीभाईजीके कर-कमलोंसे हुआ था, विकसित-पल्लवित होते देखकर मनका प्रसन्न होना स्वाभाविक है।

●

श्रीरामजन्मभूमि, अयोध्याके उद्धार-कार्यमें श्रीभाईजीका योगदान

श्रीगोपालसिंहजी विशारद
वादी--श्रीरामजन्मभूमिवाद, अयोध्या

आर्य-वसुंधरा आदिकालसे ही आस्तिकोंकी आवास-स्थली रही है और तपोभूमिके साथ-साथ अवतारभूमिके रूपमें भी प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके अवतार हमारे आस्तिकी आकाशके परमोज्ज्वल प्रकाशपुञ्ज पूर्णेन्दु हैं।

भारतीय संस्कृतिके समष्टि रूपका दर्शन यदि हमें कहीं मिलता है, तो वह त्रेताकालीन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके चरित्रमें। इस परम पुरुषका पावन-चरित्र चिरकालसे जातीय जीवनका प्रधान प्रेरणा-केन्द्र रहा है, जो उसकी लोक-प्रियताका ही परिणाम है। भगवान् श्रीरामका ऐतिहासिक जन्म-स्थान, अयोध्यामें 'श्रीराम-जन्म-भूमि'के नामसे विश्व-विदित है। चैत्र शुक्ल नवमीके शुभ मुहूर्तमें उनका आविर्भाव हुआ था। उसी शुभ दिवसपर प्रत्येक वर्ष भारतके कोने-कोनेसे बिना सूचना अथवा निमन्त्रणके लाखोंकी संख्यामें आर्यजनता अयोध्या आकर उस पावन भूमिके दर्शन करती है।

उत्थान और पतनके बारी-बारीसे अपने दिन देखते हुए आर्य-वसुंधराने प्रतापशाली महाराज वीर विक्रमा-दित्यको जन्म दिया। महाराजा विक्रमादित्यने प्राचीन पवित्र स्थानों एवं तीर्थोंके उद्धारार्थ भारत-भ्रमण किया। भग्नावस्थामें स्थित अनेक स्थानोंका उद्धार करते हुए वे इस स्थलपर भी पहुँचे, जहाँपर एक लंबे समयतक बड़े-बड़े प्रतापी रघुवंशी नरेशोंकी राजधानी अयोध्यानगरी थी। यहाँ पहुँचकर उन्होंने एक आश्रमवासी संतके सांकेतिक आधारपर रामजन्म-भूमिका परिज्ञान किया और उसी भूमिपर ६४ कसौटीके कलापूर्ण स्तम्भोंपर एक भव्य मन्दिर निर्माण करवाया, जिसके अवलम्बसे वह वन-खण्ड पुनः बस्तीके रूपमें रूपान्तरित होने लगा और कुछ कालो-परान्त वह एक ग्रामके रूपमें हिंदुओंका तीर्थ बन गया। कहा जाता है कि सन् १५२८में मुगल सम्राट् बाबरने धर्म-मदान्धताके कारण सम्राट् विक्रमादित्यद्वारा निर्मित श्रीराम-मन्दिरको ध्वस्त करवा दिया। तबसे उस पवित्र स्थानके लिये हिंदू-मुस्लिम अनेकों विद्रोह हुए, किंतु आर्य-जाति किसी-न-किसी प्रकार अपना अधिकार जमाये ही रही। १५ अगस्त १९४७ ई०को भारत स्वतन्त्र हुआ। भारतका भाग्य-निर्णय पुनः भारतीयोंके हस्तगत हुआ। अच्छा अवसर समझकर जन्म-भूमिके विरुद्ध मुसल्मान फिर सिर उठाने लगे। इधर २३ दिसम्बर, सन् १९४९के ब्राह्म मुहूर्त्तकी शुभवेलामें जन्म-भूमि-मन्दिरमें स्थापित मूर्तिसे एक ऐसी चामत्कारिक किरण छिटकी, जिसकी शान्त एवं सुखमयी प्रभासे प्रभावित भक्तजन आनन्दविभोर हो गये। वह शुभ समाचार विद्युत्-प्रवाहकी भाँति चारों ओर फैल गया। मामला कोर्टमें गया। श्रीवीरसिंहजी, सिविल जज, फैजाबादने सरकार-को आदेशात्मक सूचना दी कि 'जबतक वादका अन्तिम निर्णय न हो जाय, तबतक जहाँपर मूर्ति विराजमान है, वहींपर वह सुरक्षित रहे और विधिवत् उसकी सेवा-पूजादिक हो।'

उक्त चामत्कारिक घटनाकी सूचना श्रीभाईजीको दी गयी तथा उनसे इस कार्यमें सहायताकी प्रार्थना की गयी। श्रीभाईजी इस संवादसे बड़े प्रसन्न हुए। वे अयोध्या पधारे और अपने प्रवचनों एवं उपदेशोंद्वारा उन्होंने

सरकारकी गति-विधियोंसे निराश जनता और कार्यकर्त्ताओंको प्रोत्साहित किया एवं आशान्वित किया। उस अवसर-पर वहाँ लगभग १५०० रु० मासिक व्ययकी आवश्यकता थी। अभियोग-सम्बन्धी व्यय इससे पृथक् था। इस समस्त व्ययका भार श्रीभाईजीने सानन्द और सहजहीमें उठा लिया। श्रीराम-जन्म-भूमिके इस महान् कार्यके लिये आपने देशके धन-पतियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया। इससे अर्थकी व्यवस्था होनेमें बड़ी सुविधा हुई।

जन्म-भूमि-सम्बन्धी साधारण व्ययोंके अतिरिक्त कभी-कभी विशेष व्यय की भी आवश्यकता पड़ जाती थी। इसके लिये सबसे सरल तथा सीधा मार्ग हमारे लिये गीतावाटिकाका ही द्वार था।

अभियोगके सम्बन्धमें श्रीभाईजीने अनेक ऐसे शिक्षित तथा इस्लामधर्मके ज्ञाता मुसल्मानोंकी खोज की, जो तर्कतः जन्म-भूमिको मुस्लिम पूजा-गृह मानना मुस्लिम धर्मके विरुद्ध सिद्ध करते थे। जन्म-भूमिके पक्षमें वातावरण-निर्माणके लिये उन मुस्लिम भाइयोंमेंसे २-१को अयोध्या भी भेजा। उन्होंने वहाँ पहुँचकर वक्तव्य देकर उन विचारोंको जनताके समक्ष व्यक्त किया तथा समाचारपत्रोंमें भी प्रकाशित कराया। कुछने हिंदू-पूजागृहके विरोधी मुसल्मानोंके विरुद्ध दिल्ली जाकर अनशनकी भी धमकी दी और जन्म-भूमि-विरोधी मुसल्मानोंकी इस सम्बन्धमें भर्त्सना की। इसके अतिरिक्त भाईजीने देशके प्रधान राज्याधिकारियों, जननेताओं एवं विद्वानोंको बार-बार पत्र लिखकर इस पुनीत काममें सहयोग देनेकी प्रेरणा दी। इस प्रकार हम तो कहेंगे, जिस प्रकार उस युगमें वनवासी श्रीरामजीके सहायक संतप्रवर हनुमान्जी हुए थे, उसी प्रकार इस युगमें इस अवसरपर जन्म-भूमिमें मूर्तिरूपमें विराजमान बाल भगवान् श्रीरामके सहायक गीतावाटिकावासी संतवर श्रीहनुमानप्रसादजी (भाईजी) हुए।

श्रीभाईजीने अयोध्यास्थ श्रीराम-जन्म-भूमिकी अपूर्व सेवाएँ की हैं। राम-जन्म-भूमि भारतका एक राष्ट्रीय तीर्थ और भगवान् श्रीराम भारतीय भावनाके प्रतीक हैं। पवित्र राम-जन्म-भूमि ५० करोड़ हिंदू जनताका प्रिय प्राण है और है भारतीय संस्कृतिका प्राण। भारतीय जनता श्रीभाईजीकी इन सेवाओंको चिरकालतक कृतज्ञताभरे हृदयसे स्मरण करती रहेगी।

●

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवासंघके कार्यमें श्रीभाईजीका योगदान

श्रीराम-जन्म-भूमिकी भाँति भगवान् श्रीकृष्णके जन्म-स्थानके कार्यमें भी श्रीभाईजीका योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। अपनी ओरसे कुछ न कहकर हम जन्मस्थान सेवासंघकी कार्यकारिणीद्वारा पारित प्रस्ताव ही यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

(श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान सेवासंघकी कार्यकारिणी द्वारा पारित प्रस्ताव)

"पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने गीताप्रेसद्वारा धार्मिक एवं आध्यात्मिक जगत्की जो सेवा की है, उसे भारतकी धर्मप्रिय जनता ही क्या, विश्व भी युगोंतक याद रखेगा। श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान सेवासंघको उनसे जो प्रेरणा, शक्ति एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, उसे व्यक्त कर पाना हमलोगोंके वशकी बात नहीं है। हम तो यही कह सकते हैं कि श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानकी अबतक जो भी प्रगति हुई है, वह पूज्य श्रीभाईजीकी प्रेरणा तथा उनकी शक्तिसे ही हुई है। संघके प्रारम्भसे ही उपाध्यक्षके रूपमें उन्होंने जो मार्गदर्शन किया, वह तो अविस्मरणीय है ही; उन्हींकी प्रेरणासे यहाँ श्रीकेशवदेव-मन्दिरका निर्माण हुआ, जिसका उद्घाटन सं० २०१५में उनके कर-कमलोंद्वारा सम्पन्न हुआ। उन्हींकी प्रेरणासे यहाँ सं० २०१६में 'कृष्ण-चबूतरा'का निर्माण हुआ और उन्हींके योजनानुसार 'भागवत-भवन'का विशाल मन्दिर साकार बनता जा रहा है। सं० २०२१में भागवत-भवनका शिलान्यास करते समय उन्होंने कहा था—

'भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे भागवत-भवनका निर्माण प्रारम्भ हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण ही इसके संचालक हैं और वे ही अपने जन्मस्थानका पुनरुद्धार-कार्य करवा रहे हैं।'

उनके इस वाक्यमें कर्मको अकर्ममें परिवर्तित करनेकी पुनीत प्रक्रिया है, जो कर्मयोगका सार है। वे अब हमारे मध्य नहीं हैं, इसपर एकाएक विश्वास नहीं होता। हम तो केवल यही कामना करते हैं कि वे सनातन श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके साथ हमारा मार्ग निरन्तर प्रशस्त करते रहें।"

मन्त्री—श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संघ, मथुरा

●

मूक-बधिर बच्चोंकी शिक्षामें श्रीभाईजीका योगदान

श्रीमदनमोहनजी त्रिपाठी

प्रिंसिपल––मूक-बधिर विद्यालय, गोरखपुर

कोई भी समाज या देश तभी उन्नतिशील माना जाता है, जब उस देश अथवा समाजका प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक नागरिक हो। हर एक उन्नतिशील देशोंने अपने देशकी उन्नतिके लिये देशके अपंगों तथा असहायोंका औषधिक एवं शैक्षिक उपचार करके तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण आदि देकर समाजके योग्य नागरिक बनानेका अत्यधिक प्रयास किया है। भारतवर्षने भी अपनी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद इस दिशामें विशेष कदम उठाया है। परंतु आवश्यकताको देखते हुए प्रयास नगण्य है। ऐसी स्थितिमें समाज-सेवियोंका सर्वप्रथम कर्त्तव्य होता है कि वे सरकारकी सहायता करें। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भी एक बहुत बड़े समाज-सेवी थे। उन्होंने भी जीवनभर अपंगों तथा असहायोंकी अप्रतिम सेवा की है। अतः श्रीभाईजीने इन सेवाओंमें सहयोग देनेकी भावना-से १९५५ ई०में गोरखपुर नगरमें एक 'मूक-बधिर विद्यालय'की स्थापना की, जिसमें मूक-बधिरोंको उचित शैक्षणिक उपचार एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदानकर समाजके योग्य नागरिक बनानेका प्रयत्न किया जाता है।

सामान्यतया लोगोंकी धरणा है कि मूक और बधिर व्यक्ति अलग-अलग होते हैं, तथा उनको शिक्षा अलग-अलग दी जाती है। परंतु मूक-बधिर एक ही व्यक्ति होता है, जिसमें मूकता एवं बधिरता दोनों व्याप्त होती है। हमारी वाणी अत्यधिक मात्रामें हमारे श्रवणपर निर्भर करती है, अर्थात् हम जो कुछ सुनते हैं, वही बोलते हैं। यदि न सुनें तो नहीं बोलेंगे। इस प्रकार श्रवणहीन व्यक्ति मूक हो जाता है। इसके अतिरिक्त मूकताका कारण मानसिक एवं वाणी-इन्द्रियोंकी खराबियाँ भी हैं।

भारतवर्षमें लगभग दस लाख मूक-बधिर हैं। उत्तरप्रदेशमें मूक-बधिरोंकी संख्या लगभग ६५,००० है तथा उत्तरप्रदेशके पूर्वी जिलोंमें इनकी संख्या लगभग ४,००० है। भारतवर्षमें मूक-बधिरोंकी सेवामें रत ७५ संस्थाएँ हैं, जिनमें कुछ सरकारी तथा अन्य लोकसेवी एवं प्राइवेट हैं। ये संस्थाएँ दस हजार मूक-बधिरोंको प्रशिक्षण प्रदान कर रही हैं। उत्तरप्रदेशमें ऐसी शिक्षण-संस्थाओंकी संख्या लगभग २७ हैं।

गोरखपुरके 'मूक-बधिर विद्यालय'में २५ बच्चोंने प्रशिक्षण प्राप्त करना प्रारम्भ किया तथा यह संस्था एक किरायेके भवनमें चालू हुई थी। पर श्रीभाईजीके सहयोग एवं प्रयत्नसे इसकी एक प्रबन्ध-समितिका गठन हो गया तथा पंजीकरण भी। श्रीभाईजीने बच्चेकी तरह इस संस्थाको पाला-पोसा। सन् १९६५में विद्यालयके लिये एक भवनका निर्माण कराकर उसे उसमें स्थानान्तरित करवा दिया। इस समय विद्यालयमें ६० बच्चे प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। इनके प्रशिक्षण-हेतु विद्यालयमें सात अध्यापक नियुक्त हैं, जिनमें तीन साहित्यिक शिक्षामें तथा शेष व्यावसायिक शिक्षामें प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। सभी अध्यापक योग्य एवं प्रशिक्षित हैं। विद्यालयसे अबतक लगभग ४० बच्चे प्रशिक्षित हो चुके हैं तथा विभिन्न व्यवसायोंमें कार्य करते हुए सुखद जीवन-यापन कर रहे हैं।

कुष्ठ-रोगियोंके मौन सेवक श्रीभाईजी

श्रीविजयनाथजी त्रिपाठी,
सुपरिंटेण्डेण्ट—कुष्ठ-सेवाश्रम, गोरखपुर

'कुष्ठरोगमें केवल चिकित्साका ही प्रश्न नहीं, बल्कि रोगीके निराशामय जीवनको आशामय बनानेका भी प्रश्न है, जिसके लिये त्यागमय सेवाकी आवश्यकता है।'

—गांधीजी

गांधीजीके निधनके पश्चात् गांधी-स्मारक-निधि'ने बापूके जिन रचनात्मक कार्यों एवं विभिन्न प्रवृत्तियोंके विकासकी योजनाएँ बनायीं, उनमें कुष्ठ-निर्मूलनको भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। श्रीश्रीदेवदास गांधी तथा प्रमुख समाज-सेवी श्रीकृष्णदास जाजूजीकी प्रेरणासे कुष्ठ-निर्मूलन-योजनाके निमित्त 'गांधी-स्मारक-निधि'मेंसे एक करोड़ रुपये अलग कर दिये गये। कुष्ठरोगकी समस्याकी ओर गांधीजीका ध्यान सर्वप्रथम पुरुलिया (बिहार) स्थित 'मिशन टु लेपर्स'के सेक्रेटरी श्रीडोनाल्ड मिलरने आकर्षित किया था। गांधीजीको यह काम अतिप्रिय लगा और इसे उन्होंने अपने रचनात्मक कार्योंमें सम्मिलित कर लिया।

युग-युगसे अभिशप्त कुष्ठरोगियोंको देखकर प्रसिद्ध समाज-सेवी बाबा राघवदासजीका हृदय करुणासे अभिभूत हो जाता था। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद उन्होंने इस ओर अधिक ध्यान देना शुरू किया। उन्होंने इसाई मिशन-रियोंद्वारा संचालित कुष्ठरोग-अस्पतालोंको देखा, उनके संचालकोंसे बातें कीं। 'सल्फोन' नामक औषधद्वारा कुष्ठरोगका निर्मूलन सम्भव जानकर बाबाजीने एक कुष्ठ-आश्रमकी स्थापनाका निश्चय किया। उनके प्रयत्नसे 'गांधी-स्मारक-निधि'की उत्तरप्रदेश-शाखाने जनवरी १९५१में यह निश्चय किया कि उत्तरप्रदेशमें एक कुष्ठ-सेवाश्रमकी स्थापना की जाय। एक प्रस्ताव स्वीकृतकर मुझे उसके लिये उपयुक्त स्थानकी खोज करनेका भार सौंपा। मैंने उत्तरप्रदेशके सब स्थानोंको देखा, आखिर तराई एवं पहाड़ी क्षेत्र कुष्ठरोगसे अधिक प्रभावित होनेके कारण गोरखपुरमें कुष्ठ-सेवाश्रमकी स्थापनाका निश्चय हुआ। इस क्षेत्रमें कुष्ठ-रोगी ३ प्रतिशत हैं।

बाबाजीका श्रीभाईजीसे बहुत पुराना निकटका सम्बन्ध था। वे श्रीभाईजीकी जीवदया, प्राणी-सेवासे अच्छी प्रकार परिचित थे। अतएव इस योजनाको कार्यान्वित करनेके समय उन्होंने श्रीभाईजीसे भी सहयोग लिया। मार्च १९५१में गोरखपुरके कलक्टर महोदयके यहाँ कुष्ठाश्रमकी स्थापनाके सम्बन्धमें एक सभा बुलायी गयी, जिसमें श्रीभाईजीके अतिरिक्त गोरखपुर शहरके सभी प्रमुख समाज-सेवियों एवं प्रसिद्ध डाक्टर महानुभावोंने भाग लिया।

बाबाजीने 'मिशन टु लेपर्स' संस्थाके प्रमुख मिशनरी कार्यकर्त्ता डा० पी० जे० चाण्डी महोदयसे सम्पर्क स्थापित किया। अगस्त, सन् १९५१को 'तिलक-जयन्ती'के पुण्य पर्वपर कुष्ठ-सेवाश्रमकी स्थापना हो गयी। इस कार्यमें श्रीभाईजी प्रथम सहयोगीके रूपमें उनके साथ थे। प्रारम्भमें इस आश्रममें १५ रोगियोंको रखनेकी व्यवस्था हुई तथा दो कार्यकर्त्ता—श्रीविजयनाथजी त्रिपाठी तथा श्री पी० रत्नस्वामी। मासिक व्यय ३०० रु० था, जो चंदेके रूपमें उदार सज्जनोंसे प्राप्त होता था।

अगस्त १९५१में श्रीविनोबाजीके उत्तरप्रदेशमें प्रवेशके साथ ही बाबाजी भूदान-ग्रामदान-कार्यमें उनके साथ लग गये। फरवरी १९५२तक आश्रमके लिये संकटका काल था। मार्च १९५२में श्रीकृष्णदासजी जाजूके गोरखपुर आगमनपर कुष्ठ-सेवाश्रमकी समस्या उनके सामने रखी गयी। श्रीजाजूजीने प्रस्ताव रखा कि 'काम तो अच्छा है। यदि इस संस्थाका दायित्व श्रीभाईजी सँभाल लें तो वे 'गांधी-स्मारक-निधि' से सहायता दिला सकेंगे।' श्रीजाजूजी, बाबाजी और मैं श्रीभाईजीसे मिले। श्रीभाईजी तो इस प्रकारके सेवा-कार्योंके लिये सदा तैयार रहते ही थे, उन्होंने अपनी व्यस्तताको देखते हुए भी इस सेवा-कार्यमें सहयोग देनेकी स्वीकृति प्रदान कर दी। १-२ वर्षतक श्रीजाजूजीके प्रभावसे ७५० रु० मासिक सहायता 'गांधी-स्मारक-निधि'से मिलती रही, बादमें वह बंद हो गयी। १९५३में भाईजीने प्रयत्न करके इस संस्थाको 'कुष्ठ-सेवाश्रम'के नामसे एक रजिस्टर्ड संस्था बना दिया।

आज कुष्ठ-सेवाश्रम, गोरखपुरका स्थान देशकी महत्वपूर्ण संस्थाओंमें है। बिना किसी प्रकारके प्रचारका साधन अपनाये अपने कार्यकारी उपाय-योजनाओंकी सफलताके कारण इस संस्थाकी प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ रही है। सार्वजनिक क्षेत्रमें जो कुष्ठ-सेवाका कार्य हुआ है, उसका आकलन करें तो उत्तरप्रदेशके समस्त पूर्वी जिले—गोंडा, वाराणसी, गाजीपुर, बलिया प्रभृति सभी इस संस्थाकी प्रेरणा एवं प्रभाव-क्षेत्रमें आते हैं। इसके अतिरिक्त बिहारके पश्चिमी भागमें जो प्रशंसनीय सेवा-कार्य हो रहा है, उसका प्रारम्भ भी इसी संस्थाके माध्यमसे हुआ था। बस्ती, देवरिया, गोंडा आदि जिलोंमें जो-कुछ कार्य हो रहा है, प्रारम्भमें वर्षोंतक उसके संचालनके उत्तर-दायित्वका निर्वाह इसी संस्थाने किया है। तदनन्तर प्रत्यक्ष प्रेरणा, सलाह, सहायता एवं मार्गदर्शनके साथ ही प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओंका प्रबन्ध भी किया है। इस सेवाश्रमकी कार्य-व्यवस्थाको देखकर स्थानीय लोगोंकी सेवा-भावना तथा प्रेरणासे कुछ समाजसेवी संस्थाएँ भी स्थापित हुई हैं। यह पौधा आज विशाल वट-वृक्षके सदृश अपनी छायामें सहस्रों कुष्ठ-रोगियोंको स्वास्थ्य एवं सुख-शान्ति प्रदान करता जा रहा है। आज इस सेवा-श्रमके विभिन्न उप-चिकित्सा-केन्द्रोंसे कुष्ठ-रोगियोंको उपचारके साथ-साथ नवीन जीवनदृष्टि और सुखद-भविष्यकी आशा प्राप्त होती है।

कुष्ठ-सेवाश्रम, गोरखपुरके इस विकासमें कौन-सा ऐसा तत्त्व था, कौन-सी ऐसी शक्ति थी, जो इसको नित्य अनुप्राणित करती रही है—संजीवनी-शक्तिसे भरती रही है ? जब इस प्रश्नपर विचार करता हूँ, तब पूज्य श्रीभाई-जी सामने आ जाते हैं। यह कहना बड़ा कठिन है कि उनका योगदान इस संस्थाके लिये कितना रहा है। समझमें नहीं आता कि प्रारम्भसे अबतक उनके किस कामको गिनाया जाय, किसे छोड़ा जाय। उनके सतत प्रयत्नोंसे ही आज पूर्वी उत्तरप्रदेशमें कुष्ठ-रोगियोंकी सेवाका कार्य विधिवत् और सफलतापूर्वक चल रहा है। संस्थाके सम्पत्ति-निर्माण, इसके संचालनमें प्रशासनको बल और सेवाकी प्रेरणा—सभीमें तो श्रीभाईजीका वरद-हस्त प्रमुख रहा। राजनीतिक दलदल और कीचड़से अबतक यह संस्था अछूती रही है, यह भी उन्हींके प्रभावका फल है। जिस प्रकार हरी-भरी खेतीके लिये धरतीका महत्व है, उसी प्रकार श्रीपोद्दारजीका महत्व इस आश्रमके लिये है, ऐसा कहें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी।

श्रीभाईजीने इस आश्रमके बारेमें सदा यही कहा—'काम करनेवालोंकी कमी है, धनकी नहीं; वह तो आयेगा ही ईश्वरकी कृपासे। काम होना चाहिये सही ढंगसे।' और इसी आश्वासनपर काम बढ़ता रहा, कठिनाइयाँ आती रहीं और दूर होती रहीं।

सामाजिक कार्योंमें आर्थिक कठिनाइयाँ आती ही हैं, किंतु श्रीभाईजी अपने सहज विश्वास और सहयोगसे ऐसी समस्याओंका समाधान बराबर करते रहे। सुहृद्-मित्रोंसे सहायता दिलवाते रहे। कुष्ठ-सेवामें उनका निजी योगदान तो अप्रतिम है ही।

एक भगवद्भक्त सेवापरायण जन प्रभुके सब जीवोंसे प्रेम करता है। उसके संवेदनशील हृदयमें दीन-हीनोंके लिये कोमल भावना और सहज करुणा होती है। व्यापक मानव-प्रेम ही उसकी ईश्वर-पूजा है। श्रीभाईजी इसके आदर्श उदाहरण थे। यश और कीर्तिसे दूर और निर्लिप्त मनोवृत्तिवाले श्रीभाईजीके अमूल्य योगदानको, अन्य लोगोंकी तो छोड़िये, लाभान्वित होनेवाले रोगी तथा इस कार्यमें संलग्न अधिकांश कार्यकर्त्ता भी नहीं जानते हैं। यह है मूक सेवाका आदर्श।

× × ×

एक बार श्रीभाईजी स्वर्गाश्रम जा रहे थे। राहमें 'मुनिकी रेती'में इन्हें सैकड़ों कुष्ठ-रोगी जीर्ण-शीर्ण कुटीरोंमें दिखायी पड़े। उनके अस्त-व्यस्त दुःखी जीवनको देखकर श्रीभाईजीका हृदय करुणार्द्र हो उठा—'पर दुख द्रवै संत सुपुनीता।' चिकित्साकी कोई व्यवस्था न थी। उनके अभाव और कष्टको दूर करनेके लिये भाईजीने एक चिकित्सा-गृहकी सत्वर व्यवस्था अपने एक स्वजनसे करा दी और जीवन-पर्यन्त उनकी हित-चिन्ता करते रहे।

× × ×

एक बारका प्रसङ्ग है—एक सरकारी उच्च पदाधिकारी कार्यवश भाईजीसे मिलने आये। उनके भाईको कुष्ठ-रोग हो गया था। बातचीतके दौरान यह विषय भी आया। भाईजीने उस दुःखी भाईसे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की। कुष्ठरोगसे आक्रान्त सज्जन आये—रातके अँधेरेमें और मुँह ढँके हुए, क्योंकि वे स्वयं भी एक उच्च पदाधिकारी थे। भाईजीने उन्हें बड़े आदरके साथ बैठाया और स्नेहसे उन्हें अपूर्व सान्त्वना दी। ये भाई जीवनसे हताशप्राय थे और आत्महत्या करना चाहते थे। भाईजीने उनको जीवनकी आशाके साथ बिदा दिया। उनकी चिकित्साकी सम्यक् व्यवस्था की और पूर्ण स्वस्थ होनेतक उनकी सुधि लेते रहे। अब वे सज्जन स्वस्थ हैं और अपना जीवन कृतार्थ मानते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं, जहाँ भाईजीने कुष्ठ-रोगियोंकी व्यक्तिगत तौरपर सहायता की है।

'कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥'

यह उक्ति श्रीभाईजीके लिये अक्षरशः सही है। उनमें न तो आत्म-प्रशंसाकी भावना थी, न बड़ा व्यक्ति कहलानेकी अभिलाषा। ऐसे कर्मनिष्ठ पुरुषोंकी सेवा-दृष्टि ही उनकी सच्ची प्रतिष्ठा होती है।

आज भाईजी हमारे बीच नहीं हैं—कुष्ठ-सेवाश्रम, जिसको शैशवावस्थासे ही भाईजीने मातृवत् पाला-पोसा और आज उसे इस स्थितिमें ला दिया कि वह एक विशाल वट-वृक्षकी तरह हो गया है, जिसकी शाखाएँ गोंडासे लेकर छपरा जिलेके सुदूर देहातोंमें फैली हुई हैं, जहाँ लाखों रोगी स्वस्थ हो रहे हैं और भाईजीका यशोगान करते हैं— अनाथ-सा हो गया है। पर भाईजीने जो सीख दी है, वही सम्बल बना हुआ है।

●

आर्त्तनारायणकी सेवा

देशके विभिन्न भागोंमें जब-जब दैवी विपत्तियाँ आती रही हैं, जैसे—अकाल, बाढ़, भूकम्प, अग्निप्रकोप, महामारी आदि, तब-तब श्रीभाईजी यथासम्भव सेवाकी व्यवस्था करते रहे। प्रायः ये सेवाएँ 'गीताप्रेस सेवादल'के नामसे होती थीं। कभी-कभी यह सेवा वे उन-उन स्थानोंमें निवास करनेवाले अपने परिचित स्वजनोंके माध्यमसे और कभी उस क्षेत्रमें सेवा कर रही संस्थाओंके माध्यमसे ही करवाते रहते थे। उनकी यह सेवा देशके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक सभीको समानरूपसे प्राप्त होती रही है। सेवाओंकी सूची बड़ी विस्तृत है, स्थान-संकोचसे उसे नहीं दिया जा रहा है। केवल अन्तिम सेवाका उल्लेख किया जा रहा है। सन् १९६९-७०में राजस्थानमें भीषण अकाल पड़ा और पशुओं—विशेषकर गो-माताकी स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी। उस समय श्रीभाईजी अस्वस्थ थे, किंतु उस अवस्थामें भी उन्होंने कई स्थानोंपर सेवाकार्यकी व्यवस्था की। बीकानेरमें गायोंकी सेवाका विशेष कार्य हुआ। अपनी धर्मपत्नीकी ओरसे ५,०००की अल्प पूँजी लेकर श्रीभाईजीने यह कार्य प्रारम्भ किया और भगवान्की कृपासे उस सेवा-कार्यमें लगभग १५ लाख रुपये व्यय हुए।

श्रीभाईजीने इस प्रकारकी दैवी विपत्तियोंके समय सेवा-कार्योंकी व्यवस्थाके लिये अन्तिम दिनोंमें एक ट्रस्ट बनाया था, जिसका नाम था—'आर्त्तनारायण सेवा-संघ'। इस संघकी स्थापनाके उद्देश्यके सम्बन्धमें श्रीभाईजीने लिखा है—

'देशमें दैवी विपत्तियाँ आती ही रहती हैं। अकाल, बाढ़ तो कहीं-न-कहीं बने ही रहते हैं। अग्नि-प्रकोप, भयानक दंगे, भूस्खलन, भूकम्प आदि भी होते रहते हैं। इन दैवी विपत्तियोंसे पीड़ित मनुष्यमात्रकी बिना किसी भेदभावके तथा अन्यान्य प्राणियोंकी भगवत्सेवाके भावसे यत्किंचित् सेवा हो सके, इसके लिये 'आर्त्तनारायण सेवा-संघ' नामक एक संघ स्थापित करनेका निश्चय किया गया है। इसमें स्थायी कोष भी रहेगा और दैवी दुर्घटनाओंके अवसरपर समय-समयपर धन भी एकत्र किया जायगा, जिससे सेवा-कार्य किया जा सकेगा। इसका किसी भी सम्प्रदाय या राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं होगा। यह सबकी सेवाके लिये सभी लोगोंका सम्मिलित संस्थान होगा। यह विशुद्ध जीव-सेवाके द्वारा भगवत्सेवाका पवित्र कार्य है।'

संघका पञ्जीकरण हो गया था, पर इसी बीच वे अधिक अस्वस्थ हो गये और उसका कार्य प्रगति नहीं कर सका। स्वजनों, मित्रोंकी इच्छा एवं प्रयत्न है कि श्रीभाईजीकी इस अन्तिम भावनाका आदर किया जाय। देखें, भगवान् क्या करवाते हैं।

●

श्रीभाईजीका जीवन-उद्देश्य—प्रेम-वितरण

श्रीभीमसेन चोपड़ा

परम श्रद्धास्पद श्रीभाईजीके २२ मार्च १९७१, तदनुसार चैत्र कृष्ण दशमी, संवत् २०२७के दिन तिरोधानके पश्चात्से उनके पवित्र जीवन, कार्य तथा स्वरूपके विषयमें प्रचुर सामग्री पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तक-पुस्तिकाओंके रूपमें प्रकाशित हो चुकी है, हो रही है और भविष्यमें भी होती ही रहेगी। क्योंकि अपने दिव्य, भव्य जीवनमें उन्होंने अनेकविध क्षेत्रोंके अन्तर्गत जिस-किसी कार्यमें हाथ डाला, उसीमें वे सर्वप्रथम रहे। नवीन कीर्तिमानकी प्रतिष्ठा की, नवादर्शोंकी स्थापना की, चाहे वह कार्य साहित्य-सर्जन अथवा पत्रकारितासे सम्बन्ध रखता हो, आर्त तथा दीन-दुःखियोंकी सेवा हो, आध्यात्मिक साधना हो, धर्म-जागरण तथा गोरक्षाका कार्य हो, अथवा कर्मठ जीवन, ज्ञान और भक्तिका समन्वय प्रस्तुत करना हो, या आदर्श लौकिक व्यवहारका स्वरूप अपने प्रत्यक्ष जीवनसे सबके सम्मुख रखना हो। सभी दृष्टियोंसे उनका सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर उनके सभी कार्य सर्वाङ्गपूर्ण और अनूठे दिखायी देते हैं।

परंतु उनके सम्पूर्ण जीवन, कार्यकलाप तथा स्वरूपमें अनुस्यूत एवं गुम्फित एक ऐसा विलक्षण तत्त्व विद्यमान है, जो उन सबका अधिष्ठान है, शक्ति है, और नियामक तो वह है ही। इसके अतिरिक्त वही साध्य, साधना और सिद्धि भी है। उसीका मधुर रव उनके समग्र व्यक्तित्वकी गरिमामें झंकृत हो रहा है। उसीकी सरस मधु-धारा उनके जीवनसे निस्सृत होकर जन-जनको प्लावित, आप्यायित और उनके तन-मन-प्राण शीतल करती दिखायी देती है। उसीकी प्राप्ति तथा उन्मुक्त-हस्तसे वितरण—श्रीभाईजीके समग्र जीवनका प्रेरणास्रोत था, महत् उद्देश्य था। पग-पगपर उनके व्यक्तित्वको तथा सम्पूर्ण जीवनको उसीने आच्छादित कर रखा था। वह है—भगवत्प्रेम। श्रीभाईजीके धर्ममय, भक्तिपूत जीवन-संगीतका मूल स्वर यही प्रेम है।

चौबीस वर्षकी आयुमें सुदूर बंगालके एक छोटे-से गाँवमें नजरबंद रहकर, उन्होंने अपने प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णको जिस सौरभमय प्रेम-पुष्पसे रिझाया; उस रसिक-शेखरकी प्राण-वल्लभा, महाभावरूपा श्रीराधाके गीत गाये और एकाकी, निरपेक्ष, निर्मल प्रेमकी प्रतिमा श्रीव्रज-गोपियोंकी महिमाका बखान किया, उनकी वह सर्वप्रथम कृति ही थी—'प्रेम-दर्शन', जिसकी रचना गीताप्रेस अथवा 'कल्याण'के आरम्भ होनेसे बहुत पूर्व सन् १९१६ में हुई थी। उनकी यह कृति प्रेम-लक्षणा भक्तिके आदि आचार्य देवर्षि नारदके भक्तिसूत्रोंकी सरस,, सुमधुर व्याख्या है। 'प्रेम-दर्शन'से आरम्भ कर आजीवन प्रेमकी आदर्शस्वरूपा इन गोप-सुन्दरियोंका गुणगान करके उन्होंने अपनी लेखनी एवं वाणीको धन्य बनाया है। उनका यह प्रेमाराधन नित्य नवायमान होकर सतत बढ़ता ही चला गया और अन्ततोगत्वा इसीने उन्हें अपने परम सुसेव्य प्रेमके साथ तन्मय बना दिया—एकाकार कर दिया। इसी दिव्य प्रेमने भक्त और भगवान्‌के अन्तरकी खाई पाट दी, मनुष्य और ईश्वरको जोड़ दिया।

इस विलक्षण प्रेमीकी अखण्ड, गुह्य-प्रकट प्रेम-साधनाने उनकी लेखनी और वाणीको ओज दिया, मधुरिमा दी। इसी दिव्य प्रेमने ही इनके शब्दोंको सरसता दी, प्रेमपूत दृष्टि दी; व्यक्तित्वमें आकर्षण दिया, आभा दी; प्रतिभा दी; गौरव दिया, गरिमा दी; भक्ति दी, शक्ति दी; यश दिया, कीर्ति दी। इस प्रेमने श्रीभाईजीको क्या नहीं दिया? और जो भी दिया, प्रचुर दिया। श्रीभाईजीने भी उस प्रेमको जी भरकर खूब लुटाया—झोलियाँ भर-भर बाँटा, उन्मुक्त हृदयसे वितरित किया। परंतु जितना फेंका, उससे कईगुना बढ़कर वह पुनः इन्हींके पास लौट आया। आधुनिक युगमें प्रेमकी इस प्रतिमाके प्राकट्यसे वसुंधरा हर्षोन्मत्त हो उठी, सत्पुत्रवती भारत-भूकी कोख सार्थक हुई।

इस प्रेमने श्रीभाईजीको वह अलौकिक दिव्य प्रज्ञा तथा कार्यशक्ति प्रदान की, जिसने सम्पूर्ण विश्वको झकझोर दिया। हिंदू संस्कृति एवं धर्मके इतिहासमें इस अलौकिक प्रेमी संतप्रवरका जीवन-काल सर्वाधिक गौरव-

पूर्ण है। हिंदू धर्म, संस्कृति एवं तत्त्वदर्शनके ज्ञानकोषको अक्षय बनानेकी दिशामें और इसकी कीर्ति-पताकाको दसों दिशाओंमें फहरानेके लिये आजतक जितने प्रयास हुए हैं, उन सबको यदि एक स्थानपर संकलित कर दिया जाय, तो भी जातीय जीवनके सुदीर्घ कालखण्डमें उन सब प्रयत्नोंकी तुलनामें श्रीपोद्दारजीके प्रेममय जीवनकी घड़ियाँ अधिक महिमामयी हैं, अधिक गौरवपूर्ण है; अनूठी हैं, अमूल्य हैं । इस प्रेमीके जीवनमें प्रेममय आदर्श आचरणका सजीव सौन्दर्य और महत्ता उस समस्त सौन्दर्यसे कहीं अधिक है, जिसकी कभी मानवने कल्पना की, सपने देखे अथवा उसके संग्रहकी साध अपने अन्तर्हृदयमें सँजोयी है ।

श्रीपोद्दारजीके विमल यशोमन्दिरका निर्माण हुआ है—भगवत्प्रेमकी भित्तिपर। प्रेममयी भावभूमिपर अधिष्ठित इस मन्दिरकी नींव तो प्रेम है ही, प्रेम ही उपादान है, उपकरण है, कक्ष है, प्राङ्गण है, शिखर है, ध्वजा है और इस दिव्य प्रेम-मन्दिरमें प्रतिष्ठित प्रेम-विग्रहकी ही रसमयी उपासना इस प्रेम-पुजारीने प्रेमपूत हृदयसे प्रेम-प्रसूनोंद्वारा की है। प्रेमाश्रुओंसे अर्घ्य-आचमन देकर प्रेमकी बत्तीसे ही नीराजन करते हुए, प्रेममय हृदयका नैवेद्य अर्पितकर, आजीवन प्रेमार्चा की है। फलतः परम प्रेमास्पद, प्रेममय, प्राण-प्रियतमने अपने स्निग्ध दर्शन, स्पर्श, मधुस्मित एवं संलापद्वारा अपने इस प्रेमीको परितृप्त किया है। रससागर नटनागरने अपने प्रेमपाशमें कसकर, भुजाओंमें भरकर, अपने इस प्रेमीको रसरूप बना दिया और वही रस उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा कार्यमें; वाणीमें, व्यवहारमें; चितवनमें, चालमें; श्वासमें, प्रश्वासमें छलकता दिखायी देता है।

प्रेमकी इस उच्छलित, सरस धाराकी भाव-तरंगोंके साथ, प्रेमपूत निर्झर (लेखनी)से झरे सुधा-सीकरोंके संयोगने उस अक्षय, अशोष्य प्रेम-सरिताका आकार ले लिया, जो आगे चलकर जन-जनको आप्यायित करनेके लिये अनेक धाराओंमें फूट पड़ी।

पतितपावनी, जन-जन-कल्याणी, करुणामयी उस प्रेम-सरिताकी ही एक धाराने जीवमात्रके अशेष कल्याणके लिये 'कल्याण'का आकार ले लिया। कदाचित् अनेकोंको उबारनेवाली कल्याण-धाराको प्रवाहित करनेकी अभिसंधि लेकर प्रेमघन, साँवले-सलोने घनश्यामने, अपने नामको सार्थक करनेके लिये ही अपने नामधारी श्रीभाईजीके क्रांतिकारी जीवनके सहचर घनश्याम (घनश्यामदास बिरला)की वाणी बनकर यह कहा था—'आपलोग अपने विचारोंकी एक पत्रिका निकालें ।' और यही प्रेरणा 'कल्याण'-धाराके रूपमें फूट पड़ी। नीरस-शुष्क, अशान्त-क्लान्त जीवोंकी दशासे द्रवित हो, उन्हें सान्त्वना देने, रससिक्त करनेकी भावनासे वे स्वयं घनसे तरल बनकर इस धाराको आकण्ठ पूरित करनेके लिये मचल पड़े और कभी 'मधुर'के रूपमें छन्दोबद्ध होकर, और कभी आशुतोष 'शिव' बनकर उसमें समा गये और राग-द्वेषके पुतले, भोगासक्त प्राणियोंको सचेत-सावधान करनेके लिये सतत—'याद रक्खो' 'याद रक्खो' की रट लगाते रहे।

कालान्तरमें हिंदू-तत्त्व-चिन्तनके मानस-सरसे निस्सृत अनेकानेक छोटे-बड़े नदी-नालोंने इसी धारामें मिलकर इसे बृहदाकार बना दिया। इसमें अवगाहन करके श्रममुक्त होनेवालों, दर्शन-पान-स्पर्श-अभिषेकसे अपनी प्यास बुझानेवालों और शान्तिका अनुभव करनेवालोंकी संख्या लाखों-करोड़ोंसे कम नहीं है। जितने विस्तीर्ण क्षेत्रको अपने जलसे सिञ्चितकर इस धाराने शस्यश्यामल बनाया है, और जितनी दूरतक यह बहती चली गयी है तथा अब भी बहती चली जा रही है, 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंके रूपमें जो पावन तीर्थ इसके तीरपर निर्मित हो गये हैं, उनका आयाम और विस्तार देखकर यही प्रतीत होना नितान्त स्वाभाविक है कि कदाचित् इसे भूतलपर उतारकर जीवोंका कल्याण करनेके प्रयोजनसे ही श्रीभाईजीका आविर्भाव इस धराधामपर हुआ था। भगवत्प्रेरित, भगवदीय प्रयोजनके लिये सम्पादित तथा भगवदीय शक्तिसे सम्पन्न इस कार्यका श्रेय भी यद्यपि श्रीभगवान्ने अपने इस प्रेमीको दिया है और उस विमलकी कीर्तिमें चार चाँद लगा दिये हैं, तो भी इस प्रेमीके आगमनका मुख्य प्रयोजन था और है—प्रेमकी उपलब्धि और उसका वितरण। अनन्त-सौन्दर्य-सुधानिधि और असंख्य रसरूपोंमें अभिव्यक्त अपने परमाराध्यमें सम्पूर्णतया विलीन होकर—रसार्णवमें मिलकर तद्रूप हो जाना और रस बनकर बरस पड़ना उनके अन्तरतमकी एकमात्र साध थी। अतः निर्मल, विशुद्ध प्रेमकी अजस्र मूल धारा स्वतन्त्र प्रवाहके रूपमें

सब विघ्न-बाधाओंको लाँघती हुई, अपने प्राण-प्रियतमका गुणगान करती, उससे मिलनेके लिये अधीर होकर आतुर हृदयसे सतत बढ़ती ही चली गयी।

'चरैवेति', चरैवेति', प्रवाहिणीका धर्म है, स्वभाव है। सरसता, गति और लय उसका जीवन है। श्रीभाईजी-के हृद्देशसे सहज प्रसूत, स्नेहकी क्षीणधारा क्रमशः कभी मन्थरगतिसे और कभी वेगसे, बल खाती, इठलाती कल-कल करती, श्रवणपुटोंमें रस उड़ेलती, बाधाओंके साथ खेलती, विपदाओंको भुजबन्धन देती चली जा रही है, चली जा रही है, सतत प्रवहमाण दिखायी देती है। जिसे अपने प्राण-वल्लभ रसार्णवसे मिलनेकी चाह चढ़ी है, वह क्या जाने मार्गकी दूरी, पथकी बाधा। सतत गतिमान् प्रेमकी इस अजस्र धाराकी प्रेम-साधना और सिद्धिका ही यह वर्णन है। नवोदिता, नवेली प्रेमिकाको प्रियतमके लुभानेका, नवोढ़ाकी छटपटी, प्रतीक्षा, आँख-मिचौनी और अन्तमें उस रसिकप्रवरसे मधुर-मिलनका यह यत्किंचित् क्रमबद्ध विवरण है, विवेचन है। उस छलियाने रहस्यमय ढंगसे इस अल्हड़ बालिकाको लुभानेके लिये जो जाल रचा, उसका इतिहास है।

रससागर नटनागर अपनी मनोहर छवि जिस प्रेमीके मनोदर्पणमें प्रतिबिम्बित देखनेके लिये अधीर थे, वह तो क्रान्तिकारी, राजनीतिक और सामाजिक हलचलोंमें आकण्ठ डूबा हुआ था। विविध दिशाओंसे आगत झकोरोंसे दर्पण बुरी तरह हिल रहा था। न जाने कितनी स्वकल्पित मान्यताओंका मल उसे मलिन बना रहा था। उसे शान्त, स्थिर तथा स्वच्छ करना अनिवार्य था। अतः उस नटवरने श्रीभाईजीको अनिष्ट ग्रहोंकी नजरसे बचानेके लिये सब हलचलोंके केन्द्रसे दूरवर्ती शिमलापालमें ले जाकर नजरबंद कर दिया। उस करुणावारिधिने भटकते मनको शान्त एवं स्थिर तथा जन्म-जन्मान्तरके मनोमलको धो-पोंछकर निर्मल कर देनेवाली अचूक रामबाण औषध नाम-अमृतका सतत सेवन करनेकी प्रेरणा दी। श्रद्धासेवित इस महौषधने श्रीभाईजीको अल्पकालमें ही अपने चमत्कार दिखलाने आरम्भ किये। इसके अतिरिक्त अपने भक्तको अपने प्रेममय स्वरूपका साङ्गोपाङ्ग दर्शन एवं रसास्वादन करानेकी व्यवस्था उसने पहले ही कर रखी थी। कलिपावनावतार प्रेमविग्रह श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमलक्षणाभक्ति-सम्बन्धी विपुल बँगला रस-वाङ्मय-सरोवरको प्यासेके पास पहुँचा देनेका प्रबन्ध कर दिया था। परिणामतः हृदयस्थ क्षीण स्रोत, नामामृतका संयोग पाकर, इस रस-सरोवरसे रस बटोरकर, सरसती-सरसाती धाराके रूपमें अपने गन्तव्यकी ओर चल पड़ा। यह कृश धारा पुराने संस्कारोंके उद्‌बुद्ध हो पड़नेपर पुनः कहीं पङ्किल न हो जाय, अतः उस लीला-विहारीने श्रीभाईजीको बंगालसे निष्कासित कर देनेमें ही उनका हित देखा।

कारागारमें बंदी बनाकर, बन्धु-बान्धवों और स्वजन-सखाओंसे उनका विछोह कराकर, धनका नाश करके तथा अन्ततोगत्वा निर्वासन-जैसा भयानक रूप धरकर उस अनन्त दयालुने इन प्रतिकूलताओंके अन्तरालसे जो अमूल्य धन इस अकिंचनको दे दिया, उसका गद्‌गद कण्ठसे, कृतज्ञताभरे हृदयसे उल्लेख वे आजीवन करते रहे। मङ्गलमय प्रभुकी इस अनुकम्पाका स्मरण करते हुए उनकी आँखें भर-भर आती थीं।

दृढ़ साधन-भूमिपर अधिष्ठित होकर, भक्ति और रस-साहित्यके आलोडन, अनुशीलन एवं मन्थनसे 'प्रेम-दर्शन'के रूपमें जो नवनीत श्रीभाईजीने नजरबंदीकी स्थितिमें निकालकर स्वयं चखा था, उसके मुक्तहस्त वितरण-का समय कदाचित् अभी आया नहीं था। अभी उस प्रेम-सरिताको गुप्त रखकर, उसे अन्तरायोंसे बचाते हुए, गहन, गम्भीर और व्यापक बनानेके साथ ही प्राणप्रेष्ठको यह भी अभीष्ट था कि अन्यान्य आध्यात्मिक साधनाओंके ज्ञान तथा अनुभवोंमें निष्णात बनाकर, इन्हें समन्वित-दृष्टि-सम्पन्न किया जाय, अर्थोपार्जन तथा संचयकी असारता इनके मनपर अङ्कित हो जाय; राजनीतिक तथा सामाजिक सेवाके प्रसुप्त एवं दुबके हुए संस्कारोंको बाहर निकालकर उनका उन्मूलन किया जाय, सबका सर्वप्रिय 'भाईजी' बनाकर उसके भावी भव्य कार्यका मार्ग प्रशस्त किया जाय। अतः निष्काम कर्म एवं ज्ञानके देदीप्यमान सूर्य, प्रातःस्मरणीय सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका वरद-हस्त उनके सिरपर रख दिया। प्रेमके आधार नामरूपी धन बटोरनेमें सिद्धहस्त रामनामके आढ़तियाका साहचर्य दे दिया। अन्यान्य सभी क्षेत्रके प्रमुख नेताओंका नैकट्य देकर, संयोजित कर बृहद् जप-यज्ञके आयोजनमें संत-महात्माओंका सहयोग देकर, सत्सङ्गका चस्का लगाकर अन्तमें इनके अंदर सब कुछ त्यागकर केवल उसीकी जी-हुजूरी करनेकी तीव्र

लालसा जगानेका सारा कार्य उस छलियाने बम्बईमें ही लुके-छिपे रहकर और बीच-बीचमें अपनी झांकी दिखाकर सहज ही सम्पन्न कर डाला।

और इधर यह नाटकीय सूत्रधार अपनी अघटघटनापटीयसी नटीकी सहायतासे भावी नाटचमञ्चकी तैयारीमें छिपे-छिपे पहलेसे ही ताना-बाना बुन रहा था। उसे तो अपने इस प्रेमपात्रकी कायाको माध्यम बनाकर कितने ही उद्देश्य पूरे करके उसके मत्थे यश मढ़ना था। जीव-कल्याण, नाम-प्रचार, प्रेम-वितरण, आर्तसेवा, गो-रक्षा, लौकिक आदर्श-व्यवहारकी प्रतिष्ठा—न जाने कौन-कौन-से पापड़ इस प्रेमीके पार्थिव कलेवरसे बिलवानेकी उसे सनक सवार हो गयी थी। और अपनी मनमानी करते समय किसीकी सुनना-मानना उसने आजतक सीखा ही नहीं।

प्रेमकी सतत वर्धनशील सरस मधुर धाराके प्रवाहको स्थिर गतिसे बढ़ चलनेके लिये लवण-सागरसे दूर किसी तपःपूत सपाट विस्तीर्ण भूमिकी आवश्यकता थी। और योगिराज गोरक्षनाथकी साधनासे पावन बनी हुई गोरखपुरकी धरती इसके लिये सर्वथा उपयुक्त थी। सृष्टिके आरम्भसे लेकर अभीतक घटी हुई और आगे घटने-वाली समस्त लीलाओंकी नियोक्त्री, अलक्ष्य नटी लीलाशक्ति सूत्रधारका निर्देश पाकर श्रीभाईजीको बहलाकर, फुसलाकर, कभी सहलाकर और कभी धमकाकर, येन-केन-प्रकारेण सफल-मनोरथ करनेपर तुल चुकी थी। वह, भला, उन्हें संन्यासी बनकर कमण्डलु हाथमें लिये किसी निर्जन स्थलपर कुटिया बनाकर रहने कैसे देती।

श्रीभाईजीके हृदयमें अपने प्राण-प्रियतम प्रभुसे मिलनेकी चाह क्रमशः तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम होती चली जा रही थी। तन-मन-प्राण विरहज्वालासे दग्ध हो रहे थे। भगवन्नामजपके बृहद् यज्ञ और 'भगवन्नामाङ्क'का प्रकाशन तथा सत्सङ्ग-मण्डलीके साथ संकीर्तन-प्रचारार्थ देश-भ्रमण—ये सब हवन-सामग्री बनकर इस अग्निको तीव्र करनेका काम कर रहे थे। इसी स्थितिमें श्रीभाईजीको षडैश्वर्य-सम्पन्न चतुर्भुज भगवान् विष्णुके दर्शन जसीडीहमें हुए। उनके तन-मन-प्राण पुलकित हो उठे, ज्वाला जल बन गयी; परंतु उनका मन तो कहीं और फँस चुका था। सकलगुणधामके पादपद्मोंमें श्रद्धासे सिर नवाकर, उन्हें प्रणाम करके पुनः यह प्रेम-सरिता—चोरजार-शिखामणि, रसीले, हठीले, रसिकशेखर, द्विभुज, मुरली-मनोहर, नराकृति भगवान्से एकान्त-मिलनके लिये पुनः चल पड़ी। इन्हीं दिनों आहृतकाम श्रीभाईजीके पार्थिव कलेवरसे भावी लीलाओंके संगठनके लिये एकमात्र पुत्रीरत्न सावित्रीका जन्म हुआ।

श्रीभाईजीके हृदय तथा नयनोंमें चित्तवित्तहारी नराकृति श्रीकृष्ण बस चुके थे। उनसे नित्य-मिलनकी लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। भाव-सरिता रस-सागरमें मिलनेके लिये अधीर हो उठी थी। इसी स्थितिमें 'कल्याण-कल्पतरु'के सम्पादनका भार सँभालनेके लिये श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी गोरखपुर आ पहुँचे। कुछ और प्रेमी भक्त भी जुटने लगे। बाह्य प्रकाशसे शून्य बंद कक्षमें श्रीगोस्वामीजीके सुमधुर कण्ठसे 'टेर सुनो ब्रजराज-दुलारे' की स्वर-लहरी तथा अन्यान्य पदगायन एवं भावपूर्ण संकीर्तनसे समाँ बँध जाता था; सिसकियों, रुदन और अश्रुजलसे वातावरण आर्द्र हो उठता था। उस समयकी श्रीभाईजीकी लोम-हर्षिणी दशाकी स्मृति आज भी रोमाञ्चित कर देती है।

प्रेमार्चना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। दिन-रात अपने प्यारेके चिन्तन-मनन-ध्यान-गुणगानसे श्रीभाईजीके तन-मन-प्राण एवं समस्त इन्द्रियाँ अपने परमाराध्य ब्रजराज-कुँअरके प्रेममय जीवन-साँचेमें ढलती जा रही थी। प्राणप्रेष्ठके साथ मिलकर रसरूप हो जानेकी यह प्रक्रिया भृङ्गीकीट-न्यायके अनुसार सहज ही साधित हो रही थी; क्योंकि प्रेम-वितरणका समय क्रमशः निकट आता जा रहा था। उच्च-कनिष्ठ, आन्तरिक तथा बाह्य जीवन एवं प्रकृति तथा पुरुषको समन्वित करनेवाली सारग्राही दृष्टि तो केवल प्रेमकी ही देन है—उसीकी सामर्थ्य है। परंतु अपने हृदयधन प्राण-प्रियतम ब्रजराज-कुँअरद्वारा स्थापित प्रेममय जीवनके आदर्शके अनुरूप उनके पदचिह्नोंपर चल पानेकी यत्किंचित् पात्रता केवल प्रेमके बलपर ही अर्जित हो सकती थी और इस प्रेम-सरिताका उद्भव अपने प्यारेकी नर-तनु धरकर की गयी लीलाओंके रहस्यको अन्तर्भेदी दृष्टिसे देख पानेपर, मन्त्र-मुग्ध स्थितिमेंसे हुआ था।

ब्रजराज-दुलारेने टेर सुन ली थी। रससागर सरिताके आलिङ्गनके लिये अधीर हो उठा था। प्रवाहिणी अपने स्वतन्त्र प्रेममार्गपर गतिमान् थी। अब वह बंद कक्षसे निकलकर उन्मुक्त वाटिकामें प्रविष्ट हो गयी थी। इस निर्मल रसधारामें अवगाहन तथा निमज्जन करनेकी अभिसंधि लेकर, अथवा प्यारेके निर्देशपर उसे समृद्ध बनानेके मनोभावसे प्रेम-लक्षणा भक्तिके आदि आचार्य देवर्षि नारद और भगवान्‌के दूसरे उत्कृष्ट संदेशवाहक ब्रह्मर्षि अङ्गिरा आ पहुँचे। एकान्तमें कुछ वार्ता हुई, प्रेम-तत्त्वपर परिचर्चा हुई। और वे निरपेक्ष निर्मल प्रेमकी प्रतिमा गोप-ललनाओंका गुणगान करते हुए, उन्हींके रागका अनुगमन करनेकी प्रेरणा देकर **'यथा ब्रजगोपिकानाम्'** कहते हुए, वीणा बजाते, हरिगुण गाते चल दिये। जाते-जाते यह कहना वे न भूले कि आवश्यकता पड़नेपर हम पुनः यहाँ आ सकते हैं। परंतु श्रीभाईजीको आजीवन पुनः इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी।

इसी वर्ष सन् उन्नीस सौ छत्तीसमें गीतावाटिकामें एक वर्षका अखण्ड संकीर्तन चल रहा। संकीर्तनके सर्वे-सर्वाके पदपर अधिष्ठित किये गये थे श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, जिन्होंने प्रेमावतार श्रीश्रीचैतन्यके जीवन-चरित्रकी हिंदीमें रचना की थी। उस ग्रन्थकी प्रत्येक पंक्ति तथा शब्द प्रूफ देखते-देखते ही कम-से-कम दो बार तो श्रीभाईजीके दृष्टिपथसे निकल ही चुका था। सतत आँखोंके सम्मुख झूलती दोनों हाथ उठाकर संकीर्तन करते हुए महाप्रभुकी मञ्जुल मूर्ति; विरहवेदनासे तड़पते-छटपटाते, बिलखते-सिसकते, दहाड़ें मारते महाप्रभुकी भावोन्मादकी दशाके स्मरणसे प्राणोंमें उत्ताप था, उष्णता थी। श्रीभाईजीके नयन-कगारोंसे जल बनकर सतत बहते रहनेपर भी यह विरहाग्नि निरन्तर प्रदीप्त रहती थी।

मूलतः अत्यन्त मृदु, स्निग्ध, सुचिक्कण एवं मधुर वारिधाराका एक अजस्र स्रोत इसी अवसरपर सरितासे आ मिला—स्वामी श्रीचक्रधरजी गोरखपुर आ पहुँचे। वैराग्यकी बर्फीली हवाके झकोरोंसे युक्त हिमवान्‌की हिम-कन्दराओंमें तपस्यारत ऋषि-मुनियोंद्वारा सेवित तन-मन-प्राण-श्रमहारी शीतल उपनिषद्-ज्ञानकी गङ्गामें डुबकियाँ लगा-लगाकर सत्-चित्-आनन्दघनका चिन्तन करते-करते यह प्रवहमाण सरस स्रोत कुछ पग चलकर तरलसे घन बन चुका था; तरलता, सरसता हिममें परिवर्तित हो चुकी थी। हिमशिलाके नीचे संचित सुमधुर जल लक्ष-लक्ष तृषितों, श्रमितोंकी प्यास बुझानेके लिये फूट पड़नेका द्वार टोह रहा था, वह चलनेके लिये अधीर होकर भीतर-ही-भीतर हिलोरें ले रहा था। अलक्षित भगवदीय विधान अथवा लीलाशक्तिकी योजनासे हिमशिलाका आकस्मिक संयोग विरहज्वालासे जलते हुए हृदयके अग्नि-पुञ्जसे होते ही चमत्कार घटित हुआ। तत्क्षण हिमखण्डको विदीर्ण करते हुए अपने उद्धारकर्ताका अभिषेक करनेकी अभिसंधि लेकर पूरे वेगके साथ स्रोत फूट पड़ा और कृतज्ञताभरे हृदयके साथ नवजीवनदायिनी सरितामें अपने स्वतन्त्र अस्तित्वको सर्वथा विलीनकर उसीमें समा जानेकी आन्तर साध लेकर अपने वैशिष्ट्यके साथ प्रेमकी मूलधारामें आ मिला। श्रीभाईजी-जैसे विनीत सद्गृहस्थके उस प्रथम स्पर्शमें—चरण छूकर किये गये प्रणाममें संन्यासी स्वामी श्रीचक्रधर-जैसे वेदान्तपरिनिष्ठितको क्या मिला, क्या दीखा—यह गोपनीय है, उनकी निजकी वस्तु है, अप्रकाश्य है।

इस सर्वसमर्पणमयी, नवीन शीतल मधुधाराका संस्पर्श और उसमें अन्तर्निहित विलक्षण माधुर्यका रसास्वादन करके श्रीभाईजीका हृदय-कमल खिल उठा। अपने प्रेमसूत्रको भविष्यमें वहन कर सकनेकी पात्रता रखनेवाले, समर्थ साथीको अन्तर्भेदी दिव्य दृष्टिसे पहचान लेनेके कारण उन्हें एक अनिर्वचनीय विलक्षण सुखकी अनुभूति हुई। इस नवधाराको अङ्कमें लिये-लिये दूने वेग एवं उल्लासके साथ यह भाव-सरिता पुनः बढ़ चली अपने अलक्ष्य लक्ष्यकी ओर; निर्मल निरपेक्ष प्रेमका आदर्श प्रस्तुत करती, प्रेमके स्वभाव एवं स्वरूपको अपने प्रत्यक्ष जीवनसे, आचारसे, स्नेहिल व्यवहारसे विशद करती हुई एकरूप, एकाकार होकर जन-जनको आप्यायित एवं प्लावित करनेके लिये द्रुतगतिसे बह चली।

सिंहनीके स्तनोंमें छलछलाता प्रेमक्षीर झर पड़नेके लिये मचल रहा था। स्तन दुग्धभारसे पीड़ित थे। पर उस क्षीरको ग्रहण करनेके लिये स्वर्णपात्र ही कहाँ था? श्रीकृष्णके सुख-संयोजनके लिये ब्रजगोपियोंके सर्वस्व-अर्पण, एकाङ्गी प्यार, विलक्षण दैन्य, विरहविकल दशा, अनन्यता, विमल त्याग, तपःपूत जीवनका जो भव्य रूप

श्रीभाईजीके अन्तर्हृदयमें घर किये हुए था; उनके प्राण उसे प्रत्यक्षतः अपने जीवनमें चरितार्थ कर दिखानेके लिये, प्रेमका मूर्तिमान् प्रतीक बनकर प्रेमके उच्चतम आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये छटपटा रहे थे। जीव-कल्याण तथा अन्यान्य लौकिक कर्त्तव्यों और लौकिक प्यारका पूरा-पूरा निर्वाह करते हुए, भगवत्प्रेम एवं प्रभु-भक्तिके साथ उनका सामञ्जस्य स्थापित करना और नवादर्शकी प्रतिष्ठा कर दिखाना कदाचित् उनके जीवनका सबसे दुष्कर कार्य था। क्योंकि प्रेमपाशमें बँधे हुए प्राणियोंके स्नेहसूत्रको छिन्न करनेवालोंमें उनकी गणना नहीं थी। बच्चोंको रिझा-लुभाकर चुपके-से अपनी झोलीमें डालकर चल देनेवाले मदारी वे नहीं थे, अथवा फुसलाकर साधु बनानेवालोंमें भी उनका स्थान नहीं था। वे तो संसारी प्राणियोंको अपना परिवार, घर-द्वार, नगर-ग्राम न छोड़ते हुए, जल-कमलवत् जगत्में रहकर, जगत्से निर्लिप्त रहनेकी परिपाटीके प्रवक्ता थे। इस सम्पूर्ण अन्तर्द्वन्द्वका समुचित हल कदाचित् कोई गृहत्यागी, संयासी, वैरागी निकाल पाता अथवा नहीं, इसमें संदेह है। परंतु श्रीकृष्णके प्रेमी भक्तने, प्रेमतत्त्वके विनीत संदेशवाहकने इसे अपने जीवनमें प्रत्यक्ष कर दिखाया। इस गुत्थीको सुलझानेमें श्रीस्वामी चक्रधरजीके मिलनने अपूर्व योग दिया।

कनकपात्र आ पहुँचा था। अब तो उसमें रखी सामग्री निकालकर, मृदु हाथसे मल-धोकर, हलचल-लुढ़कना रोक, धूल-धक्कड़ और बिल्ली-कुत्तोंके हाथसे बचाकर, क्षीरको सुरक्षित कर देनेकी व्यवस्थामात्र कर देनेका कार्य ही अवशिष्ट रह गया था। खिलाड़ी अपने खेलमें सिद्धहस्त था। रमते योगी, बहते पानीसे इस जीवन-में विलग न होनेका उसने प्रण ले लिया, मन्त्रमुग्धकारी भाषणकलाका मोह छुड़ाकर मौन धारण करनेकी आज्ञा दे दी, निरन्तर नाम-जपमें आपादमस्तक तल्लीन कर दिया। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व सर्वथा विलीनकर, निज हाथोंकी कठपुतली बनाकर, प्रेम-साधनाके विविध सोपानोंको द्रुतगतिसे पार कराते हुए, तीव्र वैराग्यके निदर्शन, सर्वथा अकिंचन बन चुके बाबाको आप्यायित करनेके उद्देश्यसे उसे दैनिन्दिन हलचलके केन्द्र गोरखपुरसे दूर ले जानेकी योजना बना ली और दादरीमें कुछ मास पूज्य बाबाके साथ एकान्त साधनामें बिताकर पितृभूमि रतन-गढ़की मरुभूमिको रससिक्त करने वे चल दिये।

हीरा तो वह मूलतः था ही। रत्नपारखी जौहरी हीरेन्द्रके लिये उसे सानपर चढ़ाकर धूल झाड़ने, बेडौल अङ्ग काटने, और पहलू भर बनानेकी देर थी कि बस, वह हजार-हजार पहलुओंसे प्रकाश-विकिरण करने लगा। दर्शकोंकी आँखें चौंधिया गयीं। प्राण-प्रियतमकी विरहाग्निके तापमें, अकल्पनीय अनूठे वैराग्यकी ज्वालामें तपकर पात्र पूर्णतः निखर चुका था। सुधा-क्षीरके भारकी पीड़ा सिंहनीके स्तनोंको असह्य हो गयी। बस, सुमधुर-सुमिष्ट पीयूष-धारा, पात्रको आपूरित करनेके लिये वेगसे झर पड़ी। उस धारके प्रत्यक्ष स्पर्श-ग्रहणसे पात्रको क्या मिला—इसे तो पात्र ही जाने। वह वाणीका विषय है ही कहाँ। परंतु उस पात्रकी मौन स्थितिमें, उसकी आकृति, स्मित, चाल, चितवन, मधुर हास-परिहास, ठहाके, दर्शन, स्पर्श और संलापने जिसको जो दिया, उसे और उसकी मधुर स्मृतिको उन भाग्यवानोंने कृपणके धनके समान आज भी अपनी छातीसे लगा रखा है। पात्र छलछला रहा था और रसिकशेखर अपने ही प्राणोंका रस उसमें उँड़ेलकर एकके पश्चात् दूसरा प्याला ढालते चले जा रहे थे। उनकी उस मदमत्त स्थितिका बखान कौन करे?

श्रीभाईजीने अपने अन्तर्हृदयमें महामहिमामयी व्रज-गोपिकाओंका, उनकी जीवन-सर्वस्वभूता महाभावरूपा श्रीराधाका, जो उज्ज्वलतम स्वरूप सँजो रखा था, श्रीकृष्णका सुख ही जिनका जीवन है, उन व्रजगोपियोंके निर्मल आदर्शका जो स्वरूप उनके मनमें था; धर्मशास्त्रों तथा रागानुगा-भक्ति-सम्बन्धी रससाहित्यके स्वाध्याय एवं श्रीनारदजीसे हुए वार्तालापमें उन्होंने प्रेमतत्त्वको जिस रूपमें हृदयंगम किया था, उसका ज्वलन्त निदर्शन आधुनिक कालमें जगत्के सम्मुख प्रस्तुत करनेकी बलवती अभिलाषा पूरी होनेका समय निकट आ रहा था। गोपीभावकी साधनाका यथार्थ चित्रण कर सकनेवाले सत्साहित्यके अभावमें, अनेकविध भ्रान्तियोंका बीहड़ वन तैयार हो जानेके कारण, उस सरिताको, बाधाओंके पहाड़ और भ्रान्तियोंके वनसे निकालनेके मार्गमें जो कठिनाइयाँ थीं, उस भावकी अवधारणा कर पानेके मार्गमें जो अड़चनें थीं, उन्हें निरस्त करने, भाव-सरिताको पुनः अपने गन्तव्यकी ओर ले जानेकी वेला आ गयी थी।

बाबा सर्वोच्च भाव-शिखरपर आरूढ़ हो चुके थे। वे श्रीभाईजीकी कसौटीपर पूरे खरे उतर चुके थे। अपने सर्वस्वके भस्मावशेषपर नाच सकनेवाला प्रेमी आ पहुँचा था। उसने श्रीकृष्णसुखार्थ अपना सर्वस्व अर्पण करके,

निर्जीव काष्ठवत् अपने-आपको श्रीकृष्णके लिये सुखकर किसी भी भूमिकाका निर्वाह करनेके लिये स्वयंको पूर्णतः सौंप दिया था। श्रीकृष्णकी रुचिके अनुरूप उसे सुखदान करनेके लिये, अपने जीवनके कण-कण तथा क्षण-क्षणका नियोजन उनका स्वभाव बन गया था। श्रीकृष्णके हाथकी कठपुतली बना डाला था बाबाने अपने आपको। श्रीभाईजीके पार्थिव कलेवरके अन्तरालसे अभिव्यक्त कोई भी इच्छा, कोई भी चेष्टा, उनकी दृष्टिमें श्रीकृष्णकी इच्छा थी। उनके इस व्यवहारने श्रीभाईजीको मन्त्रमुग्ध बना डाला था। वे भी कालान्तरमें उनके हाथकी कठ-पुतली बने दिखायी देते हैं। जगत् और प्रेमीभक्तोंकी दृष्टिमें यह जोड़ी सर्वथा विलक्षण थी। दोनों दो थे कि एक थे, एक थे या दो थे—यही समझ पाना कठिन हो गया था। कौन यन्त्र है, कौन यन्त्री; कौन सेवक है, कौन सेव्य; कौन आराध्य है, कौन आराधक—इसे हृदयंगम कर पाना निकटतम व्यक्तियोंके लिये भी सहज नहीं था और आज भी नहीं है। प्रेमकी अटपटी भाषामें कहें तो दोनों ही एक दूसरेके चातक थे, घन थे; दोनों ही परस्पर चन्द्र थे, चकोर थे; जल थे, मीन थे; अलि थे, पङ्कज थे। एकके बिना दूसरेकी स्वतन्त्र सत्ताको स्थान नहीं था। दूसरेके बिना पहलेकी कल्पना नहीं की जाती थी। दोनों एकरूप होकर बहने लगे थे—भाव रस बन गया था और रस भाव; स्रोत सरिता बन चुका था और सरिता सागर। दोनोंके मधुर मिलनपर उत्थित भाव-लहरियोंका नर्तन, हिलोरें, भँवर, उत्ताल तरङ्गें—सभी-कुछ तो मधुर था, लोभनीय था, दर्शनीय था।

पर अब इस संचित माधुर्य एवं प्यारके मुक्तहस्त दान और जगत्के सम्मुख प्रेमतत्त्वके निगूढ़ रहस्यके उद्घाटन एवं स्वरूप-वितरणका समय निकट आ रहा था। अचिन्त्य लीला-महाशक्ति विश्वरूपी रङ्गमञ्चपर इस नाटकके अभिनयके लिये उपयुक्त भूमिका प्रस्तुत करनेके कार्यमें व्यस्त थी। साथ ही व्यावहारिक जगत्में, व्यापक स्तरपर श्रीभाईजीके प्रेममय स्वरूपकी अमिट छाप जन-जनके हृदयपर सदैवके लिये अङ्कित करना, उनके आराध्य लीलातनुधारी श्रीबिहारीको अभीष्ट था। सरितामें ज्वार आ चुका था। सभी बाँध किनारे तोड़-फोड़कर तटवर्ती भूमिको रससिक्त करनेकी उसकी लालसा अदम्य बन चुकी थी। सरितामें कल्लोल करनेवाले कतिपय जीवोंको ही इस सुख-दानमात्रसे उन्हें परितृप्ति नहीं थी।

प्रेमकी अधिष्ठात्री करुणामयी श्रीराधाकिशोरीकी प्रेरणासे बहुत छोटे रूपमें उनके जन्मदिवसपर श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका सूत्रपात हुआ। अल्पकालमें ही इसने बृहदाकार धारण कर लिया। देशके हर कोनेसे प्रतिवर्ष हजारोंकी संख्यामें साधक, भक्त, संत-महात्मा, गुणी-ज्ञानी, अशान्त-क्लान्त, पापी-तापी—सभी इसमें डुबकी लगानेके लिये आने लगे। पात्र छलक उठा था। सरिता उमड़ पड़ी थी। बाँध टूट चुका था। अपने निर्जीव शुष्क प्राणोंको सरस बनाने, स्नेह-प्रेम और करुणाका पाठ पढ़ने, सहस्र-सहस्र श्रमित, थकित, तृषित प्राणी उमड़ पड़े। उत्सव-मञ्चसे श्रीभाईजीके श्रीमुखसे झरते हुए सुधा-सीकरोंसे सम्पूर्ण वायुमण्डल रससिक्त रहता था। महाभावरूपा श्रीराधाके नामको अहर्निश निरन्तर रटते-रटते, उसीकी भाव-दशाका चिन्तन-मनन एवं ध्यान करते-करते बाबा तन्मय बन चुके थे। उनकी भाव-विह्वल स्थिति अपने-आपमें अत्यन्त सशक्त मूक व्याख्यान थी। रसमत्त, बेसुध, भावविभोर राधाबाबाका हाथ पकड़े छड़ी टेकते श्रीभाईजी जब उत्सवके पंडालमें पग धरते थे, तब उन्हें अपना जीवन-सर्वस्व माननेवाले प्रेमियोंकी जो मनोदशा हुआ करती थी, उसे शब्दोंमें अङ्कित कर पाना किसीके वशकी बात नहीं। सतत कई दिनकी रसवर्षासे रसकी बाढ़ आ जाती थी और इस बाढ़में 'जो डूबा सो पार हो गया।'

श्रीराधामाधवकी रसमयी लीलाओंमें नित्यनिमज्जित श्रीभाईजीके श्रीमुखसे श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर जो मधुधारा झरा करती थी, अपनी स्वानुभूतियों तथा गहन अध्ययनके आधारपर श्रीकृष्ण, श्रीराधा, राधाकृष्ण-युगल, गोपीभाव एवं प्रेमतत्त्वके निगूढ़ रहस्योंके विषयमें जो सरस और सारगर्भित प्रवचन उनके द्वारा हुआ करते थे—उन्हें सुनकर एवं उनकी मुख-माधुरीका दर्शन कर भक्तोंके हृदय-कमल खिल उठते। उनकी अर्द्ध भावसमाधिकी अवस्थामें अनायास कुछ सुधा-सीकर सरस पदों एवं छन्दोंके रूपमें यदा-कदा बरस पड़ते थे। इसके अतिरिक्त भी अनेकों सरस पदोंकी रचना श्रीभाईजीके द्वारा हो चुकी थी। उत्सवके अवसरोंपर इन पदोंके साथ-साथ अन्यान्य रसिक संतोंके पद-गान एवं भावुक भक्तोंकी मधुर तानसे सम्पूर्ण वातावरण स्निग्ध हो उठता था। श्रीराधाजीके जन्मकी आरती करते तथा दधिकर्दमके समय भूमिपर निर्मित रासमण्डलकी अर्चना करते हुए श्रीभाईजीको देखकर मनकी जो दशा हुआ करती थी, उसको शब्दोंमें व्यक्त कर पाना कठिन है। श्रीभाईजीके

संकेतपर उद्दाम नृत्यके लिये अधीर भक्तोंके भालपर स्वकरसे दधिलेपन करते देखकर सभी अपने भाग्यकी सराहना करते नहीं थकते थे। परंतु अब तो उन दिनोंकी मधुर-स्मृति टीस बनकर रह गयी है। स्मरण आते ही अश्रुप्रवाह रोक पाना असम्भव हो जाता है। उनके मधुर सम्भाषण, उस युगल जोड़ीकी उपस्थितिमें पद-गायन, कीर्तन एवं नर्तन, उनके करकमलोंद्वारा नीराजन एवं दधिलेपनकी कहानी मात्र शेष रही है, जो उनकी स्नेहमयी, सरस, शीतल छायामें पले, बढ़े बड़भागियोंको आजीवन रुला-रुलाकर उनके कलुषित हृदयका मल धोती रहेगी।

श्रीराधाष्टमी-महोत्सवको निमित्त बनाकर, प्रेमतत्त्वके अति गुह्य रहस्योंको सहज ढंगसे प्रकट करनेके लिये श्रीभाईजीने जो पीयूषधारा अपने प्रवचनों, लेखों, गीतों तथा पदोंके रूपमें बहायी है, उसका कुछ अंश 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'-जैसे अद्वितीय ग्रन्थके रूपमें जगत्के सम्मुख है। प्रेमतत्त्व-विषयक एवं भक्ति-विषयक उनका विशाल, सरस सत्साहित्य यत्र-तत्र पुस्तक-पुस्तिकाओं, पत्र-पत्रिकाओं, 'मधुर' शीर्षकसे लिखे प्रेम-काव्य और अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको व्यक्तिगत रूपसे लिखे गये सहस्रों पत्रोंमें संचित है। श्रीभाईजीकी प्रेरणा-आग्रहसे पूज्य बाबा श्रीचक्रधरजीने भी 'श्रीकृष्णलीला-चिन्तन'-जैसे अनुपम ग्रन्थकी रचना की है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त ललित-भाषामें अन्य कुछ साहित्य भी उनकी रसमयी लेखनीद्वारा लिखा गया है। यह सम्पूर्ण संग्रह छलछलाता, लहराता, मधुर रससे पूरित 'अक्षय प्रेम-सरोवर' बन गया है, जो युग-युगान्ततक श्रद्धापूर्वक अभिषेक, निमज्जन, अवगाहन एवं दर्शन करनेवालोंको भावसागरमें निमग्न करके सुख-शान्ति देता रहेगा।

अलौकिक भावपूर्ण लीलाओंमें सतत लीन श्रीभाईजीकी इसी स्नेहमयी मूल प्रेमधारामेंसे जीव-कल्याण, नाम-प्रचार, धर्म-जागरण, आर्त्त-सेवा, गौ-रक्षा एवं साहित्य-सृजन-जैसी कितनी ही छोटी-बड़ी सर-सरिताएँ फूट पड़ी थीं; परंतु उन सभीमें आधाररूपसे उनके हृदय-देशसे निस्सृत मूल प्रेमधाराका अमृत ही छलक रहा है—रस-रूप भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ही उनमें ओत-प्रोत होनेके कारण श्रीभाईजी इन समस्त क्षेत्रोंमें नव-आदर्शोंकी प्रतिष्ठा करनेमें सफल हुए हैं। लौकिक व्यवहारके क्षेत्रमें उनका जो रूप जगत्के सम्मुख है, उसने न जाने कितने लोगोंको पागल बना रखा है। अतः उनका स्मरण आते ही यदि धैर्य छूट जाय, लेखनी रुक जाय, बुद्धि कुण्ठित होकर विचार करना छोड़ दे, हृदय भर आये और कोई फूट-फूटकर रो पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

भाव-भास्कर श्रीभाईजीकी स्नेहिल छविका दर्शन, उनके साथ किंचित् प्रेमालाप तथा उनके द्वारा प्रवाहित प्रेमाभक्तिकी सरस मधुधारामें अवगाहन करनेके लिये विविध प्रसङ्गोंपर देशके कोने-कोनेसे सहस्रशः भावुक भक्त, गुणी, ज्ञानी और साधक आते रहते थे। उनके साथ-साथ उत्सवके मिससे मायिक थपेड़ोंसे जर्जरित, थकित, श्रमित एवं खिन्न महानुभाव भी आते ही थे। उत्सवमें श्रीभाईजीका संकेत प्राप्त होते ही संकीर्तन आरम्भ होनेपर समस्त लोक-लाज, पद-प्रतिष्ठा भूलकर नृत्यके लिये उनके पग थिरकने लगते। उस वट-वृक्षकी शीतल छायामें सबका अवसाद विलुप्त हो जाता था। उनके सतत स्नेहसे पूर्ण रसछके नैन-कगारोंसे सतत निर्झरित मधुरिमा और स्नेहामृतका पान करनेके लिये हृदय छटपटाता रहता था। उनकी मधुर छविको अपने अन्तरतममें सँजो लेनेके लिये, अमूल्य थाती बना लेनेके लिये, आँखें तरसती रहती थीं; उनके दो शब्द सुनते ही अपने भावी जीवनका उन्हें पाथेय बनाकर पुनः सभी चल पड़ते थे।

पतितपावनी कलकल करती गङ्गाके क्रोड़में स्थित गीताभवनके सत्सङ्गमें इन विदेह सद्गृहस्थके चरण-प्रान्तमें बैठकर कितने ही संन्यासी, यति, विद्वान्, साधक, भक्त ज्ञानी और कर्मयोगी इस मानव आकृतिके अन्तरालसे अभिव्यक्त किसी दिव्य विभूतिकी सुधारसमयी अमृतवाणीका पान करनेके लिये लालायित रहते थे। आबाल-वृद्ध, नर-नारी, सिद्ध-साधक, पण्डित-मूर्ख, पापी-पुण्यात्मा—सभी जिनके मुख-सरोरुहके दर्शन करनेके लिये आतुर रहते थे, उस महाभागने अनेकविध उपलब्धियोंद्वारा जन-जनके हृदयपटलपर जो अमिट छाप अङ्कित की है, जो श्रद्धा-विश्वास और प्यार पाया तथा बिखेरा है, लक्षावधि लोगोंको भगवान्की ओर उन्मुख करके भजन-साधनमें प्रवृत्त किया है, अपने निस्स्पृह मानवहितकारी कार्य-कलापोंद्वारा सेवा-भावका जो आदर्श और परिमाण प्रस्तुत किया है, उन सबकी स्मृतिमात्रसे अभी भी अनेकोंकी आँखें झरती-झरती रहती हैं। उन प्रेम-वारिधि श्रीभाईजीके पाद-पद्मोंमें हमारे कोटि-कोटि प्रणाम—कोटि-कोटि वन्दन!

●

श्रीभाईजीके अभिनन्दनकी विभिन्न योजनाएँ

श्रीभाईजीकी विविध अप्रतिम सेवाओंसे जनमानस इतना उपकृत हुआ कि अपने कृतज्ञता-ज्ञापनके लिये उसने श्रीभाईजीके अभिनन्दनकी अनेक विशाल योजनाएँ बनायीं; किंतु अमानित्वकी साकार मूर्ति श्रीभाईजीने किसीको भी सफल नहीं होने दिया। जिस प्रकार अंग्रेजी सरकार और देशकी स्वतन्त्र सरकारद्वारा बड़ी-से-बड़ी उपाधियोंके प्रस्तावोंको उन्होंने सहजरूपसे अस्वीकार कर दिया, उसी प्रकार अभिनन्दन-आयोजनको भी उन्होंने विफल बना दिया। वैसे भी, आजकलकी जो अभिनन्दन-परिपाटी है, उसको वे बड़ा हेय समझते थे।

सर्वप्रथम १९५३में आचार्य पं० श्रीसीतारामजी चतुर्वेदीने 'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ समिति'का संगठन किया, जिसके समर्थकोंमें महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराज, डॉ० राजबलीजी पाण्डेय आदि वरिष्ठ महानुभाव सम्मिलित थे। इस आयोजनको कार्य-रूप देनेके लिये श्रीचतुर्वेदीजी महाराजने अभिनन्दन-की रूपरेखाको एक ट्रैक्टके रूपमें प्रकाशित करवा लिया था; किंतु जब श्रीभाईजीको इस आयोजनकी जानकारी हुई, तब उन्होंने बड़ी विनम्रता, किंतु दृढ़ताके साथ इसका विरोध किया। उन्होंने अपने १७-१२-५३ के पत्रमें लिखा—

"मेरे प्रति आप महानुभावोंका जो अकृत्रिम प्रेम है, उसके लिये मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ। परंतु आपलोगोंने मेरे सम्मानके लिये जो कार्य आरम्भ किया है, आपके सद्भावके प्रति सिर झुकाकर आदर प्रकट करते हुए भी मुझे खेद है कि मैं उसका समर्थन किसी हालतमें नहीं कर सकता। आपलोगोंके हृदयको ठेस पहुँचे, यह मेरे लिये बड़े खेदकी बात है, तथापि मेरा यह निश्चित मत है कि मुझे इस प्रवृत्तिका सर्वथा विरोध ही करना है। महाभारतमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि 'अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना आत्महत्या करना है।' वैसे ही अपने प्रयत्नसे मित्रोंके द्वारा अपनी प्रशंसा करवाना, उसमें सहयोग देना और उसे सुनना भी आत्महत्या ही है। आप मेरे हितैषी हैं, मुझपर स्नेह रखते हैं, मुझे प्रसन्न देखना चाहते हैं, इसलिये मेरी प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक ऐसा कोई भी प्रयत्न न करें, जिससे मुझे दुःख हो और मेरा अहित हो।

जिन पूजनीय श्रीकविराजजी आदि महानुभावोंने इसका समर्थन किया है, वे बड़े सहृदय पुरुष हैं और वास्तवमें सम्मान तथा अभ्यर्थनाके सुयोग्य पात्र तो वे ही लोग हैं। उनका मेरे प्रति स्नेह है और वे महान् आशय हैं, इससे उन्होंने इसका समर्थन किया है; परंतु मैं तो सचमुच इसके सर्वथा अयोग्य हूँ। आपलोगोंकी, मधुर स्नेह रखनेवालोंकी, गुणदर्शिनी दृष्टि ही मुझमें गुण दिखलाती है। आपलोगोंके हृदयकी विशालता है, जिससे आपको मुझमें गुण दीखते हैं। पर मुझमें कितने दोष हैं और मैं कितनी दुर्बलताओंसे भरा हुआ एक तुच्छ प्राणी हूँ, इसको मैं जानता हूँ और मेरे अन्तर्यामी जानते हैं। अतएव मैं इस सम्मानका पात्र कदापि नहीं हूँ। आप यदि यह न भी मानें—यद्यपि यह सर्वथा सत्य है, मैं केवल नम्रता दिखानेके लिये नहीं लिख रहा हूँ—तो भी उपर्युक्त सिद्धान्तके अनुसार मैं किसी भी रूपमें आपके इस कार्यका समर्थन नहीं कर सकता। न इसमें सहयोग दे सकता हूँ और न दूसरे किसीको भी सहयोग देनेकी प्रेरणा दे सकता हूँ। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं मान-बड़ाईकी कामनासे मुक्त हूँ। कौन जानता है कि यह सम्मान-विरोध भी मैं सम्मान पानेके लिये नहीं कर रहा हूँ? यह मेरी कमजोरी है, पर सम्मानमें मेरा पतन है, यह तो सत्य ही है। अतएव आपलोगोंसे हाथ जोड़कर मैं बड़ी विनयके साथ प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपया इस कार्यको सदाके लिये तुरंत त्याग दीजिये। मुझे बड़ा सुख होगा, इसे मैं आपके द्वारा दिया हुआ परम सम्मान समझूँगा, हृदयसे किया हुआ अभिनन्दन मानूँगा, जो ग्रन्थसे अधिक मूल्यवान् होगा और आपलोगोंका कृतज्ञ होऊँगा। आशा है, आप मेरी विनीत प्रार्थना अवश्य सुनेंगे।

यदि आप मेरी इस प्रार्थनाको नहीं सुनेंगे तो मुझे इसका खुला विरोध करनेके लिये बाध्य होना पड़ेगा, जो मेरे लिये बड़े संकोचकी बात होगी। आपलोगोंकी पवित्र और प्रेमभरी सद्भावनाका इस प्रकार तिरस्कार करता हूँ, इसका मुझे बड़ा खेद है और इसके लिये मैं हाथ जोड़कर क्षमा चाहता हूँ।"

इसके पश्चात् सन् १९६२में उनके कतिपय श्रद्धालुजनों और स्वजनोंने उनके बृहद् जीवन-वृत्त-प्रकाशनकी योजना बनायी; किंतु जब श्रीभाईजीको इसकी जानकारी हुई, तब उन्होंने आयोजकोंको दिसम्बर ६२में पत्र लिखा—"मेरे जीते-जी जीवनी लिखने, लिखवानेकी बात सोचना, करना मेरे लिये मरनेके समान ही है। मुझे इससे बड़ा दुःख होता है। अतः मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि इस कामको ही नहीं, इस विचारको ही सर्वथा त्याग दें।" आयोजकोंको चुप हो जाना पड़ा।

तीसरी बार, श्रीभाईजीके स्वजन एवं प्रिय सहयोगी सम्मान्य डॉ॰ श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'ने श्रीभाईजीके जीवन-वृत्त तैयार करनेका निश्चय किया। श्रीभाईजीने सितम्बर १९६३में एक बड़ा ही आत्मीयता-पूर्ण और मर्मस्पर्शी पत्र लिखा और उनसे आग्रह किया कि "लोकप्रथाके अनुसार मेरा समादर करके लोकसेवाका जो प्रयास आप कर रहे हैं, अत्यन्त प्रीतिके साथ, जरा भी दुःखका अनुभव न करते हुए गम्भीरतापूर्वक मेरी मनोवृत्तिपर और इस कार्यके दोषोंपर विचार करके उसे त्याग दें।" श्रीमाधवजीने, जो जीवनभर भाईजीके अनुगत रहे, इस पत्रको पाकर जीवनी लिखनेका अपना विचार स्थगित कर दिया।

चौथी बार, श्रीभाईजीके अभिनन्दनकी एक विशाल योजना उनके घनिष्ठ मित्र तथा प्रसिद्ध समाजसेवी कलकत्तानिवासी श्रीओंकारमलजी सराफने बनायी। उसमें चतुःसूत्रीय आयोजन करनेका निश्चय किया गया—प्रथम—'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थका प्रकाशन, द्वितीय—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार हीरकजयन्ती समारोह, तृतीय—कलकत्ता नगरमें 'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति-भवन'की स्थापना एवं निर्माण और चौथा—श्रीभाईजीके जीवन-संदर्भमें गीतापर एक फिल्मका निर्माण। इसके लिये उन्होंने कार्य भी आरम्भ कर दिया और लगभग १०-१५ हजार रुपये इसमें अपने पाससे लगा दिये। श्रीभाईजीने २०-४-६८को एक बड़ा ही स्नेहभरा पत्र उनको लिखा, जिसमें उन्होंने आग्रह किया—"भाई ओंकारमल ! मैं तुम्हारे स्नेहपर भरोसा करके तुमसे यह विनम्र अपील करता हूँ कि तुम इस आयोजनको तुरंत बंद कर दो। तुम्हारा काम बहुत आगे बढ़ चुका है, यह ठीक है। तुम चाहो तो यह घोषणा कर दो कि 'हनुमानके दुराग्रहसे यह बंद करना पड़ा।' यह मैं तुमसे नम्रतासे, जोरसे, हाथ जोड़कर, तुम्हारा हाथ पकड़कर तुमसे अनुरोध करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, बलपूर्वक आग्रह करता हूँ—कुछ भी समझो, इसे बंद कर दो। मेरी लाज अब तुम्हारे हाथ है। अधिक क्या लिखूं।" सच्चे मित्रको अपने मित्रके अन्तर्हृदयके इस अनुरोधको स्वीकार करना पड़ा।

पाँचवाँ प्रयास सम्मेलन-पत्रिका, प्रयागके सम्पादक पं॰ श्रीज्योतिप्रसादजी मिश्र 'निर्मल'ने दिसम्बर १९६८में किया। श्रीभाईजीने अपने चिर-सहयोगी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीद्वारा श्रीमिश्रजीको बड़ी विनम्रतापूर्वक इस कार्यसे विरत होनेके लिये लिखवा दिया। श्रीमिश्रजीको विवश होकर इस आयोजनको स्थगित करना पड़ा।

छठी बार, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयागकी ओरसे श्रीभाईजीको हिंदी-जगत्‌की सर्वोच्च सम्मानित उपाधि प्रदान करनेका प्रस्ताव सम्मेलनके प्रथम शासन-निकायके सचिव श्रीमौलिचन्द्रजी शर्माने माघ शु॰ ८, संवत् २०२५को रखा। श्रीभाईजीको इस अवसरपर आमन्त्रित किया गया था, पर उन्होंने उपाधिदानका ही विरोध किया। फलतः अध्यक्षने यह कहकर कि 'पोद्दारजी आज इस समारोहमें उपस्थित नहीं हैं, उनकी उपाधि उन्हें भेज दी जाय'—श्रीभाईजीको 'साहित्य-वाचस्पति'की उपाधि प्रदान कर दी। किंतु श्रीभाईजीने इस उपाधिका एक दिन भी उल्लेख अपने नामके साथ नहीं किया।

सातवीं बार, सितम्बर १९७०में 'साप्ताहिक हिंदुस्तान'के सम्पादक श्रीगोविन्दप्रसादजी केजड़ीवालने डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'से एक सुन्दर लेख श्रीभाईजीपर लिखवाकर प्रकाशित किया तथा कुछ स्वजनोंकी प्रेरणासे अनेकों पत्र-पत्रिकाओंमें श्रीभाईजीकी ७८वीं जयन्तीके अवसरपर उनके जीवन एवं कार्योंके सम्बन्धमें सम्मान्य विद्वानोंके लेख प्रकाशित हुए। श्रीभाईजीको जब इन प्रकाशनोंकी जानकारी हुई, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने स्वजन श्रीमाधवजीको २७–९–७०में एक बड़ा ही मार्मिक पत्र लिखा, जिसके अन्तमें उन्होंने ये विचार व्यक्त किये :—'फूलोंका हार पहननेमें जो आनन्द हो, वही जूतोंकी माला पहननेमें भी हो, तब तो इस प्रकारके आयोजनोंके सम्बन्धमें मुझे नहीं बोलना चाहिये था; पर ऐसी स्थिति नहीं है। अतएव आपलोगोंको मेरे विचारोंकी, सिद्धान्तोंकी रक्षामें मेरी सहायता करनी चाहिये।' अन्य सम्मान्य महानुभावोंसे भी श्रीभाईजीने इस कार्यसे विरत होनेकी बड़ी ही दैन्यभरी प्रार्थना की।

आठवीं बार, अप्रैल १९७०में पटनाके श्रीगुरुगोविन्दसिंह कॉलेजके हिंदी विभागके डॉ० श्रीकृष्ण उपाध्यायने डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'के निर्देशानुसार एक विशाल अभिनन्दन-योजनाका निर्माण किया, जिसमें पूज्य श्रीकविराजजी, डॉ० हजारीप्रसादजी द्विवेदी, डॉ० श्रीबलदेव उपाध्याय आदि महानुभावोंको सम्पादक-मण्डलमें लिया गया था। उक्त महानुभावोंने इस कार्यमें सहयोग करनेके लिये अपनी कृपापूर्ण स्वीकृति भी प्रदान कर दी थी, परंतु श्रीभाईजीने इसको भी सफल नहीं होने दिया।

नवाँ प्रयास महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराजसे आशीर्वाद लेकर गोरखपुर विश्वविद्यालयके हिंदी-विभागके रीडर डॉ० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजीने अप्रैल-मई १९७०में किया। भाग्यसे उनको इस कार्यमें श्रीभाईजी-के विशेष स्नेहभाजन एवं कृपापात्र एक सेवकका सहयोग उपलब्ध हो गया। डॉ० साहब श्रीभाईजीसे प्रायः प्रतिदिन मिलने लगे और उनसे अपने जीवन एवं साधना आदिकी बातोंका परिचय प्राप्त करने लगे। श्रीकविराज-जीके प्रति श्रीभाईजीकी विशेष श्रद्धा थी। अतएव उनका आशीर्वाद इस आयोजनमें होनेसे श्रीभाईजी खुलकर इसका विरोध नहीं कर सके। इतना ही नहीं, अपने सेवकके प्रेमाग्रहके कारण श्रीभाईजीने अपने जीवनकी बहुत-सी ऐसी अन्तरङ्ग बातें, जो उन्होंने आजतक किसीको नहीं बतायी थीं, प्रकट कर दीं। किंतु उन्होंने उक्त दोनों व्यक्तियोंसे यह आग्रह किया था कि उनके जीवनकालमें उन तथ्योंका प्रकाशन न हो; परंतु कार्य चलता रहा। श्रीभाईजीने १२ जनवरी १९७१ को अपने सेवकको एक पत्र लिखा, जिसमें ये शब्द थे—"भैया ! मेरी प्रार्थना है कि तुम इस विषयपर फिरसे विचार करो और इस कार्यको यहीं रोक दो। मेरे इस निवेदनको पढ़कर सम्भव है, तुम्हें दुःख हो। मुझे भी इसका बड़ा संकोच है; पर कठिन धर्मसंकट आ गया है, इसीसे मैंने तुम्हारे दुःखकी सम्भावना समझकर भी ऐसा किया है।" दोनों ही सज्जनोंकी स्थिति किंकर्तव्यविमूढ़की-सी हो गयी। वे विचार कर ही रहे थे कि क्या किया जाय, इसी बीच श्रीभाईजी अधिक अस्वस्थ हो गये और देखते-देखते २२ मार्चको सदाके लिये भगवान्‌की लीलामें लीन हो गये।

इस प्रकार इस महामनीषीने अपने सर्वथा निःस्पृह एवं अमानी स्वभावके कारण बड़ी ही विनम्रतासे प्रार्थना एवं आग्रह करके सम्मान्य महानुभावों, स्वजनों, मित्रों एवं सेवकों आदि किसीके भी अभिनन्दन-प्रयासको सफल नहीं होने दिया। अन्तिम प्रयासमें अपने सेवकके प्रेम-संकोचके कारण उन्होंने अपने जीवनकी जो अन्तरङ्ग बातें प्रकाशित कीं, वे निश्चय ही परम महत्त्वपूर्ण और अलौकिक हैं। उन तथ्योंके आधारपर इस ग्रन्थमें यथावसर लिखा गया है। उनके बृहद् जीवन-वृत्तमें, भगवान्‌ने चाहा तो, उन तथ्योंका पूर्ण समावेश होगा।

●

प्रवासी भारतीयोंको मार्गदर्शन

[श्रीभाईजीकी रचनाओंसे, 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु'से तथा गीताप्रेससे प्रकाशित साहित्यसे प्रवासी भारतीयोंको विदेशोंमें रहते हिंदू-धर्म, संस्कृति, आचार-विचार आदिको बनाये रखनेमें कितनी सहायता प्राप्त हुई है—इसका कुछ दिग्दर्शन इन श्रद्धाञ्जलियोंसे प्राप्त किया जा सकता है।]

गोरखपुरके भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजीके निधनसे भारतवर्षके एक अत्यन्त जाज्वल्यमान रत्नकी हानि तो हुई ही है, सम्पूर्ण विश्वकी भी इस कारणसे अपार क्षति हुई है।

हम ऐसे युगमें जीवन धारण करनेके कारण अतिशय सौभाग्यशाली हैं, जिस युगमें मेरे पितास्वरूप श्रीभाईजी-जैसी एक अति महान् आत्माने चतुर्दिक् अपना दिव्य प्रकाश प्रसारित किया। इस प्रकाशकी शक्ति इतनी महान् है कि इससे केवल भारतवर्ष ही उद्भासित नहीं हुआ, अपितु लाखों अन्य लोगोंने हजारों मील सुदूर विदेशोंमें सत्प्रेरणा ग्रहण की तथा अपने जीवनको सुधारकी दिशामें परिवर्तित किया। यह सत्प्रेरणा इन महान् आत्माके द्वारा दिये गये सदुपदेशोंसे, उनके लेखोंसे ही नहीं, अपितु उनके जीवनके पल-पल, क्षण-क्षणसे प्राप्त हुई है। उनका जीवन नश्वर देहपर विजय लाभ करके परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये समर्पित हुआ। उनका जीवन क्षुद्र स्वार्थको लेकर नहीं था। वे मात्र अपने लिये नहीं जीवित थे; उनके जीवनका ध्येय मानवताकी सेवा था तथा उन्होंने इसका निर्वाह जीवनके अन्तिम क्षणतक किया। अपने जीवनके लिये उन्होंने कभी सिद्धान्तोंका हनन नहीं किया। यहीं किसीके जीवनकी महानतम परीक्षा होती है।

मेरी सबसे बड़ी आकाङ्क्षा थी कि मैं किसी भगवत्प्राप्त पुरुषके जीवन्त रूपमें दर्शन करके उनके सदुपदेश श्रवण कर सकूँ। मैंने इसी निमित्त ट्रिनीडाड (दक्षिण अमेरिका)से भारतकी यात्रा (जुलाई-अगस्त १९७०में) की। मैं पवित्र भारत देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक भ्रमण करती रही, तब कहीं अन्ततः गोरखपुरमें मेरी आँखें ऐसी पवित्रात्माके दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो सकीं, जो वस्तुतः जीवन्मुक्त थी। मुझे ऐसा सौभाग्यपूर्ण अवसर प्राप्त हुआ कि मैंने उनके समाधिलीन अवस्थामें दर्शन किये, जब वे देहज्ञान-शून्य होकर भगवत्संयोगमें तल्लीन थे। मुझे उनके उस समयके भी दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जब वे समाधिकी स्थितिसे बाहर आ गये थे तथा ऐसी भाषामें बोलने लगे, जिसका अनुभव ही किया जा सकता था। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि यद्यपि वे भौतिक धरातलत पर स्थित थे, तथापि उनकी वचनावली इस जगत्की नहीं थी। ऐसा लगता था कि इस विश्वप्रपञ्चके कार्यकलापोंसे उनका कोई प्रयोजन न था, अपितु उनका जीवन विशुद्ध आध्यात्मिक था। मैं परम सौभाग्यशालिनी रही कि उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मुझे अपनी 'पुत्री'के रूपमें स्वीकार किया। यद्यपि मैं उनके अभावसे दुःखित तथा शोकाकुल रहती हूँ, तथापि जब-जब मैं उनका स्मरण करती हूँ, नेत्रोंसे निःसृत अश्रुधाराको रोकनेमें अपनेको असमर्थ पाती हूँ। यद्यपि अब मैं पितृविहीना हो गयी हूँ, तथापि मैं अपने हृदयके अन्तस्तलमें अनुभव करती हूँ कि उनका सर्वसमर्थ परमात्माके लीलाराज्यमें प्रवेश हो गया है। मैं असंदिग्धरूपसे अनुभव करती हूँ कि जब भी मुझे आध्यात्मिक पथपर अग्रसर होनेमें आवश्यकता होगी, वे मुझे सहायता प्रदान करेंगे।

मैं उनके अभावको अपने लिये अपूरणीय क्षति अनुभव करती हूँ। अपने मधुर पिता श्रीभाईजीके परमधाम चले जानेके कारण मैं भगवत्प्राप्तिकी अपनी दीर्घकालसे पोषित आकांक्षाको अपूर्ण लिये हुए ही इस संसारसे विदा हो जाऊँगी। मैं अनुभव करती हूँ कि इस विषयमें मैं अकेली ही ऐसी नहीं हूँ; मेरे प्यारे पतिदेव भी, जिन्होंने उन्हें अपने 'नाना'के रूपसे ग्रहण किया था, उनके वियोगसे भग्नहृदय हो गये हैं। जब-जब हम उनके विषयमें कुछ पढ़ते हैं अथवा विचार करते हैं, हमारा हृदय भर आता है। सत्य ही पूज्य बाबूजी हमारी जानकारीमें आये हुए पुरुषोंमें महानतम थे। उनका सम्पूर्ण जीवन ईश्वरीय प्रशस्तिगानकी स्वरलहरी है—वह भगवान् श्रीकृष्णकी

वेणुके सदृश है। अब यह वेणु हमलोगोंके हाथों सौंपी गयी है। हम परम निष्ठासहित प्रार्थना करते हैं कि जिनपर यह उत्तरदायित्व आ पड़ा है, वे सब संनद्ध होकर इस महान् तथा भव्य कर्तव्यको पूर्ण करें। हमारी जीवन-ज्योति लुप्त हो गयी। परंतु उन्होंने जो ज्योति जलायी है, वह कभी मन्द नहीं हो सकेगी, कारण वह आत्माका दीप पूज्य बाबूजीकी स्वयंकी आत्माद्वारा जलाया गया था। मेरी अभिलाषा है कि यह दीप अनन्तकालतक प्रकाशोज्ज्वल रहकर विश्वको प्रकाशित करता रहे।

पूज्य बाबूजीके अभावमें गोरखपुर शहर अत्यन्त उदास एवं श्रीहीन हो गया होगा। आह ! हमारी कितनी अभिलाषा है कि वे पुनः लौट आते और हम उनके दर्शन करते। पूज्य बाबूजीके तिरोधानसे भारत-वर्षकी तथा सम्पूर्ण विश्वकी कितनी अपार क्षति हुई है, इसे कोई जान नहीं सकता।

देवकीदेवी शिवनारायण
ट्रिनीडाड (दक्षिण अमेरिका)

● ● ●

महान् आत्मा श्रीपोद्दारजीके प्रयाणसे हम बड़े दुःखी हैं और उनके परिवार तथा साथियोंके प्रति अपनी महती श्रद्धा एवं हार्दिक सहानुभूति प्रेषित करते हैं। उनके जानेसे हमारी परिषद्‌को भी क्षति पहुँची है। प्रवासमें रहते हुए हम भारतीयोंको उनकी स्मृति चिरस्मरणीय रहेगी। उनके अभावकी पूर्ति होना सर्वथा असम्भव है।

पण्डित तिलकधारी
अरौका, ट्रिनीडाड (दक्षिण अमेरिका)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजीकी आत्मा बहुत ऊँची थी। उनकी लगन, निःस्वार्थ सेवा, परमार्थकी भावना, हिंदू-संस्कृतिकी सेवा तथा शान्ति प्रदान करनेवाली उनकी रचनाएँ उन्हें सदा अमर रखेंगी।

हमलोग १९ वर्षोंसे विदेशोंमें हैं। हमें दुःख है कि उन महान् संतके दर्शन हमें केवल लेखोंके रूपमें प्राप्त हुए; हम गीताप्रेस, गोरखपुर जाकर उनके दर्शन नहीं पा सके और न पा सकेंगे।

श्रीपोद्दारजीके विचारोंकी जो छाप हमारे जीवनपर पड़ी है, उसका शब्दोंमें वर्णन नहीं किया जा सकता। 'कल्याण'में प्रकाशित उनके विचार, प्रकाश-स्तम्भकी भाँति तूफानों, चट्टानों-जैसी बाधाओंसे हर तरहसे बचाते रहे हैं। उन्होंने हमें सहारा दिया है, स्थिर एवं सजग रखा है; वरना हम कभीके अपनी नौकाओंको टकरा-टकरा-कर तोड़ डालते, अथाह समुद्र—विदेशी विचार एवं पश्चिमी सभ्यतामें डूबो देते और खुद डूबकर दुःखी होते, जैसा हम अनेकों भाई-बहिनोंको देखते हैं। अलवर्टा, कनाडामें 'हिंदू-सोसाइटी' नामकी एक संस्था है। हिंदू-त्योहारों-को मनाना, भजन-कीर्तन करना, गीताका पाठ, रामायण-पाठ—ये सब उसके साधारण साप्ताहिक कार्यक्रम हैं। इस संस्थाकी स्थापना, संचालन एवं उसे आजके रूपमें सक्रिय करनेका जो कुछ भी काम मैंने किया है, वह सब श्रीभाईजीके विचारोंसे प्रभावित होकर, या यों कहिये कि उनकी प्रेरणासे ही किया है।

परमपितासे प्रार्थना है कि श्रीभाईजीद्वारा प्रवर्तित 'कल्याण'को वे उसी प्रकार चालू रखें एवं गीताप्रेसको शक्ति दें कि उसकी किरणें उस महान् आत्माके आशीर्वादसे—जो जाते समय उसे हाथ उठाकर दे गये थे—सबको प्रकाश देती रहें और हम अपनी जीवन-नौकाको गन्तव्य स्थानपर ले जानेमें समर्थ हों।

विष्णु नारायण कटारे
अलबर्टा, कनाडा

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका जीवन एक ग्रन्थ है। वे देवताओंके देव थे। वास्तवमें महापुरुषोंकी महिमाका वर्णन नहीं हो सकता। उनका भगवान्‌पर अगाध विश्वास और अपने कार्यके प्रति अटूट लगन उनके व्यावहारिक

एवं साधनात्मक जीवनका वास्तविक परिचय देते हैं, साथ ही भारतीय संस्कृति एवं धर्मकी गौरवपूर्ण गाथाका एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। हमारी हिंदू सभ्यता और संस्कृति हजारों वर्षोंकी श्रमसाध्य उपलब्धियाँ हैं, जो जीवनको समृद्ध और उन्नत करती हैं। हम-जैसे भारतसे बाहर रहनेवालोंके लिये 'कल्याण' तथा गीता-प्रेसके प्रकाशनोंके रूपमें श्रीपोद्दारजीका आदर्शवादी साहित्य अत्यधिक सहायक हुआ है। वे सच्चे अर्थमें कर्म-योगी थे।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके प्रति हमारी और हमारे परिवारकी ओरसे श्रद्धा-सुमनाञ्जलि अर्पित है।

श्रीमती बृज कटारे
अलबर्टा, कनाडा

● ● ●

परमश्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतीयताके उज्ज्वल आदर्शके रूपमें प्रत्येक भारतीयको सदैव स्मरण रहेंगे। हम भारतीय भौगोलिक दृष्टिसे भारतसे दूर होनेपर भी भारती और भारतीयतासे कभी दूर नहीं हो सकते। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने भक्ति, ज्ञान, सदाचारकी ऐसी गङ्गा बहायी, जिसमें अवगाहन कर प्रत्येक जन-मन अपनी कालिमाको कभी भी धो सकता है।

भारतकी पवित्र भूमिने अगणित दिव्य विभूतियोंको जन्म दिया है। मानवको मानवताके निकट लानेमें भारतमाताके जिन सपूतोंने प्रयास किये हैं, उनमें 'कल्याण'-प्रेमी संसार श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको कभी नहीं भुला सकेगा। श्रीभाईजी शरीररूपमें नहीं रहे तो क्या, उनकी प्रेरणा हम भारतीयोंके लिये सदैव साथ है। हम भारतसे कितनी ही दूर क्यों न हों, हम सदा-सर्वदा अपनेको उनके निकट मानते हैं।

श्रीप्रेमचन्द सूद
वेद-संदेश-सभा, आर्यसमाज, लंदन (पूर्वी)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी स्मृतिमें अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेका अवसर पाना मेरे लिये सौभाग्यकी बात है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उनके प्रति मेरी कोई श्रद्धाञ्जलि, मेरे हृदयका कोई उद्गार मुझे उनके महान् ऋणसे मुक्त नहीं कर सकता। उनके प्रेरणादायी प्रकाशन मेरे निर्माणके प्रारम्भिक दिनोंमें मार्गदर्शक प्रकाशस्तम्भ सिद्ध हुए और उन्होंने मुझे प्रेम, भक्ति एवं आध्यात्मिक उन्नतिका पथ दिखाया।

जिस परम्परासे मैं सम्बद्ध हूँ, उसके अध्यात्मोपदेशक देवस्वरूप श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज कहा करते हैं कि एक मृदङ्गकी पवित्र ध्वनि अधिकाधिक २०० गजतक पहुँच सकती है, जब कि मुद्रित शब्दमें संसारके सुदूर कोनेमें भी पहुँचकर उन सभी लोगोंके मनको शुद्ध करनेकी क्षमता है, जो उसे पढ़नेकी इच्छा रखते हैं। श्रीभाईजीसे प्रत्यक्षतः मेरी कोई भेंट नहीं हुई और न इसकी कोई आवश्यकता ही थी; क्योंकि मुझे अन्धकारसे प्रकाशमें और वासना तथा अज्ञानके पथसे सत्पथपर लानेके लिये पिछले लगभग २५ वर्षोंसे 'कल्याण'के माध्यमसे उनके मुद्रित शब्द प्रतिमास मेरे पास पहुँचते रहे हैं। पश्चिमी जगत्में सब ओर व्याप्त दुर्भेद्य भौतिकवादसे संघर्ष करनेमें उनकी पुस्तकोंने विशेषरूपसे मुझे सहायता पहुँचायी है। वे इतने दयालु थे कि अध्ययन, अनुशीलन एवं प्रचारके लिये गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित पुस्तकोंका पूरा सेट उन्होंने मुझे निर्मूल्य भेज दिया था। इन पुस्तकोंकी अगली खेपें भी लन्दन पहुँचीं और पश्चिमी जगत्के अनेक मन्दिरों एवं घरोंमें इन्हें स्थान प्राप्त हुआ।

श्रीभाईजी जन्मसे व्यवसायी-कुलसे सम्बद्ध थे, जो जीवनका परम ध्येय धन-संचय करना मानता है। परंतु उन्होंने उच्चतम ब्राह्मणोंद्वारा अभिलषित आध्यात्मिक गरिमाको प्राप्त कर लिया था।

मैं एक बार पुनः उस महान् आत्माके सम्मानमें विनयपूर्वक नतमस्तक हूँ, जिसने भारत एवं विदेशोंमें रहनेवाले लाखों नर-नारियोंके हृदयोंमें भगवत्प्रेमकी ज्योति जगायी।

श्रीक्षीरोदकशायीदास अधिकारी
श्रीकृष्णभक्तिरस-भावित-मतिका अन्तारराष्ट्रीय संघ, लंदन

● ● ●

यद्यपि श्रीपोद्दारजीसे मेरा साक्षात्कार कभी नहीं हो पाया, तथापि गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित उद्बोधक आध्यात्मिक सत्साहित्य 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' नामकी मासिक पत्रिकाओंद्वारा उपलब्ध धार्मिक ज्ञानके माध्यमसे मैं सदैव उनका सांनिध्य अनुभव करता रहा हूँ।

मेरी धारणा है कि श्रीपोद्दारजी इस भ्रान्त जगत्‌की परिधिसे परे थे। न केवल आन्तर-बाह्य दृष्टिसे ही वे अनन्त थे, अपितु कालाधीन घटनाओंको महत्व देनेकी उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। उनके सम्मुख एक लक्ष्य था और वह लक्ष्य भगवदीय था, जिसे उन्होंने तात्त्विक दृष्टिसे हृदयंगम करते हुए अपने आचरणमें प्रत्यक्ष कर दिखाया और हम सब लोगोंके अनुसरणके लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया।

हिंदू-अहिंदू—सभीको समानरूपसे आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रबुद्ध करना एवं हिंदू-संस्कृति तथा परम्पराओंकी गरिमाको विदेशोंमें और विशेषतया लंदनमें अङ्कित करना यहाँके समस्त हिंदू-संगठनोंका प्रधान उद्देश्य है। इस संदेशके प्रचार-प्रसारका मुख्य श्रेय गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित सत्साहित्य तथा मासिक-पत्रिकाओंमें प्रकाशित श्रीपोद्दारजी-जैसे संतोंकी दिव्य वाणीको ही है। सतत तथा निर्पेक्ष भक्ति और दैवीकार्यके लिये समर्पणका जो पाठ मैंने 'कल्याण' एवं ग्रन्थोंमें प्रकाशित श्रीपोद्दारजीके लेखोंसे सीखा है, उसको तथा उसके महत्त्वको मैं विस्मृत नहीं कर सकता। अन्य बातोंके अतिरिक्त लंदनमें श्रीराधा-कृष्णके मन्दिरकी स्थापना करनेमें मुझे उन्हीं लेखोंसे विशेष सहायता मिली। मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि उन महान् संतके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि केवल इसी रूपमें दी जा सकती है कि हम भारतकी महान् परम्पराको विश्वके कोने-कोनेमें प्रसारित करनेके महद् उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उत्साह-पूर्वक कठिन श्रम करनेके लिये उद्यत हो जायँ।

बी० के० गोयल
लंदन

● ● ●

'कल्याण'ने हमेशा मेरा मार्ग-दर्शन किया तथा श्रीपोद्दारजीके विचार सदा मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं।

एक दिन मुझे एक लाख फ्रैंकका भुगतान करना था। उसी दिन पूज्य श्रीपोद्दारजीकी पुस्तकें मुझे प्राप्त हुईं। परेशान एवं दुःखी मनसे मैं एक किताब खोलकर बैठा तथा पूज्य श्रीपोद्दारजीका गीतापर लेख पढ़ा। उसे पढ़कर मेरा मन शान्त हो गया। मनमें यही विचार आया कि भगवान् रक्षा करेंगे। जानते हैं क्या हुआ? दूसरे दिन बेल्जियम सरकारने मुझे एक लाख फ्रैंकका भुगतान दिया।

आज जब मैं लंदनमें बैठा हुआ पत्र लिख रहा हूँ, उस समय मेरे सामने एक भयंकर समस्या व्यापारकी है, मगर पूज्य श्रीपोद्दारजीके लेखको याद कर मन शान्त है। पूर्ण विश्वास है—भगवान् रक्षा करेंगे।

'कल्याण' महान् कार्य कर रहा है। मेरा खयाल है कि एक लाख मन्दिर वह कार्य नहीं कर सकते, जो 'कल्याण' कर रहा है। मेरे लिये 'कल्याण' एक मन्दिर है, न कि पत्रिका।

विपिनचन्द्र तिवारी
बेल्जियम

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके साथ मेरा वैयक्तिक परिचय नहीं हो सका, किंतु उनकी आत्मिक सन्तान 'कल्याण' एवं गीताप्रेसके द्वारा उनकी भारतीय संस्कृतिके प्रति की गयी अमूल्य सेवाओंसे मैं परिचित हूँ।

उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना मुझ-जैसे प्रवासीके लिये तीर्थयात्राके समान पुनीत कार्य है।

श्रीधर्मेन्द्र नाथ
नैरोबी (अफ्रीका)

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजीका जीवन एक धूपबत्तीके समान था। आपने आजीवन हिंदू-धर्म और संस्कृतिके प्रचारके लिये अविरल प्रयत्न किया और उन्हींके प्रयत्नोंके फलस्वरूप गीताप्रेस और 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' आज वर्षोंसे भारतीय संस्कृति और हिंदू-धर्मका प्रचार कर रहे हैं।

हम सब प्रवासी भारतीय हैं। भारतसे हजारों मील दूर पीढ़ियोंसे हम यहाँ बसे हैं। यहाँ हिंदू भारतीयों-की संख्या बहुत कम है। ऐसी विपरीत परिस्थितियोंमें हिंदू-धर्म और भारतीय संस्कृतिके साथ सम्पर्क बनाये रखनेका एक ही रास्ता हमारे लिये है। वह है धार्मिक साहित्य मँगाकर उसका अभ्यास करना। 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' आज कई वर्षोंसे––भारतमें ही नहीं––दुनियाके सभी देशोंमें, जहाँ भारतीय बसते हैं––अनुपम सेवा कर रहे हैं। 'कल्याण' और अन्य कल्याणकारी सामयिकोंकी कृपासे जो हिंदू-धर्म और भारतीयता विदेशोंमें भी टिकी हैं, अब वे स्थायी स्वरूप प्राप्त कर विकसित हो रही हैं।

श्रीपोद्दारजीके निधनसे एक महान् विभूतिने सदाके लिये हमसे बिदा ली है। किंतु उनका स्थूलशरीर न होते हुए भी उनका कार्य सदा जीवित रहेगा और धूपबत्तीकी तरह सुगन्ध फैलाता रहेगा।

रजनीकान्त मास्टर
रामकृष्ण वेदान्त सोसाइटी, जोहान्सबर्ग (दक्षिणी अफ्रीका)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अन्ताराष्ट्रीय ख्यातिके महापुरुष थे, जो मानवताकी सेवाके निमित्त जीवित रहे। उन्होंने विश्वभरके करोड़ों हिंदुओंकी महती सेवा की है। अपने धर्मके प्रति उनकी निष्ठा हम सभीके लिये प्रेरणादायी स्रोत है।

'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु' नामक दो प्रसिद्ध धार्मिक मासिक पत्रोंके संस्थापक-सम्पादक श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दारने ऐसी ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित की है, जिसके प्रकाशने लोगोंके हृदयसे अज्ञानान्धकार दूर कर दिया है। अपने बन्धुओंकी सेवाके निमित्त उनकी प्रवृत्तिने विश्वभरमें, जहाँ भी हिंदूलोग निवास करते हैं, हिंदू-धर्मकी शिक्षाओंके प्रचार-प्रसारमें पर्याप्त मात्रामें सहायता पहुँचायी है। हिंदू धर्म, संस्कृति एवं परम्पराके सम्बन्धमें इन पत्रोंमें प्रकाशित उनकी अमूल्य रचनाएँ देश एवं विदेशोंमें स्थित हिंदुओंके लिये प्रकाश-स्तम्भके समान सिद्ध हुई हैं। जहाँ-जहाँ उनके पत्रोंका प्रचार हुआ, हिंदू-धर्म वहाँ पनपा। उनकी शिक्षाएँ एवं निर्देश कभी भी विस्मृत नहीं होंगे। वास्तवमें वे एक महान् व्यक्ति थे।

'गायना सनातन-धर्म महासभा'के सदस्य हमलोग यद्यपि भारत-मातासे हजारों मील दूर हैं, तथापि उनके निधनसे हमें गहरा दुःख है।

यू० भरत
जनरल सेक्रेट्री, सनातन-धर्म महासभा, गायना

● ● ●

श्रीभाईजीके निधनसे भारतके साथ मारीशसके लाखों भारतीय प्रवासियोंने भी अपना एक धार्मिक पथ-प्रदर्शक खो दिया।

स्वामी कृष्णानन्द
मारीशस

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी धर्मके साकार विग्रह थे। उनका सम्पूर्ण जीवन धर्मकी अनवरत सेवासे युक्त था। इसे दूसरे ढंगसे यों कहा जा सकता है—उस धर्मने ही श्रीपोद्दारजीके माध्यमसे अपनी सेवा करायी।

आधुनिक जगत्में—विशेषतया वर्तमान भारतमें—धर्मकी रक्षा करना कितना कठिन एवं दुस्साध्य कार्य है, इसका अनुमान लगाना सरल नहीं है। आजके जगत्में भगवान्के अतिरिक्त अन्य कोई भी धर्म-ध्वजाको ऊँचा नहीं उठा सकता। श्रीहनुमानप्रसादजी ऐसे ही भगवान्के द्वारा चुने गये माध्यम थे। निस्संदेह श्रीहनुमान-प्रसादजीके रूपमें स्वयं भगवान्के ही एक अंशने धर्मकी पुनःस्थापना-सम्बन्धी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है।

संसारमें जहाँ-कहीं भी जाता हूँ, मैं भारतवर्षकी दो शक्तिशाली भुजाओं—सनातनधर्मकी दो भुजाओं—'कल्याण' (हिंदी) और 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी)को उनलोगोंके घरोंमें वर्तमान पाता हूँ। भारतसे बाहर जहाँ भी हिंदू रहते हैं, उन्हें कल्याण'से ही सच्ची प्रेरणा प्राप्त होती है। हिंदू-धर्मके विदेशी प्रशंसकगण अंग्रेजी 'कल्याण-कल्पतरु' के माध्यमसे हिंदू-अध्यात्मज्ञानकी दीक्षा लेते हैं। ये दोनों पत्रिकाएँ ही श्रीहनुमानप्रसादजीकी प्रिय सन्ततियाँ हैं। कितने स्नेह एवं कितनी निष्ठासे उन्होंने इनका संवर्धन किया है! ये दोनों प्रेमके स्थायी स्मारक-स्वरूप वर्तमान रहेंगी।

श्रीपोद्दारजीकी अथक परिश्रमशीलता धन्य है, जिसके फलस्वरूप संसारके प्रत्येक हिंदू-घरमें भगवद्गीता वर्तमान है। 'कल्याण-कल्पतरु'में प्रकाशित श्रीमद्भागवत एवं श्रीवाल्मीकि-रामायणके अनुवादोंने भारतसे दूर ऐसी आध्यात्मिक सामग्री उपलब्ध करायी है, जिसने हमारी प्रभु-भक्तिका पोषण किया है। श्रीपोद्दारजी अपनी महान् कृतियोंके रूपमें सदैव अमर रहेंगे।

श्रीस्वामी वेंकटेशानन्द
रोज हिल, मारीशस

● ● ●

श्रीपोद्दारजी अपने जीवन-कालमें अपना सम्पूर्ण समय हिंदू-धर्मके उत्थान-कार्योंमें लगाते रहे। एक समय था, जब विभिन्न विश्वासों, विचारों और मत-मतान्तरोंका पारस्परिक संघर्ष चारों ओर व्याप्त था तथा मानव-जीवनके सभी पहलुओं और मानवीय गति-विधियोंके सभी क्षेत्रोंसे उठते हुए मत-वैषम्यके बादलोंकी काली छायासे मनुष्य संत्रस्त था। ऐसे कालमें श्रीपोद्दारजी 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु'के प्रकाशनके माध्यमसे परम प्रकाशके उदयके अग्रदूत बनकर आये। इन दोनों प्रकाशनोंके माध्यमसे उन्होंने महाभारत, रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदोंके तत्त्वज्ञानको चतुर्दिक् प्रसारित किया।

उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञानके अमृत-रसको चारों ओर दूर-दूरतक फैलानेका प्रयत्न किया। हम प्रवासी भारतीय निस्संदेह उस नैतिक शिक्षासे विशेष लाभान्वित हुए हैं, जिसमें मनुष्यको दुःख और अज्ञानकी अतल गहराइयोंसे निकालकर देवत्वकी उच्च गरिमातक पहुँचा देनेकी क्षमता है। 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' तथा गीताप्रेसके अन्य प्रकाशनोंसे हमें जो प्रेरणा एवं सहायता मिली है, उसके लिये हम सचमुच बहुत आभारी हैं। यह एक सचाई है कि सनातनधर्मके उत्थानके लिये गीताप्रेसके प्रकाशनोंद्वारा जिस ज्ञानका प्रचार किया गया, उस ज्ञानके द्वारा भारतसे बाहर रहनेवाले हिंदू-समाजको अपनी परम्परा, धर्म और संस्कृतिको जीवित रखनेमें बल और सहयोग मिला है।

महान् उपदेशकोंकी भाँति ही श्रीपोद्दारजीने भी केवल शिक्षा ही नहीं दी, अपितु शिक्षाओंको अपने प्रतिदिनके जीवनमें व्यवहृत करते हुए उन्होंने उसका एक प्रखर उदाहरण भी हमारे सामने रखा।

श्रीजनार्दन चौबे नकछेदी
मारीशस

● ● ●

'कल्याण'के माध्यमसे हम श्रीभाईजीसे पूर्ण परिचित हैं। जिस किसीको भारतीय संस्कृति, धर्म आदिका परिचय पानेकी इच्छा होती है, वह तत्काल गीताप्रेससे पुस्तक-पुस्तिकाएँ मँगवाता है। इस प्रेसको इतना विशाल साहित्य प्रकाशित करनेमें सर्वाधिक सहयोग श्रीपोद्दारजीसे ही प्राप्त हुआ था। मारीशसमें पिछले दशकोंमें अपूर्व जागरण हुआ है, जिसके फलस्वरूप हिंदूतत्व जहाँ पहले समस्त जन-संख्याका कुल अड़तालीस प्रतिशत था, वहाँ अब बावन प्रतिशत हो गया। यदि हम कहें कि मारीशसवासी हिंदुओंकी इस प्रगतिमें पूज्य श्रीपोद्दारजीका हाथ है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। यहाँके 'लालमाटी' नामक ग्राममें जो 'प्रेमचन्द पुस्तकालय' है, उसकी शोभाकी वृद्धि गीताप्रेसकी उत्तमोत्तम पुस्तकोंसे हुई है और इसके लिये हम श्रीपोद्दारजीके चिर-ऋणी रहेंगे।

टेकानन्द ठाकुर
मारीशस

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनके समाचारसे हम हिंदू-प्रवासियोंमें मातम छा गया। यहाँके उनके कितने भक्तगण इस दुःखद खबरसे अचेत पड़े रहे। हमलोगोंने शोक-सभा की और उस महाप्राण संतको श्रद्धा-सुमन चढ़ाये। हमारा श्रीपोद्दारजीसे सम्बन्ध बहुत दिनोंसे है। हमलोगोंने गीताप्रेससे पुस्तकें मँगवायी हैं तथा 'कल्याण'के कितने ही विशेषाङ्क हमारे पास हैं।

श्रीपोद्दारजी कुछ भी करनेके पहले भगवान्का स्मरण करते थे। परमात्माके गुणोंको गाकर वे अपनेको धन्य मानते थे। उनके लेख आध्यात्मिकतासे ओत-प्रोत थे। धर्मकी व्याख्या वे कैसे सरल शब्दोंमें करते हैं—'धर्म वस्तुतः वही है, जो मनुष्यकी जीवनधाराका मुख भोग-जगत्से मोड़कर भगवान्की ओर कर दे और जिससे सतत अविराम, अविच्छिन्न गतिसे जीवन-प्रवाह निरन्तर समुद्रकी ओर बहनेवाली गङ्गाजीकी धाराके सदृश उसी ओर—भगवान्की ओर बहता रहे।' श्रीपोद्दारजी अपनी महान् सेवाओंके कारण चिरस्मरणीय रहेंगे।

श्री जी० ठाकुर
मारीशस

● ● ●

परमपूजनीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे हम श्यामदेशके हिंदू स्तब्ध हो गये। हिंदू-जातिके लिये उनका पार्थिव शरीर परमावश्यक था। उससे वञ्चित हो जाना हम हिंदुओंके लिये अपूरणीय क्षति है।

चिन्तामणि त्रिपाठी
प्रधान—धर्म-विभाग, हिंदू धर्मसभा
बैंकाक (थाईलैण्ड)

● ● ●

श्रीपोद्दारजी एक महान् आत्मा थे। हालाँकि उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेका सौभाग्य हमें नहीं मिला था, लेकिन उनकी जीवनी एवं उनके द्वारा किये गये सेवा-कार्योंका वर्णन समय-समयपर पत्रिकाओंमें पढ़नेको मिलता रहता था। आपका जीवन महान् था। आप सच्चे रूपमें कर्मयोगी थे। जब, जहाँ भी आवश्यकता पड़ी, आपने सदैव तन-मन-धनसे सहयोग दिया। बर्मावासी हम हिंदुओंके अंदर धार्मिकताका विकास होता रहे, इसके लिये आप निःशुल्क साहित्य भेजकर एक महान् कमीकी पूर्ति करते रहे।

शिवदास वर्मा
मन्त्री, सनातन-धर्म-साहित्य-प्रचार-समिति
मांडले (बर्मा)

● ● ●

बर्मामें हिंदुओंकी संख्या लगभग पाँच लाख है। ये हिंदू हिंदी, तमिल आदि भारतीय भाषाओंके माध्यमसे अपने धर्म, संस्कृति और सभ्यताकी शिक्षा पाते आये हैं। यह कहना अयुक्ति न होगा कि विदेशी सभ्यताके प्रचार-प्रसारसे हिंदू-संस्कृति और सभ्यता कुण्ठित होती जा रही थी। हिंदू-धर्मके प्रचार-प्रसारका जो भी कार्य हो रहा था, वह नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज-जैसा ही था। इसी बीच आजसे ४५ वर्ष पूर्व गीताप्रेसका 'कल्याण' बर्माके हिंदुओंके बीच पहुँचा और विभिन्न विषयोंपर उसके विशेषाङ्क भी उपलब्ध होते रहे। इसके अलावा हिंदू-धर्मकी अनेक धार्मिक पुस्तक-पुस्तिकाएँ भी हमें प्राप्त होती रहीं।

ब्रह्मदेशकी हिंदू-जनता गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित इन धार्मिक ग्रन्थों एवं पत्रिकाओंके लेखों तथा कथाओंसे अपनेको कृतकृत्य करती आयी है और यह स्वीकार करती है कि इस तिमिराच्छन्न युगमें, जब हम अपने धर्म, संस्कृति और परम्पराओंको भूलते जा रहे थे, हमारा आध्यात्मिक मार्ग अवरुद्ध होता जा रहा था, तभी पूज्यपाद भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने 'कल्याण'के रूपमें एक ऐसी ज्योति जगायी, जो विश्वके विभिन्न भागोंमें बसे हुए हिंदुओंका ही नहीं, अपितु मानवमात्रके कल्याणका साधन बन रही है।

प्रधान—सनातन-धर्म-साहित्य-प्रचार-समिति

मांडले (बर्मा)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा ज्ञात अथवा अज्ञात रूपमें जितना मार्ग-दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है, उसका अंशमात्र भी वर्णन कर सकना मेरे लिये सम्भव नहीं है। अपने नामको सार्थक सिद्ध करनेवाले 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'से मैं ही क्या, बर्मामें बसनेवाले मेरे परिचित अनेकों हिंदू लाभान्वित हुए हैं। श्रीपोद्दारजी-द्वारा लिखित एवं सम्पादित छोटी-बड़ी पुस्तकोंद्वारा हम प्रवासी भारतीय हिंदुओंको धर्म, संस्कृति तथा हिंदुत्वका व्यावहारिक ज्ञान होता रहा है। बालक-बालिकाओं तथा महिलाओंके उपयोगके लिये लिखी गयी पुस्तकोंसे हमें विशेष लाभ पहुँचा है। इस उपयोगिताके कारण श्रीपोद्दारजीकी सत्कृतियोंकी हमारे यहाँ बहुत माँग है। हिंदुत्वमय इन्हीं प्रकाशनोंकी देन है कि आज भी बर्मा-निवासी हिंदू हिंदी भाषा-भाषी हैं और पूर्णरूपेण भारतीय हैं। बर्मामें सर्वसाधारण हिंदू-जनताके लिये तो 'गीताप्रेस' और 'हिंदू-धर्म' पर्याय-से हो गये हैं और श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इनके अमर प्रहरी।

श्रीपोद्दारजीद्वारा सम्पादित श्रीरामचरितमानसमें दी गयी पाठ-विधिपर तो यहाँ इतनी आस्था है कि बहुत बड़े पैमानेपर सामूहिकरूपसे मानसके नवाह्न तथा पाक्षिक पाठ तथा मानस-कथाके आयोजन आये दिन यहाँ होते रहते हैं। इससे सम्भावित लाभ तो हर मानस-प्रेमीको ज्ञात ही है।

मैं बर्मानिवासी सभी भारतीय साथियोंके साथ श्रीपोद्दारजीके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

सियाराम आर्य

इनसेन (बर्मा)

● ● ●

पूज्य श्रीपोद्दारजीके पार्थिव शरीरके दर्शनोंका सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ, परंतु उनके लेखोंके माध्यमसे उनके विचारोंसे अवगत होनेका सुअवसर सदा ही प्राप्त होता रहता था। अपने प्रयत्नसे धार्मिक सत्साहित्य इतने सस्ते मूल्यपर प्रकाशित कराकर तथा जन-साधारणके लिये उसका वितरण करके उन्होंने एक असाध्य कार्य साध्य कर दिखाया। गीताप्रेसद्वारा भारतमें ही नहीं, विदेशोंमें भी धर्मकी संस्थापना और हिंदू-संस्कृतिके प्रचारमें बहुत सहायता प्राप्त हुई है। ब्रह्मदेशकी बीसियों संस्थाओं और व्यक्तियोंको उन्होंने समय-समयपर धार्मिक साहित्य निःशुल्क भेजकर उपकृत किया है।

परम आदरणीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको उनके द्वारा किये गये हिंदू-धर्मके प्रसारके लिये ब्रह्मदेशके प्रवासी हिंदू अत्यन्त सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। उनका 'कल्याण' वर्षोंसे इस भूमिके धर्मप्राण भारतमूलक सनातन-

धर्मावलम्बियोंके लिये धर्म-पिपासा बुझानेका एकमात्र साधन रहा है । हमने अनेक सम्भ्रान्त लोगोंके घरोंमें 'कल्याण'की वार्षिक सुन्दर जिल्दें आलमारीमें अति प्रेमसे सजाकर रखी देखी हैं । धार्मिक पर्वोपर लेख या प्रवचन तैयार करनेमें 'कल्याण'के विशेषाङ्क बहुत उपयोगी तथा चुनी हुई सामग्री प्राप्त कराते हैं। यह सब श्रीहनुमानप्रसादजीका ही शुभ कार्य है । मैंने अनेक वृद्ध-पुरुषों तथा स्त्रियोंको नाकपर ऐनक टिकाये बड़े ध्यानसे टटोल-टटोलकर इन पुस्तकोंको पढ़ते देखा है । इस प्रकार श्रीभाईजीने सहस्रों मील दूर बैठे लोगोंकी भी जो सेवा की है, उसे कौन भुला सकता है ।

श्रीपोद्दारजीकी पावनस्मृतिमें हम ब्रह्मदेशके हिंदू श्रद्धा-सुमन अर्पितकर अपनेको धन्य मानते हैं ।

डा० ओमप्रकाश
रंगून (ब्रह्मदेश)

● ● ●

अपने हिंदू-धर्ममें अडिग विश्वास रखनेके कारण मैं 'कल्याण' बराबर मँगाता रहा हूँ । मैं तथा मेरे सभी बच्चे इसे बड़े चावसे पढ़ते हैं। प्रत्येक मास 'कल्याण'का अङ्क आनेपर परिवारका प्रत्येक सदस्य जबतक उसे पूरा नहीं पढ़ लेता, चैन नहीं लेता। 'कल्याण'से हमें प्रेरणा एवं शक्ति मिलती है। एक महान् कर्मयोगी, संत एवं धर्मोपदेशकके रूपमें श्रीहनुमानप्रसादजीके प्रति हमारे हृदयमें बड़ा सम्मान है।

टी० ओ० भाटिया
दुबाई (अरब खाड़ी)

●

सार्वभौम संतप्रवर श्रीभाईजी

देवोपम अतिमानवीय सद्गुणराशिसे विभूषित उस विश्ववन्द्य विभूतिके स्मरणमात्रसे लेखनी हाथसे छूट जाती है, प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है, मन भर आता है, आँखें रिसने लगती हैं और साहस हतप्रभ हो उठता है—कुछ सूझता नहीं ।

अतल महासागरकी नाप-जोख करके जगत्के सम्मुख उसकी गहराई और लंबाई-चौड़ाईका लेखा-जोखा प्रस्तुत करनेका दुस्साहस कोई नमकका पुतला करे तो भी कैसे ? कदाचित् उस अथाह सागरमें घुल-मिलकर अपनी स्वतन्त्र सत्ताको सर्वथा विलीन करके उसका कोई कणांश तलतक पहुँच भी जाय, तो भी विश्वको उसकी गहराईका ब्योरा प्रस्तुत करनेके लिये वह ऊपर तो आ ही नहीं सकता।

इसी प्रकार उस स्नेहसागर, निस्सीम करुणाके आगार, परम संत, अखण्ड परम साधनारत महायोगीने अनेक शक्तियोंसे अपनी जीवनदायिनी चिन्तन-धारासे विमुख, अनभिज्ञ, मूर्च्छित एवं प्रसुप्त पड़ी हुई हिंदूजाति तथा उसकी भावी पीढ़ियोंके लिये ही नहीं, वरं मानवमात्रके लिये भगीरथ बनकर हिंदू-दर्शनकी ज्ञानसलिला पुनः प्रवाहित कर दिखायी है, तथा उसे नव-जीवन देकर, उसकी गौरवगरिमाको अक्षुण्ण बनानेका आधार जिसने प्रस्तुत कर दिया है; कुछ इने-गिने मनीषियों, विद्वानों, पण्डितों, यतियों अथवा साधकों और पुस्तकालयोंकी परिमित परिधिके स्वर्गमें आबद्ध हिंदू-जीवन-दर्शनकी ज्ञानगङ्गाको भूतलपर उतारकर उसे विस्तीर्ण, उन्मुक्त, विशाल मैदानोंमें, देश-विदेश, नगर-नगरकी डगर-डगरतक, ग्राम-ग्रामके द्वारतक पहुँचानेका महत् कार्य जिस महापुरुषकी अनवरत अखण्ड साधनासे सम्भव हो पाया है, उस निस्सीमके स्वरूपका वर्णन ससीम शब्दोंमें प्रस्तुत करनेका कार्य कितना कठिन है, इसका अनुमान कोई भी कर सकता है ।

शास्त्र-सम्मत आचार-निष्ठाके प्रबल समर्थक, उस परम्परावादी, सनातनी हिंदूकी जरा कल्पना तो करें, जिन्हें हिंदू-समाजके अन्तर्गत परस्पर विरोधी दिखायी देनेवाले शैव-शाक्त, वैष्णव-सनातनी, आर्यसमाजी, जैन तथा सिक्ख—इसी प्रकार सभी मत तथा सम्प्रदाय तो अपना ही मानकर श्रद्धा एवं पूज्य भावसे देखते ही थे; परंतु उनकी विशालहृदयता, औदार्य तथा व्यापक दृष्टिकोणके कारण उन्हें ईसाइयों, मुसल्मानों तथा विदेशियोंके द्वारा

भी जो विश्वास, आत्मीयता और प्यार मिला है, वह भी कुछ कम मूल्यवान् नहीं है। पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंके आधुनिक युगके उद्धारकर्त्ता श्रीभाईजीका निजी कक्ष अनेक वर्षोंतक मशीहके एक आकर्षक चित्रसे अलंकृत था। उस विश्वमानवके अपनी इहलीला समेटनेपर गीतावाटिकामें करुण क्रन्दनरत चीत्कार करनेवाले आबाल-वृद्ध जन-समुदायके अन्तर्गत बुरका ओढ़े हुए कतिपय मुस्लिम देवियाँ भी सुबकियाँ भर-भरकर अश्रुपात कर रही थीं। स्थानीय साम्यवादी नेता श्रीजामिन अलीका अश्रु-प्रवाह तो आज भी नहीं रुक पाता है।

देशभरसे सामाजिक, धार्मिक एवं परस्पर-विरोधी राजनीतिक संस्थाओं, उन संस्थाओंके अन्तर्गत विरोधी गुटोंके सभी नेता पूज्य श्रीभाईजीको अपना निकटस्थ शुभचिन्तक मानकर परामर्श, मार्गदर्शन तथा सहायताके लिये आते ही रहते थे। सहयोग प्राप्त करनेके अतिरिक्त तीर्थस्वरूप श्रीभाईजीके दर्शन, एवं किंचित् वार्तालाप-की अभिसंधि भी उनके अन्तर्मनमें रहती ही थी। गोरखपुर आनेवाले केन्द्रिय अथवा प्रान्तीय शासनके नियन्ता, राज्यपाल, मन्त्री तथा उच्च शासकीय अधिकारी भी प्रायः अपने कार्यक्रमकी योजना बनाते समय श्रीभाईजीसे भेंटका प्रावधान रख ही लिया करते थे। नगरमें आयोजित होनेवाले किसी भी अखिल भारतीय स्तरके अथवा अन्य बृहद् आयोजनमें भाग लेनेके लिये आये हुए प्रतिनिधियोंका आतिथ्य-सत्कार करनेका सौभाग्य श्रीभाईजी एवं उनके परिवारको अवश्य प्राप्त हो जाता था। चाहे वह आयोजन धार्मिक हो, भूदान-सम्बन्धित हो, व्यापारिक सम्मेलन हो अथवा विश्वविद्यालयके अन्तर्गत उसके तत्वावधानमें आयोजित विज्ञान-कांग्रेस, साहित्य अथवा अन्य विषयकी गोष्ठी हो, देशभरसे इन आयोजनोंमें भाग लेनेवाले हर वर्ग तथा स्थितिके अभ्यागत बन्धु विशुद्ध हिंदू-पद्धतिसे किये गये उदार सत्कार एवं पूज्य भाईजीके प्रेमिल व्यवहारकी मधुर स्मृति लेकर ही वापस लौटते थे।

श्रीभाईजीके जीवनकालमें इस प्रकार गोरखपुर आनेवाले महानुभावोंमें अन्तिम स्थान था विभिन्न देशोंसे आये हुए उन विदेशी अतिथियोंका, जो विश्वभरमें 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।' महामन्त्रका अलख जगाकर योरप तथा अमेरिकाकी सड़कों और पार्कोंमें हजारों-हजारों लोगोंको कीर्तनकी ध्वनिपर नचाते फिर रहे हैं और जो श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचार-प्रसारके लिये कृतसंकल्प गौड़ीय वैष्णव महात्मा स्वामी श्रीभक्तिवेदान्तजीके शिष्य हैं। इस कार्यमें आरम्भसे ही श्रीभाईजीने उन्हें सब प्रकारका प्रोत्साहन एवं सहायता तो दी ही थी, उनके गोरखपुर-आगमनपर लगभग पूरे एक मासतक उन सबके आवास, भोजन एवं अन्य सुख-सुविधाओंकी समुचित व्यवस्था वे अत्यन्त रुग्ण होते हुए भी करते रहे। वैसे भी आध्यात्मिक दृष्टिसे भारतमें आने तथा रहनेवाले विदेशियोंका यथोचित सम्मान वे करते ही रहते थे। साधनामें रत, परंतु निराश्रय एक अमेरिकन महिला तथा हिमालयकी कन्दरामें तपस्यामें लीन एक जर्मन बालिकाको नियमित सहायता भी वे प्रेषित करते ही रहे थे।

वर्ण-व्यवस्थाके कट्टर पोषक तथा समर्थक श्रीभाईजीकी उदार दृष्टिमें गीतावाटिकाके संडासोंको झाड़-बुहारकर स्वच्छ रखनेके कार्यमें नियुक्त उस बूढ़ी मुसलमान मेहतरानी तथा उसके परिवारका उतना ही आदर और सम्मान था, जितना पूजा-अर्चा एवं कर्मकाण्डके लिये नियुक्त कुलपुरोहितका। भावमें किंचित् अन्तर न रहनेपर भी उनकी सत्कार-विधिमें अवश्य ही तारतम्य था। उनका वह रूप बरबस ही हृदयको मोह लेता था, जिसमें कभी तो वे अपने रोगग्रस्त नौकरके सिरहाने बैठकर उसके माथेपर हाथ फेरकर उसकी परिचर्या तथा सँभाल किया करते थे और कभी अपने व्यस्त जीवनमें भी अबोध शिशुओंके साथ खेलते एवं उन्हें रिझाते हुए दृष्टिगोचर होते थे। उनकी दृष्टिमें देश, जाति, आयु, लिङ्ग, स्थिति या पदका भेद-भाव नहीं था, सभी रूपोंमें वे सतत अपने इष्टकी ही मधुर छविके दर्शन किया करते थे। विविध रूप धरकर उनकी अर्चाको प्रत्यक्षरूपमें स्वीकार करनेके लिये आनेवाले अपने प्रियतम इष्टदेवके ही वे सब रूप थे। अतः उनके सुखका विधान ही उनके जीवनकी साध थी, उनका सुख ही श्रीभाईजीका अपना सुख था।

श्रीभाईजीने जीवनभर दिया ही दिया, और देना तथा देते ही चले जाना केवल प्रेमका ही स्वभाव है। 'प्रेम'के ढाई अक्षरोंको इस विलक्षण प्रेमीने ठीकसे पढ़ा, हृदयंगम किया, सँजोया और झोलियाँ भर-भरकर लुटाया। यह प्रेम ही उनके समस्त कार्य-कलापोंका नियामक था। प्रेमने ही उन्हें दिव्य प्रज्ञा तथा प्रतिभा दी। सर्वश्रेष्ठ

भक्तोंसे अधिक भक्ति दी, सर्वाधिक धनी-मानियों, मूर्धन्य धर्माचार्यों एवं राजनेताओंसे बढ़-चढ़कर प्रभाव, प्रतिष्ठा तथा शक्ति दी। अतुलित औदार्यके साथ ही अद्भुत दैन्य तथा नम्रता दी, रचनाओंको सरसता दी। इसी प्रेमने उनकी वाणी, नेत्रों एवं सम्पूर्ण व्यक्तित्वमें वह माधुर्य एवं सौन्दर्य भर दिया, जिसने लक्षावधि लोगोंको विमुग्ध बना डाला और जिसकी स्मृति अभी भी अन्तर्हृदयको कचोटती रहती है।

'प्रेम-दर्शन'के नामसे नारद-भक्तिसूत्रोंके भाष्यकार इस अद्वितीय प्रेमीके प्रेम-दानमें कोई वैषम्य नहीं था, सभी उनके अपने थे। अपना-पराया, हिंदू-अहिंदू, जातीय-विजातीय, देशी-विदेशी, वरिष्ठ-कनिष्ठ, पापी-पुण्यात्मा एवं अधिकारी-अनधिकारीके भेद-भावको वहाँ कोई अवकाश ही नहीं था। न जाने कितने ही पापरत प्राणियों एवं अपराधियोंको पुचकारकर, दुलारकर, सहलाकर और अपनाकर क्या-से-क्या बना डाला, इसे विरले ही जानते हैं। उनकी आँखोंमें तो सतत अपने प्राणप्रेष्ठ श्रीकृष्ण ही बसे रहते थे, सभी रूपोंमें उन्हें केवल वही दिखायी देते थे और उनकी प्रत्येक लीला उनके लिये मधुरतम थी, सुखका सृजन करती थी। उनके इस प्यार-दानमें कोई विषमता न रहनेपर भी, उस प्यारको अपनी साध, मनोभाव, अधिकार एवं स्तर अर्थात् झोलीकी लंबाई-चौड़ाई तथा शक्ति-सामर्थ्यके अनुपातमें ही सब सहेज पाये, यह स्पष्ट ही है। उस कल्पवृक्षको जिसने जितना अधिक अपना माना, उतना ही अधिक पाया।

इन अजातशत्रु, अलौकिक सार्वभौम संतप्रवरके व्यक्तित्वकी गरिमा शब्दोंमें अङ्कित कर पाना सहज नहीं। वे तो, बस, वे ही थे। उनका प्रबोध, अमरोपदेश, शिक्षाएँ एवं अनुभूतियाँ, विश्वके प्रत्येक प्राणीके लिये उपयोगी हैं, सुलभ हैं, सर्वकालिक हैं।

युगपत् शिक्षाविहीन-विज्ञ, अकिंचन-धनी, दीन-दृढ़, अनन्य-उदार, कोमल-कठोर, सेवक-सेव्य और संन्यासियों-तकको प्रबुद्ध करनेवाले इस गृहस्थके जीवनमें आन्तर तथा बाह्य जगत्, क्रिया एवं विचार, राग तथा वैराग्य, दैन्य तथा प्रभुत्व, त्याग एवं प्राचुर्यका जो समन्वय एवं परस्परविरुद्ध गुणधर्म-आश्रय परिलक्षित होता है, अपने परमाराध्य श्रीकृष्णके अनन्य उपासक होकर भी अन्य सब साधन-पद्धतियों, धर्मों तथा सम्प्रदायोंको उचित सम्मान देकर उनके उपास्य इष्टदेवमें भी अपने ही परमप्रियतमके दर्शन करनेकी जो उदारता है, विशालहृदयता है, दृष्टिकोणकी व्यापकता है, वह अनुपमेय है, अनोखी है, निराली है, अद्भुत है, विलक्षण है और हठात् कहे बिना रहा ही नहीं जाता कि 'न भूतो न भविष्यति'।

यह सभी उस भगवत्प्रेमकी ही देन है, जो उनके जीवनका साध्य था और वही सर्वोच्च पुरुषार्थ भी है। प्रेम ही समस्त साधनाओंकी चरम परिणति है, साधन-पथका अन्तिम सोपान है; और भगवान् तथा मनुष्यमें विद्यमान खाईको पाटकर तद्रूप बना देना इस प्रेमका सहज स्वभाव है और यह प्रेम उन्हें सहज था। अतः वह प्रेमकी प्रतिमा श्रीकृष्णमय हो चुकी थी।

वे तो **'वसुधैव कुटुम्बकम्'**की जीवन्त प्रतिमा थे। **'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥'**—उनके हृदयकी साध थी।

कल-कालमें—क्षुद्रहृदयता, ईर्ष्या एवं कृतघ्नताके वर्त्तमान युगमें—इस कोटिके महापुरुषकी अवस्थिति एवं आविर्भाव एक वरदान है। उनके व्यक्तित्वकी गरिमा, चरित्र, स्वरूप, क्रिया एवं व्यवहार, इङ्गित तथा स्मितका चित्रण निर्जीव लेखनीद्वारा कर पाना सम्भव नहीं। उन अजातशत्रु निर्विवाद महापुरुषके जीवनके जिस-जिस रूपको या पक्षको जिस-जिसने जितना देखा-सुना-समझा है, उसे कंजूसके धनके समान छातीसे लगाकर, जीवनकी परीक्षाकी घड़ियोंमें कसौटी बनाकर चल पड़नेपर जीवनयात्रा अपने लक्ष्यपर पहुँचा ही देगी—यही आस्था है, यही विश्वास है।

अनन्त अगोचर आकाशकी थाह लेनेका मानस लेकर कोई पक्षी बड़े उत्साह और उल्लासके साथ अपने पर तौलकर उड़ान भरता है, परंतु कुछ ही कालतक पंख फड़फड़ाकर, थक-हारकर अपनी इस चेष्टाका स्वयं ही उपहास करते हुए पुनः वह धरतीकी ओर लौट पड़ता है। जितनी ऊँचाई और दूरीतक उसके पँखोंकी शक्ति उसे उड़ाकर ले जा सकती है और जो कुछ वह देख पाया है, उतनेमें ही संतोष करनेके लिये वह विवश हो जाता

है, स्वयंको कृतकृत्य मान लेता है; और पुनः नित्य-प्रतिकी दिनचर्याका अनुसरण करने लगता है। ऐसी ही कुछ दशा हमारी भी है। पूज्य श्रीभाईजीका जीवन भी उस आकाशके सदृश ही विस्तृत है, विशाल है, दिव्य है, भव्य है, विभु है, भूमा है, अनन्त है, अगोचर है।

चमत्कारोंकी दुनियाको बहुत पीछे छोड़ देनेके पश्चात् भी उनके जीवनमें ज्ञात-अज्ञात चमत्कारोंका अभाव नहीं रहा, बल्कि उनका सम्पूर्ण जीवन तथा कार्य-कलाप अपने-आपमें एक बहुत बड़ा चमत्कार है। श्रीभाईजीने जो कुछ कर दिखाया है, वह भगवदीय शक्ति-सामर्थ्यसम्पन्न किसी लोकोत्तर महापुरुषद्वारा ही सम्भव है। उन सत्य-संकल्पके सम्मुख कठिनाइयोंके पहाड़ विदीर्ण होते, ढलते, गलते और बहते दिखायी देते हैं। असम्भव सम्भव बनकर मूर्त हो जानेके लिये मचलता दीखता है।

कदाचित् भावी पीढ़ियाँ इसपर विश्वास ही न कर सकें कि बीसवीं शतीमें 'हनुमानप्रसाद पोद्दार' नामकी एक ऐसी विलक्षण तपःपूत विभूतिका भी आविर्भाव हुआ था, जिसने एक ही जीवनमें हिंदू-दर्शनके अगम्य, अथाह विशाल महासमुद्रके तलमें पैठकर, कृष्णद्वैपायन व्यासके पश्चात् उसीके सदृश प्रच्छन्न व्यास बनकर, युग-युगान्ततकके लिये यह रत्नराशि सुरक्षित कर दी है। अब बहुमूल्य ग्रन्थोंकी होली जलाकर हमाम गर्म करनेवाले आततायियोंके अत्याचारोंसे उनके नष्ट हो जानेकी सम्भावना शताब्दियोंके लिये—नहीं-नहीं, सदा-सदाके लिये समाप्त हो गयी है। क्योंकि अब भारतीय संस्कृतिके अमरपुजारी, माँ भारतीके अद्वितीय सपूतने देश-देशान्तरमें 'कल्याण'के बृहदाकार विशेषाङ्कोंके रूपमें लक्ष-लक्ष गीता-रामायणकी प्रतियों तथा अन्य सत्साहित्यके रूपमें उसे असंख्य हाथोंतक पहुँचा देनेका अप्रतिम कार्य कर डाला है।

धन्य है वह धरती, वह कोख, वह कुल, जिसने इस महामानवको जन्म दिया, लालन-पालन किया और लाड़-लड़ाया। हमारा कोटिशः नमन है उस तपोभूमिके प्रत्येक रजःकणको, जिसमें अखण्ड साधनारत इस संतप्रवरने निवास करके उसे पावन बना दिया है और किसी अचिन्त्य संयोगसे अन्ततोगत्वा उनके पार्थिव कलेवरको चिर-विश्राम देनेका सौभाग्य भी जिस पुण्यस्थलीको प्राप्त हुआ है। उस पावन गीतावाटिकाके प्राङ्गणमें जिस स्थलपर उनके पार्थिव कलेवरका अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ है और जहाँ उनके भौतिक शरीरके भस्मावशेष सुरक्षित हैं, उस स्थलपर अनुपम अखण्ड शान्तिका अनुभव सतत होता ही है। इसी प्रकार उनके साधना-कक्षमें उनके दिव्य परमाणु अभीतक चिन्तित, थकित और खिन्न प्राणियोंको सान्त्वना देकर उनमें विचित्र सुख और शान्तिका सृजन करते रहते हैं।

पुनः हमारा नमन है—उन महाप्राणकी सच्ची जीवन-सहचरी, सती साध्वी आर्यनारीकी जीवन्त प्रतिमा उनकी जीवन-सङ्गिनीको और योग्यतम एकमात्र संतान, पितृस्नेहविहीना, दीना, खिन्नवदना पुत्रीको, जिसने अपने संत पिताके पास देश-देशान्तरसे प्रतिवर्ष हजारोंकी संख्यामें दर्शन देकर कृतार्थ करनेवाले भगवान्के विविध रूपोंका उदारतापूर्वक आतिथ्य-सत्कार अपने अलौकिक पिताके स्वरूप, भाव तथा रुचिके अनुरूप करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखा।

पुनः हम वन्दन करते हैं—अभिनन्दन करते हैं, उस गीताप्रेस प्रतिष्ठानका, श्रीभाईजीके सहयोगी सहकारी तथा सेवकोंका, जिनके सहयोगके बिना यह महत् कार्य हो पाना सम्भव नहीं था। हमारा कोटि-कोटि नमन है श्रीभाईजीके गुरुतुल्य प्रेरणा-स्रोत, अग्रपुरुष, गीताप्रेसके प्रवर्तक ब्रह्मलीन श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको, जिनका नियमन-नियन्त्रण न रहनेपर पूज्य श्रीभाईजीका वह रूप कदाचित् नहीं रह पाता, जो आज दृष्टिगोचर है—वे हमें एक गृहस्थ संतके रूपमें कदाचित् उपलब्ध न हो पाते, किसी कन्दरामें, तीर्थमें अथवा किसी नदीके एकान्त निर्जन तटपर किसी कुटियामें वास करते दिखायी देते अथवा उनका पता ही किसीको न चल पाता। क्योंकि उन दिनों श्रीभाईजी संन्यास ग्रहण करने तथा अज्ञातवासके लिये मचल रहे थे। इसी उद्देश्यसे एक कमण्डलु भी वे ले आये थे, जो आज भी उनकी अमूल्य स्मृतिके रूपमें उपयुक्तपात्रके पास सुरक्षित है।

जो जाति, राष्ट्र, समाज अथवा व्यक्ति उसे समुन्नत, समृद्ध एवं सम्पन्न बनानेवाले प्रातःस्मरणीय महापुरुषोंकी सेवाओंका उचित आदर तथा सम्मान नहीं करता, ऋषि-ऋण नहीं चुकाता, कृतज्ञताभरे हृदयसे पितृ-ऋणका शोधन करके अपने पूर्वजोंका योग्य उत्तराधिकारी नहीं बनता, उसके उज्ज्वल भविष्यकी आशा-आकांक्षा एक दुराशा है, भग्न स्वप्न है अथवा कोरी कल्पना है।

भौतिकवादी कलहग्रस्त मानवकी एकमात्र आशा-केन्द्र, प्राणिमात्रमें एक ही आत्माका दर्शन करनेवाली अपनी गरिमासे भारतके चरणोंमें जगत्‌को नत करनेवाली अमर भारतीय संस्कृति तथा विशाल वाङ्मयकोशको जिस सत्पुत्रने आगामी अनेक शतियोंके लिये अक्षय तथा सुरक्षित बना दिया है, भारतमाताके इस उज्ज्वलतम रत्नका यथोचित सम्मान करके अपनेको धन्य बनाना चाहिये।

उस आदर्श प्रेमी, आदर्श संत, आजीवन किसीको अपना शिष्य न बनानेवाले आदर्श परम गुरु, आदर्श निःस्पृह विदेह सद्गृहस्थ, आदर्श अभिभावक, आदर्श सेवक—इस प्रकार जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें नव-आदर्शके प्रतिष्ठाता तथा हमारे सभी कुछ श्रीभाईजीके श्रीचरणोंमें हमारा कोटि-कोटि नमन है।

जिनकी मधुर मुस्कान, विमल व्यवहार तथा सभी दृष्टिसे आदर्श जीवनकी स्मृतिमात्रसे, अन्तर्हृदयका कलुष धुल-धुलकर नेत्रमार्गसे निकल पड़नेके लिये अधीर हो जाता है, मनःदर्पण स्वच्छ एवं निर्मल बन जाता है; उस विलक्षण प्रेमीके स्मरणमात्रसे ही जगत्‌में व्याप्त स्नेहशून्यता, स्वार्थपरता तथा अहंताकी दुर्भेद्य, दुर्गम, दुर्लभ प्राचीरें ध्वस्त हो जायँ, सौहार्द एवं स्नेह, निश्छलता तथा निष्कपटता, सहिष्णुता और परस्पर क्षमाशीलता छा जाय, उनके विमल प्रेमकी पावन अजस्र मधुधारा प्रवाहित हो, जिसमें अवगाहन तथा निमज्जन करके जन-जनके मन-प्राण शीतल एवं पुनीत हो जायँ। हृदयके अन्तरतमसे यह स्वर-लहरी झंकृत हो उठे, हाथमें हाथ डालकर कंधे-से-कंधा मिलाकर यों गाते हुए सभी चल पड़ें—

जिसका कोई न हो, हृदयसे उसे लगावे,
प्राणिमात्रके लिये प्रेमकी ज्योति जगावे।
सबमें विभुको व्याप्त जान सबको अपनावे,
है बस ऐसा वही भक्तकी पदवी पावे॥

× × ×

श्रीभाईजीके द्वारा हुए लोकाराधन—विश्वरूप अपने इष्टदेवकी अर्चनाका संकेतमात्र इन पृष्ठोंमें प्रस्तुत हुआ है। श्रीभाईजीका जीवन अर्चनामय था—उनके श्वास-प्रश्वाससे, उनकी सहज उपस्थितिसे, उनकी पावन दृष्टिसे, प्रभुपूत हृदय-मन-बुद्धिसे निरन्तर विश्वरूप अपने इष्टदेवकी अर्चना ही होती रहती थी। उस अर्चनाका परिचय भौतिक मन, बुद्धि, वाणी, भाषाद्वारा होना सम्भव नहीं, और न वह लोकके लिये हुई ही है।

बाह्यरूपमें भी श्रीभाईजीके द्वारा जितने विविध रूपोंमें सेवा हुई है, उसका भी लेखा-जोखा प्रस्तुत करना सम्भव नहीं। जो कुछ विवेचन हुआ है, वह केवल उस महती सेवाका संकेतमात्र है। उनके अपने साहित्यके द्वारा, सम्पादित साहित्यके द्वारा, उनके प्रवचनोंद्वारा, व्यक्तिगत पत्रोंद्वारा तथा उनके जीवनके द्वारा देश-विदेशके करोड़ों व्यक्ति पिछले ८० वर्षोंसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपमें लाभान्वित होते रहे हैं। आज देशका कोई भी प्रबुद्ध व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा, जिसके जीवनपर इन माध्यमोंसे श्रीभाईजीका कोई उपकार, चाहे वह बहुत छोटे रूपमें हो, न हो।

स्थूलरूपमें भी श्रीभाईजीकी सेवाके विविध रूप थे। जब भी किसी ऐसे परिवारके व्यक्ति, जिसके किसी सदस्यको फाँसीकी सजा सुनायी जा चुकी है, श्रीभाईजीके पास पहुँचते, तब उन दुःखी प्राणियोंकी करुण कहानी वे बड़े मनोयोगसे सुनते। परिवारके दुःखी व्यक्तियोंके साथ उनकी आँखें भी भर आतीं और वे उसे मृत्युदण्डसे मुक्ति दिलानेके लिये प्रयत्न करनेमें लग जाते। देशके सभी राष्ट्रपति श्रीभाईजीके प्रति बड़ा आदर-भाव रखते आये हैं। श्रीभाईजी उन्हें मानवताके नाते फाँसीकी सजावाले व्यक्तिपर करुणा करके उसे फाँसीकी सजासे मुक्ति

दिलानेके लिये प्रेरित करते। साथ ही उस व्यक्तिके परिवारवालोंसे भगवान्‌को पुकारनेकी प्रार्थना करते। इस प्रयत्नमें श्रीभाईजीको तीन-चार बार सफलता प्राप्त हुई और फाँसीके तख्तेपर झूलनेका आदेश पाये हुए व्यक्ति कुछ वर्षोंकी सजा भोगकर पुनः अपने परिवारमें लौट आये, और उन्होंने अपने जीवनको अच्छे कार्योंमें लगाया।

इसी प्रकार जब कभी किसी राज्य-कर्मचारीपर अथवा किसी व्यापारिक फर्मके कर्मचारीपर कोई संकट आता और वह श्रीभाईजीके पास सहायताके लिये पहुँचता, तब वे अपने बड़प्पनका भान भूलकर सम्बन्धित अधिकारीको—चाहे वह परिचित हो या अपरिचित—सत्य बात लिखकर उस व्यक्तिके मामलेपर पुनः विचार करनेकी प्रार्थना करते। ऐसे मामलोंमें श्रीभाईजीके लिखनेकी सत्यतापर विश्वास करके अधिकांश व्यक्तियोंकी नौकरियाँ बहाल कर दी जाती थीं। इसी प्रकार किसी योग्य व्यक्तिकी नौकरीके लिये लोगोंको पत्र लिखनेमें वे सकुचाते नहीं थे। इंजीनियरिंग कॉलेज आदिमें प्रवेश-प्राप्तिके लिये वे हर वर्ष अनेकों छात्रोंके लिये पत्र लिखते।

श्रीभाईजीसे प्रेरणा प्राप्तकर कितने ही व्यक्ति आवेशमें आकर घर छोड़ने, आत्महत्या करने, मारपीट करने, मुकदमेबाजी करनेसे विरत हुए हैं। पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यापारिक कितनी ही कटुताओंको श्रीभाईजीने देखते-देखते धो डाला। कितने ही सम्पन्न परिवार श्रीभाईजीकी पंचायतीके कारण आज फूल-फल रहे हैं, अन्यथा फूटके कारण वे विनाशको प्राप्त हो जाते।

देशमें जब भी अनैतिकताकी वृद्धि हुई, धर्म एवं संस्कृति-विरोधी किसी भी कार्यका सरकारी अथवा गैर-सरकारी तरीकेसे किया जाना निश्चित हुआ, श्रीभाईजीने बहुत ही संयत किंतु प्रभावपूर्ण भाषामें उसका विरोध किया। इसी प्रकार जब धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, प्रान्त, पार्टी आदिको लेकर कलह एवं वैमनस्यका वातावरण उपस्थित हुआ, श्रीभाईजीने उसको शान्त करनेकी, परस्पर सौहार्दकी स्थापनाकी भरसक चेष्टा की।

श्रीभाईजीकी करुणा मनुष्यतक ही सीमित नहीं थी, वह जीवमात्रतकपर व्याप्त थी। अतएव जब-जब मूक पशुओं, पक्षियों एवं छोटे जीवोंकी हत्या एवं विनाशकी योजनाएँ बनी, श्रीभाईजीने उनका विरोध किया तथा दैवी प्रकोपोंके समय प्राणिमात्रके भरण-पोषणके लिये उन्होंने अपने सीमित साधनोंसे व्यवस्था करनेका प्रयत्न किया। अपने पूत हृदयसे तो वे निरन्तर यह कामना करते ही थे—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

श्रीभाईजीके अन्तर्हृदयकी इस मङ्गलमयी प्रार्थनाद्वारा विश्वमें कितना मङ्गल और शुभका प्रसारण हुआ है, इसका ज्ञान उसीको हो सकता है, जिसकी आँखें खुल चुकी हैं। वास्तवमें श्रीभाईजी-जैसे विशुद्ध संतोंके आविर्भावसे अनन्तकालतक विश्वमें मङ्गलका प्रसारण होता रहता है। ऐसे संतके लोकाराधनकी कोई सीमा नहीं—इयत्ता नहीं। श्रीभाईजीने अपने जीवनकालमें तो परममङ्गलका प्रसारण किया ही, उनके पावन साहित्यके द्वारा उनके पावन चरित्रके द्वारा, उनके पावन आदर्शोंके द्वारा, उनकी पावन स्मृतिके द्वारा, उनकी पावन स्थली तथा उनके पावन शरीरके पावन भस्मावशेषोंके दर्शन एवं स्पर्शद्वारा अनन्तकालतक मङ्गलका प्रसारण होता रहेगा। हमलोग परम भाग्यशाली हैं कि ऐसे मङ्गलस्वरूप महापुरुषके दर्शन, स्पर्श, भाषण, सत्सङ्ग आदिका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। इन पृष्ठोंमें जो कुछ भी प्रस्तुत हुआ है, वह श्रीभाईजीके प्रति कृतज्ञता, श्रद्धा, प्यार, सम्मान, आत्मीयताभरे हृदयोंके सहज उच्छ्वास हैं। हमारे श्रीभाईजी अपनी सहज उदारता और आत्मीयतासे इन उच्छ्वासोंके रूपमें प्रकट हुई अर्चनाको स्वीकार करेंगे, करेंगे, करेंगे—यह हमारा दृढ़ विश्वास है। हमारे हृदयकी तो, बस, निरन्तर एक ही पुकार है—

'प्रसीद मे नमामि ते, पदाब्ज भक्ति देहि मे।'

'हे श्रीकृष्णप्राण ! आप प्रसन्न होइये और कृपा करके हमें अपने पादपद्मोंकी भक्ति प्रदान कीजिये।'
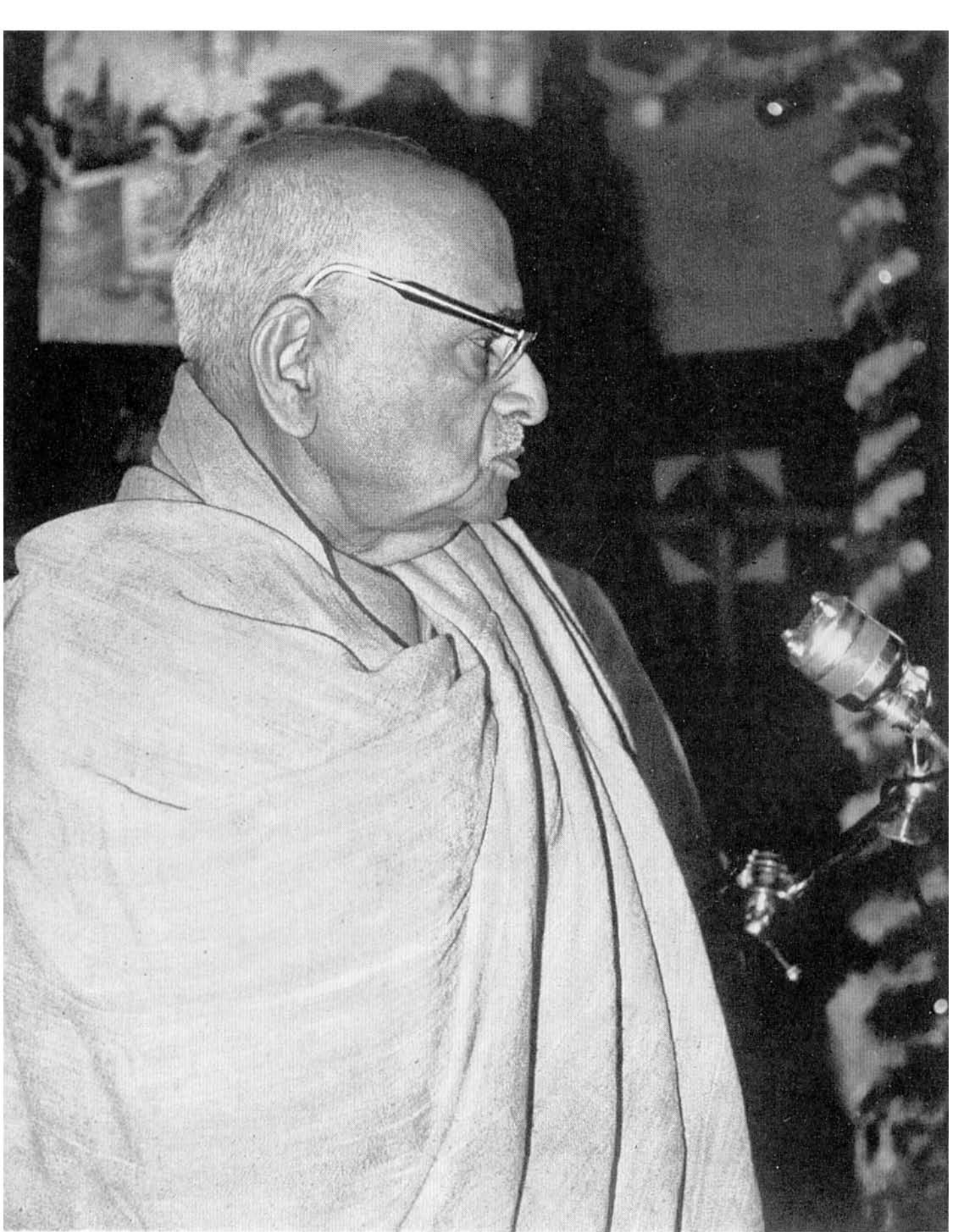
अध्यात्म और धर्म के निष्ठावान प्रवक्ता

अमर संदेश

संतोंकी वाणी अन्धकारमें पड़ी हुई मानव-जातिको प्रकाशमें लानेके लिये कभी न बुझनेवाली अमोघ दिव्य-ज्योति है। दुःख-संकट और पाप-तापसे प्रपीड़ित प्राणियोंके लिये संत-वचन सुख-शान्तिके गम्भीर और अगाध समुद्र हैं। कुमार्गपर जाते हुए जीवनको वहाँसे हटाकर सच्चे सन्मार्गपर लानेके लिये संत-वचन परम सुहृद्-बन्धु हैं। प्रबल मोह-सरिताके प्रवाहमें बहते हुए जीवोंके उद्धारके लिये संत-वचन सुखमय सुदृढ़ जहाज हैं। मानवतामें आयी हुई दानवताका दलन करके मानवको मानव ही नहीं, महामानव बना देनेके लिये संत-वचन दैवी-शक्ति-सम्पन्न संचालक और आचार्य हैं। अज्ञानके गहरे गड्ढेमें गिरे हुए चिर-संतप्त जीवोंको सहज ही वहाँसे निकालकर भगवान्‌के तत्त्व-स्वरूपका अथवा मधुर मिलनका परमानन्द प्रदान करनेके लिये संत-वचन तत्त्वज्ञान और आत्यन्तिक आनन्दके अटूट भंडार हैं। आपातमधुर और विषय-विषसे जर्जरित जीवसमूहको घोरपरिणामी विष-व्याधिसे विमुक्त करके सच्चिदानन्दस्वरूप महान् आरोग्य प्रदान करनेके लिये संत-वचन दिव्य सुधा-महौषध हैं। जन्म-जन्मान्तरोंके संचित भीषण पाप-पादपोंसे पूर्ण महारण्यको तुरंत भस्म कर देनेके लिये संत-वचन उत्तरोत्तर बढ़नेवाला भीषण दावानल है। विषयासक्ति और भोग-कामनाके परिणामस्वरूप नित्य-निरन्तर अशान्तिकी अग्निमें जलते हुए जीवोंको विशुद्ध भगवदनुरागी और भगवत्कामी बनाकर उन्हें भगवत्-मिलनके लिये अभिसारमें नियुक्तकर प्रेमानन्द-रस-सुधा-सागर सच्चिदानन्दविग्रह परमानन्दघन विश्वविमोहन भगवान्‌की अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी परम मधुरतम मुखच्छविका दर्शन करानेके लिये संत-वचन भगवान्‌के नित्यसङ्गी प्रेमी पार्षद हैं।

संत-वाणीसे क्या नहीं हो सकता। संत-वाणी मानवहृदयको तमोऽभिभूत, अवनत और पतित परिस्थितिसे उठाकर सहज ही अत्यन्त समुन्नत और समुज्ज्वल कर देती है। संत-वाणीसे वासना-कामनाके प्रबल आघातोंसे चूर्ण-विचूर्ण दुर्बल हृदयमें विद्युच्छक्तिके सदृश नवीनतम नित्य-पराभवरहित भगवदीय बलका संचार हो जाता है। संत-वाणीसे भय-शोक-विह्वल, चिन्ता-विषाद-विकल, मानमर्दित, म्लान मुखमण्डल सत्यानन्दस्वरूप श्रीभगवान्‌की सच्चिदानन्द ज्योतिर्मयी किरणोंसे समुद्भासित और सुप्रसन्न हो उठता है। संत-वाणीसे त्रिविध तापोंकी तीव्र ज्वाला, दुःख-दैन्य-दारिद्र्यकी दावाग्नि, मानसिक अशान्तिका आन्तर आवेग प्रशान्त होकर परम सुखद शीतलता और शाश्वत शान्तिकी अनुभूति होने लगती है। संत-वाणीसे अज्ञानतिमिराच्छन्न अन्तस्तल भगवान् भास्करकी प्रबलतम किरणोंसे छिन्न-भिन्न होकर प्रनष्ट हुए मेघसमूहके सदृश अज्ञानतिमिरके आच्छादनसे मुक्त होकर विशुद्ध अद्वय-भास्करके प्रकाशसे आलोकित हो उठता है और नित्य-निरन्तर विषय-मल-मलिन निम्नप्रदेशमें बहनेवाली विषय-दुर्गन्ध-दूषित चित्तवृत्ति-सरिता दिव्य प्रेमामृत-प्रवाहिणी मधुर मन्दाकिनीके स्वरूपमें परिणत होकर सुषमा-सौगन्ध्यवती और अविराम-प्रवाह-प्रतिज्ञाणीला बनी हुई सदा-सर्वदा परम-विशुद्ध-प्रेमघन श्रीनन्दनन्दनके पावन पाद-पद्मोंको विधौत करनेके लिये केवल उन्हींकी ओर बहने लगती है।

'शिव'

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

अमर संदेश

[संत भगवान्‌को प्राप्तकर उन्हींके स्वरूप हो जाते हैं; अतएव वे अपने पावन चरित्रसे, श्वास-प्रश्वाससे, कल्याणमयी दृष्टिसे, शुभ भावनासे निरन्तर परम मङ्गलका प्रसार करते रहते हैं। यही मङ्गल साक्षर संतोंकी लेखनीसे भी प्रकट होता है। श्रीभाईजी इसी कोटिके संत थे। अतएव उन्होंने अपने जीवन, व्यवहार, वाणी और लेखनीसे जगत्‌को परम मङ्गलमय संदेश प्रदान किया है, जो चिरकालतक जगत्‌का अशेष मङ्गल करता रहेगा। उनकी पावन लेखनीसे लगभग २५,००० पृष्ठोंका सत्साहित्य निस्सृत हुआ है। उसका एक-एक अक्षर परम मङ्गल-मय है। उसी विशाल शब्द-राशिमेंसे कुछ रत्न नीचे दिये जा रहे हैं।]

मानव-जीवनके साध्य—भगवान् एवं भगवत्प्रेम

मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है—भगवत्प्राप्ति अथवा भगवत्प्रेमकी प्राप्ति। इस उद्देश्यको निरन्तर सामने रखकर ही हमारे सारे कार्य, सारे व्यवहार, सारे विचार, सारे संकल्प-विकल्प और मन-बुद्धि तथा शरीरकी सारी चेष्टाएँ होनी चाहिये। सबकी अबाध गति निरन्तर श्रीभगवान्‌की ओर हो। यही साधन है। भगवान् साध्य हैं और यह जीवन उसका साधन है। इसीमें जीवनकी सार्थकता है। अतएव बुद्धि, मन, प्राण और इन्द्रियाँ —सबको सर्वभावसे श्रीभगवान्‌की ओर अनन्यगतिसे लगा देना चाहिये। हम कुछ भी काम करें, कुछ भी विचार करें, 'भगवान् ही हमारे जीवनके एकमात्र लक्ष्य हैं'—यह स्मृति सदा जाग्रत् रहनी चाहिये।

× × ×

मानव-जीवनकी सफलता

याद रखो—मानव-जीवनकी सफलता भगवत्प्राप्तिमें है, विषयभोगोंकी प्राप्तिमें नहीं। जो मनुष्य जीवनके असली लक्ष्य भगवान्‌को भूलकर विषयभोगोंकी प्राप्ति और उनके भोगमें ही रचा-पचा रहता है, वह अपने दुर्लभ अमूल्य जीवनको केवल व्यर्थ ही नहीं खो रहा है, वरं अमृत देकर बदलेमें भयानक विष ले रहा है।

याद रखो—बहुत जन्मोंके बाद बड़े पुण्यबल तथा भगवत्कृपासे जीवको मानव-शरीर प्राप्त होता है। इन्द्रियोंके भोग तो अन्यान्य योनियोंमें भी मिलते हैं, पर भगवत्प्राप्तिका साधन तो केवल इसी शरीरमें है; इसको पाकर भी जो मनुष्य विषयभोगोंमें ही फँसा रहता है, वह तो पशुसे भी अधिक मूढ़ है।

याद रखो—यदि तुमने इस जीवनमें भगवान्‌को नहीं प्राप्त किया—कम-से-कम भगवत्प्राप्तिके पथपर नहीं आ गये तो तुम्हें पीछे इतना पछताना पड़ेगा कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अतः हाथमें आये हुए इस महान् सुअवसरके एक-एक क्षणको बड़ी ही सावधानीके साथ जीवनके असली लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही लगाना चाहिये।

× × ×

श्रीकृष्णमें प्रेम होना ही मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है। वस्तुतः जिसका श्रीकृष्णमें प्रेम नहीं, वह मनुष्य व्यर्थ ही जीवन खो रहा है। मनुष्यके कर्त्तव्यका पर्यवसान केवल श्रीकृष्ण-प्रेममें ही होना चाहिये। परंतु प्रेमका पथ है बड़ा कण्टकाकीर्ण। त्यागका और विषय-विरागका कवच आपादमस्तक पहनकर ही कोई इस पथपर चल सकता है। अपना सब कुछ प्रेमास्पद श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पण करके उसका अनन्य और अविच्छिन्न चिन्तन करनेपर ही यह परम दुर्लभ प्रेमधन मिलता है।

× × ×

भगवत्प्रेमके पथिकोंका एकमात्र लक्ष्य होता है––भगवत्प्रेम। वे भगवत्प्रेमको छोड़कर मोक्ष भी नहीं चाहते––यदि प्रेममें बाधा आती दीखे तो भगवान्‌के साक्षात् मिलनकी भी अवहेलना कर देते हैं, यद्यपि उनका हृदय मिलनके लिये आतुर रहता है। जगत्‌का कोई भी पार्थिव पदार्थ, कोई भी विचार, कोई भी मनुष्य, कोई भी स्थिति, कोई भी सम्बन्ध, कोई भी अनुभव उनके मार्गमें बाधक नहीं हो सकता। वे सबका अनायास––बिना ही किसी संकोच, कठिनता, कष्ट और प्रयासके त्याग कर सकते हैं। संसारके किसी भी पदार्थमें उनका आकर्षण नहीं रहता। कोई भी स्थिति उनकी चित्तभूमिपर आकर नहीं टिक सकती, उनको अपनी ओर नहीं खींच सकती। शरीरका मोह मिट जाता है। उनका सारा अनुराग, सारा ममत्व, सारी आसक्ति, सारी अनुभूति, सारी विचारधारा, सारी क्रियाएँ एक ही केन्द्रमें आकर मिल जाती हैं––वैसे ही जैसे विभिन्न पथोंमें आनेवाली नदियाँ एक ही समुद्रमें आकर मिलती हैं। वह केन्द्र होता है, केवल भगवत्प्रेम। शरीरके सम्बन्ध, शरीरके रक्षण-पोषणका आग्रह, शरीरकी आसक्ति, (अपने या पराये) शरीरमें आकर्षण, (अपने या पराये) शरीरकी चिन्ता––सब वैसे ही मिट जाते हैं, जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार। ये तो बहुत पहले मिट जाते हैं। विषय-वैराग्य, काम-क्रोधादिका नाश, विषाद-चिन्ताका अभाव, अज्ञानान्धकारका विनाश भगवत्प्रेम-मार्गके अवश्यम्भावी लक्षण हैं। भगवत्प्रेमका मार्ग सर्वथा पवित्र, मोहशून्य, सत्वमय, अव्यभिचारी, त्यागमय और विशुद्ध होता है। भगवत्प्रेमकी साधना अत्यन्त बढ़े हुए सत्वगुणमें ही होती है। उसमें दीखनेवाले काम, क्रोध, विषाद, चिन्ता, मोह आदि तामसिक वृत्तियोंके परिणाम नहीं होते। वे तो शुद्ध सत्वकी ऊँची अनुभूतियाँ हैं, जिनका स्वरूप बतलाया नहीं जा सकता।

प्रेमका अनुभव होता है मनमें और मन रहता है सदा अपने प्रेमास्पदके पास। फिर, भला, मनके अभावमें वाणीको यत्किंचित् भी वर्णन करनेका असली मसाला कहाँसे मिले? अतएव प्रेमका जो कुछ भी वर्णन मिलता है, वह केवल सांकेतिकमात्र है––बाह्य है। प्रेमकी प्राप्ति हुए बिना तो प्रेमको कोई जानता नहीं और प्राप्ति होनेपर वह अपने मनसे हाथ धो बैठता है।

ईश्वर

आजतक ईश्वरके सम्बन्धमें जितना वर्णन हुआ है, वह सब मिलकर भी ईश्वरके यथार्थ स्वरूपका निर्देश नहीं कर सकता; क्योंकि ईश्वर मनुष्यकी बुद्धिके परे है, वह परम वस्तु मनुष्यकी बुद्धिमें नहीं समा सकती। बुद्धि प्रकृतिका कार्य होनेसे जड और परिच्छिन्न है; वह उस अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी, नित्य ज्ञानानन्दघन चेतनका आकलन किस प्रकार कर सकती है। जो वस्तु ज्ञानका विषय होती है, वह सीमित, प्रमेय और धर्मी वस्तु ही होती है। जो सीमित है, जिसका परिमाण हो सकता है, जो किसी धर्मवाली है, वह वस्तु ईश्वर नहीं हो सकती। बुद्धि या ज्ञान जिस पदार्थका निरूपण करता है, उस पदार्थका कोई एक निश्चित रूप ज्ञानमें रहता है; ऐसा ज्ञेय पदार्थ सबका प्रकाशक, सबकी आधारज्योति नहीं हो सकता। जिसका प्रकाश बुद्धि करती है, वह बुद्धिको प्रकाश देनेवाला कैसे हो सकता है। परमात्मा ईश्वर ज्ञेय नहीं है, प्रमेय नहीं है, प्रकाश्य नहीं है; वह तो स्वयं ज्ञाता, प्रमाता, चेतनज्योतिरूप, सबका प्रकाशक, स्वयंप्रकाश है। वह किसी भी बुद्धिका चिन्त्य विषय नहीं है; सारी बुद्धियोंमें चिन्ताप्रवणता उसीसे आती है। वह स्वयं प्रमाणरूप और ज्ञानरूप है। वस्तुतः ऐसा कहना भी उसको सीमाबद्ध करना है––उसका माप करना है। उसे कालातीत-गुणातीत कहना भी उसका परिमाण बाँधना है। वस्तुतः ईश्वरका तत्व ईश्वर ही जानता है, वह स्वानुभवरूप है; दूसरा कोई उसे जान ही नहीं सकता, तब वर्णन कैसे कर सकता है। जबतक दूसरा रहता है, तबतक जानता नहीं और दूसरा न रहनेपर वर्णनका प्रसङ्ग ही असम्भव है।

भगवान्‌का निर्गुण-सगुण-स्वरूप

भगवान् निर्गुण भी हैं, सगुण भी; निराकार भी हैं, साकार भी। वे निष्क्रिय, निर्विशेष, निर्लिप्त और निराधार होते हुए ही सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाले, सविशेष, सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं। सांख्योक्त परस्पर

विलक्षण अनादि पुरुष और प्रकृति, चेतन और अचेतन––दोनों शक्तियाँ, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न होता है, भगवान्‌की ही परा और अपरा प्रकृतियाँ हैं। इन दो प्रकृतियोंके द्वारा वस्तुतः भगवान् ही अपनेको प्रकट कर रहे हैं। वे सबमें रहकर भी सबसे परे हैं। वे ही सबको देखनेवाले उपद्रष्टा हैं, वे ही यथार्थ सम्मति देनेवाले अनुमन्ता हैं, वे ही सबका भरण-पोषण करनेवाले भर्ता हैं, वे ही जीवरूपसे भोक्ता हैं, वे ही सर्वलोकमहेश्वर हैं, वे ही सबमें व्याप्त परमात्मा हैं और वे ही समस्त ऐश्वर्य-माधुर्यसे परिपूर्ण भगवान् हैं। वे एक होनेपर भी अनेक रूपोंमें विभक्त हुए-से जान पड़ते हैं। अनेक रूपोंमें व्यक्त होनेपर भी एक ही हैं। व्यक्त-अव्यक्त और अव्यक्तसे भी परे सनातन अव्यक्त वे ही हैं; क्षर, अक्षर और अक्षरसे भी उत्तम पुरुषोत्तम वे ही हैं। वे अपनी ही महिमासे महिमान्वित हैं, अपने ही गौरवसे गौरवान्वित हैं और अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित हैं।

इन भगवान्‌का यथार्थ स्वरूपज्ञान या दर्शन इनकी कृपाके बिना नहीं हो सकता। ये जिनपर अनुग्रह करके अपना ज्ञान कराते हैं, वे ही इन्हें जान सकते हैं और इनकी कृपा भक्तोंपर ही व्यक्त होती है। भक्तिरहित कर्मसे, अथवा प्रेमरहित ज्ञानसे भगवान्‌का यथार्थ स्वरूप नहीं जाननेमें आता। निष्काम कर्मसे भगवान्‌का ऐश्वर्य-रूप जाना जाता है और तत्वज्ञानसे उनका अक्षर परब्रह्मरूप; परंतु उनके मधुरातिमधुर पुरुषोत्तम भावका तो अनन्य प्रेमभक्तिसे ही साक्षात्कार होता है।

सत्य—परमात्मा एक है

सत्य-तत्व या परमात्मा एक हैं। वे निर्गुण होते हुए ही सगुण, निराकार होते हुए ही साकार, सगुण होते हुए ही निर्गुण तथा साकार होते हुए ही निराकार हैं। उनके सम्बन्धमें कुछ भी कहना नहीं बनता, और जो कुछ कहा जाता है, सब उन्हींके सम्बन्धमें कहा जाता है। अवश्य ही जो कुछ कहा जाता है, वह अपूर्ण ही होता है। पूर्णका वर्णन किसी भी तरह हो नहीं सकता। परंतु परमात्मा किसी भी हालतमें अपूर्ण नहीं हैं, उनका आंशिक वर्णन भी पूर्णका ही वर्णन होता है; क्योंकि उनका अंश भी पूर्ण ही है। इन्हीं परमात्माको ऋषियोंने, संतोंने, भक्तोंने नाना भावोंसे पूजा है और परमात्माने उन सभीकी विभिन्न भावोंसे की हुई पूजाको स्वीकार किया।

× × ×

वे परात्पर सच्चिदानन्दघन एक परमेश्वर ही परम तत्व हैं। वे गुणातीत हैं, परंतु गुणमय हैं; विश्वातीत हैं, परंतु विश्वमय हैं। सबमें वे ही व्याप्त हैं और जिनमें वे व्याप्त हैं, वे सभी पदार्थ––समस्त चराचर भूत उन्हींमें स्थित हैं। वे ही परात्पर प्रभु विज्ञानानन्दघन ब्रह्म, महादेव, महाविष्णु, महाशक्ति, अनन्तानन्दमय साकेताधिपति श्रीराम और सौन्दर्यसुधासागर गोलोकाधीश्वर श्रीकृष्ण हैं। ये सभी विभिन्न स्वरूप सत्य और नित्य हैं। परंतु अनेक दीखते हुए भी वस्तुतः ये हैं सदा-सर्वदा एक ही।

अवतार

अवतारका अर्थ है––अवतरण, परब्रह्मका उतरना। भगवान् सर्वातीत हैं, सर्वमय हैं, सर्वव्यापक हैं, सदा-सर्वत्र विराजित हैं; पर उन्होंने अपनी 'सर्वभवनसामर्थ्य'से––मायासे––योगमायासे अपनेको ढक रखा है। अपनी इच्छासे ही सबके सामने प्रकट होते हैं, यही उनका अवतरण है। इसीका नाम 'अवतार' है। यह अवतार स्वयं अक्षर ब्रह्मका भी होता है, भगवान् विष्णुका भी होता है और शुद्ध सत्वको आधार बनाकर ही होता है। जो लोग यह कहते हैं कि 'कोई मनुष्य अपनी उन्नति करते-करते जब महान् गुणोंसे सम्पन्न होकर उच्च स्तरपर पहुँच जाता है, तब उसीको भगवान्‌का अवतार कहते हैं', उनका यह कहना ठीक नहीं है। यह तो 'आरोहण' है––चढ़ना है, अवतरण–उतरना नहीं। भगवान् तो अवतरित होते हैं।

भगवान्‌के जन्म-कर्म

भगवान्‌का वस्तुतः न तो प्राकृत जीवोंकी भाँति जन्म होता है और न उनका कर्मजनित, रजोवीर्यसम्भूत पाञ्चभौतिक देह ही होता है। भगवान्‌का मङ्गलमय शरीर सर्वथा भगवत्स्वरूप है: वह स्थूल, सूक्ष्म और कारण––त्रिविध मायिक देह नहीं है। उसका न कभी जन्म होता है न मरण होता है। वह कभी बनता नहीं, कभी

नष्ट नहीं होता। वह नित्य, सत्य, चिन्मय भगवद्देह है, जो जन्म लेता हुआ-सा तथा अन्तर्धान हुआ-सा दिखायी देता है। इसीसे भगवान्‌ने अपनेको अजन्मा, अविनाशी तथा सबका ईश्वर रहते हुए ही अपनी इच्छासे प्रकट होनेवाला बताया है और कहा है कि 'जो मेरे इस दिव्य (अप्राकृत भगवत्स्वरूप) जन्म और कर्मको तत्वसे जान लेता है, वह शरीर त्यागकर फिर जन्म धारण नहीं करता, मुझ भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है।' जिस जन्म-कर्मका रहस्य जान लेनेपर जाननेवाला जन्म-मृत्युके बन्धनसे सदाके लिये मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है, वह जन्म-कर्म कितना विलक्षण तथा कैसा है—इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता।

× × ×

संसारमें जो कुछ भी ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, शक्ति, श्री, शौर्य, सुख, तेज, सम्पत्ति, स्नेह, प्रेम, अनुराग, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, रस, तत्व, गुण, माहात्म्य आदि देखते हो, सब वहींसे आता है, जहाँ इनका अटूट भंडार है। अनादिकालसे अबतक इस भंडारमेंसे लगातार इन सारी वस्तुओंका वितरण हो रहा है और अनन्त-कालतक होता रहेगा; परंतु इस महान् वितरणसे उस भंडारका एक तिलभर स्थान भी खाली न होगा। वह सदा पूर्ण, अनन्त और असीम ही रहेगा। वह भंडार हैं भगवान् और वे सभी जगह हैं; उनका महत्व और उनका तत्व जाननेकी चेष्टा करो। जरा-सी भी उनके महत्वकी झाँकी हो जायगी, उनके तत्वका ज्ञान हो जायगा, तो फिर तुम्हें दूसरी कोई चीज सुहायेगी ही नहीं। उनके सौन्दर्य-माधुर्यकी जरा-सी छाया भी कहीं दीख जायगी तो फिर जगत्‌का सारा सौन्दर्य-माधुर्य चित्तसे सदाके लिये हट जायगा।

आत्माकी शक्ति

याद रक्खो, आत्मामें अनन्त शक्ति है। मोहकी गहरी चादरसे वह ढक रही है, इसीसे तुम अपनेको मन और इन्द्रियोंके वशमें पाते हो; इसीसे तुम्हारे अंदर वासना, कामना और विषयासक्तिने अपने डेरे डाल रक्खे हैं; इसीसे तुम पाप-तापके आक्रमणसे पीड़ित हो। यदि तुम किसी तरह उस चादरको फाड़ सको तो फिर तुम्हारी अनन्त शक्तिके सामने किसीकी भी शक्ति नहीं, जो ठहर सके और तुम्हें किसी प्रकार भी सता सके।

विभिन्न धर्म एक ही सत्यको पानेके मार्ग

एक ही सत्यको पानेके अनेक मार्ग हैं। विविध दिशाओंसे उस एककी ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। जो जिस दिशामें है, वह अपनी दिशासे ही उसकी ओर चलेगा। सब एक दिशामें नहीं चल सकते; क्योंकि सब एक दिशामें हैं ही नहीं। हाँ, सबका लक्ष्य वह एक ही है, इसीलिये अन्तमें सब उस एकहीमें पहुँचेंगे; परंतु दिशाभेदके अनुसार मार्ग तो भिन्न-भिन्न होंगे ही। तुम जिस मार्गसे चलते हो, वह भी ठीक है और दूसरा जिससे चलता है, वह भी ठीक हो सकता है। तुम्हारा और उसका लक्ष्य तो एक ही है। फिर विवाद किस बातका? इसलिये अपने मार्गपर चलो, सावधानीके साथ अग्रसर होते रहो; दूसरेकी ओर मत ताको। न किसीको गलत समझो और न अपने निर्दिष्ट मार्गको छोड़ो।

भगवत्प्रेम

प्रेम भगवान्‌का स्वरूप ही है। प्रेम न हो तो रूखे-सूखे भगवान् भाव-जगत्‌की वस्तु रहें ही नहीं। आनन्दस्वरूप यदि आनन्दके साथ इस प्रकार आनन्दरसका आस्वादन न करें, उनकी आनन्दमयी आह्लादिनी शक्ति उन्हें आनन्दित करनेमें प्रवृत्त न हो तो केवल स्वरूपभूत आनन्द बड़ा रूखा रह जाता है। उसमें रस नहीं रहता। इसलिये वे स्वयं ही अपने ही आनन्दका अनुभव करनेके लिये अपनी ही स्वरूपभूता आनन्दरूपा शक्तिको प्रकट करके उसके साथ आनन्द-रसमयी लीला करते हैं। यह आनन्द बनता नहीं; पहले नहीं था, अब बना—ऐसी बात नहीं है। प्रेम नित्य, आनन्द नित्य—दोनों ही भगवत्स्वरूप हैं। आनन्दकी भित्ति प्रेम और प्रेमका विलक्षण

रूप आनन्द ! इस प्रेमका कोई निर्माण नहीं करता। जहाँ सर्व-त्याग होता है, वहीं इसका प्राकट्य—उदय हो जाता है। जहाँ त्याग, वहाँ प्रेम और जहाँ प्रेम, वहीं आनन्द। भगवान् प्रेमानन्दस्वरूप हैं। अतएव भगवान्‌की यह प्रेमलीला अनादिकालसे अनन्तकालतक चलती ही रहती है। न इसमें विराम होता है, न कभी कमी ही आती है। इसका स्वभाव ही वर्धनशील है।

गोपीका स्वरूप

श्रीराधा-माधवके सुखकी सामग्री एकत्र कर देना जिसके जीवनका स्वभाव है, वह है गोपी। अपनी बात कहीं नहीं है, जगत्‌की स्मृति नहीं है, ब्रह्मकी परवाह नहीं है, ज्ञानका प्रलोभन नहीं है, अज्ञानका तिमिर तो है ही नहीं। वहाँ केवल एक ही बात है, दूसरी चीज है ही नहीं। गोपी केवल एक ही बातको लेकर जीवित रहती है कि वह राधा-माधवको कैसे सुखी देख सके।

गोपीमें निजसुखकी कल्पना ही नहीं है, फिर अनुसंधान तो कहाँसे होता। उसके शरीर, मन, वचनकी सारी चेष्टाएँ और सारे संकल्प अपने प्राणाराम श्रीश्यामसुन्दरके सुखके लिये ही होते हैं; इसके लिये उसे चेष्टा नहीं करनी पड़ती। यह प्रेम न तो साधन है, न अस्वाभाविक चेष्टा है, न इसमें कोई परिश्रम है। प्रेमास्पदका सुख ही प्रेमीका स्वभाव है, स्वरूप है। 'हमारे इस कार्यसे प्रेमास्पद सुखी होंगे'—यह विचार उसे त्यागमें प्रवृत्त नहीं करता। समर्पितजीवन होनेसे उसके लिये त्याग सहज होता है। गोपीमें श्रीकृष्ण-सुख-काम स्वाभाविक है, कर्तव्यबुद्धिसे नहीं है। उसका यह 'श्रीकृष्ण-सुख-काम' उसका स्वरूपभूत लक्षण है।

गोपीका जीवन

प्राणप्रियतम भगवान् श्यामसुन्दरका सुख ही गोपीका जीवन है, इसे चाहे 'प्रेम' कहें या 'काम'। यह 'काम' परम त्यागमय सहज प्रेष्ठसुखरूप होनेसे परम आदरणीय है, मुनिमनोभिलषित है। गोपियोंका 'काम' है—एकमात्र 'श्रीकृष्ण-सुख-काम' और यह काम उनका सहज स्वरूप हो गया है। इसलिये यह प्रश्न ही नहीं उठता कि गोपियाँ कहीं यह चाहें कि हमारे इस 'काम'का कभी किसी कालमें भी नाश हो। यह काम ही उनका स्वरूप है। इसका नाश चाहनेपर तो गोपी गोपी ही नहीं रह जाती। वह अत्यन्त नीचे स्तरपर आ जाती है, जो कभी सम्भव नहीं है।

गोपीका स्वभाव

गोपीकी बुद्धि, उसका मन, उसका चित्त, उसका अहंकार और उसकी सारी इन्द्रियाँ प्रियतम श्यामसुन्दरके सुखके सहज साधन हैं। न उसमें कर्तव्यनिष्ठा है न अकर्तव्यका बोध है; न ज्ञान है न अज्ञान; न वैराग्य है न राग; न कोई कामना है न वासना—बस, श्रीकृष्ण-सुखके साधन बने रहना ही उसका स्वभाव है। यही कारण है कि परम निष्काम, आत्मकाम, पूर्णकाम, अकाम, आनन्दघन श्रीकृष्ण गोपी-प्रेमामृतका रसास्वादन करके आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं।

साधनाकी दो धाराएँ

साधनाकी दो धाराएँ हैं—अनादिकालसे। एक धारामें 'अहं'के परिणामकी चिन्ता है, 'अहं'के मङ्गलकी भावना है; दूसरी धारामें 'अहं'का सर्वथा समर्पण है। जिस धारामें कर्मकी और ज्ञानकी प्रधानता है, उस धारामें आत्मपरिणामकी चिन्ता है, 'अहं'के मङ्गलकी भावना है। भगवान्‌ने गीताके अन्तिम उपदेशमें कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
(१८।६६)

इस उपदेशमें 'पापनाशका प्रलोभन' है—'तुम्हारे पापोंका नाश मैं कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो।' साधक सोचता है कि 'मेरे पापका नाश कैसे होगा, मेरा मङ्गल कैसे होगा ?' इसमें 'अहं'के मङ्गलकी भावना है, 'अहं'के परिणामकी चिन्ता है।

इससे और आगे बढ़ते हैं तो कहते हैं कि 'हमारा बन्धनसे छुटकारा हो जाना चाहिये, मुक्ति मिल जानी चाहिये।'····'मैं बन्धनमें हूँ और मैं छूट जाऊँ।' यह जो बन्धनका बोध है, इसमें 'अहं'के मङ्गलकी आकाङ्क्षा भरी है। इसीसे जहाँ कोई प्रलोभन नहीं, जहाँ ऐसी कोई भावना नहीं, इसके बादकी स्थिति बतलाते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
(गीता १८।५४)

यहाँ 'पापनाशका प्रलोभन' नहीं है। यहाँ तो साधक 'ब्रह्मभूत' है, 'प्रसन्नात्मा' है। उसे न शोच है न आकाङ्क्षा है। स्वयमेव अपने-आप भगवान् आते हैं, भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है—**'मद्भक्तिं लभते पराम्।'** पर यहाँ भी भक्तिलाभकी आकाङ्क्षा है। जहाँ कोई आकाङ्क्षा नहीं, जहाँ कोई वासना नहीं, जहाँ 'अहं'का सर्वथा विस्मरण—समर्पण है, जहाँ केवल प्रेमास्पदके सुखकी स्मृति है और कुछ भी नहीं—वह एक विचित्र धारा है और उस धाराका मूर्तिमान् रूप ही 'श्रीराधा' हैं। जितनी और सखियाँ हैं, जितनी और गोपाङ्गनाएँ हैं, वे सब राधा-व्यूहके अन्तर्गत आती हैं और राधा इस भावधाराकी मूर्तिमती सजीव प्रतिमा हैं। राधाका आदर्श, राधाका जीवन इसीलिये 'ब्रह्मविद्या'के लिये भी आकाङ्क्षित है।

श्रीराधा-भाव क्या है ?

भगवान्‌के स्वरूपका एक भाव है—'आनन्द।' यह अंश नहीं, आनन्दांश नहीं। सत् भगवान्‌का स्वरूप, चित् भगवान्‌का स्वरूप, आनन्द भगवान्‌का स्वरूप। तो भगवान्‌का जो स्वरूपानन्द है, उस स्वरूपानन्दका वैष्णव-शास्त्रोंमें नाम है—'आह्लादिनी शक्ति'। इस आह्लादिनीका जो सार है, जो सर्वस्व है, उसे कहते हैं 'प्रेम'। उस प्रेमका जो परम फल है, उसे कहते हैं 'भाव' और वह भाव जहाँ जाकर परिपूर्ण होता है, उसे कहते हैं 'महाभाव'। यह महाभाव ही 'श्रीराधा' हैं।

भावके अनेक स्तर हैं—रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव। ये सभी आह्लादिनी शक्तिके ही भाव हैं। इन सारे भावोंका जहाँ पूर्णतम प्रकाश, अनन्त प्रकाश है, वह 'श्रीराधा-भाव' है।

यह कोई नहीं बता सकता कि राधा क्या हैं। राधा हैं—श्रीकृष्णका सुख। राधा हैं—श्रीकृष्णका आनन्द। राधा न हों तो श्रीकृष्णके आनन्द-रूपकी सिद्धि ही न हो। श्रीकृष्णके आनन्दका नाम है—'राधा'। इन राधाके अनेक स्तर हैं, अनेक स्वरूप हैं, अनेक विकास हैं।

जैसे मूर्तिमान् रसराज श्रीकृष्णके द्वारा ही समस्त रसोंका अस्तित्व और प्रकाश है, वैसे ही एकमात्र मूर्तिमती महाभावस्वरूपा श्रीराधाके द्वारा ही अमूर्त-समूर्त—सभी भावोंका विकास और विस्तार है तथा उन-उन विभिन्न भावोंके अनुसार ही तदनुरूप रसतत्त्वका ग्रहण होता है। एक ही विद्युत्-ज्योति विविध विभिन्न वर्णोंके बल्बों—विद्युत्-प्रकाश-आधारोंके सम्पर्कमें आकर जैसे विभिन्न वर्णवाली दिखायी देती हैं, वैसे ही एक ही भाव विभिन्न आधारके द्वारा उन-उनके अनुकूल रसतत्त्वका अनुभव करवाता है। एक ही रसका जो विभिन्न रूपोंमें आस्वादन है, उसमें आधार-भेदकी यह भाव-विभिन्नता ही कारण है। वैकुण्ठ आदिकी श्रीलक्ष्मी आदि, द्वारकाकी पट्टमहिषी आदि और विभिन्न-भावसमन्वित श्रीगोपाङ्गनाएँ—सभी इन मूल-महाभावरूपा ह्लादिनी (राधा)के ही विभिन्न-विचित्र विकास हैं। इनमें गोपीभाव परम और चरम त्यागमय होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ है।

× × ×

मेरी राधा ऐसी हैं, जिनके पवित्रतम प्रेमराज्यमें मलिन काम और भोगकी कल्पना-लेशका भी कभी कहीं प्रवेश नहीं है। वे विलक्षण शृङ्गार धारण करती हैं, परंतु उसमें कहीं तनिक भी आसक्ति नहीं है; उनका पवित्र करनेवाला प्रेम मोहसे सर्वथा रहित है। उनमें ममता है, परंतु वह स्व-सुख-इच्छासे विरहित है। उनके अपने योगक्षेम पूर्णरूपसे प्रियतम श्रीकृष्णमें समर्पित हैं। वे खाती-पीती हैं, पर स्वादके लिये नहीं। वे अत्यन्त मानवती हैं, किंतु अभिमानसे रहित हैं। उनमें भोगोंका बाहुल्य है, पर भोग-दृष्टिसे वे नित्य भोगरहित हैं। वस्तुतः वे केवल अपने प्रियतमके ही पवित्रतम सुखकी खान हैं। उनका इन्द्रियसमूह, उनका शरीर, उनका मन, उनके प्राण, उनकी बुद्धि और उनका अहं—सभी कुछ प्रियतमके लिये ही हैं। उनसे उनका अपना कुछ भी काम नहीं है, वे सब सदा प्रियतमके कार्यमें ही लगे रहते हैं। श्रीराधासे जगत्‌में जगत्‌के सारे व्यवहार होते हैं, पर होते हैं वे सहज ही संयमपूर्ण। उनका किसीसे अपना कोई सम्पर्क नहीं है, केवल प्रियतमका सुख ही उनके जीवनका सार-सर्वस्व है। मेरे जीवनकी साध्य वे त्रिभुवनपावनी श्रीराधा ऐसी हैं, जो नित्यतृप्त भगवान् श्रीमाधवकी भी पवित्रतम परमाराध्या हैं।

× × ×

श्रीराधाका जीवन परम त्यागमय तथा सर्व-समर्पणमय है और स्वरूपतः श्रीराधा श्रीमाधवसे सर्वथा अभिन्न रहती हुई ही दिव्य-लीला-विहारिणी हैं।

परम और चरम त्यागका, सर्वसमर्पणमय उज्ज्वलतम प्रेमका, स्वसुखवाञ्छाविरहित प्रियतम-सुखेच्छामय स्वभावका और 'अहं'की चिन्ता, मङ्गलकामना ही नहीं, 'अहं'की स्मृतिसे भी शून्य प्रियतम-स्मृतिमय जीवनका कैसा स्वरूप होता है—श्रीराधाने अपने प्रत्यक्ष जीवनसे इसका एक नित्य चेतन, क्रियाशील, मूर्तिमान् उदाहरण उपस्थित करके जगत्‌के इतिहासमें एक अभूतपूर्व दान किया है।

जैसे सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण नित्य हैं, समय-समयपर इस भू-मण्डलमें उनका आविर्भाव-तिरोधान हुआ करता है, इसी प्रकार सच्चिदानन्दमयी भगवती श्रीराधा भी नित्य हैं। वास्तवमें भगवान्‌की निजस्वरूपा-शक्ति होनेके कारण वे भगवान्‌से सर्वथा अभिन्न हैं और समय-समयपर लीलाके लिये आविर्भूत-तिरोभूत हुआ करती हैं।

× × ×

श्रीराधारानी भगवान् श्रीकृष्णका ही एक दूसरा स्वरूप हैं और उन्हींकी भाँति उनमें समस्त भगवदीय गुणोंका प्राकट्य है। प्रेमकी परमोच्च सीमास्वरूप महाभावरूपा होनेपर भी वे नित्य-निरन्तर अपनेमें प्रेमका अभाव देखती हैं। अतएव उनका वह दिव्य प्रेम प्रतिपल नित्य वर्द्धनशील है, वह कभी पूरा होता ही नहीं। वे नित्यपरिवर्द्धनशील, नित्यनवायमान सौन्दर्य-माधुर्यका अगाध, अपरिसीम, अनन्त भंडार होनेपर भी अपनेमें कुरूपता देखकर कभी भी अपनेको प्रियतम श्यामसुन्दरके योग्य अनुभव नहीं करतीं और सदा सकुचाती रहती हैं। अनन्त-अचिन्त्य-अनिर्वचनीय सहज दिव्य भगवत्स्वरूपा होनेपर भी वे अपनेको दोषागार मानकर लज्जाका अनुभव करती हैं। शिव-ब्रह्मादि देवगण, नारद-सनत्कुमार आदि मुनि, वसिष्ठ-व्यासादि महर्षि, याज्ञवल्क्य-शुकदेव आदि ज्ञानी, अनसूया-अरुन्धती आदि सती-पतिव्रताशिरोमणियों एवं ब्रह्मविद्या आदि प्रत्यक्ष ज्ञानमूर्ति देवियों आदिके द्वारा उपासित, आराधित, परमगौरवमयी, महामहिमामयी, नित्य निर्मल-प्रेमाकरस्वरूपा होनेपर भी वे अपनेको गौरव-महिमा-विहीन और विकारिहृदय-सम्पन्न बतलाती हैं और नित्य सहज अनुगत होनेपर भी पुनः-पुनः वक्रगतिका अवलम्बन करती हैं। इस प्रकार उनमें नित्य-निरन्तर अनन्त-अचिन्त्य निरतिशय परस्पर-विरोधी धर्म एवं भावोंका विकास रहता है।

× × ×

श्रीराधा और श्रीकृष्ण अभिन्न होनेपर भी विलक्षण-प्रेम-सम्बन्धसे सम्बन्धित हैं। वे परस्पर प्रेमी भी हैं और प्रेमास्पद भी। परंतु अधिकांशमें श्रीराधा ही आश्रयालम्बनस्वरूपा बनी हुई श्रीकृष्णकी आराधना करके उन्हें सुख पहुँचाती रहती हैं। श्रीराधामें अनन्त गुण हैं। उनके स्वरूप-गुणोंको यथार्थतः पूरा कोई नहीं जानता।

× × ×

पवित्र प्रेमकी प्राप्तिके लिये जिस त्यागकी आवश्यकता है, उससे भी कहीं अधिक त्याग श्रीराधामें स्वाभाविक है। वास्तवमें श्रीराधाजी दिव्य प्रेमस्वरूपा ही हैं, पर आदर्शके लिये उनका त्याग परमोज्ज्वल है और गोपाङ्गनाएँ भी उसीका अनुकरण करती हैं। श्रीकृष्णका सुख ही उनका जीवन है। उन्हें न त्यागका भय है न त्यागकी आकाङ्क्षा; इसी प्रकार न वे भोग-वासना रखती हैं और न वे किसी निज-कल्याण-कामनासे भोग-त्याग करती हैं। उनका अपना न कोई काम है न उनके लिये कोई काम्य वस्तु है। वे केवल और केवल अपने श्याम-सुन्दरको जानती हैं और अपने सहज सर्व-समर्पणद्वारा अनवरत उनको सुख पहुँचाया करती हैं। यही उनका जीवन-सार है—

सर्वत्यागमय पूर्ण समर्पण, दोषबुद्धि-विरहित व्यवहार।
भोग-मोक्ष-इच्छा-विरहित प्रियतम-सुख केवल जीवन-सार॥

—इस परम मधुरतम प्रेममें मोक्ष-सुखकी इच्छाको भी 'काम' माना जाता है, अतः उसका भी सहज त्याग हो जाता है, फिर जगत्‌के तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है। इस प्रेम-सुधाकी पवित्र मधुर धारा प्रतिक्षण बढ़ती हुई असीमकी ओर प्रवाहित होती रहती है।

जलकी धारा जबतक प्रवाहित रहती है, उसका गंदापन नष्ट होकर उसका वह जल निर्मल, शुद्ध बनता चला जाता है; परंतु शुद्ध जल भी यदि एक गड्ढेमें भरकर बंद कर दिया जाता है तो वह अत्यन्त मलिन हो जाता है, सड़कर वह गंदे कीड़ोंकी विहार-स्थली बन जाता है और नाना प्रकारके रोग-विस्तारमें कारण बनता है। इसी प्रकार जबतक सर्वलोक-कल्याणकारिणी भारतीय आर्य-संस्कृतिके अनुसार मानवकी जीवनधारा—विचार-कर्म-धारा अपने 'अहं'को अखिल विश्व-प्राणियोंके 'अहं'में मिलाकर—अपने 'स्व'को सबमें देखकर सबके सुख-हित-सम्पादनमें अखण्डरूपसे प्रवाहित थी, तबतक सबका कल्याण ही अपना कल्याण समझा जाता था तथा सर्वहितकारी विचार एवं क्रिया-कलाप चलते थे। परंतु जबसे मानवका 'स्व' छोटे-से सीमाबद्ध दायरेमें रुककर संकुचित और सीमित हो गया है, तभीसे उस 'स्व'का अभिलषित 'अर्थ'—'स्वार्थ' भी बहुत ही संकुचित होकर अत्यन्त निम्नस्तरपर आ गया। इसी नीच स्वार्थके कारण सर्वत्र त्यागका अभाव बढ़ता जा रहा है और मनुष्य विभिन्न कारणोंकी उद्भावनासे एक-दूसरेका शत्रु बनकर अपने ही विनाशपर तुल गया है। आज केवल राजनीतिमें ही नहीं, प्रायः सभी क्षेत्रोंमें, हमारा ही जीवन नहीं, व्यक्तिगत जीवनसे लेकर समस्त विश्वगत मानव-जीवनतक प्रायः इसी विनाशकी भयानक भूमिपर आ गया है। इसीलिये लोक-कल्याणकारी विज्ञानका भी मानवकी विपरीत-दर्शिनी तामसी बुद्धिके अवाञ्छनीय जन-विध्वंसकारी उद्दण्ड प्रलयकाण्डोंमें प्रयोग किया जा रहा है। ऐसे दुस्समयमें त्यागकी महिमा बतलानेवाले साधनकी—त्यागमय पवित्र चरित्रके अध्ययन, परिचय, दर्शन और तदनुरूप जीवन-निर्माणके पुनीत कार्यकी बड़ी आवश्यकता है।

आध्यात्मिक जगत्‌के साधन-क्षेत्रमें तो सर्वोच्च साधन-पदपर समारूढ़ तीव्र मुमुक्षु—मोक्षकामी पुरुष भी बन्धन-मुक्तिके स्वार्थवश मोक्षकी कामना करता है। यद्यपि यह कामना कामना नहीं मानी जाती—वह त्याज्य नहीं, वरं बड़े पुण्यफलोंसे प्राप्त, आदरणीय और वरणीय है, तथापि स्वार्थ-त्यागकी अत्युच्च भूमिकापर पहुँचनेके लिये इस कामनाका त्याग भी परमावश्यक है। इसके लिये भी ऐसे पुनीत चरित तथा परम पावन साधनके परिचयकी अनिवार्य आवश्यकता है। ऐसा त्यागमय जीवन सर्वत्यागमयी 'श्रीराधा'का है और इस प्रकारका साधन स्वसुख-वाञ्छा-कल्पना-लेशगन्धसे शून्य पवित्रतम 'प्रेम' है।

श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाओंके पुनीत चरितमें इसी परम त्यागमय पुनीत साधन तथा साध्यस्वरूपके दर्शन प्राप्त होते हैं। अतएव उसका गम्भीर हृदयसे संयतेन्द्रिय होकर जितना भी स्मरण-चिन्तन-मनन किया जाय, उतना ही मङ्गल है।

भगवान्‌की कृपा

याद रक्खो—तुमपर भगवान्‌की कृपा नित्य-निरन्तर बरस रही है। वह सदा सब ओरसे तुम्हें नहला रही है। ऐसा कोई क्षण नहीं जाता, जिस समय तुम भगवान्‌की कृपासे वञ्चित रहते हो। वञ्चित रहते भी कैसे ?

तुम उनकी अपनी प्यारी-से-प्यारी रचना जो ठहरे। तुमपर वे कृपा क्या करते, उनके हृदयमें तो पल-पलमें स्नेह उमड़ा आता है। सचमुच विश्वास करो--जबसे तुम हुए, न जाने किस अज्ञातकालसे, तभीसे उन्होंने तुम्हें अपनी गोदमें ले रखा है। एक क्षणके लिये भी कभी उन्होंने तुमको दूर नहीं किया। उनका कल्याणमय कर-कमल निरन्तर तुम्हारे सिरपर रहता है और निरन्तर तुम उनका शीतल-मधुर स्पर्श पा रहे हो।

विश्वास करो--भगवान् तुम्हारे लिये कृपाकी मूर्ति ही हैं--**प्रभु-मूरति कृपामई है।'** उनके पास इस कृपाके विपरीत या इसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं; तब फिर तुम क्यों डरते हो कि कभी भगवान्‌की अकृपा हो गयी या कृपा न हुई तो जाने क्या होगा? जब तुम्हें देनेके लिये उनके पास कृपाके अतिरिक्त दूसरी वस्तु है ही नहीं, तब वे देंगे कहाँसे और तुमको वह मिलेगी भी कैसे?

विश्वास करो--जहाँ-कहीं दुःख-संकट या पीड़ा-यातनाकी प्रतीति होती है, वहाँ वस्तुतः उनकी कृपा ही उस रूपमें प्रकट होकर तुम्हारा महान् हित-साधन कर रही है, जिसको तुम जानते नहीं और इसीलिये उससे बचना चाहते हो। परंतु वे दयालु प्रभु तुम्हें उससे वञ्चित नहीं करना चाहते।

भगवान् मङ्गलमय हैं, हमारे परम हितैषी हैं; सर्वज्ञ हैं, किस बातमें कैसे हमारा हित होता है--इस बातको जानते हैं। अतएव उनके प्रत्येक विधानका स्वागत करो। खुशीसे सिर चढ़ाकर उसे स्वीकार करो। उनके हाथके दिये जहरमें अमृतका अनुभव करो, उनके हाथकी तलवारमें शान्तिकी छवि देखो, उनके कोमल करस्पर्शसे महिमाको पाये हुए सुदर्शनमें परमसुखके शुभ दर्शन करो और उनकी दी हुई मौतमें अमरत्वको प्राप्त करो। उनके प्रत्येक मङ्गलविधानमें उनको स्वयमेव अवतीर्ण देखो।

भगवान्‌का सौहार्द

ऐसा कोई स्थान नहीं है और ऐसा कोई समय नहीं है, जिसमें भगवान् न हों, एवं ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिसपर भगवान्‌की कृपा न हो, जिसको भगवान् अपनानेसे इनकार करते हों।

याद रखो--भगवान् स्वभावसे ही सुहृद् हैं, वे कृपाके ही मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उनमें किसी भी पापीके प्रति कभी घृणा नहीं होती। किसने पहले क्या किया है, कौन क्या कर रहा है, किस देश-वेषका है, किस जाति-कुलका है, किस धर्म-सम्प्रदायका है--यह कुछ भी वे नहीं देखते। वे देखते हैं--केवल उसके वर्तमान मनको, उसके मनकी वर्तमान परिस्थितिको, उसकी सच्ची चाहको। कोई भी, कभी भी, किसी भी समय अनन्य मनसे उनकी चाह करता है, उनकी कृपा, प्रीति या दर्शन पानेके लिये एकान्त लालायित हो जाता है, भगवान् उसके इच्छानुसार उसपर कृपा करते, उसे प्रीतिदान करते या दर्शन देकर कृतार्थ कर देते हैं।

याद रखो--दुनियामें दो ही चीजें हैं--भगवान् और भगवान्‌की लीला। जड-चेतन सब कुछ भगवान् हैं और जगत्‌में जो कुछ हो रहा है, सब उनकी लीला हो रही है। एवं जब भगवान् कल्याणमय--मङ्गलमय हैं, तब उनकी लीला भी वस्तुतः कल्याणमयी--मङ्गलमयी ही है।

विश्वास करो--भगवान् सदा ही तुम्हारे अत्यन्त समीप हैं, तुम्हारी प्रत्येक स्थितिको जानते हैं, तुम्हारी हरेक आवाजको सुनते हैं। बस, विश्वासपूर्वक पुकारनेकी देर है। वे तुरंत तुम्हारी पुकार सुनेंगे और तुम्हें कष्टोंसे छुड़ा देंगे। विश्वास करो--भगवान् तुम्हारे परमसुहृद् हैं, निकट-से-निकटतम स्वजन हैं। तुम्हारा दुःख सुनकर वे स्थिर नहीं रह सकेंगे। सच्चे मनसे उन्हें अपना परमसुहृद् समझकर पुकारो, तत्काल तुम्हारी सुनवायी होगी और भगवत्कृपासे तुम दुःखोंसे तर जाओगे।

× × ×

विश्वास करो--भगवान् परम दयालु हैं। तुम चाहे कितने ही पतित, कितने ही पातकी और कितने ही घृणित क्यों न हो, भगवान् तुमसे घृणा नहीं कर सकते--इस बातका निश्चय करो और कातर स्वरसे उन्हें पुकारो। वे उसी क्षण तुम्हारी सारी विपत्ति हर लेंगे।

विश्वास करो––भगवान् परम आश्रय हैं; चाहे सारा संसार तुम्हें भूल जाय, चाहे घर-परिवारके सभी लोग तुमसे मुख मोड़ लें, चाहे तुम सर्वथा निराश्रय हो जाओ, एक बार हृदयसे उनके परम आश्रयत्वपर विश्वास करके मन-ही-मन उनका स्मरण करो। देखोगे, तुम्हें कितना शीघ्र और कितना मधुर और निश्चित आश्रय मिलता है।

विश्वास करो––भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, तुम्हारा दुःख चाहे कितना ही प्रबल हो, तुम्हारे संकट चाहे कितने ही पहाड़-जैसे हों और तुम्हारी विपत्ति चाहे किसीसे भी न टलनेवाली हो, भगवान्की शक्तिके सामने सभी तुच्छ हैं। तुम विश्वास करके सर्वशक्तिमान्को पुकारो––उनकी शक्ति अविलम्ब तुम्हारी सहायता करेगी और तत्काल तुम्हारे पहाड़-से दुःख-कष्ट काजलके ढेरकी तरह उड़ जायँगे।

अपने आपको पहचानो

मनमें निश्चय करो––शरीरके नाशसे तुम्हारी मृत्यु नहीं होती, तुम शरीर नहीं हो; इस शरीरके पहले भी तुम थे और पीछे भी रहोगे। तुम आत्मा हो, तुम्हारा स्वरूप नित्य है। जो वस्तु नित्य होती है, वही सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन होती है। इस नित्य, सनातन, सर्वव्यापी स्वरूपमें न जन्म है न मरण है, न विषमता है न विषाद है, न राग है न रोग है, न दोष है न द्वेष है, न विकार है न विनाश है। यह सत् है, चेतन है और आनन्दमय है।

मोहकी चादर फाड़नेका प्रधान साधन है––आत्मशक्तिमें विश्वास, आत्मबलका निश्चय। विश्वासकी ज्योतिसे मोह-तमका नाश तत्काल ही हो सकता है। तुम विश्वास करो, निश्चय करो कि तुम्हारे अंदर अनन्त शक्ति है। मन, इन्द्रियाँ––सब तुम्हारे सेवक हैं; तुम्हारी अनुमतिके बिना उनमें जरा भी हिलने-डुलनेकी सामर्थ्य नहीं है। तुम्हारी ही दी हुई जीवनी-शक्तिसे वे जीवित हैं और तुम्हारे ही बलपर सारी चेष्टाएँ करते हैं। तुमने भूलसे अपनेको उनका गुलाम मान लिया, तुम अपने स्वरूपको भूल गये, इसीसे तुम्हारी यह दुर्दशा है। आत्माके स्वरूपको सँभालो, फिर तुम अपनेको अपार शक्ति-सम्पन्न पाओगे।

सात बातें

भगवान् और भोगमें बड़ा अन्तर है। उनके स्वरूप, साधन और फलके सम्बन्धमें सात बातें स्मरण रखें––

भगवान्	भोग
१. भगवान्की प्राप्ति इच्छासे होती है।	१. भोगोंकी प्राप्ति कर्मसे होती है, इच्छासे नहीं होती।
२. भगवान् प्राप्त होनेपर कभी बिछुड़ते नहीं।	२. भोग बिना बिछुड़े कभी रहते नहीं।
३. भगवान्की प्राप्ति जब होती है, पूरी होती है।	३. भोगोंकी प्राप्ति सदा अधूरी ही होती है।
४. भगवान्को प्राप्त करनेकी इच्छा होते ही पापोंका नाश होने लगता है।	४. भोगोंको प्राप्त करनेकी इच्छा होते ही पाप होने लगते हैं।
५. भगवान्को प्राप्त करनेकी साधनामें शान्ति मिलती है।	५. भोगोंको प्राप्त करनेकी साधनामें अशान्ति बढ़ती है।
६. भगवान्का स्मरण करते हुए मरनेवाला सुख-शान्तिपूर्वक मरता है।	६. भोगोंका स्मरण करते हुए मरनेवाला अशान्ति और दुःखपूर्वक मरता है।
७. भगवान्का स्मरण करते हुए मरनेवाला निश्चय ही भगवान्को प्राप्त होता है।	७. भोगोंका स्मरण करते हुए मरनेवाला निश्चय ही नरकोंमें जाता है।

इन सात भेदोंको समझकर मनुष्यको चाहिये कि वह नित्य-निरन्तर भगवान्का भजन ही करे।

व्यवहार और परमार्थ

मनकी नीरोगता ही सच्ची नीरोगता है। जिसका शरीर बलवान् और हृष्ट-पुष्ट है, परंतु जिसके मनमें बुरी वासना, असद्विचार, काम, क्रोध, लोभ, घृणा, द्वेष, वैर, हिंसा, अभिमान, कपट, ईर्ष्या, स्वार्थ आदि दुर्गुण

और दुष्ट विचार निवास करते हैं, वह कदापि नीरोग नहीं है। उसकी शारीरिक नीरोगता भी बहुत जल्द नष्ट होनेवाली है।

जगत् चाहे हमें सफल-जीवन और बड़भागी समझे, परंतु यदि हमारे मनमें दोष भरे हैं, कामनाकी ज्वाला जल रही है और भगवत्प्रेम-सुधाका प्रवाह नहीं बह रहा है तो निश्चय समझो हमारा जीवन सर्वथा निष्फल ही है। परंतु जिनको कोई नहीं जानता अथवा जिनको निष्फल-जीवन समझकर लोग जिनसे घृणा करते हैं और नाक-भौं सिकोड़ते हैं, उनमें हमें ऐसे पुरुष मिल सकते हैं, जो वास्तवमें सफल-जीवन हैं, दिव्यत्वको प्राप्त हैं।

जगत्को कुछ भी दिखानेकी भावना न रखकर हृदयको शुद्ध बनाओ, बुरी वासना और दुर्गुणोंको हृदयसे निकालकर उसे दैवी गुणों और भगवत्प्रेमसे भर दो। अपनेको अपने सर्वस्व और अपनेपनसहित भलीभाँति भगवान्के प्रति समर्पण कर दो। तुम्हारे अंदर भागवती शक्ति अवतीर्ण हो जायगी। श्रद्धापूर्वक चेष्टा करो, भगवान्की कृपासे कुछ भी कठिन नहीं है। विश्वास करो, तुम्हें अवश्य सफलता होगी, तुम इसी शरीरसे दिव्यत्वको प्राप्त हो जाओगे।

जगत्में जो कुछ है, सब भगवान्की ही मूर्ति है—यह समझकर सबसे प्रेम करो, सबकी पूजा करो, अपना जीवन सबके लाभके लिये समर्पित कर दो। भूलकर भी ऐसा काम न करो, जिससे सबमेंसे किसी एकका भी अहित हो, एकके भी कल्याणमें बाधा पहुँचे।

× × ×

दीन-हीन, सरल, असहाय बच्चे माँको ज्यादा प्यारे हुआ करते हैं; भगवान्-रूपी जगज्जननीको भी उसके गरीब बच्चे अधिक प्रिय हैं। इसलिये यदि तुम माताका प्यार पाना चाहते हो तो माताके उन प्यारे बच्चोंसे प्रेम करो, उन्हें सुख पहुँचाओ; माता आप ही प्रसन्न होकर अपना वरद हस्त तुम्हारे मस्तकपर रख देगी, तुम सहज ही कृतार्थ हो जाओगे।

याद रखो, विश्वके रूपमें साक्षात् भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं। जीवके रूपमें शिव ही विविध लीला कर रहे हैं। इसलिये तुम किसीसे घृणा न करो, किसीका कभी अनादर न करो, किसीका अहित मत चाहो। निश्चय समझो—यदि तुमने स्वार्थवश किसी जीवका अहित किया, किसीके हृदयमें चोट पहुँचायी तो वह चोट तुम्हारे भगवान्के ही हृदयमें लगेगी। तुम चाहे जितनी देर अलग बैठकर भगवान्को मनाते रहो, जबतक सर्वभूतोंमें स्थित भगवान्पर तुम स्वार्थवश चोट करते रहोगे, तबतक भगवान् तुम्हारी पूजा कभी स्वीकार नहीं कर सकते।

पापको छोटा समझकर उससे कभी बेखबर न रहो। याद रखो, आगकी जरा-सी चिनगारी बड़े भारी शहरको जला देती है, एक छोटा-सा बीज बड़े भारी जंगलका निर्माण कर सकता है। यह मत समझो कि काम-क्रोध-लोभका क्षणिक आवेश हमारा क्या बिगाड़ सकेगा; इनको समूल नष्ट करनेका सतत प्रयत्न करते रहो।

जिसका मन वशमें है, वही यथार्थमें स्वाधीन है। देहका बन्धन बन्धन नहीं है, असली बन्धन है—मनका बन्धन। एक आदमी देहसे स्वतन्त्र है; परंतु यदि वह मनके अधीन है तो उसे सर्वथा पराधीन ही समझना चाहिये। मनपर विजय प्राप्त करनेवाला ही यथार्थ विजयी है। अतएव मनको वशमें करो।

× × ×

मनको वशमें करनेके लिये यदि तुम्हें विधि या नियमोंके बन्धनमें रहना पड़े तो अपना सौभाग्य समझो; यह बन्धन ही तुम्हें मनकी गुलामीसे मुक्त करेगा। उच्छृङ्खलता बन्धनकी गाँठोंको और भी कस देती है, अतएव नियमोंकी शृङ्खलामें बँधे रहनेमें ही मङ्गल समझो।

जहाँतक बने, विषयोंका संग्रह न करो, विषयोंका चिन्तन न करो, विषयी पुरुषोंका सङ्ग न करो; विषयासक्ति बढ़ानेवाले दृश्य न देखो, बात न सुनो और इस तरहके ग्रन्थ न पढ़ो। जिसके कारण मानका, धनका, रूपका

लोभ उत्पन्न होता हो, ऐसे हर एक सङ्गसे भरसक दूर रहो। लोकमें मान न हुआ, धन न बढ़ा तो इससे तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी। यदि संसारके सारे सुखोंसे वञ्चित रहकर भी, संसारके दुःख और कष्टोंसे सर्वदा पीड़ित रहकर भी तुम अपने जीवनको भगवान्‌की ओर लगाये रख सको तो समझो कि तुम्हारा जीवन सार्थक है। इसके विपरीत यदि तुम सब-प्रकारसे धन-सम्पत्ति, मान-यश और लौकिक विद्या-बुद्धिसे भरपुर हुए, लेकिन तुम्हारा हृदय भगवत्प्रेमसे रहित है, तो तुम निश्चय समझो कि तुम्हारा जीवन विषयी लोगोंकी दृष्टिमें चाहे जितना ऊँचा हो, बड़े गौरवका हो, असलमें वह सर्वथा व्यर्थ है—व्यर्थ ही नहीं, अगले जन्ममें आनेवाले महान् कष्टोंका कारण भी है। अतएव विषयोंसे मनको हटाकर भगवान्‌में लगाओ और मानव-जीवनको सफल करो।

घरमें अपनेको मालिक मत समझो, वरं एक सेवक समझो और यथासाध्य ईमानदारीके साथ भगवत्सेवाके भावसे घरके काम करो। अपना व्यवहार दूसरेके घरमें कुछ समयके लिये टिके हुए अतिथिका-सा रखो। इस घरको अपना स्थायी घर, घरकी चीजोंको अपनी चीजें, घरके सेवकोंको अपने सेवक और घरकी सम्पत्तिको अपनी सम्पत्ति मत समझ बैठो। सावधान ! तुम्हारे व्यवहारसे किसीके दिलपर चोट न पहुँचे।

× × ×

बदला लेनेकी भावना कभी मनमें मत आने दो। अपना बुरा करनेपर, गाली देनेपर, निन्दा करनेपर, मारनेपर भी किसीका कभी न बुरा करो, न बुरा चाहो, न बुरा होते देखकर प्रसन्न होओ; उसको हृदयसे क्षमा कर दो। सबमें अपने आत्माको समझकर जैसे अपने अपराधपर आप दण्ड नहीं देना चाहता—क्षमा चाहता है, उसी प्रकार सबपर क्षमा करो। बदला लेनेकी भावना बहुत बुरी है। बदला लेनेकी भावना मनमें रखनेवाला मनुष्य इस जीवनमें कभी शान्ति, सुख और प्रेम नहीं पाता तथा मरनेपर पिशाच होता है। वह स्वयं डूबता है और वैरभावके बुरे परमाणु वायुमण्डलमें फैलाकर दूसरोंका भी अनिष्ट करता है।

मनमें सदा पवित्र भाव रखो, सबका हित चाहो, सबको उत्तम परामर्श दो; कभी न वाणीसे बुरी सम्मति दो, न अपनी करनीसे बुरी बात सिखाओ और न मनमें बुरी बात रखकर उसे वायुमण्डलमें जाने दो। जो दूसरोंमें बुरे भाव फैलानेमें सहायक होता है, वह बहुत बड़ा पाप करता है; उसका कभी हित नहीं हो सकता।

स्मरण रखो—जिस कार्यसे परिणाममें अपना और दूसरोंका हित हो, वही धर्म है और जिससे परिणाममें अपना और दूसरोंका अहित हो, वही पाप है।

अपने आपको निरन्तर देखते-परखते रहना चाहिये। दूसरे हमको प्रेमी भक्त कहते हैं या दुरात्मा—इसकी ओर हमें कुछ भी ध्यान नहीं देना चाहिये। लोग हमें संत, प्रेमी, या महात्मा भी कहें, हमारे मनमें यदि सांसारिक विषयोंका मनोरथ और चिन्तन बना है तो हम किसी भी हालतमें महात्मा नहीं हैं। अतएव वाणीके द्वारा पर-चर्चाका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये और एक-एक क्षणको भगवान्‌के नामजपमें लगानेका सावधानीके साथ प्रयत्न करना चाहिये। मनमें जहाँतक बने, ऐसे विषयोंको ही प्रविष्ट कराना चाहिये, जो भगवान्‌की स्मृति लानेवाले हों और निरन्तर मनको बार-बार प्रयत्न करके भगवान्‌के नाम एवं गुण-चिन्तनमें ही लगाना चाहिये। शरीरके द्वारा भी जिन कार्योंके करनेकी हमारे निर्दोष सांसारिक निर्वाहके लिये आवश्यकता नहीं, ऐसे कार्योंसे सर्वथा बचना चाहिये।

दुःखी-गरीब भाई-बहनोंके साथ विशेष प्रेम और सरलताका बर्ताव करो। उनकी सेवा करनेमें न तो ऐसा खयाल करो और न कभी यह उनपर प्रकट ही होने दो कि तुम बड़े आदमी या समर्थ हो, इससे उनका उपकार कर रहे हो या उनपर एहसान कर रहे हो। गरीब-भाई-बहनोंकी कोई भी सेवा तुमसे बन जाय तो उनको कभी भूलकर भी उसका स्मरण तो कराओ ही मत, बल्कि मन-ही-मन उनका उपकार मानो कि उन्होंने तुम्हारी सेवा स्वीकार की। परंतु इस कृतज्ञताको भी अपने मनमें ही रखो। उनपर प्रकाश न करो। नहीं तो, शायद वे समझेंगे कि तुम अपने उपकारकी उन्हें याद दिला रहे हो; इससे उन्हें संकोच होगा और अपनी

गरीबीको याद करके वे दुःखी हो जायँगे। जो गिनानेके लिये किसीकी सहायता करता है, वह तो उसे जलानेके लिये आग जलाता है; उसका ताप मिटानेके लिये नहीं।

असावधानी विनाशको बहुत शीघ्र बुला लाती है। सचेत रहो, सावधान रहो, जीवन-महलके किसी भी दरवाजेसे काम-क्रोध-रूपी किसी भी चोरको अंदर न घुसने दो और सावधानीके साथ, जो पहले घुसे बैठे हों, उन्हें दृढ़ता और शूरताके साथ निकालनेकी प्राणपणसे चेष्टा करते रहो। सावधानी ही साधना है।

जीवनके एक-एक क्षणको मूल्यवान् समझो और बड़ी सावधानीके साथ प्रत्येक क्षण भगवच्चिन्तन या आत्म-चिन्तन करते हुए लोकहितके कार्यमें बिताओ। तुम्हारा कोई क्षण ऐसा नहीं जाना चाहिये, जिसमें किसीका तुम्हारेद्वारा अहित हो जाय। अहित वाणी और शरीरसे ही होता हो, यह बात नहीं है; यदि तुम्हारे मनमें बुरा विचार आ गया तो मान लो, तुम अपना और दूसरोंका अहित करनेवाले हो गये। बुरा विचार कभी मनमें न आने दो; यदि पूर्वसंस्कारवश आ जाय तो उसको तुरंत निकाल बाहर कर दो। बुरे विचारको आश्रय कभी मत दो, उसकी ओरसे लापरवाह न रहो।

मनको मौन करो। मुँहसे बोलनेका नाम ही मौन नहीं है, मौन कहते हैं चित्तके मौन हो जानेको। चित्त जगत्का मनन ही न करे, जगत्का कोई चित्र चित्तपटलपर रहे ही नहीं; बस, एकमात्र परमात्मामें ही चित्त रम जाय, वह उसीमें प्रविष्ट हो जाय। विश्वास करो—यह स्थिति होती है, तुम्हारी भी यत्न करनेपर हो सकती है। ऐसा ध्यान हो सकता है, ऐसी समाधि सम्भव है, जिसमें जगत्की तो बात ही क्या, तन-मनकी भी सुधि नहीं रहती; अधिक क्या, ध्यान करनेवाला स्वयं ध्येयमें समाकर खो जाता है।

प्रतिध्वनि ध्वनिका ही अनुसरण करती है और ठीक उसीके अनुरूप होती है; इसी प्रकार दूसरोंसे हमें वही मिलता है और वैसा ही मिलता है, जो और जैसा हम उनको देते हैं। अवश्य ही वह मिलता है बीज-फल-न्यायके अनुसार कईगुना बढ़कर।

सुख चाहते हो, दूसरोंको सुख दो; मान चाहते हो, मान प्रदान करो; हित चाहते हो, हित करो और बुराई चाहते हो तो बुराई करो। याद रखो, जैसा बीज बोओगे, वैसा ही फल मिलेगा। फलकी न्यूनाधिकता जमीनके अनुसार होगी।

जबतक तुम्हें अपना लाभ और दूसरेका नुकसान सुखदायक प्रतीत होता है, तबतक तुम नुकसान ही उठाते रहोगे।

जबतक तुम्हें अपनी प्रशंसा और दूसरेकी निन्दा प्यारी लगती है, तबतक तुम निन्दनीय ही रहोगे।
जबतक तुम्हें अपने सम्मान और दूसरेका अपमान सुख देता है, तबतक तुम अपमानित ही होते रहोगे।
जबतक तुम्हें अपने लिये सुखकी और दूसरेके लिये दुःखकी चाह है, तबतक तुम सदा दुःखी ही रहोगे।
जबतक तुम्हें अपनेको न ठगाना और दूसरेको ठगना अच्छा लगता है, तबतक तुम ठगाते ही रहोगे।
जबतक तुम्हें अपने दोष नहीं दीखते और दूसरेमें खूब दोष दीखते हैं, तबतक तुम दोषयुक्त ही रहोगे।
जबतक तुम्हें अपने हितकी और दूसरेके अहितकी चाह है, तबतक तुम्हारा अहित ही होता रहेगा।

याद रखो—जो लोग दिन-रात अशुभ संकल्प करते रहते हैं, वे स्वयं तो दुःखी रहते ही हैं, जगत्को स्वाभाविक ही अपने अशुभ भावोंका दान देकर—उन्हें फैलाकर सबको न्यूनाधिकरूपसे दुःखी करते हैं। इसी प्रकार शुभ संकल्प करनेवाले पुरुष स्वयं सुखी होते हैं और संसारके सब प्राणियोंको भी सुखी करते हैं।

याद रखो—सारे शुभका परम आधार है—ईश्वरमें विश्वास; समस्त शुभ विचार, शुभ संकल्प, शुभ गुण और शुभ भाव ईश्वर-विश्वाससे ही उदय होते और टिकते हैं। जिसका ईश्वरमें विश्वास नहीं, वह शुभ संकल्प और शुभ पदार्थोंका उत्पादन, संग्रह-संवर्धन और संरक्षण नहीं कर सकता। उसका चित्त बरबस अशुभकी ओर प्रवृत्त होगा।

चेतावनी

इस वर्तमान घर-द्वार, पुत्र-कन्या, भाई-बहन, माता-पिता, पति-पत्नीको अपने मानते हो—तुम्हारा यह भ्रम ही है। इस जन्मके पहले जन्ममें भी तुम कहीं थे। वहाँ भी तुम्हारे घर-द्वार, सगे-सम्बन्धी—सब थे। कभी पशु, कभी पक्षी, कभी देवता, कभी राक्षस और कभी मनुष्य—न जानें कितने रूपोंमें तुम संसारमें खेले हो; परंतु वे पुराने—पहले जन्मोंके घर-द्वार, साथी-संगी, स्वजन-आत्मीय अब कहाँ हैं? उन्हें जानते भी हो? कभी उनके लिये चिन्ता भी करते हो? तुम जिनके बहुत अपने थे, बड़े प्यारे थे, उनको धोखा देकर खेलके बीचमें ही उन्हें छोड़ आये; वे रोते ही रह गये और अब तुम उन्हें भूल ही गये हो। उस समय तुम भी आजकी तरह ही उन्हें प्यार करते थे, उन्हें छोड़नेमें तुम्हें भी कष्ट हुआ था; परंतु जैसे आज तुम उन्हें भूल गये हो, वैसे ही वे भी नये खेलमें लगकर, नये घर-द्वार, संगी-साथी पाकर तुम्हें भूल गये होंगे। यही होता है। फिर तुम इस भ्रममें क्यों पड़े हो कि इस संसारके घर-द्वार, इसके सगे-सम्बन्धी, यह शरीर, सब मेरे हैं?

पूर्ण—अखण्ड सुख परमात्मामें है

संसारमें सुख सभी चाहते हैं; परंतु किसीको पूर्ण, अखण्ड, स्थायी सुख नहीं मिलता। सुखके लिये भटकते-भटकते जीवन बीत जाता है और सुख आगे-से-आगे सरकता जाता है। इसका कारण यही है कि मनुष्य जिन प्राकृतिक वस्तुओंसे सुख चाहता है, उनमें वह पूर्ण, अखण्ड, स्थायी सुख है ही नहीं। अतएव यदि तुम सुख चाहते हो तो पूर्ण, अखण्ड, नित्य, सत्य सुखस्वरूप भगवान्‌को भजो।

सबमें भगवद्भाव करें

सदा-सर्वदा भगवान्‌का स्मरण बना रहे, इसलिये समस्त कार्य भगवत्सेवाके भावसे करने चाहिये तथा सब भूत-प्राणियोंमें भगवद्भाव करना चाहिये और सबको मन-ही-मन प्रणाम करना चाहिये। यह बहुत ही श्रेष्ठ साधन है। जिससे भी हमारा व्यवहार पड़े, उसीमें भगवद्भाव करें। न्यायाधीश समझे कि अपराधीके रूपमें भगवान् ही मेरे सामने खड़े हैं। उन्हें मन-ही-मन प्रणाम करे और उनसे मन-ही-मन कहे कि 'इस समय आपका स्वाँग अपराधीका है और मेरा न्यायाधीशका। आपके आदेशके पालनार्थ मैं न्याय करूँगा और न्यायानुसार आवश्यक होनेपर दण्ड भी दूँगा। पर प्रभो! न्याय करते समय भी मैं यह न भूलूँ कि इस रूपमें आप ही मेरे सामने हैं और आपके प्रीत्यर्थ ही मैं आपकी सेवाके लिये अपने स्वाँगके अनुसार कार्य कर रहा हूँ।' इसी प्रकार एक भंगिन-माता सामने आ जाय तो उसको भगवान् समझकर मन-ही-मन प्रणाम करे और स्वाँगके अनुसार बर्ताव करे। यों ही वकील मुअक्किलको, दूकानदार ग्राहकको, डॉक्टर रोगीको, नौकर मालिकको, पत्नी पतिको, पुत्र पिताको और अपराधी न्यायाधीशको, भंगिन उच्चवर्णके लोगोंको भगवान् समझकर व्यवहार करे—बर्ताव करे स्वाँगके अनुसार, पर मनमें भगवद्भाव रखे, तो बर्तावके सारे दोष अपने-आप नष्ट हो जायँगे। अपने-आप सच्ची सेवा बनेगी। भगवान्‌की नित्य-स्मृति बनी रहेगी। यों मनुष्य दिनभर अपने प्रत्येक कार्यके द्वारा भगवान्‌की पूजा कर सकेगा। भगवान्‌ने कहा है—'**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।**—अपने कर्मके द्वारा भगवान्‌को पूजकर मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है।'

सर्वथा निश्चिन्त हो जाओ

समस्त चिन्तनोंसे चित्तको मुक्त कर दो। जैसे छोटा शिशु माँकी गोदमें जाकर निश्चिन्त हो जाता है, वैसे ही प्रभुके दास बनकर निश्चिन्त हो जाओ। जिसके रखवाले राम हैं, उसे किस बातकी चिन्ता होनी चाहिये। सब कुछ छोड़कर, सबकी आशा त्यागकर, भगवान्‌के सामने सबको तुच्छ मानकर, उस दिव्यातिदिव्य मधुर सुधारस-के सामने जगत्‌के सारे रसोंको फीका समझकर, उस कोटि-कोटि-कंदर्प-दर्प-दलन, सौन्दर्यसार श्यामसुन्दरके स्वरूपके सामने जगत्‌की समस्त रूपराशिको नगण्य मानकर उसीके भजनमें लग जाओ, चित्तको उसीके अर्पण कर दो, सब प्रकारसे उसीपर निर्भर हो जाओ। मनसे उसीका स्मरण करो, बुद्धिसे उसीका विचार करो, वाणीसे उसीके गुण

गाओ, कानोंसे उसीके गुण और लीलाओंको सुनो, जीभसे उसीके प्रसादका रस लो, नासिकासे उसीकी पद-पद्म-परागको सूँघो, शरीरसे सर्वत्र उसीके स्पर्शका अनुभव करो, नेत्रोंसे उसी छविधामकी छविको सर्वत्र—सर्वदा देखो, हाथोंसे उसीकी सेवा करो, तन-मन-धन—सब उसीके अर्पण कर दो।

जबतक तुम जगत्‌के पदार्थोंको अपना मानते रहोगे, उनमें ममत्व रखोगे, तबतक कभी निश्चिन्त नहीं हो सकोगे; ये नाशवान्, क्षणभङ्गुर परिवर्तनशील पदार्थ कभी तुम्हें निश्चिन्त नहीं होने देंगे। इनपरसे ममत्व और आसक्तिको हटा लो; ये जिनकी चीजें हैं, उन्हें सौंप दो। बस, जहाँ तुमने इनको भगवान्‌के समर्पण किया कि वहीं निश्चिन्त हो गये; फिर न नाशका भय है, न अभावकी चिन्ता है और न कामनाकी जलन है।

सबसे बड़ी विपत्ति

मनुष्यके जीवनके एक क्षणका भी पता नहीं है; न जानें, किस पलमें प्रलय हो जाय, कब मृत्यु आ जाय। इसलिये 'अमुक स्थिति हो जानेपर भगवान्‌का भजन करूँगा', ऐसी धारणा छोड़ देनी चाहिये और अभी जो जिस अवस्थामें है, उसे उसी अवस्थामें भगवान्‌की कृपाका आश्रय करके साधन आरम्भ कर देना चाहिये। आधे क्षणका भी विलम्ब नहीं करना चाहिये।

पलक मारते-मारते मृत्युके ग्रास बन जाओगे, फिर कब करोगे? यह मत समझो कि 'अभी छोटी उम्र है—खेलने-खाने और विषय भोगनेका समय है; बड़े-बूढ़े होनेपर भजन करेंगे।' कौन कह सकता है कि तुम बड़े-बूढ़े होनेसे पहले ही नहीं मर जाओगे? मौतकी नंगी तलवार तो सदा ही सिरपर झूल रही है।

जरा-सा भी समय भगवान्‌के भजनके बिना नहीं बिताना चाहिये। जो समय भगवद्भजनमें जाता है, वही सार्थक है, शेष सब व्यर्थ है। समयका मूल्य समझकर एक-एक साँसको खूब सावधानीके साथ कंजूसके परिमित पैसोंकी भाँति केवल भगवच्चिन्तनमें ही लगाना उचित है। भजनहीन काल ही वास्तवमें हमारे लिये भयंकर काल है। वही सबसे बड़ी विपत्ति है।

भगवान्‌की पूजाके पुष्प

भगवान्‌की पूजाके लिये सबसे अच्छे पुष्प हैं—श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दया, मैत्री, सरलता, साधुता, समता, सत्य, क्षमा आदि दैवी गुण। स्वच्छ और पवित्र मन-मन्दिरमें मनमोहनकी स्थापना करके इन पुष्पोंसे उनकी पूजा करो।

जो इन पुष्पोंको फेंक देता है और केवल बाहरी फूलोंसे भगवान्‌को पूजना चाहता है, उसके हृदयमें भगवान् आते ही नहीं; फिर वह पूजा किसकी करेगा?

वास्तविक उत्थान

उन्नति तथा उत्थानका वास्तविक अर्थ है—चरित्रका उत्थान, मानस उच्चता और तदनुरूप व्यवहार-बर्तावमें विशुद्धि। यही वास्तविक जीवन-संस्कार या संस्कृति है। हमारे अंदरके दुर्विचारों, दुर्गुणों तथा दोषोंका नाश होकर अन्तरके भावोंका सात्विक सुधार हो जाय; वासना, कामना आदि विशुद्ध हो जायँ; उनमेंसे भोगासक्ति, हिंसा, असत्य, उच्छृङ्खलता आदि दोष निकल जायँ; जीवन विशुद्ध, संयमपूर्ण तथा पर-सुख-हित-स्वरूप बन जाय और विचारोंके अनुसार ही आचार भी सत्य शिव सुन्दर हो जाय—तभी उसकी संस्कृतिका उदय समझना चाहिये। आज तो हमारी सारी संस्कृति समाजके हिताहितकी दृष्टिसे शून्य—केवल कला-प्रदर्शक संगीत, वाद्य, अभिनय तथा नृत्य और उसके सहयोगी सहभोज-पानमें ही सीमित हो गयी है। इसी संस्कृतिका प्रदर्शन करनेके लिये हमारे नृत्य-वाद्य-संगीत-कुशल कलाकारोंकी 'सांस्कृतिक पार्टियाँ' विदेशोंमें भी संस्कृति-प्रदर्शनके लिये जाया करती हैं। समाजमें गीत-वाद्य, नाट्य-नृत्यका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है; ये बड़ी मनोहर और उपयोगी कलाएँ हैं। पर हैं तभी, जब इनके साथ संस्कृतिका निवासस्थान पवित्र-संस्कृत अन्तःकरण हो। केवल 'कला' तो 'काल' बन जाती है।

शुद्ध शक्ति-संचयसे महाशक्ति-पूजा

संयम, सात्विक आहार, नियमित परिश्रम, अहिंसा, मातृ-पितृ-गुरु-सेवा, दीनसेवा, पवित्रता और ब्रह्मचर्य आदिके द्वारा शरीरको स्वस्थ रखो और उसमें शुद्ध शक्तिका संचय करो।

संयम, सात्विक आहार, अहिंसा, पवित्रता और ब्रह्मचर्यके साथ ही विवेक, वैराग्य, कामनादमन, सौम्यभाव, सर्वत्र भगवद्-दृष्टि, दया, मैत्री, उपेक्षा, प्रसन्नता, निरपेक्षता, परहितव्रत, निरभिमानता, निर्भीकता, संतोष, सरलता, मृदुता और भगवच्चिन्तन आदिके द्वारा मनको शुद्ध करो और उसमें शुद्ध शक्तिका संचय करो।

सत्य, सुखकर, हितकर, प्रिय, परोपकारमय और भगवन्नाम-गुण और यश-गान करनेवाले वचनोंद्वारा वाणीको शुद्ध करो और वाक्में शुद्ध शक्तिका संचय करो।

जब तुम्हारे शरीर, मन और वाणी शुद्ध होकर तीनों शक्तिके भंडार बन जायँगे, तभी तुम वास्तवमें स्वतन्त्र होकर महाशक्तिकी सच्ची उपासना कर सकोगे और तभी तुम्हारा जन्म-जीवन सफल होगा। याद रखो, जिस पवित्रात्मा पुरुषके शरीर, इन्द्रियाँ और मन अपने वशमें हैं और शुद्ध हो चुके हैं, वही स्वतन्त्र है। परंतु जो किसी भी नियमके अधीन न रहकर शरीरका, इन्द्रियोंका और मनका गुलाम बना हुआ मनमानी करना चाहता है, कर सकता है या करता है, वह तो उच्छृङ्खल है। उच्छृङ्खलतासे इन तीनोंकी शक्तियोंका नाश होता है और वह फिर महाशक्तिकी उपासना नहीं कर सकता। महाशक्तिकी उपासनाके बिना मनुष्यका जन्म-जीवन व्यर्थ है और पशुसे भी गया-बीता है। अतएव शक्ति-संचय करके स्वतन्त्र बनो।

प्रभु-चरणोंकी स्मृति रखते हुए खेलो

यहाँके खेलको नित्य और स्थिर जानकर फँसो नहीं। खेलते रहो, खूब खेलो; परंतु चित्तको सदा स्थिर रखो अपने नित्य-सत्य, सनातन और कभी न बिछुड़नेवाले प्यारे प्रभुके चरणोंमें। इस खेलके साथी—पति-पत्नी, पुत्र-कन्या, मित्र-बन्धु आदि सब खेलके लिये ही मिले हैं। इनका सम्बन्ध खेलभरका ही है। जब यह खेल खतम हो जायगा और दूसरा खेल शुरू होगा, तब दूसरे साथी मिलेंगे। यही सदासे होता आया है। इसलिये खेलके आज मिले हुए साथियोंको ही नित्यके सङ्गी मानकर इनमें आसक्त न होओ; नहीं तो खेल छोड़कर नये खेलमें जाते समय तुमको और इन तुम्हारे साथियोंको बड़ा क्लेश होगा। जहाँ और जब वह खेलका स्वामी भेजेगा, तब वहाँ जाना तो पड़ेगा ही; इस खेलमें और इस खेलके साथियोंमें मन फँसा रहेगा तो रोते हुए जाओगे।

जगत्में व्यवहार कैसे करें ?

याद रखो—मानवको सब कार्य यथाधिकार, यथाविधि, सुचारुरूपसे करने चाहिये। कार्यमें कहीं त्रुटि न हो—जो कार्य जहाँ जैसा करना विधेय हो, वैसा ही सम्यक् प्रकारसे करना चाहिये; परंतु करना चाहिये आसक्ति न रखकर जगन्मङ्गलके लिये, अथवा भगवान्की प्रसन्नता या प्रीतिके लिये। कर्म साङ्गोपाङ्ग हो, परंतु कहीं ममता-आसक्ति न रहे। उदाहरणके लिये नाटकमें नाट्यमञ्चपर अभिनेता अपने स्वाँगके अनुसार विधिवत् अभिनय करता है; जहाँ जिस रसकी अभिव्यक्ति आवश्यक है, वहाँ वह उसीकी अवतारणा करता है—रोनेकी जगह रोता है, हँसनेकी जगह हँसता है; दर्शक-समुदाय उसके सफल अभिनयसे प्रभावित होकर रोने-हँसने लगते हैं; परंतु वह रोता-हँसता हुआ भी वस्तुतः न रोता है न हँसता है। वह तो केवल अभिनय करता है, और करता है उसके द्वारा नाटकके स्वामीको प्रसन्न करनेके लिये। नाट्यमञ्चपर वह किसीका स्वामी बनता है, किसीकी पत्नी बनता है, किसीका नौकर बनता है, किसीका मालिक बनता है, किसीका पुत्र बनता है, किसीका पिता बनता है, और ठीक उसीके अनुरूप सम्बोधन करता है, व्यवहार-बर्ताव करता है। बहुमूल्य राजपोशाक तथा आभूषणादि पहनकर राजाका अभिनय करता है और फटा-चिथड़ा लपेटकर फकीरका। परंतु वह जानता है कि मैं न तो यहाँके किसी सम्बन्धसे किसीके साथ सम्बन्धित हूँ, न पोशाक-गहने ही मेरे हैं तथा न मैं राजा या फकीर हूँ। इसी

प्रकार मानव आसक्ति किये बिना अपने कर्त्तव्यकर्मका सुचारुरूपसे पालन करता रहे और उसमें लक्ष्य हो—'भगवान्‌की प्रसन्नता।'

दुःखोंकी जड़—ममता

मकान 'मेरा' है, चूनेके एक-एक कणमें 'मेरापन' भरा हुआ है। उसे बेच दिया, हुंडी हाथमें आ गयी; इसके बाद मकानमें आग लगी। मैं कहने लगा—'बड़ा अच्छा हुआ, रुपये मिल गये।' मेरापन छूटते ही मकान जलनेका दुःख मिट गया। अब हुंडीके कागजमें मेरापन है, बड़े भारी मकानसे सारा मेरापन निकलकर जरा-से कागजके टुकड़ेमें आ गया। अब हुंडीकी तरफ कोई ताक नहीं सकता। हुंडी बेच दी, रुपयोंकी थैली हाथमें आ गयी। इसके बाद हुंडीका कागज भले ही फट जाय, जल जाय; कोई चिन्ता नहीं। सारी ममता थैलीमें आ गयी। अब उसीकी सँभाल होती है। इसके बाद रुपये किसी महाजनको दे दिये। अब चाहे वे रुपये उसके यहाँसे चोरी चले जायँ, कोई परवाह नहीं। उसके खातेमें अपने रुपये जमा होने चाहिये और उस महाजनका फर्म बना रहना चाहिये। चिन्ता है तो इसी बातकी है कि वह फर्म कहीं दिवालिया न हो जाय। इस प्रकार जिसमें ममता होती है, उसकी चिन्ता रहती है। यह ममता ही दुःखोंकी जड़ है। वास्तवमें 'मेरा' कोई पदार्थ नहीं है। मेरा होता तो साथ जाता। पर शरीर भी साथ नहीं जाता। झूठे ही 'मेरा' मानकर दुःखोंका बोझ लादा जाता है। जिसकी चीज है, उसे सौंप दो। जगत्‌के सब पदार्थोंसे मेरापन हटाकर केवल परमात्माको 'मेरा' बना लो। फिर दुःखोंकी जड़ ही कट जायगी।

शरीरका आराम, नामका नाम

याद रखो—शरीरका आराम, नामका नाम आदि सब भोग ही है। आत्मा—तुम न वह शरीर है और न नाम ही। शरीरका निर्माण माता-पिताके रज-वीर्यसे गर्भमें हुआ है और जन्मके पश्चात् नामकी कल्पना होती है। मरनेके बाद भी यह शरीर तो रहता ही है और शरीरका नाम भी रहता है; पर शरीरमेंसे चेतनरूप तुम निकल जाते हो। तुम्हारे आनेसे शरीरमें चेतनता आयी थी और तुम्हारे निकलते ही वह शरीर अचेतन—मुर्दा हो गया। पर मोहवश तुमने शरीर और नामको ही आत्मा—अपना स्वरूप मान लिया, इसलिये उनके 'आराम' तथा 'नाम'के लिये सदा चिन्तित, चेष्टायुक्त और कर्मपरायण रहते हो। इसीके लिये नये-नये विज्ञानके आविष्कार, कार्योंका विस्तार, विविध कला कौशलका प्रचार, नये-नये भोगवस्तुओंके निर्माणके लिये उत्पादनगृह—कारखानोंका प्रसार तथा विविध प्रकारके अनन्त प्रयत्न करते हो और जीवनभर असफलता-सफलताके आने-जानेमें दिन-रात सुखी-दुःखी होते हो—कभी भी द्वन्द्व-दुःखसे मुक्त नहीं हो सकते।

तन-मन-वचनसे भजन

भजन मन, वचन और तन—तीनोंसे ही करना चाहिये। भगवान्‌का चिन्तन मनका भजन है, नाम-गुण-गान वचनका भजन है और भगवद्भावसे की हुई जीवसेवा तनका भजन है। आजकलके दुर्बल प्रकृतिके नर-नारियोंके लिये सबसे अधिक उपयोगी और लाभदायक भजन है—भगवान्‌के नामका जप और कीर्तन। बस, जप और कीर्तन-पर विश्वास करके नामकी शरण ले लो; नाम अपनी शक्तिसे अपने-आप ही तुम्हें अपना लेगा और नाम-नामीमें अभेद है, इसलिये नामके द्वारा अपनाये जाकर नामी भगवान्‌के द्वारा तुम सहज ही अपनाये जाओगे।

सद्‌गुण और भक्ति पर्याय हैं

दैवी सम्पत्तिके गुण भक्तका बाना हैं। जहाँ भक्ति है, वहाँ दैवी सम्पत्तिका होना अनिवार्य है। कुछ लोग भूलसे ऐसा कह दिया करते हैं कि 'भक्ति करो; भक्तमें सद्‌गुण न हो तो न सही। मनुष्य चाहे जितने पाप करे; बस, भक्त हो जाय; फिर कोई परवाह नहीं।' परंतु उनका यह कथन वैसे ही युक्तिविरुद्ध है, जैसे यह कथन कि 'सूर्य उदय हो जाय, फिर वहाँ अन्धकार भले ही बना रहे।' जहाँ सूर्य उदय हो गया, वहाँ अन्धकार न रहकर

प्रकाश छा ही जाता है। इसी प्रकार जहाँ भक्तिरूपी सूर्यका उदय हो गया है, वहाँ उसका प्रकाशरूप दैवी सम्पत्ति अवश्य फैल जायगी।

भूल जाओ

तुम्हारे द्वारा किसी प्राणीकी कभी कोई सेवा हो जाय तो यह अभिमान न करो कि मैंने उसका उपकार किया है। यह निश्चय समझो कि उसको तुम्हारे द्वारा बनी हुई सेवासे जो सुख मिला है, वह निश्चय ही उसके किसी शुभ कर्मका फल है। तुम तो उसमें केवल निमित्त बने हो; ईश्वरका धन्यवाद करो, जिसने तुम्हें किसीको सुख पहुँचानेमें निमित्त बनाया और उस प्राणीका उपकार मानो, जिसने तुम्हारी सेवा स्वीकार की।

दूसरोंके द्वारा तुम्हारा कभी कोई अनिष्ट हो जाय तो उसके लिये दुःख न करो, उसे अपने पहले किये हुए बुरे कर्मका फल समझो; यह विचार कभी मनमें मत आने दो कि 'अमुकने मेरा अनिष्ट कर दिया है।' यह निश्चय समझो कि ईश्वरके दरबारमें अन्याय नहीं होता। तुम्हारा जो अनिष्ट हुआ है या तुमपर जो विपत्ति आयी है, वह अवश्य ही तुम्हारे पूर्वकृत कर्मका फल है।

याद रखो

तुम्हारे द्वारा किसी प्राणीका कभी कुछ भी अनिष्ट हो जाय या उसे दुःख पहुँच जाय तो इसके लिये बहुत ही पश्चात्ताप करो। यह खयाल मत करो कि 'उसके भाग्यमें तो दुःख बदा ही था, मैं तो निमित्तमात्र हूँ। मैं निमित्त न बनता तो उसको कर्मका फल ही कैसे मिलता, उसके भाग्यसे ही ऐसा हुआ है, मेरा इसमें क्या दोष है।' उसके भाग्यमें जो कुछ भी हो, इससे तुम्हें मतलब नहीं। तुम्हारे लिये ईश्वर और शास्त्रकी यही आज्ञा है कि तुम किसीका अनिष्ट न करो। तुम किसीका बुरा करते हो तो अपराध करते हो और इसका दण्ड तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। उसे कर्म-फल भुगतानेके लिये ईश्वर आप ही कोई दूसरा निमित्त बनाते, तुमने निमित्त बनकर पापका बोझ क्यों उठाया?

दूसरेके द्वारा तुम्हारा तनिक-सा भी उपकार या भला हो अथवा तुम्हें सुख पहुँचे तो उसका हृदयसे उपकार मानो, उसके प्रति कृतज्ञ बनो। यह मत समझो कि 'यह काम मेरे प्रारब्धसे हुआ है, इसमें उसका मेरे ऊपर क्या उपकार है, वह तो निमित्तमात्र है।' बल्कि यह समझो कि उसने निमित्त बनकर तुमपर बड़ी ही दया की है। उसके उपकारको जीवनभर स्मरण रखो, स्थिति बदल जानेपर उसे भूल न जाओ, सदा उसकी सेवा करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करो; काम पड़नेपर हजारों आदमियोंके सामने भी उसका उपकार स्वीकार करनेमें संकोच न करो।

भलाई अपनी तरफसे शुरू करें

मनुष्यको चाहिये कि अपनी भूल देखे और अपनी तरफसे भलाई शुरू कर दे; दूसरा क्या करता है, इसको न देखे। जो मनुष्य यह प्रतीक्षा करता है कि दूसरा भलाई करेगा तब मैं करूँगा, वह वास्तवमें भलाई करना नहीं चाहता—उसको भलाईसे प्रीति नहीं है। दूसरा करे या न करे, अपने भलाई करना ही है। यदि बिच्छू डंक मारना नहीं छोड़ता तो क्या संत उसको बचानेका स्वभाव छोड़ दे? सूर्य क्या कभी प्रतीक्षा करता है कि कोई प्रकाश देगा तब मैं प्रकाश दूँगा। इसी प्रकार भलाई करनेवाला मनुष्य स्वभावसे निरन्तर भलाई चाहता है और करता है; उसकी भलाई दूसरोंको भलाईमें प्रवृत्त करती है। कदाचित् न करे तो भी उसकी बुराई तो हुई नहीं; भलाईसे सत्कर्म हुआ और उसका सुन्दर फल भी उसे मिलेगा ही। किसीकी बुराई बिना उसके प्रारब्धवश कोई कर नहीं सकता। पर जो बुराई करना चाहता है, उसके द्वारा असत्कर्म बनता है और उसके फलस्वरूप उसको दुःख अवश्य मिलता है। अतएव अन्तरसे किसीकी बुराई नहीं सोचकर भलाई सोचनी-करनी चाहिये। अपनी ओरसे विष देनेवालेको भी अमृत देना चाहिये, संताप देनेवालेको भी शान्ति देनी चाहिये। भलाई करनेवालेकी भलाई नहीं करना तो पाप है और भला करना मानवता है। महत्व तो बुरा करनेवालोंकी भलाई करनेमें है, शत्रुका हितचिन्तन कर एवं उसका हित करके उसे मित्र बनानेमें है।

कामनाकी अग्नि

याद रखो——भोगोंमें सुख वैसे ही नहीं है, जैसे पानीमें घी नहीं है, बालूमें तेल नहीं है, मृगतृष्णाके मैदानमें जल नहीं है और अग्निमें शीतलता नहीं है। अतः जो कोई भी भोगोंसे सुखकी आशा रखता है, उसे सदा निराश ही रहना पड़ता है। तथापि मनुष्य मोहमें पड़कर भोगोंमें सुखकी सम्भावना मानकर उनके अर्जन तथा सेवनमें लगा रहता है और फलस्वरूप नित्य नये-नये रूपोंमें दुःखोंसे——तापोंसे जलता रहता है।

अग्नि जितनी बड़ी होती है, उतनी ही उसकी गर्मी दूर-दूरतक जाती है। इसी प्रकार कामनाकी अग्नि जितनी बढ़ी हुई होती है, उतनी ही अधिक वह अपनेको तथा अपने सम्पर्कमें आनेवाले पार्श्ववर्तियोंको जलाती है। इतना ही नहीं, कुछ भी सम्बन्ध न रखनेवालोंको भी कभी-कभी उससे बड़ा संताप मिलता है। यह कामनाकी अग्नि विषयोंकी प्राप्तिसे नहीं बुझती; इसे बुझानेके लिये तो वैराग्यरूपी धूल और भगवत्प्रेमरूपी अजस्र अमृत जल-धारा चाहिये। वह वैराग्य तभी प्राप्त होगा, जब भोगोंमें दुःखोंके दर्शन होंगे। भोग सुखरहित, दुःखालय और दुःखयोनि ही हैं; पर भ्रमवश——मोहवश उनमें सुखकी मान्यता हो रही है और जैसे शराबके नशेमें चूर मनुष्य गंदे नालेमें पड़ा हुआ भी अपनेको सुखी बतलाता है, वैसे ही उसे भोगोंमें सुखोंकी मिथ्या अनुभूति होती है। शराबीका जैसे वह प्रलाप होता है, वैसे ही उसका भी प्रलाप होता है।

याद रखो——जबतक तुम भगवान्‌को पीठ दिये, भोगोंकी ओर मुख किये चलते रहोगे, तबतक तुम्हें सुख-शान्ति नहीं मिलेगी। जितना-जितना अधिक तुम भोगोंकी ओर अग्रसर होओगे, स्वाभाविक ही भोग-मार्गमें स्थित, भोग-क्षेत्रसे उदित, भोगोंकी सहज परिणामरूपा निराशा, भय, विषाद, चिन्ता, राग, द्वेष, वैर, अशान्ति, द्रोह, दम्भ, परिग्रह, हिंसा, कामना, वासना, ममता आदि दुर्गुण-दुर्विचारोंसे घिरे रहकर सदा-सर्वदा दुःख-सागरमें डूबे रहोगे। जहाँ-जहाँ तुम सुखकी आशासे जाओगे, वहीं तुम्हें भयानक दुःखराशिके दर्शन होंगे; क्योंकि वहाँ——भोग-राज्यमें ये ही वस्तुएँ हैं। भोग-राज्यमें फँसा मनुष्य कितनी ही शान्तिकी, सुखकी, वैराग्यकी, निष्कामभावकी चर्चा करे, वह कभी भी शान्ति-सुखको प्राप्त नहीं हो सकता। अशान्ति-दुःख उसके नित्य सङ्गी बने रहेंगे। अतएव जैसे भी हो, भगवान्‌की ओर मुड़ जाओ, जबर्दस्ती ही मुड़ जाओ।

मृत्युके रूपमें भगवान्‌के दर्शन

जो मृत्युको निर्वाण मान लेता है, उसे मरनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। अतः मृत्युको मोक्षदायिनी मानकर उसका स्वागत करना चाहिये। इतना ही नहीं, वस्तुतः मृत्युका स्वाँग रचकर स्वयं भगवान् ही आते हैं——ऐसा अनुभव करके, मृत्युकी भयानकतामें भगवान्‌की सौन्दर्य-माधुर्यपूर्ण रूपसुधाका पान करके उन्हींके चरणोंमें अपनेको समर्पण करना तथा उनमें घुल-मिल जाना चाहिये——

मृत्यु ! भयानक आयी तुम, ले प्रियतम प्रभुका मधु संदेश।
तोड़ सभी मायाके बन्धन, की मिथ्या ममता निःशेष॥
रहने कहीं न दिया तनिक भी झूठे अहंकारका लेश।
चला दिया तुरंत उस पथपर, जो जाता प्रियतमके देश॥
जन्म-मरणके क्लेश, भविष्यत्‌के कर सभी नष्ट सविकार।
अमर बनाया, दिला दिया प्रभु-पदमें नित निवास-अधिकार॥
मुक्तिदायिनी प्रभु-पद-प्रेम-प्रदायिनि मृत्यु परम सुखरूप।
करो कृतार्थ मुझे तुम, लेकर निज प्रभावमें अमल अनूप॥
स्वागत-अर्घ्य कृतज्ञ हृदयका करो कृपा करके स्वीकार।
करता मैं शुचि सुरभित मन-सुमनोंसे पूजन बारंबार॥

× ×

भूला मैं, पहचान न पाया मृत्यु-वेषमें तुमको, नाथ !
तुम्हीं रूप धर घोर मृत्युका, आये करने मुझे सनाथ ॥
लीलामय-लीला विचित्र अति, कोई भी न पा सका पार ॥
तुम्हीं पिलाते स्वयं कृपा कर, रूप-सुधा निज मधुर अपार ।
कर आवरणभङ्ग, तुमने ही मायाका कर पर्दा छिन्न ।
देकर मुझे गाढ़ आलिङ्गन, किया सदाके लिये अभिन्न ॥

पाप-पुण्य

पाप और पुण्यकी सीधी-सी परिभाषा यह है कि जिस भावना या क्रियासे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका अहित होता हो, वह 'पाप' है; और जिस भावना या क्रियासे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका हित होता हो, वह 'पुण्य' है। जिससे दूसरोंका हित नहीं होता, उससे अपना हित कदापि नहीं होगा और जिससे दूसरोंका हित होता है, उससे अपना कभी अहित नहीं होगा—यह सिद्धान्त निश्चयरूपसे मान लेना चाहिये। हमारा वास्तविक हित दूसरोंके हितमें ही समाया है। जो मनुष्य ऐसा मानते हैं कि हम दूसरोंका अहित करके या दूसरोंके हितकी उपेक्षा करके अपना हित करते हैं या कर लेंगे, वे वस्तुतः बड़े मूर्ख हैं। वे अपना हित कभी कर ही नहीं पाते। यह मान्यता ही भ्रम है कि दूसरोंके हितकी उपेक्षा या उनका अहित करनेसे हमारा हित हो जायगा। यथार्थमें वे मनुष्य बड़े ही अभागे हैं, जो दूसरोंके अहितमें अपना हित और दूसरोंके दुःखमें अपना सुख समझते है। ऐसे मनुष्य ही 'असुर-मानव' हैं, जिनका जीवन दूसरोंकी बुराईमें ही लगा रहता है। वे दूसरोंकी बुराई करने जाकर अपनी ही बुराई करते हैं।

पाप मनुष्य स्वयं करता है, भगवान् नहीं कराते

भगवान् किसी पापी या अन्यायीका हाथ नहीं रोकते। यह उन्हींका बनाया हुआ नियम है कि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। जैसे गवर्नमेंट जब किसीको बंदूकका लाइसेंस देती है, तब उसे बंदूक रखने या चलानेकी कानूनी बातें समझाकर स्वतन्त्र कर देती है। फिर वह अपने इच्छानुसार उस शस्त्रका उपयोग करता है। वह चाहे तो कानूनका पालन करते हुए उसका उपयोग कर सकता है अथवा चाहे तो कानून तोड़कर भी उपयोग कर सकता है। जिस समय कानूनके विरुद्ध वह उस शस्त्रको चलाता है, उस समय भी वह उसका हाथ पकड़ने नहीं आती, फिर भी उसके कानून-भङ्ग करनेका दण्ड उसे यथासमय अवश्य देती है तथा शस्त्र भी जब्त कर लेती है। इसी प्रकार भगवान् जब जीवको मानव-शरीररूपी शस्त्र देकर संसारमें भेजते हैं, तब शास्त्ररूपी कानून साथ रख देते हैं और कहते हैं—'शास्त्रके अनुसार चलनेसे तुम्हें लाभ होगा, पुरस्कार प्राप्त होगा।' जो शास्त्रके विरुद्ध चलता है, उसका वे हाथ नहीं पकड़ते, केवल उसके अन्यायको स्मरण रखते हैं और उसका यथोचित दण्ड समयपर उसे देते हैं।

मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र, किंतु फलभोगमें परतन्त्र है

भगवान्ने प्रत्येक मनुष्यको कर्म करनेमें स्वतन्त्र बना रखा है। अतएव उसके कार्यकी जिम्मेदारी उसीपर है। वह कर्म करनेमें स्वतन्त्र, किंतु फलभोगमें परतन्त्र है। मनुष्यके अन्तःकरणमें दो प्रधान शत्रु हैं—काम और क्रोध। ये ही सारे अनर्थोंकी जड़ हैं। इन्हींकी प्रेरणासे मनुष्य पापकर्ममें प्रवृत्त होता है। ये दोनों शत्रु अपने मनमें रहते हैं और हम ही इनको प्रोत्साहन देते हैं। अतः इनके द्वारा होनेवाले कर्म भी हमारे ही किये हुए समझे जाते हैं। अतएव कोई भी मनुष्य , जो राग-द्वेष या कामनाके वशीभूत होकर कर्ममें प्रवृत्त होता है, अपने किये हुए कर्मोंके उत्तरदायित्वसे मुक्त नहीं हो सकता। उसे उनका फल अवश्य भोगना ही पड़ेगा।

× × ×

कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है और कर्मानुसार जन्मान्तरकी प्राप्ति होती रहती है; एवं जबतक भगवत्प्राप्ति या मुक्ति नहीं हो जाती, तबतक यह जन्म-मरणका प्रवाह चलता ही रहता है। मरनेपर कर्मानुसार

जीव आतिवाहिक देह प्राप्त करके तेजःप्रधान देव-देहसे स्वर्गादि लोकोंमें अथवा वायुप्रधान पितृ-प्रेतादि देहसे पितृ-प्रेत-लोकोंमें जाता है। परंतु हिंदू-संस्कृतिके सिद्धान्तमें अनन्तकालीन स्वर्ग या नरक नहीं है। स्वर्ग या नरकादि-के सुख-दुःख भोगकर जीव पुनः अपने कर्मानुसार अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेता है।

मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है और फलमें परतन्त्र है। निषिद्ध कर्माचरणसे अन्धकारमय दुःखप्रद नरकादि लोक और नीच पशु-पक्षी आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं और पवित्र वैध कर्मोंके फलस्वरूप सुखमय स्वर्गादि लोक और उत्तम श्रेष्ठवर्णकी मानव-योनि प्राप्त होती है।

लोकसेवा

जबतक तुम्हारे मनमें यह बात है कि 'मेरे बिना संसारका भला कैसे होगा', तबतक संसारका तुमसे भला नहीं होगा। जबतक तुम यह समझते हो, 'मैं उत्तम हूँ, मुझमें सद्गुण हैं, मैं ऊँचा हूँ, दूसरे लोग निकृष्ट हैं, दुर्गुणी हैं, नीच हैं,' तबतक तुम जगत्‌का कल्याण नहीं कर सकोगे। जबतक तुम यह चाहते हो कि 'मैं दुनियाका भला करूँ और दुनिया मुझे अपना नेता माने, अपना पूज्य समझे, अपना सेव्य समझे और मेरा सम्मान करे, मेरी सेवा-पूजा करे और मेरी बड़ाई हो,' तबतक तुम उसका यथार्थ कल्याण नहीं कर सकते; क्योंकि तुम्हारे मनमें नेता, पूज्य और सेव्य बननेकी जो चाह है', वह तुम्हारे अंदर एक ऐसी कमजोरी पैदा करती रहती है, जिससे तुम दुनियाके सामने सच्ची भलाईकी बात नहीं कह सकते।

याद रखो—जबतक तुम मान-बड़ाईके लिये लोकसेवा करते हो, लोकसेवा करके मान-बड़ाई पानेपर प्रसन्न होते हो, तबतक तुम्हारे मनमें लोकसेवाके साथ-ही-साथ मान-बड़ाईकी एक ऐसी चाह छिपी है, जो धीरे-धीरे तुम्हें लोकसेवासे हटाकर लोकरञ्जनकी ओर ले जाती है। और जब तुम्हारे मनमें लोकरञ्जनका भाव हो जायगा—तुम्हारा उद्देश्य लोकरञ्जन हो जायगा, तब तुम्हें लोकसेवा बरबस छोड़नी पड़ेगी। फिर तो तुम वही करोगे, जिसमें लोकरञ्जन होगा।

सुधारका ठेका मत लो

सुधारका ठेका मत लो। न अपने मतको सर्वथा उपकारी समझकर किसीपर लादनेका हठ करो। सुधारका सच्चा रूप जो तुम समझते हो, सम्भव है, वह न हो, और तुम्हें मोह, परिस्थिति, स्वार्थ या द्वेषवश वैसा दीखता हो। सावधान, कहीं सुधारके नामपर संहार न कर बैठो। सुधार तुम्हारे किये होगा भी नहीं; सच्चे सुधारक तो भगवान् हैं, जो प्रकृतिके द्वारा निरन्तर ध्वंस और निर्माणके रूपमें सुधार करते रहते हैं। स्वार्थरहित, जीवोंके सुहृद्, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होनेके कारण भगवान्‌का किया हुआ सुधार परिणाममें निश्चय ही कल्याणकारी होता है; और मोहवश इच्छा न करनेपर भी बाध्य होकर उसे सबको स्वीकार भी करना ही पड़ता है।

सेवाका आदर्श

'अपनी सारी, सब प्रकारकी सम्पत्तिपर सबका—विश्वरूप भगवान्‌का अधिकार मानकर, जहाँ-जहाँ दीन हैं, जहाँ-जहाँ गरीब हैं, जहाँ-जहाँ अभावग्रस्त हैं, असमर्थ हैं, वहाँ-वहाँ उपयोगी सामग्रीके द्वारा उनकी सेवामें लगाते रहो। मनुष्यके व्यवहारमें—मानव-जीवनमें एक बात अवश्य आ जानी चाहिये कि अपने पास विद्या, बुद्धि, धन, सम्पत्ति, भूमि, भवन, तन, मन, इन्द्रिय—जो कुछ है, उससे जहाँ-जहाँ अभावकी पूर्ति होती हो, वहाँ-वहाँ उन्हें लगाता रहे। ऐसा करना ही पुण्य है—सत्कर्म है, धर्म है।

जहाँ अन्नका अभाव है, वहाँ भगवान् अन्नके द्वारा तुम्हारी सेवा चाहते हैं; जहाँ जलका अभाव है, वहाँ जलके द्वारा; जहाँ वस्त्रका अभाव है, वहाँ वस्त्रके द्वारा और जहाँ आश्रयका अभाव है, वहाँ आश्रयके द्वारा।

इस बातको खूब याद कर लें कि हमारे पास जो कुछ है, वह दीनोंके लिये, अनाथोंके लिये और गरीबोंके लिये ही है, उन्हींके हककी चीज है। गीतामें भगवान् कहते हैं कि 'अपनी शक्ति, सम्पत्ति, जीवन—सबको देकर

उसके बाद जो कुछ बचे, उससे अपना काम निकाले। यह जो बचा हुआ है, वही 'यज्ञावशेष' है। इस प्रसादको व्यवहारमें लानेसे सारे पापोंका नाश होता है—

'यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।'

पर 'जो अपने लिये ही सब कुछ करते हैं, कमाते-खाते हैं, वे पाप खाते हैं'—

'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।'

'जो इन्द्रियाराम है, वह पापमय-जीवन है; वह व्यर्थ ही जीता है'—

'अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।'

वह पाप खाता है। अतः पाप मत खाइये। सबको सबका हक देकर, सबका स्वत्व देकर, बचे हुएसे अपना निर्वाह कीजिये। वह अमृत है। वही यज्ञावशेष है। यह कभी मत मानो कि 'मेरे पास जो सम्पत्ति है, वह मेरी है।' तुम उसके ट्रस्टी हो, व्यवस्थापक हो, मैनेजर हो; उसे भगवान्‌की समझो और उसे भगवान्‌की सेवामें यथायोग्य लगाकर धन्य हो जाओ। तभी तुम भगवान्‌के ईमानदार सेवक हो। और यदि तुमने उसको अपनी माना और अपने उपयोगमें लिया, तो तुम चोर हो, पापी हो; उसका दण्ड तुम्हें मिलेगा।

आजके युगमें सहायताका विज्ञापन पहले किया जाता है, सहायता पीछे की जाती है। यह निन्दनीय और हानिकारक चीज है। चाहिये तो यह कि हम जैसे अपने दुःखको दूर करनेमें लगते हैं, वैसे ही दूसरेके दुःखको दूर करनेमें लग जायँ। कोई अपने दुःखको दूर करनेमें क्या गौरव मानता है? क्या वह अपने ऊपर उपकार मानता हैं? बाढ़ आनेवाली हो और हम अपनी झोपड़ीकी चीजें बाहर सुरक्षित स्थानमें ले जायँ, इसमें गौरवकी बात क्या है? ऐसा किये बिना हम रह ही नहीं सकते। ठीक इसी प्रकार अपने द्वारा होनेवाली दीनोंकी सेवाके लिये मनमें तनिक भी गौरव-बुद्धि न हो—अहंताका तनिक भी स्पर्श न हो, उनका स्वत्व मानकर सेवा करें। यह ध्यान रहे कि हमारी सेवा किसीके सिरको कभी नीचा न कर दे। 'मैं गरीब, सहायताका पात्र हूँ और ये मेरे सहायक हैं'—हमारे किसी बर्तावसे ऐसा उसके मनमें न आने पाये।

जहाँतक हो सके, सेवाको प्रकट न होने दो, प्रकट करनेकी चेष्टा मत करो। प्रकट हो जाय तो सकुचाओ और सच्चे मनसे उसका श्रेय भगवान्‌की कृपाको दो।

सेवा करके अभिमान न करो; जिसकी सेवा करते हो, उससे कुछ चाहो मत, उससे किसी बातकी आशा न करो। वह हमारा कृतज्ञ हो, ऐसी कल्पना मनमें मत उठने दो। उसपर कोई एहसान न जनाओ। उसपर अपना अधिकार न मानो। उसके दोषोंको—अभावोंको देखकर घबराओ मत। उसपर झुँझलाओ मत। उसका तिरस्कार न करो।

सेवा करके विज्ञापन न करो; जिसकी सेवा की है, उसपर बोझ मत डालो। नहीं तो तुम्हारी सेवा पुनः स्वीकार करनेमें उसे संकोच होगा और पिछली सेवाके लिये, जो उसने स्वीकार की थी, उसके मनमें पछतावा होगा।

अपराध कैसे बंद होंगे?

जबतक अपराधको अपराध न माना जाय, अपराधका भयंकर फल परलोकमें भोगना पड़ेगा—यह विश्वास न हो, 'मेरे अपराधको सर्वव्यापी भगवान् देखते हैं'—यह निश्चय न हो, तबतक किसी भी बाहरी क्रियासे, कानूनसे या दण्डसे अपराधोंका अन्त नहीं हो सकता। धर्मके सिद्धान्तमें विश्वास होनेपर जब मनुष्य अपराधको पाप समझेगा, तब एकान्तमें भी वह अपराध नहीं करेगा। मनमें भी अपराधके भाव आनेपर वह अन्तर्यामी प्रभुसे संकोच करेगा, उनसे डरेगा। नहीं तो, चोरोंको दण्ड देनेका काम करनेवाला मनुष्य भी स्वयं चोरीका धन लेनेमें नहीं हिचकेगा, किसीको खूनका अपराधी सिद्ध करके उससे घृणा करनेवाला भी स्वयं स्वार्थवश खून करने-करानेमें पश्चात्तापका अनुभव नहीं करेगा। और दूसरेको व्यभिचारी बताकर उसकी घोर निन्दा करनेवाला भी स्वयं व्यभिचारमें रस लेगा। वस्तुतः अपराधके मूलस्रोतका नाश होना चाहिये। वह रहता है मनमें, उसका नाश धर्मकी अग्निसे ही होता है।

पहले अपना सुधार करो

दुनियाके सुधार और उद्धारकी चिन्ता छोड़कर पहले अपना सुधार और उद्धार करो। तुम्हारा सुधार हो गया तो समझो कि दुनियाके एक आवश्यक अङ्गका सुधार हो गया। यदि ऐसा न हुआ, तुम्हारे हृदयमें उच्च भावोंका संग्रह नहीं हो सका, तुम्हारी क्रियाएँ राग-द्वेष-रहित, पवित्र नहीं हुईं और तुमने दुनियाके सुधारका बीड़ा उठा लिया, तो याद रखो, तुमसे दुनियाका सुधार होगा ही नहीं। यह मत समझो कि तुम लोकसेवक हो, लोक-सेवा करते हो तो फिर तुम्हारे व्यक्तिगत चरित्रसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारा चरित्र कलुषित या दूषित होगा तो तुम लोकसेवा कर ही नहीं सकते। लोकसेवा तुम उस सामग्रीसे ही तो करोगे, जो तुम्हारे पास है। दुनियाके सामने तुम वही चीज रखोगे, उसको वही पदार्थ दोगे, जो तुम्हारे अंदर है। दुनियाको तुम स्वाभाविक ही वही क्रिया सिखलाओगे, जो तुम करते हो। इससे दुनियाका कल्याण कभी नहीं होगा।

सुननेवाले लाखों हैं, सुनानेवाले हजारों हैं, समझनेवाले सैकड़ों हैं, परंतु करनेवाले कोई विरले ही हैं। सच्चे पुरुष वे ही हैं और सच्चा लाभ भी उन्हींको प्राप्त होता है, जो करते हैं।

उपदेश करो अपने लिये, तभी तुम्हारा उपदेश सार्थक होगा। जो कुछ दूसरोंसे करवाना चाहते हो, उसे पहले स्वयं करो; नहीं तो तुम्हारे उपदेश नाटकके अभिनयके सिवा और कुछ भी नहीं हैं।

विश्वप्रेमका आधार

आज जो समस्त विश्व-मानसमें एक भयानक द्वेष, परसुख-असहिष्णुता, भीषण कलह तथा हिंसाकी आग जल उठी है, एवं पता नहीं, वह कब भयानक मूर्तरूपमें भड़ककर मानव-जातिका विनाश कर देगी, इसका प्रधान कारण है—स्वार्थका अत्यन्त संकुचित—सीमित हो जाना, मानवका एक छोटी-सी परिधिमें ही सुखकी कल्पना करना और स्वसुख-वासनाको ही एकमात्र जीवनका ध्येय बना लेना। विश्वबन्धुत्व या विश्वप्रेमकी कितनी ही लंबी-चौड़ी बातें की जायँ, विशाल योजनाएँ बनायी जायँ, सह-अस्तित्व या पञ्चशीलके नारे लगाये जायँ— जबतक मानव परसुखको ही निजसुख नहीं मानेगा, जबतक निजसुखका त्यागी और परसुखका विधायक नहीं बनेगा, तबतक सच्चे अर्थमें विश्वप्रेमका उदय कभी नहीं होगा।

समता-विषमता

याद रखो—जगत्में विषमता कभी मिट नहीं सकती। जगत् भगवान्का लीलाक्षेत्र है। लीलामें समता हो जाय तो लीला ही न रहे। जगत्में यदि प्रकृति साम्यभावको प्राप्त हो जाय तो जगत् ही न रहे। अतएव भगवान्की लीलाके लिये चित्र-विचित्र विभिन्न भावों, गुणों, आकृतियों और क्रियाओंकी आवश्यकता है। पर इन सारे भावों, गुणों, आकृतियों और क्रियाओंमें सर्वत्र समभावसे भगवान् भरपूर हैं। जो इन भरपूर भगवान्को देखकर, पहचानकर जगत्में व्यवहार करता है, उसमें जगत्की दृष्टिसे व्यावहारिक यथायोग्य विषमता करते हुए ही जिसका व्यवहार वस्तुतः समत्वपूर्ण होता है, जिसका बाह्य विषम व्यवहार आभ्यन्तरिक समतासे उत्पन्न और समतासे युक्त है, वही सच्चा साम्यवादी है। पर जो केवल बाहरसे सम व्यवहारका प्रयत्न करता है, अंदर विषमता रखता है, वह तो समताका रहस्य ही नहीं समझता। ऐसे विषमतासे उत्पन्न और विषमतासे युक्त साम्यवादसे सदा दूर रहो।

समता आत्मामें होती है, शरीरके व्यवहारमें नहीं होती। सृष्टिकी स्थिति प्रकृतिकी विषमतामें ही है। जहाँ प्रकृतिका वैषम्य मिट जाता है, वहाँ जगत्का अस्तित्व ही लोप हो जाता है। वह तो महाप्रलयकी अवस्था है, जिसमें प्रकृतिदेवी परमात्माके अंदर प्रविष्ट होकर सो जाती है।

इसीलिये हिंदू विद्वान्, जिन जीवोंके आकार-प्रकार, खान-पान, व्यवहार-बर्तावमें कभी समता हो ही नहीं सकती, उनमें भी ब्रह्म—परमात्माको समभावसे विराजित देखते हैं। भगवान् कहते हैं—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
(गीता ५ । १८)

'वे पण्डितजन विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मणमें, चण्डालमें तथा गौ, हाथी और कुत्तेमें भी समदर्शी होते हैं।'

यहाँ कोई कह सकते हैं—'ब्राह्मण और चण्डाल—दोनों ही मनुष्य हैं। इनमें समदर्शन ही क्यों, समान व्यवहार भी हो सकता है (यद्यपि यह सम्भव नहीं)।' उनसे यह कहना है कि 'मनुष्यकी बात तो ठीक है—पर गाय, हाथी, कुत्तेके साथ भी क्या सम व्यवहारकी बात कभी सोची जा सकती है?' पर व्यवहारमें विषमता होते हुए भी प्राणिमात्रमें एक ही आत्मा—एक ही भगवान् सदा विराज रहे हैं, इस बातको हिंदू देखता है। वह ब्राह्मणके साथ ब्राह्मणोचित, चण्डालके साथ चण्डालोचित तथा गौ, हाथी और कुत्तेके साथ उनके योग्य व्यवहार करता है, परंतु उनमें नित्य एक ही परमात्माको देखनेके कारण किसीके साथ असद्व्यवहार नहीं करता और न व्यवहारकी विषमतासे उसके प्रेम और परमात्मभावमें ही न्यूनता आती है।'

जिस प्रकार अपने मस्तक, हाथ-पैर आदि अङ्गोंमें आत्मभाव समान होनेपर भी मनुष्य उनके व्यवहारमें भेद रखता है—मस्तिष्कसे विचार करता है, मुँहसे खाता है और बोलता है, हाथोंसे आदान-प्रदान करता है, लिखता-पढ़ता है और पैरोंसे चलता है; एक अङ्गसे दूसरे अङ्गका काम नहीं लेता; क्योंकि वह जानता है कि यह सम्भव ही नहीं है; परंतु सबके दुःख-सुखका समानरूपसे अनुभव करता है और समस्त शरीरमें समान प्रेम करता है; उसी प्रकार व्यवहारमें भेद रखता हुआ भी हिंदू प्रत्येक प्राणीके साथ आत्माके नाते सदा समभावापन्न रहता और वह जैसे अपने योगक्षेम तथा कल्याणके लिये प्रयत्न करता है, वैसे ही अन्यान्य जीवोंके लिये भी करता है।

यदि कहीं किसीके साथ कभी व्यवहारमें युद्धादि-जैसी क्रूर क्रिया करनी पड़ती है तो वैसे ही जैसे मनुष्य अपने किसी सड़े अङ्गका विकार निकालनेके लिये शस्त्रक्रिया (ऑपरेशन) कराता है।

व्यावहारिक अनेकतामें तात्त्विक एकता और प्रकृति-जनित जगत्की विषमतामें परमात्माकी नित्य समता देखना हिंदू-संस्कृतिकी विशेषता है।

× × ×

आत्मवत् व्यवहारमें—अपने ही शरीरके दायें-बायें और ऊपर-नीचेके अङ्गोंके साथ और उनके द्वारा होनेवाले व्यवहारकी भाँति—क्रियामें भेद रहेगा; क्योंकि बाह्यव्यवहार सारे-के-सारे प्रकृतिमें हैं; और प्रकृतिमें भेद है ही। इस प्रकृतिभेदके कारण ही समस्त संसारमें विषमता नजर आ रही है। न सबका वर्ण एक-सा है, न बुद्धि एक-सी है, न ढाँचा एक-सा है, न शरीरकी ताकत एक-सी है, न चेहरा एक-सा है; कुछ-न-कुछ भेद अवश्य है। इस भेदमय संसारमें अभेद देखना ही तो आत्मबुद्धि है—शुद्ध ज्ञान है।

विचार-स्वातन्त्र्य

विचार-स्वातन्त्र्यका अर्थ मनमाना आचरण करना नहीं है। 'मेरे मनको जो अच्छा लगेगा, मेरी इन्द्रियाँ जिसमें सुख मानेंगी, मैं वही करूँगा, किसी भी नियम-संयममें, बन्धनमें नहीं रहूँगा। किसीकी हानि हो या लाभ, अपना भी नैतिक पतन हो या उत्थान, मैं इसकी परवाह नहीं करूँगा। मेरी स्वतन्त्रताके आगे किसीका भी कोई मूल्य नहीं है'—ऐसा मानना विचार-स्वातन्त्र्य नहीं है। यह तो यथेच्छाचार है और प्रत्यक्ष ही मन-इन्द्रियोंकी गुलामी है। जो मन-इन्द्रियोंका गुलाम बनकर उनकी तृप्तिके लिये विवेकशून्य यथेच्छ आचरण करता है, वह स्वतन्त्र कहाँ है, असलमें तो वही परतन्त्र है। जो शरीरसे परतन्त्र है, पर मन-इन्द्रियोंपर जिसका अधिकार है; जो उनके वशमें नहीं है, पर वे ही जिसके वशमें हैं, वही वस्तुतः स्वतन्त्र है। इस स्वतन्त्रताके लिये नियमोंकी आवश्यकता है, संयमकी आवश्यकता है एवं नित्य अंदर छिपे रहनेवाले काम-क्रोध, ईर्ष्या-असूया, राग-द्वेष, दम्भ-हिंसा आदि शत्रुओंके पूर्ण दमनकी आवश्यकता है। जो मन-इन्द्रियोंको दोषोंसे रहित और नित्य संयमके बन्धनमें

रखता है, वही बन्धनसे छूटता है। यह बन्धन मुक्तिके लिये होता है और इस बन्धनसे छूटना नित्य-बन्धनमें बँधना होता है।

असुर-मानव

याद रखो—भगवान्‌को जीवनकी परम गति न मानकर जो केवल भोगोंके प्राप्त करने और उन्हें भोगनेमें ही जीवनकी इतिकर्त्तव्यता मानता है, कामोपभोग ही जिसके जीवनका सिद्धान्त है, वह असुर है। वह असुर-मानव, दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वचन तथा अज्ञानको अपनी सम्पत्ति माने रहता है। यथार्थमें कौन-सा कर्म करना चाहिये, कौन-सा नहीं करना चाहिये—इसको वह जानता ही नहीं; इसलिये उसके जीवनमें न तो बाहर-भीतरकी शुद्धि रहती है, न श्रेष्ठ आचरण रहते हैं और न सत्यका व्यवहार या दर्शन ही। वह मानता है—'संसारका कोई न तो बनानेवाला है न कोई आधार है; प्रकृतिके द्वारा अपने-आप ही यह उत्पन्न हो जाता है। स्त्री-पुरुषोंका संयोग ही इसमें प्रधान हेतु है। अतएव संसारमें भोग भोगना ही जीवनका सार-सर्वस्व है।' इस प्रकार मानकर वह असुर-मानव अपने मानव-भावको भी खो देता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, दूसरेका बुरा करनेमें ही वह अपना स्वार्थ समझता है। ऐसा कोई उग्र-क्रूर कर्म नहीं, जो वह नहीं कर सकता हो; दूसरे चूल्हे-भाड़में जायँ, उसका स्वार्थ सिद्ध होना चाहिये।

× × ×

याद रखो—मानव-नामधारी प्राणी जब अनेक नाम-रूपोंसे अभिव्यक्त प्राणियोंको एक आत्मभावसे न देखकर पृथक्-पृथक् देखता है, तब अपने और पराये सुख-दुःखको भी पृथक्-पृथक् मानता है। इससे वह अपने दुःख-निवारण तथा अपने सुख-सम्पादनके लिये सचेष्ट और सक्रिय होता है और यह व्यष्टि-सुखसंचयकी इच्छा तथा प्रयत्न दूसरोंके सुखहरण और घोर दुःखोत्पादनका कारण बनता है। जितना-जितना मानवका 'स्व' संकुचित होता है, उतना-उतना ही उसका स्वार्थ भी संकुचित होता है; तथा जितना-जितना 'स्व' विस्तृत होता जाता है, उतना-उतना ही स्वार्थ भी महान् होता जाता है। संकुचित स्वार्थ—एक स्थलपर एकत्र पड़े जलकी भाँति सड़ जाता है, उसमें दुःखरूपी कीड़े पड़ जाते हैं और विस्तृत स्वार्थ प्रवाहित जल-धाराकी भाँति पवित्र, कीटाणुरहित, नीरोग होकर सबको स्वास्थ्य-सुख प्रदान करता है।

× × ×

याद रखो—जो मनुष्य मनुष्यतक ही केवल आत्माको देखता है, दूसरे चेतन प्राणियोंमें नहीं, वह मनुष्य-जातिके सुखके लिये पशु-पक्षी, कीट-पतंगोंकी हिंसा-हत्या करनेमें संकोच नहीं करता, बल्कि आवश्यक मानकर मानव-सुख या मानव-हितके भ्रमसे उनकी बिना संकोच हिंसा करता है। वह इतना निर्दय होता जाता है कि उन मूक प्राणियोंको प्राण-वियोगके समय पीड़ासे छटपटाते देखकर आनन्द-लाभ करता है, मनोरञ्जन करता है और हँसता है। वह मानव-शरीरमें एक प्रकारका क्रूर 'असुर' ही है।

भक्त-मानव

मानवताके मङ्गलमय स्वरूपकी एक बड़ी सुन्दर अनुभूति है—मानव सभी प्राणियोंमें अपने परम इष्टदेव, अपने परमाराध्य भगवान्‌के दर्शन करता है, तथा इस दृष्टिसे प्राणिमात्रको सदा-सर्वदा परमपूज्य, परम सम्मान्य, परम आदरणीय तथा नित्य सेवनीय मानता है। वह अपनेको अनन्य सेवक और प्राणिमात्रको अपने स्वामी श्री-भगवान्‌का स्वरूप समझकर सदा सबके नमस्कार, पूजन तथा सेवामें लगा रहता है। सबके सामने सदा नत रहकर अत्यन्त विनय-विनम्रताका व्यवहार करता है, सबका सम्मान-सत्कार करता है, और अपने सब कुछको भगवान्‌की सम्पत्ति मानकर सर्वस्वके द्वारा उनकी सेवा करता रहता है। इस सेवा-स्वीकारको वह उनकी कृपा मानता है। सेवा-बुद्धि प्रदान करने, सेवामें निमित्त बनाने तथा सेवा स्वीकार करनेमें भगवान्‌की कृपाको ही कारण समझकर वह सदा-सर्वदा कृतज्ञ हृदयसे भगवान्‌का स्मरण-चिन्तन करता रहता है। उसके पवित्र तथा मधुर अन्तःकरणमें सदा निर्मल समर्पणकी पवित्र मधुर सुधा-धारा बहती रहती है। वह केवल चेतन प्राणीमें ही

अपने भगवान्‌को नहीं देखता, जड प्राणियोंमें भी वह अपने भगवान्‌के नित्य दर्शन करके प्रणाम, पूजन तथा समर्पण आदिके द्वारा उनकी सेवा करता रहता है। ऐसा मानव 'भक्त-मानव' है। इसकी मानवता सर्वथा आदर्श तथा महान् है।

हिंदू-विवाहका स्वरूप

हिंदू-विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है, एक महान् यज्ञ है। मनुष्य पशुकी भाँति अमर्यादित स्वेच्छाचारी न हो जाय, उसकी इन्द्रिय-चरितार्थताकी वासना संयमित हो, भोगलालसा मर्यादित रहे, भावमें विशुद्धि बनी रहे, संतानोत्पादनके द्वारा वंशकी रक्षा और पितृ-ऋणका शोध हो, भोगका तत्व जानकर संयमके द्वारा मनुष्य क्रमशः त्यागकी ओर अग्रसर हो सके, प्रेमको केन्द्रीभूत करके उसे पवित्र बनानेका बल प्राप्त हो, स्वार्थका संकोच और परार्थ-त्यागकी बुद्धि जाग्रत् होकर वैसे ही परार्थ-त्यागमय जीवनका निर्माण हो और अन्तमें मानव-जीवनकी सफलतारूप भगवत्प्राप्ति हो जाय—इन्हीं सब पवित्र उद्देश्योंको लेकर हिंदू-विवाहका पावन विधान है। विवाहसे विलास-वासनाका सूत्रपात नहीं होता, वरं संयम-नियमपूर्ण जीवनका प्रारम्भ होता है।

इस जगत्‌की रचना पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे हुई है और जबतक जगत् रहेगा, यह प्रकृति-पुरुषका संयोग-सम्बन्ध भी बना रहेगा। पुरुष और प्रकृति दोनों अनादि हैं। पुरुषके संसर्गसे प्रकृति ही समस्त प्राणि-जगत्‌को, समस्त विकारोंको और अखिल गुणोंको उत्पन्न करती है।

प्रकृति शक्ति है, पुरुष शक्तिमान् है। शक्तिके बिना शक्तिमान्‌का अस्तित्व नहीं और शक्तिमान्‌के बिना शक्तिके लिये कोई स्थान नहीं। शक्ति-शक्तिमान्‌का अविनाभाव-सम्बन्ध है। यही नारी और नरके सम्बन्धका मूल तत्व है। नर पुरुषका और नारी प्रकृतिका प्रतीक है। नारीका नाम ही 'प्रकृति' है। एकके बिना दूसरा अपूर्ण है। दोनोंके कर्त्तव्य तथा कर्मक्षेत्र पृथक्-पृथक् होनेपर भी वे एक ही शरीरके दक्षिण और वाम—दो अङ्गोंकी भाँति एक ही शरीरके दो संयुक्त भाग हैं और इन दोनोंके कार्य भी एक दूसरेके पूरक तथा एक ही शरीरकी स्थिति, समृद्धि, सुव्यवस्थितता, पुष्टि और तुष्टिके कारण हैं। एकके बिना दूसरेका काम नहीं चल सकता। अपने-अपने क्षेत्रमें दोनोंकी ही प्रधानता और श्रेष्ठता है; पर दोनोंकी श्रेष्ठता एक ही परम श्रेष्ठकी पूर्तिमें संलग्न है। दोनों मिलकर अपने-अपने पृथक् कर्त्तव्योंके पालनद्वारा परस्पर सुख प्रदान करते हुए जीवनके परम और चरम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं। नर भगवान्‌की प्राप्ति करता है—पतिव्रता नारीके दिव्य त्यागमय पवित्र आदर्शको सामने रखकर भगवान्‌के प्रति सम्पूर्णतया आत्मसमर्पण करके और नारी उसी भगवान्‌की सहज ही प्राप्ति करती है—अपने अभिन्नस्वरूप स्वामीका सर्वाङ्गपूर्ण अनुगमन करके—स्वामीको परमेश्वर मानकर सहज ही भगवदाकार वृत्ति बनाकर। यह नर और नारीका स्वरूप, कर्त्तव्य और उनकी विवाह-साधनाका परिणाम है। नारी पतिगतचित्ता तथा पतिगतप्राणा होकर अपने क्षेत्रमें ही अपने दृष्टिकोणसे पतिकी सेवा करती है—भगवत्प्राप्तिके लिये और नर भी अपने क्षेत्रमें रहकर अपने क्षेत्रके अनुकूल कार्योंद्वारा नारीकी सेवा करता है—भगवत्प्राप्तिके लिये। क्षेत्र तथा कार्यमें भेद रहनेपर भी दोनोंका लक्ष्य एक ही है और दोनोंके ही स्थान तथा कर्त्तव्य एक-दूसरेके लिये अत्यन्त प्रयोजनीय, महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य अभिनन्दनीय हैं एवं दोनों ही अपने लिये परम आदर्श-स्वरूप हैं।

नारी नरकी पत्नी होनेपर भी उसकी स्वामिनी, सखी और सेविका है। इसी प्रकार नर नारीका पति होनेपर भी उसका सेवक, सखा और स्वामी है। नारी पतिव्रता है और उसका यह पातिव्रत्य है—यथार्थमें परम पति परमात्माकी अथवा उनके परम प्रेमकी प्राप्तिके लिये ही। यही नारीकी विशेषता है और इसकी स्वीकृतिमें ही पुरुषकी महत्ता है। नारी सेविका होते हुए भी स्वामिनी है और नर स्वामी होते हुए भी सेवक है। दोनों ही स्वतन्त्र और दोनों ही स्वेच्छया परतन्त्र हैं। यह परतन्त्रता उनकी स्वतन्त्रताकी शोभा है। अवश्य ही दोनोंकी स्वतन्त्रताके क्षेत्र और पथ पृथक्-पृथक् हैं। यही दोनोंका स्वधर्म है। नारी घरकी रानी है, सम्राज्ञी है।

रोगोंकी वृद्धिका कारण

जहाँ डाक्टर-वैद्योंका व्यवसाय खूब चलता हो, दवाओंके कारखाने तथा बाजार उत्तरोत्तर प्रगति करते हों, दवा-व्यवसाय बहुत लाभदायक हो, वहाँ निश्चित ही बीमारोंकी तथा बीमारियोंकी संख्या बढ़ी हुई है और लोग संयमी न रहकर दवा-दास हो रहे हैं। हमारे भारतमें इस समय दवा-उद्योग उत्तरोत्तर उन्नत होता चला जा रहा है। आयुर्वेदिक औषध-निर्माणके बड़े-बड़े व्यवसाय चल ही रहे थे, अब करोड़ोंकी पूँजी लगाकर सरकार ऐंटीबायोटिक औषधोंके निर्माणके बहुत बड़े कारखाने खोलने जा रही है। इनमें करोड़ों रुपयोंकी दवाइयाँ बनेंगी। अधिक-से-अधिक औषधोंका निर्माण (Production) होगा और अधिक-से-अधिक उनकी खपत तथा माँग होगी, तभी ये कारखाने लाभप्रद हो सकते हैं—तभी यह उद्योग (Industry) सफल हो सकता है। इसके लिये रोगी और रोगोंका बढ़ना आवश्यक है। ये कारखाने इसलिये तो बन ही नहीं रहे हैं कि देशमें लोग संयमी हो जायँ, रोगोंकी कमी हो जाय और इन कारखानोंको घाटा लगे। ये तो बनाये ही जाते हैं मुनाफेके लिये। अतएव स्वाभाविक इनका प्रचार-कार्य होगा—जिससे इनकी दवा अधिक-से-अधिक बिकें। अतएव स्वाभाविक ही रोग और रोगियोंकी संख्या देशमें बढ़े—यही इच्छा और प्रयत्न इनका होगा; उसका प्रकार कुछ भी हो।

देशभक्तिका स्वरूप

'देशभक्त' और 'देश'के स्वार्थमें जब कहीं विरोध होता है और वहाँ यदि देशभक्तका 'स्वार्थ' देशके स्वार्थपर विजय प्राप्त कर लेता है तो वहाँ देशकी सेवा नाम-मात्रकी रह जाती है और यही आज हो रहा है। हमलोगोंमें अधिकांश ऐसे हैं, जिनका मन देशके 'स्वार्थ'से हटकर व्यक्तिगत स्वार्थमें सीमित हो गया है। उसका परिणाम तो 'बीजफल-न्याय'से अनिष्ट ही होना सम्भव है।

चोर-पूजा

हमारी ईमानदारीका इतना ह्रास हो गया है कि सभी वर्गोंके लोग धनके लिये चोरी, बेईमानी, छल-कपट, मिलावट, परस्वापहरण, हिंसा आदि करनेमें बुद्धिमानी मानने लगे हैं। ईश्वर-धर्मका कोई भय नहीं, कानूनका बचाव होना चाहिये; और जहाँ कानून मनवानेवाले और माननेवाले समझौता करके भागीदारी कर लेते हैं, वहाँ तो कुछ कहने-सुननेकी बात ही रह नहीं जाती। व्यापारियोंमें तथा अधिकारीवर्गमें चोरी-घूसखोरी आगकी तरह बढ़ रही है और पैसा हो जानेपर यह नहीं देखा जाता कि पैसा किस साधनसे आया है। किसी तरह भी हो, पैसा आया कि उसे समाजके नेता होनेका, विद्वानोंद्वारा आदर पानेका, अधिकारियोंद्वारा सम्मान पानेका, समाजमें परम सत्कार तथा उच्चस्थान पानेका अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस 'चोर-पूजा'से समाजका बड़ा ही अहित हो रहा है।

आज उन्नतिके नामपर 'सह-भोजन', 'सह-शिक्षा', होटलोंमें सब कुछ तथा सब तरहसे बने हुए पदार्थोंका 'अनर्गल आहार', 'उच्छिष्ट भोजन', 'निर्लज्ज तथा अमर्यादापूर्ण डान्स' आदि चलते हैं। 'सिनेमा' तथा 'इन्द्रियोंमें अनुचित उत्तेजना पैदा करनेवाला साहित्य' अपना अलग प्रभाव डालते हैं। परिणाम यह होता है कि आज कोई 'धर्म'के नामसे घृणा करता है, कोई सम्प्रदाय कहकर मखौल उड़ाता है, कोई धर्मकी बात सोचकर व्यर्थ समय नष्ट करना समझता है। और कोई-कोई तो धर्मको उन्नतिका सर्वथा विघातक समझता है। धर्महीन विचार, धर्महीन शिक्षा, धर्महीन बाहरी छोटे-बड़े आचार-व्यवहार—सब मिलकर आज मनुष्यको मानवतासे गिराकर, उसे पशुता और असुरतामें परिणत कर रहे हैं। इस प्रकार द्रुतगतिसे जो 'धर्महीन समाज'का निर्माण हो रहा है, उसका परिणाम कितना भयानक होगा—इसपर गम्भीरतासे विचार करनेकी आवश्यकता है।

भारतवर्षका यह सनातनधर्म ही था, जो चराचर विश्वमें एक भगवान् या एक आत्माके दर्शन कराकर सबमें सहज प्रेमका विस्तार कर सकता था। प्रेम त्यागसे होता है और अपने हितके लिये मनुष्य सहज ही त्याग करता है। जब सर्वत्र आत्मदृष्टि हो जाती है, तब सबका हित ही अपना हित हो जाता है; फिर कैसे कोई किसी-का अहित-चिन्तन या अहित-साधन कर सकता है ? इसीसे मनीषियोंका यह मत है कि 'जगत्‌के सब मत नष्ट हो जायँ तो हर्ज नहीं है; सबमें एक आत्माका दर्शन करनेवाला यह विश्वमानवका 'सनातनधर्म' जीवित रहेगा तो सब जीवित रहेंगे--सबका कल्याण होगा। पर यही धर्म यदि नहीं रहेगा, (यद्यपि इसकी सम्भावना नहीं है; क्योंकि यह 'सत्य' है, और सत्य कभी मरता नहीं, वह किसी-न-किसी अंशमें रहता ही है) तो समस्त विश्वका विध्वंस हो जायगा और वर्तमानमें इसी सनातनधर्मका ह्रास हो रहा है।' इस 'सनातनधर्म' और 'हिंदू-संस्कृति'के स्वरूपको जानने-माननेवालोंकी संख्या दिनों-दिन घटती जा रही है, इसकी शिक्षाका अभाव हुआ जा रहा है। सनातनधर्म तथा सनातन हिंदू-इतिहासका अज्ञान बढ़ा जा रहा है। यह विश्वके भविष्यके लिये बड़े भारी खतरेकी चीज है। अतः यदि विश्वकल्याणके साथ ही भारतको तथा मनुष्यमात्रको राष्ट्रका, देशका, समाजका तथा व्यक्तिगत अपना कल्याण इच्छित है, तो इस सनातनधर्मको समझना, समस्त शिक्षालयोंके शिक्षाक्रममें सनातनधर्मकी शिक्षाकी व्यवस्था करना, सनातनधर्मकी महत्ता, उदारता, सर्वजीवहितैषिताकी सत्-शिक्षाका प्रचार-प्रसार करना, इसकी शिक्षाका ग्रहण करना, इसे जीवनमें क्रियारूपमें उतारना और समस्त विश्वको इसका मङ्गल-संदेश देना परम आवश्यक और अविलम्ब अनिवार्य कर्त्तव्य है।

जीवनस्तरको ऊँचा उठाओ

आजकल एक नया रोग फैला है--'जीवनके स्तरको, रहन-सहनको ऊँचा उठाओ।' त्याग, तपस्या, संयम, सादगी, सेवा, सदाचार, मितव्ययिता आदिमें नहीं, भोग, उच्छृङ्खलता, यथेच्छाचार, विलासिता, आरामतलबी, अनाचार, फिजूलखर्ची आदिमें। इसका आदर्श है--अनावश्यक आवश्यकताओंको बढ़ाते रहो। अधिक-से-अधिक वस्तुओंका उपयोग करो, मौज-शौककी चीजें बरतनेकी आदत डालो, हाथ-पैरसे कामकाज न करो, श्रम करनेमें अपमान समझो, सिनेमा-रेडियो आदिसे आनन्द लूटो, जीवनको भोगमय या इन्द्रियोंका गुलाम बना लो। फिर इन बढ़ी हुई आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये जीवनका सारा समय तथा सारी विवेक-बुद्धिको लगाते रहो। इस ऊँचे स्तरके निर्माणमें मिथ्या अभिमान, फैशन, विलासिता, बाहरी दिखावा, बेहद खर्च, समयका नाश और इन्द्रियों-का दासत्व कितना बढ़ जाता है, साथ ही शारीरिक रोग भी कितने बढ़ते हैं--इसका जरा भी ध्यान न करके हमलोग आज नकली आवश्यकताओंको बढ़ाते जाते हैं। हमारे छात्र-छात्राओंमें यह रोग बहुत तेजीसे बढ़ रहा है, जो देशके लिये अत्यन्त घातक है।

हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप

जीवनके सभी क्षेत्रोंमें व्याप्त सनातन-परम्परासे चली आती हुई अध्यात्मप्रधान धर्ममय सुसंस्कृत विचार और आचार-प्रणालीका नाम ही 'हिंदू-संस्कृति' है। हिंदू-संस्कृतिकी यह निर्मल धारा अत्यन्त प्राचीन कालसे अवि-च्छिन्नरूपमें प्रवाहित है। अतएव हिंदू-संस्कृति सबसे प्राचीन और अपरिवर्तनीय सनातन भारतीय आर्य-संस्कृति है, यही वास्तवमें मानव-संस्कृति है। इस संस्कृतिमें मनुष्य-जीवनका प्रधान और एकमात्र लक्ष्य है--मोक्ष, ज्ञान अथवा भगवत्प्राप्ति। इसीसे इसमें जीवनकी प्रत्येक क्रिया और चेष्टा इसी लक्ष्यपर ध्यान रखकर की जाती है। इसीलिये हमारे पुरुषार्थ-चतुष्टयमें अन्तिम स्थान 'मोक्ष'को दिया गया है--धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। हमारा अर्थ और काम (उपभोग) धर्मके द्वारा संयमित--नियन्त्रित होता है। धर्मरहित अर्थ और धर्मरहित उपभोग (काम) महान् अनर्थ करके मनुष्यका विनाश कर देते हैं। केवल 'अर्थ' और 'काम'से युक्त जीवन तो पशु-जीवन है। हिंदू-संस्कृतिमें अर्थ तथा कामका त्याग नहीं है। उनकी भी उपादेयता है, पर वे होने चाहिये धर्मके आश्रित और उनका लक्ष्य हो मोक्ष।

--:०:--

अर्पण

तुम हो यन्त्री, मैं यन्त्र; काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥
मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ नित ही परतन्त्र; न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं, मन ही न पृथक्; मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥

क्या करूँ, नहीं क्या करूँ—करूँ इसका मैं कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हें, सो प्रिय विहार॥
अनबोल, नित्य निष्क्रिय, स्पन्दनसे रहित, सदा मैं निर्विकार।
तुम जब जो चाहो, करो सदा बेशर्त, न कोई भी करार॥

मरना-जीना मेरा कैसा, कैसा मेरा मानापमान।
हैं सभी तुम्हारे ही, प्रियतम! ये खेल नित्य-सुखमय महान॥
कर दिया क्रीडनक बना मुझे निज करका तुमने अति निहाल।
यह भी कैसे मानूँ-जानूँ, जानो तुम ही निज हाल-चाल॥

इतना मैं जो यह बोल गयी, तुम जान रहे—है कहाँ कौन।
तुम ही बोले भर सुर मुझमें मुखरा-से, मैं तो शून्य मौन॥

❀ ❀ ❀

प्रेरक तुम, प्रेरणा तुम्हारी, रस-रति-भाव तुम्हारे रूप।
करके तुम्हीं दिखाते, स्वयं लिखाते लीला तुम्हीं अनूप॥
देते खोल भाव अनुपम, शब्दोंका शुचितम तुम भंडार।
रचना तुम करवाते, सुनते तुम्हीं उसे फिर कर मनुहार॥

विमल भाव-सुख निज दर्शनका यह अपना ही कृति-दर्पण।
ज्योति बढ़ाता सहज परस्पर, तुम्हें हो रहा है अर्पण॥
भली-बुरी यह वस्तु तुम्हारी, तुम्हीं सर्वथा स्वामि अनन्य।
तुच्छ अबोध मलिन इस जनको बना निमित्त कर दिया धन्य॥

सर्वात्मसमर्पण

सौंप दिये मन-प्राण तुम्हींको, सौंप दिये ममता-अभिमान ।
जब जैसे जी चाहे बरतो, अपनी वस्तु सर्वथा जान ।।
मत सकुचाओ मनकी करते, सोचो नहीं दूसरी बात ।
मेरा कुछ भी रहा न अब तो, तुमको सब कुछ पूरा ज्ञात ।।
मान-अमान, दुःख-सुखसे अब मेरा रहा न कुछ सम्बन्ध ।
तुम्हीं एक कैवल्य मोक्ष हो, तुम ही केवल मेरे बन्ध ।।
रहूँ कहीं, कैसे भी, रहती बसी तुम्हारे अंदर नित्य ।
छूटे सभी अन्य आश्रय अब, मिटे सभी सम्बन्ध अनित्य ।।
एक तुम्हारे चरण-कमलमें हुआ विसर्जित सब संसार ।
रहे एक स्वामी, बस, तुम ही, करो सदा स्वच्छन्द विहार ।।

श्रीराधाकृष्णार्पणमस्तु !

मनै तो आँ चरणाँ माँ इ राखियो

लेखकानुक्रमणिका